





Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

VOL. 24 1992 No. 1-3, 4-7, 10-12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



111921



Binding - 3427-17  
ms 3







प्रकर

Complete

माघ : २०४८ [विक्रमाब्द] :: जनवरी : १९९२ [ईस्वी]

Handwritten signature and initials, possibly 'GGL'.

मकर-संक्रान्ति अंक

'प्रकर'का चौबीसवें  
वर्षमें प्रवेश-अंक



111921

111921



## प्रस्तुत अंक के लेखक-समीक्षक

- ☐ डॉ. एस. टी. नरसिंहचारी, १२४०, प्रथम तल, IV मेन, ई ब्लॉक, II स्टेज, राजाजी नगर, बेंगलुरु—५६००१०.
- ☐ डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त, १०/१२० ग्रेटर कैलाश कालोनी, कुंजवानी बाई पास, जम्मू—१८००११.
- ☐ डॉ. कृष्णकुमार, मिश्रा गार्डन, हनुमान गढ़ी, कनखल—२४६४०८.
- ☐ डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त, १८६/१२, आर्यपुरी, मुजफ्फरनगर—२५१००१.
- ☐ श्री कैलासदान लाळस, २४१ 'ए', डॉ. सीताराम लाळस मार्ग, शास्त्रीनगर, जोधपुर (राज.).
- ☐ प्रो. घनश्याम शलभ, ११-ख, रवीन्द्रनगर, उदयपुर—३३३००१.
- ☐ श्री जगदीश शिवपुरी, चन्दन निवास, एस. बी. रोड, मुम्बई—४०००६६.
- ☐ डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, ७४ शान्तिनगर, सिरौही—३०७००१.
- ☐ डॉ. निजामुद्दीन, बालैनी (मेरठ) — २५०६२६.
- ☐ श्री पिडपति वेंकटराम शास्त्री, १८-५-२ पोत्तूरिवारि वीथी, विजयनगरम्-५३१२०२.
- ☐ डॉ. भगीरथ बड़ोले, सी-२८६ विवेकानन्द कालोनी, फ्रीमंज, उज्जैन ४५६००१.
- ☐ प्रो. मधुरेण, ब्रह्मानन्द पाण्डेयका मकान, भांजी टोला, बदायूँ—२४३६०१.
- ☐ डॉ. मान्धाता राय, नयी बस्ती, सकलेनाबाद, गाजीपुर (उ. प्र.).
- ☐ डॉ. यशपाल वैद, २०३ विवेकविहार, सिविन लाइंस, अम्बाला नगर—१३४००३.
- ☐ डॉ. रजनीकान्त जोशी, सी-५, ओजम एपाटमेंट, सुरेन्द्र मंगलदास मार्ग, अहमदाबाद—३८००१५.
- ☐ डॉ. रामदेव शक्ल, ६ हीरापुरी, गोरखपुर—२७३००६.
- ☐ डॉ. रामनाथ वेदालंकार, वेद मन्दिर, गीताश्रम, जमालापुर—२४६४०७.
- ☐ डॉ. विद्या केशव चिटको, ८ 'यमाई' अक्षर को सोमायटी, ममथ नगर, नासिक—४२२००५.
- ☐ डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, पी. एन. सिन्हा कालोनी, भिखना पहाड़ी, पटना—८००००६.
- ☐ श्री सुरेन्द्र तिवारी, १०१०१/बी-४, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा दिल्ली-११००३२.
- ☐ डॉ. हरदयाल, एच-५०, पश्चिमी ज्योतिनगर, गोकुलपुरी, दिल्ली—११००६४.

## विश्वविद्यालयों / महाविद्यालयों/पुस्तकालयोंके लिए अनिवार्य पत्रिका 'प्रकर'

### शुल्क विवरण

- |  |  |                     |
|--|--|---------------------|
| <input type="checkbox"/> प्रस्तुत अंक                                      |  | ६०० रु.             |
| <input type="checkbox"/> वार्षिक शुल्क संधारण डाकसे :                      | संस्था : ७००० रु.;   | व्यक्ति : ६००० रु.  |
| <input type="checkbox"/> आजीवन सदस्यता :                                   | संस्था : ७५१०० रु.;  | व्यक्ति : ५०१०० रु. |
| <input type="checkbox"/> विदेशोंमें समुद्री डाकसे एक वर्षके लिए :          | पाकिस्तान, श्रीलंका  | १४००० रु.           |
|  | अन्य देश :   | २०००० रु.           |
|  | विदेशोंमें विमान सेवासे (प्रत्येक देशके लिए) — एक वर्षके लिए : | ३३००० रु.           |
| <input type="checkbox"/> दिल्लीसे बाहरके बैंकमें १५.०० रु. अतिरिक्त जोड़ें |  |                     |

व्यवस्थापक, 'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रतापबाग, दिल्ली-११०००७.



**प्रक्रम**

[आलोचना और पुस्तक-समीक्षा मासिक]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार  
सम्पक : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग  
दिल्ली-११०००७.

वर्ष : २४

अंक : १

माघ : २०४८ [विक्रमाब्द]

जनवरी : १९६२ [ईस्वी]

**आलेख एवं समीक्षित कृतियाँ**

मत अभिमत	३	
अध्ययनपरक भाषण-आलेख		
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पाश्चात्य साहित्य चिन्तन	५	डॉ. एस. टी. नरसिंहचारी
थाईदेशकी रामकथा		
रामकीर्ति महाकाव्य — डॉ. सत्यव्रत शास्त्री	१२	डॉ. कृष्णकुमार
शोध-आलोचना		
प्रसाद काव्यमें मिथक-प्रतीक — डॉ. सुषमा अरुण	१५	प्रो. शलभ
राग दरबारीका शैली: वैज्ञानिक अध्ययन — डॉ. राधा दीक्षित	१८	डॉ. रामदेव शुक्ल
छायावादी काव्यमें कर्म चेतना — डॉ. कन्हैयालाल	१९	डॉ. विद्या केशव चिटको
बालशौरि रेड्डीका औपन्यासिक कृतित्व — डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन	२२	डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल
उपन्यास		
कहानी एक गाँवकी — रामस्वरूप अणखी, अनु. सुदीप	२४	प्रो. मधुरेश
खारे मोती — राजम कृष्णन्, अनु. सुमति अय्यर	२८	डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त
हेमचन्द्र विक्रमादित्य — डॉ. शत्रुघ्नप्रसाद	३०	डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव
कहानी		
वसूली शूक्लिनकी प्रतिनिधि कहानियाँ — अनुवादक : मंजरी कुमार, वेदप्रकाश शर्मा	३३	डॉ. भगीरथ बडोले
पतझड़ — शशिप्रभा शास्त्री	३६	डॉ. यशपाल वैद
काव्य		
बोले शोयिकाकी कविताएं — वीरेन्द्रकुमार बरनवाल	३७	डॉ. हरदयाल
धर्ममें स्वर्ग — डॉ. चल्ता राधाकृष्ण शर्मा	३९	डॉ. मान्धाता राय
सूक माटी — आचार्य विद्यासागर	४२	डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त
आत्मकथा		
दस्तक जिन्दगीकी — प्रतिभा अग्रवाल	४३	श्री सुरेन्द्र तिवारी
दार्शनिक विवेचन		
चित्त और मन — युवाचार्य महाप्रज्ञ	४५	डॉ. निजामुद्दीन
भारतीय साहित्य और भाषा		
पलनाटि बीर चरित्र (तेलुगु नाटक) — आ. को. श्रीराममूर्ति	४८	श्री पि. वेंकटराम शास्त्री
कक्को कोड रो (राजस्थानी काव्य) — कन्हैयालाल सेठिया	५१	श्री कैलासदास लाळस
कन्नड़ : भाषा, साहित्य और संस्कृति — प्रो. सु. रामचन्द्र	५२	डॉ. रजनीकान्त जोशी
वेद-विज्ञान		
वेद और उसकी वैज्ञानिकता — आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति	५३	डॉ. रामनाथ वेदालंकार
पत्र-पत्रिकाएं	५६	

'प्रक्रम' — माघ '२०४८ — १



# मत अभिमत

## □ भारतीय साहित्यके सिद्ध साधक

सिद्ध प्रसिद्ध रचनाकारोंकी परिचयात्यक समीक्षा के बीच लेखककी सही पकड़, सूक्ष्मग्राही तीक्ष्ण दृष्टि और जहां-तहां व्यंग्यके छोटोंने इसे पठनीय बना दिया है। अमृता प्रीतमने लिखा था—‘गीत मेरे / कर दे मेरे इश्कका कर्ज अदा / कि तेरे हर एक खतरमें आये जमानेकी सदा।’ इसपर—‘काश उनके साहित्यका यह प्रभाव होता’ वाली छोटी पर मारक टिप्पणी पढ़कर आनन्द आगया। मास्ति श्रीनिवास आर्यंगर ‘असंस्कारित जनताके सामने ईश्वर और धर्मका आदर्श रखकर उसे श्रेष्ठ आचरणकी ओर ले जाना चाहते हैं क्योंकि मानवीय आदर्श खोखले हो गये हैं। पर ईश्वरीय आदर्श भी मानवके माध्यमसे ही प्रस्तुत होते हैं और पुरस्कार राशिके उपयोगके प्रसंगमें मास्तिने स्वतः एक उत्तम आदर्श रखा।

तकपी शिवशंकर पिल्लैने अपने मिट्टीके दागवाले पांवोंका जिक्र किया है। समीक्षकने लिखा : ‘राजधानी के ठाठदार पुरस्कार समारोहमें अभिजात्यसे लदेफदे विशिष्ट अतिथियोंके झुण्डमें यह घोषणा कितनी विलक्षण लगी होगी। यह उचितही टिप्पणी है। क्या यह समारोह दिल्लीमें ही हुआ था? तकपीने (संभवतः साहित्य अकादमीका) वार्धक्य और अस्वास्थ्यके अलावा स्वाभिमानवश भी कोई पुरस्कार लेनेके लिए दिल्ली जानेमें असमर्थता प्रकट कीथी, ऐसा मुझे याद आता है और फिर पुरस्कार समारोह उनके गांवमें आयोजित किया गया था। गांववाले तकपीकी वर्षगांठ समारोह-पूर्वक मनाते रहे हैं। सच्चिदानन्द राउतरायके गंभीर विश्लेषणके प्रति लेखककी प्रशंसात्मक उक्तियां अच्छी लगीं।

अवतक ज्ञानपीठसे पुरस्कृत होनेवालोंमें सबसे कम  
‘प्रकर’— जनवरी’६२—२

के रचनाकार वीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य नहीं, बल्कि सि. नारायण रेड्डी हैं। उनकी कृतियोंकी मूल्यवत्ताको लेकर सर्वाधिक विवाद रहा है। वे तेलुगु फिल्मोंके सफल गीतकार, प्राध्यापक, वाइसचांसलर आदि बहुमुखी प्रतिभाके व्यक्ति हैं। समा समितियोंकी शोभा है।

यह समीक्षा सचमुच बहुत उपयोगी है।

—डॉ. सुवासकुमार, रीडर हिन्दी विभाग,  
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

## □ प्रकर : शोध-लेखन

समीक्षा-प्रधान पत्रिकामें गहन शोधपूर्ण लेखोंका समावेश अभिनन्दनीय है। गत दो वर्षोंमें प्रकाशित डॉ. राजमल बोरा और पं. कार्शाराम शर्माके भाषाशास्त्रीय लेखोंकी गंभीरता आँखें खोल देनेवाली रहीं। विदेशी लेखक हमें कैसे भटकाते रहे, इसका सही परिचय मिला। आशा है ऐसे लेखोंका क्रम बनाये रखेंगे।

शर्माजीकी ‘रामकथा नवनीत’ विषयक समीक्षासे तो पूरी तरह सहमत होना कठिन है पर उनकी अपनी पुस्तकके विषयमें दी हुई सूचना उपयोगी रही। ‘भारतीय वाङ्मयपर दिव्य दृष्टि’ अद्भुत रचना है। भारतीय साहित्य भवनके चार महास्तम्भोंकी आधारभूमिका परिचय बहुतही प्रामाणिक और ज्ञानवर्धक लगा। पता नहीं देशके छात्र ऐसे गहन शोध कार्यमें कब लगेंगे। अभी तो कैची-गोंदही शोधके प्रमुख साधन हैं।

दूरदर्शनके धारावाहिकोंका मूल्यांकन आरम्भ करके आपने बहुत उपयोगी कदम उठाया है। आशा है ये उठे हुए कदम रुकेंगे नहीं।

—रुद्रशंकर त्रिपाठी, एच. बी.टी. आई., कानपुर.

## □ आक्रामक-आक्रान्त

सितम्बर-१९६१ के ‘प्रकर’ में जिस निर्भीकता, स्पष्टता और सहजताके साथ आपने ठोस धरातलपर



रखकर अपने खरे विचारोंको व्यक्त किया है, उसको प्रशंसा करतेही बनती है।

आपने आक्रामक और आक्रान्तके बीच भावनाके स्तरपर भेदरेखा खींचनेकी चेष्टा की है। किन्तु स्वाधीन भारतके महाप्रभुओंकी मानसिकता परमहंस-जीवोंकी चिन्तन-पद्धतिसे कभीका तादात्म्य स्थापित कर चुकी है। हमें हमलावर हितैषी और उसकी हरकत वरेण्य लगती है। तभी तो पाकिस्तान और चीन द्वारा दबायी गयी भूमिपर पुनः अधिकार प्राप्त करनेका प्रयास करना तो दूर, हम उभयपक्षीय वास्तविकी दौरान उसकी चर्चा तक नहीं करते। यथास्थितिको स्वीकार किये बैठे हैं। रही भारतीय संस्कृति और उसकी धरोहरकी सुरक्षाकी बात, सो अब हमारा जातीय इतिहास १५ अगस्त १९४७ से आरम्भ होता है। हममें कितना अपरिमित राष्ट्रप्रेम है, इसकी झलक अकेली इस बात से मिल जाती है कि हमारे राजनेता देशके लिए प्रायः इण्डिया या हिन्दुस्तानका प्रयोग करते हैं, और देखा-देखी वैसाही करते हैं। भारत कहकर उन्हें शायद जवानके टेढ़ा होजानेका भय रहता है। कोई पूछे संविधानमें देशवाची शब्द हिन्दुस्तानका उल्लेख कहां हुआ है? क्या आज ईरानको फारस कहकर राजनयिक विरोधसे बचाजा सकेगा? संसारके सभी देश उस नामसे जाने जाते हैं, जिसका उल्लेख उनके संविधानमें होता है। परन्तु भारतकी तो शान ही निराली है। किस-किसका बखान किया जाये। एक ओर यहां 'जय हिन्द' का नारा बुलन्द किया जाता है और दूसरी तरफ अतीतके गौरवको भुला देनेका विधिक उद्योग होता है।

जुलाई १९६१ का स्वर विसंवादी प्रबोधक होकर भी नवकारखानेमें तूतीकी आवाज जैसा रहेगा। कांग्रेस में निष्ठाके आधार उम्मतके लिए प्रदिष्ट आचार से अधिक भिन्न नहीं हैं। जिस प्रकार कलम: पढ़े बगैर कोई मुस्लिम नहीं हो सकता, उसी तरह गांधी-नेहरूकी जय बोले बिना समर्पित कांग्रेसी कहलाना असम्भाव्य है। इस्लाममें जिहादका महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुफ्र मिटानेके लिए कांग्रेसको भी मुजाहिद तैयार करने पड़ते हैं। अब यदि लूट-खसोट और खून-खराबी होती है तो मजबूरी है। तब्लीगी मुहिमको रोका कैसे जा सकता है?

पुण्यश्लोक रसूलुल्लाहके निधनोपरान्त सम्प्रदायमें विभाजन हुआ और शियः तथा सुन्नी दो प्रमुख वर्ग बन

गये। मतभेद खलीफःके चयनसे उत्पन्न हुआ। कुछ लोग सहन नहीं कर सके कि हुजुरे-अक्रम-सले-अल्लाही-अलै-वसल्लम्के रक्त-सम्बन्धियोंके जीते-जी कोई बाहरी व्यक्ति उस उच्चासनको सुशोभित करे। नेहरू जीभी बाबाएं-मुल्कोमिल्लतके मर्तबेको जा पहुंचे। अतएव उनके दिवंगत होनेपर वही स्थिति कांग्रेसी शिविरमें उदित हुई और आजभी कमोवेश व्याप्त है। अन्य राजनीतिक दल अधिकतर कांग्रेसकी आपसी फूट की औजाद हैं। उन्हें अहमदिया, इस्माइलियः आदि सदृश अभिधान देकर कलमः-तौहीदमें उनके विश्वास को नकारा नहीं जासकता। कम्युनिस्टोंके मसीहा कांग्रेसकी पैगम्बर-सूचीमें आरम्भसे शामिल रहे हैं। बचीं भारतीय जनता पार्टी जैसी काफिर संस्थाएं। स्वाभाविक है उनके अनुयायी और समर्थक प्रेरितोंकी आंखोंमें बराबर खटकते रहे हों।

इस्लाम श्रेष्ठीय संकीर्णताका हामी नहीं रहा है। उसकी अनुगामिनी कांग्रेस यदि देशकी चिन्ता छोड़कर विदेशकी फिक्क ज्वादः करती आयी है तो अचरज नहीं होना चाहिये। आखिर चरम लक्ष्य तो विश्व-बन्धुत्व है। उसके लिए स्थानीय हितोंकी बलि देना आपत्ति-जनक नहीं ठहरायाजा सकता। महात्मा स्थायी मूल्यों की खोजमें रहते हैं। उनके हाथों रुपए-पैसेका अवमूल्यन होना प्रकृत है। हमें तो सिर नवाकर इस लोक-कल्याणकारी साधनापर उनका आभार प्रकट करना चाहिये।

—डॉ. हरिश्चन्द्र, 'संस्मृति' बी-११४६

इन्दिरानगर, लखनऊ-२२६०१६।

**‘मकर संक्रान्ति’ के शुभ अवसरपर**

**चौबीसवें वर्षमें प्रवेशके साथ**

**‘प्रकर’ अपने सभी पाठकों,**

**समीक्षकों तथा ज्ञान-तमक-वैचारिक**

**स्तरपर उद्बोधन करनेवाले**

**मनीषियोंका अभिवादन करता है**

**अपने दीर्घ प्रायुष्यकी**

**मंगलकामनाकी आकांक्षाके साथ**



'प्रकर' के स्वाधीनता दिवस अंक (अगस्त १९६१) में आपकी सम्पादकीय टिप्पणीका समर्थन करता हूँ। आर्थिक दृष्टिसे हम परजीवी हो गये हैं। किसी समय हमारे ऋषिवरने प्रतिज्ञा की थी : क्षुत् पिपासामलां ज्येष्ठां अलक्ष्मीः नाशयाम्यहम्, उसका प्रयास अक्षुण्ण चलता है। परन्तु आधुनिक राजनीतिज्ञोंने उसे नारेके रूपमें ग्रहण किया और गरीबीके स्थानपर गरीबोंको हटा रहे हैं।

पं. काशीराम शर्माका लेख हमारे भाषाविदोंसे पारिवारिक वर्गीकरणपर पुनर्विचार करनेका अनुरोध करता है।

डॉ. जगदीश चतुर्वेदीके द्वारा सम्पादित भारतीय साहित्यके श्रेष्ठ ग्रन्थोंकी समीक्षाएं पूरे देशकी साहित्यिक गतिविधिका रचनात्मक परिचय देती हैं। यदि इस योजनाका विस्तार कर दिया जाये तो यह न केवल देशकी भाषाओंमें अधिक निकट सम्पर्ककी स्थिति पैदा करेगी अपितु पारस्परिक आदान-प्रदानके माध्यम से सौहार्दका वातावरण भी तैयार करेगी।

कागजके मूल्योंके बढ़ते युगमें समीक्षात्मक पत्रोंकी उपयोगिता असंदिग्ध है। आर्थिक दृष्टिसे दुर्बल पाठकों को साहित्यिक संसारका परिचय देनेका यह अनुपम साधन है।

—पिडपति वेंकटराम शास्त्री, १८-५-२, पोत्तूरिवारि वीथी, विजयनगरम् ५३१२०२

## □ 'प्रकर' : जून-अंक

जून १९६१ के 'प्रकर' में कश्मीरकी वर्तमान आतंक—असंतोष भरी स्थितिपर सही टिप्पणी की है कि कश्मीरमें कश्मीरी भाषाको तिरस्कृतकर उसके स्थानपर उर्दूको थोपा गया। लाखों कश्मीरियोंकी आकांक्षाका, भावनाका आदर नहीं किया गया। आज भी कश्मीरी बालकोंको उनकी मातृभाषा प्राइमरी स्कूलोंमें नहीं पढ़ायी जाती। राज्य सरकारने इस दिशा में कारगर कदम नहीं उठाये। 'शीराजा' नामक पत्रिका जरूर कश्मीरी भाषामें सरकार निकालती रही है। विगत कुछ वर्षोंसे कश्मीरी भाषा-साहित्यका अध्यापन कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगरमें एम. ए.

'प्रकर'—जनवरी ६२—४

स्तरपर शुरू किया गया है। रही अनुच्छेद "३७०" के प्रावधानकी बात, तो इस सम्बन्धमें यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह व्यवस्था जम्मू-कश्मीर राज्यमें १९४७ से पूर्व डोगरा शासनमें विद्यमान थी और इसका वे राजा सख्तीसे पालन करते रहे। यह कहना या मानना कि इस धारासे मुस्लिम-हितोंकी रक्षा होती है, जम्मू डिवीजन, लद्दाख डिवीजन सभीके हितोंकी वह धारा रक्षक है। [अबतक हितोंकी रक्षाके स्थानपर मात्र अलगाववादकी ही रक्षा हुई है।—सम्पादक]

इसी अंकमें (पृ. ३५) "वीरवर कुंअरसिंह" महाकाव्यकी समीक्षा करते हुए डॉ. रामानन्द शर्माने कहा कि भारतीय गरिमाको मुस्लिम तथा अंग्रेज इतिहासकारोंने विकृत किया, लेकिन हमारे इतिहासकारोंने भी उस गरिमाको बचानेका सत्प्रयास कमही किया। हम बाबरकी, औरंगजेब आदिकी निन्दा करते हैं और निन्दनीय कर्मकी निन्दा करना भी न्यायोचित है, लेकिन यहभी याद रखना जरूरी है कि बाबरही पहला मुस्लिम राजा था जिसने गो-वधपर पाबन्दी लगायी थी। आजभी भारतमें गो-वध जारी है। औरंगजेबके काले कारनामोंका जितना बखान किया जाता है उतना उनके अच्छे कारनामोंका नहीं। औरंगजेब नियमित रूपसे मन्दिरोंको अनुदान देता था, यह इतिहास कहता है। भारतमें साम्प्रदायिक सद्भाव कायम करनेके लिए हम सभीको आत्मालोचन करना जरूरी है। द्वेष या घृणासे नहीं, सहिष्णुता व सद्भावसे देश मजबूत होगा।

'कुंअरसिंह महाकाव्य' एक चरित्रात्मक महाकाव्य है। साहित्यमें महाकाव्यकी परम्परा प्रवाहमान रही है, यह कहना कि आधुनिक युग महाकाव्यके लिए उर्वर नहीं, सहीं नहीं है। १९८८ में 'मूक माटी' महाकाव्य रचा गया जिसके रचनाकार हैं जैनधर्मके प्रज्ञासम्पन्न आचार्य श्री विद्यासागरजी। यह प्रतीकात्मक शैलीमें रचा गया उत्कृष्ट काव्य है। मैंने अपने शोधप्रबन्ध 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य' (भारतीय ग्रन्थ निकेतन, २७१३, कूचा चेलान, दरियागंज, नई दिल्ली-२) में भी महाकाव्यकी परम्पराको अक्षुण्ण माना है। तबसे दर्जनों महाकाव्य रचे गये हैं। "वीर कुंअरसिंह" की समीक्षा कुछ गहरे उतरकर, तुलनात्मक दृष्टिसे की जाती तो अधिक उत्तम रहता।

—डॉ. निजामउद्दीन, बालूनी (मेरठ)-२५०६२६



## अध्ययनपरक भाषण-आलेख : २

### आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पाश्चात्य साहित्य-चिन्तन

—डॉ. एस. टी. नरसिंहचारी

#### चेतना और शुक्लजी

हिन्दी समीक्षकोंमें सचमुच कोई आचार्य हैं तो वे रामचन्द्र शुक्ल हैं। साहित्यके सम्बन्धमें समग्र, व्यापक और समन्वित दृष्टि, मौलिक चिन्तन तथा दृढ़तापूर्वक अनुशासन—आचार्यके रूपमें उनके साहित्यालोचनकी विशेषताएं हैं। काव्य और आलोचनाकी उपयोगिता पर विचार करते हुए इलियटका कहना है कि साहित्य का अन्तिम लक्ष्य पाठकोंमें वह साहित्यिक विवेक जागृत करना है जिससे वे श्रेष्ठ साहित्यको पहचान सकें। शुक्लजीके सैद्धांतिक विचार-विमर्श और व्यावहारिक आलोचनाओंसे साहित्यिक प्रवृत्तियों और रचना सम्बन्धी पाठकोंकी रसग्राहिताका विकास ही नहीं होता, उनमें एक नया साहित्यिक विवेकभी जागता है। प्रश्न उठता है कि द्विवेदी युगके समीक्षकमें श्रेष्ठ साहित्यकी ऐसी सूक्ष्म पहचान और परख कहाँसे आयी और वे हिन्दी-समीक्षाको विकासकी प्रौढ़ स्थितिपर कैसे लेजा सके।

ऐतिहासिक दृष्टिसे भारतेन्दु-युगकी साहित्यिक दृष्टि परम्परावादी और सुधारवादी थी। रीतिकालीन संकुचित सौन्दर्य-दृष्टिका विरोध करके भक्तिकालीन व्यापक चेतनाको अपनानेका प्रयत्न करनेपर भी, नवीन पाश्चात्य प्रवृत्तियों और काव्य रूपोंको ग्रहण करनेकी ओर कुछ उन्मुख होनेपर भी भारतेन्दु-युगीन काव्य और काव्य-चिन्तनको सच्चे अर्थमें आधुनिक होनेकी संज्ञा नहीं दीजा सकती। उसमें न भक्ति काव्यके सौन्दर्यकी सूक्ष्म पकड़ थी और न नवीन सौन्दर्य-बोधका उन्मेष था। सुधारवादी और पुनरुत्थानवादी द्विवेदी-युगका काव्य पुरानेका कुछ नया आख्यान करके संतुष्ट होगया। भक्ति-कालके पूर्वकी संस्कृतिकी प्राचीन परम्पराओंका पुनरुत्थान करनाही नया

विकास माना गया। नयी साहित्यिक चेतनाके विकास की दिशामें पाश्चात्य पूर्वस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति और काव्य-रूपोंपर बल दिया गया। परन्तु द्विवेदीजीके कड़े साहित्यिक और भाषिक अनुशासनमें नवीनताको लेकर बहुत आगे बढ़ना संभव नहीं था। समीक्षामें साहित्यिक अभिरुचि रीतिकांलीन सीमाओंमें जकड़ी हुई थी जो देव और बिहारीकी काव्यात्मक श्रेष्ठताके निर्णयमें उलझी थी।

इस ऐतिहासिक परिपार्श्वमें शुक्लजीके समीक्षा कार्यको अद्भुत ही कह सकते हैं। अपने युगकी सीमाओं को तोड़कर वे बहुत आगे बढ़ गये। यहां तक कि उनकी रसग्राहिता शुद्ध साहित्यिक दृष्टिसे पूर्ण विकसित मानीजा सकती है। चाहे भक्ति-काव्य हो, चाहे रीति-काव्य हो, चाहे आधुनिक काव्य हो, वे उसके सौंदर्यके मर्मतक पहुंच सके। उनका साहित्यिक चिन्तन स्थूल सामाजिक-नैतिक मर्यादाओंसे बंधा हो सकता है, वे साहित्यके क्षेत्रमें व्यक्तिवादी नवीनताका विरोध करते हुए दिखायी देते हैं, पर उनके कारण काव्य-सौंदर्य को पहचानने और उसका सही मूल्यांकन न करनेमें उनको असफल नहीं कहाजा सकता। उन्होंने रीति-काव्य और छायावादी काव्यका सैद्धांतिक-वैचारिक

भाद्रपद २०४८ (अगस्त ६१) अकमें आलेखका प्रथम अंश "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : साहित्यिक अभिरुचि" प्रकाशित हुआ था। इसका दूसरा अंश यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। तिरुपति विश्वविद्यालयके सेवा-निवृत्त विद्वान् लेखकके ये भाषण-अभिलेख, आशा है, सुधी आलोचक-पाठकोंके लिए चिन्तनकी पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करेंगे।



विरोध किया, पर उन दिशाओंमें उनका रस ग्रहण कुण्ठित नहीं था। सूरसे तुलसीकी श्रेष्ठताके प्रतिपादन का पूरा-पूरा प्रयत्न हुआ परन्तु सूरके काव्य-सौंदर्यमें तुलसीसे अधिक तन्मय दिखायी देते हैं। पाश्चात्यवादों और सिद्धांतोंका छण्डन करते रहे। फिरभी नवीन भाव-व्यंजनाकी मार्मिकतासे अनभिज्ञ नहीं थे। वे समीक्षाके क्षेत्रमें नवीन रसवादी चेतनाका विकास करनेवाले आचार्य और आलोचक थे।

यह विरोधाभास-सा लगता है कि नवीन प्रवृत्तियों औरवादोंका विरोध करनेवाले आचार्यको नवीन दृष्टि-संपन्न और नवीनताके समर्थक कहते हैं। वे पूर्व रोमांटिक पाश्चात्य समीक्षकोंकी भांति साहित्यिक मर्यादाओंके संरक्षक थे। समीक्षाके द्वारा विच्छिन्नता को रोककर अनुशासन और नियंत्रणमें विश्वास रखते थे। संस्कृत और हिन्दीकी स्वस्थ साहित्यिक परम्पराओं और प्रवृत्तियोंके अनुशीलनने उनकी रसज्ञताको गहराई दी। उनकी क्लासिकल अभिरुचि उदात्त थी; उसमें नियोक्लासिकल अभिरुचिकी संकीर्णताके लिए स्थान नहीं था। उनकी शोधपरक ऐतिहासिक दृष्टिने परम्पराके सही मूल्यांकनमें ही सहायता नहीं की, नवीन विकासकी संभावनाओंपर विचार करनेकी प्रेरणा भी थी। वे भलीभांति जानतेथे कि नवीन विकासकी उपेक्षा करके साहित्यका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। उनके सामने प्रश्न थे कि नवीन विकासकी क्या क्या दिशाएं हो सकती हैं? इन दिशाओंमें स्वस्थ साहित्यिक विकास किस प्रकार संभव है? इस प्रकार का चिन्तनशील समीक्षक परम्परावादी नहीं हो सकता।

शुक्लजीकी साहित्यिक आलोचनात्मक चेतनाके विकासमें उनकी प्रतिभाका जितना योगदान है, उससे कम नवीन पाश्चात्य चिन्तन और साहित्यिक चेतना का नहीं है। युग-जीवन नवीन पाश्चात्य चिन्तनसे प्रभावित अवश्य था, पर उसकी गहरी पकड़ कुछ विशेष लोगों तक सीमित थी। साहित्यके क्षेत्रमें छायावादी कवि कुछ चिन्तनधाराओं और स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तिको पकड़कर आगे बढ़नेका प्रयत्न कर रहेथे। शुक्लजीकी प्रतिभा नवीन चिन्तन और साहित्यिक चेतनाको अपनी समग्रतामें अपनाकर उसे आत्मसात् करके हिन्दी साहित्यकी परम्पराके पुनराख्यान और पुनर्मूल्यांकन करनेकी ओर प्रवृत्त हुई। दार्शनिक और साहित्यिक सिद्धांतोंके ग्रहण और उनके व्यावहा-

रिक प्रयोगमें शुक्लजीकी सीमाएं हो सकती हैं, पर उनकी दृष्टि सार्वकालीनता और अखण्डतापर थी। वे नहीं चाहतेथे कि कुछ रोमांटिक एककालिक मान्यताओंको लेकर ही साहित्यकी रचना हो या हिन्दी-साहित्यकी समीक्षा हो। उन्होंने डटकर खण्डित दृष्टि और संकीर्ण विचारका विरोध किया। यह माननेमें संकोच नहीं होना चाहिये कि तत्कालीन साहित्यिक दृष्टिमें अतिवादिता थी और शुक्लजीने उस आदिवादिताके विरोधमें अति कर दी। फिरभी यह स्वीकार करनाही पड़ता है कि रस और अलंकार सम्बन्धी उनके काव्यके प्रतिमानोंके मूलमें पाश्चात्य भाव-व्यंजना और सौन्दर्यके मापदण्ड सक्रिय थे। पाश्चात्य चिन्तन और साहित्यिक चेतनाके भालोकमें रस और अलंकारकी नयी व्याख्या और नया अर्थ कर लिया गया। काव्यालोचनकी आवश्यकताके अनुसार नये प्रतिमानोंके रूपमें उनका प्रयोग किया गया। सूर-समीक्षामें रस या भावकी गहराईका आधार लिया गया तो छायावादी समीक्षामें सौन्दर्य-बोधका। अन्य कवियों और प्रवृत्तियोंकी तुलनामें सूर और छायावादने भावना और सौन्दर्य-बोधको पराकाष्ठापर पहुंचा दिया। शुक्लजी जानतेथे कि उन विशेषताओंके आधारपर न तुलसी के साथ न्याय हो सकता है और न छायावाद पूर्व हिन्दी कविताके साथ। रस और अलंकार सम्बन्धी दूसरी विशेषताओंको लेकर ही उनका साहित्यिक मूल्यांकन हो सकता था। संतही दृष्टिसे देखनेपर ऐसा लगता है कि शुक्लजीने सूर और छायावादके साथ पूरा न्याय नहीं किया। वैचारिक दृष्टिसे अन्याय अवश्य हुआ है, साहित्यिक दृष्टिसे नहीं।

शुक्लजी अपने युगकी मध्यवर्गीय ब्राह्मण संस्कृति से एक हृदयक बंधेथे। उस संस्कृतिकी चार दिशाएं थीं—परम्परावादी, परम्पराका नवीन आख्यान करने वाली, नवीन चेतनाको अपनानेवाली और परम्पराको त्यागकर क्रान्तिकारी दृष्टि ग्रहण करनेवाली। शुक्लजी दूसरी प्रवृत्तिसे प्रभावित तीसरी कोटिके थे। राजनीतिक राष्ट्रीय आन्दोलनमें उस समय मध्यवर्गीय चेतना पाश्चात्य चिन्तनसे परिचित होकर नये मार्गोंका अन्वेषण कर रही थी। एक दिशामें शुक्लजीने प्रस्थान किया तो दूसरी दिशामें छायावादी कवियों और रस समीक्षकोंने। दोनों नयेका अनुसंधान कर रहेथे, परन्तु सच्चे अर्थमें नवीन या आधुनिक भावबोधका प्रतिपादन करनेवाले



नहीं थे। अपनी परिधिमें शुक्लजीने परम्परागत अभिरुचिका परिष्कार करके नयेका मार्ग प्रशस्त किया। रीतिकालीन अभिरुचिसे ही उनका विरोध नहीं था, रस अलंकारको संकीर्ण अर्थमें ग्रहण करनेवाली साहित्यिक, काव्यशास्त्रीय समस्त परम्पराओंसे उनका विरोध था। साहित्यिक अभिरुचिके परिष्कार और उन्नयनमें उनके कार्यकी महानताका मूल्यांकन करना असंभव-सा लगता है। उनके समीक्षा कार्यके अभावमें हिन्दी आलोचनाकी विकसित साहित्यिक अभिरुचिकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। शुक्लजीके अनुयायी शास्त्रीय समीक्षक उनको भारतीय काव्यशास्त्रकी परम्परासे जोड़ना चाहते हैं। यह सही है कि उन्होंने परम्पराकी परिधिमें ही नयेको ग्रहण किया। पर नयेके व्यापक प्रसारमें परम्परा चरमरा उठी। ऐसा लगता है कि परम्पराकी शास्त्रीय परिधि, वर्गीकरण-विश्लेषणका केवल ढांचा है जिसमें खुलकर नवीन साहित्यिक चिन्तनका आवाहन हुआ है। मेरा यह दावा नहीं है कि यह सारा चिन्तन पाश्चात्य देन है। उसमें परम्पराकी प्रतिक्रिया है, नयी परिस्थितियोंका योग है, वैयक्तिक प्रतिभा, साहित्याभिरुचि और नव-नवोन्मेषशालिनी भावनाशीलताका योगदान है तो उसके मूलमें पाश्चात्य चेतनाकी अपनी प्रेरणा भी है।

### पाश्चात्य चिन्तनका सामान्य प्रभाव

काव्य-साहित्य सम्बन्धी शुक्लजीकी धारणाओंका विश्लेषण करनेपर स्पष्ट पता चलता है कि उन्होंने भारतीय चिन्तनके कुछ अनुकूल सिद्धांतों और विचारोंको अपनाकर उस चिन्तनको आगे बढ़ाया है और हिन्दीमें आलोचनात्मक अवधारणाका विकास किया है। शुक्लजीका साहित्यिक दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठ और विकासशील है। जीवन-जगत्के सम्बन्धमें पाश्चात्य दार्शनिक चिन्तन प्रधानतः वस्तुनिष्ठ और यथार्थोन्मुख है। उसमें संघर्ष, गति और विकासपर बल दिया गया है। आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन भी उसी दिशामें अग्रसर हो रहा है। पाश्चात्य आदर्शवादी आध्यात्मिक चिन्तन भी लौकिकतासे पूर्णतया परे नहीं है। इस दृष्टिकोण तुलना में भारतीय दार्शनिक चिन्तन अधिक आध्यात्मिक और अलौकिक है। साहित्यमें रसकी अवधारणा भी उसीके अनुरूप है। भारतीय दार्शनिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियां शाश्वतवादी हैं।

अर्थात् पदार्थसे चेतनाकी, वस्तुसे भावना या रसकी अधिक महत्त्व देते हुए दूसरेको शाश्वत, अपरिवर्तनशील और चैतन्यमय माननेवाली हैं। भारतीय काव्य-नाटकोंमें वस्तु साधन और रस साध्य था। इससे भिन्न शुक्लजी काव्यमें विभाव या वस्तुको अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। भाव या इस वस्तुपर आश्रित है। मनो-विकारोंमें उत्साह और उससे प्रेरित कर्मके महत्त्वका प्रतिपादन, महाकाव्योंमें वस्तु-व्यापार वर्णनकी आवश्यकतापर बल, लोक मंगलकी सिद्धावस्थासे साधनावस्था के निरूपणकी श्रेष्ठता आदि काव्यमें वस्तुनिष्ठताके महत्त्वकी ओर संकेत करते हैं। इतिहासमें प्रसाद और निरालाकी भावनाशील-कल्पनाशील प्रगीतोंकी अपेक्षा वस्तुनिष्ठ रचनाओंकी प्रशंसा भी इस बातकी पुष्टि करती है। शुक्लजीकी दृष्टिमें कर्म जीवनकी गतिशीलता का द्योतक है। वह मंगलमय होनेपर जीवन विकासशील या प्रगतिशील होता है। शुक्लजीके अनुसार वही 'मानस' का प्रतिपाद्य है यद्यपि इसका प्रतिवाद किया जा सकता है। वे खेद प्रकट करते हैं कि कामायनीमें श्रद्धाके सहयोगसे मानवके मंगलमय कर्मका निरूपण नहीं किया गया। वस्तुवादी और विकासवादी सिद्धान्तोंकी चर्चा भारतीय दर्शनमें अवश्य मिल जाती है, परन्तु वे भारतीय दार्शनिक चिन्तन और काव्य-चेतनाकी आधारभूमिके रूपमें कम स्वीकृत हुए। शुक्लजी पाश्चात्य गतिशील दृष्टि और भारतीय शाश्वतवादी दृष्टिको मिलाते हुए कहते हैं कि "गतिकी यही नित्यता जगत्की नित्यता है।" रस-मीमांसा में भी शुक्लजीने लौकिक दृष्टिको ही अपनाया है। करुण-रस में आँसू आनंदके नहीं हैं। भयानक, बीभत्स आदिकी अनुभूतिमें आनंदात्मकता भावोंकी धर्मबद्धताके कारण है। धर्मसे अनुशासित न होनेपर रति, क्रोध आदिके द्वारा पूर्ण रसानुभूति संभव नहीं है। वह निम्न कोटिकी दूसरी रस दशा है। कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि शुक्लजीका दार्शनिक-साहित्यिक दृष्टिकोण विदेशी है, बल्कि वह कुछ पाश्चात्य चिन्तनधाराओंसे अनुप्राणित है।

काव्यके मूल्यांकनमें शुक्लजीने रस-अलंकारकी परिपाटीको अपनाकर उनकी कुछ विशेषताओंके आधार पर कवि और काव्यके उत्कर्षका निर्धारण किया है। रसकी चर्चामें भावोंकी व्यापकता, गहराई, उदात्तता आदिपर ध्यान दिया गया है। उनका रस-विवेचन भावों



के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आधारों पर आधारित है। लोकमंगल या धर्मकी परिधिमें भावोंकी रस परिणति या उनके सौन्दर्यशास्त्रीय मूल्यका निर्धारण किया गया है। भारतीय परम्परा में रसका विवेचन दार्शनिक और एक सीमा तक मनोवैज्ञानिक है। सामाजिक पहलू पर न निषेधात्मक हैं—“अनौचित्यादृते नान्यत् रस-भंगस्य कारणम्।” लौकिकतासे निरपेक्ष भाववादी धरातलपर रसकी सन्नेद्यता या सौन्दर्यशास्त्रीय मूल्य निर्धारित होता आया है। शुक्लजीका सारा रस-विवेचन लौकिक जीवन सापेक्ष है। काव्यके रसका मूल स्रोत जीवनगत भावोंकी स्पन्दनशीलतामें है। “भावोंके प्राकृत आधार या विषयका कल्पना द्वारा पूर्ण और यथातथ्य प्रत्यक्षीकरण कविका सबसे पहला और सबसे आवश्यक कार्य है।”<sup>२</sup>

शुक्लजीके द्वारा अलंकारोंका विवेचन और कला-पक्षकी अन्य विशेषताओंकी मायिकताका निरूपण—सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों दशाओंमें, काव्याभिव्यंजनाका सौन्दर्यशास्त्रीय विश्लेषण प्रतीत होता है। अलंकारों और शब्द शक्तियोंका वर्गीकृत विश्लेषण वे अवश्य करते हैं, पर वह लक्षण-लक्ष्य निरूपण मात्र नहीं है। उनकी दृष्टि अलंकार और शब्द-प्रयोगके मूलभूत सौन्दर्यको पकड़नेका प्रयत्न करती है। इस सन्दर्भमें छायावाद और घनानन्दकी आलोचना द्रष्टव्य है। पाश्चात्य काव्य शैलीमें प्रतीक विधान, बिम्बांकन, मानवीकरण, प्रभाव साम्यके आधारपर अप्रस्तुत व्यंजना आदिके सम्बन्धमें चिन्तनभी सौन्दर्यशास्त्रीय परिधिमें ही हुआ है। छायावादी काव्य शैलीके सूक्ष्म अनुशीलन में शुक्लजी कवितामें कल्पना और सौन्दर्यकी भूमिका को पहचान सके। कवितामें भाषाका प्रयोग अर्थग्रहण की दृष्टिसे नहीं होता। उसका लक्ष्य बिम्बविधान है। कल्पनाके द्वारा बिम्ब खड़ा होता है। शुक्लजीकी दृष्टि में भाव साध्य है, कल्पना साधन मात्र है। हृदयकी अनुभूति अंगी है, मूर्तरूप अंग—भाव प्रधान है, कल्पना उसकी सहयोगिनी।<sup>३</sup> “किसी प्रसंगके अन्तर्गत कैसाही विचित्र मुक्तिविधान हो पर यदि उसमें उपयुक्त भाव-संचारकी क्षमता नहीं है तो वह काव्य के अन्तर्गत न होगा।”<sup>४</sup> इसी आधारपर भावशून्य रीतिकालीन कला विधान और छायावादी कल्पनाकी श्रीड़ाका विरोध हुआ। कल्पनाका सम्बन्ध अपूर्ण सज्जना-व्यापारसे है, यह शुक्लजी जानते हैं। पर भाव ‘प्रकर’—जनवरी’ ६२—८

तुलसी और कलामुखके बिलकुल अलग माननेकी विश्लेषणात्मक दृष्टिके कारण भाव या रसको प्रधानता देते हुए व्यावहारिक दृष्टिसे कल्पनाको केवल रूपविधायिनी कहते हैं।<sup>५</sup> प्रस्तुत पक्षका रूप-विधान भी कविकी प्रतिभा द्वारा ही होता है। भावकी प्रेरणासे नाना रूप संस्कार जब पड़ते हैं जिनका अपनी प्रतिभा या कल्पना द्वारा समन्वय करके कवि प्रस्तुत वस्तुओं या तथ्योंका एक मार्मिक दृश्य खड़ा करता है।<sup>६</sup> कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि कल्पनाको अप्रस्तुत विधान करनेवाली मात्र मानते हैं। कल्पना सम्बन्धी नवीन पाश्चात्य चिन्तनको वे निस्संकोच भारतीय विचारधाराका अंग घोषित करते हैं। “कल्पना है काव्यका क्रियात्मक बोध पक्ष जिसका विधान हमारे यहांके रसवादियोंने भावके योगमें ही काव्यके अन्तर्गत माना है।”<sup>६</sup>

## साहित्यिक दृष्टिकोण और समीक्षा

शुक्लजीके साहित्य-चिन्तन और व्यावहारिक समीक्षा में पूर्ण सामंजस्य और समन्वय दिखायी देता है। उन्होंने आधुनिक जीवन और वैचारिक चेतनासे प्रेरणा ग्रहण की, नवीन पाश्चात्य साहित्यिक मान्यताओंको ग्रहण किया और अपनी दृष्टिसे अनेक पाश्चात्य सिद्धांतों, वादों एवं प्रवृत्तियोंका विरोध किया; परन्तु एक सुनिश्चित और व्यवस्थित साहित्यिक दृष्टिकोणको लेकर सामने आये। यहांतक कि उस दृष्टिकोणके अनुसार ही उन्होंने भारतीय साहित्यिक सिद्धान्तोंको ग्रहण किया और पाश्चात्य साहित्यिक चिन्तनसे प्रभावित युगकी नयी चेतनाके अनुरूप भारतीय काव्य-सिद्धान्तोंका नया आख्यान किया। अपने दृष्टिकोणके अनुसार हिन्दी साहित्यका नया मूल्यांकन किया जो परम्परागत साहित्यिक अभिरुचिके बिलकुल विरुद्ध था। उनकी दृष्टि और आलोचनाकी सीमाएं हो सकती हैं, पर उनकी नवीनता, मौलिकता और व्यापकताके सम्बन्धमें दो मत नहीं हो सकते।

शुक्लजीका दृष्टिकोण शुद्ध साहित्यिक है। तुलसी की महानताकी व्याख्या में तथा रस एवं साधारणीकरणकी प्रक्रियाके स्पष्टीकरणमें भ्रम हो सकता है कि उनका साहित्यिक दृष्टिकोण धर्मकी परिधिमें बंधा है जो भाववादी भारतीय रस-सिद्धान्त स्वीकार नहीं करता। पर शुक्लजीका ध्यान उदात्त धर्मकी परिधिमें रसके उत्कर्षपर है। टालस्टॉयके धार्मिक-नैतिक दृष्टि-



साथ जीवनका घनिष्ठ आन्तरिक तथा भावात्मक सम्बन्ध स्वीकार करते हुए रिचर्ड्सके विचारोंका समर्थन करते हैं। साहित्य और जीवनके सम्बन्धको प्रचारकी अतिवादी सीमापर ले जानेवाली मार्क्सवादी दृष्टिका विरोध करते हैं। कला सम्बन्धी फ्रायडके विचारोंमें भी उनको साहित्य और जीवनके सम्बन्धके निरूपणमें—अवचेतनसे जोड़नेमें अतिवादिता दिखायी देती है। साहित्य और जीवनके सम्बन्धमें सामाजिक दृष्टिको अधिक महत्त्व देते हुए उन्होंने व्यक्तिवादी विचारधाराका विरोध किया। साहित्यिक फंशनों, नूतनताकी झोंक और व्यक्ति-वैचित्र्यवादको असामान्य मनःस्थितिका परिणाम और रसानुभूतिमें घातक माना। अपने युगमें प्रचलित रूढ़ परम्परावादी विचारधाराओं और पाश्चात्य अतिवादी दार्शनिक चिन्तनधाराओंका खण्डन करते हुए शुक्लजीने साहित्य चिन्तन के पथको प्रशस्त किया। साहित्य नार अच्छे-बुरेके प्रश्न से तटस्थ नहीं रह सकता, पर वह साहित्यकी रस-संवेदनाका प्रश्न है, दार्शनिक चिन्तन या व्यावहारिक जीवनका नहीं। कलावादके विरोधी शुक्लजीने प्रकारान्तरसे शुद्ध साहित्यिक या कलात्मक दृष्टिकोणका ही समर्थन किया। अन्तर इतनाही है कि वे साहित्यके साहित्यिक उत्कर्षको रूप-संरचनासे सम्बद्ध नहीं मानते।

शुक्लजीके इतिहासके अनुशीलनसे पता चलता है कि उन्होंने जीवनकी विकासशीलता और गतिशीलता को साहित्यिक मापदण्ड बनाकर रचनाके रसोत्कर्षका निर्णय किया है। साहित्यिक प्रवृत्तिकी अच्छाई-बुराई, सामाजिक-नैतिक प्रतिमानोंसे निर्धारित नहीं हैं अपितु वे रस-संवेदनाकी प्रसारवादिता, तन्मयता और उदात्ताताकी द्योतक हैं। साहित्यका यह रसात्मक उत्कर्ष तभी सम्भव है जब साहित्यका जीवनके साथ स्वस्थ और आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित होता है, जब साहित्यमें वस्तुका मूल्य स्वीकार होता है। तुलसीकी सामाजिक उदात्तता, सूरकी मनोवैज्ञानिक गहराई और जायसीकी प्राकृतिक नैसर्गिकता जीवनके मूल स्रोतसे, वस्तुके माध्यमसे रसके अंग बन गये हैं। प्राचीन साहित्य में सूर और घनानन्दने और आधुनिक साहित्यमें छायावादाने जीवनके सौन्दर्यको पकड़नेका प्रयत्न किया है। अपनी व्यावहारिक आलोचनाओंमें शुक्लजीने उन

पहलुओंकी पहचानकर साहित्यिक या रसात्मक धर्मोंके रूपमें उनकी प्रतिष्ठा की। कहीं यह प्रतीत नहीं होता कि शुक्लजी अपनी व्यावहारिक समीक्षामें क्लासिकल उदात्त चेतना, रोमांटिक नैसर्गिक-स्वच्छन्दतावादी दृष्टि, मानवीय भावनाओंकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या या सौन्दर्यशास्त्रीय नवचेतनासे प्रभावित होकर उनका प्रतिपादन कर रहे हैं। ये सारी नवीन विशेषताएं उनकी समीक्षामें मिल जाती हैं। उन्होंने इन सब विशेषताओंको अपनी रसवादी दृष्टि और उसके आधारपर व्यावहारिक समीक्षाका अंग बना दिया है।

इस सम्बन्धमें शुक्लजीकी दो महत्त्वपूर्ण मान्यताएं ध्यातव्य हैं। साधारणीकरणकी चर्चामें आलम्बनके महत्त्वपर जोर देते हुए उन्होंने अपनी वस्तुवादी दृष्टि का ही परिचय नहीं दिया है, अपितु कविके द्वारा सामान्य मानवीय रूपमें उसकी प्रतिष्ठाको आवश्यक माना है। यहां काव्यके रसास्वादनकी प्रक्रियाका स्पष्टीकरण नहीं, कविके द्वारा काव्यको संवेद्य बनानेका आग्रह है। यह साधारणीकरणकी नहीं, भावसंप्रेषणकी समस्या है। सूरके लीलावर्णन और जायसीके नागमती-वियोग-वर्णनकी चर्चाओंमें इस सामान्य मानवीय संवेदनाकी ओर संकेत किया गया है। आलम्बन या वस्तु में मानवीय संवेदनशीलता जितनी आवश्यक है उतना ही उसका सौन्दर्यमय होना। सौन्दर्य वस्तुके साथ तदाकार परिणति है तो इसमें अनुभूतिकी अपेक्षा वस्तु धर्मितापर ही अधिक बल है। “सुन्दरवस्तुसे पृथक् सौन्दर्यकी कोई सत्ता नहीं है।”<sup>७</sup> उसका सम्बन्ध रूप से ही नहीं, मनके भाव-विचारोंसे भी है। रसकी भांति सौन्दर्यके भी धर्म हैं—वस्तुनिष्ठता, नैसर्गिकता, सात्त्विकता और सामाजिकता। यह सौन्दर्य काव्यके रूपसे ही सम्बन्धित नहीं है, वह जीवनका रस है। सूर जायसी आदिके रूप सौन्दर्य निरूपणके प्रसंगों में शुक्लजीने सौन्दर्यकी वस्तुनिष्ठ और अनुभूतिमूलक दोनों विशेषताओंपर ध्यान दिया है। उनकी दृष्टिमें रसकी भांति सौन्दर्यभी जीवन सापेक्ष है। जीवनकी विरूपताओं और विकृतियोंकी अभिव्यंजनामें न सौन्दर्य है और न रस।

## वाद-समीक्षा

शुक्लजीने पाश्चात्य चिन्तनके सार तत्त्वको ग्रहण करके उसे अपनी रसवादी विचारधारामें अन्तर्भुक्त



कर लिया है। भारतमें कदाचिह्नी ऐसा कोई आचार्य या समीक्षक हुआ है जो भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य-चिन्तनको इस प्रकार मिला देनेमें इतना सफल हुआ हो। शुक्लजीके चिन्तनमें पाश्चात्य चेतना और चिन्तन इस प्रकार घुलमिल गया है कि उसकी पृथक् सत्ताका आभास ही नहीं मिलता। दूसरी ओर उन्होंने अपनी मान्यताओंके विरुद्ध जो पाश्चात्य वाद हैं, जिनकी चर्चा उस समय साहित्य-जगत्में हो रही थी, उनका डटकर विरोध किया है। इसके अनेक कारण हैं। शुक्लजीने सच्चे अर्थमें आधुनिकताको ग्रहण नहीं किया है। प्राचीनके नये आख्यानमें संलग्न द्विवेदी-युगकी पुनरुत्थानवादी दृष्टिसे वे कम प्रभावित नहीं थे। उदार दार्शनिक-साहित्यिक विचारधारा होते हुए भी परम्परा और संस्कारोंके प्रभावसे उनकी दृष्टि मूलतः धार्मिक-पौराणिक थी। साहित्यिक क्षेत्रमें उनकी सहृदयता और रसज्ञताका लोहा मानना पड़ता है, परन्तु उनकी साहित्यिक अभिरुचि क्लासिकल तत्त्वोंकी ओर झुकी हुई थी। वे पं. महावीरप्रसाद द्विवेदीकी भांति आलोचनाके द्वारा साहित्य-सर्जनाका अनुशासन और पथ-प्रदर्शनभी करना चाहते थे जो वास्तवमें साहित्य-समीक्षाका कार्य नहीं है। अपनी दार्शनिक-साहित्यिक दृष्टि, अभिरुचि और मान्यताओंके विरुद्ध होनेपर वे किसी दार्शनिक-साहित्यिक वाद या प्रवृत्तिको उदारता और सहृदयताके साथ स्वीकार करनेके लिए प्रस्तुत नहीं थे। खण्डन-मण्डनके आवेशमें उन्होंने पाश्चात्य वादोंकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सच्चे स्वरूपको समझनेका प्रयत्न भी नहीं किया।

शुक्लजीके आलोच्य वादोंमें कुछ दार्शनिक हैं और कुछ साहित्यिक। पाश्चात्य भाववादी विचारधारा और ईसाई-सूफी रहस्य-साधनाको उन्होंने स्वीकार नहीं किया। ये भारतीय स्थूल धार्मिक-पौराणिक दृष्टिके विरुद्ध पड़ते हैं। पर भारतीय आत्मवादी चिन्तन और औपनिषदिक ज्ञानपरक एवं रहस्यात्मक चेतनासे कुछ अंशोंमें मिलते जुलते हैं। साहित्यिक वादोंमें कलावाद, अभिव्यंजनावाद, प्रतीकवाद, रूपवाद आदिका सम्बन्ध साहित्यिक सिद्धान्तोंसे है और रहस्यवाद, प्रभाववाद, स्वच्छन्दतावाद आदि साहित्यिक-कलात्मक प्रवृत्तियां हैं। दोनोंका अन्तर न करनेसे शुक्लजी अपने खण्डनमें कभी सिद्धान्तकी बात करते हैं और कभी साहित्यिक प्रवृत्तिकी चर्चा करते हैं। दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक या

‘प्रकर’—जनवरी १९२०—१०

साहित्यिक वादोंका साहित्यकारोंने सदा अनुसरण किया हो ऐसा नहीं है। अभिव्यंजनावाद सौन्दर्य-शास्त्रमें प्रतिपादित सिद्धान्त है जिसे कुछ आलोचकोंने अपनाया है, पर उस नामसे साहित्यमें कोई प्रवृत्ति विकसित नहीं हुई। कहीं-कहीं दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तोंका साहित्यपर कुछ सामान्य प्रभाव पड़ा है जैसे फ्रायडके काम-सिद्धान्तका।

वादोंके सम्बन्धमें शुक्लजीके सामान्य विचारोंसे मतभेद नहीं हो सकता। साहित्यका क्षेत्र किसीभी दार्शनिक-साहित्यिक सिद्धान्त या वादसे व्यापक होता है। उसे वाद विशेषसे बांधकर संकुचित नहीं किया जा सकता। सिद्धान्तिक आग्रह साहित्यकी सारसत्ताको चर जाते हैं। जब वादोंका फैशनके रूपमें अनुकरण होने लगता है तो रचना निष्प्राण हो जाती है।

यहां यह समझना आवश्यक है कि साहित्यका प्रत्येक वाद एक विशेष दृष्टिसे परिचालित होकर जीवनकी, उसकी यथार्थताकी व्याख्या करनेका प्रयत्न करता है। तदनुरूप उसके भावबोध और शिल्पविधान में परिवर्तन हो जाता है। उसमें पहलेकी दृष्टिकी प्रतिक्रिया हो सकती है, नयी दृष्टिका आग्रह होता है और नये सौन्दर्यके उन्मेषका प्रयत्न भी दृष्टिसे भाव और शिल्पकी प्रकृति निर्धारित होती है। उसीसे उनकी सीमाएं भी निर्धारित होती हैं। आलोचकोंका धर्मवाद या प्रवृत्तिकी उपलब्धियों और सीमाओंका निर्धारण होता है। छायावादको लेकर शुक्लजीने उसकी साहित्यिक उपलब्धियों और सीमाओंके निर्देशका कार्य सफलतापूर्वक संपन्न किया है, परन्तु दृष्टि सम्बन्धी पूर्वाग्रहोंके कारण विरोध और खण्डनमें कटुता आ गयी है।

दार्शनिक मान्यताओंमें शुक्लजीकी आलोचनाकी सीमाएं वस्तुवादी, धार्मिक और सामाजिक लोक-मंगलकी हैं। वे जीवन-जगत्की भाववादी, आध्यात्मिक और व्यक्तिवादी चेतनाके मूल्यको भूल गये। परिणामतः भक्तिकाव्य और छायावादकी उत्कृष्ट साहित्यिक आलोचनाके बावजूद उनके साथ पूरा न्याय नहीं कर सके, विशेषतः ज्ञानात्मक, रहस्यात्मक और वैयक्तिक साधनाके पहलुओंके सम्बन्धमें।

साहित्यिक दृष्टिसे उनकी वाद-समीक्षाकी सीमाएं उनके रस-सिद्धान्तकी हैं। लौकिक भावनाओं और सवेगोंको रसकी आधारभूमि बनाकर उन्होंने रसकी परिकल्पनाको आध्यात्मिक और उपादशात्मक काल्प-



निकतासे मुक्त किया है। वस्तु जगत् या विभावकी प्रतिक्रिया केवल भावात्मक नहीं होती। यह वैचारिक और कल्पनाशील भी हो सकती है जैसे कबीर और सूर छायावादमें देखते हैं। भावकी भांति विचार और कल्पना भी काव्यके विषय हो सकते हैं। भावाश्रित रसात्मक वाक्यही नहीं, प्रत्येक रमानेवाला या रमणीय वाक्य काव्य हो सकता है। इसी दृष्टिसे पंडित जगन्नाथने आचार्य विश्वनाथकी परिभाषाको व्यापक रूप दिया है। शुक्लजीका रससिद्धान्त काव्यको वस्तु और भाव तक सीमित कर देता है। उनकी दृष्टिमें आध्यात्मिक-रहस्यात्मक साधनाभी काव्यका विषय नहीं हो सकती। वह व्यापक वस्तु-जगत्का ही अंग है। ज्ञान और साधनाको काव्यात्मक रूप दिया जा सकता है, विश्वसाहित्यमें उसके उदाहरणोंकी कमी नहीं है।

शुक्लजीने वादोंकी आलोचनामें कलावाद, प्रतीकवाद, प्रभाववाद, अभिव्यंजनावाद, रूपवाद और रहस्यवादपर अनेक आक्षेप किये हैं। प्रतीकवाद, प्रभाववाद, अभिव्यंजनावाद और रूपवादको कलावादसे जोड़कर छायावादको उनसे प्रभावित मानकर चले। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह सम्बन्ध-स्थापन और प्रभाव-निरूपण अप्रामाणिक है। रोमांटिक प्रवृत्तिमें उनकी उतनी रुचि नहीं है जितनी पूर्व रोमांटिक प्रवृत्तिमें, जिसे उन्होंने 'सच्चा स्वच्छन्दवाद'की संज्ञा दी। रोमांटिक प्रवृत्तिके साथ रहस्यात्मक प्रवृत्ति जुड़ी है—प्राकृतिक और भावात्मक दोनों स्तरोंपर। शुक्लजीने पहले को ही स्वीकार किया है। भावव्यंजनामें रहस्यमयता, प्रेमपरक और ज्ञानात्मक रहस्यवाद उनकी दृष्टिमें काव्यके नहीं, साधना और चिन्तनके विषय हैं। कलावाद, अभिव्यंजनावाद, छायावाद आदि कलापक्ष या रूपविधानका ही महत्त्व है, यह मानकर चलना उनके साथ अन्याय है। वे कथ्य और रूपको संश्लिष्ट एवं अभिन्न मानते हैं। शुक्लजी काव्यको कलासे श्रेष्ठ कहते

हैं क्योंकि पहला भाव या रस प्रधान है और दूसरा रूप-सौन्दर्य प्रधान है। उनके विचारसे भावतत्त्व ही काव्यकी आत्मा है। वस्तु और भावकी प्रतीकात्मक व्यंजना नहीं, प्रत्यक्ष निरूपण होना चाहिये। वस्तुके प्रभावकी व्यंजनासे महत्त्वपूर्ण आलंबनका वस्तुमुख-विधान है। अभिव्यंजना भावप्रेरित और भावमूलक होनी चाहिये। काव्य रूपविधानकी चमत्कारी क्रीड़ा नहीं है। काव्य-साहित्यमें व्यक्तिपरक रहस्यात्मक भावनाकी नहीं, सामाजिक चेतनाकी अभिव्यक्ति ही अभिप्रेत है। अपनी इन मान्यताओंको दृष्टिमें रखकर शुक्लजी पाश्चात्य वादोंकी कमियोंको ढूँढते रहे। उनकी हठवादितासे वादोंके वास्तविक रूपको पहचानने में बाधा हुई। वास्तवमें वे उन वादोंकी समीक्षा करना नहीं चाहते थे, उनको साधन बनाकर अपने सिद्धान्तों और मान्यताओंका प्रतिपादन करना चाहते थे। उनकी दृष्टि पाश्चात्य साहित्यिक वादों और प्रवृत्तियोंके मूल तत्त्वोंपर नहीं, उनके ह्रासोन्मुख रूप और परिणामों पर थी। इस बातपर उन्होंने ध्यान नहीं दिया कि प्रत्येक वाद और प्रवृत्तिके मूलमें जीवनका कोई सत्य और साहित्यिक सौन्दर्यका कोई-न-कोई पहलू अन्तर्निहित रहता है।

शुक्लजीकी पाश्चात्य वाद-समीक्षाकी सीमाएं होते हुए भी, उनकी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना में पाश्चात्य साहित्य-चेतना और चिन्तनके अनेक नये सूत्र मिल जाते हैं जो भारतीय काव्य-चेतना और काव्य शास्त्रकी व्यापक परिधिमें आत्मसात् करके प्रस्तुत किये गये हैं।

### संदर्भ-संकेत

१. चिन्तामणि-II : पृ. ५८, १९४५ । २. रस-मीमांसा : पृ. १०६, १९४६ । ३. चिन्तामणि-II : पृ. ३३ । ४. चिन्तामणि-I : पृ. २१, १९५१ । ५. चिन्तामणि-II : पृ. ७४ । ६. वही पृ. २० । ७. चिन्तामणि-I : पृ. १६४ । □

## आलोचना साहित्य

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य—सम्पादक : डॉ. महेन्द्र भटनागर

अन्धायुग : एक विवेचन—डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा (पुरस्कृत)

छायावाद : नया मूल्यांकन—प्रा. नित्यानन्द पटेल

'प्रकर' : विशेषांक (अवतक प्रकाशित सभी अंक)

६०.०० रु.

४०.०० रु.

३५.०० रु.

२७५.०० रु.

'प्रकर' कार्यालय, ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर'—माघ २०४८—११



## थाईदेशमें प्रचलित रामकथाका गौरवशाली काव्य

“रामकीर्ति महाकाव्य”<sup>१</sup>

## (संस्कृत महाकाव्य परम्परामें)

रचनाकार : डॉ. सत्यव्रत शास्त्री

समीक्षक : डॉ. कृष्णकुमार

किसी समय प्राचीन कालमें भारतकी संस्कृति, सभ्यता और धर्मका प्रसार लगभग सम्पूर्ण विश्वमें, विशेष रूपसे दक्षिण-पूर्वके देशों और द्वीपोंमें बर्मा, थाईदेश-स्याम, कम्बोडिया, चम्पा, अनाम, मलय, स्वर्ण-द्वीप, यवद्वीपमें हुआथा । उस युगमें ये प्रदेश भारतीय, धर्म, सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा, राजनीति और व्यापारके केन्द्र हो गयेथे । भारतीय धर्म और संस्कृतिके साथही इस देशके साहित्यका प्रसार होनाभी वहां स्वाभाविक था । भारतीय धर्मशास्त्र और काव्यभी वहां पहुंचे, ‘रामायण’ और ‘महाभारत’ की कथाएं भी गयीं । परन्तु उनमें स्थानीय प्रभावोंके कारण अनेक परिवर्तन, संशोधन और परिवर्धनभी हुए । इन देशोंमें इस प्रकार का साहित्य वर्तमान समयमें भी प्रचलित है और वहां की सरकारों द्वारा इसको प्रोत्साहनभी दिया जाताहै ।

थाईदेश (स्याम) भारतीय धर्म और संस्कृतिका प्रधान केन्द्र रहाथा । आजभी वहांके जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें ब्राह्मण और बौद्ध प्रभाव बहुत स्पष्ट परिलक्षित होताहै । अनेक अन्य तत्वोंके साथ भारतकी रामकथाका निर्यातभी थाईदेशमें हुआथा और वहां यह बहुत लोकप्रिय हुई । इस रामकथाने अपने विशेष स्वरूपको सुरक्षित रखते हुएभी उस देशकी सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक विशेषताओंको भी सम्मिलित किया था । वहांके मनीषियोंने रामके अवतरणको विष्णुका अंश मानते हुएभी इसको अपने देशके राजाओंसे सम्बन्धित कर लिया । अतः भारतमें प्रचलित रामकथा

और इन देशोंमें प्रचलित रामकथाके कथानक और संगठनमें अनेक विभिन्नताएं उत्पन्न होगयीं । डॉ. सत्यव्रत शास्त्री द्वारा रचित ‘रामकीर्ति महाकाव्यम्’ का अवलोकन करनेसे ये भिन्नताएं स्पष्ट रूपसे परिलक्षित हो जातीहैं ।

प्रस्तुत कृतिमें महाकविने थाईदेशकी इस राम-कथाको संस्कृत भाषामें २५ सर्गोंमें महाकाव्यके रूपमें निबद्ध कियाहै । इसके साथही इसका अंग्रेजीमें अनुवाद भी किया गयाहै । स्वयं थाईदेशकी महारानी महाराजकुमारी देवरातन राजसुता महाचक्री सिरिथानने इस महाकाव्यकी भूमिका लिखकर लेखकको सम्मानित कियाहै ।

‘रामकीर्ति महाकाव्यम्’ में वर्णित रामकथाके अनुसार अनामतन् नामका राजा थाईदेशमें प्रथम राजा हुआथा । देवगण हिरन्तमय नामक असुरसे पीडित होकर कैलासवासी शिवकी शरणमें गये । शिवने नारायणका स्मरण किया । नारायण-विष्णुने चक्रवाल पर्वत पर युद्धकर असुर हिरन्तमयका संहार किया । क्षीरसागरमें वापिस आनेपर उन्होंने कमलपर सोये हुए एक शिशुको देखा । इस शिशुको विष्णुने शिवके लिए समर्पित कर दिया । शिवने आदेश दिया कि यह पृथिवी का आदि राजा होगा । उसके पुत्र दशरथ हुए तथा उनके पुत्र राम आदि हुए ।

थाईदेशकी रामकथा ‘रामकीर्ति’के नामसे प्रसिद्ध है । इस कथामें प्रसिद्ध स्थान अयोध्या आदि थाईदेशमें ही हैं । वहांके निवासियोंके विश्वासके अनुसार सीता का जन्म और राम-रावण युद्ध इसी देशमें हुआथा । जिस पर्वतसे हनुमान् संजीवनी औषधि उखाड़कर लाये थे, वह थाईदेशमें ही है । यहां रामके पुत्र लवके नाम से लोवपुरी है । बैंकाक नगरमें एक हरित शिला इस

१. प्रकाशक : मूलादेव सचदेव प्रतिष्ठानम्, अमरनाथ सचदेव प्रतिष्ठानम्, बैंकाक (थाईदेश) । पृष्ठ : २६ + ५३०; मूल्य : ४२५.०० रु. ।



विशेषताके लिए प्रसिद्ध है कि यह रामके बाणोंसे बनी है। भारतीय रामकथाके पात्रोंके नाम थाई रामकीर्ति कथामें उच्चारणके कारण और वहाँकी परिस्थितियोंके कारण कुछ परिवर्तितसे हो गये हैं। कविने 'वाल्मीकि रामायण' के पात्रोंको प्रायः उन्हीं नामोंसे 'रामकीर्ति महाकाव्यम्' में भी दिया है, परन्तु अनेक नामोंमें उच्चारणका भेद हो गया है, जो थाईदेशकी भाषा और उसके उच्चारणके कारण है। थाईदेशके उच्चारणके अनेक नाम संस्कृत 'रामायण' के अनुरूप हैं, जैसे कि— तोत्सरोव—दशरथ, तोत्सुकन्—दशकण्ठ, लक्फोत्सत्रुद्—लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न, विभेक—विभीषण, इसुवन्—ईश्वर, नराय—नारायण, वज्जुग—वाल्मीकि आदि शब्द हैं। अनेक नाम थाई उच्चारणके अनुसार हैं, जैसे कि— बेज्जकयी, वीर-क्वना, मलिबग्ग, ब्रह्म्म, असुरफद् आदि। दक्षिण पूर्वी देशोंमें प्रचलित रामकथाको संस्कृत भाषामें प्रथम बार महाकाव्यके रूपमें प्रस्तुत करके कविने एक अति प्रशंसनीय कार्य किया है।

काव्यालोचनकी दृष्टिसे प्रस्तुत महाकाव्य उच्च कोटिका है। कथानक, चरित्रचित्रण, संवाद, भाषा, शैली, प्रकृति चित्रण, अलंकार विचार और रस-निष्पत्ति सभी काव्य तत्त्वोंको इस महाकाव्यमें स्वाभाविक रूपसे सन्निहित करते हुए यशस्वी कविने अपनी काव्य-रचना-चातुरीका परिचय दिया है।

रामकी मूल कथाके साथ अनेक इस प्रकारकी पताका तथा प्रकरी कथाएं अनुस्यूत हैं, जो कि 'वाल्मीकि रामायण' में नहीं। जैसे कि रावणकी आज्ञा से बेंजकयीने मृत सीताका रूप बनाकर अपनेको नदीमें प्रवाहित कर दिया। नदीपर स्नान करनेके लिए आये हुए रामकी इसको देखकर शोकसे विह्वल अवस्था होगयी। रामको खोजनेके लिए आये हुए लक्ष्मण और सुग्रीवकी भी यही अवस्था हुई। परन्तु हनुमानको इस पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सीतारूपधारिणी बेंजकयीको नदीमें से खींचकर चिता जलाकर उसमें डाल दिया। बेंजकयी चीखती हुई भागी, परन्तु हनुमान् उसको पकड़ लाये। तब विभीषणने आकर बताया कि यह उसीकी पुत्री बेंजकयी है और वधके योग्य है। राम ने विभीषणके कहनेपर भी बेंजकयीका वध नहीं किया तथा हनुमानको आदेश दिया कि वह उसको लंका पहुँचा दे। मार्गके मध्यमें ही दोनोंमें प्रणय होगया। इससे असुरफद् नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। बादमें इसने

लंकाका पालन-पोषण किया।

अन्यभी अनेक अवान्तर कथाएं रामकीर्ति महाकाव्यमें हैं—नन्दकोपाख्यान, जिह्वोपाख्यान, नील-हनुमद्विग्रहोपाख्यान, सुवर्णमत्स्या उपाख्यान, महीपाल-देवासुर उपाख्यान, सीतानिर्वासन उपाख्यान (नये रूपमें), लवमंकुटरामसमागम उपाख्यान, सीतापाताल प्रवेश उपाख्यान और रामसीतामिलन उपाख्यान।

कविने पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें बहुत कौशल प्रदर्शित किया है। राम विनयशील और स्वाभिमानी है। वे किसी प्रकारके अपमानको सहन नहीं कर सकते। रावण द्वारा सीताका अपहरण होनेपर वे कहते हैं—

भार्या हुता मेऽधमराक्षसेन।

ततोऽस्ति मे दण्डसतभो मतोऽयम् ॥

वृत्तोहमस्मादभिषेणनेऽस्य।

प्रयोजकोऽन्यो न हि मेऽत्र हेतुः ॥

चापद्वितीये मयि विद्यमाने।

स्थातुं ममाग्रे न भवेदलं सः ॥

एकेकशः कर्तयितास्मि तस्य

तीक्ष्णदर्शास्यानि शनैरहं द्राक् ॥

रामकीर्ति. ६.५०-५१

कविकी भाषा और शैली इसी प्रकार सरल, स्वाभाविक और प्रवाहमयी है। पर्वत निर्झरसे झरती जलधाराके समान शब्दोंकी धारा वाक्योंके रूपमें श्लोक-बद्ध होकर निःसृत होती जाती है। यह सुगम और सुबोधभी इतनी है कि सामान्य संस्कृत जानने वाला व्यक्तिभी इसका सरलतासे रसास्वादन कर सकता है। उदाहरणार्थ—

किं मया व प्रकर्तव्यं वर्तितथ्यं कथं च वा।

विषदम्भोधिमग्नस्य तरिः को वा भवेन्मम ॥

अथवा शरणं यामि राममेव प्रभुं द्रुतम्।

परं कथमहं यायां दशामेतादृशीं गतः ॥

शरणं शरण्यानां स एव परमा गतिः ॥

परं कथमहं यायां दशामेतादृशीं गतः।

संचरेय पथा केन विधिनिष्करुणो मयि ॥

यदि व्योमपथेनाहं संचरेय तदा ध्रुवम्।

देवा उपहसिष्यन्ति दृष्ट्वैतादृग्दशं नु माम् ॥

इन श्लोकोंके माध्यमसे कविने सरल और स्वाभाविक भाषामें पात्रगत मानिसक द्वन्द्वका सूक्ष्म परिचय भलीभाँति दिया है। कविने अपनी भाषामें सूक्तियोंका सन्निवेश अति सौन्दर्यपूर्ण किया है। यथा—



बुद्धिमानपि विवेकयुतोऽपि शास्त्रशीलनपरोऽपि  
बुधोऽपि ।

क्रोधमार्गमभितो प्रपन्नो नो विचिन्तयति. कार्यम-  
कार्यम् ॥

रामकीर्ति १७.३४

प्रकृति-चित्रणमें कविने अपनी अनुपम प्रेतभाका  
प्रदर्शन किया है । अपने पिता हनुमानको खोजनेके लिए  
बेंजकयीका पुत्र अमुरफद पर्वत-पर्वतपर जाता है—

वने भ्रमन्तेकदिने हनुमान् रसालवृक्षे सरसे रसाले ।  
कस्मिंश्चिदाकृष्यत तानि भोक्तुं प्रवृत्तिमांश्चेव  
बभूव सद्यः ॥

वृयक्कूतानां निजवृन्तजाताद् क्षीरेण सम्प्रस्रवता  
मुखेभ्यः ।

संलिप्तसर्वावयवो बभूव कपिस्तुषारस्रुतिधौत-  
वर्णः ॥

डॉ. सत्यव्रत शास्त्रीकी भाषा स्वाभाविक रूपसे  
अलंकारमयी है । अलंकारोंकी कृत्रिमता नहीं है, अपितु  
स्वभावसिद्ध अलंकार हैं । अनुप्रास, रूपक उपमा, अर्था-  
न्तरन्यास आदि अलंकार सर्वत्र बिखरे हुए हैं और कहीं  
यह आभासभी नहीं मिलता कि कविने इनके निवेशन  
में कोई भगीरथ प्रयास किया है ।

रस-निष्पत्ति काव्य-रचनाका मुख्य प्रयोजन है ।  
'रामकीर्तिमहाकाव्य' में कवि रसनिष्पत्तिका आयोजन  
करनेमें उसी प्रकार समर्थ है । यह काव्य यद्यपि वीर  
रस प्रधान है, तथापि अन्य रस अंग रूपमें यथास्थान  
संयोजित हैं ।

समीक्षासे यह स्पष्ट है कि यह महाकाव्य  
काव्यत्वकी सम्पूर्ण विशेषताओं, गुणों और  
गरिमाको धारण करता हुआ उस झरोखेको खोल रहा

है, जिससे कि हम दक्षिणपूर्वके देशोंमें विस्तृत रूपसे  
प्रचलित रामकथाके अन्तर्तमका दर्शन कर पाते हैं ।  
'बाह्मीकि रामायणके कथानककी अवान्तर कथाओंमें  
अनेक विभिन्नताओंके होते हुएभी कुल कथानक  
'वाल्मीकि रामायण' का ही है । यहभी जानना अत्य-  
धिक रोचक और विस्मयजनक है कि 'रामायण' में  
अयोध्या आदि जिन स्थानोंका वर्णन है, 'रामकीर्ति  
कथा' के अनुसार वे सब स्थान थाईदेशमें ही हैं । इससे  
यह भी स्पष्ट होता है कि प्राचीन समयमें भारतसे जो  
मनीषी, पर्यटक और वीर पुरुष उन देशोंमें गये थे  
उन्होंने उन्हीं देशोंको अपनी जन्मभूमि स्वीकार किया  
और अपने पूर्वजोंके वृत्तान्तोंको, अपने देशके ग्रन्थोंके  
भावोंको तद्देशीय रूप प्रदान करके नवीन राष्ट्रभावना  
का प्रसार किया था । प्रकार यह 'रामकीर्ति महाकाव्य'  
भारत और थाईदेशके आपसके सम्बन्धकी भावनाको,  
भावनात्मक एकताको और प्राचीन सम्बन्धोंकी प्रगाढ़ता  
को प्रतिपादित करता है । आजभी इस देशमें भारतीय  
प्रभावके चिह्न और परम्पराएं विद्यमान हैं ।

डॉ. सत्यव्रत शास्त्रीकी पुस्तकके सम्पादन और  
मुद्रणमें भी अद्भुत प्रतिभा और परिश्रमको लक्षित  
किया जा सकता है । कथानकके भावोंको अभिव्यक्त  
करनेवाले कुछ चित्रभी साथमें संलग्न हैं । इनका  
रूप प्राचीन कांगड़ा शैलीमें आलिखित चित्रों जैसा ही  
प्रतीत होता है । इनको देखकर यह कहना कठिन हो  
जाता है कि ये प्राचीन नहीं हैं और चित्रकारने वर्तमानमें  
ही इनका अंकन किया है । परन्तु ये वर्तमान चित्रकला  
के ही रूप हैं ।

पुस्तकका बाह्य रूप और मुद्रणभी आकर्षक तथा  
मनोरम है । मुद्रण बैंकाक नगरमें हुआ है । □

### समसामयिक साहित्य :

रूपयेका श्रवमूहयन और उसका प्रभाव—सम्पा. डॉ. लक्ष्मीमल सिधवी

समालवादी बर्मा—श्यामाचरण मिश्र

विस्तारवादी चीन—जगदीशप्रसाद (पुरस्कृत)

कच्छ—पद्मा अग्रवाल

एवरेस्ट अभियान—डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश

अफ्रीकाके राष्ट्रीय नेता—जगमोहनलाल

जेवीं आकार

"

"

"

४०.००

३०.००

८.००

८.००

८.००

१०.००

### 'प्रकर कार्यालय'

ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर'—जनवरी १९२—१४



## प्रसाद काव्यमें मिथक प्रतीक ?

लेखिका : डॉ. सुषमा अरुण

समीक्षक : प्रो. शलभ

मनुष्यताकी विकास चेतनाके सुन्दर इतिहास और अखिल मानव भावोंके सत्यको, विश्वके हृत्तलपर, अपनी काव्यमयी रसात्मक अभिव्यक्ति द्वारा अंकित करने का महत् प्रयत्न, प्रसादने भारतीय काव्यके गौरवशिखर 'कामायनी' में किया है। यह प्रसादीय प्रभाव उनकी प्रायः सभी रचनाओंमें देखाजा सकता है, यहांतक कि 'स्कन्दगुप्त' का मातृगुप्त ही नहीं, स्वयं स्कंद, चाणक्य, चन्द्रगुप्त कर्नेलिया, देवसेना, चम्पा, मधूलिका, ध्रुवस्वामिनी, अलका आदि सभी तो इसी आलोकवलयसे संवेष्टित हैं। उनकी 'गुन्डा', मधुआ, और 'छोटा जादूगर' जैसी यथार्थवादी कहानियां तक ऐसीही संवेदनाकी रचना है। ये सभी उसी उज्ज्वल वरदानकी अवदान नहीं है क्या ?

प्रसाद सचमुच ऐसे काव्य-पुरुष हैं जिनका समूचा साहित्यिक कृतित्व काव्यमय है, क्योंकि उनकी रचनाएँ बृहत्तर मानवीयता, संस्कृतिजन्य विशद राष्ट्रप्रेम, जीवनके विकासमें अचल विश्वास, सामाजिक समता, पीड़ित-शोषित जनके प्रति गहरी सहानुभूति और अस्तित्वके लिए उत्कट संघर्ष-चेतना आदि मानव-मूल्योंको रूपायित करती हैं। यह स्रष्टा तो सृष्टिके विकासके लिए 'परिवर्तन' को अत्यधिक महत्त्व देता है। उसके उपन्यास 'कंकाल' और 'तितली' में भी यह सच्चाई द्रष्टव्य है। उसका स्कंद तो यहांतक कहता है कि 'परिवर्तन रुका कि महापरिवर्तन प्रलय हुआ। परिवर्तनही सृष्टि है, जीवन है। स्थिर होना मृत्यु

है।' उसका यही सम्राट तक सामन्तवादी जीवन-परम्पराका समर्थक नहीं है। सामन्तवादी क्षरित मूल्योंपर 'ध्रुवस्वामिनी' जैसी कृति क्या सार्थक चोट नहीं करती ? प्रसादको सामन्तवादी और मध्यकालीन आस्थाओंका रचनाकार तब कैसे स्थिर कियाजा सकता है ? क्या उनकी कृतियोंमें परिवर्तनकी निरंतरता और नैसर्गिक मानव-मूल्योंकी शाश्वतापर बल नहीं दिया गया है ? कामायनी क्या यह नहीं कहती कि 'यह नीड़ मनोरम कृतियोंका/ यह विश्व कम रंगस्थल है / है परम्परा लग रही यहां / ठहरा जिसमें जितना बल है।' यह एक खरी सच्चाई है जिसे अस्वीकार नहीं कियाजा सकता।

वैसेभी सृजन-कर्म सदैव एक गत्यात्मक सत्य रहा है। अजन्ताके भित्ति चित्रों और एलिफेन्टाकी स्थिर मूर्तियों तक के अवलोकनसे इसी गत्यात्मकताकी अनुभूति होती है। आज तो बुतोंके बोलने तक को महसूस किया जाता है। इसलिए यह तो हर श्रेष्ठ कृतित्वकी सच्चाई है ही कि वह पूर्वाग्रहों नहीं होता। प्रसादभी कहीं यथार्थको अनदेखा नहीं करते। परन्तु मनुष्य-जीवनमें जो कुछ भी उदात्त और उज्ज्वल चेतनाका सौन्दर्य है, उसी वरदानके वे कायल रहे हैं। आंसू, झरना, लहर, कामायनी और अन्य नाटकीय गीतोंमें उसका प्रेयस और श्रेयस प्रोद्भास, सार्थक और सुन्दर प्रतीकों और त्रिम्बोंमें हुआ है। कामायनी तो एक सशक्त फेन्तेसी है। हिन्दी साहित्यको इतने विविध काव्य-त्रिम्बों और मिथक-प्रतीकोंसे प्रसादके अतिरिक्त किसने इतना समृद्ध किया है ? उनकी काव्य-संवेदना प्रकृतिके सुरम्य अंचलसे उदभूत होकर, भारतीय संस्कृतिकी ओर अग्रसर हुई है, और इसीके विकासका अगला चरण दर्शन उसका प्रकाम्य रहा है, पर दर्शनकी अगली धुरी मनोविज्ञान भी—विशेषतः मनस्ताविक अवधारणामें प्रसाद काव्य

१. प्रका. : प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली (उ. प्र.) । पृष्ठ : २८२; डिमा. ६०; मूल्य : १२००० रु. ।



में बिम्बवती होकर उभरी हैं। ऐसेमें यदि उसमें फेन्तेसी, युटोपिया, मिथ और मिथक-प्रतीकोंकी इतनी प्रचुरता मिले तो कोई आश्चर्य नहीं। इन मिथक-प्रतीकोंमें तो मिथ तत्त्व अन्तर्निहित हैं ही। सी. जी. जुंगके अनुसार मिथक मानवजातिका सामूहिक स्वप्न, एक सामूहिक अनुभव है, जो उसके सामूहिक अवचेतन की देन है। और उन्हींके अनुसार यह अनुभूति किसी एक व्यक्तिकी नहीं, मानवमात्रकी अनुभूति होती है—आद्य बिम्बके रूपमें। मिथक-प्रतीक इसीलिए शब्दोंके अन्तस्में पैठ कर अनेकानेक अर्थोंकी व्यंजना करते हैं। सम्भवतः इसी मन्तव्यसे प्रसादने कामायनीके आमुखमें लिखा है—‘यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मननके सहयोग से मानवताका विकास रूपक है, तो भी बड़ा भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यताका मनोवैज्ञानिक विकास बननेमें सहायक हो सकता है... देवगणके उच्छृंखल स्वभाव, निर्बाध आत्मतुष्टिमें अन्तिम अध्याय लगा और मानवीय भाव अर्थात् श्रद्धा और मननका समन्वय होकर प्राणीको एक नये युगकी सूचना मिली। मनु अर्थात् मनके दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्कका सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ासे भी सरलतासे लगता है।’

कामायनीमें मनोभावोंका प्रतीकात्मक संयोजन यथा चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, लज्जा, वासना, ईर्ष्या, इड़ा, संघर्ष आदि इसीके प्रमाण हैं। मुक्तिबोध जैसे विचारक मनुको मननके सहयोगसे मानवताका मनो-वैज्ञानिक विकास अथवा मानवताका विकास-रूपक नहीं मानते। ऐसेभी विद्वान् हैं जो मिथकको उपयोगी तो मानते हैं, परन्तु उसे तात्कालिक और आंशिक ही। वे उसकी असीम शक्तिको भी स्वीकारते हैं, पर वे मानते हैं कि मिथक प्रकृतिसे जड़ है ‘पूजाकी वस्तु है और पूज्यवस्तुमें निश्चयही जगानेकी क्षमता होती है, पर वह नवजागरणभी आंशिक होता है। वह नव-जागरण नहीं, नवजागरणका आभास है।’—उपयुक्त कथन डॉ. नामवरसिंहका है। तब प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच ही मिथक नवजागरणका आभास मात्र है? एन्साइक्लोपीडिया ब्रितानिका तो उपयुक्त मत का समर्थन नहीं करता, जैसाकि उसने व्यक्त किया है—‘मिथ इज दस ए वाइटल इन्प्रेडियेन्ट ऑव ह्यूमन सिविलिजेशन। इट इज नोट एन आइडियल टेल, बट ए हार्ड वर्क एक्टिव फोर्स। इट इज नोट एन ‘प्रकर’—जनवरी ६२—१६

हन्तेलेक्युल एन्साइक्लेशन और एन आर्टिस्टिक इमेजरी, बट ए प्रेगमेटिक केरेक्टर ऑव प्रिमिटिव फेथ एण्ड मोरल विजडम।’

यही नहीं, मिथ तो मनुष्योंके विश्वासोंको प्रतीकों में ढालती हैं, उन्हें विवर्धित करती है, वह तो नैतिकता की रक्षा करती है, उसे बल देती है। आदिम संस्कृतिके अनिवार सत्यको अभिव्यक्ति देती है। सारे लने तो सारे संसारके मजदूरोंकी हड़तालको, साम्यवाद, आदर्शवाद इत्यादि तकको मिथ कहा है। ‘पुरा नवं भवति यः सः पुराणम्’ की जो सचाई है वही मिथके लिए भी सही है। वहभी अर्थ समावेशके अनुसार नित्य नूतन कलेवर बदलती है। क्या ‘बोधिसत्त्व’ का ‘पंचशील’ अर्थ समावेशके अनुसार, आजके परिवेशमें नवरूपका प्रतीक नहीं बना है? यही क्यों, ‘पेरिस्त्रोइका’ और ‘ग्लासनोत्स’ जैसे विचार-प्रतीकोंने पश्चिमी सभ्यताको झकझोर कर रख दिया है। सचमुच मिथजन्य मिथक-प्रतीक पुनर्नवा होते हैं—इस प्रकार। वे युगके नये अर्थ-सन्निवेशसे ही नया रूपाकार ग्रहण करते हैं। ‘प्रतीक’ के सुधी सम्पादक अज्ञेय भी ‘भवन्ती’ में यही तो कहते हैं—‘प्रतीकके रूपमें मिथक है, पर प्रतीकमें जान डालनेके लिए हम मिथ गढ़ नहीं सकते। इसलिए प्रतीकको मरना ही होगा, अगर हम उसे फिर विचारमें ढाल नहीं लेते, ऐसे विचार जो आजके लिए यथेष्ट जान पड़ते हैं। उस विचारसे भलेही हम फिर एक नया प्रतीक पालें।’

‘प्रसाद काव्यमें मिथक-प्रतीक’ ग्रन्थ लिखकर विदुषी लेखिका डॉ. सुषमा अरुणने सचमुच श्लाघनीय श्रम किया है। हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजीके अनेक ग्रन्थोंमें व्यक्त विचार-दोहनका प्रतिफल है यह ग्रन्थ। वैसे इसके पूर्व डॉ. रमेशकुन्तल मेघने भी इसी दिशामें ‘मिथक और स्वप्न: कामायनीकी मनस्सौन्दर्य सामाजिक भूमिका’ लिखी है। काव्य-मिथक और प्रतीक विधानपर काफी कुछ लिखा जा चुका है। ‘प्रतीकशास्त्र और प्रतीकवाद: मनोवैज्ञानिक अध्ययनपर’ भी डॉ. परिपूर्णानन्द वर्मा और डॉ. पद्मा अग्रवालने भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। परन्तु प्रसादके समग्र काव्यके संदर्भमें इतना विशद, विस्तार और गहराईसे किया गया सूक्ष्म विवेचन कमही हो पाया था। यह प्रयत्न ‘सही ढंगसे मिथक और मिथक-प्रतीक, जिसमें आद्यबिम्बभी समाविष्ट हैं, यह पहला गम्भीर और श्रमसिद्ध कार्य



इस प्रबन्ध द्वारा ज्ञानके एक नये क्षेत्रमें लेखिकाका अनुप्रवेश तक मानते हैं। कुछ औरभी सर्टीफिकेट हैं जो लेखिकाने अपने इस ग्रंथके पृष्ठ भागपर छपवाये हैं, और जिनकी चर्चा श्लाघातिशयको बढ़ावा देना मात्र होगा।

जैसाकि शोध-प्रबन्ध लिखनेकी प्रचलित प्रक्रिया है, लेखिकाने यूनानी शब्द 'मिथोज' की अर्थ निष्पत्तिसे लेकर मिथ और मिथक-प्रतीक और उनके विविध प्रकारों और प्रयोजनोंपर बहुत ही सजगतासे विवेचन प्रस्तुत किया है, यथा—'प्रतीक-स्वरूप तथा प्रकार, प्रसाद काव्यमें मिथकीय प्रतीक, कामायनी एक समग्र मिथक, प्रसाद काव्यमें प्राकृतिक प्रतीक, प्रसाद काव्यमें सांस्कृतिक प्रतीक, प्रसाद काव्यमें दार्शनिक प्रतीक, प्रसाद काव्यमें मनोवैज्ञानिक प्रतीक' आदिका वर्गीकृत विवेचन। इस रससिद्ध काव्य-सृजेताके काव्यमें मिलने वाले विभिन्न मिथक-प्रतीकोंकी उद्भावना-भूमिको भी लेखिकाकी रसमुग्ध दृष्टिने विश्लेषित किया है। प्रत्य-भिज्ञादर्शनका इस काव्यकी सर्जनात्मकतापर कितना प्रभाव है, लेखिकाने उन सभी मिथक-प्रतीकोंके द्वारा वहभी सिद्ध करनेका सफल प्रयत्न किया है। कामायनीके अन्तिम तीन सर्ग तो उसके प्रमाण हैं ही।

कामायनी एक शक्तिशाली कविकी सर्जनात्मक मंगलाशाकी काव्य-कृति है, वह महाकाव्य है, वह कोई शैव आम्नाय या सम्प्रदायका साम्प्रदायिक ग्रन्थ कतई नहीं है। उसपर तो वैष्णव दर्शनका भी उतनाही गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। यह बात निम्नान्त सत्य है कि प्रसादके लिए किसी प्रकारकी साम्प्रदायिकता कभी प्रीतिकर रहीही नहीं। उनके समग्र साहित्यिक-कृतित्वका सर्वोपरि सत्य तो विश्वजनीन मनुष्यताका उत्थान है। औरभी कि वे महज अतीतके गौरव गायकही नहीं हैं हालांकि उनके युगमें यहभी एक लोकप्रिय काव्य-दृष्टि रहीथी। आंसू, झरना और लहरके गीतोंका रागात्मक बोध अतीतके गौरवको अभिव्यक्ति कहां देता है? ... प्रसादने तो अतीतके द्वारा ही उसीका अतिक्रमणकर अपने युगमें नवजागरणकी चेतनाको मुखरित किया है।

डॉ. सुषमा अरुणने उनको अतीतके गौरव-गायक की संज्ञासे अभिहित किया है, परन्तु इस सजग निष्ठावान् दृष्टिने उनके विभिन्न मिथक-प्रतीकों और

विविध-अभिप्रायों को आधुनिक मनोविज्ञानके प्रकाशमें भी भलीभांति विश्लेषित किया है, यथा—'एलेक्जेंडर शैन्डने मनोभावोंके सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा पारस्परिक संवादी-असंवादी परिणामोंको भी सूत्रबद्ध किया है, जिसके अनुसार चिन्ता, आशा, एवं श्रद्धाका क्रमिक विकास सुदृढ़ मनोवैज्ञानिक विकासका द्योतन करता है। उनके अनुसार आशा सदा चिन्ताको नष्ट करनेमें प्रवृत्त होती है, और चिन्ता आशाको नष्ट करनेमें; किन्तु जबतक वे दोनों भाव अपना अस्तित्व बनाये रहते हैं तबतक उसमें कोई सफल नहीं होसकता। यदि आशा चिन्ताको नष्ट करनेमें सफल हो जाती है तो इन दोनोंके स्थानको विश्वास नामक नवीन मनोभाव ग्रहण कर लेता है... कामायनीके चिन्ता, आशा और श्रद्धा सर्ग क्रमशः उपयुक्त सिद्धान्तकी ही पुष्टि करते हैं। आशाको विश्वासमें परिवर्तित करनेमें लालसा, कामना, आकांक्षा इत्यादिका जन्म होता है... प्रसादजीने 'जीवनकी लालसा आज क्यों इतनी प्रखर विश्वासमयी (लालसा), 'जब कामना सिन्धुतट आई (कामना), 'तरल आकांक्षासे है भरा सो रहा आशाका आह्लाद (आकांक्षा) के माध्यमसे किया है।'

लेखिकाकी दृष्टि सजग होनेके साथ पर्याप्त संतुलित भी है, इसीलिए उसने भारतीय दर्शन और योगके धरातलपर भी उनके मिथक-प्रतीकोंको विश्लेषित किया है—'कामायनीमें भोक्ता पुरुषके भोग्यकी प्रतीक रूपमें प्रकृतिका चित्रण है। यहाँ सांख्यकी कर्त्री प्रकृति नहीं। सांख्यकी प्रकृति पुरुषसे स्वतंत्र तत्त्व है वही जगत्की सृजनकर्त्री है। शैवदर्शनमें कला ही भोक्ता पुरुष तथा भोग-प्रकृतिकी जननी है, इसमें दोनों सापेक्ष तत्त्व हैं। इसी कारण मनु पुरुषमें आशाके उदयके साथ ही प्रकृतिभी हंसने लगती है—जैसे अनेक सटीक विश्लेषणके उदाहरण इस ग्रन्थमें प्रायः सर्वत्र मिल जायेंगे। लेखिकाका प्रधान लक्ष्य कामायनी महाकाव्य ही रहा है, यद्यपि प्रसादके अन्य काव्य-ग्रन्थोंपर भी सरसरी तौरपर यथास्थान दृष्टिपात किया गया है।

कामायनीके तो तीनोंही प्रमुख पात्रोंके व्यक्तित्व पर बर्गसां द्वारा प्रतिपादित 'जीवनशक्ति', फ्रायडकी 'कामशक्ति', शॉपेनहावरकी 'जिजीविषा', जुंगकी 'प्रेमशक्ति' और एडलरकी 'महानताकी इच्छा शक्ति' का प्रभाव स्पष्टतः देखा जासकता है।

यही नहीं, ज्याँ पॉल सात्रके अस्तित्ववादी बोधका



प्रभाव मनुके अपने अस्तित्व-संघर्षपर क्या कम है ? इसी कृतिके कुछ सर्गोंपर क्या मार्क्स और डार्विनका प्रभाव हम अनुभव नहीं करते ? स्वयं आचार्य शुक्ल तकने उक्त प्रभावकी ध्वनिकी अनुभव कियाथा । लेखिकाने उन सबको यथास्थान प्रमाणोंके साथ रेखांकित किया है । तब प्रसादको केवल मध्यकालीन आस्थाओंका रचनाकार कैसे कहाजा सकता है ? कामायनीके अन्तिम सर्गभी 'महानताकी इच्छा शक्ति' के परिणाम है न ?

इस ग्रन्थमें प्रूफ संशोधनकी कमजोरीसे अशुद्धियां भी कम नहीं है । हिन्दी और अंग्रेजीही नहीं, संस्कृतके दो श्लोकों तकमें यह बात देखी गयी है । यह अवश्य चिन्त्य है । फिर पुस्तकमें कागज भी दो तरहका प्रयुक्त है, जो ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थके प्रकाशनके अनुरूप नहीं है । यह ग्रन्थ तो शिक्षा विभाग उत्तरप्रदेश शासन, लखनऊकी आर्थिक सहायतासे प्रकाशित हुआ है, तो इसका प्रकाशन अधिक अच्छा होना चाहियेथा । फिर भी, यह सब गौण है ।

डॉ. सुपमा अरुण द्वारा प्रसाद-काव्यका, विशेष-तौरपर कामायनीका सर्वांगीण आकलन अवश्य हुआ है, यह निर्विवाद सत्य है । □

## ‘रागदरबारी’ का शैली वैज्ञानिक अध्ययन ?

लेखिका : डॉ. राधा दीक्षित

समीक्षक : डॉ. रामदेव शुक्ल

श्रीलाल शुक्लके प्रसिद्ध उपन्यास ‘रागदरबारी’ का शैली वैज्ञानिक अध्ययन श्रीमती राधा दीक्षितके पी-एच. डी उपाधिके लिए स्वीकृत शोधप्रबन्धका प्रकाशित रूप है । शैलीविज्ञानको आधार बनाकर इधर अनेक कृतियोंका विश्लेषण हुआ है । उसी क्रममें यह ग्रन्थ भी है । लेखिकाने शोध प्रबन्धको आठ अध्यायों में विभक्त किया है । पहले अध्यायमें शैली और शैली विज्ञानको बहुत अच्छी तरह समझाया गया है । इस विषयपर उपलब्ध अनेक पुस्तकोंकी सहायतासे शैलीकी महत्ताको रेखांकित किया गया है । वैदिक साहित्य और

प्रसिद्ध प्राचीन ग्रन्थोंके साथ-साथ देश-विदेशकी नयी सामग्रीका उपयोग भी किया गया है । शैलीकी अवधारणा, उसके उपकरण और वृत्ति, रीति, गुण वक्रोक्ति, ध्वनि, अलंकार, औचित्यके साथ उसकी तुलना करके अन्तमें डॉ. नगेन्द्रके शब्दोंमें शैलीके आधारभूत तत्त्वोंमें औचित्यके विधानको आवश्यक माना गया है । इसके बाद शैलीविज्ञानको परिभाषित-विश्लेषित किया गया है । ध्वनिविन्यास शब्दचयन, रूप-रचना, वाक्यविन्यास, अर्थविधानको, शैली वैज्ञानिक अध्ययनके आधार रूपमें स्थापित करनेके बाद इस विज्ञानकी सीमाके साथ इसका महत्व बताया गया है ।

दूसरा अध्याय है, ‘श्रीलाल शुक्ल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व’ जिसमें संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट रूपमें लेखक और उसकी कृतियोंकी परिचयात्मक प्रस्तुति है । अनुभव, सूक्ष्म दृष्टि और कल्पनाशीलताको श्रीलाल शुक्लमें विशेष रूपसे पहचानकर लेखिकाने उनकी कृतियोंका समीक्षात्मक परिचय दिया है ।

तीसरा अध्याय ‘रागदरबारीकी ध्वनिरचना’ में लय, अनुप्रास, अनुकार ध्वनिसमूह, रीतिवृत्ति, व्यक्ति-वैशिष्ट्यसूचक भाषण ध्वनियाँ, ध्वनि-चयन, ध्वनि-विचलन, ध्वनि-समानान्तरता, शीर्षकोंके अन्तर्गत प्रयोग दिखानेके बाद इस निष्कर्षपर पहुँचा गया है कि “सामान्यतः गद्यभाषामें ध्वनिकी दृष्टिसे शैली-वैशिष्ट्यकी गुंजाइश सीमित रहती है फिरभी ‘रागदरबारी’ में ‘यथोचित स्थानपर ध्वनिगत शैली-वैशिष्ट्यके प्रयोगसे भाषाकी अभिव्यंजनानमें श्रीवृद्धि हुई है ।” (पृ. ६७) ।

चौथे अध्याय, ‘रागदरबारीकी शब्दरचना’ में शब्दावलीका विशद विश्लेषण किया गया है । तत्सम, देशज विदेशी, पुनरुक्त शब्दोंके चयनके बाद चयन, विचलन और समानान्तरताके बहुत अच्छे उदाहरण छांटे गये हैं । यह अध्याय ‘रागदरबारी’ पढ़ चुकनेवालों के लिए विशेष मनोरंजक है क्योंकि इन उदाहरणोंके सहारे पूरे प्रसंग पाठकी आँखोंके सामने आ जाते हैं ।

‘रागदरबारीकी रूप-रचना’ पाँचवां अध्याय है जिसमें शब्दोंकी उन रूपगत विशेषताओंका अध्ययन किया गया है जिनसे अभिव्यंजना पुष्ट होती है । भावात्मक प्रत्यय, रूप-चयन, रूप-विचलन, वचन-विचलन, उपमान-विचलन, रूप-समानान्तरताके उदाहरण सावधानीसे ढूँढ़े गये हैं । अध्यायका निष्कर्ष है कि :

१. प्रका. : साहित्य भण्डार, ५० चाह चंद, प्रयाग-२११००३ । पृष्ठ : २५६; डिमा. ६१; मूल्य : १२५.०० रु. ।

‘प्रकर’—जनवरी ६२—१८



सन्दर्भित कृतिमें रूप-रचनाकी दृष्टिसे सामान्यतया असमासी और सरल रूपोंका सुयोग हुआ है।”

(पृ. १४५) ।

‘रागदरबारीकी वाक्य-रचना’ छठा अध्याय है।

इसमें संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, निपात, शब्द-क्रम, वाक्यबंध, अनुच्छेद, वाक्य-चयन, वाक्य-विचलन, वाक्य-समानान्तरताके उदाहरणोंके अध्ययनसे निष्कर्ष निकलता है कि “इन शैलीय उपकरणोंके प्रयोगसे भाषा में गम्भीरता व प्रभावशीलता आयी है तथा अभिव्यंजनाकी शक्ति संवर्धित हुई है।” (पृ. १६५) ।

सातवां अध्याय है, ‘रागदरबारीका अर्थ विधान।’ इसमें पर्यायवाचिता, आवृत्ति, शब्दशक्ति, अर्थगुण, अर्थालंकार, मुहावरा, अर्थ-चयन, अर्थ-विचलन, अर्थ-समानान्तरता, शीर्षकोंके अन्तर्गत अध्ययन किया गया है। आठवें अध्यायमें रागदरबारीमें अप्रस्तुत-विधान साम्य और सादृश्यमें सूक्ष्म अन्तर करते हुए विवेचित है। अप्रस्तुत विधानके सभी प्रयुक्त रूपोंकी बारीकीसे छांट लेनेके बाद कुछ नवीन अप्रस्तुतोंकी ओर संकेत किया गया है। कथ्यके सम्प्रेषणपर अप्रस्तुत के प्रभावको रेखांकित किया गया है।

अध्ययनका निष्कर्ष उपसंहारमें है। संक्षिप्त उपसंहारमें सभी अध्यायोंके निष्कर्षोंका सार एकत्र कर दिया गया है। अन्तमें शैलीके सम्बन्धमें लेखिकाके अध्ययनका परिणाम बहुत रोचक रूपमें उपस्थित हुआ है। वे लिखती हैं कि, “रागदरबारीमें अनेकानेक नव्य प्रयोग किये गये हैं। किसी शैली विशेषके प्रति आग्रह का अभाव इस उपन्यासकी एक प्रमुख विशेषता है। इसमें वाद विवाद, संवाद, स्वप्न, पत्रशैली, रिपोर्ताज, भाषण, उद्घोषणा, लोककथा, वास्तविक प्रसंग, गीत, श्लोक, उद्धरण आदिके माध्यमसे कथ्यको प्राणवान् बनाया गया है। इस प्रकार ‘रागदरबारी’ शैली-विज्ञान की दृष्टिसे विलक्षण कृति है। परम्परागत शैलीसे हटकर अनेकानेक नव्य प्रयोगोंसे युक्त व्यंग्य-विधाकी यह महत्त्वपूर्ण औपन्यासिक कृति है।” (पृ. २५०) ।

शैली विज्ञानकी मूल स्थापनाओंके साथ उपर्युक्त निष्कर्षको रखकर देखना अतिरोचक हो सकता है। हिन्दी शोधकी वर्तमान स्थिति और शैलीविज्ञानकी अपनी सीमाओंके होते हुए भी समीक्ष्य कृतिमें लेखिकाका प्रयत्न विस्तार प्रशंसनीय है। यह पुस्तक उन्हें भी रोचक लगेगी जिन्होंने ‘रागदरबारी’ नहीं पढ़ा है पर उन्हें इसका विशेष रस मिलेगा जो ‘रागदरबारी’ पढ़ चुके हैं। □

## छायावादी काव्यमें कर्म चेतना?

लेखक : डॉ. कन्हैयालाल

समीक्षक : डॉ. विद्या केशव चिटको

“सूर सूर तुलसी ससी, उड़गन केशव दास  
अत्रके कवि खद्योत सम, जँह तँह करत प्रकास”

ये पंक्तियां अनेक वर्षों तक हिन्दी साहित्य जगत्में व्याप्त रहीं थीं। सूरदास और तुलसीदासकी तुलनामें नये कवियोंको जँह तँह करत प्रकास कहकर छोड़ देने का भी प्रघात हो गया था, कालान्तरमें इसका महत्त्व शून्य होगया। यह स्थिति न्यूनाधिक मात्रामें छायावादी काव्यके सम्बन्धमें भी रही है। “ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे” पंक्तियोंके कारण छायावादी काव्यको पलायनवादी काव्य कहकर उसे यथार्थ जीवन जगत्से अलग समझा जाने लगा। डॉ. कन्हैयालालने “छायावादी काव्यमें कर्म-चेतना” नामक पुस्तक में इस विचारको निरस्त्रकर इस विचारकी प्रतिस्थापना की है कि छायावादी कवियोंमें मंगलमय वर्तमान और सम्भावना सम्पन्न भविष्यके लिए मानवकी कर्मनिष्ठा और कर्ममय जीवनके प्रति असीम सम्मान का भाव रहा है। छायावादी कवियोंके काव्यपर जो मूलभूत आरोप किया जाता है, उससे असहमति दर्शति हुए लेखकने तथ्य प्रस्तुत किये हैं कि छायावादी कवि केवल कल्पनाके रम्य जगत्में विचरण करनेवाले नहीं थे अपितु—“कर्मयज्ञसे जीवनके सपनोंका स्वर्ग मिलेगा, / इसी विपिनमें मानसकी आशाका कुसुम खिलेगा /” के हिमायती थे।

पुस्तकमें सात अध्याय हैं। प्रथम अध्यायमें छायावादी काव्यकी पार्श्वभूमिमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, एवं साहित्यिक पृष्ठभूमिका विवेचन करते हुए छायावादी काल तक पहुंचनेके लिए हिन्दी साहित्यको किन वातचक्रोंसे गुजरना पड़ा था, इसका विवेचन है।

द्वितीय अध्यायमें “कर्म” शब्दकी व्याख्या की गयी है। वह कर्म या क्रिया जिसका करना कर्तव्य हो, कर्म

१. प्रका. : कौस्तुभ प्रकाशन, ३४ सौभाग्यनगर, ६ नं. नाकेके पास, लाम रोड, नासिक रोड-४२२१०१ ।  
पृष्ठ : २३६; डिमा. ६१; मूल्य : १२५.०० रु. ।



कहलाता है। इस कर्म शब्दकी गीतामें कीगयी व्याख्या के साथ कर्मकी अवधारणा—कर्मशीलता ही मानव जातिका मूलमंत्र है और मनुष्य तभी विकासकर सकता है जब वह अपनी मानवीय शक्तिको पहचानकर कर्मरत होता है। कर्म जीवन है, निष्क्रियता मृत्यु। इसी कारण भारतीय धर्म दर्शनमें कर्मको ही ईश्वर माना गया है। श्रीकृष्णने गीतामें कर्म, ज्ञान और भक्ति मार्गों का समन्वयकर निष्काम कर्मका प्रतिपादन किया है तथा वेदोंमें कर्मवादकी चर्चा है, उपनिषदोंमें भी व्यापक रूप से इस कर्मकी महत्ता बतायी गयी है जिसकी विस्तृत चर्चा द्वितीय अध्यायमें है। वस्तुतः कर्मकी अनिवार्यता स्वयंसिद्ध है। भारतीय विचारधारा में जितना अधिक प्रभाव अकेले कर्मसिद्धान्तका है उतना किसीभी दूसरी अवधारणाका नहीं। भारतीय संस्कृतिके सभी अंगों—दर्शन, साहित्य और कलापर इसका प्रभाव स्पष्ट है।

कर्म शब्दकी व्याख्याके पश्चात् चेतनाके अर्थको स्पष्ट किया गया है। चेतनाका शाब्दिक अर्थ है—बुद्धि, मनोवृत्ति, ज्ञानात्मक मनोवृत्ति, स्मृति, सुधि। आत्म-स्वरूपकी प्राप्तिही चेतना है। प्रत्येक क्रियाशील शक्ति में चेतना विद्यमान रहती है। यह एक अनवरत प्रक्रिया है, मनुष्य समाज और काल (समय) से कभी अलग नहीं की जा सकती। यही कारण है कि इच्छा, संवेदना और सजग क्रिया सम्पन्न संरचनाही चेतना मानी जाती है। समस्त विश्व एक अखण्ड चैतन्यसे, चेतन चिरंतन है, यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो मानव अस्तित्वके सहज स्वरूपके उद्घाटनमें सहायक है।

चेतनाको मनोवैज्ञानिकोंने एक अखण्ड सतत प्रवाह-शील धाराके रूपमें माना है। जिसप्रकार जलधारा में लहरियां तथा तरंगें एक दूसरेमें आलोड़ित-विलोड़ित होते हुए एक अखंड जलधाराका निर्माण करती हैं उसी प्रकार चेतनाके विभिन्न स्पन्दन एक दूसरेमें प्रवाहित तथा मिश्रित होकर चेतनाकी अखंडित सातत्यपूर्ण धाराका निर्माण करती हैं।

कर्म और चेतनाके अभावमें सृष्टिकी कल्पना असम्भव है। कर्मका औचित्य विचार चेतनाकी उपस्थितिमें ही संभव है। तात्पर्य यह है कि यदि चेतना है तो अपकर्मका होना असम्भव है क्योंकि चेतना कभी अपकर्मका समर्थन नहीं करेगी।

मानव जीवनमें कर्मसाधनाका अभाव जीवनके सभी स्तरोंको निगतिगामी बना देता है यही कारण है

‘प्रकर’—जनवरी ६२—२०

कि मानवीय मूल्यों और मानवीय कल्याणके प्रति प्रति-श्रुत रचनाकार अपने काव्य प्रणयनकी प्रक्रियामें भाव सौन्दर्यकी अभिव्यञ्जनाके साथही उसके क्रियात्मक और व्यावहारिक स्वरूपके प्रति भी सचेत रहता है। काव्य प्रक्रियामें कर्मकी चेतना उसकी अनिवार्य स्थिति है इसी कर्मकी विवेचना इस अध्यायमें है। छायावादी कवि, कर्मके माध्यमसे ही आत्माके विराटत्वकी ओर संकेत करते हैं। त्यागका आशय कर्मका नहीं अपितु अहं भावके त्यागसे जुड़ा हुआ है और यही तक पलायनकी सार्थकता है।

“जीवनके नियम सरल हैं

पर है चिर गूढ़ सरलपन

है सहज मुक्तिका मधु क्षण

पर कठिन मुक्तिका बंधन।”

यह बंधनभी फलकी तृष्णाके कारण नहीं है। महादेवी तो कर्मकी वेदीपर स्वयंको अर्पित करनेके लिए मिटनेका ही अधिकार मांगती हैं—

“रहने दो हे देव अरे यह

मेरे मिटनेका अधिकार।”

निरालाने भी “रामकी शक्ति पूजा”, “सरोजस्मृति” “दान”, “तोड़ती पत्थर”, आदि अनेक कविताओंमें कर्म सौन्दर्यका चित्रण किया है। कामायनीमें जिस नये संसारकी कल्पना की गयी है उसके मूलमें ऐसीही पूर्ण काम मानवकी कल्पना है। जयशंकर प्रसादने आधुनिक विज्ञानको कर्मवाद माना है। उन्होंने ज्ञान, कर्म और भावके समन्वयमें ही जीवनकी सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि समझी। इस प्रकार छायावादी कविता पढ़ते समय कर्मके प्रति आस्था बारम्बार प्रकट होती है इसे उदाहरण सहित प्रमाणित करनेका प्रयास द्वितीय अध्यायमें हुआ है।

तृतीय अध्यायमें कर्मके माध्यमसे प्रभावित सृष्टि के कुछ महत्वपूर्ण आयामोंपर विचार किया गया है। कर्म और प्रकृति, कर्म और जीवन, कर्म और सेवा, कर्म और त्याग, कर्म और भोग, कर्म और मुक्ति, कर्म और फल, कर्म और आनन्द—को विश्लेषित करते हुए प्रसाद, पंत, निराला और महादेवीके काव्यमें उद्धरण प्रस्तुतकर इन विचारोंकी पुष्टि की गयी है।

सत् और असत् दो प्रकारकी प्रवृत्तियां मानवको संचालित करती हैं। सत् प्रवृत्तिके अनुसार किया गया कार्य निश्चयही मानव कल्याणमें सहायक होता है



जबकि असत् प्रवृत्तिसे प्रचालित कार्य प्रायः अमानवीय तथा अनैतिक होते हैं। निष्काम कर्मका एक रूप है सबमें परमात्माको व्याप्त समझ सबकी सेवा करना। कामायनीमें प्रसाद इसी धारणाको व्यक्त करते हैं—

“सबकी सेवा न परायी

वह अपनी ही सुख संसृति है

अपना ही अणु अणु कण कण

द्वयता ही तो विस्मृति है।”

छायावादी कवियोंने अपने काव्यमें निष्काम कर्म को निरन्तर वरीयता प्रदान की है। उनके अनुसार निष्काम कर्मही हृदयको विरज और विशुद्ध बनाने तथा आत्माके चरम उत्थानका प्रथम साधन है। निष्काम कर्मके द्वाराही मनुष्यकी लोकमंगलधर्मी और उत्सर्जनशील प्रवृत्तियोंका विकास होता है। छायावादी कवियोंने कर्मशील जीवनमें निष्काम भावको मानवकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि और आत्मोत्थानकी चरम प्रतीति के रूपमें स्वीकार किया है। जयशंकर प्रसादके “कानन कुसुम” में ‘कमल’ के माध्यमसे यह सिद्ध किया गया है कि सात्त्विक भावसे कर्म करनेपर कर्मही मुक्तिका साधक हो जाता है—

“मनुष्य तिलिप्त होवे कैसे

सुपाठ तुमसे ये मिल रहा है

उन्हीं तरंगोंमें भी अटल हो

जो करना विचलित तुम्हें चाहतीं।”

इसी प्रकार कामायनीमें चिन्ता तथा आशा सगंके सारे क्रियाकलाप मनुकी सात्त्विक वृत्तिका परिचय देते हैं।

सात्त्विक कर्म, तामसी कर्म, राजसी कर्म, व्यावहारिक कर्म आदिका महत्त्व तीसरे अध्यायमें विवेचित है और प्रतिपादित किया गया है कि कर्मोंके विविध रूपोंको छायावादी कवियोंने जाना और जीया था। निरालाकी “जागो फिर एक बार”, “कुरुरमुत्ता”, आदि कविताएं ऐसी हैं जिनमें व्यावहारिक कर्मके विविध रूप अभिव्यंजित हैं। महादेवीके काव्यका मूलस्वर आध्यात्मिक है तथापि मानव जीवनमें विविध स्थितियोंका समावेश उसमें कुशलतापूर्वक किया गया है। वे मानवमात्रमें करुणा, संवेदना, सहानुभूति तथा सहनशीलता आदिका उपदेश देकर उसके व्यावहारिक कर्मकी मर्यादा निश्चित करती हैं।

कर्मकी व्यापकता अनन्त है। कर्मही जीवनका

लक्षण है। कर्मके माध्यमसे ही मानव अपने अस्तित्व को बनाये रख सकता है। कर्मकी व्याप्ति असीम है अणुसे ब्रह्म तक व्याप्त कर्मका यह रूप छायावादी कवियोंके काव्यमें किस प्रकार व्याप्त है इसका विस्तार से वर्णन पंचम अध्यायमें किया गया है। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—

“फिर गीता गीत और गाजे  
रथपर अर्जुन जैसा राजे।”

और महादेवीकी—

“अलि मैं कण कणको जान चली

सबका क्रंदन पहचान चली

अणु अणुका कंपन जान चली

प्रतिपगको कर लयवान् चली।”

आदि रचनाओंमें कर्मकी अनिवार्यताका अनुगमन कर जगत्को प्रतिपल प्रतिक्षण कर्म करनेकी शिक्षा दी है। यहां यह भी स्पष्ट किया गया है कि कर्म, आत्मपरिष्कारका साधन भी है। कामायनीकी श्रद्धा इसी व्यापक भावसे प्रेरित होकर मनुको कर्मरत होनेकी शिक्षा देती हुई कहती है—

“बनो संसृतिके मूल रहस्य

तुम्हींसे फैलेगी यह बेल।”

छायावादी कवियोंके काव्यमें आत्म-परिष्कारको जीवनके चरम लक्ष्यके रूपमें स्वीकार किया गया है। इसी अध्यायमें कर्मको बहुमुखी विकासका आधारभी माना गया है। कर्मके मूलमें दृढ़ आत्मविश्वासका होना विकासशीलताके लिए अत्यन्त आवश्यक है। महादेवी जीको अपनी क्षमता-शक्तिपर पूर्ण विश्वास है इसी-लिए वे कहती हैं—

“पंथ रहने दो अपरिचित

प्राण रहने दो अकेला

अन्य होंगे चरण हारे।”

कर्म, जीवनकी चरम सार्थकता है। कर्मही पूजा है, कर्मही योग है और कर्मही काव्य। महादेवी वर्मा का काव्य आध्यात्मिक कर्म साधनाका विस्तृत आख्यान है। उनके काव्यमें चरमसिद्धि का आधार आदर्श कर्मों के अनुसरणको ही माना गया है। “अन्य होंगे चरण हारे” में अपने निश्चित कर्मके प्रति वे अपने संकल्पको व्यक्त करती हैं।

षष्ठ अध्याय जिसका शीर्षक “छायावादी काव्यः पलायन बनाम कर्म-चेतना” है, लेखककी अन्वेषक

‘प्रकर’—माघ १९४८—२१



दृष्टिका प्रतिरूप है। इस अध्यायमें लेखकने अपने अभिमतको प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि छायावादी काव्य पलायनवादी विचारका काव्य नहीं रहा बल्कि इस काव्यमें राष्ट्रीय जागरणकी प्रेरणाका स्वस्थ रूप उपस्थित रहा है। पन्त, प्रसाद, निराला और महादेवी के काव्यमें जीवन और जगत्के प्रति अटूट निष्ठा भाव रहा है। वे मानवके अनन्त सामर्थ्यमें और उसकी सम्भावनामें विश्वास करते रहे हैं। वे मानते रहे हैं कि मनुष्य अपने वर्तमान जीवनमें जहाँ अतीत कर्मोंके फल को अनिवार्य रूपसे भोगता है वहीं वह भावी जीवनका अनुष्ठान भी करता है। ये कवि आस्थावादी और मानवतावादी विचारके पुरस्कर्ता थे।

सप्तम अध्याय उपसंहारका है जिसमें लेखकने पुस्तकमें प्रतिपादित विचारोंका समाहार किया है। लेखकने पुस्तकमें प्रस्तुत उदाहरणों द्वारा प्रमाणित कर दिया है कि छायावादी काव्यके आधारस्तम्भ कवियोंकी कविताओंका परीक्षण करनेपर कहीं भी यह पलायनवादी सुर अलापता नहीं दिखायी देता। लेखकने उद्धरणोंसे ध्यान खींचा है कि छायावादी कवियोंका काव्य केवल गगनविहारी नहीं—निष्काम कर्मकी श्रेष्ठता प्रतिपादित करनेवाला काव्य है। वस्तुतः छायावादी कवियोंका जीवन-दर्शन, त्यागमय कर्मकी श्रेष्ठता एवं लोकोपकारी उच्चादर्शोंका समर्थक रहा है।

मुख-पृष्ठका चित्र विषयकी अवधारणाको सहज ही स्पष्ट कर देता है। मात्र छायाके माध्यमसे चित्रित पुरुषकी बंधी हुई भुजाएं एवं उठे हुए हाथ “जिसमें बल है जितना” का प्रयोग करनेका आह्वान देता है। दिशाको ढूंढती हुई आँखें कर्म-पथकी अनन्त विस्तृति का संकेत देती हैं—

“इस पथका उद्देश्य नहीं है, श्रान्त भवनमें टिक रहना—

किन्तु पहुंचना उस सीमापर जिसके आगे राह नहीं।”

पुस्तक छायावादी कवियोंके काव्य-दर्शनके लिए एक नयी दिशा एवं दृष्टि देती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्लने केशवदासके सम्बन्धमें केवल एकही पंक्ति “केशव को कवि-हृदय नहीं मिला था” लिखी थी, जिसका खण्डन डॉ. हीरालाल दीक्षित एवं डॉ. विजयपाल सिंह ने केशवका पुनर्मूल्यांकनकर साहित्य जगत्में केशवको उचित स्थानका अधिकारी बनाया। इसी प्रकार प्रस्तुत

‘प्रकर’—जनवरी ६२—२२

पुस्तक “छायावादी काव्यमें कर्म-चेतना” छायावादी कवि और उनके काव्यका पुनर्मूल्यांकन करनेकी दृष्टिसे एक नयी दिशा संकेतित करती है। □

## बालशौरि रेड्डीका श्रौपन्यासिक कृतित्व?

लेखक : डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन

समीक्षक : डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

हिन्दीतर क्षेत्रके लेखकों तथा उनके प्रशंसकों द्वारा प्रायः यह शिकायत की जाती है कि हिन्दी क्षेत्रके आलोचक-लेखक अपने क्षेत्रसे बाहरके रचनाकर्मके साथ प्रायः न्याय नहीं करते, कभी यह शिकायत न्याय-संगत होती है और कभी मात्र उत्साहातिरेकमें कर दी जाती है। विस्तारसे बात करनेपर यह तर्कभी सुननेको मिलता है कि आखिर हिन्दी क्षेत्रसे बाहर रहकर सृजन करनेवालोंकी कठिनाइयोंको ध्यानमें रखा ही जाना चाहिये, और उन्हें एकदम हिन्दी क्षेत्रके रचनाकारके बराबर रखकर जाँचना तो उनके साथ अन्याय करना ही होगा। यह समीक्षक मानता है कि सृजनकी परख मात्र सृजनके आधारपर होनी चाहिये। यदि किसी क्षेत्र विशेषमें रहकर सृजन करनेकी कुछ कठिनाइयाँ हैं तो उनपर अलगसे बात कीजानी चाहिये। प्रान्त अथवा रचना-क्षेत्रके आधारपर लेखनको बांटकर देखनेके अपने खतरे हैं और ये खतरे अन्ततः सृजनको क्षतिही पहुंचाते हैं, अतः उचित यही प्रतीत होता है कि सृजनका मूल्यांकन करते समय मात्र सृजन सामने रहे। यदि हम ऐसा न करें और हिन्दीतर क्षेत्रके सृजनके प्रति अपेक्षा अधिक उदारता बरतकर उसकी प्रशंसाही करते रहें तो आलोचकके रूपमें हमारी विश्वसनीयता तो आहत होगी ही, हमारी आलोचनासे उस सृजनको जो लाभ हो सकता है, वह भी नहीं हो पायेगा।

यह संक्षिप्त टिप्पणी करना मुझे इसलिए आवश्यक लगा कि आज हिन्दीमें आलोचकोंका एक बड़ा वर्ग है जो उत्साहवर्धनके नामपर हिन्दीतर क्षेत्रके हर स्तरके सृजनको अपनी ‘वाह-वाह’ से कृतार्थ किये जा रहा है। समीक्ष्य पुस्तककी भूमिकामें ही डॉ. जैनने भी

१. प्रका. : साहित्य भवन प्रा. लि.; ६३ के. पी. कबकड़ रोड, प्रयाग-२११००३। पृष्ठ : १०४; डिमा. ६१; मूल्य : ३५.०० रु.।



अपनी इसी दृष्टिका पूरा परिचय दे दिया है। आपने स्पष्ट शिकायत की है कि सर्वश्री आरिगपूड़ी और बाल शौरि रेड्डीने आन्ध्र में रहकर भी हिन्दी में खूब लिखा है, परन्तु “इन दोनों लेखकों को उत्तर भारत में प्रायः नहीं के बराबर जाना जाता है, या फिर यदा-कदा संकेत करते या प्रोत्साहन पुरस्कार देकर किनारा कर दिया जाता है, यह दिवान्धता कहां तक श्रेस्कर है ?” दिवान्धता की सराहना कोई नहीं करेगा, पर दिवान्धता हो सही। ये दोनों लेखक हिंदी क्षेत्र में भी खूब जाने जाते हैं और यथावसर इनके लेखन की चर्चा भी हुई है परन्तु इन्हें बहुत अधिक प्रशंसा यदि नहीं मिली है तो उसका कारण उनके लेखन में भी ढूँढ़े जाने चाहिये। इस दृष्टि से मुझे डॉ. जैन का यह कार्य सराहनीय लगा है कि उन्होंने श्री गालशौरि रेड्डी के समग्र औपन्यासिक कृतित्व को एक स्थान पर प्रस्तुत कर उसपर विचार का अवसर प्रदान किया है।

बालशौरि रेड्डीने अनेक विधाओं में सृजन किया है और हिन्दी में १९५१ से १९७१ तक उनके १२ उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से एक उपन्यास पौराणिक, छह सामाजिक, पांच ऐतिहासिक तथा एक ऐतिहासिक-सामाजिक है। ऐतिहासिक उपन्यासों में रेड्डीजी ने आंध्र प्रदेश के मध्यकाल पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया है।

डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन ने समीक्ष्य पुस्तक में अलग-अलग अध्यायों में विचार किया है। प्रत्येक अध्याय में पहले संबद्ध उपन्यास का कथा-सार दिया गया है और फिर उस उपन्यास के प्रमुख चरित्रों पर टिप्पणियाँ हैं। जैसा मैंने प्रारंभ में संकेत किया, आलोचक का स्वर प्रशंसा का है, प्रोत्साहन का है। ‘लकुमा’ जिसे वे रेड्डी जी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास मानते हैं, के लिए उनके शब्द हैं : ‘यह उपन्यास मूलतः ऐतिहासिक है किन्तु अपने विस्तार में नवोन्मेषी कल्पना, स्पृहर्णाय रोमांस, नृत्यकला, राजनीति एवं सामाजिक गतिविधियाँ भी संजोये हुए हैं।’ आगे वे लिखते हैं : “इस कृति में आचार्य चतुरसेन कृत ‘वैशाली की नगरवधू’ की सौन्दर्य समन्वित कला और प्रेम प्रवाह को, भगवतीचरण वर्मा की ‘चित्रलेखा’ के चित्त चमत्कारी प्रेम-प्रसंगों और संवादों को तथा वृन्दा-वनलाल वर्मा कृत ‘मृगनयनी’ के सहज सम्मोहक शीर्ष

रोमांस को एक साथ लघु किन्तु पुष्कल एवं प्रभावक रूप में देखा-सराहा जा सकता है।” प्रशंसा की अति हुई है ‘यह बस्ती ये लोग’ के सन्दर्भ में, फिल्मिकरण के लिए रचित इस उपन्यास के लिए डॉ. जैन का कथन है : ‘जब कोई कृति फिल्म का ध्यान रखकर रची जाती है तो उसमें हृदयात्मकता, चटपटापन, विविधता और कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण कृत्यों को आयोजित किया जाता है। उसमें आम आदमी की पसन्द का ज्यादा ध्यान रखा जाता है अतः कथानक को द्रुत, रंगीन एवं आशुग्राह्य बनाया जाता है... इस कृतिको श्री उपेन्द्रनाथ अशक के ‘शहर में घूमता हुआ आईना’ की परम्परा में रखा जा सकता है।’ आलोचक को प्रशस्त शब्द बहुत प्रिय है, जैसे ‘धरती मेरी माँ एक प्रशस्त एवं अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यास है’ या ‘प्रोफेसर एक प्रशस्त सामाजिक उपन्यास है’ या ‘दावानल प्रशस्त उपन्यासकार श्री रेड्डी का एक सशक्त ऐतिहासिक उपन्यास है’ या ‘स्वप्न और सत्य प्रशस्त उपन्यास श्री रेड्डी का एक विशिष्ट मौलिक सामाजिक उपन्यास है’ आदि।

यह कहना आवश्यक लग रहा है कि एक आलोचक से जिस तटस्थता की सहज अपेक्षा की जाती है, वह डॉ. जैन के लेखन में प्रायः नहीं है। अपनी प्रशंसा में वे अधिक ही उदार रहे हैं। हाँ, ‘प्रोफेसर’ और ‘वीर केसरी’ की भाषा की उन्होंने अवश्य आलोचना की है। प्रशंसा, लगता है डॉ. जैन के स्वभाव का एक मुख्य अंग है। न केवल रेड्डीजी के लेखन की, अपितु उस विधा की प्रशंसा करने में भी वे अति कर गये हैं जिसे रेड्डीजी ने मुख्यतः अपनाया है। भूमिका में उपन्यास विधा को ऊँचा उठाने के क्रम में वे कविता पर गलत प्रहार तक कर बैठे हैं। उपन्यास की तुलना साहित्य की अन्य विधाओं से करते हुए उन्होंने अन्य सभी विधाओं को कमजोर बताया है। कविता पर उनकी टिप्पणी है : ‘काव्य गलदश्च भावुकता रीढ़-रंजित उत्तेजना एवं अलंकारों की वन-वीथियों में उलझ जाने के कारण मानस-जीवन की ज्वलंत एवं मूल-भूत समस्या का सीधा साक्षात्कार नहीं कर पाता,’ ये पंक्तियाँ १९६१ में प्रकाशित पुस्तक में पाकर आश्चर्य ही होता है। कहीं डॉ. जैन कवि-सम्मेलन की काव्य की बात तो नहीं कर रहे हैं; कमसे कम आजादी के बाद का कविता पर तो ये पंक्तियाँ लागू होती नहीं।

पुस्तक श्री रेड्डी के समग्र औपन्यासिक कृतित्व से



हमारा परिचय कराती है, यह इसकी एक बड़ी उपलब्धि है, पर यदि डॉ. जैन इन सारे उपन्यासों पर एक साथ भी कुछ बात करते, इनके कथ्य शिल्प आदिका समग्र विश्लेषण करते और इस कालके समग्र हिन्दी औपन्यासिक परिदृश्यके परिप्रेक्ष्यमें इन्हें परखनेका

प्रयास करते तो इस कार्यकी महत्ता और बढ़ जाती। फिरभी, हिन्दीतर क्षेत्रके एक महत्त्वपूर्ण रचनाकारके एक विधाके सारे कृतित्वको एक साथ प्रस्तुत करनेके इस श्रमसाध्य कार्यके लिये डॉ. जैन बधाईके पात्र हैं।

□

## उपन्यास

### कहानी एक गांवकी?

[साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत पंजाबी कृति  
'कोठे खड़कसिंह' का हिन्दी अनुवाद]

उपन्यासकार : रामसरूप अणखी

अनुवाद : सुदीप

समीक्षक : मधुरेश

रामसरूप अणखी पंजाबीके एक महत्त्वपूर्ण लेखक हैं जो हिन्दी पाठकोंके लिए भी अपरिचित नहीं हैं। उनकी कहानियोंमें आमतौरपर पंजाबके जन-जीवनका अंकन हुआ है परन्तु हिन्दीमें उनकी कहानियोंकी चर्चा विशेषतया स्त्रियोंके उत्पीड़नके संदर्भमें हुई जिनमें यौन-सम्बन्धोंकी भूमिका भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। अब साहित्य-अकादमी द्वारा पुरस्कृत उनका महत्त्वाकांक्षी उपन्यास 'कोठे खड़कसिंह' हिन्दीमें 'कहानी एक गांव की' के नामसे आया है।

'कोठे खड़कसिंह' पंजाबके मालवा क्षेत्र जिला भटिंडामें एक गांव है जिसे केन्द्रमें रखकर रामसरूप अणखीने एक किसान परिवारकी तीन पीढ़ियोंकी कहानी प्रस्तुत की है। उपन्यासका काल देशकी स्वाधीनताके पूर्व सन् '४० से प्रारम्भ होकर सन् '५०-'५१ तक

१. प्रका. : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : ४३६; डिमा. ६०; मूल्य : १२५.०० रु.।

क२—जनवरी '६२—२४

जाता है। स्पष्ट रूपसे कहानीका यह सुविस्तृत फलक, काल-खण्ड और पात्र-संख्या दोनोंही दृष्टियोंसे, समाज में घटित बहुविध परिवर्तनको अंकित करनेकी इच्छा का परिणाम है। अपने उपन्यासकी रचना-वस्तुकी ओर संकेत करते हुए अणखीने लिखा है : 'बड़े केनवसका उपन्यास लिखनेके लिए दिमागमें कहानीकी एक लड़ी मैंने पकड़ली।

आजादी मिलनेसे कोई बारह-तेरह वर्ष बाद पंजाब के गांवोंमें जाट-किसानोंकी एक नयी श्रेणी सिर उठाने लगी। खेतीमें नयी योजनाओंके अनुसार जोभी सरकारी सुविधाएं मिलतीं, सब इसी श्रेणीके घरोंमें पहुंच जातीं। नये बीज, बनावटी खादें, कीटनाशक दवाइयां और बड़े-बड़े कर्जका लाभ तथा 'सबसिडी' का धन इन्हीं लोगोंके पास जाता था। वे राजनीतिमें भी पैर रखने लगे। राज्य सरकार कांग्रेसकी होती तो वे चिट्ठी पगड़ियां बांध लेते और अगर सरकार अकालियोंकी बनती तो पगड़ियोंका रंग नीला हो जाता। वही आदमी। गांवके साहूकारका कामभी इन्होंने संभाल लिया। परिणाम यह कि छोटेकी जमीनें इन धनी किसानोंके पास इकट्ठी होने लगीं। यह धनी किसान जागीरदारका दूसरा रूप लेकर सामने आने लगा। उनका पांव शहरकी ओर गया तो उन्होंने बुलुंवा दाव-पेंच भी सीख लिये। उनके पास ट्रैक्टर आ चुका था। राजनीतिक भ्रष्टाचारकी उत्पत्ति होने लगी। दूसरी ओर जमीन-जायदादके लालचमें नैतिक मूल्य टूटने लगे। स्वतन्त्रताके बाद यह जो सब हुआ



था और हो रहा था इसे मैंने अपनी आंखोंसे देखा और खुद भोगा था। (भूमिका पृ. ६)। यह उद्धरण कुछ अधिक बड़ा हो जानेपर भी उपन्यासकी अनेक विशिष्टताओंपर ठीक-ठीक प्रकाश डालनेकी दृष्टिसे आवश्यक है। इस संदर्भमें पहली बात तो यह कि पंजाब के एक क्षेत्र विशेषके एक गांव, और भौगोलिक दृष्टि से उससे जुड़े कुछ और गांवोंके माध्यमसे, जिस संक्रान्ति युगकी कहानी इसमें कही गयी है, वह पंजाबका ही सत्य न होकर प्रायः भारतके सभी गांवों और बढ़ते हुए पूंजीवादकी कहानी है। गांवका छोटा किसान दोहरी मारसे मरा है—एक ओर सामन्ती समाजकी अच्छाईयां नष्ट होजानेके बादभी उसकी बुराईयोंसे वह मुक्त नहीं हो सका है तो दूसरी ओर उभरते हुए पूंजीवाद और बुजुर्गों की तौर-तरीकोंने भी उसके साथ बेहद निर्मम व्यवहार किया है।

इस प्रकार 'कोठे खड़कसिंह' पंजाबका एक गांव ही नहीं है, वह पूरा पंजाब है। जिन चालीस वर्षोंके कालखण्डपर वह फैला हुआ है वह फैलाव पंजाबकी सीमाओंका अतिक्रमण करके एक प्रकारसे समूचे देश को अपनी मारमें ले लेता है। इस प्रकार पंजाबके एक गांवकी कहानी होनेपर भी, अपनी व्यंजना और व्याप्तिमें यह पूरे देशका सत्य अपनेमें समेटे हुए है। चालीस वर्षोंका यह पूरा काल-खण्ड राजनीतिक अपचार, मानवीय सम्बन्धोंके ह्रास और पूंजीके प्रति बेहिंसाव भाकर्षणका काल रहा है। इस पृष्ठभूमिमें ही 'कोठे खड़कसिंह' मनुष्यकी संवेदना और राग तत्त्वके बचाव की लड़ाईका एक अंग है और इस लड़ाईके लिए संजोयी गयी ऊर्जाके स्रोतोंकी खोजही, एक उपन्यासके रूपमें, उसका मुख्य सरोकार माना जा सकता है।

उपन्यासका आरम्भ, श्राद्धोंमें सेलबराह गांवमें बहन बहनोंकी यादमें लगनेवाले मेलेसे होता है। बुरजगिलां, भाईरूपा, और सेलबराह गांवोंके बीचमें कोठे खड़कसिंह पड़ता है। इसी मेलेसे लौटकर कोठे खड़कसिंहमें कहानी सन्ध्याके धुंधलकेमें पड़नेवाली परछाईयोंकी तरह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगती है। केहर, गिंदर, हरनामी, श्यामो, अरजन, बंतो, झण्डा, फौजी मिलखासिंह, स्वामी प्रागदास आदि अनेक पात्र, एकके बाद एक सामने आते-जाते हैं। इन ढेर सारे पात्रोंमें से सबको अलग-अलग स्पष्ट रूपसे पहचानना, और उस पहचानको मनमें टिकाये रखना, किसी कदर

मुश्किल है। हरनामी गिंदरकी औरत है जो श्यामोके उकसानेपर मेलेमें मलंग बनी घूमती रही थी। हरनामीके गिंदरके साथ 'बैठने' के पूर्वके उसके जीवन के बहाने स्वतंत्रतापूर्व पंजाबकी एक विहंगम झांकी दे दी गयी है जिसमें पंजाबमें घटित सामाजिक आर्थिक परिवर्तनोंके संकेतभी हैं। पात्रोंकी विशिष्टताओंका वर्णन लेखक अपनी ओरसे भी करता है और दूसरे पात्रों की टिप्पणियों द्वारा भी। नाजर पाखरसिंहको 'चूहा मूछे' वाला आदमी कहता है। वही आस-पासके इलाके में जनता द्वारा परागदासके पूजे जानेके बावजूद, उसके पाखंडको उजागर करता है। यहां निम्न मध्यवर्गीय किसानोंमें भी अपने 'वर्ग' हैं जिसमें पैसे और हैसियत के अनुसार सारा काम होता है। हरनामीके चक्करमें अरजनका कत्ल नाजर करता है, भाईरूपाके फीचर और कैलकी सहायतासे, जिसमें वह अपने नाई जंगीराको भी शामिल कर लेता है। बादमें हरनामी अपने सारे जेवर देकर नाजरको बचाना चाहती है। फीचर और कैलू अपने 'रुतबे' की ढाल इस्तेमाल करते हैं, नाजर अपनी भेड़ोंका बाड़ा बेचकर मुकद्दमा लड़नेकी तैयारी करता है और जंगीरासे गुनाह कबूल करवा देता है क्योंकि मामलेमें फंसे और लोगोंकी तरह न उसके पास रुतबा है और न ही पैसा। नंबरदार पाखरसिंहको नाजर दो सौ रुपये देता है—दरोगाको पटानेके लिए कि वह उन्हें गिरफ्तार न करके खुद मौका देखकर उनके हाजिर हो जानेकी छूट दे। पाखरसिंह उसमें से सौ रुपये अपने लिए रोककर सौ दरोगाको देता है और इतनेसे वह ढीला पड़ जाता है। आये हुए सिपाहियोंकी घरोंसे लाकर गमं दूधसे खातिर की जाती है और चने-चबेनेके लिए उनके घोड़ोंकी नकेलें खोल दी जाती हैं। हरनामी गिंदर, अरजन, नाजरसे छूटती-बहती बूढ़े हवलदार मिलखासिंह तक पहुंचती रहती है। जेलसे छूटने और बेहद नाटकीय ढंगसे मिलखासिंहके हाथ बेच दिये जानेपर हरनामी कुछ दिन उसके ही पास रहती है। छूटनेपर पता करते करते नाजर भी उसे वहीं ढूँढ निकालता है और वैसे ही नाटकीय ढंगसे उसे फिर उड़ा लाता है। कोठे खड़कसिंह पहुंचकर वे दोनों साथही रहने लगते हैं। बादमें विक्षिप्तप्राय गिंदर भी घूम-फिरकर वहीं उन्हीं के साथ पड़ा रहता है।



उपन्यासके पहले खण्डकी समाप्ति, इस सारे घटना-चक्रके बाद, हरनामीके पश्चातापसे होती है। वे दोनों गिंदरकी तरसभरी निगाहोंको देखते और सब कुछ समझकर भी उससे कुछ कह नहीं पाते। कभी-कभी अकेलेमें हरनामी रोती और सोचती रहती कि एक शरीदके स्वादके लिए उसने अपनेको कहांसे कहां पहुंचा दिया... 'राजदुआरा छोड़के'... वस्तुतः हरनामीकी पीड़ा और पश्चाताप, उसका यह खरापन ही, उसकी सारी बुराइयोंके बावजूद उसके प्रति कहीं भी सहानुभूति और संवेदना-शून्य होनेकी छूट नहीं देता।

'कोठे खड़कसिंह' की दुनियां जर और जमीनके लिए बरबाद होते लोगोंकी दुनियां है। यह ऐसे खुले दिल-दिमाग लोगोंसे आबाद दुनियां है जो अपनी दोस्ती और दुश्मनी पीढ़ी-दर-पीढ़ी निभाते हैं। अपनी जमीन को वे अपने प्राणोंसे अधिक प्यार करनेवाले लोग हैं—लेकिन कोईभी मजबूरी और कारज होनेपर यह जमीनही उनका सबसे बड़ा सहारा होती है जिसे बेचकर या रेहन रखकर मुसीबतको टाला जा सकता है। पहले खण्डमें हरनामीके चक्करमें जिस अरजनकी हत्या कर दी जाती है—झंडासिंह और बंतो उसके भाई-भावज हैं। अरजनकी हत्याके बाद वे ज्यादा शोर नहीं मचाते। एक तो इसलिए कि क्यों दूरे लोगोंसे दुश्मनी बांधे; दूसरे इसलिए भी कि अरजन छड़ा था—उसके मरनेके बाद अब उसके हिस्सेकी जमीन-जायदाद भी उन्हें ही मिलनी है। इसी झंडेका बेटा हरिदत्तसिंह अब खुद बेटेवाला है। प्रदेशकी कांग्रेस सरकारमें मंत्री हरदिल सिंहसे उसका मेल-मिलाप है। दुनाली बंदूकका लायसेंस लेकर अब वह अपनी हैसियत खूब अच्छी तरह समझने लगा है।

उपन्यासके दूसरे खण्डमें हरिदत्तसिंहका परिवार खूब समृद्ध और हैसियत वाला परिवार है जो छोटे और मजबूर किसानोंकी जमाने खरीदता और रेहन ही नहीं रखता सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिसे भी अपना दबदबा बनाये हुए है। नंबरदार पाखरसिंह और हरिदत्तसिंहमें गहरी छनती है और उनका यह गठजोड़ही छोटे किसानोंका संकट है। इसमें रही-सही कसर स्वामीका वेश बनाये और बाकायदा आश्रम खोले परागदास पूरी कर देता है। उपन्यासके इस दूसरे खण्डमें पंजाबकी धरतीमें आतंकवादकी रोपी जाती

जड़ोंकी चर्चाभी है जिसमें आतंकवादियों और सरकार के आपसी रिश्तेपर भी टिप्पणियां हैं। भल्लण और उसकी पत्नी चंदकौरने बेटीके विवाहमें चौदह हजार रुपया कर्ज लेकर झंडा और मुकुन्दके हाथ अपनी जमीन रेहन रखी थी। जमीन रेहन रखनेकी खबर सुनतेही उसका बूढ़ा बाप रिसालदार सदमेसे कैसे मर जाता है, यह जाटका उसकी जमीनसे रिश्तेका एक उदाहरण मात्र है। इन्हीं भल्लण और चंदकौरका होनहार बेटा, जो शहरमें पढ़ने जाता है, आतंकवादी बन जाता है। पाखरसिंह और हरिदत्तसिंह अपने स्वार्थके लिए उसे फर्जी मुठभेड़ में पुलिससे मरवा देते हैं। बलकारकी लाशको देखकर गांवके लोग भलेही खुलकर इसके विरोधमें कुछ न बोल पायें, लेकिन पुलिस और असरदार लोगोंकी सांठ-गांठ और बलकार जैसे 'आतंकवादियों' के प्रति उनके व्यवहारके बारेमें उन्हें कोई भ्रम नहीं रह जाता है... 'गांवके लोगोंने देखा, बलकारकी दोनों बांहोंमें आर-पार निकली कीलोंके निशान थे। दांत टूटे हुए थे, जैसे लोहे या पत्थरकी भारी चीज मारकर मुंहको तोड़ा गया हो। चेहरा पहचानमें नहीं आता था। दोनों बांहों में भी छेदोंके निशान थे। बांहों और टांगोंका रंग पीला-सा था जैसे उनमें से पहले ही खून निचोड़ लिया गया हो। टांगे कुचली हुई थीं, जैसे उन्हें कोल्हूमें पेरा गया हो। छातीमें गोलियोंके दो-दो निशान थे। गोलियां छातीसे निकलकर पीठको ककड़ाकी तरह फाड़ गयी थीं'... (पृ. २१५)। वस्तुतः हरिदत्तसिंह, पाखरसिंह और कांग्रेसी मंत्री हरदिलसिंहका तिगुट्टा अपने वर्ग-स्वार्थ और बढ़ते हुए प्रभावके कारण अनजानेही जिस पौधेको रोपते हैं, वही कालान्तरमें आतंकवादके रूपमें धरतीमें अपनी गहरी जड़ें जमा लेता है। बादमें पाखरसिंहका अपना बेटा मेहरसिंह अपने बापके विरोधमें गवाही देता है और पिताकी हत्यापर वह दुखी न होकर, उसे उसकी करनीका फल मानकर सन्तुष्ट दिखायी देता है। हरिदत्तसिंहके अपने बच्चे—बेटी और बेटा—भी उसके काम और तौर-तरीकोंको पसंद नहीं करते।

हरिदत्तसिंह अपनी बेटीका सम्बन्ध नसीबसे नहीं कर सकता क्योंकि नसीब नाई जंगीराका भानजा है—भलेही आज पढ़ लिखकर वह बैंकमें अफसर हो। जाति और वर्ग-व्यवस्थाके कठोर और दमनात्मक रूप



गांवमें अभी भी बहुत गहराईमें अपनी जगह बनाये हुए हैं। नसीब नाई होकर भी हरिदत्तसिंहकी बेटी पुष्पिंदरके साथ पढ़ाई और वे दोनों एक दूसरेको चाहते हैं। नसीबका अपना गांव संघेड़ा जिला संगरूरमें है, लेकिन निःसंतान मामा-मामीके पास आकर वह रहता और पढ़ता है। उसके निर्माणमें प्रो. सज्जनसिंह की विशेष भूमिका है। वह प्रगतिशील विचारोंका एक ऐसा अध्यापक है जो इधर शिक्षाके व्यवसायीकरणकी चपेटमें तेजीसे समाप्त होते जा रहे हैं।

संघर्षपूर्ण रूसी युद्ध-नायकोंका जीवन नसीबका आदर्श है और वह सामाजिक परिवर्तनके प्रति अपने को समर्पित मानकर चलनेवाला युवक है। बोरिस पोल बोईके 'असली इंसान' और रसूल हमजातोवके 'मेरा दागिस्तान' जैसी कृतियोंका उसपर विशेष प्रभाव है। एकका नायक अपने दोनों पैर कट जानेपर भी उसे मानवीय दृढ़ता और आस्थाका प्रतीक लगता है तो दूसरी उसे अपनी धरती और उसकी मिट्टीसे प्यारका संदेश देती है। 'असली इंसान' में अलेक्सेईके नकली पैरोंसे उलियाके साथ नाचका दृश्य उसे अभिभूत करता है। यह बिम्ब एक भिन्न रूपमें उसे अपने जीवन का यथार्थभी लगता है... 'नसीबको लगा उसके अपने पांवभी नहीं हैं। यह समाज एक काला-जंगल है। इस समाजके अमानवीय कानूनोंने जात-पाँतका फासिस्ट हवाई जहाज पीछे लगाकर उसे गिरा दिया है। उसके पैर साबुत नहीं बचे हैं। पुष्पिंदरके जाट पैरोंके साथ उसके नाई पैर कदम मिलाकर नहीं चल सकेंगे। जाट पैरोंके सामने उसके नाई पैर जैसे बनावटी पैर ही हैं। क्या पता पुष्पिंदर उसके बे-पांव अस्तित्वको कभी अस्वीकार ही करदे। पर नहीं, उलियाको बेपैर अलेक्सेई स्वीकार था। पुष्पिंदर ऐसी नहीं है...' (पृ. २७५)। भलेही पुष्पिंदरपर उसे विश्वास हो, पर भारतीय समाज व्यवस्थामें जातिवादकी भूमिका फासिस्ट शक्तियोंसे भी कहीं बढ़कर है इसका संकेत इस बातसे मिल जाता है कि हरिदत्तसिंह स्वयं धोखे और बहानेसे अकेले रास्तेपर नसीबकी हत्या कर देता है। पुष्पिंदरको घरमें बंद करके, उसके मिलनेकी बातका सुराग

लगाकर वह नसीबको विवाहका लालच देता है और उसे विश्वासमें लेकर ठिकाने लगा देता है।

बाबा परागदासके विरोधमें सिंघेड़ाके बाबा टेकदास नसीबको हर संभव सहायता देता है। वह युवकोंको इकट्ठा करके सामाजिक परिवर्तनमें उनकी भूमिकाके प्रति सजग है। थोड़ा सरलीकृत होनेपर भी लेखक सामाजिक बदलावके प्रति सक्रिय और सचेत शक्तियोंको एकजुट करके इस दिशामें कुछ करनेको तत्पर है। सारी सम्पत्ति और धरतीपर नागकी तरह कुंडली मारकर बैठ जानेपर भी हरिदत्तसिंहका कुछ नहीं बनता। उसकी सन्तानही उसकी अपनी नहीं रह जाती। पुष्पिंदर विवाह न करनेका मन बनाकर नौकरी कर लेती है और उसका भाई हरिंदर प्रगतिशील संगठनसे अपनेको जोड़कर आर्थिक दृष्टिसे उसकी सहायतामें लग जाता है। बादमें पुष्पिंदरभी समान विचारोंसे उपजी आत्मीयतावश प्रो. गुरबख्शसिंहसे विवाह कर लेती है। हरिंदर पुष्पिंदरकी सहेली पद्मा की ओर आकृष्ट है और वे सब मिलकर एक नये पंजाब — कम्युनिस्ट आंदोलनकी सक्रियतासे भरा पंजाब — के लिए अपनेको समर्पित कर देते हैं।

उपन्यासका यह अति सरलीकृत और आशावादी अंत अनेक स्तरोंपर, अनेक प्रकारकी सामाजिक-राजनीतिक जटिलताओंसे बचकर अपना रास्ता बनाता है। पंजाबकी वास्तविकतासे अधिक स्तालिनकालीन सोवियत उपन्यासका आशावाद लेखकपर कुछ अधिक ही हावी लगता है।... सम्भव है पंजाबकी वर्तमान स्थितिमें यह आशावाद किसी सीमातक आवश्यक हो। किसीभी नव-निर्माणमें इस आशावादकी भूमिकाको नकारा नहीं जा सकता क्योंकि एक बड़े लक्ष्यके लिए निष्ठा और समर्पणकी भावना ही ऊर्जा और सक्रियता का प्रस्थान बिन्दु हो सकती है।... अन्तमें एक बात यह कि अपने हिंदी शीर्षककी अपेक्षा उपन्यासका मूल पंजाबी शीर्षक 'कोठे खड़कसिंह' अधिक कलात्मक और व्यंजनापूर्ण है। अच्छा होता हिन्दीमें भी यह उसी नामसे आता। □



## खारे मोती?

[तमिल उपन्यास 'कटिपु मणिगल' का हिन्दी अनुवाद]

लेखिका : राजम कृष्णन्

अनुवादिका : सुमति अय्यर

समीक्षक : कृष्णचन्द्र गुप्त

तुत्त कुडीसे कन्याकुमारी तकके समुद्रतटपर नमक बनानेवाले मजदूरोंकी धिवशता, निर्धनता शोषण और उसके विरोधकी चेष्टाओंको लेकर लिखा गया उपन्यास है यह, जिसकी प्रेरणा लेखिकाको इन मजदूरोंके जीवन की विभीषिकाको अत्यन्त निकटसे देखनेपर मिली। इधर लेखिकाओंमें भी दीनहीन शोषित मानवताके यथार्थ लोमहर्षक चित्र प्रस्तुत करनेवाला लेखन बढ़ता ही जा रहा है, जो काम पहले पुरुष लेखक भी बड़ी कठिनाईसे करतेथे, उस क्षेत्रमें महिला लेखकोंका पदार्पण साहित्यमें एक नये क्षितिजका उद्घाटन करता है। बंगलामें महाश्वेतादेवीके साथ साथ तमिलमें राजम कृष्णन् ऐसीही लेखिका है जिन्होंने नमक बनाने वाले मजदूरोंके जीवनके अमिश्रण और उससे मुक्तिके लिए छटपटाती चेष्टाओंको लेकर यह उपन्यास लिखा है। शताब्दियोंकी दासता, निर्धनता, मानसिक दुर्बलता के कुहासेमें रहनेके कारण न्यायके लिए, अपनी और अपनी मां-बहनोंकी इज्जत बचानेके लिए, उठ खड़े होनेमें अनेक बाधाएं आतीहैं, जिनमें ठेकेदार मालिक और पुलिसका दुर्दान्त अत्याचार तो हैही, अपना दुर्बल मनोबल, उत्साहहीनता, आपसी फूटभी कम उत्तरदायी नहीं है। संगठन और निष्ठावान् नेताके अभावमें भी शोषक प्रबलतर होतेजा रहेहैं; लेखक वास्तविकतासे अपरिचित रहकर या तो हवाई आदर्शवादमें खोये रहते हैं या शोषणके आतंकसे अधमरे होकर उसीको अपनी नियति समझ लेतेहैं, परन्तु जो लेखक ज्ञानीवनमें घुमे मिले रहतेहैं, वे शोषणकी भयावहतासे परिचित होते ही हैं उसके विरोधकी सम्भावनाओंसे भी उनका आमना सामना होताहै। विरोधके सफल असफल प्रयासको देख लेनेके बाद वे फिर उनकी जिजीविषाको

टटोलकर उसको बढ़ानेके काममें लग जातेहैं। प्रस्तुत लेखिकाने भी ऐसाही कियाहै।

अधिकतर मजदूर तो शोषणको ही अपनी नियति मानकर संतोष कर लेतेहैं क्योंकि एकाध प्रयासकी असफलता उन्हें तोड़ देतीहै। फिर सामान्य मजदूरोंका पौरुष साहस सब नमककी क्यारियोंमें काम करते हुए गलाही जा रहाहै। रामासामी जैसा युवक भी हैं जो मालिकके द्वारा वेतन बढ़ानेके लालचको ठुकराकर मजदूरोंके प्रति होनेवाले अन्यायसे उन्हें न केवल परिचित ही करातेहैं अपितु उसके विरुद्ध उन्हें संगठितभी करता है। उनके ठेकेदारों और बदमाशोंकी गुंडागर्दीका विरोध करताहै और (नौकरी) से निकाल दिया जाता है। इसी रामासामीके पिताकी हत्या करवा दी जाती है, मजदूरोंको संगठित करनेके कारण और इस हत्या को आत्महत्याके रूपमें प्रचारित कर दिया जाताहै, ठीक उसी प्रकार जैसे मरुदांवाल आ तो गयी मशीनके पट्टेमें पर उसकी लाश खींचकर बाहर सड़कपर डाल दी गयी और ट्रकसे कुचल जानेकी कथा प्रचारितकर तुरत फुरत उसका पंचनामा करवाकर उसकी मिट्टी ठिकाने लगा दीगयी। आधी तिहाई मजदूरीपर काम करनेवालोंके लिए कामके समय पीनेको पेटभर पानी भी नहीं मिलता। बीमार पड़नेपर दवा नहीं, बच्चोंके लिए स्कूल नहीं, छुट्टी नहीं, बोनस नहीं, जबकि मालिकोंकी हड्डियोंपर हर साल मांस चढ़ता जा रहा है, तिजोरीमें रुपये बढ़तेजा रहेहैं। उनके ठाट-बाट आकाशको छू रहेहैं। मजदूर नेता है पर उन्हेंभी मालिक ठेकेदार पटाये रखतेहैं, और जो पटायेमें नहीं आता उसे बर्बाद करनेमें कोई कोरकसर नहीं छोड़ते। फिरभी, अपनी जिजीविषा, प्रचंड उत्साह और निष्ठाके बलपर अन्यायके दुर्गमें सेंध लगानेका प्रयास करनेवाले दो-एक जुझार व्यक्ति इस वातावरणमें मिलही जातेहैं।

रामासामी ऐमाही है, मरुदांवाल भी ऐसीही थी और सबसे प्रबल ताई निकली, जो सूदखोरी करतीथी पर इन मजदूरोंके प्रति सहृदय थी। इसीलिए मालिक ने उसे फुसलाना चाहा, पर उसने मुंह तोड़ उत्तर दिया—“आपके पास रुपया है, उसके बलपर पुलिस को अपनी ओर कर लोге, सरकारको मिला लोगे क्यों? और उस भगवान्को भी मिला लोगे? पर तुम्हारा पाप तुम्हें नहीं छोड़ेगा” (पृ. १३६)। यह आस्था अभी सामान्यजनमें तो बची हुईहै। इसीके

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, १८ इंस्टीट्यूशनल एग्निया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३। पृष्ठ : १६२; डिमा. २१; मूल्य : ६०.०० रु.।

‘प्रकर’— जनवरी ६२—२८



बलपर वे लड़ते हैं, क्योंकि उन्हें आज भी विश्वास है कि यह अन्याय और शोषण सब जगह सब समय नहीं चल सकता, भगवान् इतना अन्धा नहीं हो सकता कि दुराचारी को उसके पापका फल दे ही नहीं। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों कभी-न-कभी तो यह फल भुगतना पड़ेगा ही। इसी आस्था के बलपर यह खड़ी है और इसी के बलपर उसे फटकारती है। भगवान् के किमी अवतार की प्रतीक्षा इन्हें नहीं है। ये लोग संगठन करते हैं शोषण के विरुद्ध उनमें विरोध की भावना धधकाते हैं। प्रारम्भ में असफल हो जाते हैं, फिर से संगठन को खड़ा करते हैं। यह काम पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता है। रामासामी के पिताने जो काम अधूरा छोड़ा था उसने उसे पूरा किया। यद्यपि उसे अपने अध्यक्ष की समझौता परस्ती से बहुत दुःख होता है, पर उसके साथ जब खड़ी हो जाती हैं ताई, विकराल चण्डी का रूप धरकर, आंगन से मोटा लट्ठ उठाकर निकल पड़ती है दुर्गा के रूप में, सबको इकट्ठा करती हुई। जो पहले एक जीती जागती लपट की तरह लग रही थी, मजदूरों को आवाज देती हुई भाग रही थी तूफानी मशाल की भाँति' (पृ. १४०)। उसको देखकर कौरव-सभामें प्रचण्ड द्रौपदी की याद आती है और याद आती है तमिल लोकजीवन और साहित्य की प्रसिद्ध नारी पण्णगी की। इस ताई के आवाहन पर पूरी मजदूर बस्ती की निराशा, दुर्बलता फूट सब ध्वस्त हो जाती है, और सारी मजदूर बस्ती उसके पीछे-पीछे बहती जा रही थी है समुद्र की तूफानी लहर की तरह" (पृ. १४३)।

इस प्रकार का दृश्य वही अंकित कर सकता है जिसका सत्य-न्याय की विजय में दृढ़ विश्वास हो, जिसने जुझारु लोगों के बीच रहकर यह आस्था पायी हो, नहीं तो अधिकतर रचनाकार अपनी मानसिकता के कारण ऐसे ज्वलंत दृश्य नहीं देख पाते, देखकर उन्हें क्षणिक, अस्वाभाविक अविश्वासनीय, अव्यावहारिक या अपवाद मानकर अनदेखा कर देते हैं। राजम कृष्णन्ने ऐसा नहीं किया। सुख सुविधाओं के घेरे से निकलकर जनजीवन के संघर्ष में कलह-कोलाहल के तुमुल नाद को उन्होंने सुना है और फिर उस जुझारुपन को मुखरित किया है अपनी इस आस्था के अनुकूल—साहित्य मनोरंजन का साधन नहीं है। यह साधारण आदमी के जीवन के लिए पौष्टिक आहार बने जो सामाजिकता-मानवता का प्रचार करे" (पृ. भूमिका)।

आस्था की इस लपट के आलोक में ही उन्हें यथार्थ मानवीय दुर्बलताओं और उनसे जूझने के छोटे मोटे सफल-असफल प्रयास दीखते हैं, जिन्हें वे बड़ी कुशलता से अंकित करती है। इसमें एक प्रेमकथा भी है पोन्नाचची और रामासामी की। पर वहाँ भी कोमलतम अनुभूतियों के आह्लादक वातावरण में दुराचार के विरोध की हुंकार भी है। पोन्नाचची नाचवप्पन की जबरदस्ती का भरसक विरोध करती है नाखूनों और दाँतों से। इस दुर्घटना को उजागर करके अपने रोष को लगातार धधकाए रखती है, यहां तक कि आत्मरत्नानिके कारण डूब मरने तक की बात करती है और अपने प्रेमी रामासामी से भी इस बात को छिपाती नहीं है—'मेरे मन में थोड़ा-सा भी पाप नहीं है पर क्या रियों का कीचड़ मेरे ऊपर पड़ गया है'।

रामासामी—“यह सब इस वक्त (प्रथम मिलन की रात) काहे बता रही हो ? नालायक का मुँह तो उसी दिन तोड़ दिया था।”

पोन्नाचची—‘नाचवप्पन नहीं था तो उसे तो मैंने ही ठीक कर दिया। वह सोलै था नशे में धुत ताड़ के जंगल में।’

वह सुबक-सुबक कर रो पड़ी। क्षणभर को रामासामी चौंक पड़ा फिर संभला भी उतनी ही तेजी से। पोन्नाचची के ढुलकते आँसुओं में उसने होंठ रख दिये—“तू तो सोना है, तुझपर तो मल ठहर ही नहीं सकता” (पृ. १३४)।

यह है सूक्ष्म दृष्टि और आस्था का विलक्षण चमत्कार। कितनी गहराई से लेखिकाने रामासामी की मानसिकता का सहज अंकन किया है। कितनी गहरी सूझबूझ है लेखिकामें। यदि इसे अनदेखा कर देता, रामासामी तो देवता हो जाता और यदि इसी को पकड़कर बैठ जाता तो विवेकहीन पशु। लेकिन एक सहज सामान्य मानव होने के नाते वह चौंकता है, जिसे उसने अपनी हृदयेश्वरी बनाया है उसके कलंक की एक नयी कथा सुनकर। पोन्नाचची के चरित्र की निर्मलता पर मुग्ध हो उठता है उसकी निष्कपटता रामासामी को इस घटना को भी अनदेखा करने की प्रेरणा देती है क्योंकि यदि पोन्नाचची इतनी शुद्ध सात्त्विक निष्पाप न होती तो इस कथा को वह छिपा लेती। उसके इस निष्कपट व्यवहार ने ही रामासामी को आश्चर्य कर दिया उसके मन की पवित्रता के प्रति। कामांध पशु के देहबल के आगे



बेचारी पोन्नाच्ची कर भी क्या सकतीथी वे हाथ पैर पटकने नोचने खसोटने और काटनेके अलावा। यही अकेली घटना लेखिकाकी परिपक्वता, व्यावहारिकता, निष्ठा और मनोवैज्ञानिक सूझबूझको प्रमाणित करनेके लिए पर्याप्त है।

शोषण, विवशता दुर्बलताके मर्मस्पर्शी अंकन तथा व्यावहारिक ज्ञानपरक कुछ सूक्तियोंके निम्नलिखित उदाहरण लेखिकाके रचना कौशलके प्रमाण हैं—

—और भी तो कितने बोझ है जो उसे सिर उठाने नहीं देते। (पृ. ४)

—कभी कभार होनेवाली वर्षाकी भाँति भूखभी कभी कभारही शान्त होती है। (पृ. ५)

—पेटकी भूखके सामने सपने हारने लगे होंगे” (पृ. ४३)।

—पैसा और पैसा मिलतेही लगता है इन्सानियत खत्म हो जाती है (पृ. ५१)।

—नमकने पोन्नाच्चीके आत्मसम्मानको नहीं गलाया” (पृ. ५१)।

—पेटकी आगके सामने सारा शोक मान-अपमान छोटे पड़ जाते हैं” (पृ. १२४)।

—ये तो भूख जानते हैं और दूसरी चीज सिनेमा को (पृ. १२६)।

—पेट जलेगा तो धुँआ उठेगाही”

—यूँ सुन्दर और जवान औरतोंके सिरपर उनके आदमीका साया भी रहता है तोभी उन्हें बाड़के ऊपर खिले फूलकी तरह मान लिया जाता है (पृ. ५)।

—लेकिन आदमीको विश्वास नहीं खोना चाहिये (पृ. २७)।

इनके अलावा सोन्दर्य और आह्लादके ये चित्र भी दर्शनीय हैं—

—नदीके तटपर हरहराकर उगे केलेकी तरह भरी हुई देह (पृ. ५)

—पोन्नाच्चीको लगा कि जिन्दगीमें ढेरों रंग है, ढेरों सपने। वह उन्हीं सपनोंके साथ सोगयी (पृ. २६)।

—उसे जाने क्यों लगा इस सूखे पटलमें मीठे पानीका स्रोत वह निकला है (पृ. ३६)।

—मन खिल गया फूलोंकी तरह (पृ. ८८)।

—ताई काँटोंके बीचमें मीठे फलकी तरह लगी (पृ. ९०)।

—रामासामीको देखकर मन इतना क्यों उछलने लगा? जैसे फूलोंकी बरसात होने लगी (पृ. ९०)।

अनुवाद बड़ा सहज प्रामाणिक और सशक्त हुआ है, अनेक अभिव्यक्तियों, मुहावरे और शब्द तो हिन्दी क्षेत्रके हैं यथा अल्लसुबहै (सुबह होतेही) ‘पुलिसने लड़केको धर लिया। गालियाँ निकाल दी (पंजाबी प्रभावित हिन्दी प्रयोग)। छटांकभरकी लड़कीको छू कर देखा—हाथ काहे (क्योंके अर्थमें) जोड़ रहे हैं आदि प्रयोगोंको देखकर लगता है कि अनुवादिकाका हिन्दीसे गहरा सम्बन्ध है। हो सकता है मूल उपन्यास में ही ये प्रयोग हों। प्रस्तुत कृति अनुवादित नहीं लगती। अनुवादित होकर इस कृतिने हिन्दी क्षेत्रमें एक नयाही क्षितिज उद्घाटित किया है, अपनी गहरी स्वाभाविकता, यथार्थपरकता, जुझारुपन जिजीविषा और अन्याय विरोधमें अटल निष्ठाके कारण। □

## हेमचन्द्र विक्रमादित्य?

[ऐतिहासिक उपन्यास]

उपन्यासकार : डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद

समीक्षक : डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव

उपन्यास-जगत्के विशिष्ट हस्ताक्षर डॉ. शत्रुघ्न प्रसादका प्रस्तुत ऐतिहासिक उपन्यास, उनके पूर्व-प्रकाशित दो प्रागैतिहासिक उपन्यासों—‘सिद्धियोंके खंडहर’ एवं ‘शिप्रा साक्षी है’ से कुछ भिन्न आस्वादका परि-वेष्टन करता है। इसलिए कि, इस उपन्यासमें उक्त प्रागैतिहासिक उपन्यासों जैसी सांस्कृतिक मोहकताका आवेश नहीं, इसके विपरीत ऐतिहासिक रोमान्तिकता का विनिवेश हुआ है। उपन्यासका, यद्यपि इतिहासके यथार्थ चित्रणसे प्रतिबद्ध होना जरूरी नहीं है, तथापि इस कृतिमें उपन्यास-लेखक ततोऽधिक इतिहासका अनु-गामी बन गया है। इस सन्दर्भमें उसकी आत्मविश्वास-धारणाभी है कि प्रगतिशील राष्ट्रीय दृष्टिसे ऐतिहासिक यथार्थका चित्रण आवश्यक है (द्र. ‘अपनी बात’)।

इस उपन्यासमें भवितकालीन सांस्कृतिक परि-स्थितियाँ भी अनुध्वनित हुई हैं, जिन्हें आचार्य रामचन्द्र

१. प्रका. : सत्साहित्य प्रकाशन, २०५-बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६। पृष्ठ : ३६६; क्रा. ८६; मूल्य : १००.०० रु.।



उछलने  
६०) ।  
क्त हुआ  
हिन्दी  
पुलिसने  
(पंजाबी  
कीको छु  
ड़ रहेहैं  
दिकाका  
उपन्यास  
त नहीं  
री क्षेत्रमें  
गहरी  
जीविषा  
□

शुक्लने अपने हिन्दी साहित्यके इतिहासमें संकेतित किया है। अत्याचारी मुसलिम-साम्राज्यके आतंकके कारण अपने पौरुषसे हताश हिन्दू-जाति भगवान्की शक्ति और करुणाका ध्यानकर आश्वस्तिका अनुभव करने लगी थी और उसके टूटते-बिखरते मनकी तुष्टिके लिए भक्ति-भावना अनिवार्य बन गयी थी। इसी स्थिति में, तत्कालीन भक्त और सन्त कवियोंने हिन्दू और मुसलमान, दोनोंके हृदयोंमें धार्मिक तथा सांस्कृतिक समन्वयकी भावना जगानेके लिए भक्तिमार्गको माध्यम बनाया था। इस राष्ट्रमंगलकारी कार्यमें प्रेममार्गी सूफी सन्तों और ज्ञानपार्गी कबीरपन्थी साधुओंने जिस भूमिकाका निर्वाह किया, उसका अवश्यही ऐतिहासिक मूल्य है। कहना न होगा कि प्रस्तुत उपन्यासकी पूरी-की पूरी पटकथा इसी सांस्कृतिक ताने-बानेसे बुनी गयी है। अतः भक्तिकालीन साहित्य तथा मुगली इतिहासके समानान्तर अध्ययनमें अभिरुचि रखनेवाले पाठकोंको यह उपन्यास अधिक अनुकूलित करेगा।

उपन्यासकारने भी इस सन्दर्भको 'अपनी बात' में उपन्यस्त करते हुए लिखा है कि सोलहवीं शतीके पूर्वार्द्धमें सामाजिक जीवनमें विषमताके स्थानपर समताकी आवाज उठ रही थी, भक्ति आन्दोलन नवोत्थानका रूप ले रहा था और कबीरपन्थी, सूफी एवं कृष्णभक्त कवि सामाजिक परिवर्तनकी चेतना जगा रहे थे और यही इस उपन्यासकी कथाका बीज है।

इस उपन्यासका चरितनायक हेमू अकबरकालीन मुगल इतिहासमें एक वीर योद्धाके रूपमें अवश्य ही चित्रित है, किन्तु इस उपन्यासके कल्पनाशील लेखकने उसे विक्रमादित्यका व्यक्तित्व प्रदान करके उसके उपेक्षित व्यक्तित्वको अपेक्षित गौरव-गरिमासे अभिमण्डित किया है। अफगानों और मुगलोंकी शौर्यगाथाके बीच दबे हुए एक युद्धवीर हिन्दू योद्धाको मूल्य देकर उपन्यासकारने हिन्दू-जातिके प्रति अपने कहीं अधिक प्रेमाग्रहका केवल परिचय ही नहीं दिया है, अपितु एक ऐतिहासिक सत्यको भी उज्जागरित किया है। साथही, बहुतही आत्मविश्वास पूर्वक उसने 'अपनी बात' में गर्वोद्घोषभी किया है कि 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्यमें एक नया कदम है, नया तेवर है। और इस सन्दर्भमें, उसकी अपनी प्रतिज्ञा भी है कि 'युगीन यथार्थकी सम्पूर्णता, सन्तुलित दृष्टि और वर्तमानसे जुड़नेका स्वाभाविक प्रयास ऐतिहासिक

औपन्यासिक रचनाके लिए आवश्यक है।'

इस उपन्यासका ऐतिहासिक पृष्ठाधार यही है कि राजनीतिक दृष्टिसे शेरशाह और उसके वंशजोंके शासनकालमें प्रजाने कुछ चैनकी सांस ली थी अवश्य, पर राजनीतिक उथल-पुथल निरन्तर बनी हुई थी। अफगान कमजोर पड़ रहे थे। मुगलोंके पुनराक्रमणकी आशंका बढ़ रही थी। इसी परिवेशमें सर्वहारा हेमू वनाम हेमचन्द्र अपने ददं और द्वन्द्वके साथ रेवाड़ीसे आगरा पहुंचा। वहां वह अपनी दिवंगता प्रेयसी 'पारो', जिसने मुगलोंके अत्याचारसे ऊबकर आत्महत्या की दारुण विवशताका वरण किया था, के शोकसे दग्ध रहते हुए मुगलोंसे प्रतिशोधके लिए युक्ति सोचने लगा। वह पारोके चिताभस्मकी डिबियाको अपनी पूजन-सामग्रीमें सम्मिलित रखता। और, पारोकी विवश मृत्युकी स्मृतिही उसके समग्र जीवनीतकष एवं मुगल विध्वंसमें प्रेरणा और उत्तेजनाका काम करती रही। उसने अपने बुद्धिबल तथा युद्धकौशलसे आगराके तत्कालीन प्रशासक सलीमशाहका हृदय जीत लिया। फलतः उसने उसे आगराके नगरसेठके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। पुनः सलीमशाहके बाद उसके उत्तराधिकारी आदिलशाहने तो उसकी राजनय-निपुणतासे प्रसन्न होकर उसे अपने दरबारमें सलाहकारके रूपमें नियुक्त कर दिया और फिर क्रमशः वजीर (वजीरे-माल), जागीरदार तथा अपनी सेनाका सिपहमालार, बना दिया और अन्तमें तो वह उसे 'बिकरमाजीत' (विक्रमादित्य) कहकर सम्बोधित करने लगा। धीरे-धीरे हेमचन्द्र आदिलशाहका इतना अधिक विश्वस्त हो गया कि उसने हेमचन्द्रको सारा राज्यभार सौंप दिया और स्वयं चुनार किले, सुरा-सुन्दरीमें बेमुघ रहने लगा। कहना न होगा कि हेमचन्द्र अफगान बादशाह आदिलशाहके समस्त वर्चस्वको अतिक्रान्तकर पूरबमें बंगालसे लेकर पश्चिममें दिल्लीतक एक महानायकके रूपमें लोकसमादृत होने लगा।

हेमचन्द्र विक्रमादित्यने अपने जीवनकालमें राजनीतिको एक नया मोड़ दिया और हिन्दू, हिन्दी मुसलमान (कबीरपन्थी जुलाहा) तथा अफगानोंको एक साथ जोड़कर मुगलोंके आक्रमणकी आशंकाको निरस्त करने का यथाशक्ति प्रयास किया। किन्तु पारस्परिक विश्वासघातके कारण वह अपने उद्देश्यमें सफल न हो सका। काफिर और मुसलमानोंके बीच खाई चौड़ी होती चली



गयी। और अन्तमें, वह सन् १५५६ ई. के ६ नवम्बर को, पानीपतके मैदानमें, बादशाह अकबरके तथाकथित अभिभावक बैरम्खाके हाथों बड़ी निर्ममतासे मारा गया। और इस प्रकार, राधावल्लभके परमभक्त हेमचन्द्रका मातृभूमि और मातृजातिको मुगलोंसे मुक्तकर पुनःप्रतिष्ठित करनेका सपना अधूरा ही रह गया। इस दृष्टिसे अवश्यही 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' एक दुःखान्त उपन्यास है।

इस उपन्यासमें लेखकने तीन, युगमकोंकी सृष्टि घटना-क्रमके विस्तारकी दृष्टिसे की है : हेमचन्द्र-पार्वती, जमालमोहन-नूरी तथा गजेन्द्र-चन्दा। ये तीनों युगमक विकासशील जीवनके प्रतीक हैं और इनका चरित्रगत वैचित्र्य उपन्यासकी ऐतिहासिक रक्षतासे रक्षा करता है। ये ऐसे युगमक हैं, जिनकी मानसिक जड़ता सांस्कृतिक झटकेसे दूर हो गयी है और इनका चिन्तन राष्ट्रीय चेतनासे जुड़ गया है।

पार्वती, परम कृष्णभक्त सेठ सोहनलालकी पुत्री है, जिसमें हेमचन्द्रको मुगल योद्धा खवास खांके अत्याचारके कारण आत्महत्याके लिए विवश 'पारो' का प्रतिविम्ब दिखायी पड़ता है। मोहनलाल सेठ सोहनलालका पुत्र है, जो सफरा शरणकी पुत्री नूरीसे विवाह कर जमाल अहमद बन गया है और एक कबीरपन्थी साधुने उसका नाम जमालमोहन रख दिया है। चन्दा मूलतः आर्य क्षत्रिय-कुलकी कन्या है, परन्तु मुगलोंके अत्याचारकी विवशतासे नटिनीका जीवन जीती है। बांसुरी बजानेमें प्रवीण क्षत्रिय युवक गजेन्द्र चन्दाके रूपगुण एवं शीलस्वभावकी कुलीनतासे मुग्ध होकर उससे विवाह कर लेता है। इस प्रकार ये युगमक संघर्ष-मूलक परिस्थितियोंसे विकासके उत्कर्षकी ओर प्रस्थान के प्रेरक आयाम उपस्थापित करते हैं।

कथाके परिपाककी दृष्टिसे इस उपन्यासमें चित्रित सरवर अली, हरखलाल, नर्तकी नादिरा आदिके प्रतिनायकत्वका अपना वैशिष्ट्य है। उपन्यासकारने ऐतिहासिक तथ्यके परिप्रेक्ष्यमें इनके कुटिल कपटाचरण, ध्वंसोन्मुख आभ्यन्तर द्वन्द्व और अपकारमूलक संघर्षके विश्लेषणको जिस विलक्षणतासे गुम्फित किया है, वह उसके औपन्यासिक ग्रन्थन-कौशलका परिचायक है। अवश्यही, ये प्रतिनायक पूरे उपन्यासकी कथाको सहज विस्तार देनेमें अतिशय आवर्जक घटककी भूमिका निवाहते हैं।

अधीती उपन्यास लेखक डॉ. शत्रुघ्नने कथाके व्याजसे, राष्ट्रजीवनसे सम्बद्ध कई प्रासंगिक आयामों को भी रेखांकित किया है, जिनमें धार्मिक सम्प्रदायोंके आपसी द्वन्द्व, हिन्दू-मुसलिमका भेदभाव, भक्तिभावके नव-जागरणसे उत्पन्न सामयिक संघर्ष : रामजन्मभूमि-विवाद, भाषानीति आदि उल्लेख्य हैं। तत्कालीन सांस्कृतिक चेतनाको, प्रगतिशील सर्जनात्मक दृष्टिसे वर्तमानके साथ जोड़कर उपस्थित करनेकी, लेखककी औपन्यासिक कारुकारिता अवश्यही अभिनन्दनीय है। तत्सामयिक संस्कृतिके उपयुक्त वातावरण और तदनुकूल उपकरणोंको उपस्थित करनेकी शैली सातिशय सप्राण और मनोरम है। छोटी-छोटी और सहज अभिव्यंजक वाक्यावलीकी प्रयोगपटुता लेखककी अनति-सुलभ भाषिक विशेषता है। इससे यह उपन्यास सर्व-साधारण हिन्दी पाठकोंके लिए भी सुगम बन गया है। यथाप्रसंग, परम्परित एवं परम्परेतर रूपकाश्रित या आलंकारिक शैलीका प्रयोग भाषामें अर्थ-चमत्कार उत्पन्न करते हैं। इस सन्दर्भमें 'आँखोंकी उपासना' (पृ. १३); 'चाहोंका संगम' (पृ. ५८); 'नूरीकी शीरीं जुवान' (पृ. १६४); 'हासका हरसिगार' (पृ. २०६) आदि प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

इस उपन्यासके अन्तके कतिपय अध्याय अवश्यही विशुद्ध इतिहास जैसे बन गये हैं, फिरभी लेखक इस बानके लिए बराबर उन्निद्र रहा है कि उपन्यास इतिहास न हो जाये। वस्तुतः इस औपन्यासिक ग्रन्थकी उपयोगिता हेमचन्द्र-कालीन भारतके इतिहासकी पुनर्निमित्तकी दृष्टिसे भी विचारणीय है; क्योंकि तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के पुनर्निर्माणके प्रचुर तत्त्व इसमें निहित हैं।

इस उपन्यासमें सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पर्यवेक्षणका यद्यपि अभाव है, तथापि चित्रित पात्रोंके जटिल मनो-द्वन्द्वको जिस सरल शैलीमें उपन्यस्त करनेका प्रयास किया गया है, वह निस्सन्देह प्रशंसनीय है। वास्तविकताका अभाव किसीभी पात्रमें परिलक्षित नहीं होता, सभीके सभी पात्र स्वाभाविक हैं। संघर्षशील जीवनमें कोमल भावनाओंकी अभिव्यक्तिकी स्थितिका चित्रण जिस क्षमताके साथ लेखकने किया है, उससे उसकी असाधारण रचना-प्रतिभाका परिचय मिलता है। प्रकारान्तरसे अपने जीवन-दर्शन और दृष्टिकोणको उपन्यासमें सफलतापूर्वक व्यक्त करनेकी कलामें भी



लेखकने श्लाघनीय दक्षतासे काम लिया है। प्रबुद्ध लेखकने पाठकोंकी कौतूहल-वृत्तिसे लाभ उठानेकी चेष्टा न करके यथासम्भव, ईमानदारीसे मुसलमानों और हिन्दुओंके पारस्परिक सम्पर्कसे उद्भूत प्रतिक्रियाओं और समस्याओंकी समझनेकी चेष्टा की है। एक औपन्यासिकसे इससे और अधिककी अपेक्षा नहीं की जासकती कि वह हर समस्याका समाधान सुझाये

ही या फिर पूरे इतिहासको पुंखानु-पुंख रूपसे उपस्थित करे। लेकिन, समस्याको समझ लेनाभी एक प्रकारसे समाधान ही है और इस दृष्टिसे उपन्यासका निर्वाह बड़ी समीचीनतासे हुआ है। यह उपन्यास एक बारगी महान् रचना तो नहीं कहाजा सकता, किन्तु इस प्रकारके ऐतिहासिक उपन्यासोंमें अवश्यही इसका विशिष्ट स्थान है। □

## कहानी

### वसीली शूक्विशनकी प्रतिनिधि कहानियां?

[अंग्रेजीसे अनूदित रूसी कहानियां]

अनुवादक : खण्ड एक : श्रीमती मंजरी कुमार

खण्ड दो : वेदकुमार शर्मा

समीक्षक : डॉ. भगीरथ बड़ोले

श्री वसीली शूक्विशन प्रसिद्ध रूसी साहित्यकार हैं। उन्होंने कहानी, उपन्यास और पटकथा लेखनके माध्यमसे अपने अल्प जीवन-कालमें बहुत लोकप्रियता अर्जित की। ग्रामीण परिवारमें जन्म लेनेके कारण उन की कहानियों आदिमें वहाँके पात्र और परिस्थितियां सजीव चित्रित हुई हैं। इसीलिए पात्रभी साधारण स्थितिके हैं और परिवेशभी वैसा है। साधारण लोगों की साधारण-सी दिखनेवाली बातको अपनी कहानीका विषय बनाकर शूक्विशनने अत्यंत प्रभावशाली ढंगसे अपनी विचारधारा प्रस्तुत की है।

प्रस्तुत संग्रह — 'प्रतिनिधि कहानियां खण्ड एक' में श्री शूक्विशनकी आठ श्रेष्ठ कहानियां संकलित हैं। इन सभी कहानियोंमें जीवनकी वास्तविकताओंका वर्णन सहजता और रोचकताके साथ हुआ है, साथही तथाकथित चरित्रोंपर व्यंग्य प्रहार करते हुए साम्य-

वादी चेतनाको भी उकेरा गया है। (साम्यवादी सोवियत संघके विखण्डनसे पूर्वका प्रकाशन होनेके कारण)।

'सनकी' का नायक पेशेसे लायब्रेरियन और ईमानदार है। अपने कार्यके प्रति उसे गहरी रुचि है। उसे उन सभी लोगोंसे चिढ़ है जो अपना काम समुचित रूप से नहीं करते। अस्पतालमें फैली अव्यवस्था और अकर्मण्य डाक्टरोंके बहाने तथाकथित बड़े लोगोंको वह इसीलिए खूब फटकारता है कि वे अपना काम सीखें और दुःखी लोगोंकी फिक्र करें। केवल मरी हुई आत्मा लेकर बैठे न रहें। उसे आश्चर्य होता है कि बिना काम सीखे, बिना समझे और अपने कामके प्रति बिना रुचि जगाये कोई व्यक्ति जीवित कैसे रह लेता है। वास्तव में इस नायककी यह फटकार साम्यवादी चेतनाको स्पष्टतासे व्यंजित करती हुई उसे सनकी कहनेवालोंपर व्यंग्य प्रहार करती है।

'अपमान' शीर्षक कहानीमें भी एक ऐसे साधारण व्यक्तिकी ऐसी जीवन घटनाको आकार दिया गया है, जिसके अंतर्गत प्रत्येक सामान्यको ही बिना कारण दोषी सिद्ध किया जाता है और बड़े पदोंपर आसीन तथाकथित बड़े लोग सही बात सुननेको भी तैयार नहीं होते। छोटे लोगोंको इस प्रकारका अपमान क्षण-क्षण सहता पड़ता है। इसी प्रकार 'अजूबाराम' के माध्यमसे बड़े पदवालोंकी चक्राचौधसे आकर्षित एक स्त्री व्यक्तित्वपर व्यंग्य-प्रहार किया गया है। इस कहानीका नायक

१. प्रका. : समकालीन प्रकाशन, २७६२ राजगुरु मार्ग, नयी दिल्ली-११००५५। मूल्य : प्रत्येक खण्ड ३०.०० रु.।



ग्रामीण भोलेपनकी जीवंत प्रतिमा है। वह अपने भाई से मिलने आता है बड़े उत्साहके साथ, किन्तु उसे उसकी भाभी इसलिए पसंद नहीं करती, क्योंकि वह कहींका बड़ा पदाधिकारी नहीं है। अंतमें अपमानित होकर उसे वहांसे लौटना पड़ता है। वास्तवमें इस समाजमें छोटे लोगोंको हर क्षण इस प्रकारके अपमान सहने पड़ते हैं।

‘माइक्रोस्कोप’ भी इसी प्रकारकी चेतनासे सम्पन्न एक प्रतीकात्मक कहानी है। एन्ड्रैई पत्नीसे बच्चोंके कपड़े खरीदनेके लिए बचाये गये पैसोंसे माइक्रोस्कोप खरीद लाता है। इस यंत्रके माध्यमसे देखनेपर उसे स्थान-स्थानपर कीटाणुओंकी भरमार दिखायी देने लगती है। यहांतक कि मनुष्यके रक्तमें भी इन्हीं कीटाणुओंने स्थान बना लिया है। यह स्थिति देखकर वह अपने आवेशको रोक नहीं पाता और उन्हे नष्ट करनेके प्रयत्न शुरू करता है, किन्तु अंतमें इस कार्यमें अन्योकी रुकावट के कारण वह सफल नहीं होपाता। समाजके अंग-अंग में समाये इन कीटाणुओंकी अंततः सफाई नहीं होपाती। इस प्रकार युग-जीवनकी वास्तविकताओंको सहज-स्वाभाविक और रोचक रीतिसे इस कहानीमें प्रकट किया गया है। ‘अडियल मोन्या’ भी इसी प्रकार प्रकृतिकी चुनौतीको स्वीकारनेवाले एक सहज ग्रामीण चेतना सम्पन्न युवककी कथाको अभिव्यक्त करती है। वह शाश्वत गतिवान् इंजीन बनानेका प्रयत्न करता है, पर अंततः सफल नहीं होता क्योंकि थ्रीसिस, एण्टीथ्रीसिस और सिन्थेसिसकी प्रक्रियासे संबद्ध संसारमें किसीभी बातकी शाश्वत गति संभव नहीं है।

वस्तुतः ग्रामीण जीवनके चित्रणको अत्यंत सजीव रूपमें लेखकने ‘ग्रामवासी’ शीर्षक कहानीमें चित्रित किया है। ये लोग भोले, ईमानदार, भावुक और भयभीत रहते हैं। बूढ़ी मालान्याके माध्यमसे ग्रामीण जनकी सही पहचान वर्णित हुई है, जो बेटे द्वारा मास्को बुलाये जानेपर सबसे सलाह लेती है, यात्राकी जानकारी प्राप्त करती है और ढेर सारे झंझट और अनुभवकर अपने निश्चयको बदल देती है। ‘विषाद’ शीर्षक कहानी वैसे तो कष्टनासे ओतप्रोत है। निचाई अपनी पत्नीकी मृत्युपर बेहद दुःखी है, अपने होशो-हवास खोकर मरने तककी सोच लेता है, किन्तु ऐसे क्षणोंमें कथानायकके दादाजी उसे फटकारते हैं कि वह स्वयंको सम्हले। परेशानी और दुःख तो सबके साथ हैं किन्तु धैर्य और हिम्मतके सहारे मनुष्य अपने जीवन

को सार्थक बना सकता है। वे उसे एक ऐसे फौजी ड्राय-वरकी कथा बताते हैं जिसके जवान बैठने उसके सामने दम तोड़ दिया, पर उसने घर या किसीको भी अपना वह दुःख नहीं बताया, ताकि अन्य अकर्मण्य न बनें।

‘कारीगरी’ शीर्षक कहानी जीवनकी वास्तविकताका व्योरा देती हुई मानवकी सौंदर्य चेतनाको अभिव्यक्त करनेके साथ ही नकलीपन ओढ़नेवालोंपर व्यंग्य प्रहार करती है। स्योमका एक अच्छा कारीगर है। अनेक मानवीय दुर्बलताओंके होते हुए भी वह सौंदर्य चेतनाके प्रति जागरूक है। एक पुराने चर्चकी बारीक कारीगरीपर मोहित होकर वह न जाने कितनीही जगह उसके जीर्णोद्धारके लिए दौड़ता है, किन्तु उसे आशाके अनुरूप सहयोग नहीं मिलता। अंतमें उसे पता चलता है कि किसी राजकुलने किसी अन्य चर्चकी नकलपर उसे बनाया था और उसमें अपने झूठको छिपानेकी कोशिश की थी। यह सब एक प्रकारसे किसी नकली मुखांशकी तरह था, उसी प्रकारका, जैसा स्वयं स्योमकाने एक शहरी लेखक के लिए बनाया था। शहरके मकानके किसी कमरेमें गांव के घर जैसा घर बना लेनेसे कोई सच्चा और ईमानदार नहीं बन जाता। उसके लिए उस जीवनको सही रूपमें जीनेवाला व्यक्ति चाहिये, जो वह लेखक नहीं था, उसी प्रकारसे वह चर्चकी कारीगरीकी सच्चाई नहीं था।

इस प्रकार अपनी इन सभी कहानियोंके माध्यमसे लेखकने शहरके तथाकथित सभ्य समाज या उसकी चकाचौंधसे मोहित समाजपर व्यंग्य-प्रहार किये हैं और वे भी अत्यंत रोचक और प्रभावशाली रीतिसे। आम जीवनकी साधारण घटनाओंपर आधारित ये कहानियां जहां एक ओर ग्रामीण जीवनके मूल्योंको आकार देती हैं, दूसरी ओर सभ्य कहलानेवालोंपर भी अप्रत्यक्ष प्रहार करती हैं। वस्तुतः इनमें ग्रामीण जीवनका उचित स्वरूप अधिक सजीव होकर मुखरित हुआ है। भाषाकी भांति शैलीभी ओजस्वी और सरल है। इस संग्रहमें कहीं-कहीं अनुवादकी भाषा यांत्रिक-सी हो गयी है तथा छापेकी अशुद्धियांभी कथारसमें अवरोध पैदा करती हैं, फिर भी ये कहानियां बहुत-कुछ बातें सरलबासे कह जाती हैं और जो कुछ कहती हैं, वही मानव जीवनका सत्य है—इसमें संदेह नहीं।

वसीली शूविशनकी प्रतिनिधि कहानियां भाग ‘दो’ में भी आठ कहानियांही संकलित हैं। इनमें जहां कुछ



कहानियां हृदय पक्षके आन्दोलनोंको भावात्मकताके धरातलपर उकेरती हैं, वहां कुछ कहानियां बुद्धिजीवी अभिजात्य वर्गका मजाकभी उड़ाती हैं तथा प्रगतिवादी चेतनाको प्रत्यक्षतः सामने रखती हैं।

प्रस्तुत संग्रह 'खण्ड दो' की पहली कहानी 'युवा वागानोवकी व्यथा' एक भावुक युवकके संशयग्रस्त होने की रोचक कथा है। वह मायाको चाहता था, किन्तु मायाका अन्यत्र विवाह हो जाता है। भौतिक-विज्ञानी पतिसे मायाकी जम नहीं पाती और दोनों अलग हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमें माया वागानोवको पत्र लिखकर उसके पास कुछ दिन रहनेकी आकांक्षा प्रकट करती है। वागानोवके मनमें पूर्व प्रेमकी भावनाएं तरंगित होने लगती हैं। इसी बीच उसका परिचय पोपोव नामक व्यक्तिसे होता है जो उसे अपनी पत्नीके व्यवहारके विरोधमें शिकायत करने आया था। उससे वागानोवको पता चलता है कि स्त्रियोंमें अच्छे व्यवहारकी आशा बेकार है। एक ओर वे अनवरत धोखा हैं, अतः उनके साथ रहना संभव नहीं है, किन्तु दूसरी ओर वे परिवारकी जरूरतको पूरा करती हैं—अतः धोखा होनेके बावजूद भी जीवनमें जरूरी हैं। वस्तुस्थिति जानकर वागानोव असमंजसकी स्थितिमें आ जाता है और कुछ निश्चित नहीं कर पाता कि वह मायाको आनेके लिए लिखे या न आनेको। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक धरातल पर युवा मनके अनिश्चयकी स्थितिको सजीव और सहज रूपमें इस कहानीमें अभिव्यक्त किया गया है।

दूसरी कहानी 'स्त्योप्का' भी गांवके सीधे भावुक हृदयकी अभिव्यक्तिको प्रस्तुत करती है। कथानायक वसंत का मौसम आनेपर जेलसे भागकर घर आता है—केवल इसलिए कि वह अपने परिवार जनोंके बीच इस ऋतु में रहनेकी आकांक्षाको बलवती पाता है। यहां वह सबसे झूठ बोलता है कि उसे अच्छे व्यवहारके कारण जल्दी छोड़ दिया गया है। वह हर किसीके मनको चैन देने वाली चर्चाएं करता है। इन चर्चाओंमें गांवके लोगोंकी सरलता, सहृदयता और भोलापन अभिव्यक्त होता है। मां, पिता, गूंगी बहन आदिके साथ वह उन सपनोंको पूरा करना चाहता है, जो, जेलमें आते रहते थे। यद्यपि वह बादमें पुनः पकड़ लिया जाता है तथापि अपने गांव और वहांके वातावरणके प्रति उसके मनके लगावको भुलाया नहीं जा सकता। इस भावुक व्यक्तित्वकी भी कथाकारने अत्यंत सहजताके साथ मनोवैज्ञानिक परि-

वेशमें सजीव चित्रित किया है।

तीसरी कहानी नाविक फिलिप और पावेल नामक दो प्रेमी-प्रतिद्वन्द्वियोंकी है। यदि प्रतीकात्मक रूपमें देखा जाये तो ये दोनों प्रगतिवादी चेतनाके अनुसार दो विरोधी विचारधाराओंका प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं। फिलिप मारियाको चाहता था, पर मारियाके परंपरावादी स्वरूप (निष्ठाओं) से उसे चिढ़ थी। इसीलिए वह उससे विवाह नहीं करता। मारिया पावेलसे विवाहकर लेती है किन्तु वह वहां सुखी नहीं रह पाती और बादमें उसकी मृत्यु हो जाती है। फिलिप मारियाके शवको देखना चाहता है किन्तु पावेल उसे इसकी अनुमति नहीं देता। फिलिप पावेलको कोसता है और बताता है कि मारिया उसे ही चाहती थी, पावेलको नहीं। पहले कुछ छीन लेनेका दंभ और बादमें रिक्त हो जानेपर उत्पन्न अभिजात्य चिढ़ लेकर पावेल बेकाबू हो जाता है। इस प्रकार मारियाको केन्द्रमें रखकर कथाकारने सहृदय फिलिप और दंभी पावेलके माध्यमसे मानवीय व्यवहारका यथार्थ चित्रण किया है। इस कहानीकी पृष्ठभूमिभी दृढ़ मनोवैज्ञानिक धरातलसे संबद्ध है।

उच्च वर्गके प्रति ऐसाही आक्रोश प्रस्तुत संग्रहकी अन्य कहानियोंमें भी है। 'ग्लेबने सबकी छुट्टी कर दी' शीर्षक रचनामें ग्लेबका गांववालोंके साथ मिलकर ऊंचे वर्गके लोगोंको ऊलजलूल तकौसे पराजित करनेकी चेष्टा साम्यवादी चेतनाका मुखर रूपही कही जा सकती है। वह जैसेही सुनता है कि उसके गांवमें कोई 'बड़ा' व्यक्ति आया है, उसे किसीभी युक्तिसे परास्त करनेके लिए वह बड़ जाता है। यह कार्य उसके इस वर्गके प्रति प्रबल आक्रोश का ही परिणाम कहा जा सकता है। अंतमें ग्लेब इस स्थितिको स्पष्ट भी कर देता है और कहता है कि टेक्सो से आकर सूटकेसोंका प्रदर्शन करके ये गांववालोंको आश्चर्यमें डाल सकते हैं किन्तु इन्हें यह जानना आवश्यक है कि ज्ञानधारापर किसी एक वर्गका ही अधिकार नहीं है। बड़े लोगोंको चाहिये कि वे धरतीपर ज्यादा उतरा करें, मात्र अपने आकाशमें ही न उड़ा करें। केवल लेखोंमें 'जनता' और 'लोक' शब्दका प्रयोग कर लेनेसे कोई विशिष्ट नहीं होता, जनताके निकट होनेसे ही व्यक्ति विशिष्ट हो सकता है। इस प्रकार ग्लेब अभिजात्य रूप अपनाये लोगोंको जनतासे जुड़ने की सीख देता है। स्पष्टतः यह साम्यवादी चेतनाकी



ही अभिव्यक्ति है।

‘रुबल शब्दोंमें और कोपेक अंकोंमें’ शीर्षक कहानी शोषकोंके क्रियाकलापोंको अभिव्यक्त करती है। यह शोषणरत वर्ग किस प्रकार निर्दोषको दोषी और स्वयं को पाक-साफ सिद्ध करनेमें सतत लगा रहता है। उनकी पद्धतियोंको प्रतीकात्मक रूपमें अभिव्यंजित किया गया है। इस प्रकार इस कहानीके माध्यमसे आभिजात्य अफसरोंकी शोषणरत कार्यप्रणालीपर प्रस्तुत कहानीमें सशक्त व्यंग्य प्रहार किया गया है। इसी प्रकारका विरोधी भाव ‘भूरे बालको नमस्ते’, ‘मील पारदो मदाम’ आदि कहानियोंमें भी अप्रत्यक्षतः झलकता है। ‘भूरे बालको नमस्ते’ में जहाँ आधुनिका बनी कात्या का विरोध प्रदर्शित हुआ है, वहाँ ‘मील पारदो मदाम’ में ब्रोंका द्वारा झूठी कहानियोंके माध्यमसे हीरो बननेके चावको अत्यंत व्यंग्यात्मक रीतिसे प्रस्तुत किया गया है। इनमें सहज-स्वाभाविक रीतिसे चरित्र-विश्लेषण किया गया है तथा कथाका बहाव भी स्वाभाविक गतिका होने से मनको छू लेता है। ‘हृदय प्रत्यारोपण’ शीर्षक कहानी रुग्ण मानसिकतावाले पशु चिकित्सक कोजुलिनके उन्मादको अभिव्यक्त करती है। वह मुर्दोंके माध्यमसे जीवितोंमें नयी विचारधाराके संचारका आकांक्षी है। अत्यंत सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक धरातलपर लेखकने प्रतीकात्मक रीतिसे अपनी क्रांतिकारी विचारधाराको इस कहानीमें अभिव्यंजित किया है।

इस प्रकार प्रस्तुत खण्ड दो, खण्ड एक का भाँति मूलतः लेखककी साम्यवादी चेतनाको अभिव्यक्त करता है। लेखककी कहानी-कलावाद विशेषसे संबद्ध होनेके बाद भी सहज और स्वाभाविक गतिसे पाठकोंके मनको छूने तथा उनकी विचारधाराको प्रभावशाली रीतिसे प्रभावित करनेमें सक्षम है—इसमें संदेह नहीं। प्रस्तुत संग्रह की सर्वाधिक विशिष्टता उसकी स्वाभाविक कथा और चरित्रके चयनमें दिखायी देती है। सभी पात्र वर्ग पात्र हैं तथा सर्वव्यापी होनेके साथही सहज और स्वाभाविक रूपमें चित्रित हुए हैं। उनका चित्रण इस प्रकार हुआ है कि वे लम्बे समयतक याद रहें। इस प्रकार चरित्रोंका सहज चित्रण और कथाकी आकर्षक स्वाभाविक गति—दोनों मिलकर रचनाकी दीप्ति प्रदान करते हैं।

अनुवादके संबंधमें अनुवादक श्री शर्माकी मान्यता है कि आदर्श अनुवाद जैसा कुछ नहीं होता और अनुवाद मूल जैसा नहीं होसकता। यदि ‘प्रकर’—जनवरी ६२—३६

लेखक विशेषकी साहित्यिक शैली तथा भाषागत विशेषताओंकी गंध अनुवादसे आती है और लेखकके कथ्यके साथ कोई छेड़खानी नहीं हुई है, तो वह मेरे लिए एक सफल अनुवाद है। श्री वेदकुमार शर्माका यह कथन निःसंदेह स्तुत्य है। फिरभी कहीं कुछेक स्थलोंपर अनुवादने शुद्ध यांत्रिक स्वरूप धारणकर स्वाभाविक प्रवाहमें बाधा पहुंचायी है। फिरभी कथा-रस से ओतप्रोत वसीली शूक्लिनकी ये कहानियां मानवके यथार्थको सही धरातलपर रोचकता और स्वाभाविकता से प्रस्तुत करती हैं। □

### पतझड़?

कहानीकार : शशिप्रभा शास्त्री

समीक्षक : डॉ. यशपाल वैद

मैंने अपने ‘स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानीमें प्रकृतवाद एवं अश्लीलता’ शोध प्रबन्धमें शशिप्रभा शास्त्रीको आधुनिक महिला लेखिकाओंमें अग्रगण्य माना है और यहभी कल्पना और आदर्शको वे अपने लेखनमें अधिक महत्त्व देती हैं—और उनकी ‘अनुत्तरित, क्रिया प्रतिक्रिया ग्रन्थियां और कैची’, जैसी कहानियोंका इसी सन्दर्भमें प्रकृतवाद एवं अश्लीलता विश्लेषण भी किया है। इससे हटकर मेरे कहानीकारको जो लेखक-लेखिकाएं अधिक रास आते हैं उनमें शशिप्रभा शास्त्री का एक नाम अवश्य है। और अब जब मैंने उनके नवीनतम कहानी संग्रह ‘पतझड़’ की छह कहानियां पढ़ीं तो विस्तृत विश्लेषणके स्थानपर इन कहानियोंपर संक्षिप्त प्रतिक्रियाही लिखनेका मन बना। यह नहीं इन कहानियोंने मुझे पूरी तरह बांधा नहीं, अवश्य बांधा है और ये कहानियां पाठकीय संवेदनाको उभारनेमें सक्षम हैं। जैसाकि फलैपमें कहा गया है कि सामाजिक विसंगतियों, व्यक्ति मनकी आद्रता, उद्वेलन और प्रताड़नका ईमानदार चित्र प्रस्तुत करनेवाली ये कहानियां अपनी इन्हीं सब विशेषताओंके कारण इस संकलनको संग्रहणीय बनाती हैं। कहानियां पढ़नेके बाद मैं इस कथनकी पुष्टि करता हूँ।

१. प्रका. : किताब घर, २४/४८६६ शीलतारा हाउस, अंसारी रोड, नयी दिल्ली-११०००२ । पृष्ठ : १४८; का. ८८; मूल्य : ४०.०० रु.।



संग्रहकी प्रथम कहानी 'दोना गुलाबका' है। इस कहानी में अनुभव कहानी कुछ सुख दे जाते हैं। यह एक नये भाव-बोधकी सशक्त कहानी है।

'समानान्तर' कहानी में नारीका त्याग व्यक्तिगत जीवन—प्रेरणास्रोत आयाम हैं। कथ्यसे अधिक कलात्मक पक्ष अधिक प्रभावी है इस कहानी में।

'साईनबोर्ड बदलकर' तथा 'पतझड़' दोनों कहानियां शिक्षा जगत् में व्याप्त भ्रष्टाचारको सामने लाती हैं। 'साईनबोर्ड बदलकर' की ईमानदार प्रिंसिपल पाठक मनको पसन्द आती है परन्तु वह क्योंकि नियमों, सूत्रोंकी रक्षा नहीं कर पाती। सफल आदमी वही है जो वाचाल, मक्कार घूसखोर और सिफारिश की बाहें, पकड़ें हुए है। हमारी सोच क्यों कुन्द होती चली जा रही है इस कहानीका यही नारा है। 'पतझड़' कहानी में व्यंग्य है—आजके सरकारी कामोंपर जहां आम आदमीको, कहीं कहींपर कोई लाभ नहीं होता केवल बजटका पैसा भर खर्च कर दिया जाता है, भलेही प्रौढ़-प्रशिक्षण शिविर हों या कुछ और।

'शक्ति परीक्षण' कहानी जिस कथावस्तुको लिये हुए हैं, वह भलेही हमारे लिए नयी न हो। दफ्तरी भ्रष्ट वातावरणमें प्रतिभाओंका दमन होताही है पर इस कहानीने एक प्रश्न उठाया है 'अशिष्ट कौन हैं?'

'दोना गुलाबका'—एक भावुकतापूर्ण कहानी है किन्तु यथार्थ अभिव्यक्तिका हाथ पकड़ें हुए। वृद्ध माता-पिताको अपनी बेटीकी गृहस्थीकी चिन्ता हो जठती है। उसके दुःखसे दुःखी हैं, पर एकाएक यह प्रतीत होता है कि उनकी गृहस्थीभी दुःखमें ही बीती है। भोगा हुआ यथार्थ, इसकी समझ अनुभवके बाद और तभी सुखकी अनुभूति। अपना अपना भाग्य अपना अपना सुख-दुःख। फिरभी दूसरोंके अनुभव और अपने

## काव्य

### वोले शोरियिकाकी कविताएं

[अंग्रेजीसे अनूदित]

अनुवादक : वीरेन्द्रकुमार बरनवाल

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

नाइजीरियाके एक अव्योकुटा कसबेमें जन्मे

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, १८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३।

पृष्ठ : २८२; डिमा. ६१; मूल्य : ८५.०० रु.।

(१३.७.१९३४), १९८६ में नोबेल पुरस्कार पानेवाले वोले शोरियिकाकी मातृभाषा योरूबा है, किन्तु वे लिखते अंग्रेजीमें है। उन्होंने कविता, नाटक, उपन्यास, आत्म-कथा, आलोचना आदि विभिन्न विधाओंको अपनी अभिव्यक्तिके लिए चुना है, किन्तु वे मूलतः कवि हैं। अंग्रेजीमें लिखना उनकी विवशता है। इस विवशताको उन्होंने इन शब्दोंमें व्यक्त किया है—“आप लोग (भारतीय) बहुत भाग्यशाली हैं। आपके पास अपनी एकाधिक भाषाएं, लिपियां और उनके माध्यमसे

‘प्रकर’—माघ २०४८—३७



सृजनकी सुविधाएं हैं। अश्वेत अफ्रीकाका यह दुर्भाग्य रहा कि उनकी लोकभाषाओंकी कोई मान्य लिपि एक लम्बे समय तक नहीं विकसित हो सकी। परिणामतः जिस उपनिवेशवादी यूरोपीय देशकी दासतामें उन्हें रहना पड़ा, उसीकी भाषा और लिपिको अपनाना उनकी नियति बन गयी।” (पृ. २२८)। अंग्रेजीमें लिखनेकी विवशतासे यह लाभ हुआ कि उन्हें नोबेल पुरस्कार मिल गया। यदि उन्होंने अपनी मातृभाषामें लिखा होता तो उन्हें नोबेल पुरस्कार मिलनेकी सम्भावना नहीं के बराबर होती। इसका कारण श्वेतों की श्रेष्ठता-ग्रन्थि है। इस सन्दर्भमें शोयिकाका कहना है कि “वस्तुतः अधिकांश श्वेत जगत् इस भ्रमसे ग्रस्त है कि उत्कृष्ट रचनात्मक प्रतिभा अफ्रीका या तीसरी दुनियाके हिस्सेमें आतीही नहीं है। किसीभी क्षेत्रमें उत्कृष्टताकी तलाशमें वे प्रायः अफ्रीका और एशियाके देशोंको खारिज कर देतेहैं।” (पृ. २३०)। यह श्रेष्ठता ग्रन्थि श्वेतोंमें ही नहीं मिलती, उन अश्वेतोंमें भी मिलतीहै जो अंग्रेजी या दूसरी पश्चिमी यूरोपीय भाषाएं जानतेहैं, बोलतेहैं और उनमें लिखतेहैं। हम अपने देशमें इसका रोज अनुभव करतेहैं। हम विकसित या अविकसित भाषाका ठीक-ठीक अर्थ जाने बिना दम्भपूर्वक अंग्रेजीकी तुलनामें सभी भारतीय भाषाओं को अविकसित घोषित कर देतेहैं। वे भारतीय, जो अंग्रेजीमें लिखतेहैं स्वयंको भारतीय भाषाओंमें लिखनेवालोंसे अधिक उत्कृष्ट समझतेहैं। यह अलग बात है कि समय उन्हें कूड़ेदानमें फेंक देताहै और अंग्रेज तथा अमरीकी उन्हें घास नहीं डालते। इसके विपरीत भारतीय भाषाओंमें रचित श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियोंके जब अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओंमें अच्छे अनुवाद प्रकाशित होतेहैं तब उन्हें अंग्रेजीमें लिखित रचनाओंकी अपेक्षा अधिक महत्त्व मिलताहै। इसका कारण यह है कि सूचनाओंका आदान-प्रदान तो विदेशी भाषाओंके माध्यमसे हो सकताहै; उनके माध्यम से मुट्ठी-भर लोग जनतापर शासनभी कर सकतेहैं, पर श्रेष्ठ साहित्य तो अपनी भाषामें ही लिखाजा सकताहै।

बोले शोयिकाकी समीक्ष्य पुस्तकमें उनकी अनूदित कविताएं—चाहे उनका विषय प्रकृति हो, राजनीति हो, दार्शनिक चिन्ताएं हों या और कुछ—पढ़ते समय दो बातें बहुत तीव्रतासे अनुभव होतीहैं—एक अमूर्तता,

‘प्रकर’—जनवरी’९२—३८

और दो ठण्डापन। प्रश्न उठताहै कि शोयिकाकी कविताएं इतनी अमूर्त और ठण्डी क्यों हैं? क्या इसके लिए अनुवाद उत्तरदायी है? कहा जाताहै कि कविता का अनुवाद सम्भव नहीं है। हम इस मान्यतासे दूर तक सहमत हैं; क्योंकि मूल भाषाका संगीत, संस्कृति, अर्थकी बहुस्तरीयता, अलंकृति आदि बहुत-सी चीजें अनुवादकी भाषामें नहीं आ पातीहैं। परन्तु निष्ठवान् और समर्थ अनुवादक अनुवादभी मूलके इतने निकट ले आताहै कि मूलका अनुभव पाठक पा लेताहै। बरनबालकी अनुवादकीय निष्ठा और क्षमता असंदिग्ध है। उन्होंने अनुवाद बड़े श्रमसे कियाहै। समीक्ष्य पुस्तककी भूमिकासे स्पष्ट है कि शोयिका और उनकी कवितासे वे अभिभूत हैं। उन्होंने अनुवाद व्यावसायिकताकी विवशतासे नहीं कियाहै अपितु यह अनुवाद करके उन्होंने प्रेमको दक्षिणा दीहै। अतएव हम मानेंगे कि शोयिकाकी कविताएं मूलमें ही इतनी अमूर्त और ठण्डी हैं। और इसका कारण है उनका अपनी मातृ-भाषामें न लिखकर अंग्रेजीमें लिखना। इसलिए अनूदित रूपमें भी उनकी वही कविताएं सबसे अधिक प्रभावशाली बन पड़ीहैं जिनमें एक अफ्रीकी अपने अफ्रीकीपनके साथ व्यक्त होताहै; जैसे ‘टेलीफोनपर बातचीत’ (पृ. १६३) कवितामें जिसमें काले होनेकी पीड़ा निर्बन्ध होकर प्रकट हुईहै; या अफ्रीकाकी आंच-लिकताने अभिव्यक्ति पायीहै; जैसे ‘अबीकू’ (पृ. १८५) में—

बेकार ही बांध दिये तुमने मेरे पांव

अपनी चुड़ियोंके जादूई घरेमें

मैं अबीकू हूं, गुहार लगाता हुआ

पहली बार और बारम्बार !

क्यों रोज मैं वकरियों और कौड़ियोंके लिए

खजूरके तेल और बगरी भभूतके लिए

रतालू नहीं अंकुशते ताबीजकी शकलमें

ढंक लेनेको अबीकूके अंग अपनी मिट्टी तले।

भस्मावृत आगकी आंचकी तरह शोयिकाकी अमूर्त और ठण्डी कविताओंमें से उनकी अनुभूतिकी ऊष्मा अनेक बार अनुभव होतीहै। कहनेको आजकी दुनिया सभ्यताकी इतनी सीढ़ियां चढ़ गयीहै जितनी पहले कभी नहीं चढ़ाथी; और श्वेत जातियोंका दावा है कि दुनियांकी सभ्यताको यहांतक पहुंचानेमें उनकी भूमिका सर्वाधिक रहीहै; उन्होंने मनुष्यको महत्त्व दियाहै और



विश्वको स्वतन्त्र जनतान्त्रिक शासन-व्यवस्था दी है; नमूनों से भी—  
कानूनका शासन स्थापित किया है; लेकिन क्या हम यह नहीं अनुभव करते कि आजकी शासन-व्यवस्था जितनी क्रूर है उतनी पहले कभी नहीं थी; सत्ताधीशों के सामने आज मनुष्य जितना निरीह बन गया है उतना पहले कभी नहीं था। शोषिकाकी नीचे उद्धृत पंक्तियाँ इसी सत्यको रेखांकित करती हैं और इसे तीसरी दुनियाँ का कवि ही अनुभव और व्यक्त कर सकता है—

अगर हिम्मत है  
और ले सकते हो  
तो लो इन्साफको अपने हाथों में।  
ताकतकी सम्प्रेदना-शून्य तलवार  
हैवानियतमें पस्त कर देती है 'हेरोद' को भी  
और गैर कानूनीपनमें कानून के डाकुओं तक को।  
(पृ. ६३)।

भूमिकामें वीरेन्द्रकुमार बरनवालने बोले शोषिका का परिचय देते हुए लिखा है कि "अलबत्ता उन्होंने साहित्य और कलाके आदर्श प्रतिमान अपने अभीष्ट देव ओगुनके नामपर भी शपथ न लेकर सत्यनिष्ठाकी शपथ ली थी। पर अटल ओगुन-भक्तिके बावजूद शोषिका ईसाई ही हैं—एक ऐसे ईसाई, जो अपना सलीब वक्षके ऊपर नहीं, बल्कि अन्तरकी गहराईमें धारण करता है..." (पृ. ३०)। शोषिकाकी अनूदित कविताएं पढ़ते समय हम उनकी ईसाइयतका बराबर अनुभव करते हैं। उन्होंने अपनी कवितामें यूनानी, रोमन और इंग्लिशके संदर्भों और मिथकोंका जितना उपयोग किया है उतना अफ्रीकी या एशियाई मिथकों और संदर्भोंका नहीं। इसे ईसाई मिशनरियोंके पब्लिक स्कूलोंमें अंग्रेजी-माध्यमसे शिक्षा प्राप्त करनेवाले भारतीयोंको देखकर अच्छी तरह समझा जा सकता है। एक तो पश्चिमी शिक्षाही अफ्रीका-एशियाके जनोंको उनकी धरतीसे काट देती है; ऊपरसे अंग्रेजी माध्यम। इसका प्रभाव तो कोढ़में खाज जैसा होता है।

अनूदित रचना पढ़कर जहां हमें मूल रचनाकारके अनुभव-जगत्, संस्कार और कला-दृष्टिका पता चलता है वहीं अनुवादके भी। शोषिकाके अनुवादक बरनवाल के काव्य-संस्कारका पता हमें समीक्ष्य पुस्तककी 'भूमिका', 'अपनी बात' और 'परिशिष्ट' के रूपमें जो कुछ उन्होंने लिखा है, उससे तो चलता ही है, साथ ही अनूदित कविताओंमें प्रयुक्त उनकी भाषाके इन तीन

(१) मेरी जुबानही / इकरारनामा है।

मेरी गारण्टी है, वे ही / करेंगे बाहिफाजत  
सफ़र /  
एकतरफ़ा रास्तेवाली गलीमें / चालो-  
चलनमें जिन्हें /  
मैं मानता हूं / हलफ़ उठाये मोतबर।

(पृ. ६५)

(२) घूमर, नीचे तक कटी हुई घासपर  
झूलती, गीली काई लगी झाड़ियाँ,  
उबरती धुएँके वोझसे, बचती  
छरहरी दूबकी छुवनसे, अन्दरही अन्दर  
लुटराई, धरतीपर झुकी, देती हैं जन्म  
घूमर घड़ियों, दिनों और सालोंको।  
(पृ. ११४)

(३) अग्नितुलिकाके निःशब्द स्थलों  
पिपीलिकाके कर्दम-उद्गीरण  
तोड़ते हैं पवन और परागके कण  
शिल्पी पुष्पछादन और कुसुमदण्डके  
बच जाते हैं मानवके पदनिक्षेप...  
(पृ. १२६)

इन उद्धरणोंमें प्रयुक्त शब्दावलीके आधारपर पाठक अपने निष्कर्ष निकालें। हम केवल इतना कहना चाहेंगे कि वीरेन्द्रकुमार बरनवालने बोले शोषिकाकी कविताओंको हिन्दीमें प्रस्तुत करके महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। वे कविताके श्रेष्ठ अनुवादक हैं और उनसे हम बहुत उम्मीद लगा सकते हैं। □

### श्रमसे स्वर्ग?

[तेलुगुसे अनूदित]

कवि : डॉ. चल्ला राधाकृष्ण शर्मा

अनुवाद : डॉ. एम. रंगय्या

समोक्षक : डॉ. मान्धाता राय

प्रस्तुत काव्य-संग्रह तेलुगुके लब्धप्रतिष्ठ कवि डॉ. चेल्ला राधाकृष्ण शर्माकी पचपन कविताओंका

१. प्रका. : दक्षिणांचलीय साहित्य समिति, १-१-४०५/७/१ गांधीनगर, हैबराबाद-५००३३०।  
पृष्ठ : ५६; डिमा. ६०; मूल्य : ७०.०० रु.।

'प्रकर'—माघ'२०४८—३६



डॉ. एम. रंगय्या द्वारा हिन्दीमें किया गया भावानुवाद है। डॉ. शर्मा बहुभाषाविद् एवं बहुआयामी प्रतिभाके साहित्यकार हैं। उनके हृदयमें भारतभूमि, भारतीय संस्कृति और मानवताके प्रति गहरी आस्था है। अभिजात्य स्थितिकी चकाचौंधमें भटकनेके स्थानपर जन-साधारणके दुःख-दर्दके प्रति संवेदनशील रहे हैं। कामचोरी, हिंसा, घृणा, द्वेष और ईर्ष्या जैसी आधुनिक नागर मानसिकताके स्थानपर कठोर श्रम, ग्रामीण भोलापन, सौहार्द, प्रेम, त्याग, भाईचारा, अहिंसा और त्याग सब मिलाकर अमानवीयताके स्थानपर मानवीयताका स्वर उनकी इन कविताओंमें मुखरित हुआ है। मिट्टी, श्रम, अनुपम त्याग फल, सुख-शान्ति, आम आदमी जैसी कविताओंमें इन्हीं भावोंकी अभिव्यक्ति हुई है। 'मिट्टी' को कविने रत्नगर्भा, जीवनदाता, समताका प्रतीक और अन्न-वस्त्रोंका आधार बतलाकर कविताको धरतीसे जोड़ा है। मिट्टीसे ही गांव जूड़े हैं। कविको दिल्ली और दूसरे महानगरोंके चकाचौंधपूर्ण जीवनमें, जहां 'हर कोई अपने मार्गका दीवाना है' गड्ढेके गंदे पानीमें नगरकी मलिनता, दूरतक फैले झोंपड़ोंमें ऊँच-नीचकी भावना और कचरेके ढेरमें नरक व धोखाधड़ी दीखती है। किन्तु उससे बाहर निकलकर खेतोंकी हरियालीके बीच ग्राम जीवनका स्पर्श पातेही उसके मन-प्राण पुलकित हो उठते हैं। 'मेरा गांवही मेरी शरण है' कवितामें भारतके सभी प्रमुख शहरोंमें घूमनेके बाद कविको लगता है—

सभी स्थानोंको देखनेके पश्चात्  
लगा कि मेरा गांवही मेरी शरण है  
मेरा जीवन रक्षक है।

ग्रामीण मानसिकताके रचनाकारको प्रकृति सुन्दरताकी लताके समान हँसती-महकती दीखती है। बिहारीने वसंतको 'आवत नारि नवोढ़ लौं' कहा है। राधाकृष्ण शर्माभी प्रकृतिके इस रूपके दीवाने हैं—

नवल रूपमें दिखायी दी  
नवोढ़ा-सी गोचर हुई।

प्रकृतिके स्निग्ध सुन्दर हासमें कविको मधुर भाव की लहरों और कोमल सूक्तियां दीखती है। वह माता-सी पुनीत है। बाढ़ और आंधीकी चपेटमें मुरझाये पेड़ वसन्तमें दुल्हन-से सजे लगते हैं। इस परिवर्तनको कविने 'शान्त क्रान्ति' कहा है। प्रकृतिको सहिष्णुताकी साकार मूर्ति बताते हुए रचनाकार पूछता है कि मानव

उसकी संतान होकर क्यों नहीं उसके जैसे आदर्श अपनाकर जीना सीखता? क्योंकि प्रकृतिसे बड़ा देवता जगत्में कहीं नहीं है।

कर्मही जीवन है। यह भाव प्रत्येक कवितामें कहीं-न-कहीं व्यक्त हुआ है। कविने इसे 'एक नया मंदिर' की संज्ञा दी है। जहां धूप-दीप-नैवेद्य तथा अकर्मण्यताके स्थानपर—

धूपमें, बरखामें, खलिहानोंमें  
काममें, खानोंमें, कार्यालयके कमरेमें  
श्रमसे पूर्ण हृदय ही  
इस मंदिरका गर्भालय है।

इस मंदिरका प्रमुख 'ध्येय' है लोक-हित। 'शान्ति सूक्ति' कवितामें 'निराला' जी की 'तोड़ती पत्थर' के समान्तर जन-साधारणके जीवनको व्यक्त किया गया है—

उसकी ओर एकटक देखता रह गया,  
पर, वह अपने काममें लीन है।

चालीस वर्षकी उम्रमें ही गरीबी और अत्यधिक परिश्रमके कारण उस मजदूरके मुखपर बुढ़ापा झांक रहा है। कवि आश्चर्यमें है कि इस कामचोरीके युगमें 'इतनी लगन उसमें कहाँसे आयी है।' उसकी चाह मात्र यह है—

काम मिले और पेट भर जाय  
कर्मही देश सेवा है  
वही उसका सर्वस्व है।

निरालाजीकी कवितामें तो कर्मके साथ-साथ आक्रोशभी है। यहां 'अपनेही काममें वह कर्मवीर लीन' है। उसके सामने ही वामपंथी और दक्षिणपंथी बहस करते-करते परस्पर झगड़कर ढेला मारते हैं। वह ढेला उन्हें न लगकर उसे ही लगता है। दोनों ओरकी मार खाकरभी वह शान्तिकी ही बात कहता है। 'एक बाप' कविताके पिताकी विवशता 'सरोज स्मृति' से मिलती-जुलती है। लड़कीका पिता अपना सब कुछ गंवाकर भी बेटीके लिए सुख-शान्तिके स्थानपर कटारों का पिंजरा, अग्नि परीक्षा और अपने लिए नरककी यातनाही पाता है। धनको कपूर-सा उड़ाकर भी अन्तमें बेटीको तलाकका सुखही दे पाता है। 'आम आदमी' कविता ऐसेही अभावग्रस्त जीवनकी पीड़ाको अभिव्यक्ति देती है। इसमें छोटे और बड़े लोगोंकी स्थिति को तुलनात्मक रूपमें कविने रखा है। इसके चलते



कविता गहराई तक प्रभावित करती है —

‘नट’ छोटा है तो पर उसके बिना

बड़ी मशीन भी सो जाती है ।

कविका तर्क है कि पाषाणोंमें प्राण झोंककर उसे सुन्दर बनानेवाला साधारण व्यक्ति होता है न कि विशिष्ट जन । किन्तु सामाजिक मान्यताको इस सच्चाई के विपरीत पाकर कवि खीझता है —

धीरे-धीरे बढ़ते पेड़को कोई नहीं सराहता,

अपितु रसयुक्त फलको ही सभी चाहते हैं ।

कवि सच्चाई और यथार्थके रास्तेपर चलकर उस आदमीको देखता है । उसने देखा ही नहीं उसके साथ जिया भी है । वह पाता है कि उसकी कमर जीवन भार को ढोनेकी असमर्थताके कारण झुक गयी है । जीवन-नरकसे ऊबनेके कारण उसके माथेकी लकीरें टेढ़ी पड़ गयी हैं गोया उसकी मुसीबतें हों । उदरकी झुर्रियां भूखे रहनेकी निशानीके समान हैं । वह पर्वके दिन न भोज का आयोजन करता है और न नया वस्त्र पहनता है । दूसरेको देखकर ही वह जान पाता है कि आज पर्व है । (पृष्ठ २५) ।

मानवकी भांति प्रकृतिमें भी कविका ध्यान उपेक्षित तत्त्वोंकी ओरही अधिक गया है । ‘अनुपम त्याग का फल’ कवितामें समयके बदलते स्वरूपका चित्रण हुआ है । कलतक बड़े वृक्ष, ऊंचे महल और शिक्षित बड़े लोग ही सब कुछ थे । आज, तिनका, झोपड़ी और अशिक्षित सामान्यजन भी वही सम्मान पा रहे हैं क्योंकि —

समाजमें समानताकी नींव पड़ा है,

आम आदमीको आज सिंहासन मिला है ।

भारतीय संस्कृति मानवीय मूल्यों तथा नैतिकताके प्रति कविके हृदयमें गहरी आस्था है । ‘भरत वाक्य’ कवितामें दानवताके स्थानपर मानवताको पनपाने, ईर्ष्याके स्थानपर प्रेम और शान्तिकी आकांक्षा की गयी है । प्रकृतिको इस रूपमें सबसे बड़ा देवताकी संज्ञा कवि ने दी है क्योंकि वह सबसे अधिक विनम्र और सहिष्णु है । ‘मनुष्य और मनीषी’ में दृष्टिकोणकी व्यापकता व्याप्त हुई है । कबीरके ‘बुरा जो देखन मैं चला’ की भांति कविको हर मनुष्य एक मनीषीके समान दिखता है (पृष्ठ १८) । ‘मेरी अभिलाषा’ में भी लोक-कल्याण की अभिलाषा व्यक्त हुई है । किन्तु इस विशाल दृष्टिकोणको अपनानेके लिए भीतरके ईर्ष्या, मोह, गर्व,

क्रोध, स्वार्थ, व्यामोह और अधिकार जैसे दुष्ट भावों को मिटाना होगा । इन्हें कविने ‘सात पहाड़’ की संज्ञा दी है जिन्हें पार करनेपर उदात्त मानवीयता रूपी परमेश्वरके दर्शन होंगे ।

कवि श्रमपूर्ण जीवनको ही सार्थक मानता है । संग्रहकी अंतिम कविता ‘श्रममें स्वर्ग’ में यही भावना व्यक्त हुई है । कविको श्रममें विजयका स्वर सुनायी पड़ता है तथा नया स्वर्ग दीखता है । उसने कथ्यकी पुष्टिके लिए प्रकृतिसे तुलना की है । वह कहता है — कमल संगमरमरपर नहीं कीचड़में खिलता है । घान महलमें नहीं खेतमें उगता है । सोना संदूकमें नहीं आग में दमकता है । विज्ञानकी उपलब्धियां भी श्रमका ही फल है । नदीको आगे बढ़नेके लिए श्रम करना पड़ता है । इस विश्लेषणसे कवि इस निष्कर्षपर पहुंचता है —

‘जहां श्रम है वहां सर्वस्व है  
वास्तवमें श्रममें ही स्वर्ग है ।

(पृष्ठ ५६)

संग्रहकी कविताएं यथार्थ-बोध और धरतीसे जुड़ी होनेके कारण पाठकीय चित्तमें गहराईतक प्रवेश करती हैं तथा कर्तव्यके लिए प्रेरित करती हैं । किन्तु इन्हें कोरा उपदेशपरक नहीं कहा जा सकता । ये भोगे हुए जीवनकी सच्चाईसे जुड़ी हैं । दूसरी ओर प्रकृतिके प्रत्यक्ष जीवनसे जुड़ी होनेके कारण संवेदनशील मनको झकझोरती हैं । यही इनकी चरितार्थता है ।

कवि द्वारा प्रयुक्त ‘उपमान’ और ‘प्रतीक’ पुराने एवं नये दोनों प्रकारके हैं । चिर परिचित होनेके कारण वे संदर्भ विशेषमें प्रयुक्त होनेपर प्रभावशाली बन गये हैं । स्थान-स्थानपर एकत्रित गंदे पानीको नगरकी मलिनताका, दूर-दूर तक फैले जंग खाये टिनके ऊंच-नीच झोपड़े नगरके ऊंच-नीच जीवनका, बिखरे बाल नग्न शरीरका, झुकी कमरवाले गरीबीका तथा कचरेके ढेर शहरकी धोखाधड़ीका प्रतीक बनकर प्रयुक्त हुए हैं । शब्दाडम्बर और बौद्धिक उलझावके स्थानपर सहज रूपमें बात कही गयी है किन्तु आन्तरिक सच्चाई और संगतिके कारण उसकी प्रभावान्विति सघन है ।

प्रस्तुत कृति भावानुवाद होकर भी मौलिक रचना का आस्वाद देती है । इसके लिए मूल रचनाकारके साथही अनुवादक भी बधाईके पात्र हैं । आज हिन्दी कवितामें जहां कुछ लोग जटिलता और बौद्धिक पेंच-



पांचको ही युगोन कविताकी आवश्यक पहचान मान रहेहैं वहां अपनी ईमानदारी और सहज अभिव्यक्तिके चलते संग्रहकी कविताएं अपनी विशिष्ट पहचान बनाती हैं। □

## मूकमाटी?

[महाकाव्य]

कवि : आचार्य विद्यासागर

समीक्षक : डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त

जब-कभी साहित्यकारोंने लोकसे हटकर अपनी प्रतिभाका परिचय दिया है, आलोचकके लिए नयी चुनौतियां बनीहैं। वर्तमान युगमें महाकाव्य उस शास्त्रीय चौखटेसे बहुत बाहर निकल आया है जिसका निर्माण आचार्योंने शताब्दियों पूर्व किया था। आचार्य विद्यासागर कृत महाकाव्य 'मूकमाटी' ऐसीही कृति है।

लेखक जैन धर्माचार्य हैं और स्वाभाविक है कि उनकी स्थापनाएं उक्त धर्मके सिद्धान्तोंसे प्रभावित हुईहैं। अपने ग्रंथकी भूमिका 'मानस तरंग' में लेखकने इन्हीं सिद्धान्तोंपर आधारित कुछ प्रश्न प्रस्तुत कियेहैं। ये प्रश्न वस्तुतः ऐसे लोगोंके समक्ष रखे गयेहैं जो 'निमित्त' कारणोंके प्रति आस्था नहीं रखते। आगे बढ़नेसे पूर्व इनमेंसे कुछ प्रश्नोंपर दृष्टि डालना उचित होगा—

० क्या आलोकके अभावमें कुंभकार भी कुंभका निर्माण कर सकता है ?

० क्या कुंभ बनानेकी इच्छा निरुद्देश्य होती है ?

निराकार ईश्वर द्वारा सृष्टि-रचनाके तर्कको झुठलाते हुए आचार्यप्रवर लिखतेहैं—“अशरीरी होकर असीम सृष्टिकी रचना करना तो दूर, सांसारिक छोटी क्रियाभी नहीं कीजा सकती।” किन्तु आगे चलकर जब वे सिखतेहैं—“हां, संसारी ईश्वर बन सकता है, साधनाके बलपर, सांसारिक बन्धनोंको तोड़कर”, तो वह स्वतः एक धार्मिक उपदेष्टासे साहित्य-सर्जककी भूमिका ग्रहण करने लगतेहैं। काव्य-मर्मज्ञोंने काव्यको भावयोगके क्षेत्रकी साधना कहकर काव्य और शास्त्र

का विभेद स्पष्ट करनेका यत्न किया है।

'मूकमाटी' का लेखक साधनाको सृजनसे अलग नहीं मानता और यह सृजन सृष्टिमें सतत चलनेवाली प्रक्रियाका पर्याय है। धरती माटीसे कहती है—“आस्था के विषयको / आत्मसात् करना है / उसे अनुभूत करना हो तो / साधनाके सांचेमें / स्वयंको ढालना होगा सहर्ष !”

सृजनकी इस यात्रामें एक निमित्त कुंभकार भी है। मिट्टी स्वयं परिश्रम नहीं करती, परिश्रम तो कुंभकार करता है।

'मूकमाटी' का लेखक कुंभकारकी जिस सृजन-साधनाको काव्यका विषय बनाता है, वह 'अज्ञेय' की 'असाध्य बीणा' के केशकम्बलीकी साधनाके बहुत निकट है। उसका मानना है—

“केवल ज्ञेय ही नहीं / भावोंकी / निकटता भी / अत्यन्त अनिवार्य है / इस प्रतीतिके लिए !”

इस भागवत प्रतीतिके लिए करुणा एवं दयाकी अनिवार्यता स्वीकार की गयीहैं क्योंकि—“दयाका होनाही / जीव विज्ञानका / सम्यक् परिचय है।” मिट्टीसे कुंभ बननेकी पूरी प्रक्रिया सामान्य मनुष्य के उदात्तीकरणकी प्रक्रिया है। मिट्टी जिन-जिन दशाओंसे गुजरती है, वे साधना-पथकी विभिन्न स्थितियां हैं। इनमें सबसे प्रमुख है विनम्रता क्योंकि—

“खरा शब्दभी स्वयं / विलोम रूपसे कह रहा है— / राख बने बिना / खरा दर्शन कहां ?”

यह विनम्रताही अहिंसा-पथकी पहली शर्त है तथा क्षमा-भावके साथ संयुक्त होकर समस्त विश्वके कल्याण की कामना करती है—

“खम्मामि, खमंतुमें— / × × × यहां कोईभी तो नहीं है / संसार-भरमें मेरा वैरी।”

कविने शान्त रसको सभी रसोंसे श्रेष्ठ माना है और यही इस महाकाव्यका मुख्य रस है। कविकी मान्यता इन शब्दोंमें व्यक्त हुई है—

“करुण रस जीवनका प्राण है × × × वात्सल्य जीवनका त्राण है × × × शान्त रस जीवनका गान है × × × संयमरत धीमान्को ही / ओम् बना देता है।”

कुम्भपर उत्कीर्ण चिह्नोंकी विशद् व्याख्या करता हुआ कवि कुम्भके पकानेकी समूची प्रक्रियाको साधक की तपस्या, मनुष्यके उदात्तीकरणकी यात्रा बना देता

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १८ इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-३।  
पृष्ठ : ४८८; डिजा. ८८; मूल्य : ५०.०० रु।

'प्रकर'—जनवरी'९२—४३०. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



है। अवा की अग्निका कहना है—

“अग्नि-परीक्षाके बिना आज तक / किसीको मुक्ति नहीं मिली / न ही भविष्यमें मिलेगी।”

कुम्भका अग्निके प्रति समर्पण भी इसी साधना-पथका संकेतक है—“ × × × मेरे दोषोंको जलाओ / मेरे दोषोंको जलाना ही / मुझे जिलाना है।”

मिट्टीके कुम्भके पकनेके साथ आचार्य अपने महा-काव्यको समाप्त नहीं करते। कथाको अधिक स्पष्ट करते हुए वह इसे एक सेठके मोक्षकी कथा बना देते हैं। नगर सेठ अपने निवासपर महासन्तका स्वागत करते हैं। स्वर्णादि बहुमूल्य धातुओंसे निर्मित कलशोंकी अपेक्षा मिट्टीके कलशका महत्त्व स्थापित होता है तथा यही कलश सेठको सपरिवार मोक्षकी प्राप्ति करवाता है। सेठ और कुम्भकी यह यात्रा कहीं ‘पिलग्रिम्ज

प्राग्रस’ की याद दिलाती है तो कहीं कामायनी और मनुके कैलाश-शिखर पहुंचनेकी दशाके चित्रणका आभास होने लगता है; पुनः कहीं श्री नरेश मेहताके महाप्रस्थानमें पाण्डवोंकी अन्तिम मात्राकी अनुभूति पाठकको घेरने लगती है—

“सबसे आगे कुम्भ है / मान-दंभसे मुक्त / × × छा जावे सुख-छांव / सबके सब टलें अमंगल भाव।”

कवि प्रायः काव्य-जगत्से दर्शन और चिन्तनका वीथियोंमें चला जाता है किन्तु चिन्तक मन भावका स्पर्श नहीं छोड़ पाता और यही विशेषता इस ग्रन्थको धार्मिक-दार्शनिक ग्रंथकी अपेक्षा एक काव्य-ग्रन्थ बनाती है। चिन्तन और दर्शनको कलात्मक सौन्दर्यसे युक्त करना ही काव्यका उच्चतम उद्देश्य है और इस उद्देश्य में ‘मूकमाटी’ का कवि पूर्णतः सफल हुआ है। □

## आत्मकथा

### दस्तक जिन्दगीकी?

लेखिका : प्रतिभा अग्रवाल

समीक्षक : सुरेन्द्र तिवारी

अपने जीवनके सम्बन्धमें खुद लिखना और वह भी पूरी तटस्थता और ईमानदारीके साथ, एक बहुत ही कठिन और जटिल काम है। किन्तु यहीं एक रचनाकारकी परीक्षा भी होती है कि वह कितना सच बोल सकता है। प्रतिभा अग्रवालको जो लोग निकटसे जानते हैं, उनके जीवन और कर्मसे परिचित हैं, वे यदि उनकी आत्मकथा ‘दस्तक जिन्दगीकी’ पढ़ें तो निश्चित रूपसे यह स्वीकार करेंगे कि प्रतिभाजीने अपने अतीतको

ईमानदारीसे पुनर्जीवित किया है। एक मर्यादाकी सीमा को बनाये रखकर अपने जीवनमें जितना वे झांक सकती थीं, झांका है। हालांकि यह भी सच है कि इस मर्यादाकी सीमाने ही उन्हें बहुत खुलने नहीं दिया है।

‘दस्तक जिन्दगीकी’ का प्रारम्भ बहुत ही रोचक है, कथात्मक !” लगा किसीने दरवाजेपर दस्तक दी। दरवाजा खोला तो हीने-से किसीने कानोंने लगकर फुपफुसाया — बीबी, आज तुम उनसेठकी देहरी लांघ साठमें पैर धर रही हो, बधाई।’ अर्थात् साठकी आयु-सीमामें प्रवेश करते-न-करते प्रतिभाजीने आत्मकथा लिखनेकी बात सोच डाली और लिखभी डाली। सम्भवतः इसके पीछे अपने पति मदनजीकी स्मृति रही होगी, जिनका देहांतसान इकसठ सालकी उम्रमें हो गया था। ऐसी स्मृतियां भयपूर्ण भी होती हैं। तो उस उम्रतक पहुंचनेके पहले अपने अतीतको याद करना बहुत ही स्वाभाविक है।

१. प्रका. : अप्रस्तुत प्रकाशन, ५ बी प्रीक चर्च रो, कलकत्ता-७०००२६। पृष्ठ : १३०; डिमा. ६०; मूल्य : ४०.०० रु.।

‘प्रकर’—साध २०४८—४३



उनका जन्म भी बनारसमें, भारतेन्दु भवनमें, ही हुआ और वहांका सारा संस्कार प्रतिभाजीको विरासतमें मिला। इनके दादाजी बाबू राधाकृष्णदास भारतेन्दु जीके साथ रहे और उनके प्रभावमें खुदभी अनेकानेक रचनाएं लिखीं, जिनमें नाटक, निबन्ध तथा जीवनियां शामिल हैं। दादाजीके बाद उनके पिताजी भारतेन्दु-नाट्य-मंडलीसे जुड़े रहे और इस प्रकार साहित्य और रंगमंचका संस्कार प्रतिभाजीको मिला, जो आगे चल कर पुष्पित-पल्लवित हुआ। किन्तु यह साराका सारा प्रभाव और संस्कार उन्होंने किससे, कब और किस रूपमें प्राप्त किया, इसका चित्रण वे अपनी आत्मकथामें करती हैं।

समीक्ष्य कृति प्रतिभाजीकी आत्मकथाका प्रथम खंडही है, इस कारण इसमें वे सिर्फ अपने परिवार—पहले मां-बापका परिवार फिर ससुरालका परिवार, अर्थात् अपना परिवार—के लोगोंके बारेमें बतानेमें ही लगी रही है। घरके एक-एक व्यक्तिका चरित्र-चित्रण वे विस्तारसे करती हैं, उस आदमीकी अच्छाइयों और बुराइयोंको एकसाथ समेटते हुए। यहांतक कि अपने पतिके जीवनको भी काफी बारीकीसे चित्रित किया है और पतिके स्वभावके प्रति यदि कहीं उनके मनमें असंतोष रहा है, तो उसे छिपाया नहीं है। जैसे विवाहसे पूर्व मदनजीका किसी दूसरी औरतसे सम्बन्ध था, इस बातको बतानेमें भी कोई हिचकिचाहट नहीं दीखती और न यही बतानेमें कि मदनजीने प्रतिभाजी से विवाह इसलिए किया कि वे एक साधारण परिवार की सुविधाहीन लड़कीसे विवाह करके उसे सब सुविधाएं प्रदान करके आगे बढ़ाना चाहते थे। इससे सुधार भी होता और 'रास्तेके फूलको हीरा बनाने' की इच्छा भी पूरी होती। (पृ. ६८)। प्रतिभाजी लिखती हैं कि—“इस उक्तिकी 'रास्तेके फूल' अभिव्यक्तिने मुझे सदा कचोटा। मैं न अनाथ थी न रास्तेमें पड़ी थी। फूल तो बगीचेका ही थी, भलेही छोटेसे घरके बाहर की छोटी-सी क्यारीका रही होऊँ।” (पृ. ६८)। मदनजीकी इस उक्तिने प्रतिभाजीको कितनी पीड़ा पहुंचाई होगी, इस बातका सहजही अनुमान किया जा सकता है।

अपनी आत्मकथामें अपने विवाहकी चर्चा सबसे अधिक विस्तारसे की है प्रतिभाजीने। देखने-दिखानेसे

प्रकर'—जनवरी'६२—४४

घटनाकी चर्चा, रस्मों-रिवाजोंका वर्णन, लेन-देन, दान, दहेज आदि तो हैं ही, सुशगरातको पति द्वारा अपनी पूर्व-प्रेमिकाकी चिट्ठियोंका बंडल पत्नीको भेंट स्वरूप देना और यह कहना—‘यही मेरी आजकी भेंट है। मैं जो हूँ, जैसा हूँ, सब इसमें लिखा है।’ (पृ. ७७)। अद्भुत है।

परन्तु इस आत्मकथाके माध्यमसे प्रतिभाजी सामाजिक कुरीतियों और विषमताओंकी ओरभी पाठकका ध्यान खींचना नहीं भूलतीं, और यही एक सजग रचनाकारकी पहचान है। समाजमें नारीकी स्थितिपर वे यत्र-तत्र गम्भीरतासे विचार करती हैं। किन्तु दो उद्धरण दर्शनीय हैं। सर्वप्रथम स्त्रीके अधिकारोंकी चर्चा करते हुए वे कहती हैं, “पुरुष प्रधान समाज होनेके कारण पुरुषोंको सब कुछ करनेका जन्म-सिद्ध अधिकार होता है, स्त्रीको अधिकारके लिए लड़ना पड़ता है, अभीभी पड़ रहा है। और सच पूछिये तो बात अभीभी अधिकारोंकी कम, सुविधाओंकी अधिक है। पुरुष सुविधाएं देता है, हम लेती हैं। यह मान-सिकता स्त्री-पुरुष सबकी है, यह हमारे संस्कारोंमें गहरे बैठ गयी है।” (पृ. ६९) नारी-पुरुष समानाधिकारकी बात करनेवाली स्त्रियोंको प्रतिभाजीकी यह बात अच्छी नहीं लगेगी, पर है तो यह सचही।

भारतीय समाजमें महिलाओंकी दयनीय स्थितिपर वे आगे और गम्भीरतासे विचार करते हुए कहती हैं, “भारतीय समाजमें सदियोंसे बालविवाह, बहुविवाह, सती प्रथा आदि प्रचलित रहे हैं। इन सबके फलस्वरूप कष्ट पाती रही हैं महिलाएं। बाल-विवाहके बाद जल्दी ही बालक पतिकी मृत्यु होगयी तो अल्पायुमें विधवा हुई लड़की, पति जीवित रहा तो अल्पायुमें मां बननेकी प्रक्रिया कालकी ग्रास हुई लड़की, बादमें पतिने एकाधिक विवाह किये तो उस पीड़ाको भी उसीने सहा और दुर्भाग्यसे पतिकी मृत्यु होगयी तो सहमरणके लिए भी वही बाध्य कीगयी। आज ये तीनों प्रथाएं कानूनन अपराध हैं बन्दभी कर दी गयी हैं। किन्तु आज सोचकर मन कांप उठता है कि सदियों-सदियों तक हमारी बहनोंने क्या नहीं सहा। हर प्रकारका लांछन, अपमान, पीड़ा सहती रही हैं। आजभी उसका पूरा-पूरा उन्मूलन नहीं हुआ है। (पृ. १०४)।

वास्तवमें प्रतिभाजी सदा साधारण व्यक्तियों और



समाजसे जुड़ो रही हैं, इस कारण उनकी चिन्ता व्यक्तिगत जीवनके साथ-साथ सामाजिक जीवनकी भी है और सामाजिक बुराइयोंकी ओरसे वे अपनी आंखें मूंदे नहीं रह सकतीं। कोईभी रचनाकार-कलाकार समाज विमुख होही नहीं सकता। प्रतिभाजीकी आत्म-कथासे यह जाना-समझा जा सकता है कि उनकी सतत चेष्टा समाजसे जुड़े रहनेकी ही रही है।

आत्मकथाके इस खंडमें वाराणसी और कलकत्ता में बिताये गये आरम्भिक दिनोंका चित्रण है, इस कारण अभी उन लोगोंकी चर्चा यहां नहीं है जो बादमें लेखन और रंगकर्मके स्तरपर उनसे जुड़े। इसके लिए हमें अभी दूसरे खंडकी प्रतीक्षा करनी होगी। और

निश्चित रूपसे उस खंडमें प्रतिभाजीके संघर्षपूर्ण जीवन के चित्र हमें देखनेको मिलेंगे, जिनका इस खंडमें अभाव है। इस खंडको पढ़कर तो यही लगता है कि बहुतही क्रमबद्ध ढंगसे उनका अबतकका जीवन चलता रहा है और एक सामान्य भारतीय नारीकी तरह वे सारी स्थितियोंको स्वीकार कर जीती रही हैं।

पुस्तकमें प्रतिभाजीके प्रारम्भिक जीवनके कई चित्र तथा परिवारके अन्य सदस्योंके चित्रोंके साथही प्रसिद्ध चित्रकार खालेद चौधरीके कुछ रेखांकन भी हैं जिनसे पुस्तककी साज-सज्जा आकर्षक बन पड़ी है। वैसेभी इस पुस्तकका प्रकाशन-पथ प्रशंसनीय है। □

## दार्शनिक विवेचन

### चित्त और मन

लेखक : युवाचार्य महाप्रज्ञ,

समीक्षक : डॉ. निजामुद्दीन

तेरापंथके दार्शनिक सन्त मनीषी युवाचार्य महा-प्रज्ञ बहुविश्रुत साहित्यकार हैं। दर्शनके क्षेत्रमें उनके योगदानको विवेकानन्द, अरविन्द, डॉ. राधाकृष्णन्, फ्रायड, जुंग आदिके समान महत्त्वपूर्ण माना जायेगा। जैन योग तथा जैन मनोविज्ञानका विवेचन उन्होंने मौलिक रूपमें प्रस्तुत किया है। अपनी विलक्षण मेधा एवं सृजनात्मक प्रतिभा द्वारा उन्होंने अनेक उत्कृष्ट ग्रंथोंकी रचना की है, जैसे—‘संबोधि’, ‘जैन दर्शन’, ‘मनन और मीमांसा’, ‘जैन योग’, ‘श्रमण महावीर’, ‘महावीरकी साधनाका रहस्य’, ‘जैन न्यायका विकास’, ‘जीवन-विज्ञान’, ‘चेतनाका ऊर्ध्वीकरण’ आदि। प्रेक्षा-ध्यान तथा मनोविज्ञानके आधारपर उनकी कुछ

१. प्रका. : तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाहन्—३४१३०६। पृष्ठ : ३५६; डिमा. ६०; मूल्य : ३०.०० रु.।

विशिष्ट रचनाएँ हैं—‘मनका कायाकल्प’, ‘अहंम्’, ‘आभामण्डल’, ‘किसने कहा मन चंचल है?’, ‘मनके जीते जीत’, ‘चित्त और मन’ आदि।

‘चित्त और मन’ मनोविज्ञानका श्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसमें ऐसे दो विषयोंका विद्वत्तापूर्ण ढंगसे विश्लेषण किया गया है जो सूक्ष्म तथा अमूर्त हैं। भारतके लिए मनोविज्ञान नया बताया जाता है और यह भी कहा जाता है कि पश्चिममें इसका विगत दो शताब्दियोंमें व्यापक विकास हुआ। भारतमें मनोविज्ञानके उद्गम व विकास पर व्यापक एवं गहन दृष्टि नहीं डाली गयी। इस अभावको कुछ पूरा किया है युवाचार्य महाप्रज्ञने।

मनोविज्ञानके इस ग्रंथमें प्रथम ‘मन’ का विभिन्न आयामोंमें विश्लेषण-विवेचन किया गया है। इस भागमें १७ अध्याय हैं। मनसे संबंधित लगभग सभी विषयोंका यहां सन्निवेश है जैसे मनकी अवधारणा उसका स्वरूप व अवस्थाएं, मनका ध्वनि-शरीरपर प्रभाव, मनकी शक्ति-शान्ति-तनाव, मन और स्वास्थ्य व जागरण, मन और अनुशासन, मनोदशाका बदलना, मनोविज्ञान और कर्म, मनोविज्ञान और आत्मविज्ञान आदि। दूसरे भाग



में 'चित्त' का निरूपण १० अध्यायोंमें प्रस्तुत किया गया है चित्त और चेतनाका विश्लेषणकर चित्त-समाधि, इन्द्रिय-मन-भाव, लेश्या और भाव, आभा-मण्डल, अतीन्द्रिय चेतना आदि विषयोंको आधार बनाया गया है। चित्त और मनको सामान्यतः समान रूप माना जाता है, लेकिन युवाचार्यने बड़े कौशल तथा विद्वत्तापूर्ण ढंगसे उन्हें परिभाषित, वर्गीकृत तथा परि-विश्लेषित किया है। 'जो चेतना बाहर जाती है उसका प्रवाहात्मक अस्तित्वही मन है', यह मनकी परिभाषा है। जैन दृष्टिसे मन दो प्रकारका है (१) चेतन (२) पौद्गलिक। पौद्गलिक मन ज्ञानात्मक मनका सहयोगी है और ज्ञानात्मक मन चेतन है। मनका स्थान मस्तिष्क है। शरीरमें दो ज्ञान-केन्द्र हैं—मस्तिष्क और मेरुदण्ड। मन एक है, वह वाहन, साधन, यंत्र है। चित्त अनेक है, चित्तकी वृत्तियाँ भी अनेक हैं। चित्तकी वृत्तियोंके कारण मन अनेक जैसा अभिभासित होता है। फ्रायडने मनको हिमखंड जैसा कहा जिसका थोड़ा भाग ही पानीसे ऊपर दृष्टिगत होता है। जुगने मनको महा सागर माना है और उसके ज्ञात व अज्ञात मन दो भेद किये हैं। अज्ञात मन 'डेप्थ साइकोलोजी' है। आधुनिक मनोविज्ञानमें अवचेतन मनकी जो व्याख्या की गयी है वह कर्मवाद, सूक्ष्म चेतना तथा चित्तके आधारपर की गयी है। मनोविज्ञानने भलेही मन और चित्तमें भेद न किया हो पर जैन दर्शनमें मन और चित्तको पृथक् माना गया है। मन अचेतन है, चित्त चेतन है। मन ऊपरका भाग है जो चित्तका संस्पर्श प्राप्तकर चेतन-सा प्रतीत होता है। अज्ञात मन, अवचेतन मनको चित्त कहा जा सकता है, ज्ञात मन मन कहा गया है। लेखकने मनकी तीन अवस्थाएँ मानी हैं—विक्षेप, एकाग्रता और अमन। विक्षेप मनका सतत विचरण है, एकाग्रता स्मृतिपर स्थिर रहना है और अमनसे अभिप्राय है मनको उत्पन्न न होने देना। मन स्थायी तत्त्व नहीं है। वह उत्पन्न और नष्ट होता है। (पृ. २६)। रंगोंका मनपर—शरीर पर गहरा प्रभाव पड़ता है। रंगोंका मनोवैज्ञानिक और रासायनिक प्रभाव होता है। प्रेक्षाध्यानमें भी रंगोंका महत्त्व रेखांकित किया गया है। काले रंगसे हिंसा-क्रूरता आती है, नीलेसे ईर्ष्या रसिकता पैदा होती है, पीत वर्णसे क्रोध, लोभकी अल्पता और शांति आती है। कपोत रंग वक्रता पैदा करता है। मनका शरीरपर विशेष प्रभाव पड़ता है, भय, घृणा, कपट, क्रोध, मनो-

भावोंके साथ शरीरको भी प्रभावित करते हैं। मनोबल टूटता है तो शरीरभी टूटता है। हमारा व्यक्तित्व केवल शरीरका व्यक्तित्व नहीं है, उसका संबंध मन और भावनासे भी है। (पृ. ७३)। शरीरके तनावसे शरीर शक्तिहीन हो जाता है। उदासीको लेखकने मानसिक विकार माना है। थाइराइड ग्रंथिके कम स्रावसे उदासी आती है। 'मनकी समस्या और तनाव' अध्याय आधुनिक तनावग्रस्त मनुष्यके लिए महत्त्वपूर्ण है, वातावरण और पर्यावरणभी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। लेखकने संतुलित आहार, अध्यात्म, रंग, प्राकृतिक चिकित्सा, स्वास्थ्य, अनुशासन आदिसे जोड़कर मनकी जो विवेचना की है वह ज्ञानके नूतन क्षितिज उद्घाटित करती है। मन आहारसे अति प्रभावित होता है। आहार चाहे राजसिक हो या तामसिक या सात्त्विक, मनको, शरीरको प्रभावित किये बिना नहीं रहते। पाचनशक्तिके साथ स्वभाव जुड़ा है। जिसका पाचन-तंत्र एवं उत्सर्जन तंत्र नियमित व स्वस्थ नहीं उसका भावनात्मक स्वास्थ्य गड़-बड़ायेगा। मनका, शरीरका संतुलन बिगड़ जायेगा। चंचलता और मन पर्याय हैं, मन छिप गया तो 'अमन' बन गया और 'अमन' चैनकी स्थिति है। अमन और मन साथ नहीं रह सकते। मनको प्रदूषणसे भी संबंधित किया है, जो सामयिक प्रश्न है। प्रदूषण-निवारण से स्वभाव ठीक रहेगा, मनभी नहीं टूटेगा। 'कर्मशास्त्र और मनोविज्ञान' के विश्लेषणमें संवेगका, संज्ञाका अच्छा वर्गीकरण है। (पृ. २०१)। लेखकने कर्मकी अलग परिभाषा की है—'आत्माकी प्रवृत्ति द्वारा और उसके साथ एक रसीभूत पुद्गल 'कर्म' कहलाता है, कर्म आत्माके निमित्तसे होनेवाला पुद्गल परिणाम है।' पृ. (२१०)।

दूसरे भागमें 'चित्त' का भी विविध कोणोंसे परीक्षण-निरीक्षण किया गया है। चित्त और मनका भेद बहुत स्पष्ट है—क्रिया करना शरीरका काम है, उसका संचालन करना चित्तका काम है। चित्तके द्वारा मन प्रवर्तित होता है। मनको स्थिर करनेकी बात ही असंगत है। चित्त स्थिर हो सकता है। चित्त ही गत्यात्मकता और मनकी गत्यात्मकतामें यही अन्तर है कि चित्त स्थिर हो सकता है, मन स्थिर नहीं हो सकता। चित्त स्थायी तत्त्व है, चित्त हमारे अस्तित्वसे जुड़ा है, मन स्थायी तत्त्व नहीं है' (पृ. २४०)। 'मनका अर्थ है



कल्पना, मनका अर्थ है चिन्तन। स्मृति, कल्पना और चिन्तनके अतिरिक्त मन कुछभी नहीं है। अमनकी अवस्था, मनकी समाप्ति, ध्यानकी अवस्था है। ध्यान के द्वारा अमनस्क स्थितिका अनुभव कर सकते हैं। जहां अमनस्कता आती है, मन समाप्त हो जाता है वहां चित्त काम करता है। मन और चित्त दो हैं, एक नहीं है। 'फ्रायड' का चिन्तन माइंडपर आधारित है, जुगने माइंडके साथ 'साइक' (मस्तिष्क) को भी रखा। 'मन सीमित तत्त्व है, चित्त व्यापक है। मन और चित्तके आधारपर समूचे आचार और व्यवहारकी व्याख्या कीजा सकती है।' इस प्रकारका विश्लेषण-विवेचन युवाचार्य महाप्रज्ञकी शैलीकी मौलिकता है। वे कठिन विषयका सरल, सुबोध शब्दोंमें उते परिभाषित करते हैं। यहां उनकी शैली आचार्य रामचन्द्र शुक्लके समान है।

'चित्त' और 'मन' का विवेचन उन्होंने अन्य कृतियोंमें भी किया है। 'आभामण्डल' पुस्तकमें कहा है कि शरीर, मन और चित्तका गहरा संबंध है। शरीर पौद्गलिक परमाणुओंकी संरचना है, मन उससे भी सूक्ष्म परमाणुओंकी संरचना है। चित्त चेतनाका स्तर है। वह शरीर और मनके साथ काम करता है। चित्त अपौद्गलिक है, शरीर और मन पौद्गलिक हैं। चित्त नाड़ी संस्थानमें सूक्ष्म चेतनासे जुड़ा है, उसका मुख्य केन्द्र मस्तिष्क है। 'अवचेतन मनसे सम्पर्क' में कहा गया है कि मन स्वयं चेतन नहीं है पर वह चेतनका पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। चित्त और मनकी विभाजक रेखा स्पष्ट है—चित्त चैतन्यधर्मी है और मन चैतन्यधर्मी नहीं है। युवाचार्य महाप्रज्ञ जिस प्रसंग या विषयको लेते हैं उसका सम्यक् विश्लेषण करते हैं, उसकी परत-दर-परत खोलते चलते हैं, उसका पर्यवेक्षण करते हैं, अनुसंधानात्मक दृष्टि डालते हैं। चेतनाकी बात करते हुए कहते हैं—चेतनाके कई स्तर हैं, इन्द्रिय स्थूल स्तर है, उससे सूक्ष्म मन है, बुद्धि उससे भी सूक्ष्म है, अध्यवसाय उससे भी सूक्ष्म है। चेतना तीन प्रकारकी है—इन्द्रिय चेतना, मनश्चेतना, बौद्धिक चेतना। दो प्रकारकी चेतनाएं हैं—द्वन्द्व चेतना और द्वन्द्वातीत चेतना। द्वन्द्व चेतना आवेग, तनाव, समस्या उत्पन्न करनेवाली है। द्वन्द्वातीत चेतनाका नाम सामायिक है। सामायिकके घटित होनेपर मनपर अंकुश लग जाता है, वह विकल्पोंसे खाली हो जाता है।

युवाचार्यने जैन मनोविज्ञानकी दृष्टिसे भी मनपर विचार किया है। मन स्वतन्त्र पदार्थ न होकर आत्मा का ही गुण है। मनकी प्रवृत्ति स्वतन्त्र नहीं, वह सापेक्ष दृष्टिसे नो-कर्मकी स्थितिमें जुड़ी है। (पृ. २१०)। चैतन्य गुण पदार्थ आत्मा है। प्रत्येक आत्माकी स्वतंत्र सत्ता है; वह किसीका अंश नहीं। कर्म पुद्गल परिणाम है जो आत्मासे निमित्त होता है। अन्य पौद्गलिक पदार्थोंकी भांति कर्मभी प्राणियोंको प्रभावित करते हैं। जहां भोजनशक्तिका प्रभाव शरीरपर, स्थूल और आत्मा पर सूक्ष्म पड़ता है वहां कर्मका प्रभाव स्थूल रूपमें आत्मापर पड़ता है और सूक्ष्म रूपमें शरीरपर पड़ता है। कर्मशास्त्रानुसार उन्होंने मुख्य चार आवेग माने हैं जिन्हें 'कषाय' कहा जाता है—क्रोध, मान, माया और लोभ। जो अपावेग हैं वे सात हैं, इन्हें मूल भाव या विकार भी कहते हैं—हास्य, रति, भय, शोक आदि। साहित्यिक दृष्टिसे मूल भाव नौ माने गये हैं, जिन्हें 'रस' निष्पत्तिमें प्रमुख स्थान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त अनेकों संचारी भाव भी होते हैं। लेखकने सभी प्रकारके मनोविकारोंको चार कषायोंमें समाविष्ट किया है। इन कषायोंके नष्ट होनेपर वीतरागताकी स्थिति उत्पन्न होती है। चित्त समाधिका वर्णन भी यहां किया गया है। समाधि चित्तकी एकाग्रता तथा उसका निरोध कही गयी है। पतंजलिने यही कहा है। जैन साधनामें समाधि को चित्तका सामाधान सुतुलन कहा गया है। चाहे समाधि हो या आधि-व्याधि, चाहे इन्द्रिय या भाव हो या लेश्याएं हों, लेखकने अपनी विलक्षण प्रतिभासे इनके परीक्ष्य परिप्रेक्ष्यमें चित्त और मनका गहन-गम्भीर विश्लेषण किया है। उनका यह अध्ययन बहुमुखी है और चित्त और मनकी सभी पार्श्वभूमियोंका सूक्ष्मता से संस्पर्शन किया है। मनोवैज्ञानिक साहित्यके क्षेत्रमें प्रस्तुत ग्रंथका अपना विशिष्ट महत्त्व है इसे 'जैन मनो-विज्ञान' की श्रेणीमें भी रखाजा सकता है। युवाचार्यने मनको वचनके समान चंचल तो अवश्य माना है परन्तु यह नहीं माना कि मनके अश्वको वशमें न किया जाये। मनके अश्वको नियंत्रणमें रखाजा सकता है, उसपर बल्गा लगायीजा सकती है, बेलगाम घोड़ा तो भटक सकता है। लगाम हाथमें है तो अश्व उन्मार्गपर नहीं चलेगा। मन उपयोगी है, विकास-भूमिकाका प्रतीक है, चेतनाका विकास है, असंज्ञी जीव-कीड़ों-मकोड़ोंमें मनका



विकास नहीं होता। मन उपयोगी, मूल्यवान् है। उसकी लगाम है ज्ञान-श्रुतज्ञान। यदि ज्ञानकी लगाम नहीं लगायी तो घोड़ा परेशान करेगाही, उन्मार्गपर चलेगा ही। युवाचार्यने ठीक कहाहै—‘आदमीमें ज्ञान नहीं तो मन उसे सताने लग जाताहै। जब आदमीमें ज्ञान होताहै तब मन उसके लिए साधक बन जाताहै। उपयोगी बन जाताहै। मनको एकाग्र कियाजा सकताहै, उसकी चंचलताको मिटाया नहीं जा सकता।’ (पृ. १८६)। लेखक चाहताहै कि साधक मनके अश्वपर ज्ञानकी लगाम चढ़ाये रखे। मनको वेलगाम करना हानिप्रद है।

युवाचार्यने यह मानाहै कि सृष्टिकी संरचना शब्द, वाक्से हुई। ज्ञानके तीन पहलू हैं—स्मृति, कल्पना और चिन्तन, ये सभी वाणीपर निर्भर हैं। मन और वाणीमें भेद है या नहीं, इसपर भी लेखकने विचार कियाहै और कहाहै कि मन और वाणीको

पृथक् नहीं कियाजा सकता। मनका काम स्मृति करना, मनन करनाहै और स्मरण, मनन, चिन्तन भाषा-वाणी के बिना संभव नहीं। मौन चिन्तन मनन जब करतेहैं, भाषा-वाणीका क्या योग रहताहै, यह बात फिरभी विचारणीय है। उन्होंने मनको प्रशिक्षित करनेके लिए प्रेक्षाध्यानका सूत्र दियाहै। प्रेक्षाध्यानसे मूर्च्छा नष्ट होतीहै, मन संयमके प्रति सचेत हो जाताहै। मनके अनुशासनको लेखकने विभिन्न रूपोंमें उल्लिखित किया है।

‘चित्त और मन’ युवाचार्य महाप्रज्ञके ज्ञान-मंथन से उत्पन्न रत्नराशि है जिसकी आभा कभी निष्प्रभ नहीं होगी, उसे जितना गहनतासे निरीक्षित-परीक्षित किया जायेगा उतनीही अधिक ज्योतिर्मान् दिव्याभा सुधी पाठकोंके मन-मस्तिष्कको आलोकित-लाभान्वित करेगी। □

## भारतीय-साहित्य और भाषा

### तेलुगु नाटक

#### पलनाटि वीर चरित्र?

नाटककार : आचार्य कोर्लपाटि श्रीराममूर्ति

समीक्षक : पिडपति वेंकटराम शास्त्री

तेलुगुभाषी अनादिसे नाटकप्रिय हैं। उनसे उपासित नाटकोंका परिणत रूप तंजौर राजाओंके शासनकालके साहित्यमें—आधुनिक युगके आरम्भके यक्ष गानों

१. प्रका. : दिनकर पब्लिशर्स, महाराणि पेट, विशाख-पट्टण-५३०००२ । पृष्ठ : १०४; क्रा. ८५; मूल्य : १०.०० रु.।

‘प्रकर’—जनवरी १९२—४८

में—दर्शनीय है। बीसवीं शतीके आरम्भकी रुचिने तेलुगु नाटकको संस्कृत नाटककी दिशामें प्रवृत्त किया। धुरन्धर विद्वानोंने ग्रांथिक अथवा सरल ग्रांथिकमें गद्य-पद्यमिश्रित शैलीके नाटकोंकी रचना की। पद्य-संगीत एवं अभिनेताओंके कौशलने साधारण प्रेक्षकका भी मन मोह लिया। अतः प्रौढ़-भाषा-ज्ञानका अभाव सामान्य प्रेक्षककी नाटकप्रियतामें बाधक नहीं हुआ। आजभी, पाश्चात्य शैलीके नाटकोंके प्रचलित होनेपर भी, एकां-कियोंका आधिपत्य बढ़े जानेपर भी, चलचित्रोंके गली गलीमें प्रदर्शन होते रहनेपर भी, आकाशवाणी, दूर-दर्श्य एवं वी. सी. आर. का आधिपत्य घर घरमें जम जानेपर भी प्राचीन भारतीय शैलीके नाटकोंसे तेलुगु प्रेक्षकका मन विमुख नहीं हुआ। इस दृष्टिसे सोचें, तो ज्ञात होताहै, कि श्री कोर्लपाटि श्रीराममूर्तिकी “पलनाटि वीरचरित्र”—नाटककी रचना यादृच्छिक



नहीं, प्रत्युत् परम्परागत नाट्य-प्रेमके चरणोंपर भक्ति एवं श्रद्धा पुरस्सर समर्पित नवारुण कमल है। अतएव आचार्य श्रीराममूर्तिसे आंध्र विश्वविद्यालयके तत्कालीन उपकुलपति श्री एम. आर. अप्पारावने नाटक लिखने का अनुरोध किया, तत्कालीन लोकायुक्त जस्टिस आवुल सांबशिव रावने कृति स्वीकार की तथा राज्यके प्रधान नगरोंमें प्रदर्शनभी हुए तो इसमें आश्चर्य नहीं। डॉ. कोर्लपाटि श्रीराममूर्ति एम. ए., पी-एच. डी, डी. लिट् आंध्र विश्वविद्यालयके तेलुगु विभागके वरिष्ठ आचार्य हैं। सुविख्यात शोध विद्वान् ही नहीं, अपितु कवि नाटककार, निबन्धकार एवं आलोचक भी हैं। उनकी रचनाएं विविध विधाओंका प्रतिनिधित्व करती हैं—

१. श्री नायडु २. ईश्वरार्चन कळाशीलुडु ३. काव्य ज्योत्स्ना ४. नन्ने चोडुनि कुमान संभवमु प्राचीन ग्रन्थमा ५. नाथयोगि मन वेमन ६. चित्रशाल ७. गुडिगोपुरमु ८. वीण ९. धर्मज्योति १०. प्रतिज्ञ ११. सुवर्ण रेखलु १२. पांडवुल मेट्ट १३. पलनाटि वीर चरित्र।

पलनाडुका युद्ध तेलुगु हृदयपर पलनाटि भारतमु के रूपमें अंकित है। वह युद्ध बारहवीं शताब्दीमें हुआ। एक मान्यता है, कि वह युद्धभी कौरव-पांडव युद्धके समान भाइयोंमें हुआ। पलनाडु—आंध्रप्रदेशके गुंटूर जिलेका एक भाग—के स्वर्गवासी राजा अनुगुराजके पुत्रोंमें, विशेष रूपसे नलगाम और मलिदेवमें वह युद्ध हुआ। दूसरे पक्षका कथन है—भाई-भाईका यह युद्ध शैव एवं वैष्णव सम्प्रदायोंकी प्रेरणाका फल है। नागम्मा शैव सम्प्रदायकी थी और ब्रह्मनायडु वैष्णव सम्प्रदायका। दोनोंने दोनों पक्षोंको युद्धके लिए उकसाया। परन्तु ज्ञातव्य तथ्य यह है, कि न नागम्मा वीर शैव थी और न ब्रह्मनायडु वीर वैष्णव। दोनों भिन्न सम्प्रदायोंके अनुयायी अवश्य थे। किन्तु उनकी धार्मिकता युद्धोन्मादजनक नहीं थी। अनुगुराजके आठों पुत्रोंमें नलगाम ज्येष्ठ था। ज्येष्ठ पुत्र राज्यका अधिकारी था। धर्मप्रवणताके उन दिनोंमें मलिदेव आदि का राज्याधिकारके लिए युद्ध करनेकी कल्पनामें संगति नहीं बैठती। ऐसे मतभेदोंसे घिराथा पलनाटि वीर-चरित। इसपर शोध करने एवं नाटक लिखकर सामान्य जनको वास्तविकतासे परिचित करानेका विचार डॉ. श्रीराममूर्तिको १९६२ में हुआ। २३ वर्षों के अध्ययन तथा अध्यवसायके बाद १९८५ में नाटक का प्रकाशन हुआ।

हिन्दी पाठक जानतेहैं, दिनमें साठसे अधिक पृष्ठ लिखनेवाले आचार्य चतुरसेनको 'वयं रक्षामः' के प्रणयनमें वर्षों श्रम करना पड़ा। इतिहासके खंडहरोंसे निकालकर पूर्वाग्रहों और अन्धविश्वासोंसे धूसरित तथ्योंको तर्क एवं चिन्तनसे मांजकर एकसूत्रमें पिरोनेमें जो समय लगा, वह श्रीराममूर्ति जैसे शोधनिष्ठके लिए उचित ही है।

पलनाटि वीरचरितकी रचना सर्वप्रथम वीरगीत हुई, जिसे आल्ह-खंडकी लोकप्रियता प्राप्त हुई। विगत सात शताब्दियोंमें वीरगीतकी स्फीति स्वाभाविक है। उसके अतिरिक्त विविध विधाकारोंने अपनी कृतियोंको उसकी घटनाओंसे अलंकृत किया, जो अपनी अपनी पूर्वाग्रह निबद्ध भूमिकाएं निभा रही हैं। प्रस्तुत नाटककी कथावस्तु है :

पलनाडुके राजा नलगामके शासनका दसवां वर्ष है। ब्रह्मनायडुके प्रधान मन्त्रित्वमें राज्यकी समृद्धि होतीहै। चिट्टि गामाल पाडुकी नागकुरालु (अधिनेत्री) नागम्मा नामक कृषक अनायायुवती स्वर्गवासी राजा का एक पत्र लेकर उपस्थित होतीहै, जिसका लेखक ब्रह्मनायडुही है। उसमें नागम्माको सात घड़ी पलनाडु का शासन चलानेका अधिकार दिया गयाहै। यहभी लिखा गयाहै, कि नागम्मा उसका उपयोग अभीप्सित समयपर कर सकतीहै। नलगाम पिताकी आज्ञाका पालन करताहै।

नागम्माकी आज्ञासे सैनिक ब्रह्मनायडुके बंधु मित्रोंके घरोंपर छापे मारकर प्रभूत परिमाणमें कनक, रजत एवं रत्न ले आतेहैं। नागम्मा सिद्ध करतीहै वह अवैध उपायोंसे अर्जित संपत्ति है। उसपर राजकर भी नहीं दिया गयाहै। इतनाही नहीं, ब्रह्मनायडुके उन आश्रितोंने अनेकोंके दरिद्र रहते यह धन अर्जित किया है। नागम्मा नलगामके मनमें यह आशंका भी उत्पन्न करतीहै, कि ब्रह्मनायडुकी अचिर कालमें मलिदेवको—सौतेले भाईको—सिंहासन देकर नलगामको राज्यसे निष्कासितभी करनेकी भी योजना है। उसका मतव्य है, कि मलिदेव आदिको तत्क्षण कारागारमें डाल दिया जाये। उसके परामर्शका पालन होताहै। उपकृत नलगाम नागम्माको प्रधानमन्त्रीका पद देताहै। परन्तु ब्रह्मनायडु मलिदेव आदिकी मुक्ति एवं अर्ध राज्य प्राप्त करनेमें सफल होताहै। गुरजालामें नलगाम और माचलामें मलिदेवका राज्य चले—यह निश्चय होता



है। नागम्मा राज्य-विभाजनके विरुद्ध है। वह पल-नाडुके पुनः एकीकरणका निर्णय लेती है। मलिदेवके विवाहके समय मनोरंजनार्थ आयोजित मुगोंकी लड़ाई को नागम्मा वास्तविक स्पर्धाका रूप दिलाती है। हारकर ब्रह्मनायडु मलिदेव आदिके साथ सात वर्षके वनवासमें मंडादि जाता है। नागम्मा गोग्रहण एवं 'मंदपोट्टु' के द्वारा शत्रुओंको तंग करनेका प्रयास करती है। परन्तु ब्रह्मनायडुकी तलवारके सामने उसे पराजय मिलती है। ब्रह्मनायडु सात वर्षके वनवासके बाद सात मास युद्धकी तैयारीमें व्यतीत करता है। संधिके प्रयत्न होते हैं। ब्रह्मनायडु भूतराट् स्तंभकी स्थापना कर युद्धकी दिशामें आगे बढ़ता है। नागम्मा संधिकी संभावनाके अवगुंठनसे माचलार धावा बोल देती है। वीरहोमके पश्चात् ब्रह्मनायडु और नागम्मा बचे रहते हैं। ब्रह्मनायडु समझता है, कि नलगाम भी युद्धकी ज्वालामें भस्म हो गया है। परन्तु नागम्मा कहती है, कि मैंने नलगामको छिपाकर आपके खड्गके वारसे रक्षा की है। ब्रह्मनायडुको नागम्माकी चतुराई के आगे अपने खड्गकी असमर्थताका ज्ञान होता है। नागम्मा प्रतिहिंसाका कारण प्रकट करती है—आपने निष्ठुरतापूर्वक मेरे राजभक्त पतिकी हत्या की। मैंने निश्चय किया कि इष्टजन वियोगके दुःखकी ज्वालामें आपको जलाकर ही पतिका ऋण चुकाऊँ। आपके एकैक पुत्र बालचन्द्र सहित आपके सभी बन्धुमित्र युद्ध की भेंट होगये। इसके अतिरिक्त पलनाटि युद्धमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है। राज्यको विघटनसे बचानेके लिए मैं कटिबद्ध हुई हूँ। ब्रह्मनायडु स्वीकार करता है, कि मलिदेवकी मृत्यु हो जानेसे पलनाडुके विभाजनका प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता।

नाटकके पात्र न तो आदर्श धरातलपर खड़े हैं और न विविध वर्गोंके प्रतिनिधि हैं। सभी इतिहासकी अस्थि-चर्ममय सर्जीव मूर्तियाँ हैं। धर्म, अधर्म, नायक, खलनायक आदि प्रश्नोंपर विचार करना भी तथ्यसे दूर हो जाना है। नागम्मा नाटकका केन्द्र बिन्दु है। उसके इंगितपर पलनाडुका इतिहास लिखा गया। वह विदुषी और प्रतिहिंसापरायणा, किन्तु स्वार्थरहित महिला है। अपने लक्ष्यकी पूर्तिके पथके अवरोध दूर करनेमें वह वैध-अवैध उपायोंकी चिन्ता नहीं करती। फिर भी वह नारी है। दूत अलराजको, जो नलगामका दामाद होते हुए भी मलिदेवके पक्षसे आता है, विष

प्रयोगसे मरवानेमें संकोच नहीं करती। परन्तु अलराज की पत्नी पेरिदेवीके दुःखका ध्यान आते ही स्वीय भर्तृ-वियोगकी व्यथा मस्तिष्कमें फैल जाती है और तड़प उठती है। उसका अदम्य साहस उल्लेखनीय है। जिस ब्रह्मनायडुकी तलवारकी धारको कोई वीर पार नहीं कर सका, उसकी तलवारसे तलवार मिड़ाकर अप्रतिम साहसके प्रदर्शनके द्वारा चौंका देती है। नाटककी यह चरम सीमा बहिर्द्वन्द्वका महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। ब्रह्मनायडुकी वीरता अद्वितीय है। उससे नलगामभी डरता है। परन्तु नागम्माके बुद्धिबलके सामने उसे आत्मसमर्पण करना ही पड़ता है। महान् वीर होते हुए भी वह पुत्रवत्सल है। एकैक पुत्र बालचन्द्रके युद्धमें भाग लेनेसे वह चिन्तित है। बालचन्द्र अभिमन्यु समान वीर है। पत्नी मांचाला और सास उसको सुसज्जित करके युद्धमें भेजती हैं। नलगामकी तलवारसे घायल होकर वह स्वर्ग सिधारता है। मृत्यु समय बालचन्द्र पिताके दुष्कृत्योंको बहिर्गर्तकरके आधुनिक पुत्रका प्रतिरूप होता है। नलगाम पिताज्ञापालक एवं धर्मभीरु है। वह नागम्माके हाथकी कठपुतली बनता है। फिर भी जब नागम्मा मलिदेवको कारागारमें डालनेका परामर्श देती है, तब कूटनीतिज्ञ और भ्रातृप्रेमके बीच उसके मनमें अन्तर्द्वन्द्व होता है। अन्तमें वह नागम्माके मंतव्यका ही पालन करता है। नागम्मापर विश्वास करनेके कारण ही उसके प्राण दो बार ब्रह्मनायडुकी तलवारसे बच जाते हैं, और अन्तमें वह एकीकृत पलनाडुका राजा बना रहता है।

तत्कालीन वातावरण उत्पन्न करनेके आवश्यक संकेत यथास्थान दिये गये हैं। कथोपकथन चमत्कारपूर्ण और औचित्यकी परिधिमें ही है। नाटकमें कन्तमदामु नामक पात्र एकमात्र सामान्य व्यवहारकी भाषाका प्रयोग करता है। अन्य पात्र दरबारी मर्यादाके अनुसार शिष्ट व्यावहारिक भाषाका प्रयोग करते हैं। नाटकमें प्राच्य और पाश्चात्य शैलियोंका मिश्रण है। अंक विधान है। दृश्य विभाजन नहीं किया गया। विष्कंभादिका विसर्जन हुआ है। नांदी और भरतवाक्य के लिए क्रमशः "छन्द कविरसः" इत्यादि श्लोक और 'तमसो मा सद्गमय' आदि शांति पाठसे लाभ उठाया गया है। सूत्रधार नहीं है किन्तु प्रस्तावना आकाशवाणी व दूरदर्शनके निर्देशककी व्याख्याके समान रखी गयी है। विगत इतिहासके वर्णनमें दो स्थलोंपर फलशब्दक



का प्रयोग हुआ है। स्तुति और प्रशंसा के स्थलों को छोड़कर कहीं भी न पद्यका प्रयोग हुआ है और न गीत का। नागम्मा के मुंह से नाटककार कहलाता है—‘आरण गंडलका युद्ध बीज है। गुरजालाका युद्ध बिन्दु है पलनाडुका युद्ध पताका है।’

नाटककार ने नाटक की भाषा को तेलुगु लाक्षणिकता, शब्दालंकार एवं चमत्कारपूर्ण उक्तियों का भंडार बना दिया है। व्यावहारिकता की यह अप्रतिम शैली डॉ. श्रीराममूर्ति जैसे विद्वान् के द्वारा ही साध्य है।

नाटककार का संदेश है, विभाजन से देश का अनिष्ट ही होगा।

इस नाटक की रचना कर डॉ. श्रीराममूर्ति ने (१) अपनी ऐतिहासिक शोध का फल जन सामान्य के समक्ष रखा है और पलनाटि युद्ध की वास्तविकताओं से परिचित कराया है। (२) स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं के साहित्यिक विद्यार्थियों के लिए उच्चस्तरीय नाटक प्रस्तुत किया है, तथा (३) प्राच्य और पाश्चात्य शैलियों के सामंजस्य का पूर्ण मिश्रण संपन्न किया है। □

## राजस्थानी काव्य

### कक्को कोड रो?

कवि : कन्हैयालाल सेठिया

समीक्षक : कैलासदान लाठस

‘कक्को’ राजस्थानी काव्यविधा की एक अलग शैली है जिसमें ‘वर्णमाला’ के अक्षरक्रम से किसी विचार, विश्वास, व्यक्ति, वस्तु या इतिवृत्त का वर्णन काव्यमय किया जाता है। श्री कन्हैयालालजी सेठिया राजस्थान की गाड़ी के गीतकार हैं तथा राजस्थानी भाषा में ‘अमीर खुसरो’ की पहचान रखते हैं। वे पारम्परिक

१. प्रका. : दिव्या प्रकाशन, सुजानगढ़ (राजस्थान);

प्राप्तिस्थान : श्री जयप्रकाश सेठिया, ३, मैंगो लेन,

कलकत्ता-७००००१ । पृष्ठ : १०४; डिमा. ८६;

मूल्य : ५०.०० रु. ।

विधाओं में नये रंग भरने के सफल प्रयोग भी करते रहते हैं।

‘कक्को कोड रो’ कविकी राजस्थानी कविताओं की तेरहवीं पुस्तक है। इससे पूर्व उनके १२ काव्य संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं। इन १२ पुस्तकों में चिन्तन, दर्शन तथा भाषा की जिस वर्णमाला से परिचित करवाया गया उनका सारांश है यह तेरहवां संग्रह। ‘कक्को कोड रो’ में श्री सेठियाजी की अनुपम प्रतिभा स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। मानव जीवन का चित्रण कवि ने अपनी अनुभूति की त्रुटिका में ‘कक्को’ के केनवास पर किया है। मानव मन की सूनी पाटी पर अनबूझ अक्षरों की लकीरें खींच-खींच यह हारा हुआ मानस, यदि भाव रसायन से वंचित रहा तो उसका कारण है उसमें धरती की भांति श्रम सृजन तपकी कमी है। अभी उसकी मंजिल दूर है—

‘सारसेर धन्ती सी।’

अजै उसकी मंजिल (कक्को कोड रो)

सारसेर धन्ती

घणी आंतुरे है

कोनी चालै कक्को कोड के स्यू

आगे बरतौ।

पड़ै सिरजण रै पैली

धरती नै तपणे

जद बणै

अन्तस री पीड़

रसायण—

इसी प्रकार वर्णमाला तथा प्राकृतिक प्रतीकों से जीवन-दर्शन समझने की नयी कला के जन्म के लिए सेठिया जी का चिन्तन सगाहना का पात्र है।

भावों की इस भागदौड़ में सेठियाजी पाठक को श्रीकृष्ण की गीता के समान विचार तथा व्यवहार के वादे नये बागों की सैर कराते हैं। तथा उन बागों के अप्रतिम फूलों-फलों की सौरभका आनन्द भी देते हैं। कविताओं को पढ़ते-पढ़ते कभी मध्यकालीन दार्शनिक भट्ट-हरिक का दर्शन होता है तो कभी सन्त कबीर की साखी साख भरती लगती है। किसी पंक्ति में मीरा की भक्तिके दर्शन होते हैं तो किसी पद्यांश में अमीर खुसरो प्रकट हो जाते हैं। साथ ही जहाँ-तहाँ जैन दर्शन के विचार प्रवाह का बोध भी होने लगता है।

दर्शन तथा चिन्तन की इस गागर में कवि ने अध्यात्म

‘प्रकर’—माघ’२०४८—५१



के सागरके अतिरिक्त लोक-जीवन तथा भौतिक संसारको भी स्थान दिया है। वैसे भौतिक संसार निराकार सत्य का आकार है तथा आकारके अभावमें निराकार लीलाका संवरण सम्भव नहीं है।

बोनी ल्याण सके  
लपटने हथेलीमें  
ल्याणी पड़सी ठूँठियों सागै,  
कीनी अणभूत सके  
इयां निराकार नै  
राखणो हुसी आकार मूडागै।

प्रतीत होता है -- कविने इसीलिए भौतिक संसारके साकार सत्यको भी अपने सृजनमें समान स्थान दिया है। सामाजिक शोषण, सामान्यजनका संघर्ष, समाजके शोषित वर्गके कष्ट आदि सभी कुछ इस काव्यमालामें पिरो दिया गया है।

भाषाकी दृष्टिसे श्री सेठियाजी निर्विवाद हैं। न एकरूपताकी अड़चन है और न क्लिष्टताकी कठिनाई। उनकी भाषा भाषायी सीमाओंको तोड़कर समझमें आती है। 'घरती धोरां रो' की भाषाका निर्वाह 'कक्को कोड रो' में भी हुआ है। इसके अतिरिक्त पुस्तकमें शब्दोंको नये अर्थ दिये हैं तथा अर्थोंको नये शब्द प्रदान किये हैं। □

## कन्नड़ : भाषा, साहित्य और संस्कृति

लेखक : प्रो. सु. रामचन्द्र

समीक्षक : डॉ. रजनीकान्त जोशी

प्रस्तुत पुस्तकमें कन्नड़ भाषाके स्वरूप, साहित्य, जिसके अन्तर्गत कन्नड़का प्राचीनकाल (जैन युग), मध्यकाल (वीरशैव युग, वैष्णव युग) और आधुनिक कालका संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। अन्त कन्नड़भाषी प्रदेश व भाषाकी संस्कृतिका परिचय दिया है। लेखकका चिन्तन भारतीय इतिहास पुराण, आख्यान मिथक पृष्ठभूमिपरक तो है ही, पाश्चात्य और मार्क्सवादी अध्ययनकी भी अच्छी पृष्ठभूमि है।

“कन्नड़ साहित्यका इतिहास लगभग हजार वर्ष पुराना है। आरंभमें जैनियोंने विपुल साहित्य रचा।

१. प्रका. : गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद-३८००१४।

पृष्ठ : ६२; डिमा. ८८; मूल्य : २०.०० रु।

‘प्रकर’—जनवरी ६२—५२

संस्कृत, प्रकृतके मर्मज्ञ थे। राज्याश्रयमें उनकी काव्य साधना चलती थी। राजकीय परितोष और विद्वत् समाज और प्रशासनकी भाषा संस्कृत होनेके कारण भाषा संस्कृत-बहुल थी। वस्तु धार्मिक होती थी। शैली बड़ी अद्भुत थी। पद्यमें संस्कृतके वर्ण वृत्तोंका प्रचुर प्रयोग होता था। गद्यमें अलंकृत शैलीका उत्कर्ष था।

लेखकने कन्नड़के आदि कवि ‘पंप’ से लेकर चालुक्य नरेश तैलपके आश्रित कवि ‘रन्नकी रचनाएं’, जैन कवियोंकी जनभाषा कन्नड़का साहित्यमें रचित साहित्य १२ वीं सदीके वीरशैव युगके कवियोंका परिचय, ब्राह्मण साहित्य, संगीत पुरंदरदास, श्रद्धालु भक्त कनकदास, ‘कुमार व्यास’ तक तथा अंग्रेजी शासनसे कन्नड़का आधुनिक युग, तत्पश्चात् ‘नवोदय युग’ ‘प्रगतिशील चेतनाकी रचनाएं’ तथा डॉ. शिव-राम कारंतजी तथा विनायक कृष्ण गोकक तकका तथापि स्पष्ट व संक्षिप्त सुन्दर परिचयात्मक निदेश इस पुस्तकमें प्रस्तुत हुआ है।

सन् १८१० में कैरी साहबने कन्नड़का व्याकरण लिखा। तत्पश्चात् तो जॉन मैकरेल द्वारा व्याकरण रचा गया, किटल द्वारा कन्नड़-अंग्रेजी कोश, प्राचीन कन्नड़का संपादन, कन्नड़ साहित्यका इतिहास रचा गया। उपरांत बंगला, मराठी साहित्यका भी कन्नड़ साहित्यपर प्रभाव पड़ा। आधुनिक कालके अंतर्गत विभिन्न विधाओंमें प्रकाशित साहित्यके अद्यतन आंकड़े, जैसे कविता संग्रह-५६, नाटक—६५, कहानियाँ-६८, उपन्यास--७२, आलोचना--८३ एवं गद्यकी अन्य विधाएं ७७। उपरांत सभी ध्यानाहर्ह लेखकोंका संक्षिप्त निदेश व यथासंभव परिचयभी है।

पुस्तक-लेखक प्रो. सु. रामचन्द्रजीने संकेत किया है कि, “कर्नाटक ‘सर्वभाषा सारस्वती’ की साधना-भूमि है।’ और उन्होंने अपने गंभीर अध्ययनके परिणामस्वरूप सोदाहरण प्रमाणित किया है कि कर्नाटक प्रदेशकी सभी भाषाओंका सदा स्वागतही नहीं किया अपितु सभी भाषाओंमें सृजन कर्मभी किया है और अनुवाद कर्मभी। जैसे विजयनगरके राजाओंके शासनकालमें संस्कृत माध्यमसे धर्म और संस्कृतिका प्रचार-प्रसार हुआ, इन्हीं नरेशोंने संस्कृत, कन्नड़ और तेलुगुमें साहित्य रचना की, १७ वीं सदीमें चन्द्रात्मज नामक महाराष्ट्रके कविने कन्नड़ महाभारतका मराठीमें अनु-



वाद किया। बहमनी, निजामी, हिंदू आदि मुल-  
तानोंके शासनकाल में यहां अरबी, फारसी, दकनी,  
उर्दू आदि भाषाओंमें बड़े पैमानेपर साहित्यसृजन  
हुआ। 'कर्नाटकमें बसे मराठी, तेलुगु, तमिल और  
उर्दू भाषियोंने भी लगनसे कन्नड़की सेवा की है। इतर  
भाषी लेखकोंने श्रेष्ठसे श्रेष्ठ कृतियोंद्वारा कन्नड़  
साहित्यको समृद्ध किया है। अतः इन सभीका संकेत  
करते हुए लेखकने विनायक कृष्ण गोककके ग्रन्थ 'नव्य  
काव्य तथा जीवन' और कीर्तिनाथ कुर्लकोटिके 'नव्य  
काव्य प्रयोग' तकका उल्लेख इस पुस्तकमें किया है।

लेखकने कर्नाटककी संस्कृतिका विवरण भी दिया  
है। साथही उदाहरणों द्वारा लेखकने यह स्पष्ट किया है  
कि अन्ततः हम सामाजिक संस्कृति अर्थात् 'भारतीय  
संस्कृतिके महासागरके समान स्नेह-सेतुके सौरभसे  
जीते हैं और आदान-प्रदानसे भिन्नत्वमें एकत्व स्थापित  
करते हैं।

इस प्रकार प्रो. सु. रामचन्द्रकी 'कन्नड़ : भाषा,  
साहित्य और संस्कृति' पुस्तकमें 'कन्नड़' भाषा-साहित्य  
तथा संस्कृतिका परिचय प्रस्तुत किया है। □

## वैद, ब्राह्मण

### वेद और उसकी वैज्ञानिकता?

[भारतीय मनीषाके परिप्रेक्ष्यमें]

लेखक : आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

समीक्षक : डॉ. रामनाथ वेदालंकार

वेदोंको संस्कृत वाङ्मयका प्राण कहा जाये तो  
अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्राक्कालसे ही वेद दार्शनिक  
साहित्यिक एवं धार्मिक भारतीय चिन्तनका आधार  
रहे हैं। वेदोंपर प्राचीन भारतीय मनीषियोंने बहुत कुछ  
लिखा है और आधुनिक युगके न केवल एतद्देशीय,  
अपितु विदेशी विचारकोंने भी वैदिक अनुसन्धानकी  
दिशामें पर्याप्त कार्य किया है। वेदके साम्प्रतिक  
ऋषियोंमें आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पतिका नाम  
उल्लेखनीय है। इस विद्यावृद्ध एवं ६० वर्षके वयोवृद्ध  
मनीषीने अबतक वरुणकी नौका, वेदोद्यानके चुने हुए  
फूल, वेदका राष्ट्रीय गीत, मेरा धर्म, समाजका काया-  
कल्प आदि वेदसम्बन्धी कई ग्रंथ लिखे हैं। 'वेदोंके

राजनीतिक सिद्धान्त' नामक तीन भागोंमें निबद्ध इनके  
विशाल वैदिक ग्रन्थने देश-विदेशके समग्र वेदप्रेमियोंमें  
इनकी विपुल यशोवृद्धि की है। 'वेद और उसकी वैज्ञा-  
निकता' नामक प्रस्तुत ग्रन्थमें इन्होंने १५ अध्यायोंमें  
वेदके सैद्धान्तिक एवं बहिरंग विचार-बिन्दुओंका बड़ी  
योग्यतापूर्वक विस्तरण किया है।

विषय प्रवेशात्मक प्रथम अध्यायके आरम्भमें वेदोंसे  
सम्बद्ध साहित्य ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद्, उप-  
वेद, षड् वेदांग धर्मसूत्र, स्मृतिग्रन्थ, कौटिलीय अर्थ-  
शास्त्र, शिल्पशास्त्र आदिका परिचय दिया गया है।  
तदनन्तर द्वितीय स्तम्भमें यह दर्शाया गया है कि वेदोंके  
विषयमें शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, शंकराचार्य  
आदि कैसे उदात्त विचार रखते हैं। इसी प्रसंगमें लेखक  
ने तैत्तिरीय ब्राह्मणकी एक कथा दी है कि "भारद्वाज  
ऋषिने तीन-जन्मोंमें आजन्म ब्रह्मचर्य धारण करके  
वेदोंका अध्ययन किया। जब वे वृद्ध होकर मृत्यु-शय्या  
पर पड़े थे तब इन्द्रने उनसे पूछा कि यदि मैं तुम्हें  
चौथा जन्म और दे दूँ तो तुम क्या करोगे। भारद्वाजने  
उत्तर दिया कि उस जन्ममें भी मैं वेदोंका ही स्वाध्याय  
करूंगा। इसपर इन्द्रने उन्हें तीन बड़े-बड़े अज्ञात  
पहाड़-से दिखाये और प्रत्येकसे एक-एक मुँटूठी लेकर

१. प्रका. : श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र, गुरु-  
कुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार। पृष्ठ :  
४४७; डिगा. ६०; मूल्य, ३००.०० रु।

'प्रकर'— माघ '२०४८—५३



कहा 'देखो' ये वेद हैं। वेद अनन्त हैं। तीन जन्मों में तुम मुट्ठा-मुट्ठी भर ही वेद पढ़ पाये हो, अधिकांश तो अज्ञात ही पड़ा है। आओ, इसे जानो, इसमें सब विद्याएं हैं।" तृतीय स्तम्भ में लेखक ने यह दर्शाया है कि महर्षि दयानन्द के कार्यक्षेत्र में उतरने के समय वेद के पठन-पाठन की क्या दुरवस्था थी। शंकराचार्य जैसे उद्भट विद्वान् भी वेदसंहिताओं से सीधे रूप में परिचित नहीं थे। वे श्रुति नाम से उपनिषद्-वचनों को ही उद्धृत करते थे। स्त्रियों और शुद्रों को वेद का पढ़ना-सुनना निषिद्ध था। वेदों के सम्बन्ध में सायण, महीधर आदिने तथा यूरोपीय विद्वानों ने जो लिखा था वही शिक्षणालयों में पढ़ाया जाता था। इसी प्रसंग में लेखक ने सायण आदि भाष्यकारों के वेदभाष्य की समीक्षा प्रस्तुत करके उनके कतिपय दोषों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। चतुर्थ स्तम्भ में पाश्चात्य विद्वानों के वेदविषयक धारणाओं पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है। अगले स्तम्भों में लेखक यह दर्शाते हैं कि किस प्रकार वेद पर चारों ओर से आक्रमण हो रहे थे और ऋषि दयानन्द ने ऐसी विकट स्थिति में कैसे वेदों का पुनरुद्धार किया।

द्वितीय अध्याय में ईश्वरीय ज्ञान के सिद्धान्त पर ऊहापोह करके तृतीय अध्याय में यह स्पष्ट किया गया है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान किन अर्थों में हैं। इस प्रसंग में वेदों के आदि प्राप्तकर्ता चार ऋषि कौन थे और कैसे उन्हें वेदज्ञान मिला, वैदिक भाषा सब भाषाओं की जननी है, वेद और उसकी भाषा सबसे प्राचीन है, वेद ही ईश्वरीय ज्ञान क्यों, आदि विषयों पर प्रौढ़ विचार किया गया है।

चतुर्थ अध्याय वेद के काल पर है। इसकी मीमांसा करते हुए लेखक ने वेद के अपने मत, मैक्समूलर, मैकडानल, कीथ, विण्टरनिट्ज, जैकोबी आदि पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि एवं शंकर बालकृष्ण दीक्षित, लोकमान्य तिलक, अविनाशचन्द्रदास आदि भारतीय विद्वानों की दृष्टिका उल्लेख करते हुए वेदकाल निर्धारण की कसौटियों की परख करके स्वामी दयानन्द की वेदनित्यत्व-दृष्टिका समर्थन किया है।

पंचम अध्याय में ऋषि दयानन्द की वेदभाष्य शैली पर विचार किया गया है। इसमें दयानन्दसम्मत व्यावहारिक और पारमाथिक प्रक्रिया पर संक्षिप्त प्रकाश डालकर लेखक ने दयानन्द-भाष्य की वेदार्थ-शैली के कतिपय मौलिक तत्त्वों का उद्घाटन किया है। अगले

स्तम्भ में सायण आदि भाष्यकारों की वेदभाष्य-शैली के सिद्धान्त, ऋषि दयानन्द और सायणाचार्य आदिके यौगिकवाद का भेद, दयानन्द की वेदभाष्य-शैली और उनके व्यक्त्य के सिद्धान्त आदिको स्पष्ट करके दयानन्द की भाष्य शैली पर उठनेवाले प्रमुख आक्षेपों का परिहार उपस्थित किया है।

षष्ठ अध्याय का शीर्षक है—'महर्षि दयानन्द और वेदार्थ की याज्ञिक प्रक्रिया'। इसमें प्रथम याज्ञिक प्रक्रिया का संक्षिप्त परिचय देकर लेखक ने युक्ति एवं प्रमाण पुरस्सर दर्शाया है कि यज्ञों में पशुहिंसा वेदविरुद्ध है। आगे मध्यकालीन विनियोगों के विषय में स्वामी दयानन्द के इस विचार की व्याख्या की गयी है कि वे ही विनियोग मान्य हो सकते हैं जो युक्तिप्रमाणानुकूल तथा मन्त्रार्थानुसृत हैं। अन्त में दयानन्द के मत में यज्ञों का प्रयोजन तथा यज्ञ शब्द का व्यापक अर्थ दिखाया गया है।

सप्तम अध्याय का विषय है 'ऋषि दयानन्द और वेद के देवता'। सर्वप्रथम देवता का लक्षण तथा अनादिष्ट देवता का मन्त्रों में देवताज्ञान की निरुक्त वर्णित विधि लिखकर आगे यह स्पष्ट किया है कि अधिष्ठात्री देवता कोई शरीरधारी योनिविशेष नहीं है, जो कहीं स्वर्ग में रहती हो। यह भी प्रतिपादित किया गया है कि दयानन्द अनेक मन्त्रों का देवता-निर्धारण तर्क एवं मन्त्रार्थ को दृष्टि में रखकर सर्वानुक्रमणी एवं भाष्यकारों द्वारा स्वीकृत देवताओं से भिन्न करते हैं, उस सरणिका अनुसरण करके बहुत-से वैदिक सूक्तों की सुन्दर हृदयग्राही व्याख्या की जा सकती है। उदाहरण रूप में लेखक की स्थापना है कि ऋग्वेद १०.१२५ सूक्त की देवता पूर्व व्याख्याकारों द्वारा वागाम्भूणी मानी गयी है, जबकि इसकी देवता 'राष्ट्री संगमनी' मानना अधिक उपयुक्त है।

अष्टम अध्याय वेद के ऋषियों पर है। कुछ विद्वान् ऋषियों को मन्त्रों का कर्ता मानते हैं और कुछ मन्त्रों का द्रष्टा। मन्त्रों के ऋषियों के सम्बन्ध में दयानन्द की स्थापना यह है कि ऋषि मन्त्रों के रचयिता नहीं हैं, प्रत्युत जिस-जिस ऋषि ने जिस-जिस मन्त्र का अर्थ प्रकाशित किया है उस-उस ऋषिका उस-उस मन्त्र के साथ नामोल्लेख किया गया है। लेखक ने भी इसी मत का पोषण किया है। लेखक की मान्यता है कि मन्त्रार्थज्ञान में मन्त्रों के ऋषि सहायक नहीं हैं।



नवम अध्याय का शीर्षक है 'वेदों का अपना स्वरूप'। इसमें प्रतिपादन है कि यद्यपि संस्कृत साहित्यमें अनेक स्थानों पर वेदों के लिए त्रयी शब्द प्रयुक्त मिलता है तो भी वेद चार ही हैं। उन्हें त्रयी क्यों कहते हैं, इसका कारण भी लेखक ने बताया है। दयानन्द के मतानुसार शाकल ऋग्वेद, माध्यन्दिन वाजसनेयी यजुर्वेद, कौथुम सामवेद और शौनकीय अथर्ववेद ही मूल चार वेद हैं। लेखक ने इसीकी पुष्टि की है। अथर्ववेदकी भाषा आदिके आधार पर कुछ विद्वान् इसे अर्वाचीन मानते हैं। लेखक ने इस मान्यता का खण्डन करके अथर्ववेदको अन्य वेदों के समकक्ष ही सिद्ध किया है। ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद नहीं हैं, प्रत्युत वेदों के व्याख्यान हैं और वेदों की वर्णानुपूर्वी नित्य है इसकी भी पुष्टि इस अध्याय में प्राप्त होती है। अन्त में इसकी भीमांसा की गयी है कि वेदों में पुनरुक्ति दोष नहीं है।

दशम अध्याय 'वेदों में इतिहास नहीं है' इस विषय के अनुसंधान पर व्यय हुआ है। स्वामी दयानन्द वेदों में इतिहास का लेश भी नहीं है, ऐसा लिखते हैं। सायणाचार्य ने भी ऋग्वेद के उपोद्घात में इसी पक्ष की स्थापना की है, परन्तु उनके भाष्य में पदे-पदे इतिहास प्रतिपादित है। महर्षि जैमिनी भी वेद में इतिहास नहीं मानते। यास्काचार्य ने भी अपने निरुक्त में ऐतिहासिक पक्ष का खण्डन किया है। इन तथ्यों को सप्रमाण दर्शाकर लेखक ने कतिपय तथाकथित ऐतिहासिक कथाओं की समीक्षा प्रस्तुत की है। शुनःशेपकी कहानी, वागाम्भृणीकी कहानी, कुत्स और उससे सम्बद्ध कहानी, जल में छिपे श्वेत्रेय ऋषिके उद्धारकी कहानी, युद्ध में एतशा ऋषि की सहायता और सूर्य के रथ का एक चक्र चुरानेकी कहानी और कुत्स द्वारा इन्द्र के अण्डकोश बाँधे जानेकी कहानी पर विचार किया गया है। अन्त में यह बताया है कि वेद के प्रसंगों में भूतकालिक क्रियाओं को देखकर इतिहासकी भ्रान्ति नहीं करनी चाहिये, क्योंकि पाणिनि के अनुसार वेद में लुङ्, लङ् एवं लिट् इन भूतवाची लकारों का प्रयोग वर्तमान आदि अर्थों में भी होता है।

ग्यारहवां अध्याय वेद में विविध ज्ञान-विज्ञानों का प्रतिपादक है। स्वामी दयानन्द ने अपनी ऋग्वेद-आदि-भाष्यभूमिका में लिखा है कि वेदों में मूलोद्देशतः सब विद्याएँ हैं। लेखक ने वेदवर्णित कुछ विद्याविज्ञानों को दर्शाते हुए रक्तप्रवाहचक्र, जल चिकित्सा, सूर्यकिरण

चिकित्सा, वनस्पति विज्ञान, पुत्रदा औषधि, प्राणायाम-विज्ञान, मित्र-वरुण के योगसे जलोत्पत्ति, विमान, विद्युच्चालित रथ, विद्युच्चालित ऋषि नामक अस्त्र, सीमेकी गोली, महासंहारक वज्र, पतङ्गुव्री, राजनीति-विज्ञान, समाजशास्त्र, आचारशास्त्र, सृष्ट्युत्पत्ति-प्रलय तथा अध्यात्मविज्ञान की विशद चर्चा की है। अन्त में यह दिखाया है कि पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, पं. सत्यव्रत साम-श्रमी, डॉ. रेले, श्री पावगी, योगी अरविन्द, भी दादाचन आदि इतर विद्वान् भी वेदों में विविध विज्ञानों का होना स्वीकार करते हैं।

बारहवें अध्याय का प्रतिपाद्य विषय है कि वेदों में जादू-टोने और अश्लीलता नहीं है। इस प्रसंग में लेखक ने पर्णमणि, जंगिड मणि, शंखमणि, शतवार मणि तथा कृत्या एवं अभिचार पर विचार किया है। सायण, महीधर आदि भाष्यकारों ने कुछ वेदमन्त्रों के जो अश्लील अर्थ किये हैं उनका नमूना प्रस्तुत करके उन स्थलों का सत्यार्थ प्रकट किया गया है।

तेरहवां अध्याय है 'वेद एक धर्मग्रन्थ के रूप में'। इस प्रसंग में वैदिक एकेश्वरवाद का उल्लेख करते हुए ईश्वर के स्वरूप की झाँकी दी गयी है। मूर्तिपूजा की अवैदिकता और पुनर्जन्म एवं मुक्ति से पुनरावृत्ति के सिद्धान्त की वैदिकता प्रतिपादित की गयी है। स्वर्ग और नरक कोई लोकविशेष नहीं हैं, मृतकश्राद्ध अवैदिक है, स्त्रियों को भी वेदाध्ययन का अधिकार है इन विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। वैदिक समाजव्यवस्था, पंच-महायज्ञ तथा सोलह संस्कारों की रूपरेखा भी प्रस्तुत की गयी है। जगत् के मूल अनादि तत्त्व ईश्वर, जीव और प्रकृति हैं इसका भी विवेचन है। अन्त में यह चर्चा है कि ईश्वर की सृष्टि में सब मनुष्य समान हैं और वेद मानवमात्र का धर्मग्रन्थ है।

चौदहवें अध्याय का विषय है 'ऋषि दयानन्द की वेदभाष्य शैली का परवर्ती विद्वानों पर प्रभाव'। इसमें श्री अरविन्द, पं. कटाली शास्त्री, स्वामी भगवदाचार्य, स्वामी महेश्वरानन्द, पं. दामोदर शर्मा झा, पं. दामोदर सातवलेकर, महामहोपाध्याय पं. विद्याधर शर्मा गोड़ एवं श्री दादाचनजी पर ऋषि दयानन्द की भाष्यशैली के प्रभाव की चर्चा है। पन्द्रहवां अध्याय वैदिक विचार-धारा को महर्षि दयानन्द की अभिनव देन पर है।

वेद के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द की जो भी धारणाएँ



थीं उन सबकी पुष्टि इस ग्रन्थमें युक्ति एवं प्रमाण पूर्वक किया गया है। वेदविषयक सिद्धान्तोंको वैज्ञानिक कसौटीपर कसकर खरा उतारा गया है। ऋषि

दयानन्दजी वेद विषयक क्रान्तिकी मुंह-बोलती तस्वीर इस ग्रन्थमें पाठक देख सकते हैं। प्रत्येक वेदप्रेमीके लिए यह ग्रन्थ संग्राह्य एवं पठनीय है। □

## पत्र-पत्रिकाएं

### जीवन प्रभात<sup>१</sup>

[तीन विशेषांक भारतेन्दु विशेषांक,  
जायसी विशेषांक, गंगोत्री अंक]

सम्पादक : श्री सत्यनारायण मिश्र

समीक्षक : जगदीश शिवपुरी

लगभग २३ वर्षोंसे प्रकाशित जीवन प्रभातके भारतेन्दु विशेषांकमें भारतेन्दुके पत्र, उर्दू शैलीका गद्य, कहानी और यात्रा-वर्णन आदि हैं। भारतेन्दुके यात्रा-वर्णनसे साधारण पाठक परिचित नहीं है। भारतेन्दुके प्रकाण्ड पाण्डित्यका प्रकाशक वैष्णवतापर उनका लेख है। जायसी विशेषांकमें विद्वानोंकी प्रतिष्ठित समीक्षा की दुर्लभ सामग्री एकही स्थानपर संकलित है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदीने, उनके व्यक्तित्वका परिचय दिया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्लका प्रसिद्ध और निरुपम लेख भी है जायसीके मधुर भाव और पद्मावत पर। और डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवालकी पद्मावत की टीकाके बहुत महत्त्वपूर्ण अंश भी यहां प्रस्तुत हैं। पद्मावतके अध्यात्म पक्षके विवेचनमें डाक्टर वासुदेवशरणका कौशल इतिहासमें दर्ज है और वह अभीतक सहज उपलब्ध नहीं था। आधुनिक विचारकोंमें से श्री अनन्तकुमार पाषाणने जायसीके नाथ सम्प्रदायसे सम्बन्धकी छानीबनके अलावा शेख निजाम यमनी द्वारा संकलित पुस्तक 'लतायफे अशरफी/ मकतूबात अशरफीके संदर्भमें जायसीकी गुरु-परम्परापर नया

प्रकाश डाला है। बंगालके पाठान वैष्णवोंकी भी इसी कड़ीमें जुड़ा हुआ देखा है। जायसीपर एकही स्थानपर सामग्रीका संकलन बहुत उपयोगी है। गंगोत्री अंकमें प्रसाद, निराला, पंत, महादेवीके बादकी पीढ़ीके प्रधान कवियोंकी श्रेष्ठ रचनाओंका संकलन है। कवि नवीन, बच्चन, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, भगवतीचरण वर्मा, और गिरिजाकुमार माथुर। इनमें में अधिकांश कविताएं उपलब्ध नहीं—नवीनजीका संग्रह अप्राप्य, महाकवि बच्चनके निशा निमन्त्रण, एकान्त संगीत, आरती और अंगारे अप्राप्य—संपूर्ण रचनावली कितने लोग खरीद सकेंगे? नरेन्द्र शर्माके 'प्रवासीके गीत' और 'पलाश वन' के सर्वश्रेष्ठ गीत यहां हैं—अन्य कवियोंका भी ऐसाही है। दिनकरकी 'रसवती' अनुपलब्ध भगवती बाबूकी 'भैंसागाड़ी, कहां पढ़े'? दिनकरकी रसपूर्ण कविता रामकी मुरली या अगुरु धूम, नरेन्द्र शर्माकी प्रसिद्ध कविता—आजके बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे या महाकवि बच्चनकी प्रसिद्ध कविता 'मैंने गीतोंको रच करके भी देख लिया' या नवीनजीकी 'हम है मस्त फकीर' सब कविताएं एकही स्थानपर उपलब्ध कराकर श्री सत्यनारायण मिश्रने कविताके रसिकोंको एक अनुपम उपहार दिया है। □

प्रका. : जीवन प्रभात प्रेस, बम्बई-४०००२३। मूल्य :  
कमशः ५.०० रु., ५.०० रु., १२.०० रु.।

प्रकर—जनवरी ६१—५६



**प्रकाश**

[आलोचना और पुस्तक-समीक्षाका मासिक]

वर्ष : २४

अंक : २

फाल्गुन : २०४८ [विक्रमाब्द]

फरवरी : १९६२ [ईस्वी]

**आलेख एवं समीक्षित कृतियां****सम्पादकीय**

ऐतिहासिक संवेदना-शून्यभारतीय इतिहास

२

वि. सा. विद्यालंकार

**सृजनधर्मी व्यक्तित्व**

आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री

५

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक

निरालाकी आत्मकथा—डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित

८

डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

वृन्दावनलाल वर्मा—प्रभाकर माचवे (स्व.)

१२

डॉ. भगीरथ बड़ोले

हिन्दीके प्रतिनिधि साहित्यकारोंसे साक्षात्कार—अशोक लव

१३

डॉ. महेशचन्द्र शर्मा

**उपन्यास**

पीढ़ियाँ—अमृतलाल नागर (स्व.)

१४

प्रो. मधुरेश

अ अस्तुका—ज्योत्स्ना मिलन

१६

डॉ. श्यामसुन्दर घोष

**कहानी**

आगे के पीछे—बटरोही

२१

डॉ. मूलचन्द सेठिया

शोषित और अन्य कहानियाँ—उषा महाजन

२३

डॉ. रेवतीरमण

एक पीढ़ीका दर्द—क्षमा गोस्वामी

२५

डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त

**नाटक**

फेड़ा—ज्यां रासीन; अनुवाद : कृष्ण बलदेव वैद्य

२६

डॉ. हरदयाल

समय—श्रवणकुमार गोस्वामी

२८

डॉ. भानुदेव शुक्ल

बन्दिनी—बिष्णु प्रभाकर

३०

डॉ. हरदयाल

तथास्तु—अमृतलाल मदान—

३१

डॉ. तेजपाल चौधरी

**काव्य**

शम्भूक : आलोक यात्रा (काव्य नाटक)—जय किरन

३२

डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

पत्थरकी बाँसुरी—कुंअर बेचैन

३३

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

अंधियारोंसे लड़ता हुआ—मलखानसिंह सिसोदिया

३५

डॉ. प्रयाग जोशी

**आलोचना**

'लहर' का बिकासपरक अध्ययन—डॉ. प्रमिला शर्मा

३६

डॉ. रामदेव शुक्ल

जायसीके काव्यमें इस्लामी तत्त्व—डॉ. जरीना रहमत

३८

डॉ. निजामउद्दीन

**ब्राह्मण-समाज**

ब्राह्मण समाजका ऐतिहासिक अनुशीलन—देवेन्द्रनाथ शुक्ल

४०

पं. काशीराम शर्मा

**प्रशासन**

लोक प्रशासन एवं प्रबन्ध—एस. सी. मेहता

४२

डॉ. हरिश्चन्द्र

**दूरदर्शन : धारावाहिक**

ध्रुवस्वामिनी

४५

डॉ. भानुदेव शुक्ल

चाणक्य

४६

श्री माधव पण्डित

'प्रकाश'—फाल्गुन २०४८—३



## ऐतिहासिक-संवेदनाशून्य भारतीय इतिहास : शोध और पुनर्मूल्यनकी आवश्यकता

**भा**रतीय इतिहासके अवमूल्यनके संगठित प्रयत्न ब्रिटिश नेतृत्वमें यूरोपीय विद्वानोंने किये। ये विद्वान् मूलतः इतिहास अथवा समाजशास्त्र या अर्थ-शास्त्रके विद्वान् नहीं थे, अपितु ब्रिटिश प्रशासन सेवाके अधिकारी थे और यूरोपकी ईसाइयत प्रचारक संस्थाओंसे जुड़े पादरी वर्गके लोग थे। भारतमें राजनीतिक सत्तापर अधिकार करनेके बाद उन्हें जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने, अपने राजनीतिक हितों और आर्थिक शोषणकी प्रक्रियाकी रक्षाके लिए विभिन्न बौद्धिक स्तरकी युक्तियों तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे तर्कसंगत प्रतीत होनेवाले उपायों की आवश्यकता थी। मनोवैज्ञानिक आधारपर वातावरण बनाने एवं उसके लिए बौद्धिक आधार प्रस्तुत करनेके लिए यूरोपके विभिन्न विश्वविद्यालयोंमें भारतीय साहित्य-संस्कृति-भाषाओंका विभिन्न स्तरोंपर विभिन्न दृष्टिकोणोंसे अध्ययन आरम्भ किया गया। प्रत्येक अध्ययनकी आधारभूमि अध्ययनायियोंकी अपनी परम्परागत अनुभूतियां तथा उन अनुभूतियोंके आधार पर विकसित विशिष्ट मानभिकता होती है। जिस काल-खण्डमें भारतीय साहित्य, इतिहास और परम्परा के अध्ययनकी यूरोपमें प्रवृत्ति जागृत हुई, इससे पूर्वही स्वयं यूरोपीय उथल-पुथल, संघर्ष और इसके कारण वहाँकी जीवन पद्धतिके उतार-चढ़ावने इन विद्वानों और अध्ययनायियोंके लिए कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत किये थे। ये निष्कर्ष ही उनके सिद्धान्तों और मान्यताओंके निर्माणमें सहायक हुए। तत्कालीन निष्कर्षों, सिद्धान्तों और मान्यताओंका विकास जिस परिवेश और वातावरणमें हुआ, वह न केवल उस समय यूरोपतक सीमित था, अपितु आजकी परिस्थितियोंकी दृष्टि और व्यापक अध्ययन, अध्ययन क्षेत्रोंके विस्तारके कारण उनकी विश्वसनीयता भी संदिग्ध हो गयी है। इसका स्पष्टीकरण हमें १८वीं और १९वीं सदीके यूरोपमें विकसित चिन्तनों, सिद्धान्तों और मान्यताओंको सोवियत संघमें ढहते-विलीन होनेसे मिल जाता है। इन यूरोपीय राजनीतिक और आर्थिक मान्यताओंकी कट्टरताकी पुष्टिभूमि ईसाइयतकी धार्मिकताने प्रदान की। यद्यपि यूरोपकी तत्कालीन ईसाई धार्मिक कट्टरतापर आज आवरण 'प्रकर'—फरवरी १९२—२

डाल दिये हैं, परन्तु उन दिनोंकी मानवीयताको संवेदनात्मक स्तरपर नष्टभ्रष्ट करनेके जो यातनापूर्ण और क्रूर व्यवहार किये गये, उसने भी यूरोपीय चिन्तनको कट्टरताकी ओर धकेला और इसने मानसिक कट्टरतामें परिवर्तित होकर अध्ययनकी परिपाटीको प्रभावित किया, जिससे अन्य सभी ज्ञान-विज्ञान, इतिहास संस्कृति और समाजकी परंपराएं गौण होगयीं। यह हीनताग्रस्त ग्रन्थि भारतीय इतिहासपर भी लागू की गयी और यूरोपीय इतिहासको महिमामण्डित करनेके लिए भारतीय समाज-संस्कृति-इतिहासको यूरोपीय विश्वविद्यालयीन अध्ययनोंके माध्यमसे विकृत करनेके जागरूक प्रयत्न किये गये, जिनकी पुष्टि इन्हीं अध्ययनशील विद्वानोंके निजी पत्रोंसे होती है।

इस ऐतिहासिक विकृतिके लिए भाषावैज्ञानिक अध्ययनोंकी भी सहायता भी ली गयी। भारतीय भाषाओंके जो भौगोलिक, तुलनात्मक और व्याकरणिक अध्ययन यूरोपीय विद्वानोंने प्रस्तुत किये हैं, उनकी संगति स्वयं भारतमें हुए अध्ययनोंसे नहीं बैठती। आधुनिक अध्ययन भी यूरोपीय निष्कर्षोंकी पुष्टि नहीं करते, अपितु उन्हें चुनौती देते हैं। यूरोपीय अध्ययनों में भाषा-विज्ञान और नृवंश विज्ञानके अध्ययनोंका, संबंध स्थापित किया गया, इसी आधारपर भारतीय भाषाओंका वर्गीकरण किया गया : भारतीय भाषा वर्ग द्रविड वर्ग। इसके साथ कल्पित ऐतिहासिक आब्रजनों का सम्बन्ध जोड़कर दोनों वर्गोंकी भिन्नता स्थापित की गयी। भारतीय परिवेशमें युगोंसे साथ-साथ रहने वाले, क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा एक दूसरेको प्रभावित करनेवाले भाषा-खण्डोंको अकस्मात् परस्पर विरोधी शिविरोंमें बिठा दिया गया। इन भाषा शिविरोंकी व्याकरणिक रचनाओंकी उपेक्षा कर दी गयी जबकि इन शिविरोंकी भाषाओंमें आजभी व्याकरणिक साम्य स्पष्ट रूपसे लक्षित होता है, और एक ही शिविरकी भाषाओंकी व्याकरणिक रचनाओंमें भिन्नता परिलक्षित होती है। इसे भाषाविज्ञान, नृवंशों और इतिहासके संयोग द्वारा 'स्वयंसिद्ध' निष्कर्ष रूपमें प्रस्तुत कर एकही भू-खण्डके निवासियोंको दो परस्पर विरोधी—ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्तरपर—शिविरोंमें बिठा



दिया गया। भारतीय शोधक इस विभाजनसे सतर्क हुए हैं।

इसी कारण वर्तमान भारतीय इतिहास तथ्यात्मक न होकर कल्पनाश्रित होगया। कल्पनाका क्षेत्र सीमा-तीत होता है। यूरोपीय विश्वविद्यालयोंमें संस्कृत भाषा और साहित्यके अध्ययनसे उन्हें भारत और यूरोपकी कड़ियां जुड़ती दिखायी दीं। यदि ये कड़ियां केवल भाषा-साहित्यको जोड़नेवाली होती और बौद्धिक और भावनात्मक स्तरपर दोनों क्षेत्रोंको निकट लानेकी कड़ी बनती और इनका राजनीतिक दुरुपयोग न होता तो संभव था कि मानवीयताका क्षेत्र-विस्तार होता और शोषण और दासताकी जिस पीड़ाको इस देशको भुगतना पड़ा, वह घटित न होती। पर हुआ यह कि ऋग्वेदमें 'आचरण श्रेष्ठ' के अर्थमें प्रयुक्त 'आर्य' शब्दने उनकी कल्पना और राजनीतिक कांइयांपनको उद्बुद्ध कर दिया। उन्होंने 'आर्य' शब्दको जातिवाचक मान कर यह प्रचारित किया कि आर्य भारतीय-यूरोपीय जातिके थे और उनकी भाषा वैदिक संस्कृत भारोपीय वर्गकी थी। भाव-विह्वल विद्वानोंने इस निकट सम्बन्ध की सूचना भारतके कुलीन और शिक्षित वर्गको दी और उन्हें आश्चर्य प्रदान की कि भलेही वे सत्ताके सघर्षमें हेय सिद्ध हुएहों, परन्तु वे हैं तो वे भारोपीय आर्य जातिके सदस्य, क्या यह कम गौरवकी बात है! वे आर्येतर अनार्य और दासोंकी तुलनामें श्रेष्ठ वर्गके हैं। इस कल्पनाश्रित एवं भावनात्मक प्रचारसे ब्रिटिश प्रशासन अधिकारियोंका प्रयोजन सिद्ध होगया और वस्तुतः इन कुलीन शिक्षित वर्गोंमें यह भावना घर करने लगी कि जातितः वे श्रेष्ठ हैं और भारतके शेष लोग 'दास'। उनके मत और सिद्धान्तके अनुसार जब इन तथाकथित पूर्व आर्योंने इस देशमें आब्रजक और आक्रान्ता रूपमें प्रवेश कियाथा तो वे श्रेष्ठ थे, पर अब वे स्वयं आब्रजक एवं आक्रान्ता हैं। यहांकी भूमि, धन-सम्पत्ति, श्रम-श्रमिक उनके अधीन हैं, अर्थात् अब वे उनके दास हैं। अब वे आर्य नहीं 'दास' हैं। इसलिए पूरे ब्रिटिश कालमें यहांके पूरे समाजसे शासितों और दासोंका-सा व्यवहार करतेथे। अब उसमें भावना का कोई स्थान नहीं रह गयाथा।

भारतमें ब्रिटिश शासनका यह व्यवहार यहांके लोगोंको खला। असन्तोष भी बढ़ा। इससे अनेक मनीषी विचलित हुए। स्वागी दयानन्द उन्हीं विभू-तियोंमें से थे जिन्होंने देशमें यह चेतना जागृत की कि हम आर्य हैं अर्थात् श्रेष्ठ हैं, इस अर्थमें देशके सभी

लोग आर्य हैं। यह देश आर्य जाति नहीं है, अपितु सम्पूर्ण समाज अपनी ज्ञान सम्पत्ति और ज्ञान-परम्परा से आर्य है, श्रेष्ठ है। आक्रान्ताओंके क्रूर और मान-वता-विरोधी व्यवहार—आधुनिक शब्दावलीके अनुसार मानवाधिकारोंकी हत्या और मानवीय शोषण—के कारण जिस अवसन्नता और अकर्मण्यताकी सृष्टि हुईहै, उसीके कारण प्रत्येक आक्रान्ता इस समाजके लोगोंको 'दास' और 'नीच' कहनेका साहस करताहै। इस ओरभी ध्यान खींचा गया कि इतिहास-पुराण वेदांगोंका अंग है, लोक-विश्वासके अनुसार यह पंचम वेद है।

वस्तु-स्थिति यह है इतिहास-पुराणके अन्तर्गत जितने ऐतिहासिक तथ्य संकलित हुए, वह भी इतिहास लेखनथा। इतिहास-लेखनकी इस पद्धति और परम्परासे यूरोपीय विद्वान् परिचित ही नहीं थे। इस अपरिचयके कारण वे कभी इतिहास-पुराणको मान्यता प्रदान करनेको तत्पर नहीं हुए। ऐतिहासिक परम्पराओं और परिवर्तनों, मानवीय व्यवहारों-कृत्यों, विश्वासों, परम्पराओं की परम्पराका व्यापक विवरण इतिहास-पुराणमें बिखरा पड़ा है। क्योंकि वैज्ञानिक स्तरपर यूरोपीय विद्वानोंने इस लेखन-संकलनका न उपयोग किया, न उसे मान्यता दी, इसलिए यूरोपीय परम्पराके अनुसार इतिहास लेखन करनेवाले भारतीयोंने भी इतिहास-पुराणको मान्यता नहीं दी और उसपर शोधकार्य भी नहीं हुआ। यदि किसी आचार्य और विद्वान्ने इस क्षेत्रमें कार्य कियाभी तो उसे मान्यता नहीं दी। स्वामी दयानन्दने अवश्य सत्यार्थप्रकाशमें इस क्षेत्रमें कार्य करने और शोधकी सम्भावनाओंकी और ध्यान खींचा। इस दिशामें शोध-कार्यके लिए तत्पर होते समय हमें यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि इतिहास-पुराणमें परिवर्तनकी धाराओंको यूरोपीय विद्वान् लक्षित नहीं कर पाये क्योंकि इस दृष्टिसे जिस ऐतिहासिक संवेदनाकी आवश्यकता होतीहै, उसका यूरोपीय विद्वानोंमें, भारतीय परम्पराके आधारसे अपरिचयके कारण, अभाव था। आजके भारतीय इतिहासकार भी क्योंकि इतिहासकी भारतीय परम्परासे अपरिचित ही नहीं, अपितु उसे अस्पृश्य मानतेहैं, इसलिए यह परम्परा शोधार्थियोंकी प्रतीक्षामें है। यदि इतिहास-पुराणके कपाट हम अपनी शोधवृत्तिसे खोल सकें तो हम पायेंगे कि अपनी जिस परम्परासे हम परिचित हैं उसमें आर्य-अनार्य, आर्य-दस्यु, आर्य-द्रविड़ जैसी विद्वेष फैलानेवाली किंवदन्तियों और गपोंको कभी कोई



स्थान नहीं मिला, उस रूपमें यह विदेशी आक्रान्ताओं का उपनिवेश भी नहीं बना। समस्या शोध-द्वारा खोलने की है।

हमारे देशके इतिहासकी समस्या केवल प्राचीन भारतके इतिहास तक सीमित नहीं है। मध्य युगका इतिहास तो अत्यधिक क्रूरतापूर्ण है। यह केवल आक्रमणकारियों द्वारा सामूहिक हत्याकाण्ड, लूट-पाट, धन-सम्पत्ति विनाश, स्त्री-बलात्कार, स्त्री-अपहरणका इतिहास है। भारतीय समाजके लोगोंने भी अपने समाजके साथ विश्वासघात किया और आक्रान्ताओंका साथ देकर स्वजनोंकी हत्याएं कीं। आक्रान्ताओंके लिए देश-विजयकर विनाश भूखण्ड आक्रान्ता-स्वामियोंको अर्पित किये, उन्हें और अधिक लूट खसोट, बलात्कार, अपहरणके अवसर प्रदान करनेका यश अर्जित किया। आक्रान्ताओंके स्वार्थके लिए काम करनेवाले इन परहित-साधकोंको पुरस्कृत भी किया गया। इसी परम्परामें औरंगजेबने जब इस्के-दुक्के फरमानों द्वारा अपने इन समाजद्रोहियोंके मन्दिरोंके लिए आर्थिक सहायता की तो वामपंथी इतिहासकारों और उनके समर्थकोंने औरंगजेबको उदार घोषित कर दिया—परन्तु मथुरा-काशीके मन्दिरोंको नष्ट करवानेके फरमान वामपंथियों को दिखायी नहीं दिये। मुसलमान इतिहास औरंगजेब को गाजी कहतेहैं, क्यों कहतेहैं, इसकी उपेक्षा किसलिए की जाती है? अयोध्याका मन्दिर गिराकर मस्जिदका निर्माण किया गया तो इस 'सुकृत्य' के लिए क्यों उसके स्मृति-स्तंभको सुरक्षित रखनेके प्रयत्न किये जातेहैं? क्या यह आक्रमण नहीं था? मन्दिरोंकी रक्षा करने वालोंके उस समय या बादमें मुस्लिम कालमें जो नर-संहार हुए, उन्हें क्यों छिपानेका प्रयत्न किया जाता है? संभव है सेक्युलरवादमें हिन्दू धार्मिक स्थलोंको नष्ट करना आक्रमण न हो, केवल मुस्लिम स्मृति स्तंभों, कब्रों, मस्जिदोंकी ओर संकेत करनाही आक्रमण हो। इस युगके इतिहासमें स्थिति अपनी पराकाष्ठापर तब पहुंचती है जब मजहबके नामपर होनेवाले आक्रमणको आक्रमण नहीं माना जाता। टीपूके समकालीन लेखक तो उसकी क्रूरता और धर्मान्धताके पूरे विवरण देतेहैं; मैसूरसे चित्रदुर्ग तक के निवासी आज तक इस क्रूरता और धर्मान्ध कृत्योंके विवरण और स्मृतियां दो पीढ़ियां निकल जानेपर भी अपने मनमें संजोये हुएहैं, परन्तु दिल्ली दूरदर्शन इस क्रूर और धर्मान्ध एवं सैनिक शक्तिसे इस क्षेत्रके

'प्रकर'—फरवरी ६२—४

निवासियोंको आतंकित करनेवाले टीपूको इसलिए स्वतंत्रता सेनानी मानतेहैं कि उसने अंग्रेजोंसे संघर्ष कियाथा। परन्तु अंग्रेजोंसे संघर्ष करनेवाले बम्बईके नौ-सैनिकों और थल-सैनिकोंके विद्रोहका, अथवा आजाद हिन्द फौजके मरणान्तक संघर्षका और सबसे बढ़कर नेताजी सुभाषकी संघर्ष कथाका कभी स्मरण नहीं किया। सावरकर द्वारा जेलमें झेली गयी यातनाओं और देशको स्वतंत्र करानेके उनके आजीवन संघर्ष को इसलिए स्मरण नहीं किया जाता क्योंकि किसी राजनीतिक दलकी सेकुलर नीतियोंको उन्होंने जीवन भर आक्रान्ताओंके सामने आत्मसमर्पण माना।

छद्म-इतिहास-लेखनका क्रम ब्रिटिश शासनमें प्रारम्भ हुआ। इतिहासके तथ्यात्मक लेखनको निरुत्साहित किया गया, भारतीय इतिहासके मूल स्रोतोंको नष्ट करनेके लिए संस्कृतके पठन-पाठनको धीरे-धीरे समाप्त किया गया। माउण्टबेटन द्वारा पदासीन सत्ताधीशों और उन उत्तराधिकारियोंने भारतीय भाषाओंका पठन-पाठनभी सीमित कर दिया, मात्र अंग्रेजीको ही सत्ताकी भाषा बना दिया। आजका प्रशासन अधिकारी केवल अंग्रेजी जानता है, उसके संदर्भ ग्रन्थ मात्र अंग्रेजीमें लिखित होतेहैं। उनकी अंग्रेजी भलेही इंडियन-इंग्लिश हो; पर वह भारतीय साहित्य, एवं भारतीय साहित्यके मूल स्रोत वेद-वेदांग, इतिहास-पुराणकी भाषासे पूरी तरह कटा हुआ है, उस साहित्यकी नामावली तक से अपरिचित है। भारतीय साहित्यको सांस्कृतिक आधार प्रदान करनेवाली अन्य पाली-प्राकृत जैसी भाषाओं, बौद्ध-जैन साहित्य उसके लिए वैसेही हैं जैसे किसी दूरस्थ नीहारिकाके आसपास मंडरानेवाला नक्षत्र।

यह वस्तुतः भारतीय प्रशासनकी सामान्य नीति, विशेषतः भारतीय इतिहासके प्रति उसकी नीतिका प्रश्न है। अब वर्तमान भारतीय प्रशासनकी नीति इतिहासके तथ्यात्मक रूपको सामने लानेके स्थानपर 'सेक्युलर' इतिहास लिखानेकी है। वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टिसे यह एक बड़ी दुर्घटना होगी कि इतिहासका पुनर्लेखन किसी विशिष्ट विचारधाराके आधारपर हो। ब्रिटिश इतिहास लेखन और मुस्लिम इतिहास लेखनकी परंपरामें यह एक और इतिहास-लेखन होगा। □



# आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री

## [व्यक्ति और सृजनका स्मरण]

--डॉ. विजयेन्द्र स्नातक

[ १ ]

बीसवीं शतीके प्रथम चरणमें हिन्दी साहित्य जगत्में जिन मेधावी, प्रतिभाशाली लेखकोंका आविर्भाव हुआ, उनमें आचार्य चतुरसेन शास्त्रीका नाम पहली पंक्तिमें है। रचनात्मक साहित्यकी विपुलताके साथ विधा-वैविध्यकी दृष्टिसे भी हम उन्हें उस युगके महान् साहित्यकारके रूपमें देखतेहैं। केवल संख्यात्मक विराटताही चौंकाने वाली नहीं है, गुणात्मक निकषपर भी शास्त्रीजीका साहित्य उच्च स्तरीय है। कभी-कभी ऐसाभी होताहै कि किसी महान् साहित्यकारके कृतित्वका अपने युगमें सही मूल्यांकन नहीं होता। उचित मूल्यांकनके अभावका स्वयं साहित्यकारको भी बोध और क्षोभ रहताहै किन्तु मूल्यांकनकी कसौटी तो दूसरोंके हाथमें होतीहै। फलतः साहित्यकार सही मूल्यांकनके अभावमें कस-मसाता तो रहताहै किन्तु निरवधि काल तथा विपुला पृथ्वीको दृष्टिमें रखकर समानधर्मा, सूझबूझवाले समीक्षककी आशामें इस उपेक्षाको मौन रहकर सहता और भोगताहै परन्तु अपने पथसे विचलित नहीं होता और अपनी सृजनशीलतापर आंच नहीं आने देता। चतुरसेन शास्त्री इसी कोटिके रचनाकार थे। उन्होंने अपने जीवन कालमें आलोचकों द्वारा कीगयी इस उपेक्षाको चुपचाप भोगा किन्तु अहंभावको सुरक्षित बनाये रखा। उन्होंने इस विषयमें बड़े स्पष्ट शब्दोंमें लिखाहै :

“मैं साहित्यकारोंकी विरादरीसे जातिच्युत साहित्यकार हूँ। अपने अहंके बलवृत्तेपर मैंने आजतक इन बातोंकी (उपेक्षा भावकी) कानी कोड़ीके बराबर भी परवाह नहीं की। मैंने चार सौसे अधिक कहानियाँ लिखी, अठ्ठाईस-तीस उपन्यास लिखे, बारह नाटक तथा खड़ी बोली, ब्रजभाषा और संस्कृतमें कविताएँ

लिखीं किन्तु मुझे हिन्दीके समीक्षकोंने किसी विधा या वर्गमें रखना पसन्द नहीं किया।”

दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा सन् १९५५ में उनकी साहित्य सेवाओंके उपलक्ष्यमें उन्हें ताम्रपत्र भेंट किया गया। तब उन्होंने विनम्रतापूर्वक कहाथा कि—“आपने मुझ अकिंचन, बहिष्कृत साहित्यकारको यह बहुमूल्य ताम्रपत्र प्रदानकर जो अकल्पित, असाधारण सम्मान दियाहै, उससे मैं आश्चर्यचकित और विमूढ़ हो गयाहूँ। भयमिश्रित आशंकासे मेरा दिल धड़क रहाहै कि कहीं दूसरे साहित्य महारथी की जगह मेरा नाम भूलसे तो नहीं लिख लिया गयाहै। डरनेके अनेक कारण हैं। दिल्ली भारतकी राजधानी है, साहित्य महारथियोंकी यहां क्या कमी। उनके सम्मुख मैं न तीनमें न तेरहमें। जहां उपन्यासकारोंकी चर्चा होतीहै, मेरे नाम सिफर। कहानीकारोंमें, नाटककारोंमें, एकांकीकारोंमें, निबंधकारोंमें, सर्वत्र सिफर। मैं इस सिफरको देखकर संतोष कर लेताहूँ और मन ही मन कह लेताहूँ—

स्वर्गीय आचार्य चतुरसेन शास्त्रीकी जन्म-शत-वार्षिकीके अवसरपर साहित्य अकादमीने ३१ अगस्तसे १ सितम्बर १९६१ को एक संगोष्ठी का आयोजन कियाथा। इसमें डॉ. स्नातकने अपना लिखित भाषण पढ़ाथा, जिसे ‘प्रकर’ में दो अंशोंमें प्रस्तुत कियाजा रहाहै। प्रथम अंशमें उनकी सनार्जत्मक प्रवृत्तियोंके उदय और विकास की कथा है। आगामी अंक (मार्च ६२) में उनकी कृतियोंका समीक्षात्मक परिचय प्रस्तुत किया जायेगा।

‘प्रकर’—फाल्गुन २०४८—५



साहित्य देव नमस्तुभ्यं सिद्धोऽहं यत्प्रसादतः ।

अहं पश्यामि जगत् सर्वं नमो पश्यतिकश्चन ॥

आचार्य चतुरसेन शास्त्रीके ये उद्गार उस समय के हैं जब उनके 'वैशालीकी नगरवधू' और 'सोमनाथ' जैसे उपन्यास हिन्दी जगत् में लोकप्रियताके चरम बिन्दु पर थे । 'अन्तस्तल', 'तलाग्नि' और 'कालिन्दीके कूल पर' जैसे गद्य काव्य अपनी विधामें मूर्धन्य कोटिकी रचनाएं थीं । कहानियां विश्वविद्यालयोंके पाठ्यक्रममें निर्धारित थी और 'अन्तस्तल' का मराठी और गुजरातीमें अनुवाद हो चुका था । उर्दूमें भी फुटकर गद्य काव्योंको बीसवीं सदी अखबारमें अनूदित करके छपा गया था । यह सब होते हुएभी हिन्दी समीक्षक चतुरसेन से अपरिचित बने रहनेका मिथ्या मोह पाल रहे थे ।

+ + +

आचार्य चतुरसेन शास्त्रीका जीवन एक संघर्षशील व्यक्तिके नानाविध प्रयोग और पुरुषार्थकी रोमांचक कहानी है । चतुरसेनका जन्म एक अति निर्धन परिवार में बुलन्दशहर जिलेके चांदौख नागक गांवमें २३ अगस्त सन् १८९१ में हुआ था । शैशवके चार वर्ष चांदौख गांव में ही व्यतीत हुए । पढ़नेके लिए सिकन्दराबाद कस्बेमें आये और वहां अंग्रेजी स्कूलमें आठवीं कक्षा तक पढ़े । उनके स्कूलके सहपाठियोंमें शान्तिस्वरूप भटनागर थे जो बादमें भारतके सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक 'सर शान्तिस्वरूप भटनागर' के नामसे विख्यात हुए । दूसरे साथी हरिश्चन्द्र थे जो बर्मा में भारतके चीफ इंजीनियर बने । सिकन्दराबाद उस समय आर्यसमाजका गढ़ था । वहां पंडित मुरारीलाल शर्मा और स्वामी दर्शनानन्द जैसे आर्यसमाजके दिग्गज विद्वान् उपस्थित थे । उन्होंने जनताके सहयोगसे वहां एक गुरुकुल स्थापित किया था, जिसमें बालक चतुरसेनको संस्कृत पढ़नेके लिए प्रविष्ट करा दिया गया । कुछ वर्ष वहां पढ़नेके बाद संस्कृतकी उच्च शिक्षाके लिए चतुरसेन स्वयं काशी चले गये और वहां संस्कृत साहित्य और दर्शनका अध्ययन किया । काशीके पंडितोंकी पठन-पाठन शैलीसे खिन्न होकर जयपुरके संस्कृत कॉलेजमें संस्कृत और आयुर्वेद पढ़नेका इच्छासे प्रवेश लिया । धनाभावके कारण छात्रावासमें रहनेकी व्यवस्था न हो सकी । आर्यसमाजमें एक कमरा मिल गया, वहीं अपने अन्य सहपाठी सूर्यप्रकाशके साथ रहने लगे । दोनों व्यक्ति ट्यूशन करके अपने भोजनका प्रबंध करते थे । सूर्यप्रकाश हैदराबाद निवासी थे । आगे

चलकर हैदराबाद राज्यके एकाउंटेंट जनरल बने, और कैप्टन सूर्यप्रकाश नामसे विख्यात हुए । जयपुरमें इनकी एक और छात्रसे भेंट हुई और सूर्यप्रकाश इस छात्रको ट्यूशन पढ़ाने लगे । बादमें वह छात्र दिल्लीका प्रतिष्ठित नागरिक, सामाजिक तथा राजनीतिक नेता बना । उसका नाम था डॉ. युद्धवीर सिंह । इन तीनों छात्रों की प्रगाढ़ मैत्री बनी रही । कैप्टन सूर्यप्रकाशने चतुरसेनके सुगंधित संस्मरण लिखे हैं । इन मोहक संस्मरणों में चतुरसेन और युद्धवीरसिंहकी जीवन झांकीके साथ संघर्षोंके भीषण घात-प्रतिघातको भी देखा जा सकता है ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्रीका जीवन तो संघर्षोंके बीच जूझते हुए ही व्यतीत हुआ । प्रारंभिक जीवनमें अभाव, श्रम और सेवा उनके जीवनपथको प्रशस्त बनानेमें सहायक हुए । सामाजिक संपर्क बढ़नेपर विद्रोह ने उनके मनमें जन्म लिया । विद्रोहके कारण पहले सामाजिक कुरीतियां, अंधविश्वास और रूढ़ियां थीं, किन्तु बादमें अन्याय और अनीतिके प्रति विद्रोह उनका स्वभाव बन गया । इस विद्रोही स्वभावके कारण उन्हें नाना प्रकारके कष्ट झेलने पड़े, नौकरी छोड़नी पड़ी, मन्दिरके महन्तों और मारवाड़ी समाजके सेठ साहूकारों से जूझना पड़ा । यह विद्रोह उनके आर्यसमाजी संस्कार और शौर्यभरे यौवनकी उमंगही था । जब उनका मन स्थिर और शान्त होकर लेखनमें व्यस्त हुआ तो वेदना और कल्पनामें लीन रहने लगा । उनकी वेदना सत्यपर आधारित थी और कल्पना, वेदनाकी प्रतिक्रियाको ध्वनित करती थी । उनके कथा-साहित्यमें इन्हीं तत्त्वोंका प्राधान्य है । जब गंभीर साहित्य, संस्कृति और इतिहास लेखनकी ओर मुड़े तो विवेक और संयम उनके लेखनमें स्थान पा गये । इस प्रकार चतुरसेन शास्त्रीके जीवन और साहित्यमें हम जिन तत्त्वोंको प्रेरक शक्तिके रूपमें देखते हैं उन्हें हम **अभाव, श्रम, सेवा, विद्रोह, वेदना, कल्पना, विवेक और संयम** शब्दोंमें समाहित कर सकते हैं । इन्हीं भावों और विचारोंके प्रभावसे उन्होंने कलम पकड़ी और आजीवन इन्हीं भावोंको मूर्त रूप देनेमें लगे रहे । इन्हीं विचारों के कारण शास्त्रीजी हिन्दीके मूर्धन्य साहित्यकार बन कर अपने पदचिह्नकी अमिट-छाप साहित्य-शैलीपर छोड़ गये ।

पारिवारिक कष्ट कथाओंके व्यवधानके मध्यभी



शास्त्रीजीका अध्ययन क्रम सतत् चलता रहा। आयु-वैदकी शास्त्री और आचार्य परीक्षाएं उन्होंने प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण कीं। उनके स्वसुर श्री कल्याणसिंह अजमेरमें वैद्य थे और उनकी इच्छा थी कि चतुरसेन भी वैद्य बनकर दिल्ली या अजमेरमें स्थापित हों। वैद्य का पेशा उस समय घाटेका नहीं था। उनकी प्रेरणासे शास्त्रीजीने पहले दिल्ली और बादमें अजमेरमें वैद्यकका काम किया। वैद्यके रूपमें प्रतिष्ठित होनेपर भी इनके भीतर साहित्यकारका जो बीज छिपाया, वह शनैः-शनैः अंकुरित होने लगा। बम्बई जाकर इस अंकुरको फूलने-फलनेका उपयुक्त वातावरण मिला। 'हृदयकी परख' उपन्यास एक सत्य घटनाके आधारपर लिखा और उस समय हिन्दी जगत्में चर्चित हुआ। बम्बई प्रवासमें शास्त्रीजीका परिचय उर्दूके प्रसिद्ध लेखक और 'बीसवीं सदी' अखबारके सम्पादक हाजी मुहम्मद अल्लारखिया शिवचीसे हुआ, उन्होंने 'हृदय की परख' को उर्दू-अनुवादके साथ छापा। साथही कुछ गद्य काव्यके अंशभी उर्दूमें अनूदित करके अखबार में प्रकाशित किये थे। 'दिवाली', 'अनुताप', 'रूप' और 'दुःख' गद्य काव्यही थे जो हाजी साहबको बहुत पसन्द थे और उर्दूमें छपे थे। 'अन्तस्तल' की रचना उन्हींकी प्रेरणाकी परिणति हैं।

इस पुस्तकके भूमिका-लेखक थे पंडित पद्मसिंह शर्मा और काफी असे तक यह पुस्तक कई विश्व-विद्यालयोंमें एम. ए. की पाठ्य पुस्तक रही। आजकी पीढ़ीके नये साहित्यकारोंके लिए इस पुस्तकका नाम भी नया होगा। 'अन्तस्तल' के मराठी, गुजराती और उर्दू में अनुवाद भी प्रकाशित हुए। हिन्दीमें तो इसके एक दर्जनसे अधिक संस्करण छपे। इस पुस्तकके साथही नाथराम प्रेमीने इनकी अन्य रचनाएं भी प्रकाशित करनेका वचन देकर इन्हें लेखनमें प्रवृत्त कर दिया। आश्चर्यकी बात यह है कि साहित्यप्रेमी शास्त्रीजी राजनीतिमें भी गहरी रुचि-रखकर असहयोग, सत्याग्रह, स्वराज्य आदि विषयोंपर भी कलम चलाते थे। उनकी पुस्तक 'सत्याग्रह और असहयोग' सन् १९२१ में गांधी हिन्दी पुरतक भंडार, बम्बईसे प्रकाशित हुई थी। उस समयके राजनीतिक नेताओंने इसे पढ़ा और खूब सराहा। गणेशशंकर विद्यार्थीने पुस्तकके भाव और भाषापर मुग्ध होकर शास्त्रीजीको जेलसे पत्र लिखा कि 'मैं इस पुस्तकको असहयोग और राजनीति

की गीता मानता हूं। उसका पाठ गीताकी भांति करता हूं।' पुस्तक कुछ मास बाद अंग्रेज सरकार द्वारा जब्त कर लीगयी किन्तु जल्दीसे पहले मराठी और गुजराती संस्करण पाठकों तक पहुंच चुके थे। इस पुस्तकके दस वर्ष बाद भी शास्त्रीजीने सन् '१९२० बनाम ३०' शीर्षकसे एक राजनीतिपरक पुस्तक लिखी जो अत्यन्त लोकप्रिय हुई। सामाजिक तथा शिक्षा विषयक पुस्तकें तो शास्त्रीजी निरन्तर लिखते रहते थे। समाज सुधारमें उनकी रुचि ही नहीं, गहरी पैठभी थी। प्रौढ़ शिक्षा को वे भारतके लिए अनिवार्य आवश्यकता मानते थे इसी-लिए दर्जनों पाठ्य पुस्तकें प्रौढ़ शिक्षा विषयक लिखकर सरकारका ध्यान आकृष्ट करते रहे। स्वतंत्र भारतमें प्रौढ़ शिक्षाकी तरफ शासनका यत्किंचित् ध्यान गया है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्रीके साहित्यिक प्रदेयपर कुछ कहनेसे पहले मैं उनकी आरोग्यशास्त्र तथा चिकित्सापरक पुस्तकोंकी चर्चा करना आवश्यक समझता हूं। शास्त्रीजीने प्रारंभमें वैद्यके रूपमें जीविकोपार्जन प्रारम्भ किया था किन्तु वे केवल चिकित्साही नहीं करते थे, चिकित्सा विषयक अपने ज्ञान और अनुभवको लिपि-बद्ध भी करते रहते थे। चिकित्सा विषयक उनकी चालीस पुस्तकें प्रकाशित हैं जिनमें विशालकाय ग्रंथ 'आरोग्यशास्त्र' बहुत चर्चित है। शास्त्रीजी अपने प्रारंभिक जीवनमें पेशेवर वैद्य थे। उन्होंने लगभग पैंतीस वर्ष वैद्यके रूपमें व्यतीत किये। साहित्य-लेखनभी चलता रहा किन्तु वह पूर्णकालिक लेखन कार्य नहीं था, अतः हिन्दीके पाठक और समीक्षक दोनोंही सजगतापूर्वक उनके लेखनसे जुड़े नहीं रह सके। हाँ, यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि 'हृदयकी परख', 'हृदयकी प्यास' और 'अन्तस्तल' जैसी रचनाओंसे तीसरे दशकमें ही उनका नाम हिन्दी जगत्में प्रसिद्ध हो गया था। मासिक पत्र 'चाँद' के दो विशेषांक—'फांसी अंक' और 'मारवाड़ी विशेषांक' के सम्पादकके रूपमें भी साहित्यकी देहलीपर उनके कदम जम गये थे। इन दोनों विशेषांकोंकी सामग्री एकत्र करनेमें शास्त्रीजीने जो घोर परिश्रम किया वह आजके युगमें कल्पित कहानी लगती है। 'फांसी अंक' को ब्रिटिश सरकारने जब्त करके सम्पादकको अखबारोंकी सुखीमें ला दिया था।

शास्त्रीजीके जीवनमें राजनीति भी अपना दखल



रखती थी। जिसे आज सक्रिय राजनीति कहा जाता है, उसमें तो उन्होंने हिस्सा नहीं लिया किन्तु देशको अंग्रेजोंकी गुलामीसे मुक्त करनेके लिए प्रयत्न करने वाले उत्साही युवकोंसे वे जुड़े रहे। क्रान्तिकारी युवक उन की राजनीति विषयक पुस्तकें पढ़ते थे। 'पराजित गांधी' शीर्षक पुस्तक तथा 'सन् २० बनाम ३०' भी उस वर्गमें पढ़ी जाती थी। बहुत कम लोग जानते हैं कि सरदार भगतसिंह भी शास्त्रीजीके सम्पर्कमें थे और जिस दिन असेम्बली भवनमें बम फेंका गया उस दिन वह बलवन्तसिंह नामका युवक भगतसिंह ही था जो शास्त्री दम्पतीके लिए असेम्बली प्रवेशके पास लाया था। शास्त्रीजी बमकांडके समय भवनमें उपस्थित थे और बादमें इसी केसके सिलसिलेमें उन्हें पुलिस हिरासतमें लाहौर जाना पड़ा था। घरकी तलाशी भी हुई और लम्बे समय तक पुलिस निगरानीमें रहना पड़ा। □

[आगामी अंकमें आचार्य चतुरसेन  
शास्त्री और उनका साहित्य]

## निरालाकी आत्मकथा?

[निरालाके ग्रन्थोंमें सचेत-अचेत रूपसे व्यक्त  
उनके जीवन संबंधी अंशोंका संकलन]

संकलनकर्ता : डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित

समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

कृतित्वमें व्यक्तित्व प्रत्यक्ष-परोक्षतः झलकताही है, विशेषतः आत्मचेता सृजेताकी रचनाओंमें। बहिर्साक्षिक आधारपर साहित्यमें यत्रतत्र सचेत-अचेत रूपसे व्यक्त अंशोंके आधारपर रचनाकारके व्यक्तित्वका साक्षात्कार किया जाता रहा है। ज्ञात तथ्योंकी छाया उसके साहित्यमें यत्र-तत्र दिखायी पड़ती जाती है। अनेक प्राचीन मध्यकालीन कवियोंके निजी जीवनमें कुछ तथ्य इस प्रकार संकलित किये जाते रहे हैं। इसीसे सृजनात्मकतासे उत्पन्न होकर कुछ सहृदय समीक्षकोंने कुछ प्रसिद्ध साहित्यकारोंके जीवनके कुछ या अनेक वृत्तोंका संयो-

जन किया है, उनमें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित 'वाणभट्टकी आत्मकथा' सर्वाधिक उल्लेख्य है। द्विवेदीजीने इसे आत्मकथा बनाने और सिद्ध करने के लिए भूमिकामें एक कथाभी गढ़ ली है, जिसके कारण साहित्यके कुछ इतिहासोंमें द्विवेदीजीके इस उपन्यास को वास्तवमें वाणभट्ट द्वारा लिखित आत्मकथा ही समझ लिया गया है। वह द्विवेदीजीके रचना कौशलका जादू है। इसी परम्परामें डॉ. दीक्षित द्वारा 'निरालाकी आत्मकथा' संयोजित की गयी है, परन्तु वाणभट्टकी आत्मकथासे यह नितान्त भिन्न है। द्विवेदीजीने वाणभट्टके ग्रन्थोंके आधारपर उनमें आये कुछ आत्मकथात्मक संकेतोंके आधारपर अपनीही शैलीमें 'वाणभट्टकी आत्मकथा' लिखी है जो वाणभट्टकी शैलीका भ्रम पैदा करती है। परन्तु डॉ. दीक्षितका इसमें अपना लिखा हुआ एक शब्दभी नहीं है, जो कुछ है, निरालाका लिखा हुआ है। अनेक प्रसंगोंमें अपने लगभग सभी ग्रन्थोंमें निरालाके प्रत्यक्षतः और परोक्षतः अपने विषयमें लिखा है। अनेक सिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्तित्वोंसे वादविवाद होनेपर ये प्रसंग आये हैं। अनेक गीतों और कविताओंमें भी ऐसे संकेत हैं कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं परोक्ष। यथा—'रामकी शक्तिपूजा' में दुर्गा द्वारा अर्चनाका अन्तिम कमल गायब कर देनेपर रामका उद्वेलित होकर कह उठना—

'धिक् जीवनको जो पाता ही आया विरोध।

धिक् साधन जिसके लिए सदाही किया शोध।

यह रामके साथ-साथ निरालाके जीवनपर भी ठीक बैठता है। प्रेमचन्दने 'हंस' के आत्मकथा विशेषांक के लिए निरालासे कुछ लिखनेके लिए कहा तो निराला ने ये दो पंक्तियां लिखकर भेज दीं—

"दुःख ही जीवनकी कथा रही

क्या कहूं आज जो नहीं कहो।"

जो कुछभी आजतक लिखा है वह दुःखही तो है स्वयं भोगा हुआ। इसीको वे लिखते रहे अधिकांशतः। उनके जीवनसे परिचित व्यक्ति उनके साहित्यसे इसको प्रमाणित कर सकते हैं। वैसेभी 'स्व' और 'पर' का कोई भेद नहीं रह जाता है, सृजनाके स्तरपर। दिनकरने भी लिखा है 'हारेको हरिनाम' में—

लोग समझते रहे मैं देशका दर्द गाता हूं

लेकिन मैंने दर्द अपनाही गाया है।

देशके दर्दसे तादात्म्य स्थापितकर लेनेके बाद फिर

१. प्रकाशक : विवेक प्रिंटर्स, सीतापुर रोड, लखनऊ।

पृष्ठ : १६३; डिमा.; मूल्य : २०.५० रु.। (पेपर बंक)।

'प्रकार'—फरवरी १९२—



अपने और परायेमें भेद कहाँ रह जाता है ? भेद केवल शैलीका है, कहीं प्रत्यक्षतः उत्तम पुरुषमें कहीं परोक्षतः प्रथम पुरुषमें किसी कथाके माध्यमसे । संभवतः इसी सूत्रसे प्रेरित होकर दीक्षितजीने निराला साहित्यका मंथन करते हुए आत्मकथाकी गागरमें यह प्रस्तुत किया है । पूरी पुस्तकको पढ़कर आश्चर्य होता है कि किस प्रकार लगभग पूरे साहित्यमें निराला अपने दुःख-दर्दको आने-अनजाने व्यक्त करते रहे और कितनी सूक्ष्म दृष्टि से दीक्षितजीने कई हजार पृष्ठोंके इस जंगलमें निरालाकी आत्मकथाका एक-एक रेशा खोजकर इकट्ठा किया और अपनी विलक्षण सृजनात्मकतासे इसे संयोजितकर प्रस्तुत किया । यह दीक्षितजीका संयोजन कौशल ही है जो डेढ़ सौ पृष्ठोंकी आत्मकथा प्रस्तुत कर सका । लगता है इसी रूपमें खण्डशः निरालाने अपनी आत्मकथा लिखी है ।

अपना एक शब्दभी न लिखकर दीक्षितजीने जो यह आत्मकथा संयोजित की है वह उनकी गहरी सृजनात्मकता, विलक्षण सूक्ष्मज्ञ और अपूर्व कल्पनाशीलताका प्रमाण तो देती है । आगेके सृजनात्मक समीक्षकों और अनुसंधाताओंको अन्य साहित्यकारोंके साहित्यका मंथन कर ऐसी रस गागर प्रस्तुत करनेकी प्रेरणा भी देती है । अन्य लोगोंके संस्मरणोंको इसमें नहीं लिया गया है । इनकी प्रामाणिकताकी जाँच पड़ताल कौन करता ? वैसे भी यह आत्मकथा है जीवनी तो है नहीं, जिसमें तथ्योंकी प्रामाणिकता ही प्रमुख होती है । निरालाके गहनसे गहन अध्येताको आश्चर्यचकित और पुलकित करनेकी सामर्थ्य इस रचनामें है । दीक्षितजीकी प्रतिभा का यह अवदान साहित्यके विशाल प्रांगणमें अबतक भलेही 'गुनगाहकके हिराने' से अनदेखा रहा हो, अनदेखा रहने योग्य है नहीं । स्वयं निरालाको भी कदाचित् ही इसका भान होता कि उन्होंने अपनी आत्मकथा इस रूपमें लिखी है ।

चालीस अध्यायोंमें संकलित इस आत्मकथामें निरालाके जीवनके अनेक ज्ञात-अज्ञात पक्षोंका उद्घाटन हुआ है बड़े प्रभावी ढंगसे । अनेक रचनाओंके बीचमें सहज रूपसे उपस्थित निजी प्रसंगोंमें अभिव्यक्त ये पक्ष निरालाकी जिजीविषा, संघर्ष, प्राणवत्ता और सहजताका पाठकपर अमिट प्रभाव छोड़ते हैं । वाणभट्ट की कादम्बरीके स्वरमें पहला अध्याय 'अथ कथामुख' है जिसमें आत्मपरिचय है । व्यंग्यात्मक शैलीमें अपने

व्यक्तित्वके विलक्षण विकासका संकेत है । यथा—  
 'ईश्वर, सौंदर्य, वैभव और विलासका कवि हूँ मैं, फिर क्रांतिकारी । मैं कविता लिखनेकी कोशिशमें ही बिगड़ा हूँ' (पृ. ८), 'मझे बराबर पेटके लाले रहे पर फाकेमस्तीमें भी परियोंके खवाब देखता रहा (पृ. ९) । 'जब कड़ी मार पड़ी' अध्यायमें जातपात का बंधन तोड़नेके कारण, पिताजी द्वारा विकट मार का विवरण है । 'एक इन्द्रजालमें' युवावस्थामें वशाकरण सिद्ध करनेकी घटनाका रसमय वर्णन है । बड़े ठाट-वाटसे कीगयी 'पहली सुसराल यात्राका उल्लेख बड़ा रोचक है, जिसमें बीस रुपयेवाली सत्की शीशीकी मालिशका भरपूर रौब पड़ता है । सास और पत्नीसे मिलनेका बड़ा रोमांचक वर्णन है । समुरालमें साली सलहजोंके साथ पत्नीके गाने-बजानेका प्रसंग भी अविस्मरणीय है । फिर शिक्षारम्भ । इसी संदर्भमें पत्नीसे बातचीत । किसीकी बरातमें जाते समय पत्नीने कहा—'वहाँ नाच देखकर भूल न जाइयेगा । निरालाने कहा—'राम भजो'—'कव सूर्यवंशप्रभवो कव चाल्प-विषयमति ।' पत्नीने कहा—'मैं इसका मतलब भी समझूँ ?

समझाकर मैंने कहा—'कहाँ तुम्हारी बांससी कोमल दुबली देहसे सूरजका प्रकाश, कहाँ जहरकी भरी मोती रंडी' (पृ. ३३) । जरा इस उपमानको देखा जाये क्या विलक्षण और नयी सूझ है । कितनी टटकी उपमा है । कदाचित् ही किसीने इसका उपयोग किया हो । 'बांस-सी कोमल देहसे सूरजका प्रकाश कमनीय, नयनाभिराम और लावण्यमय झिलमिलाती देहके रंगकी ऐसी अभिव्यक्ति मेरे देखनेमें तो आयी नहीं ।

'आप अपनेसे उगांमे' अपने स्वतः विकासकी कहानी कुकुरमुत्तेकी तरह सुनायी है । 'पत्नीके कारण खड़ी बोलीके साहित्यकी ओर रुचि हुई । 'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज' में अछूतोंको सम्मान देनेका उल्लेख है । 'राजाकी नौकरी' में एक ढोंगी साधुके पाखंडका विरोध है । 'स्वर्गीया प्रिया मनोहरा' में पत्नी चर्चा है, जिसमें निरालाने मांस खानेका औचित्य बताया है । इसीमें दिवंगत पत्नीको सम्बोधितकर लिखी गयी कविताकी ये पंक्तियाँ हैं—

'एक बारभी यदि अजानके  
 अन्तरसे उठ आजातीं तुम



एक बारभी प्राणोंकी तम

छायामें आ कह जातीं तुम

सत्य हृदयका अपना हाल ।" (पृ. ४६) ।

'हारता रहा मैं स्वार्थ समर' में अपनी मर्दानगी और आनवानका उल्लेख है—“मैं जीवनके पीछे दौड़ाया, जीवके पीछे नहीं । जीवके पीछे पड़नेवाला बड़े-बड़े मकान, राष्ट्र, चमत्कार और जादूसे प्रभावित होकर जीवनसे हाथ धोताहै, जीवनके पीछे चलनेवाला जीवन के रहस्यसे अनभिज्ञ नहीं होता” (पृ. ५१) । मित्र कुल्ली भाट प्रसंग अकृत्रिम, मानवीयता, अहेतुक प्रेम और सहज स्नेहकी अविस्मरणीय गाथा है । कुल्लीकी स्त्रीके द्वारा कुल्लीका श्राद्ध सम्पन्न कराके निराला पौगा पण्डितोंके कोपभाजन बने । 'स्वामी सारदानन्दजी महाराज' प्रसंगमें आध्यात्मिक शास्त्रार्थ है । निराला को प्रायः उद्धत समझा जाता रहाहै । परन्तु उन्हींके शब्दों “मुझे बड़ेको गुरु माननेमें आपत्ति कभी नहीं रही । रहा सिर्फ गुरुडमके खिलाफ” (पृ. ७४) । 'रंग-मंचपर' अध्यायमें मंचपरनिराला द्वारा किये गये अभिनयका अन्यत्र दुर्लभ विवरण है । 'कुंअरका व्याह' में सुकुलकी बीबीसे भेंटका बड़ा रसमय उल्लेख है । अत्यन्त उत्सुकतापूर्ण श्रणोंके अनुभवके बाद सुकुलकी बीबीको अपनी बीबी—छोटी बहन-भतीजी लड़की-अनुजवधू—बनानेका विलक्षण प्रसंग है । उसकी प्रार्थना —“मुझे अपने कुलमें मिलाकर सुकुलसे व्याह सावित कीजिये” (पृ. ९४) । इसेभी पंक्तिपावन किया निरालाने । केवल साहित्यमें ही जातपात तोड़नेका गर्जन-तर्जन नहीं है अपितु यथार्थ जीवनमें जनापवादके कंटकाकीर्ण और जाति-विरोधके बड़ेसे बड़े अंधड़में खड़े होकर यह काम कियाहै किसीकी भी परवाह न करते हुए । “गढ़ाकोला” में इलाकेकी अछूत पाठशालामें बच्चोंको पढ़ाते हुए उनके द्वारा श्रद्धा सुमन स्वीकार करनेका बड़ा प्रेरक विवरण है—“संसारकी सभ्यताके इतिहासमें इनका स्थान नहीं है” (पृ. ९४) । यह कसक निरालाको चतुरी चमार, बिल्लेसुर बकरिहा, महंगू महंगा रहा, कुल्ली आदिकी रचनाकर उनके पक्ष में खड़गहस्त होनेकी प्रेरणा देताहै । व्यक्तिगत जीवन के साक्ष्यसे निरालाकी क्रांतिकी वास्तविकता समझमें आती है । इन दीनहीन वंचित, शताब्दियोंसे शोषित भारतकी अधिकांश जनताके दुर्भाग्यका यह अनुभव निरालाको उनका सच्चा हितैषी सिद्ध करताहै—‘ये

प्रकर'—फरवरी'९२—१०

नहीं कह सकते कि हमारे पूर्वज कश्यप, भारद्वाज, कपिल, कणाद थे, रामायण महाभारत इनकी कृतियां हैं, अर्थशास्त्र, कामसूत्र इन्होंने लिखे हैं । अशोक, विक्रमादित्य, हर्षवर्धन, पृथ्वीराज इनके वंशमें है फिर भी ये थे और हैं ।

अधिक न सोच सका, मालूम दिया जो कुछ पड़ा है, कुछ नहीं, जो कुछ कियाहै व्यर्थ है, जो कुछ सोचा है, स्वप्न—मारे डरके हाथपर नहीं रख रहेथे कि कहीं छू जानेपर मुझे नहाना होगा, इतने नत । इतना अधम बनायाहै मेरे समाजने इन्हें ।

मैंने उन्हें समझाया, मैं उनका आदमी हूँ, उनकी भलाई चाहताहूँ, उन्हें उमी निगाहसे देखताहूँ, जिससे दूसरेको, उन्हें इतनाही आनन्द विह्वल किये हुएहै । बिना वाणीकी वह वाणी, बिना शिक्षाकी वह संस्कृति प्राणका पर्दा पारकर गयी, लज्जासे मैं वहीं गढ़ गया ।

वह दृष्टि इतनी साफ है कि सब कुछ देखती समझतीहै । वहां चालाकी नहीं चलती । ओफ ? कितना मोह है । मैं ईश्वरका एक सौन्दर्य, वैभव और विलास का कवि हूँ, फिर क्रान्तिकारी' । (पृ. ९४) ।

उपन्यासमें यह प्रसंग उतना प्रभावित नहीं करता जितना इस आत्मकथामें । यह है निरालाकी दृष्टि, जिसने उन्हें क्रान्तिकारी बनाया । सड़ी गली दूषित प्रथाओंको ध्वस्त करनेके लिए प्रेरित किया । मुक्त छंद के प्रवर्तनकी प्रेरणा 'मेरे अमित्र महाशय' नामक अध्यायमें है । 'साहित्यिक सन्निपात' में बनारसीदास चतुर्वेदीके साथ हुए विवादका विवरण है । साहित्यके क्षेत्रमें भी पूरा संघर्ष निरालाने किया छायावाद और मुक्त छन्दको प्रतिष्ठित करनेके लिए । पारिवारिक जीवनके आर्थिक संकटकी कसूर गाथा तो 'सरोज स्मृति' कविता है ही—‘लखकर अनर्थ आर्थिक पथपर, हारता रहा मैं स्वार्थ समर ।’ पत्नीको उसके पिता द्वारा दिया जानेवाला दानभी नहीं लेने दिया निरालाने —‘एक तरफ बापका आधा हिस्सा, दूसरी तरफ पूरा मैं, एक लो ।’ (पृ. ११६) । कुल्ली भाटके साक्ष्यपर संकलित इस तथ्यको कितने लोग जानतेहैं ? 'हिन्दी बनाम हिन्दुस्तानी' में हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति गांधीजीसे हिन्दुस्तानीको उच्च शिक्षा और गंभीर साहित्य सृजनमें असमर्थ सिद्ध करते हुए उसका विरोध करनेकी कथा है क्योंकि मुसलमानोंका नेता बननेकी लालसासे हिन्दीके स्थानपर हिन्दुस्तानीको खड़ा किया



जा रहा था। फिर हिन्दीके सम्मानकी रक्षाके लिए गांधीजीसे टकराना ही था क्योंकि सम्मेलनके इन्दौर अधिवेशनमें गांधीजीने कहा—कौन है हिन्दीमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जगदीशचन्द्र बसु, प्रफुल्लचन्द्र राय ? गांधीजीकी पुतलियोंमें बड़ी चालाकी अपने प्रतिद्वन्द्वीको परास्त करनेवाली। झकोड़नेपर गांधीजी बोले—मैं हिन्दी कुछभी नहीं जानता।

मैं (निराला)—तो आपको क्या अधिकार है कि आप कहें कि हिन्दीमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर कौन है ?

महात्माजी—मेरे कहनेका मतलब कुछ और था मैं—यानी आप रवीन्द्रनाथ जैसा साहित्यिक हिन्दीमें नहीं देखना चाहते। प्रिस द्वाराकानाथ ठाकुर का नाती या नोबुल पुरस्कार प्राप्त मनुष्य देखना चाहते हैं ?

रवीन्द्रनाथकी तुलना करते हुए कुछ हिन्दी कविताएं सुनानेके लिए निरालाने जब गांधीजीसे आधे घंटे का समय मांगा, तो महात्माजी बोले—‘मेरे पास समय नहीं है। मैं हैरान होकर हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापतिको देखता रहा, जो राजनीतिक रूपसे देशके नेताओंको रास्ता बतलाता है। वेमतलब पहरों तकली चलाता है, प्रार्थनामें मुद्दे गाने सुनाता है, हिन्दी साहित्य सम्मेलनका सभापति है परन्तु हिन्दीके कविको आधा घंटा वक्त नहीं देता। अपरिणामदर्शीकी तरह जो जी में आता है खुली सभामें कह जाता है, सामने बगलें झांकता है’ (पृ. १२५-१२६)। गांधीजीसे अधिक इस दशाके लिए गांधीके अंधभक्त उत्तरदायी हैं, जो प्रत्येक सिंहासनपर गांधीजीको बैठा देते हैं, उन स्थानोंपर भी जिनके विषयमें गांधी बिल्कुल शून्य हैं या अंधेरेमें हैं।

इसीप्रकार नेहरूजीको भी निरालाने वास्तविकता से परिचित कराया, जिन्हें यह भ्रम था कि आधुनिक हिन्दी कविता दरबारी है। पंडितजीके हिन्दी साहित्य से अपरिचयपर बड़ा तीखा प्रहार करते हैं निराला—‘पंडितजी यह मामूली अफसोसकी बात नहीं है कि आप जैसे सुप्रसिद्ध व्यक्ति इस प्रान्तके होते हुए भी इस प्रान्तकी मुख्य भाषा हिन्दीसे प्रायः अनभिज्ञ है। किसी दूसरे प्रान्तका राजनीतिक व्यक्ति ऐसा नहीं’ (पृ. १३१)। हिन्दीके दुर्भाग्यके लिए ऐसे राजनीतिज्ञोंको निराला जैसे फक्कड़ही उत्तरदायी ठहरा सकते थे—‘अगर हिन्दीकी सच्ची जानकारी, उसकी कमजोरी और शहजोरी दोनोंकी आपको होती अगर आपभी

हिन्दीके साहित्यिकोंमें एक शुमार किये जाते तो उस भाषाको बड़ा बल मिलता। एक तो हिन्दीके साहित्यिक साधारण श्रेणीके लोग हैं, एक हाथसे वार झेलते हैं, दूसरेसे लिखते हुए। दूसरे आप जैसे बड़े-बड़े व्यक्तियों को मैदानमें मुखालिफत करते देखते हैं’ (वही पैरा)। ‘...हमने जो नया पौधा लगाया, उसे हवा-पानी जाड़े-ओलेसे बचाया, अब कलियां लेते वक्त ऊंटों और हाथियोंके झुंडसे घिर रहा है...जहां सुभाष बाबू, अगर मैं भूलता नहीं, अपने सभापतिके अभिभाषणमें शरच्चंद्र के निधनका जिक्र करते हैं, वहां क्या वजह है जो आपकी जबानपर ‘प्रसाद’ का नाम नहीं आता। ‘प्रेमचन्दपर भी वैसा प्रस्ताव पास नहीं हुआ जैसा शरच्चन्द्रपर’ (पृष्ठ १३२)।

इसप्रकार अपनेही बलबूतेपर बल्कि हिन्दीके राजनीतिक हितैषियोंके न चाहते हुए भी निरालाने हिन्दी भाषा साहित्य और साहित्यकारोंके सम्मानकी रक्षा की। इस संघर्षकी बीहड़ताका आज अनुमानभी नहीं लगाया जा सकता। ऐसे ही चाटुकार, नितान्त सामान्य कोटिके साहित्यकारोंपर उन्होंने व्यंग्य किया—

‘पैसेमें दस राष्ट्रीय गीत रचकर उनपर !

कुछ लोग बेचते गा गा गर्दभ मर्दन स्वर’

(पृष्ठ १३४)।

रामचन्द्र शुक्लके व्यंग्य वाणोंका समुचित उत्तर देते हुए छायावादको प्रतिष्ठित किया उसके अवगुणोंको स्वीकारते हुए। शुक्लजी जैसे आलोचकसे निरालाही टक्कर ले सकते थे—‘शुक्लजीकी ‘काव्यमें रहस्यवाद’ पुस्तक उनकी आलोचनासे पहले उनके अहंकार, हठ, मिथ्याभिमान, गुरूडम तथा रहस्यवादी या छायावादी कवि कहलानेवालोंके प्रति उनकी अपार घृणा सूचित करती है। ऐमे दुर्वासा समालोचक कभीभी किसी व्रत शकुन्तलाका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। अपने शापसे उसे चमका दिया’ (पृ. १३७)। ये प्रसंग विचार जिन पुस्तकोंमें व्यक्त किये गये हैं वहां इतनी प्रखरतासे ध्यान आकृष्ट नहीं करते, जितनी इस आत्मकथामें।

फैजाबादके हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें सम्पूर्णानन्द ने कहा—‘कवियोंको राजनीतिज्ञोंका साथ देना चाहिये। मुझसे नहीं रहा गया। एक तो कला-प्रदर्शनी में कविताकी चर्चा, फिर कवियोंपर राजनीतिक प्रभाव।’

—मैंने कहा—‘हिन्दीके कवि राजनीतिज्ञोंसे और आगे हैं’ (पृ. १४२)। इसी सम्मेलनमें टंडनजी भी



राजनीतिको प्राधान्य देचले—जैसे सरस्वती राजनीति की दासी हो। निरालाने मुंहतोड़ उत्तर दिया—“इस प्रान्तमें राजनीतिने जो काम किया है उससे अधिक साहित्यने किया है, साहित्यिक उनसे बड़े हैं” (पृष्ठ १४३-१४४)।

इसप्रकार यह आत्मकथा निरालाके अनेक अज्ञात-अल्पज्ञात प्रसंगोंके प्रति पूरे वर्चस्वसे पाठकको आकृष्ट करती है। सामान्यतः अज्ञात तथ्योंकी जानकारी देकर निरालाके महाप्राणत्व और महामानत्वको प्रतिष्ठित करती है तथा अपने युगके बड़ेसे बड़े राजनीतिक नेता के सामने हिन्दी भाषा, साहित्य और साहित्यकारके समुचित महत्त्वको स्थापितकर निरालाके जीवनको बहुत कुछ ऐसा प्रस्तुत करती है जिसका साक्षात्कार किसी अन्य माध्यमसे इस रूपमें संभव ही नहीं है। यही डॉ. दीक्षितके संयोजनका कौशल और मौलिकता है। अपनी ओरसे एकभी लाइन आत्मकथामें न लिखने पर भी इस रूपमें इसकी प्रस्तुति डॉ. दीक्षितने जो कौशल दिखाया है उसके लिए वे प्रशंसनीय तो हैं ही। □

## वृन्दावनलाल वर्मा?

लेखक : डॉ. प्रभाकर माचवे (स्व.)

समीक्षक : डॉ. भगीरथ बड़ोले

‘हिन्दीके साहित्य निर्माता’ पुस्तकमालाके अन्तर्गत श्री वृन्दावनलाल वर्माकी जन्मशतीके अवसरपर प्रकाशित प्रस्तुत कृति सामयिक तो है ही, उस महान् कथाकारके रचना मंसारका संक्षिप्तही सही, किन्तु सार-गर्भित चित्रण प्रस्तुत करनेके कारण महत्त्वपूर्ण भी है।

वस्तुतः वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी कथा साहित्य और विशेषकर ऐतिहासिक वृत्त लेखकके रूपमें अपनी विशिष्ट छाप छोड़ गये हैं। उनके संपूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्व तथा महत्त्वके सभी प्रमुख बिन्दुओंको प्रस्तुत लघुकृतिके आठ अध्यायोंमें समेटनेका डॉ. प्रभाकर माचवेका प्रयत्न प्रशंसनीय है।

कृतिका प्रथम भाग वर्माजीके जीवन-क्रमसे संबंध-

१. प्रका. : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६ । पृष्ठ : १००; डिमा. ६०; मूल्य : ३०.०० रु.।

‘प्रकर’—फरवरी ६२—१२

धित है, जिसमें उनके जन्मसे लेकर अन्ततक की विविध जीवन स्थितियों, युगीन परिवेश तथा व्यक्तित्व को गढ़नेवाले विभिन्न प्रभावोंका लेखाजोखा कुछ इस प्रकार वर्णित किया गया है कि वह संक्षिप्त होते हुए भी किसी महत्त्वपूर्ण बिन्दुसे रहित न होने पाये। बाल्या-वस्था में ही वर्माजीमें जागी राष्ट्रीयताकी प्रवृत्ति, उनका शिक्षण क्रम, जीवनकी रुचियों, यथा—भोजन, पहलवानी, घूमकड़ी और शिकार आदिके चित्रणके साथ ही ललित कलाओंके प्रति वर्माजीकी रुचि सम्पन्नता, समकालीन साहित्यिक परिवेश और उससे उनका जुड़ाव, उनके साहित्यिक-राजनीतिक संपर्क, प्रणीत रचनाओंका प्रसव-क्रम तथा प्राप्त पुरस्कारोंकी जानकारी देते हुए डॉ. माचवेने उनके सम्बन्धमें अनेक कृति-लेखकों एवं व्यक्तियोंकी सम्मतियाँ प्रस्तुत कर वर्माजीके जीवनके विविध पहलुओंको अधिकाधिक प्रामाणिक बनानेका प्रयत्न किया है। वस्तुतः वर्माजीने रचनाधर्मिताको आकार देनेके साथ ही स्वातंत्र्य संग्राम में भी एक सशक्त निर्भीक योद्धाकी भूमिका निभायी थी। अतः वैचारिक और व्यावहारिक दोनों धरातलों से प्रत्यक्ष जुड़े वर्माजीके इस व्यक्तित्वमें परिवर्तनका आग्रह और एक व्यवस्थित—सही दिशाको अपनानेकी चाह आद्यन्त समाविष्ट थी।

प्रस्तुत कृतिका दूसरा भाग वर्माजी उस कृतित्वके विवेचनसे संबद्ध है जिसके अन्तर्गत उनके दस ऐतिहासिक उपन्यासों—गढ़कुण्डार, विराटाकी पद्मिनी, मुसाहिबजू, झांसीकी रानी लक्ष्मीबाई, कचनार, टूटे कांटे, माधवजी सिंधिया, मृगनयनी, भुवन विक्रम तथा अहिल्याबाईकी गणना की जाती है। इतिहास रससे ओतप्रोत ये रोचकतापूर्ण कृतियाँ वस्तुतः वर्माजीकी अक्षय साहित्यिक कीर्तिका आधार हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासोंके साथ ही वर्माजीने अनेक सामाजिक उपन्यासोंका भी प्रणयन किया है। डॉ. माचवेने इनमेंसे प्रमुख आठ उपन्यासों—लगन, संगम, प्रत्यागत, कुण्डलीचक्र, कभी न कभी, अचल मेरा कोई, सोमा, तथा वेलका तीसरे अध्यायमें संक्षिप्त विवेचनकर उठायी गयी समस्याओंकी ओर संकेत करते हुए ऐतिहासिक उपन्यासोंसे इनकी समानता और भिन्नताके बिन्दुओंको भी छुआ है।

चौथे अध्यायमें वर्माजीकी लिखी ६५ कहानियोंमें निहित प्रवृत्तियोंपर संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया



गया है। ऐतिहासिक तथा सामाजिक-राजनीतिक वृत्त को आधार बनाकर निर्मित ये कहानियाँ वर्माजीके व्यक्तित्वमें निहित वैचारिकताको रोचकतासे अभिव्यक्त करती हैं।

पाँचवें अध्यायमें वर्माजीके सात ऐतिहासिक तथा ग्यारह सामाजिक नाटकोंके साथही डॉ. माचवेने उनके तीन एकांकी संकलनोंका भी जिक्र किया है। छठा अध्याय 'हृदयकी हिलोर' शीर्षक भावात्मक निबन्धोंके संग्रहकी चर्चासे सम्बद्ध है। इसी प्रकार वर्माजीने गद्य साहित्यकी प्रायः प्रत्येक विधामें लिखा है, किन्तु उनके साहित्यिक गौरवको स्थापित करनेमें उपन्यासोंका ही योगदान अधिक रहा है।

प्रस्तुत कृतिका सातवाँ अध्याय वर्माजीकी रचनागत भाषा शैलीका विश्लेषण प्रस्तुत करता है। वर्माजीकी भाषा शैलीमें पात्रोंकी मनोवृत्तियों तथा आंतरिक भावोंके घात-प्रतिघातोंके साक्षात् चित्र प्रस्तुत करनेकी विशेषता स्पष्टतः दिखायी देती है। देश, काल और परिस्थितिके अनुरूप वर्माजीकी सरस भाषा अपनी सजीवतासे सब कुछ मुक्त कर देती है। बुन्देली भाषाके शब्दोंका सहज मेल, कहावत-मुहावरोंमें युक्त सूत्र-बद्ध वाक्योंका स्वाभाविक प्रयोग, मार्मिक उपमाओं और उत्प्रेक्षाओंके प्रयोगसे उत्पन्न वर्णन चमत्कार आदि उनकी भाषाकी प्रमुख विशेषताएँ रही हैं। यद्यपि आलोचकोंकी दृष्टिसे वर्माजीके भाषा-शैली-प्रयोगमें कतिपय दोष भी विद्यमान हैं, तथापि डॉ. माचवेने इनकी उपस्थितिके कारणोंका युक्तिसंगत उल्लेखकर भाषा-शैलीकी उत्कृष्ट विशेषताओंकी ओर ध्यान आकर्षित कराया है।

अद्यावधि विभिन्न अध्येताओंने वर्माजीके लेखनकी तुलना अनेक विदेशी तथा भारतीय लेखकोंकी रचनाओंसे की है। इसीलिए अन्तिम आठवें अध्यायमें डॉ. माचवेने इस तुलनात्मक अध्ययनका सारांश प्रस्तुत कर वर्माजीके रचनाधर्मी व्यक्तित्वकी महत्त्वपूर्ण विशेषताओंको स्पष्ट करनेका प्रयास किया है।

इस कृतिके अन्तमें जोड़े गये तीन परिशिष्टोंके अन्तर्गत क्रमशः वर्माजीके जाँवन-क्रम, घटित घटनाओंके महत्त्वपूर्ण वर्ष, प्रकाशित रचनाओंके लेखन और प्रकाशन वर्ष, अप्रकाशित रचनाओंके लेखन वर्ष तथा उनपर प्रकाशित एवं अप्रकाशित शोध-ग्रन्थोंका उल्लेख कर डॉ. माचवेने आगामी शोधकी दिशाओंको अपेक्षित

सहयोग देनेका स्तुत्य प्रयास किया है।

वस्तुतः सामान्य पाठकों एवं शोधार्थियों—दोनोंके लिए समान रूपसे उपयोगी प्रस्तुत कृति वृन्दावनलाल वर्माके व्यक्तित्व एवं कृतित्वका संक्षिप्त किन्तु सर्वांग विवेचन प्रस्तुत करती है। इसकी उपयोगिता असंदिग्ध तथा इसका सामयिक प्रकाशन प्रशंसनीय कहा जा सकता है। □

## हिन्दीके प्रतिनिधि साहित्यकारोंसे साक्षात्कार?

लेखक : डॉ. अशोक लव

समीक्षक : डॉ. महेशचन्द्र शर्मा

हिन्दी-साहित्यके क्षेत्रमें 'साक्षात्कार' की विधापर अत्यन्त गंभीरताके साथ कार्य करनेवाले साहित्यकारोंमें डॉ. अशोक लव एक जाना-पहचाना नाम है। डॉ. लवने बाल-साहित्य, रंगमंच, काव्य, लघुकथा आदिसे सम्बन्धित विषयोंपर साक्षात्कार लिये हैं, जो हिन्दीके प्रमुख समाचार-पत्रों एवं पत्र-पत्रिकाओंमें समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं।

'भूमिका' (डॉ. नारायणदत्त पालीवाल), 'साहित्यकारोंकी पृष्ठभूमि' (डॉ. अशोक लव), 'साक्षात्कार' (डॉ. हरदयाल), 'मन्मथनाथ गुप्त', 'केदारनाथ अग्रवाल', 'यशपाल जैन', 'डॉ. विजयेन्द्र स्नातक', डॉ. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', 'आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन', 'डॉ. प्रभाकर माचवे', 'चिरंजीत'—इन शीर्षकोंके अन्तर्गत ही आलोच्य पुस्तकको पूर्णत्व प्रदान करनेका प्रयास किया गया है।

'साक्षात्कार' शीर्षकके अन्तर्गत हिन्दीके सुप्रसिद्ध समीक्षक डॉ. हरदयालने साक्षात्कारके स्वरूपपर और साक्षात्कारकी विशिष्टतापर प्रकाश डाला है और साक्षात्कारको परिभाषित करनेका प्रयत्न किया है। साक्षात्कारके भेदों तथा 'साक्षात्कार'की विधाके जन्म एवं विकासपर भी भलीभाँति प्रकाश डाला गया है। वस्तुतः डॉ. हरदयालने 'साक्षात्कार' शीर्षकके अन्तर्गत साक्षात्कार विषयक जो संक्षिप्त चर्चा की है, उससे इस

१. प्रका. : लोक प्रकाशन, ४६६३, गली उमराव, पहाड़ी घोरज, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : १२८; डिमा. ८६; मूल्य : ५०.०० रु.।

'प्रकर'—फाल्गुन २०४८—१३



अभिनव गद्य विधाका स्वरूप एवं लक्ष्य उजागर हो गया है।

डॉ. अशोक लवने आलोच्य कृतिमें आठ प्रख्यात साहित्यकारोंसे आमने-सामने बैठकर जो बातचीत की है, और जिन प्रश्नोंको सामने रखा है, वे सहज, सटीक एवं समसामयिक हैं। प्रस्तुत किये गये प्रश्न निम्नस्थ हैं :

१. आपकी रुचि साहित्यकी ओर कैसे हुई ?
२. उस समय साहित्यकी स्थिति कैसी थी ?
३. आपपर किन-किन साहित्यकारोंका प्रभाव पड़ा ?
४. उस समयकी और आजकी साहित्यिक परिस्थितिमें क्या अन्तर आया है ?
५. विज्ञानकी प्रगतिका साहित्य और साहित्यकारों पर क्या प्रभाव पड़ा ?
६. स्वतंत्रताके पश्चात् जीवन-मूल्योंमें आये ह्रास में क्या साहित्यकार परिवर्तन ला सकता है ?
७. क्या आप हिन्दी भाषाकी वर्तमान स्थितिसे सन्तुष्ट हैं ?
८. क्या आप स्वतन्त्रताके पश्चात्की देशकी स्थितिसे सन्तुष्ट हैं ?
९. देशके स्वतन्त्रता-आन्दोलनमें भाग लेनेकी

प्रेरणा आपको कैसे मिली ?

१०. आजके युवा साहित्यकारोंका लेखन कैसा है ?  
११. साहित्यिक पुरस्कारोंके पीछे क्या राजनीति रहती है ?

१२. आपके साहित्यिक जीवनकी विशेष उपलब्धियां ?

आठों साहित्यकारोंने इन प्रश्नोंके जो उत्तर दिये हैं, वे साहित्यके ऐसे तत्त्वोंको उजागर करते हैं, जिनकी मानव-विकासके लिए परम आवश्यकता है। साक्षात्कारों के माध्यमसे इन साहित्यकारोंके जीवन, विचारधारा एवं साहित्यके क्षेत्रमें योगदानपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है जो भारवी पीढ़ियोंके लिए उपादेय हैं।

लगभग सभी साक्षात्कारोंको आद्योपान्त देख-पढ़ जानेके उपरान्त एकही तथ्य उभरकर सामने आता है कि लेखकको देश, समाज तथा व्यक्तिके दुःख-दर्द, इच्छा-आकांक्षा, आशा-निराशा, शोषण एवं छटपटाहट-को मूर्त रूप देनेके लिए प्रयत्नरत रहना चाहिये। साहित्यिक जीवनके लिए यह एक परमावश्यक एवं स्पृहणीय प्रयास है। इस ओर ध्यान अवश्य जात है कि साक्षात्कारके लिए चुने गये साहित्यकार ही मात्र प्रतिनिधि नहीं हैं, शीर्षकमें अतिव्याप्ति है। यह भी उपयुक्त होता यदि प्रश्नोंके उत्तरोंका परिचय पाठकों को दिया जाता। □

## उपन्यास

### पीढ़ियां?

उपन्यासकार : अमृतलाल नागर (स्व.)

समीक्षक : मधुरेश

अमृतलाल नागरका 'पीढ़ियां' उनका अंतिम उपन्यास है जिसमें 'करवट' के आगेकी कथा है। 'कर-

१. प्रका. : राजपाल एंड संस, दिल्ली-६ । पृष्ठ : ४१२; डिमा. ६०; मूल्य : १२५.०० रु.।

'प्रकर'—फरवरी'६२—१४

वट' एक विशिष्ट काल-खण्डकी पृष्ठभूमिमें लिख गया उपन्यास था जिसमें प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्रामके कुछ पूर्वसे शुरु करके अर्थात् सन् १८५४ से १९०२ तकका काल अंकित था। 'पीढ़ियां' में स्वयं लेखकके अनुसार सन् १९०५ के स्वदेशी और क्रान्तिकारी आन्दोलनसे लेकर सन् १९८६ के विघटनकारी साम्प्रदायिक उपद्रवों तक का काल अंकित है। 'करवट' में बंसीधर टंडनके माध्यमसे नागरजीने भारतीय मध्यवर्गके उदय की कहानी कहीथी। इस मध्यवर्गकी स्वाधीनता आंदो-



जनमें क्या भूमिका थी अंग्रेजों के प्रति उसका सम्बन्ध कैसे स्वीकार-अस्वीकारकी दोहरी और परस्पर विरोधी भूमिका निभा रहा था, इसी तथ्यको अंकित किया गया था। इस समूचे काल-खण्डमें घटित ऐतिहासिक, सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनोंका संकेत देनाही वस्तुतः 'करवट' का मुख्य प्रतिपाद्य था।

'पीढ़ियाँ' इसी अर्थमें उसके बादकी कहानी है कि यह उसी परिवारकी अगली पीढ़ियोंके पात्रोंको लेकर वहींसे अपना कथा-सूत्र उठाता है, जहाँ उसे 'करवट' में छोड़ा गया था। 'पीढ़ियों' में दो पीढ़ियाँ हमारे सामने हैं—रायबहादुर बंसीधर टंडनके प्रपौत्र पूर्व मुख्यमंत्री सुमंत टंडन और उसके पुत्र पत्रकार युधिष्ठिर टंडनको पीढ़ियाँ और इसके पूर्वकी पीढ़ी—सुमंत टंडनके पिता और रायबहादुर बंसीधर टंडनके पौत्र शहीद जयन्त टंडनकी पीढ़ीको उपन्यासके अंदर युधिष्ठिर द्वारा लिखे गये उपन्यासके माध्यमसे अंकित किया गया है। इस प्रकार सुमंत और युधिष्ठिर यदि स्वातंत्र्योत्तर भारतकी कहानीसे जुड़े हैं तो जयन्त टंडन सन् १९०५ से '४२ तक की घटनाओंके केंद्रमें है। सुमंत टंडन वस्तुतः उपन्यासकी मध्यवर्ती कड़ी है जो स्वार्थानता आंदोलन से शुरु करके स्वतंत्र भारतमें प्रदेशका मुख्यमंत्री रह चुका है।

सत्तर वर्षीय सुमंत टंडन प्रदेशके मुख्यमंत्री रह चुकनेपर भी वर्तमान प्रदूषित राजनीतिसे क्षुब्ध होकर अधिकांशतः अयोध्यावास करते हैं। उनकी पत्नी शारदादेवी जो युधिष्ठिरकी माँ है, अधिकतर उनके साथ अयोध्यामें ही रहती हैं परन्तु जब-तब अपने बहू-बेटेके पास लखनऊभी आती रहती हैं। सुमंत बाबू राजनीतिको सर्वव्यापी नैतिक और मूल्यगत संकटको काफी-कुछ दार्शनिक ढंगमें झेलने और स्वीकारनेकी मनःस्थिति बना पानेमें सफल हुए हैं। जब शारदादेवी स्वाधीनता पूर्व और पश्चात्की राजनीतिक स्थितियोंके अंतरपर क्षुब्ध होती हैं तो वे कहते हैं, अभ्यस्त चेतना स्तरसे उठकर नयी चेतना तक उठनेमें मनुष्यको संघर्ष तो करना ही पड़ता है... (पीढ़ियाँ, पृ. ३१)। वर्तमान राजनीतिके आचारगत और नैतिक संकटका प्रतिनिधि मानते हुए वे पूर्व मुख्यमंत्री और अपने प्रतिद्वंद्वी वी. पी. बर्मके बारेमें शारदासे ही कहते हैं... 'यह तुम्हारा धर्म भाई वी. पी. साधारण व्यक्ति नहीं है

शारदा, अबतक इसका सारा कैरियर अपने प्रतिद्वंद्वियोंको मारकर उनकी लाशोंकी सीढ़ी बनाकर ऊपर चढ़नेका रहा है... (पृ. ३०)।

जैनेन्द्रकुमारके 'मुक्तिबोध' में सहाय भी वर्तमान राजनीतिके नैतिक अपक्षयपर क्षुब्ध हैं, पर उनके परिवारके, उनसे जुड़े लोग, अपने-अपने स्वार्थवश उनकी मुक्तिके इस बोधको किसी सार्थक परिणति तक नहीं ले जाने देते। इस राजनीतिकी नागफांससे बहुत सरल निष्कृति शायद संभवभी नहीं रह गयी है। परन्तु 'पीढ़ियाँ' में 'मुक्तिबोध' के सहाय-परिवारसे भिन्न, सुमंत टंडनका परिवार उनकी इच्छा और वैचारिकता में सक्रिय रूपसे उनके साथ हैं और अपने-अपने ढंगसे इस नैतिक अपक्षयके विरुद्ध संघर्षभी करते हैं। उनका पुत्र युधिष्ठिर, वैसे पहली पत्नी लड़ैतोसे उनके तीन पुत्र और भी हैं जिनकी प्रसंगवश चर्चाभर हुई है, 'मार्निंग टाइम्स' और 'ईविनिंग स्टार' का रिपोर्टर है जो अपने सहयोगी और मित्र हसन जावेदके साथ बहुत जिम्मेदार किस्मकी पत्रकारिताके माध्यमसे इस राजनीतिक प्रदूषणके विरुद्ध संघर्षरत है। अपने पितामह जयन्त टंडनकी जन्म-शताब्दीके अवसरपर, हसन जावेदकी मित्रतापूर्ण चुगौतीके परिणास्वरूप, वह उन्हें लेकर एक चरितात्मक उपन्यास लिखनेका निर्णय ले लेता है। अपने इस रचनात्मक अभियानमें भी वह सत्यके प्रति अपनी गहरी निष्ठा और हार्दिक समर्पणका परिचय देता है। उसकी रचना-प्रक्रियापर लेखककी टिप्पणी है "...अपनी कल्पनाको लेखबद्ध करनेके लिए युधिष्ठिर अबतक न जाने कितने पुराने पहनावे, मूँछोंके ढब-ढंग देख चुका था। अपनी चौककी खानदानी हवेलीमें खूब चक्कर लगाये थे, गलियोंमें आते-जाते बहुत-सी पुरानी चालके जीवनकी बची-खुची झलकियाँ देखी थी। पुराने लोगोंसे अनेक पुराने-पुराने चरित्रोंके किस्से सुने थे। वे सब संचित अनुभूतियाँ ममाखियोंका झुण्ड बनकर शहद का छत्ता बनाने लगी" (पृ. १३५)। इस प्रकार युधिष्ठिरकी रचना-प्रक्रियाके बहाने अमृतलाल नागर वस्तुतः अपनी रचना-प्रक्रियापर ही टिप्पणी कर रहे होते हैं। अपने उपन्यासोंके लिए सामग्रीकी तलाश और शोधका उनका ढंग किसीभी अच्छे शोध-छात्रके लिए ईर्ष्याका कारण हो सकता है। 'ये कोठेवालियाँ' 'गदरके फूल' और 'नाच्यो बहुत गोपाल' आदिमें सामग्री-चयन की यही प्रक्रिया स्वयं नागरजीने अपनायी है। 'बूँद

'प्रकर'—फाल्गुन'२०४८—१५



और समुद्र' का सज्जन तो मुहल्लेका जीवनानुभव प्राप्त करनेके लिए चौकमें आकर रहनेही लगता है। अमृत-लाल नागरके उपन्यासोंके प्रभावका एक मुख्य कारण यहभी रहा है कि अपनी आधार-सामग्रीके लिए उन्होंने कठोर सर्जनात्मक परिश्रम किया है।

सन् '४२ के आंदोलनमें शहीद हुए अपने पितामह जयन्त टंडनपर लिखे जानेवाले अपने उपन्यासमें युधिष्ठिर सत्यके प्रति अपनेको पूर्णतया समर्पित मानकर चलता है। एक ओर यदि वे स्वाधीनता संघर्षके बलिदानी नायक थे तो दूसरी ओर वे लम्पट और परस्त्रीगामी भी थे। अपनी युवावस्थामें अनारोके प्रति अपने गहरे आकर्षण और अन्ततः उसके गर्भमें आगयी संतानसे बचनेके लिएही कानूनकी पढ़ाईके लिए वह इंग्लैण्ड चला जाना स्वीकार कर लेता है। उसकी डायरी, पत्रों और अन्य अनेक स्रोतोंसे जुटाये गये प्रमाणोंके आधार पर पता चलता है कि इंग्लैण्डमें भी उनके कई विदेशी महिलाओंसे सम्बन्ध रहे। लौटकर विवाहके बाद मन्नो को पत्नी रूपमें पाकर भी उनका वैवाहिक एवं दाम्पत्य जीवन बहुत सुखद और संतोषप्रद नहीं रहा। पत्नी मनोरमा टंडन—एम आँव लखनऊ—के अतिरिक्त मनोरमा खन्ना—एम आँव इलाहाबाद—से उनके वाक्या-यदा सम्बन्ध रहे। इस उपन्यासके लिखे जाने तक वे जीवित थीं और उनसे मिलकर युधिष्ठिर बहुत-सी ऐसी गुप्त सूचनाएं प्राप्त करता है जिन्हें सामान्यतः स्त्री अपने विषयमें बतानेपर संकोच बरतती है। उनका पुत्र कृष्ण एक प्रकारसे सुमन्तका भाई है क्योंकि वह मन्नो और जयन्तके शारीरिक सम्पर्कका ही फल है। यह मन्नो इतनी दबंग औरत है कि सारेआम जयन्तसे अपने सम्बन्धोंके बखानमें कोई संकोच नहीं करती। वह वस्तुतः अपने पतिके मरनेपर नहीं, जयन्त टंडनके शहीद होनेपर ही अपनेको विधवा मानने लगी थी। जयन्त टंडनकी यह परस्त्रीगामी लम्पट प्रवृत्ति उन्हीं के वंशमें अगली-पिछली, पीढ़ियोंसे मेल नहीं खाती परन्तु आश्चर्यजनक होनेपर भी यह सच है कि जयन्त इसका शिकार था। बादमें, स्वाधीनता आंदोलनमें अपनी सक्रिय और प्रभावी भूमिकाको देखते हुए, अपने इंग्लैण्ड प्रवासकी डायरियोंमें उन्होंने अपनी कितनीही महिला-मित्रोंके नामपर स्याही फेर दी थी, संभवतः आगे आनेवाले समयमें अपने महत्त्वका अनुमान लगाकर लांछनसे बचनेके लिए। परन्तु युधिष्ठिर, और प्रका-

‘प्रकर’—फरवरी ६२—१६

रान्तरसे स्वयं लेखक, जयन्त टंडनके चरित्रके पुरा-तात्त्विक उत्खनन द्वारा अनेक उन प्रसंगोंकी टोह पानेमें सफल होता है जो उसके चरित्रके सम्बन्धमें गौरवपूर्ण नहीं माने जा सकते। लेखक उनसे बचकर निकलनेके पक्षमें नहीं है। वह उनके मनोवैज्ञानिक कारणोंकी खोज करता है, यह अलग बात है कि इसके लिए कोई बहुत विश्वसनीय और सर्व-स्वीकार्य तर्क नहीं जुटा पाता—पर स्वाभाविक मानवीय दुर्बलताका ही एक रूप मानकर वह इसे घृणा और निषेधकी दृष्टिसे नहीं देख पाता। अपने चरित नायकके प्रति युधिष्ठिर का दृष्टिकोण यह है ‘अपने पितामह जयन्तके सम्बन्धमें उसका यह मत पुष्ट हुआ कि वे मूल रूपसे व्यभिचारी व्यक्ति नहीं थे। परिस्थितियोंने उनका वैसा रूप बना दिया। मन्नो ददासे एक बार उसने यहभी जाना था कि उनसे सम्बन्ध प्रगाढ़ होनेके बाद फिर अधिकतर परस्त्री लोभी नहीं रहे। नौजवानीमें उनका अनवृक्षा मदनाग्रह उद्दाम और उन्मत्त हो उठा था। उन्होंने अपनी बुद्धिको स्वयं छला। अनारो-घटना उनके जीवनकी सबसे भयानक लापरवाहीवाली मानी जा सकती है। विलायतमें जो कुछ स्त्री-प्रसंग हुए वे मात्र उनके भारतीय संयमकी विरोधी प्रतिक्रियासे हुए थे। हर शेर आदमखोर नहीं होता परन्तु संयोगवश चाट लग जानेपर वह होही जाता है’... (पृ. २५७)। इस विश्लेषणमें जयन्त टंडनके प्रति कुछ पक्षपात स्पष्ट होनेपर भी लेखक और पात्रके सम्बन्धको लेकर नागर जीकी दृष्टि स्पष्ट है। काम सम्बन्धी दुर्बलताको वे एक स्वाभाविक मानवीय दुर्बलता स्वीकार करते हैं। इस दुर्बलताके वे व्यक्तिके संपूर्ण चरित्र और उसकी अनेक-विध उपलब्धियोंके प्रति कोई निषेधपरक रवैया अपनानेके पक्षमें नहीं हैं। इसके साथही वे इस दुर्बलता से उसके संघर्षमें ही उसकी सार्थकताभी देखते हैं। इस दिशामें जयन्त टंडनके आत्मसंघर्षका स्वरूप बहुत स्पष्ट भलेही न हो पर कामके उदात्तीकरणकी प्रक्रिया उनके अन्य उपन्यासों—‘मानसका हंस’, ‘नाच्यो बहुत गोपाल’ और ‘खंजन नयन’ आदिमें बहुत स्पष्ट है। ‘नाच्यो बहुत गोपाल’ में, निर्गुनियाके प्रसंगमें, यह उदात्तीकरण बहुत कुछ कृत्रिम और आरोपित-सा लगता है। नागरजीकी दृष्टि व्यभिचार और परस्त्री-गामिताके संदर्भमें स्वेच्छाचारी दृष्टि नहीं है। यदि ऐसा होता तो अपने उपन्यासमें दाम्पत्य सम्बन्धोंकी गरिमा



को वे इतने रसविभोर होकर अंकित नहीं कर पाते। 'पीढ़ियां' में मुमन्त और युधिष्ठिर दो पीढ़ियों के दाम्पत्य सम्बन्धों को लेखक ने बहुत संवेदनशील ढंग से अंकित किया है जिसमें कई स्तरों और सम्प्रदायों के लोग सम्मिलित हैं। मुमन्त और शारदादेवी तथा युधिष्ठिर और शकुन्तले अतिरिक्त इसी परवर्ती पीढ़ी में, मुस्लिम समाज में हसन और शबाना के दाम्पत्य सम्बन्धों की ओर भी लेखक ने विशेष ध्यान दिया है। मुमन्त और शारदा के दाम्पत्य सम्बन्धों में हार्दिकता का जो रसायन तैयार किया गया है वह इस सम्बन्ध की सबसे बड़ी पूंजी है। पुत्र और पोते के सारे मोह के बावजूद शारदादेवी अधिकांशतः पति के साथ ही रहती है और पति-पत्नी के बीच अन्तरंग क्षणों में कम-प्राप्त दाम्पत्य जीवन की जो अन्तरंग कविता फूटती है उसका अपना एक संक्रामक प्रभाव है। युधिष्ठिर और शकुन्तला की जोड़ी परवर्ती पीढ़ी की है। शकुन्तला एक अध्यापिका होते हुए भी घर-गृहस्थी के दायित्वों को जिस गरिमा और दायित्वपूर्ण ढंग से संभालती है उसमें नये जमाने की कामकाजी स्त्री की भरपूर झलक मिल जाती है। पति की जरूरतों को समझने के लिए जैसे उसकी छठी इन्द्रिय हमेशा सक्रिय और तत्पर है। पति के आग्रह पर कभी-कभी वह उसके साथ चुस्की भी लगा लेती है, पर इस सब के साथ गृहस्थी के साम्राज्य की एक विशिष्ट गरिमा उससे जुड़ी है। हसन और शबाना के आपसी सम्बन्धों में भी बुद्धिजीवी मुस्लिम समाज में स्त्री की मर्यादा के संकेत बहुत स्पष्ट हैं। नागरजी के उपन्यासों में 'रखैल', उस युग के यथार्थ के अनुरूप, को भी अनेक रूप और स्तर सहज ही उपलब्ध हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रवृत्ति बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में विशेष रूप से देखी जा सकती है। चाहे जयन्त टंडन की रखैल मन्नो खन्ना हो या मुंशी नौबतलाल की रखैल दुलारी घोसिन, एक सीमा के बाद ये दोनों ही लगभग पत्नी की भांति सहज स्वीकृत बन जाती हैं और अपने सम्बन्धों में वे पत्नी का आचरण भी करती हैं। अपनी सामाजिक स्थितिको समझते हुए वे विवाहिता पत्नियों से संघर्ष को भरसक बचाती हैं और मेल-मिलाप में, जो है उसी में संतोष करते हुए, अपने सम्बन्धों को निभाने की व्यावहारिक दृष्टि अपनाती हैं। मन्नो खन्ना तो पति के मरने से नहीं, जयन्त टंडन के शहीद होने पर अपने को विधवा मानती और तद्वत आचरण करती है। दुलारी घोसिन

अपनी सौत राधारानी के लिए, जब वे दोनों धर्मशाला में अपने बुढ़ापे के हनीमून के लिए रह रहे होते हैं, बराबर दूध पहुं चाती है।

'पीढ़ियां' की कहानी अपने मूल रूप में, उपन्यास के अंदर लिखे गये उपन्यास को मिलाकर, प्रायः आठ दशकों की सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों और हल-चलों को समेटकर चलती है। परिवर्तित होते लखनऊ का भूगोल बारहदरी की दूकानों में टाटके पर्दे और भित्तियों का छिड़काव, खोमचेवालों की चिल्लपों, टके सवारी के इक्के और हाथ की कलाइयों में बेले और मोतिए की मालाएं लपेटे और पान चवाते अपनी चहेतियों के कोठों की ओर बढ़ते रईस जादे। गंडेरियों, कुल्फी और मलाई के बर्फ की बहार... कुप्पियों और टिमटिमाती दिवरियों या फिर दो चार जगह नयी-नयी आयी लाल-टेन की रोशनी सड़क पर लोहे के खंभे में जगमगाता गैस का हण्डा नये खले बर्फ खाने से मंगायी गयी बर्फ में दबाये गये खरबूजों और आम की बहार... मछलीवाली बारादरी के बाद घड़ियाली ढोले के आगे नयी बनती कोतवाली और उसी के पास खड़े इक्के अमृतलाल नागर के उपन्यासों में लखनऊ एक जीवित और जीवन्त नायक की भांति उपस्थित है। उनके उपन्यासों को ऐति-हसिक काल-क्रम में रखकर लखनऊ के बदलते हुए चेहरे को आसानी से पहचाना जा सकता है।

उपन्यासों में अंकित लगभग अस्सी वर्ष के समय को इस समूचे काल-खण्ड की जीवन्तता को दो रूपों में देखा जा सकता है। अंग्रेजों के आने के बाद वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगतिके नाम पर जो परिवर्तन समाज में घटित हो रहे थे और पढ़े-लिखे पैसेवाले लोग इस परिवर्तन के अनुरूप अपने को कैसे ढाल रहे थे और इस पूरी प्रक्रिया में जो संक्रान्तिकालीन एक खिचड़ी समाज बन रहा था उस सबको नागरजी ने गहरी अन्तर्दृष्टि से अंकित किया है। विचारों, आस्थाओं और संस्कारों का द्वन्द्व भी इसी का एक अंग है। दूसरी ओर स्वाधीनता आन्दोलन के उठान के फलस्वरूप सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों और देशव्यापी हलचलों का अंकन भी उपन्यास में हुआ है। चौक में टंडन की पुश्तनी हवेली कपड़े के अपने पुराने व्यवसाय को छोड़कर कब और कैसे राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बनती जाती है, उपन्यास में इसके सुस्पष्ट संकेत उपलब्ध हैं। बीसवीं शताब्दी का तिसरा दशक, सन् २१ से ३० तक



का काल-खण्ड स्वाधीनता आन्दोलनकी दृष्टिसे व्यापक जनचेतना और प्रसारका काल है। इस कालमें एक ओर यदि महात्मा गांधीके नेतृत्वमें असहयोग और अहिंसाका आन्दोलन अपने उत्कर्षपर दिखायी देता है तो वहीं क्रान्तिकारी आन्दोलनकी दृष्टिसे भी यह काल-खण्ड विशिष्ट महत्त्व रखता है। नागरजी प्रायः प्रत्येक क्षेत्रमें अतिवादसे बचकर चलनेवाले लेखक हैं—संयुक्त और समन्वयमें से ही ऊर्जा प्राप्त करते हुए। इस कालमें घटित होनेवाली सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक गतिविधियोंका अंकन युधिष्ठिर द्वारा अपने पितामह जयन्त टंडनपर लिखे गये उपन्यासमें विस्तार पूर्वक हुआ है। महात्मा गांधीकी भूमिकापर लेखकने काफी कुछ पुनर्विचार-सा किया है जिसमें गांधीको उनकी समग्रतामें देखने-समझनेका आग्रहही प्रमुख है। उन्होंने अपने असहयोगको खिलाफतसे जोड़कर हिन्दू-मुस्लिम एकताको सुदृढ़ किया। साम्प्रदायिक सद्भाव की दिशामें 'हम'—अर्थात् हम से हिन्दू और हम से मुसलमान—के अर्थको समझनेकी कोशिश की गयी जिसका उन परिस्थितियोंमें एक ऐतिहासिक महत्त्व था। यह वस्तुतः वही दौर था जब हिन्दूकी शवयात्रामें हकीम अजमल खाने कन्धा दिया और मुसलमानकी शवयात्रा में स्वामी श्रद्धानन्दके साथ हिन्दू कार्यकर्ताओंका जत्था कब्रिस्तानतक गया। आर्यसमाजके तथाकथित उत्साही समर्थक ही उसका तर्पण भी कर रहे थे। संतोष नरायनकी विधवा श्यामाकुमारीके प्रसंगमें आशूका 'नियोग' की प्राचीन आर्य परम्पराका व्यावहारिक रूप वस्तुतः इस समूचे आन्दोलनकी विडम्बनापूर्ण परिणति का एक मामूली-सा उदाहरण मात्र है। स्वदेशी और वंदेमातरम्के गीत और प्रभात फेरियां, गोपाललाल खत्रीका 'नागरी-प्रचारक', ऐनी बेसेन्टकी होमरूल लीग की गतिविधियां—जिससे चिढ़कर जुली गोल्डस्मिथने उसे घृणासे 'आयरिश कुतिया' कह दिया था और जिसके कारण जयन्त टंडनने उससे अपने सारे सम्बन्ध तोड़कर उसे घरसे निकाल दिया था आदि उपन्यासमें विस्तारपूर्वक अंकित हैं। स्वदेशी आन्दोलनके उभार और जन-चेतनाको दवानेके लिए ही ब्रिटिश सरकारने साम्प्रदायिकताके और उग्र-दमनका सहारा लिया। लांड कर्जनके बंग-भंग और लांड मिन्टो द्वारा सेपरेट इलैक्टोरलके सिद्धान्तने ही टूनेशनल थ्योरीको विस्तार दिया। इस संदर्भमें लेखकने समन्वय नामपर लीपा-  
, प्रकर'—फरवरी '६२—१८

पाता किये बिना सर सैयद अहमद खांके अलीगढ़ मूवमेंटकी राष्ट्रविरोधी साम्प्रदायिक भूमिकाकी किंचित् विस्तारपूर्वक चर्चा की है। उन्होंने कांग्रेसको हिन्दुओंकी संस्था बताकर मुसलमानोंको उसमें शामिल होनेसे रोका। उन्होंने कौमोंके आधारपर समाजको बांटनेका प्रयत्न किया। नागरजीने मुसलमानोंकी तत्कालीन गरीबी, और बदहालीको उनकी ऐय्याशी और शौकोसे जोड़कर समूची सामाजिक पृष्ठभूमिमें देखा है जबकि हिन्दुओंने अंग्रेजी पढ़कर आगे बढ़नेकी राह पकड़नेके लिए संघर्ष किया क्योंकि एक लम्बे समय की गुलामीके भयावह दुष्परिणाम उनके सामने थे। सर सैयदको मुसलमानोंकी दरिद्रता और कंगाली हिन्दुओंके कारण लगती थी। सर सैयदसे लेकर जिन्ना तक अनेक मुस्लिम नेता राष्ट्रविरोधी और अंग्रेज-समर्थक और उनके हितोंकी कठपुतली बने रहे। अमृतलाल नागरने रियासतोंके उदासीन रवैये और मुस्लिम नेताओंके राष्ट्रविरोधी कार्यकलापोंके बीच साधारण जनताकी भूमिकापर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। संडीलाके मदारी-पासीका 'एका-आन्दोलन' हिन्दू-मुस्लिम किसानोंका जबरदस्त आन्दोलन था। मंचपर गीता और कुरानकी प्रतियां रखकर हर किसान दो पैसे चढ़ाता था और सभामें हर्वे-हथियार लेकर आनेकी हिदायत की जाती थी। (पृ. ३०६)।

अमृतलाल नागर इस युगकी समूची मानसिकताको मोटे रूपमें दो भागोंमें बांटकर देखते हैं। एक ओर साम्राज्यवादकी समर्थक शक्तियां थीं—हिन्दू-मुस्लिम रियासतों और चन्द मुस्लिम नेताओंकी साम्प्रदायिक करतूतोंके रूपमें—तो दूसरी ओर वे सभी शक्तियां थीं जो किसी न किसी रूपमें देशके स्वाधीनता आन्दोलन को बल प्रदान कर रही थीं और अपनी सामर्थ्य भर इस महायज्ञमें अपनी आहुति दे रही थीं। अपनी इसी दृष्टिके कारण नागरजी महात्मा गांधीके असहयोग और अहिंसाके आन्दोलनपर जितना बल देते हैं, उस दौरके सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलनकी भूमिकाको भी उतने ही उत्साहके साथ रेखांकित करते हैं। रास्ते और विचार अलग होनेपर भी अपने-अपने ढंगसे दोनोंही जन जागृतिके व्यापक अभियानमें लगे थे और उन सामाजिक शक्तियोंको संगठित और प्रभावित कर रहे थे जो साम्राज्यवाद विरोधी चेतनामें कसमसा रहीं थीं। इसके साथही वे उस दौरके क्रान्तिकारी आतंकवाद



और आज देशके अनेक प्रान्तोंमें व्याप्त साम्प्रदायिक आतंकवादमें स्पष्ट भेद करते हुए 'नेशनलिज्म' का मुखौटा लगाये इस 'कम्युनलिज्म' की भर्त्सना करते हैं। आतंकवादियों द्वारा जनरल वैद्यकी हत्याकी सूचना पाकर, किञ्चित् आवेशमें आकर, युधिष्ठिर अपने दफ्तर के साथियोंसे कहता है जो बीमारी सिद्धोंको लगी है वह सारे देशमें फैली हुई है, पाण्डेयजी। कम्युनलिज्म इस समय नेशनलिज्मका मुखौटा लगाकर हमें बहका रहा है..." (पृ. १७५) और वह विस्तारपूर्वक सन्, ३० के दशकके भारतसे आजके भारतकी तुलना करते हुए कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। तब गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे लोग थे जो अहिंसाव्रती होकर भी क्रान्तिकारियोंके समर्थक और संरक्षक थे।

अमृतलाल नागरके पिछले उपन्यासोंवाली भाषाकी चमक 'पीढ़ियां' में भी उसी रूपमें सुरक्षित है। नागरजीके पात्र एक-सी सपाट और रंगहीन भाषा नहीं बोलते। नागरजी शुरुमें ही अलग-अलग पात्रोंके संवादोंमें भाषाके भिन्न-भिन्न प्रयोग और भंगिमा द्वारा उन पात्रोंके चरित्रको एक निजता और वैशिष्ट्य देने की प्रविधिका प्रयोग करते रहे हैं।

'पीढ़ियां' अधिकांशतः अवध-क्षेत्रका उपन्यास है। इसकी प्रमुख घटनाएं लखनऊमें घटती हैं, कुछ अयोध्यामें। नागरजीबड़े सहज रूपमें अवधी शब्दोंको तद्भव रूपोंमें प्रयुक्त करके उन्हें साधारणजनके बोलचालके स्तरपर उतारलानेमें कुशल हैं—परसोतम, मैफिल, चरनन, तोफे, संकलप, सौहर, दुई आदि इस प्रकारके शब्द प्रयोग हैं। उनके अनेक पात्र शब्द गढ़नेकी विद्यामें पारंगत हैं। कभी-कभी अपने उच्चारणसे वे भिन्न और अपरिचित शब्दोंका बोध देते हैं—आरसमाजी, पुरनानी, करिष्मन लण्डनिया, अर्थात् आदि। चपरासी शिवदीन अपनी अवधीके बीच-बीचमें दफ्तरमें बोले और सुने जाते रहे अंग्रेजी शब्दोंका भी सही-गलत प्रयोग करके अपनी भाषासे ही अपनी पहचान बनाता है। मुस्ताक मियां अपनी उर्दू और अंग्रेजीके बीच 'अजुध्या' जैसे शब्दोंका प्रयोग करते हैं। वी. पी. वर्मा जावेदसे खड़ी बोली और अंग्रेजीमें बात करता है परन्तु सुमन्त टंडन की चर्चा आनेपर जब वह राजनीतिके दांव खेलता हुआ आरम्भीयताका प्रदर्शन करता है तो अवधी बोलने लगता है 'यह सुमन्त बाबू जो अजुध्यासे महंत बनकर बैठे हैं, इनके भीतरकी पालिटिक्स अगर खोल देओ तो

नेशनवाइड पब्लिसिटी पाय जाओगे...' (पृ. ४६)। व्योमकेश बैनर्जीकी बंगला रंगमें रंगी हिन्दी, गुलखैर की अम्माके तोड़-मरोड़कर बोले गये शब्द आदि एक ओर यदि हास्यका आलम्बन बनते हैं तो दूसरी ओर पात्रोंके व्यक्तित्वको एक निजताभरा वैशिष्ट्य देते हैं। कभी उपमाओंमें तो कभी शब्दोंसे कौतुकपूर्ण खिलवाड़के साथ नागरजी भाषाको एक विशिष्ट तेवर प्रदान करते हैं। योजनाओंकी पतंगे, टूटे दांतोंकी खिड़की आदि। विदेशी चीजोंके वहिष्कारके प्रसंगमें अंग्रेजी चीनीको बर्बाद करते लदी हुई बोरियोंके जानेकी खबर पाकर कांग्रेसी युवकोंका दल पहुंचकर बोरीमें छेद करके भाग जाता था—इसे नागरजी अंग्रेजी चीनी रूपी शूर्पणखाकी नाक-कटैया कहकर बयान करते हैं। पंजाबमें बरनालाकी मिनिस्ट्रीको शब्द-साम्यके आधारपर वे 'बरनाल' की संज्ञा देते हैं। अनेक सूक्तियों और रंगोंवाली इस भाषामें नागरजीका अपना पूर्व रूप ज्योंका त्यों सुरक्षित है। वैसेभी 'पीढ़ियां' की सफलता इसमें है कि इसे मरणोपरान्त प्रकाशनके रूपमें लेनेपर भी नागरजीके प्रति किसी सहानुभूति-लहरकी आवश्यकता नहीं होती। उसे अपने बलपर, अमृतलाल नागरके समूचे रचना-कर्मकी पृष्ठभूमिमें, पढ़ा जाकर भी किसी प्रकारकी निराशा नहीं होती।

## ग्रन्थस्तु का?

लेखिका : ज्योत्सना मिलन

समीक्षक : डॉ. श्यामसुन्दर घोष

हिन्दी उपन्यासमें आज कैसे-कैसे प्रयोग हो रहे हैं, यह जाननेके लिए यह उपन्यास पढ़ा जा सकता है। इसकी पठनीयता सहज और सरल नहीं है, वह पाठकों से बहुत धैर्यकी मांग करता है। समीक्षककी यह विवशता होती है कि वह कृतिको पूरी पढ़े, यदि पूरी नहीं पढ़ पाये तो, कमसे कम आधा तो अवश्य पढ़े। उसके बिना उसे राय देनेका कोई अधिकार नहीं होता। यदि यह आधा पढ़नाभी यदि सहज न लगे, तो

१. प्रका. : वाग्देवी प्रकाशन, सुगन निवास, चन्दन सागर, बीकानेर-३३४००१। पृष्ठ : १६८; काउन, ६०; मूल्य : ६०.०० रु.।



ऐसे उपन्यासको क्या कहा जायेगा ? संभव है ऐसेही उपन्यासोंको एण्टी-नावेल कहा जाता हो। हिन्दीमें एण्टी-नावेलके लिए अ-उपन्यास शब्द चलता है। पर एण्टी-नावेलके 'एण्टी' में जो अर्थ-व्यंजना है वह अ-उपन्यासके 'अ' में नहीं है। यहां 'अ' में निषेध-भाव है, जबकि 'एण्टी' में विरोध या विपरीतताका भाव है। इसलिए मेरे विचारसे एण्टी-नावेल अ-उपन्याससे आगेकी वस्तु है। अ-उपन्यास तो फिरभी पढ़ लिये जा सकते हैं, पर एण्टी-नावेल पढ़ना तो संभवतः कहीं अधिक कठिन होता होगा। कहावत है कि दुनियांमें भांति-भांतिके लोग होते हैं वैसेही भांति-भांतिके पाठक भी होते होंगे। पाठक शब्दमें जो ध्वनि है वह यह तो बताताही है कि उसे पढ़ना पड़ता है—केवल पृष्ठ प्रति पृष्ठही नहीं, पंक्ति प्रति पंक्ति भी। कोई कह सकता है कि जब नावेलका विरोधी या विपरीत रूप एण्टी-नावेल हो सकता है तो उसके पाठकको अ-पाठक क्यों नहीं कहा जाना चाहिये ? तब सम्भवतः पढ़ना आवश्यक न हो।

ज्योत्स्ना मिलनका यह दूसरा उपन्यास है। पहला उपन्यास 'अपने साथ' सन् १९७६ में प्रकाशित हुआ था। मुझे वह उपन्यास देखनेका अवसर नहीं मिला। पता नहीं वह कैसा है ? यदि उसे पढ़ा होता, तो कुछ कहनेकी स्थितिमें होता—तुलनात्मक रूपसे भी कहा जा सकता था कि लेखिकाका प्रारम्भ कैसा था ? और अब वे किस रास्ते जा रही हैं। कभी-कभी किसी एक लेखक या लेखिकाको पढ़ते हुए ऐसा क्यों लगता है कि इसे और पढ़ा होता, पहलेसे पढ़ा होता, तो कुछ अधिक और सही रूपमें कह पाते। किसी एक रचना को पढ़कर ही लेखकको न समझ पाना उसके लिए कुछ कहनेमें हिचकिचाता, समीक्षककी कमजोरी हो सकती है, पर यह किसी लेखक या लेखिकाकी भी त्रुटि कैसे नहीं है, यह मैं नहीं मान पाता।

जो अपना मत-अभिमत सरलतासे प्रकट करनेमें पटु होते हैं उनके साथ कोई कठिनाई नहीं है। वे एक शब्दमें फतवा दे सकते हैं—वाहियात, ट्रेण, फिजूल, व्यर्थ। पर मैं अपनेको ऐसे लोगोंमें नहीं गिनता। फिरभी, एक कममकस, द्वन्द्व, बेचैनी कृतिको लेकर अवश्य होती है कि यह है, क्या क्यों है, किसलिए है ? आजका समय ऐसा है कि साहित्यमें विलासिता बुरी लगने लगी है। लेखक किसी एक बातको लेकर जुगाली

करता रहे, तो प्रश्न उठता है कि इससे होगा क्या ? जुगालीका परिणाम हम सभी जानते हैं कि 'फेन' होता है। पर जुगालीसे निकले इस फेनका क्या होता है ? उसका क्या मूल्य है ? क्या स्थायित्व है ?

पुस्तकके फ्लैपपर प्रकाशकने उपन्यासके सम्बन्धमें बड़े-बड़े दावे किये हैं। करनाही चाहिये। यह औपचारिकता है। पर आजका पाठक इतना भोला नहीं है कि वह प्रकाशकीय पकड़में आजायेगा। वह तो पुस्तक खरीदने, या पुस्तकालयसे निर्गत करानेको पहले कुछ पृष्ठ उलट-पुलटकर देखता है, उसीसे वह अनुमान कर लेता है कि कृति कैसी है, पठनीय है या नहीं। उपन्यास के रूपमें कोई अ-उपन्यास हो सकता है, एण्टी-नावेल हो सकता है पर वह पढ़ा जाने योग्य तो होनाही चाहिये। आज विश्वकी सभी भाषाओंमें सम्भवतः ऐसे कुछ लेखक हो सकते हैं जो यह चुनौती दें कि कोई माई का लाल मेरी पुस्तक पढ़कर दिखाये तो ? यदि यह चुनौतीही अपने आपमें एक उपलब्धि हो, तो फिर कुछ कहनाही नहीं है। यदि वस्तुतः लेखकका मन्तव्य यह हो कि हम जो प्रयोग करते हैं, लेखनमें जो कुछ नवीनता और मौलिकता लानेकी चेष्टा कर रहे हैं, उसे लोग समझें, जानें, मानें, विवेचनीय स्वीकार करें, तो उसे कमसे कम इतना तो करनाही होगा कि कृतिको ऐसी बनाये कि वह कमसे कम पढ़ी जा सके। मुझे यह कहते खेद है कि लेखिका इस सामान्य कसौटीपर खरी नहीं उतरी है।

व्यक्ति मनके द्वन्द्वों, मानसिक ऊहापोहों और मन का खुरचनको व्यक्त करते हुएभी उसके संसारको इतना ऐकांतिक और असम्पृक्त कैसे रखा जा सकता है, यदि व्यक्ति बिल्कुल अकेला होभी जाये, तोभी वह स्मृतियों, अनुभवों आदिसे विभिन्न पात्रों, परिस्थितियों, घटनाओं, प्रसंगों आदिसे जुड़ा होता है, इन सबकी अपनी-अपनी गतिविधियां, अपने संवाद। अपने तर्क और कार्य-कारण परिणाम आदि होते हैं। इन सबसे काटकर व्यक्तिको एक बिल्कुल जारमें बन्द-जीवके रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। लेखिकाने यदि संवादों, कथोपकथनों और पात्रों द्वारा अपना मन्तव्य व्यक्त किया होता तो वह अधिक फलप्रद और प्रभावी होता। पर यह सब नहीं है, इगीका तो रोता है। □



## आगे के पीछे ?

[चार उपन्यासिकाएं]

कहानीकार : बटरोही

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द सेठिया

“आगे के पीछे” बटरोही की चार कहानियों—‘उपन्यासिकाओं’ का संग्रह है। बटरोही हिन्दी कहानीके एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं। वे उस पाँढ़ीके कहानीकार हैं, जो नयी कहानीकी अतिशय वैयक्तिकता, कृण्ठित मानसिकता और स्त्री-पुरुष सम्बन्धोंके सीमित दायरेसे बाहर निकलकर अपने समयके सत्यको प्रामाणिकताके साथ अभिव्यक्त करनेकी दिशामें अग्रसर हो रही थी। उनकी कहानियोंमें परिवेशका गहरा दबाव और समाज के विभिन्न वर्गोंमें व्याप्त अन्तर्विरोधोंका तीखा आभास है। पारम्परिक हिन्दी क्षेत्र समुद्र तटीय प्रदेशोंसे तो दूर पड़ता है, परन्तु यह एक सुखद संयोग है कि कुमायूँ गढ़वाल हिमाचल आदि प्रमुख पार्वत्य प्रदेशोंकी मुख्य भाषा हिन्दी ही है। हिन्दी कथा-साहित्यमें इन पहाड़ी क्षेत्रोंकी आंचलिक विशेषताओंके साथही वहाँके रहने वालोंकी मानसिकताका प्रामाणिक चित्रण एक अनिवार्य अपेक्षा है। शैलेश मटियानीके बाद इस अपेक्षाकी पूर्ति करनेवाले कहानीकारोंमें बटरोहीका प्रमुख स्थान है।

“आगे बढ़ते हुए” इस संग्रहकी पहली कहानी है। वर्ग-चेतना केवल कल-कारखानों और विधानसभाओं के फ्लोरपर ही अपनेको प्रकट नहीं करती खेलका मैदानभी उससे मुक्त नहीं कहाजा सकता। नंतीताल के एस. पी. अपने बचपनमें गली कूचोंके उस क्लबके उत्साही सदस्य रहेथे, जो शेरबुड पब्लिक स्कूलके

१. प्रका. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली। पृष्ठ : १७१; क्रा. ८८; मूल्य : ४०.०० रु.।

सम्भ्रान्त वर्गीय छात्रोंको चुनौती देती थी। जब वे फुट-बाल मैचमें मुख्य अतिथि बनाकर बुलाये जाते हैं तो उनका अतीत उनपर हावी होनेका प्रयत्न करता है। अपनी उच्च कुलीन पत्नी और शेरबुडमें पढ़नेवाले पुत्र को वे यह समझानेका प्रयत्न करते हैं कि प्रतिभाएं पब्लिक स्कूलमें ही नहीं पनपती, परन्तु उन्हें गली-मुहल्लेके लड़के ‘गधे’ और उसका व्यवहार ‘बाजार कल्चर’ दिखायी पड़ता है। अन्ततः वातावरणका दबाव और पत्नी-पुत्रका पूर्वाग्रह उन्हेंभी यह कहनेके लिए बाध्य कर देता है : “अनकल्चर्ड साले, नालीके कीड़े, खवाब देखेंगे शेरबुडको हरानेके।” एस. पी. की सदाशयता और उदारतामें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं, फिरभी वे अपनी वर्गीय सीमाओंका अतिक्रमण कर अपना व्यक्तित्वान्तरण करनेमें सफल नहीं हो पाते। उदारता केवल सतहपर होती है, जबकि वर्ग-भावना मानवीय चेतनाके गहनतर स्तरोंमें प्रवेश कर चुकी होती है।

दूसरी कहानी “आगे के पीछे” धुंध, बर्फ और बादलसे घिरे हुए एक पहाड़ी कस्बेमें रहनेवाले रामदयालके जीवनकी त्रासदी—पत्नीकी मृत्युके सन्दर्भमें मानवीय स्वार्थपरायणता और मूल्यहीनताका चित्रण करनेवाली है। उनकी दोनों पुत्रियाँ श्वेता और श्यामा मांकी मृत्युका समाचार सुनकर बापके पास आती हैं और उनकी पूर्व अनुमतिके बिनाही घरके सारे कीमती सामानको दो बण्डलोंमें बांध लेती हैं और पितासे यह आग्रह करती हैं कि वे बारी-बारीसे उन दोनोंके साथ छः महीने शिमला और छः महीने कलकत्ता चलकर रहें। वे अलमारीमें पड़े हुए गहनोंको भी बैंकके लॉकर में रखनेका प्रस्ताव करती हैं। रामदयाल बेटीयोंके दोनों प्रस्तावोंको अस्वीकार कर देते हैं। वे मृत पत्नीकी स्मृतियोंके साथ घरमें अकेलेही रहना चाहते हैं; परन्तु उनकी भाभी अपने चार बेटोंको उनपर लाद देनेका



असफल प्रयास करती हैं। पड़ोसी शर्माजी मकान बेचकर उन्हें अपने साथ रहनेका आग्रह करते हैं। पुराना नौकर रामदयालकी रसोईके सारे बर्तनोंको लेकर नौदो ग्यारह हो जाता है। परिस्थितियोंकी इन प्रताड़नाओंसे हतप्रभ होकर रामदयाल एक अप्रत्याशित कदम उठा लेते हैं—वे अपनेसे बीस बरस छोटी रम्भासे विवाह कर लेते हैं। परन्तु, रम्भाकी स्वार्थपरायणता बेटीयोंको भी मात कर देती है। वह अपने पतिकी स्वीकृतिकी प्रतीक्षा किये बिना अपने एक भाईको मकानमें टिका देती है और सीमेंटका परमिट, जो रामदयाल अपने एक भतीजेको देना चाहते थे, उसी भाईके हाथोंमें थमा देती है। रामदयाल तिजोरी खोलते हैं तो वहां गहनोंको नदारत पाते हैं और उन्हें मिलती है—लॉकरकी एक रसीद। रम्भा ने इसके लिए पतिको पूछनेतक की आवश्यकता नहीं समझी थी। निश्चयही इस कहानीमें मानव स्वभावका एकपक्षीय चित्रण किया गया है परन्तु, स्थितियोंका संयोजन और पात्रोंकी क्रिया-प्रतिक्रिया इतनी विश्वसनीय है कि कहीं भी अयथार्थताका आभास प्राप्त नहीं होता।

तीसरी कहानी 'पीछेका आदमी' एक लम्बी कहानी है जिसका चरित नायक एक घरेलू नौकर 'मोल्दा च्चा' है। कहानीके प्रसंगमें ही कहानीकारने कहा है यह तो मूलतः उपन्यासका पात्र है जिसे लेखकने अपने आलस्य और प्रमादके कारण फलने-फूलने नहीं दिया है। मोल्दा अपना पूरा व्यस्क जीवन एकही पहाड़ी कस्बेमें बिता देता है और अन्ततक फटे हालही रहता है, परन्तु अपनी सेवा परायणता, आत्मीयता और जुझारु जिजीविषाके कारण उस कस्बेके जीवनका एक अनिवार्य अंग बन जाता है। किसी स्वीकृत सामाजिक सम्बन्धकी दृष्टिसे वह किसीका कुछ नहीं लगता परन्तु वह सबके घरोंमें ही नहीं, मनोमें भी सहज प्रवेश प्राप्त कर लेता है। फरहतकी माँको एक संक्रामक रोग हो जाता है तो उसके पति और पुत्रभी उससे किनाराकशी कर लेते हैं; परन्तु मोल्दा उसके गंदे कपड़े धोनेसे भी परहेज नहीं करता। इसके बदलेमें उसे सबकी सिड़कियाँ और मार पड़ती है तो उसे भी वह हंसते-हंसते सह लेता है। जहां कहीं उसके सहयोग और सहायताकी अपेक्षा होती है बिना बुलये पहुँच जाता है। बच्चोंमें बच्चा बन जाने के कारण वह मुहल्लेकी वानर-सेनाका नायक बन जाता है। जन-जीवनके साथ एकात्मभावसे ओतप्रोत

हो जानेके कारण वह नगण्य होकर भी अग्रगण्य हो जाता है। सन् ७९ के आम चुनावमें कांग्रेस और जनता पार्टी दोनोंसे मोहभंग हो जानेके कारण मोल्दा अपनी वानर-सेनाके साथ यह निर्णय लेता है कि मोहल्लेका एक भी मतदाता वोट देनेके लिए नहीं जायेगा। कांग्रेस और जनतापार्टीके नेता अनुनय विनय करते हैं, प्रलोभन भी देते हैं, पर मोल्दा टससे मस नहीं होता। अन्ततः महाबली खन्ना साहब मोल्दाको जब भय और लोभसे पराभूत नहीं कर पाते तो ऐलान करते हैं "आप लोगोंको वोट देने पड़ेंगे और कांग्रेसको ही देने पड़ेंगे" मेरी बातको टालना मत बरना फल बुरा होगा। यही होता है। खन्ना साहबकी मल्ल-सेना मोल्दाको मार-पीटकर खम्भेसे बाँध देती है और जबतक पूरा मोहल्ला वोट देकर नहीं आ जाता, उन्हें खोलनेका साहस किसीको नहीं होता। दूसरेही दिन मोल्दा चल बसते हैं परन्तु उनका कारुणिक अन्त प्रजातान्त्रिक प्रक्रियामें माफिया तत्त्वके बढ़ते हुए प्रभुत्व और राजनीतिके विद्रूप चरित्रको जिस बीभत्सताके साथ रेखसे कित कर जाता है, वह हमारे मन-मस्तिष्कको आतंकादहला देनेके लिए पर्याप्त है। घरेलू नौकरका एक प्रभावी चित्र अमरकान्तने 'जिन्दगी और जोंक' में चित्रित किया था, जो यह प्रश्न खड़ा कर गया था कि वह जिन्दगीके साथ जोंककी तरह चिपका हुआ है या जिन्दगीही जोंक बनकर उसकी खूनकी आखिरी बूंदको निचोड़े डाल रही है। परन्तु, मोल्दाको लेकर यह प्रश्न नहीं उठता। वह अपनी साधारणतामें ही असाधारण प्रतीत होते हैं। परन्तु, यह कहानी इस सत्यको भी रेखांकित कर जाती है कि यदि मूल्यहीनताके विरुद्ध संघर्ष मोल्दा जैसे व्यक्तियोंका सीमित संघर्ष ही रहेगा तो जीत खन्ना साहब जैसे महाबली लोगोंकी ही होगी। सामूहिक प्रतिरोधके द्वारा ही ऐसे असामाजिक तत्त्वोंका उचित प्रतिकार किया जा सकता है।

अन्तिम कहानी है 'जुलूस', जिसमें बटरोहीने एक पहाड़ी कस्बेके बाजारको माध्यम बनाकर नव धनाढ्य वर्गके द्वारा सामाजिक सौहार्द और नैतिक मूल्योंके हनन और अमानवीय अर्थलिप्साका सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। एक समय था जब पूरा बाजार एक परिवार था जिसमें आपसी नौकझोंकभी चलती रहती थी परन्तु आत्मीय सम्बन्धोंको कहीं ठेस नहीं लग पाती थी। परन्तु खेमराज, सतपाल और रमजानी जैसे अर्थ-



पिशाचोंका प्रवेश होता है तो वे पड़ोसकी दुकानों और धरोंके मालिकोंको कर्जमें डुबोकर उन्हें औनी-पौनी कीमतमें खरीद लेते हैं। ऐसे लोगोंको लक्ष्यकर लछमन-दा कहते हैं। 'पैसा आदमीको बाहरसे जितना ऊपर उठाता है, अन्दरसे उतनाही खोखलाभी करता है।' ये नव धनाढ्य केवल पैसा कमाकर ही सन्तुष्ट नहीं होते; सत्तापर अपना आधिपत्य स्थापित करनेके लिए राजनीतिमें भी टांग अड़ते हैं। जोंककी तरह पहाड़ी जनताका खून चूसनेवाले ये लोग 'पहाड़ी हितकारी मोर्चा' बनाकर एक अलग पहाड़ी राज बनानेकी भी मांग करते हैं, जिसमें सत्ता प्रतिष्ठानपर अधिकारकर मनचाही लूट कर सकें। अपने गलेमें शराबकी बोतलें उंडेलकर जब ये नशा विरोधी जुलूस निकालते हैं तो किसी शराबीको रंगे हाथों पकड़नेके उन्मादी उत्साहमें उस शकूर चाचाको पकड़कर गधेपर बिठा देते हैं, जो दो-तीन दिनकी भूख-प्यासके कारण सड़कपर खड़े उल्टी कर रहे थे। जुलूस जब लछमन दाकी दुकानके आगेसे निकलता है तो उनसे रहा नहीं जाता और वे छड़ उठाकर इन बगुलाभगतोंकी मरम्मत कर डालते हैं। परन्तु, दूसरेही दिन शकूर चाचाके साथ बाजारका सदियों पुराना इतिहास दम तोड़ देता है। इस कहानी में अर्थशास्त्रभी है, समाजशास्त्रभी है और राजनीति भी है, परन्तु ये सब कहानीके सजीव सूत्रोंमें संगुम्फित हैं और कहींभी अपना सिर उचकाकर झांकते दिखायी नहीं पड़ते। कहानीकारकी प्रतिबद्धता निश्चितही नव धनाढ्य वर्गके विरुद्ध बाजारके छोटे-मोटे दुकानदारों और कारीगरोंके साथ है, परन्तु उसने छद्मप्रगतिशीलता और वामपंथीपनकी कलई खोलनेमें भी कुछ उठा नहीं रखा है, जिसे इस निहित स्वार्थी वर्गने अपने नापाक इरादोंको छिपानेके लिए एक नकाबकी तरह अपने बद-सूरत चेहरेपर लगा रखा है। कहानीके पूर्वाङ्क के सभी पात्र सजीव हैं और उनके माध्यमसे ही बाजारकी आरम्भिक अनौपचारिकता और आत्मीयताका जीवन्त चित्रण हुआ है। नये बगुलाभगतोंका आर्थिक स्वार्थ ही उनके चरित्रकी धुरी है और पैसाही उनका परमेश्वर है, जिसको प्रसन्न करनेके लिए वे कोईभी क्रूर कर्म करनेके लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं।

बटोरीही उन कहानीकारोंमें हैं जो भाषा और शिल्पकी अपेक्षा कहानीकी अन्तर्वस्तुको विशेष महत्त्व प्रदान करते हैं। भाषामें सहज प्रभाव उत्पन्न करनेकी

सामर्थ्य है और अपनी एक आन्तरिक लय है। परन्तु किसी प्रकारके भाषागत आभिजात्यका आग्रह बिल्कुल नहीं दिखायी पड़ता। शिल्पकी दृष्टिसे भी कहानीकी उस पारम्परिक शैलीका अनुसरण किया गया है जो प्रेमचन्दकी परम्परामें विष्णु प्रभाकर, अमरकान्त और भीष्म साहनीके हाथोंमें सज-संवरकर भी प्रायोगिकता का दावा नहीं करती। इन कहानियोंकी प्रतिबद्धता किसी वाद या विचारधाराके प्रति उतनी नहीं है, जितनी सामान्य मानवके योग-क्षेमके प्रति। कहानीकारको आजके अर्थतंत्र और सत्तातंत्र की गंहरी और खरी समझ है और वह उसके मकड़-जालसे मोल्दा, लछमन-दा और शकूर चाचा जैसे लोगोंको मुक्त देखना चाहता है। □

## शोषित और अन्य कहानियाँ?

लेखिका : उषा महाजन

समीक्षक : डॉ. रेवतीरमण

उषा महाजनके इस संकलनकी कहानियोंका सम-कालीन महिला-लेखनके परिप्रेक्ष्यमें विशेष अर्थ है। संप्रति, अन्य लेखिकाएं जहां कुल मिलाकर 'ड्राइंग रूम या रसोईघरका भीतरी यथार्थ' लिख रही हैं या बहुत हुआ तो हिल स्टेशनों या होटलोंके परिवेशमें यौन-व्यापारोंको मुख्यतः कथालेखनका आधार बना रही हैं, उषा महाजन अपने स्तरसे आसपासके जीवन और उससे संबद्ध समस्याओंको ही कहानियोंमें चित्रित कर रही हैं। विशेषतः मध्यवर्गकी सामाजिक, मनो-वैज्ञानिक जटिलताएं उनकी कहानियोंका वर्ण्य विषय है। प्रजावादी सभ्यताके अन्तर्विरोध, साधन-संपन्न स्त्री-पुरुषोंके चारित्रिक-मानसिक अधःपतनके सन्दर्भमें लेखिकाने बड़ी बारीकीसे उजागर किये हैं। आधुनिकता के अन्तर्बाह्य दबावों और अपसंस्कृतिके प्रतिगामी प्राखणोंका उनका यह कथात्मक रेखांकन निश्चित रूप से स्वागत्य है, किन्तु कथानककी एक पारंपरिक और लगभग सीमित दुनियांही वे पाठकोंके सामने ला सकी हैं। इसका एक बड़ा कारण कहानी विधाका संक्षिप्त कलेवरभी हो सकता है।

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, १-बी नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १४८; क्रा. ६०; मूल्य : ४५.०० रु.

'प्रकर'—फाल्गुन २०४८—२३



पहली कहानी 'इस बार' से आधुनिकताके दबावों का प्रतिगामी रख एक बड़ी सीमा तक स्पष्ट हो जायेगा। इस कहानीमें नायिका कणिका नैरेटर बनकर ध्रुवके मध्यवर्गीय अन्तर्विरोधोंका पत-दर-पत रहस्योद्घाटन करती है। ध्रुव एक टाइप है, ऐसे उन सभी युवकोंका जो निर्धन संयुक्त परिवारके प्रति अपने दायित्वोंसे पलायन कर शहरमें कोई ऊंचा सरकारी पद तो प्राप्त करनेमें सफल हो जाते हैं, यहांतक कि प्रेम-विवाह करके अपनी औसत क्रान्तिकारिताभी प्रमाणित कर लेते हैं, परन्तु अन्ततः उनकी जीवन-चर्या अपसंस्कृतिके एक नायाब मोहरेकी होती है। ध्रुव ऐसा ही मोहरा है, अपसंस्कृतिका एक नायाब मोहरा, यौन विच्युतिका उदाहरण। वह कणिकाको हॉस्टलसे निकालकर अच्छी नौकरी और फ्लैटकी सुविधा इसलिए दिलाता है कि उसका दुष्प्रयोग अपने हितमें एक रखैल की भांति कर सके। कहानीके अन्तमें यह दिखाया गया है कि कणिका अपना यौन-शोषण नहीं होने देती। इस कहानीके प्रमुख पात्रोंका अपना स्मृति-लोक है जो प्रासंगिक कथाकी भांति नहीं, बल्कि समानान्तर कथा की भांति बांधता है। दुर्घटनाओंसे भरा एक स्मृति-लोक जैसे ध्रुवका है, निर्धन संयुक्त परिवारका, जिसे वह अब भी आर्थिक सहायता तो करता है, पर साक्षात्कार करनेसे कतराता है—इससे भिन्न स्तरपर कणिका का स्मृति-लोक उसकी मां है, ऐसी मां जिससे पिता की अनुपस्थितिमें अंकल मिलने आते थे।

उषा अपने कथात्मक प्रयासोंसे लगातार इस तथ्य पर पाठकोंकी दृष्टि केन्द्रित करना चाहती है कि साधन-सम्पन्नताकी होड़में हमारा मध्यवर्ग मुख्य रूप से अपसंस्कृतिका संवाहक बनकर रह गया है। सुविधा-संपन्नता कैसे उसके संस्कारोंके लिए कभी खत्म न होने वाली त्रासदी बनकर रह गयी है, यह जैसे ध्रुवका सच है। वैसे ही रिक्ति कहानीकी 'जिज्जी' का भी। जिज्जी सम्पन्न घरानेमें दहेजकी मोटी रकम देकर व्याही जाती है, लेकिन पति उन्हें सम्पूर्ण नहीं मिलता। जिज्जी अपनी आन्तरिक विसंगतियोंका साक्षात्कार करते हुए वैवाहिक सातत्यमें ही वैधव्यकी आकांक्षा पालती है, जबकि उनकी छोटी बहन इला एक गरीब मास्टरकी पत्नीके रूपमें परिपूर्णता अनुभव करती है और असमय विधवा होकर भी पतिकी निशानी बिन्दी और सिन्दूर लगाना नहीं छोड़ती।

'प्रकर'—फरवरी ६२—२४०-०. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आर्थिक सन्नता मानसिक और चारित्रिक निबलता का प्रतिलोम नहीं, उत्प्रेरक और सहायक ही ज्यादा है, उषा इसे भोगे हुए यथार्थकी तरह कहानियोंमें चित्रित करती है। 'कौन है तू' कहानीका नायक इंजीनियर शुरूमें आदर्श और नैतिकताके भारतीय मुहावरे बचा ले जाना चाहता है, परन्तु पिताकी झिड़कियां सुनकर और पारिवारिक दायित्व-निर्वाहके लिए जब वह एक बार भ्रष्टाचारकी नदीमें पैर रखता है तब लगातार उसीमें हाथ-पांव मारता रह जाता है। ऐसेमें, जब कौशिक उसका मातहत होकर भी उसके सिस्टमकी एक कड़ी बननेसे मना कर देता है और दबाव डालनेपर त्यागपत्र दे देता है, तब यथार्थका कुत्मित रंग उड़ने लगता है। कथानायककी वेचनी इसी अनुपातमें बढ़ने लगती है, वह बेहोशीकी हद तक पी चुकनेपर भी नींदके लिए काम्पोजकी गोलियां गटकने लगता है।

'बिट्टोका बाप' अपसंस्कृतिकी चपेटमें सांसें गिनते वर्तमान भारतीय समाजका कच्चा चिट्ठा है। इसमें वर्णित समस्या हमारे समयकी सर्वाधिक ज्वलन्त समस्या है दहेजकी। चार पुत्रियों और एक पुत्रका निरीह हिन्दू पिता, निम्न मध्यवर्गका अभावग्रस्त जीवन जैसे-तैसे ढो तो रहा है, किन्तु वर्जनाओंके अधीन अपनी पुत्रियों को घरसे पांच किलोमीटर दूर शहरके कॉलेजमें ऊंची शिक्षाके लिए नहीं भेज पाता। बिट्टो जैसे तैसे मिडल स्कूलमें मास्टरनी लग जाती है, लेकिन उसे अपनी जातिका कोई वर नहीं मिल सका। परिणामतः कहानीके अन्तमें वह क्रिस्तान पी. टी. मास्टरके साथ भाग जाती है।

इस प्रकार देखा जाये तो यथार्थका आत्यन्तिक आग्रह उसी महाजनकी कहानियोंके संक्षिप्त कलेवरमें भी कहीं अव्यक्त नहीं रह पाता, समस्याएं टुकड़ोंमें ही पग-पगपर विकराल रूपमें खड़ी हैं और विकल्पकी खोज श्रमसाध्य संभावना है, पर वह है। अतः कहा जा सकता है कि लेखिका कलात्मक स्तरपर दृष्टिहीनताको प्रोत्साहन नहीं देती। वह चाहे 'अब' कहानीकी मिस सेन हों, या 'ढर्रा' का शिवचरण या फिर 'एक और श्रवणकुमार' में निक्केकी मां—विकल्पकी खोजका साक्ष्य संकेतोंमें बने ही हैं, भले वह पूरी तरह तर्कसंगत न हो। परन्तु क्या यही कम है कि मानवीय संवेदनहीनता और नैतिकताकी उदास करनेवाली अनुपस्थिति



में भी उषा महाजन अन्धकारके मलबेसे कुछ चमकदार कणोंको इकट्ठा करनेमें सफल हो गयी हैं।

समकालीन महिला लेखनके बीच उनका वैशिष्ट्य इस बातसे भी समझा जा सकता है कि उन्होंने कथानक के स्तरपर महिला-कथा-रूढ़िका यथासंभव अतिक्रमण किया है। उदाहरणार्थ, आलोच्य पुस्तककी 'शोषित' शीर्षक अन्तिम कहानी पढ़ी जा सकती है। यह कहानी स्पष्ट संकेत देती है कि उषा महाजन फेमिनिस्ट नहीं हैं। कहानीके लिए विषय-वस्तु और प्लॉटके लिए वे शोषणके आन्तरिक और बाह्य समग्रपर ही निर्भर हैं, स्वयं महिला होनेकी कुण्ठा और पूर्वाग्रहपर नहीं। उनके विवेचनके पीछे दृष्टि का खुलापन रेखांकित करने योग्य है, जिससे अधिकांश कहानियाँ कथात्मक रस-निष्पत्तिमें सफल कही जा सकती हैं। उनकी कहानियाँ, कहानियाँ हैं, रिपोर्ताज या कवितानुमा अकहानी नहीं। यथार्थके प्रति खुली दृष्टिने ही उषा महाजनको यह समझ प्रदान की है कि जैसे कुछ स्त्रियाँ पति द्वारा प्रताड़ित होती हैं, वैसे ही कुछ पुरुष पत्नी-पीड़ित हैं और पीड़ा किसीकी भी हो उसकी कहानी हो सकती है। यह भी कि पीड़ाका कारण कोई एक नहीं है, शताब्दियोंसे गुलाम, एक ढाँचेमें जीवन गुजारनेका अभ्यस्त जड़भूत समाज, अशिक्षा, गरीबी, जाति-प्रथा, छुआ-छूत, बेरोजगारी, दहेज-प्रथा, मध्यवर्गीय मिथ्या चेतना, वज्रेंनाएं, आधुनिक शिक्षा-सभ्यताके कुप्रभाव आदि विसंगतियोंपर उषा महाजनने कहानी कलाका पूरा-पूरा निर्वाह करते हुए लिखा है।

सबसे बड़ी बात इस लेखिकाको शुरूमें ही कहानी कलाकी शक्ति और सीमाओंका ज्ञान है। कथानकका विवेक उनके पास है। उषा एक साथही बहुत सारी बातें एकही कहानीमें नहीं कहतीं। उनके नैरेटरके समक्ष जिस प्रकार कहानीका त्रिभ्र स्पष्ट होता है, उसी प्रकार सफाईसे व्यक्त करनेवाली भाषा और दोनों के मेलसे बननेवाले विचारभी। फिरभी 'प्रश्नातीत' और 'साक्षी' जैसी जल्दबाजीमें लिखी गयी, कथ्य और शिल्पके हिसाबसे कमजोर कहानियोंका इस संकलनमें होना खटकता है तो यह लेखिकाके लिए भी विचारणीय है ही। □

## एक पीढ़ीका दर्द ?

लेखिका : क्षमा गोस्वामी

समीक्षक : डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त

संकलनकी भूमिका 'दो शब्द' में लेखिका कहती है—लेखनमें संवेदनाकी मच्चवाई ही तो रचनाधर्मिता की सबसे बड़ी कसौटी है। क्षमा गोस्वामीकी ये कहा-नियाँ उक्त दावेका दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं।

'एक पीढ़ीका दर्द' शीर्षक देखकर पाठक स्वाभाविकतः, इन कहानियोंमें नयी या पुरानी पीढ़ीके दुःख-दर्दका अंकन ढूँढनेको अग्रसर होता है। यद्यपि इस शीर्षककी एक अलग कहानी है, तथापि अन्य कहानियों में भी यह दर्द उभर-उमड़ आता है।

'एक पीढ़ीका दर्द' कहानी अत्यन्त सामयिक प्रश्न प्रस्तुत करती है—पुरानी पीढ़ियाँ नयी पीढ़ीके लिए विष-वृक्ष क्यों रोप रही हैं? लेखिकाकी दृष्टिमें नयी पीढ़ी अब भी दुर्भावनाओंसे इस हदतक दूषित नहीं हुई है कि संभला न जा सके। कहानीमें सोनूकी माँ सोचती है—“...बचपनसे ही इनके मन ऐसी हवाओंसे झुलस गये, विषाक्त होगये...उनमें जहर धुल गया, तो इस पीढ़ीका क्या होगा ?”

क्षमा गोस्वामीकी कहानियोंके पात्र व्यक्ति होकर भी पुरे समाजकी बात करते हैं। वे ऐसी निजी परि-धियोंमें घिरे नहीं रहते जहाँ नितान्त व्यक्ति समस्याओं का रंगीन जाल बुना रहता है। 'बौने' कहानीमें नायिका का बस-यात्राका अनुभव और यह कथन सम्पूर्ण समाज के मनोविज्ञानपर लागू होता है—“कितनी स्वकेन्द्रिता ...छोटी-छोटी सुख-सुविधाओंके लिए गलत बातोंका भी प्रतिरोध नहीं। कहीं-न-कहीं अपनीही आपा-धापी में दबे-दबसे बौने बने हुए हम लोग स्वयंको भलीभांति प्रकटभी नहीं होने देते।”

और जब-कभी जनसामान्य प्रतिरोधके लिए तैयार होता है 'नेतृत्व' और अपनी भाषणबाजी द्वारा उनके आक्रोशको अपने स्वार्थके लिए, वोटके लिए भुनानेकी जुगाड़ कर लेता है। 'नेतृत्व' कहानी इसी

१. प्रका. : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ इरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ११२+५; का. ५६; मूल्य : ३२.०० रु.।



प्रकारकी स्थितिकां अंकन करती है। हमारे समाजमें 'परिवर्तन' नामकी प्रक्रिया या तो अवरुद्ध हो गयी है या उसकी दिशा गलत हो गयी है। 'सन्नाटे' कहानी नयी पीढ़ीकी तड़क-भड़क और तथाकथित स्वतन्त्रतापर व्यंग्य बनकर रह जाती है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि लेखिका अपने व्यंग्यमें नयी पीढ़ीका मजाक नहीं उड़ाती, पूरी हमदर्दी जताती है और ऐसा सन्नाटा बुनती है जो हमें हिला-डुला देता है। नयी सभ्यताके नामपर हमारे यहां जो कुछ आ रहा है, उसके प्रति दो रूझान पनप रहे हैं। एक इस सभ्यताका पूर्णतया विरोधी है और दूसरा बेसमझो इसमें वह रहा है। शायद ये दोनों रूझान गलत हैं। समस्या यह है कि हम अपनी जड़ोंसे उखड़ते जा रहे हैं और इस उखड़नकी तहमें जीवन के आर्थिक पक्षको ऊपर उठाने और दिखावेकी प्रवृत्ति भयावह भूमिका निभा रही है। आजके मनुष्यकी सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि घटनाएं समाचारपत्रोंकी

शीर्षक तो बनती हैं हैं, चिन्तन और जीवन-पद्धतिको प्रभावित नहीं करती। 'पद' कहानीमें बूढ़ी मांका दंष्ट्र चिचित्र है। बुढ़िया गाँवसे अपने पुत्र-बहूके साथ रहने शहर आयी है। कहानी लीकसे हटकर, पुत्र और बहू दोनोंकी मां-सासके प्रति स्नेह एवं आदरकी भावनाएं चित्रित करती है। किन्तु बुढ़िया है कि शहरमें अपना मन नहीं लगा पाती। इस कहानीमें लेखिका तकनालोजीके आधुनिक युगकी प्रमुख विशेषता बहुत सीधे ढंगसे व्यक्त करती है—“यह वीडियो, यह टू-इन-वन...कितना तक इन्हें कोई देखे और सुने? ...आदमी अपने मनकी बात तो इनसे नहीं कर सकता!”

कुल बारह कहानियोंका यह संग्रह पाठको कुछ देनेकी क्षमता रखता है। जो कुछ चारों ओर घट रहा है उसे ये कहानियां सहज ढंगसे चित्रित करके एक समाज-शास्त्रीय अध्ययनकी भांति अंतर्निहित ग्रन्थियोंको उघाड़नेका काम करती हैं। □

## नाटक

### फेड़ा?

मूल : ज्यां रासीन

अनुवादक : कृष्ण बलदेव वैद

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

ज्यां रासीन फ्रांसीसी भाषाके प्रमुख नाटककार हैं। उन्होंने 'फेड़ा' नामक पांच अंकोंमें विभाजित त्रासदीकी रचना सत्रहवीं शताब्दीमें की और उसने एक क्लासिक रचनाका गौरव पा लिया। क्लासिक रचनाएं देश-कालातीत मौलिक मानवीय सरोकारोंको लेकर चलनेके कारण कभी पुरानी नहीं पड़तीं। 'फेड़ा'

के साथभी यह बात उतनीही सच है जितनी अन्य किसी क्लासिक रचनाके साथ। वह हमें आजभी उतनीही ताजा और प्रासंगिक लगती है जितनी सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांसमें लगी होगी।

नाटककारने 'फेड़ा' की कथा ग्रीक मिथकसे ली है। क्रेटके राजा माइनोस और सूर्यपुत्री पैसिफेकी बेटी फेड़ाका विवाह एग्यूसके पुत्र, एथन्जके राजा थोस्यूससे होता है। वह थोस्यूसकी पहली रानी नहीं है। इससे पहलेभी उसने विवाह किये हैं और वह अब भी नयी-नयी स्त्रियोंके चक्करमें रहता है। उसकी पहले की रानी एमाजान्जेकी एण्टिलोपीसे एक पुत्र है हिपॉलिटस। वह वीर और सुदर्शन तो है ही, साथही वह चरित्रवान् भी है। वह अपने पिताकी तरह लम्पट नहीं है। फेड़ा उसपर आसक्त है; किन्तु वह अपनी आसक्तिको छिपाये रखती है। वह हिपॉलिटसको अनेक

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ७६; डिमा. ६०; मूल्य : ४०.०० रु.।

प्रकर—फरवरी ६२—२६



प्रकारसे परेशान करवाती है और देश निकाला भी दिलवा देती है। समझा यह जाता है कि वह ऐसा सौतेली माँ होनेके कारण करती है; किन्तु वास्तवमें वह ऐसा अपनी आसक्तिको छिपानेके लिए करती है। थोस्यूस जब हिपॉलिटसको निर्वासनसे वापस ले आता है तो वह बेचैन हो उठती है। एक अभियानसे बहुत दिन तक न लौटनेपर थोस्यूसके मारे जानेका समाचार मिलता है तो फेड़ा अपनी धाय और नर्मसखी ओइनोनीके परामर्शपर हिपॉलिटसके सामने अपनी प्रेमासक्तिको प्रकट कर देती है। हिपॉलिटस इसे स्वीकार न करके थोस्यूस की बन्दिनी एरीसियाके प्रति अपने एकनिष्ठ प्रेमको व्यक्त कर देता है। फेड़ा ईर्ष्याग्रस्त हो जाती है। तभी थोस्यूस लौट आता है। आइनोनीकी सलाहपर फेड़ा हिपॉलिटसपर आरोप लगाती है। थोस्यूस विश्वासकर लेता है और उसे निर्वासित कर देता है; जहां वह एक राक्षससे युद्ध करते हुए वीरगतिको प्राप्त होता है। ओइनोनी समुद्रमें डूबकर आत्महत्या कर लेती है। फेड़ा विषपान करके हिपॉलिटसकी निर्दोषता स्वीकार कर मर जाती है। थोस्यूस पछताता है और एरीसियाको अपनी बेटीका दर्जा देता है।

फेड़ाकी यह कहानी अशोक—तिष्यरक्षिता और कुणालकी कहानीसे कितनी मिलती-जुलती है। इससे यह निष्कर्ष सहजही निकाला जा सकता है कि मानव-नियतिमें परस्पर कितना साम्य है और मनुष्यमें कैसी मौलिक एकता है।

'फेड़ा' त्रासदीका मूल आकर्षण फेड़ाका अपराध बोध है। उसमें वासना और नैतिकबोधमें बराबर द्वन्द्व चलता रहता है, जिसके कारण उसके प्रति हमारे मनमें विरोध और घृणाकी भावना उत्पन्न नहीं होती, अपितु सहानुभूति उत्पन्न होती है। फेड़ाकी त्रासदीके माध्यम से स्त्री-पुरुषके सम्बन्धोंका एक मौलिक पक्ष सामने आता है। वह यह कि स्त्री और पुरुष अपने मूल रूपमें नर और मादा ही हैं और सभ्यता और समाज उनके सहज जैविक आकर्षणको पूर्णतः नियन्त्रित और नियमित नहीं कर सका है और शायद कभी कर भी नहीं पायेगा। इसलिए ऐसी त्रासदियां मानव-समाजमें बराबर घटती रहती हैं और घटती रहेंगी। यह अलग बात है कि ऐसी हर घटना किसी रचनाकारके हाथमें पड़कर अमर नहीं होजाती।

सत्रहवीं शताब्दीमें लिखे जानेके कारण इस नाटक

का नाट्यशिल्प पुराना कहा जायेगा। नाटककारने न विस्तृत रंग-निर्देश दिये हैं, न पात्रोंकी वेशभूषा, रूपरंग का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। उसने संवादोंके साथ पात्रोंकी भंगिमा, बीचमें विराम आदिके संकेत भी नहीं दिये हैं। ध्वनि, प्रकाश, पात्रोंकी मंच-गतिके भी निर्देश नहीं हैं। फिरभी यह पूर्ण और प्रभावशाली नाटक है; क्योंकि नाटककी पूर्णता और प्रभावशीलता सशक्त और अनुकूल संवादों, अविस्मरणीय चरित्र-रचना और सबल नाट्यवस्तुपर निर्भर करती है। निस्सन्देह नाटक रंगमंचकी कला है और मंचस्थ होकर ही पूर्णता प्राप्त करता है; परन्तु यदि कोई नाटक मंचनके समय सफलता प्राप्त नहीं कर पाता तो हर स्थितिमें नाटक ही दोषपूर्ण नहीं होता; दोष मंचन करनेवालोंका भी होता है। वस्तुतः, नाटकमें मूल वस्तु है, उसका आलेख। मंच और मंचनकी प्रविधियां बदलती रहती हैं, नाटकका आलेख उनके साथ नहीं बदलता। मंचकी अपेक्षा नाटक कहीं अधिक स्थायी वस्तु है।

सभी नाटक समयके साथ पुराने पड़ जाते हैं, क्योंकि वे नाट्यवस्तुही ऐसी चुनते हैं जो तात्कालिक महत्त्वकी होती हैं अथवा स्थायी महत्त्वकी नाट्य-वस्तु चुननेपर भी उसका सफल निर्वाह नहीं कर पाते। 'फेड़ा' की नाट्यवस्तु स्थायी महत्त्वकी है और उसका निर्वाहभी सफलतापूर्वक हुआ है। फेड़ाकी त्रासदी उसके चरित्र और दैवी शक्तियोंके हस्तक्षेप—दोनोंकी है। फेड़ा हिपॉलिटसके प्रति अपनी आसक्तिके लिए वीनस को उत्तरदायी बताती है—

क्षमा कीजिए अपनी बेटीको; उसकी बरबादीका कारण वह वीनस है; उसीने यह आग लगायी है। (पृष्ठ ६५)

पर आज इस दैवी हस्तक्षेपको पूर्णतः स्वीकार नहीं किया जा सकता। दुर्बलताएं फेड़ाके चरित्रमें भी हैं। वह सबल चरित्रवाली स्त्री होती तो उसमें या तो अपने सौतेले पुत्रके प्रति वासनाही नहीं जागती या फिर उसमें पापबोध नहीं जागता—

ओइनोनी, मैं नहीं उन औरतोंमें/ जो मोड़में रहती हैं/ सब पाप लिये दिलमें, और जिनके चेहरोसे/ कुछ पता नहीं चलता/ मैं भूल नहीं सकती/ अपने पागलपनको, सब याद जो रहता है। (पृष्ठ ४६)

'फेड़ा'के माध्यमसे निश्चयही 'हिन्दुस्तानी'



नाटक साहित्य समृद्ध होगा और हो सकता है, इससे प्रेरणा लेकर कोई भारतीय नाटककार त्रिष्वरक्षिताकी कहानी लेकर एक अच्छे नाटककी रचना करे। हमने 'हिन्दुस्तानी' शब्द जान बूझकर प्रयोग किया है; क्योंकि अनुवादकी भाषा उर्दूकी ओर झुकी हुई है। सखावत, बेसूद, मुनकिर, आहोजारी, रूदाद, नाशुकरा, दानाई, वादबाँ, गार, अजीज, जानिव, मुक्ता, नूरानी, संगी, दानिशवर, इबरत, मुकद्दस, खफ्गी, जाबर, शै जैसे तमाम शब्द अनुवादमें प्रयुक्त हुए हैं; जिनका अर्थ हिन्दीका सामान्य पाठक नहीं जानता। 'अब उस तलवारकी नोक दिल मेरा टटोले थी' (पृष्ठ ४५), 'चुपचाप वह देखा किया, तलवार नहीं छीनी' (पृष्ठ ४५) जैसे प्रयोगभी उर्दूसे प्रभावित हैं। और जब हिन्दी पाठक नीचे उद्धृत वाक्योंमें 'राम' शब्द पढ़ेगा तब तो चकरा ही जायेगा—

(१) आप इतनी सुन्दर हैं, वहशीको भी राम करें। (पृष्ठ ३७)

(२) वे राक्षस राम करूँ जो आपसे बच निकले। (पृष्ठ ५२)

अधिकांश हिन्दी पाठक सोचेंगे कि इन पंक्तियों 'राम' शब्द मुद्रणकी भूल है, किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं। यह 'राम' शब्द फारसीका है जिसका अर्थ है वशीभूत या अधीन करना। ऐसे प्रयोग हिन्दीको आमफहम बनाने के नामपर किये जाते हैं, लेकिन होता उल्टा है। इसको 'लिखत मुधाकर लिखिगा राहू' कहते हैं। □

## समय

नाटककार : श्रवणकुमार गोस्वामी

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामी उपन्यास क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुके हैं। उनके सात उपन्यास प्रकाशित होनेके बाद लगभग एक-साथ १९८६ में तीन नाट्य-कृतियाँ प्रकाशित हुईं। 'समय' संभवतः 'कल दिल्लीकी बारी है' के बाद दूसरी नाट्य पुस्तक है।

नाटकमें कथानकको पच्चीस दृश्यों (या खण्डों)

१. प्रका. : पंचशील प्रकाशन फिल्म कालोनी, जयपुर-३०२००३। पृष्ठ : ६५+८; क्रा ; मूल्य : २५.०० रु.।

'प्रकर'—फरवरी ६२—२८

में विभाजित किया गया है। इन दृश्योंको चार मुख्य दृश्य-बन्धोंमें प्रस्तुत किया जा सकता है। ड्राइंग-रूमके दृश्य-बन्धमें नाटकके आठ दृश्य—सात ठाकुर रतनसिंह के ड्राइंग रूमके तथा एक मुख्यमंत्रीके बंगलेके ड्राइंगके—प्रस्तुत किये जा सकते हैं। दूसरा मुख्य दृश्य-बन्ध न्यायालयका है जिसमें चार दृश्य समाप्त होते हैं। दो दृश्य कोतवालीके (एक दृश्य-बन्धके) हैं। शेष सामान्य प्रकारके हैं जिनको नाम-पात्रके दृश्य-बन्धों द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। अभिनयके विचारसे दृश्य-बन्धोंकी कम संख्या तथा न्यूनतम माँग बहुत महत्त्वपूर्ण है। 'कल दिल्लीकी बारी है' में भी यही बात हमें दिखायी दी थी। स्पष्ट है कि गोस्वामी जटिल दृश्य-बन्धमें विश्वास नहीं रखते। काफी कुछ उनके नाटकोंका मंच-विधान लोक-नाट्य-मंचके निकट दिखायी देता है।

नाटकका कथानक सरल तथा इकहरा है। ठाकुर रतनप्रकाश सिंह लोकप्रिय राजनेता तथा सांसद हैं। वे जात-पातके विरुद्ध तथा अन्तर्जातीय विवाहके पक्षमें जोरदार भाषण देते हैं। किन्तु जब उनकी पुत्री भानुजा एक मेधावी छात्र मधुकरसे विवाहकी इच्छा करती है तो वे बौखला जाते हैं। वे उच्च वर्गके हैं जबकि मधुकर निम्न वर्गका है। उनकी अवहेलनाकर जब मधुकर और भानुजा विवाह कर ही लेते हैं तब उनका क्रोध भभक पड़ता है। मधुकरको गुण्डोंसे पिटाई देते हैं तथा भानुजाको घरमें बन्द कर बेहोशीके इंजेक्शन देकर मधुकरके पास जानेसे रोके रखते हैं। इसके साथही वे मधुकरके विरुद्ध पुलिसमें आपराधिक रिपोर्ट भी लिखा देते हैं। मधुकरके मकान मालिक भार्गव साहब खुले दिमागके सहृदय व्यक्ति हैं। वे सफल वकील भी हैं। वे मधुकरकी रक्षाका दायित्व लेते हैं क्योंकि उस निराश्रित किन्तु प्रतिभाशाली युवकको वे पुत्रवत् मानते हैं। कचहरीमें ठाकुर सा. पराजित होते हैं तथा भानुजाको पतिके साथ रहनेकी अनुमति मिल जाती है। इसी समय पर आई. ए. एस. का परिणाम निकलता है। मधुकर द्वितीय स्थान पाता है। इसकी जानकारीके साथही ठाकुर साहबका हृदय परिवर्तित होता है। आई. ए. एस. को दामादके रूपमें स्वीकार करनेमें वे गौरवका अनुभव करने लगे हैं।

नाटकमें जाति-भेदके प्रश्नके माध्यमसे नाटककारने मूलतः स्वातंत्र्योत्तर भारतके स्वप्नोंको चूर-चूर करने वाली राजनीतिक परिस्थितियोंको ही उभारा है। डॉ.



गोस्वामीके लेखनका मूलाधार ही यह विषम परिस्थिति है। उनके अधिकांश उपन्यास इसी आधारपर रचे गये हैं। भ्रष्ट राजनीतिके विरोधी वे अपने जीवनमें भी हैं। इसके लिए वे जेल-यात्रा भी कर आये हैं। पहला नाटक 'कल दिल्लीकी बारी हैं' भ्रष्ट चुनावी राजनीति पर व्यंग्य है। 'समय' में अवसरवादी राजनेताके हथकण्डे दिखाये गये हैं। राजनेता सभी क्षेत्रोंमें अपने स्वार्थका व्यापार चला रहे हैं। कर्तव्यपरायण पुलिस कोतवाल दुःखके साथ कहता है—“आजादीके बाद हमारे मालिक हमारे अफसर नहीं रह गये हैं। हमारे और हमारे अफसरोंके भी मालिक बन गये हैं राजनीतिज्ञ।”

डॉ. गोस्वामीने भ्रष्ट राजनीतिके निरूपण क्रिये हैं किन्तु वे कहींभी भविष्यके प्रति निराशावादी नहीं रहे हैं। उनका विश्वास है कि अन्यायके विरुद्ध संकल्प-शक्तिके साथ कार्य करनेवाले व्यक्ति भी हैं। इस नाटक में भी भार्गव साहब ऐसे व्यक्ति हैं। वे मधुकरके पक्ष में केवल खड़े ही नहीं होते हैं बल्कि मधुकरको भी आन्तरिक शक्ति उत्पन्न करनेकी प्रेरणा देते हैं—“मधुकर, जब तुम खुदही इस हीनभावनाके शिकार हो, तो तुम्हें इससे भगवान् भी नहीं उबार सकते।” वे मधुकर को समझाते हैं—“आज तुम यह बात भी गांठमें बांध लो कि यह दुनियां उसे ही सम्मानसे जीनेका अधिकार देती है जो अपने उचित अधिकारके लिए खुद लड़नेकी हिम्मत रखता है। यह भी जान लो कि आदमी बड़ा अपने कर्मोंसे होता है—जन्मसे नहीं।”

डॉ. गोस्वामीके कहानी संग्रहको छोड़कर शेष संपूर्ण रचनात्मक साहित्यको हमने ध्यानसे देखा है। उनके उपन्यासोंपर एम. फिल. के लिए लघु-प्रबन्ध कराते हुए उनके गहन अध्ययन करनेके अवसर मिले हैं। तीनों नाटकों तथा जेल-यात्राके संस्मरणको समीक्षार्थ हमने ध्यानसे पढ़ा है। हमें उनके लेखनमें सोद्देश्य दृष्टि और न्यायके लिए संघर्षशील वर्गकी आन्तरिक शक्तिमें पूरी निष्ठा तथा आस्था सर्वत्र दिखायी दी है। किसी राजनीतिक दलसे वे जुड़े हुए नहीं हैं किन्तु उनकी प्रतिबद्धता बहुत दृढ़ है। उससे उनके लेखनमें कथ्य सबसे महत्त्वपूर्ण है और शिल्पका आग्रह कम दिखायी देता है। उपन्यासोंके बड़े कलेवरमें अधिक प्रसंगोंकी गुंजाइशके बावजूद वे कथानकको संश्लिष्ट नहीं होने देते। तब भी, एक ही

प्रवाह तीव्र होता है और कथानक पाठकको बांधे रहता है। यही गुण उनके नाटकोंमें भी विद्यमान है। अपनी सीधी-सरल तथा ईमानदार अभिव्यक्तिमें वे जितना प्रभाव उत्पन्न कर लेते हैं उतना प्रयोग-आग्रही-लेखक—उपन्यासकार अथवा नाटककार—नहीं कर पाते। डॉ. गोस्वामीके लेखनमें वैविध्य है किन्तु प्रयोगोंका आग्रह नहीं। उनके नाटक नयी नाट्य-युक्तियों तथा दृश्य-प्रभावोंके अपेक्षा कथ्यकी शक्ति तथा संवादोंकी चुस्तीपर अधिक भरोसा रखते हैं। आज ऐसे रचनाकारोंकी बड़ी आवश्यकता है। नाटकमें तो यह आवश्यकता बहुत अधिक है। नाटक एक सामाजिक विधा है जिसका सम्बन्ध समाजके सभी वर्गोंसे होता है; निम्न तथा अशिक्षित वर्गसे तो यही जुड़ सकती है। इस विधाको अभिजात-वर्ग तक सीमित कर देना शुभ लक्षण नहीं। डॉ. गोस्वामीका नाट्य-साहित्य सही समझके प्रमाण देता है। हमारी जानकारीके अनुसार डॉ. गोस्वामीके अनेक नाटक अभी अप्रकाशित हैं। हम उनके शीघ्र प्रकाशनकी कामना करते हैं।

‘समय’ वर्तमान भारतीय परिस्थितियोंका निरूपक भी है और आगतकी अपेक्षाओंका सूचक नाटक भी। समयके समक्ष सत्ता केन्द्रोंपर छाये हुए समर्थ-जनोंकी भी कोई गति नहीं। समयकी यह गति आदर्शोंके लिए प्रतिबद्ध तथा संकल्पवान् व्यक्तिही दिशा दे सकते हैं। इन सबका संकेत देते हुए नाटक अपने शीर्षककी सार्थकताको भी सूचित करता है। हमें विश्वास है कि नाट्य-प्रेमीजान इस राजनीतिक-व्यंग्यका स्वागत करेंगे। नाटकका शिल्प इतना सरल है कि यह रंगमंच पर भी सरलतासे प्रस्तुत किया जा सकता है और दूर-दर्शन अथवा आकाशवाणीपर भी। तथापि, हमें विश्वास नहीं है कि वर्तमान व्यवस्थाके विरोधको ये दोनों सरकारी माध्यम स्वीकार कर सकेंगे। □

पत्र-व्यवहारमें अपनी  
ग्राहक-संख्या का उल्लेख  
अवश्य करें।



## बन्दिनी<sup>१</sup>

लेखक : विष्णु प्रभाकर

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

विष्णु प्रभाकरका यह नाटक बंगला कथाकार प्रभातकुमार मुखोपाध्यायकी 'देवी' नामक कहानीपर आधारित है। इस कहानीको नाटकका रूप वेदव्यासजी के आग्रहपर दिया गया और उन्होंने इसे मंचित किया। बादमें और लोगोंने भी इसे मंचपर प्रस्तुत किया। विभिन्न प्रस्तुतियोंके कारण इस नाट्य रूपांतर का स्वरूप खूब मंज गया। अपने नाट्य रूपमें यह पहली बार 'नटरंग' में प्रकाशित हुआथा और अब पुस्तक-रूप में प्रकाशित हुआहै।

मैंने मूल कहानीको नहीं पढ़ाहै। अतः दोनोंकी तुलना प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है; पर जिस नाटक रूपमें यह हमारे सामने है, उसको लेकर यह निस्सन्देह कहाजा सकताहै कि यह प्रभावशाली और सफल नाटक है।

इस नाटकमें अन्धविश्वास और देवी-देवताओंके प्रति अन्धश्रद्धाके त्रासद परिणामको चित्रित करके तार्किक दृष्टिसे उनका खण्डन किया गयाहै। यह खण्डन अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़ाहै। जमींदार कालीनाथ रायके घरमें देवीकी प्रतिमा स्थापित करने की तैयारियाँ बड़े जोर-शोर चल रहीहैं। तभी वे स्वप्नमें देखतेहैं कि उनकी छोटी पुत्रवधू उमाके रूपमें मां जगदम्बा उनके घरमें अवतरित हुईहैं। वे उसी रूपमें उसकी उपासना शुरू कर देतेहैं। उमा कहतीहै कि वह देवी नहीं हैं, पर उसकी एक नहीं चलती। उसके पास किसीको नहीं जाने दिया जाता। वह इस कैदमें छटपटातीहै, इससे मुक्त होना चाहतीहै। बड़ी कठिनाईसे उसका पति उसके पास पहुँचकर उसके उद्धारकी योजना बनाताहै। योजना फलीभूत होनेके पहले ही उमाभी स्वयंको देवीका अवतार समझने लगतीहै। इसका कारण लोगोंकी उसके प्रति श्रद्धा तो हैही; साथही संयोगवश घटित कुछ घटनाएँभी हैं। ये

१. प्रका. : राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली। पृष्ठ : ८०; क्रा. ६१; मूल्य : ३०.००

र.।

प्रकर—फरवरी ६२—३०

घटनाएँ हैं विश्वेश्वरीके घर बच्चेका सकुशल जन्म, बसुके लड़केको नौकरी मिलना, पूंटीके च्वरग्रस्त बेटे परेशका स्वस्थ हो जाना, इत्यादि। उमाका पति सुरेन्द्र उसे यह समझानेका बहुत प्रयत्न करताहै कि वह देवी नहीं है; लेकिन वह उसकी एक नहीं सुनती। उल्टे वह उससे कहतीहै कि "मैं अनजान नहीं बन रही। मैं महाकाली हूँ और तुम मेरे पति शिवशंकर हो, तो फिर यहांसे भागें क्यों? दोनों मिलकर हम सारे संसारका कल्याण कर सकतेहैं। नहीं, मैं नही जाऊंगी। मैं यहीं रहूंगी। तुमभी यहीं रहो। जब महाकाली रह सकतीहै तो उसके पति शिवशंकरभी रह सकतेहैं।" (पृ. ५६)। तभी उमाके जेठका पुत्र अनु च्वरग्रस्त होताहै। सुरेन्द्र और अनुकी मां सावित्रीके आग्रहपर भी वैद्यजीसे उसका इलाज नहीं कराने दिया जाता। उमा कहतीहै कि "उसे दवा देनेकी जरूरत नहीं है। उसे मैं ही अच्छा करूंगी।" (पृ. ७१)। लेकिन वह अनुको अच्छा नहीं कर पाती और उसका निधन हो जाताहै। तब उमाको बोध होताहै कि "मैं देवी नहीं हूँ। मैं अपने अनुको नहीं बचा सकी। मेरी आत्म-प्रवंचनासे एक वंश नष्ट होगया। जिसको मैं प्यार करतीथी उसीको अपने हाथसे मार डाला।" (पृ. ७८)। कालीनाथ रायका मोह फिरभी भंग नहीं होता। वे अनुकी मृत्युको नियति मानकर सन्तोष कर लेतेहैं—"मां काली, महादेवी, इन अज्ञानियोंको क्षमा करना। अनुको जाना ही था। उपेन्द्र सुनो! बड़ी बहू सुनो! सुरेन्द्र! अनुको जानाही था। उसकी यही नियति थी। सर्वशक्तिमान देवीकी इच्छा ही नियति है, वही जगत्का संचालन करतीहै।" (पृ. ७७)।

पूरे घटनाचक्र और सुरेन्द्र तथा सावित्रीके कथनों के माध्यमसे विष्णु प्रभाकरने अपना मत बहुत स्पष्टता के साथ प्रस्तुत कियाहै। सुरेन्द्रके इन शब्दोंमें नाटक-कारही बोल रहाहै—"देवी शक्तियोंमें से मेरा विश्वास उठ गयाहै। प्रकृतिके नियमही देहका संचालन करते हैं।" (पृ. ७१)। सुरेन्द्रके आक्रोशमें अन्धविश्वासके प्रति नाटककारका आक्रोशही व्यक्त हुआहै—"आप झूठे हैं : आपके विश्वास झूठे हैं। आपकी देवी झूठी है। वह अनुकी प्राणरक्षा नहीं कर सकती। वह जा रहाहै। अन्धविश्वासी मुखौं, वह जा रहाहै।" (पृ. ७३)। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि विष्णु प्रभाकरकी दृष्टि वैज्ञानिक आधुनिक और प्रगतिशील



विष्णु प्रभाकरके चाहे उपन्यास हों, चाहे कहानियाँ हों, चाहे नाटक या एकांकी, उनकी एक प्रमुख विशेषता है सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि। यह अन्तर्दृष्टि इस नाटकमें भी विद्यमान है। उन्होंने पात्रों की विशेष स्थितियोंमें घटित होनेवाली मनोक्रियाओं को बड़े सटीक ढंगसे पकड़ा है और प्रामाणिक ढंगसे व्यक्त किया है। उमाकी 'मैं देवी नहीं हूँ', 'मैं देवी हूँ' और 'मैं देवी नहीं हूँ' के क्रममें व्यक्त होनेवाली मनोक्रिया उसके पूरे परिवेश, व्यक्तित्व और मानसिकताको तो उभारतीही है, साथही नाटकके कथानककी संरचनाभी बन जाती है। सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि के कारण नाटककी घटनाएं, पात्रोंकी चरित्र-रचना और संवाद स्वाभाविक और प्रभावशाली बन पड़े हैं। इस नाटकके संवादोंका आकर्षण उनके वाग्वैदग्ध्यमें नहीं है, अपितु उनकी सहजता, स्वाभाविकता और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकतामें है। यह नाटक एक साहित्यिक कृतिके रूपमें तो श्रेष्ठ रचना हैही, साथही मंचके लिए भी एक प्रभावशाली नाटक है। मंचपर इसकी प्रभावशीलता इसकी प्रस्तुतियोंसे पहलेही सिद्ध हो चुकी है। □

### तथास्तु?

लेखक : अमृतलाल मदान

समोक्षक : डॉ. तेजपाल चौधरी

इधरके कुछ वर्षोंमें जो नाटक लिखे गये, उनमें भारतीय लोकतन्त्रके चेहरेको अनावृत करनेका प्रयास एक सामान्य प्रवृत्तिके रूपमें उभरकर सामने आया है। यह स्वाभाविकभी है। विश्वका सबसे बड़ा लोकतन्त्र होनेका दम भरनेवाला यह देश कितनी निर्ममतासे लोकतान्त्रिक मूल्योंकी हत्या कर रहा है, यह प्रश्न प्रत्येक संवेदनशील मनको मथता रहा है और अब तो स्थितियाँ इतनी भयावह हो गयी हैं कि राजनीतिकी मूल्योन्मुखताकी बात करना 'यूटोपिया' सा लगने लगा है। 'तथास्तु' में अमृतलाल मदान इसी समस्यासे टकराये हैं।

१. प्रका. : विशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५। पृष्ठ : १२४; का. ६०; मूल्य : ३५.०० रु.।

'तथास्तु' का कथानक एक ऐसे नेता छतरीप्रसाद के क्रियाकलापोंके इर्द-गिर्द घूमता है, जो मत-दोहनकी कलाके हर मर्मको जानता है। धार्मिक अन्धविश्वाससे लेकर क्षेत्रके विकासके आश्वासनों तक सब उसकी नीतिके अंग है। काम निकल जानेपर वह गिरगिटकी भांति रंग बदल लेता है और जनताके कामोंको अपने महकमेकी कक्षासे बाहर बताकर छुट्टी पा लेता है।

टट्टू, पिट्टू और मिट्टूकी सृष्टि तो वस्तुतः लेखककी अद्भुत सूक्ष्मदर्शिताकी परिचायक है। वर्तमान राजनीतिको प्रदूषित करनेमें इन लोगोंकी भूमिका ही सर्वोपरि होती है। ये नेताभीकी हाँ में हाँ मिलते हैं, उन्हें भ्रष्टाचारके लिए उकसाते हैं और उनके हर अच्छे-बुरे कामको न्यायोचित सिद्ध करते हैं, ताकि उनका अपना मतलब सिद्ध होता रहे।

नाटकके कुछ प्रसंग आवश्यक बन पड़े हैं। छतरीप्रसाद के छत्रकी कृपासे टट्टू, पिट्टू और मिट्टूका सस्ता सोमरस बनानेका लाइसेंस मिल जाता है। किन्तु सोमरस कुछ ज्यादा ही सस्ता बन जाता है और लोग उसे पीकर 'स्वर्गवासी' होने लगते हैं। टट्टू, पिट्टू और मिट्टू संकटमें पड़ जाते हैं और छतरीप्रसादकी शरणमें आते हैं। भक्तवत्सल भगवान् अपने शरणागतोंकी रक्षा करते हैं और सब 'ठीक' हो जाता है। हाँ, इस कृपाके बदले तीनोंको एक थैली छत्रपर चढ़ानी पड़ती है। तीनों घोषणा करते हैं—'बुरा मत देखो; बुरा मत बोलो, बुरा मत सुनो।'

'तथास्तु' का युवक लेखककी परिवर्तनकामिताका प्रतीक है। किन्तु अन्धविश्वाससे जन्मे शोषणको अन्ध-विश्वाससे मिटानेका उसका निश्चय नाटककारके चिन्तन को क्षति पहुंचाता है। नाटकका मंचन पक्षभी सुन्दर है और आधुनिक प्रयोगधर्मी रंगमंचके अनुरूपभी।

संग्रहमें 'तथास्तु' के अतिरिक्त दो लघु नाटक भी संगृहीत हैं। 'सुनो ये आवाजें' और 'मियांजीकी जू'। भावधारा और शिल्पकी दृष्टिसे मुख्य नाटकसे सर्वथा भिन्न इन नाटकोंको 'तथास्तु' के साथ चिपकानेका क्या औचित्य है? लगता है प्रकाशनके मोहसे ऐसा किया गया है। वैसे ये नाटक कथ्य और शैली, किसीभी स्तर पर 'तथास्तु' से कम नहीं हैं। दोनों रेडियो-नाटक हैं और दोनोंमें फेन्टेसीके नये प्रयोग किये गये हैं।

'सुनो ये आवाजें' की मूल संवेदना सम्बन्धोंके विघटनकी टंजेडीसे जुड़ी है, जो नाटकके लिए कोई



नया विषय नहीं है। परन्तु उपभोक्ता संस्कृतिसे उपजी अतिव्यस्तताके दुष्परिणामोंको नाटककारने जिस शैली में व्यक्त किया है, वह सहज आकर्षक बन पड़ी है। जब नाटकका प्रमोद क्रोधके आवेशमें कांचका गिलास फर्श पर पटककर तोड़ देता है, तो दीवार घड़ी कहती है — “जब घरके फर्शपर कांच उगने लगते हैं, तो सम्बन्धों का रेशा-रेशा कटने लगता है एक-एक करके।” संवाद पाठककी संवेदनाको स्पर्श करते हैं और वह आजके युगकी सबसे गड़ी शोकान्तिकाकी गहराइयोंमें डूबता चला जाता है। परन्तु सुधा और प्रमोदके पुनर्मिलनकी स्थितियां स्वाभाविक नहीं लगती।

## काव्य

### शम्बूक : आलोक यात्रा

[काव्य-नाटक]

कवि : जय किरण

समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

पुराख्यानोपर काव्य रचनाकी परम्परा नयी नहीं है और यह परम्परानुकरण व्यर्थ नहीं है, क्योंकि पुराख्यानोमें निहित कथा सन्दर्भ हमारे वर्तमान एवं आधुनिक सन्दर्भोंके अवगाहनमें नव्यताकी सृष्टि करते हैं, इतना ही नहीं अपितु नयी अर्थवत्ता द्वारा सर्जनात्मक मेधाका परिचयभी देते हैं। इसी अर्थमें डॉ. दुर्गा-प्रसाद ज्ञालाका ‘भूमिका भाग’ में कथन सही है कि— प्रस्तुत काव्य कृति ‘शम्बूक : आलोक यात्रा’ पौराणिक प्रसंग अथवा पुरातन आख्यानको आधुनिक अर्थ और संवेदनासे मण्डित करनेवाली काव्य कृति है। अतीत का पुनर्प्रस्तुतीकरण उसका लक्ष्य नहीं, न किसी कवि

‘मियाँकी जू’ हल्का-फुल्का नाटक है, किन्तु निरुद्देश्य नहीं। अन्तर्मनके धरातलपर अपने सस्वन्धों के प्रति हृण कितने ईमानदार है, इस तथ्यको एक उपकरणके माध्यमसे उद्घाटित करनेवाला यह रेडियो नाटक कई हास्य स्थितियोंका चित्रण करता है। अन्तमें लेखककी यह मान्यता कि ऐसा यन्त्र आविष्कृत न हो तो अच्छा है, सही लगती है। क्योंकि यदि मनके नितान्त वैयक्तिक कक्षमें भी विज्ञानका अतिक्रमण होगया, तो सम्बन्धोंके क्षीण सूत्र टूटनेमें क्या देर लगेगी? यह प्रश्न ‘मियाँकी जू’ बहुत रोचक कथानक के माध्यमसे उठानेमें सफल हुआ है। □

का हो सकता है (पृ. ५), उस वक्तव्यकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि किसीभी कृतिकारकी काव्य सर्जनाका अर्थ पुराकथाका पुनः प्रस्तुतीकरण नहीं होसकता। वस्तुतः पुराख्यान एक ऐसा माध्यम है जिसके प्रश्रयमें कवि नये सन्दर्भ और नव-बोधकी अभिव्यक्तिकी प्रतिष्ठा करता है। इसके लिए पुराख्यान कविकी अन्तश्चेतना एवं संवेदनशीलता युग सत्यका स्पर्श पाकर नये प्रतीक, बिम्ब एवं मिथकीय रूप धारण कर लेते हैं।

शम्बूक वधका प्रसंग प्राचीन ग्रन्थों—पद्म पुराण, महाभारत (शान्ति पर्व), रघुवंश, उत्तर रामचरित (द्वितीय अंक), आनंद रामायण आदिमें उपलब्ध है जिसका प्रमुख आधार ‘वाल्मीकि रामायण’ (उत्तर-काण्ड ७२-७६ सर्ग) है। ‘रामचरित मानस’ में यह प्रसंग नहीं है। डॉ. कामिल बुत्के रामायणके उत्तर-काण्डको प्रक्षिप्त मानते हैं। ‘शम्बूक वध’ (जगदीश गुप्त) के बाद जयकिरणका ‘शम्बूक : आलोक यात्रा’ नवीन कृति है जिसे तदयुगीन सामन्ती मानसिकता और मूल्य, आधुनिक बोध तथा जीवन्त जनचेतनासे सम्पन्न कहा जा सकेगा। डॉ. जगदीश गुप्तने राजा

१. प्रका. : सम्प्रति प्रकाशन, २२ रंग बावड़ी, उज्जैन (म. प्र.)। पृष्ठ : ६३; डिमा. ५६; मूल्य : २५.०० रु.।

‘प्रकर’—फरवरी ६२—३२



रामके समक्ष शम्बूकके चुनौतीभरे पक्षको आधुनिक बोध एवं संघर्षपूर्ण युवा मुद्राके नायकके रूपमें प्रस्तुत किया। श्री जयकिरणने शम्बूकको जाति या वर्ण की सीमित परिधियोंसे निकलकर समग्र मानवताके प्रतीक रूपमें दलित, शोषित, पीड़ित तथा पददलित मानवताका प्रतिनिधिके रूपमें प्रस्तुत किया है।

डॉ. जगदीश गुप्तका शम्बूक जहां अपने वर्गके प्रति सामन्ती दृष्टि और सवर्णीय मानसिकतामें अपने अस्तित्वके संघर्षके लिए प्राणाहुति देता है और उसे एकलव्यका संसर्ग अन्ततः प्राप्त होता है। वहीं कवि जयकिरणका शम्बूक वर्ण या जाति-विशेषके घेरेको तोड़कर मानवताका प्रतिनिधित्व करता हुआ शोषितों, पीड़ितों, पद-दलितोंका प्रवक्ता बन गया है। काव्य नाटकका यह नायक संघर्षका आह्वान करता है—

“संघर्ष व्याकरण रचकर/मांजें श्रम-स्वेदकी भाषा/ पूरा करते/ वही श्रेष्ठ जन/ जनमानसकी आशा/ ... इसलिए सतत संघर्षोंका/ इतिहास आजभी जीवित है” (पृ. ४३-४४)। यही नहीं वह रामको अपना परिचय देते हुए कहता है—“सदियोंसे/ चरणोंकी रज बन/ धरतीमें/ जो धंस रहे हैं। ... उस समाजका/ प्रतिनिधि मैं/ सत्को शोध रहा हूँ” (पृ. ७७) ... चरणोंसे हम/ नहीं किसीके/ पैदा होकर आये/ स्वयं तुम्हारी तरह/ गर्भसे/ हम पृथ्वी पर जाये” (पृ. ७९)।

शम्बूक अपने अधिकारोंसे सुपरिचित तथा अपने श्रमकी महत्ता और बाहुबलसे सम्पन्न है इसीलिए उसमें अपने वर्णमें उत्पन्न होनेका स्वाभिमान है, दैन्य-हीनतासे मुक्त वह उच्चवर्णकी सामन्ती धारणाका विरोध और खण्डन करता है—“क्या नहीं खींचकर लाये हम/ या जो कुछ पृथ्वीके अन्दर/ नहीं बनाया/ कहीं जगत्को/ क्या हमने भी सुन्दर” / (पृ. ७९)। वह रामसे स्पष्ट कहता है कि यह वर्णभेद मनुष्यका पैदा किया है और उसने ही स्वार्थपूर्तिके लिए यह सब किया है—अरे ! भूख-प्यास/ और जन्म-मृत्यु/ जब हर प्राणीके पास/ फिर कोई क्यों/ स्वामी जैसा ! / कोई रहता दास ? / ये भेद/ मनुजने नहीं कहींभी/ कभी प्रभुसे पाये/ ... छूत-छात/ और/ जात-पात/ हैं सब बुद्धि ने ढाले/ मनुज-मनुजके बीच/ मनुजने ही/ खींच दिये हैं पासे।” (पृ. ८१)। जब राम उसका अन्त कर देनेकी कटिबद्धता दिखाते हैं तो शम्बूक कहता है—“दिखा मृत्यु-भय/ लोह पंजसे सत्को मसल रहे हो/ यही नैसर्गिक”

चींटीको क्या/ कुचल रहे हो ? मेरा तप है नहीं/ कपट की कूटनीतिका अंग/ भीति विषय गिराना मेरे/ तप-जीवनका रंग।” (पृ. ८४)।

वास्तवमें जयकिरणने जिन ज्ञान एवं भावधारामें शम्बूकके सृजनका बीड़ा उठाया है, वह सवर्णकी दास्य मनोवृत्तिसे आक्रान्त भावपर चोट करता है तभी राम अन्तिम निर्णय लेते हैं—‘कथ्य सभी/ उनके छोटे है/ केवल/ तुम ही खरे/ जोभी हो सच/ निर्णय इसका/ नहीं राज्य अधीन/ सभी नियमसे/ बन्धे हुए हैं/ कहां मैं भी स्वाधीन ?/ कहीं तुम्हारा उदय/ न कर दे स्थापितका ध्वंस’ (पृ. ९१)। और शम्बूकका वध कर देते हैं। लेकिन शम्बूक मरा नहीं है—शम्बूक एक चेतना है, देहहीन जिसके लिए कविने इस काव्य नाटकके अन्तमें कहा है—“यह शम्बूकका रक्त रंग लायेगा/ सही सोच का नया ढंग लायेगा।/ जागी है मानसकी किरणें आशा की/ जला रही जो आग सत्य, जिज्ञासाकी।” (पृ. ९३)। अस्तु, यह शम्बूकका वध न होकर शोषण, उत्पीड़नकी व्यवस्था-काराके अन्धकारसे मुक्ति पाकर एक आलोक यात्रापर बढ़ता हुआ ऐसा चरण है तो एक दिन अपने तेवरकी सार्थकता सिद्ध करेगा।

इस दृष्टिसे इस काव्य नाटकमें जयकिरणने पूरा-ख्यानकी पुनर्रचनासे वर्तमान युगमें शोषणविहीन समाज और रामराज्यकी लोकतांत्रिक व्यवस्थामें हो रहे अत्याचारोंके समय शम्बूककी आलोक यात्राकी प्रासंगिकता सिद्ध की है जिससे कवि-कर्मका आधुनिकता बोध स्वयं सटीक बन जाता है। मुद्रणकी भूलें पर्याप्त है जिसके कारण काव्यान्तर्दमें विघ्न आता है। वैसे पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है तथा आधुनिक शोध-जगत्में काव्य नाटकके क्षेत्रमें शोधार्थियोंका ध्यान आकर्षित करेगी, ऐसा विश्वास है। □

## पत्थर को बांसुरी

कवि : कुंअर बेचैन

समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

कवि सम्मेलनके मंचसे जुड़े कवियोंके साथ-प्रायः

१. प्रका. : अयन प्रकाशन, १/२० महरोली, नयी दिल्ली-११००३०। पृष्ठ : ६८; डिमा. ६०;

मूल्य : ४०.०० रु.



यह त्रासदी जुड़ जाती है कि कुछही रचनाओंकी कमाई खाते रहते हैं, गंभीर रचनाशीलतासे उनका सम्बन्ध टूटता जाता है। कुंअर वेचैन उन इनेगिने मंचीय कवियोंमें से हैं, जिन्होंने प्रचुरमात्रामें लिखा है और अच्छा लिखा है। उनकी काव्ययात्राका सातवां पड़ाव 'पत्थरकी बांसुरी' उनकी ताजा गजलोंका संकलन है और इसे पढ़ते हुए कतई नहीं लगता कि कुंअर वेचैन चुक गये हैं या खुदको दुहरा रहे हैं। इस संकलनके प्रारम्भमें 'गजलपर बातचीत' शीर्षक लम्बी टिप्पणीभी है। इसके सम्बन्धमें स्वयं कविका कथन है—“मुझे पूरा विश्वास है कि पाठकोंको इस संग्रहकी गजलोंके साथ दीगयी इस भूमिकाका औचित्य इसलिए ध्यानमें रहेगा क्योंकि शायद इससे हिन्दीमें गजलें लिखनेवाले कवियोंको कुछ गजलके छंदों और उनकी सुगन्धका थोड़ा बहुत परिचय मिले। यदि फिरभी किसीको गजल संग्रहमें यह भूमिका तनिक भी चुभे तो यह—सोचकर क्षमा कर दें कि फूलोंके साथ कांटे भी रहतेही हैं।” ‘गजलपर बातचीत’ के प्रारम्भमें अलाउद्दीन खां, योगी और भगिनी निवेदिताके दृष्टान्त देकर डॉ. वेचैनने गजल लिखते समय उस विधाके प्रति समर्पणकी आवश्यकता, चमत्कारपूर्ण सिद्धिका निषेध और संकटोंके सामने रहनेकी जरूरतको रेखांकित किया है। गजलके यथार्थकी जमीनसे जुड़नेको कविने बहुत आवश्यक माना है। गजलके शास्त्रको समझानेमें कविको पूरी सफलता मिली है। इसके साथही उसने हिन्दी गजलकी ६ विशेषताओंकी ओर ध्यान आकषित कराया है। निश्चयही कुंअर वेचैनकी कुछ स्थापनाएं बेबाक हैं। जब वे कहते हैं कि गजलमें प्रयुक्त बहुवचन हिन्दी व्याकरणके अनुसार बनने चाहियें या जब वे हिन्दी गजलोंमें लफ्फाजीको रेखांकित करते हैं, तब वे निश्चय ही सही और सटीक जान पड़ते हैं।

कुंअर वेचैनने ‘अतीत’ को नील-कमलकी संज्ञा देते हुए लिखा है : ‘मेरी गजलोंका प्रत्येक शब्द इसी नील कमलकी पंखुरियोंमें भंवरेकी तरह बंद है, मधु-पानकर रहा है।’ क्या इसका अर्थ यह है कि कुंअर वेचैनकी गजलें अतीतकी स्मृतियोंपर केन्द्रित हैं और वर्तमानके संक्रमणशील यथार्थसे अलग-थलग पड़ी हैं ? इन गजलोंमें मधु स्मृतियां, खुशनुमा सपने और कोमल अनुभूतियां प्रचुर मात्रामें हैं, पर ये यथार्थसे कटी रचनाएं नहीं हैं। इन गजलोंका केन्द्रीय प्रतीक ‘खुशबू’ है।

जो निश्चयही ‘रागात्मकता’ का सूचक लगती है। रागात्मकता या अपनत्वकी तलाश अन्ततः अस्मिताकी पहचान और तलाशसे जुड़ गयी है, जिसे कविने ‘मुझको मिल जाये तो खुशबू जिसकी है मुझको तलाश’ (पृ. ५६) कहते हुए व्यक्त किया है। पूरे संग्रहमें ‘खुशबू’ से सम्बन्धित पंक्तियां बिखरी पड़ी हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

(१) जिसमें पहले प्यारकी खुशबू मिली (पृ. २६)

(२) फूलकी खुशबू मगर जिन्दा रही (पृ. ३०)

[३] फूलका जैसे खुशबूसे सम्बन्ध है (पृ. ३३)

(४) तुम्हारी सांसकी खुशबूको छूकर (पृ. ३४)

(५) मैं इक हवाका झकोरा हूँ और वो खुशबू बड़ेही प्यारसे मुझमें समा रहा कोई (पृ. ५१)

(६) अपनी खुशबू फूलके बाहर बना (पृ. ५४)

(७) रंग निखरे और खुशबूका बदनभी खिल उठा (पृ. ५८)

(८) फूलमें जैसे खुशबूएं, हमें तुममे ऐ कुंअर (पृ. ७३)

(९) फैलना है तुझे खुशबू-सा अगर दुनियांमें (पृ. ८२)

(१०) ये मेरे प्यारकी खुशबूही रास्ता है उसे (पृ. ८६)

इन सभी उद्धरणोंमें अधिकतर ‘खुशबू’ को ‘प्यार’ के प्रतीक या पर्यायके रूपमें प्रस्तुत करते हैं। कविका मन इसी प्यारमें रमा है और प्यारके अभावको देखकर क्षुब्ध भी हुआ है। चूंकि कविको पता है कि रिश्ते और नातोंके पत्थर (पृ. ८३) आदमीको तोड़ देते हैं अतः वह ‘प्यार’ को बहुत मूल्यवान् समझता है तो कोई अचरजकी बात नहीं है। कवि औपचारिकताकी सीमासे अवगत है अतः शब्दोंमें व्यक्त होनेवाली कथित आत्मीयताकी वास्तविकतासे अनजान नहीं है—

लपजोंकी खुशबूओंको समझनेके दिन गये

लपजोंको अब खतोंमें बांधनेकी जिद न करा

(पृ. ८४)

स्पष्ट है कि ‘खुशबू’ के माध्यमसे कुंअर वेचैन एक सकारात्मक मूल्यदृष्टिका बोध कराते हैं। ‘इस शहर में नफरतके, मैं खत हूँ मुहब्बतका’ तथा ‘सिधु बननेसे नदी रहनाही अच्छा है कुंअर’ जैसी पंक्तियोंमें



बोध नहीं है, लेकिन ये गजलें अन्तर्मुखी व्यक्तिवादकी अभिव्यक्ति भी नहीं हैं। अपने भावों और विचारोंको मूर्त करनेके लिए कविने जिस गंगाजमुनी भाषाका प्रयोग किया है उसके एक छोरपर 'नशेमन', 'रद्दोबदल', 'वेखुदी', 'अश्क', 'मासूम' जैसे शब्द हैं, दूसरी ओर 'शतदल', 'गिरिधर', 'निर्झर', 'दर्पण' जैसे तत्सम शब्द हैं। बोलचालकी भाषाके माध्यमसे बातको सलीकेसे कहने में कविको सफलता मिली है। कुछ उदाहरणोंसे इस बातकी पुष्टि होती है—

- (१) एक दर्पण हूँ कबसे गूँगा हूँ  
मुझे पै पत्थर उछाल दे कोई
- (२) है तुझ पै निजी डायरी, ये ठीक है मगर  
फनकार, तेरे हाथमें अखबार भी रहे।
- (३) लो मुझको गौरसे देखो कि बांसुरी हूँ मैं  
मेरी वो धून भी मेरे आसपास बँठी है

कुंअर बेचैनकी कथन पद्धति सहज है और उसपर किसी बड़े कवि या गजलोंका सीधा प्रभाव नहीं दिखायी देता। जहाँ-तहाँ अप्रस्तुतोंके सार्थक प्रयोग हैं, जो अभिव्यंजनाके और प्रखर बनाते हैं। 'नीली झील के तटपर रुपास बैठी है', 'प्यारकी पायलकी हवा', 'शापरीकी किताब था ये दिल', 'दिनमें सूरजमुखी है याद उसकी' जैसे प्रयोग ताजे और प्रभावपूर्ण हैं। समग्रतः 'पत्थरकी बांसुरी' एक पठनीय गजल संग्रह है। पर जिन पाठकोंको कुंअर बेचैनकी 'समयकी प्रामाणिकता' से संपृक्त 'बरसात अंगारोंकी' जैसी गजलें अधिक रुचिकर लगती हैं, उन्हें यह संग्रह अधिक आश्वस्त नहीं करेगा। प्यारकी जरूरतपर बल देती हुई ये गजलें बहुतसे भावुक पाठकोंको निश्चयही अच्छी लगेंगी। इन गजलोंका समग्र प्रभाव बहुत कुछ ऐसा है, जैसा कविने एक गजलमें अपने लिए कहा है—  
प्यारके मीठे भजनके साथ सुन लेना कभी।

दिलके मन्दिरमें कहीं बजती हुई करताल हूँ। □

**प्रधियारोंसे लड़ता हुआ?**

कवि : मलखानसिंह सिसौदिया

समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

इकहत्तर वर्षीय वयोवृद्ध कवि मलखानसिंह सिसौ-

१. प्रका. : किताब महल, १५ थानहिल रोड, इलाहाबाद। पृष्ठ : १२०; डिमा. ६०; मूल्य : ६०.००

दियाके प्रस्तुत कविता-संग्रहमें चालीसके दशककी पुराने ढर्रेकी छन्दोबद्ध रचनाएं हैं। विषय वस्तु और शैली दोनोंमें आजकी स्थितियोंसे एकदम भिन्न स्थितियोंमें वे हमें उस युगके बाहरी विश्वकी हलचलोंमें शरीक करती हैं। कविताओंमें स्वतंत्रताकी प्राप्तिके पूर्वके युग की स्वप्नाकांक्षाएं और राष्ट्रश्रीके सुख-वैभवके दर्शनकी आदर्श कामनाएं हैं। द्वितीय विश्व-युद्धमें नाजियोंकी पराजयके बाद यूरोपमें उत्पन्न हुई शान्तिमें, कवि; एशिया महाद्वीपके 'शुभ' की कल्पना करता हुआ आशा करता है—

शीघ्र भीषण यातना-युग/ वर्तमान समाप्त होगा/

मुक्त योरपहो चुका है/ एशिया अब मुक्त होगा।

इसी आशासे आश्वस्त हो कवि जनताको उसकी भावी जिम्मेदारियोंसे अवगत कराता है कि वह क्षमतावान बने। काहिली और संशयका परित्याग करे। दिशाहीनतासे उन्मुक्त हो और साहस व संकल्पसे राष्ट्र-निर्माण एवं आत्मोद्धारके काममें लगे—

छोड़ो असमंजस-निश्चलता/ दिशा लक्ष्यका निर्धारण कर/ साहस और संकल्प जुटाओ/ अवरोधोंको तोड़ो-फोड़ो/ भटकावोंकी राह-मरोड़ो/ और बनाओ पथ खुद अपना।

सिसौदियाकी कविताएं कवि-शिक्षाके लिए भी उपयुक्त हैं। सरल भाषामें लिखी गयी उनकी कविताओंको बहुत कम पढ़े-लिखे बच्चेभी समझ सकते हैं और वे उनके अनुकरणसे तुक-तालयुक्त छन्दोंकी रचनाका अभ्यासकर सकते हैं। ग्रीष्मकी तपती दुपहरी में गांवके तालाबके किनारे चिलम पीरहे बड़े आदमी का वर्णन करती हुई कविता है—

कुछ ऊँचे पर, निकट तालके/ है छतनारा पेड़ आमका/ लदा फलोंसे, जिसके नीचे/ उकड़ूँ बैठा चिलम पीरहा/ जर्जर तन बूढ़ा रखवाला।

टूण्डलाके कस्बाई परिवेशपर लिखी गयी कविता इस संग्रहकी विशिष्ट रचना है। कवि रिपोर्ताजकी तरह वहाँकी विविध झांकियोंको हमारे सामने खड़ा करता है जिसके एक हिस्सेमें नाजकी मण्डी है तो दूसरी तरफ अंग्रेजोंके क्रीतदास जो हिन्दुस्तानी कम अंग्रेज ज्यादा लगते हैं। परचूनिये, पंसारी, अत्तार-बिसाती, फल-सब्जी वाले, कबाड़िए, कलाडीमें खड़े हुए पियक्कड़, टूटी-फूटी सराय, टाँगोंकी मालिश करवाते हुए इक्के-तांगे वाले, कंजड़िए और अंग्रेजोंकी गालियोंपर खीसें निपो-



रते हुए ठेकेदारोंके व्योरोपर आती हुई यह कविता असंगति और विद्रूपताओंको भी इंगित करती है और सामान्य जनताके प्रति कविकी संवेदनशीलता और सहानुभूतिको भी रेखांकित करती जाती है —

एक छोरपर बसी कंजरीकी ओपड़ियां/ जहां बान-रस्सियां औरतें ऐंठा करती/ या सन करती साफ, कूटती मूंज दीखती/ नंगे-अधनंगे सूखेसे कलुवे बच्चे/ कचरेके ढोरोंसे बीनी चीजोंसे खेला करते हैं।

‘तुम्हें न मरने दूंगा’ भी संग्रहकी असरदार कविता है। यह कविता कविके द्वारपर आई बुढ़ियाके ‘भूखी हूं, भिक्षा दो’ की ढेरसे शुरू होती है। आवाज सुन कविकी धर्मपत्नी बाहर आती है और चुटकीभर आटा देनाही चाहती है। बुढ़िया आशीष देनेकी बजाय रोष प्रकट करती हुई कहती है ‘क्या इतनी दूरसे चलकर इतने भर आटेके लिए आयी थी।’ धर्मपत्नी उल्टे पाँव भीतर जाती है और रोटियां लेकर बुढ़ियाके सामने उपस्थित होती है। बुढ़िया अबकी बार और कड़े शब्दों में भिक्षाका प्रतीकार करती है। उसके करें शब्द हैं कि ‘मैं तो तेरे पतिको खाने आयी हूँ।’ पत्नी डरसे कांप जाती है और अगलेही क्षण उसके मुँहसे निकल पड़ता है ‘अम्मा, मेरे पतिके बदले मुझे खा लो’ क्योंकि उसके पति—

अपने लिए नहीं जीते हैं/ वे जीते हैं/ शोषित, दलित, दमित जनके हित/ जीवन उनको किया समर्पित/ कलम-अस्त्रसे उनकी मुक्ति-लड़ाई लड़ते/

## आलोचना

### ‘लहर’ का विकासपरक अध्ययन?

लेखिका : डॉ. प्रमिला शर्मा

समीक्षक : डॉ. रामदेव शुक्ल

आलोचनाके क्षेत्रमें संख्याकी दृष्टिसे जो विकास

१. प्रका. : पारमिता, ३/३६ रूपनगर, दिल्ली-११०-००७। पृष्ठ : २०८; डिमा. वि. सं. २०४५; मूल्य : ₹५.०० रु.।

‘प्रकर’—फरवरी’६२—३६

आग उगलती निडर लेखनी उनकी अथक सतत चलती है/ लेकिन, उनका काम/ अभी तक हुआ न पूरा।

बुढ़िया, पत्नीके तर्कोंको मान जाती है और पत्नीको खा जाती है। देखतेही देखते वहां भीड़ इकट्ठी हो जाती है। चारों ओर कोहराम मच जाता है। कवि बाहर निकल आता है और पत्नीको इधर-उधर ढूँढ़ता-ढेरता कातर हो उठता है। लुटा-पिटा वह अपनीही अनुगूँजको सुननेके सिवाय और कोई रास्ता नहीं निकाल पाता। इतनेमें नौद खुल जाती है।

कवि देखता है कि पत्नी उसे जगाने उसके सिरहाने बैठी है। यह कविता नाटक जैसी त्रासद और कहानी जैसी जिज्ञासावद्ध है। शुरूमें स्वप्नका जिक्र न होने से पाठक इसे उत्सुकतावश पढ़ता जाता है। स्वप्न टूटनेकी स्थितिपर पहुंचकर उसके मनमें रचनात्मक सौन्दर्यका अद्भुत प्रभाव पड़ता है। पाठक देखता है कि कवि पत्नी, कविका सिर सहलाती हुई कह रही है।

अरे, उठोभी, कबका हुआ सवेरा जागो/ सूरज झांक रहा खिड़कीसे आड़े होकर/ काग, द्वारके नीम विटपपर बोल रहा है/ बतिया रहे पड़ोसी, जल-भाजन खड़काते/ घरके सम्मुख जुड़े कुएंपर/ और लालखाँ-मिश्री भी कुछ बोल रहा है बीच-बीचमें/ अरे उठोभी।

संग्रहके साथ विडम्बना यह रही कि वह उसके रचनाकालावधिमें ही प्रकाशित न हो सका। व्योबूध कविकी स्मृतियोंको हमारा नमन। □

हो रहा है, उसे गुणात्मक रूप में भी आवश्यक करनेवाला नहीं कहा जा सकता। इसके अनेक कारण हैं जिनमें से प्रमुख हैं, शुद्ध पाठ और काव्य मर्म दोनोंसे बच निकलने की जल्दबाजी या चालाकी। आलोचना-क्षेत्रमें बड़े-बड़े दावे करनेवाले ग्रंथ पड़ जाइये, आलोच्य कृतिके शुद्ध पाठ और उसके मर्मकी व्याख्याके लिए आँखें तरस जायेंगी। कविताके अधिकांश आलोचक कविताके टेक्स्टसे बचकर निकल जाना चाहते हैं। ऐसी स्थितिमें



छायावादके सम्पूर्ण परिदृश्यको सामने रखकर जयशंकर प्रसादके पूरे साहित्यका अध्ययन करनेके बाद उनकी एक कृति 'लहर' की कविताओंकी एक-एक पंक्तिकी, शब्द-शब्दकी परख करनेवाली पुस्तक गहरी सन्तुष्टि प्रदान करती है। यह कार्य डॉ. प्रमिला शर्मा ने तीन खण्डोंकी उपयुक्त पुस्तकमें किया है। पहला खण्ड 'लहर' की कविताओंका प्रामाणिक पाठ प्रस्तुत करता है। लहरकी कविताओं और उसके गीतोंके प्रामाणिक पाठ को सुनिश्चित करनेके साथही लेखिकाने पादटिप्पणियों में यह सूचना भी दे दी है कि यह रचना सबसे पहले कहां, कब और किस नामसे प्रकाशित हुई थी। इसके साथही जिस रचनामें जो विशेष शब्द प्रयुक्त है, उसके विचारणीय होनेका संकेत भी किया गया है। निःसन्देह 'लहर' का अबतक का सबसे विश्वसनीय पाठ इसीको माना जा सकता है।

पुस्तकका दूसरा खण्ड 'लहर' की कविताओंकी 'विकासपरक सन्दर्भमें व्याख्या' का है। इसमें लेखिका ने प्रसादके सम्पूर्ण साहित्यका गहन अध्ययन करनेके बाद लहरकी एक-एक रचनाको लेकर पंक्ति-पंक्ति और शब्द-शब्दपर विचार किया है। उदाहरणके लिए पहलीही रचना 'उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर' की लहरकी कविकी पूर्ववर्ती रचनाओंमें ढूँढ़कर उनके अर्थ संकेत दे दिये गये हैं। 'झरना' और 'आँसू' की 'लहर' और कविकी उनसे अपेक्षाके संकेत करनेके बाद लेखिकाकी टिप्पणी है कि "प्रेम, मुदिता, आह्लाद, सहृदयता, ममत्व, करुणा आदि सार्थक जीवन मूल्योंकी इन भाव-लहरियोंके बिना तो जीवन सूखा, विरस, रेतीला किनारा ही बन जायेगा। कवि प्रसादको अभिप्रेत है—इन छोटे-छोटे उल्लासोंसे पूरित सम्पूर्ण सार्थक जीवन।" (पृ. १०६)। प्रकृतिके प्रति अतिरिक्त मोह देखकर इन कविताओंको पलायनकी प्रवृत्तिसे जोड़ने वालोंके लिए लेखिकाका स्पष्ट कथन है कि "प्रसाद जैसा संवेदनशील कवि अपने युगकी पीड़ासे असम्पृक्त रह मात्र पलायनवादी दर्शन या सौन्दर्य-प्रेमकी आँख पिचोलीमें ही आसक्त रहे—यह असम्भव है। इस कवितामें निहित 'पुलिनके विरस अधरों'की पीड़ा पंकज-वनके आकर्षणसे अधिक बलवती है। 'करुणाकी नव अंगराई' में पराभव, हततेज राष्ट्रीय गौरवके प्रति कविका निरन्तर रक्षान है तो 'मलयानिलकी परछाई' में विगत गौरवके प्रति पुनर्जागरण-युगकी संसृष्टिका

भाव भी अन्तर्भुक्त है। 'लहर' इस दृष्टिसे प्रसादकी जीवन-दृष्टिको समझनेकी दिशामें महत्वपूर्ण दस्तावेज है।" (पृ. १०६)।

इसी प्रकार संग्रहकी सभी रचनाओंमें आये हुए विम्वों और संकेतोंको प्रसादके सम्पूर्ण साहित्यके साथ रखकर देखा गया है। लहरकी रचनाओंका विश्लेषण करते समय लेखिकाका ध्यान प्रसादके पूरे साहित्यपर तो है ही, अन्य छायावादी कवियोंकी रचनाओंपर भी है। 'बीती विभावरी जाग री' को भावदीप्त अरुणोदय के सजीव अंकनके साथ 'राष्ट्रीय जागरणका राग' कहती हुई लेखिका 'उषा सूक्त' और निरोलाके 'तुलसी दाम' के समापन चरणका उल्लेख करती है। 'ले चल मुझे भुलावा देकर' गीतमें पलायन ढूँढ़नेवालोंको लेखिकाकी टिप्पणीपर ध्यान देना चाहिये। वे लिखती हैं, ".... वह जिस शान्त रत्नाकरकी ओर जाना चाहता है, वही तो नाविक रूप धर उसे वहां ले जायेगा। वही तो 'जीवन' है, 'उत्स' है, 'रत्नाकर' है जिसके निश्छल प्रेमका आकर्षण नदियोंकी सुदूर यात्राका पाथेय बनता है।" (पृ. ११५)। प्रत्येक रचनाका विश्लेषण इतने श्रम, इतनी सावधानी और इतनी आत्मीयताके साथ किया गया है कि यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि प्रसाद-साहित्यके पाठकके लिए यह आवश्यक पुस्तक है।

तीसरा खण्ड है, 'आलोचना-खण्ड' जिसमें आठ निबन्ध हैं। पहले निबन्ध 'लहरका जीवन-दर्शन' में खलील जिब्रानके साथ प्रसादकी तुलना की गयी है। प्रेम और सौन्दर्यके कवि प्रसाद काव्यको आत्माकी संकल्पात्मक अनुभूति मानते हैं। वेदनाका दर्शन उनके जीवन दर्शनमें महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वे विश्व मंगलके कवि हैं जिन्होंने प्रवचनका तरल गरल पीकर जगत्को वृन्दावन बनानेका प्रयास किया। लेखिकाने प्रसादकी कवितामें 'करुणा' को 'गहरी मानवतापूर्ण दृष्टिसे उत्पन्न आस्था' के रूपमें पहचाना है और स्पष्ट किया है कि वह परम्परागत दार्शनिकबद्ध अर्थसे आगे जाती है। यही प्रसादके जीवन-दर्शनका मूल उत्स है। 'छायावाद और लहर' दूसरा निबन्ध है। इसमें लहर की रचनाओंके अनेक वर्गोंमें रखे जानेके प्रति असंतोष व्यक्त करती हुई लेखिका सभी रचनाओंको 'स्वानुभूति-परक' कहती है। प्रसादके निबन्ध 'यूयार्थवाद और छायावाद' का गम्भीर विश्लेषण करके लेखिका स्पष्ट रूपसे कहती है कि "छायावादी कविता यथार्थकी कटु



पीड़ाको झेलते हुए भी विश्वमंगलमें आस्था पाती है।' (१६३)। छायावादी काव्यकी श्रेष्ठ विशेषताओंको लहरकी कविताओंमें उत्कृष्ट रूपमें दिखाया गया है और कहा गया है कि "लहर निश्चय ही न केवल प्रसादकी अपितु छायावादकी प्रतिनिधि गौरव रचना है।" (१६७)। 'लहरमें फूलोंकी सुवास' वह निबन्ध है जो प्रसाद के पुष्प-प्रेम और उनकी कविताओंमें फूलोंके कलात्मक उपयोगके बहाने कविकी सौन्दर्य-चेतनाका आकलन करता है। "सौन्दर्य एवं प्रेमका उदात्त स्वरूप 'लहर' में लेखिका प्रसाद-साहित्यमें 'काम' के वैदिक स्वरूपको रेखांकित करती है। वे बताती हैं कि 'दुःखदग्ध जगत् और आनन्दपूर्ण स्वर्गका एकीकरण ही' प्रसादकी दृष्टिमें साहित्य है और इस एकीकरणको वे प्रेमके उदात्त-स्वरूप द्वारा स्थापित करते हैं। इसमें प्रसादकी सौन्दर्य और प्रेमदृष्टिका बहुत अच्छा विश्लेषण किया गया है। 'नाविक अतीतको उतराई' में प्रसाद-साहित्यमें अतीत का अध्ययन है। अतीतका वही रूप प्रसादको स्पृहर्णाय है जो वर्तमानको उत्प्रेरित कर सके। लेखिकाने तिलकके प्रति प्रसादकी गहरी निष्ठाको इसी सन्दर्भमें रेखांकित किया है। लहरकी ऐतिहासिक सन्दर्भवाली कविताओंका अध्ययन इस निबन्धमें किया गया है। सांस्कृतिक पुनर्जागरणमें प्रसादकी मौलिक देनको 'लहर' की इन कविताओंके सहारे पहचाना गया है। 'प्रलयकी छाया—प्रसादका प्रेम-दर्शन' में प्रेम, काम, तृष्णा, सौन्दर्य, वासनाके बीच छटपटाती मानवीय आकांक्षाओंकी विडंबना दिखायी गयी है। झरना, आंसू लहरकी अनेक कविताओंके साथ कामायनीमें चित्रित सौन्दर्य प्रेम-वासनाका विश्लेषण करके 'प्रलयकी छाया' की कमलावतीका अध्ययन किया गया है। रूपगविता कमलाके व्यक्तित्वका दुर्बलतम पक्ष है उसके हृदय और मस्तिष्क का असन्तुलन, जिसके कारण जीवनके मोहमें अपना सब कुछ दौंवपर लगाकर वह हार जाती है। उसकी पराजय की आत्मविश्लेषणमयी कथाको प्रसादने जिस कुशलता से गढ़ा है, उसका विश्लेषण उसी प्रकारकी तत्परताके साथ यहां किया गया है। सातवें निबन्धमें खलील जिब्रान के साथ प्रसादकी जीवन-दृष्टिकी तुलना करके इस निष्कर्ष तक पहुंचा गया है कि "लहरका कवि चिन्तन, भाव और अभिव्यक्तिके अनेक धरातलोंपर पश्चिम एशियाके कवि जिब्रानका समानधर्मी है।" (१६६)।

अंतिम निबन्ध बहुत प्यारा बन पड़ा है। 'छोटे-से

'प्रकर'—फरवरी—'६२—300-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जीवनकी बड़ी कथाएं' शीर्षकसे लेखिकाने 'लहर' वाली संक्षिप्त आत्मकथाको उनकी अनेक कविताओं और कहानियोंसे सन्दर्भित अंश एकत्र करके समझानेकी चेष्टा की है। प्रसादके व्यक्तित्व और कृतित्वसे अभिभूत डॉ. प्रमिला शर्मा ने उनकी काव्यात्मक जीवनी गढ़ डाली है। उनके साहित्यके अनेक रूपोंमें उभरते संकेतोंको आत्मकथाकी पंक्तियोंके साथ जोड़कर इस छोटे जीवनकी यह बड़ी कथा तैयार की गयी है। अन्तमें लेखिकाने उचित संकेत किया है कि हिन्दीमें निराला, प्रेमचन्द, शर्मा की तरह प्रसादकी जीवनी भी लिखी जानी चाहिये।

डॉ. प्रमिला शर्मा की उपर्युक्त कृति उनकी समीक्षा-दृष्टि और उनकी प्रतिमाके प्रति बहुत आशा जगाने वाली है। लेखिकाने इस विलक्षण पुस्तककी रचनाकरके प्रसाद-साहित्यकी व्याख्याकी दिशामें आवश्यक आरम्भ कर दिया है। आचार्य शुक्लने भाव-श्रवणलाक आगे जाकर भाव पंचामृत शब्द विकसित किया, सूरदासके प्रसिद्ध पद 'संदेसो देवकी सो कहियो' के एक प्रयोगको लेकर। डॉ. प्रमिला शर्मा 'प्रलयकी छाया' के एक प्रयोग में 'भाव कोलाहल' की पहचान करती हैं। "वासनाकी आँधी-सी" मुलतानके पास जाती कमला अपने 'रूपकी शत्रुता' से बेखबर है। वह 'वेगपूर्ण ओघसे उमड़ते साहस' को झेल नहीं पाती और 'हल्के तृण-सी' बह जाती है। 'प्रतिशोध' का भाव 'सुंदरताकी प्रतियोगिता' में टिक नहीं पाता। 'ताराओंकी दशनपंक्ति' का व्यंग्य-पूर्ण अट्टहास उसको स्वयंके इस 'भाव कोलाहल' में छिप जाता है।" (१४८)।

प्रसाद-साहित्यके अध्ययनकी दिशामें यह महत्त्वपूर्ण प्रयास एक उपलब्धि है, जिसके लिए लेखिकाको बधाई। □

## जायसीके काव्यमें इस्लामी तत्त्व?

लेखिका : डॉ. जरीना रहमत

समीक्षक : डॉ. निजामउद्दीन

मलिक मुहम्मद जायसी (१४२७-१५४२) हिन्दी के कीर्तिलब्ध मुस्लिम कवि हैं उनके सात ग्रंथ प्रकाशमें

१. साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, ६३ के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-३। पृष्ठ : ७६; डिमा. ६०; मूल्य : २०.०० रु.।



आचुके हैं जिनमें 'पद्मावत' का शीर्षस्थ स्थान है। जायसीके कृतिवत्पर अनेकों समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखे- जाचुके हैं जिनसे उनके साहित्यिक अवदानकी उत्कृष्टता परिलक्षित होती है। जायसी हिन्दू-मुस्लिम-संस्कृति एवं दर्शनके समन्वयवादी उदारचेता कवि हैं। डॉ. जरीना रहमतके एम. ए. परीक्षाका लघु शोध-प्रबन्ध (डिसरटेशन) है। लघ्वाकार पुस्तकमें लेखिकाने इस्लाम धर्म-दर्शनका आकलन जायसीके काव्यके परि-प्रेक्ष्यमें सुचारु रूपमें किया है। पुस्तकको पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है, (१) जायसीका परिचय, (२) इस्लामके मूल सिद्धान्त, (३) जायसी और इस्लामी तत्त्व, (४) त्रिशिष्ट इस्लामी दृष्टिकोण और जायसी द्वारा उसका प्रतिपादन, (५) इस्लामी जीवन-पद्धति और जायसी। अन्तमें उासंहार (२ पृष्ठोंका) है। लेखिकाने ठीक कहा है कि सामान्य पाठक इस्लाम धर्मके स्वरूपको अत्यल्प जानते हैं, या बिल्कुल ही नहीं जानते, इसलिए दूसरे अध्यायमें उन्होंने अद्भुत कौशल तथा विद्वत्ताके साथ इस्लामके मूल सिद्धान्तोंका निरूपण कर उनका प्रतिपादन जायसीके काव्य संदर्शित किया है (तीसरा अध्याय)। इस्लामी सिद्धान्तोंके विवेचनमें (तोहीद, रोजा, जकात, हज) कुरान-हदीसको आधार बनाया गया है। पैगम्बर मुहम्मद साहब (स. अ. व.) को अन्तिम नबी 'खातिमुन्नबी' कहा जाता है। उन्हें सन् ६१० में नबूवत यानी पैगम्बरी अता कीगयी। पृ. ३५ पर नमाजका वर्णन है; उसमें पाँचों वक्तकी नमाजका विधान सुस्पष्ट नहीं। पाँचों वक्तकी नमाज का विधान इस प्रकार है—(१) फज्र (सूर्योदयसे पूर्व) (२) जोहर (दिन ढलनेके उपरान्त) (३) अस्त्र (सूर्यास्तसे डेढ़-दो घंटा पूर्व) (४) मगरिब (सूर्यास्त होनेपर) (५) इशा (रात्रिके प्रथम पहरमें यानी सूर्यास्तके दो घंटे बाद। यदि ईदकी, जनाजे (मृत व्यक्तिकी) की नमाजका उल्लेख किया जाता तो अच्छा होता, पाठकोंको जानकारी मिलती। 'तहज्जुद' (शुद्ध रात्रिके बादकी नमाज) का जिक्र भी किया जाना बेहतर था। 'जकात' के संदर्भमें इतना स्पष्ट करना अपेक्षित है कि जिन लोगोंके पास साढ़े बावन तोले चांदी, अथवा साढ़े सात तोले सोना हो उनपर जकात (और सदका भी) फज्र है यानी अपनी आमदनी का द्वाइ प्रतिशत वे खुदाकी राहमें खर्च करें। यह शरीरतका विधान है। लेखिकाने पृ. ३४ पर आखिरत

या कयामतका जिक्र किया है। संसारमें मनुष्यने जो कर्म किये हैं उसका फल तो मृत्युपरान्त भोगना पड़ेगा ही, पर यहाँ उसकी चर्चा अनुलिखित है। सत्कर्मियोंके हाथमें 'उस दिन' (न्यायक दिन) उनका 'एमालनामा' (कर्मोंका लेखाजोखा) उनके दाहिने हाथ में होगा और कुकर्मियों-गुनाहगारों या विधर्मियोंके बाएं हाथमें होगा। पृ. ३२ पर सैयद सुलेमान नदवी की बहुविश्रुत पुस्तक 'सीखुतुनबी' (छह भागोंमें) को 'विश्वकोष' कहा गया है, पाठकोंको यह भ्रम होसकता है। वस्तुतः यह 'विश्वकोष' नहीं है, वरन् पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब (स. अ. व.) के संपूर्ण जीवन चरित्रका, सिद्धान्तोंका, जीवन-दर्शनका विशद चित्रांकन करनेवाला महत्त्वपूर्ण विशाल ग्रन्थ है। ऐसी पुस्तकोंको 'सीरत' की पुस्तकें कहा जाता है।

पुस्तकमें अनुवर्तनीकी बार-बार की गयी अशुद्धियां खटकती हैं, कहीं 'नरक' है कहीं 'नर्क', कहीं 'मुहम्मद' है कहीं 'मोहम्मद', कहीं 'हज्ज' है कहीं 'हज', कहीं 'कोरान' है कहीं 'कुरान'। नरक, मुहम्मद, हज, कुरान (या कुर्आन) यही शब्द बहुधा सही माने जाते हैं। एक स्थानपर 'मालि के यो मिहीन' लिखा है पृ. ३४। लिखा जाना चाहिये—'मालिकि योमि-हीन' (जो मालिक है यौमे-जजाका)।

लेखिकाने इस्लामी तत्त्वोंको जायसीके सभी काव्यों में आकलित करनेका अच्छा प्रयास किया है। यह शोध-कार्य अपनेमें इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इस दृष्टिसे सूफी कवि तथा काव्यपर काम बहुत कम हुआ है। इस्लामी धर्म और संस्कृतिने भारतके धर्म, संस्कृति साहित्यको अत्यधिक प्रभावित किया है। जायसीके काव्यमें इस्लामी सिद्धान्तोंका तत्त्वान्वेषण अच्छे रूपमें किया गया है। इस्लामको लेखिकाने एक जीवन-व्यवस्था माना है, जो सर्वथा न्यायोचित है इस्लाम एक सम्यक् जीवन-पद्धति है। यहाँ इस्लामी परिवार, आहार-व्यवहार, राज-व्यवस्था, कला एवं संस्कृतिका रेखांकन जायसीके काव्यके संदर्भमें सुव्यवस्थित रूपमें किया गया है और 'अखरावट', 'पद्मावत', से उद्धरण काफी संकलित किये गये हैं, वैसे 'पद्मावत' से ही अधिकांश दृष्टान्त आकलित हैं, अच्छा होता अन्य कृतियों से भी इस दृष्टिसे समाकलन किया जाता। फिरभी यह प्रयास सराहनीय है, अभिरोचक है, ज्ञानका संवर्धन करनेवाला है। आशा है हिन्दी-जगत् इसका स्वागत



करेगा । इस लघु शोध प्रबन्धकी भूमिका यशस्वी साहित्यकार श्री नमदेश्वर चतुर्वेदीने लिखी है जिसमें इस्लाम एवं सूफी सम्बन्धोंकी शोधात्मक अभिव्यक्ति है और पाठकोंको दिशा प्रदान करनेवाली है । यकीनन डॉ. जरीना रहमत इस लघु ग्रन्थकी रचनाके लिए साधुवादाहर् हैं ।

पुस्तकके दो अध्याय (४, ५) अधिक महत्वपूर्ण हैं, ध्यातव्य हैं । इस्लामी दृष्टिकोणको समझनेमें चौथे अध्यायका अवलोकन आवश्यक हैं । यहां ईश्वरकी सत्ता, सृष्टि, जिक्रो-इलाही, खलीफा, कावा आदि पर अच्छा जिकार-विमर्श किया गया है । कुरानमें अन्तर्व्याप्त कतिपय अन्तर्कथाओंका चित्रण है । हालांकि डॉ. जरीना रहमतने मुसा, फिरऔनका ही उल्लेख यहां

किया है जबकि कुरानमें हजरत आदमसे लेकर हजरत ईसातक अनेकों पैगम्बरों-नबियोंका वृत्तान्त है, संभवतः जायसीकी रचनाओंमें परिख्याप्त अन्तर्कथाओंको ही यहां सन्निविष्ट किया गया है । जहाँतक जायसीकी कृतियों में इस्लामी जीवन-पद्धतिके रेखांकनका प्रश्न है उसमें लेखिकाने सोदाहरण आचार-विचारको प्रस्तुत किया है । अधिकांश उल्लेख 'शाही भोज' का ही किया गया है; मांसाहार, पुलाव आदिपर ही उनकी दृष्टि टिककर रह गयी, थोड़ा राज-व्यवस्था तथा इस्लामी कलाका संकेत जरूर दिया है । फिरभी अपने विषयका बहुश्रामयी अध्ययन करनेका उनका यह प्रयास श्लाघ्य है ।

□

## ब्राह्मण समाज

### ब्राह्मण समाजका ऐतिहासिक अनुशीलन?

लेखक : देवेन्द्रनाथ शुक्ल

समीक्षक : पं. काशीराम शर्मा

ब्राह्मणसमाजके परिचयसे सम्बन्धित अनेक पुस्तकें अवतक प्रकाशित हुई हैं । इनमें ज्वालाप्रसाद मिश्रकी जाति भास्कर, छोटेलाल शर्माकी जाति अन्वेषण, बटुक प्रसाद मिश्रकी ब्राह्मणोत्पत्ति भास्कर, त्रिवरेखा गुप्ता की 'द ब्राह्मनाज ऑफ इण्डिया' आदि प्रमुख हैं और मुख्यतः इन्हींकी सामग्रीका उपयोग करते हुए पुस्तक लेखकने अपनी पुस्तक लिखी है जिसमें सरयूपारिया ब्राह्मण वर्गका विस्तारसे तथा अन्य वर्गोंका संक्षेपमें उल्लेख किया गया है । पुस्तक २६ अध्यायोंमें विभक्त है । प्रथम अध्यायमें ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति, विस्तार, क्षेत्रीय संज्ञा आदिका विवेचन किया गया है । द्वितीय

अध्यायमें गोत्र प्रवर्तक श्रुतियोंका परिचय दिया गया है । तृतीय अध्यायमें हिन्दू समाजकी वर्णव्यवस्थाका विवेचन है । चतुर्थमें ब्राह्मणोंसे ही क्षत्रियों और वैश्यों की उत्पत्ति बतायी गयी है । पांचवेंमें विवाह व्यवस्था का विस्तारसे विवेचन है । उसीमें ब्राह्मणोंके गोत्रों और प्रवरोंका उल्लेख है क्योंकि धर्मशास्त्रोंके अनुसार स्वगोत्र विवाह वर्जित है । छठे अध्यायमें द्विजातियोंके कर्म एवं वृत्तियोंका उल्लेख है । सातवेंमें ब्राह्मणोंके लिए वृत्ति विषयक विधि-निषेधोंका उल्लेख है । आठवें में ब्राह्मण समुदायका वर्गीकरण है । छोट्टे-से नवें अध्यायमें यह दिखानेका प्रयत्न है कि जो ब्राह्मण समुदाय मूलतः मांसाहारी था वह शनैः-शनैः कैसे निरामिष-भोजी होता गया । दसवेंमें अनेक ग्रन्थोंमें उल्लिखित ब्राह्मणोंकी वेषभूषाका परिचय दिया गया है । ग्यारहवेंसे इक्कीसवें तक पंच गौड़ विप्रोंका यथाज्ञात विस्तृत विवरण है । इनमें लेखकके परिचित सरयूपारीण और कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंका वर्णन अधिक विस्तारसे है जो आरम्भके तीन अध्यायोंमें है । फिर एक अध्यायमें सारस्वत, उत्कल एवं मैथिल विप्रोंका

१. प्रका. : देवेन्द्रनाथ शुक्ल, चन्द्रभूति, वो-१/१२८-१, असी, वाराणसी-२२ १००५ । पृष्ठ : ३७४; डिमा. ६०; मूल्य : १६०.०० रु. ।

'प्रकर'—फरवरी ६२—४०



वर्णन अन्य ग्रन्थोंके आधारपर दिया गया है। एक अध्यायमें पालीवाल, त्यागी और कथक विप्रोंका विवेचन किया गया है। एकमें सनाढ्य विप्रोंका परिचय है तो एकमें भूमिहारोंका। इसके बाद माथुर चतुर्वेदियों, हिमगिरिक्षेत्रके विप्रों, महापात्र-गयापाल विप्रों और शाकद्वीपी विप्रोंका अन्य ग्रन्थोंके आधारपर दिवा हुआ परिचय है। बाइसवें अध्यायमें पंचद्राविड़ोंका संक्षिप्त विवरण है तो तेईसवेंमें ऐसे विप्रोंका, जिनके विषयमें लेखकने अत्यल्पज्ञान होनेके कारण उन्हें प्रकीर्ण और उपब्राह्मण आदि संज्ञाओंसे अभिहित किया है। चौबीसवें अध्यायमें गुरुकुलोंकी शिक्षा-प्रणालीका सोदाहरण विवेचन किया गया है तो पच्चीसवेंमें कुछ पारिभाषिक शब्दोंका विवेचन किया गया है, यथा: अभिजन, आस्पद, गोत्र, प्रवर, चरण, संस्कार आदि। अंतिम अध्यायमें लेखकने यथामति निष्कर्ष निकाले हैं। इन अध्यायोंके बाद उन ग्रंथोंकी सूची दी गयी है जिनका पारायण लेखकको अपनी रचनासे पूर्व करना पड़ा। तदनन्तर सरयूपारीण विप्रोंके निवासवाले ग्रामोंकी सूची दी गयी है जिनमें विविध गोत्र, अल्ल आदिका उल्लेख है। उसके बाद 'उपांग' शीर्षक परिशिष्टमें कुछ रोचक कथानक दिये गये हैं जिनकी कोई उपयोगिता समझमें नहीं आती। अन्तमें 'अभिसूचक' दिया गया है जो अपूर्ण तो है ही, अकारादि क्रमकी दृष्टिसे भी दोषपूर्ण है। पुस्तकके आरम्भमें तीन प्राक्कथन हैं। पहला संस्कृत में 'ब्राह्मण्य प्रभाव' नामसे श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री द्वारा, दूसरा 'शुभांसा' बलदेव उपाध्याय द्वारा और तीसरा 'सुब्रह्मण्य वो स्तु' विश्वम्भरशरण पांडेयका। तदनन्तर लेखकका निवेदन 'समाधान' नामसे है।

तीन तीन वरेण्य विद्वानों द्वारा प्रशंसित होनेपर भी पुस्तककी न तो उपादेयता समझमें आयी, न सार्थकता ही। लेखकने समाधानमें सामग्री संकलनके लिए जिस 'परिक्रमा' का उल्लेख किया है वह भी अपूर्ण ही रही लगता है। पुस्तकके शीर्षकमें 'ऐतिहासिक' के स्थानपर 'सामाजिक' शब्द होता तो फिर भी थोड़ा सार्थक होता। कुछ विदेशी इतिहासकारों और विदेशी यात्रियोंके उद्धरण दे देने मात्रसे विवेचन ऐतिहासिक नहीं होजाता। पुराणोंके प्रतीकात्मक उपाख्यानोंके बलपर कोई इतिहास नहीं लिखा जासकता जिनमें नदी-नाले-पर्वत शृंगभी मानवोंका सा व्यवहार करते बताये जाते हैं। पुस्तकके तीसरेसे छठे तक के अध्यायोंका

विवेचन ब्राह्मणों तक सीमित न होकर संपूर्ण हिन्दू समाजका विवरण उपस्थित करता है। इन्हें ग्रंथके मूल विषयसे बलात् सम्बद्ध किया गया है। यही स्थिति 'वेषभूषा' विषयक दसवें अध्यायकी है। चौबीसवें और पच्चीसवें अध्यायमें वर्णित सामग्री भी अन्यथा चाहे कितनी ही सूचनापरक हो पर वह संपूर्ण हिन्दू समाज से सम्बन्धित हैं, केवल ब्राह्मण समाजसे नहीं।

पुस्तकके शीर्षकको देखते हुए अध्याय ग्यारहसे तेईस तक का विवेचन ही विषय-सम्बद्ध प्रतीत होता है। इनमें पंचगौड़ोंके अन्तर्गत केवल सरयूपारीण और कान्यकुब्ज समाजका ही परिचय विस्तारसे दिया गया है। लेखकको सम्भवतः केवल इन्हींकी जानकारी है। पंचगौड़ोंके अन्य भेदोंका विवेचन अन्य पुस्तकोंके आधार पर किया गया है। 'परिक्रमा' के आधारपर नहीं। इसीलिए त्यागी, भूमिहार, महापात्र, गयापाल, शाकद्वीपी आदिके विषयमें बहुत विस्तार किया गया है। तत्तत् क्षेत्रका ब्राह्मण समाज इन्हें संदेहकी दृष्टिसे देखता है इसीलिए संदेह निवारक सामग्रियां प्रकाशमें आयीं, जिनका समावेश प्रस्तुत पुस्तकमें किया गया है।

लेखकको चाहिये कि या तो अपनी परिक्रमाका क्षेत्र विस्तार व्यापक करके सारे देशकी जानकारी प्राप्त करता या फिर केवल सरयूपारीण ब्राह्मण वर्ग का परिचय देकर संतोष करता। पुस्तकके 'प्रकीर्ण और उपब्राह्मण' वाले अध्यायसे स्पष्ट है कि लेखक ने 'परिक्रमा' जैसी कोई यात्रा नहीं की। अन्यथा राजस्थानके ब्राह्मण वर्गके विषयमें सर्वथा भ्रान्त जानकारी नहीं दी होती। मैंने 'राजस्थान' के विषयमें इसलिए लिखा क्योंकि मेरी उसके विषयमें जानकारी है। वहाँ सर्वमान्य ब्राह्मण समुदाय—दाहिमा, पारीक, सुखवाल—आदिको 'प्रकीर्ण' के अन्तर्गत उप-ब्राह्मणोंके साथ स्थान दिया गया है और उनके साथही भदरी, गुरडा आदि गिनाये हैं जो ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें बैठने लायक नहीं माने जाते। उधर शाकद्वीपियोंपर पूरा एक अध्याय है जो राजस्थानमें ब्राह्मणवर्गमें स्थान नहीं पाते। वहाँ वस्तुतः वे 'पुरबिया' ब्राह्मण भी ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें स्थान नहीं पाते जो मांसाहारी हैं।

हमारे विचारसे आजके युगमें इस प्रकारकी पुस्तकों की कोई उपयोगिता नहीं है और यदि कोई लेखक 'जनगणना' जैसे जातिगणना कार्यमें प्रवृत्त होही तो उसे चाहिये कि पूरे देशकी यात्रा करके प्रत्येक क्षेत्रमें



अपनेको विप्र घोषित करनेवाले समाजोंके गोत्र-प्रवर-चरण आदिका संग्रह करे। किसीभी वर्गको छोटा या बड़ा, मूल या प्रकीर्ण, मुख्य या 'उप' घोषित न करके उनके परिचय मात्र देदे। प्रायः सारेही भेद भौगोलिक हैं। जहांतक वेषभूषा, खान-पान आदिका प्रश्न है, वे सब भौगोलिक भेदपर आश्रित हैं, ब्राह्मण-अब्राह्मणके भेदपर नहीं। इसी दृष्टिसे परिचय दिये जायें तो सामाजिक अनुशीलन कहाना सकता है। ऐतिहासिक तो तबभी नहीं। अपने पक्षके समर्थनमें न तो महाभारत-पुराणोंको घसीटना उचित है, न पाणिनि-पतंजलिको। उन आचार्योंकी भौगोलिक दृष्टि अफगानिस्तान, ईरान, मध्य एशिया और पाकिस्तानी भूमि

पर अधिक केन्द्रित रही है उत्तर प्रदेशपर-कम। इन बातोंका ध्यान रखकर विवेचन किया गया होता तो अधिक सार्थक होतों।

सवा दो पृष्ठोंका शुद्धिपत्र होते हुएभी प्रूफ आदिकी भूलें रह ही गयी हैं। उदाहरणार्थ पृष्ठ १४ की पादटिप्पणी २ देखें जो इस प्रकार है :

२. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ. ४२, 'पाणिनिने करती थी।

आशा है यदि पुस्तकका नया संस्करण कभी निकलेगा तो अधिक परिश्रम किया जायेगा और वास्तविक 'परिक्रमा' द्वारा संकलित सामग्रीका ही समावेश किया जायेगा। □

## प्रशासन

### लोक प्रशासन एवं प्रबन्ध

सम्पादक : एस. सी. मेहता

समीक्षक : डॉ. हरिश्चन्द्र

इस सम्पादित ग्रन्थमें ५१ लेख निबन्ध हैं जिन्हें तीनके अतिरिक्त विद्वान् अध्यापकोंने लिखा है। स्वयं सम्पादककी सात रचनाएं सन्निविष्ट हैं। पुस्तकके प्रणयन-प्रकाशनका प्रधान उद्देश्य राजस्थान प्रशासनिक सेवाके प्रतियोगी परीक्षार्थियोंको प्रभावी पाठ्यक्रमानुसार लोक-प्रशासन विषयक महत्त्वपूर्ण सामग्रीका संहत रूपमें उपलब्ध कराना बतलाया गया है। परिशिष्ट-१ के पन्ने पलटनेपर इस मंतव्यकी पुष्टि हो जाती है। इस प्रकार ग्रंथ एक सीमित पाठक-वर्गकी अपेक्षा-पूर्ति करता है। यह बात और है उसे दूसरे लोग

भी पढ़ें।

प्रतिस्पष्टात्मक चयनमें प्रत्याशियोंकी योग्यताका मूल्यांकन बहुत सचेत होकर और भेदाभेद-दृष्टिको निर्दोष करके होता है न केवल प्राप्त उत्तरोंकी गुणवत्ता मापनका आधार बनती है। बल्कि प्रतिभागियोंकी तुल्य-धान्य-वियोजन-क्षमता निर्णायक भूमिका निवाहती है। घिसे-पिटे उपागमसे काम नहीं चलता। प्रस्तुत लेखोंके सम्बन्धमें सम्पादककी स्वीकारोक्ति है कि वे सबके-सब उच्च-स्तरीय नहीं हो पाये हैं। यह बात थी तो निराशाजनक रचनाओंको समुच्चयमें स्थान क्यों दिया गया ? ऐसा उद्यम प्रतियोगियोंके हितमें नहीं कहा जा सकता। जहां सम्मिलित कीगयी रचनाओंमें सिद्धांत-पक्षका प्रायः सुन्दर विवेकन हुआ है वहां व्यावहारिक क्षेत्रमें (विशेषकर भारतीय संदर्भमें) वे मात्र परिचयात्मक होकर रह गयी हैं। समस्याओंकी प्रकृति, उनके स्वभाव और समाधानकी व्याख्या करते समय तल-स्पर्शनकी चेष्टा यदा-कदा ही की गयी है। अधिकतर पल्लव-ग्राहिताका अनुगमन हुआ है।

कहीं-कहीं अपूर्ण, अस्पष्ट और अपरिशुद्ध सूचनाएं

१. प्रका. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, ए-२६/२, विद्यालय मार्ग, तिलकनगर, जयपुर-३०२००४। पृष्ठ : १४४; रायल, ६०; मूल्य : ६३.०० रु. (पेपरबैक)।

'प्रकर'—फरवरी ६२—४२



दी गयी हैं। उदाहरणार्थ 'लाल कीताशाही' (पृ. ६१७) के अजीबो-गरीब अभिधानका रहस्य उद्घाटित नहीं किया है। 'वज्र' (पृ. ६१८) की व्युत्पत्ति अधूरी दी है। मुगल साम्राज्यकी सरकार वर्तमान जिलोंकी तरह थी—'फौजदारका कार्य था' (पृ. ४१७) से तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था स्पष्ट नहीं हो पाती। न तो मुगलकालीन प्रशासनिक इकाईकी सरकारको 'जिले' से समीकृत किया जा सकता है और न 'सरकार' का राजस्व अधिकारी 'आमिल' होता था। काबुल प्रांतकी संवाद (स्वात) 'सरकार' विम्बर, संवाद (स्वात) और वजीर नामक जिलोंसे मिलकर बनी थी। अन्य प्रदेशोंमें 'सरकार' का विभाजन 'परगनों' में हुआ था। सरकारके राजस्व अधिकारीको 'अम्लगुजार' और परगनेमें उसकी प्रतिमूर्तिको 'आमिल' कहा जाता था। 'फौजदार' 'सरकार' का प्रशासनिक अधिकारी होता था। परगनोंकी देखभालके लिए 'नायक-फौजदार' नियुक्त किये जाते थे। प्रांतगतिको 'नवाब' या 'नाजिम' कहते थे, जिसके लिए 'मूयदार' शब्द भी चल पड़ा था।

ब्रिटिश सरकार कुलीन परिवारोंके नवयुवकों (पृ. ५६८) की खोजमें नहीं रहती थी। आई. सी. एस. में भर्ती होनेके लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी ओर से विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी—'हाफ ए डजन यूथ्स बाफ मीन पेरेस्टेज हू राइट गुड हैन्ड्स एण्ड शैल बी विलिंग टु बी एम्प्लाएड अपान आल आकेजन विद-बाउट मरमरिंग'। यह विचार भ्रामक है—'ब्रिटिश कालमें आई. सी. एस. का जो गौरव व महत्त्व था वह स्वतंत्र भारतमें आई. ए. एस. ने ग्रहण कर लिया। स्वामी होनेकी भावना आज भी आई. ए. एस. में विद्यमान है।' (पृ. ४६८) पहली बात यह है कि देशके स्वाधीन होनेके बाद भी आई. सी. एस. के सदस्य कार्यरत रहे। उनका जोर आई. ए. एस. का संवर्ग मिला अवश्य दिया गया। दूसरा तथ्य यह है कि अंग्रेजी राजमें आई. सी. एस. अधिकारी जनसाधारणको सम्बोधित पत्र 'यौर्स मोस्ट ओबीडियेंट सर्वेंट' से समाप्त करता था। स्वदेशी शासनमें आई. सी. एस. और आई. ए. एस. अधिकारी 'यौर्स फेथफुली' का प्रयोग करने लगे। सामान्यतः किसी बड़े-से-बड़े नौकरशाहने अपनेको जनताका स्वामी न पहले समझा और न वह आज समझता है। उसके व्यवहारमें जो अहंकारकी लक्ष्मण मिली या अब भी मिलती है, वह उसकी असा-

धारण राजभक्तिका परिणाम है। वर्तमान सरकार भी नौकरशाहीकी अपने प्रति (न कि जनताके प्रति) प्रतिबद्धतापर बल देती है, और जब कभी वह इस अपेक्षाकी पूर्ति करता दिखायी नहीं पड़ता उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। संकटकी घड़ीमें भी जनाभिमुखी राजभूतको लोक-समर्थन प्राप्त नहीं हो पाता क्योंकि भारतकी राज-पद्धति श्रेणितंत्रपर आधारित है, न कि लोकतंत्रपर।

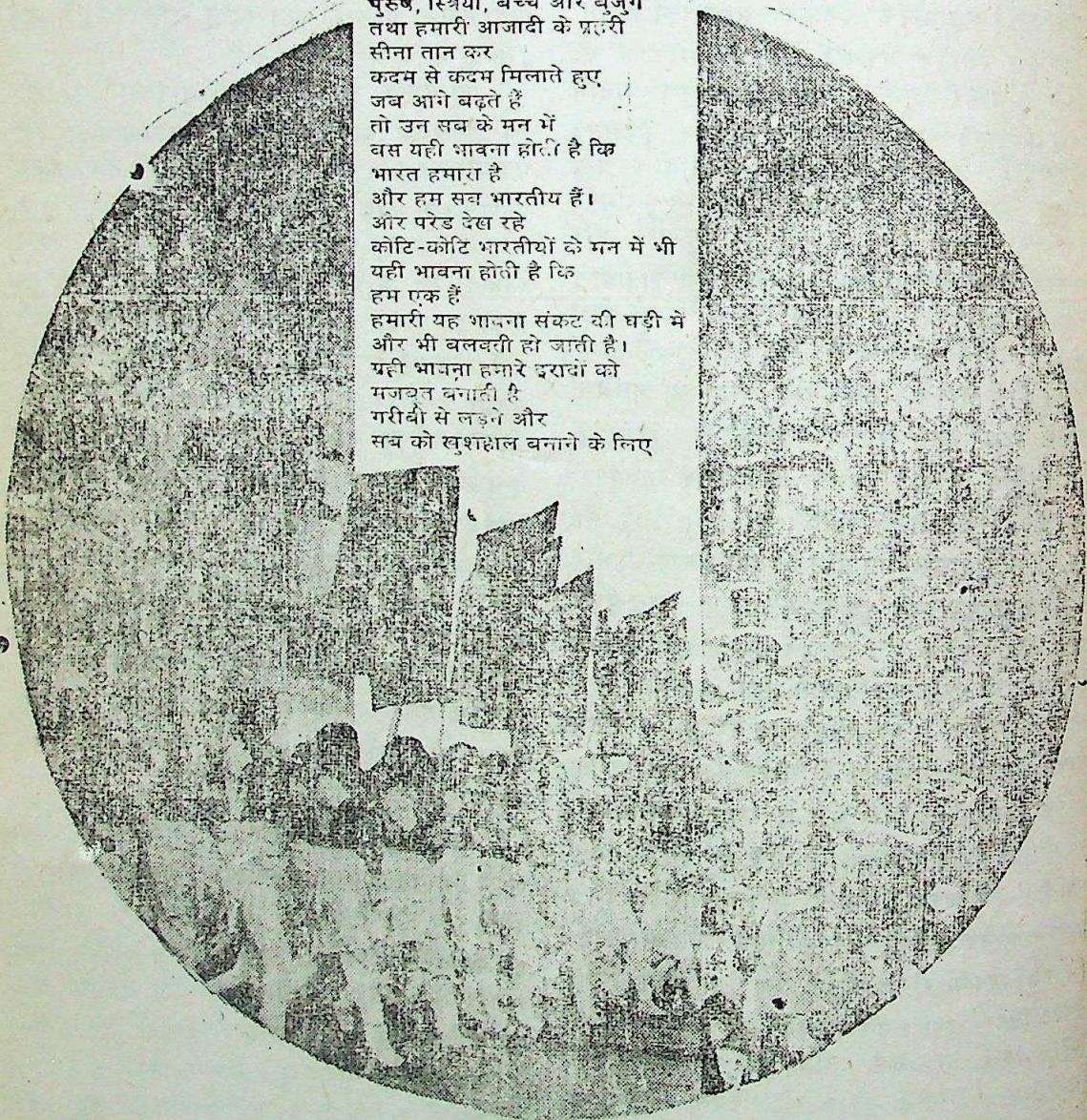
यह सुझाव कि 'एक डाक्टरी पास आई. ए. एस. को प्रशिक्षणके बाद स्वास्थ्य-चिकित्सा-दवा-नियंत्रण एवं परिवार कल्याण आदि विभागमें ही अलग-अलग पदोंपर रखा जाये' (पृ. ५७२) न तो युक्तिसंगत है और न व्यावहारिक। यदि एक भिषकको अपने व्यावसायिक ज्ञानकी श्रेष्ठताका इतनाही विश्वास है तो वह लोकसे हटकर आई. ए. एस. की वीथिकाको क्यों पकड़ता है? उसने संपादनका उपयोग विशेषज्ञ बनकर जनताकी सेवा करनेके लिए किया था न कि सामान्यवादीका अभिनय-प्रदर्शनार्थ। किन्हीं अर्थोंमें ऐसा व्यक्ति समाज-निरपेक्षकी भूमिका निवाहता है। आज भी देशमें डाक्टरोंकी भारी कमी बनी हुई है। इसके अलावा चिकित्सा विभागके उच्च पदधारी अपने डाक्टरी ज्ञानका प्रयोग न करके प्रायः उन्हीं कार्योंमें ऊर्जाका व्यय करते हैं जिनके निष्पादनार्थ सामान्यवादी अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं। कभी-कभार जब किसी कौशलके प्रदर्शनका अवसर आता है तो ऐसे धुरंधर लोग 'अभ्यास न रहने' का बहाना करके पलायन कर जाते हैं।

सामान्यवादी और विशेषज्ञका वृथा-विवाद क्लेशकारी वर्ग-चेतना और एकच्छत्र-राज्यमूलक प्रवृत्तिकी देन है, जो लोक-सेवाओंमें दिनोदिन बढ़ती जाती है। इसे स्वार्थ-सिद्धिके लिए जन-प्रतिनिधि बराबर उत्प्रेरित करते रहते हैं। प्रशासनका ध्येय समाजके अंग-उपांगमें समन्वय और सामंजस्य बनाये रखना होता है। यह दायित्व सहज-बुद्धि-सम्पन्न व्यक्ति जितनी सफलतापूर्वक निवाह सकता है उतना विशेषज्ञ नहीं, क्योंकि जहां सामान्यवादी मार्ग बदलना जानता है वहां तथाकथित प्रवर एकही पथसे चिपके रहनेकी शिक्षा पाये होता है। यह भी नहीं भुलाया जा सकता कि प्रशासनिक सेवाओंमें अधिकतर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के स्नातकही प्रवेश पाते हैं। सेवाके आरम्भिक कालमें



# गणतंत्र की भावना

पुरुष, स्त्रियाँ, बच्चे और वृजुर्ग  
तथा हमारी आजादी के प्रहरी  
सीना तान कर  
कदम से कदम मिलाते हुए  
जब आगे बढ़ते हैं  
तो उन सब के मन में  
बस यही भावना होती है कि  
भारत हमारा है  
और हम सब भारतीय हैं।  
और परेड देख रहे  
कोटि-कोटि भारतीयों के मन में भी  
यही भावना होती है कि  
हम एक हैं  
हमारी यह भावना संकट की घड़ी में  
और भी बलवती हो जाती है।  
यही भावना हमारे इरादों को  
मजबूत बनाती है  
गरीबी से लड़ने और  
सब को सुशासन बनाने के लिए



गणतंत्र की भावना  
चुनौतियों पर विजय का संकल्प

वे सब उ  
कायोंका  
का बहुधा  
सामान्य  
कुल  
प्रकाशन  
विक्रि उप  
सकेंगे।

एक प्रश्न  
'ध्रुव'

प्रसा  
स्वामिनी'  
प्रस्तुतिकी  
में प्रकाशि  
टिप्पणीके  
कहना चा  
संवैधिक  
प्रस्तुतिका  
रस्तोगीभी  
कर रहीहैं  
है। एक द  
समय लगा  
प्रस्तुतियाँ  
करनीहै तो  
गिरी  
स्वामिनी'  
नाटक लगे  
करे और स

91/603



वे सब अपने-अपने विषयके विशेषज्ञ होते हैं। प्रशासनिक कार्योंका स्वरूपही ऐसा है जो वे अपने विशिष्ट ज्ञान का बहुधा उपयोग नहीं कर पाते और देर-सवेरसे सामान्यवादी बन जाते हैं।

कुल मिलाकर ग्रंथ-रचनाका उत्क्रम और उसका प्रकाशन सार्थक रहा है किन्तु इस सार-संग्रहकी वास्तविक उपयोगिताका अनुभव इसके लाभार्थी ही कर सकेंगे। भाषा सरल, सुबोध है और शैली सुग्राह्य।

पुस्तकके अन्तमें दी गयी पारिभाषिक शब्दावलीका क्रम उलट गया है। जब ग्रंथ हिन्दीमें लिखा गया है तो हिन्दी शब्दोंके अंग्रेजी पर्याय दिये जाने चाहिये थे न कि अंग्रेजीके हिन्दीमें, यह शायद असावधानीवश हो गया है। एक बात और खटकती है। पुस्तकमें भारतीय परम्परा और विचारकोके मतोंको प्रकट करनेमें कृपणतासे काम लिया गया है। □

## दूरदर्शनी धारावाहिक

### एक ग्रन्थ दृष्टिकोण

### ‘ध्रुवस्वामिनी’

—डॉ. भानुदेव शुक्ल

प्रसादजीके अन्तिम प्रकाशित नाटक ‘ध्रुवस्वामिनी’ की हम लोगोंने दूरदर्शनी प्रस्तुति देखी थी। प्रस्तुतिकी निर्देशिका डॉ. गिरीश रस्तोगीकी ‘प्रकर’ में प्रकाशित टिप्पणीभी पढ़ी। प्रस्तुति तथा इस टिप्पणीको ध्यानमें रखते हुए टिप्पणीमें अपनी बात कहना चाहूंगा। देशके सभी दृश्य-माध्यमोंमें दूरदर्शन सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है। इसलिए इसकी प्रत्येक प्रस्तुतिका बड़ा महत्त्व है। साथही, डॉ. गिरीश रस्तोगीभी हिन्दी रंगमंचके विकासमें महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। दूरदर्शनी परदेसे शायद वे पहली बार जुड़ी हैं। एक दर्शकके रूपमें खटकनेवाली कमियोंपर अधिक समय लगा रहा है ताकि दूरदर्शनके दर्शकोंको वे वैसी प्रस्तुतियाँ दे सकें जैसी रंगमंचपर दे रही हैं। प्रगति करनी है तो ‘निन्दक नियरे राखिये।’

गिरीशजीने टिप्पणीमें प्रकट किया है—“‘ध्रुवस्वामिनी’ के सन्दर्भमें मेरी पहली शर्त यही थी कि वह नाटक लगे—नाटककी दृश्यात्मक प्रकृतिको प्रतिष्ठित करे और साथही दूरदर्शनकी माध्यमगत विशेषताओं

और शर्तोंको भी अपने भीतर समाहित करता चले, वह कहीं ‘धारावाहिक’ या ‘फिल्म’ न लगे।” प्रसादके इस नाटकको धारावाहिक बनायाजा सकता है, इसकी हमें कोई आशंका नहीं है। ‘दूरदर्शनकी माध्यमगत विशेषताएँ’ क्या हैं? ‘दूरदर्शन मुख्यतः क्लोज-अप मीडिया है।’ क्लोज-अप, लॉग-शाट आदि कैमरेकी युक्तियाँ दूरदर्शन तथा फिल्मोंकी महत्त्वपूर्ण युक्तियाँ हैं। क्या ‘ध्रुवस्वामिनी’ की दूरदर्शनी प्रस्तुतिमें इनके समुचित उपयोग हुए हैं? हमें ऐसा नहीं लगता है।

प्रस्तुतिमें ‘कैमरेकी कुशल युक्तियाँ शायदही कहीं दिखायी दें। स्वगत-कथनोंके अवसरोंपर क्लोज-अपके उपयोग प्रस्तुतिके स्वरूपको चमका देते। इसमें विभिन्न कोणोंसे चित्रांकनभी नहीं हैं। ‘नाटककी दृश्यात्मक प्रकृति’ की रक्षा स्थूल रंगमंचसे बांधकर ही हो, ऐसा नहीं है। ‘अंधायुग’ की प्रस्तुतियाँ रेडियोपर, खुले मंच पर तथा रंगशालाओंमें—अनेक रूपोंमें हुई हैं और नाटककी आन्तरिक दृश्यता सुरक्षित रह सकी है। स्थूल मंच-विधान तथा दृश्यताको सीमित कर देनेपर किसी भी नाटकके साथ, विशेषकर सूक्ष्म अनुभूतियोंसे युक्त नाटकके साथ न्याय नहीं कियाजा सकता। ‘क्लोजअप-मीडिया’को अपनाते हुए उसकी कैमरेकी क्षमताओंका उपयोग न करना स्मरण कराता है एक कहावत—‘गुड़ खाना लेकिन गुलगुलोंसे परहेज करना।’

‘प्रकर’—फाल्गुन २०४८—४५



दूरदर्शन की प्रस्तुतिको देखनेके तत्काल पश्चात् मैंने गिरीशजीके पास अपनी तात्कालिक प्रतिक्रिया लिख भेजी थी। इसमें एक बहुत साधारण-सी आपत्ति थी—चन्द्रगुप्तकी तुलनामें अधिक लम्बे कदकी दिखायी देने वाली ध्रुवस्वामिनीपर। सम्भवतः गिरीशजीने उसका उत्तर दिया है—‘वह लम्बी थी—मेरे लिए यह दोष नहीं था और न मैं यह आवश्यक मानती हूँ कि रामगुप्त-चन्द्रगुप्तसे उसकी लम्बाई नाप तोलकर कोई नाटक को देखे।’ नाटककी परीक्षा अभिनेताओंके कदसे नहीं, अपितु उनके अपने अभिनयोंसे ही हुआ करता है। हाँ, उसकी प्रस्तुतिमें ये बातें उठ सकती हैं। किन्तु अमृता जयपुरियाका कद सामान्य कदवाले चन्द्रगुप्तके साथ बेमेल होगया। इस बातको प्रकट करनेका यह आशय कहाँसे होगया कि अमृताके अभिनयमें कमी बतायी गयी है? ‘मृगनयनी’ की प्रस्तुतिपर लिखते हुए मैंने पल्लवी जोशीकी विलक्षण अभिनय क्षमताका उल्लेख करते हुए भी उसको निम्नीके रोलके लिए अनुपयुक्त माना क्योंकि न तो वह अद्वितीय सुन्दरी है (कमसे कम मुझे तो नहीं लगी) और न ही उसकी अत्यन्त क्षीण काया उपन्यासकी लड़ते भैंसोंके सींग पकड़कर अलग कर देने वाली नायिकाका भाभास देती है। ऐसी स्थितिमें उस उत्तम अभिनेत्रीको इस रोलके अनुपयुक्त कहना ही होगा। अमृता जयपुरियाके लिए तो प्रसंगवश ही मत व्यवत किया गया था। स्वयं गिरीशजीने भी कद सम्बन्धी बेमेल स्थितिको दूसरे ढंगसे स्वीकारकर ही लिया है।

दूरदर्शनकी प्रस्तुतिका सबसे महत्वपूर्ण सम्बन्ध मण्डी हाऊसका है। प्रसादजीके जन्म-शताब्दी वर्षके समाप्त होनेके बाद प्रसादके नाटककी स्वीकृति देना तथा केवल चार दिनोंमें नाटकके चित्रीकरणको सम्पन्न करनेकी अनुमति देना—मण्डी हाऊसमें स्थापित महा-प्रभुओंकी इस कार्य-पद्धतिपर क्या कहा जाये? ‘बस समझु मनहि मन रहिए’। जयशंकर प्रसाद कोई राज-नेता तो थे नहीं कि जिनके लिए व्यवस्थित कार्य-योजना बनायी जाती। इस सन्दर्भमें प्रसादके प्रेमीजन गिरीशजीको धन्यवाद देना आवश्यक समझते हैं कि उन्होंने न जाने कितने प्रयास करके कुछ-न-कुछ तो किया ही। तथापि, मनोज वसुके नाटक ‘सा जानो बागेर’ के थोड़े संशोधनोंके साथ हिन्दी अनुवादको, जयवन्त दलवीके मराठी नाटकके अनुवाद ‘बैरिस्टर’ को, शंकर ‘प्रकर’—फरवरी ६२—४६

शेपके नाटक ‘आधी रातके बाद’ को दूरदर्शनपर जितनी सफलताके साथ प्रस्तुत किया जा चुका है उसको ध्यानमें लानेपर ‘ध्रुवस्वामिनी’ की प्रस्तुतिसे विशेष संतोष नहीं हुआ है।

प्रस्तुतिमें हमें सबसे सहज अभिनय शम्भु तरफदार (रामगुप्त) का लगा। अन्य अभिनेताओंको सम्भवतः अदृश्य दर्शकके समक्ष अभिनय करनेमें कठिनाईके अनुभव हुए हैं। अमृता जयपुरियाका पहला कथन कम सहज था। बादमें वह तनावमुक्त होकर अभिनय कर सकी है। चन्द्रगुप्तका अभिनय करनेवाले अभिनेताको भी एकाग्र स्थलपर तनावसे ग्रस्त अनुभव किया है। स्वगत के लिए ऊँची आवाज रंगमंचीय अभिनयमें उपयुक्त हो सकती है, दूरदर्शनके ‘क्लोज अप’ के मीडियाके लिए यह अस्वाभाविक तथा खटकनेवाली हो जाती है। दुर्भाग्यवश (या अकुशलतावश) कैमरेने स्वगतके अवसरोंपर अभिनेताके भाव-प्रदर्शनके अवसरोंपर साइड-पोज ही दिये हैं। सामनेसे मुखाकृतिको निकट लानेके कोई उपक्रम नहीं दिखायी दिये हैं। कुल मिलाकर प्रस्तुति अत्यन्त सामान्य होकर रह गयी क्योंकि यह रंगमंचीय तैयारीसे अपने आपको मुक्त नहीं कर सकी। □

## राजनीतिक श्रेणियोंका केन्द्र-बिन्दु चाणक्य

—माधव पण्डित

कांग्रेसी कल्चर और वामपंथी कल्चर दोनोंकी पृष्ठभूमि यूरोपसे जुड़ी है। कांग्रेसी कल्चरका निर्माण मुख्य रूपसे अंग्रेजीभाषी देशोंके चिन्तन, उन्हीं द्वारा प्रचलित शिक्षा-प्रणाली और उन्हींके राजनीतिक जीवन एवं व्यवहारोंसे हुआ है। जबकि वामपंथी कल्चर अधिनायकवादी यूरोपके पूर्वी भागसे आयात की गयी है। दोनोंकी आधारभूमि देशसे बाहर है, परन्तु इस देशमें पैर रखनेके बाद उन्होंने अपने प्रचार-साधनों द्वारा एवं राजनीतिक कौशलसे जन-समर्थन जुटानेके लिए धर्म-निरपेक्षता, प्रगतिशीलता, जनवाद, आधुनिकता जैसे नारे गढ़े तो साथमें हीवेके रूपमें ‘साम्प्रदायिक’, प्रतिक्रियावादी जैसे लेबल भी तैयार किये अपने विरोधियोंपर चिपकानेके लिए। एक ओर ‘हिन्दुत्व’ को व्यंग्य रूपमें उछालना शुरू किया तो राजनीतिक-हित-



सिद्धि के लिए इमामों और मुल्लाओं की चरण-वन्दना भी साथमें जोड़ली। इस राजनीतिक नटबाजी का स्थिरीकरण और केन्द्रीयकरण इस रूपमें किया गया कि इमामों और मुल्लाओं के मजहबी प्रभुत्व को राजनीतिक हित-साधना के लिए काममें लाया जा सके। इसलिए राजनीतिमें 'साम्प्रदायिक' वह है जो इन कठ-इमामों और कठमुल्लाओं के फतवों, प्रवचनों, प्रचारों और संकेतों का विरोधी है। यह एक ऐसी कसौटी बना ली गयी है, जिससे राजनीति से बाहर के क्षेत्र—इतिहास, संस्कृति आदि—भी अछूते नहीं रहे।

दूरदर्शन के धारावाहिक 'चाणक्य' को भी इसी कसौटी पर कस रहे हैं आज के यूरोपीय कल्चर के अनुकरणिये—नकलची—जो लगभग पिछले दो सौ वर्षों में अस्तित्वमें आये हैं—ढाई हजार वर्ष से भी पूर्व के राजनीतिक घटनाचक्र को बदलने के लिए। अतीत के उस राजनीतिक घटनाचक्र के पात्रों को, जिन्होंने विदेशी आक्रमण को भारत की सीमाओं पर रोकने के लिए अपने कूटनीतिक कौशल और सशस्त्र प्रत्याक्रमणों से सफलतापूर्वक रोका, आक्रान्त भूमिको पुनः अपने अधिकारमें लिया, योजनाबद्ध रूपमें विभिन्न खण्डों-क्षेत्रों-जनपदों में विभाजित देश को लुप्त सोवियत संघ के एशियायी भाग के मध्य, वर्तमान अजरबैजान के बाकू क्षेत्र से दक्षिण भारत के मध्य तक एक ही राज्य-सत्ता की स्थापना कर दी। जबकि, साम्प्रदायिकता के नारे का झंडा फहराने वाली अंग्रेजों के सहयोग से स्थापित धर्मनिरपेक्ष राज्य-सत्ता ने अपने चवालीस वर्ष के शासनकाल में, किसी भारतीय भाषामें नहीं अपितु अपने अंग्रेज शासकों की भाषामें एवं उन्हीं से उधार लेकर जिन चिन्तनों और मान्यताओं का संविधान बनाया, उसी के प्रत्येक मूल सिद्धान्तों को ही हास्यास्पद बनाते हुए नकल-भ्रष्टाचार-तस्करी आदिका आश्रय लेते हुए आतंकवाद को जन्म दिया और देश के विखण्डन की स्थिति उत्पन्न कर दी है। एकता और अखण्डता का नाम सुनकर 'दोड़ो-भागो' का आयोजन और अभ्यास करने वाले ये सत्ताधीश अपना रक्त देकर देश को एकीकृत करने वाले चाणक्य के अनुयायियों की उद्दाम एवं आन्तरिक भावनाओं, पराक्रम और शौर्य को सम्मानित करने के स्थान पर अपने विरोध तथा हास्य-व्यंग्य वाणों से उन्हें अपमानित कर रहे हैं। आज के सत्ताधीशों की इस मनोवृत्तिको ठीक से हृदयंगम करने के लिए उनके

पारम्परिक इतिहास पर दृष्टि डालना उपयुक्त होगा, क्योंकि परम्परा से ही वे प्रत्येक आक्रान्ता—चाहे वे मुस्लिम हों या अंग्रेज ईसाई—की सेवामें उपस्थित रहे, उन्हीं के जीवनयापन की पद्धतिको अपनाते रहे, उन्हीं की शिक्षण पद्धतिमें दीक्षित होते रहे, उन्हीं के संस्कारों को आत्मसात् करते रहे। इस प्रकार की मुंशी-गिरी ही उनके जीवन का ध्येय रही। वर्तमान सत्ताधीशों और उनकी पूर्व वंशपरम्परा ने इसी निष्ठा के पुरस्कार स्वरूप सत्ता प्राप्त की, वे रक्त-बलिदान द्वारा देश को स्वतन्त्र कराने और सम्पूर्ण देश को एक सूत्रमें बांधने का त्याग-तपस्या का जीवन बिताने का चाणक्य का आदर्श स्वीकार करने की स्थितिमें नहीं हैं, वे तो अपने पूर्व स्वामियों से उत्तराधिकारमें प्राप्त उपभोक्तावादमें रचे-बसे हैं। इस पृष्ठभूमिको ध्यानमें रखते हुए इन उपभोक्तावादियों के रंग-ढंग को समझा जा सकता है। उनकी विरोध की प्रवृत्ति और उसके विपरीत 'चाणक्य' धारावाहिक से स्वतः उद्भूत संदेश के भारतीय मन को अभिभूत करने की शक्त को हृदयंगम किया जा सकता है।

यह धारावाहिक चाणक्य और उससे पूर्ववर्ती देश की, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक स्थितिका जो चित्र प्रस्तुत करता है, वह आज के प्रत्येक भारतीय को रोमांचित करता है। वह भारतीय उस श्रेणी का भी हो सकता है जो आज भी ऋचाओं का सस्वर पाठ करता है, जीवन की प्रेरणा ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, दर्शन-शास्त्रों, स्मृतियों आदि से प्राप्त करता है। आज के जातिवाद के आधार पर समाज को विभाजित करने के प्रयत्नों के बीच उन पारम्परिक प्रेरणा-स्रोतों से पुनः पूरे समाज को सांस्कृतिक-सामाजिक-ऐतिहासिक-राजनीतिक स्तर से गठित करने के अपने प्रयत्नों में इस धारावाहिक से संकेत ग्रहण करता है। वह पूरे समाज के स्वर में 'असतो मा सद्गमय' की कामना को धारावाहिक के साथ दोहराता है। सम्पूर्ण मानव-समाज में शान्ति स्थापित करने के विभिन्न उद्घोषों के साथ एकाकार होता हुआ धारावाहिक की गतिके साथ अपनी वार्णा को स्वर देता चलता है। यह सब आज के सत्ताधीशों, भ्रष्टतन्त्र-तत्त्व-तत्त्व-द्विवचनीतन्त्र के उपभोक्ता अधिपतियों के अनुकूल नहीं। वे इस धारावाहिक द्वारा कैसे विश्व-जनीन धारणा और विश्वास को पल्लवित होने को अनुमति दे सकता है जिससे समाज प्रकाशोन्मुख गतिशीलता



के लिए प्रयत्नशील होनेकी प्रेरणा प्राप्त करताहो, खण्डितको अखण्ड बनानेका संकल्प लेताहो, सुख-शांति के मन्त्रोच्चारके साथ अभ्यर्थना करताहो । वस्तुतः धारावाहिक उस सांस्कृतिक वातावरणके निर्माणकी भावना जागृत करनेका प्रयत्न है जो मात्र मानवीय है । मानवताको चाहे देवत्वकी ओर ले जानेका यह प्रयत्न न हो, पर आसुरी वृत्तियों और कृत्योंसे संघर्ष करनेकी जो प्रेरणा भारतीय ग्रन्थोंमें है उस संघर्षकी भावनाको जागृत करनेकी दिशाका निर्देश करताहै । यह दिशा कांग्रेस-कल्चर, वामपंथी कल्चर और सत्तासीन प्रभुओं को स्वीकार नहीं है क्योंकि उन्होंने अपने लिए देशके मात्र एक मजहबको ही परिपुष्ट करने और उसके संरक्षण-प्रसारणका जो संकल्प लिया हुआहै और उस संकल्प-पूर्तिके लिए उन्होंने जिस राजनीतिक भ्रमजाल की गत चवालीस वर्षोंमें सृष्टि कीहै, उसे वे किसीभी मूल्यपर भंग होने देनेके लिए प्रस्तुत नहीं हैं ।

मूल 'चाणक्य' धारावाहिककी अवतक की कथा-धारा इतिहास सम्मत है । यह उस विकृति-दोषसे भी मुक्त है जिन्हें दूरदर्शनी धारावाहिकों—टीपू सुलतान और तमस—में प्रखरताके साथ उभारा गयाथा । दूरदर्शने टीपूको 'स्वतन्त्रता-सेनानी' बना दिया और मूल 'तमस' उपन्यासको रूपान्तरितकर पाकिस्तानसे लुटे-पिटे आये शरणार्थियोंकी सत्ताधीशोंकी प्राणप्रिय शब्दावलीमें 'साम्प्रदायिक' घोषित कर दिया और मूल उपन्यासका ही अवमूल्यन कर दिया । 'चाणक्य' के कथा-सूत्रोंमें उन्हें साम्प्रदायिकताके दर्शन नहीं हुए तो 'भगवे' रंग और झण्डेको साम्प्रदायिक घोषित कर

दिया, यद्यपि इतिहासके शोधार्थी भगवे रंगको उस युगका प्रतीक रंग मानतेहैं । 'भगवे झण्डे' और 'हर हर महादेव' जैसे लोक-प्रचलित प्रतीकोंको धारावाहिक में से निकालनेके साथ जयशंकर प्रसादके 'हिमाद्रि शृंगसे गीतको भी काट दिया गया । ऐसा आभास मिलताहै कि कांग्रेस कल्चर और प्रशासनिक कल्चर दूरदर्शनमें एकाकार हो गयीहैं । इसीलिए आकाशवाणी और दूरदर्शनको प्रशासनिक एकाधिकारोंसे मुक्त कर दोनों संगठनोंको स्वतंत्र वातावरणमें सांस लेने देनेकी मांग की जातीहै ।

'चाणक्य' धारावाहिकसे एक असन्तोष भी है, वह शिल्पिक स्तरपर है । ऐसा प्रतीत होता है कि दूरदर्शनी कैमरामैन अभी प्रयोगोंकी स्थितिसे उभरे नहीं हैं । सिनेमाई क्षेत्रोंके कैमरों द्वारा कथा-प्रसंगों, परिवेश और भावनाओंको चित्रित करनेमें जिस कोशलका प्रदर्शन किया जाताहै, उससे दूरदर्शनके कैमरे अथवा दूरदर्शनके लिए धारावाहिक प्रस्तुत करनेवाले अभी पीछे हैं । कभी-कभी तो कैमरोंकी पकड़ कैमरामैन और निर्माताको नौसिखियेपन और असावधानताकी स्थितिमें ला देतीहै, जैसाकि 'ध्रुवस्वामिनी' में देखनेको मिला । इस शिल्पिक स्तरमें तो सुधार किया ही जा सकताहै । जड़ कैमराभी सजीव 'भाव-प्रवण' हो सकताहै यदि कैमरामैन प्रसंगकी भाव प्रवणताको हृदयंगम करनेमें समर्थ हो और उसे धारावाहिकका सजीव भागीदार बना सकताहै, पर प्रशासनिक अधिकारी कैमरामैनको प्रोत्साहन दें तभी तो ! □

## लघु विज्ञापन दर

चौथाई पृष्ठ आधा कालम अथवा पाँच सेंटीमीटर दो [कालमा]

एक बार

₹ ००.०० रु.

तीन बार

₹ ६५.०० रु.

छः बार

₹ १४०.०० रु.

बारह बार

₹ २७०.०० रु.

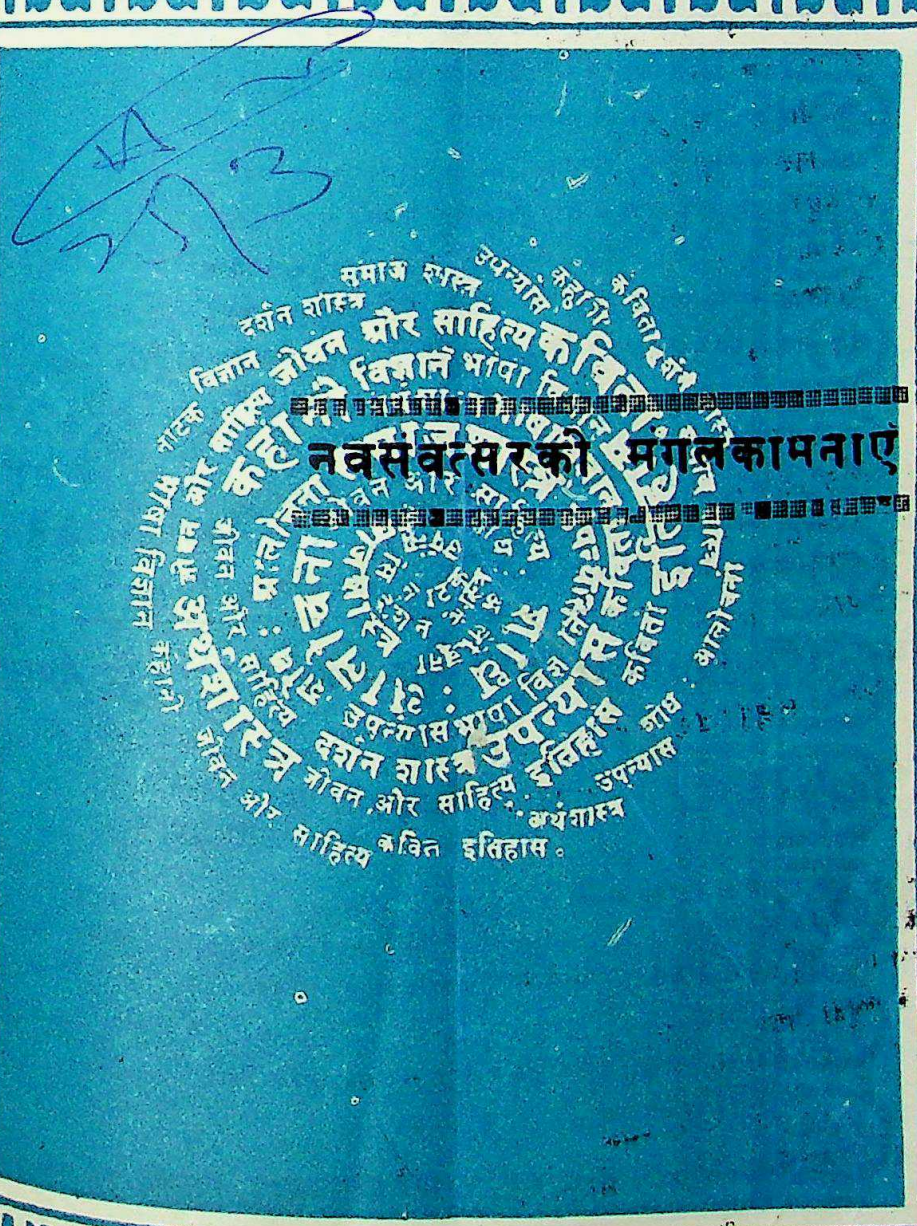
अबस्थापक : 'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर'—फरवरी '९२—४८



# प्रकर

चंद्र : २०४६ [विक्रमाब्द] :: मार्च : १९६२ [ईस्वी]





# प्रस्तुत अंक के लेखक-समीक्षक

- ☐ डॉ. आदित्य प्रचण्डिया, मंगलकलश, ३६४ सर्वोदयनगर, आगरा रोड, अलीगढ़—(उ. प्र.).
- ☐ डॉ. उत्तम भाई पटेल, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, वनराज आर्ट्स एवं कामर्स कॉलेज, धरमपुर—३६६०५०.
- ☐ डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, सिरौही—३०७०.
- ☐ डॉ. नरनारायण राय, गढ़बनली (पूर्णिमां)—८५४३२५.
- ☐ डॉ. प्रयाग जोशी, बी-३/१३, जेल गार्डन रोड, राय बरेली-२२६००१.
- ☐ डॉ. भगीरथ बड़ोले, सी-३८६ विवेकानन्द कालोनी, फ्रीगंज, उज्जैन—४५६००१.
- ☐ डॉ. भानुदेव शुक्ल, ४३ गौरनगर, सागर—४७०००३.
- ☐ प्रो. मधुरेश, ब्रह्मानन्द पाण्डेयका मकान, भांजी टोला, बदायूं—२४३६०१.
- ☐ डॉ. मान्धाता राय, नयी बस्ती, सकलेनाबाद, गाजीपुर—(उ. प्र.).
- ☐ डॉ. मूलचन्द्र सेठिया, ६/२७६, विद्याधर नगर, जयपुर—३०२०१५.
- ☐ डॉ. मय्युं गय उपाध्याय, वृन्दावन, राजेन्द्र पथ, धनबाद—८२६००१.
- ☐ डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ, हिन्दी विभाग, सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर—३१३००१.
- ☐ डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, ए-५/३, राणाप्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.
- ☐ डॉ. विपिनविहागे ठाकुर, बाई नं. १०, रोसड़ा (समस्तीपुर)—८४८२१०.
- ☐ डॉ. बीरेन्द्रसिंह, ५-अ १५, जवाहरनगर, जयपुर—३०९००४.
- ☐ डॉ. हरदयाल, एच-५०, पश्चिमी ज्योतिनगर, गोकुलपुरी, दिल्ली—११००६४.
- ☐ डॉ. हरिश्चन्द्र 'निरंकुश', संस्मृति, बी-११४६, इन्दिरानगर, लखनऊ—२२६०१६.

विश्वविद्यालयों / महाविद्यालयों / पुस्तकालयों के लिए अनिवार्य पत्रिका  
'प्रकर'

## शुल्क विवरण

<input type="checkbox"/>	प्रस्तुत अंक		६.०० रु.
<input type="checkbox"/>	वार्षिक शुल्क सह धारण डाकसे :	संस्था : ७०.०० रु.;	व्यक्ति : ६०.०० रु.
<input type="checkbox"/>	प्राजीवन सदस्यता :	संस्था : ७५१.०० रु.;	व्यक्ति : ५०१.०० रु.
<input type="checkbox"/>	विदेशों में समुची डाकसे एक वर्ष के लिए :	पाकिस्तान, श्रीलंका	१४०.०० रु.
	अन्य देश :		२००.०० रु.
<input type="checkbox"/>	विदेशों में विभाजित सेवासे (प्रत्येक देश के लिए)—एक वर्ष के लिए :		३३०.०० रु.
	दिल्ली में बाह्य के चैक में १५.०० रु. अतिरिक्त जोड़ें		

व्यवस्थापक, 'प्रकर', ए-६/४२, राणा प्रतापबाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर'— मार्च १९२



**प्रकाश**

[आलोचना और पुस्तक-समीक्षा मासिक]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार  
सम्पक : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग  
दिल्ली-११०००७.

वर्ष : २४

अंक : ३

चैत्र : २०४६ [विक्रमाब्द]

मार्च : १९६२ [ईस्वी]

**आलेख एवं समीक्षित कृतियां****सम्पादकीय**

दिग्भ्रान्त मणिपुरी आन्दोलन —

साधक और साहित्य

२

वि. सा. विद्यालंकार

जीवनधर्मिताके क्रान्त कवि : डॉ. हरिवंश राय बच्चन

५

डॉ. मूलचन्द सेठिया

विष्णु प्रभाकर—सम्पादक-द्वय : डॉ. विश्वनाथ मिश्र,

डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

१०

डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

माचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री [कृतियाँ-पृष्ठभूमि-परिचय]

१२

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक

अध्ययन : आलोचन

आस्था और सौन्दर्य—डॉ. रामविलास शर्मा

१७

डॉ. हरदयाल

नये कवियोंका पुनर्मूल्यांकन : भाग १, २—डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

१६

डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

रीतिकालीन साहित्य-शास्त्र कोश—डॉ. मानवेन्द्र पाठक

२३

डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

उपन्यास

प्रारब्ध - (बंगलासे अनूदित)—आशापूर्णा देवी

२४

प्रो. मधुरेश

जहाँ रोशनी है - तिलकराज गोस्वामी

२६

डॉ. मान्धाता राय

ग्याह लंबी कहानियाँ - चित्रा मुद्गल

२६

डॉ. भगीरथ बड़ोले

शहरके नाम - मृदुला गर्ग

३४

डॉ. विपिनबिहारी ठाकुर

पुरस्कृत विज्ञान कथा-साहित्य—यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

३६

डॉ. आदित्य प्रचण्डिया

काव्य

श्वेत शिखरोपर, इन्द्र धनुषका आठवां रंग—डॉ. दयाकृष्ण 'विजय'

३७

डॉ. जीरेन्द्रसिंह

मौन पर शब्द—प्रकाश मिश्र

४०

डॉ. प्रयाग जोशी

नयी घरती नया आकाश—सम्पा. डॉ. अम्बाशंकर नागर

४२

डॉ. उत्तम भाई पटेल

राक्षस—शंकर शेष

४४

डॉ. नरनारायण राय

अन्ततः—विवेकानन्द

४६

डॉ. भानुदेव शुक्ल

भारतीय ज्योतिर्विद

भास्कराचार्य—गुणाकर मुले

४८

डॉ. हरिचन्द्र



## स्वर : विसंवादी

# दिगभ्रान्त मणिपुरी आन्दोलन

देशके पूर्वांचल भाग मणिपुरमें गत कुछ वर्षोंसे यह आन्दोलन, उग्र आतंकवादी कार्योंके साथ, चल रहा है कि मणिपुरी भाषाको संविधानकी आठवीं अनुसूचीमें सम्मिलित किया जाये। इस मांगकी तथा इसके साथ आयोजित आतंकवादी कार्योंपर दृष्टि डालने से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि मणिपुरी मणिपुर राज्यकी राजभाषा और प्रशासनिक भाषा है। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह तथ्य है कि मणिपुरीकी यह स्थिति इस राज्यपर अंग्रेजोंके प्रभुत्वसे पहलेभी थी और अंग्रेजोंके समय (१८६१-१९४७) में भी बनी रही। ब्रिटिश प्रभुत्वके समाप्त होनेपर "मणिपुर राज्य संविधान अधिनियम १९४७" के लागू होनेपर स्वतंत्र भारतमें मणिपुरी और अंग्रेजी दोनों राज्यकी राजभाषाएं घोषित कर दी गयीं और "मणिपुर न्यायालय अधिनियम १९४७" के अन्तर्गत उच्च न्यायालयके अधीनस्थ सभी न्यायालयोंकी मान्य भाषाएं। यही स्थिति

यह भाषा किसी अन्य भारतीय भाषासे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। देशकी एक प्राचीन भाषा है और साहित्यिक विधाओं—काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध—की दृष्टिसे एक विकसित भाषा है।

ऐसी स्थितिमें मणिपुरी भाषाका संविधानकी आठवीं अनुसूचीमें अन्य भाषाओंके समकक्ष रूपमें स्थापित होनेकी आकांक्षा स्वाभाविक है। मणिपुरीभाषी आन्दोलनकारियोंकी मान्यता है कि देशकी अन्य भाषाओं के समकक्ष होनेपर भी उसे अनुसूचीबद्ध भाषाओंके समान सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं। ये सुविधाएं प्रशासनिक, न्यायिक और आर्थिक हैं। संवाद और आकाशवाणी-दूरदर्शनके राष्ट्रीय कार्यक्रमोंमें, केन्द्रीय प्रशासनिक सेवा में उसे विधिवत् स्थान नहीं मिलता। यह भी तर्क दिया गया है कि देशके भाषावैज्ञानिक तथाकथित वर्तमान चार भाषा-परिवारों—भारोपीय परिवार, द्रविड़ परिवार,

## चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे प्रारम्भ मंगलमय

## नवसंवत्सर २०४६ के अवसरपर शुभकामनाएं

देशके सभी राज्योंमें है। देशके अधिकांश माध्यमिक शिक्षा मण्डलों द्वारा इसे मान्यता प्राप्त है। अनेक विश्वविद्यालयोंमें उच्च उपाधियोंके लिए अध्ययनकी स्वीकृत भाषा है और मणिपुरीमें शोधप्रबन्ध लिखनेकी सुविधा प्राप्त है। आकाशवाणीके इम्फाल स्थित केन्द्रसे अठहत्तर प्रतिशत कार्यक्रम मणिपुरीमें प्रसारित होते हैं, गुवाहाटी और सिलचर केन्द्रोंसे भी इस भाषाके प्रसारण निरन्तर होते हैं। केन्द्र सरकारकी साहित्य अकादमी द्वारा प्रतिवर्ष मणिपुरी साहित्यके कृतिकारोंको सम्मानित और पुरस्कृत किया जाता है। गत दस वर्षोंमें सम्मानित और पुरस्कृत कृतियोंकी समीक्षाएं 'प्रकर' में प्रतिवर्ष प्रकाशित हुई हैं, इनके आधारपर मणिपुरी साहित्यकी स्तरीयताकी मुक्तकण्ठसे सराहना की गयी है। संविधानकी आठवीं सूचीमें परिगणित न होनेपर भी

तिब्बत-बर्मी परिवार और मुण्डा परिवार—में से मणिपुरीके तिब्बत-बर्मी परिवारकी महत्त्वपूर्ण भाषा होने के कारण आठवीं अनुसूचीमें प्रतिनिधित्वकी अधिकारिणी है, क्योंकि इस अनुसूचीमें मात्र ग्यारह भारोपीय और चार द्रविड़ परिवारकी भाषाओंका ही प्रतिनिधित्व है। यह बात भी बलपूर्वक कही गयी है कि मणिपुरीको मात्र भाषाके रूपमें बोलनेवालोंकी संख्या दस लाख है और व्यवहार रूपमें इस भाषाका प्रयोग करनेवाले लगभग पांच लाख हैं।

मणिपुरीकी उपर्युक्त स्थितिपर सामान्य दृष्टिपा करनेसे ही स्पष्ट हो जाता है कि यह एक संवैधानिक भाषा है, संविधान और अधिनियमोंके अन्तर्गत विकासकी सभी सुविधाएं प्राप्त हैं और इसी कारण यह मणिपुरके प्रशासन, न्याय और शिक्षा क्षेत्रकी भाषा



है। भाषा और साहित्यके विकासमें जो बाधाएं हैं, वे उसके आठवीं अनुसूचीमें परिगणित न होनेके कारण नहीं, अपितु इसलिए हैं कि ब्रिटिशकालमें और उससे पूर्व मणिपुरकी सहभाषा अंग्रेजी नहीं थी, बल्कि मात्र मणिपुरी ही राज्यकी भाषा थी। उस कालमें प्रशासनिक और न्यायिक निर्णयका सर्वोच्च स्थान 'राजा' हुआ करता था। उससे अपदस्थ होते ही 'स्वतन्त्र भारत' के ब्रिटिश-दास प्रभुओंने "मणिपुर न्यायालय अधिनियम १९४७" के अन्तर्गत मणिपुर राज्यपर अंग्रेजी लाद दी और उसे प्रथम स्थान दिया और मणिपुरीको गौण स्थान। जिस कला-संस्कृति और भाषा-साहित्यके कारण मणिपुरीका गौरवपूर्ण स्थान था, उसका मूल स्रोत अवरुद्ध होगया। कला-संस्कृतिके क्षेत्रमें अंग्रेजी भाषाके शासनमें रहते हुए किसी विकास अथवा प्रगतिका सम्मान-पूर्वक उल्लेख नहीं किया जा सकता, केवल यथास्थिति बनी हुई है। साहित्य क्षेत्रमें भी मणिपुरी साहित्यमें किसी नवीन चिन्तनके दर्शन नहीं होते। इस भाषाकी दृष्टिसे नवीनता केवल यह है कि अन्य भारतीय भाषाओंकी भांति यूरोपीय और मार्क्सवादी चिन्तनों, क्रान्तिकारी आन्दोलनों, नारोंको इस भाषामें भी दोहराया जाने लगा है। स्वतन्त्रता प्राप्तिके साथ उसने अंग्रेजीका जो प्रभुत्व स्वीकार कर लिया, उसने इस भाषाकी स्वतन्त्र चिन्तनकी आधारभूमिको नष्ट कर दिया, उन सब प्रभावोंको आत्मसात् करना शुरू कर दिया जो ब्रिटिश भारतके मन-मस्तिष्कमें अपना स्थान बना चुके थे और उन्हीं संस्कारोंको केवल ४४-४५ वर्षोंमें ग्रहण कर लिया। मणिपुरकी लोक निर्वाचित विधानसभाको १९७७ में अपना संकल्प पारित करते समय यह अवसर मिला था कि मणिपुर राज्यमें सन् ४७ तक मणिपुरीकी संप्रभुताको ध्यानमें रखते हुए राज्यकी भाषा मात्र मणिपुरी घोषित करनेकी मांग करती न कि अंग्रेजी की सहयोगी (अर्थात् गौण) रूपकी। किसीभी भाषाके लिए गौरवकी बात यह है कि वह अपने क्षेत्रमें प्रथम भाषा हो न कि गौण रूपमें। अन्य भारतीय भाषाओंके समकक्ष होनेका अर्थ अंग्रेजीकी प्राथमिकता और प्रभुता स्वीकार करना नहीं है।

दुर्भाग्य यह है कि अंग्रेजीकी प्रभुताको स्वीकार करते हुए मणिपुरी आन्दोलनकारी हिन्दीका विरोध कर रहे हैं जो उनके देशकी सहवर्ती भाषा है। वे राज्य में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं तथा हिन्दी माध्यमके अन्य साधनोंका विरोध करते हैं, उन्हें नष्ट करते हैं, मणिपुरी इतर भाषाभाषी परिवारोंके बच्चोंका अपहरण कर

लाखों रुपयेकी फिरौतीकी मांग करते हैं—जिस राशिका उपयोग नये अस्त्र-शस्त्र खरीदने और आतंकवादको सुदृढ़ करनेके लिए करते हैं। एकभी समाचार यह नहीं प्राप्त होता कि देशको बौद्धिक-मानसिक स्तरपर दास बनाने वाले साहित्य, पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी-दूरदर्शनके कार्यक्रमोंका बहिष्कार या विरोध किया जा रहा है। अंग्रेजीके प्रभुत्वके कारण हिन्दीको देशके अनेक राज्योंमें और स्वयं अपने ही क्षेत्रोंमें प्रताड़ित, उत्पीड़ित और अपमानित किया जाता है।

मणिपुरीके भाषा परिवारोंके वर्गीकरणके आधार पर आठवीं अनुसूचीमें प्रतिनिधित्वकी मांगपर भी आन्दोलनकारियोंको पुनर्विचारकी आवश्यकता है। भाषा-विज्ञानी डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्यने नृवंशके आधार पर भाषाओंके पारिवारिक वर्गीकरणका विरोध किया था। यह भी सत्य है कि नृवंशीय आधारपर भाषा-परिवारोंके वर्गीकरणका विरोध करते हुए भी उनका सारा कार्य इसी वर्गीकरणपर आधारित है। इस विसंगतिको ध्यानमें रखते हुए भाषा-परिवारोंकी वैज्ञानिकता संदिग्ध बनी हुई है। अब नये अध्ययन तो इस पारिवारिक वर्गीकरणको ही चुनौती दे रहे हैं। भाषा-परिवारोंके नये वर्गीकरण और वह भी वैज्ञानिक वर्गीकरणके अन्तिम रूप लेने तक इस तर्कको अपनी मांगका आधार बनाना छोड़ देना चाहिये। क्योंकि भारोपीय और द्रविड़ परिवारका वर्गीकरण भी संदिग्ध हो गया है।

यह प्रश्न भी चिन्तनीय है कि १० लाखकी मातृ-भाषा और उसका व्यवहार करनेवाले पांच लाख लोगोंकी संख्याको ध्यानमें रखते हुए आठवीं अनुसूचीमें स्थान देनेकी मांग क्या आनुपातिक प्रतिनिधित्वके अनुकूल है? पचास करोड़ जनसंख्याके इस देशमें इस मांगके अनुसार तो प्रति पंद्रह लाख जनसमूहको इस अनुसूचीमें प्रतिनिधित्व देना होगा और इस आधारपर लगभग ५७० भाषा समूहोंको आठवीं अनुसूचीमें स्थान देना पड़ेगा। इससे पूर्व देशमें बोली जानेवाली और भाषा 'पद'का अधिकार जतानेवाले सभी बोली-वर्गोंकी गणना करनी होगी।

हम अनुभव करते हैं कि मणिपुरीको भारतीय भाषा समूहमें गरिमापूर्ण स्थान प्राप्त करनेकी अधिक आवश्यकता है और बौद्धिक-मानसिक चिन्तनको सम्पन्नकर ज्ञान-विज्ञान सहित सभी साहित्यिक विधाओंके विकास समृद्ध बनानेकी आवश्यकता है, न कि आयातित आन्दोलनों द्वारा अबतक की उपलब्धियोंको नकारनेकी। □



# राजपाल के विशिष्ट प्रकाशन

## बच्चन-साहित्य

भारतीय साहित्य के सबसे बड़े पुरस्कार 'सरस्वती सम्मान' से सम्मानित प्रख्यात कवि हरिवंशराय बच्चन के सम्पूर्ण लेखन का स्थान समकालीन हिन्दी साहित्य में अत्यन्त ऊँचा है। उन्हें ३ लाख रुपये का यह पुरस्कार उनकी आत्मकथा के अन्तिम भाग 'दशद्वार से 'सोपान' तक के लिए मिला

है। यह आत्मकथा चार भागों में है :

क्या भूलूँ क्या याद करूँ	(भाग—१)	मूल्य : रु. ७५/-
नीड़ का निर्माण फिर	(भाग—२)	मूल्य : रु. ७५/-
बसेरे से दूर	(भाग—३)	मूल्य : रु. ७५/-
दशद्वार से सोपान तक	(भाग—४)	मूल्य : रु. १५०/-

चार खंडों का पूरा सेट मंगाने पर १०% की विशेष छूट

राजपाल एण्ड सन्ज को बच्चनजी के सम्पूर्ण साहित्य का एकमात्र प्रकाशक होने का गौरव प्राप्त है। उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएं इस प्रकार हैं :

मेरी श्रेष्ठ कविताएं	१५०/-	दो चट्टानें (पुरस्कृत)	२५/-
मधुशाला	२५/-	जाल समेटा	२०/-
मधुबाला	३०/-	बंगाल का काल	२०/-
सतरंगिनी	२०/-	ओथेलो (अनूदित)	४०/-
सोऽहं हंसः	१०/-	सुमित्रानन्दन पंत (सम्पादित)	२५/-
निशा निमंत्रण	३५/-	बंदरवांट (बाल कविताएं)	१०/-



## अमृतलाल नागर रचनावली

(सम्पूर्ण नागर साहित्य १२ खंडों में)

नागर जी की अपनी विशिष्ट शैली थी। अनेक चर्चित उपन्यासों के साथ-साथ उन्होंने कहानी, हास्य-व्यंग्य, संस्मरण, ललित निबन्ध, नाटक और कला-साहित्य की विविध विधाओं में लिखा।

नागरजी के कृतित्व और व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है विस्तृत भूमिका में सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने जो नागर जी के अनन्य सखा भी रहे हैं। इस रचनावली के संपादक हैं डॉ. शरद नागर। यह कार्य इन्होंने स्व. नागर जी की देखरेख में ही किया था।

अपनी सम्पूर्णता और आकर्षक साज-सज्जा के कारण यह रचनावली भारतीय साहित्य में मील का पत्थर सिद्ध होगी। सात हजार के लगभग पृष्ठ, डिमाई साइज में पक्की जिल्द। १२ खंडों का पूरा सेट : रु. १८००/-

## काश्मीर : समस्या और विश्लेषण

लेखक: जगमोहन (भूतपूर्व गवर्नर, जम्मू-काश्मीर)

देश की सर्वाधिक ज्वलंत समस्या पर ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक दस्तावेज है यह पुस्तक। इसमें काश्मीर समस्या के इतिहास और अन्य तमाम पहलुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसमें दिये गये व्योरे लेखक की सीधी जानकारी पर आधारित हैं।

मूल्य : रु. १७५/-

पुस्तकों का मूल्य मनीग्रार्डर से अग्रिम भेजने पर डाकव्यय निःशुल्क



राजपाल एण्ड सन्ज

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६



“मैंने जीवन देखा—जीवनका गान किया”

## जीवनधर्मिताके क्रान्त कवि : डॉ. हरिवंशराय बच्चन

—डॉ. मूलचन्द सेठिया

‘बच्चन’ आधुनिक हिन्दीके सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। लोकप्रियतामें तुलसीके अतिरिक्त शायदही कोई अन्य कवि ‘बच्चन’ की स्पर्धामें सफलतापूर्वक बढ़ा होसके (यद्यपि लोकप्रियताही काव्योत्कर्षकी एकमात्र कसौटी नहीं है)। इस कविने छायावादी कविता के आकाशगामी रथको धरतीपर उतारनेका कार्यही नहीं किया, उसमें जीवनकी सुखदुःखमयी अनुभूतियोंके यथार्थको इस प्रकार स्पन्दित किया कि उनकी आप-बोतीमें सबको अपनी घरबीतीका आभास प्राप्त होने लगा। छायावादी कविता कल्पनाकी बहुरंगी छवियोंके अमित विस्तार चिन्तनकी गहनता, भावनाकी संक्षिप्तता एवं कलात्मक वैभवके कारण पूर्णताकी प्रतिमा-सी प्रतीत होने लगीथी, परन्तु उसकी कड़ियोंमें हृदयकी घड़कन स्पष्ट सुनायी नहीं पड़तीथी। पंतजीके शब्दोंमें वह कवितासे अधिक अलंकृत संगीत बन गयी थी। ‘बच्चन’ ने अपनी श्रेष्ठ कविताओंके संचयनका सम्पण अपने चार अनुज कवियों—दिनकर, अज्ञेय, नरेन्द्र और चंचलको करते हुए लिखाहै जिन्होंने क्रमशः छायावादी कविताके कुहासेको किरण, भावुकताको सौदिकता, काल्पनिकताको अनुभूति तथा रहस्यात्मकता को मांसलता दी। छायावादी कविताके अतीन्द्रिय, वायवी एवं अंशतः अस्पष्ट सौन्दर्य-लोकको एक स्पष्ट एवं अनुभवग्राह्य रूपाकार प्रदान करनेमें ‘बच्चन’ का प्रयत्न इन चारों कवियोंसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। इसी तथ्यको रेखांकित करते हुए ‘दिनकर’ ने अपनी शायरीमें लिखाहै ‘बच्चन, नरेन्द्र, शिवमंगल, नागार्जुन, चंचल और मैं, ये सबके सब छायावादसे जनमे हैं और हम लोगोंके भीतरसे वह धारा आजभी प्रवाहित हो रही है। किन्तु यह छायावादका सुधरा हुआ रूप है, जो

धूमिल नहीं है, जन-जीवनसे दूर नहीं है, अनुभूतिके बदले कल्पनापर आश्रित नहीं है।’

समसामयिक कवियोंसे ‘बच्चन’ का काव्यादर्श इस अर्थमें भिन्न रहाहै कि उसके लिए जीवन कविताकी छाया नहीं, वहिक कविताही जीवनकी अनुगामिनी रही है। कविके शब्दोंमें ‘मेरी हर कल्पनाका मूल किसी जिये-भोगे-झेले-सहे यथार्थमें है।’ उसके आत्मचरितके चार खण्डोंका प्रकाशन होनेके बाद तो यह स्पष्ट रूपसे प्रमाणित हो गयाहै कि उसकी कविताओंमें उसका जीवनही प्रतिबिम्बित हुआहै। “‘बच्चन’ की कविता का विकास और रूपान्तर उसके जीवनके समानान्तरही हुआहै। उन्होंने जब जैसा अनुभव कियाहै, वैसाही लिखाहै। जो कविके रक्त-कणोंमें डोलाहै, उसीको उसने अपने मुखसे बोलाहै।” पंतजीके इस कथनको चुनौती नहीं दीजा सकती कि ‘बच्चन’ के अधिकांश काव्य-पटमें उनकी आत्म-कथाके ही बिखरे पन्ने मिलेंगे। यह कविकी अन्तःसामर्थ्यका सबूत है कि वे अपनी कविताके सहृदय भावकको अपनी अनुभूतिका सहभोक्ता बनानेके साथही अपनी जीवन यात्राका सह-यात्री भी बना लेतेहैं। सच तो यह है कि उनके जीवन-प्रसंगोंकी अभिज्ञताके अभावमें उनकी कविताओंकी रसग्राहिता भी अधूरीही बनी रहतीहै।

‘बच्चन’ की निष्ठाका केन्द्र मानव और उसका जीवन है (‘निष्ठा प्रथम यहां/जीवनके प्रति है’)। उसने जो कुछभी पायाहै, अपने जीवनानुभवसे पायाहै। (‘मैंने जीवन देखा—जीवनका गान किया’) इसलिए उसके काव्यमें यदि कोई दर्शन है तो वह किसी वाद या सम्प्रदायसे उधार लिया हुआ नहीं, अपने ही ‘अश्रु-



स्वेद-शोणित' का मूल्य चुकाकर अनुभवसे उपार्जित जीवन-दर्शन है। यही कारण है कि उसने किसी वैचारिक अवधारणाको अपने प्रत्यक्ष अनुभवका स्थानापन्न नहीं बनाया है। यह सही है कि 'बच्चन' की काव्य-यात्रामें अनेक मोड़ आये हैं और वह किसी एकही पड़ाव पर अधिक दिनों तक रुका नहीं रहा, पर यह सब आरोपित और यत्न-साधित न होकर स्वतःस्फूर्त रूपसे सहज सम्पन्न हुआ है। कविकी जीवनके प्रति अनन्य आसक्ति रही है; अपने प्रत्येक रूपमें वह उसे 'जीनेके लायक' प्रतीत होता रहा है। यह नहीं कि कवि जीवन की वंचनाओं, विवशताओं और विडम्बनाओंसे परिचित नहीं था; परन्तु अपनी सारी अपूर्णताओंके होते हुए भी जीवनका आकर्षण उसके लिए कभी मन्द नहीं हो सका; काल-क्रमसे, नियति-नियमसे, / आत्म-भ्रमसे रह न गया जो, मिल न सका जो, / सच न हुआ जो प्रियजन अपना, प्रिय धन अपना, / अपना सपना इन्हें छोड़कर जीवन जितना, / उसमें भी आकर्षण कितना ?

'मधुशाला' के प्रकाशन (१९३५) के साथ 'बच्चन' हिन्दी काव्याकाशपर एक ज्वलन्त नक्षत्रके रूपमें उदित हुए। इस काव्यकी ऐसी धूम मची और इसे इतनी अपरिसीम लोकप्रियता प्राप्त हुई कि 'बच्चन' और 'मधुशाला' एक दूसरेके पर्याय बन गये। अर्द्धशताब्दीसे भी अधिक समयसे उसकी लोकप्रियता ज्योंकी त्यों बनी हुई है। "मानव-जीवनकी किसी अति-वायं मांग, दुर्निवार पुकारके बिना" इस लघु-रचनाका भारत जैसे विराट् देशकी कोटि-कोटि जनतामें इतने लम्बे समयतक ऐसा अनन्य आग्रह बना रहना असंभव था। हमारे देशमें दुःखवादी दार्शनिकता और कुण्ठावादी नैतिकताके कारण सामान्य जन युग-युगसे अपने आपको दमित और वंचित अनुभव कर रहा था। जीवन में सहज आनन्द और उपभोगके प्रति व्यक्तिके मनमें जो एक स्वाभाविक आकांक्षा निगूढ़ रूपसे विद्यमान रहती है, उसे 'बच्चन' के मधु-काव्यमें उन्मुक्त अभिव्यक्ति प्राप्त हुई थी। नरेन्द्र शर्माके शब्दोंमें वह नव-भारतके नवजीवन या चढ़ती जवानीके उन्मादको विम्बित-प्रतिविम्बित करती है—यह वह मस्ती है जिसकी हिन्दी काव्यके प्रेमियोंको मुदतसे तलाश थी।

यह 'उल्लास-चपल' और उन्माद-तरल मदिरा मध्य-वर्गीय व्यक्तिकी रुढ़-बद्ध मानसिकताको उन्मुक्तता, हास-उल्लास और मौज-मस्तीके एक जीवन्त प्रतीक

के रूपमें यदि इतनी उद्दामता और दुर्निवारसे आकर्षित कर सकी तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? स्वयं कविके लिए यह मधु-काव्य प्रतीकात्मक महत्त्व ही रखता था।

मधुशाला वह नहीं जहांपर / मदिरा बेची जाती है, भेंट जहां मस्तीकी मिलती/मेरी तो वह मधुशाला।

इस काव्यके सृजन-क्षणों कविके अनुभवको कविके शब्दोंमें ही सुनिये "मधुशाला" लिखते समय मुझमें जीवनका इतना उल्लास था कि रुकता नहीं था। मैं जैसे एक आश्चर्य-लोकमें जीवित था—इतना उन्माद इतना आवेग, इतनी उत्फुल्लता।" उल्लासके इस अति-रेककी प्रतिक्रिया स्वरूप कविने कहीं-कहीं जीवनकी अनित्यता, नश्वरता और निराशाके भावभी व्यक्त किये हैं। वह इस बातसे अनजान नहीं था कि 'मधुशाला' के पीछे कहीं 'मरघट' भी छिपा हुआ है :

मेरे जीवनमें जिस दिन भावी 'मधुशाला' आयी थी, मुझको था मालूम कि 'मरघट' अपने पास बुलायेगा।

'बच्चन' के मधु-काव्यकी शृंखलामें तीन कृतियां सम्मिलित हैं—'मधुशाला' 'मधुबाला' और 'मधु-कलश'। इनमें जहां मस्तीकी खोज है वहां जीवनकी चिरन्तन तृष्णा—सब कुछको पाकर भी चिर अतृप्त रहनेकी वेदना और अपनी मानवीय विवशताके प्रति विद्रोहके मिले-जुले स्वरभी सुनायी पड़ते हैं। 'मधुशाला' में कविने स्वाइयोंके रूपाकारको छोड़कर गीतोंके सृजन का सफल प्रयोग किया है। 'पग ध्वनि' और 'इस पार-उस पार' की गणना 'बच्चन' के श्रेष्ठतम गीतोंमें की जाती है। 'पग ध्वनि' में कवि अन्तर्मुख होकर जीवन की गहराईमें उतरा है और इसमें रहस्य-संकेतके साथ समर्पणके स्वर भी उभरे हैं। जन्म-जन्मकी भटकनको जैसे एक दिशा मिल गयी है :

ये कर नभ-जल-थलमें भटके,  
आकर मेरे उरपर अटके,  
जो पग द्वय थे अंदर घरके  
ये देख रहे उसको बाहर,  
ये युग कर मेरे अज्ञानी,  
वह पग ध्वनि मेरी पहिचानी।

'इस पार—उस पार' में कविके उन संकटग्रस्त क्षणों का चित्रण है जब क्षयग्रस्त होकर वह जीवन मृत्युके बीच झकोरे खा रहा था। मेरा तो होता मन डगमग



तटपरके ही हलकोरोंसे  
जब मैं एकाकी पहुंचूंगा  
मंझधार न जाने क्या होगा ?  
इस पार प्रिये मधु है, तुम हो  
उस पार न जाने क्या होगा ?

‘मधुकलश’ में कविने अपने अन्तर्विद्रोहको मुखरित किया है। इसमें कविने एक ओर अपनी नियतिको चुनौती दी है, मृत्युको ललकारा है तो दूसरी ओर अपने पर वासनावादी और निराशावादी होनेका आरोप करनेवाले छिद्रान्वेपी आलोचकोंको ललकारा है। लगता है जैसे कविने वांसुरीको छोड़कर वज्रघोषी शंख उठा लिया हो।

‘मृत्यु का अनुचिन्तन—भय नहीं।’ बच्चन’ के काव्यमें आरम्भसे अन्ततक व्याप्त है। जीवनके साथ जैसे मृत्यु जुड़ी हुई है, वैसेही ‘हाला’ के साथ ‘हलाहल’ का सह-अस्तित्व है। परन्तु ‘हलाहल’ के मृत्युका प्रतीक होनेपर भी कविने इस काव्यमें जीवनका ही जय-गान किया है। पंतजीके शब्दोंमें ‘यह काव्य मृत्युके ऊपर जीवनकी विजय-ध्वजा स्थापित कर रहा है। स्वयं कवि ने लिखा है ‘जीवनके सम्पूर्ण नाशमें से सृजनका स्वर कैसे उभर आता है यही ‘हलाहल’ की प्रेरणा और भावभूमि है, मनुष्यको पराजय स्वीकार नहीं करनी है संहारसे मृत्युसे। इसीलिए मैंने उसे ललकारा है।

हलाहलकी धाराके बीच, नहीं डर डूबेगा अस्तित्व, गगनसे होता है संकेत, उठेगा और अभी व्यक्तित्व। सन् १९३६ में कविकी जीवन-संगिनी श्यामाकी मृत्युने कविको विह्वल और विचलित कर दिया था। उसे लगने लगा ‘नर-नारीसे भरे जगत्में, कविका हृदय अकेला।’ कवि जीवितभी रहे तो किसलिए और किसके लिए ? जब ‘दिनकी मौन संगिनी छाया’ भी कविको नैशान्धकारमें अकेला छोड़कर चली जाती है तो कवि अकेलेपन और उदासीमें डूबने-उतरानेको बाध्य हो जाता है। ज्यों-ज्यों रात गहराती है, कविके मनका अन्धकारभी सघनसे सघनतर होता चला जाता है। उसे लगता है ‘स्वप्नभी छल, जागरण भी/ व्यर्थ जीवन भी, मरण भी।’ रातके सनेपनमें सियारोंकी आवाज आती है या गिरजेसे घण्टेकी टनटन सुनायी पड़ती है तो वह भी हृदयको चीरती हुई-सी अनुभव होती है। काल-क्रम से होकी और दीवालीके त्यौहार आते हैं; घर-घर दीप

जलते हैं और रंग-चंगका उमंगभरा कोलाहल सुनायी पड़ता है। परन्तु कविके लिए ‘आंसूकी दो धार बहेगी/ दो-दो मुट्ठी राख उड़ेगी।’ ‘निशा निमंत्रण’ के सौ गीतों में कविकी आह और उच्छ्वास ध्वनित-प्रतिध्वनित हुए हैं। अपनी मानवीय संवेदनाकी तीव्रता और यथार्थताके कारण इन गीतोंने न जाने कितने भग्न हृदयोंको आश्वस्ति प्रदान की है। परन्तु ‘निशा निमंत्रण’ का स्वर केवल वेदना और निराशाका स्वर नहीं है। इसमें कविने अपनी वेदनाको व्यापकता प्रदानकर उससे ऊपर उठनेका सफल प्रयास किया है। ‘निशा निमंत्रण’ के बाद ‘एकान्त संगीत’ और ‘आकुल अन्तर’ का प्रकाशन हुआ। कविके शब्दोंमें ‘इन तीनों रचनाओंमें एक सांगिक सम्बन्ध है। इन तीनों रचनाओंकी इकाई जीवनके गहनांधकारमें पैठने, उससे संघर्ष करने और उससे बाहर निकलनेकी भाव-यात्रा है।’ कविने ‘निशा निमंत्रण’ से ही अन्धकारके बाहर झांकना आरम्भकर दिया था परन्तु उसकी चेतनापर व्यथाका जो दुर्वह भार था, वह उसे सर्वथा मुक्त होनेका अवसर नहीं दे रहा था। मैं बराबर इस अन्धकारसे निकलनेका प्रयत्न करता था और बार-बार उसी अन्धकारमें डूब जाता था।’ परन्तु ‘एकान्त संगीत’ से कवि क्रमशः अंधकार से प्रकाशकी ओर धीरे-धीरे गतिसे बढ़ने लगता है। तभी तो ‘एकान्त संगीत’ के गीतोंको पढ़कर न जाने कितनोंने अपना अकेलापन दूर हटता हुआ अनुभव किया था। ये तीनों कृतियां कविके उस अन्तःप्रयासकी साक्षिणी हैं, जिसके द्वारा वह ‘अकेलापन, सूनापन, उदासी, जीवनकी निष्प्रयोजनता और व्यर्थताकी भावना’ से अपनेको मुक्तकर प्रकाश किरणोंका स्वागत करनेकी दिशामें अग्रसर हो रहा था। इनमें केवल एक भाग्य-प्रताड़ित व्यक्तिके हृदयकी चीत्कार ही नहीं है; भाग्य और ईश्वरके प्रति एक ऐसे व्यक्तिकी ललकार भी है जो ‘क्षतशीश पर नतशीश नहीं’ है और किसी भी हालतमें अपनी मानवीय गरिमाके साथ समझौता करनेके लिए तैयार नहीं है। अपने अनुभवसे उसने जान लिया है कि जीवन एक अग्निपथ है, परन्तु फिर भी उसका निष्चय है ‘एक पत्र छांह भी तू मांग मत ! मांग मत ! मांग मत !’ उसने नियति और नियन्ताके सम्मुख आत्मसमर्पण करनेसे न केवल इन्कार किया है बल्कि कहीं-कहीं तो प्रतिक्रियते आवेग में उसका स्वर अतिसाहसी होगया प्रतीत होता है :



राह रोक है खड़ा हिमालय/ यदि तुममें दम, यदि  
तुम निर्भय  
खिसक जायगा कुछ निश्चय है/ घूँसा एक  
लगाओ ।

तनमें ताकत है तो आओ ।

‘आकुल अन्तर’ का कवि अकेलेपनका बल पह-  
चान लेता है और व्यक्तिके मूल अस्तित्वगत अकेलेपन  
को तटस्थ भावसे बड़े साहसके साथ स्वीकार करता है :

क्यों न हम लें मान, हम हैं चल रहे ऐसी डगरपर,  
हर पथिक जिसपर अकेला, दुःख नहीं बंटते  
परस्पर ।

‘बच्चन’ की काव्य-कृतियोंमें ‘सतरंगिनी’ का  
अपना एक विशिष्ट महत्त्व है । कविने अपने चिदाकाश  
में छाया हुई वेदनाकी घनघटाको शतशत गीतोंकी  
फुहारमें बरसाकर अपनेको हलका कर लिया था । शरत्  
कालके निर्मल-निरञ्ज आकाशमें प्रकट होनेवाली इस  
‘सतरंगिनी’ में जीवनके आशा, आनन्द और उल्लासके  
रंग विकीर्ण हुए हैं । कविके शब्दोंमें यह ‘अंधकारके  
ऊपर प्रकाश, विध्वंसके ऊपर निर्माण, निराशाके ऊपर  
आशा और मरणके ऊपर जीवनकी जीतका गीत है ।  
जीवनके दुःख और दुराशाके पृष्ठ पलटकर कवि अब  
आश्वस्त भावसे कहता है ‘जो बात गयी सो बात गयी ।’  
पीछेकी ओर देखकर भी क्या मिला ? ‘एक युग मैंने  
‘गई’ की ओर देखा, पर बदल पाया न उसकी एक  
रेखा ।’ इसलिए कविकी दृष्टि अब विगतके विध्वंसकी  
ओर नहीं, भविष्यके निर्माणकी ओर है । वह देख रहा  
है :

क्रुद्ध नभके वज्र दन्तोंमें उषा है मुसकराती,

घोर गर्जनमय गगनके कण्ठमें खग-पंक्ति गाती ।

कविको भी अब अपने अन्तरसे और दिगन्तरसे  
‘नेहके आह्वान’ और ‘नीड़के नव निर्माण’ के स्वर  
सुनायी पड़ने लगे हैं । इस परिवर्तित भावभूमिने उसके  
आन्तरिक तर्कोंको भी नकारात्मकतासे सकारात्मकताकी  
ओर उन्मुख कर दिया है :

जो बसे हैं वे उजड़ते ही प्रकृतिके जड़ नियमसे

पर किसी उजड़ें हुंको फिर बसाना कब मना है ?

है अंधेरी रात, पर दीया जलाना कब मना है ?

‘सतरंगिनी’ वस्तुतः आशाका एक दीपक नहीं,  
पूरीकी पूरा दीपावली है । इसके बाद ‘मिलनयामिनी’  
और ‘प्रणय पत्रिका’ के गीतोंमें कवि आगसे रागके

‘प्रकर — मार्च’ ६२ — ८

संसारमें प्रवेश करता है । कवि अनुभव कर चुका है  
‘डूबना है व्यथं पिछले आंसुओंमें’ इसीलिए वह अपने  
आपको वेदनाकी रुग्ण आसक्तिसे मुक्त करते हुए  
कहता है :

हर दन्त समयका जो लगता,

मानो विषदन्त नहीं होता

दुःख मानवके मनके ऊपर,

सब दिन बलवन्त नहीं होता ।

कविके जीवनमें नवपरिणीताके रूपमें तेजीका  
प्रवेश होता है और आंसुओंकी बाढ़में बहता हुआ कवि  
का जीवन-पीत आशा और उल्लासके द्वीपकी तट-रेखा  
का स्पर्श कर लेता है । इन गीतोंमें केवल मनकी मनु-  
हार ही नहीं है, अंग-संगकी उद्दाम आकांक्षा भी व्यक्त  
हुई है । इनमें प्रेमका ‘मधु’ है तो स्वस्थ वासनाकी  
‘मदिरा’ भी है । ‘प्रणय पत्रिका’ के गीत कविने गृह  
और गृहिणीसे बहुत दूर कैम्ब्रिजमें बैठकर लिखे थे  
इसलिए इन गीतोंमें मादकतासे अधिक द्रावकता है;  
स्नेहसे अधिक समर्पण है । निश्चय ही, इनमें से कुछ  
गीत हिन्दीके श्रेष्ठतम गीतोंमें परिगणित किये जा सकते  
हैं ।

नारी आरम्भसे ही ‘बच्चन’ के काव्यका केन्द्र रही  
है । ‘नारी किशोरावस्थासे ही मेरे जीवनकी अंग,  
आवश्यकता और अनिवार्यता बन चुकी थी — चाहे मुझे  
सुख दे या दुःख दे, चाहे मेरे लिए समस्या बने चाहे  
समाधान ।’ कविने ‘मिलनयामिनी’ और ‘प्रणय  
पत्रिका’ में नारीके तन-मनकी गहराईको थाहनेका  
प्रयास किया है; परन्तु नारीके मनकी तो बात ही क्या  
उसके तनके रहस्योंको भी कब कौन जान सका है ? वह  
चिररहस्यमयी बनी रहकर ही नरके आदिम आकर्षण  
की धुरी बनी रह सकी है । ‘बच्चन’ को भी इस सन्दर्भ  
में अपनी असफलता स्वीकार करनेमें कोई संकोच नहीं  
है :

जगत है पानेको बेताब, नारीके मनकी गहरी थाह,  
किये थी चिन्तित औ बेचैन, मुझे भी कुछ दिन ऐसी  
चाह

मगर उसके तनका भी भेद, सका है कोई अबतक  
जान !

मुझे है अद्भुत एक रहस्य, तुम्हारी हर मुद्रा हर  
वेष

तुम्हारे नील झील-से नैन, नीर निझंरसे लहरे  
केश ।



‘भारती और अंगारे’ से लेकर ‘जाल समेटा’ की मध्यवर्तिनी रचनाओंमें किसी विशिष्ट स्वरकी पहचान नहीं की जा सकती। अब कवि भोक्तासे अधिक जीवन का द्रष्टा बन गया है। सहजानुभूतिके सम्बलको अब भी उसने नहीं छोड़ा है, पर अब उसकी कवितामें राग की अपेक्षा बोधकी प्रधानता हो गयी है। कविके शब्दों में ‘मेरी इधरकी अधिकांश कविताएं वस्तुगत हैं। आखिर दुनियांका अपनाभी कोई सत्य है, जिसके सहारे वह टिकी है। मैं उसी सत्यको तटस्थ दृष्टिसे पकड़कर व्यक्त करना चाहता हूँ।’ इस वस्तुगत तटस्थताके चलते ‘बच्चन’ की परवर्ती कवितामें व्यंग्यके स्वर उभरे हैं। जीवनकी विसंगतियों और विडम्बनाओंके सीधे साक्षात्कारने कविकी वार्णाको एक वक्रमंगिमा प्रदान की है। समाज, साहित्य और राजनीतिके व्यापक क्षेत्र में चलनेवाले छल-छद्मपर कविने तीखे प्रहार किये हैं। पीढ़ियोंके अन्तरालसे प्रकट होनेवाले रुचि-भेद और दृष्टि भेदको भी कविने अपने व्यंग्य-वाणोंका लक्ष्य बनाया है। फिरभी, अन्य व्यंग्यकारों और ‘बच्चन’ में एक बड़ा अन्तर है। उन्होंने जीवनकी मूल्यहीनता और सिद्धान्त-शून्यतापर आक्रमण करते हुए कहींभी जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों और उच्चादर्शोंको आहत नहीं किया है। ‘नई कविता’ में जो अनास्थाका उद्घोष किया गया है, उसकी एक क्षीण प्रतिध्वनिभी ‘बच्चन’ के काव्य में कहीं नहीं सुनायी पड़ती। इसके विपरीत उन्होंने अनास्थावादी कवियोंका विद्रूप चित्रण किया है :

अब सपूत ये/ कुण्ठाओंके/ धुरीहीनता, लक्ष्य प्रष्टता, दिग्विभूतता भय-शंकाओं/ टूटन-घुटन, विखंडन विघटन/ ऊभचूभ, मचली, कदर्यता क्लान्ति-विलन्नता और क्लैव्यके / काटून बने/ किसी नगर या मजानगरके काँफी हाउसमें बैठे हैं।

जीवनके प्रति कविकी मूल्य-विश्वासी और आस्था परायण दृष्टि ‘दो चट्टानें’ में मुखर रूपसे अभिव्यक्त हुई है, जहाँ कवि सिसिफसके विपरीत हनुमानके जीवन-दर्शनको तरजीह देते हुए जीवनकी व्यर्थता और शून्यता के मुकाबले जिजीविषा और मृत्युमें भी चिरजीवनकी आकांक्षाको रेखांकित करता है। ‘बच्चन’ जीवनधर्मी रहे हैं, उन्होंने जीवनकी धूपछाँह और शूलफूल दोनोंका एक जैसा स्वागत किया है। उनके लिए जीवनका अर्थ संघर्ष रहा है — ‘देवता मेरे वही हैं जो कि जीवनमें पड़े संघर्ष करते।’ परन्तु, जीवन कोरा संघर्ष ही नहीं है

“जीवन एक समर है सचमुच, पर इससे भी अधिक बहुत कुछ।” यह एक रणभूमि है तो एक रंगभूमि भी है। कविकी दृष्टि चाहे कितनीही रिक्त और तिक्त क्यों न हो फिरभी ‘जीनेके लायक’ है। परन्तु, केवल ज्यों त्यों जीते रहनेको ही वे जीवनकी कृतार्थता नहीं मानते। जीवनमें वे निरन्तर गतिशीलता, संघर्ष-शीलता, और परिवर्तनशीलताके आग्रही रहे हैं : ‘मैं जहाँ खड़ा था कल, उस थलपर आज नहीं/ कल इसी जगह फिर पाना मुझको मुश्किल है।’ इसीलिए, ‘बच्चन’ का मधु-काव्य जीवनसे, जीवनके संघर्षसे पला-यनका काव्य नहीं है। कविके इस दावेमें दम है “हैं लिखे मधुगीत मैंने, हो खड़े जीवन-समरमें।”

‘बच्चन’ पच्चासी वर्षकी परिपक्व आयुमें आज हिन्दीके सबसे ज्येष्ठ और वरिष्ठ कविके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। परन्तु, उन्हें कोरा कवि समझना अधूरी समझका परिचय देना होगा। गद्यके क्षेत्रमें उनके महत्त्वपूर्ण प्रदेयका अभीतक सम्यक् मूल्यांकन नहीं हो सका है। उनका आत्म-चरित चार खण्डोंमें सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित हो चुका है। हिन्दीमें आत्म-चरित लिखने-वालोंकी संख्या अधिक नहीं है और जो हैं, उनमें ‘बच्चन’ की स्पर्धा करनेवाला कोई दिखायी नहीं पड़ता। इनकी कवितामें इनका जीवनही बिम्बित-प्रतिबिम्बित हुआ है; इसलिए यह आत्म-चरित कविताओंकी पृष्ठभूमिमें छिपे हुए जीवन प्रसंगोंको उद्घाटित कर कविताओंको समझनेके लिए सही सन्दर्भ और परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है। आत्म-चरितके पृष्ठ पलटते हुए उनकी कविताओंके नये-नये अर्थ आयाम अनायास उद्घाटित होते चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त, यह आत्म-चरित विगत पच्चासी वर्षोंमें उत्तरी भारतके मध्यवर्गीय शिक्षित व्यक्तिके जीवन-संघर्ष, उसके हर्ष-विमर्श और आरोह-अवरोहका भी एक जीवन्त चित्र प्रस्तुत करता है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीके शब्दोंमें : ‘इसमें केवल ‘बच्चन’ जीका परिवार और व्यक्तिही नहीं उभरा है, बल्कि उनके साथ काल और क्षेत्रभी अत्यन्त जीवन्त रूपमें उभरा है।’ ‘क्या भूलूँ क्या याद करूँ’ और ‘नीड़का निर्माण फिर’ में इलाहाबादके गली-मोहल्लोंके साथ यूनिवर्सिटी और साहित्यिक परिवृत्तका जीवन अपनी सारी चित्र-विचित्रताके साथ चित्रित हुआ है। ‘बसेरासे दूर’ में कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटीमें लेखक के अध्ययन-अनुसन्धानके साथ उसके परवर्ती काव्यकी



रचना-प्रक्रियाका भी जीवन्त आलेख प्रस्तुत किया गया है। 'दशद्वारसे सोपान तक' में कविने तथी दिल्लीके रेशमी नगरमें सचिवालयकी गतिविधियोंके साथ लेखक की सृजनशीलता और राजधानीके साहित्यिक परिदृश्य का सीधा साक्षात्कार होता है। बम्बईके माध्यमसे फिल्मी दुनियांकी एक रंगारंग झांकी अनायास प्रस्तुत हो गयी है। साहित्य और राजनीतिक क्षेत्रमें सक्रिय अनेक व्यक्तियोंके बारे में दो-चार पंक्तियोंमें ही बड़े पतेकी बातें कही गयी हैं। आत्मचरितकी चरम परिणति होनेके कारण इस खण्डसे कविके व्यक्तित्व विकासका अद्यतन परिचय प्राप्त होता है। कहीं-कहीं वैयक्तिक आग्रहके कारण लेखकके विचारोंमें वस्तुगत तटस्थताका निर्वाह नहीं हो पाया है। सुमित्रानन्दन पंत

के बारेमें कवि अधिक अनुदार हो गया है तो नेहरू परिवारके प्रति उसकी उदारताकी कोई सीमा नहीं है। आपात्कालके पक्षमें व्यक्त किये गये 'वचन' के मन्तव्यसे सहमत होनेमें बहुत-से पाठकोंको कठिनाईका अनुभव होगा। परन्तु, आत्म-चरित जैसी वैयक्तिकता प्रधान रचनामें इस प्रकारके असन्तुलनका नहीं होना ही आश्चर्यजनक प्रतीत होता। के. के. बिड़ला फाउण्डेशनने इस कृतिके लिए 'वचन' को 'सरस्वती सम्मान' प्रदानकर इस कविर्मनीषीकी जीवन-व्यापी साहित्य साधनाको जैसे समग्र रूपसे वन्दित-अभिनन्दित किया है और सम्पूर्ण हिन्दी जगत्को प्रमुदित और उत्तसित होनेका एक अभूत अवसर प्रदान किया है। वे हमारा वन्दन और अभिनन्दन भी स्वीकार करें। □

## अभिनन्दित विष्णु प्रभाकर

कृति : विष्णु प्रभाकर?

समीक्षक : डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

सम्पादक : डॉ. विश्वनाथ मिश्र

डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

'विलक्षणताओंमें सहज सामान्य बने रहनेवाले' जाने-माने साहित्यकार श्री विष्णु प्रभाकरके व्यक्तित्व एवं कृतित्वका उद्घाटन करनेके उद्देश्यसे प्रस्तुत इस ग्रन्थमें अनेक सुपरिचित रचनाकारों तथा साहित्यके गंभीर अध्येताओंने अलग-अलग कोणों तथा आयामोंसे विष्णुजी एवं उनके साहित्यको परखनेका प्रयास किया है। हिन्दीमें सामान्यतः जिस प्रकारके अभिनन्दन ग्रंथों की परिपाटी चल निकली है उससे यह ग्रंथ बहुत भिन्न है और सार्थक। न तो इसे महंगे कागजपर छापा गया है, न मुद्रण कलाके जोहर दिखाये गये हैं, न विज्ञापनोंकी भीड़ जुटायी गयी है। सम्भवतः इसीलिए इसे अभिनन्दन-ग्रंथ कहा भी नहीं गया है। परन्तु बिना कहेही

यह ग्रंथ विष्णुजीका अभिनन्दन करता है—और यह बड़ी तथा रेखांकित करने योग्य बात है।

ग्रंथमें लगभग २५ लेख विष्णुजीके व्यक्तित्वपर हैं, लगभग इतनेही लेख कृतित्वपर, तीन साक्षात्कार हैं जो व्यक्तित्व और कृतित्व दोनोंका उद्घाटन करते हैं, और अंतमें प्रभाकरजी द्वारा रचित साहित्य तथा उनपर किये गये शोध-कार्योंकी दो सूचियां हैं। इस प्रकार, संपादकोंने यह प्रयास किया है कि इस ग्रंथसे विष्णु प्रभाकरजीके व्यक्तित्व और कृतित्वकी पूरी जानकारी एक स्थानपर सुलभ हो सके।

कृतित्ववाले भागमें, यद्यपि इस प्रकारका कोई विभाजन संपादक-द्वयने किया नहीं है, सर्वाधिक बल 'आवारा मसीहा' पर है। उसपर कमसे कम पांच लेख हैं। व्यक्तित्वकी चर्चा करते हुए, यहाँतक संपादकीय में भी 'आवारा मसीहा' जैसे छाया हुआ है। अरुणा दुबलिशने तो यहाँतक लिख दिया है कि लगभग सौ

१. प्रका. : कुसुम प्रकाशन, नवेन्दु सदन, आदर्श कालोनी, भुवनेश्वर-७५१००१। पृष्ठ : ४२४; डिमा. ६१; मूल्य : २००.०० रु.।

'प्रकर'—मार्च—१०



कृतियोंके सफल लेखक विष्णु प्रभाकरके यशका एकमात्र आधार भविष्यमें आबारा मसीहाको ही माना जायेगा। वीरेन्द्र त्रिपाठीने लेखकको आबारा मसीहाके रचनाकारके रूपमें ही याद किया है। स्वभावतः, विष्णुजीकी इस बहु-चर्चित, बहु-प्रशंसित कृतिसे उनके समीक्षकोंका प्रभावित होजाना यहां देखाजा सकता है। सभी लेखकोंने अलग-अलग दृष्टियोंसे इस कृतिकी उत्कृष्टताको रेखांकित किया है। परन्तु मुझे इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण लगा गोविन्दप्रसादका लेख जिन्होंने समग्रतामें प्रभाकरजीके सर्जनात्मक व्यक्तित्वकी पड़ताल की है। उन्होंने एक बहुत मार्कवी बात कही है—“किसी रचनामें रचनाकारके विचारधारात्मक रूपकी परिशुद्धि उतनी विचारणीय नहीं होती जितनी विचारधारा और वस्तुजगत्की कलात्मक अवधारणाके एकीकरण या समाकलनकी।” इसी प्रकार विष्णु प्रभाकरके रेडियो नाटकोंपर चिरंजीतका लेख भी बहुत अच्छा है। उन्होंने इस माध्यममें अपनी पैठका उपयोग करते हुए जिस प्रकार प्रभाकरजीके रेडियो-नाटकोंका विश्लेषण किया है वह सामान्यतः देखनेको नहीं मिलता। नाटकों व एकांकियोंपर शैली-वैज्ञानिक दृष्टिसे भी दो लेखोंमें विचार किया गया है। वीरेन्द्र शर्माने अपने लेखमें यह जानकारी जुटायी है कि विष्णुजीपर सोवियत संघमें क्या और किस प्रकारका काम हुआ है। अच्छा होता यदि संपादक-द्वय अन्य देशोंमें भी हुए इस प्रकारके कामके संबंधमें कोई लेख जुटा पाते। हो सकता है, उन्होंने प्रयास किये भी हों। निशा व्यास और राजलक्ष्मी नायडूने दो अलग-अलग साक्षात्कारोंमें विष्णुजीको परखा है तो वीरेन्द्र सक्सेनाने कुछ भिन्न प्रकारसे लगभग साक्षात्कार किया है। निशाजीका साक्षात्कार जो व्यास छोड़ता है उसे राजलक्ष्मी और सक्सेनाजी बुझा पानेमें पूरे रूपमें सफल हुए हैं। फिर भी, एक अच्छे और पूरे साक्षात्कारकी कमी खटकती है।

विष्णुजीके व्यक्तित्वपर लगभग २५ लोगोंने लिखा है और लगभग सभीने यह कहा है कि वे एक अच्छे इंसान हैं इसीलिए अच्छे लेखक हैं। उनकी कुछ विशेषताओं जैसे निरभिमान, सदाचार, सरल स्वभाव, सहजता, सादगी, घुमक्कड़ी, सहृदय आत्मीयता आदि पर लगभग सभीका ध्यान गया है। काफी-हाऊसमें उनके नियमित जानेका भी लगभग सभी लोगोंने उल्लेख किया है। एक लेखकने एक प्रसंगके माध्यमसे विष्णुजीके स्वाभिमानी व्यक्तिको भी उभारा है। गांधीवादमें उनकी आस्थाकी चर्चाभी बहुतोंने की है जिन

लोगोंने व्यक्तित्वपर लिखा है उनमें जाने-अनजाने सभी प्रकारके लेखक हैं। जाने-पहचाने नामोंमें प्रमुख हैं गोपालप्रसाद व्यास, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, मोतीलाल जोतवाणी, हंसराज रहवर, मधुर शास्त्री, रामनारायण उपाध्याय, हिमांशु श्रीवास्तव, राजमल बोरा, रावी आदि। इन सभीने, तथा अन्य लेखकोंने भी विष्णु जीके उपर्युक्त गुणोंको सराहा है और कहा है कि वे उनको निकटसे जानते हैं, परन्तु आश्चर्यकी बात यह कि इन सबमें से कोई एक लेखकभी अपने लेखमें अंतरंगताका परिचय दे पानेमें सफल नहीं हुआ है। एक सम्मानजनक दूरी प्रत्येक लेखमें विद्यमान है। अनौपचारिक अंतरंगता कहींभी नहीं है। अब, हो सकता है, इसका कारण यह हो कि विष्णुजीका व्यक्तित्व ही ऐसा हो कि सभी उनके निकट अनुभव करते हों, और जब सब निकट होते हैं तो कहना अनावश्यक है, बहुत निकट कोई भी नहीं होपाता। यह भी कि विष्णुजी किसीसे भी दूरी न मानते और रखते हों, जो हो, यदि बहुत अंतरंगतासे कोई लिख पाता तो पुस्तककी अर्थवृत्तामें वृद्धि ही होती।

एक बात कहना आवश्यक लग रहा है। व्यक्तित्व पर लिखते हुए कुछ लोगोंने विष्णुजीपर कम और अपने पर ज्यादा लिख दिया है। अंबाप्रसाद सुमन जैसे बड़े और पुराने लेखक या मोतीलाल जोतवाणी जैसे बड़े लेखकभी यदि आत्म-विज्ञापनके मोहसे न बच पायें तो फिर किनसे आशा रखा जाये। यद्यपि जोतवाणीजीने अपनेको संभालनेका या बात बनानेका प्रयास किया है। सिद्धेशने बलात् स्वयंके लेखनसे लंबा उद्धरण देकर जैसे लेखकी माँग पूरी की है। और हाँ, संपादकों को कुछ तो निर्मम होना ही चाहिये था, रामकुमार वर्माका चरित्र प्रमाणपत्र नुमा पत्र न छापते तो अधिक अच्छा होता। ऐसे प्रमाणपत्र हम अध्यापक प्रायः अपने विद्यार्थियोंको दिया करते हैं। यदि रामकुमार वर्मा विष्णु प्रभाकरजीके बारेमें गंभीरतासे कुछ लिख पाते तो कोई बात थी, और यदि न लिख पाये तो कोई हर्ज नहीं। बहुतोंने नहीं भी तो लिखा है। बड़े लेखकसे हमारी आशा भी बड़ी होती है। एक बातकी ओर और ध्यान दिलाना चाहूंगा। पृष्ठ १७ पर विष्णुजीका जन्म २० जुलाई १९१२ बताया गया है, जबकि पृष्ठ ५० पर यह तिथि २१ जून १९१२ है यदि संपादक-द्वय आलेखोंको ध्यानसे देख लेते तो यह चूक सामने आनेसे बच जाती। कुल मिलाकर, यह ग्रंथ स्वागत योग्य है। □



[कृतियां : पृष्ठभूमि : परिचय]

—डॉ. विजयेन्द्र स्नातक

[२]

साहित्यकारके रूपमें शास्त्रीजीको कालजयी रचनाकार बनानेवाली उनकी चार कृतियोंका उल्लेख आवश्यक है। 'वैशालीकी नगरवधू', 'सोमनाथ', 'वयं रक्षामः' तथा 'सोना और खून' शीर्षक चार उपन्यासोंकी चर्चा इस संदर्भमें विशेष रूपसे की गयी है। 'वैशालीकी नगरवधू' को शास्त्रीजी अपनी प्रिय रम्य रचना मानते थे। इस उपन्यासको उन्होंने हिन्दी साहित्य में 'इतिहास रस' का प्रथम उपन्यास कहा है। उनकी मान्यता थी कि कल्पना और घटित घटनाओंकी विकृति से भरे ऐतिहासिक उपन्यासोंकी इतिवृत्तकी खोज करना व्यर्थ है। हां, इतिहास रसका आनन्दही इनका उद्देश्य होना चाहिये। साहित्यके आचार्योंने साहित्यमें नवरस ही स्वीकार किये हैं परन्तु उन नौ रसोंके अतिरिक्त कुछ अन्य 'अनिर्दिष्ट रस' भी हैं जिनमें इतिहास रस है। 'वैशालीकी नगरवधू' की कथावस्तुका आधार बौद्ध ग्रन्थोंमें वर्णित वैशालीकी गणिका अम्बपाली है। शास्त्रीजीने सन् १९२६ में इस कथानकको पढ़कर 'अम्बपाली' शीर्षक एक कहानी लिखी थी जो 'चांद' में प्रकाशित हुई थी। उसी समयसे अम्बपालीको लेकर उनके मनमें एक बृहद् उपन्यास लिखनेकी उत्कट इच्छा बनी हुई थी जो सन् १९४२ में पूरी हुई किन्तु अपनी पाण्डुलिपिमें कुछ परिवर्तन करनेके उद्देश्यसे उसे प्रेस में नहीं दिया। मित्रोंसे उपन्यासकी कथावस्तुकी चर्चा करदी तो एक शुभैषी मित्रने अलमारीका ताला तोड़कर वह पाण्डुलिपि चुरा ली। उसके चार वर्ष बाद पुनः कलम लेकर 'वैशालीकी नगरवधू' को जीवित किया। उसके बाद प्रकाशित होनेपर पाठकोंने जिस प्रेम और उल्लासके साथ उसका स्वागत किया, वह तत्कालीन हिन्दी उपन्यास जगत्की एक आकर्षक घटना है। मैं यहाँ उपन्यासकी समीक्षा नहीं लिख रहा हूँ, केवल उसके प्रकाशनके समयकी एक झाँकी मात्र दे रहा हूँ, 'प्रकर'—मार्च '६२—१२

मैंने यह उपन्यास पढ़कर ही इसके प्रकाशनकी संस्तुति की थी और शास्त्रीजीको रायल्टी मध्ये कुछ अग्रिम राशि भी दिलवायी थी।

'वैशालीकी नगरवधू' के प्रकाशित होनेसे पहले हिन्दीमें बाबू बृन्दावनलाल वर्माके ऐतिहासिक उपन्यास चर्चित हो चुके थे किन्तु नगरवधूके मैदानमें आतेही ऐतिहासिक उपन्यासोंका नया मानदंड स्थापित हुआ। सन् १९४८ में 'वैशालीकी नगरवधू' का गौतम बुक डिपोसे प्रकाशन हुआ और दो वर्षके भीतरही पहला संस्करण समाप्त होगया। शास्त्रीजी अपनी लेखनीके चमत्कारसे स्वयं चर्चित थे और इस नगरवधूको वैशालीसे निकालकर अपनी बगलमें दबाये भारतकी राजधानी दिल्लीकी गलियोंमें घूमते फिरते थे। उस समयके तरुण कथा-प्रेमियोंमें शायदही कोई ऐसा होगा जिसने शास्त्रीजी द्वारा निमित्त इस नगरवधूको मुद्रित अक्षरोंमें न देखा हो। भारतकी अन्य भाषाओंमें भी इसकी चर्चा हुई। किन्तु रायल्टीके झंझटके कारण अनुवाद न हो सका।

सोमनाथ

'सोमनाथ' भी शास्त्रीजीका ऐतिहासिक उपन्यास है। इसे भी उन्होंने अपनी कल्पनासे रचा है। इतिवृत्त जाननेके लिए गुजराती साहित्यमें उपलब्ध गत अंक—फरवरी ६२—में स्वर्गीय श्री आचार्य चतुरसेन शास्त्रीकी सर्जनात्मक प्रवृत्तियोंके उदय और विकासकी चर्चा की गयी थी, अब प्रस्तुत है उनकी कृतियोंका परिचय और पृष्ठभूमि। दो अंकोंमें प्रकाशित यह लेख श्री शास्त्रीजीकी जन्म शत-वार्षिकीके अवसरपर आयोजित संगोष्ठीमें भाषण रूपमें प्रस्तुत किया गया था।



विषयक सामग्रीका अध्ययन किया और गुजराती भाषा और साहित्यके विद्वानोंसे विचार-विमर्शकर कुछ सांकेतिक तथ्य एकत्रकर इस उपन्यासकी रचना की। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी रचित 'जय सोमनाथ' उपन्यास प्रकाशित हो चुका था। शास्त्रीजीने इस उपन्याससे कुछ तथ्यात्मक सामग्री ग्रहण की, ऐसा उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। महमूद गजनवीके चरित्रांकनमें शास्त्रीजीने भारत विभाजनके समयके अत्याचारोंका आरोप महमूदके चरित्रपर लाद दिया है। समयका तन्मा व्यवधान होनेपर भी मानवीय अत्याचार तो सदैव अपने अमानुष रूपमें जीवित रहते हैं। महमूद गजनवी मनुष्य था अतः मानवके कुछ नैसर्गिक गुण-दोष उसमें भी थे। शौर्य, पराक्रम, वीरता, प्रेम, अनुराग, आदि भावोंके चित्रणमें शास्त्रीजीने अपने साहित्यकार को जीवित रखा है। महमूद गजनवी, चौला देवी, भीम-देव, शोभना आदि पात्रोंकी सृष्टिमें लेखकने कुछ स्पष्टीकरण भी दिया है। उन्होंने लिखा है—“मैं मनुष्यका पुजारी हूँ और मनुष्य मेरा देवता है। परन्तु मनुष्य मानवता नहीं। मानवता मानवीय श्रेष्ठ गुणोंकी भावना की प्रतीति कराती है। जो लोग मानवताके प्रेमी हैं, वे धीर, वीर, उदात्त सच्चरित्र महापुरुषके पूजक हैं, किन्तु मैं नहीं। मैं केवल मनुष्यका पुजारी हूँ। वह मनुष्य जो घृणित, पापी, अपराधी, खूनी, डाकू, हत्यारा, लुटेरा, कोढ़ी, व्यभिचारी, पागल है—यही मेरा देवता है। इस मनुष्यमें जो कलुष है, वह अपना नहीं है, नैसर्गिक नहीं है, उसपर ऊपरसे लादा हुआ है। यह तो पुजारीका काम है कि उसे धो-पोछकर, साफ शुद्ध करके, पवित्र और पूजनीय बनाये, अपना सम्पूर्ण प्यार और सेवा उसे अर्पित करे, जैसे मलमूत्रसे लथपथ अपने बच्चेको मां करती है। यदि इन पात्रोंकी सृष्टिमें मैंने अपनी कल्पनासे मनुष्यका यथार्थ रूप अंकित किया है तो यह मेरी मान्यताका ही परिणाम है। महमूद गजनवीको लेखकने दुर्द्विष्ट, लुटेरा, अत्याचारी, लोभी, लम्पट ही नहीं रहने दिया, वरन् उसका सब कलुष धो-पोछकर उसे एक कोमल, भावुक आतुर प्रेमी बनाकर एक रमणीके आँचलकी छाँहमें उसके देश गजनवी रवाना कर दिया।

### वयं रक्षामः

'वयं रक्षामः' की रचना प्रक्रिया और प्रकाशन-

प्रबंधकी कहानों बहुत ही उलझनभरी है। मैं उसे आपको नहीं सुनाऊंगा। केवल 'वयं रक्षामः' उपन्यास जिन पाठकोंने नहीं पढ़ा है उन्हें यह अवश्य बताना चाहूंगा कि शास्त्रीजीने इस उपन्यासमें किन स्रोतोंसे क्या दोहन किया और उसे किस विधिसे प्रस्तुत किया। उन्होंने 'वयं रक्षामः' के विषयमें स्वयं लिखा है कि "मैंने प्राचीन आर्य संस्कृति और सभ्यताकी विस्मृत बातोंको इसमें मूर्त किया है। इस मूर्त कलामें मैं अपने ही पर आधारित हूँ। मैं ही अपना आदर्श हूँ। मेरेही अपने विचार हैं, भावना है, कल्पना है, मेरा अपना दृष्टिकोण है। वेद, ब्राह्मण, स्मृति, पुराण आदिसे मिस्र, मेसोपोटामिया, बेबिलोन, पर्शिया और यूनानके प्रति प्राचीन साहित्यका तुलनात्मक अध्ययन है। देव, दैत्य, दानव, यक्ष, रक्ष, मानव-आनव, आर्य-प्रात्य, मत्स्य, गरुड़, वानर, ऋक्ष-महिष आदि इतिहासातीत जातियोंकी अबतक की अविश्रुत-विस्मृत, सर्वथा नवीन, साधारण-असाधारण स्थापनाएं हैं। शिशुनोपासना है, वैदिक-अवैदिकका अद्भुत सम्मिश्रण है, नरमांसकी खुले बाजारमें बिक्री है, नृत्य है, मद्य है, उन्मुक्त-अनावृत्त यौवन है। अनहोने सर्वथा अपरिचित तथ्य मेरे इस उपन्यासमें हैं।"

'वयं रक्षामः' कहने भर को उपन्यास है। वास्तवमें यह आचार्य चतुरमेन शास्त्रीके तीस वर्षोंके, विविध विषयोंके, गहन अध्ययनका प्रतिफलन हैं। किसी उपन्यासमें इस प्रकारकी विचित्र और विलक्षण अविश्वसनीय बातें कभी नहीं लिखी गयी। जो बातें इस उपन्यास नामक ग्रंथमें दर्ज हैं उन्हें प्रामाणिक बनानेके लिए उपन्यासके अन्तमें तीन सौ पृष्ठोंका विषद भाष्य है। यह उपन्यास वास्तवमें इतिहासकी सृष्टि नहीं करता। इसलिए लेखकने इस उपन्यासके रसको अतीत रसकी संज्ञा दी है। किसीभी युगका इतिवृत्त इसमें नहीं है।

इस उपन्यासकी अभिव्यंजना और भाषा शैलीपर भी पाठकोंका ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है। उपन्यासकी कथावस्तु प्राचीन तथ्योंपर केन्द्रित है तो भाषाभी वैसी ही संस्कृतिनिष्ठ और कहीं-कहीं पूर्ण संस्कृतमय है। बहुधा अनायें महापुरुषोंका कथोपकथन जानबूझकर संस्कृतमें कराया गया है। उपन्यासका समर्पण पत्र संस्कृतमें है और इतिभी संस्कृतमें ही है। ग्रंथकी समाप्ति मन्दोदरी विलापपर हुई है, यह विलाप



भी संस्कृतमें ही है। उपन्यासमें इस प्रकारकी मिश्र भाषाने अभिव्यंजनापर गहरी चोट पहुंचायी है। मैं बड़े विनम्र शब्दोंमें कहना चाहता हूँ कि शास्त्रीजीने तीस वर्ष तक जिन विषयोंका गहन अध्ययनकर जो ज्ञान अर्जित कियाथा उसे ऐसे पाठकोंके हाथ सौंप दिया जो उसे सहर्ष स्वीकार नहीं कर सके। दोष पाठक वर्गका नहीं, स्वयं लेखकका है। उसने उपन्यास न लिखकर कथासूत्रके माध्यमसे पुरातत्त्व और भारत विद्या (इंडोलोजी) का भंडार प्रस्तुत कर दिया। शास्त्रीजी धुनके पक्के थे। भारतीय विद्याकी जानकारीके लिए उन्होंने जितना अध्ययन और सामग्री संचयनमें श्रम किया, वैसा श्रम आजके साहित्यकारके आंगनमें भी नहीं फटकता। 'वयं रक्षामः' का भाष्य उनके पांडित्य और परिश्रम का जीता-जागता चित्र है। उपन्यासको समझनेके लिए आजतक किसी साहित्यकारने ऐसा भाष्य नहीं लिखा और न भविष्यमें लिखे जानेकी संभावना और आवश्यकता है। यह अच्छा ही हुआ कि किसी उपन्यास लेखकने 'वयं रक्षामः' की शैलीका अनुकरण नहीं किया। मैं इसे उपन्यासकी कोटिमें रखनेके पक्षमें नहीं हूँ।

### सोना और खून

यह उपन्यास लेखकके अपने जीवनानुभवोंपर आधारित खंड-कथाओंका संकलन है। इस उपन्यास को शास्त्रीजीने ऐतिहासिक-सामाजिक उपन्यास माना है। यह तीन खंडोंमें प्रकाशित हुआ। शास्त्रीजीके देहावसानसे तीन वर्ष पूर्व सन् १९५८ में इसका अन्तिम खंड प्रकाशित हुआथा। इस उपन्यासके विषयमें शास्त्री जीने बड़ी स्पष्ट भाषामें, सोना और खूनकी व्याख्या की है। "सोनेका रंग पीला होता है और खूनका सुर्ख। पर तासीर दोनोंकी एक है। खून मनुष्यकी रगोंमें बहता है और सोना उसके जीवनपर खतरा लाता है। पर आजके मनुष्यका मोह खूनपर नहीं है, सोनेपर है। वह एक-एक रत्तीके लिए अपने शरीरकी एक-एक बूंद बहानेपर आमादा है। जीवनको सजानेके लिए वह सोना चाहता है, आजके सभ्य समाजका सबसे बड़ा कारोबार सोना है। सबसे बड़ा लेन-देन है, खून देना और सोना लेना।"

इस उपन्यासमें लेखकने अंग्रेजोंके भारत आगमनसे लेकर वापस लौट जाने तककी कहानीको दस भागोंमें लिखनेका संकल्प कियाथा, किन्तु तीन भाग लिखनेके प्रकर'— मार्च'६२—१४

बाद वे अस्वस्थ होगये, शेष भाग पूरे नहीं होसके। ब्रिटिश इंडिया कम्पनीके जमानेमें अंग्रेजोंने भारतसे सोना ले जानेके लिए जो उपाय और अत्याचार किये वे खून अंशमें वर्णित हैं। यह उपन्यास भाषा शैलीमें प्रसाद गुणयुक्त है। वर्णनभी रोचक और रोमांचक है। लेखकने इतिहाससे सहायता अवश्य ली है, किन्तु कल्पनाके द्वारा वर्णनको संवेदनीय बनानेके लिए मनुष्य के मनके द्वन्द्व और संघर्षका चित्रण ही अधिक किया है। 'भारतमें अंगरेजी राज' पुस्तककी झलकभी इसमें है जो उस समय एक चर्चित पुस्तक थी।

शास्त्रीजीके उपन्यासोंकी संख्या तीस है। इस आलेखमें सबकी चर्चा करना संभव नहीं है। उनकी कुछ कहानियोंने हिन्दी साहित्यमें अच्छा स्थान प्राप्त किया। 'अम्बपाली', कहानीको किशोरीलाल गोस्वामी उस समय हिन्दीकी श्रेष्ठ कहानी मानतेथे। चार सौ कहानियाँ लिखनेवाले चतुरसेनका नाम कहानी लेखकों में नहीं है। क्यों नहीं है? इसका उत्तर मेरे पास भी नहीं है। साहित्यको सम्प्रेषण और संवेदनकी तुल्यपर तोलनेवासे समीक्षक यदि इस प्रश्नका उत्तर दें तो शायद न्याय होसकेगा। शास्त्रीजीने अपने अनुभवोंको यथार्थकी भूमिपर अवस्थितकर कहानियाँ लिखी हैं। कल्पनाका अतिरेक उनमें है किन्तु कहानीके केन्द्रमें कोई घटना रहती है जो उसे सम्प्रेषणीय बनाती है। तीस वर्ष पहले शास्त्रीजीकी कहानियाँ—जैसे, दुखवा में कासे कहूँ, मेरी सजनी, कैदी, आदर्श बालक, सोया हुआ शहर आदि पाठ्य पुस्तकोंमें रहती थीं किन्तु आधुनिकता बोधने उन्हें अस्पृश्य बनाकर छोड़ दिया है। शास्त्रीजी तीसरे दशकसे बराबर कहानियाँ लिखते रहे हैं। तीस-पैंतीस वर्षमें उन्होंने चार सौ से अधिक कहानियाँ लिखीं, यह भी एक रिकार्ड है। उन्होंने अपनी एक कहानीपर फिल्म बनानेकी चेष्टा कीथी और पृथ्वीराज कपूरके पास बम्बई पहुंचेथे। एक मुस्लिम महिलाने इन्हें एक लाख रुपया फिल्म बनानेके लिए दियाथा किन्तु बम्बईमें उन्हें अपनी अंटीकी रकमभी छिनती दिखायीदी। फिल्म नगरीके प्रपंची माहौलसे बचकर निकल आये और 'जान बची और लाखों पाये' का मुहावरा याद कर प्रसन्न होते रहे। फिल्म न बना सके।



## हिन्दी भाषा और साहित्यका इतिहास

साहित्य, संस्कृति और सभ्यताका इतिहास उनका प्रिय विषय था। विवेक और संयमके क्षणोंमें शास्त्री जीका ध्यान इतिहासपर ही रहताथा। 'भारतीय संस्कृतिका इतिहास', 'सभ्यताके विकासकी कहानी', 'बुद्धपूर्व भारतकी संस्कृति', शीर्षक पुस्तकें उनके इतिहासकी अभिरुचिकी प्रमाण हैं। हिन्दी भाषा और साहित्यका बृहद् इतिहास लिखकर तो उन्होंने हिन्दी साहित्यके इतिहास लेखन-परम्परामें नवीन शैलीकी स्थापना कीहै। साढ़े सात सौ पृष्ठोंका यह सचित्र इतिहास किसी भी हिन्दी साहित्यके इतिहासका अनुकरण नहीं करता। मिश्र बंधु विनोदके रचयिता श्रीश्यामबिहारी मिश्र और शुकदेवबिहारी मिश्रने सोलह पृष्ठकी भूमिकामें इस इतिहासको हिन्दी साहित्यका वास्तविक गंभीर इतिहास स्वीकार कियाहै। इस इतिहासमें लेखकने जिन स्रोतोंसे सामग्रीका चयन कियाहै, वह प्रामाणिक है। मिश्र बंधुओंकी दृष्टिमें इस इतिहासको हिन्दी साहित्यका ऐतिहासिक अनुसंधानपूर्ण इतिहास मानना चाहिये। मैं नहीं जानता कि आजकी पीढ़ीके प्राध्यापक और विद्यार्थी इस इतिहासके नामसे भी परिचित हैं या नहीं। सन् १९४६ में लाहौरसे यह प्रकाशित हुआथा। दुर्भाग्यसे भारत विभाजनके बाद इसकी प्रतियां पुस्तकालयों और विश्वविद्यालयोंमें नहीं पहुंच सकीं। पहला संस्करण सचित्र होनेके साथ अनेक प्रकारकी नवीन जानकारीयोंसे परिपूर्ण था। वैसा सूचनात्मक इतिहास हिन्दीमें कोई दूसरा लिखाही नहीं गया।

आचार्य चतुरसेन शास्त्रीके साहित्यिक प्रदेयका मूल्यांकन करते समय उनके कृतित्वके सभी पहलुओंपर दृष्टि निक्षेप आवश्यक है। शास्त्रीजीका लेखन अतीत और वर्तमानसे जुड़ा रहा। उन्होंने अतीतोन्मुखी अंधविश्वासी दृष्टिसे अतीतको नहीं देखा। उनकी दृष्टि कार्य-कारण सम्बन्धसे संयुक्त होकर अतीतमें झांकतीथी। इसलिए अतीतका वरेण्य उनके लिए ग्राह्य होताथा। धुंध और धुंएमें आवृत अतीतको प्रकाशमें लानेकी वे सदैव चेष्टा करते रहे। उपन्यास और कहानियोंमें वर्तमान युगका यथार्थ ही उन्हें अभीष्ट था। उन्होंने राजा-महाराजा, सेठ-साहूकारोंके बीचके रहकर जो देखा उसे निर्भीक

शैलीमें लिखा और दलित-शोषित वर्गका जो क्रन्दन सुना उसे अपनी कराहमें शामिलकर शब्द द्वारा ध्वनित किया। शास्त्रीजीका कथा साहित्य इसीलिए पूरी तरह सम्प्रेषणीय और संवेदनीय बना रहा। मूल्यांकनकी कसौटी धारण करनेवाले आलोचक यदि अपने निकषपर उनके साहित्यकी परख नहीं कर सके तो इसमें रचनाकारका क्या दोष है।

## युग-निर्माता साहित्यकारकी मान्यता

आचार्य चतुरसेनने अपनी साहित्यिक मान्यताएं और विचार अपनी कृतियोंमें स्थान-स्थानपर व्यक्त किये हैं। 'वैशालीकी नगरवधू' शीर्षक अपने प्रिय उपन्यासको पंडित जवाहरलाल नेहरूको समर्पित करते हुए उन्होंने लिखाहै—“ओ ब्राह्मण, तेरे राज्यमें शत-प्रतिशत अमुविधाओं और विपरीत परिस्थितियोंमें जीकर हमने यह ग्रंथ तैयार कियाहै। तू जो पाश्चात्य राजनीतिके ध्वस्त मार्गपर अपने आसपासके कूड़े-करकटका भार लाद उतावलीमें देशको घसीट लेचला और मानव संस्कृतिके निर्माता तथा कोटि-कोटि जन-पदके शास्ता साहित्यजनोंको एक बारगीही भूल बैठा, इससे तुझपर निर्भर रहनेवाले और तुझे प्यार करनेवालोंको सिर धुन-धुनकर अपनेही रक्तमें स्नान करना पड़ा। तो भी तुझे वे प्यार करतेहैं। किन्तु मैं रोषावेशित हूं, क्योंकि मैंने उन सबसे अधिक तुझे प्यार कियाहै, इसलिए तू मेरी दृष्टिमें पूर्वीय भूखंडपर एकमात्र जीवित सर्वश्रेष्ठ पुरुष है। अपने साहित्यिक रोष और हार्दिक प्यारकी स्मृतिमें यह अपनी प्रतिनिधि रचना तुझे भेंट करताहूं।” इस समर्पणमें शास्त्रीजीको साहित्यकारकी चिन्ता है। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें साहित्यकारको नये युगके निर्माणमें सबसे बड़ी भूमिकाका निर्माता स्वीकार कियाहै। उन्होंने लिखाहै कि “भावी राजनीतिके निर्माणके लिए नये दर्शनकी आवश्यकता है जिसका निर्माण साहित्यकार करेंगे। साहित्यकारकी भूमिका को उन्होंने पंडित नेहरूको लिखे अपने स्मृति-पत्रमें बड़े विस्तारसे रेखांकित कियाहै। उम स्मृति-पत्रमें साहित्य, संस्कृति और राजनीतिका ब्योरेवार विस्तृत वर्णन था।

अपनी लेखन-शैली सम्बन्धमें शास्त्रीजीने कई स्थानों पर चर्चा कीहै। इन चर्चाओंमें प्रायः उनका अहं ही वाचाल होकर बोलाहै। उस समयके कुछ समीक्षकोंने उन्हें 'लोह लेखनीके धनी' शब्दसे अभिहित कियाथा।



उन्होंने इस विशेषणको स्वीकार करते हुए जो स्पष्टीकरण दिया उसमें भी उनका अहं प्रतिध्वनित है। उन्होंने कहा—‘मेरी भाषाके तीखेपन और विचारोंकी उग्रताके कारण मुझे लौह-लेखनीका धनी कहा गया। मेरी स्पष्ट और सीधी तीर-सी चुभनेवाली वाणीभी इसका कारण हो सकती है। इसका कारण यह है कि मेरे साहित्यमें कल्पना कम और स्थिर-चिर सत्य बहुत अधिक है। मैं स्वभावसे अत्यन्त कठोर होनेके साथ-साथ अति कोमलभी हूँ। मेरे निर्णयसे कोई शक्ति, कोई भय, कोई प्रलोभन मुझे हटानहीं सकता। लिखनेमें पहले मैं कोई तैयारी नहीं करता—खासकर कथा-साहित्यकी रचनामें। सिर्फ विरोधी तत्त्वोंका मन में उद्दीपन करता हूँ। मन सुलगने लगता है तो कलम उठाता हूँ। फिर यह कलम नहीं, दुधारा खाँडा हो जाता है। मैं आगापीछा नहीं सोचता। चौमुखी मार करता हूँ। ऐतिहासिक उपन्यासोंमें इतिहास तत्त्वको पीछे—बैक ग्राउंडमें फेंक देता हूँ और स्थिर सत्यके आधारपर कल्पना मूर्तियोंको आगे ले आता हूँ। मेरी यह कल्पना मूर्ति बनती है दृढ़ और ऐतिहासिक तथ्य बन जाते हैं वाराती। बस यही मेरे कथा साहित्यका टेकनीक है। मैं उपन्यासके टेकनीकको कुछभी नहीं जानता। इस सम्बन्धमें मैंने कोई साहित्य पढ़ा नहीं। मैंने यह विद्या कहीं किसीसे सीखी नहीं। मैं इस विषय में कुछ जानता भी नहीं हूँ। सबसे बड़ा प्रभाव तो मेरे उपन्यासोंपर मेरे जीवनका है। एक दरिद्र और मजदूर माता-पिताके घर जन्म लेनेके कारण बचपनसे ही मुझे अभावने छुआ। मेरे बचपनमें अभावके स्पर्श का दाग तो अबतक मेरे दिलपर है।”

शास्त्रीजीने अपनी रचनाओंमें अपने अहंको बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। अपनी कुछ कृतियोंको वे विश्व साहित्यमें स्थान पाने योग्य मानते थे। भारतीय पुरस्कारोंके विषयमें उनका मत था कि ये सब पुरस्कार गुटबंदी और विज्ञापनवाजीपर आधारित है। जब कभी उन्हें अपनी रचनापर पुरस्कार प्राप्त न होता तो वे पुरस्कार प्रदाता या निर्णायक मंडलको कठोर-से-कठोर भाषामें चुनौती भरे पत्र लिखते और अपनी रचनाको तुलनात्मक दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ ठहरानेमें कोई संकोच नहीं करते थे। ऐसे पत्र उन्होंने शिक्षा मंत्रालय, सूचना प्रसारण मंत्रालय, आकाशवाणी (रेडियो) के निदेशक आदिको लिखे थे। मौलाना आजादको अपनी

‘प्रकर’—मार्च १९२—१६

पुस्तक ‘वैशालीकी नगरवधू’ की प्रति भजकर लिखा था कि क्या इसकी समता करनेवाला उर्दू में कोई उपन्यास है? कहनेका तात्पर्य यह कि शास्त्रीजी अपने लेखनमें अहंवादी भूमिका निभानेमें बहुत उग्र और प्रचंड थे।

शास्त्रीजीने अपने चार-पांच नाटकोंमें भी राजपूत राजाओंके शौर्य प्रदर्शनके साथ मुस्लिम आक्रान्ताओंको क्रूर, कपटी, हिंसक और गर्हित चित्रित किया है। इस चित्रणमें उन्होंने इतिहासको आधार न बनाकर अपनी मान्यताको ही प्रमुख स्थान दिया है। राजसिंह, छत्रसाल, अमरसिंह, उत्सर्ग और क्षमा शीर्षक नाटकोंमें इस प्रकारके चरित्र पाये जाते हैं। चतुरसेनको नाटककारोंमें स्थान न मिलनेका एक कारण यह भी है कि उनके नाटक राष्ट्रीय एकतामें सहायक न होकर हिन्दू राजाओं की वीरताके गुण कीर्तन करनेवाले थे। स्वतंत्रता आन्दोलनके समयका राष्ट्रीय वातावरण इस प्रकार की रचनाओंके अनुकूल नहीं था।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री अपने युगमें अपनी अभिव्यंजना शैलीके लिए विख्यात थे। भारतके कई प्रांतों में घूम-फिरकर उन्होंने बोलचालकी कई भंगिमाएँ स्वायत्त कर ली थीं। बोलियोंके तेवर और भाषाकी मुहावरेदानीपर उनका पूर्णाधिकार था। किशोरीलाल गोस्वामी, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, माखनलाल चतुर्वेदी, गणेशशंकर विद्यार्थी, हितैषी, बनारसीदास चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, वृन्दावनलाल वर्मा, दिनकर, राम कृष्णदास, मिश्रबंधु, डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा आदि वरिष्ठ लेखकोंने चतुरसेन शास्त्रीकी लेखनीका लोहा माना है। अपने पत्रोंमें उन्होंने शास्त्रीजीको समर्थ शैलीकार स्वीकार किया है। वैसी समृद्ध और सशक्त भाव-भंगिमा की भाषा लिखनेवाले साहित्यकारोंको अब ढूंढ-खोजकर ही पाया जा सकता है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री केवल उपन्यास, कहानी, नाटक आदि ललित साहित्य और रम्य रचनाओंसे जुड़े साहित्यकार नहीं थे। उनका रचना-संसार बहुत व्यापक था। समाज, संस्कृति, राजनीति, इतिहास, आयुर्वेद, धर्म और युगीन समस्याओंपर उन्होंने बेबाक और निर्भीक शैलीमें विचार व्यक्त किये हैं। शास्त्रीजी का वैचारिक क्षितिज परम्परावादी, संकीर्ण या रुढ़िग्रस्त नहीं था। विद्रोह और क्रान्तिकी चिन्तनगति भास्वर उनका लेखन अतीतको समेटता हुआ, वर्तमानके होकर अनागतकी झांकी प्रस्तुत करनेवाला है। प्रगति-



शीलताकी अपनी परिभाषा थी और उसीके अनुसार अपनेको प्रगतिशील मानते थे। हिन्दीमें 'खयास' शीर्षक से प्रथम वैज्ञानिक उपन्यास लिखकर उन्होंने मनुष्यकी प्रथम चन्द्रलोक यात्राका वर्णन किया है। नारी स्वातंत्र्य के लिए अपराजिता शीर्षकसे उपन्यास लिखकर उन्होंने वर्तमान युगकी संघर्षशील प्रगतिकामी नारीका चित्र अंकित किया। 'मौतके पंजेमें जिन्दगीकी कराह' भी मनुष्यके स्वतंत्र और उन्मुक्त चित्तनपर प्रकाश डालने वाली पुस्तक है। उन्होंने अपने लेखनमें अनुभव और संवेदनके एकीकरणका सदैव ध्यान रखा है। उनका दृढ़ विश्वास था कि रचयिताके लिए द्रष्टा होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है, अन्यथा वह सच्चा स्रष्टा होही नहीं सकता। जिन बिम्ब और प्रतीकोंकी वह योजना करता है उनमें अन्तर्नेत्रोंके सम्मुख दृश्य प्रस्तुत करनेकी शक्ति होनी चाहिये। आलंकारिक अप्रस्तुत विधानका इसी कारण उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया।

संक्षेपमें, चतुरसेन शास्त्री हिन्दी साहित्यमें उस

व्यक्तिकी गौरवपूर्ण नाम है जिसने अपने जीवनमें नाना प्रकारके द्वन्द्व और संघर्ष झेलकर व्यापक दृष्टि प्रसारके साथ साहित्य सृजन किया। साहित्यिक विधाओंके साथ सामाजिक एवं राजनीतिक संदर्भोंपर जितना सामयिक लेखन उन्होंने किया उस युगमें कोई दूसरा साहित्यकार नहीं कर सका था। वे स्वयं नवीन शैली निर्माता और भाव-विचार सम्पदासे समृद्ध विलक्षण कोटिके रचनाकार थे। उनकी मान्यता थी कि साहित्य समाजका दर्पण मात्र नहीं है वह सामाजिक संस्कारोंका संयोजक और उनकी संरचनात्मक सामर्थ्यकी उदात्त परिणति भी है। शास्त्रीजीने अपनी रचनाओंमें इतिहासका पुनराख्यान किया है किन्तु उनका इतिहास दर्शन वही नहीं है जो स्मृत और सुरक्षित रखा जाता है बल्कि वह है जिसके स्मरण करनेकी आवश्यकताका अनुभव हमें होता रहता है। शास्त्रीजी इसी आवश्यकता को ध्यानमें रखकर अपने साहित्यमें संस्कृति और इतिहासको जीवित रखना चाहते थे। □

## अध्ययन : आलोचन

### आस्था और सौन्दर्य :

लेखक : डॉ. रामविलास शर्मा

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दीके दिग्गज साहित्यकार हैं। उन्होंने अपने व्यक्तित्व, अपनी जीवन-पद्धति और अपने लेखनसे केवल हिन्दी साहित्यमें ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्यमें जो स्थान बनाया है, वह विरल है। उन्होंने अपने साहित्यमें जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, उसे अपने जीवनमें उतारा भी

है। इसीलिए उनकी रचनाएं इतनी प्रखर और निभ्रान्त बन सकी हैं। मूल्यहीनता, स्वार्थपरता और बौनेपनके वर्तमान सन्दर्भमें युवा पीढ़ीके लिए उनका व्यक्तित्व और कृतित्व दिग्दर्शक प्रकाशस्तम्भके समान है। उनकी रचनाएं बार-बार मनन करनेकी चीजें हैं। यही कारण है कि १९६१ में प्रकाशित उनके आलोचनात्मक निबन्धोंके संग्रह 'आस्था और सौन्दर्य' के दूसरे परिवर्द्धित संस्करणको पाकर पाठक आनन्दानुभव करेंगे।

'आस्था और सौन्दर्य' के पहले संस्करणके तीन निबन्ध—'अनास्था और अयथार्थका साहित्य', 'अनास्थावादी प्रतिमानोंकी परम्परा' तथा 'अनास्थावादी खण्डित कला' इस दूसरे संस्करणमें नहीं हैं। इन्हें डॉ. शर्मा ने अपनी पुस्तक 'माक्सवादी और प्रगति-

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२ । पृष्ठ : २५७; डिमा. ६० (द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण), मूल्य : १२०.०० रु.।

'प्रकर'—चैत्र'२०४६—१७



शील साहित्यमें' सम्मिलित कर लिया है। इनके स्थान पर इस दूसरे संस्करणमें दो नये निबन्ध जोड़े गये हैं। एक निबन्ध गिरिजाकुमार माथुरपर है 'आधुनिक हिन्दी कविता : विकासकी दिशा'; और दूसरा निबन्ध फ्रांसकी राज्यक्रान्ति और यूरोपीय साहित्य एवं चिन्तनपर उसके प्रभावपर है 'फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति और मानव-जातिके सांस्कृतिक विकासकी समस्या'। इन दो निबन्धोंके सम्मिलनसे 'आस्था और सौन्दर्य' के दूसरे संस्करणका महत्त्व बढ़ा है।

'आस्था और सौन्दर्य' के इस दूसरे संस्करणमें सम्मिलित सोलह निबन्धोंका सम्बन्ध सिद्धान्तों, प्रवृत्तियों, रचनाओं और रचनाकारोंसे है। लेकिन सभी निबन्धोंमें मूल सूत्र साहित्यकारकी आस्था और सौन्दर्य-बोधका है। सैद्धान्तिक या प्रवृत्तिमूलक निबन्धोंमें डॉ. शर्माने अपनी मार्क्सवादी प्रतिबद्धताके अनुकूल साहित्यकारकी आस्था और उसके सौन्दर्यबोधको यथार्थ और वस्तुपरकताके साथ जोड़ा है। उन्होंने अपने सभी निबन्धोंमें भाववाद, अध्यात्मवाद और व्यक्तिवादका खण्डन किया है और यथार्थवाद, भौतिकवाद तथा समाजवादका मण्डन किया है। ऐसे स्थलोंपर मतभेदकी पूरी गुंजाइश है। मुझे बराबर यह अनुभव होता है कि पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा और पश्चिममें प्रचलित होनेवाले नये-नयेवादोंने भारतीय मनीषाकी मौलिक सोचको बाधित किया है। इसका अपवाद डॉ. रामविलास शर्मा भी नहीं हैं। आज जबकि सोवियत रूस और पूर्वी यूरोपमें मार्क्सवादी विचारधारापर आधारित राज्य-व्यवस्था ताशके महलकी तरह ढह गयी है तब डॉ. रामविलास शर्माकी घोर आत्मविश्वासपूर्ण मार्क्सवादी पक्षधरता अटपटी लगती है। पास्तरनाकके उपन्यास 'डॉ. जिवागो' पर लिखित उनके निबन्धका यह वक्तव्य आज कितना बेमानी लगता है—'रूसी क्रान्तिमें सब कुछ अच्छा-ही-अच्छा नहीं हुआ, न सोवियत समाज दोषोंसे पूर्णतः मुक्त है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि रूसी समाजवादी क्रान्तिने विश्वपूँजीवादका घेरा तोड़ा, एक नयी व्यवस्थाको जन्म दिया, रूसी जनताके आर्थिक और सांस्कृतिक जीवनमें बुनियादी परिवर्तन किये और नाजी जर्मनीको पराजित करके विश्व पूँजीवादको दूसरा जबर्दस्त धक्का दिया। इन सब घटनाओं से मानवजातिका हित हुआ है। (पृष्ठ १६१)। रूस तथा जर्मनीकी आज जो स्थिति है, उसके सन्दर्भमें 'प्रकर'—मार्च'६२—१८

उपयुक्त वक्तव्यको लेकर क्या यह प्रश्न पूछना अनुचित होगा कि क्या सचमुच रूसी क्रान्तिने विश्व पूँजीवादका घेरा तोड़ा और रूसी जनताके आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवनमें बुनियादी परिवर्तन किया? मनीषा मत यह है कि डॉ. रामविलास शर्मा जड़ मार्क्सवाद नहीं हैं। उन्होंने अपनी मौलिकताको रूस या मार्क्सवाद पास गिरवी नहीं रख दिया है। अतः 'आस्था और सौन्दर्य' के निबन्धोंमें बार-बार जड़ मार्क्सवादियों पर उन्होंने चोट की है और मार्क्सवादके फार्मूलावाद रूपका खण्डन किया है।

डॉ. रामविलास शर्मा उस मार्क्सवादी जड़ताके विरोधी हैं जो प्रत्येक कलासे एकही विषयवस्तुकी मांग करती है। 'कलाका माध्यम और सांस्कृतिक विकास शीर्षक निबन्धमें उन्होंने लिखा है—'कभी-कभी हमें समाजवादी लेखकोंमें इस प्रकारके विचार मिलते हैं: कलामें मानव-श्रमका चित्रण होना चाहिये अथवा कलात्मक कार्यवाहीको समाजवादी निर्माणका अभिन्न अंग होना चाहिये। यदि कोई चित्रकार किसी प्राकृतिक दृश्यका चित्र आंकता है तो उससे समाजवादकी रचनामें कितनी सहायता मिल सकती है? उतनी जितनी अजन्ताके चित्रोंसे। इसीलिए प्रत्येक कलासे एकही विषयवस्तुकी मांग करना अनुचित है।' (पृ. ४६)। डॉ. रामविलास शर्मा इस जड़ मार्क्सवादी स्थापनाके भी विरोधी हैं कि अर्थ और राजनीति ही सब कुछ है। साहित्य और कला कुछ नहीं। कालिदासपर लिखे अपने निबन्ध 'साहित्यके स्थायी मूल्योंकी समस्या: कालिदास' में उनकी स्थापना है कि 'आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्धोंके अनुरूप मनुष्यके बहुतसे विचार बदल जाते हैं, किन्तु उसका इन्द्रियबोध और भावजगत् परिवर्तनशील होते हुए भी आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्धोंकी प्रतिच्छवि नहीं है।' (पृ. ७१)। उन्होंने रचनाकारकी मौलिक और व्यक्तिगत प्रतिभाको स्वीकार किया है। उनका यह कथन बिल्कुल ठीक है कि 'साहित्य किन्हीं विशेष सामाजिक परिस्थितियों ही रचा जाता है। इन परिस्थितियोंकी छाप उसपर पड़ती है। किन्तु साहित्य किसी समाज-व्यवस्था या यान्त्रिक प्रतिबिम्ब नहीं होता। सामाजिक परिस्थितियाँ साहित्य रचनेके उपकरण प्रस्तुत करती हैं; लेकिन वस्तुगत परिस्थितियोंके साथ साहित्यकारका आत्मगत प्रयास भी आवश्यक होता है। यह बिल्कुल सम्भव है कि



छाना अनु-  
शब्द पूं जो-  
थिक तथा  
? गनो-  
भावसंवा-  
मा माकसे-  
स्था और  
संवाशि-  
भूलाव-  
जड़ता-  
तुकी भां-  
विकास-  
कभी हम-  
मिलतेहैं-  
ये अथवा  
अभिन्न-  
प्राकृतिक-  
रचना-  
जितनी-  
से एक-  
(४६)।  
स्थापना-  
व कुछ है-  
पर लिखे-  
समस्या-  
र्थक और  
से विचार-  
भावजग-  
जनीति-  
। उन्होंने  
प्रतिभा-  
ठीक है।  
स्थितियों-  
प उस-  
वस्था-  
स्थिति-  
किन इ-  
आत्म-  
व है कि

उपकरण श्रेष्ठ हों, किन्तु उनका समुचित उपयोग करनेवाले कविका अभाव रहे। एकही समाज और एक ही वर्गके व्यक्तियोंकी मेधा, सहृदयता, जीवनदर्शनकी समतामें भेद होता है। यह भेद बहुत कुछ साहित्यका उत्कर्ष निश्चित करता है।' (पृ. ६६)।

डॉ. रामविलास शर्माकी रुचि नये और पुराने, स्वदेशी और विदेशी दोनों प्रकारके साहित्यमें है। साहित्यके साथ-साथ इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र, भाषाविज्ञान आदिमें भी उनकी गति है। वे जब लिखतेहैं तब उनके लेखनमें ये सब चीजें एक साथ जख्मित होतीहैं। उनकी दृष्टि और उनका अध्ययन एकांगी, विशेषांकृत और सीमित नहीं है। 'आस्था और सौन्दर्य' के निबन्धोंमें ही उन्होंने लॉजाइनस, मल्लिदास, शेक्सपीयर, प्रेमचन्द, अमृतलाल नागर, कृष्णलाल वर्मा, पास्तरनाक, इलाचन्द्र जोशी, जगन्नाथदास, कॉलरिज, वड्सवर्थ, शेली, कीट्स, बायरन, इत्यादिकी रचनाओंका आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस अध्ययनमें अन्य चिन्ताओंके साथ-साथ उनकी एक चिन्ता साहित्यकी स्थायित्व प्रदान करनेवाले तत्त्वोंकी खोजकी रही है। मुझे लगता है कि उन्होंने साहित्यकी स्थायित्व प्रदान करनेवाले तत्त्वोंका इस पा लिया है—'मनुष्यके विचार बदल जातेहैं, उनके भावजगत्में भी यथेष्ट परिवर्तन होतेहैं, किन्तु उनका इन्द्रियबोध इनसे अधिक व्यापक होता है। इन्द्रियबोधके क्षेत्रमें यह सदा सम्भव है कि सामाजिक विकासकी दृष्टिसे एक पिछड़ी हुई व्यवस्थाका कवि व्यक्तिगत अपनी कोटिके रचनाकारके अभावमें सामाजिको सार्थक करता रहे।' (पृ. ६२)। अर्थात् साहित्यकी स्थायित्व प्रदान करनेवाला मूल तत्त्व इन्द्रियबोध है। केवल इन्द्रियबोध साहित्यकी महान् शक्ति बनाता; लेकिन उसे स्थायित्व अवश्य प्रदान करता है।

'आस्था और सौन्दर्य' के निबन्ध सरस, रोचक, मनोरंजक और प्रभावशाली हैं। इन निबन्धोंमें ये गुण जगत्प्रभू जीवन्त भाषा और प्राञ्जल अभिव्यक्तिके साथ-साथ ही आयेही हैं; साथही लेखककी शास्त्रार्थी और विद्वानकी प्रवृत्तिके कारणभी आयेहैं। आधुनिक साहित्यमें डॉ. रामविलास शर्मा जैसा शास्त्रार्थी और शास्त्रीय दृष्टिकोणसे ही कोई दूसरा हो। वे अपने धार-वाक्यों, तीक्ष्ण व्यंग्य और उन्मुक्त परिहाससे अपने

विरोधीको धराशायी और निर्वाक कर देतेहैं। 'आस्था और सौन्दर्य' के निबन्धोंमें उनकी शैलीके इस गुणसे पाठकोंका बार-बार साक्षात्कार होगा। एक उदाहरण 'काव्यमें उदात्त तत्त्व और रमणीयता' शीर्षक निबन्धमें वहां देखाजा सकता है जहां उन्होंने डॉ. नगेन्द्रकी स्थापनाओंका खण्डन किया है। (पृ. ३८-३९)। इसी प्रसंगमें डॉ. नगेन्द्रपर व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा है—'नगेन्द्रजीने भूमिकामें एकाधिक बार लिखा है कि लोगिनुनने अलंकारोंका मनोवैज्ञानिक विवेचन किया है। उस विवेचनमें मनोवैज्ञानिक क्या है, इसकी व्याख्या कहीं नहीं की। उस विवेचनको उन्होंने 'उच्छ्वासपूर्ण' भी कहा है। यह स्पष्ट नहीं है कि जो विवेचन उच्छ्वासपूर्ण है, वह मनोवैज्ञानिक कैसे है। सम्भव है, इस प्रकारकी व्याख्याका आधार ही कोई उच्छ्वासपूर्ण मनोविज्ञान हो।' (पृ. ४१)। पास्तरनाकके उपन्यास 'डॉक्टर जिवागो' का एक अंश उद्धृत करनेके बाद डॉ. रामविलास शर्माने उसपर टिप्पणी जड़ी है—'किस अनुपम सादगी और तेजीसे खींची हुई विधाताकी रेखाकी तरह वह गायब हो जाता है। उसकी कवित्वपूर्ण आवाज पीठके पीछेसे नहीं, दूसरे कमरेसे नहीं, किसी गुप्त स्थानसे आती है जिसका पता उसकी पत्नी और उसके मित्रोंको नहीं है। यह सब 'जीवन' का पुनर्निर्माण करनेके लिए। मरीनाकी जान गयी, जिवागोकी अदा ठहरी।' (पृ. १५५)। इस टिप्पणीमें व्यंग्यभी है और परिहासभी।

'आस्था और सौन्दर्य' के निबन्धोंके इतने विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह संग्रह महत्त्वपूर्ण, संग्रहणीय और पठनीय है। □

## नये कवियोंका पुनर्मूल्यांकन : भाग १, २

लेखक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

नये कवि किन्हें कहा जाये और उनके नयेपनको कितन-कितन बिन्दुओंसे उमारा जाये—इस सन्दर्भमें पुस्तकोंकी कमी नहीं है। परन्तु जिस संकल्पना,

१. प्रका. : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, २७१३ कूचा चेलान, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२।  
पृष्ठ : क्रमशः : २२४, १८४; क्रा. ६१; मूल्य : क्रमशः : ६०.०० रु., ५०.०० रु।



विराट् उद्देश्यके साथ ये पुस्तकें लिखी गयी हैं, उनका अपना साहित्यिक और ऐतिहासिक महत्त्व है। सम्भवतः नये कवियोंका इतना नीर-क्षीर-विवेकी और संतुलित मूल्यांकन पहली बार हुआ है। ऐसे मूल्यांकनके पीछे एक प्रखर आलोचककी दीर्घ-साधना है। आलोचनाके क्षेत्र में इस लेखकने न केवल पांच सौ से अधिक कृतियोंकी आलोचना की है, अपितु अपने गहन अध्ययन, मनन, विश्लेषण एवं चिन्तनमें आलोचनाकी गति और दिशा दी है।

कृतिके खण्ड दो का पहला आलेख है—‘सृजन और समीक्षा : कुछ सामयिक सवाल’ (पृ. ७-२०)। इसमें लेखकने रचनाकार एवं समीक्षकके अंतर एवं सम्बन्ध को रेखांकित किया है, एक समीक्षककी भूमिकाको भी स्पष्ट किया है—‘यदि युगानुरूप सामाजिक सरोकारका गहरी पकड़ रचनाकारके लिए अनिवार्य है, तो परिवर्तनके जीवंत तत्त्वोंको समझना समीक्षककी जिम्मेदारी है। मानवीय संवेदनासे दोनों जुड़े हैं याने दोनोंकी आधारभूमियां वस्तुजगत्से प्राप्त अनुभव और जीवन-मूल्योंकी खोज है। रचनाकार यदि वस्तुस्थितिका रूपायन करता है, तो समीक्षककी दृष्टि इस बातको ताड़ती है कि कहीं जीवन मूल्योंकी अवहेलना तो नहीं हुई।’ (पृ. ७)। इन्हीं जीवन मूल्योंका अनुसन्धान लेखक समीक्षक नये कवियोंमें करता रहा है और इसमें उसे सफलता मिली है।

कृतिके भाग एकमें तीन कवियोंका मूल्यांकन हुआ है—अज्ञेय, नागाजुन, मुक्तिबोध। ध्यान रखा गया है कि प्रत्येक कविके मूल्यांकनमें ये बिन्दु समाविष्ट हों—कविकी प्रमुख प्रवृत्तियां, उनकी कृतियां, कृतियों का प्रतिपाद्य, उनका शिल्प, प्रमुख कृतियोंपर स्वतंत्र आलेख, समकालीन कविसे उनकी तुलना तथा प्राप्त निष्कर्ष एवं कविका नयी कविताके क्षेत्रमें स्थान। लेखक कोई स्थापना बिना किसी समुचित तर्क और प्रमाणके नहीं करता। इस कृतिमें इन तीन मूधन्य कवियोंके मूल्यांकनके पूर्व वह ‘नयी कविता: स्वरूप और प्रवृत्तियां’ शीर्षक लेख भूमिका स्वरूप देता है जिसमें नयी कविताकी सर्वमान्य अवधारणाका उद्घाटन करते हुए उसकी प्रवृत्तियोंपर विरमता है। वादों-विवादों, मत-मतांतरोंके कुञ्जटिकाच्छन्न वातावरणसे नयी कविताको बाहर निकालना तथा उसके असली स्वरूपकी पहचान कराना लेखक आवश्यक मानता

है। इसीलिए उसका मानना है—‘यह तथ्य सर्वमान्य है कि छायावादकी अतिशय भावुकता, रागात्मकता, वायवीयता, आत्मनिष्ठा और सुकुमार, स्निग्ध शब्दावली जब आधुनिक जटिल जीवनकी अभिव्यक्तिमें असमर्थ होने लगी तब बौद्धिक धरातलपर सामाजिक जीवनकी मूर्त अनुभूतियोंको अपनाते हुए, एक वर्ग प्रगतिवादके नामसे सामने आया जिसने ‘राजनीतिक प्रयोजन’ से साध्यवादी दर्शन स्वीकार किया। एक दूसरा वर्ग शैली-शिल्पके नवीन प्रयोग अपनाकर नयी युग-चेतनाके अनुरूप बौद्धिक धारणाओंसे जुड़ा हुआ प्रयोगशीलताको महत्त्व देने लगा। कालांतरमें यही प्रयोगवाद ‘नयी कविता’ के नामसे अभिहित किया गया। समीक्षकोंने नयी कवितामें उन सभी कवियोंको स्वीकार किया, जिन्होंने मानव-मूल्योंके विभिन्न आयामोंको नयी अर्थवत्ता और सार्थकता प्रदान की। इसमें प्रयोगवादी दृष्टान्तके प्रगतिशील कविभी सम्मिलित हुए और प्रगतिशील चिन्तनके स्वस्थ तत्त्वोंका समाहार करनेवाले प्रयोगवादी कवि भी। नयी कविता प्रगति और प्रयोगके जीवंत तत्त्वोंको लेकर चलनेवाली कविता है। (पृ. ८)। इस लेखमें लेखक नयी कविताके स्वरूप, प्रवृत्तियोंकी पहचान कराता हुआ उसके शिल्पकी ओर भी ध्यान आकृष्ट करता है—‘उसके शब्द, लय और अर्थकी संगतिपर विशेष जोर देता है और उसे गहरे अत्यन्त निकट मानता है। उसका मानना है—‘वह भले ही ‘रसास्वादन’ को रूढ़ अर्थोंमें स्वीकार न करे, किन्तु अपनी विम्बधर्मिता, अनुभूतिजन्य वैचारिकता और पौराणिक प्रसंगोंके आधारपर युगानुरूप-समस्याओंके समाधान प्रस्तुत करनेमें नयी कविता अपनी सामर्थ्यका परिचय देती है।’ (पृ. १५)।

अज्ञेयके मूल्यांकनके क्रममें उनकी काव्य-विषयक मान्यताओं और उनके सांस्कृतिक उन्नयनपर विचार किया गया है, तो उनके काव्य विकासका केन्द्रीय स्वर प्रणयानुभूति एवं प्रकृति माना गया है। उनके आत्म-चिन्तन, आत्मान्वेषण और रहस्यवादको, रेखांकित किया गया है। उनकी वैयक्तिकता सामाजिक चेतनाका मूल्यांकन करते हुए उनके भाषा-शिल्प और नवें दशक के काव्य-सृजनका अनुशीलन हुआ है।

लेखक अज्ञेयको नयी कविताका अगुआ मानता है। उसके पीछे कारण हैं अज्ञेयकी चेतना और संस्कार। एक ओर उन्होंने सरलीकरणसे दूर काव्या-



त्मक गरिमाकी रक्षा करते हुए शिल्पगत प्रयोग किये हैं, तो दूसरी ओर गहरे संवेदनात्मक सूत्रों द्वारा व्यक्तित्व की खोज और आत्मान्वेषणकी चेष्टा। उनके लिए कविता प्रयोगका विषय है और सत्यान्वेषणका मुख्य ध्येय। अज्ञेयने जो स्थापना दी है, उसका निर्वचन, विवेचन भी तदनुकूल करते गये हैं यथा — 'कविता ही कविता परम व्यक्तित्व है'। इस आधारपर हमें उनकी कविताओंमें निहित कवि-कर्म, कवि-दायित्व और काव्य चेतनाके वास्तविक स्वरूपको देखनेकी चेष्टा करनी चाहिये।' (पृ. २६)। अज्ञेयमें एक ओर प्रकृतिमें चेतनाकी अभिव्यक्ति है, तो दूसरी ओर अपनी मनः-स्थितिका प्रकृति परिवेशमें चित्रांकन।

जहांतक जीवन-मूल्योंका अनुसंधान और उसे सह-जनेका प्रश्न है, अज्ञेयमें सामाजिक जीवनके वैषम्यके प्रति घोर आक्रोश है। वे अमानवीय कृत्योंमें संलग्न पूँजीपतियोंको खुलेआम ललकारते हैं—

'तुम सत्ताधारी, मानवताके शवपर आसीन,  
जीवनके चिर-रिपु, विकासके प्रतिद्वन्द्वी प्राचीन  
तुम श्मशानके देव ! सुनो यह रणभेरीकी तान—  
बाज तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणाका गान !'  
—पूर्वा, पृ. ४६ (समीक्ष्य कृतिका पृ. ६४)।

लेखक इस निष्कर्षपर पहुंचा है—'अज्ञेय यह अच्छी तरह समझते हैं कि जीवनको नया खाद, नया अंकुर और नवस्फूर्ति देनेके लिए 'सचका आग्रह निष्ठा की हठ' और 'अग जगके विरोधका धक्का' सहनेकी शक्ति जरूरी है। यही कारण है कि वे अकेलेही विरोध में खड़ा होनेकी सामर्थ्य रखते हैं, उनकी अलग दिशा है, अलग पायेय है।' (पृ. ८३)।

नागार्जुनके मूल्यांकनमें उनके काव्य-प्रतिमान, 'भस्मांकुर', शिल्प-विधान एवं नवें दशककी उनकी प्रमुख काव्य-कृतियोंकी गहन जांच-पड़ताल की गयी है तथा ठोस व सुनिश्चित निष्कर्षों तक पहुंचा गया है। लेखकने नागार्जुनकी रचनाओंको विकास एवं प्रवृत्तियोंकी दृष्टिसे चार कोटियोंमें रखकर विवेचित किया है—

(क) सामाजिक यथार्थका हू-ब-हू चित्र खींचनेवाली रचनाएं। इनमें उनकी व्यंग्यपरक दृष्टिका भी समावेश है।

(ख) राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय रचनाएं, जिनका प्रति-पाद्य मानववादी चेतनाकी अभिव्यक्ति और उसका चन्वन, जागरण है।

(ग) उन्मुक्त, उल्लसित प्रकृति चित्र एवं प्रणय-परक रचनाएं, जिनमें प्रगतिशील नारी-भावना भी समाविष्ट है।

(घ) आख्यानक काव्य, जिसके अन्तर्गत 'भस्मांकुर' आता है। इसका विवेचन भलेही पौराणिक आधार-भूमिपर हुआ हो, परन्तु मिथक, प्रतीक एवं अप्रस्तुतके द्वारा इसे ये आधुनिक समाजका ज्वलन्त समस्याओंका अविकृत दर्पण बना देते हैं।

नागार्जुनके काव्यका अपना वैशिष्ट्य है। प्रणय-परक रचनाओं, प्रकृति-चित्र, आंचलिक छवियों आदि की दृष्टिसे वे बेजोड़ हैं। अनुपम मानवीय मूल्योंका इतना बड़ा पक्षधर विरल है। लेखकका मानना है—'वे पीड़ितोंके पक्षधर हैं और ग्रामीण सांस्कृतिक परंपराको लेकर चले हैं। उनका कथा-साहित्य और मैथिली काव्य-साहित्य भी भारतीय सामाजिक चेतना और चिन्तनका समग्र बोध लेकर प्रस्तुत हुआ है।'।

(पृ. ११०)।

सामाजिक यथार्थ और मानव मूल्योंके प्रति प्रति-बद्धताका अप्रतिम निदर्शन है मुक्तिबोधका काव्य। मुक्तिबोध जनवादी चेतनाके समर्थ कवि हैं। उन्होंने यथार्थसे गहरा साक्षात्कार किया है और आदमीकी समकालीन त्रासदीको बड़ी बेचैनीसे रूपायित किया है। रचनाका केन्द्रीय तत्त्व होता है मनुष्य। मनुष्य ही। रचनाकार जनसामान्यको हीनता-दीनतासे मुक्त कराने का हर जोखिम सहता है, तभी कविता सही जमीनपर ठहरती है। लेखक मुक्तिबोधके सृजनकी पृष्ठभूमिको स्पष्ट करते हुए कहता है—'मुक्तिबोध एक ऐसे कवि हैं, जो अपने समयमें पूरे दिल व दिमागके साथ, अपनी पूरी मनुष्यताके साथ रहते हैं। वे अपनी एक निजी प्रतीक-व्यवस्था विकसित करते हैं कि जिसके माध्यमसे सार्वजनिक घटनाओंकी दुनियां और कविकी निजी दुनियां एक सार्थक और अटूट संयोगमें प्रकट हो सकें।'।

(पृ. १५०)।

मुक्तिबोध उस चेहरेके अन्वेषक हैं, जो आजके इतिहासके मलबेके नीचे दब गया है पर मरा नहीं है। वे मानवीय स्नेहके स्रोतको सूखने देना नहीं चाहते हैं। लेखक बड़ी काव्यमयी भाषामें इस विषयपर प्रकाश डालता है—'जैसे किसी उजाड़ प्रान्तमें विशाल गुंबजों से घिरे कोई असहाय, अधीर विहंग फड़फड़ाता हुआ हारकर भी नहीं हारता और नया मार्ग पाकर सुनील



व्योममें उड़ जाता है उसी प्रकार पुकारती हुई पुकार कविको 'साहस प्रेरणा' देकर भैरवी जगाती है और उसकी प्राण ज्योतिसे मानवीय स्नेहकी व्यथा-कथा फूट पड़ती है—'बड़ी अनन्त स्नेहकी महान् कृतिमयी व्यथा, बड़ी अशान्त प्राणसे महान् मानवी कथा ।'

(पृ. १७६) ।

दूसरे भागमें तीन कवियोंका मूल्यांकन हुआ है— भारतभूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर और धर्मवीर भारती । भारतभूषण यदि प्रणय, मानवीय सदाशयता, युगबोध, आत्मालोचन व सामाजिक चेतनाके समृद्ध कवि हैं, तो गिरिजाकुमार रोमानी गीतात्मकता और प्रकृतिकी विविध दृश्यावलोकिक कवि हैं यों इनमें सामाजिक चेतना एवं इतिहास-बोधके प्रति जागरूकता भी है । धर्मवीर भारती 'मुझे तो वासनाका/ विष हमेशा बन गया अमृत/ बशर्ते वासनाभी हो तुम्हारे रूप से आवाद ! / मेरी जिन्दगी वरवाद' (ठंडा लोहा, पृ. १८) के मांसल प्रणयके इन्द्रधनुषी स्वादके लिए अधीर हो उठते हैं । प्रकृतिका सारा यौवन और आकर्षण मानो कविके मांसल प्रणयके निमित्त हर उपकरण जुटाकर उसे मदमत्त करता है ।

भारतभूषण चाहते हैं कि मनुष्यको मनुष्यके धरातलपर रहने दिया जाये, ईश्वरत्वकी भूमिपर नहीं, अन्यथा वह कर्त्तव्यों और आदर्शोंके पाशमें जकड़ा जाकर जीवनकी सहज धारासे कट जायेगा । कविका आशय जीवनके सहज स्पंदनकी पहचान है, और उसकी ईमानदार अभिव्यक्ति भी । 'अग्निलीक' वस्तुतः रामके तपःपूत चरित्रका मानवीय आलेख है, जो प्यार, सत्य, मुक्तिका आकांक्षी है । उसके प्रति सन्नद्ध, प्रतिबद्ध भी । भारतभूषणमें एक ओर प्रणयका व्यापक और मोहक परिवेश दृष्टिगत होता है, तो दूसरी ओर नारीके विविध सहयोगी रूपोंका चित्रण भी । उनके अन्तःलोकमें पहुंचकर उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी ।

गिरिजाकुमारने अपने काव्यमें तीन बातोंपर ध्यान दिया है—मानवीयता, सामाजिक न्याय और जीवन भविष्यकी आस्था । उन्होंने मनुष्यके अनन्त आयामोंको उद्घाटितकर काव्यको संवेद्य बनानेपर बल दिया है । उनकी दृष्टिमें एक महत्त्वपूर्ण जनतान्त्रिक तत्त्व है—आदमीको केन्द्रमें रखना और समाजको व्यापक संदर्भों में देखना । प्रकृतिका नितनूतन परिवेश-दृश्य कविने 'प्रकर'—मार्च '६२—२२

बड़ी कुशलता और बारीकीसे उभागा है । लेखककी मान्यता है—“इनकी प्रकृति विषयक रचनाएं अपने प्रयोगोंके नयेपन भाव-भंगिमाकी रंगीनी, यथातथ्य चित्रण, सूक्ष्म रूपांकन और मांसल सौन्दर्यमें बहुत विशिष्ट है । उनमें समाज-सापेक्षता कहीं ऐसे चित्रणमें उपेक्षित नहीं हुई है । उनमें केवल रसीलापन या प्रणय भाव भंगिमाएं ही नहीं हैं, समकालीन जीवनकी थकान, अस्तव्यस्तता, जटिलता जड़ता, कर्कशता, अशान्ति और कोलाहलके यथार्थवादी चित्र भी प्राकृतिक उपादानोंके माध्यमसे रूपायित हुए हैं ।” (पृ. १०४) । 'नाश और निर्माण' में माथुरकी सामाजिक चेतना प्रतिबिम्बित हुई है । मध्यवर्गीय जटिलताओं, अभावों और उद्विग्नताओंके मध्य पिसते जीवनको न केवल उन्होंने निकट से देखा है, अपितु उसकी ईमानदार अभिव्यक्ति भी की है ।

भारती अपनी कवितामें किसीभी विषयको उठाये बिना नहीं रहते वशर्ते वह जीवन और अनुभूतिकी आन्तरिक लयसे मेल खाता हो । उनकी रचनात्मक चेतनामें युगबोधके साथ परम्परा पूर्वापर प्रसंगोंकी नीरक्षीर विवेकी खोज है । यही कारण है कि वे बदलते परिवेशके अनुसार नया रूपान्तर प्रस्तुत कर सके हैं । वे ध्वंस, अनास्था, विघटन आदिके मध्य सृजनकी पुकार सुनते हैं । कविताके प्रति उन्हें पूरी आश्वस्ति है समर्पणभी, क्योंकि कविताके ही माध्यमसे वे आजके पिसते, लुटते, नुचते, संघर्षपूर्ण जीवनके भी सुन्दरतम अर्थ ढूँढ़ पाते हैं । कविता उन्हें अत्यधिक पीड़ाके क्षणों में विश्वास और दृढ़ता देती है ।

दूसरा सप्तक, (पृ. १६५) ।

एक ओर वे फिरोजी होठोंपर अपनी जिन्दगी लुटा चुके हैं और प्रणयके देवताओंने उन्हें गुनाहोंके मासूम समर्पणकी सीख दी है क्योंकि 'गुनाहोंसे कभी मैली पड़ी वेदाग तरुणाई ? तो दूसरी ओर वे दर्दको नये अर्थोंका स्पर्श कराना चाहते हैं । यह दृष्टि कविको यथार्थ सन्दर्भोंमें खींचती है और उसका दर्द विराट् जीवनमें परिणत हो जाता है—'सबका जीवन है भार, और सब जीते है, / बेचैन हो, / यह दर्द अभी कुछ गहरे और उतारता है, / फिर एक ज्योति मिल जात है ।' (ठंडा लोहा, पृ. ८७) ।

दोनों खंडोंमें समीक्षित छः कवियोंका मूल्यांकन तटस्थ, निस्संग, प्रामाणिक और कृति केन्द्रित है ।



कहना नहीं होगा कि ऐसी आलोचना कृतिको हस्ता-मलकवत् कर आत्मसात् किये बिना नहीं लिखी जा सकती। लेखकने न केवल समीक्षित कवियोंकी समग्र कृतियोंमें अवगाहन किया है अपितु उन कवियोंमें से सम्बन्धित मानक आलोचना ग्रंथोको भी पढ़ा है। साथ ही यह भी ध्यान रखा है कि उनके समकालीन कवि, आलोचककी क्या राय है। निर्वचनमें कहीं भी अस्पष्टता एवं दुरुहता नहीं है, क्योंकि लेखककी दृष्टि स्पष्ट है, नीरक्षीर, विवेकी और निर्णीत। भाषामें अजीब जादू है। भाषामें कभी कविताका स्वाद मिलता है, तो कभी गद्यकी सरलता, सहजताका। अवश्यकतानुरूप भाषा तत्सम-प्रधान है, तो उर्दूकी चासनी लिये भी परन्तु उसमें आद्यन्त सहज प्रभाव है। □

## रीतिकालीन साहित्य-शास्त्र कोशः

लेखक : डॉ. मानवेन्द्र पाठक

समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

भारतीय काव्य शास्त्रकी प्राचीन परम्पराका स्रोत देववाणी संस्कृतमें उपलब्ध होता है। हिन्दीमें भारतीय काव्यशास्त्रके विकास एवं इतिहासकी बात करें तो रीतिकाल हिन्दी साहित्येतिहासका एक ऐसा काल-सन्दर्भ रखता है जिसमें काव्यशास्त्रका गम्भीर गहन एवं व्यवस्थित स्वरूप प्रतिपादित होता है। रीतिकालका अध्ययन विविध रूपोंमें हो चुका है लेकिन उसके काव्य-शास्त्रीय चिन्तनके रूपमें डॉ. मानवेन्द्र पाठकका यह शोध प्रबन्ध एक मौलिक एवं कोश पद्धतिपरक सुष्ठु प्रयास है।

आलोच्य ग्रन्थ दो खण्डोंमें विभाजित है—प्रथम खण्ड : भूमिका और द्वितीय खण्ड : कोश। इसके अतिरिक्त दो परिशिष्टियां भी हैं जिनमें स्रोत-सामग्रीकी सूचनाएँ हैं। प्रथम खण्डमें डॉ. पाठकने हिन्दी काव्य-शास्त्र विषयक सिद्धान्तों—अलंकार, काव्य प्रयोजन, काव्य हेतु, गुण-दोष, ध्वनि-गुणीभूत व्यंग्य, नायक-

१. प्रकाशक : ईस्टन बुक लिक्स, ५८२५, न्यू चन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली-११०००७।  
पृष्ठ : ४२६+२१+१८; डिमा. ६१; मूल्य : ३५०.०० रु.।

नायिका भेद, रस-विवेचन, रीति और वृत्ति तथा शब्द-शक्तिका विवेचन सहज एवं प्रवाही रूपमें किया है जिससे विदित होता है कि शोधार्थीके रूपमें डॉ. पाठकको संस्कृत काव्यशास्त्रकी सूक्ष्मताओंकी अच्छी पकड़ है फिर तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-प्रविधि अपनाते हुए प्रसाद शैलीमें अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। यहां विषय परिपाककी दृष्टिसे डॉ. पाठकने रीतिकालीन साहित्यशास्त्रके समग्र रूपका विश्लेषणकर अथक परिश्रम एवं शोधानुवर्तिनी वृत्ति का परिचय दिया है।

इसी खण्डका विस्तार 'रीतिकालीन आचार्य दृष्टि', 'कोशनिर्माण प्रक्रिया और प्रविधि तथा अध्येय सामग्री'के रूपमें किया गया है। इस अंशमें अध्येता डॉ. पाठक संस्कृत काव्यशास्त्रियोंसे लेकर रीतिशास्त्रके विभिन्न आचार्योंकी तीन कोटियों—उद्भावक, प्रतिष्ठापक और कवि-शिक्षकका उल्लेख भी किया है जो इस दिशामें शोधरत मनीषियोंका दिशादर्शक हो सकता है। यहां यह कहना भी समीचीन होगा कि डॉ. पाठकने संस्कृतके आचार्यों एवं रीतिकालीन आचार्योंके उद्देश्यपरक पार्थक्यके रेखांकनपर बल दिया है कि—संस्कृतके आचार्य लक्ष्य ग्रन्थोंके आधारपर लक्षण ग्रन्थोंका निर्माण कर रहे थे जबकि रीतिकालीन आचार्य ठीक इसके विपरीत लक्षण ग्रन्थोंके माध्यमसे लक्ष्य ग्रन्थोंका (पृ. ७२), जिसके परिणामस्वरूप बिना किसी एक ग्रन्थको उपजीव्य बनाये हुए रीतिकालीन आचार्य नूतन उद्भावनाएं करनेमें समर्थ रहे हैं। कोश-निर्माण प्रविधिकी संकेत करके अध्येय सामग्रीकी तीन रूपों—सर्वांग या विविधांग निरूपक, रस एवं नायक-नायिका भेद तथा अलंकार निरूपक ग्रन्थों—में विभक्त किया है।

शोध-प्रबन्धके द्वितीय खण्डमें डॉ. पाठकने कठिन परिश्रमसे कोशनिर्माण प्रविधिके आधारपर खण्डको स्पष्टतः नौ उपखण्डोंमें विभक्तकर अपना प्रतिपाद्य प्रस्तुत किया है। इस खण्डके ३४८ पृष्ठोंमें उन्होंने क्रमशः 'अलंकार निरूपण', 'काव्य परिभाषा, प्रयोजन एवं हेतु', 'गुण निरूपण', 'दोष निरूपण', 'ध्वनि तथा गुणीभूत व्यंग्य निरूपण', 'नायक नायिका भेद निरूपण', 'रस निरूपण', 'रीति और वृत्ति निरूपण' तथा 'शब्दशक्ति निरूपण' उपखण्डोंमें अध्येय सामग्रीका आकलन किया है तथा स्थान-स्थानपर अपनी मौलिक



दृष्टिका प्रतिपादन किया है। यद्यपि डॉ. पाठकने भूमिकामें (दो शब्द शीर्षकके अन्तर्गत) मुद्रण सम्बन्धी भूलोंके लिए क्षमा-प्रार्थना की है लेकिन कुछ भूलें मुद्रण की न होकर प्रेसकापी तैयार करते समय एकाग्रता एवं पूर्वं कथनमें साम्यके अभावके कारण उपलब्ध हैं। आरम्भमें खण्ड विभाजनमें (विस्तृत ?) 'काव्य परिभाषा, प्रयोजन एवं हेतु', 'गुण निरूपण', 'रीति एवं वृत्ति निरूपण' शीर्षक प्रस्तुत किये हैं तो अध्यायीकृत रूपोंमें वे क्रमशः 'काव्य निरूपण', 'गुण विवेचन' और 'वृत्ति निरूपण' ही रह गये हैं। इस प्रकारकी त्रुटिसे आलोच्य सामग्रीके रसास्वादनमें अन्तर नहीं आता परन्तु मुद्रित शोध प्रबन्धमें इस प्रकारकी त्रुटि क्षम्य नहीं कहीं जा सकती। इन स्थलोंपर शीर्षक प्रस्तुतीकरण साम्यकी नितान्त अपेक्षा की जाती है।

## उपन्यास

### प्रारम्भः

[बंगलासे अनूदित]

लेखिका : आशापूर्णा देवी

अनुवादिका : ममता खरे

समीक्षक : मधुरेश

श्रीमती आशापूर्णादेवी भारतीय समाजमें स्त्रीकी अस्मिता और अधिकारकी लड़ाईमें एक पक्षधर लेखिका हैं। इस अर्थमें उन्हें महाश्वेता देवीसे जोड़कर भी देखा जा सकता है। जिस प्रकार महाश्वेतादेवी उत्पीड़ित आदिवासी जनताके बीच जाकर उनके जीवनका अंग बनकर, उन्हींके स्तरपर उनकी लड़ाईमें भागीदारी करती हैं। उसी प्रकार आशापूर्णा देवी सदियोंसे पुरुष शासित समाजमें स्त्रीके अपने अस्तित्वकी लड़ाई लड़ती

हैं। परन्तु महाश्वेता देवी जहां एक संभावनापूर्ण जनजातीय समाजको अत्यन्त संयत ढंगसे प्रामाणिक यथार्थ में ढालनेका उपक्रम करती हैं, आशापूर्णा देवी प्रायः बांग्ला साहित्यमें प्रचलित कथारूढ़ियों और भावुकता-वश अपने कथा संसारको वैसा प्रामाणिक और विश्वनीय नहीं बना पाती। इस सीमाके होते हुए भी वे एक बड़ी और महत्त्वपूर्ण लेखिका हैं जिन्होंने पिछली एक शताब्दीके बंगाली समाजमें स्त्रीकी स्थितिको बहुत संवेदनापूर्ण ढंगसे पहचाननेका प्रयत्न किया है। इस दृष्टिसे उनकी सुप्रसिद्ध कथा-त्रयी — 'प्रथम प्रतिश्रुति' 'सुवर्णलता' और 'बकुल कथा' — बंगालमें नारी-जागृति की संघर्षगाथा जैसी है। आशापूर्णा देवी इस संदर्भमें न तो विमेन-लिबके पश्चिमी आन्दोलनोंसे प्रेरणा ग्रहण करती हैं और न ही नारीके कवि-मुलभ सौंदर्यको अनिवार्य मानकर अपनी नायिकाओंकी सृष्टि करती हैं। इस अर्थमें उनकी नायिकाएं बंकिमचन्द्र और शरच्चन्द्र की नायिकाओंसे भिन्न हैं। उनकी रूप-राशिके बखान

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। पृष्ठ : ३५३+३७; डिमा. ६०; मूल्य : १०५.०० रु.।

'प्रकर' — मार्च '६२ — २४



के लिए उन्हें शिशिर, धौत और पद्मकी आवश्यकता प्रायः नहीं होती। देखने-भालने और अपने रख-रखाव में प्रायः ही सामान्य स्त्री-गुणोंवाली ये नायिकाएं अपने मानसिक स्तरमें सामान्यसे कुछ अलग और भिन्न हैं। अपने अस्तित्वकी उनकी लड़ाईमें वैचारिक संघर्ष और सामाजिक संरचनाकी समझ महत्त्वपूर्ण घटक हैं। आजका भारतीय समाज, बांग्ला समाज जिसका एक अंग है, रवीन्द्रनाथ और शरच्चन्द्रका समाज नहीं है। यही कारण है कि आशापूर्णा देवीकी ये नायिकाएं निष्फल आत्मदमन और गोपन भावसे अपने तटोंसे टकराकर स्वयंही नहीं छोड़तीं और गलतीं वे सामाजिक परिवर्तनकी एक बेहतर समझसे लैस हैं। परन्तु उस सामाजिक परिवर्तनकी गति और दिशा से वे स्वयं संतुष्ट नहीं हैं।

आशापूर्णा देवीका 'प्रारब्ध' पुरुष प्रधान समाजमें स्त्रीके हस्तक्षेपपर केंद्रित है। यह सौगत और कंकावतीकी कथा है, पति-पत्नीके रूपमें, जिसमें असाधारण रूपसे लम्बे मानसिक ऊहापोहके बाद अन्ततः कंकाको एक निर्णय लेनाही होता है कि अब आगेसे सौगतके साथ पत्नी रूपमें उसका रहना नहीं होसकता। जब वह यह निर्णय लेती है तब उसके दो बच्चे हैं—तेरह सालकी बेटी तुलतुल और उससे छोटा बेटा सौरभ। न्यायालयके निर्णयानुसार, पति-विच्छेदके बाद, बड़ी होनेके कारण बेटी उसे मिलती है जबकि बेटेके बारेमें तय होता है कि वह पिताके साथ रहेगा और जब-तब मांसे मिलता रहेगा।

'प्रारब्ध'की मूल कहानी वस्तुतः इन बच्चोंके बड़े होजाने तक चलती है। लेखिकाका उद्देश्य इस तथ्यकी ओर संकेत करना रहा है कि पारिवारिक सुरक्षा एवं मां-बापके स्नेहके अभावमें बच्चोंका कैसा असंतुलित विकास होता है और ये ग्रंथियां किस प्रकार उनके समूचे व्यक्तित्वको बहुत गहरेमें जाकर प्रभावित करके उनके विकासको कुंठित करती हैं। विवाह-विच्छेदके बाद, एकही शहरमें रहते हुए भी सौगत और कंकावती को भेंट नहीं होती। कंकावतीकी जिदके आगे किसी को नहीं चलती—न सौगतकी और न मायकेमें ही किसीकी। मां-बापके सहज प्यार-दुलारके अभावमें दोनों बच्चे अपने-अपने ढंगसे बिगड़ते रहते हैं। सौरभ को बाकायदा एक अपराधी किशोर बन जाता है और तुलतुल एक ऐसी युवतीके रूपमें विकसित होती है

जिसकी सबसे बड़ी शत्रु उसकी मां है और उसे दुःख पहुंचानेके लिए वह कुछभी कर सकती है।

लेखिकाका लक्ष्य अस्पष्ट नहीं है। उपन्यासकी नायिका कंकावती इस जिदको ही अपनी सबसे बड़ी शक्ति मानकर चलती है कि पुरुष प्रधान समाजमें स्त्री को अपने अधिकार संघर्षके माध्यममें ही प्राप्त हो सकते हैं। वह पुरुषकी कृपापर नहीं, अपने तेजस्वी संघर्षके बलपर जीना और आगे बढ़ना चाहती है। सौगतके घरमें उपलब्ध सारी आधुनिक सुविधाओंको ठुकराकर उसने यह निर्णय लिया है। यह कोई बहुत जल्दबाजीमें लिया गया निर्णय भी नहीं है। परन्तु कुल मिलाकर उसका यह निर्णय बहुत अपरिहार्य जैसा नहीं लगता। पतिसे सम्बन्ध विच्छेदकी पृष्ठभूमि बहुत स्पष्ट और अनिवार्य न होनेसे कंकावतीकी तर्कहीन जिद उसके प्रति, और इस प्रकार लेखिकाके समूचे रचनात्मक लक्ष्यके प्रति भी कोई बहुत अच्छा प्रभाव नहीं छोड़ती। पूरा कथा-सूत्र संयोगों और अस्वाभाविक घटनाओंके सहारे विकसित होनेको छोड़ दिया जाता है। तेरह सालकी तुलतुल मांकी इस हठको समझकर, पिता और भाईसे दूर रहकर पाली-पोसी जानेके कारण एक उद्दण्ड और समस्याग्रस्त लड़की बन जाती है। पर उसकी तर्क शैली कहीं भी एक तेरह वर्षकी किशोरीके मानसिक विकाससे मेल नहीं खाती। एक पूर्ण वयप्राप्त युवतीकी भांति वह मांके उठाये गये कदमके विरुद्ध निर्णय देती है—'ओ बाबा ! तुम लोग कितना भी 'पुरुष शासित समाज' में न रहना चाहो, लड़ो, गालियां दो, एक किसी पुरुषकी मददके बगैर कुछभी कर सकनेकी क्षमता तो तुममें है नहीं। सहायता तो चाहिये ही। चाहे हसबैंड करे, चाहे मित्र या फिर फादर या ब्रदर—कुछ नहीं तो लवर। वे ही तो सीढ़ी-बीड़ी लगाकर धकेल-धुकूलकर ऊपर चढ़ा देते हैं और दुनियांको दिखा देते हैं—देखो ये महिला कैसी स्वयं प्रतिष्ठित है। कितने ऊपर उठ गयी है ...।' (पृ. १७७)। पर्याप्त लम्बे और सांसारिक अर्थमें परम सुखी दिखनेवाले दाम्पत्य जीवन होते हुए भी कंकावती पतिसे अलग होने का निर्णय ले लेती है। उसके इस अप्रिय और तर्कहीन निर्णयके कारण बच्चों—तुलतुल और सौरभ—को जो भुगतना होता है मानसिक दृष्टिसे जैसा भगवहीन और अधूरा जीवन जीनेको वे अभिशप्त होते हैं, उस सबके लिए कंकावतीका दुराग्रह और अहंकार ही



उत्तरदायी है। पुरुषशासित समाजमें असमायोजित होनेकी अपेक्षा वह पुरुषके कल्पित दुराग्रहवाली मानसिकताकी शिकार अधिक है।

कथानक रूढ़िके रूपमें संयोगोंकी अतिशयता साधारण बांग्ला उपन्यासोंकी एक प्रमुख विशेषता रही है। 'प्रारब्ध' में न केवल संयोगोंका अभाव नहीं है, पूरा कथानक ही इन संयोगों और पात्रोंकी चारित्रिक अतिरंजनाओंके सहारे विकसित होता है। पिकनिकमें अचानक तुलतुलकी सौरभ मिल जाता है—एकदम नाटकीय ढंगसे वह उसकी प्राण-रक्षा करता है और बिना किसी पूर्व पृष्ठभूमिके, एकदम फिल्मी तर्ज पर तुलतुल जैसी तेज-तर्रार युवती उसके प्रति अकारण कोमलताका शिकार हो जाती है।

सौरभ-रमांकी न्यायालय द्वारा दंडके बाद कंकावती उसकी पहचान और प्रतिक्रियाके लिए बहुत व्याकुल दिखायी देती है। किसी प्रकारकी प्रतिक्रिया व्यक्त किये बिना जब उसकी जालीदार गाड़ी उसके पाससे गुजर जाती है तो वह काफी दूरतक उसके पीछे दोड़कर अन्ततः निढाल हो जाती है। आज अपने सौरभको इस रूपमें देखकर वह पूरी तरहसे एक पराजित और हतदर्प स्त्री जैसी दीखती है। सोलहसे भी अधिक वर्षोंका यह निष्फल आत्म-पीड़न, जिसके कारण दोनों बच्चों और पतिका अभिशप्त जीवन उसके सामने एक वास्तविकता की तरह उपस्थित है, क्या सिर्फ इसीलिए था कि उसमें अन्ततः यह बोध जाग सके कि पति-पत्नीके रूपमें उनमें उस धैर्यका अभाव शुरूमें ही था जो दाम्पत्य जीवनकी सबसे बड़ी आवश्यकता है? इस मामूली-सी बातको समझ सकनेके लिए कंकावतीको बहुत बड़ी कीमत चुकानी होती है। चुकायी गयी इस कीमतके प्रति कोई संवेदनशील प्रतिक्रिया इसलिए पैदा नहीं होपाती क्योंकि कभी ऐसा लगता ही नहीं कि कंकावती किमी बड़े लक्ष्यके लिए कोई बड़ी लड़ाई लड़ रही है। इसीलिए अब अपने और पति सीगतके 'चुक जाने' या 'दिन खत्म होचुके' होनेकी त्रासदी किसीभी स्तरपर त्रासदी जैसी लगती ही नहीं... 'प्रारब्ध' में कदाचित् लेखिका यह कहना चाहती है कि दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवनमें, उससे जुड़े सुख और सार्थकताके लिए धैर्यकी बहुत आवश्यकता होती है। यहाँ लेखिका स्त्री-स्वतंत्रता और अस्मिताकी लड़ाईके अतिवादी परिणामोंकी ओर संकेत करना चाहती है जो एक भरे-पूरे पारिवारिक जीवनको अकारण

'प्रकर'—माचं' ६२—२६

ध्वस्त कर सकती है। इसके बचावका विवेकही वस्तुतः 'प्रारब्ध' का लक्ष्य है।...कुल मिलाकर यह आशापूर्णा देवीका एक औसत उपन्यास है जिसे पढ़कर उनकी सर्जनात्मक उपलब्धियोंको ठीक प्रकारसे नहीं समझा जा सकता। □

## जहां रोशनी है?

लेखक : तिलकराज गोस्वामी

समीक्षक : डॉ. मान्धाता राय

प्रस्तुत उपन्यासकी कथाका मुख्य आधार अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्ध है, किन्तु इसका विराट् लक्ष्य उसके माध्यमसे जातिगत रूढ़ियोंको तोड़कर राष्ट्रीय एकताकी स्थापना है। कथाकारका मन्तव्य है कि धार्मिक एवं जातिगत रूढ़ियोंकी जकड़वन्दीको शिक्षित युवा पीढ़ी तोड़कर देशके समक्ष मुंहबाये हिंसा और नफरतके विकराल माहौलको समाप्त करके सभीको एकताके सूत्रमें बांध सकती है। उत्तरप्रदेशका ब्राह्मण युवक कुलदीप और सिख युवती मनजीत कौर छात्र जीवनमें ही एक दूसरेको पहचानकर दृढ़ निश्चय करते हैं कि विवाह करेंगे तो आपसमें ही वरना आजीवन क्वारे रहेंगे। इसके लिए वे तूफान खड़ा करनेकी अपेक्षा मन लगाकर पढ़ते हैं, धैर्य रखते हैं तथा विवाहके पूर्व शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करनेसे दूर रहकर चरित्रबल एवं पवित्र प्रेमका परिचय देते हैं। जिसके परिणामस्वरूप कुलदीपकी नौकरी लग जानेपर वे अपने दृढ़ निश्चय और युक्तिसंगत तर्कोंके बलपर अपने मां-बापको इस विवाहके लिए तैयार कर लेते हैं। वे ऐसा इसलिए कर पाते हैं कि उनकी कथनी-करनीमें अन्तर नहीं है। वे रूढ़ियोंके अन्धकारसे बाहर खुली रोशनीमें स्वयं आते हैं और पुरानी पीढ़ीके अपने अभिभावकोंको भी ले आते हैं।

कुलदीपके पिता पं. दीनदयालजी स्वतंत्रता सेनानी और आर्यसमाजी हैं। वे जातीय और धार्मिक रूढ़ियों में विश्वास नहीं करते किन्तु वैवाहिक मामलेमें इस बन्धनको तोड़नेका साहस उनमें नहीं है। यद्यपि वे

१. प्रका. : स्मृति प्रकाशन, १२४ शहरारा बाग, इलाहाबाद-२११००३। पृष्ठ : १८१; क्रा. ६०; मूल्य : ४०.०० रु.।



असीम साहसका परिचय अंग्रेजों के विरुद्ध दिया है।  
उन्हें नीकरी गंवानी पड़ी और जेल की कठोर यातना  
एवं सजा भुगतनी पड़ी। किन्तु एक समय के पश्चात्  
प्रत्येक आदमी पुराने विचारका होजाता है यही उनके  
साथ भी है। हां उस बन्धनको जब उनका बेटा कुलदीप  
तोड़ता है तो वे खुले मनसे उसका समर्थन करते हैं।  
यही बात मनजीत के पिता के साथ भी है किन्तु वे  
ब्राह्मण को सिख बनवाकर ही शादी रचाते हैं यह उस  
कौमकी रुढ़िवादिता और कट्टरपरस्ती है।

समूर्ण कथा कुलदीप की पूर्व स्मृतिके सहारे कही  
गयी है। ऐसा लगता है कथाकारने इसे फिल्मी पटकथा  
को ध्यानमें रखकर लिखा है। स्वयं उन्होंने लिखा है —  
‘मकान देखकर जब कुलदीप लौटा तो तरह-तरह की  
पुरानी बातें उसके मानस-पटलपर आ-जा रही थीं।  
विचारोंमें खोया वह उस कालमें लौट गया था जब वह  
बहुत छोटा था ... चलचित्र की भाँति एक-एक दृश्य  
उसकी आँखोंके सामने आ रहा था।’ (पृ. ५)।  
उपन्याससे पूर्ण स्मृतिका प्रयोग प्रायः किया जाता है  
किन्तु पूरे उपन्यासको एक व्यक्तिके पूर्व चिन्तनमें  
प्रस्तुत करना उसके विशाल कलेवर की यथार्थवादिता  
एवं संरचनाके प्रति ईमानदारी नहीं कही जा सकती।

शिक्षा के द्वारा व्यक्तित्व विकसित होता है। इस  
तथ्यका रचनात्मक एवं तर्कसंगत समर्थन उपन्यासमें  
किया गया है। श्रेष्ठ साहित्यके अध्ययनसे व्यक्तिके  
चिन्तन और कर्तव्यका क्षेत्र बढ़ता है। पं. दीनदयाल,  
कुलदीप, मनजीत और साधना की जीवन यात्रा में  
अध्ययनके माध्यमसे आये परिवर्तन द्वारा कथाकार इस  
तथ्यको दृढ़तापूर्वक स्थापित करता है। कमला, मल-  
खान और रूपावर भी अध्ययनका प्रभाव दिखाया गया  
है। आज जब अध्ययनके प्रति अभिरुचिमें तेजीसे  
गिरावट आ रही है कथाकारका इस ओर ध्यान जाना  
और उसे एक रचनात्मक आयाम देना एक स्तुत्य प्रयास  
कहा जायेगा। कुलदीप और कमला की बहसमें शिक्षा  
से नारीमें स्वतंत्रता, समता और आत्मनिर्भरता आने  
की बात कही गयी है तो साधना के जीवनमें अध्ययनके  
कारण परिवर्तन आता है और वह अपने दिवंगत प्रेमीके  
नामपर छापी मायूसीका कुहासा तोड़कर जमानेके साथ  
कदम मिलाकर चल पड़ती है।

मलखानका प्रकरण गौण होकर भी सामायिक  
एवं महत्वपूर्ण है। कथाकारने उसके माध्यमसे आज की

Foundation Chennai and eGangotri

एक ज्वलन्त समस्याको उठाया है। लोग गरीब तेजतर्रार  
नवयुवकोंको अकारण परेशान करते हैं। पुलिस भी उन्हें  
ही सताती है। फलतः विवश होकर वे अपराधी बन जाते  
हैं। तब वही सेठ उन्हें पैसा देते हैं और पुलिस भी  
उन्हें शह देने लगती है। ऐसे बिगड़े युवकोंको राष्ट्र की  
मुख्य धाराके साथ जोड़ना एक जटिल समस्या बन  
गयी है। पंजाब, कश्मीर, असम, तमिलनाडु और देशके  
अन्य भागोंमें उफने विद्रोहके मूलमें कहीं-न-कहीं ऐसी ही  
बातें रहती हैं। चम्बल की डाकू समस्याके मूलमें भी यही  
है। कथाकारने इसके लिए रचनात्मक रास्ता अपनाने  
पर बल दिया है। उनका मन्तव्य है कि ऐसे लोगोंको  
विश्वासमें लेकर पहले उन्हें पुलिसके भय और कानूनी  
शिकंजोंसे मुक्त कराना होगा। फिर उन्हें किसी काममें  
लगाकर सही रास्तेपर लाया जा सकता है। मलखानको  
अपराधी जीवनसे साधारण नागरिक बनानेमें कथा-  
नायक कुलदीप की आत्मीयता, युक्तिसंगत तर्क तथा  
पं. दीनदयालजीका संरक्षण एवं प्रयत्न रचनात्मक एवं  
प्रेरणास्पद हैं। प्रश्न है आज कितने शिक्षित अभिजात  
लोग तथा समाजसेवी इसके लिए तैयार हैं। स्व. जय-  
प्रकाश नारायणका उदाहरण इसी युग की बात है। यह  
प्रसंग छोटा होकर भी मार्मिक और संवेदनशील है।

कथाकारने महोबासे अपना लगाव वहाँके प्राकृतिक  
सौन्दर्य तथा ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्थलोंके  
वर्णन द्वारा व्यक्त किया है। महोबाका रामायणकालीन  
अस्तित्व, प्रतापी चन्देलवंशी शासकों द्वारा उसे राज-  
धानी बनाने, वहाँके पौराणिक मंदिर, प्राचीन मूर्तियां,  
मुहम्मद गौरी द्वारा वहाँकी कलाको नष्ट किया जाना,  
कुतुबुद्दीन ऐबकका मंदिरोंको तोड़ना एवं वीर आल्हा-  
ऊदल सम्बन्धी तथ्योंके उल्लेख उपन्यासको गरिमा  
प्रदान करते हैं। यदन सागर, रामकुण्ड और गोखार  
पहाड़के रमणीय वर्णनके बीच वहाँकी रक्तरंजित भूमि  
पर हुए युद्धकी कहानी एक अद्भुत रोमांचकी सृष्टि  
करती है। घायल वीर संयमराय द्वारा अपने शरीरके  
मांसको काटकर गिद्धोंके ऊपर फेंककर मरणासन्न  
पृथ्वीराजकी प्राणरक्षा सम्बन्धी रोमांचक ऐतिहासिक  
घटनाका संभवतः पहली बार उल्लेख इस उपन्यासमें  
हुआ है। दुःख है कि यह उत्कृष्ट वर्णन मूल कथाका  
क्षेपक बनकर रह गया है।

भारतीय कथाकारोंकी संभवतः वह विवशता है  
कि शृंगारके अभावमें उपन्यासकी परिकल्पना ही नहीं



## कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें

### दयानन्द वर्मा रचित दो युगान्तरकारी पुस्तकें

ध्यान योग : कुछ सरल विधियाँ

आजके तनाव भरे वातावरण में 'ध्यान' एक अनमोल औषधि है।

ध्यान योग की अनेक प्रकार की साधना विधियाँ हैं, किन्तु इस पुस्तक में केवल वे ही विधियाँ बताई गई हैं, जिन्हें हर आयु के स्त्री-पुरुष घर-संसार चलाते हुए अपने अनुभव में ला सकते हैं।

ध्यान की सरल विधियों के साथ महर्षि पतंजलि कृत कुछ योगसूत्रों की आज के युग के अनुसार व्याख्या देकर पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाया गया है।

मूल्य : ४५ रुपये

कामभाव की नयी व्याख्या

यह पुस्तक सेक्स के मानसिक तथा शरीर संबंधी पक्षों पर नयी जानकारी देती है। इस जानकारी के आधार पर स्त्री-पुरुषों की सेक्स संबंधी बहुत-सी समस्याएँ हल की जा सकती हैं।

साहित्य, चिकित्सा, यौन-विज्ञान, मनोविज्ञान आदि अनेक क्षेत्रों के विद्वानों ने इस पुस्तक की अत्यन्त सराहना की है।

चार्ट, रेखाचित्रों तथा फोटोग्राफ्स द्वारा इस पुस्तक में विषय को भली-भाँति समझाया गया है। पुस्तक के परिशिष्ट में कामसुख बढ़ाने वाले प्राचीन योग तथा उपाय संकलित करके पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाया गया है।

मूल्य : ७५ रुपये

प्राप्ति स्थान

**माईन्ड एण्ड बॉडी रिसर्च सेन्टर**

डब्ल्यू-२१, ग्रेटर कैलाश पाट-१, नयी दिल्ली-४८

'प्रकर'—माच' ६२—२८

### इंस्टीच्यूट ग्राफ पामिस्ट्री

की ये प्रामाणिक पुस्तकें भी आप हमसे प्राप्त कर सकते हैं :

**पामिस्ट्री के गूढ़ रहस्य**

हिन्दी में हस्तरेखा विद्या पर यह पहली ऐसी पुस्तक है, जिसमें हस्तरेखाओं को वैज्ञानिक ढंगसे सिखाने का यत्न किया गया है। सैकड़ों चित्रों से परिपूर्ण यह पुस्तक इंस्टीच्यूट के शिक्षार्थियों के लिए विशेष रूप से लिखी गयी है। सुबोध और सुगम इतनी है कि इस विद्या से अनजान व्यक्ति भी इस पुस्तक के अध्ययन से हस्तरेखाएं पढ़ सकता है।

मूल्य : १३५ रुपये

**पामिस्ट्री के अनुभूत प्रयोग**

यह पुस्तक भारतीय तथा योरोपीय हस्तविद्या के अनुभूत प्रयोगों पर आधारित है

आप हस्तरेखा विद्या के क्षेत्र में मितान्त नए जिज्ञासु हों अथवा इस विद्या के पारंगत विद्वान्, दोनों दशाओं में इस पुस्तक में आप नयी पठन सामग्री पाएंगे।

२० जोड़े हाथों के प्रिंट तथा उनका विस्तृत हस्त पठन देकर पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ाया गया है। साथ ही दुर्भाग्य को सीमाग्न में बदलने के लिए मंत्र, रत्न आदि परीक्षित उपाय भी दिए गए हैं।

मूल्य : १३५ रुपये



हो सकती। कुलदीप और मनजीतके प्रेम प्रसंगको कथाकारने पूरी दिलचस्पी लेकर पाकेट बुककी तरह चटक बनानेमें कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। यह विस्तार उपन्यासका कमजोर अंश है। लम्बे भाषणनुमा संवाद उपन्यासमें भरे पड़े हैं। गोदानमें प्रोफेसर मेहता के भाषणको उपन्यासकी कमजोरी माना जाता है। यहां महोबामें पर्यटनके समय बाबाके कथन, कुलदीप मनजीत और कमलाके लम्बे संवाद, मलखान-कुलदीप संवाद, कुलदीप और बलवीरका विवाह सम्बन्धी वार्तालाप, साधना और दिनेशकी बातचीत तथा मनजीत-बलवीर संवाद आवश्यकतासे अधिक लम्बे हो गये हैं जिससे बातचीतकी स्वाभाविकता व्याहत हुई है।

कथाकारने कमलाके पिताको पुराने रिवाजका जबरदस्त पक्षधर बताया है। (पृ. ६१)। ऐसा पिता अपनी क्वारी कन्याको कवि सम्मेलनमें दूसरे शहरमें लड़कोंके साथ जाने देता है यह इसी पुस्तकमें संभव है। खटकनेकी दूसरी बात है कुलदीप और मनजीतका कई बार एकांत पाकर भी शारीरिक संपर्कसे बचे रहना। एक ओर कुलजीतकी तपोनिष्ठ बहन साधना कानपुर जाकर जोजाजीके साथ एक दिन घूमनेके बाद उनके लिए भीतरसे व्याकुल हो उठती है और अन्ततः उनसे बूझ जाती है, वहीं मनजीतका अपने ऊपर नियंत्रण

रखना एक उच्च आदर्श होकर भी यथार्थको चुनौती देता है। यह नहीं है कि सभी लड़कियां प्रेम होनेपर ही संभोग करती हैं किन्तु अधिकांशतः यही होता है।

सब मिलाकर उपन्यास रोचक और पठनीय है किन्तु किसी महद्दृश्यकी पूर्ति या गंभीर विश्लेषणकी ओर दृष्टिपात नहीं करता। कुलदीप और मनजीतके विवाहके पश्चात् इस विवाहसे कोई दिशा मिलनेकी बजाय कुलदीपको मजबूरन सिख धर्ममें दीक्षित कराना कोई प्रगतिशील समाधान होनेकी बजाय कठमुल्तापन के सामने समर्पण है। प्रेमिकाको पानेके लिए यह समर्पण उपन्यासकी एक कमजोरी बनकर आया है। इससे ऊंचा आदर्श तो १६वीं शतीमें अकबर बादशाहने दिया था। सलीमका विवाह हिन्दू कन्यासे करनेके लिए इतिहासमें पहली बार एक मुसलमानकी बरात गयी तथा विवाहभी हिन्दू और मुसलिम दोनों पद्धतियोंसे हुआ जबकि बीसवीं शतीके अन्तिम चरणमें पं. दीन-दयालजी जैसे क्रान्तिकारी असहाय बनकर अपने बेटे का सिख धर्ममें दीक्षित होते देखते हैं। कथाकारने कुलदीपको महान् नायक बनानेकी बजाय रांझा जैसाही बनाना उचित समझा है। रुढ़ियोंको तोड़ने या राष्ट्रीय एकताके महत् उद्देश्यके लिए विवाहके बाद वह कुछ नहीं करता है। □

## कहानी

### ग्यारह लंबी कहानियां

लेखिका : चित्रा मुद्गल

समीक्षक : डॉ. भगीरथ बड़ोले

हिन्दी कहानी-लेखनके क्षेत्रमें जिन महिला कथाकारोंने अपनी रचनाधर्मिताकी सशक्तता प्रदर्शित कर

१. प्रका. : प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६ । पृष्ठ : २१२; क्रा. ८७; मूल्य : ४०.०० रु. ।

अपना स्थान सुरक्षित किया है, उनमें नवें दशकके अंतर्गत चित्रा मुद्गलका नाम विशिष्टतासे लिया जा सकता है। लगभग सातसे अधिक कहानी-संकलनों, उपन्यास, बालकथाओं, अनुवादों आदिके माध्यमसे चित्राजीने वस्तुतः आजके लेखनके क्षेत्रमें अपनी विशिष्ट पहचान निमित्त की है।

प्रस्तुत कहानी संग्रह—'ग्यारह लंबी कहानियां' चित्राजीकी रचनाधर्मिताका श्रेष्ठ आयाम कहा जा सकता है। इसकी ग्यारह कहानियां आकारकी दृष्टिसे

'प्रकर'—चैत्र २०४६—२६



कुछ बड़ी कहानियाँ हैं तथा गहरे मानवीय संवेदनाओं को घटनाओं की विस्तृतिके आलोकमें अनेक कोणों से उकेरती हैं। इस संग्रहमें चित्राजीने अधिकांशतः नारी जीवनको विस्तृत आयामोंमें देखा है तथा सोचके आधुनिक धरातलपर यथार्थ चित्रणके माध्यमसे नारी बनाम मनुष्यकी मनःस्थितिका सार्थक जीवन्त चित्रण शक्ति-मत्ताके साथ किया है। नारी आंतरिकताको अभिव्यक्त करते हुए सशक्त मनोवैज्ञानिक धरातलपर मानवीय संबंधोंकी जाँच पड़ताल किसी विशेष खेमेसे संबद्ध न होकर प्रत्येक वर्गसे जुड़ी हुई है। व्यंजनापूर्ण सार्थक भाषा-प्रयोग, अनुपम वस्तु-विधान, कौशलपूर्ण घटना-संयोजन, मनोवैज्ञानिक धरातलसे संबद्ध गतिशील चरित्र, प्रतीकात्मक शब्दोंके सहारे उलझी मनःस्थितिकी सहज-स्वाभाविक किन्तु बेबाक अभिव्यक्ति और अप्रत्यक्षही एक उद्देश्यपूर्णता लेखिकाकी रचनाधर्मिताकी ऊँचाइयों की स्पष्टतः अभिव्यंजित करती है। वस्तुतः प्रस्तुत कहानियोंमें से अधिकांशके अंतर्गत चित्राजीने संबंधोंके विविध धरातलोंपर नारीकी विचित्र किन्तु दुर्वह मानसिक स्थितिका साक्षात्कार ही नहीं कराया है, अपितु उस चरित्रके आकलनके लिए अप्रत्यक्षही विवश भी किया है।

‘दुलहिन’ कहानी मानवीय मनोभावोंको सशक्त रूपमें अभिव्यक्त करती है तथा नारी मानसिकताका भावात्मक बयान प्रस्तुत करनेवाली समर्थ कहानी है। अपनी सासके जीवित रहने अम्मांने स्वयंको कभी अघेड़ नहीं माना, यद्यपि उनके भी जवान-जहील बच्चे हैं। बच्चोंकी दृष्टिमें अम्मां, अम्मां हो सकती है किन्तु स्वयं अम्मांकी दृष्टिमें वह सासके रहते अभी भी दुलहिन हैं। जबतक उसके सिरपर हाथ रखनेवाला कोई बड़ा बुजुर्ग है, तबतक वह मात्र बड़प्पनका अहसास कर गंभीरता कैसे ओढ़े। दुलहिन संबोधन उसे सदैव युवा होनेका अनुभव कराता रहता है, इसीलिए गर्भवती होनेपर जब उसकी संतानें उससे ‘सफाई’ करानेका आग्रह करती हैं, तो वह सबको झिड़क देती है—कि बच्चे भगवान्की देन हैं... कि अभी किसी बुजुर्गकी छाया उसके तीज-त्यौहार तथा नेग-न्यौछावर करनेके लिए विद्यमान है। किन्तु सासकी मृत्युके बाद उसे एकाएक अपने बुढ़ा जानेका अनुभव होने लगता है। अब वही घरमें प्रधान, सबसे बड़ी, पकी हुई उम्रकी हैं और चाहे अन्य रूपोंमें उसे पुकारनेवाले अनेक हों

‘प्रकर’—सार्च’ ६२—३०

किन्तु दुलहिन कहकर पुकारनेवाला अब कोई नहीं है। इस जिम्मेदारी और बड़प्पनका स्मरण आतेही वह सफाई कराने अपनी लड़कीके पास कानपुर चली जाती है, क्योंकि जवान-जहील बहू-बेटों, नाती-पनातियोंके होते हुए उसे इस स्थितिमें रहना अशोभनीय और लज्जास्पद प्रतीत होता है। वस्तुतः अत्यंत भावुकताके धरातलपर बारीकीके साथ रची गयी यह कहानी नारी-मानसिकताके एक विशिष्ट संदर्भको सशक्त रूपमें अभिव्यक्त करती है।

‘मोर्चेपर’ शीर्षक कहानी भी नारी चरित्रको आधार बनाकर मानवीय भावाभिव्यंजनमें अत्यधिक सशक्त कहानी सिद्ध होती है। जीवनकी स्थितियाँ तो विकट हैं ही, किन्तु पुरुषके न होनेसे नारीके जीवनमें जो रिक्तता आती है, उसे सहना और फिरभी रास्ता पार करना उसके ही बूतेकी बात है। इसी प्रतिपाद्यको उकेरते हुए चित्राजीने प्रस्तुत कहानीमें एक दुर्वह करुण संदर्भको गहराया है। रिनीका पति सुर्दाप फीजमें है। युद्धके दौरान वह लापता है जिसकी बादमें मृत्यु-सूचना प्राप्त होती है। इस स्थितिमें रिनीको स्वयंको सम्हालना तो है ही। अपने बच्चोंको भी सम्हालना है। इस दोहरे दायित्वको निवाहना अत्यंत कठिन है। विगत जीवन की स्मृतियाँ जहाँ एक ओर उसके अन्तरको चाककर डालती हैं, सामने आते बच्चोंके चेहरे उसे दायित्वके प्रति जागृक बने रहनेके लिए विवश कर देते हैं। वह जानती है कि अपने दूटनकी त्रासदीसे गुजरना जितना मर्मन्तक है, उससे कई गुना अधिक पीड़ादायक है दूसरे को उस स्थितिमें धकेलना। इसीलिए वह बच्चोंको उनके पिताकी मृत्युकी जानकारी नहीं देती, अपितु शक्तिभर संयत रहकर उनकी इच्छाओंको पूरनेका प्रयत्न करता है। पर सभी स्थानोंपर चाहे उसके अपने मानसिक स्मृति संदर्भ हों अथवा बच्चोंका वर्तमान, पति उपस्थित ही नजर आते हैं। उसने एक चुनौती स्वीकार की थी, एक संकल्प लिया था, किन्तु स्मृतिके ये विविध संदर्भ उसे हार और दूटनकी आशासे प्रतिपल ग्रस्त रखते हैं। उसे अनुभव होता है कि जब तक कोई अनुभूतियोंमें जीवित है, कैसे मर सकता है? इसीलिए अपने रिसते हुए घावोंको अपने हृदयमें ही छिपाये, सारी रिक्तताको झेलते हुए भी वह अपने दायित्वको निवाहनेमें सन्नद्ध रहती है। वस्तुतः युद्धके मोर्चेसे अधिक कठिनतर है इस स्थितिमें जीवनके मोर्चे



पर अनवरत जूझते रहना—अपनेसे भी और युग-प्रवृत्तियोंसे भी।

नारी की शक्तिमत्ता, संकल्प, दृढ़ता, प्रतिपल दायित्वको निभाहने की प्रतीति, संतानके प्रति शुभेच्छा की यही स्थिति प्रकारांतरसे 'कंचुल' शीर्षक कहानीमें भी अभिव्यक्त हुई है। नंदूको चाहते हुए भी परिस्थितियोंसे विवश कमलाका विवाह अकर्मण्य विष्णुसे हो जाता है जिसमें निम्न वर्गमें प्रचलित सभी बुराइयां विद्यमान हैं। यद्यपि 'इज्जतसे करो तो सभी काम अच्छे' संबंधी मान्यतावाली कमला जीवन निर्वाहके लिए दारूकी भट्टी चलाती है, तथापि वह किसीकी किसीकी अनैतिक हरकतको सहन नहीं कर पाती। आर्थिक दुरावस्थाके कारण वह विवश है किन्तु इतनी नहीं कि स्वयंको या अपनी पुत्रीको उस विवशताकी बलिबेदीपर चढ़ा दे। इसी बीच उसे पता चलता है कि जिस नंदूको वह चाहती थी और विवाहके बाद भी सम्पन्नके साथ चाहती रही है, उसका प्रेम कल्पतापूर्ण था। नंदू विवाहित था, पर उसने कमलाको कभी यह जानकारी नहीं दी। अतः नंदूकी मौनके बाद जब उसका असली रूप सामने आया तो वह प्रेम और पुरुष दोनोंसे चिढ़ गयी। इसीलिए जब उसकी लड़की सरनाके लिए कल्पू विवाहका प्रस्ताव रखता है तब अपने विगतकी स्मृतियां उसे बेकाबू कर देती हैं। वह न सिर्फ प्रस्तावको अस्वीकृत करती है, बल्कि सरनाको बुरी तरह पीटती है। उसे पुष्टीपर विषयाम नहीं, क्योंकि वे 'एक जोरू मुलकमें रखते, एक औरत इंदर फंसाते' हैं। पर जब सरना प्रतिवादमें कहती है कि उसे मांके नौरे जैसा नौरा (दूल्हा) नहीं चाहिये, तब अपमानित होनेके बाद भी अच्छी तरह सोच विचारकर सरना और कल्पूके जीवन को संपन्न बनाये रखनेके लिए वह उन्हें विवाहकी स्वीकृति दे देती है। परिस्थितियों और पुरुष प्रवृत्तियों की प्रतिक्रियामें नारीके टूटते और जुड़ते विश्वासकी यह व्यथा-कथा निश्चयही एक गहरी संवेदनाको समर्थ आकार देती है।

पुरुषकी अहम्मन्यता और अमानुषिक व्यवहारके विरुद्ध कठोर निर्णय अंगीकार करते नारी चरित्रको रूपायित करनेवाली कहानियोंमें 'बावजूद इसके' का गणना की जा सकती है, जिसमें नारीकी करुण स्थितिका ही चित्रण नहीं है, अपितु उसके अनवरत जूझनेकी शक्ति-सामर्थ्यको भी व्यंजित किया गया है। विवाहके

बाद अनेक बार प्रीतिको लगा कि गोयलका उसके प्रति निरंतर अमानुषिक व्यवहार करना उसका मानसिक ऐवही है, इसीलिए अंततः वह उसे छोड़ ही नहीं देती, पूर्णतः संबंध-विच्छेद करनेके लिए प्रयत्नशील भी होती है। पुरुषका अहं स्त्रीकी इस पहलको कैसे स्वीकारता? परिणामस्वरूप गोयल उसके जीवनके प्रत्येक पथपर कांटे बोनेका प्रयास करता है और इधर समाज भी उसकी विवशताका लाभ उठाकर देह शोषणके लिए तत्पर है। ऐसी स्थितिमें वह जीवन संवर्षकी प्रत्येक चुनौतीको स्वीकारनेके लिए अर्वाञ्छित निर्णयके निश्चित बिन्दुपर पहुंच जाती है किन्तु दासता और अमानुषिकतासे संतुष्ट जीवनको पसंद नहीं करती। स्त्री-पुरुष संबंधोंमें उत्पन्न तनावके कारणों और परिणामों की ओर संकेत करते हुए लेखिकाने निश्चय-निश्चयके द्वन्द्वमें फंसी नारीकी उस नयी क्रांत चेतनाको भी उकेरनेका प्रयास पूरे सामर्थ्यसे किया है, जो उसकी प्रकृति नहीं हैं, नियति भी है।

'शून्य' शीर्षक कहानीमें भी नारी जीवनकी करुण त्रासदीको ही अभिव्यक्ति मिली है, साथही स्त्री-पुरुष संबंधोंके अंतर्गत अपने पति द्वारा किये जानेवाले अमानुषिक व्यवहारकी प्रतिक्रियामें जन्म लेनेवाले प्रति-हिंसात्मक स्वरूपको भी लेखिकाने सशक्त रूपसे व्यंजित किया है। राकेश बेलाको सदैवसे चाहता रहा है और उसने यह स्थिति सबको स्पष्ट कर दी थी, फिर भी उसका विवाह सरलासे हो जाता है। सरलाको जब वस्तु-स्थितिका पता चलता है तब अपनी अस्तित्व रक्षाके लिए प्रयत्न करते हुए वह प्रतिहिंसात्मक रवैया अपना लेती है और अंततः पारिवारिक तनाव टूटनकी दिशामें गतिर्शाल हो जाता है। पुरुषकी अमानुषिकताके विरुद्ध जीवनके मोर्चेपर बदलेकी भावनाके कारण ही वह अपने बच्चोंको पहले इसलिए साथ नहीं रखती क्योंकि इससे दाम्पत्यकी टूटनके बाद भी राकेश और बेला स्वतंत्र स्वच्छंद जीवन जियेंगे और वह अपने जीवनपर पूर्ण विराम लगा लेगी। किन्तु कोटेंके निर्णयके उपरांत जब दीपू प्रारंभके कुछ वर्षोंके लिए उसके हिस्सेमें आता है, तब उसके साथ रहते-रहते उसे लगने लगता है कि अब उसे किसीकी जरूरत नहीं। पुत्र दीपूही उसके जीवन की पूर्णता और प्रवाहका पर्याय है। इसीलिए बेलाके मां बननेकी अक्षमता और उन लोगोंके अकेलेपनको पूरनेकी कोशिशमें दीपूकी मांगपर वह उन लोगोंसे



बदला लेनेका निर्णय लेती है कि वह अपना बच्चा किसीको नहीं देगी और देखेगी कि दुनियाँका कौन सा कानून उससे उसका बच्चा छीनेगा ? सरलाके चरित्रमें आया यह परिवर्तन एक ओर पृष्ठभूमिके रूपमें नारी की कष्ट स्थितिको तो प्रदर्शित करता है, दूसरी ओर पुरुषकी अहंजन्य अधिकार भावनाके विरुद्ध भी दृढ़तासे उसके खड़े होनेकी दिशाका संकेत भी करता है। आधुनिक विसंगत परिस्थितियोंके बीच उसका निरंतर जलते रहना निश्चयही संवेदनाके पुष्ट आधारों और ठोस निर्णयोंका प्रतिपादक है।

इसी क्रममें 'अग्निरेखा' शीर्षक कहानीका उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा। इसमें निर्णय नहीं, बल्कि नारीकी नियतिके संकेत उभारे गये हैं। स्त्री-पुरुष संबंधों में संदेहकी रेखा ही वह अग्निरेखा है जो न सिर्फ कुंठाग्रस्त बनाती है, बल्कि जीवनको ही नष्ट कर देती है। परिस्थिति-वश अपंग होगयी अनु अपने पति और बहिन शशिके संबंधोंके प्रति संदेहग्रस्त हो अंततः असामान्य ही नहीं होती, नींदकी गोलियाँ खाकर स्वयं को भी निःशेष कर देती है। यह उसके चरित्रकी कम-जोरीही कही जायेगी जिसके अंतर्गत शंकाएं प्रबल हो जाती हैं और जलनेकी अदम्य शक्ति टूट जाती है। 'रुना आ रही है' शीर्षक कहानीभी इसी प्रकार एक भिन्न पृष्ठभूमिमें पारिवारिक संबंधोंकी जांच पड़ताल करती है। एक वह समय था जब निमो और रुना एक दूसरे को बेहद चाहती थीं, किन्तु परिस्थितियाँ दोनों बहनोंको भिन्न कर देती हैं निमो शीघ्रतसे विवाहका निश्चय क्या करती है, इसी प्रेम संबंधके कारण रुनाका विवाह रुक जाता है। जातिवादका घेरा समाजमें इतना गहरा और जीवनको इतना प्रभावित करनेवाला बन चुका है कि इसमें मनुष्यकी भावनाओंकी कोई प्रतिष्ठा नहीं होती। किन्तु अनेक वर्षों बाद घर परिवारसे एकदम कट चुकी निमोसे रुनाके मिलने आनेका निश्चय मानवीय धरातलपर संबंधोंको संपन्न बनानेकी दिशामें किया गया प्रयत्नही कहा जा सकता है।

प्रस्तुत संग्रहकी शेष कहानियोंमें यद्यपि नारी चरित्रके विविध आयाम अपेक्षाकृत अधिक गहराईसे और प्रमुखतासे चित्रित हुए हैं, तथापि इनमें भी सामाजिक मानवीय संबंधोंके विविध संदर्भोंको लेखिकाने सशक्तता और कुशलताके साथ अभिव्यंजित किया है। 'बंद' शीर्षक कहानी पूँजीवादी शोषणके विरुद्ध है।

'प्रकर'—मार्च '६२—३२

स्वाथ और सकाण प्रवृत्तिका प्रतीक मलहोत्रा अपने अधीनस्थोंके प्रति शोषणकी दृष्टि प्रमुख बनाये हुए है। वह अपना कार्य करवानेके प्रति सचेत है, किन्तु इस बातके प्रति नहीं कि किसी विशेष परिस्थितिमें वे लोग अपना जीवन-यापन कैसे करेंगे। शहर-बंदके समय नौकरोंमें अपने मालिकके प्रति विद्रोह भाव उभरता है, जिसका अभिव्यक्ति अखबारकी रद्दी बेचने से होती है। किन्तु मालिकके सामने आते ही उन्हें पुनः यथास्थितिमें जीनेको विवश होना पड़ता है। इसीके साथ प्रस्तुत कहानी आये दिन देशमें होनेवाले दंगों और आम आदमीके जीवनपर पड़नेवाले प्रभावोंका भी चित्रण करती है। वहाँकी स्थानीय बोलीका प्रयोग कहानीको अधिक सशक्त और जीवन्त बना देता है।

पहली कहानी 'अनुबंध' मानवीय भावनाओंको उकेरनेवाली कहानी है। इसमें जीवनके विस्तृत फलक पर मनुष्यके जीनेकी संभावनाओंमें नित्य होती कमियों को व्यंजित किया गया है तथा इस परिप्रेक्ष्यमें मानवीय संबंधोंकी जांच पड़ताल की गयी है। परिवर्तनके मूल में प्रमुख प्रभाव आर्थिक दबावोंका ही है। कथानायक की वर्तमानमें विपन्न स्थिति देख अशोक दा उसे अपनी फिल्ममें सहायक बनाना चाहते हैं। किन्तु फिल्मों के माध्यमसे प्रतिष्ठा प्राप्त किया हुआ कथानायक अपने मित्र दुग्गलसे स्पष्ट कह देता है कि वह सहायक बनकर अपनी साख नहीं गिराना चाहता। आर्थिक स्थितिकी दुरावस्थाके कारण पत्नी तो असंतुष्ट थीही, व्यावहारिक न होनेके कारण दुग्गलभी उसे फटकारता रहता था। तभी भाई नन्हेकी चिट्ठी आती है कि मामाके यहाँ उसपर अमानुषिक अत्याचार हो रहे हैं, जिन्हें सहनकर वह पढ़ाई नहीं कर सकता। इधर माँकी नौकरी छूट गयी है और छोटे भाईका स्वास्थ्य सुधारनेके लिए भी पैसे चाहियें। अतः वह उसके पास आना चाहता है। यदि ऐसा न हुआ तो वह आत्महत्या कर लेगा। इन सब स्थितियोंके होते हुए भी जब वह अपनी साख बनाये रखनेकी बात दुग्गलसे कहता है तो वह उसे फटकार देता है कि अपनी कुंठाओंमें पीड़ित रहनेके कारण वह सबके प्रति प्रतिशोधपूर्ण गलत रवैया अपनाये है। इसकी अपेक्षा उसे चाहिये कि वह स्वयं जिस प्रकार अन्योके सहयोगसे बुरे दिनोंमें बचा है, औरोंकी ओरभी हाथ बढ़ाये। दुग्गलकी इस फटकार तथा परिस्थितियोंके दबावका अंततः उसके मनपर प्रभाव



होता है। अतमें अशोक दा के प्रस्थानको स्वीकार कर  
अर्थात् अपने अहंको त्यागकर वह दायित्वोंको निवाहने  
का अनुबंध कर ही लेता है।

'अनुबंध' में दो मित्रोंके संबंधोंके क्रममें व्यंजित  
हुए हैं, तो 'पेशा' शीर्षक कहानी ऐसे संबंधोंके व्याव-  
सायिक बन जानेके संदर्भ अभिव्यक्त करती है। इसमें  
लेखिकाने आजके प्रतिद्वन्द्वात्मक युगमें मानवीय संवेदना  
को छोड़ पेशेको ही अपना जीवनधर्म माननेवाले चरित्रों  
पर सशक्त व्यंग्य-प्रहार किया है। नरेन्द्र और प्रणव  
अभिन्न मित्र हैं। हर बुरे समय प्रणव नरेन्द्रकी सहा-  
यता करता है। शोषणके विरुद्ध उसमें आक्रोशही  
भावनाएं जगाकर चाहता है कि वह गुलाम मान-  
सिकतामें न जिये। किन्तु जब नरेन्द्रको एक निय-  
मित स्तंभका इन्चार्ज बना दिया जाता है तो प्रणव  
दुखी हो जाता है। वह इसे अपनी पहचान और  
प्रतिष्ठापर आया संकट जानकर व्यावसायिक दृष्टिसे  
निश्चय कर लेता है कि मित्रता अपने स्थानपर है, पेशा  
अपने स्थानपर। दोनोंके अलग-अलग क्षेत्र हैं। ऐसी  
स्थितिमें उचित तो यह है कि दोनोंकी फाइलें अलग-  
अलग रखी जायें। इसी विचार-धरातलपर अपने  
महत्त्वपूर्ण रहनेके दुःखसे ग्रस्त होकर मित्रताके  
मानवीय संबंधोंको भुला देता है। यद्यपि परिस्थितियों  
की मारसे तंगहाली, दुश्चिन्ताओंसे घिरे नरेन्द्रके प्रति  
उसमें प्रेम उमड़ता है तथापि दूसरेही क्षण उसे अपने  
अहंके पराजित होनेकी छटपटाहट भी अनुभव होती है।  
इसी छटपटाहटको सर्वोपरि मानकर वह कौशलपूर्ण  
रीतिसे नरेन्द्रसे संबंधित स्तंभ हथिया लेता है। इस  
प्रकार यह कहानी आजकी उस जीवनस्थितिको यथार्थ  
रूपमें चित्रित करती है, जहाँ आर्थिक दबाव या वृद्धिपन  
का झूठा अहं मनुष्यके सहज संबंधोंको तोड़कर उन्हें  
व्यावसायिकताके प्रतिद्वन्द्वी संबंधोंमें परिणत कर देता  
है। संभवतः आजके जीवनकी यही प्रमुख समस्या है  
जिस लेखिकाने अत्यंत कुशलता तथा सूक्ष्मतासे समर्थ  
रूपमें चित्रित किया है।

'वशरथका वनवास' शीर्षक कहानी पिता-पुत्रके  
संबंधोंमें उत्पन्न दरारको व्यंजित करती है। पिताके  
निर्माणी-निर्देय व्यवहार और अपनी अपूर्ण इच्छाओंको  
दृष्टिपथमें रख बचपनसे ही रमानाथके मनकी प्रवृत्ति  
प्रतिशोधपूर्ण बन गयी थी। बादकी घटनाओंने उसकी  
इस मनःस्थितिको यथावत् बनाये रखा। इसीलिए वह

पिताकी इच्छाके विरुद्ध विवाह करता है, उनसे मिलना  
बंद कर देता है, बच्चोंसे बता देता है कि उनके दादाजी  
नहीं हैं और पत्नी सुधाको फटकारता रहता है। यहाँ  
तक कि पिताकी मृत्युका समाचार पाकर वह अपने  
ईश्वर अंकलको लिख देता है कि मरे हुए संबंधोंको वह  
लोकलाजके लिए जी नहीं सकता, अतः वह उनके  
मृत्यु-कर्ममें भी सम्मिलित नहीं होगा। किन्तु जब उसे  
पिता द्वारा भेजी पहली भेंट और आत्मीय पत्र मिलता  
है, तब सारा प्रतिशोध गल जाता है। किन्तु अब पिता  
तो हैं नहीं, अतः वह उनकी भेजी नयी साइकिलसे  
लिपटकर रोते हुए अपना पश्चाताप व्यक्त करता है।  
इस प्रकार लेखिका स्पष्ट करती है कि भ्रमोंकी उत्पत्ति  
संबंधोंमें कैसे दरारें उत्पन्न कर मनुष्यको जीवनकी  
त्रासदियोंसे संवद्ध करती हैं, किन्तु उदार मानवीय  
संवेदना उन दरारोंको पाट देती है।

वस्तुतः चित्रा मुद्गलकी ये सभी कहानियाँ  
आधुनिक युगके यथार्थ-परिवेशको प्रामाणिकताके साथ  
प्रस्तुत करती हुई रिश्तोंके जुड़ाव और टूटनकी  
समर्थ कहानियाँ हैं। इनका वस्तु-विधान सुचिन्तित  
धरातलपर स्थित है तथा मूलतः आजके युगमें मानवीय  
संवेदनाकी मुखर अभिव्यक्ति करनेमें सक्षम है। विविध  
संबंधोंकी जाँच पड़तालमें सामाजिकताको विशेष  
महत्त्व दिया गया है तथा नारीकी अति विपन्न करुण  
स्थितिको पूरी शक्तिके साथ अभिव्यंजित किया गया  
है। मनुष्यके निश्चय-प्रतिनिश्चयके अंतर्द्वन्द्वको समर्थ  
तथा युक्तियुक्त शब्दों द्वारा जीवंत आकार दिया गया  
है तथा स्थितियोंकी बेत्राक समीक्षा की गयी है। कथा  
की सामर्थ्यके साथही भाषा और शैलीभी विशिष्ट  
कही जा सकती है। लगभग प्रत्येक वर्गसे संबंधित इन  
कहानियोंकी भाषा स्थिति और पात्रोंके अनुसार है  
तथा एक प्रभावशाली शिल्पके द्वारा अपनी बातको  
पूरी सामर्थ्यसे प्रस्तुत करनेकी शक्ति रखती है।

इन सभी विशेषताओंके आलोकमें निःसंकोच  
कहाजा सकता है कि प्रस्तुत संग्रह 'ग्यारह लम्बी कहा-  
नियाँ' हिन्दी कहानीकी आधुनिक परम्परामें निश्चित  
ही अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनानेवाला अधिकारी-  
संग्रह है तथा श्रीमती चित्रा मुद्गल आधुनिक मानव  
जीवनकी यथार्थ अभिव्यंजना करनेवाली एक समर्थ  
तथा सशक्त कथा लेखिका सिद्ध होती है। □



## शहरके नाम?

लेखिका : मृदुला गंग

समीक्षक : डॉ. विपिनबिहारी ठाकुर

समकालीन हिन्दी कथा लेखिकाओंके बीच मृदुला गंग अत्यधिक विशिष्ट और महत्वपूर्ण व्यक्तित्व मानी जाती हैं। उनकी 'कितनी कैदें', 'टुकड़ा टुकड़ा आदमी', 'डैफोडिल जल रहे हैं', 'ग्लेशियरसे' और 'उर्फ सैम' कथा-कृतियोंमें आधुनिक नगरीय सभ्यताके परिपार्श्वमें व्यक्ति-मनकी अनुभूतियों और संवेदनाओंकी बड़ी सूक्ष्म व्यंजना हुई है। उन्होंने मुख्य रूपसे नारी-जीवन की स्थितियों और समस्याओंके अंकनपर अपनी दृष्टि केन्द्रित की है। 'शहरके नाम' उनका छठा कहानी-संग्रह है जिसकी रचनाओंके माध्यमसे भारतीय परिवेशमें नारी-जीवनके बहुरंगी रूपोंका चित्रण हुआ है।

'शहरके नाम' की कुल ग्यारह कहानियोंमें नारी-जीवनके ही अलग-अलग रूपोंका अंकन किया गया है। 'तीन किलोकी छोरी', 'चकरघिन्नी', 'बाहरी जन', 'रेशम', 'वह मैं ही थी' और 'शहरके नाम' संकलनकी प्रमुख कहानियां मानी जायेंगी क्योंकि इनमें वर्तमान सामाजिक परिवेशमें स्त्रियोंकी दलित स्थितियोंके मर्मस्पर्शी रूपोंका चित्रण उपलब्ध होता है। 'तीन किलोकी छोरी' संकलनकी बड़ी प्रभावोत्पादक रचना सिद्ध होती है जिसमें निम्नवर्गीय परिवेशकी स्त्रियोंकी दयनीय जीवन-स्थितियोंका अंकन किया गया है। इस कहानीमें निम्न वर्गकी दो स्त्रियोंकी विवशताओंका चित्रण है। ललली बेन व्रजनमें तीन किलोकी स्वस्थ बच्चीको जन्म देनेपर भी अपनी सास और पतिके तिरस्कारकी भागी बनती है। तीसरी बार भी बेटीही जननेके कारण परिवारके सदस्योंका तीखा अपमान झेलती है और स्वयंभी इस दुःखसे भीतरही भीतर टूट रही है। नन्नी बेन है जिसने पहली बार एक बच्चेको जन्म दिया, किन्तु अर्थाभावके कारण उसे मजदूरी करने जाना पड़ता है, देखरेखके अभावमें उसके बीमार बच्चेकी मृत्यु हो जाती है। इस कहानी में जहां ललली बेनके दुःखका कारण लगातार तीसरी

बार भी बेटीका जन्म लेना है, वहाँ नन्नी बेनकी पाँचों के मूलमें आर्थिक अभावग्रस्तताकी विषम स्थिति है जिनके कारण उसके प्रथम पुत्रकी मृत्यु हो जाती है। दोनोंही स्त्रियोंके हृदयमें व्याप्त गहरे दुःखकी अनुभूति ग्राम-सेविका शारदा बेनको होती है और वह सहानुभूति एवं ममत्वकी इसी मानसिकतामें ललला बेनकी नव-जात पुत्रीके पालन-पोषणकी व्यवस्था करनेका संकल्प लेती प्रतीत होती है। इसी प्रकार 'बाहरी जन' और 'चकरघिन्नी' कहानियोंमें उच्च मध्यवर्गीय समाजकी स्त्रियोंके अभावग्रस्त जीवनके चित्र हैं। 'बाहरी जन' शीर्षक कहानीकी नायिका नन्दिनीके जीवनकी विडम्बना यह है कि सात वर्षोंके दाम्पत्य जीवनके बावजूद वह सन्तानहीनताके अभावसे पीड़ित है और इसीलिए उसके समुर राजेश्वर उसपर आपरेशन करा लेनेके लिए दबाव डाल रहे हैं, उसकी सास सरिता भी उनकी इस धारणाका समर्थन करती है, किन्तु नन्दिनी बच्चेके जन्मके लिए चिकित्साके जरिए अप्राकृतिक प्रक्रियाका इस्तेमाल करनेके पक्षमें नहीं है। इस स्थितिमें वह अपनेको विवश नहीं मानना चाहती। 'नहीं, बेचारी नहीं। नहीं चाहिये उसे बच्चा। नहीं जायेगी वह डॉक्टरोंके पास। नहीं करेगी इसकी अप्राकृतिक प्रक्रिया का इस्तेमाल। उसकी गोद है, भरे न भरे, निर्णय लेने का अधिकार उसका है, सिर्फ उसका।' (पृ. सं. ५०)।

'चकरघिन्नी' की नायिका विनीताकी पीड़ा कुछ अलग ढंगकी है। उसके माता-पिता दोनोंही डॉक्टर हैं। अपनी माताकी व्यस्तताको देखकर बचपनमें ही उसके मनमें यह धारणा बैठ गयी कि उसकी माँ एक आदर्श पत्नी नहीं है। इस मानसिकताकी प्रतिक्रिया उसपर इस रूपमें होती है कि वह प्रतिभा सम्पन्न होते हुएभी केवल अपनी माँकी इच्छाके विरोधस्वरूप ही डॉक्टरकी पढ़ाई नहीं करती, सामान्य रूपसे बी. ए. की पढ़ाई समाप्त करनेके बाद विवाह कर लेती है और पति-सेवामें रत रहते हुए अपनेको आदर्श गृहिणी मानने लगती है। जब पुत्र अजय और पुत्री भाया बड़े होनेपर उसकी गृहिणीके रूपमें दिन भरकी बरत व्यस्तताके प्रति अपनी विरक्ति प्रकट करने लगते हैं तब उसके मनमें अपने प्रति एक प्रकारकी व्यथताका भाव जगता है और वह अपने जीवनकी इस रिक्तताको दूर करनेके लिए अपने पापाके क्लिनिकमें रिसेप्टनिस्ट

१. प्रकाश : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। पृष्ठ : १२०; डिमा. ६०; मूल्य ; ४५.०० रु.।

'प्रकर'—मार्च ६२—३४



के रूपमें कार्य करनेका निर्णय ले लेती है। नारी-व्यक्तिता की दृष्टिसे 'रेशम' कहानी भी प्रभावी है क्योंकि इसमें नारी-व्यक्तित्वके दमन और विद्रोह दोनों ही भावों को अभिव्यक्ति एकसाथ हुई है। इस कहानीमें अर्धेड उम्रकी स्त्री हेमवतीके जीवनकी विवश स्थितियोंका अंकन मनोवैज्ञानिक रूपमें किया गया है। उसकी विवशता यह है कि वह पति द्वारा लगाये गये नियंत्रणों एवं अकुशलोंके कारण अपने बेटों और बहुओंके सामने सदा अपनेको अपमानित अनुभव करती रहती है। कुछ समयके बाद उसके पतिकी मृत्यु हो जाती है और उसी क्षणमें शोक-प्रदर्शन 'उठावनी' के निमित्त उपस्थित स्त्रियोंके समूहको देखकर उसे यह अनुभव होता है कि किसी भी स्त्रीके चेहरेपर दुःख और सहानुभूतिका कोई चिह्न नहीं है, वह उनकी परेशानियोंको दूर करनेके लिए 'उठावनी' के कार्यक्रमकी समाप्तिकी घोषणा कर देती है और सबको चाय पीकर ही जानेके लिए कहती है। उसके इस व्यवहारसे वहां बैठी हुई सभी औरतों के चेहरेपर की ऊब समाप्त हो जाती है। वस्तुतः हेमवतीके इस निर्णयको नारी-व्यक्तित्वपर लगाये गये अकुशलके विरुद्ध विद्रोह भावका ही द्योतक माना जा सकता है।

नारी-व्यक्तित्वकी विद्रोह-वृत्तिकी दृष्टिसे संकलन की अन्तिम कहानी 'शहरके नाम' भी बहुत ही सशक्त और प्रभावी रचना है। इसमें एक ऐसी लड़कीका वर्णन है जो १९७५-७६ के आपात्कालमें राजनीतिक गतिविधियोंसे जुड़ जाती है, उसके पिता सरकारी बक्सर होनेके नाते अपनी मान-मर्यादाको लेकर चिन्तित होते हैं और उसे एम. एम. की पढ़ाईके निमित्त अमरीका भेज देते हैं। अमरीका जाकर वह अपनी पढ़ाईके प्रति समर्पित नहीं रहती और वहाँके सामाजिक जीवनसे जुड़ जाती है। उसके मनमें देश लौट आनेकी आकांक्षा उत्पन्न होती है और वह पिताकी इच्छाके विरुद्ध अपनी पढ़ाई अधूरी छोड़कर अपने देश लौटती है। शामके धुंधलकेमें अपने घर न जाकर एक होटलमें रुक जाती है जहाँका शिक्का उसको मनमें आपात्कालकी बहुतेरी स्मृतियां दया देता है। वह दुर्बल और लाचार लोगोंको सहयोग देनेके लिए अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखना चाहती है और इसी मानसिकताके कारण अपने पिताको अपना अन्तिम पत्र लिख लेती है। स्वातंत्र्य-सेनानीकी ही प्रमुखता प्रदान करनेके कारण कहानीकी

मूल संवेदना उभर आती है।

'वह मैं ही थी' कहानीमें उमाके माध्यमसे नारी की निरीहताको उभारा गया है। जय उमा अपने पति के तबादलेके बाद छोटे कस्बेमें रहनेको आयी तो वहाँ चिकित्सा सुविधाओंके अभावके कारण अपने आगामी प्रसवको लेकर उसे दुश्चिन्ताएं घेरने लगीं। इन्हीं परिस्थितियोंमें उसने एक लड़कीको जन्म दिया किन्तु प्रसवके क्रममें स्वयं उसकी मृत्यु होगयी। इस कहानी में जहाँ एक ओर उसके मनकी भावनाओं एवं अनुभूतियोंके माध्यमसे वर्तमान युगीन परिवेशमें नारीकी विवशताओंको उभारा गया है वहीं दूसरी ओर उसकी नवजात बच्चीके माध्यमसे नारी-जीवनकी कमनीयता, शालीनता और सार्थकताका समर्थन भी किया गया है।

संकलनकी 'अक्स' और 'विलोम' कहानियाँ प्रणय की भावनासे जुड़ी हुई हैं। 'अक्स' की नायिकाके मनमें पेरिसके एक युवककी तस्वीर समा गयी है और वह पिछले कई वर्षोंसे उसीके प्रति प्रणय-भावसे प्रभावित रही है किन्तु अन्तमें इस प्रणय-भावकी परिणति निराशा में होती है। कहानीकी विशेषता नायिकाके मनोभावों की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तिमें देखनेको मिलती है। 'विलोम' भी विषय-वस्तुकी दृष्टिसे एक प्रेम कहानी ही

## ‘प्रकर’ का प्रकाशन-संबंधी विवरण

### फार्म ४ (नियम ८)

प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७

प्रकाशन अवधि : मासिक

मुद्रक/प्रकाशक/संपादक : विद्यासागर विद्यालंकार

नागरिक : भारतीय

पता : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७

स्वागित्व : विद्यासागर विद्यालंकार

मैं विद्यासागर विद्यालंकार घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

२८-२-६२

— विद्यासागर विद्यालंकार



है जिसमें नायकके प्रति नायिकाके अनुराग और आकर्षणको उभारा गया है।

‘अनाड़ी’ में विषय-वस्तुकी नवीनता है। इसमें बारह वर्षीया नौकरानी सुवर्णा अपनी समृद्ध मालकिन के आलसी स्वभावको परखकर अधिक लाभ उठानेका प्रयत्न करती है और इसी मानसिकतामें जब वह एक दिन ड्राइंग रूममें सोफेपर बैठकर उन्मुक्त भावसे बिस्कुट खाने लगती है तब मालकिन उसकी ढिठाईपर क्रुद्ध होकर उगे अपने घरकी नौकरीसे ही निकाल देती है। लेखिकाने समाजमें व्याप्त वर्ग-वैषम्यकी तीव्रताको बड़ी सूक्ष्म एवं सांकेतिक अभिव्यंजना दी है।

वस्तुतः ‘शहरके नाम’ की कहानियां इस रूपमें महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती हैं कि इनके माध्यमसे कथा लेखिकाने वर्तमान परिवेशमें नारी-चेतनाकी विविध प्रवृत्तियोंको अभिव्यक्ति प्रदान करनेका प्रयास किया है। इन कहानियोंमें नारी-व्यक्तित्वके अभाव, तनाव, संघर्ष और प्रेम जैसे मनोभावोंकी मनोरम व्यंजना हुई है। कहानियोंकी भाषा-संरचनामें भी कथ्यके अनुरूप ही सरसता और सबलताके गुण समाहित हैं। □

## पुरस्कृत विज्ञान कथा-साहित्य?

लेखक : यमुनादत्त वैष्णव ‘अशोक’

समीक्षक : डॉ. आदित्य प्रचण्डिया

पचहत्तर वर्षीय यमुनादत्त वैष्णव ‘अशोक’ हिन्दी में विज्ञान-कथा-लेखनके क्षेत्रमें निरसन्देह अप्रतिम हैं। प्रस्तुत कृतिमें अशोककी चौदह कहानियोंके अतिरिक्त उनका ८६ पृष्ठीय ‘चक्षुदान’ उपन्यासभी संकलित है। ‘पुरस्कृत’ शब्दको स्पष्ट करते हुए अशोक प्रस्तुत पुस्तककी भूमिकामें लिखते हैं “इस संग्रहको ‘पुरस्कृत’ कथा साहित्य कहनेसे पाठक भ्रममें पड़ सकते हैं कि ये मेरी रचनाएं भारतीय ज्ञानपीठ, साहित्य अकादमी, उ. प्र. हिन्दी संस्थान जैसी अखिल भारतीय संस्थाओं के पुरस्कारोंसे सम्मानित हुई होगी। ऐसा नहीं है। ये पत्र-

१. प्रका. : तारामण्डल, ३६८ आवास विकास कालीनी, सासनी द्वार, अलीगढ़। पृष्ठ : २६२; डिमा. ६१; मूल्य : १२०.०० रु.।

‘प्रकर’—मार्च ६२—३६

पत्रिकाओं द्वारा आयोजित कहानी प्रतियोगिताओंमें पुरस्कृत सर्वश्रेष्ठ कहानियां हैं” (पृष्ठ ८-९)। अपने इस लेखनके अभिप्रेतके लिए अशोक कहते हैं “मैं तो अपनी रचनाओंको सामान्य भारतीयों और नव साक्षरों के विज्ञान बोधके लिए लेखता हूँ” (भूमिका, पृष्ठ ९)। वयोवृद्ध उत्साही कथालेखक अशोक विज्ञानके अध्येता रहे हैं अतएव उनकी कथा-रचनाओंमें वैज्ञानिक तत्त्वोंका समावेश है। कथा रसके साथ-साथ वैज्ञानिक जीवन-दर्शनके अभिदर्शनभी उसमें होते हैं। अशोककी इन कहानियोंकी विशेषता है कि इन्हें बाँचे हुए पाठकों के अन्धविश्वास खण्डित होते रहते हैं और उनके भ्रमोंका परिहार होता चलता है। साथही तर्कपूर्ण जीवन-दृष्टि भी सुलभ होती जाती है।

‘वैज्ञानिककी पत्नी’ कहानीमें डॉ. बोसका मनुष्य को अमर बना देनेका प्रयोग जीवन विज्ञानके कुछ सत्यों को उद्घाटित करता है। पतिका सान्निध्य, विश्वास एवं प्रेम पाना नारीकी अभिलाषा होती है। यहाँ तककी नलिनी अपने पति डॉ. बोसके प्रयोगमें सहयोग देकर अपने प्राणोंको जेखिममें डाल देती है। विज्ञानकी अति बौद्धिकताके प्रति भय एवं व्यंग्य कहानीमें सर्वत्र विद्यमान है। शोध-छात्र रायके प्रयोगोंपर आधारित ‘दो रेखाएं’ एक सफल वैज्ञानिक कथा-रचना है। ‘अस्थि-पिजर’ कहानीमें वैज्ञानिक प्रयोगोंमें निरन्तर उलझे रहनेवाले वैज्ञानिक डॉ. राबर्टके मस्तिष्कमें भावनाओं का ही संघर्ष दिखाना कथाकारका लक्ष्य रहा है। साथही कहानीमें विज्ञानके प्रति सम्मानका भाव भी जगानेका यत्न हुआ है। ‘प्रोफेसरकी भूल’ कहानीमें डॉ. आप्टेकी मनःस्थितिका सूक्ष्मतापूर्ण चित्रण किया गया है जिससे भूलनेकी मुख्य घटनाका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सरलतासे प्रस्तुत किया जा सके। इसी प्रकार शिशु-मनोविज्ञानसे सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्योंको उजागर करती है अशोककी कहानी ‘अनुगामिनी’। ‘वैज्ञानिकका निमंत्रण’ कहानी संश्लेषित भोज्य पदार्थोंके क्षेत्रमें विज्ञानकी नूतन संभावनाओंपर आधारित है। संश्लेषित नीलके अविष्कारपर आधारित कहानी ‘नील के धब्बे’ में वैज्ञानिकता और सामाजिकताका अपूर्व सामञ्जस्य हुआ है। समाजमें व्याप्त भूत, प्रेत, देवता आदिसे संदर्भित अन्धविश्वासोंको मिथ्या ठहरानेके उद्देश्यसे लिखित ‘अप्सराका सम्मोहन’ और ‘भूतकी वेदना’ कहानियां लेखकके उत्कृष्ट शिल्प-कौशलकी



परिचायिका हैं। शाकाहारी, शोकाहारी और 'पेड़की चिड़िया' वैज्ञानिक कहानियां होते हुए भी प्रत्यक्षतः किसी वैज्ञानिक तथ्य अथवा विचारसे अनुप्राणित नहीं हैं तथापि पाठकको वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान करनेमें वे सक्षम हुई हैं।

वैज्ञानिक आविष्कारोने जासूसीके क्षेत्रको भी अत्यधिक प्रभावित किया है। संचार साधनोंके निर्माणके क्षेत्रमें अमिनव वैज्ञानिक सम्भावनाओं एवं पस्किल्पनाओंको बड़े रोचक ढंगसे 'रेडियो रोग' कहानीमें प्रस्तुत किया गया है। उड़नतश्तरियोंके आधारपर लिखी गयी कहानी 'न्यूटनियाका यात्री' में कथाकार अशोकने न्यूटनिया निवासियों एवं उनकी उपलब्धियोंके संदर्भमें उर्वर वैज्ञानिक कल्पना की है। इस प्रकार विषयकी रोचक प्रस्तुति और प्रवाहपूर्ण टेक्नीकके कारण इन कहानियोंके कथ्य स्पष्टतासे अभिमंडित हैं।

प्रस्तुत पुस्तकके अंतमें 'चक्षुदान' नामक विज्ञान-परक औपन्यासिक रचना संगृहीत है। इसमें कथाकार अशोकका वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी है तथा प्रेम तत्त्व और घटना-वैचित्र्यभी। यह वैज्ञानिक सत्य है कि मनुष्य व्यक्तिके कतिपय अंगोंका किसी अन्य शरीर में प्रत्यारोपण सम्भाव्य है। इसी सत्यको केन्द्र मानकर एक सुगठित रुचिबन्त कथावस्तुका प्रणयन उपन्यास-

कार अशोकने बखूबी किया है। उपन्यासमें एकही कथा सुनिश्चित गतिसे विकास पाती हुई विस्तार को प्राप्त होती है। धीरेन्द्र, अनूप और सुषमा प्रस्तुत उपन्यासके तीन प्रमुख पात्र हैं। कथा इन्हींके इदं-गिदं घूमती है। इस उपन्यासमें अशोकका उद्देश्य वैज्ञानिक प्रगतिसे सनाजको अवगत कराना रहा है। धीरेन्द्र और सुषमाका प्रणय-प्रसंग तथा इसके समक्ष आगत सामाजिक अवरोधोंके निमित्तसे प्राचीन और अर्वाचीन पीढ़ी के मध्य रहते आये मतभेदोंको भी उभारा है। अशोकने हिन्दू मुस्लिम दंगोंका उल्लेख करनेके उपरान्त सुषमा और अनूपके शरीरमें एक मुस्लिम भाईकी क्रमशः आंखों एवं आंतका आरोपण कराके दोनों धर्मोंके लोगोंमें समन्वयका प्रशंस्य प्रयास किया है। अशोककी यह रचना अनावश्यक शब्द जालसे परे है तथा सीधी-सरल भाषाओंमें पाठकोंको वैज्ञानिक तथ्योंसे अवगत करानाही लेखकका अभीष्ट है। 'चक्षुदान' उपन्यास वैज्ञानिक भावबोध और समुचित प्रासंगिक समावेशकी प्रभावनापूर्ण मौलिक एवं सरस प्रस्तुति है। उपन्यासमें कहींभी वैज्ञानिक तथ्यपरक शुष्कताके अभिदर्शन नहीं होते अपितु ये तथ्य रोचक-रोमांचक वातावरण बनानेमें सहायक सिद्ध हुए हैं। □

## काव्य

श्वेत शिखरोंपर धूप बिम्बः

इन्द्रधनुषका आठवां रंगः

कवि : दयाकृष्ण 'विजय'

समीक्षक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह

समकालीन कविताके विस्तृत परिदृश्यमें अनेक

१. प्रका. : अनुराग प्रकाशन, १/१०७६ ई, महारौली, नयी दिल्ली-११००३०। पृष्ठ : १३५; प्रकाशन वर्ष : १९८७; मूल्य : ४०.०० रु.।

२. प्रका. : अयन प्रकाशन, १/२० महारौली, नयी दिल्ली-३०। पृष्ठ : १०३; प्रका. वर्ष : ६१; मूल्य : ५०.०० रु.।

धाराएं समानांतर रूपसे चल रही हैं, यथा प्रगतिवादी, जनवादी, प्रकृति-प्रेमवादी तथा उदात्तवादी आदि, तो दूसरी ओर संरचनाकी दृष्टिसे मुक्त छंद, गीत और गजलके भिन्न रूप देखे जा सकते हैं जिनमें मुक्त छंद आजके संदर्भमें सबसे अधिक कारगर सिद्ध हो रहा है। इसका कारण आजके युगकी जटिल-चिन्तन संवेदना वाली मनोवृत्ति है जो संभवतः मुक्तछंदमें अपनी बहु-आयामी अभिव्यक्ति प्राप्त कर सकती है या करती है। इस दृष्टिसे यदि डॉ. दयाकृष्ण 'विजय' की सृजन-यात्राका अनुशीलन किया जाये तो वे आरम्भमें तुकांत छंद और गीतसे होते हुए क्रमशः मुक्त छंदकी ओर उन्मुख हुए हैं और यह उन्मुखता 'श्वेत शिखरोंपर धूप

'प्रकर'—चैत्र २०४६—३७



बिम्ब' (१६८७) और (१६९१) संग्रहोंमें स्पष्ट देखी जा सकती है। इसीके साथ एक तथ्य यह भी है कि इन संग्रहोंका नाम कुछ रोमांटिक एवं उदात्त रूपाकारोंको लेकर किया गया है जो मूलतः कविकी मानसिकताको व्यक्त करती है कि वह सरस-कोमल और उदात्त मनोभावोंका कवि है, पर इसके साथही उनमें कहीं-कहीं यथार्थके कटु एवं व्यंग्यात्मक रचिका भी समावेश हैं। यही कारण है कि कविकी रचना-दृष्टिमें उदात्त और भौतिक, आदर्श और यथार्थ तथा तात्त्विक और जागतिकका द्वन्द्व प्राप्त होता है और साथही, उनके मध्य एक संतुलन या संश्लेषणकी प्रक्रियाभी प्राप्त होती है। इस दृष्टिसे मेरा विवेचन कविकी उपर्युक्त दो रचनाओंपर ही केंद्रित है क्योंकि इन दो संग्रहोंमें विगतकी सापेक्षता में कविका रूपांतरण ही हुआ है जो मेरे अधिक अनुकूल है। इसका यह अर्थ नहीं है कि कविकी आरंभिक रचनाएं अर्थहीन हैं, पर विकासकी दृष्टिसे उनमें सम्बन्ध सूत्र हैं भावों और विचारोंका क्योंकि किसी भी रचनाकारको उसके विगतसे पूर्ण रूपसे काटकर नहीं देखा जा सकता।

उपर्युक्त विवेचनसे पहली बात यह सामने आती है कि कविकी रचना-प्रक्रियामें उदात्त-आदर्श तथा भौतिक-जागतिकका द्वन्द्व है और यह द्वन्द्व 'आदर्श' की ओर उन्मुख है। 'गोबर और गणेश' नामक कविता इसी संबंधको व्यक्त करती है :—

"यथार्थ नग्न होता है/ व्रीभत्स भी/ इसे शूंगारता है नैतिक आदर्श/ आदर्श जीवनकी एक दृष्टि है/ कूप मण्डूकता नहीं / गोबरसे गणेश बनाता है आदर्श"। (इंद्रधनुषका आठवाँ रंग, पृ. ३२)।

यहाँ कवि यथार्थको नकार नहीं रहा है—अपितु उसका स्थापन आदर्श सापेक्ष कर रहा है। इस संबंध के अन्तर्गत वह समाज, राजनीति, मिथक, प्रकृति, गणित-विज्ञान, काल-बोध तथा तात्त्विक संदर्भोंको अपने ढंगसे अर्थ दे रहा है। कविके भिन्न रूपाकार जहाँ एक ओर पारम्परिक-रोमानी स्रोतसे आये हैं, वहीं आधुनिक जीवनके रुख कटु बिम्ब (कैवटस, गिद्ध, कुकुरमुत्ता, साँप) भी देखे जा सकते हैं; और साथही भिन्न ज्ञान-क्षेत्रोंके रूपाकार भी उसकी सृजनात्मकता को गति देते हैं। इस दृष्टिसे, उनकी भाषाका स्वरूप

'प्रकर'—सार्च' ६२—३६

बोधगम्यता उनके द्वारा निर्वाचित 'रूपाकारों' के द्वारा प्रकट होती है। इस प्रकार 'शब्द' का महत्त्व उजागर होता है और ये ही शब्द या रूपाकार कागजपर उतरते हैं जो राग-दुःखसे संपृक्त होकर अपना अर्थ प्रकट करते हैं। (इंद्रधनुष—पृ. ५७)। यहीं नहीं, कविके लिए ये शब्द दंशके समान हैं जो मूलतः पृष्ठ ढोते हैं, हाशिए नहीं—

"हाशिए नहीं/ पृष्ठ ढोते हैं/ शब्दोंका दंश"

(श्वेत शिखरोंपर धूप बिम्ब, पृ. ७९)

सृजन और शब्दका अटूट संबंध कविकी यथार्थ और आदर्शके भिन्न संदर्भोंकी ओर ले जाता है। यथार्थ की दृष्टि चीजोंके सही निर्वाचनमें है और उसके सही अर्थ देनेमें। 'बाहरकी हवा' का अर्थ यह नहीं है कि 'अपनी हवा' तथा 'अपने घर'को नकारा जाये—यहाँ 'हवा' और 'घर' शब्द प्रतीक हैं जो किसीभी जातिकी अस्मिताके अंग हैं।

"बाहरकी हवा प्रकाशके नाम तुमने किया है सदाही गुरेज घरकी हवा, घरके प्रकाशसे बुद्धिसे काम लो अपना घर अपनाही है।"

(इंद्रधनुषका... पृ. ६८)

दोनों संग्रहोंकी कविताओंसे गुजरते हुए यह लगता रहा कि कवि यथार्थके दंशको अनुभव तो करता है, पर रचनात्मक धरातलपर उसे प्रबलताके साथ प्रकट नहीं कर पाता है। इसका कारण कविकी वह दृष्टि है जो कटु-यथार्थको प्रेक्षित तो करती है, पर उसे पूर्ण संघर्ष-वृत्तिके साथ अभिव्यक्त नहीं कर पाती। 'पेट्रोज़ालर', 'चिन्ता', इसी जूलूसमें तथा 'उदर स्फीति' आदि ऐसी कविताएँ हैं जहाँ कवि आजकी राजनीतिक-आर्थिक सामाजिक स्थितियोंसे टकराता है और कमी-कमी व्यंग्यकी मुद्रा में प्रहारभी करता है। यथा, ऋण-प्राप्ति और उन्नतिका यह सम्बन्ध देखें।

उन्नतिका एक ही सोपान है।

ऋण जहाँसे मिले, लो जितना मिले लो, रोज अंगुलियोंपर

सरसोंका तेल मलो

ताकि दोहनकी प्रक्रियामें। थके नहीं"

(श्वेत शिखरों... पृ. ७०)



इसी संदर्भमें "इसी जुलूसमें" कविताको लिया जा सकता है जो अराजक सत्ताके विरुद्ध 'जन-क्रांति' की सूचक है और साथही, सुखद सपना है भविष्यकी पीढ़ियोंका। यह कविता और प्रभावशाली बन सकती थी, यदि कवि जन-आकांक्षाओंकी गहरी परतोंमें प्रवेश करता। मुक्तिबोधमें भी 'जुलूस' है, पर वह कितना विराट् आलोड़न है जो दयाकृष्णमें नहीं है। संभवतः यह संवेदना और विचारका अंतर है। फिर भी दयाकृष्णको यथार्थके द्वन्द्वात्मक रूपको और गहरेसे आत्मसात् करना होगा—भाषाके स्तरपर भी और अनुभवके स्तरपर भी। यह लगता रहता है कि कविकी भाषा एक सीमाके बाद यथार्थके द्वन्द्वात्मक रूपको अभिव्यक्त करनेमें सफल नहीं होती जो अन्य क्षेत्रोंमें (प्रकृति, कालबोध, मिथक-संदर्भ) अपेक्षाकृत अधिक कारगर होती है। प्रत्येक कविकी अपनी सीमाएं होती हैं और दयाकृष्ण विजयकी भी अपनी सीमा है। पर, इस सीमाको अभी तोड़ा जा सकता है, ऐसा मेरा अनुमान है।

कविकी रचनात्मकताके दो नये आयामोंकी ओर संकेत करना आवश्यक है जो युग-बोधकी विशिष्ट भंगिमा है। मेरा संकेत गणित-विज्ञान एवं कालबोधसे है। कवि गणित और वैज्ञानिक स्थापनाओंको कभी-कभी रचनात्मक ऊर्जा प्रदान करता है, और जीवन यथार्थ एवं संवेदनासे जोड़ता है। कवि गणितके सर्वमान्य सिद्धांत एक + एक = दो को अद्वैत और मानवीय अनुभवमें मान्यता नहीं देता क्योंकि "बूंद बूंद नदी/ लहर लहर नहीं दौड़ती जा रही/ महासमुद्रकी ओर.../ वे दो होकर भी/ नहीं हो जाते हैं एक / होता है मिथ्या/ गणितका सर्वमान्य सिद्धांत" (इंद्रधनुष का... पृ. १६-२०)। यहांपर विलोमके द्वारा सत्यको सहाराया गया है। यही स्थिति मुक्तिबोधकी भी है जो मानवीय अनुभवमें गणित-सूत्रोंको सर्वमान्य नहीं मानते, फिर भी दोनों कवियोंमें दृष्टिका अंतर है। एक 'रहस्य' की ओर उन्मुख है तो दूसरा (मुक्तिबोध) यथार्थकी गहरी दृष्टिसे, जो द्वन्द्वात्मक है। कविकी एक अन्य कविता "एकका वैशिष्ट्य" में शून्य और एकके सापेक्ष सम्बन्धको दिखाते हुए शून्य कब अनन्त हो जाता है, इसका संकेत है— "पाते ही एकका संस्पर्श/ शून्य कब रहता है शून्य/ नहीं हो जाता वधमान/... यानी जुड़ते नहीं स्वयं शून्य/ नहीं होजाता अनन्त असीम/... शून्य

के एक होनेका प्रश्न ही नहीं। संयुक्तिका कैसा है यह अद्भुत चमत्कार।" (वही, पृ. १५-१६)। पूरी कविता की संरचना जैविक है जो एकके वैशिष्ट्यको अर्थ प्रदान करती है। इसी प्रकार एक वैज्ञानिक स्थापना कार्य-कारणकी है। प्रश्न है कार्य पहले है या कारण। इस गुंथीको कवि इस प्रकार सुलझाता है— "इसमें कौन कार्य है/ और कौन कारण/... बात मान ले/ निश्चयही है इनके बीच/ सातत्य लिए/ कोई सार्थक प्रासंगिक सम्बन्ध।" (वही, पृ. ६३)।

वैज्ञानिक दृष्टिके अतिरिक्त एक अन्य क्षेत्र है— काल-बोधका जो अनुभव-विम्बों द्वारा रचनात्मक संदर्भ प्राप्त करता है। कविने कालको गति (नदी) के रूपमें ग्रहण किया है जिसकी तुलना सांसकी गतिसे नहीं की जा सकती— "कहां दुर्जेय अपराजित काल/ और कहां/ घौंकेनीकी तरह आती जाती बिचारी सांस/ विराट्की अणुसे कैसी बराबरी।" इंद्रधनुषका आठवां रंग, (पृ. ४३)। यहां कवि अणु (सांस) और 'विराट्' में अणु को 'बेचारी' कहता है जो सांसकी तुच्छता और निरीह अस्तित्वको प्रत्यक्ष करती है। केदारनाथ सिंहकी एक कविता 'अडियल सांस' है जहां यह "तुच्छ" सांस काल से लोहा लेती है। यही स्थिति डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्यायकी कविता 'घड़ी' की है। कहनेका तात्पर्य यह है कि आजके संघर्षशील जीवनमें 'संघर्ष' को तीव्र करने वाली कविता हमें बल देती है जबकि इसके विपरीत भाववाली कविता 'संघर्ष' को कम करती है। मानवीय अनुभवमें यही काल त्रिकाल (भूत-वर्तमान-भावी) द्वारा अनुभूत होता है जो एक सातत्य है— इसीसे वह "भविष्यके गर्भका वासी / वर्तमान जिसे भोगकर ही अनुभवता है"— ये पंक्तियां काल-गतिको व्यंजित करती हैं। यही काल विनाशकारी रूपभी धारण करता है। अतः कालके दो रूप—नकारात्मक और सकारात्मक-सापेक्ष रूपमें चलते हैं। समस्त सृष्टिका यही क्रम है। कवि कालकी इस गतिका साक्षी है और इतिहास जो कालमें घटित होता है, इसे "मैं" ही अर्थ देता है। यह इतिहासकी आत्मपरक व्याख्या है जो क्रांति का लिगवुड आदिमें प्राप्त होती है। कवि कहता है—

जब इतिहास अतीत खोजेगा

तब तुम नहीं

मैं ही मिलूंगा उसे

मैं ही कहूंगा उसे



उद्धान-पतनकी सारी करुण-कथा

जिसका मैं साक्षी हूँ ।" (इंद्रधनुष...पृ. ६२)

इसके विपरीत हीगेल, मार्क्स, लेनिन आदि हैं जो इतिहासको समाज सापेक्ष मानते हैं जो द्वन्द्वात्मक है। यहाँ 'मैं' का सामाजीकरण प्रमुख है। ये दोनों दृष्टियाँ इतिहासके अर्थको अपने ढंगसे खोजती हैं।

इतिहासकी धारणामें मिथकीय प्रसंगोंका अपना स्थान है क्योंकि जातीय मानससे इनका गहरा सम्बन्ध है। युग-संदर्भोंमें ये रूप बार बार नये अर्थोंकी सृष्टि करते हैं। कविने इन मिथकीय आद्य रूपोंको कहीं-कहीं स्थान दिया है। कवि चाहे वह किसी 'वाद' या 'मत' का हो वह इन आद्य रूपोंसे टकराता अवश्य है और यही बात दयाकृष्ण विजयके बारेमें भी सत्य है। कवि कहीं 'प्रलय' के विम्ब और 'मनु' को लेता है (पृ. १३), कहीं गायका अर्थ-रूपांतरण करता है, कहीं नटराज और शैलजा के रूपोंको लेता है, तो कहीं शूर्पणखाकी कटी नाक को लोकतंत्र द्वारा तानाशाहीकी कटी नाककी चर्चा करता है (श्वेत शिखरोंपर पृ. ४६), तो कहीं सूर्यरथ, सारथी और अश्वोंके रूपों द्वारा शरीर, आत्मा और इन्द्रियोंके प्रतीकत्वको नया संदर्भ देता है—“मुझे/ इस रथसे/ बहुत प्यार हो गया है/ फिर दुबारा/ ऐसे संयमित चपल घोड़े/ ऐसे नीरक्षीर विवेक सारथी / ... मिले/न मिले। (इंद्रधनुषका...पृ. ३०)। यहाँ कवि इन प्रतीकोंकी सकारात्मक अर्थवत्तापर बल देता है नकि नकारात्मक।

कविका एक अन्य क्षेत्र प्रकृति-विम्बोंकी सृष्टि है। इसीके साथ प्रकृति और पुरुषके सम्बन्धको व्यक्त करने की आकांक्षा। फागुन, वसंत, सूर्योदयका विम्ब, जंगल और उद्यानका प्रतीकात्मक अर्थ—ये दृश्य जहाँ सौंदर्य की सृष्टि करते हैं, वहीं कभी-कभी व्यंजनात्मक अर्थभी प्रकट करते हैं। कविने जंगलको 'सहज' और उद्यानको कृत्रिम माना है जो जंगलके अस्तित्वको खतरेमें डाल देता है। उद्यानोंमें जंगल लानेकी प्रवृत्ति घातक है। (पृ. ७६)। यही कारण है कि सभ्यता 'सहज' होने की भूखको कब मिटा पायी है। कविके ये प्रकृति चित्र मात्र चित्र न होकर मानवीय संकटकी ओर संकेत करते हैं जो पर्यावरणका संकट है।

दयाकृष्ण विजयकी रचनाशीलताके भिन्न आयामों के विवेचनसे यह ध्वनित होता है कि कविकी विचार-संवेदन प्रक्रिया यथार्थके कटु-तिक्त रूपोंके प्रति उत्तनी

'प्रकर'—मार्च'६२—४०

संवेदनशील नहीं है जितनी उसके उदात्त, आदर्श रूपके प्रति। कवि 'यथार्थके घरातलपर विचरण' तो करता है, पर, घरातलके नीचे जो ताप—लावा है उसे पूरे रूपसे व्यक्त नहीं कर पाता है। इसका कारण भाषा और कथ्यकी वह द्वन्द्वात्मकता नहीं है जो भाषाको प्रक्षेपास्त्र बना सके। संभवतः यह कविकी प्रकृतिभी नहीं है क्योंकि कवि मूलतः सहज संवेदनीय उदात्तकी ओर उन्मुख भाषाका पक्षधर हैं। समकालीन कवितामें ऐसी भाषाका तेवर उस भाषासे अलग है जो आक्रामक, पेनी तथा प्रहार करनेवाली है। यह कविकी प्रकृतिका विषय है कि वह किस प्रकारकी भाषाका सृजन करता है। दयाकृष्णकी भाषा कृत्रिम नहीं है, वह सहज अर्थको देनेवाली है।

एक बात और। कविताओंसे गुजरते हुए मुझे ऐसा लगता रहा है कि कविको अपनी संवेदनाके विस्तार हेतु 'विचार-साहित्य' के मंथनकी ओर आवश्यकता है। आजकी रचनाशीलता मात्र भाव-संवेदन तक सीमित न होकर उसे वैचारिकतासे और अधिक गहरानेकी आवश्यकता है। विचार-साहित्यका अध्ययन और मनन हमें नये संदर्भोंकी ओर ले जाता है और रचनाकारकी सृजनशीलतामें वह पर्याप्त सीमा तक सहायक होता है। आशा है कि दयाकृष्ण विजय अपनी रचनात्मकताकी ओर गहरानेका प्रयत्न करेंगे—वे यथार्थके बहुरूपोंको व्यापक अर्थ देनेमें सफल होंगे। □

## मौन पर शब्द?

कवि : प्रकाश मिश्र

समीक्षक : प्रयाग जोशी

वक्तव्य एवं कथन दोनोंके प्रति जागरूक प्रकाश मिश्रकी इन कविताओंसे उनकी पहचान बनती है। यद्यपि कविका यह पहला ही संकलन है पर उनकी रचना-धर्मिताके प्रति आश्चर्य करता है। संग्रहमें चालीस कविताएँ हैं और सभी सार्थक और सशक्त हैं। सबसे ज्यादा प्रभावकारी है कविताओंका भूगोल जो सम्पूर्ण भारतको अपनेमें वेष्टित किये हुए है। कवि चाहे मिर्जो-

१. प्रका. : विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी-

२२१००१। पृष्ठ : ८८; डिमा. ८७; मूल्य : ३०.०० रु.।



रम अथवा अरुणाचलकी घाटियोंमें हो या दक्षिणी प्राय-  
द्वीपकी अधित्यिकाओंमें; वर्तमानमें जीते हुए, वर्तमानमें  
अवशिष्ट सनातनके द्वारा संस्कृति और इतिहासको  
छूना चाहता है। कविमें बौद्धिकता है, बौद्धिक अभि-  
शक्तता नहीं। व्यंग्य है परन्तु वह काव्य-क्षेत्रकी  
सीमाओंमें बंधा हुआ। कविताएं शब्द-शक्तिकी प्रतीति  
कराती हैं। उसकी शक्तिसे सामर्थ्यवान् दो कवि अन-  
छोड़े क्षेत्रोंका क्लेशअप लेता है, चित्र तैयार करता है  
और कविताके अन्तर्वचनमें उनको संजोता जाता है। वर्त-  
मानका बोध कविताओंके यथार्थको नया आयाम देता  
है। कवि छोटे-मझोले विषय यहाँ-वहाँ कहींसे भी उठा  
लेता है और यथार्थके रंगोंसे उन्हें विस्तृत और गहरा  
करता जाता है। बौद्धिक जागरूकता उनमें इतिहास  
और संस्कृतिकी अनुगूँज भरती जाती है। सुमछइ माटीने  
प्रकाश श्रिकी कविता-प्रतिभाका संस्कार किया है।  
नकचढ़ी हवा और भोरहरी बयारके स्पर्शोंसे कवि  
मौसमके तेवर भांपता है। बेबनी सड़कोंपर से गुजरते  
हुए बेंगुची-बसवारोंके झुरमुटोंसे निकलते हड़बोर हड़-  
होरोंके लोरिकायन और नोन चमारोंको भी वे आजके  
जीवनके साथ पूरी सम्बेदनाके साथ संलग्न करते हैं तो  
सातवाहन साम्राज्यकी इतिहास-स्मृतिमें पहुंचकर सत्ता  
और चिन्तनके बीच गैरकिताबी अस्तित्वसे अस्मितावान्  
वन बियावान वर्तमानको भी एक स्वप्नाकांक्षाका सृजन  
संभव करते जात होते हैं। कविके लिए इतिहास, स्मृति-  
सत्ताका स्तूप मात्र नहीं है अपितु वह भी वर्तमानका  
ही एक अंग है —

सिंहाचलमकी ऊंचाइयोंसे  
जहां सीकचोंमें कैद देवके सामने बैठा  
पुजारी धर्म बेचता है,  
एक पत्थर फेंकूंगा सागरमें  
जिससे उसकी उत्ताल लहरें  
उमड़-धुमड़कर जल प्लावित करें  
सातवाहनोंकी सीमाको  
और उनका नाद  
बियावानके ओरछोरको झकझोर दे  
ताकि सत्ता और चिन्तनके बीच  
अस्तित्व बनाये रखनेका सपना  
किताबी न होकर  
इन दुर्लभ क्षणों-सा हो जाये  
अपना

यह मेरी दिग्विजय होगी।

कवि श्रीप्रकाश मिश्र इतिहास-संचेतनाकी तलाशमें  
निरत कवि हैं तो दूसरी ओर देशके विदूष सामा-  
जिक-विडम्बनाओं और दुश्चिन्ताओंपर भी दृष्टि रखते  
हैं। घूमिलके जुमलोंमें लिखी गयी और उसीकी कविता  
के आयामोंको विस्तार देती तीन कविताएं 'जूता'  
शीर्षकसे इस संग्रहमें आयी हैं। जूता जो आजके समय  
का सबसे कारगर वर्जना-प्रतीक है। एक और दुर्लभ  
कविता 'सिआर' शीर्षकसे है। कविकी व्यंग्य कविताओं  
में जो शक्ति है वह वस्तुतः व्यंग्यके विषयके जर्जरपने  
की है जिसको ठकठातेही मानो शब्द बजने लगते हैं।

सामंती बयारमें कांपते

बरगदके नीचे बैठा देश

कोढियाये हाथसे

अल्प्युनियमका कटोरा

सरकाते-सरकाते जब

बंद हो जाता है पर्यटकके कमरेमें

सागरकी उत्ताल लहरोंमें

उछलते सूरजको

जब लील जाता है कोई हनुमान

पकगयी जमीनके पुष्पता होनेमें

जब शहरी गिरजाघरका आतंक

छा जाता है

मैं चांदको आवाज देता हूँ।

कविने भावोंकी अभिव्यक्तिके लिए ठीक-ठीक

भाषा पा ली है। दूधइयों, नाकूस, जरांठ, अडार, लुआठ,

ताखा, अकन, जैसे शब्दोंको उसने देसी जमीनसे पाया

है। इस शब्दावलीको बरतनेकी सही और सार्थक

संहति कविने व्यवहारकी दुनियासे सीखी है। श्रीप्रकाश

मिश्रकी कविताओंमें गुच्छे-सा लटका डूबता चांद,

सागरको औरतकी तरह अपनी ओर खींचता है। हेमंत

की नदी, दिन और रात की हताशाकी सांसकी तरह

झेलती है। उनकी कविताओंमें, हुसनेके आपात्कालीन

पेटिंगसे निकलकर दुर्गा है और बोलने लगती है। परियों

की कथाओंसे निकलकर घोड़ा आता है और इतिहास

की अंतर्द्वियोंसे होता हुआ भीड़भरी कोलतारकी सड़क

पर गुजरने लगता है। ये वे कविताएं हैं जहां रात,

शहरके सीनेमें छुरीकी भांति उतरती है। भोरहरी बयार

के इशारेपर डोलती लहरोंके विस्तरपर मछलियां सोती

हैं। घंटियोंकी आवाज देवघरसे उठती है और नाकपें



बैठ जाती है। प्रकाश मिश्रके प्रजातंत्रके नीचे एक कुत्ता है जो अपने जबड़ेमें युधिष्ठिरकी परछाई दबाये नदीमें प्रवेशकर रहा है। उगता हुआ सूरज झड़से फाँटते-सा दिखता है। नदीसे आदमीकी गंधका भभका उठता है और वह जाता है। वृक्षोंपर फलोंकी तरह आदमीकी आँखें टँगती हैं। चाँद, तारोंकी मरदुमशुमारी करते हैं। वान्योंकी यह गढ़न कविताकी व्यंजनाको नयी शक्ति देती है। प्रकाश मिश्रकी कथन शैलीमें नये-नये मुहावरे गढ़ते जाते हैं। वे कहते हैं—

फूलोंका हथियार खुशबू होता है

जिसे वे

हर गंधाते गुल्मके हर जुल्मके

खिलाफ उठाते हैं

हाँ मौसममें

फूल।

प्राकृतिक मौसम ही नहीं, मानवी व्यवस्थामें भी एक ऋतुचक्र है। उनका भी एक सौन्दर्यशास्त्र है। मनुष्य का, और मनुष्यके लिए प्राकृतिक चीजोंका सौन्दर्य कब झब्वेदार पूँछ और रोमिल शरीरकी गर्माहटसे खिसक कर झपट्टा मारनेको उद्यत शरीर मुद्रामें परिवर्तित हो जाता है इसको पहचानकर साफ-सुथरे फितरोंको गढ़ देना काव्य-क्षेत्रका हुनर कहलाता है। इस हुनरको सीखे बिना यह नहीं कह सकता कि—

इस मौसममें

विभिन्न आकृतियोंकी

बटोह जैसी दाढ़ी लगाये

वोट तहमीलने वाले

मदारियोंकी ज़रूरत नहीं।

मिश्रमें श्रेष्ठ कविताके दर्शन वहाँ होते हैं जहाँ वे व्योरोमें जाते हैं अथवा किसी मिथकके हवालेसे सामयिक परिदृश्यका प्रेषण (उत्क्षेपण!) कवितामें कर रहे होते हैं। समुद्रमें टिटिहरीका अण्डा डूब गया था। चिड़िया ने समुद्र तटपर तपस्यालीन अगस्त्यपर अण्डा निगल जानेका आरोप मढ़ा था। गुस्सेमें आकर अगस्त्य समुद्र पी गये थे और ऋषि-मुनियोंके द्वारा धरतीका मौसम उसे लौटानेके लिए जब प्रार्थना की गयी तो ऋषिने मूत्र द्वारा समुद्रको जीवन दान दे दिया था। इसीपर पुराकथा गढ़ी गयी कि अगस्त्यकी आँतों का उच्छिष्ट भानी होनेसे ही वह खारा होता है। इस पुराकथा और समुद्रके मिथकको, 'अण्डे उबालकर खा

'प्रकर'—मार्च'६२—४२

जाने' के आजके परिदृश्यसे जोड़कर प्रकाश मिश्रने कविताके खूबसूरत बंद बनाये हैं—

अपने अतल गहराइयोंकी संपदाको

बड़वानत में उबालता

अपनी अंतर्द्वियोंमें खोयी नदीको

वनस्पतियों जलचरोंके उपनिवेशमें छीटता

किसी ऋषिके जाँघका वह कुल्ला !

इसी प्रकारके पदार्थोंका ठीक-ठीक प्रभाव, वजन, नाप-तोल करती शब्दावलीमें सूक्ष्म पर्यवेक्षण एवं बारीक वर्णनोंके द्वारा वस्तुओं व स्थानोंके खाके खींचते चले जाते हैं। कहीं-कहीं तो लगता है, मानो कवितामें रिपोर्ताज लिखा जा रहा है—

एक चिड़िया धूलमें लौट रही है

एक शिशु नरमुण्डसे खेल रहा है

और उसमें एक बाप

अपना पूत खोज रहा है

एक मेढ़क टरक रहा है

और दो आँखें

लुआठमें अपना घर घूर रही हैं।

एक हताश वृद्ध अगली कविता

मस्सा भीग रहे फूलके

पराग केशरमें नहीं

कंकाल हाथोंमें छाव

और कोमल कण्ठोंमें चीख

में लख रहा है

एक जिन्दगी

होने न होनेके संशयमें

डूब गयी है।

श्रीप्रकाश मिश्रकी कविताओंका यह संग्रह सार्थक, उपयोगी और कीमती कविताओंका संग्रह है। खरीद कर पढ़ने योग्य संग्रह। □

## नयी धरती नया आकाश?

सम्पादक : डॉ. अम्बाशंकर नागर एवं

डॉ. रामकुमार गुप्त

समीक्षक : डॉ. उत्तम भाई पटेल

विवेच्य पुस्तकमें ३३ कवियोंकी काव्य-रचनाएँ

१. प्रका. : हिन्दी साहित्य परिषद्, २ अमर आलोक अपार्टमेंट्स, मणिनगर, अहमदाबाद-३८०००८।  
पृष्ठ : १११; डिमा. ६१; मूल्य : ६०.०० रु.।



मिश्र

संकलित हैं। संकलनके अधिकतर रचनाकार नये हैं। कव्यकी दृष्टिसे इस पुस्तकमें संकलित कविताएँ विविध भावोंकी अभिव्यक्ति करती हैं। प्रणयकी गहरी अनुभूति इनमें व्यक्त हुई है। कहीं एक प्रेमीका प्रभाव दूसरेपर हो रहा है—क्योंकि, मेरा चुकते जाना / वह देखता है, / और खुदभी / चुकने लगता है। (पृ. १५, कमलेश सिंह) तो कहीं 'प्रथम दृष्टिमें प्यार' की बात है। कोई मिला, जानेके बाद लगा कि वह तो चिर-परिचित था, एकही पथका पथिक था। किन्तु यह अनुभूति उसके चले जानेके बाद हुई। जब अनुभूति हुई, वह नहीं था। जब वह था, अनुभूति नहीं थी। कैसा आश्चर्य है !—तुमसे मिलनेके बाद / तुम्हारे जाने के बाद / देखे हैं दो खवाब। (पृ. ४५, मीरां राम निवास)।

कहीं गौनेकी तिथिके निकट आनेपर ग्रामीण मुग़ाकी मनःस्थिति एवं शारीरिक अंगोंमें आने बदलाव का चित्रण है—गदराई तरुणाई। गमके आलिंगनके बूले/छोटो पड़ती अंगियाको ले/सखियाँ करें ठिठौली ! (पृ. २२, अविनाश श्रीवास्तव) तो कहीं सावनके बरसात पवन, माटीकी महक, टहकते मोर, वर्षा की बोछारें विरहिणीको आकुलित कर रहे हैं, क्योंकि धरती हरी-भरी होरही है, किन्तु—परदेशी पाहुना/भेजे न पावना/आये न जालमा। (पृ. ३४, सुधा श्रीवास्तव), तो प्रेमिला शुक्ल प्रियतमसे कह रही हैं—गमकी काली रातोंमें/सुवहके उजाले हो तुम, थके, निराश, टूटे जीवनमें, आशाकी बैसाखी हो तुम ! (पृ. ८६)।

संक्षेपमें, प्रस्तुत संकलनकी प्रणय-कविताओंमें कहीं सधुर मिलनकी आनुरता है, तो कहीं विछुड़नेकी प्रतीति, कहीं मीठी यादें हैं, तो कहीं विरह-बेदनाकी पुनर्गुदी है। कहीं प्रियका दर्शन ही 'पर्वोत्सव' है तो कहीं सतरह अक्षरोंमें प्रिय-स्मृतिका चमत्कार है—टहके मोर/याद आ गया कौन/इतनी भोर ! (पृ. २६ भगवतशरण अग्रवाल)। 'कान्त'भी कान्तासे कह रहे हैं—तुमकी तनहा, मैं एकाकी अब तो रंग भरेगा मौसम (पृ. ५१)।

'नयी धरती नया आकाश' की कविताओंमें जीवन की परिभाषा कवियोंने अपने-अपने दृष्टिकोणके अनुसार की है। जैसे;

(१) जिन्दगी मिली/बादलोंके घर-सी/है भी, नहीं भी (पृ. २६, भगवतशरण अग्रवाल)

(२) चल रहा है जीवन सभीका/रेलगाड़ी-सा निरन्तर। (पृ. ४२, गिरधारीलाल शराफ)

(३) सुख-दुखोंके फूल-काँटोंसे बनी, जिन्दगी विभुका विमल वरदान है। (पृ. ५६, रामअवधेश त्रिपाठी)

(४) नम जमीनसे गुजरते हुए डर लगता है,

जिन्दगी उलझी साँसोंका शहर लगता है !

(पृ. ७३, प्रणव भारती)

(५) सुख-दुख तो हैं जीवन-रथके/दो पहियेही !

(पृ. ८७ 'चिराग चाँपानेरी)

जीवनके साथ मृत्युका अटूट सम्बन्ध है। तो भला ये कवि इनसे कैसे दूर रहते !

(१) आगे बारात है, और पीछे अर्थी/कैसा अजीब नज्जारा है ? क्या इसी अहसास/को जिन्दगी कहते हैं ? (पृ. ६२, शशि-बाला पंजाबी)

(२) मौतके प्रोग्राम विकते पंचतारक होटलोंमें/जिन्दगी ढावों सरीखी निरी सस्ती बन गयी है। (पृ. १०४, अश्विनीकुमार पाण्डेय)

(३) प्रेम तेरा पास पाकर, शक्ति ओ' उल्लास पाकर, अभय हो मैं कर सकूंगा/मृत्युसे अभिसार। (पृ. ४१, गिरधारीलाल शराफ)

कोईभी रचनाकार अपने युग-बोधका अस्वीकार नहीं कर सकता। इन कवियोंने भी समसामयिक परिस्थितियों, बोधों एवं विसंगतियोंकी कविताके माध्यमसे विवृत्ति की है। आज युद्ध न्याय तथा मानवताकी रक्षा के लिए नहीं किये जाते। वे तो होते हैं सिर्फ-अपनी शक्तिका/प्रदर्शन करनेके लिए, धार्मिक कट्टरताके चोले में/अपनेको पुजवानेके लिए। (पृ. २६, मंजु भटनागर)। मानवको अग्र रस-उमगसे भरी, अबील-गुलालके रंगसे रंगी होली खेलनेमें रस नहीं है, वह अब रक्त-रंगी होली खेलता है। रामकुमार गुप्त 'चिट्ठी, कृष्णके नाम' में कहते हैं—और सुनो, तुम्हारी वह अट्ठारह दिनकी होली, फैलकर दुगुनी हो गयी है, जमुनाकी पुकार अब—/खाड़ी तक पहुंच गयी है। (पृ. ३८)।

विवेच्य काव्य-संग्रहकी रचनाओंका एक प्रमुख स्वर है—व्यंग्यका। यह व्यंग्य राजनेता, राजनीति, अभिनेता, समाज, कवि आदिको लक्ष्य करके किया गया है। कुछ उदाहरण देखने योग्य हैं—

'प्रकर'—चैत्र २०४६—४३



(१) काश !/विधानसभा/या/संसद तक/मेरे गांव का रास्ता जाता/तो/कबका मेरा गांव/अमेठी बन गया होता । (पृ. ६६, रजनी-कान्त जोशी)

(२) गाली दे रहे/गले भी मिल रहे/सभ्य हो गये । (पृ. २६, भगवतशरण अग्रवाल)

(३) जी हाँ मैं कविता चुराता हूँ । (पृ. ६७, संध्या अग्रवाल) ।

निराशा, अनास्थाके स्वरभी मुखरित हुए हैं । किन्तु ये कवि निराशावादी अनास्थावादी नहीं हैं, आशावादी भी हैं । 'बाहर ही बाहर देखनेवाला तथा भीतरही भीतर सोचता' कवि शराफ लघुतासे महानताकी यात्रामें विश्वास रखते हैं । तो भगवानदास जैन कांटोंमें भी फूलोंकी महक अनुभव करते हैं—चुभन यह ली सभी हमने इसी उम्मीदपर बाबा/कहीं कुछ फूल भी होंगे कंटीली इस डगरियामें । (पृ. ५०) । कहीं आत्मविश्वास झलकता है ।

इनके अतिरिक्त 'दहेअके दानव' 'एक रण वैचारिकी है शेष किंचित्' एवं 'सलीबपर टंगी औरत'में

नारी-जीवनकी दयनीयता, दहेज-प्रथा आदि सामाजिक विसंगतियोंकी कुरूपताका चित्रण हुआ है । व्यंग्यके साथ हास्यकी फूहारभी है । 'चश्मेका चक्कर' कविता इसका सुन्दर उदाहरण है ।

शिल्पकी दृष्टिसे भी प्रस्तुत संग्रहकी कविताएं ध्यान खींचती हैं, लम्बी कविताएं, गजल गीत, नज्म तथा हाइकु काव्य-प्रकार हैं । इसमें अठ्ठाईस कविताएं भी हैं तो छंदोबद्ध गीतभी । जापानी काव्य-प्रकार हाइकु, जो गुजराती कवितामें काफी विकसित हुआ है, गुजरातके इन हिन्दी कवियोंने हिन्दी कवितामें प्रयोजा है । कवितामें बिम्ब एवं प्रतीकका उपयोग तो इन्होंने कियाही है । 'बिम्ब' के बारेमें उनके विचार कविता के माध्यमसे व्यक्त हुए हैं—बिम्बकी भाषामें/कविता बोलती है,/भेद अपने हृदयका/वह खोलती है । (पृ. ८१—(अम्बाशंकर नागर) । भाषाकी दृष्टिसे संस्कृत तन्मय, देशज, उर्दू-फारसी तथा कहीं-कहीं अंग्रेजी शब्दोंका प्रयोग पर्याप्त है ।

संग्रहकी कुछ रचनाएं निरी गद्यात्मक परिलक्षित होती हैं । मुद्रण एवं वर्तनी विषयक दोषभी इसमें हैं । □

## नाटक

### राक्षस

नाटककार : शंकर शेष

समीक्षक : डॉ. नरनारायण राय

'राक्षस' शंकर शेषका १९७६-७७ में लिखा गया नाटक है जिसका प्रकाशन इधर १९९० में हुआ । शंकर शेष (२-१०-३३ से २८-१०-८१) अपने नाटक

१. प्रकाशक : किताब घर, २४/४८६६, शीलतारा हाउस, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ । पृष्ठ : ७०; डिमा. ६०; मूल्य : २५.०० रु. ।

'प्रकर'—मार्च ६२—४४

'एक और द्रोणाचार्य' की ख्यातिके साथ हिन्दीके अग्रणी नाटककारोंकी पंक्तिमें शामिल कर लिये गये थे । पोस्टर, कैदी, अरे मायावी सगेवर आदि कई सार्थक नाट्य रचनाओंसे शंकर शेषका नाटककार व्यक्तित्व निखरा है । 'राक्षस' नाटक इसी शृंखलाकी एक कड़ी है । इस नाटकके बारेमें कहा गया है कि "राक्षस एक जातिवाक्य शब्द ही नहीं मानसिकता द्योतक शब्द भी है । राक्षस वह है जो सामान्य मानवीय स्वरूपके विरोधमें रहता है । इस नाटकमें शंकर शेषने मनुष्यकी इसी वृत्तिको उभारा है" । नाटकके चरित्रोंके माध्यमसे मनुष्यके भीतर छिपे प्रेम और द्वेषके संघर्षको स्पष्ट किया गया है और अमानवीय स्थितियोंके बीचसे आभा



का नया कमल फूलता है। कमल फूलने के अन्तर्गत लाल, पीला, नीला माला-  
के साथ खिलता है, एक नयी सुबहका प्रतीक बन जाता है जो सभी प्रकारके शोषण और अत्याचारके अंधकार को बीरकर उदित होता है। अंधेरी रात चाहे जितनी भी काली और लंबी हो, प्रकाश अन्ततः उसे भेद ही देता है। अंधकार और प्रकाशका यह संघर्ष मनातन है और उतनी ही सनातन है हमारी चिन्ता 'तमसो ज्योतिर्मा गमय'।

नाटकमें नाटककारने महाभारतकी बकासुरकी कथाके आख्यानसे जोड़कर भविष्यके प्रति अपनी आशा की भावना अभिव्यक्त की है। एक दिन भीमकी भाति 'लड्का' हाथमें अस्त्रकी तरह कमल लिये आयेगा और रणछोड़दास जैसे राक्षसोंका अन्त होजायेगा। शोषण-अत्याचार और आतंकका अंधकार चीरकर नया सवेरा नयी आजादी और नयी पहचान कायम करेगा। पूर्वाद्धि और उत्तराद्धिमें वस्तु विभाजित है। फलतः घटनाओं का नैरन्तर्य बना रहता है। खबर फैलती है कि नगरके नगर और गांवके गांव निगलता हुआ राक्षस आगे बढ़ा चला आ रहा है। गांवका कवि, चिन्तित है और वह इन अफवाहोंके पीछे काम कर रही राक्षसी शक्तियोंके प्रति सबको सावधान करता है। पर कोई उसकी सुनता नहीं। राक्षसोंको बन आती है। रणछोड़दासके पड़ोयत्रके कारण लालदास, पीलादास, नीलादास प्रतिनिधि चुने जाते हैं और ये सब मिलकर कविकी प्रशंसिका स्त्रीकी भी उस पंचायतका सदस्य बना लेते हैं जो 'राक्षस' की समस्याका समाधान करेगी। पंचायतका फैसला होता है कि रोज एक-एक आदमीको राक्षसका आहार बननेके लिए भेज दिया जाये। पहली बलि कविकी दी जाती है ताकि स्थापित व्यवस्था का विरोध मर जाये। पहले उसकी जीभ काटी जाती है फिर राक्षसके पास पहाड़ीकी ओर भेज दिया जाता है। एक-एक कर लोग कम होते जाते हैं केवल औरतें और बच्चे रह जाते हैं। पंचायतसे असहमत स्त्री कविकी कविताकी शिक्षा नयी पीढ़ीको देती रहती है। इस प्रकार नयी पीढ़ी एक नयी मुद्रामें संघर्षकी तैयारी करती है। उपर राक्षसके भोजनके बहाने भेजे गये लोगोंसे हाड़-तोड़ परिश्रम कराया जाता है और भूख प्याससे मरे लोगोंकी हड्डियोंके अंवार लगते जाते हैं। रणछोड़दास

माल होते जाते हैं। एक दिन आता है जब केवल बच्चे और औरतें बच जाती हैं तो स्त्री पंचोंसे कहती है कि अब उनकी बारी है क्योंकि राक्षसके पास जानेवाला कोई और पुरुष तो बचा नहीं। सबके सब आनाकानी और बहानेबाजी करते हैं। नयी तालीमकी ताकतसे ऊर्जस्वित नये किशोरोंका दल तबतक इन ठग नेताओंको चारों ओरसे घेर लेता है और या तो राक्षसके हाथों या उनके हाथों मरनेके लिए विवश करत है। रणछोड़दास एक-एक कर अपने सहयोगीकी गोली मारकर हत्या कर देता है पर अन्ततः स्वयं एक बालक द्वारा कमल फूलके स्पर्शद्वारा मार डाला जाता है। तभी यह रहस्य खुलता है कि राक्षसकी नगरीमें गांवके गये लोगोंकी स्थिति दासोंसे भी बदतर थी। उन्हें भूखा नंगा रख कर जी ताड़ काम करनेके लिए विवश किया जाता था। भूख-प्याससे वे अंततः दम तोड़ दिया करते थे। रणछोड़दास, नीलादास, पीलादास और लालदास सभी उसी शोषण-तन्त्रके अंग थे।

शोषणके धरातलपर सत्ता और जनताका संघर्ष तो चिरकालसे होता आया है। यह नाटक उससे भी आगेकी एक स्थिति शोषणकी सत्ताकी स्थितिको रेखांकित करता है। यह भयावह स्थिति है जो एक पूरी पीढ़ीको निगलकरभी शान्त नहीं होती। उसके जबड़े भावी पीढ़ीको भी निगल जानेके लिए तत्पर हैं। पर शोषणके विरुद्ध जनताके संघर्षका भी अपना एक इतिहास है। शोषण चक्र कुछ अधिक समय तक के लिए खिंच सकता है पर सदाके लिए बना नहीं रह सकता। कभी न कभी उसके कमजोर हिस्सेपर चोट होगी और शोषणकी नींवपर खड़ी सत्ताकी इमारत धराशायी होगी। नाटकमें जैसा एक सामान्यसे किशोर और निर्दोषसे दिखनेवाले उसके अस्त्र (कमल फूल) से संभव होता है। पूरा नाटक प्रतीकोंके सहारे आगे बढ़ता है। स्त्री, रणछोड़दास, किशोर, सुकालू-दुकालू, राक्षस, कमल फूल आदि सभी अपनी व्यक्तिवाचकताके अलावा वर्ग और भावकी भी प्रतीकात्मक ध्वनि देते हैं।

शंकर शेषपर अद्वैतक कई शोध-समीक्षा ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं और ऐसे अधिकांश ग्रंथोंमें शंकर-शेषके प्रकाशित अप्रकाशित नाटकोंका मूल्यंकन प्रस्तुत किया जा चुका है। इस नाटकका प्रकाशन यद्यपि विलंब



से हुआ है पर चर्चा होती रही है। नाट्य कला पर लोक-नाट्य शैली के कथा गायन का प्रभाव है। शिल्पविधान परंपरा विरोधी और पूर्वाद्ध-उत्तराद्ध में विभाजित नवीन शिल्पविधान का नाटक है। नाटक का कथ्य 'हमें राक्षस की तलाश बाहर नहीं भीतर करनी चाहिये' जैसे कथनों में व्यंजित होता है। जबतक हम अपने भीतर के राक्षस को नहीं मार लेते तबतक मानवीय मूल्यों की सामाजिक प्रतिष्ठा संभव नहीं।

समीक्षक का अनुमान है कि रंगमंचीयता की दृष्टि से शंकर शेष अपने इस नाटक को अंतिम रूप नहीं दे पाये थे। संभवतः यही कारण था कि नाटक उनके जीवन काल में और उनके द्वारा प्रकाशित नहीं हो पाया। नाटक की मूल योजना एक ही दृश्यबंध की है। मंचीय निर्देश पर्याप्त नहीं हैं और साज-सज्जा का भी विधान नहीं है। बस पात्र हैं और मंच है। निर्देशकीय कल्पना की छूट तो है पर नाटककार की मूल कल्पना अस्पष्ट रह जाती है। निर्देशक आवश्यक सुधार के साथ नाटक प्रस्तुत करने में असुविधा अनुभव नहीं करेंगे। □

## अन्ततः ?

नाटककार : विवेकानन्द

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

स्वतन्त्र भारत जनसंख्या-वृद्धि में विश्वका सिर-मोर होने का दावा कर सकता है। किन्तु भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता तथा शोषण में तो इसकी विकास-दर और भी अनेक गुना है। बिहार इसमें सभी प्रदेशों से आगे है भ्रष्टाचरण जीवन-पद्धति का इस प्रकार अंग बन गया है कि कभी कोई आदर्शवादी युवक इसको चुनौती देता है तो जैसे सम्पूर्ण समाज में हड़बड़ी छा जाती है तथा इस बेसुरी आवाज को मिटाने के प्रयास होने लगते हैं। आवश्यकता पड़ने पर धर्म का ब्रह्मास्त्र भी काम में लिया जाता है। विवेकानन्द ने इस निर्मम यथार्थ को बिहार के ग्राम्य-परिवेश की पृष्ठभूमि में अंकित किया है।

चन्द्रदेव एक आदर्शवादी नवयुवक है। वह एम. ए. की डिग्री लेकर भी नौकरी तलाशने के स्थान पर गाँव आकर कृषि-कार्य करना चाहता है। गाँव में उसे

१. प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। पृष्ठ : ५०; डिमा. ६०; मूल्य : ३०.०० रु.।

'प्रकर'—मार्च ६२—४६

अन्ध-विश्वास के अस्त्र से वह मार खा जाता है। पण्डित जी उसकी जमीन को धार्मिक-स्थल घोषित कर उसे वेदखल कर देते हैं। युवा नाटककार विवेकानन्द का नाटक इस देश में धर्म के नाम पर बढ़ते अनाचार का उद्घाटन करता है।

'अन्ततः' को 'नयी पीढ़ी नाटक प्रतियोगिता' में सर्वश्रेष्ठ नाटक घोषित किया गया था। नाटक हिन्दी के महान्तम नाटककार जयशंकर प्रसाद की पुष्प स्मृतिको समर्पित है। प्रसाद आस्था के पोषक नाटककार थे, 'अन्ततः' खण्डित आस्था का नाटक है। स्वाधीनता के लिए संघर्षरत पराधीन भारत के नाटकों की मूल्यवत्ता के निकट आकर स्वाधीन भारत के नाटकों में प्रस्तुत चित्र अधिक भयावह बन गया है। इस भयावह स्थिति ने अनेक लेखकों में कुण्ठा तथा व्यक्तिवादी अभिव्यक्तियों का विकास किया। किन्तु कुछ प्रतिबद्ध लेखकों ने इस चुनौती को स्वीकार कर 'सितमगर की नजर से नजर मिलाकर' जीवन जीने का संकल्प लिया है। 'अन्ततः' का नायक चन्द्रदेव अन्त में पराजित दिखायी देता है किन्तु यह पराजय संघर्ष को अधिक बलवती बनाने का संकल्प देने वाली है।

नाटक में ग्यारह दृश्य हैं। नवाँ दृश्य सबसे लम्बा—कुल नाटक के पचास पृष्ठों में से बारह पृष्ठों का है। इस दृश्य में नाटककार ने दृश्य के अन्दर अन्तर्दृश्य रखा है तथा इस अन्तर्दृश्य के अन्दर भी एक और अन्तर्दृश्य है। यह पूर्व-दीप्ति (फ्लैश-बैक) के रूप में है। तथापि, यह युक्ति कुछ अधिक जटिल हो गयी है। यदि इससे बचा जाता तो अच्छा होता। यह एक आवश्यक नाट्य-युक्ति नहीं दिखायी देती। अन्यत्र नाटक की गति अत्यन्त सरल है।

नाटक के प्रारम्भ में मरी हुई भैंस को रस्सी से बाँधकर खींचते हुए व्यक्ति दिखाये गये हैं। ऊपरी रूप में ऐसा दिखाना कठिन लग सकता है। किन्तु, अत्यन्त क्षीण प्रकाश के निर्देशों के साथ नाटककार ने इस प्रसंग को रखा है। इससे यह प्रसंग प्रस्तुतिके समय कठिन नहीं रह जायेगा।

नाटक का अन्त चन्द्रदेव की जमीन को धर्मस्थल बनाने की घोषणा के साथ मंत्रोच्चार के साथ हुआ है। पृष्ठभूमि में वायलिन का रुदन स्वर मन्द होता बताया गया है। इस अवसर पर वायलिन की ध्वनिके स्थान पर चन्द्रदेव की मजबूर आवाज को डूबते तथा मंत्रोच्चार एवं शब्द



इसमें ध्वनिका प्रभाव नाटकके कथ्यसे सीधा जुड़ता। साथही, व्यंग्यके रूपमें, गाँवके अन्य व्यक्तियों द्वारा भी धर्मकी जयका स्वर मुखरित कियाजा सकताथा। इसमें सत्यके लिए संघर्षरत व्यक्तिके अकेले पड़ जानेवाली विडम्बना ध्वनित होती। नाटककी प्रस्तुतियोंके समय, इन सुझावोंपर विचार कियाजा सकताहै।

‘आमुख’ में विवेकानन्दने कुछ महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त कियेहैं—“जब तकके हमारे छोटे-छोटे अहं वैयक्तिक पूर्वाग्रह तथा लाभवादी वृत्ति आड़े आती रहेंगी, मैं नहीं समझता कि एक अच्छे नाटकका जन्म हो सकेगा। शायद यही कारण है कि आज हिन्दी नाटक के नामपर या तो विदेशी नाटकोंके अनुवाद या रूपान्तरण सामने आ रहेहैं या रंगकर्मियों द्वारा किये गये द्रुमुंहा प्रयामोंके फलस्वरूप चुस्त-दुरुस्त फार्मवाले किन्तु कथ्यकी दृष्टिसे बेहद सामान्य स्तरके नाटक लगातार मंचित हो रहेहैं। बल्कि एक‘ध अपवादको छोड़ें तो आजके अधिकांश स्वयंभू नाटककार खुद रंगकर्मी ही हैं जो स्वयंही नाटकके निर्देशकभी हैं और नायकभी। ऐसेमें एक स्वस्थ परम्पराकी नितान्त आवश्यकता है जहां नाटककार और निर्देशकके बीच गहरी आस्था, परस्पर सम्मान तथा मोहन राकेश, श्यामानन्द जालान व ओम शिवपुरीवाला सौहार्दपूर्ण भाव हो, तभी एक और ‘आषाढ़का दिन’ या ‘लहरोंके राजहंस’ या ‘आधे अधूरे’ का जन्म होसकेगा।” हम रंगकर्मियोंके नाट्य-रचनामें संलग्न होनेसे चिन्तित नहीं है। नाट्य-रचना तथा रंग-कर्म इतने सहयोगी कर्म हैं कि इनका साहचर्य नाट्य-चर्चके लिए अत्यन्त हितकारी होताहै। भारतेन्दु एवं सहयोगी नाटककार भी थे तथा अपने नाटककी प्रस्तुतिमें सर्वाधिक भागभी लेतेथे। भारतेन्दु युग नाट्यचर्चके लिए अत्यन्त सार्थक युगभी

होतीहै जहां रंगकर्मी नाटक-कारपर विश्वास न कर अपने सामर्थ्यके बाहरका कार्य संभालना चाहताहै। प्रसादजीको रंगकर्मीके निकट पहुँचनेका अवसर मिला तभी ‘ध्रुवस्वामिनी’ जैसी कृति मिली जो पूर्ववर्ती नाटकोंसे भिन्न है। तथापि, ‘ध्रुव-स्वामिनी’ने ‘स्कन्दगुप्त’ तथा ‘चन्द्रगुप्त’ जैसी मामिक अनुभूतियों तथा गहन जीवन-दर्शनोंको खोयाभी है। नाटककारको रंगमंचकी आवश्यकताओंका ध्यान रखते हुएभी नाटकके मूल काव्य-तत्त्वको नहीं खोना चाहिये। रंगकर्मी-नाटककार यदि रंगमंचकी दृष्टिको हावी होने देगा तो यही होगा। ऐसा कभी-कभी हुआभी है किन्तु हमेशा यही हुआहो, यह माननेका कारण नहीं है।

नाटककारको शिकायत है कि उसे रंगकर्मियोंका सहयोग न मिलनेसे बार-बार नाटकके ड्राफ्ट बदलने पड़ें तथा वह नाटककी मंच-संभावनाओंके प्रति पूरी तरह आश्वस्त नहीं है। नाटककी मंच-संभावनाएँ हमें चिन्ता योग्य नहीं लगीहैं। हम नाटककारको अपनी जानकारीके आधारपर आश्वस्त करना चाहेंगे कि अनेक संभावनावाले औरभी नाटक रंगकर्मियोंकी अल्प जानकारीके कारण उपेक्षित हैं, ‘अन्ततः’ ही इसमें अकेला नहीं है। दुर्भाग्यवश रंगकर्मियोंको इस भ्रमने जकड़ रखाहै कि मंचन-योग्य नाटकोंकी हिन्दीमें भारी कमी है तथा इसकी पूर्ति अनुवादोंसे ही हो सकतीहै। इस भ्रमने रंगकर्मियोंके साथ-साथ हिन्दी नाटकको भी क्षतिग्रस्त कियाहै। उत्तम नाटक उपलब्ध हैं, रंगकर्मी देखें तो।

विवेकानन्दमें हमें अधिक संभावनाएँ दिखायी दी हैं। भविष्यमें हम उनके फलीभूत होनेकी प्रतीक्षा करेंगे। □

## लघु विज्ञापन दर

चौथाई पृष्ठ आधा कालम अथवा पाँच सेंटीमीटर दो-कालमा

एक बार

३००.०० रु.

तीन बार

७६५.०० रु.

छः बार

१४४०.०० रु.

बारह बार

२७००.०० रु.

व्यवस्थापक : ‘प्रकर’, ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

‘प्रकर’—चैत्र २०४६—४७



## भास्कराचार्य ?

लेखक : गुणाकर मुले

समीक्षक : डॉ. हरिश्चन्द्र

आरम्भमें ग्रंथकारकी स्पष्टोक्ति है "यह पुस्तक बच्चोंके लिए है", किन्तु ज्यों-ज्यों उसे बाँचा जाता है, स्वतः प्रकट होने लगता है बच्चोंसे लेखकका अभिप्राय वृद्धोंसे न भी रहा हो, किन्तु प्रौढ़ों तकसे अवश्य है। इस अर्थ-विस्तारके लिए विद्वान् रचनाकारको बधाई। ग्रंथमें तैत्तिरीय ब्राह्मण, वेदांग ज्योतिष और भुवन-कोशके मूल उद्धरण, विदेशी विचारकोंके संदर्भ, गणित के गूढ़ सिद्धांत, संस्कृत, अरबी और फारसीके गुरु-गम्भीर शब्द तथा पाठकमें सूक्ष्म भावोंको ग्रहण करने की सहज क्षमताका परिकल्पन, इस निष्कर्षके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। साथही विद्वान् ग्रंथकारने उन सरल-स्वाभाविक प्रश्नोंके उत्तरोंसे बच निकलनेका सफल उद्योग भी किया है, जो विषय-विवेचनके अवसरपर बच्चों द्वारा किये जा सकते थे। उदाहरणार्थ, लीलावतीके विवाहके प्रकरणको लेकर जो बातें कही गयी हैं, वे आसानीसे समझमें आनेवाली नहीं हैं। न तो वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके आधारपर वर्णित जल-वटीमें मणिके गिर जानेसे पानी का चढ़ना पूर्णतया अवरोध हो सकता था, और न वर्षावाले, जिनका उक्त संस्कारके समय उपस्थित होना निश्चित है, इतने असावधान हो सकते थे कि खेल-खेल में विवाह-मुहूर्तही निकल जाये। एक किंवदन्ती यह भी है कि लीलावतीका विवाह तो हुआ था, किन्तु दैवगतिसे वह बाल-विधवा होगयी। सीधी बात यह है कि इस अनावश्यक प्रसंगको टाला जा सकता था। यों भी

इस युगमें १०-१२ वर्ष की कन्याके विवाहकी विस्तारसे चर्चा करना उपादेय नहीं कहा जा सकता।

भास्कराचार्यके जन्म-वर्ष और सिद्धान्तशिरोमणिके रचना-कालपर उनकी वयका अनुमान करते समय मूल श्लोक "रसगुणपूर्णमहीसम शक नृपतिसमय अभवत मम उत्पत्तिः", तथा "रसगुणवर्षेण मया सिद्धांतशिरोमणि रचितः" के उल्लेख तथा शब्दांक-गणना-सूचकी व्याख्या अपेक्षित थी। इससे अतीतके गौरवपर और प्रकाश पड़ता।

विद्वान् लेखकने इस पुस्तकमें भास्कराचार्य द्वारा रचित 'वमिष्ठतुल्यम् तथा 'सर्वतोमद्रयंत्रम्' नामक ग्रंथोंका जिक्र भी नहीं किया है। भास्कर (प्रथम) का परिचय देते समय यह अवश्य लिखना चाहिये था वे आर्यभट्टको अपना गुरु मानते थे, उन्होंने 'आर्यभटीयम्' पर टीका लिखी, तथा उनके 'महाभास्करीय' के अंशोंको परवर्ती ज्योतिर्विदों यथा शंकरनारायण, उदयदिवाकर, सूर्यदेव, विष्णुशर्मा, मक्की भट्ट, परमेश्वर एवं नीलकण्ठने अपनी टीकाओंमें उद्धृत किया है। शंकरनारायणके गुरु गोविन्द-स्वामीने महाभास्करीयकी टीका लिखी थी।

इसमें संदेह नहीं भास्कराचार्य विषयक यह पुस्तक एक उत्तम परिचयात्मक ग्रंथ है, किन्तु कदाचित् कलेवरको बढ़ानेके विचारसे इसमें कई अनावश्यक प्रसंग प्रवेश पा गये हैं। इसके अतिरिक्त विषय-वस्तुके शास्त्रीय प्रतिपादन और कृत्रिम भाषाके बलपूर्वक व्यवहारसे पुस्तक सामान्य बच्चोंको दुर्बोध हो गयी है। □

पत्र-व्यवहारमें अपनी

ग्राहक-संख्या का उल्लेख

अवश्य करें।

१. प्रकाशक : ज्ञान विज्ञान प्रकाशन, सी-४ बी/१२३  
जनुकपुरी, नयी दिल्ली-११००५८। क्रमशः पृष्ठ :  
८०; दोनों क्र. ६१; मूल्य प्रत्येक ३५.०० रु.।

'प्रकर'—मार्च ६२—४८



तत्करो, समूहबद्ध माफिया वर्गके रूपमें गठित होगया। इस कार्यमें साम्प्रदायिकता-कठमुल्लापनका सहयोग प्राप्तकर लिया गया, आतंकवादको प्रोत्साहित कर उसे विकसित किया गया। ये दुर्घटनाएं अनायास नहीं हुईं अपितु पूरी सतर्कता एवं योजनाबद्ध और चरणबद्ध रूपसे लागू कीगयीं, इसीका अंग बनकर आपात स्थितिका आगमन हुआ। विभिन्न चरणोंमें समाजवाद में ढील देकर पूंजीवादी व्यवस्थाको देशमें प्रभाव फैलानेका अवसर प्रदान किये गये। इस योजनाबद्ध आयोजनका पूर्तिके लिए न्याय व्यवस्थासे न्याय प्राप्त करनेके लिए सम्पूर्णजीवन न्याय-मन्दिरोंमें माथा टेकने, विधि-विधानोंको मोमकी नाककी भांति इच्छा-नुसार बाँछित दिशामें मोड़ने, न्यायालयोंकी भाषा केवल अंग्रेजी तक सोमितकर उसे लोकसाधारणके लिए अगम्य बना देनेमें एवं अर्थ-पूजाकी प्रच्छन्न प्रणालीके प्रचलित हो जानेसे यही व्यवस्थाही संविधान की संचालक बन गयी। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सत्ताधीशोंकी सत्ताको स्थापित किये रखनेकी कसौटीपर ही 'न्याय' बन गया। विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासनाकी स्वतन्त्रता भी मात्र सत्ताधीशोंकी प्रयोजन-सिद्धिके माध्यम बन गये। आजके इंडियन-इंग्लिशके समाचार-पत्रों, उनके अनुवादी संस्करण भारतीय भाषाओंके समाचार-पत्रों, दूरदर्शन आकाशवाणीके समाचारतन्त्र और कार्यक्रमों को देखकर बिना प्रयास इस निष्कर्षपर पहुंचा जा सकता है कि ये सभी माध्यम इतने स्वामीभक्त हैं कि सामान्यसे संकेतपर पूंछ हिलाते दिखायी देते हैं। इसी स्वामी-भक्तिके कारण अपनी पूरी शक्तिके साथ पूंछ हिलाते हुए ये इंडिशपत्र देशको बता रहे हैं कि किस प्रकार पाकिस्तान जैसे देश बहुराष्ट्रीय कम्पनियोंकी आमन्त्रितकर अपनी अर्थ-व्यवस्थाको पूंजीवादी रूप देकर एकही वर्षमें समृद्ध हो गये हैं।

देशके वर्तमान संविधानके अन्तर्गत 'समता' की स्थापनाके लिए ये नेता इतने व्यग्र हो उठे कि पूरे देश और समाजको 'अग्नि-दाह' के कगारपर लेजाकर खड़ा कर दिया। 'समता' के इस प्रावधानकी परिणति यह हुई कि पूरा समाज विभिन्न वर्गों, जातियों, विभिन्न सम्प्रदायोंमें इस विकराल रूपमें विभाजित होगया कि यह स्वीकार करना कठिन होगया है कि इस देशका पूरा समाज किन्हीं समान उद्देश्यों और भावनाओंसे उद्बलित होनेवाला अखण्ड राष्ट्र है। पूरे देश और समाजका यह विभाजन तब और उग्र हो उठा जब मतदाताओंके कुछ वर्गोंकी अपना 'वोट बैंक' मानकर उन्हें देशके अन्य सामान्य नागरिकोंकी तुलनामें अधिक सुविधाएं प्रदानकर उनके लिए 'आयोग' गठित किये गये।

प्रकर—अप्रैल '६२—४

किसीभी विशिष्ट वर्ग या सम्प्रदायको विशेष सुविधाएं प्रदान करनेके जो कु-परिणाम होते हैं, उन्हें हम देशके पूर्वोत्तरी भागमें झेलते रहे हैं और कश्मीर और पंजाबमें अब भी पूरी भयानकता और विषमता नरसंहारोंके साथ भुगत रहे हैं। पंजाबमें सिख समुदायको एक पृथक् 'सूबा' बनाकर उपहार रूपमें पेंट उठाकर और उन्हें प्रोत्साहितकर हजारोंकी नर-बलि दीजा चुकी है और अब भी नर-बलिका यह चक्र धूम-वेगसे चल रहा है। कश्मीरकी नरबलियोंको तो ३०० के अस्थायी संवैधानिक परिवेष्टनके संदर्भमें देनेकी आवश्यकता है। ३७० के अन्तर्गत प्रदत्त इन विशेष सुविधाओंने विशिष्ट अधिकारोंका रूप ले लिया है। परन्तु अब सत्ताधीश वर्ग इन अधिकारोंको इस्तेमाल स्थायी बनाये रखना चाहता है कि कश्मीरियों द्वारा नरबलियोंको वह उसी प्रकार भुनाये जैसे कि उन्हें पंजाबमें चुनाव कराकर भुनाया है। इसी प्रकार मनोवृत्तिसे यह धारणा सामान्य बनती जा रही है कि जनसाधारणके लिए संविधान नहीं है, अपितु संविधानके लिए जनसाधारण हैं क्योंकि संविधान तो आत्मार्पित है। इसी आत्मार्पणके कारण देशमें भाषा-धर्म-उत्पन्न हुई है। इस देशकी किसी भाषाको, राजभाषा हिन्दी सहित अपने विकासकी सुविधा नहीं है। सबसे बड़ी बाधा अंग्रेजीको देशपर लादना और उसे ही भाषा 'सम्पर्क भाषा' बना देना है। एक भी प्रशासनिक नौकरी अंग्रेजी-ज्ञानके बिना संभव नहीं है। इस वैधानिक अनिवार्यताका इतनी दृढ़ता और उग्रता पालन किया जाता है कि कोई भी मात्र किसी भारतीय भाषाके आधारपर प्रान्त-राज्य या सर्वदेशीय नौकरी प्राप्त नहीं कर सकता। अंग्रेजीकी इस अनिवार्यताके कारण देशकी किसी भाषाको विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा, व्यापार और प्रशासनिक क्षेत्रोंमें विकसित नहीं होने दिया जाता। इन क्षेत्रोंमें भाषाओंके विकास के बिना केवल कुछ साहित्यिक विद्याओंमें विकास आधारपर कोई भाषा अपनी स्थिति सुदृढ़ नहीं कर सकती क्योंकि पेटकी समस्या साहित्यिक विद्याएं ही सुलझा पातीं।

वस्तुतः वर्तमान संविधान देशके मानसिक संस्कारों, चिन्तन, तथा भौतिक आवश्यकताओंको तो पूरा करना ही नहीं। सम्पन्नोंको और अधिक सम्पन्न बनानेकी नीतियोंके कारण गत ४२ वर्षों में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विकृतियां उत्पन्न की गयी हैं, उन्हें ध्यानमें रखते हुए वर्तमान संविधान में मूलतः परिवर्तनकर अब तकके अनुभवोंके आधार पर उसे पूर्णतया नया रूप दिया जाना चाहिये। □



# संविधानकी प्रासंगिकता : समाजवाद-पूँजीवाद, धर्मनिरपेक्षता-साम्प्रदायिकता और हिन्दी-अंग्रेजी

अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षामें रचे-पचे और अन्तःबाह्य रूपसे ब्रिटिश और यूरोपीय संस्कारोंसे प्रभावित जिन भारतीयोंने देशका संविधान तैयार किया था, उनके सामने केवल ब्रिटिश, यूरोपीय अमरीकन और सोवियत संविधान थे। इस देशको प्रदत्त संविधानकी आधारभूमि मूल रूपसे यूरोपीय थी।

संविधान निर्माताओंका उद्देश्य इस देशको सांस्कृतिक, राजनीतिक स्तरपर यूरोपीय प्रतिकृति बनाना एक नये स्वर्गके निर्माणका स्वप्न था। ब्रिटिश और मुस्लिम कालमें देशकी गतिशीलताके अवरुद्ध होनेसे देशका जो अपक्षय और पतन हो चुका था, उसे वे मध्ययुगके धर्म-परिवर्तन और ब्रिटिश कालके राजनीतिक-सांस्कृतिक परिवर्तनके समान एक नये यूरोपीय आदर्शोन्मुखी परिवर्तनके नारोंके साथ रूपांतरित करनेके लिए कटिबद्ध हुए। यह धारा तूफानी और बहरे बना देनेवाले धुआँधार प्रचारके साथ प्रसारित कीगयी। इस सम्पूर्ण भागीरथ प्रयासके अन्तमें देशके नामपर जो 'घोषणा' (संविधानमें 'उद्देश्य-वाक्य') की गयी, वह आत्मार्पित थी लोकार्पित नहीं।

भारतके समाजवादी, पंथ (धर्मनिरपेक्ष) लोकतन्त्र-आन्दोलन-गणराज्यके निर्माणका संकल्प था, जिसमें न्याय-समन्वयता और समताकी चर्चा थी। अब, बयालीस वर्षसे भी पूर्व देशपर लागू किये गये संविधानसे उस समय भी भलेही जनसाधारणको निराशा हुईहो कि इससे उनकी आकांक्षाएं पूरी नहीं हुईं, उनके जीवन-मूल्योंकी पुनः स्थापना नहीं हुई, उनकी भाषाएं उन्हें नहीं मिलीं, पर तब यह असंतोष सामाजिक और चर्चामात्र 'शास्त्रीय' घोषित कर दी गयी। पर जिस निराशाको लोक-मन अनुभव कर रहा था, धुआँधार प्रचारके प्रबल वेगमें उस अनुभूतिके निराकरणकी क्षीण ऊर्ध्वगत अस्पृश्य, अश्राव्य और अग्राह्य प्रवृत्तियों, अब वही अनुभूति यथार्थ पुष्ट होकर, सामाजिक चर्चाके क्षेत्रसे निकलकर, किसी निकट-वर्तमानकी आधारभूमि बन रहीहै। अब सार्वजनिक चर्चा कहा जाने लगाहै कि वर्तमान संविधान देशकी समस्याओंको सुलझाने और मूलभूत आवश्यकताओंकी पूर्तिमें समर्थ नहीं है। उंगली रखकर

कहाजा रहाहै कि संविधानके अनेक प्रावधान वर्तमान समस्याओंको उलझानेमें ही सहायक हो रहेहैं।

कल्याणी' राज्यकी स्थापनाका स्वप्न आतंकवादी और आतंक-पीड़ित राज्यके रूपमें साकार हो उठाहै, समाजवादकी घोषित स्वर्णिम व्यवस्था गर्हित और शोषण रूपमें विज्ञापित पूँजीवादमें परिवर्तित हो गयीहै और उसके व्यक्तिगत शोषणकी प्रक्रियाको राष्ट्रीय शोषणमें परिवर्तित कर देशको इक्कीसवीं सदीके अनुकूल ढालनेके स्थानपर देशको अठारहवीं और उन्नीसवीं सदीके शोषणका प्रतिरूप बनायाजा रहाहै। राजनीतिक आक्रमण और उस आक्रमणको स्थायी बनाने के लिए पूजास्थानों-धर्मस्थानोंको ध्वस्त करने एवं हत्याओं, लूटपाट, बलात्कार, धर्म-परिवर्तन जैसे कुकृत्यों के विरोधको साम्प्रदायिक घोषित करके देशको उन कुकृत्योंसे नष्ट होनेसे बचानेके स्थानपर उनका स्थायी प्रभाव बनाये रखनेके लिए १९४७ की लक्ष्मण रेखा खींचकर वैधानिक व्यवस्था करदी गयी कि इन वैदेशिक आक्रमणोंके विभिन्न रूपोंको निरस्त करनेका प्रत्येक प्रयत्न दण्डनीय होगा और इस प्रकार आक्रमण के ही प्रत्येक रूपको धर्म और पंथ-निरपेक्षताकी ध्वजा में परिवर्तितकर अनन्तकाल तक उसे फहराये रखने को वैधानिक प्रावधान द्वारा सुरक्षित कर दिया गयाहै। लोकतन्त्रकी इस नयी ध्वजाको बन्दूककी नलीसे निर्गत तप्त-प्रदीप्त आदेशके पालनके साथ इस तन्त्रको जीवित रखनेके लिए लोक-मन विवश है।

संविधानका जो रूप जनसाधारणके गलेके नीचे उतारा गयाहै, उसका मूल सूत्र यह है कि नेताओं द्वारा आत्मार्पित संविधानके लिए ही उनका जन्म हुआहै, उनके लिए अथवा उन्हें अर्पित करके 'लोकार्पित' संविधानका निर्माण नहीं हुआहै। इस आत्मार्पित संविधानकी अनिवार्य प्रक्रियाके अन्तर्गत एक विशिष्ट प्रकारका अधिनायकवाद भारतीय राजनीति में स्थापित होगया और वह वंशगत होगया। इससे दलके भीतरकी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया और पद्धति समाप्त होगयी और उसका स्थान विकृत-हिंसाधारित-मतपेटी परिवर्तन तन्त्रने ले लिया। अपने अगले चरण में यह तन्त्र मिथ्या स्तुति-प्रशंसासे प्रगतिकर झूठाचार,



# नये वर्ष की नयी पुस्तकें

## उपन्यास

**औरत/शिवप्रसाद सिंह**

मूल्य : 90/-

इस उपन्यास का कथानक इस देश की मिट्टी से बहुत गहराई से जुड़ा है। इसमें ग्रामीण जीवन की विसंगतियों को बहुत बेबाकी से दिखाया गया है।

**भंगी दरवाजा/राजेन्द्र अवस्थी**

मूल्य : 40/-

यह उपन्यास सम-सामयिक विद्रूपताओं व विसंगतियों-विडम्बनाओं को बहुत रोचकता से उजागर करता है।

**राज राजेश्वर/राजेन्द्र मोहन भटनागर**

मूल्य : 35/-

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया यह उपन्यास बहुत प्रेरक और पठनीय है। यह मेवाड़ के गौरव महाराणा कुंभा के जीवन पर आधारित है।

## कहानियां

**कथा पन्थान/कमलेश्वर**

मूल्य : 50/-

यह कहानी-संकलन कमलेश्वर की कथा-यात्रा के प्रारम्भिक दिनों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। सभी कहानियां बेहद दिलचस्प बन पड़ी हैं।

## कविताएं

**कटे अंगुठों की बंदनवारें/शिवमंगल सिंह सुमन**

मूल्य : 50/-

इस कविता संकलन में सुमन जी की अप्रकाशित रचनाओं के साथ-साथ ऐसी प्रसंगपरक रचनाएं संकलित हैं जिनका ऐतिहासिक महत्त्व है।

**घोलाधार/संतोष शैलजा-शांता कुमार**

मूल्य : 40/-

इस संग्रह में जहां एक ओर प्रकृति का मनमोहक सौंदर्य और फूलों की घाटी की सुगंध है, वहीं दूसरी ओर गरीबी का कड़वा दर्द पीते आम आदमी के मार्मिक दृश्य भी हैं।

## जीवनी

**अमर बलिदान/रूपसिंह चंदेल**

मूल्य : 15/-

यह स्वतंत्रता बलिदान पर प्राण-न्योछावर करने वाले युवा क्रांतिकारी कर्तार सिंह मरावा की बलिदान गाथा है, जो अत्यन्त रोचक ढंग से लिखी गयी है।

## हिन्दी

**व्यावहारिक हिन्दी : शुद्ध प्रयोग/डॉ. ओम्प्रकाश**

मूल्य : 50/-

लेखक के वर्षों के अध्ययन और अध्यापन का निचोड़ इस पुस्तक में दिया गया है। इसमें शुद्ध हिन्दी के सभी पक्षों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

**आठ पुस्तकों के पूरे सेट का मूल्य : 350/-**  
पुस्तकों का मूल्य मनिऑर्डर से अग्रिम भेजने पर डाक-व्यय निःशुल्क

## कुछ चचित पुस्तकें

सबसे बड़े साहित्यिक पुरस्कार 'सरस्वती सम्मान' से सम्मानित

'दशद्वार' से 'सोपान' तक यह प्रख्यात लोकप्रिय हिन्दी कवि

हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा का अंतिम खंड है। पूरी आत्मकथा चार

भागों में है। यह कृति हिन्दी साहित्य के सफर में मील पत्थर है।

मूल्य : 150/-

## काश्मीर

समस्या और विश्लेषण

जगमोहन भू. पू. गवर्नर (जन्म काश्मीर) देश की सर्वाधिक उन्नत समस्या

पर ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक दस्तावेज है यह पुस्तक जिसमें लिखे गए व्योरे दिल दहला देते हैं।

मूल्य : 175/-

**प्रमृतलाल नागर रचनावली**

सम्पूर्ण नागर साहित्य १२ खंडों में नागर जी की अपनी विशिष्ट शैली

और उन्होंने अनेक विधाओं में लिखी अपनी संपूर्णता और आकर्षक

सज्जा के कारण यह रचनावली सारणीय बन पड़ी है।

१२ खंडों के पूरे सेट का मूल्य : 1800/-

## कोश

**राजपाल अंग्रेजी-हिन्दी कोश**

सभी अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोशों में अधिक उपयोगी और जानबूझकर

मूल्य : 100/-

**राजपाल हिन्दी शब्दकोश**

हिन्दी का आधुनिक, प्रामाणिक नवीनतम शब्दकोश। मूल्य : 125/-



**राजपाल एण्ड सन्स**

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६



सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार  
सम्पक : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग  
दिल्ली ११००७.

[आलोचना और पुस्तक-समीक्षाका मासिक]

सं. २४

अंक : ४

वैशाख : २०४६ [ विक्रमाब्द ]

अप्रैल : १९६२ [ ईस्वी ]

## आलेख एवं समीक्षित कृतियां

सम्पादकीय :

संविधानकी प्रासंगिकता	३	वि. सा. विद्यालंकार
अध्ययन : अनुशीलन		
नयी कविता : एक मूल्यांकन—शम्भूदत्त पाण्डेय	५	डॉ. मूलचन्द्र सेठिया
हिन्दी कहानी : एक दशक—डॉ. ऋषिकुमार चतुर्वेदी	७	डॉ. आदित्य प्रचंडिया
कथा लेखिका : मन्तू भण्डारी—डॉ. ब्रजमोहन शर्मा	६	डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल
नाटकके रंगमंचीय प्रतिमान—डॉ. वसिष्ठ नारायण त्रिपाठी	१०	डॉ. नरनारायण राय
काव्य		
सूरज नहीं बूझेगा—डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा	११	डॉ. रामसजन पाण्डेय
सूर्यारोहण—महेन्द्रप्रसाद सिंह	१३	डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया
आसपास—प्रमिला शर्मा	१४	डॉ. प्रयाग जोशी
अनादि गाथा—डॉ. चक्रवर्ती	१५	डॉ. प्रयाग जोशी
अन्यास :		
विशुद्ध—डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	१७	भगीरथ बड़ोले
एक और अहल्या—डॉ. भगवतीशरण मिश्र	१९	डॉ. पारुक्रान्त देसाई
कहानी : व्यंग्य		
नौरंगी बीमार है (कहानी संग्रह)—शेखर जोशी	२१	डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी
सीढ़ियां (नाटक)—दयाप्रकाश सिन्हा	२४	डॉ. नरनारायण राय
बघाड़ियोंके देशमें (व्यंग्य)—लतीफ घोषी	२६	श्री गंगाप्रसाद श्रीवास्तव
शोध :		
अम्बर हिन्दी शब्द कोश—डॉ. राजेन्द्रमोहन भटनागर	२८	श्री विराज
भाषा विज्ञान :		
प्रोक्ति : स्वरूप, संरचना और शैली डॉ. इन्दु शीतांशु	२९	डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया
साहित्यिक अध्ययन :		
हिन्दी और गुजरातीकी रंजक क्रियाएँ	३२	डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय
भाषा : लिपि		
देवनागरी—डॉ. देवीशंकर द्विवेदी	३७	पाण्डेय शशिमूषण शीतांशु
साहित्यिक पुरोधा		
महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण : पुनर्मूल्यांकन—सम्पा. डॉ. दयाकृष्ण विजय	४१	डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ
सज्जाराम मेहता—ऋतुराज	४२	डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री
तृतीय ज्योतिर्विद्		
आर्यभट्ट—गुणाकर मुले	४५	डॉ. हरिश्चन्द्र
यात्रा		
आधी रातका सूरज—डॉ. कुमुद	४७	श्री विराज

'प्रकर'—वैशाख २०४६—१



## प्रस्तुत अंक

के

## लेखक-समीक्षक

- ☐ डॉ. आदित्य प्रचण्डिया, मंगलकलश, ३६४ सर्वोदय नगर, आगरा रोड, अलीगढ़ (उ.प्र.).
- ☐ डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, भारती नगर, मैरिस रोड, अलीगढ़ — २०२००१.
- ☐ श्री गंगाप्रसाद श्रीवास्तव, ६० चित्र विहार, नयी दिल्ली-११००६२.
- ☐ डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, सिरौही—३०७००१.
- ☐ डॉ. नरनारायण राय, गढ़बनेली (पूर्णियाँ) — ८५४३२५.
- ☐ डॉ. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', प्रोफेसर्स कालोनी, बी-६, गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी कैम्पस, अमृतसर—१४३००५.
- ☐ डॉ. पारुकान्त देसाई, एम-४, न्यू विक्रम बाग, प्रतापगंज, बड़ोदरा—३६०००२.
- ☐ डॉ. प्रयाग जोशी, बी-३/१३, रेल गार्डन रोड, रायबरेली—२२६००१.
- ☐ डॉ. भगीरथ बड़ोले, सी-२८६, धिन्कानन्द कालोनी, फोगंज, उज्जैन—४५६००१.
- ☐ डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय, सरदार पटेल विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, वल्लभ विद्यानगर (गुजरात)—३८८१२०.
- ☐ डॉ. मूलचन्द्र सेठिया, ८/१७६, विद्याधर नगर, जयपुर—३०२०१५.
- ☐ डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, २१ जी.मेकर गार्डन, लिडो-जुहू, सान्ताक्रुज (पश्चिम), बम्बई—४०००४६.
- ☐ डॉ. रामसंजन पाण्डेय, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा).
- ☐ डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ, हिन्दी विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर-३१३००१.
- ☐ श्री विराज, २७-ए राजपुर रोड, दिल्ली-११००५४.
- ☐ डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी, फुटेरा वार्ड नं. २, दमोह—४७०६६१.
- ☐ डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया, बी-३/७६, जनकपुरी, नयी दिल्ली — ११००५८.
- ☐ डॉ. हरिश्चन्द्र 'निरंकुश', 'संस्मृति', बी-११४६, इन्दिरानगर, लखनऊ-२२६०१६.

## विश्वविद्यालयों / महाविद्यालयों/पुस्तकालयोंके लिए अनिवार्य पत्रिका

'प्रकर'

## शुल्क विवरण

- |  |  |                      |
|--|--|----------------------|
| <input type="checkbox"/> प्रस्तुत अंक                                      |  | ६.०० रु.             |
| <input type="checkbox"/> वार्षिक शुल्क साधारण डाकसे :                      | संस्था : ७०.०० रु.;  | व्यक्ति : ६०.०० रु.  |
| <input type="checkbox"/> आजीवन सदस्यता :                                   | संस्था : ७५१.०० रु.;   | व्यक्ति : ५०१.०० रु. |
| <input type="checkbox"/> विदेशोंमें समुद्री डाकसे एक वर्षके लिए :          | पाकिस्तान, श्रीलंका  | १४०.०० रु.           |
|  | अन्य देश :   | २००.०० रु.           |
|  | विदेशोंमें विमान सेवासे (प्रत्येक देशके लिए)—एक वर्षके लिए : | ३३०.०० रु.           |
| <input type="checkbox"/> दिल्लीसे बाहरके चैकमें १५.०० रु. अतिरिक्त जोड़ें. |  |                      |

व्यवस्थापक, 'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रतापबाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर' — अप्रैल '६२



Handwritten notes in the top left corner, including "प्रकाश" and "२०४६" written diagonally.

# प्रकाश

रो  
दिल्ली  
ल : १६६२

वंशाख : २०४६ [विक्रमाब्द] :: अप्रैल : १६६२ [ईस्वी]





## अध्ययन : अनुशीलन

### कविता

#### नयी कविता : एक मूल्यांकन ?

लेखक : शम्भूदत्त पाण्डेय

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द सेठिया

नयी कविताकी समसामयिकताके कारण उसके विवेचन-विश्लेषणकी ओर समीक्षक विशेष रूपसे प्रवृत्त हो रहे हैं। श्री शम्भूदत्त पाण्डेय आलोच्य कृतिमें 'नयी कविताके विषय, उसकी प्रवृत्तियाँ एवं शिल्प-विधानका गोष्ठपरक विवेचन' करनेका संकल्प लेकर चले हैं। 'पृष्ठभूमि' के रूपमें द्विवेदीयुगीन हिन्दी कविता, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद जादि नयी कविताकी पूर्ववर्तिनी काव्य प्रवृत्तियोंका संक्षिप्त परिचय दिया है। पृष्ठ १४ पर अंकित है "प्रगतिवाद और प्रयोगशीलमें भी पर्याप्त अन्तर है यद्यपि दोनोंका आधार एक है।" लेखकने न तो प्रगतिवादिता और प्रयोगशीलताके बीच कोई स्पष्ट विभाजक-रेखा खींची है और न दोनोंकी आधारभूत एकताको ही रेखांकित किया है। पृष्ठ १७ पर एक ओर भ्रामक वक्तव्य है "प्रगतिवादी चेतना अनेक सीमाओं एवं अन्तर्विरोधोंके बावजूद छायावाद में पूर्णतया समाहित है।" छायावाद और और प्रगतिवादमें पूर्वापर्यय सम्बन्ध होनेके कारण साम्यके कई बिन्दु आभासित हो सकते हैं, परन्तु इनके एक-दूसरेमें पूर्णतया समाहित होनेकी स्थितिको कैसे स्वीकार किया जा सकता है? 'निराला' की 'आराधना' और 'अचंता' की चर्चा करते हुए लेखकको एकाएक पंतका ध्यान आ

१. प्रकाशक : कुसुम प्रकाशन, आदर्श कालोनी, मुजफ्फरनगर (उ. प्र.) । पृष्ठ : १५५; डिमा. ८६; मूल्य : ६०.०० रु. ।

गया और उन्होंने लिख दिया 'पंतपरं रामकृष्ण मिशनका प्रबल प्रभाव पड़नेसे वे भक्तिवादी होते-होते अध्यात्मवादी होगये।' पता नहीं पंत 'भक्तिवादी' कब थे और लेखक 'भक्तिवादी' और 'अध्यात्मवादी' में यहां क्या अन्तर कर रहे हैं? वस्तुतः रामकृष्ण परमहंसका प्रभाव तो निरालापर ही था और उन्होंने रामकृष्ण मिशनके हिन्दी मुखपत्र 'समन्वय' का सम्पादन भी किया था। उत्तरकालीन पंतपर तो महर्षि अरविन्दका प्रभाव ही असन्दिग्ध रूपसे स्वीकार किया जाता है। इस वाक्यका अर्थ समझनेके लिए काफी अभ्यास करना पड़ता है "प्रगतिवादने साहित्यमें फैली छायावादी प्रसुप्तीकरणको नव जागृति दी।" आजकल पुस्तकोंमें मुद्रणकी अशुद्धियाँ इतनी रहने लगी हैं कि उन सबके लिए लेखकको उत्तरदायी ठहराना न्यायसंगत नहीं होगा।

लेखकका मन्तव्य है कि 'हिन्दी काव्यधारा में नयी कविताका प्रादुर्भाव 'दूसरा सप्तक' (१९५३) के प्रकाशनके साथही हुआ। 'तार सप्तक' 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' के कवियोंका परिचय लेखकने दो-दो चार-चार पंक्तियोंमें दिया है, जो कहीं-कहीं संक्षिप्त होते हुएभी सारगर्भित है। यथा : "गिरिजाकुमार माथुर मुख्यतः सौन्दर्य सम्पन्न रस-रोमाँसके कविही अधिक प्रतीत होते हैं।" परन्तु, कई कवियोंके सम्बन्धमें जो वक्तव्य दिये गये हैं, उन्हें ज्योंका त्यों स्वीकार करनेमें कठिनाईका अनुभव होता है। यथा "शकुन्तला, (अभिप्राय शकुन्त से है) माथुर नामके अनुसारही नारी मनकी सम्पूर्ण संवेदनाओंकी सम्पूर्ण प्रतिकृति प्रस्तुत करती है।" किसीभी कवि या कवयित्रीके लिए इस प्रकारकी दुहरी सम्पूर्णताका दावा करना वास्तवमें बड़े साहसका काम है।

तृतीय अध्यायको, जो आलोच्य कृतिका मुख्यांश है, लेखकने तीन भागोंमें विभक्त किया है : (क) विषय वस्तुगत वैशिष्ट्य (ख) नयी कविताकी प्रवृ-



त्तियां और (ग) शिल्प-विधान। विषय वस्तु और प्रवृत्ति, दोनोंही नयी कविताके कथ्यसे सम्बन्धित हैं और लेखकने दोनोंके किसी प्रकारके स्वरूपगत पार्थक्य को चिह्नित नहीं किया है। लघु मानववाद, व्यक्तिवाद, रस-रोमांस, कुण्ठा एवं पीड़ा-बोध आदि उपशीर्षकोंके अन्तर्गत जो कुछ लिखा है, वह सामान्य परिचयात्मक है। लेखकने विवेचन और विश्लेषणके अभावकी पूर्ति नयी कविताके प्रभूत उदाहरणोंसे करनेका प्रयास किया है। ये उदाहरण निश्चयही कहीं-कहीं लेखकीय मन्तव्यको स्पष्ट करनेमें सहायक हुए हैं, परन्तु किसी भी स्थितिमें ये शोधपरक समीक्षाके स्थानापन्न नहीं हो सकते। नयी कविताकी एक प्रमुख प्रवृत्ति-व्यंग्यात्मकताकी ओर लेखकने संकेत अवश्य किया है, व्यंग्यात्मक कविताओंके कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं, परन्तु, व्यंग्य-प्रयोगके मूलमें निहित कवियोंकी मानसिकता, युगीन-परिवेशमें व्यंग्यकी अनिवार्यता, उसकी सामाजिक सोद्देश्यता और व्यंग्यकी विभिन्न दिशाओं के विवेचनकी ओर लेखककी दृष्टि नहीं गयी है। साठोत्तरी कवियोंका जीवनकी विसंगतियोंके प्रति आक्रोश मुख्यतः व्यंग्यके माध्यमसे ही अभिव्यक्त हुआ है। यह सही है कि गिरिजाकुमार माथुर और डॉ. धर्मवीर भारती जैसे कुछ कवियोंमें 'रस-रोमांस' की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है परन्तु मूलतः नयी कविताका झुकाव अ-रोमानियतकी ओर है। लेखकका ध्यान इस ओर नहीं गया है कि तटस्थता, निर्व्यक्तिता और वितथता की ओर नये कवियोंका विशेष आग्रह रोमैण्टिसिज्मसे सटने नहीं, उससे हटनेकी स्थितिकी ओर संकेत करता है। 'आधुनिक भाव बोध' और 'कुण्ठा एवं पीड़ा-बोध' के अन्तर्गत लेखकने नयी कवितामें व्यक्त ऊब, उदासी और अकेलेपनकी भावनाको लक्ष्य अवश्य किया है, परन्तु आत्मनिर्वासन, अवमानवीकरण और अजनवीपन आदि मानवकी अन्तर्बाह्य स्थितियोंके मूलमें निहित अतिशय यांत्रिकता (जो व्यक्तिको वस्तुमें बदल रही है) आणविक अस्त्रोंसे उत्पन्न जीवनकी असुरक्षाकी भावना और अस्तित्ववादी सन्दर्भमें ईश्वरविहीन संसारमें मनुष्यके निपट अकेलेपन और निःसहायताके अवबोध को गहराईसे विवेचित करनेका प्रयास नहीं किया गया है।

नयी कविताके प्रयोगवादसे जो दाय स्वीकार किया है, उसमें शिल्प-साधनाका विशेष महत्त्व है।

'प्रकर'—अप्रैल १९२६

अधिकांश प्रयोगवादी कवियोंने अपने संवेदनको अधिकाधिक संप्रेषणीय बनानेके उद्देश्यसे ही प्रयोग किये हैं। उपमान, बिम्ब, प्रतीक, मिथक, तुक, लय आदि कविता में संप्रेषणके साधन रूपमें ही प्रयुक्त हुए हैं। 'अज्ञेय' मुक्तिबोध आदि कवियोंकी भाषिक-संरचनामें शब्दकी अमित शक्तियोंके दोहनका प्रयास किया गया है। विराम चिन्हों, कोष्ठकों, आड़ी-तिरछी रेखाओं आदिके प्रयोग से भी वांछित प्रभाव उत्पन्न करनेकी चेष्टा की गयी है। केवल यह लिखनेसे कि 'नयी कविताकी भाषामें शिष्टतामय गरिमा परिलक्षित होती है' या 'वह काव्य-रससे पूर्णतः आप्लावित रहती है' नयी कवितामें भाषिक प्रयोगोंके विभिन्न आयामोंका उद्घाटन नहीं हो पाता। पुराने उपमान मेल हो गये हैं, बहुत घिसनेसे उनका मुलम्मा उतर गया है या प्रतीकोंके देवता कूच कर गये हैं—ये बातें बहुत कही-सुनी जा चुकी हैं। भोरकी तारिकाके समान बाजरेकी कलगीका उपमानभी घिस-पिट गया है। बिम्ब अब केवल प्रकृतिके क्षेत्रसे ही नहीं लिये जाते, विज्ञान और टेक्नोलॉजीने उनके लिए अपरिसीम क्षेत्र प्रस्तुत कर दिया है। परम्परागत प्रतीक तो नये कवियोंको उत्तराधिकारमें प्राप्त हैं ही; अद्वैतन और अवचेतनकी रहस्यमय प्रतीतियोंको प्रतीकायित करनेके लिए अनेक नये प्रतीक भी गढ़ लिये गये हैं। मुक्तिबोध द्वारा प्रयुक्त अन्धी वावड़ी, सूखा बरगदका पेड़ और ब्रह्मराक्षस जैसे प्रतीक शास्त्रीयताकी अपेक्षा मनोवैज्ञानिकताके धरातलपर अधिक स्पष्टताके साथ व्याख्यायित किये जा सकते हैं। लेखकने उपमान, बिम्ब और प्रतीकका विवेचन करते हुए कविताओंके चिर-परिचित उदाहरण प्रस्तुत किये हैं परन्तु इनको रूपायित करनेवाली कवियोंकी मानसिकताके विश्लेषणकी ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। मिथककी चर्चा पृथक् रूपसे नहीं की गयी है जबकि मिथकीय परिवेश नयी कवितामें अधिकाधिक महत्त्व धारण करता जा रहा है। 'कनुप्रिया' 'संशयकी एक रात' 'एक कण्ठ विषपायी' और 'आत्मजयी' आदि काव्योंमें मुख्यरूपसे पारम्परिक मिथकोंका पुनराख्यान ही किया गया है।

आश्चर्य है कि सन् १९८६ में प्रकाशित होने वाली इस कृतिमें साठोत्तरी नयी कविताका समर्थ प्रति-निधित्व करनेवाले लीलाधर जगड़ी, चन्द्रकान्त देवताले, वेणुगोपाल, सीमित्र मोहन आदि कवियोंकी बिल्कुल उपेक्षा कर दी गयी है। धूमिलका भी चलते-चलाते एकाध



अधिका-  
किये हैं।  
र कविता  
'अज्ञेय'  
शब्दकी  
। विराम  
के प्रयोग  
गयी है।  
भाषा में  
ह काव्य-  
भाषिक  
पाता।  
उनका  
कर गये  
भोरकी  
गी घिस-  
ही नहीं  
लए अप-  
प्रतीक  
अर्द्धचेतन  
गीकायित  
गये हैं।  
वरगदका  
अपेक्षा  
के साथ  
न, बिम्ब  
के चिर-  
रूपायित  
की ओर  
र्वा पृष्ठ  
वेश नयी  
रहा है।  
व्यपपायी  
रमरिक  
त होने  
र्थ प्रति-  
देवताके,  
बिल्कुल  
ते एकाग्र

उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। किसीभी युगसे समी-  
सारमक कृतिमें युग विशेषके सभी कृतिकारोंका विस्तृत  
विवेचन सम्भव नहीं है, आवश्यक भी नहीं है, परन्तु  
तीन दशकका प्रतिनिधित्व करनेवाले कवियोंकी पूरी  
की पूरी पीढ़ीकी उपेक्षा करनेसे उस युगका साहित्यिक  
परिदृश्य उभरही नहीं पाया है। 'तीसरा सप्तक' के कवियों  
में केवल सर्वेश्वरकी ही विशेष चर्चा की गयी है। निष्कर्षा-  
त्मक अध्याय 'नयी कविता उपलब्धि एवं संभावनाएं' से  
यह अपेक्षा होती है कि इसमें सम्पूर्ण विवेचनका समग्र  
सारांश प्रस्तुत करते हुए कुछ नव तत्त्वाभिविवेशिनी  
दृष्टिका परिचय दिया गया होगा परन्तु यह अध्यायभी  
निराश ही करता है। 'अस्तित्ववाद' के अन्तर्गत कुण्ठित  
यौनभावनाको उदाहृत करनेवाली शान्ता सिन्हाकी  
काव्य-पंक्तियों (फँस रही है परिधि स्तनोंकी) को पढ़  
कर तो कीर्त्तगार्द और सात्राकी आत्माएं बेबस  
कराह उठी होंगी। शम्भूनाथ सिंह और रामानन्द दोषी  
के रचनाओंके उदाहरण नयी कविताके सन्दर्भमें  
सुलभ असंगत प्रतीत होते हैं कि ये कवि मूलतः गीत-  
कार हैं। आलोचनाके सन्दर्भमें उद्धरणोंकी भरमार है।  
अपने मन्तव्यकी सम्पृष्टिके लिए लेखकको उद्धरण  
प्रस्तुत करनेका अधिकार है, परन्तु जब उद्धरणोंकी  
संख्या लगाये बिना दो-चार कदम भी नहीं चला  
जाता हो तो स्थिति शोचनीय हो जाती है। एक ओर  
कठिनाई यह है कि उद्धरणोंके घटाटोपमें लेखकका  
अपना मन्तव्य आच्छन्न-सा हो जाता है। श्री पाण्डे  
ने नयी कविताके प्रति अपनी आन्तरिक अभिरुचिसे  
श्रेष्ठ होकर सामग्री संचयनके लिए अथक प्रयास किया  
है, परन्तु नयी कविताके पूरे परिदृश्यको समेटते  
हैं विवेचनमें अन्विति और संगतिका निर्वाह किया  
जाना तो कृतिमें औरभी निखार आ जाता।

### लघु विज्ञापन

श्याम कालम अथवा  
१५ सें. मी. × ५ सें. मी.  
श्वेत्तर का अनुबंध  
६५ मासका अनुबंध

२५०.०० रु.

२२५०.०० रु.

१२०.०० रु.

## कहानी

### हिन्दी कहानी : एक दशक?

लेखक : डॉ. ऋषिकुमार चतुर्वेदी

समीक्षक : डॉ. आदित्य प्रचण्डिया

आज कहानी पढ़ीभी जाती है और उसपर आलो-  
चनाकी आँखभी होती है। डॉ. ऋषिकुमार चतुर्वेदीकी  
प्रस्तुत पुस्तक इस बातका निदर्शन है। यह पुस्तक सन्  
१९७६से १९८५ की समयावधिमें लिखी गयी 'चुनी-  
कहानियोंके परिप्रेक्ष्यमें चतुर्वेदीका समीक्षात्मक, पचपन  
पृष्ठीय लम्बा आलेख है। डॉ. चतुर्वेदीका मानना है  
कि 'आज हिन्दीमें कहानीपर जो परिचर्चाएं, विचार  
और समीक्षाएं' दिखायी देती हैं उनमें प्रायः एकांगिता,  
असंतुलन पूर्वाग्रह और पक्षधरताका ऐसा प्रकोप दिखायी  
देता है कि मन खिन्न हो जाता है। आक्रामकता और  
कटुता इनका प्रमुख तेवर होता है और एक विशेष  
देश, काल या विचारधाराकी कहानीको अनुपम सिद्ध  
करते हुए शेष कहानी-साहित्यको अपवादार्थ और तुच्छ  
सिद्ध करना प्रमुख उद्देश्य है।' (पृष्ठ ५)। चतुर्वेदीने  
अपने इस मन्तव्यका प्रतिपादन समय-समयपर कहानी-  
समीक्षकोंके 'सारिका' में छपे लेखोंकी कतरनों पुस्त-  
कारम्भमें देते हुए किया है।

किसी विशेष ढंगकी कहानीको कहानी मानें तथा  
शेष कहानियोंको हम कहानीका पद न दे तो हम समी-  
क्षकके पावन-आसनपर आमीन होनेवाले पात्र नहीं कहे जा  
सकेंगे। कहानी सामाजिक यथार्थको लेकर लिखी गयी  
हो, चाहें मूल्यगत आदर्शकी, व्यक्तिकी वेदनाको रेखां-  
कित करती हो या समूहकी यातनाको शाब्दिक आवरण  
देती हो, अंतर्जगत्की जटिलताओं और विसंगतियोंको  
उकेरती हो या बहिर्जगत्की स्थितियों और समस्याओं  
का चित्रण करती हो, अतीतके पटलपर अंकित की

१. प्रका. : तारामण्डल, ३९८ आवास विकास  
कालोनी, सासनी द्वार, अलीगढ़। पृष्ठ : ५५;

डिमा. ६०; मूल्य : ४०.०० रु.।

'प्रकर'—वैशाख २०४६—७



गयीहो या वर्तमानके फलकपर चित्रित की गयीहो, यदि उसमें कहानीपन है तो बड़ निश्चय ही शत प्रतिशत कहानी है। कहानी-समीक्षा हेतु यही निकष समुचित और उपयुक्त है। पुस्तकारम्भमें डॉ. चतुर्वेदीने इस पुस्तकका अभिप्रेत स्पष्ट किया है—“१९७६ से श्रेष्ठ कहानियोंके जो वार्षिक संकलन हम निकालते आ रहे हैं, उनमें और उनकी भूमिकाओंमें हमने इसी कसौटी (उक्त मन्तव्य) को आधार बनाया है। अगले पृष्ठों की समीक्षाभी इसीपर आधारित है। हमारा निश्चित मत है कि हिन्दी कहानीको खेमेबाजीसे उबार कर उसके सहज-स्वाभाविक स्वरूपको सामने रखनेके प्रयास होने चाहियें।” (पृष्ठ ८)।

डॉ. चतुर्वेदी अध्यापक हैं। वे कहानीको पढ़ते हैं और पढ़ाते हैं। साथही इस पुस्तकसे स्पष्ट है कि वे एक तटस्थ निर्भीक समीक्षा-दृष्टि भी रखते हैं। और वे इस दिशामें कई वर्षोंसे कार्यरत हैं। उनका मानना है कि सन् सत्तरके बादके कहानीकार मुख्यतया अन्तर्जगत्की सूक्ष्मतम अनुभूतियोंको चित्रित करनेवाले हैं। वे शिल्पके प्रति सजग हैं। बाह्य जगत्की विसंगतियों, विषमताओं और समस्याओंको इन कथाकारोंने अपना विषय बनाया है। साथही इन्होंने अपनी कहानियोंमें अनुभूति, अनुभव और भाषाकी त्रिवेणी बहायी है। अतएव ये कहानियां किसी आइडियाको सामने रख-कर नहीं लिखी गयी हैं अपितु उसमें से विचार स्वतः ध्वनित होते हैं।

पुस्तकारम्भमें कहानीकी विकासात्मक स्थितिको रेखांकित करते हुए लेखकने स्वीकारा है कि प्रेमचंद पहले कथाकार थे जिन्होंने हिन्दी कहानीको उसका स्वरूप प्रदान किया है। प्रेमचंदकी कहानियोंमें समष्टि की समस्याओं, वास्तविकताओं, आदर्शों और मूल्योंके चित्रणकी बातको लेखकने स्पष्ट किया है। तत्पश्चात् जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपालकी कहानियोंपर दृष्टिपात करते हुए डॉ. चतुर्वेदीने नये कहानीकारोंमें मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादवकी कहानियोंपर प्रकाश डाला है। चतुर्वेदीका कहना है कि अकहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी, आम आदमीकी कहानी आदिके पूरुष थोड़ी-थोड़ी देर तक हवामें लहराकर अस्त होते रहे। डॉ. चतुर्वेदी कहते हैं—“आजकल जन-वादी कहानीका नारा बुलंद है। इन नारों, वादों और परचमोंके बारेमें एक ही बात कही जा सकती है कि

इन्होंने कहानीको कुछ ऐसा नहीं दिया, जिसे महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय कहा जा सके। (पृष्ठ १२)।

विवेच्य दशककी कहानियोंमें मानवपन और जीवन के बहुआयामी रूप देखनेको मिलते हैं। इस बीच कथानीकारकी संवेदना बढ़ती और वह अपने चारों ओरके यथार्थको प्रबलतासे महसूसने और अपनी रचनाओंमें उतारने लगा। उसकी दृष्टि अधिक विकसित हुई और वह अनुभवके नये-नये क्षेत्रोंमें पैठ करके जीवन-सत्यकी ओर उन्मुख हुआ। डॉ. चतुर्वेदी इस संदर्भमें तीन बातोंका उल्लेख करते हैं—“सबसे पहली बात तो यह है कि इस कालमें कहानी एक बार फिर व्यक्तित्वसे समष्टि की ओर लौटती दिखायी देती है। उसमें व्यक्तिके संकट बोधको अपेक्षा शोषित वर्गके संकटबोधकी अभिव्यक्ति अधिक हुई है। दूसरी बात वह कि व्यक्ति-मनकी गहराईयोंमें प्रवेशकर क्षणकी अनुभूतियोंकी व्यञ्जनाके स्थानपर कहानीकारका ध्यान सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक समस्याओंके चित्रणपर अधिक केन्द्रित हुआ है। कहानीमें भी मूल्य-संक्रमणकी स्थितियोंका निदर्शन हुआ है। किन्तु वह व्यक्तिके संदर्भमें उतना नहीं है जितना समष्टिके संदर्भमें। तीसरी बात यह कि कहानीकार शिल्पके क्षेत्रमें नये कहानीकारकी भांति प्रयोगधर्मा नहीं रहा है। इसकी शैलीमें वर्णनात्मकता आयी है, सादगी आयी है और एक रूपता उत्पन्न हुई है। इस कहानीकारने ‘सपाटबयानी’ को अपनी शैलीकी विशेषताके रूपमें स्वीकार किया है।” (पृष्ठ १२)।

वस्तुतः आजकी कहानीमें एक ओर जहाँ शिल्पगत सजगताके दर्शन होते हैं और भाषाकी शक्तिका निदर्शन मिलता है, वहीं दूसरी ओर भाव चित्रण क्षेत्रमें पर्याप्त असावधानी दिखायी देती है जिसके परिणामस्वरूप कहानी अपना प्रभाव खो देती है। यहाँतक कि वह कभी-कभी ठीकसे कहानीभी नहीं बन पाती। दशककी कहानीमें शिल्पगत प्रयोग दृष्टिगत नहीं होते। कतिपय कहानीकारोंने प्रतीक और रूपकोंकी शैलीका कहानीमें प्रयोग किया है पर वह सफल नहीं हुई। चतुर्वेदी इस संदर्भमें कहते हैं कि “कहानी कहानीपनकी ओर लौट चुकी है। इस दिशामें एक विशेष बात जो दिखायी देती है वह यह है कि कहानी शिल्पगत प्रयोगों की बाढ़से निकल चुकी है। इस दशकका कहानीकार समझ गया-सा लगता है कि शिल्पगत नवीनताके चक्कर



में ज्यादा पढ़नेसे भी कोई लाभ नहीं।" (पृष्ठ ५३)।  
 इस प्रकार डॉ. चतुर्वेदी इस कथा-समीक्षामें खरे  
 उतरे हैं। निश्चय ही कथाके शोधार्थियों तथा पाठियों  
 के लिए प्रस्तुत पुस्तक एक 'टार्च' का काम करेगी,  
 ऐसा विश्वास है। □

### कथा-लेखिका मन्नू भण्डारी

लेखक : डॉ. ब्रजमोहन शर्मा

समीक्षक : डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

सुपरिचित कथाकार श्रीमती मन्नू भण्डारीके  
 कहानी साहित्यका विवेचन प्रस्तुत करनेके उद्देश्यसे  
 रचित यह पुस्तक कुल आठ अध्यायोंमें विभक्त है।  
 प्रथम अध्यायमें मन्नूजीके व्यक्तित्व एवं कृतित्वका  
 परिचय दिया गया है, द्वितीय अध्यायमें नयी कहानी व  
 बादके विभिन्न आन्दोलनोंकी जानकारी है, शेष अध्यायों  
 में क्रमशः आधुनिक बोध, अस्तित्ववाद, नारी भावना,  
 प्रेम भावना और महानगरीय बोध शीर्षकोंके अन्तर्गत  
 कथा लेखिकाके सृजनका विश्लेषण है तथा अन्तिम  
 अध्यायमें शिल्पिक सौन्दर्यकी चर्चा है। रूपरेखासे स्पष्ट  
 है कि यह अकादमिक शैलीका विवेचन है। विश्व-  
 विद्यालयोंमें इसी प्रकारके अध्ययनकी परम्परा है। यह  
 अध्ययन छात्रोपयोगी तो होता है परन्तु इसकी सबसे  
 बड़ी सीमा यह होती है कि अध्ययनकी यांत्रिकतामें  
 कृतिकी आत्मा अनछुई रह जाती है। यह दुर्घटना यहां  
 भी हुई है। मन्नू भण्डारी जैसी सहज रचनाकारकी  
 कहानियोंपर आधुनिक बोध, अस्तित्ववाद, नारी  
 भावना, प्रेम भावना जैसे शीर्षकोंमें बांटकर जो चर्चा  
 की गयी है वह खण्ड-खण्ड ही रह गयी है। इस क्रमके  
 प्रत्येक अध्यायमें पहले सैद्धान्तिक जानकारी देनेका  
 प्रयास किया गया है और फिर कुछ कहानियोंके उदा-  
 हरण देकर उस जानकारीको कथा-लेखिकाके रचना-  
 संसारपर चरपा किया गया है। यह विधि, जैसा कहा  
 गया है, यांत्रिक है। अन्तिम अध्याय शिल्पिक सौन्दर्य  
 शीर्षकसे है और उसमें भाषा, अलंकार योजना अलं-  
 कारोंका वर्गीकरण, प्रतीक योजना व बिम्ब योजनाकी

चर्चा की गयी है। कहना अनिवार्य है कि नयी  
 कहानीके सन्दर्भमें अलंकारों आदिकी चर्चा कितनी  
 निरर्थक है। लेखक इस अध्यायमें भी सैद्धान्तिक चर्चा  
 करना नहीं भूले हैं। भाषा क्या है, अलंकार क्या है उनके  
 कितने भेद होते हैं आदि-आदि। फिर मन्नूजीकी कहा-  
 नियोंसे उपमा, उत्प्रेक्षा आदिके उदाहरण जुटाये गये हैं  
 यह सब तो किया गया है, परन्तु समग्रतः कथा-विधान,  
 कहानियोंकी बनावट व बुनावटकी कोई चर्चा नहीं  
 की गयी है, जबकि उसकी अत्यधिक आवश्यकता थी।

पुस्तकका सबसे अच्छा अध्याय वह है जहां नयी  
 कहानी व उसके बादके विविध कथा आन्दोलनोंकी  
 जानकारी दी गयी है। हिन्दीकी समकालीन कहानीके  
 इतिहासमें रुचि रखनेवाले छात्र सर्वाधिक इसी अध्याय  
 से लाभान्वित होंगे।

दो बातें सर्वाधिक खटकनेवाली हैं। एक तो यह  
 कि पुस्तकका शीर्षक 'कथा-लेखिका मन्नू भण्डारी' है  
 जबकि चर्चा इसमें केवल कहानियोंकी है। जहांतक मेरी  
 जानकारी है कथामें कहानी व उपन्यास दोनोंही आ  
 जाते हैं। न जाने क्यों लेखकने मन्नूजीके कृतित्वकी चर्चा  
 करते समयभी कहानियोंकी ही जानकारी दी है, शेष  
 कृतित्वकी एकदम उपेक्षा कर दी है। दूसरी बात स्वयं  
 लेखककी भाषाको लेकर है। मात्र दो उदाहरण दूंगा।  
 भूमिकामें लिखा गया है—'कहानी विधासे सम्बद्ध  
 कितनीही समीक्षात्मक कृतियाँ उपलब्ध हैं पर कमले-  
 श्वर, जैनेन्द्र आदि कहानीकारोंके अतिरिक्त ऐसी  
 आलोचनात्मक कृतियोंका अभाव है... वाक्य यह स्पष्ट  
 नहीं करता कि इन कहानीकारोंके कृतित्वपर पुस्तकें  
 उपलब्ध हैं या इन द्वारा रचित पुस्तकें उपलब्ध है।  
 दूसरा उदाहरण—'मैं हार गयी' कहानी वर्तमान राज-  
 नीतिक नेताओंपर करारा व्यंग्य है। जो विपन्न हैं वे  
 व्यक्तिगत स्वार्थोंकी काराओंमें कैद हैं और जो सम्पन्न हैं  
 उन्हें विलासिता और कामोपभोगकी लालसासे निकम्मा  
 कर दिया है। ऐसी स्थितिमें विशुद्ध राष्ट्रसेवाकी आशा  
 किससे की जाये—अत्यन्त विवादास्पद प्रश्न है।' यह  
 प्रश्न विवादास्पद कैसे है? कहीं ऐसा तो नहीं कि  
 लेखक विचारोत्तेजक लिखते-लिखते विवादास्पद लिख  
 गया। आलोचना पुस्तकमें तो यह असावधानी अक्षम्य  
 ही कही जायेगी।

फिरभी, लेखकके भ्रमके लिए तथा लम्बे समय  
 से विश्वविद्यालयमें होनेपर भी समकालीन साहित्य

१. प्रका. : कादम्बरी प्रकाशन, ५४५१ शिव मार्केट,  
 नया चन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली-११००६७।  
 पृष्ठ : १३२; डिमा. ६१; मूल्य : ६०.०० रु।



से उनकी गहरी संपृक्तिके लिए मैं पूरे मनसे उन्हें बधाई देना चाहूंगा, अन्यथा हमारे विश्वविद्यालयी विद्वान् प्रेमचन्दके बादके किसी कहानीकारके कृतित्वसे अपरिचित ही होते हैं। □

## नाटक

### नाटकके रंगमंचोय प्रतिमान ?

लेखक : डॉ. वसिष्ठ नारायण त्रिपाठी

समीक्षक : डॉ. नरनारायण राय

आजका नाट्यचिन्तन रंगमंचको केन्द्रीय धुरी बनाकर उसके आस-पास घूमने लगा है। बिना किसी रंगमंचीय सन्दर्भके नाट्यचिन्तन अधूरा, और भ्रामक निष्कर्षों तक ले जानेवाला होगा। नाटक लिखा ही इसलिए जाता है कि वह 'किसी' भी मंचपर प्रस्तुत हो, उसे दृश्यत्व प्राप्त हो। यही है नाटकका 'दृश्य काव्यत्व'। नाट्यवस्तुकी दृश्यमानताको ही रंगमंचके रूपमें आज जाना जाता है। नाटकमें विन्यस्त अमूर्त भावादि मंचीय साक्ष्यसे मूर्तमान होकर प्रेक्षकोंको नाट्यवस्तुका प्रत्यक्ष अनुभव कराता है। इसलिए अमूर्त भावोंकी ऐसी मूर्त प्रस्तुतिको हम रंगमंच मानते हैं और इसी कारण नाट्य विवेचनको बिना रंगसंदर्भके देखे जानेको अधूरी दृष्टि। इस दृष्टिपातकी शृंखलामें वसिष्ठ नारायण त्रिपाठीजीकी समीक्ष्य कृति 'नाटकके रंगमंचीय प्रतिमान' अगनी कड़ी है, जिसकी अपनी सीमाएं हैं पर जिसकी उपलब्धियोंको भी कम कर नहीं आंका जा सकता।

पूर्वरंगमें लेखकने अपनी लेखकीय दृष्टिका संकेत दिया है कि "इस कृतिकी मूल दृष्टि एक अधिक गतिशील और सम्भावनापूर्ण रंगमंचको उसकी संपूर्णतामें जानने और रेखांकित करनेकी रही है।" इसकी आवश्यकता इसलिए समझी गयी क्योंकि यथार्थवादी रंग-

मंचके युगसे ही रंगमंचमें व्यक्त स्थूल और बाहरी स्वरूपको ही रंगमंच समझनेका भ्रम बढ़ता रहा। लेखक को ऐसा लगा है कि भरतमुनिका 'नाट्य' रंगमंचके अधिक निकट है।' (पृ. ६)। 'भरत' का नाम तो प्रायः लोग लेते पाये गये हैं पर उनके नाट्यशास्त्रको देखने, जानने और समझनेका सुयोग सबको नहीं मिला। अतः यदि लेखकने भरतकी इस शास्त्रीय दृष्टिके साथ आजकी रंगचिन्ताके अस्तःसूत्रोंका अन्वेषण प्रस्तुत करना एक उपयोगी काम समझा है तो विषयके महत्त्वको कोई अस्वीकार नहीं करेगा। लेखकने यह स्थापना की है कि — 'रंगमंचको उसकी पूरी रंग सम्पूर्णतामें प्रतिष्ठित करनेकी गम्भीरता भरतकृत नाट्यशास्त्रमें मिलती है। यही कारण है कि नाटक और रंगमंचको उसकी सज्जनात्मकतामें जाननेवालोंके लिए भरतके नाट्यशास्त्रसे आरम्भ करना अनिवार्य हो जाता है' (पृ. १३)। अपनी इस समीक्ष्य कृतिमें यही काम लेखकने किया है।

शास्त्र लोकको अपनी कसौटी मानकर चलता है। भरतके नाट्यशास्त्रमें जिस 'लोक'को कसौटी बनाया गया, विभिन्न कारणोंसे विगत हजारों वर्षोंमें उसमें असंख्य परिवर्तन हुए हैं। रंगमंचीय अनुभव, ज्ञान-विज्ञान और तकनीकोंके विकास, देश-विदेशकी विभिन्न संस्कृतियों और कला रूपोंसे उन्मुक्त सम्पर्क, सिनेमा, टी. वी. रेडियो विजली और प्रसाधन सामग्रीके नवीन आविष्कार, राजनीतिक और सामाजिक जीवनकी बदलती भूमिका आदि विभिन्न परिवर्तित सन्दर्भोंमें भरतके सही आशयको समझकरही नाटक और रंगमंचकी पारस्परिकता निश्चित की जानी चाहिये। इस प्रयासमें लेखकने भरतके सूत्रोंकी आधुनिक व्याख्या करते हुए आजके रंगमंचके संदर्भमें जहाँ भरतकी प्रासंगिकता सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है वहीं यह भी दिखानेका प्रयास किया है कि आजका नाटक और रंगमंच अपनी सज्जनात्मक संपूर्णतामें कहीं भरतकी उन्हीं मूल स्थापनाओं की ओर अग्रसर है। इसे एक उदाहरणसे इस प्रकार समझा जा सकता है लेखकने अपने विवेच्य द्वितीय अध्याय 'रंग स्थापत्य : पारंपरिक समकालीन'में सर्वप्रथम भरत की शास्त्रीय दृष्टिसे विभिन्न प्रकारके नाट्यमण्डपोंकी जानकारी दी है, उनके गुणावगुणोंका विश्लेषण किया है और आजके नाटकोंके सन्दर्भमें उनकी उपयुक्ततापर विचार किया है। तदनन्तर लेखक आजके प्रचलित विभिन्न नाट्यगृहोंकी बात भी करता है, भरत-शास्त्रीय

१. प्रका. : जगतराम एंड संस, IX/२२१, मेन बाजार, गांधीनगर, दिल्ली-११००३१। पृष्ठ : १६२; डिमा. ६१; मूल्य : १००.०० रु.।

'प्रकर'—अप्रैल ६२—१०



दृष्टिसे उनकी उपयुक्ततापर विचार करता है, इन नाट्यगृहोंकी अपनी विशिष्टता, क्षमता और सीमाओं का आकलन करता है। इस आकलनके लिए वह विभिन्न नाट्य निर्देशकों द्वारा किये गये विभिन्न प्रयोगोंकी बात भी करता है और इसी क्रममें मुक्ताकाशी रंग प्रदर्शनों और नुस्कड़ नाटकोंके प्रदर्शनतक की बात करता है। जब लेखक शास्त्रीय नाट्यगृहोंकी बात करता है तो राउण्ड थियेटर, पेजेण्ट वैगन स्टेज, बूथ रंगमंच, कलकत्तेके थियेटरों, बम्बईके थियेटर हालों, बॉक्स स्टेज, मुक्त आंगन रंगमंच, टैरेस थियेटर, और बूले रंगमंचकी भी बात करता है। इस प्रकार अतीतके आलोकमें वर्तमानके मूल्यांकनका लेखकीय प्रयास स्पष्ट हो जाया है।

पूरी पुस्तक सात विचार खण्डोंमें विभाजित है। प्रथम अध्यायमें वस्तु नेता और उसकी पारंपरिक दृष्टि और नाट्ययोजनाका विश्लेषण है और इस पृष्ठभूमिमें रस सिद्धान्तकी व्याख्या करते हुए आधुनिक विधानोंकी पड़ताल भी। दूसरे अध्यायमें नाट्यगृहपर और तृतीय अध्यायमें रंगमंचपर विचार किया गया है। चौथा अध्याय नाट्यार्थकी तलाश और रंगनिर्देशकी मीमांसाका है। अभिनेता और अभिनयपर पांचवां अध्याय, प्रकाश-ध्वनि और वेश-रचनापर छठा अध्याय प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम अध्याय समस्त रंगमंचीय अभियोजनके

संदर्भमें सहृदय भावककी भूमिकाका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस पूरी वस्तु योजनाको सामने रखकर यह कहा जा सकता है कि नाटक और रंगमंचको समझने की जिज्ञासा रखनेवाले किसीभी प्रारंभिक पाठकको यह पुस्तक नाटक और रंगमंचके अन्तस्संबंधोंकी स्पष्ट जानकारी दे सकती है।

हिन्दी नाटक और रंगमंचपर वैचारिक सामग्री प्रस्तुत करनेवाले ग्रंथ अब कम नहीं रहे। ऐसी स्थिति में लेखक द्वारा अपनेको न्यूनतम सन्दर्भों तक सीमित रखनेका कोई कारण स्पष्ट नहीं होता। यह कहा जा सकता है कि लेखकने एक नयी दृष्टिसे नाटक और रंगमंचके अन्तःसूत्रोंका अन्वेषण प्रस्तुत किया है। गोविन्द चातक, रीतारानी पालीवाल, पवनकुमार मिश्र, लक्ष्मी-नारायण लाल, दुर्गा दीक्षित, वीरेन्द्र नारायण, रमेश राजहंस, विश्वभावन देवलिया, नेमिचन्द्र जैन आदि लेखकोंकी कृतियोंको सामने रखनेपर ऐसा स्वीकार करनेमें असुविधा होती है। लेकिन इस बातमें तो दो मत नहीं होंगे कि लेखकने ग्रन्थके लिए जो लक्ष्य तय कर रखा था, पुस्तकके माध्यमसे वह वहांतक पहुंच सका है। नाट्य चिंतन अब समृद्ध हुआ है, श्री वसिष्ठ नारायण त्रिपाठीकी समीक्ष्य कृति इसका परिचय कराती है। श्री त्रिपाठीसे भविष्यमें औरभी गम्भीर कृतियोंकी आशा शायद व्यर्थ नहीं होगी। □

## काव्य

सूरज नहीं बुझेगा?

कवि : डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा

समीक्षक : डॉ. रामसजन पाण्डेय

यह कृति बहुवर्णी काव्यरूपोंसे समृद्ध है। इसमें

१. प्रका. : आशा प्रकाशन, गृह, ३० नाईवाला, करोल बाग, दिल्ली-११०००५। पृष्ठ : १०४; डिमा. ६०; मूल्य : ३०.०० रु.।

सत्ताईस कविताएं, पन्द्रह गीत और गजलें तथा चार लम्बी कविताएं हैं। प्रस्तुत संग्रहकी कविताओंमें कवि ने व्यक्ति और वातावरणमें विद्यमान विसंगति, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, उग्रवाद, उत्पीड़न, शोषण, बेकारी मंहगाई आदिको उरेहा है, पंकिल परिवेशको हेय और त्याज्य बताया है; आस्तिकता, देश, श्रम, संस्कृति, राष्ट्रीयता, मानवता आदिका अविरज चित्तसे स्तवन किया है। इस काव्य-संग्रहमें जो तथ्य सबसे ऊपर उमरा हुआ है, शिरोमणि कल्प है, सभी कविताओंको एक तारमें

‘प्रकर’-वैशाख २०४६-११



बांधता है, वह है—संवेदनशील कविकी घायल परिवेश से प्रादुर्भूत गहरी पीड़ा, आनन्दमयी आस्था, उन्नयन की निष्कम्प कामना। तभी वह अमन्द विश्वासमें विभोर होकर लिखता है :

‘ओ बहके अधियारेकी अन्धी हिंसाओं,

झांझके झोंकोंसे सूरज नहीं बुझेगा ।’

विवेच्य काव्य संग्रहका शीर्षक ‘सूरज नहीं बुझेगा’ कविके चित्तकी सुदृढ़ताको रेखांकित करता है। नकारात्मक शीर्षक देकर कविने ‘सूरज’ को बुझानेके लिए उद्यत व्यक्तियों-वर्गों, धर्मों-पन्थों, रूचियों-दृष्टियोंको ललकारा है। यह ‘सूरज’ सद्भावोंका है; उत्कर्षोंका, संस्कृतिका, जिजीविषाका, निष्ठाका, संघर्षशीलता तथा उदात्त संकल्पशीलताका है। सूर्यकी यह तद्भवता (सूरज) शीर्षक तथा प्रतिपाद्यकी स्वाभाविकता और शक्तिकी मूर्त बनाती है।

राष्ट्रीय भावनाके रचनाकार डॉ. वर्माके काव्य-संग्रहमें उनकी राष्ट्रीय चेतनाके दो कूल दिखायी पड़ते हैं। पहले पक्षके अन्तर्गत वे भारतभूमि तथा भारत-भूमिके उन्नायक अमर सपूतोंका स्तवन करते हैं तथा दूसरे पक्षमें वे ओछी राजनीति, ओछे स्वार्थी राज-नेताओं, मतों-पंथों आदिकी अत्यन्त तीव्र और तीखी भत्सना करते हैं। कविकी अन्तर्भेदिनी दृष्टिसे वर्तमान राजनीति तथा राजनेताओंका वास्तविक स्वरूप छिपा हुआ नहीं। है तभी वह स्पष्ट बात कहनेमें समर्थ हुआ है—“कथनी” के केंचुलमें ‘करनी’ की नागिन है, / आंचलमें अधियारा, चेहरेपर चाँदनी। / नारोंके धूँधटसे, झाँक रही राजनीति, / गुण्डोंसे सांठ-गाँठ फिरभी शील धनी। / सत्ताकी गलियोंमें जितने बहुरूपिये हैं, / ऊपरसे रामचन्द्र, भीतरसे मेघनाद।’

कवि निर्भ्रान्त रूपसे जानता है कि देशकी अखण्डता और सद्भावना नाना मतों और नाना पन्थोंके ही कारण बाधित-वण्डित हुई है। उसे विस्मयमिश्रित चिन्ता है कि जब आलोक तथा आस्थाका उद्गाता-प्रस्नोताही पथभ्रष्ट हो जायेगा, तब सद्भावनाओंके स्वर्णिम संसारका सृजन कौन करेगा।

कवि वर्मामें अन्तर् और बाह्यका कोई भेद नहीं है। उनके यहां जो आन्तरिक है, वही बाहरी है। वे व्यक्ति और कवि दोनों ही रूपोंमें मानवतावादी हैं। उनकी इस विचारधाराका पल्लवन-पुष्पन उनके प्रस्तुत विवेच्य काव्य-संग्रहमें हुआ है। ‘प्रेम-प्रदीप’,

‘प्रकर’—अप्रैल १९२—१२

‘दीवाली’, ‘अग्नि गीतोंका आह्वान’ आदि अन्यान्य कविताओंमें उन्होंने मानवीय रागका संगान किया है। कविने ‘अग्नि गीतोंका आह्वान’ में मां सरस्वतीसे ऐसे वरदानकी कामना की है जिसे प्राप्तकर वह परिवेश की पूर्ण प्रदूषणताको प्रशमित कर सके।

‘उदात्तता’ ‘सूरज नहीं’ बुझेगा’ काव्य संग्रहकी निप्रति है। कवि समग्र विश्वके उत्कर्ष एवं आनन्दका अभिलाषी है। इस आनन्द-साम्राज्यकी स्थापना तभी सम्भव है जब ‘मानवता’ की आभा विकीर्ण होजाये। कविने दर्शनके प्रकाशमें मानव और मानवताकी बड़ी समीचीन परिभाषा की है। ‘मानवमें ईश्वर रमता, ईश्वरमें मानव’, ग्रन्थ कीर्तन करता नित मानव ईश्वर का / यह मानव चेतन मन्दिर है दिव्य ज्योतिका, / मानवता है दिव्य ज्योतियोंका शुभ संगम।’

उक्त धारणाएं आस्था-आन्दोलित चित्तका सहज उच्छलन हैं। आस्था-और आस्तिकता डॉ. वर्माकी कविताकी विशिष्ट प्रवृत्ति है। नाना कथ्यों, घटनाओं, भावधाराओं तथा तेवरोंके तलमें यही तत्त्व स्थिर रूप से स्थित है। कविको यहींसे प्राणवत्ता प्राप्त होती है। उसका भक्ति भावना भी इसी गहन आस्था और आस्तिकताके ही गर्भसे निकली है। कविने जिन कविताओंमें अपनी भक्ति भावनाको शब्दायित किया है, उसकी अनुभूति और अभिव्यंजना-दीनोंही बड़ी सजल, ऋजु, विनत तथा मनोमय है। ‘अर्चनाका दीप’ तथा ‘मां भारती’ कविता इस दृष्टिसे ध्यातव्य हैं।

कविवर वर्मा परिवेशके प्रति सचेत हैं। ‘सूरज नहीं बुझेगा’ समसामायिक सन्दर्भोंका जीवन्त चित्र प्रस्तुत करता है। वह सन्दर्भ, वह परिवेश, चाहे समाज का हो; चाहे राजनीति, संस्कृति, साहित्य या व्यक्तिकी अन्तरीण अन्ध गुफाओंका ही क्यों न हो। कवि इन प्रतिकूल परिवेशोंसे क्षुब्ध तो अवश्य है, किन्तु कहीं विचलित नहीं दिखायी पड़ता। वह कुरूपता, विसंगति, बलात्कार, स्वार्थवृत्ति की तस्वीरें खींचता तो है, पर अपनीही लेखनीके अस्त्र-शस्त्रसे उन तस्वीरों को काटता चलता है और उनके स्थानपर सुन्दरता, समानता; कल्याणमयता, मानवता, मुक्ति आदिका आलोकवान् रूप खड़ा करता है।

डॉ. वर्मा छन्द-बन्धके प्रति सावधान हैं। आज छन्दोंका सप्रयास बहिष्कार कर दिया गया है। रचना-कार कविताके अन्तर्गत छन्दोंकी अनिवार्यता मानता है।



अन्यान्त्र  
क्या है।  
स्वतीसे  
रिवेश  
हकी  
नन्दका  
तभी  
जाये।  
बड़ी  
रमता,  
ईश्वर  
तिका,  
सहज  
वर्माकी  
नाओं,  
यर रूप  
ती है।  
और  
कवि-  
किया है,  
सजल,  
' तथा

कवि की छन्दों की अनिवार्यता विषयक चेतना सामयिक और ज्वलन्त है। अपनी इस साहित्यिक चिन्ता को कवि ने प्रस्तुत संग्रह के प्रारम्भ में 'मन्तव्य' शीर्षक में व्यंजित किया है; साथ ही एक गजल की कतिपय पंक्तियों में भी प्रकट किया है—  
'स्वरो के अभिप्राय सोते जा रहे हैं,  
गद्य-नद में छन्द खोते जा रहे हैं।'  
रचनाकार की शब्द-योजना चित्ताकर्षी है। वे प्रकृत-प्रसन्न चित्र निर्मित करते हैं, पापी-पीड़ित परि-  
वर्तकी व्यंजना करते हैं, पस्त-परास्त मानव को आस्था तथा आश्वासन देते हैं। कविको किसी भी भाषा के शब्दों ने परहेज नहीं है, यदि वे संवेदना को समग्र रूप से व्यंजित करने में समर्थ हों। विस्मयों, प्रतीकों, अप्रस्तुतों, मानवीकरणों आदि से उनके शब्द सहज शोभित हैं। डॉ. वर्मा की विस्मय-योजना अर्थ-भावना एवं सम्प्रेषण में सार्थक सिद्ध हुई है। इस संग्रह में गन्ध और स्पर्श दिव्य सहज मुलभ हैं। कविने 'मानस आलोकित सुर-  
भित हो हवन-सरोखा'—जैसी अनेक पंक्तियाँ लिख-  
कर गन्ध विम्ब तथा 'रास्ते में नाग-फनियाँ उग्र इतनी'  
—वैसी पंक्तियों से स्पर्श विम्ब की विनिर्मिति की है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'सूरज नहीं  
खुश' काव्य-संग्रह में भाव और भाषा का जो मनभावना  
महोत्सव रचाया गया है वह संतुलित, संश्लिष्ट, गम्भीर,  
रसातल तथा सुप्त चेतना को जागृत करने वाला है,  
कलात्मकता का विवेक देने वाला है। सम्पूर्ण संग्रह में  
लोककल्याण की पावन भावना और चिन्ता मुखरित हुई  
है। कविको प्रकृतिका क्रिया-व्यापार भी तभी रुचता है,  
जब प्रकृति आहत युग की चुनौतियों को अंगीकार करे।  
यदि प्रकृति ऐसा करने में असमर्थ है, उसमें सद्भावों के  
प्रति सहानुभूति नहीं है, तो वह उसके प्रत्यावर्तन की  
कामना करता है। 'नये वर्ष का अभिनन्दन' नामक  
कविता में कविने नये वर्ष के बहाने समग्र मानव-जाति  
से इस उज्ज्वल भावना की कामना की है—

'खेल सकेगा यदि आहत युग की चुनौतियाँ  
तो स्वागत हैं सखे शोक से गाता आ तू।  
बुझा हुआ है यदि संकल्पों का सूरज तो,  
सौख्य मान ले मित्र, यही से वापस जा तू।' □

## सूर्यारोहण ?

कवि : महेन्द्रप्रसाद सिंह

समीक्षक : डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया

डॉ. महेन्द्रप्रसाद सिंह दिल्ली विश्वविद्यालय में राजनीति-विज्ञान के प्रोफेसर हैं, पर मूलतः वे कवि-  
हृदय हैं। उनकी कविताओं में आस्था, विश्वास, कर्म-  
ठता और सांस्कृतिक चेतना का उदात्त एवं भव्य रूप  
दिखायी पड़ता है। उनके प्रथम प्रकाशित कविता-संग्रह  
का शीर्षक है 'सूर्यारोहण', जो उक्त अवधारणाओं की  
व्यंजनात्मक अभिव्यक्ति है। कवि 'प्रकृतिको संस्कृति  
पर प्राथमिकता देता आया है', पर वह संस्कृतिकी  
श्रेष्ठता से अपरिचित नहीं। उसी के शब्दों में—

'मेरा अन्तर्मान प्रायः प्रकृतिको संस्कृतिपर / तर-  
जीह देता आया है / पर संस्कृति एक अर्थ में  
श्रेष्ठ है / प्रकृतिका आदिम संतुलन / अराजकता  
की सर्वग्रासी अग्नि में जन्म लेता है, / जबकि  
सम्पत्ता और संस्कृति में / कुमुद और कमल दोनों  
वरेण्य हैं ? (पृ. १७)

कवि नूतन सामासिक संस्कृतिकी सिद्धि और  
सफलता के लिए साध्य, साधन और साधक की अवि-  
च्छिन्नता आवश्यक मानता है। वह समन्वय का पक्ष-  
पार्ता है और इस दृष्टि से उसकी 'समन्वितिका सुमेरु'  
(पृ. २०) शीर्षक कविता विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

कवि महेन्द्रप्रसाद सिंह मिथकों के प्रयोग में सिद्ध-  
हस्त है। उन्होंने मिथकों की प्रासंगिकता का निर्वाह  
करते हुए उन्हें युगीन सत्य से जोड़ा है। उन्होंने अपनी  
अनेक कविताओं में पौराणिक संदर्भों का आधुनिक  
विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में सार्थक एवं सटीक उपयोग किया  
है। इस दृष्टि से 'अग्नि कमल' (पृ. १६) का विशेष  
महत्त्व है। कविने अनेक पौराणिक नामों, स्थानों,  
घटनाओं आदिका जो मिथकीय प्रयोग किया है, उससे  
उनके काव्य की व्यंजनात्मकता, समकालीन प्रासंगिकता  
और कलात्मकता में निश्चय ही वृद्धि हुई है। शृंग, धृत-

१. प्रका. : शारदा प्रकाशन, १६, एफ-३, अंसारी रोड,  
दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ६२,  
डिमा. ८६ (द्वितीय संस्करण); मूल्य : ४०.००  
रु.।

'प्रकर'—वैशाख २०४६—१३



राष्ट्र, गांधारी, अर्द्धनारीश्वर, काशी, सूर्यारोहण, संपाति, मारुति, उत्तरायण, ब्रह्माण्ड, सुमेरु, गरुड़, अवतार, भीष्म, नगाधिराज, वैदेही, जनक, चक्र सुदर्शन आदिके मिथकीय प्रयोग देखतेही बनतेहैं। इन संदर्भोंसे जहाँ कविके व्यापक अध्ययन, पाण्डित्य, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक चेतना आदिका परिचय मिलताहै, वहाँ इनके विवेकाश्रित प्रयोगसे काव्यकी भाव-सम्पदा और कलात्मक चमत्कारमें भी निश्चय ही वृद्धि हुईहै।

कवि महेन्द्रप्रसाद सिंहने जीवन और जगत्को खुली आंखोंसे देखाहै। वे अन्धकार और प्रकाशकी कशमकशसे परिचित है और जानतेहै कि इस द्वन्द्वमें अन्तिम विजय प्रकाशकी है। 'अमल उदय' में कविकी यह आस्था इन शब्दोंमें व्यक्त हुईहै—

'ज्योतिपर्वके अनन्य अरुणोदयकी अचंतामें/ मैं पांचजन्य फूँकताहूँ / अंधकार और प्रकाशके/ संघर्ष और सहयोगपर/ विधाताकी सृष्टि टिकी है/ और समुद्र मंथन देवासुर संग्रामका पूर्वाभास है। / पर विजेता किरण/ काजलकी कोठरीसे सदा / वेदाग निकलतीहै। (पृ. २१)।

'सूर्यारोहण' का कवि मानव-मूल्योंके ध्वंसपर चिन्तित है। मूल्योंकी दृष्टिसे आज देश संक्रमणकी स्थितिसे गुजर रहाहै। पुराने मूल्योंके प्रति युवा पीढ़ी के मनमें प्रायः अनास्थाका भाव है, पर प्रगतिशील नये मूल्योंका समुचित विकास भी अभी नहीं हो पायाहै। यह स्थिति निश्चयही चिन्त्य है। कविने 'गरुड़' शीर्षक कवितामें इसी चिन्ताको वाणी दीहै :

'पर्यावरणके संतुलन और प्रलंबनके / चकव्यूहमें धंसा मानव, / देखनाहै, / अंतरिक्ष-मंथनसे / किन मूल्यों और अर्थोंका / उदय करताहै !' (पृ. २२-२३)।

'सूर्यारोहण' की कविताएं बहु-आयामी एवं वैविध्यपूर्ण हैं। इनमें कविके वैयक्तिक संवेदनोंके साथ सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतनाकी अभिव्यक्ति तो हैही, मानवेतिहासका विकास-क्रमभी है। मनुष्य और मानवताकी विजय-यात्राके मार्गमें आने वाली कठिनाइयोंसे सुारिचित होते हुएभी कविकी आस्था निष्कम्प और विश्वास अडिग है। वह जानता है कि 'भारतमें अभावमेधका यज्ञ चल रहाहै' (पृ. २५), पर आश्वस्त है कि 'जब सम्राट् हलवाही करता है/तो श्रीमूला वैदेही प्रकट होतीहै।' (पृ. २५)।

'प्रकर' - अप्रैल '६२ - १४

'सूर्यारोहण' में कुल चवालीस कविताएं हैं। इनमें से अधिकतर कविताएं सांस्कृतिक चेतनासे सुवासित हैं। कवि आद्यंत देशकी मिट्टी और संस्कृतिसे जुड़ाहै। सांस्कृतिक चेतनाकी अभिव्यक्तिके लिए कविने पौराणिक प्रतीकों, मिथकों, विम्बों, आख्यानों, नदियों, पर्वतों, श्रुतियों-अनुश्रुतियों आदिका व्यापक प्रयोग कियाहै। इन प्रयोगोंके फलस्वरूप 'सूर्यारोहण' की काव्य-भाषामें नवीनताके साथ निजता और पनेपनका समावेश हुआहै। अभिधात्मक धरातलसे ऊपर उठकर ये कविताएं लाक्षणिक, व्यंजक और संदर्भगर्भी बन पड़ी हैं। इन संदर्भोंको व्याख्यायित करनेके लिए कविको एक 'परिशिष्ट' जोड़ना पड़ाहै ताकि उन संदर्भोंसे अभिज्ञ पाठक काव्यका रसास्वदन कर सकें।

इस संग्रहकी एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसकी रचनाएं आज लिखी जानेवाली कविताओंकी भीड़से अलग हैं। ये एक प्रकारकी ताजगीकी प्रतीति तो करातीही हैं, पाठकोंको प्राचीन भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक मूल्योंसे सुपरिचित कराकर आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देतीहैं। इनका लक्ष्य रूढ़िवादिताको बढ़ावा देनेका नहीं है। पुरोगामितासे जुड़ी ये कविताएं लोकमंगलकारिणी हैं। इन कविताओंमें हृदयके साथ मस्तिष्कका भी मणि-कांचन योग है। □

## आसपास?

कवयित्री : प्रमिला शर्मा

समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

तैंतालीस कविताओंके अपने इस दूसरे संकलनके साथ प्रमिला शर्माने समकालीन जीवनकी छलनाओंकी चुनौती, असामर्थ्यको हृदयालू सहारा, पथराहटको उद्बोधन, अमानवीयताको आक्रोश और व्यवहारकी बदतमीजीको व्यंग्य और पहचानहीनताको परिचयपत्र देने की अर्थपूर्ण कोशिशें कीहैं। वे मरुस्थलको गोबरसे लीपकर सरस-निकेतमें बदलने और अपनेमें जमे हुए पत्थरोंसे बंधते हुए जीवनको विकासका मार्ग देकर प्रकारान्तरसे शब्दोंकी 'धार' बहानेकी 'अभिलाषा' से

१. प्रका : पूजा प्रकाशन, ३६ ए कमला नगर, बिला-  
११०००७। पृष्ठ : ८४; डिमा. ८६; मूल्य :  
४०.०० रु.।



। इनमें  
सित है।  
जुड़ा है।  
ने पौरा-  
नदियों,  
प्रयोग  
ण' की  
नेपनका  
उठकर ये  
वन पड़ी  
कविको  
से अन-

कविताओंमें भाव और भाषाका तुकलाल तो है ही,  
शब्द-शक्तिको प्रदर्शित करनेवाले सादे रंगभी हैं।  
जैसे-विगड़े रिश्तोंको स्वर देनेमें कविताएं कड़ई नहीं  
हैं। अपनों द्वारा किये गये घावोंके विवरण देते हुए  
भी अपनी सदाशयता नहीं खोतीं। उनका तरल-ऋजुता  
में बहुत प्रवाहभी यह आभास दिलाता जाता है कि  
उसमें वर्तुल लहरें पैदा कर सकनेकी भरपूर क्षमता है।

कविताएं छोटी हों या बड़ी, शब्द-चित्र हों या  
व्यंग अपने वेगके साथ हमारी कल्पनाको दौड़ा ले  
जाती हैं। वे रफतारमें भी स्थिरताकी प्रतीति देनेवाली  
बनुतीकी पकड़ती हैं। वे व्यक्तित्वके विसर्जन, वृत्ति  
और तूपाके वेगको सही-सही आँकनेके प्रयत्नोंका परि-  
णाम हैं। इसीलिए उत्साह और उल्लासके क्षणको  
प्रतिशोध या अमर्षके हाथों नहीं पड़ने देतीं। कविताओं  
में यदि विश्वासघातके आघात हैं तो अगली आस्थाकी  
शुद्धता भी है। शब्दोंके प्रभावकारी प्रयोगके प्रति सज-  
गता दिखायी देती है। उसकी शक्तिको पानेके लिए  
कवियत्री उन्हें आवश्यकताके अनुसार अपभ्रष्ट और  
शंभ्र करती जाती है।

शब्दोंके रूढ़ विशेषणको उसमें जोड़कर और उसके  
प्रयोजनको निकाल इसमें चस्पाकर उन्हें खूबीके साथ  
नया अर्थ सम्प्रेषित करने योग्य बनाया जाता है। कवि-  
ताओंके व्यंग्यभी व्यंग्यार्थक हैं। वे तिलमिलानेके बाद  
भी अपना प्रभाव बनाये रखते हैं। निरपेक्ष और ओछे  
शब्द जालको ही व्यंग्यकी विशेषता माननेवालोंको इस  
संग्रहकी कविताएं पढ़नी चाहियें। स्त्री जातिके प्रति  
व्यावसायिक दुनियाँके आधुनिक व्यवहारपर ये कविताएं  
शोकको विवक्ष करती हैं। सभ्यताके चटक-चमकीले  
युगमें धनान्धोंकी समझौता-परस्तीपर कला-  
त्मक टिप्पणी है—

समझौतेके सचपर टिकी सुविधाकी / दुनियाँ/  
बनियाँ जहानका सबसे बड़ा सच है / तुमभी  
ठीक हमभी ठीक / हम सब सलीक / क्या हुआ  
जो हम अंधे हैं — पर / विवेक / की लाठीके  
मालिक हैं।

संग्रहकी कविताओंमें स्त्रीके भीतरकी वैधर्म्य, धर्म

मसौसी व विकल्पहीनताको दिये गये शब्द उसके दमन  
के कारणोंको खोजनेकी पारदर्शी समझके प्रमाण हैं।  
अपने अनुभवको स्त्री-समुदायके व्यापक प्ररिप्रेक्ष्यसे  
जोड़कर वे सीधे प्रश्न करती हैं—

तुम कौन हो ? / अपने हाथों खींची लक्ष्मण रेखा/  
में निहित / सब कुछ सद्धर्म / बाहर / सब कुछ  
अनृत, छल-छद्म / हमारी तो कठौतीमें गंगा /  
बाहर के / इतर स्रोत हैं सब गंदे नाले / एक आंख  
वालोंने देशमें / दो आंखोंवाला सच क्यों इतना  
अकेला है / अभिशप्त है ?

विषयके अनुरूप सादृश्यके गढ़नमें अच्छा कौशल  
दिखायी पड़ता है। कवयित्रीका मन, कहीं तो वचनके  
कंधेपर बैठकर मेलेको जा रहा है, कहीं वह नौरतों जैसा  
भरा-भरा, आनुष्ठानिक उमंगकी तत्परता लिये हुए  
प्रतीक्षारत हैं। कहीं वे कुएंकी जगतपर बैठी चांदनीकी  
छांह पकड़कर आकाशकी उन ऊंचाईयोंको छूनेको  
व्यग्र हैं जिनमें कि झीने-झीने बादल धुनएकी रई जैसे  
बिखरे हुए हैं।

कल्पनाके उगादानोंसे अपने समयके जीवन-जगत्  
को प्रतिबिंबित करने योग्य अभिनव रूपोंकी सृष्टि  
करके सृजन-कर्मको कलात्मकता प्रदान करनेवाले ऐसे  
अप्रस्तुत विधानको सराहा जाना चाहिये। ठूँठ सामं-  
यिकताके हल्के भूसेको ही कितना तोलते रहें ?  
कविताके क्षेत्रमें छपकर आ रहे भूसेके ढेरको सूपेमें  
फटकते जानेकी जरूरत है। वर्तमानको प्रतिष्ठित  
करना अभिव्यक्तिकी क्षमताकी कसौटी है। परन्तु  
फटकते जानेका सयानापन साथ-साथ नहीं बरता गया  
तो कविताका क्षेत्र भूसेका उत्पादन क्षेत्र बन जानेके  
खतरे हैं। उसके उपयोगसे मात्र कागज बनानेकी पूर्ति  
बढ़ायी जा सकती है कवि कर्म और कागज बनानेकी  
प्रक्रियामें फर्क तो करनाही पड़ेगा। □

## श्रनादि गाथा<sup>१</sup>

कवि : डॉ. चक्रवर्ती

समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

हमारे वैदिक एवं पौराणिक वाङ्मयमें बारह मासों

१. प्रका : ऋषभचरण जैन एवं संतति, ४६६७/५-२१  
ए दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १२४;

द्विमा. ६० : मूल्य : ६०.०० रु.।

'प्रकर'—वैशाख २०४६—१५



के राशि-नामोंसे द्वादशादित्योंकी परिकल्पना की गयी है। यह कल्पना, जगत्की आत्मा सूर्यके विस्मयजनक अस्तित्वका मानवीकरण करके उसे भारतीय काव्यका आदिका नायक बनाती है। वह नित्य होकर भी अपूर्व है। पल-पल परिवर्तित होता हुआ भी चिरन्तन है। उसके विविध-स्वरूपोंके दिग्दर्शनके लिए सैकड़ों पुरा-कथाएं रची गयी हैं जिनके रूपकाथोंके पाश्चात्य और प्राच्य विद्वानोंने अनेक भाष्य किये हैं। डॉ. चक्रवर्ती लंबे समयसे उन रूपकाथोंका अध्ययन और मनन करते रहे हैं। 'अपूर्व पर्व' नामक काव्य-कृतिके सृजनकी प्रेरणा उसी अध्ययनसे मिली थी। पुनः 'अनादिगाथा' को रचकर वे हिन्दी-जगत्को उस विराट्-कविताकी स्मृति-यात्राका सहभागी बना रहे हैं जिसे सूर्यकी किरणों ने ग्रहोंसे युक्त हमारी धरतीके सुन्दर पृष्ठोंपर लिखती रहती हैं। उस 'महाकाव्य' को अनुभव-संवेद्य बनानेके लिए सूर्य, ज्योति बनकर हमारी आंखोंमें विराजमान है। चक्रवर्ती, उसी सनातन महाकाव्यको भाषा देकर मानो अपने रचना-अनुष्ठानका दूसरा पुर-श्चरण सम्पन्न कर रहे हैं।

हमारे हिस्सेकी सृष्टिमें सूर्यकी रहस्यमय उपस्थिति से वे नये शिशुकी भांति विस्मय-विमुग्ध हैं। रोहिणीके माध्यमसे कविकी जिज्ञासा प्रश्नाकुल हो कहती है—

नखत कुल परिवेश/छोड़ / पुनरागमन भावाकुल/  
आदिगंत अरुण-शील/रोहिणी है प्रश्नाकुल/कौन  
तुम ?/अनुपम, कौन तुम ?

सूर्यके अद्भुत सौन्दर्यके वर्णनके लिए कविने वैदिक रूपक-विधानका सहारा लिया है वह अकूल व्योममें उदित होकर चिर-प्रसन्न रहनेवाला नायक है। धरती-प्रिया उसके रहस्य रोमांचसे आज भी उत्तनीही अभिभूत है जितनी सृष्टि-कल्पके आदिमें थी। अस्तित्व-अनस्तित्वके उदयास्तमें आदि-दिवसकी भांति वह आज भी आंख मिचौनीका खेल खेलता है। कविने उसे 'सत-रज-तमके विराट् समन्वयका व्याकुल उद्गार' कहा है जिससे हमारी धरती निरन्तर करुणाद्रं होती रहती है।

सृष्टिके अनुरागका विम्ब बनकर वह प्राचीके भात पर बैठता है। उसकी वज्रशक्तियोंका कोई लेखा नहीं। उसकी प्रतिध्वनियाँ व्योम मण्डलमें प्रतिपूर्ति, विसर्जित और प्रत्यक्ष होती रहती हैं। समुद्रका नीलाञ्चल उसी की मरीचियोंसे तरलायित है। उत्तरायणके ध्रुवान्त प्रांगणमें जो आक्षितिज घिरा हुआ अर्द्धवर्तुल तुषार चाप है वह उसीकी सौन्दर्य सत्ताका सीमांकन करता है।

ग्रन्थकी भूमिकामें कविने कहा है, 'वैदिक द्वादश मासोंके ऋतुचक्रमें ही आदित्यकी चिरन्तन सौर यात्रा की मैंने रूपकत्व प्रदान करनेका प्रयत्न किया है', पर किसी एक रूपककथाका आद्योपांत निर्वाह न होनेसे उसका महाकाव्यात्मक प्रभाव नहीं होता। पूरे ग्रन्थमें मात्र एक स्थल ऐसा है जहां पणियोंके साथ सूर्यके द्वन्द्वके किसी इतिवृत्तकी ओर संकेत है—

देखी, आदित्यने / अनवरत/दुर्मंद वृत्ति/ संकुचित/  
तामसी शक्तियां / आतंकमय/ भग्न-मुखाकृति/क्षुद्र  
अधम/अशुभ विम्ब/क्षय उत्पात मचाती/पावन/  
यज्ञभूमिपर / निर्भय/ घृणा-दग्ध-दृष्टि/क्रुद्ध घषित  
दंत/लोलुप जिह्वा/अकथ अधर अन्ध/तृषित लोहित  
कण्ठ/हिम-दानव/विकृतिमय।

कुण्ठाग्रस्त ये/पणि/अन्ध गुहाओंके/अधिपति/चुराते  
ऊषाकी/चुपचाप/ स्वर्ण शालियोंको/प्रतिक्रियावादी/  
ये अमुर/प्रतिपादित करते/प्रवेग विपर्यय/उच्छृंखल/  
भ्रान्तियोंको ये दुर्धर्ष दनुज / जड़ द्वैत कुणपाशी/  
करते तम विषम/द्वन्द्वोंका/ उन्मीलन।

वैदिक ऋचाओंकी गूँजको भाषा देनेके अतिरिक्त श्रमसे यह काव्य सायास कविताका नमूना बन गया है। उससे कविके कल्पनाके रहस्यलोकमें उड़नेकी क्षमताकी सूचना तो मिलती है परन्तु किसी प्रकारकी संवेदना नहीं जगती। लगता है असहज क्लिष्ट और जटिल मानसिकतामें इसका प्रणयन हुआ। ग्रन्थ ऐसी कविता भाषामें है जिसमें विशेषणोंके तो अम्बार हैं क्रियाएं हैं ही नहीं। कवि शब्दोंपर शब्दोंके चट्टे खड़े करते जाता है। उनको इतिवृत्तके सूत्रमें पिरो नहीं पाता। □



## उपन्यास

### विक्षुब्ध<sup>१</sup>

उपन्यासकार : डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय  
समीक्षक : डॉ. भगीरथ बड़ोले

आधुनिक हिन्दी साहित्यकी चेतनाधारा एक लंबे समयसे विश्वकी भिन्न-भिन्न विचारधाराओंको ग्रहणकर अपनी गतिरता सिद्ध कर रही है। इन विचारधाराओंके अन्तर्गत विशेषकर मार्क्सवादी चेतनाका प्रभाव हिन्दी कथा साहित्य तथा आलोचनापर अधिक समयसे टिका हुआ है। यह उस चेतनाके अधिक प्रभावी होनेका प्रमुख प्रमाण है। साहित्य और विशेषकर कथा साहित्यमें इस विचारधाराका प्रभाव कभी तो मानवीयताके विराट् सन्दर्भोंको आयत्त करना रहा है, तो कभी इसका प्रचारात्मक रूपही अधिक दिखायी दिया है। फिरभी आजकी जन समस्याओंको उजागर करने, उसके विरुद्ध संघर्षको प्रबल स्वर देनेके क्रममें यह विचारधारा आज भी कितनी जीवंत है, यह विचारणीय है। डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय की नवीनतम औपन्यासिक कृति 'विक्षुब्ध' को इसी संदर्भमें देखना अधिक उपयुक्त होगा।

डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय एक कथाकार एवं समीक्षक—दोनोंही रूपोंमें मार्क्सवादी चेतनाको अंगीकार करनेवाले रचनाकार हैं। 'विक्षुब्ध' संभवतः उनका छठा उपन्यास है और समाजवादी चेतनाको अभिव्यक्त करनेवाले उपन्यासोंमें चौथा। अपने पूर्व उपन्यास 'रीछ', 'पक्षधर' और 'दूसरा भूतनाथ' में भी इसी मार्क्सवादी विचारधाराका अभिव्यक्तिकरण हुआ है। किन्तु इस क्रममें जुड़नेके बादभी 'विक्षुब्ध' में कुछ नया भी है, जिसकी परीक्षा करनेसे पूर्व इस उपन्यासके संबंधमें कुछ जानना आवश्यक है।

१. प्रका. : बी स्टूडेंट्स बुक कम्पनी, १५२/१५३ चौड़ा रास्ता, जयपुर-३०२००३। पृष्ठ : १६८; बिमा. ६१; मूल्य : १००.०० रु.।

जैसाकि नामसे स्पष्ट है, कथाकारने प्रमुख पात्रके आधारपर प्रस्तुत कृतिका नामकरण करते हुए चाहा है कि उसी भावके संघर्षकी चेतनाको समझा जाये। वस्तुतः विक्षुब्ध अपने समय और उसमें निहित प्रत्येक विसंगतिसे अत्यन्त दुःखी है। अपनी युगीन परिस्थितियोंसे क्षुब्ध होकर वह प्रण करता है कि वह किसीभी सीमा तक अपना मनोवैज्ञानिक शोषण नहीं होने देगा तथा यथासम्भव युगीन विसंगत परिस्थितियोंसे जूझेगा। जूझनेके इस क्रममें वह कभीतो सामंतवादी-पूँजीवादी प्रवृत्तियोंके विरुद्ध मोर्चा खोल देता है तो कभी वह आतंकवादके विरोधमें कमर कसकर कूद पड़ता है। यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह पात्र मार्क्सवादी चेतनाको अंगीकार करता हुआभी उसके नये परिवर्तित स्वरूपका अधिक समर्थन करता है। अतः अस्तालीनीकरणके दौरमें विक्षुब्धकी विचारधारा गोर्बाच्योवके समानांतर हो जाती है। नागरिक तेजेकरके सम्मुख प्रस्तुत किये गये उसके विचार मार्क्सवादके परिवर्तित आयामों को प्रासंगिक स्तरपर उपयुक्ततम सिद्ध करनेका ही प्रयत्न कहा जायेगा। प्रयत्नके इसी प्रसंगमें विक्षुब्धकी भेंट धरतीपकड़से करा देते हैं। उग्रवादी विचारधारा के कारण धरतीपकड़ उसे बहुत भाते हैं और वह इनके साथ जुड़कर क्रांति-संघर्षको एक नया निर्माणात्मक स्वरूप देनेमें जुट जाता है। विक्षुब्ध चाहता है कि गोर्बाच्योवका जनतान्त्रिक समाजवाद दुनियाँके व्यवहारका अंग बने। किन्तु राजनीतिको दस्युनीतिमें परिवर्तित देखकर वह इसके विरुद्ध अपना संघर्ष-मोर्चा खोल देता है। केन्द्रीय मंत्री गीदाराके विरुद्ध उसका सदलबल प्रदर्शन करना इसी संकल्पकी प्रतिक्रिया कही जा सकती है। इसीलिए वह बाबा धरतीपकड़की शनैः-शनैः कार्य-शील होनेवाली नीतिको भी वरेण्य नहीं मानता। इसी बीच उसका सामना आतंकवादियोंसे हो जाता है। अपने अनेक प्रयत्नोंमें सफल-असफल होता हुआ विक्षुब्ध अंततः वीरगति प्राप्त करता है।



किन्तु विक्षुब्ध मात्र संघर्षजीवी साम्यवादी ही नहीं है। वह स्वयं रचनाकारभी है और प्रेमीभी। एक रचनाकारके रूपमें विक्षुब्ध एक ऐसे उपन्यासकी रचनामें रत है, जो जनचेतनाको साम्यवादके गणतंत्रात्मक स्वरूपका पाठ पढ़ाये। कभी-कभी प्रिया अनुराधा की संगतिपूर्ण भावनाओंमें खोकर वह अपनी तेजस्विता के अनुरूप कविताएँ भी रचता है। एक प्रेमीके रूपमें उसकी मान्यताएँ साम्यवादी चेतनाकी अनुवर्तिनी हैं। विक्षुब्धने किसी समय जर्मन सुन्दरी बार्बराको चाहा था और अब उसका झुकाव अनुराधाके प्रभावके आश्रित हो जाता है। अनुराधा किसीभी विचारमें न जीनेवाली स्वतन्त्र व्यक्तित्वकी समर्थिका युवती है। विक्षुब्धके प्रति उसका झुकाव सहज है। जैसे-जैसे वह विक्षुब्धके कार्यक्रमोंका हिस्सा बनती जाती है, विक्षुब्धके सम्बन्ध उससे गहरे होने लगते हैं। विक्षुब्ध विवाहको अप्रासंगिक विषय मानकर भी उसके प्रति पूर्णतः समर्पित है और उसे हर समय संबोधित करता रहता है कि यदि उसे कुछ होजाये तो वह तमस्के सम्मुख अपनेको झुकने न दे। विक्षुब्धकी मृत्यु होनेपर बाबा भी अनुसे कहते हैं कि वह अपने गर्भमें पल रहे विक्षुब्धके तेजकी रक्षा करे जो उसके अधूरे उपन्यासको पूरा करेगा तथा संघर्ष को सनातनता प्रदान करेगा। इस समय रचनाकार कल्पना करता है कि विक्षुब्धके तेजसे ही महा-विक्षोभका जन्म होगा तथा जन ज्वालाकी लपटें तेज होंगी। आदर्श गणतन्त्र अर्थात् गणतंत्रात्मक समाजवाद की स्थापनाके लिए आवश्यक है कि अभीसे भविष्यके संघर्षके लिए नयी पीढ़ीको आजीवन जययुद्ध करनेका पाठ पढ़ाया जाये।

वस्तुतः प्रस्तुत औपन्यासिक कृति रूसमें हुए नये परिवर्तनोंको लक्ष्य करके लिखी गयी तथा उसका पूर्णताके लिए प्रतीक रूपमें विक्षुब्धका चरित्र गढ़ती हुई अनुभव होती है संभवतः इसीलिए भूमिकामें लेखक ने स्पष्ट किया है कि उनके अन्य उपन्यासोंकी भाँति विक्षुब्धमें भी सामाजिक चेतनाका नैरंतर्य विद्यमान है, किन्तु इस (विक्षुब्ध) में प्रजातान्त्रिक समाजवाद और सोवियत व्यवस्थाका एक नया प्रारूप (मॉडल) या प्रस्तावभी है। अब यह एक भिन्न बात है कि रूस की ध्वजाका स्वरूप अभी पूर्णतः निश्चित नहीं हुआ है तथा वहाँ आन्तरिक संघर्ष और विघटनका क्रम जारी है, साथही अब गोर्बाच्योवकी वैचारिक भूमिकाभी

नेपथ्यमें धकेल दी गयी है। ऐसेमें यह उपन्यास अभी भी उसी भूमिकाको पुनः स्थापित करनेके प्रयत्नमें संलग्न है। सम्भव है, परिवर्तनशील युगमें समयका प्रभाव कभी आगे किसी बातको मूर्त करदे और तब यह कृति पुनः प्रासंगिक बन जाये। किन्तु इस एक बात के साथ भारतकी आतंकवादी समस्याका मेल कुछ बेमेल ही प्रतीत होता है। संभवतः लेखक बताना चाहता हो कि रूसकी नयी क्रांतिके साथ तो वह पूर्णतः जुड़ा हुआ है किन्तु पंजाबके लोगोंका नाम लेकर जिस आतंकवादका विस्तार हो रहा है उसका वह समर्थक नहीं। इसीलिए नायक विक्षुब्ध आतंकवाद या क्रांतिके इस दर्शनको खोखला बतानेका प्राणप्रणसे प्रयत्न करता है। विक्षुब्धके बहाने लेखकका दूसरा प्रहार केन्द्र पुलिस विभाग, प्रशासन, नौकरशाही, सत्ताके दलाल आदिभी हैं, जोकि देशमें आदर्श गणतंत्र की स्थापनामें बाधक तत्त्व हैं।

इस प्रकार विक्षुब्धकी कथा संगतिपूर्ण सन्दर्भोंसे रहित होकर कहाँसे कहाँ चली आती हुई प्रतीत होती है। ऐसी स्थितिमें यदि रचनाकार इस उपन्यासको 'नया उपन्यास' कहे तो उसमें विसंगति कैसी? रचनाकार तो भारी भरकम पारिभाषिक शब्दावलीका आश्रय लेकर इस उपन्यासके माध्यमसे एक नयी उपन्यास शैलीके प्रवर्तनकी घोषणाभी कर देता है—'विक्षुब्ध उपन्यास'। ठीकही है कि जब प्रवर्तक विषय ही 'दुर्लभ दशा'में हो तो सारी परम्पराका 'टॉय बोल जाना' अनुचित नहीं। उपन्यासका नायक 'एक्शन' चाहता है, नाटक नहीं। ऐसेमें कृति यदि 'एक्शन' का आभास न कराये, दो कहीं कुछ 'रिएक्शन' कैसे होगा और लेखक को आशा है कि 'रिएक्शन' तो होनाही चाहिये। इसीलिए उसने प्रस्तुत कृतिमें अवसर मिलतेही वैचारिकता ठूसनेका पौषमय प्रयास किया है तथा 'एक्शन' की अपेक्षा 'रिएक्शन' को अधिकाधिक व्यक्त किया है। सम्भवतः इसीलिए विक्षुब्धसे कहलवाया गया है कि वह लेखक, विचारक, कार्यकर्ता बना, पर कम उसके लिए नहीं। अस्तु, इस उपन्यासकी रचनामें लेखक कथाकार कम तथा विचारक अधिक लगता है, बल्कि यूँ कहें कि विचारकसे अधिक नवीन साम्यवादी व्यवस्थाका प्रचारक अधिक लगता है तो कोई अन्यथा बात न होगी। दर्शनके घटाटोपने, पारिभाषिक शब्दों के प्रयोगने तथा ठूसी गयी वैचारिकताके कारण



यह कृति उपन्यासका आनन्द प्रदान करनेमें अधिक सफल नहीं होसकी। इसके अतिरिक्त किसी निश्चित प्रवाहमें कृतिको पढ़ना भी सम्भव नहीं है। यदि उसे धीरे-धीरे सोचते-समझते हुए पढ़ा जाये, तो ही उसका अधिकांश कुछ समझमें आ सकता है। लेखकने प्रस्तुत उपन्यासके प्रधान चरित्रको 'ट्रेजेडी' चरित्र भी घोषित किया है। यद्यपि विक्षुब्ध प्रारम्भसे वन्ततक क्षुब्ध है, प्रत्येक स्तरपर क्रांति-संघर्ष-रत है, हत्याओं-बलात्कारोंके बीचमें अपना रास्ता खोजता है तथा अन्तमें उसकी हत्याभी हो जाती है; तथापि किसी ट्रैजिक चरित्रकी तरह भय एवं कष्टना का मिला-जुला वातावरण निमित्त नहीं कर पाता। इसके अतिरिक्त वह कुछ ठोस चरित्र है और निश्चित धरातलोंपर मुक्त यौन संबंधोंकी स्थापनाके अतिरिक्त उसकी अन्य कोई कमजोरी भी कहीं दिखायी नहीं देती, जो संघर्षको बुलावा दे।

इन सभी स्थितियोंके होते हुए भी विक्षुब्ध उपन्यास धमाके साथ वैचारिकताके गूढ़ धरातलपर समाजवादी चेतनाके नये आयामोंमें अपनेको ढाँटा हुआ अपने ढंगकी एक विशिष्ट छाप अवश्यही छोड़ता है तथा कृति-सर्जनके सन्दर्भमें सोचके लिए प्रेरित भी करता है। □

### एक और ग्रहलया ?

उपन्यासकार : डॉ. भगवतीशरण मिश्र

समीक्षक : डॉ. पारुकांत देसाई

अपने ऐतिहासिक-पौराणिक एवं सामाजिक उपन्यासोंके क्षेत्रमें जिन्होंने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनायी है, उनमें डॉ. भगवतीशरण मिश्रका औपन्यासिक कृतित्व नगण्य नहीं कहाजा सकता। 'पहला सूरज', 'पवनपुत्र', 'प्रथम पुरुष', 'पुरुषोत्तम' प्रभृति उनके ऐतिहासिक एवं पौराणिक उपन्यास हैं; तो 'एकला चलो', 'सूरजके आनेतक', 'नदी नहीं मुड़ती', 'शापित योग' आदि उनकी सशक्त सामाजिक औपन्यासिक कृतियाँ हैं। 'एक और अहल्या' इसी शृंखलाकी अगली

१. प्रका. : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : २४७; क्रा. ६१; मूल्य : ६०.०० रु.।

कड़ी है।

समुच्चा उपन्यास एक प्रकारसे पृथाकी स्मरण-यात्रा है जिसमें पृथाके साथ-साथ पाठकके भी चेतना-तंत्रपर पड़ते हैं अनेक प्रसंग एवं पात्र। परन्तु इन सबके केन्द्रमें हैं मनीष जो एक प्रकारसे उपन्यासकारका प्रवक्ता भी है, नायक भी। उपन्यासमें अन्तिम घटना को छोड़कर प्रत्यक्षतः कोई घटना घटित नहीं होती, क्योंकि सभीकी सभी घटनाएं पृथाके स्मृति-पटलपर उमड़ती-धुमड़ती रहती हैं, जिनका उद्भावक बिन्दु है मनीषका वह ग्रीटिंग-कार्ड जो उसने पृथाके जन्म-दिवस पर भेजा है और जिसे लेकर उसकी मां सावित्री कल्पना के घोड़ोंको दौड़ाते हुए संशय, आशंका तथा अनागत भविष्यकी दुश्चिन्तासे त्रस्त हो अपनीही बेटोसे नागिन-सा व्यवहार कर रही है। उपन्यासमें रह-रहकर यत्र-तत्र उक्त कार्डका उल्लेख आता है। (पृ. ७७, १०६, १४७, १५६, १७१, २४५)।

पिताकी नपुंसक निष्क्रियता तथा माँके षड्यंत्रोंके कारण पृथाका विवाह उसकी इच्छाके विपरीत आधुनिक उपभोक्ता संस्कृतिके प्रतीकसे एक धनाढ्य परिवारके युवक विश्वाससे हो जाता है। शैशवकालसे ही अभावोंमें पली पृथा ऐश्वर्य-मंडित साधन-विपुलताके समुद्रमें खो-सी जाती है। वहाँ सब कुछ है—रुपये, पैसे, गाड़ियाँ, कोठियाँ, रंगीन टी. वी., वी. सी. आर., भौतिक समृद्धिकी समग्र चकाचौंध। पर नहीं है तो आदर्श, संस्कार, व्यक्तित्वकी पहचान। वहभी उस उपभोक्ता-संस्कृतिका अंग बनकर, किसीकी वासना-पूर्तिका एक साधन, एक वस्तु मात्र बनकर रह गयी है। कहां मनीषकी विचार-विवेक सम्पन्न आदर्शवादिता और कहां वासनाकी डोरसे परिचालित विश्वासकी खोखली, यौन-क्षुधा-जर्जरित मानसिक विकृतियोंका संसार, जिसे पृथा नरकसे भी बदतर समझती है। इस एकवर्षीय नरकवासके पश्चात्, विश्वासके गर्भको धारण करके, पृथा अपने मायकेमें आयी है। कल उसका द्विरागमन है। पिता विश्वमोहन इसी अवसरके लिए कुछ चीजोंको जुटानेके लिए बाजार गये हैं। तभी वह कार्ड आता है। मां सशक्त हो उठती है उस कार्डको लेकर, पर अशिक्षित होनेके कारण उसके भेदको पानेमें असमर्थ है। उसकी भुन-भुनाहटका एक कारण यहभी है। और यहांसे शुरू होती है पृथाकी स्मरण-यात्रा। उपन्यासकी इस शिल्प-



विधिका प्रयोग—जिसमें कथा किसी एक विन्दुसे प्रस्थित हो, पुनः इसी विन्दुपर समाप्त होती है—रघुवंश कृत “तंतुजाल” तथा गुलशेरखान शानी प्रणीत “काला-जल” में भी मिलता है। कथाके इस अधोमुखी-प्रवाहमें पूर्व-दीप्ति, (प्रेम-विक), शब्द-सह-चयन, प्रसंग-सह-चयन जैसी प्रविधियोंका प्रयोग हुआ है।

यद्यपि उपन्यास मुख्यतः मनीष और पृथाके प्रेम-प्रसंगोंकी परिधिमें वतुलित हुआ है; परन्तु विश्वमोहन, सावित्री, जयश्री, श्रीधर, विश्वास, प्रमोद, डॉ. रघुराम पांडेय जैसी पात्र-त्रिज्याएं भी इसमें समाविष्ट हैं। मनीष एक सुशिक्षित, संस्कारी, मेधावी, विवेक-सम्पन्न, स्वप्नदर्शी, स्मृतिजीवी आदर्शवादी युवक है। कल्पनाशीलता और भाव-प्रवणता है उसमें परन्तु विवेक, नियम, विनय, संयम तथा नैतिक सिद्धान्तोंकी बलगासे नियन्त्रित व शासित रहनेके कारण सांप्रत-युगापेक्षी चंचलताका उसमें तिरोभाव हो गया है। एक अद्भुत गम्भीरता है उसमें। भारत सरकारके किसी विभागमें उच्च अधिकारीके पदपर आसीन है। पृथाके पिता विश्वमोहनके अभिन्न मित्र सुदर्शनजीका पुत्र होनेके नाते पृथाके यहां उसका आना-जाना बचपनसे ही था। पिताकी काहिली अकर्मण्यता तथा दीर्घसूत्रता और इनसे उत्पन्न अर्थाभावकी स्थितियोंके कारण पृथामें उत्पन्न इडिपस-ग्रंथिकी सहज परिणति मनीषके प्रति वद्वत्-भावमें होती है। पन्द्रह वर्षका अन्तर होते हुएभी वह उसका वरण कर चुकी है। प्रारम्भकी मन्दबुद्धि, एक-दो परीक्षाओंमें अनुत्तीर्ण होनेवाली, पृथा मनीषकी संगत तथा उसको पानेके स्वप्नमें, स्वाध्याय द्वारा अनेक विषयोंमें कुशाग्रता प्राप्त कर लेती है जिसकी सहज प्रतीति उपन्यासमें वर्णित मनीष-पृथाके संवादोंसे हो जाती है। लेखककी बहुश्रुतताका लाभ इन दोनों पात्रोंको मिला है। जाति, लोकाचार एवं कुलीनताके परम्परागत संस्कारोंमें डूबी रहनेवाली सावित्री एक जाहिल, गंवार अनपढ़ और कुरूप औरत है। विश्व-मोहनजीकी अकर्मण्यताका एक कारण पत्नीकी यह कुरूपता भी हो सकता है। जयश्री पृथाकी बहन है, जिसका विवाह श्रीधरसे हुआ है; परन्तु दान-दहेजमें झांसा दिये जानेके कारण प्रतिशोधकी भावनासे प्रेरित उसके पिताने उसे समुरालमें छोड़ रखा है। पृथाको अपने इस जीजाका भी ध्यान रखना पड़ता है।

उपन्यासके पृष्ठ १२६ पर सन् १९६० का उल्लेख

हुआ है, अतः स्पष्ट है कि उसमें तबतक की सांप्रत घटनाओं तथा समस्याओंका लेखा-जोखा प्रस्तुत है। गोदा-चोवके ग्लासोनोस्त व पेरेस्त्रोइकाके विचार (पृ. १२६), चीनका छात्र-आंदोलन (पृ. १२६), विमेलसलीव (पृ. १७५), अठारह वर्षमें मताधिकारका प्रावधान तथा औचित्यकी चर्चा (पृ. १६३), आचार्य रजनीशकी एड्स द्वारा मृत्यु (पृ. २०४), देशमें चारों ओर व्याप्त भ्रष्टाचार, रिश्वत तथा लाल-फीताशाही, छात्रोंकी बढ़ती अनुशासनहीनता, दोषपूर्ण शिक्षा-पद्धति, परीक्षा-पद्धति तथा तज्जनित घपलेवाजियां, भौतिकवादी चिन्तन-प्रणाली के कारण नैतिक मूल्योंका ह्रास, टी. वी. एवं फिल्मोंके आक्रमणसे क्षण-क्षण-परिवर्तित पश्चिमी ह्रासोन्मुखी आयातित सभ्यताका बढ़ता हुआ प्रचार, पांच-तारक होटल तथा काल-गल-संस्कृति, वी. सी. आर. पर गंदी बीभत्स फिल्मोंका प्रदर्शन, उससे वच्चोंपर पड़नेवाले कुप्रभाव, सायप्रोसोमेटिक डिस्जीज (पृ. २११), डायबिटीजके कारण (पृ. २१४-२१८) सरकारके नाना विधि-विधानोंकी बुरी परिणति जैसी अनेक विध्वंसक बातोंके साथ, गीता, मेघदूत, बुद्धके मज्झिम निकाय प्रभृतिकी चर्चासे इतिहास, दर्शन, धर्म, साहित्य आदिमें निमज्जित अनेक बातोंकी परतें यहां क्रमशः खुलती गयी हैं। परन्तु यह बहुश्रुतता जहां एक तरफ लेखकीय सामर्थ्यको उद्घाटित करती है, वहां उसकी शक्ति-सीमा को भी निर्धारित करती है क्योंकि अनेक स्थानोंपर उसके अतिरेकसे कथाकी साहजिकता, वास्तविकता तथा उसके सरितोपम कथा-प्रवाहको व्याघात पहुंचा है।

‘उपन्यासके अन्तमें पृथाके पिता अचानक पत्नीको झाड़ते हुए एक साहसिक कदम उठाते हैं। द्विरागमनके एक दिन पूर्व वे पृथाको मनीषके साथ विदा कर देते हैं। पृथाकी कोखमें विश्वासका गर्भ पल रहा है, यह जानते हुएभी मनीष उसे स्वीकार करता है। इस प्रकार ऐश्वर्य एवं विलासिताके प्रतीक इन्द्र (विश्वास) से वह पृथा (एक आधुनिक अहल्या) का उद्धार करता है। विश्वास इन्द्रका प्रतीक है तो मनीष प्रज्ञा और विद्या-बुद्धिके धनी गौतमका प्रतीक है। परन्तु वह गौतम जहां अहल्याको अभिशप्त करके छोड़ देता है, वहां यह उसे स्वीकारनेका साहस दिखाता है। इस प्रकार वह गौतम भी है, राम भी। परन्तु उपन्यासमें कई अन्तविरोध भी मिलते हैं। आदर्शवादी मनीषके द्वारा पृथाकी परीक्षाके समय हेलपरकी भूमिकाको निभाना, प्रारंभकी मंद-प्रज्ञा



पृथाका थोड़ेही समयमें अनेक विषयोंमें दक्षता प्राप्त कर लेता (कहीं-कहीं तो वह मनीषसे भी बढ-चढकर बातें करता है), अशिक्षित सावित्रीके मुँहसे विधि-विधानों की निस्सारताकी बातें आदि इसके उदाहरण हैं।

उपन्यासके प्लेपपर दहेज सम्बन्धी एक वक्तव्य है, जिससे लगता है कि उपन्यासमें कदाचित् दहेजकी विभीषिकको लेकर कुछ कहा गया होगा। परन्तु यहां ऐसी कोई बात नहीं है। जयश्रीके सन्दर्भमें दहेजकी किंचित् चर्चा हुई है। पृथाके लिए दहेजकी कोई वैसी समस्या नहीं है क्योंकि मनीषकी आदर्शवादिताके सामने दहेज का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यह भी समझमें नहीं आता कि पृथाकी माँ सावित्री दहेजकी समस्याको निवटानेके लिए जब पृथाका ब्याह जयश्रीके पति तकके साथ करनेकी बात करती है (पृ. १८५), तो उसे मनीष में क्या खोट नजर आता है। कदाचित् जाति? पर उसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। पृथाका एक धना-द्वय-परिवारसे निर्विरोध जुड़ जाना भी कुछ अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है। तथापि उक्त उल्लिखित अनेक विशेषताओंसे मंडित यह उपन्यास अपनी प्रेमचंद स्कूलिय आदर्शोन्मुखी यथार्थवादिताके कारण पठनीय बन पड़ा है।

उपन्यासकी भाषा, विषय, प्रसंग एवं पात्रानुरूप है।

अनेक स्थानोंपर लेखकने मानक-हिन्दीका प्रयोग किया है। समाहरणालय, संचिका, निलम्बित (पृ. १८) आदि इसके उदाहरण हैं। कहीं-कहीं अस्वाभाविक वाक्य-प्रयोग छटकते हैं, यथा—वे प्रस्थित हुए (पृ. २०), पृथा मुग्धसे अधिक आतंकित हो गयी (पृ. २०), स्थिर से बतलाएंगे (पृ. २१) आदि। परन्तु साथही उपन्यास में अनेक नये रूपकों व विशेषणोंका प्रयोगभी मिलता है, जैसे संशय-रूपी तरकश (पृ. ८), जवाबी तमंचा (पृ. ३४), आमदनी रूपी रस (पृ. ४२), निरामिष बहाना (पृ. ५७), उत्सुकताकी आग (पृ. १३७), प्रश्न सर्पका फन (पृ. १५०), अंगदीय टांग (पृ. १७३) आदि-आदि।

अन्तमें यह कहाजा सकता है कि “एक और अहल्या” में सांप्रत भारतीय समाजकी अनेक विसंगतियों, विडम्बनाओं और विद्रूपताओंको उनके सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक परिप्रेक्ष्यमें समाकलित करने का एक संनिष्ठ प्रयास हुआ है। साम्प्रत-परिवेशसे युक्त यह उपन्यास चिन्तनीय, मननीय अतएव पठनीय इसलिए भी बन पड़ा है कि उसमें हमारे सामाजिक जीवनके नाना आयाम, कई परस्पर विरोधी, एक विशेष लेखकीय दृष्टिकोणसे अभिव्यक्त हुए हैं जिसमें साम्प्रत समाजका एक जीवंत परिदृश्य उपस्थित हो गया है। □

## कहानी : नाटक : व्यंग्य

### कहानी

#### नोरंगी बीमार है?

लेखक : शेखर जोशी

समीक्षक : डॉ सन्तोषकुमार तिवारी

प्रगतिशील कथाकारोंमें एक सुपरिचित और स्था-

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ११४; क्रा. ६०; मूल्य : ४०.०० ६।

पित रचनाकारके नाते शेखर जोशीका नाम बहुत सम्मानके साथ लिया जाता है। उनकी कथा-यात्राका चौथा पड़ाव है—नोरंगी बीमार है। यूं तो तथाकथित प्रगतिशील कहानीकारोंकी सूची बहुत लम्बी-चीड़ी है किन्तु उनमें ओढ़ी हुई सहानुभूति, बाचाल क्रांति, सतही स्तरपर मजदूरोंकी दुदंशा और हल्की मनोदशाका ही अंकन दिखायी देता है। कई रचनाकार गरीब मजदूरोंकी अभावग्रस्तताकी तालिका देते हुए कहानियोंको विवरणात्मक बना देते हैं। ऐंसा इसलिए होता है कि उन रचनाकारोंमें कोई गंभीर चिन्तन नहीं होता और न बहुआयामी जीवनकी बहुविध शोषण-

‘प्रकर’—वैशाख २०४६—२१



प्रक्रियाकी पड़ताल होती है। उनमें मात्र हो-हल्ला वाली शब्दावली और बड़बोलेपनकी झलक होती है। वस्तुतः शेखर जोशी उन रचनाकारोंमें से हैं जो अनुभूति-जन्य वैचारिकताके साथ दैनिक जीवन स्थितियोंको एक विशेष अर्थ गांभीर्य और मूल्यवत्ता प्रदान करते हुए भयावह यथार्थके बीचभी एक ऐसा कलात्मक समापन प्रदान करते हैं जो सही अर्थोंमें जीवन जीनेकी मानवीय संलग्नता दर्शाता है और अंधेरेसे जूझनेका संकल्प देता है। लेखककी यह रचनात्मकता, जिसमें परिवेशकी सूक्ष्म पकड़के साथ मनोविज्ञानके धरातलपर मानसिक ऊहापोहका छोटेसे छोटा रेशा पारदर्शी बन जाये, पाठकके मन-मस्तिष्कको बहुत दूर तक और बहुत देर तक झंकृत करती रहती है।

शेखर जोशीकी प्रतिबद्ध लेखनी मूलतः अमानुषिक होती हुई व्यवस्था और अर्थ-वैषम्यकी विभीषिकाकी ही रेखांकित नहीं करती अपितु उन सभी स्थितियों और आन्तरिक पड़घट्टोंका भी भंडाफोड़ करती है जिनके रहते हुए दलित, मजदूर और मध्यवर्गीय समाज निरंतर अपनी चिन्ताओंमें पिसता हुआ महाजनी सभ्यताका शिकार होता जा रहा है। जहां अन्य रचनाकार कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंके पसीने और उनकी वेशभूषाको बड़े फाटकपर खड़े होकर निहारा करते हैं, वहां शेखर जोशी कारखानेके भीतर मजदूरोंकी सक्रियता और मशीनी उपकरणोंके बीच उत्पादनकी प्रक्रियाको भी गहराईसे उकेरते हैं। इसीलिए उनकी कहानियोंमें हू-ब-हू दृश्य अंकित होता ही है, साथमें विश्वसनीयता और प्रामाणिकताभी बढ़ जाती है।

‘बच्चोंका सपना’ वास्तविकतासे भलेही अपरिचित और अनजान हो लेकिन उनकी कल्पना मनुष्यताकी सुगंध तो बिखेरती ही है। कहानीमें मध्यवर्गीय सामान्य जीवनकी उलझनें, पुलिसकी उपेक्षा एवं तिरस्कार भरा व्यवहार और फटे चीथड़ों, कालिख पुते हाथ पैरोंवाले बच्चोंकी ट्रेनके आनेपर शिकारी-मुद्रा, बड़ी सहजतासे एवं स्वाभाविकताके साथ चित्रित हुई है। ‘आशीर्वचन’ में नौकरीसे मुक्त होनेवाले उस कर्मचारी की मनःस्थिति है जो नेतागिरी, गुटबाजी और अफसर की अगाड़ी-पिछाड़ीकी हेय समझता हुआ अपने ओजारों से प्यार करता है और जिसे कला कौशलसे लगाव है। वह नयी पीढ़ीके प्रति आश्वस्त है इसलिए सोचता है—

‘प्रकर’—अप्रैल ६२—२२

“हमारा कुक्षेत्र था हमने लड़ा, इनका कुक्षेत्र वे लड़ेंगे। जीना है तो लड़ना है। हालमें बैठे हुए होनहार नयी पीढ़ीके कारीगरोंकी मोहनी सूरत उसकी आंखोंके आगे तैर गयी।” सेवानिवृत्तिके समय पूरी नौकरीका मनही मन सर्वेक्षण, भावभीना विदाई-समारोहका यथावत् चित्रण, जीवनकी आपाधापी और एक ईमानदार कलाकार मजदूरकी अन्यायसे लड़नेकी सीख—कहानीको ऊंचाई और प्रभावशाली आकर्षण प्रदान करती है। ‘विडुआ’ कहानीमें आधुनिकता और परम्पराका सामंजस्य, स्वस्थ दृष्टिकोण दर्शाता है। गांवके रईस ठाकुरकी शान-शौकत, एम.एल.ए. साहिबकी हैमियत और विवाहके सभी रीति-रिवाजों व चूल्-वाजियोंके साथ बीडियोंपर बनी फिल्मका ग्रामीणोंके साथ देखना, ये सारे दृश्य कहानीको रोचक एवं अर्थ सम्पन्न बना देते हैं।

‘संवादहीन’ व्यक्ति खोजता है कोई माध्यम या कोई दूसरा साधन ताकि मनकी बात कह सके, याने अमिव्यक्तकी मानव-सुलभ-तृष्णाको तृप्त कर सके अन्यथा जीवन कितना भयावह, बोझिल और निस्सार हो जाता है, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। ताईने अकेलेपनको काटनेका साधन बनाया एक तोतेको। उनके जीवनका सारा प्रेम, दायित्व और लगाव, तोते पर केन्द्रित होगया। कहानीमें यह पक्षभी उभरकर सामने आया है कि दूसरेका दायित्व ग्रहण कर लेनेपर कभी-कभी शांत-प्रसन्न जीवनभी कितनी कठिनाइयोंमें पड़ जाता है। ताईके तोतेका दायित्व लेना, उसके उड़ जानेपर जगन मास्टरका दूसरे तोतेको पालना और नये सिरसे सिखानेका असफल प्रयास करना, मानों संकटोंका पहाड़ खड़ा कर लेना है।

‘निर्णय’ कहानी इस दृष्टिसे अत्यन्त प्रभावशाली है कि उसमें व्यक्तिका समाजके प्रति निर्माणपरक दायित्व रेखांकित हुआ है। जब किसी व्यक्तिमें भरे-पूरे यांत्रिक जीवनसे हटकर दूसरोंके लिए जीनेकी भावना प्रबल हो उठती है और वह ग्राम समाजकी समस्याओंसे साक्षात्कार करना चाहता है तब वह दूसरे लोगोंकी दृष्टिमें भावुक या सबकी भलेही माना जाये लेकिन इसी बिंदु पर वह दूसरोंसे अलग होकर अपनी मानवीय संलग्नता दर्शाता हुआ अपनी सार्थक पहचान बनाता है। गांव-देहातकी मिट्टीको सजाना-संवारना, सहकारिता, चिकित्सा, शिक्षा, हस्तकलाकी सुविधाओंके साथ अपने



हक्षेत्र ये  
होनहार  
आंखोंके  
नौकरीका  
मारोहका  
क ईमान-  
सीख—  
प्रदान  
और पर-  
गांवके  
गांवको  
व चूहल-  
गामीणोंके  
एवं अर्थ  
ध्यम या  
के, याने  
कर सके  
निस्सार  
। ताईने  
भोतेको।  
व, तोते  
उभरकर  
लेनेपर  
ताइयोंमें  
सके उड़  
ना और  
, मानों  
शाली है  
दायित्व  
यांत्रिक  
मा प्रबल  
साक्षा-  
दृष्टिमें  
सी बिंदु  
संलग्नता  
। गांव-  
कारिता,  
य अपने

जीवनको समाजके लिए समर्पित करना श्रीधरका बहुत बड़ा निर्णय था किन्तु कहानीकारने उस स्थितिपर भी मानविकताको केन्द्रित करता है जहाँ श्रीधरकी आन्त-रिक पवित्र भावनाको न समझकर गांवके लोग यह मानते हैं कि श्रीधरका नौकरीसे त्यागपत्र कहीं घूसखोरी या गबनका अनिवार्य परिणाम तो नहीं। यह कहानी हमें सोचके, विभिन्न स्तरोंपर झंझुत करती है क्योंकि यहाँ अंधेरेके विरुद्ध प्रकाशकी लड़ाई है। 'किस्सागो' में लेखककी बहुत व्यावहारिक दृष्टि सामने आती है। वच्चेको कहानी आश्चर्यलोकमें अवश्य डाल देती है किन्तु जीवनका खुरदरा यथार्थ उसे यहाँ भी समझा देता है कि कहानी सुननेसे अधिक आवश्यक ईधनकी व्यवस्था है इसीलिए वह सूखी लकड़ीकी बेडोल टहनीको घसीटता हुआ साथमें लाता है और 'किस्सागो' के कल्पनालोककी अपेक्षा दैनिक जीवनकी चिन्तासे ग्रस्त हो उठता है।

'विरादरी' कहानीके निष्कर्षमें एक व्यावहारिक जीवन-दृष्टि प्रतिफलित हुई है— "विरादरी एक दिन की नहीं होती, हमारे तो असली विरादर वे ही हैं जिनके साथ हमारा मरना-जाना लगा है। उन्हें छोटा कर परदेशी विरादरोंकी फिकर करोगे तो ये भी अपने न रहेंगे और वे भी।" यही कारण है कि गांवके विरादरीके लोगोंको नम्बर दो पर स्थान दिया जाता है और आमंत्रित लोगोंको पहले बारातमें ले जानेका निर्णय ले लिया जाता है। मामाके मित्र 'गाइड' शर्माजी हर बार अपनी सतर्कताका परिचय देकर विश्वसनीयताका प्रमाण देते हैं किन्तु अंतमें कुलीको दो रुपयेका नकली नोट देकर वे इतने दयनीय और निरीह बन जाते हैं कि हमारी दृष्टिमें कुलीके साथ उनका छल अपनी चतुराईमें भी बहुत लज्जास्पद बन जाता है। कहानीकी यही मानवीयता है। 'नेकलेस' रचनामें समानांतर दो कथाएं चलती हैं। वच्चोंके गुड्डा-गुड्डीकी शादी वास्तवमें हमारे परिवारिक-सामाजिक रीति-रिवाजों का ही यथार्थ अनुकरण है। गुड़ियाको दिया गया नेकलेस विवाहके अवसरपर केवल दिखावा था। उसी प्रकार दीदीको दिया गया नेकलेस वधूके लिए भी दिखावे के लिए ही था। अंतमें नेकलेसकी वापसीके समय सारी खींचातानी और संकोच-निराशा, गुड्डा-गुड़ियाकी उसी प्रकारकी शिकायतके समाधान द्वारा अपना समापन पाती है—'गुड़ियामें लियाकत होगी तो वह अपने लिए

एक नहीं, दो-दो नेकलेस जुटा लेगी।'

'प्रथम साक्षात्कार' एक भिन्न धरातलकी मनो-वैज्ञानिक कहानी है। जयाने अपने पास एक ऐसा अनोखा पत्र सुरक्षित रखा है जो उसके पहले आत्म-साक्षात्कार की सुगंधमयी अनुभूतिका प्रतीक है। प्रफुल्लको वह पत्र देकर स्वयं मुसीबत मोल ले लेती है। 'एकांगी प्रेमका वह साक्षी पत्र' जयाको आत्मविश्वास, आत्म-मुग्धता और अनोखी अनुभूतिसे भर गया था। प्रफुल्ल उसे नारी मनकी वास्तविकता न समझ पत्रको जयाकी ओर फेंक देता है और वह उसे सुरक्षित रख लेता है। यहाँ अवचेतन अणुकी कुंठाएं नहीं हैं, दमित वासना भी शायद नहीं। संभवतः यौवनकी पौरीपर आकर रविके उस पत्रसे जयाने जो पहली बार अपने भीतर की यौवनोचित भावनाओंसे निष्पाप, निश्छल साक्षात्कार किया था—वही अनुभूति-जन्य ऊष्मा और स्निग्धता कहानीका प्रतिपाद्य है।

संग्रहका नामकरण जिस कहानीके आधार पर हुआ है, उसका नाम है—नौरंगी बामार है। एक विश्वसनीय, ईमानदार, दूरदर्शी व्यक्तित्व है नौरंगी जो कार-खानेका विश्वसनीय मजदूर है किन्तु वेतन बांटनेपर यह अनुमान लगाया जाता है कि दो सौ रुपये ज्यादा चले गये हैं। इस घटना-सूत्रको लेकर स्वयं लेखकने बनर्जी, टंडन, शर्मा, महेश आदिके चरित्रका जो खुलासा किया है, वह पूरी व्यवस्थाका चित्र है। कहानीमें दलाल-बिचौलिये और खुशामदी काईयां नेताओं एवं कर्म-चारियोंकी मिलीभगतसे होनेवाले भ्रष्टाचार और शोषणका पर्दाफाश किया गया है जिसमें सारे अफसर और मैनेजर भी सम्मिलित हैं। नौरंगी कुछ दिन बाद कामपर नहीं जाता तो उसकी बीमारीकी खबर सुनकर लोग उसे अस्पतालमें भर्ती करने या गांव पहुंचानेकी बात सोचने लगते हैं। रचनामें पूरी व्यवस्थाकी जीर्ण-शीर्ण चादरका एक-एक ताना-बाना उभर-कर सामने आने लगता है। कहानीके अंतमें सब कुछ सुनते-गुनते हुए नौरंगी सीना तानकर चुस्त-दुरुस्त शॉपमें घुसकर अपने ठियेपर पहुंचकर काम करने लगता है। यहां सच्चाई निर्भय होकर आत्मविश्वास और कर्मठतासे भरी हुई है। कहानीमें 'आउट ऑफ-गेयर' व्यवस्थाका यथातथ्य चित्रण है। मजदूरोंपर लिखी कहानियोंमें जो माफिकता, सूझ-बूझ और अंदरूनी साजिशोंका पूंजीवादी चित्रण शेखर जोशी द्वारा

'प्रकर'—वैशाख २०४६—२३



हुआ है, वह अप्रतिम है। शब्द-चित्र प्रस्तुत करने और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म मनोभावोंको सामान्य भाषा-शैलीमें कलात्मकतासे पकड़नेकी कलामें वे जिद्धहस्त हैं। इसी-लिए भाषाके ओढ़े हुए अभिजात्य या साहित्यिक तनाव शृंगारसे दूर ये कहानियाँ हमें गंभीर चिन्तनके लिए विवश करती हैं और कलावादी अमूर्तनसे दूर यथार्थका उद्घाटन भी। निस्संदेह कहानियोंका आधारफलक व्यापक है। □

## नाटक

### सीढ़ियाँ

लेखक : दयाप्रकाश सिन्हा

समीक्षक : नरनारायण राय

दयाप्रकाश सिन्हा हिन्दीके स्थापित नाटककारों में परिगणित हैं। समीक्ष्य कृति एक लंबे अंतरालके बाद सामने आयी है। अतः अस्वाभाविक नहीं कि इस बीचका उनका सोच-विचार उनका रचनाके माध्यमसे व्यक्त हुआ हो। अपने समयके वीभत्स यथार्थोंको जानने समझनेके लिए नाटककारकी एक युग (कहते हैं कि बारह वर्षोंका एक युग होता है)की प्रतीक्षा कम नहीं। इस बीच उन्होंने गंभीरतासे अनुभव किया है कि जीवन के सभी मूल्य एकाएक कर ध्वस्त हुए हैं। स्वार्थ, अवसरवाद और महत्वाकांक्षाने जनहितका सर्वत्र अहित किया है। आज यही भयका सबसे विकराल सत्य है। अपने इसी अनुभवको नाटककारने इस रचनाके माध्यम से अभिव्यक्ति देनी चाही है। उन्होंने इस नाटककी कल्पना कुदसिया बेगम और जावेदकी प्रेम कथाके रूपमें की थी किंतु आलेख तैयार करनेके क्रममें यह प्रेम कथा गौण होती चली गयी और वह युग उमरकर सामने आता गया जिसमें प्रेम जैसी शाश्वत और पवित्र वस्तु भी अवमूल्यित होती चली गयी। अपने इस नाटकके बारेमें स्वयं नाटककारने अपनी भूमिकामें

लिखा है कि : “यह किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्वके चारों ओर नहीं घूमता और न किसी ऐतिहासिक घटनाके। ‘सीढ़ियाँ’ का नायक वह काल खण्ड है जो पात्रोंके माध्यमसे इस नाटकमें स्थापित है। मुगल शासनके अंतिम चरणमें साम्राज्यके बिखरावके साथ सामाजिक विघटनका वह काल खण्ड जो समाजके गिरते मूल्योंके साथ अपना कौमार्य खो बैठता है। जहाँ वही सत्य है जिसकी जय हो। ... पतित समाज, भ्रष्ट अहलकार, विलासी हुक्मरान—ऐसे बदरंग हैं जिनसे बनी है गुजरे वक्तकी यह तस्वीर। वर्तमानकी तस्वीरमें भी तो इन रंगोंकी झलक है। नाटकके पाठक/दर्शक, आजकी तस्वीरमें इस बीते कलकी तस्वीरके रंगोंकी झलक देख सकें, वस इतना ही तो इस नाटकका उद्देश्य है...।” (पृ. आठ)।

नाट्यवस्तु सोलह दृश्योंमें विभाजित है। कथानक संक्षिप्त है। दिल्लीका सूबेदार मुहम्मदशाह रंगीला ऊधम बाईके रूप यौवनपर फिदा है। वह उसे अपनी मलका बना लेता है। विलासके पंक्तमें डूबा सूबेदार क्रमशः जनखे, हिंजडे और विद्रोहकोंका सूबेदार बनकर रह जाता है। सत्तनतका ढिंढोरची सलीम महत्वाकांक्षी है और वह भी उसी ऐश्याशी, विलासिताके स्वप्न देखता है जिसमें ऊपर सूबेदारसे लेकर नीचे तबकेका अदना प्यादा तक लिप्त है। वह कुदसिया बेगम बन गयी ऊधमबाईके मीरासी, गाजखांसे लेकर सिपह-सालार जावेद तक, हर किसीके कदम चूमता है ताकि उसे ढिंढोरचीकी फाकाकश-फकरीसे निकालकर सत्तनतका नीचासे नीचा ओहदा भी मिल जाये। इसके लिए वह शहरकाजीको अपनी प्रेयसी बानोका तक भी भेंट करनेके लिए तैयार है। और आखिरकार वह कोई ओहदा पा ही लेता है। पर चस्का लग जानेके कारण वह संतोष नहीं कर पाता, दरबारी षड़यंत्रमें भाग लेकर कुदसिया बेगम और उसके अंगरक्षक (सह-प्रेमी) जावेदको गिरफ्तार करवा देता है। ईरानी आक्रान्ता नादिरशाह द्वारा दिल्लीपर कब्जा और बाद में एक अहमक सूबेदारके भरोसे दिल्ली छोड़ जानेकी घटनासे ढिंढोरची सलीमको अपने लिए रास्ता बनानेमें आसानी होती है। और आखिरकार वह सीढ़ी-दर-सीढ़ी ऊपर चढ़ता हुआ दिल्लीकी सूबेदारी पा ही लेता है। इस मूल घटनाके अलावा कुछ छोटे-छोटे प्रसंग भी आये हैं जिससे वातावरण तैयार होता है और वस्तुके

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, लोधी रोड, नयी दिल्ली।

पृष्ठ : ७६; डिमा. ६०; मूल्य : ३५.०० रु.।

‘प्रकर’—अप्रैल ६२—२४



पूरे चित्रमें रंग भरता है ! मुहम्मदशाह रंगीलेकी चित्त, मस्ती शराबखोरी और ख़ुमानी मिजाजको व्यक्त करनेवाली रंगीला-ऊधमबाई प्रसंग, तक्षशिला के दूतका प्रसंग। पतिके होनेपर भी सदेकें लिए तरसती कुदसिया बेगम और हिजड़े जावेदके साथ उसका प्रेम संबंध। अमीर, उमराव और मनसबदारोंका षड्यंत्र और सलीमकी भागीदारी। शहर काजी और जावेद के बीचका वार्तालाप और सरकारी नौकरीके लिए दोशीजमीकी सौदेबाजी। ये कुछ पूरक चित्र हैं जिनसे मुगलिया सल्तनतके आखिरी दौरकी लड़खड़ाहट और पूरे सामाजिक जीवनके मूल्योंका गिरावट प्रकट होती है। तब पात्रोंके ये नाम व्यक्तिवाचक नहीं रह जाते एक वातावरणका सामूहिक प्रतीक बन जाते हैं।

नाटकमें कुछ रंग युक्तियोंका व्यवहार भी उल्लेख्य है। नाटकका पहला ही संवाद ढिंढोरची सलीमका ढिंढोरा है 'खलक खुदाका शेख मिर्जा सलीम शाह बहादुरकी' (पृ. १), लेकिन सलीमके इस ढिंढोरेमें उसका खुदको सूवेदार घोषित करना उसकी अचेतन श्रमना, अपने वर्तमानका मखौल, और प्रेयसी बानोकी शिखोकी एक अदा है। नाटकके अंतिम दृश्यका अंतिम संवादभी यही ढिंढोरा है जो शब्दशः दुहराया जाता है पर इस बार ढिंढोरची दूसरा है और पहला ढिंढोरची अब दिल्लीका सूवेदार है। जावेदने जासूसीके आरोपमें सलीमको हिजड़ा बना देनेकी सजा दीथी, तब जावेद को चलतीथी। सूवेदार बननेपर सलीमने जावेदको बनाए मोत दी और बेगम कुदसियाकी आखें फोड़ दी, उसके बेटेको कल कर दिया, तब सलीमकी चलतीथी। दिल्लीका सूवेदार एक हिजड़ा ढिंढोरची हो, यह अपने आपमें कम विडंबनापूर्ण और प्रतीकात्मक नहीं। दिल्लीके पूर्व सूवेदार मुहम्मदशाह रंगीलेके रंग कुछ शीशोंके हैं। संक्रांतिकालीन मादरे वतन (कुदसिया बेगम) की हुकूमतके अपने प्रतीकाथ हैं। जिस संवादसे नाटककी शुरुआत होती है उसीपर समाप्ति—यह नाटक शीघ्र विडंबनाको उभारनेका एक आकर्षक प्रयोग है। नाटक एक वृत्त बनाती है, जहांसे शुरु होती है वहीं

आकर खत्म—अर्थात् ऐसेही घटनाचक्रकी पुनरावृत्ति की पूर्ण संभावना। सलीम केवल तब पैदा हुआ हो ऐसी बात नहीं, आजभी, किसीभी नैतिक और मानवीय मूल्यको बेचकर महत्वाकांक्षा पूरी करनेवाले सलीम कम नहीं है। नाटकके नाम और घटनाओंके ऐतिहासिक संदर्भ बदल दिये जायें तो यह नाटक आजका भी नाटक उतना ही साबित होता है।

डॉ. सत्यवती त्रिपाठीने अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी नायकोंमें प्रयोगधर्मिता' (१९६१) विषयपर लिखते हुए एक स्थानपर लिखा है कि : "ब्रह्मके विशिष्ट जीवन दर्शन, रंगमंचकी अपनी अवधारणाओं तथा शिल्प संबंधी मौलिक प्रयोगोंने यूरोपके नाटक और रंगमंचमें क्रांतिकारी परिवर्तन किये। उसने नाटक और चरित्रकी नयी दृष्टिके साथ नाटकमें एक उदात्त और भव्य नायकको न लेकर समूहको, समाजके एक वर्गको या उसके प्रतिनिधिको नायकके रूपमें स्थापित किया जिससे नाट्य-कलाकी धुरीही बदल गयी। इसके कारण नाटक किमी एक व्यक्तिपर केन्द्रित न रहकर घूमते हुए कैमरेके समान अलग अलग कई व्यक्तियोंपर केन्द्रित रहने लगा और कथा एक व्यक्ति के स्थानपर व्यक्तियोंके समूहको प्रक्षेपित करने लगी। नाटकके चरित्रोंने अपनी विशिष्टता और गरिमा खो दी, इसके कारण नाटकीय भाषाका अवमूल्यन हुआ" (पृ. २२)। लेखिकाकी यह टिप्पणी इस नाटकपर एकदम सटीक प्रतीत होती है, इसलिए यह उद्धरण प्रासंगिक समझा गया है।

दयाप्रकाश सिन्हा सिद्धहस्त नाटककार हैं और उनकी कुशलताका परिचय यह नाटक भी देता है। नाटककी जिन विशिष्टताओंकी चर्चा की गयी है उनके अतिरिक्त इस नाटककी भाषिक त्वरा भी अपनी विशिष्टता रखती है। नाटककारके स्वयंके निर्देशनमें नाटक प्रस्तुत हुआ है। अतः कहा जा सकता है कि नाटककी मंचीय परीक्षा पूरी हो चुकी है। अब वह निर्देशकोंकी प्रतीक्षामें है। एवं गंभीर, आकर्षक, प्रयोगधर्मी और उल्लेखनीय रचना प्रस्तुत करनेके लिए नाटककारको शुभकामनाएं। □



## व्यंग्य

### बधाइयोंके देशमें?

लेखक : लतीफ घोषी

समीक्षक : गंगाप्रसाद श्रीवास्तव

अठारह व्यंग्य कृतियोंके रचयिता श्री लतीफ घोषी को अपने कृतित्व और व्यंग्यकारिताके आधारपर न सही देशकी राजधानी दिल्ली तो अपनेही राज्यकी राजधानीमें उपयुक्त रूपसे मुशोभित होना चाहिये था : पर वे पड़ेहै मध्यप्रदेशके सुदूर छोरके महासमुंदकी गहूराइयोंमें। 'बधाइयोंके देशमें' पढ़ते समय बारबार यही ध्यानमें आता रहा कि इनकी कई व्यंग्य रचनाओं की दूरदर्शनपर अच्छी प्रस्तुति हो सकतीहै और उनके निर्माणके लिए स्वयं लेखकके अतिरिक्त और कौन अधिक उपयुक्त हो सकताहै।

उसके समग्र लेखनको सामने रखकर कहा जाये तो उसमें घटना दृष्टि, व्यक्ति विश्लेषण, परिणाम ग्राह्यता और व्यक्ति-सम्बन्ध विवेचन सभी कुछ है। व्यंग्यके साथ किस्सागोईभी उसकी विशेषता है। वे बौद्धिक अथवा बुद्धिविकासी व्यंग्य स्रष्टा न होकर भाव प्रवण किन्तु परिवेशके प्रति जागरूक सर्जक है। आज यदि व्यंग्यको एक पृथक् विधाके रूपमें स्वीकार करनेकी किन्हीं क्षेत्रोंमें मनःस्थिति है तो इसके लिए इस सुदूर-वासी लेखकको काफी श्रेय पहुंचताहै। संवेदनशील कथाकार और मर्मभेदी व्यंग्यकार दोनोंका सुन्दर सम्मिश्रण है यह लेखक।

प्रस्तुत संग्रहमें लेखककी ३३ रचनाएं हैं। उसके व्यंग्य विषय राजनीति, साहित्य, हाट बाजार, गली कूचा, अपना आसपास सभी कुछ है, कोई क्षेत्र विशेष नहीं। उसकी दृष्टि सर्वतोमुखी और चिन्ता सर्वापेक्षी है। व्यंग्य रचनाएं प्रायः दो प्रकारकी होतीहैं। अनुभूतिधर्मी और वाग्धर्मी। अनुभूतिधर्मी रचनाएं साहित्य

के क्षेत्रमें ससम्मान गृहीत होतीहैं और वाग्धर्मी व्यंग्य रचनाएंभी उन्हीं आजके कवि-सम्मेलनी तथाकथित कविताओं जैसी होतीहैं जो प्रायः प्रत्येक मंचसे चुटकुले, लतीफे या रंजक कथाओंके रूपमें सुननेको मिलतीहैं। जहांभी व्यंग्यकार दृष्ट अथवा श्रुत सामग्रीको ज्योंका त्यों व्यंग्यकी भाषा पहनाकर प्रस्तुत कर देताहै वह तुकबंदीकी तरल साहित्येतर व्यंग्यका रूप ले लेताहै और जहां वह उसे आत्मसात् करके संवेदनाके साथ रासायनिक क्रियाके फलस्वरूप इस रूपमें प्रस्तुत करती है जिसमें उस गृहीत सामग्रीका रूपही नहीं बदल गया होताहै बल्कि उसके घटकोंका स्वरूप अपने पूर्व रूपसे नितान्त भिन्न और अचीन्हा हो जाताहै। वही व्यंग्य-रचना साहित्यके क्षेत्रमें आ पातीहै।

राजनीति नहीं बल्कि दलनीति, सत्ता, नेतापण शोषित जन भ्रष्टाचार, छवि सुधारके हथकंडे, विवशता तथा गरीबीका मखौल, गांधीवादकी धज्जियां, सरकारी कर्मचारियोंके कार्यकलाप आदि विषय घोषीके व्यंग्य की सानके नीचे आयेहैं। सच कहा जाये तो घोषीही क्यों कोईभी व्यंग्यकार इन्हीं विषयोंको लेकर रचनाएं करताहै और कर रहेहैं पर शरद जोशी, के. पी. सक्सेना, सुदर्शन मजीठिया, और घोषीमें प्रत्येक दूसरे से अलग दिखायी पड़ताहै। घोषीका अपनाही ढंग और लहजा है; उसने स्वतन्त्रता-दिवसकी वर्षगांठपर तीन पुरानी प्रचारित लघु कथाओंको बदले हुए संदर्भमें प्रस्तुत करके विभिन्न पक्षोंके मूलमें निहित विकृतियों और विसंगतियोंको उजागर कियाहै। यही बात चमड़े और विसंगतियोंको उजागर कियाहै। यही बात चमड़े का सिक्का, नेताजीकी नाक पहली बरसातमें, जेबकी राजनीति, गोस्वामीजीका हुक्का, गांधीवादी गोस्वामी की कथा, अनशनपर बैठिए, नालीमें गिरी राजनीति आदि रचनाओंमें प्रकारांतरसे प्रकाशमें आयेहैं। घोषी की प्रतीक योजनाभी काफी स्वकीय है। इस धोतीसे बड़े-बड़े गुण, सिंग साहबके बारेमें, शांति काकके दाँत, चमड़ेका सिक्का, जानवर-जानवर भाई-भाई, गांधीवादी गोस्वामीका कथा आदि। प्रत्येकमें किसी-न-किसी सर्वापेक्षी प्रतीककी उद्भावना की गयीहै। ये प्रतीक किसी डमी अभिनेताका काम नहीं करते जो प्रधान अभिनेताके स्थानपर पिटता लड़ता रहताहै अपितु अपने अभिनेताके समानान्तर उसकी स्वामियों और खूबियोंको गिनाते हुए चलतेहैं।

नेताओं, सरकारी कर्मचारियों, जन प्रतिनिधियों

१. प्रका. : पंचशील प्रकाशन, जयपुर। पृष्ठ : १४४;

क्रा. ५६; मूल्य : ३०.०० रु.।

'प्रकर'—अप्रैल '६२—CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar



आदिसे सम्बन्धित धर्मविरोधी, अनैतिक तथा असा-  
माजिक प्रवृत्तियोंको भी चुन-चुनकर प्रस्तुत किया गया  
है, नेताजीने पूछा, छेड़छाड़ नियमावली, वेशर्मी तेराही  
सहारा, अरे वाह रे अनशनकारी, नालीमें गिरी राज-  
नीति, साहव लौट आओ आदि ऐसीही रचनाएं हैं।  
किसीको मरते दम तक बड़े नेताओंसे अपने सम्बन्ध  
जतानेकी ललक है, कोई विधायक जैसे दायित्वपूर्ण पद  
को पाकर चारित्रिक दृष्टिसे और अधिक गिर जाता  
है, कोई वाहवाही पानेके लिए तिड़ीवाजीका सहारा  
लेता है, एक नेता अनशनपर बैठ तो गया पर रातको  
होटलमें छिपकर डोसा खाने जा पहुंचता और पकड़  
जाता है, कोई नेता अपनी गलतीसे भले नालीमें फिसल  
पड़ा हो पर गालियां विपक्षको जरूर ही देता है, छोटे-  
मोटे नगरोंके नेता नगरपालिका जैसे दफ्तरको अपना  
घर समझते हैं, जब चाहा ताला लगाकर ताली जेबमें  
डालकर चल दिये, राजधानी तक हो आते हैं, किसी  
अफसरकी बदलीका हुकुम रुकवाना है तो ठेकेदार  
श्रीक केसमें नकदी भरता है और स्वयं वह ब्रीफकेस  
किसी ऊंचे अधिकारीको भेंट करके बदली रद्द होनेका  
पुर्बी हाथमें लिए हुए अफसरकी सेवा बजाता है इत्यादि।  
इन सबमें अनैतिकता और स्वाथं परताका ही स्वर  
प्रमुख है।

घोंघी कथात्मकताका भी सहारा लेते हैं, संग्रहकी  
बनेक रचनाएं इसी प्रवृत्तिपर टिकी हैं; चमड़ेका सिक्का,  
एक बीमार मुर्गेपर चिन्तन, मेरे तो गिरिधर गोपाल,  
पोस्टल रक्षा बंधन, गांधीवादी गोस्वामीकी कथा,  
साभिमानका संकट, धोबीका गधा, शांति काकाके दौरा  
आदि ऐसीही रचनाएं हैं जिनमें घोंघी कथा कहते-कहते  
व्यंग्य कर जाते हैं। सीलवाला पार्श्वद्वैत जैसी रचनाओंमें  
पार्श्वद्वैत का खाका खड़ा किया जाता है जिसमें घटनाओंकी  
उद्भावना है और इसीसे उसका व्यंग्य चित्र उभरता  
है।

लेकिन कथाके फेरमें घोंघी कहीं-कहीं अतिरंजना  
तक पहुंच जाते हैं। 'धोबीका गधा' में गधा आदमियों  
की ही भांति सोचता और जवाब देता है। ऐसीही  
रचना 'एक शेर, सरकारी' भी है। 'इस बन्दरके लिए,  
मेरे लेखकने ऐसे नेताजीकी मनोवृत्तिको उजागर किया  
है जो उन दिनों किसीभी पदपर नहीं है और मदारी

को बन्दर नचाते देखकर इसी प्रयत्नमें लग जाता है कि  
मदारीसे पीड़ित बन्दरोंकी ही संस्थाका अध्यक्ष बना  
जाये और इसी फेरमें अपना खादीका कुरता-पाजामा  
उसे दे देता है। ऐसे उदाहरण और भी हैं। संभव है  
व्यंग्य लेखक अतिरंजनाको अपना लेखकीय अधिकार  
मानते हों क्योंकि इसके बिना हास व्यंग्यकी उद्भावना  
संभवही नहीं है। लेकिन व्यंग्यका अतिरंजनासे उतना  
लेना-देना नहीं होता जितना स्थिति अथवा संवादके  
चुटीलेपनसे। अतिरंजना वास्तवमें हास्यका सृजन  
करती है जिसकी गुंजाइश घोंघीके लेखनमें नगण्य होनी  
चाहिये क्योंकि न तो हास्यसे व्यंग्यका दर्जा ऊंचा होता  
है और न लेखकका। तभी अतिरंजनाकी उपस्थिति  
उनके लेखनमें चौंकानेवाली बनती है।

रूमानियतके क्षेत्रमें व्यंग्यके सृजनमें लेखक सामान्य  
से ऊपर नहीं उठ पाया। 'सावनको आने दो' ऐसीही  
रचना है पर 'छेड़छाड़ नियमावली' रूमानियतसे थोड़ा  
भिन्न होनेके कारण सफल हो गयी है। संग्रहमें प्रथम  
जैसी और रचनाएं नहीं भी हैं। अन्तिम रचना  
'बधाइयोंके देशमें' व्यक्तिकी उस कमजोरीकी ओर  
संकेत करती है जिसके द्वारा वह किसीके दर्पको सहला-  
कर उसका मन जीत लेना चाहता है। इस गुणकी नेता  
जैसे आदमीके लिए काफी दरकार होती है। इस प्रकार  
कुल मिलाकर यह संकलन सामान्यसे थोड़ा ऊपर उठकर  
है। इसमें घोंघीकी रसात्मकताके साथ व्यंग्यकी प्रवृत्ति  
के अच्छे नमूने देखनेको मिलते हैं।

आज पाठक भाषामें एक तड़क अथवा नुकीलेपन  
की अपेक्षा करता है। घोंघीके व्यंग्य ऐसी भाषाके बिना  
ही चुटीले और गम्भीर हैं। कहा यही जा सकता है  
कि घोंघीने अबसे तीस पैंतीस साल पहले जो भाषा  
विरासतमें पायी थी उसका अच्छा उपयोग वे करते  
आ रहे हैं। एक जागरूक और मंजे हुए लेखकमें कला-  
सिकीका पुट आ जाना सहज सम्भाव्य है जो अनेक  
नवलेखकोंमें देखनेको भी नहीं मिल सकता, यद्यपि  
भाषा और अन्तर्दृष्टिके लिहाजसे वे रचनाएं अधिक  
जोरदार दिख सकती हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि  
घोंघीमें क्षयके लक्षण दिखते हैं। यही उनकी सामर्थ्य  
है कि वे इतने लम्बे समय तक सप्तकके सुरके साथ  
सुर मिला सके हैं। □



# कोश

## अम्बर हिन्दी शब्दकोश

सम्पादक : डॉ. राजेन्द्रमोहन भटनागर  
समीक्षक : विराज

यह शब्दकोश अच्छे कागजपर साफ सुथरा छपा है। इसके सम्पादक डॉ. राजेन्द्रमोहन भटनागरके नाटकों और उपन्यासोंपर विभिन्न विश्वविद्यालयोंमें शोध कार्य हुआ है और होमी रहा है। आपने अनेक नाटक और उपन्यास लिखे हैं, जो पर्याप्त चर्चित रहे हैं। आपने हिन्दी व्याकरण, हिन्दीका नवीन व्याकरण, हिन्दी शब्द विज्ञान आदि ग्रंथ भी हिन्दी जगत्को दिये हैं।

उपरिलिखित प्रकाशकीय परिचयसे स्पष्ट है कि डॉ. भटनागरमें बहुमुखी प्रतिभा है। परन्तु कोशका संकलन करनेके लिए बहुमुखी प्रतिभाकी अपेक्षा एक विशेष प्रकारका अध्ययन और परिश्रम करनेकी आवश्यकता होती है। फिर किसी भी भाषाके कोशका प्रकाशन एक बड़े उत्तरदायित्व और निष्ठाका काम है, क्योंकि कोशको प्रमाण ग्रन्थ माना जाता है। अन्य पुस्तकों में प्रूफकी त्रुटियां चल जाती हैं, परन्तु कोशमें वे अक्षम्य हैं। इस दृष्टिसे यह कोश शोचनीय है।

कोश संकलनमें करना क्या होता है? हिन्दी भाषा के अनेक कोश पहलेसे विद्यमान हैं। उनमें अक्षरानुक्रम से शब्द और उनके अर्थ दिये हुए हैं। केवल इतना करना होता है कि अपने कोशके अनुमानित आकारको और अपने विशिष्ट पाठक वर्गकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर उपयुक्ततम शब्दोंका और उनके अर्थों का चयन कर लें। इसके लिए पर्याप्त विवेक और उससे भी अधिक परिश्रमकी आवश्यकता होती है। इस

कोशके संकलनमें वह प्रयुक्त हुआ दिखायी नहीं पड़ता।

इस कोशके प्राक्कथनका पहला वाक्य है—‘हिन्दी फारसीका शब्द है’। यह अत्यन्त विचारोत्तेजक है—हिन्दी कोई भाषा है या नहीं? यदि है तो उसमें इस फारसी शब्द ‘हिन्दी’ के लिए क्या शब्द होगा?

डॉ. भटनागरका लक्ष्य विद्यालय-विश्वविद्यालयके विद्यार्थियों और अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के छात्रोंके लिए एक कोशका निर्माण करना रहा है। विश्वविद्यालयके छात्र और प्रौढ़ शिक्षाके छात्र किस प्रकार एकही कोशसे लाभान्वित हो सकेंगे, यह समझ पाना आसान नहीं है, क्योंकि दोनोंके स्तर एक दूसरेसे बहुत भिन्न हैं। यह तो ऐसा ही है, जैसे एक ऐसी झूल तैयार कर दी जाये, जो हाथी और खरगोश, दोनोंको ओढ़ाई जा सके।

‘वर्तनी-विचार’ में लेखकका कहना है कि ‘अन्य भाषाओंके कुछ शब्द हिन्दीमें ज्योंके त्यों नहीं लिखे जाते। जैसे पायजामा, ज़्यादाह, सिवाय आदिको हिन्दीमें पाजामा, ज्यादा, और सिवा बोला और लिखा जाता है, अतः उनका वही रूप हिन्दीमें “मानक” मानना सार्थक है। मैंने इस शब्द कोशमें ऐसा ही किया है।’ पढ़कर बहुत प्रसन्नता होती है। मेरी स्वयं बड़ी इच्छा है कि हिन्दीमें शब्दोंका मानकीकरण हो जाये—पायजामा, पाजामा, पजामा, तीन तीन रूप एकही शब्दके न चलें, दूकान-दुकान, पिछत्तर पिचत्तर इत्यादि। ठीक है बोलनेवालेकी जीभ नहीं पकड़ी जा सकती, परन्तु कहा जा सकता है कि मानक शब्द ‘दूकान’ है, बोलनेको कोई कैसाही बोले। इस मानकीकरणसे शब्दकोशका आकार काफी छोटा हो जायेगा। इसलिए उत्सुकतासे मैंने इस कोशमें ‘सिवा’ शब्द देखा। वहां पहले लिखा है—‘सिवा—(स्त्री.) अलावा। अतिरिक्त।’ इसके बाद अगले शब्दपर दृष्टि पड़ी—‘सिवाय—(क्रि. वि.) (अ.) अलावा। अतिरिक्त।’ इन संकेतों के अर्थके अनुसार ‘सिवा’ स्त्रीलिंग, संज्ञा शब्द है

१. प्रका. : अम्बर प्रकाशन, ८८८, ईस्ट पार्क रोड, करील बाग, नयी दिल्ली-११०००५। पृष्ठ : ३४६; डबल क्राउन; ६०; मूल्य : ६५.०० रु.।

प्रकर—अप्रैल १९२—२८



और 'सिवाय' क्रिया विशेषण है, जो अरबी मूलका है, और अर्थ दोनोंका एकही है। यह कैसा मानकीकरण है?

इस कोशके संकलन और मुद्रणपर यथेष्ट ध्यान नहीं किया गया। इसमें कितना दोष लेखक का है और कितना प्रूफरीडरका, यह आलोचक अपनी बेगपर बैठकर नहीं जान सकता। 'यदु' का अर्थ बताया गया है—(पुं.) (सं.) देवयानीके गर्भसे जन्मे ययाति। न तो विश्वविद्यालयके छात्र और न ही प्रौढ़ शिक्षाके छात्र इसका अर्थ समझ पायेंगे। 'यदु' ययाति के पुत्रोंमें से एक था। 'लवार' का अर्थ लिखा है—(वि.) बकरी, गधी, झूठा। यहाँ हम कल्पना कर सकते कि लेखकने 'गप्पी' लिखा होगा, जिसे प्रेसके भूतोंने 'गधी' कर दिया। परन्तु छात्र पाठकका क्या होगा?

'भोम' का अर्थ लिखा है—'मंगल गृह'। यदि शब्द-कोशमें ही 'ग्रह' को 'गृह' छापा जाये, फिर बचाव कहाँ होगा? 'विचकना'—(अ. क्रि.) विराना। चिढ़ाना। 'बढ़काना'। इसमें 'विराना' की जगह 'विराना' होना चाहिये। 'विचकना' अकर्मक क्रिया हो सकती है, परन्तु जो तीनों अर्थ दिये गये हैं, वे सकर्मक क्रियाएँ हैं और वे इस मूल शब्दके सही अर्थ नहीं हो सकते।

'गजानन'—(पुं.) (सं.) गणेश। गजानन।

गजानन पुल्लिङ्ग शब्द है, जो संस्कृत मूलका है और इसका अर्थ गणेश है, यहांतक तो सरल सुबोध मामला है। परन्तु इसका अर्थ 'गजानन' भी है, जो शब्दकोश की सहायताके बिना पता नहीं चलेगा, यह बात आसानीसे समझ आनेवाली नहीं।

कोशकारकी दृष्टिसे लेखककी क्षमता-अक्षमता कहीं छिपी न रह जाये, इसलिए कोशके अन्तमें ढाई पृष्ठमें शब्द-विज्ञान भी दे दिया गया है। इसमें बताया गया है कि उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर हिन्दीमें किस प्रकार नये शब्द बनाये जाते हैं। इनमें 'संज्ञा बनानेवाले तद्धित प्रत्यय' वाले अनुच्छेदमें पृष्ठ ३४५ पर लिखा है—'इमा—अणिसे अणिमा। अजि से अजिमा। लालसे लालिमा।' 'अणि' शब्द मेरा जाना पहचाना नहीं है, अतः मैंने उसे इसी कोशमें खोजना चाहा। पर वह शब्द इसमें नहीं मिला। तब मुझे अपने ज्ञानका सहारा लेकर यह मानना पड़ा कि 'अणिमा' शब्द 'अणु' शब्द से बना है और यह प्रत्यय हिन्दीका नहीं, संस्कृतका है, जो गरिमा, महिमा, लघिमा आदि शब्दोंमें भी है।

यह तो उन कच्चे चावलोंका नमूना है, जो परखने के लिए डाली कड़छीमें आ गये हैं। पूरा स्वाद तो वही पाठक जान पायेंगे, जो इस कोशको आद्योपान्त पढ़ेंगे।

□

## भाषा विज्ञान

प्रोक्त : स्वरूप, संरचना और शैली?

लेखिका : डॉ. इन्दु शीतांशु

समीक्षक : डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया

'प्रोक्त : स्वरूप, संरचना और शैली' शीर्षक

प्रका. : प्रतिभा प्रकाशन, ११/२२ टेंगोरनगर, होशियारपुर-१४६००१। पृष्ठ : १२४; डिमा. ८६; मूल्य : ५०.०० रु.।

पुस्तक प्रोक्तपर हिन्दीमें पहली पुस्तक है। इससे पूर्व इस विषयपर यत्र-तत्र आलेख तो प्रकाशित हुए हैं, जिनमें से समीक्षकके ही आलेख धारावाहिक रूपसे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटनाके मुखपत्र 'परिषद् पत्रिका' में प्रकाशित हुए। डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तवने सन् १९७६ ई. में प्रकाशित 'संरचनात्मक शैली विज्ञान' में इस विषयकी चर्चा की। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि यह पुस्तकभी उन्हींकी समर्पित की गयी है।

'प्रोक्त' के मूलमें प्रोक्त = प्र + वच् (कहना) +

'प्रकर'—वैशाख २०४६—२६



क्त = कथित, कहा हुआ, है। इसका प्रयोग अंग्रेजी शब्द 'डिस्कोस' के अर्थमें किया जाता है। क्रमसे वाक्योंके सन्दर्भमें 'अटरेन्स' का प्रयोग भी उसी अर्थमें किया जाता है, जो परस्पर किसी एक केंद्रीय भावसे जुड़े रहते हैं। यही 'वातचीत' है। 'उक्ति' (वच् + क्तिन्) ही अटरेन्स है। जिसका दो अर्थोंमें प्रयोग किया जा सकता है।

१. कही हुई बात या वचन / कथन

२. किसीकी कही हुई ऐसी अनोखी या महत्त्वकी बात जिसका कहीं उल्लेख किया जा सके।

यही जब सद्बिचारोंसे युक्त हो तो (सु + उक्ति) = सूक्ति हो जाती है जिसको प्रायः यत्र-तत्र उद्धृत किया जाता है।

इस प्रकार 'प्रोक्ति' के संदर्भगत दो कार्योंमें प्रयोग मिलते हैं :

प्रथम — वाक्यबंध

द्वितीय — कथन, वार्तालाप

अनेक वाक्य मिलकर सर्वांग रूपसे जब इकाई रूप में बन जाते हैं तो वह 'इकाई' ही 'वाक्यबंध' के रूप में 'प्रोक्ति' कहलाती है। वाक्य रचनाके ऊपरका स्तर वाक्यबंध है। इस प्रकार वाक्यसे बड़ी इकाई 'प्रोक्ति' है। वस्तुतः भारतीय साहित्यके सन्दर्भमें वाक्यसे दीर्घतर इकाई ही 'अनुच्छेद' है और काव्यमें छंद-पद, खंड-काव्य।

'प्रोक्ति' भाषाविज्ञान और शैलीविज्ञानका संधि-स्थलीय रूप है। शैलीविज्ञानमें वाक्योंके पारस्परिक सम्बन्ध/सम्बन्धोंका विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

सम्पूर्ण पुस्तक तीन खंडोंमें विभाजित की गयी है जिसके अंतमें निष्कर्ष दिया गया है। तीन खंड — स्वरूप, संरचना व शैली शार्पकसे ही स्पष्ट है। प्रथम खंड है, 'प्रोक्ति : स्वरूप विवेचन', सर्वाधिक विस्तृत है जिसे नौ उपखंडोंमें विभक्त किया गया है — स्वरूप विवेचन, अर्थस्पष्टीकरण, पाठ और प्रोक्ति, प्रोक्ति : सामान्य और साहित्यिक, परिभाषांकन, स्वरूप-निरूपण, अनुभाग-रेखांकन, प्रकार-विवेचन, कथात्मक प्रोक्ति। जैसा स्पष्ट किया जा चुका है 'प्रोक्ति' जहां एक ओर संदर्भ-विशेषमें ताकिक अनुक्रममें 'संलग्न वाक्योंका समुच्चय' है वहां दूसरी ओर इसका अर्थ 'वार्तालाप' भी है। पहली बार पाठ और प्रोक्तिका स्पष्ट अंतर दिखलाया गया है। 'पाठ' वह है जो भाषा-पद्धतिकी

'प्रकार' — अर्धल १२ — ३९

समग्र रूपमें अथवा साहित्यके विशेष प्रभागके रूपमें व्याहृत भाषाको विवेचित करता है, पर 'प्रोक्ति' वह है जिसमें भाषिक तत्त्व साम्प्रैणिक प्रभावके रूपमें प्रकाश करते हैं।' (पृ. १०)। परिभाषांकनमें ट्रिम, सपोटा, कार्टर, लीच, फाउलर, मीथन एडवर्ड्सके साथ गोस्वामी, भाटिया, श्रीवास्तव, शीतांशु और ओम्प्रकाश द्वारा दी गयी परिभाषाएं दी गयी हैं। इन परिभाषाओंके आधार पर प्रोक्तिका 'स्वरूप' स्पष्ट किया गया है : 'ऐसे वाक्यों का समुच्चय है जो परस्पर अन्तर्ग्रथित और अन्तस्सम्बद्ध होते हैं।' अनुभाग रेखांकनमें लागेकर-लेविनमन, सिक्लेयर-कुल्लहांडके विचारोंको बड़े विस्तारसे स्पष्ट किया गया है। जहां उदाहरण दिये गये हैं वहां वात आसानीसे स्पष्ट हो जाती है, जैसे प्रवेशक तथा वेच्छक १.७.१.२ में जिसे अग्रचरणकी संज्ञा दी गयी है, वही अग्रप्रस्तुति है जिसका आगे स्पष्टीकरण (पृ. ८७-९०) किया गया है। इसे ही अग्रगामिता या पेशबंदी भी कहा गया है। व्यर्थमें एक ओर शब्द बढ़ानेसे जटिलता ही बढ़ती है। पृ. १७ पर जो समापक (पृ. १२४ भी) वही पृष्ठ १९ पर समापन दिया गया है। उक्ति बनाम 'विनिमय'को बर्टनके अनुसार दो रूपों—सुस्पष्ट सीमा तथा वार्तालापी में दिया गया है। पहली बार 'प्रगमन' (मूव) को बड़े विस्तारसे दिया गया है। 'प्रगमन' को सटीक उदाहरणोंसे स्पष्ट किया गया है पर उसके साथ प्रकारके भी समुचित उदाहरण जुटाने आवश्यक थे। इसी प्रकार 'प्रोक्ति : प्रकार विवेचन'को 'प्राचल', 'वार्तालाप', 'प्रयुक्ति', 'प्रकार्य', आधारित बताया गया है पर उदाहरणोंके अभावमें 'प्राचल' से तात्पर्य स्पष्ट नहीं हो पाता। मात्र भेद-उपभेद (पृ. २७-२९) देनेसे बात स्पष्ट नहीं होती। 'वार्तालाप' उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया गया है। 'प्रयुक्ति निर्धारक' का विवेचन पर्याप्त स्पष्ट तथा सारगर्भित है। कुछ शब्द अवश्य स्पष्ट नहीं हो पाये जैसे पृष्ठ ३४ पर 'पृष्ठ पट'। संयोगसे हिन्दी-अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली में भी इसे नहीं दिया गया है। इसी प्रकार 'प्रकार्य' के अंतर्गत मेलिनोव्स्की, काल बुहलर, मुकारोव्स्की, मातिने, रोमन यांकोव्सन, हैर्लांडके विचारोंको दिया गया है।

मात्र हैलीडे द्वारा निर्दिष्ट भाषिक प्रकार्यपर आधारित 'प्रोक्ति' को — विचारात्मक, अन्तर्वैयक्तिक, पाठात्मक और पुनः क्रमशः उपविभाग — आनुभूतिक



तार्किक, वाचिक, वक्ता-श्रोता; सूचनात्मक-कथ्यात्मक। मात्र अनुभूतिके चौदह उपप्रकार, वाचिकके सात उपप्रकार तथा सनोवृत्तिके चार उपप्रकार दिये गये हैं। इस प्रकार मात्र एक व्यक्तिके सिद्धांतोंका ही इतना अधिक विस्तार है कि पृथक्से 'अध्याय' की आवश्यकता है। आशा है, भविष्यमें डॉ. इन्दुजी इसका समुचित विस्तार प्रस्तुत करेंगी। इसके बाद कथात्मक प्रोक्तिपर विस्तृत चर्चा है।

द्वितीय भागमें 'प्रोक्ति : संरचना-विवेचन' दो स्तरोंमें किया गया है :

१. बाह्य संरचना और गहन संरचना

२. विशद संरचना

बाह्य संरचनाका विवेचन चार प्रमुख विचारकों—मिलिक, लांगेकर-लेविनशन, हैलीडे, ऐंक्विस्ट—के विचारोंपर आधारित है (पृ. ५०-५८) जबकि गहन संरचना वानडिन्क, रोजर फाउलर तथा रवीन्द्र-नाथ श्रीवास्तवके विचारोंपर। पृ. ६३ से प्रारंभ विशद संरचनाको पृ. ४६ के अनुसार २.२. होना था। विशद के बाद पुनः पृ. ६५ पर 'गहन संरचना' प्रारंभ हो गये हैं। इस अध्यायमें 'दृष्टिकोण' पर किया गया विवेचन इतना उच्चस्तरीय है कि इस आधारपर ही शोधकार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। 'मैं' प्रतिमाके चार प्रकार (पृ. ७१-७२) स्पष्ट किये गये हैं। इसके अंतर्गत ही आगे चलकर डॉ. श्रीवास्तव द्वारा प्रस्तुत 'दृश्य वक्ष' और 'दृष्टि अक्ष' को सोदाहरण स्पष्ट किया गया है। डॉ. श्रीवास्तवके अनुसार वाक्यके प्रकार स्पष्ट करते हैं कि ये "ज्ञात-अज्ञात रूपसे उसके (वक्ता) मनकी वृत्तियां उसके चुनावके कारणपर प्रकाश डालती हैं।"

तृतीय भागमें 'शैलीपरक अभिलक्षणोंको प्रोक्ति के संदर्भमें स्पष्ट किया गया है। इन अभिलक्षणोंको दो वर्गोंमें विभाजित किया गया है :

शैलीचिह्नक

अग्रप्रस्तुति

डॉ. कृष्णकुमार शमनि शैली चिह्नकपर बल दिया है तो डॉ. शीतांशुने अग्रप्रस्तुतिपर। अग्रप्रस्तुतिके अन्तर्गत विचित्र विचलन, समांतरता, विपथन तथा विरलतापर विचार किया गया है। 'विचलन' के विवेचनमें डॉ. विद्यानिवास मिश्रके 'रीतिविज्ञान' से काव्यभाषाका गठन और साभिप्राय विचलन' और

विपथन' के विवेचनमें डॉ. शीतांशुकी पुस्तक 'शैली-विज्ञान : प्रतिमान और विश्लेषण' से सामग्री संक्षेपमें प्रस्तुत की गयी है।

समान्तरतामें जहाँ विशेष भाषिक एकककी बहुलता देखी जाती है, वहाँ विरलतामें भाषिक एकककी विरलता देखी जाती है। इन दोनोंको प्रतिपाद्य और उन्मीलककी संकल्पनाओंसे जोड़ा जाता है। 'विरलता' को रेखीय रूपमें इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :

विरलता =

— अव्याकरणिकता

— अस्वीकार्यता

— समांतरता

+ लेखकीय विरलता

+ प्रायिक प्रत्याशा

+ गहन संरचना

विचलन, विपथन, समांतरताको उदाहरणोंसे स्पष्ट किया गया है। साकल्यपरक समंजसतामूलक समान्तरता को बेनीपुरी रचित 'अम्बपाली' के उदाहरणोंसे प्रकाशित किया गया है।

निष्कर्ष रूपमें 'प्रोक्ति : विश्लेषण-प्रक्रियांकन' अध्याय प्रस्तुत किया गया है जिसके अंतर्गत 'घटक स्पष्टीकरण' तथा 'प्रक्रिया स्पष्टीकरण' (सामान्य तथा साहित्यिक) हैं। इसी अध्यायमें 'अनुप्रयुक्त प्रोक्ति' को भी स्पष्ट किया गया है। पाठ और प्रोक्तिके बीच बनावट (टेक्सचर) और बुनावट (स्ट्रक्चर) की बात आती है विश्लेषणकी तीन प्रविधियों—प्रकार आधारित, संरचना आधारित तथा शैली लाक्षणिक—को स्पष्ट किया गया है।

फलैपपर दिये गये इस कथनसे मैं सहमत हूँ कि "भाषा-विज्ञान और भाषिक माध्यमसे साहित्यका अनुशीलन करनेवाले अध्येताओंके लिए हिन्दीमें पहली बार यह पुस्तक इतनी बहुआयामी, संहनित, तर्कपुष्ट, प्रामाणिक एवं सुविवेचित सामग्री प्रदान करती है।"

'संदर्भिका' में इस शास्त्रकी सभी सम्बद्ध पुस्तकों का उल्लेख किया गया है। दो शब्द 'पारिभाषिक शब्दावली' पर भी कहना चाहता हूँ। लेखिकाने हिन्दी-अंग्रेजी पारिभाषिक' शीर्षकसे (पृ. ११६-१२४) शब्दावली देकर बड़ा उपकार किया है अन्यथा अनेक प्रत्यय स्पष्ट नहीं हो पाते। कुछ शब्द छूट भी गये हैं, जैसे उत्तारकीय, वित्तिमय, श्रेणीमाप, संलापात्मक आदि।



कुछ शब्द काफी अटपटे तथा क्लिष्ट हैं, जैसे, व्यवच्छेदक, आद्यात्मक-एकात्मक, कुछ सरल होते हुए अस्पष्ट जैसे, प्राचल, दिशाधारित। अनेक शब्दोंके गठनमें लेखिकाका योगदान भी सराहनीय है, जैसे,

उपसर्ग 'अधि-' का प्रयोग पहलेसे निम्न दिशाओंमें होता है :

- ऊँचा, ऊपर; अधिराज, अधिकर, अधिदेवता
- प्रधान ; अधिनायक, अधिपति
- अधिक ; अधिमास
- संबंध ; आध्यात्मिक
- माध्यमसे ; अधिप्रचार, अधिक

'अधिकारवाची' दिशामें 'अधि-' का प्रयोग राज-भाषाके क्षेत्रमें होने लगा है, जैसे अधिक्षेत्र, अधिपत्र, अधिग्रहण। इस पुस्तकके माध्यमसे विदुषी लेखिका द्वारा 'meta' beyond, higher order, sense of change of position or condition के लिए

'अधि-' का प्रयोग किया जाने लगा, जैसे,

अधिवयान—metastatement

अधिभाषात्मक—metalinguistic

अधिनिवेशी-स्तर—metadiegetic level

इस प्रकार पारिभाषिक-शब्दावली की दिशामें भी इस पुस्तकका महत्त्व है।

आशा है, भविष्यमें लेखिका द्वारा शीघ्रही 'महा-वाक्य एवं प्रोक्ति' पर भी शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा।

'पाठ' और 'प्रोक्ति' की दिशामें कार्यरत शोध-थियोंके लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी साथमें जिज्ञासु अध्येताओंको भी रुचिकर लगेगी। सामान्यतः शास्त्रीय पुस्तकोंके लिए प्रकाशक नहीं मिलते हैं अतः एव 'प्रतिभा प्रकाशन'को भी बधाइयाँ देना चाहता हूँ।

□

## तुलनात्मक अध्ययन

# हिन्दी और गुजरातीकी रंजक क्रियाएँ

—डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय

हिन्दी-गुजराती दोनों संस्कृत प्रसूता होनेसे भगिनी भाषाएँ हैं। इनमें रूप, रचना या संरचना तथा प्रयोगादि दृष्टिसे समानता दृष्टिगोचर होती है। इनकी धातुएँ जिनसे क्रिया निष्पन्न होती है अधिकतर समान हैं। गुजरातीमें हिन्दीकी अपेक्षा धातुओंकी संख्या अधिक है। धातुमे क्रिया बनते समय दोनों भाषाओंकी क्रियायुक्त संज्ञाएँ (हि. "ना", गुज. "वु") भिन्न होनेके कारण सामान्य क्रियामें भिन्नता दिखायी देती है, जैसे—

हिन्दी

जा+ना = जाना

खा+ना = खाना

गुजराती

जा+वु = जावु

खा+वु = खावु

पढ़+ना = पढ़ना

उठ+ना = उठना

बैठ+ना = बैठना

भण+वु = भणवु

वांच+वु = वांचवु

उठ+वु = उठवु

बैठ+वु = बैठवु

बैस+वु = बैसवु

क्रियाके जितने प्रकार या वर्ग हिन्दीमें हैं उतनेही गुजरातीमें भी हैं, भलेही उनका नामकरण हिन्दीकी भाँति स्वतंत्र रूपसे न किया गया हो। उन्हींमें से रंजक क्रिया एक है, जिसकी चर्चा कीजा रही है।

हिन्दी-गुजराती दोनों भाषाओंमें रंजक क्रियाएँ मुख्य क्रियाके ही अर्थको रंजित, सीमित या विस्तृत करती हैं। मुख्य क्रियाके साथ प्रयुक्त होनेपर ये क्रियाएँ



अपने स्वतंत्र कोशीय अर्थको व्यक्त नहीं करती बल्कि उसीके अर्थको रंजित करती हैं। ये (रंजक) क्रियाएं जब स्वतंत्र रूपसे प्रयुक्त होती हैं तब अपना कोशीय अर्थ व्यक्त करती हैं। ये क्रियाएं सहायक क्रियाका भी कार्य करती हैं इसलिए इन्हें सहायक क्रिया भी कहते हैं। इसे और भी अधिक स्पष्ट करें तो हिन्दीमें संयुक्त-क्रियामें प्रयुक्त दूसरी क्रिया तथा गुजरातीमें आख्या-तिक क्रियामें प्रयुक्त दूसरी क्रिया रंजक क्रिया कहलाती है।

हिन्दीमें रंजक क्रियाके साथ प्रयुक्त होनेवाली मुख्य क्रिया धातु या क्रिया प्रातिपादिक रूपमें होती है जैसे—आ जाना, रो पड़ना, गिर पड़ना, मर जाना आदि। जबकि गुजरातीमें रंजक क्रियापदके पूर्व आने वाला क्रियापद भूत कृदन्ती रूपमें होता है, जैसे—आपी जवुं, रडो पडवुं, पडी जवुं, मरी जवुं आदि।

यहां दोनों भाषाओंमें (हिन्दी—जाना, पड़ना, तथा गुज.—जवुं, पडवुं) रंजक क्रियाके अर्थका लोप हो गया है।

हिन्दी-गुजराती दोनों भाषाओंमें प्रयुक्त सभी रंजक क्रियाएं सभी कोशीय क्रियाओंके साथ प्रयुक्त नहीं होती। कुछ कोशीय क्रियाएं अपेक्षाकृत अधिक रंजक क्रियाओंके साथ प्रयुक्त होती हैं और कुछका प्रयोग मात्र एक-दो क्रियाओंके साथ ही होता है, जैसे—“खाना” के साथ “जाना”, “लेना”, “देना”, “डालना” रंजक क्रियाओंका प्रयोग संभव है (खा जाना, खा लेना, खाने देना, खा डालना)। परन्तु “टूटना” क्रियाके साथ “जाना”, “पड़ना” प्रयोगही संभव है (टूट जाना, टूट पड़ना) अन्य रंजक क्रियाओंका नहीं। इसीप्रकार गुजरातीमें “खावुं”/“जमवुं” क्रियाके साथ “जावुं”, “लेवुं”, “देवुं”, “नाखवुं” रंजक क्रियाओंका प्रयोग होता है। जैसे—खई जवुं, जमी जवुं लेवुं, खई लेवुं जमी लेवुं, खई नाखवुं आदि। परन्तु “टूटवुं”/“तोडवुं” क्रियाके साथ “जवुं”, “पडवुं”, “लेवुं” का प्रयोग होता है। जैसे टूटी जवुं, टूटी पडवुं, तोड़ी लेवुं आदि। अन्य रंजक क्रियाओंका नहीं।

इनमें प्रयोगकी दृष्टिसे जहां समानता है वहीं अर्थ की दृष्टिसे भी समानताके साथ कुछ भिन्नता भी दिखायी देती है। हिन्दीमें “खा जाना” समाप्ति सूचक है और “खा लेना” इच्छा सूचक। “टूट जाना” किसी चीज-वस्तुके टूटनेका अर्थ व्यक्त कर रहा है जब

कि “टूट पड़ना” किसीपर आक्रमण करनेका अर्थ व्यक्त कर रहा है। जबकि गुजरातीमें “खई जवुं” समाप्ति सूचक है किन्तु “जमी जवुं” में “खा करके जाने” का अर्थ स्पष्ट है। “टूटी जवुं” तथा “टूटी पडवुं” में हिन्दीके समानही “टूट जाने” तथा “टूट पड़ने” का अर्थ प्रस्फुटित हो रहा है।

सकर्मक रंजक क्रियाएं (हिन्दी—लेना, देना, डालना, छोड़ना, मारना तथा गुजराती—लेवुं/आपवुं/देवुं, नाखवुं, छोड़वुं, मारवुं) सामान्यतः सकर्मक क्रियाओंके साथही प्रयुक्त होती हैं तथा अकर्मक रंजक क्रियाएं (हिन्दी—जाना, आना, पड़ना, उठना, बैठना, निकलना, मरना और गुजराती—जावुं, आवुं, पडवुं, उठवुं, बेसवुं, निकलवुं, मरवुं) अकर्मक क्रियाओंके साथ आती हैं। इनमें से कुछ रंजक क्रियाएं संदर्भानुसार सकर्मक तथा अकर्मक दोनों प्रकारकी कोशीय क्रियाओंके साथ प्रयुक्त हो सकती हैं, जैसे—

#### हिन्दी—

जाना—आ जाना	(अकर्मक+अकर्मक)
पी—पी जाना	(सकर्मक+अकर्मक)
बैठना—उठ बैठना	(अकर्मक+अकर्मक)
कर बैठना	(सकर्मक+अकर्मक)
देना—फेंक देना	(सकर्मक+सकर्मक)
चल देना	(अकर्मक+सकर्मक)
लेना—ले लेना	(सकर्मक+सकर्मक)
सो लेना	(अकर्मक+सकर्मक)
सो जाना	(अकर्मक+अकर्मक)

#### गुजराती—

जावुं—आवी जावुं	(अकर्मक+अकर्मक)
पी जावुं	(सकर्मक+अकर्मक)
बैठवुं/बेसवुं—उठी बेस	(अकर्मक+अकर्मक)
करी बेस	(सकर्मक+अकर्मक)
देवुं—फेंकी देवुं	(सकर्मक+सकर्मक)
चाली देवुं	(अकर्मक+सकर्मक)
लेवुं—लई लेवुं	(सकर्मक+सकर्मक)
सुइ/ऊंधी लेवुं	(अकर्मक+सकर्मक)
सुइ/ऊंधी जावुं	(अकर्मक+अकर्मक)

इनमें हिन्दी—लेना, देना, बैठना, डालना और छोड़ना तथा गुजराती—लेवुं, देवुं, बैठवुं/बेसवुं, नाखवुं और छोड़वुं रंजक क्रियाएं सामान्यतः ऐसे कार्य व्यापारों को सूचित करनेवाली क्रियाओंके साथ प्रयुक्त होती हैं



जिसपर सक्रिय कर्तिका नियन्त्रण हो। इनमें हिन्दी—  
“लेना” गुज. “लेंवु” रंजक क्रियाएं केवल ऐसे कार्य  
व्यापारके साथ सहज रूपसे प्रयुक्त होती हैं जिसका  
लाभ अनिवार्यतः या संदर्भानुसार कर्ताको प्राप्त हो,  
जैसे—

“खा लेना, रख लेना, पढ़ लेना, पी लेना, सुन  
लेना; गुजराती—खई/जमी लेवुं, पेहरी लेवुं, पीलेवुं,  
सांभणी लेवुं (अनिवार्यतः)।

कर लेना, रख लेना; गुजराती—करी लेवुं, मुकी/  
राखी लेवुं, भणी-लेवुं (संदर्भानुसार)।

हिन्दी ‘देना’ गुजराती ‘देवु’ रंजक क्रियाका सह-  
प्रयोग केवल उन क्रियाओंके साथ सहज रूपसे होता है  
जिनका लाभ अनिवार्यतः या संदर्भानुसार कर्ताको नहीं  
बल्कि किसी अन्य व्यक्तिको प्राप्त हो, जैसे : हिन्दी—  
छोड़ देना, सौंप देना, बेंच देना; गुजराती—छोड़ी देवु,  
सोंपी देवु, बेची देवु (अनिवार्यतः)। हिन्दी—पढ़ देना,  
रख देना, लिख देना, कर देना, गुजराती—वांची देवु,  
मुकी/ राखी देवु, लखी देवु, करी देवु/ करी आपवुं  
(संदर्भानुसार)।

हिन्दीमें ‘देना’ क्रियाके संदर्भमें गुजरातीमें ‘आपवुं’  
और ‘देवु’ दो क्रियाएं प्रयुक्त होती हैं।

प्रेरणार्थक क्रियाओंके साथभी हिन्दी ‘देना’ तथा  
गुजराती ‘आपवुं’/ ‘देवु’ रंजक क्रियाका सहज रूपसे  
प्रयोग होता है, जैसे : हि.—पिटवा देना, पहुंचा देना,  
लोटा देना, बिकवा देना, पिलवा देना,  
गुज.—पहोचाणी देवुं, पिटवावी आपवुं/देवुं, पाछो  
आपवुं, बेचार्णा देवुं/ आपवुं, पिवडावी आपवुं/ देवुं  
आदि। यद्यपि संदर्भानुसार कार्य व्यापारकी प्रकृतिके  
अनुसार हि.—करवा लेना, रखवा लेना, पढ़वा लेना,  
तथा गुज.—करवावी लेवु, राखवी लेवुं/, मुकावी लेवुं,  
वंचावी लेवुं, उठवावी लेवुं आदि प्रयोग भी सरलतासे  
किये जाते हैं।

हिन्दी—‘डालना’ तथा गुजराती—‘नाखवुं’ रंजक  
क्रियाका प्रयोग उग्रता-सूचक क्रियाके साथ (हि.—मार  
डालना, फाड़ डालना, काट डालना, जला डालना,  
उखाड़ डालना; गुजराती—मारी नाखवुं, फाडी  
नाखवुं, कापी नाखवुं, ऊंखाड़ी नाखवुं) तथा हिन्दी—  
‘निकलना’; गुजराती—‘निकलवुं’ का गतिसूचक क्रियाओं  
के साथ प्रयोग होता है।

हिन्दी-गुजराती रंजक क्रियाओंके प्रकारात्मक,  
पक्षात्मक तथा अभिवृत्तिक मूल्योंका संक्षिप्त  
वर्गीकरण—

रंजक क्रिया	प्रयोग	मूल्य		
		प्रकारात्मक दूरी	पक्षात्मक कार्य संपन्नता	अभिवृत्तिक

१. हि. जाना—राम चला गया।

पानी निकल गया।

चोर भाग गया।

लोग आ गये।

(पहुंच-बैठ—)

बिल्ली सारा दूध पी गयी।

(खा-, निकल-, कह-, उगल-)

सोहन पुस्तक भूल गया।

(ऊब-, मुकर-, गायब हो-)

गुज. जावुं—

राम चाली गयो/जतो रह्यो

पानी निकली गयो।

चोर भागी गयो/ नासी छूट्यो।

लोको आवी गया।

शीघ्रता

कार्य संपन्नता

असहमति



तथा  
रूपसे  
देना,  
देना,  
पाछो  
देव  
तकिके  
लेना,  
लेवुं,  
ततासे

(पहोची—, बेसी-)  
बिलाड़ी बधा दूध पी गयी ।  
(खाई-; निकली-, कही-, ओगळी  
/उगळी-)

सोहन चोपडी भूली गयी ।  
(ऊबी-, मोकरी-, गायब थयी-)

२. हि. आना— बादल घिर आये हैं ।  
उसकी आँखोंमें आंसू भर आये ।  
सुबह होने आयी ।  
(छलक-, याद हो-)

सामीप्य आगम भावुकता

गुज. आवुं— बादल घेराया छे ।  
ऐनी आँखों मां आंसू भरी आव्या ।  
सवार थवा आवी ।  
(छलकी-, याद-)

सामीप्य आगम भावुकता

३. हि. लेना— उन्होंने खाना खा लिया ।  
(पी-, सुन-, पहन-)  
नौकरने पैसे रख लिये ।  
(कर-, पढ़-)  
मैं थोड़ी पी लेताहूँ ।  
(सो-, टहल-)

अंतग्रहण कार्य संपन्नता —

स्वलाभ कार्य संपन्नता —

सीमित उपलब्धि — मर्यादा

अपूर्ण अमता — अपूर्ण श्रेय

गुज. लेवुं—  
(लिख-, बोल-, गा-, बजा-)  
ऐणे खवानुं खई लीधुं/ जमी लीधुं ।  
(पी-, सांभणी-, पहेरी-)  
नौकरए पैसो मुकी लीधो ।  
(करी-, भणी-)  
हूँ थोडोक पी लवुं छुं ।  
(ऊंधी-, फरी-)  
राम उर्दू वांची लेय ।  
(लिखी-, भणी-, बोली-, गावी-,  
बजावी-)

४. हि. देना— रमेशने मकान बेंच दिया ।  
(सौंप-, फेंक-, छोड़-, खो-,)  
नौकरने पैसे रख दिए ।  
(पढ़-, कर-, धो-)  
मोहन हंस दिया ।  
(रो-, मुस्करा-, चल-, छीक-)

पार्थक्य, कार्य संपन्नता —  
अन्य लाभग्राही  
अन्य लाभग्राही

प्रतिक्रिया — विकल्पहीनता

‘प्रकर’—वैशाख २०४६—३५ ।



गु. देव— रमेश ऐ मकान बेची दीधुं ।  
(सोंपी-, फेंकी-, छोड़ी-, खोई-)  
नोकर ए पैसो मुकी दीधो ।  
(भणी-, वांची-, करी-, धोई-)  
मोहन ए हंसी दीधो ।  
(रडी-, रोई-, चाली-, छोंकी-)

५. हि. डालना— उसने सभी पेड़ काट डाले ।  
पुलिसने चोरको मार डाला ।  
कुत्तेने कपड़े को फाड़ डाला ।  
गुज. नाखवुं— तेणे बघा झाड़ कापी नाखयो ।  
पोलीस ए चोर ने मारी नाखयो ।  
कूतरा ए कापड़ ने फाड़ी नाखयो ।

जल्दीवाजी      कार्य संपन्नता      उग्रता

हिन्दी तथा गुजराती रंजक क्रियाओंमें नकारा-  
त्मकताका अभाव :—

हिन्दी और गुजरातीमें रंजक क्रियाएं सामान्य  
नकारात्मक वाक्योंमें तथा ऐसे वाक्योंमें जहां “कार्य  
संपन्नता” संदिग्ध या सापेक्षिक हो, नहीं प्रयुक्त  
होती । जैसे—

हिन्दी— मैंने काम कर लिया । (नहीं कर लिया)

राम पुस्तक लाना भूल जायेगा । (नहीं भूल  
जायेगा)

गुजराती— मे काम करी लीधुं । (नथी करी लीधुं)

राम चोपडी लावानो भुली जशे ।  
(नथी भुली जशे)

(सामान्य नकारात्मक प्रयोग)

हिन्दी— मैंने पैसा ढूँढा (ढूँढ लिया) लेकिन नहीं  
मिला । उन्होंने खाना खाया (खा लिया)  
लेकिन वे पूरा नहीं खा सके ।

गुजराती— मे पैसो शोधियुं (शोधि लीधुं) खोरियु  
पण नथी मण्युं । तेणे खवानो खाधुं (खई  
लीधुं) पण पूरो नथी खाई सक्यो ।

उपयुक्त वाक्योंमें रंजक क्रियाओंके साथ नकारा-  
त्मक प्रयोग नहीं किया जा सकता । और यदि करते हैं  
तो रंजक क्रियाके स्थानपर किसी दूसरी क्रियाका प्रयोग  
हो जाता है, अर्थात् रंजक क्रियाके साथ दोनों भाषाओं  
में नकारात्मक प्रयोग नहीं हो सकता ।

हिन्दी तथा गुजराती भाषाओंमें नकारात्मक परिवेश  
में रंजक क्रियाओंके प्रयोगके दो अपवाद हैं—

‘प्रकर’—अप्रैल १९२—३६

१—अप्रत्यक्ष आज्ञार्थक—

हिन्दीमें “ना”, “इएगा” के साथ ऐसे वाक्योंमें  
‘मत’ या ‘न’ का प्रयोग प्रायः संयुक्त क्रियाके दोनों  
घटकोंके बीच या पूर्व होता है जबकि गुजरातीमें  
संयुक्त क्रियाओंके दोनों घटकोंके बीच या पूर्व ‘न’,  
‘नहीं’ ‘नथी’ का प्रयोग होता है, जैसे—

हिन्दी— पुस्तक खो मत देना ।

बीचसे न / मत चले जाना (सभाके बीच  
में मत चले जाना) ।

मुझे भूल न जाइएगा ।

मुझे न भूल जाइएगा ।

गुजराती— चोपडी खोवादी न देता ।

बच्चे थो न चाली जाता । (सभा नी बच्चे  
न चाली जता)

मने भूली न जईश ।

मने न भूली जईश ।

२. हिन्दी ‘कहीं’, “जब तक न”, “क्यों नहीं”, “अगर  
..... न लिया” तथा दुहरी नकारात्मकता आदिसे  
युक्त वाक्य । ऐसेही गुजरातीमें “कदाच” “ज्यार सुधी  
न”, “केम नहीं” आदिसे युक्त वाक्य इस प्रकार हैं—

हिन्दी— कहीं वे हमें देख न लें, तुम क्यों नहीं सो  
जाते ?

जबतक पुलिस न आ जाये, तबतक हम

यहांसे नहीं हटेंगे ।



गुजराती—कदाच ते मने जोई न ले, तमे केम नथी सुई जता ?

ज्यां सुदी पोलीस न आवी जाय त्यां सुदी अमे अहीया थी नहि हटिए/जईए ।

उपर्युक्त हिन्दी तथा गुजराती दोनों भाषाओंके वाक्य रचना तथा अर्थकी दृष्टिसे अधिकांशतः समान हैं। संयुक्त क्रियाओंमें नकारात्मकताका अभाव एक वांगत लक्षण ही कहा जा सकता है। इसके विपरीत यौगिक क्रियाओंमें यह लक्षण नहीं मिलता, जैसे :  
हिन्दी— वे अपनी पुस्तक नहीं ले गये ।

अभीतक उन्होंने कुछ नहीं लिख भेजा ।

गुजराती—तेओ पोतानी चोपडी नथी लई गया ।

अत्यार सुदी तेओ ए कशुं नथी लखी मोकल्या ।

जैसाकि सर्वाविदित है यौगिक क्रियापदके मध्य हिन्दीमें 'कर' प्रत्यय तथा गुजरातीमें 'ने' प्रत्यय लगता है। ऊपरके उदाहरणोंमें 'ले गये', 'लेकर गये', 'लिख भेजा', 'लिखकर भेजा', तथा गुजरातीमें 'लई गया', 'लई ने—गया', 'लखी मोकल्या', 'लखी ने मोक्या' आदि क्रियापद बनते हैं। इन क्रियापदोंमें जब 'कर' तथा 'ने' प्रत्यय जुड़ता है तब नकारात्मक शब्द यौगिक क्रियाके मध्य प्रयुक्त होता है। □

## भाषा-लिपि

### देवनागरी?

लेखक : देवीशंकर द्विवेदी

समीक्षक : पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'

'देवनागरी' डॉ. देवीशंकर द्विवेदीकी देवनागरी लिपि सम्बन्धी ज्ञानवर्धक पुस्तक है। इसमें लेखकके 'देवनागरी और हिन्दी', 'देवनागरी : एक पुनर्दृष्टि', 'देवनागरी लेखन' और 'देवनागरी लिपिमें हिन्दी वर्तनीकी अशुद्धियां' शीर्षक चार आलेख संकलित हैं। इनमें पहले तीन आलेख जहां देवनागरीके सिद्धान्त पक्षसे सम्बद्ध हैं वहां चौथा आलेख व्यवहार पक्षसे सम्बद्ध है।

हिन्दीमें देवनागरी लिपिपर एक दर्जनसे अधिक परिगणनीय पुस्तकें प्रकाशित हैं। पर इन पुस्तकोंमें मौलिकता कम और चवित-चर्वण ही अधिक है। प्रस्तुत पुस्तककी बड़ी विशेषता इसका आद्योपान्त मौलिक

१. प्रका. : प्रशान्त प्रकाशन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र । पृष्ठ : ५०; डिमा. ६०; मूल्य : ३०.०० रु.।

होना है। चिन्तनमूलकता और विश्लेषणपरकता इसकी दूसरी विशेषता है। कहना होगा कि इस छोटी-सी पुस्तकमें देवनागरीसे सम्बोधित विभिन्न संबोधनोंको जिस वैज्ञानिक सुस्पष्टतासे सम्प्रेषित किया गया है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

पहले निबन्धमें लेखकने भाषा-लिपि संवादकी दोनों दिशाओं—संयोजनमूलक और स्थानापत्तिमूलक—को स्पष्ट किया है। इसके अतिरिक्त उसने आक्षरिकी, लिपि, लिप्युक्ति और वर्तनी जैसे चार सम्बोधनों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है। लेखक लिपि-सुधारका आशय सन्दर्भ-विशेषमें लिपिके अनुकूलनसे मानता है। उसके अनुसार देवनागरी प्रधानतः वर्णमूलक लिपि है, इसकी आक्षरिकी स्वनिमात्मक है। वह व्यंजनाक्षरोंमें 'अ' स्वरकी उपस्थिति तथा उसे मूल स्वर माननेकी वैज्ञानिकतापर भी प्रकाश डालता है। इस दृष्टिसे वर्णन्यष्टिके तत्त्वको प्रस्तुत करते हुए उसने 'आ' के स्वर-रूप और मात्रा-रूप प्रयोगोंको वैध ठहराया है। लेखक के अनुसार 'आ' के स्वर-रूपके पहले व्यंजन, या व्यंज-नानुक्रम आश्रित होता है जबकि मात्रा-रूपके पहले यह

'प्रकर'—वैशाख २०४६—३७



अनाश्रित होता है। वह देवनागरीकी आक्षरिकीकी वैज्ञानिकता-अवैज्ञानिकताको व्यर्थ ठहराते हुए उसकी सरलता-कठिनताके प्रश्नको विचारणीय मानता है। इसी प्रकार वह देवनागरी लिपिमें मात्रा-संयोजन विषयक अवैज्ञानिकताके आरोपका भी तर्कपूर्ण खंडन करता है, "यह कहना भी अनुपयुक्त है कि देवनागरीमें मात्राओं का दायाँ-बायाँ ऊपर-नीचे लगना 'वैज्ञानिक' है। 'वैज्ञानिकता' और 'एकरूपता' समानार्थी शब्द नहीं हैं। एक द्रवके जो लक्षण होते हैं, उससे मिलते-जुलते सारे द्रवोंके वही लक्षण नहीं होते। एक मात्रा जिस स्थानपर लगती है, दूसरी मात्राका उसी स्थानपर लगना आवश्यक नहीं है।" (पृ. ६)। वह लिपिकी वैज्ञानिकतासे अक्षरोंकी क्रम-व्यवस्थाकी वैज्ञानिकताको अलगाता है। प्रायः जिसे देवनागरी लिपिकी वैज्ञानिकता कहा जाता है उसे वह उचित रूपमें अक्षरोंकी व्यवस्थित संयोजनाकी वैज्ञानिकता कहता है। लेखकके अनुसार देवनागरी अक्षरोंके आकृति-निर्धारणके मूलमें 'वैज्ञानिकता' न होकर यादृच्छिकता है। लेखककी मान्यता है कि "लिप्युक्तिके रूपमें देवनागरीकी वैज्ञानिकता-अवैज्ञानिकताका प्रश्न संस्कृतके मन्दारमे उठाना' न्यायोचित है। (पृष्ठ ११)। संस्कृतके मन्दारमे देवनागरी पूर्ण वैज्ञानिक लिपि है। हिन्दू के लिए इसकी रचना नहीं हुई थी। अतः 'हिन्दी' लिप्युक्ति या हिन्दी वर्तनीमें जो कुछ होता है, उससे देवनागरीकी वैज्ञानिकता या अवैज्ञानिकता नहीं प्रमाणित होती। ... यदि हम हिन्दीमें उसका प्रयोग करते हैं तो आवश्यकतानुसार हिन्दीके लिए उसका अनुकूलन करनेका अधिकार हम है।" (पृ. ११)। वह हिन्दी वर्तनीके उदाहरण देकर देवनागरीकी वैज्ञानिकता-अवैज्ञानिकताकी परीक्षा करनेके भी विरुद्ध है, क्योंकि वर्तनीकी अवैज्ञानिकता लिपिकी अवैज्ञानिकता नहीं होती।

डॉ. द्विवेदीने अपने इस आलेखमें देवनागरी लिपि में परिवर्तन विषयक सुझावोंको तीन कोटियोंमें वर्गीकृत किया है:

१. नये अक्षरों और चिह्नोंके द्वारा नयी ध्वनियों के निर्देशके लिए दिये गये सुझाव,
२. विद्यमान अक्षरोंमें हेर-फेरके द्वारा भ्रामकता कम करनेके लिए दिये गये सुझाव,
३. विकल्प कम करके एकरूपता और सरलता लानेके लिए दिये गये सुझाव। (पृष्ठ १४)

'प्रकार'—अप्रैल १९२—३८

उनके अनुसार इन सुझावोंसे उपयुक्त उद्देश्योंकी न्यूनाधिक पूर्ति तो हो पायी है, पर किसी सिद्धान्तके आधारपर इसका आद्यन्त अनुपालन संभव नहीं हो पाया है।

'देवनागरी: एक पुनर्दृष्टि' डॉ. द्विवेदीका एक प्रतिक्रियात्मक निबन्ध है। इसकी पृष्ठभूमिमें एक ओर उनका पूर्व लिखित 'देवनागरी और हिन्दी' शीर्षक आलेख है, तो दूसरी ओर डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव का 'देवनागरीके पक्षमें उसकी मात्रा-व्यवस्थाका अनुशीलन' शीर्षक आलेख। डॉ. द्विवेदीका उपालम्भ है कि "श्रीवास्तवकी मूल स्थापनाएं तो वही हैं जो मेरी हैं और इनमें कहींभी मुझसे कोई मतभेद व्यक्त नहीं किया गया है, लेकिन न मेरे मतका कहीं कोई उल्लेख है न मेरे लेख का" (पृष्ठ १६) ... "अन्त में मैं यही कहना चाहूंगा कि मुझे यह देखकर सन्तोष हुआ है कि श्रीवास्तवने जो मूल स्थापनाएं स्वीकार की हैं वे तात्त्विक दृष्टिसे पूर्णतः वही हैं जो मेरे लेखमें थीं।" (पृष्ठ ४०)।

अपने इस आलेखमें डॉ. द्विवेदीने डॉ. श्रीवास्तव के लिपि-विषयक अनेक स्थापनाओंका खंडन भी किया है। ऐसा कुछ महत्त्वपूर्ण अंश द्रष्टव्य है: १. डॉ. श्रीवास्तवने 'वाक्को उच्चारणका पर्याय मान लिया है। इस बातपर ध्यान नहीं दिया कि वाक्में भाषाभी समाहित होती है। यदि लिपिको वाक्के लेखनका साधन बनाया जाता है, तो वह स्वतः और अनिवार्यतः भाषाके लेखनका साधन बन जाती है।" (पृष्ठ २४)। २. श्रीवास्तवका यह बकबक अनुपयुक्त है कि 'वाक्की प्रमुता अपन प्रकृतिमें केवल व्यक्तिवृत्तात्मक है': वस्तुतः वह वृत्तवृत्तात्मक है अर्थात् यदि एक व्यक्ति कोई वाक्य दस बार बोलता है तो आवाजसे उस व्यक्ति की पहचान करा देनेवाले तत्त्व (वह पुरुष है या नारी, क्रुद्ध है या शांत, परिचितोंके लिए रमेश है या महेश) भलेहों दसों वृत्तोंमें एकत्वकी खोज और स्थापना कर लेते हैं (जो वाक्का एक सामान्यीकृत स्तर है), परन्तु मूल प्रकृतिमें ये दसों उच्चार दस वृत्त हैं (जो वाक्का विशेषीकृत स्तर है), जिन्हें ध्यानसे देखें-सुनें तो उनमें परस्पर कुछ भेदभी दिख सकते हैं (सांसका अलग अलग स्थानोंपर टूटना; एक उच्चारमें खांसी विद्यमान है, दूसरीमें उकताहट, तीसरेमें अधिक उकताहट आदि)।" (पृ. २७)। ३. "श्रीवास्तवका यह विचार



उद् श्यों की  
सिद्धान्तों के  
नहीं हो

रीका एक  
एक ओर  
श्रीपंक  
श्रीवास्तव

का अनु-  
मम है कि  
जो मेरी है  
मक्त नहीं

ई उल्लेख  
में यही  
हुआ है कि

की है वे  
में थी।

श्रीवास्तव  
भी किया  
१. डॉ.

न लिया  
भाषा भी

का साधन  
भाषा के  
२. श्री-

'वाक्' की  
मक है :

व्यक्ति  
स व्यक्ति  
या नारी,

महेश)

पना कर  
) , परन्तु  
वाक् का

तो उनमें  
अलग-  
विद्यमान  
उक्तता है  
ह विचार

भी ठीक नहीं है कि 'लेखन वाक्को प्रतिस्थापित नहीं करता।' उसका प्रकार्य प्रसंगावद्ध होता है । जब हम बात बोलते नहीं हैं, लिख-लिखकर अपना सन्देश देते हैं (विनोबाजी के मौन व्रतकी भांति) तब लेखन वाक् प्रतिस्थापित भी करता है ... (पृ. २८ । ४. श्रीवास्तव के लेखका 'अन्त जिन उपपत्तियों के साथ होता है उनके कई वक्तव्य लेख के मुख्य साध्य से असंबद्ध है।' (पृ. २१) ।

इस आलेख में लेखक की दो मुख्य विश्रयात्मक स्थापनाएँ मिलती हैं । १. लेखक ने आक्षरिकी, लिपि, लिप्युक्ति और वर्तनी जैसे सम्बोधनों के विषय में यह स्पष्ट किया है कि "इनमें से प्रत्येक परवर्ती अवधारणा में पूर्व-वर्ती अवधारणा का समावेश रहता है, परन्तु पूर्ववर्ती अवधारणाओं में परवर्ती अवधारणा का समावेश नहीं होता ।" (पृ. १८) । २. लेखक की मान्यता है कि "जिस प्रकार भाषा एक 'आदर्श' रूप होती है, उसी प्रकार लेखन का भी एक 'आदर्श' रूप होता है । ... भाषा एक कूट है और वाक् उसका माध्यम है । इसी के समानांतर दो शब्दों का भिन्न अर्थों में प्रयोग करते हुए कह सकते हैं कि लेखन एक कूट है और लिखाई उसका माध्यम है । इतनी गहराई में अभी तक विद्वान् नहीं गये हैं ।" (पृ. ८६) ।

यद्यपि स्वरूपतः प्रतिक्रियात्मक होने के कारण वस्तुनिष्ठ तथ्यपरकता पर आधारित होते हुए भी इस आलेख का तेवर आत्मनिष्ठ हो गया है, तथापि यह स्वीकारना पड़ेगा कि इस आलेख से जहाँ डॉ. द्विवेदी के देवनागरी विषयक मौलिक चिन्तन-मनन का पता चलता है वहीं भाषा-लिपिके क्षेत्र में व्याप्त अफाट अनुसंधानात्मक सन्नाटे और पाठकीय निश्चेतना की भी जानकारी मिल पाती है ।

विवेच्य पुस्तक का तीसरा आलेख 'देवनागरी लेखन' है, जिसमें लेखक ने 'लेखन', 'लिखावट' और 'लिखाई' जैसे तीन अवधारणाओं और 'आक्षरिकी', 'लिपि', 'लिप्युक्ति' और 'वर्तनी' जैसे चार सम्बोधनों पर बड़ी स्पष्टता से सोदाहरण प्रकाश डाला है । उसके अनुसार लेखन "उच्चरित भाषा का दृश्य प्रतिरूप (है) जो मानव-निर्मित यादृच्छिक आकृतियों के माध्यम से व्यक्त होता है ।" (पृ. ४२ । इसी प्रकार लिखावट "लेखन के लिए निर्धारित आकृतियों के स्वरूप के विविध आयामों में स्वीकार्य विकल्पों का क्षेत्र-विस्तार (है) ।" (पृ. ४३)

और लिखाई "लेखन का कोई भौतिक प्रयोग (है) ।" (पृ. ४४) । लेखक ने इस आलेख में संयोजनमूलकता की दृष्टि से लिपि-रचना के सैद्धान्तिक पक्ष पर अत्यन्त समीचीन रूप में विचार किया है । उसने लिपि-निर्माण की समग्र स्थितिको निम्नांकित रूप में आरेखबद्ध भी किया है :

स्वन-तत्त्व  
^  
पाठ > प्रोक्ति > वाक्य > उपवाक्य > > पदबन्ध  
> शब्द > मर्षिम > वर्ण > > स्वन  
^  
स्वनिम  
V  
मर्षस्वनिम  
(पृष्ठ ४७)

इसी प्रकार आक्षरिकी उसके अनुसार 'अक्षरों तथा अन्य लिपि-चिह्नों की तालिका' है, लिपि 'अक्षरों तथा चिह्नों के संयोजन की प्रणाली' है, लिप्युक्ति 'लिपिका भाषायी इकाइयों (उच्चारण-पक्ष पर आधारित लिपि में 'उच्चारण' तथा अर्थ-पक्ष पर आधारित लिपि में 'अर्थ') से संवाद' है और वर्तनी 'शब्दों', वाक्यों आदि के लिए अपनायी जानेवाली लिप्युक्ति' है । (पृष्ठ ४८) ।

लेखक यद्यपि लिपि स्तर पर देवनागरी की पर्याप्त जटिलता को स्वीकार करता है तथापि वह मानता है कि "इस प्रसंग में भी देवनागरी अवैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि प्रत्येक अक्षर-संयोग के अपने निश्चित नियम हैं जिनमें मुक्त विभेद अथवा पूरक वंश के वैज्ञानिक बितरण सम्मिलित हैं; उनके पृथक्-पृथक् प्रयोग में कोई अंश यथा या मनमानापन नहीं है ।" (पृष्ठ ५४) । लेखक ने देवनागरी अक्षरमाला में अक्षरों की क्रम व्यवस्था की वैज्ञानिकता को अत्यन्त साधारण पक्ष माना है तथा लिखा है कि "लिपियों के सन्दर्भ में वस्तुतः महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि भाषा की किस इकाई के लिए अक्षरों का निर्माण हुआ है, अक्षरों के संयोजन के नियम कैसे हैं और उन संयोजन-नियमों ने भाषा की प्रकृतिको किस प्रकार प्रस्तुत किया है । ये बातें उसी प्रकार की हैं जैसे दैनिक जीवन में हम यह विचार करें कि किसी व्यक्तिके पास कितनी सम्पत्ति है, अर्थात् कितने-कितने मूल्य के कितने-कितने नोट और कितने-कितने सिक्के हैं तथा उनसे वह विभिन्न परिस्थितियों में सभी प्रकार



के भुगतान करनेमें समर्थ है या नहीं।" (पृ. ५५) । लेखकके अनुरूप देवनागरी प्रधानतः एक वर्णमूलक लिपि है, उसकी अक्षरमाला 'स्वनिमात्मक' वर्णमाला है और देवनागरी लेखन स्वानिमिक भी है और वाणिज्यिक भी । उसकी दृष्टिमें १. देवनागरी अपेक्षाकृत सरल अक्षरमालाओंमें परिगणित होने योग्य है । २. उसकी आकृतियोंमें निम्नान्तरिताके लिए पर्याप्त भेद है । ३. इसमें एकही अक्षरसे कई अक्षर बनानेके उदाहरण अनल्प हैं और ४. इसमें मुक्त विभेद तो हैं, पर नियम-बद्ध वितरणके कारण अक्षरोंकी उपस्थिति अवज्ञानिक नहीं है ।

'देवनागरी' पुस्तकका चौथा आलेख हिन्दी वर्तनी की अशुद्धियोंपर आधारित है । इस आलेखमें निर्दिष्ट अशुद्धियोंके आंकड़े और दृष्टांत एम. ए. (हिन्दी) कक्षाके २१ विद्यार्थियों द्वारा लिखे गये निबन्धोंसे लिये गये हैं । डॉ. द्विवेदीने वर्तनीके सन्दर्भमें स्वानिमिक और मध्यवैज्ञानिक वर्तनीके अन्तरको स्पष्ट किया है तथा

## 'प्रकर' विशेषांक

### पुरस्कृत भारतीय साहित्य

प्रकाशन वर्ष	८३	मूल्य :	२०.०० रु.
" "	८४	" :	२०.०० रु.
" "	८५	" :	२०.०० रु.
" "	८६	" :	२५.०० रु.
" "	८७	" :	३०.०० रु.
" "	८८	" :	३०.०० रु.
" "	८९	" :	३५.०० रु.
" "	९०	" :	३५.०० रु.
" "	९१	" :	३५.०० रु.

सभी अंक एक साथ : डाक व्ययकी छूट.

" : २१५.०० रु.

'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,  
दिल्ली-११०००७.

हिन्दीमें स्वानामिक वर्तनीके महत्त्व जैसे रूपको शुद्ध माना है । इस आलेखमें वर्तनीकी अशुद्धियोंके मूलमें अति नागरीकरणकी प्रवृत्ति, विभक्तीकरणकी प्रवृत्ति, संयुक्तीकरणकी प्रकृति, महाप्राणीकरण और अल्प-प्राणीकरणकी प्रकृतिको निर्दिष्ट किया गया है । इसके अतिरिक्त अनुस्वार (ँ) और अनुनासिक (ं), विन्दु के अनावश्यक प्रयोग उसके प्रयोगाभाव तथा नियत स्थानसे पहले और बादमें उसके स्थिरीकरण आदिकी ओरभी ध्यान आकर्षित किया गया है । लेखकका मत है कि "हमारे अध्यापनमें किसी स्तरपर वर्तनीकी शुद्धताके लिए अभ्यास करानेकी व्यवस्था आवश्यक है । ..... अधिकतर अशुद्धियां केवल असावधानीसे हो रही हैं, जिन्हें थोड़ेसे अभ्यासके द्वारा दूर किया जा सकता है । कुछ अशुद्धियां (?) या अनियमितताएं ऐसी हैं जिनके लिए किसी बड़ी विद्वत् समिति द्वारा वैज्ञानिक और सुविचारित सर्वसम्मत निर्णय लिये जानेकी आवश्यकता है ..... ।" (पृ. ८०) ।

अन्ततः कहना पड़ेगा कि डॉ. द्विवेदीकी 'देवनागरी' पुस्तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इससे अनेक अपेक्षित सम्बोधों और अवधारणाओंका ज्ञान प्राप्त होता है । देवनागरी विषयक अबतक प्रचलित कई भ्रान्तियोंका निराकरण हो जाता है, देवनागरीकी स्वरूपगत, वैशिष्ट्य-युक्त, सुधारगत स्थितिका वस्तुनिष्ठ परिचय प्राप्त होता है । देवनागरी लिपिमें वर्तनीकी होनेवाली अशुद्धियों का विवरण-वर्गीकरणभी मिलता है तथा इन्हें दूर करने की दिशाभी स्पष्ट होती है । लेखकने अपनी पूरी पुस्तक में संस्कृत-समर्पित तथा बहुजन-प्रयोग दोनोंके अनुरूप 'अग्रेजी 'सिलेबिल' के लिए 'वर्ण' का तथा 'लैटर' के लिए 'अक्षर' का प्रयोग किया है । उसकी विवेचनात्मक भाषा सटीक है और पारिभाषिक स्पष्ट सम्प्रेष्य है । हाँ, पुस्तकके अन्तमें पुस्तकमें प्रयुक्त महत्त्वपूर्ण पारिभाषिकों और पदोंकी अनुक्रमणिकाका अभाव अवश्य खटकता है । कुल मिलाकर भाषा-लिपिके विद्यार्थियों, शोधार्थियों, अध्यापकों और विद्वानोंके लिए यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक आद्यन्त पठनीय और संग्रहणीय है । निषेध ही डॉ. देवीशंकर द्विवेदी द्वारा लिखित 'देवनागरी' पुस्तक भाषा-लिपि क्षेत्रके अभावकी महत्त्वपूर्ण और सार्थक पूर्ति करती है । □



## राजस्थानके पुरोधे

### महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण : पुनर्मूल्यांकन?

सम्पादक : डॉ. दयाकृष्ण विजय

समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

राजस्थान साहित्य अकादमी अपनी परम्पराओं और प्रवृत्तियों के रूप जहां साहित्य सर्जना की मानक संस्था-स्रोत है, वहीं राजस्थानके प्राचीन-अर्वाचीन साहित्यकारों के परिचयात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन भी प्रकाशित किये जाते हैं। आलोच्य कृति उस परम्पराका सुष्ठु प्रमाण है जिसमें वीर रसके सुप्रसिद्ध युगद्रष्टा प्राचीन कवि, वीर सतसईकार श्री सूर्यमल्ल मिश्रणका 'पुनर्मूल्यांकन' प्रस्तुत किया गया है। अपने सम्पादकीयमें डॉ. दयाकृष्ण विजयने चारण काव्य परम्परामें लोकभाषाके समग्र कविके स्वातंत्र्य-प्रेमको रेखांकित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि श्री मिश्रणने — 'कभी भी राजाकी पराभूत मनोवृत्तिसे समझौता नहीं किया (पृ. ७) क्योंकि महाकवि सूर्यमल्ल अपनी लेखनीपर विश्वास करते थे तो दूसरी ओर देशी रज-बाहोंमें क्रान्ति एवं स्वतंत्रताकी चिंगारी फूंकनेमें पीछे नहीं थे। यही कारण है कि महाकवि सूर्यमल्लकी प्रासंगिकता विद्यमान है। ऐसे अवसरपर विद्वान् सम्पादक डॉ. विजयने अठ्ठारह लेखकोंके आलेखोंका सार-स्वत रूप प्रतिपादित करते हुए महाकविके व्यक्तित्व और कृतिस्वके विविध पक्षोंका उद्घाटन कराया है।

आलोच्य कृतिमें महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रणके स्वातंत्र्यचेता सृजनशील कवि चिन्तक, क्रान्तिचेता एवं राष्ट्रीयताके पोषक स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाले आलेख क्रमशः सर्वश्री प्रेमचंद विजयवर्गीय, रमाकान्त शर्मा, रामरत्न शर्मा, मनु शर्मा, लक्ष्मीनारायण नन्द-

१. प्रकाशक : राजस्थान साहित्य अकादमी, हिरण नगरी, सेक्टर ४, उदयपुर-३१३००१ । पृष्ठ : १४२; डिमा. ६०; मूल्य : ५०.०० रु. ।

वानाके हैं जिनमें निभ्रान्त रूपसे यह प्रतिपादित किया गया है कि बूंदी निवासी महाकविने सन् १८५७ में प्रथम स्वतन्त्रता संग्रामके अवसरपर अपने काव्यके माध्यमसे शंखनाद किया तथा — 'कवियोंको प्रेरणा देनेके पश्चात् सूर्यमल्लने स्वतंत्रता संग्रामके सेनानियों को, वीरोंके वहाने सीधे प्रेरणा देना आरम्भ किया (पृ. १३) और 'वीर सतसई' में कई युक्तियां प्रस्तुत की हैं तथा कायर पतियोंकी भर्त्सना की है। इस कृतिकी तुलना सर्वश्रेष्ठ वीर रसात्मक रूपमें किसी भी भाषाकी वीररसात्मक कृतिसे की जा सकती है परन्तु खेद है कि इसका सर्वांग उपलब्ध नहीं है क्योंकि २८८ दोहे ही उपलब्ध हैं। पर वह 'बदलते हुए युगकी परिचायिका (पृ. ७०) है जिसमें अठारह सौ सत्तावन की विप्लव सम्बन्धी अव्यवस्थित राजनीतिक परिस्थितिकी ओर इंगित किया है (वही) ।

महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रणकी राष्ट्रीय चेतना और जन-जागृति अभियानमें उनकी सृजनधर्मिताका उल्लेख करते हुए डॉ. नन्दवानाने यह निदिष्ट किया है कि ब्रिटिश सत्ताके विरोधमें देशभक्ति ही व्यक्तिकी समष्टिमें परिवर्तित करती है फिर यही व्यक्ति जाति, समाज या राष्ट्रका पर्याय बन जाता है और सूर्यमल्लके साहित्यको देखें तो इसमें राष्ट्रीय चेतना और जन-जागृति सर्वाधिक है (पृ. १३५) पर इस राष्ट्रीय चेतनाके विकासमें उनकी सांस्कृतिक चेतनाको विस्मृत नहीं किया जा सकता क्योंकि समाज एवं संस्कृतिके परिपाश्वर्यसे मूल्य (वैल्यूज) ग्रहण करता हुआ सृजनधर्मी कवि समसामयिकताके निकषपर समाज एवं राष्ट्रका चिन्तन करता है। इस दृष्टिसे महाकविकी काव्यधारामें तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना, देशप्रेम, स्वदेश-भक्तिके तत्त्व देखे जा सकते हैं। डॉ. मनु शर्मने तत्कालीन कवियों—कृपाराम, बाँकीदासकी लोक-जागरण विषयक काव्यसर्जनामें ही 'इला न देणी आपणी' का मंत्रजाप करनेवाले पं. सूर्यमल्ल मिश्रण



के सम्बन्धमें लिखा है कि—'बांकीदासने साम्राज्यवाद का जिस प्रबल स्वरमें विरोध किया था उसे महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रणने मन्द नहीं होने दिया (पृ. ८५)।

महाकवि राजस्थानी भाषाके श्रेष्ठ कवियोंमें से एक हैं इसका परिचय देनेवाले आलेखोंमें सर्वश्री सीभाग्यसिंह शेखावत, ब्रजराज शर्मा, रामचरण मेहेन्द्र माधवसिंह दीपक, के. एस. गुप्ताके अतिरिक्त श्री कन्हैयालाल शर्माका आलेख है जिसमें उन्हें 'राजस्थानी के मानक रूपके प्रस्तोता' (पृ. ६८-१०३) कहा गया है। लोकजीवन एवं लोक-संस्कारोंसे सम्पन्न सांस्कृतिक संवर्द्धनमें जीवन होमकर तद्युगीन जनचेतना और जनक्रान्तिके प्रेरणास्रोत पं. सूर्यमल्ल मिश्रणकी प्रमुख कृतियोंमें वंशभास्कर, वीर सतसई, बलवद्विलाम राम रंजाट, छन्दोमयूख, सतीरासो हैं। वंशभास्करमें बृन्दी राज्यका जीवन्त इतिहास है जिसे उन्नीसवीं शताब्दीका महाभारतभी कहा जाता है। वीर सतसई (अधूरी उपलब्ध) स्वातंत्र्य-चेतनाका प्रस्फुरण करने वाली सतसई परम्पराकी कृति है तो 'बलवद्विलाम' उत्कर्ष चरितकाव्य। रामरंजाट कविकी दस वर्षकी अवस्थामें रावराजा रामसिंहकी प्रशस्ति है जिसकी तुलना 'चंद' के 'पृथ्वीराज रासो' से कीजा सकती है (पृ. ८)। छन्दोमयूख लघु रचना है। 'सती रासो'की सूचना मिलती है। 'धातुरूपावली' के विषयमें कोई निष्कर्ष नहीं निकलता, परन्तु इन कृतियोंके इतर स्फुट कवित्त, सबैये, सोरठे और गीत भी रहे हैं। कवि षट्-भाषाज्ञान रखनेवाली मेधासे सम्पन्न तथा इतिहास और यथार्थके प्रति जागरूक कवि थे, इसका प्रतिपादन सभी आलेखोंमें होता है।

सर्वश्री एस.आर. खान, श्रीमती अविनाश चतुर्वेदी, मनोरमा सक्सेना, घनश्याम वर्माके आलेख कविकी सर्जनात्मकताके विविध पक्ष ही उजागर नहीं करते अपितु रचनाधर्मिताके साथ कविके स्वाभिमान, नारी सम्मानक दृष्टि, सत्य-निष्ठा दृढ़ प्रतिज्ञताका परिचय भी देते हैं।

साहित्य-अध्येताओंके समक्ष प्राचीन साहित्यसर्जना की प्रासंगिकताकी प्रतिष्ठापना करनेवाली इस सम्पादित कृतिके लिए डॉ. विजयको साधुवाद और राजस्थान साहित्य अकादमीकी बधाई। □

## लज्जाराम मेहता

लेखक : ऋतुराज

समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

राजस्थानके दिवंगत साहित्यकारोंकी साहित्य सेवा से नयी पीढ़ीको परिचित करानेके उद्देश्यसे राजस्थान साहित्य अकादमीने 'हमारे पुरोधा' शीर्षकसे एक प्रकाशन शृंखला शुरू की है। उसीके अन्तर्गत प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित हुई है।

स्व. लज्जाराम मेहता बृन्दीके रहनेवाले थे। उनकी स्कूली शिक्षा तो अधिक नहीं हुई, पर स्वाध्याय से उन्होंने हिन्दी, संस्कृत, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी आदि भाषाओंका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वे भारतेन्दु युग और प्रेमचन्द युगके बीचकी कड़ी थे। भारतेन्दुके पञ्चानु देवकीनन्दन खत्रीके 'चन्द्रकान्ता' (१८९१) और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' (१८९२) के प्रकाशन और उनकी लोकप्रियताके कारण हिन्दी उपन्यास साहित्यमें ऐसी हवा चल पड़ी कि मनोरंजन ही उपन्यास लेखनका एकमात्र उद्देश्य बन गया। मेहताजीका माननाथा कि साहित्य केवल मनोविनोद की वस्तु नहीं, उसमें समुचित उपदेश भी होना चाहिये। अतः उन्होंने हिन्दी उपन्यासको तिलस्मी और जासूसी भूलभुलैयासे बाहर निकालनेमें योगदान दिया और लगभग एक दर्जन उपन्यास इस दृष्टिसे लिखे कि उनसे 'पाठकोंका मनोरंजन अवश्य हो किन्तु उसके साथ समाजका यथार्थ चित्र दिखलाया जाये और साथ ही भलाईकी वृद्धि होकर लोग बुराईसे बचें (पृ. १५)। 'मेहताजीकी यही दृष्टि उनके पहले उपन्यास 'धूर्त रसिकलाल' (१८९९) से लेकर उनके अन्तिम उपन्यास 'विपत्तिकी कसौटी' (१९१८) तक बनी रही। उन्होंने कविताके सम्बन्धमें अपने एक सहयोगीको लिखा, "अब वर्षा-वर्णनमें मयूर-ध्वनि और श्याम घटाके बदले सूखी खेती, तहसीलके प्यादोंके अत्याचार, किसानोंकी भूख और दुर्दशापर कविता लिखनेकी आवश्यकता है (पृ. ४३)।" मेहताजी पत्रकार भी थे, वक्तिक कहना चाहिये कि पहले पत्रकार थे,

१. प्रका. : राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर।

पृष्ठ : ६१; डिमा. ८६; मूल्य : ३०.०० रु।



बादमें साहित्यकार। आचार्य रामचन्द्र शुक्लने अपने हिन्दी साहित्यके इतिहासमें इनका उल्लेख यह कहकर किया है कि ये वास्तवमें उपन्यासकार नहीं, पुराने अखबार-नवीस हैं (पृ. ४३६, संवत् २००२ संस्करण)। मेहताजीके सम्पादकत्वमें १८९० में बूंदीसे 'सर्वहित' नामक पाक्षिक पत्रिकाका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिसे 'राजस्थानका पहला साहित्यिक पत्र' कहा जाता है। इसमें सम्पादकीय टिप्पणियां, अच्छे चुने हुए लेख, देश-विदेशके समाचार, धारावाहिक उपन्यास, कविताएं, पुस्तक-समीक्षा, देशकी प्रमुख साहित्यिक गतिविधियों का लेखा-जोखा, त्रिष्वकी प्रमुख आर्थिक एवं राजनीतिक गतिविधियोंके साथ बूंदीके लिए एक अलग स्तंभ रखा जाता था। पत्रिका बूंदीके महाराजाके संरक्षणमें शुरू हुई थी, उन्हींके प्रेससे निकलती थी, पर उनकी खुशामदी नहीं थी। बादमें वे बम्बईसे निकलनेवाले श्री वैकटेश्वर समाचारपत्रके सह-सम्पादक बनकर बम्बई चले गये। इस पत्रमें भी उन्होंने भारतीय शिल्प, कारीगरी, कृषि, व्यापार, भाषा, साहित्य आदिसे सम्बन्धित सामग्रीका समावेश करके इसे नया रूप प्रदान किया। इसके अतिरिक्त, उन्होंने पत्रकारिताके क्षेत्रमें शुद्ध राजनीतिके बजाय 'सामाजिक राजनीति' का प्रयोग किया (पृ. ४३)। वे निष्पक्ष पत्रकारिताके पक्षधर थे। उनका मानना था कि 'जैसे गवर्नमेंटकी गलतियां प्रकाशित करना पत्र सम्पादकका कर्तव्य है, उसी प्रकार देशके नेताओंकी त्रुटियां बताते रहना भी कम आवश्यक नहीं (पृ. ४४)।' यही कारण है कि मेहताजीने पंडालका सजावटपर लाखों रुपये खर्च करने पर अपने पत्रमें कांग्रेसके नेताओंकी आलोचना की। बैठकका कार्यवाह अग्रेजीमें सम्पन्न करनेके लिए भी कांग्रेसपर तीखा प्रहार किया।

समाक्ष्य पुस्तकमें मेहताजीके उपन्यासकार और पत्रकार—इन दोनों रूपोंपर दो स्वतंत्र अध्यायोंमें प्रकाश डालनेके बाद लेखकने 'निष्कर्ष' शीर्षक तीसरे अध्यायमें मेहताजीके कृतित्वका मूल्यांकन करनेका प्रयास किया है।

मेहताजी जिस युगमें जिये, वह भारतीय समाज का उथल-पुथलभरा युग था। एक ओर तो यूरोपीय जातियोंके सम्पर्कसे भारतीय समाजपर पश्चिमका प्रभाव पड़ने लगा था, दूसरी ओर भारतीय समाजके अन्दर सुधारके लिए आन्दोलन होने लगे थे, जिनमें

प्रमुख स्वर बंगालमें ब्रह्मसमाज, महाराष्ट्रमें प्रार्थना समाज और समस्त उत्तर भारतमें आर्यसमाजका था। यह विचित्र संयोग है कि ये सभी आन्दोलन हिन्दुओंके बीच उभरे और पनपे, इसलिए उनकी प्रतिक्रियाभी हिन्दुओंके बीच हुई। स्वामी दयानन्दने अवश्य पूरे भारतीय समाजकी ओर ध्यान दिया था और इसीलिए ईसाइयत और इस्लामकी कमियोंकी ओर उनके अनुयायियोंका ध्यान खींचा, पर ईसाई और मुसलमानोंमें उन लोगोंकी संख्या बहुत कम रही जिन्होंने दयानन्दकी बातको गंभीरतासे सुना। कट्टरपंथियोंने इसे सुधारने का आह्वान माननेके बजाय हिन्दुओंकी ओरसे आक्रमणकी रणभेरी मान लिया।

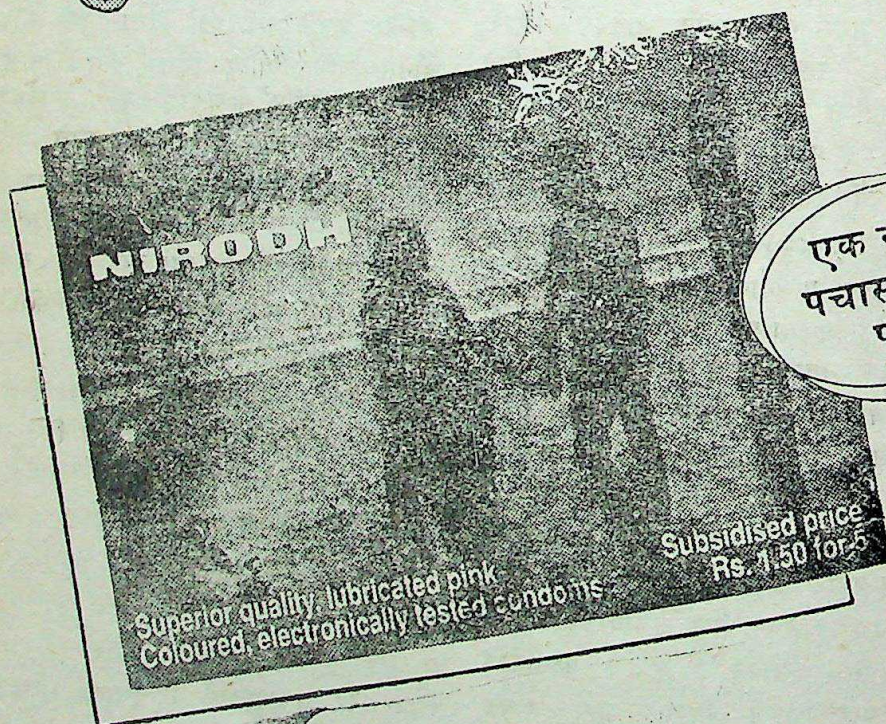
मेहताजी कट्टर सनातनी थे। हिन्दू पारम्परिक सोचके प्रति उनमें दृढ़ लगाव था। इसलिए वे हिन्दू समाजमें व्याप्त कुरीतियों, रूढ़ियों और इनसे घोषित परम्परागत संस्कारोंके पक्षधर थे। उनका समस्त साहित्य इन्हीं विचारोंका पोषण करने और इन्हें नष्ट होनेसे बचानेके लिए लिखा गया। बालकृष्ण भट्टने अपने पत्र 'प्रदीप' के जुलाई १९०४ के अंकमें मेहताजी की उक्त प्रवृत्तिपर तीखा प्रहार करते हुए लिखा था, 'हमारी समझमें समाचारपत्रका यह कर्तव्य नहीं है कि अपने समाजमें जो बिगड़ है उसे बिगड़ा हुआ न कहकर उसकी प्रशंसा करता जाये और ग्राहकोंके मन की कह अपनी पाकेट पूर्ण करे।' ...ऐसोंको सम्पादक बनाना अयुक्त है (पृ. २३-२४)। लेखकका भी मानना है कि 'मेहताजीने उपन्यासको खत्री-गहमरीके काल्पनिक जंजालसे तो मुक्त किया किन्तु हिन्दुत्वकी कुईमें डाल दिया (पृ. ५५)।' उसने लिखा है, 'सामाजिक सुधारको यदि मेहताजी हिन्दुत्वके आग्रहों से अलग हटकर देखते तो वे महजही प्रेमचन्दजीके तत्कालीन दृष्टिकोणके निकट चले जाते। प्रेमचन्दने प्रारम्भसे ही आर्यसमाजके गतिशील सुधारोंका पक्ष लिया और उपन्यासोंमें हिन्दूवादी सोचको खारिज किया (पृ. ३३)।' शायद यही कारण है कि प्रेमचन्द का साहित्य जहां आर्य भी पढ़ा जा रहा है वहां मेहताजी विस्मृतिके गर्तमें चले गये हैं। फिर भी, जब हिन्दी उपन्यास साहित्य समाजसे कटकर ऐयारीकी काल्पनिक दुनियांमें भटकने लगा था तब उसे जीवनसे जोड़नेका जो महत्कार्य मेहताजीने किया वह प्रशंसनीय है। मेहताजीकी अपने विचारोंके प्रति ईमानदारी, निष्ठा,



# डीलक्स निरोध

अब

गुलाबी रंग में उपलब्ध



दो बच्चों के जन्म में अंतर रखने का  
आसान तरीका — निरोध



निर्भीकता, वैष्णव कट्टरता और अपने समयमें हस्तक्षेप करते हुए जीवंत रहनेकी दृढ़ता आश्चर्यचकित करती है। शास्त्रोंसे अविच्छिन्न लगाव उन्हें कालसे काटता रहा किन्तु वे परम्परागत आदर्शोंके ही भाष्यकार बने रहे (पृ. ५८)।

पुस्तकके उत्तरार्धमें एक पृष्ठपर मेहताजीके जीवन की प्रमुख घटनाएं दी हैं, उनकी लिखी 'आपबीती' दी है जो उनकी आत्मकथा है, और अन्तमें उनकी सभी पुस्तकोंकी सूची दी है। अपने वर्तमानको ठीकसे समझने के लिए अतीतको भी जानना आवश्यक होता है। साव-

धानीसे पढ़नेपर यह पुस्तक इस कार्यमें हमारी सहायता करती है। सावधानी इसलिए कि कुछ स्थानोंपर अस्पष्टताके कारण भ्रम होनेकी गुंजायश है जैसे स्वामी श्रद्धानन्दका प्रसंग। वे हिन्दू महासभासे निराश होकर आर्य समाजकी ओर नहीं आये थे, बल्कि आदिसे अन्ततक विलकुल खुले रूपमें आर्य समाजके ही कार्यकर्ता थे। इसी प्रकार स्वामी दयानन्दके बारेमें गांधी जीकी टिप्पणी या औपनिवेशिक दासताके प्रति भार-तेन्दुके विचार (पृ. १-५४)। □

## भारतीय ज्योतिर्विद्

आर्य भट्ट?

लेखक : गुणाकर मुले

समीक्षक : डॉ. हरिश्चन्द्र

पुस्तक, आर्य भट्ट विषयक उपलब्ध सामग्रीके महत्वपूर्ण अंशोंकी कथात्मक प्रस्तुति है। पुरोवाकके अनुसार इसे मुख्य रूपसे विद्यार्थियोंके लिए लिखा गया है। पढ़ते समय छात्र-जीवनकी वह स्मृति उद्दीप्त हो उठती है, जब पाठ-योजना और शिक्षण-सिद्धान्तकी छड़ी-छाता थामकर कोई कुशल अध्यापक अपनी भूमिका का निर्वहन करता था।

वैज्ञानिक चिन्तनके प्रसारकोंको इतिहास-लेखनमें उस समय बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है, जब पुरा-उपादानका अभाव हो। विद्वान् ग्रंथकारने इस स्थितिसे जूझते हुए भी यथाशक्ति, यथातथ्यतापर बांध घाने नहीं दी है। इसे उसकी महान् उपलब्धि कहा जायेगा। पुस्तक वामनाकार है और इसकी विषय-वस्तु ओर-ओर-निरपेक्ष। प्रसंगवश लेखकसे "गागरमें

सागर' का प्रयोग हो गया है। अतएव कहना पड़ता है इस पुस्तकमें "उसने कूजमें दरिया बंद कर दिया है।" यह रचयिताकी दूसरी उल्लेख्य सफलता है।

रचनाके माध्यमसे शुक्लकी प्रतीति होनेके साथ यत्र-तत्र कृष्ण वर्णकी झलक भी मिल जाती है। "ग्राहकों के बारे...स्वतंत्र विचार थे" (पृ. १४) तथा "हमारे देशमें...पृथिवी स्थिर है" (पृ. १६) में अभिनतिकी गंध आती है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (मुन्दर काण्ड-२७/४८) तथा कालिदासकृत रघुवंश (१४/७) में चन्द्रमापर पृथ्वीकी छाया पड़नेका स्पष्ट उल्लेख है, तथा यजुर्वेदान्तर्गत (३६) अंतरिक्षमें पृथ्वीका अपने अक्षपर घूमना और सूर्यकी परिक्रमा करना निर्दिष्ट है। इस प्रकार आर्य भट्टको किसी नवीन तथ्यकी खोजका श्रेय देनेकी तुलनामें पूर्व-अन्वेषित सत्यके पुनः प्रचार का गौरव प्रदान करना बरीय होता। लेखकीय उपपत्ति लगभग वैसीही बात हुई, जैसे लोग आजभी कोलम्बस को अमरीकाका खोजकर्ता कहते हैं, जबकि उसके जन्मके एक हजार साल पहलेही शिन् नामक चीनके बौद्ध भिक्षुने उस क्षेत्रका पता लगा लिया था, और कोलम्बस की उत्पत्ति के ५०० वर्ष पूर्व लोफ एरिक्सन नामधारी नासमैनने वहां की भूमिपर पदार्पणकर अपने आवासका निर्माण किया था। एरिक्सनके भवनके भग्नावशेष

१. प्रका. : ज्ञान विज्ञान प्रकाशन, सी-४ बी/१२३, जनकपुरी, नयी दिल्ली-११००५८। पृष्ठ : ८०; का. ६१; मूल्य : ३५.०० रु.। ८०

'प्रकर'—वैशाख २०४६—४५



चाल्स नदीके तटपर वर्तमान हार्वर्ड विद्यापीठके सन्नि-  
कट आजभी विद्यमान हैं ।

“वह जानतेथे ‘पाया’” (पृ. २२) के अनुसार कोपर्निकसके ग्रंथका प्रकाशन निस्संदेह उसके मृत्यु-  
परांत हुआ, किन्तु भ्रांत विचारोंके लिए उसे जीवन-  
कालमें इतना दण्ड तो भोगना पड़ाही कि पोप द्वारा वह धस-च्युत किया गया । “कोईभी ग्रंथ शक्तिसे  
हुईहै” (पृ. ३०) से संभवतः लेखकका आशय ग्रंथकी  
अंतर्वस्तुसे है, न कि बाह्य-सज्जासे । वेदको अपौरुषेय  
बाइबिलको ईश्वर-प्रेरित और कुरआनको स्वर्ग स्थित  
फलककी प्रत्याकृति माना जाताहै । आस्तिकोंके इन  
विश्वासोंपर प्रहार करनेका इसके अतिरिक्त कोई अव-  
सर या औचित्य नहीं दीखता कि इन प्रासंगिक अधि-  
वचनोंसे पुस्तकका उपबृंहण अपेक्षित था । “एक शब्द  
की यूरोप-यात्रा” के अंतर्गत, जो उदाहरण दिया गयाहै,  
उससे कुछ पल्ले पड़नेके बजाय जो कुछ आताहै उसे  
भी खो देनेकी आशंका होतीहै । चर्चित युगकी अरबी  
लिपिमें स्वरही क्या व्यंजनोंके स्वतन्त्र संकेतभी नहीं  
थे । तभी तो ‘जशन’ को ‘हब्श’ भी पढ़ाजा सकताथा ।  
नुकात (बिन्दु) और अलामात (चिह्न) अलबरूनी  
(९७३-१०४८ ई.) के समय तक प्रचलित नहीं हो  
पायेथे । अतएव जीवका ‘ज’ जीम, हाए-हुती और ‘खे’  
में तथा व (ब) वे, ते तथा से में सटकर लिप्यंतरित  
होनेपर ‘जव’ के अतिरिक्त अनेक रूप धारण कर सकते  
थे । इससे सरल और सुबोध दृष्टांत अरबी शब्द  
‘तमर-हिन्दी’ (तमर = खजूर, हिन्दी = भारतीय) का  
रहता, जिससे इमली (अम्लिका) या तिल्लिड वाचक  
अंग्रेजी शब्द ‘टेमरिड’ व्युत्पन्न है । अरबीमें इमली  
को ‘हम्मर’ भी कहतेहैं जो, सम्भवतया अम्लिकासे  
निष्पन्न है । ‘तमर हिन्दी’ तिल्लिड अथवा समानार्थक  
तिल्लिडीसे भी विकसित हो सकताहै । यदि गणित-  
संबंधी नमूना ही पेश करनाथा तो बीजगणितके पर्याय  
अलजेब्रा (अव्यक्त गणित) या शून्यार्थक साइफर  
(अरबी-सिफ्र, वैदिक-शिप्र) के देशाटनसे अवगत  
करायाजा सकताथा ।

संस्कृत ग्रंथका नाम आर्यभटीय न देकर उस भाषा  
की चालके अनुसार आर्यभट्टीयम् लिखना उचित होता ।  
अरबी ग्रंथोंमें आर्यभट्टको ‘अज्जबहर’ के रूपमें प्रकट  
अवश्य किया गयाहै, किन्तु देवनागरी लिपिमें उसे

‘अज्जभर’ लिखा जायेगा, ताकि उच्चारण-दोष न्यूनतम  
रहे । प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री अमरनाथ झा अपने नामको  
रोमन वर्तनीमें ‘अमरानाथा झा’का प्रयोग करतेथे,  
परन्तु देवनागरीमें उसी अमिधानको ‘अमरनाथ झा’  
द्वारा व्यक्त करके तदनुसार उच्चार करते । अरबी  
लिपिमें ‘भ’ की ध्वनिके लिए ब+ह प्रयुक्त हुआहै ।  
अलबरूनीने ‘भानु’ को वे+हाए-होज+नून से व्यक्त  
कियाहै । अरबीमें ‘ट’ की ध्वनि प्रायः ‘द’ में परिवर्तित  
हुईहै । इस आधारपर ‘अज्जभर’ के स्थानपर ‘अज्जमद’  
होगा । संभव है ‘ट’ का ‘र’ भी कर दिया जाताहो ।  
जहांतक ‘य’ के स्वनकी बात है, उसका अधिकतर ‘ज’  
हो जाताथा । इसी प्रकार अज्जभर ‘व’ को ‘वे’ से प्रकट  
करनेकी प्रथा थी ।

पुस्तकके अन्तमें “संदर्भ और टिप्पणियां” देकर  
रचनाकारने जहां उपकार कियाहै, वहां उसने कुछ  
परमावश्यक सूचनाएं रोक लीहैं । उदाहरणतः आर्यभट्ट  
द्वारा पाटलिपुत्रमें जाकर अध्ययन करनेकी बातके  
पक्षमें “आर्यभट्टस्त्वह निगदति कुसुमपुरे अभ्यर्चितं  
ज्ञानम्” का स्रोत सहित उल्लेख नहीं किया गयाहै ।  
पाटलिपुत्रही पुष्पपुर तथा कुसुमपुर कहलाताथा, इन  
समीकरणोंके प्रमाणस्वरूप समुद्रगुप्तकी ‘प्रयाग-प्रशस्ति’,  
श्वान च्वांगका ‘धर्म-यात्रा विवरण’ तथा कालिदासके  
‘रघुवंश’ को इंगित नहीं कियाहै । पाटलिपुत्रके वैभव  
को उद्भासित करनेके लिए कश्मीर-कवि दामोदरगुप्त  
के ‘कुट्टनीमतम्’ तथा अन्य प्रासंगिक कृतियोंमें  
‘बोधिसत्त्वावदानकल्पलता’ से आवश्यक उद्धरणभी नहीं  
दियेहैं । जब आर्यभट्ट द्वारा प्रयुक्त अक्षर-संकेतोंका  
उल्लेख कियाथा तो यहभी आवश्यक था उनके द्वारा  
उपयोगमें लाये गये शब्दोंकोपर प्रकाश डाला जाता ।  
आर्यभट्टके जन्म वर्ष ४७६ ई. (पृ. ३३) का आधार  
‘आर्यभट्टीयम्’ के कालक्रियापादका दसवां श्लोक है  
जिसकी रचनामें शब्दांक पद्धतिको अपनाया गयाहै ।

जहांतक ग्रंथकी भाषाका प्रश्न है, वह देश-कालकी  
अनुगामिनी प्रकट होतीहै । उससे हिन्दाका ऐसा प्रति-  
दर्श अथवा निदर्श सामने आयाहै, जिसे आधुनिक  
भारतके अंग्रेजी लेखक और पत्रकार स्लैंग (अपभाषा)  
की संज्ञा देकर प्रसन्न होतेहैं । कुल मिलाकर पुस्तक  
पठनीय है, और जिस उद्देश्यसे लिखी गयीहै उसकी  
पूर्ति करतीहै । □



## एक यात्रा

### प्राची रातका सूरज?

लेखक : डॉ. कुमुद

समीक्षक : विराज

यह पुस्तक डॉ. कुमुदकी स्वीडन यात्राका वृत्तान्त है। स्वीडन उन चार-पांच देशोंमें से एक है, जो उत्तरी ध्रुवके इतना निकट है कि वहां वर्षके कुछ महीनोंमें सूर्यकी आधी रातके समय अस्त होते हुए और उदित होते हुएभी देखाजा सकता है। कारण यह है कि साल में छह महीने वहां दिन इतने लम्बे होते हैं कि सूर्य आधी रातके लगभग थोड़ी देरके लिए छिपता है और फिर निकल आता है। ठीक ध्रुव प्रदेशमें तो छह महीने का दिन और छह महीनेकी रात रहती है। नार्वे, स्वीडन और फिनलैंड अर्धरात्रिके सूर्योदय और सूर्यास्त के दर्शन के लिए प्रसिद्ध हैं। वैसे यह प्राकृतिक चमत्कार रूस और आइसलैंडके कुछ भागोंमें भी दिखायी पड़ता है।

डॉ. कुमुदके पुत्र श्री ब्रह्मभूषण स्वीडनमें थे। उनसे भेंटके निमित्तसे कीगयी यात्राका वृत्तान्त सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत करके लेखकने पाठकोंको भी स्वीडन की सैर-सी करा दी है। यह पुस्तक लेखककी केवल अपनी यात्राका वृत्तान्त ही नहीं, अपितु अनेक स्रोतोंसे एकत्रित जानकारीके कारण यह सन्दर्भ ग्रन्थके रूपमें भी उपयोगी बन गयी है।

स्वीडन संसारके सबसे अधिक समृद्ध देशोंमें से एक है। स्वीडनको राजधानी स्टाकहोम सबसे सुन्दर राजधानियोंमें से एक है। समुद्र तटपर बसे इस नगरके

१. प्रका. : शील प्रकाशन, ए, ३५, सोनारी पश्चिमी, जमशेदपुर-८३१०११। पृष्ठ : १४०+१६ पृष्ठ रंगीन फोटो. डिमा; ६१; मूल्य : १००.०० रु.।

पास समुद्रमें चौदह द्वीप हैं, जो इस नगरके ही अंग हैं और एक दूसरेसे पुलों द्वारा जुड़े हुए हैं। नगरमें सैकड़ों पार्क हैं। नगरके मुख्य पुस्तकालयमें भारतके प्रमुख पत्र-पत्रिकाएं भी उपलब्ध हैं। नयी दिल्लीकी मात देते नये स्टाकहोमके साथ-साथ पुराना स्टाकहोम पुरानी दिल्लीसे खासी होड़ करता है—वे ही संकरी गलियां, मजमा लगाकर माल बेचनेवाले, तमाशा दिखानेवाले, गाकर भीख मांगनेवाले, पुतलियोंका नाच दिखानेवाले, सभी कुछ। होटलों, रेस्तरां, भूगर्भ रेलगाड़ी, सबसे ऊंची ५०८ फुट ऊंची इमारत काकनास्तोरनेत, आदि का वर्णन बहुत सुन्दर और सजीव हुआ है। खेतोंमें जाकर स्ट्रावेरी तोड़ने और सस्ते दामपर खरीद लाने, पहाड़ीपर हिरनोंका झुंड देखनेसे वहांके दृश्य एवं जीवनकी अच्छी झलक मिल जाती है। पारिवारिक जीवन, नर-नारी सम्बन्ध, सामाजिक जीवन, मादक द्रव्योंके बढ़ते प्रयोग आदिका उल्लेख यात्रा वृत्तान्तमें सहजही आ गया है।

स्वीडन एक गरीब और पिछड़े देशसे डेढ़-सौ वर्षों में ही इतना उन्नत और समृद्ध कैसे होगया? इसका श्रेय वहांके लोगोंके उद्यम और व्यापारको है। वहांके व्यापारी पुराने समयसे दूर दूरके देशों, बैंगोलोन तथा भारत तकसे व्यापार करते थे। बैंगोलोनमें देवी इशतर के मन्दिरका विवरण विचित्र और अद्भुत जान पड़ता है। जिसके अनुसार बैंगोलोनकी हर स्त्रीको जीवनमें एक बार अपना शरीर पर-पुरुषको देना पड़ता था। लगता है कि संस्कृत शब्द 'स्त्री' का सम्बन्ध किसी-न-किसी प्रकार देवी 'इशतर' से है।

दरिद्रतासे ग्रस्त स्वीडी लोग कैसे विदेशोंमें गये और वहां उन्नति करने लगे, इसका वर्णन 'हिम्मत बांध बढ़े जो आगे' अध्यायमें है। सन् १९०५ के बाद स्वीडनकी स्थितिमें तेजीसे सुधार हुआ। स्वीडनमें

'प्रकर'—वैशाख २०४६—४७



बढ़िया किस्मका इस्पात तैयार होता है, अल्फ्रेड नोबेलने भयंकर विस्फोटक टी. एन. टी. का आविष्कार किया और स्वीडन शस्त्रास्त्र तथा गोला-बारूद बनाने लगा। दो विश्व युद्धोंमें स्वयं अलिप्त रहकर शस्त्रास्त्र बेचकर स्वीडनने अपार सम्पत्ति अर्जित की। बोफोर्स और साब वहांकी बड़ी शस्त्र-निर्माता कम्पनियां हैं।

नौवें अध्यायमें बताया गया है कि स्वीडी लोग देश को धर्मकी अपेक्षा अधिक ऊँचा स्थान देते हैं। वहांके अल्पसंख्यक धार्मिक मामलोंको लेकर बावेला खड़ा नहीं करते और न वहांके राजनीतिक अल्पसंख्यकोंकी धार्मिक भावनाको भड़काकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं, जैसा कि भारतमें कुछ राजनीतिक दल करते हैं।

‘चमकण मत्था स्वीडी लेखकों का’ अध्यायमें स्वीडनके लेखकों, पत्र पत्रिकाओंका उल्लेख है। स्वीडन में भारतीय मूलके लोग जो साहित्य सेवा कर रहे हैं, उनका भी विवरण दिया गया है।

पन्द्रहवें अध्याय ‘आधी रातका सूरज’ में किछुनाके पास लुओस्तावारा पर्वत शिखरपर जाकर आधी

रातको चमकते सूर्यका दर्शन करनेका विवरण है। देश के इस अंचलमें, गर्मीकी रातें बहुत छोटी होती हैं। आबिस्को नामक कस्बेमें तो पचास दिन सूर्यास्त होता ही नहीं। रातको बारह बजेसे दस मिनट पहले सूर्य अस्ताचलके निकट पहुंचा और क्षितिजको छूते बादलों में विलीन होगया। उसके कुछही मिनट बाद उसी स्थानसे नये दिनका सूर्य फिर उन्हीं बादलोंको भेदकर ऊपर उठता दिखायी पड़ा। यह दृश्य पृथ्वीके उत्तरी ध्रुवके निकटवर्ती प्रदेशोंमें ही दिखायी पड़ सकता है। कुल मिलाकर पुस्तक रोचक है। रंगीन चित्रोंसे इसे और भी आकर्षक बना दिया है।

लेखकको कालिदासका ‘अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः’ श्लोक बहुत पसन्द है, परन्तु न जाने क्यों वह इसे सही उद्धृत नहीं कर पाते, पृ. १२२ पर इसकी पहली पंक्ति ‘अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मा’ दी गयी है। यों पुस्तककी छपाई, सफाई और कागज सब बहुत बढ़िया है। □


### एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

### मध्यकालीन काव्य-समीक्षा कोश

लेखक : रामशरण गोड़

मूल्य : २५०.००

- विशेषताएं :
- ☐ मध्यकालीन काव्योंपर लिखे गये समीक्षा-ग्रन्थोंकी समग्र जानकारी।
  - ☐ समीक्षा-ग्रन्थोंके विद्वान् लेखक, प्रकाशक, प्रकाशन वर्ष पृष्ठ संख्या आदि के साथ उक्त ग्रन्थका सारगर्भित परिचय।
  - ☐ नवीन विषय-चयनकी दृष्टिसे हिन्दी साहित्यके शोधार्थियोंके लिए विशेष उपयोगी।

 कादम्बरी प्रकाशन

5451 शिव मार्केट, न्यू चंन्नावत  
जवाहर नगर, दिल्ली-110007 (भारत)

दूरभाष : २६३००५६

### स्वाधीनता-दिवस अंक

यह अंक “पुरस्कृत भारतीय साहित्य होगा। अभीसे विज्ञापन भेजें। दरे इस प्रकार होंगे :

पूरा सामान्य पृष्ठ	१०००.०० रु.	आवरण पृष्ठ दो	१५००.०० रु.
आधा सामान्य पृष्ठ	५५०.०० रु.	आवरण पृष्ठ तीन	१५००.०० रु.
सामान्य चौथाई पृष्ठ	३००.०० रु.	आवरण पृष्ठ चार	२०००.०० रु.

‘प्रकर’, ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७,

‘प्रकर’—अप्रैल/६२—४८



## 2

1

24  
5

समाज शास्त्र  
वैज्ञानिक जीवन  
अर्थशास्त्र  
साहित्य  
उपन्यास  
इतिहास  
कविता  
विज्ञान  
जीवन  
समाज  
शास्त्र  
अर्थ  
साहित्य  
उपन्यास  
इतिहास  
कविता  
विज्ञान  
जीवन  
समाज  
शास्त्र  
अर्थ  
साहित्य  
उपन्यास  
इतिहास  
कविता



# प्रस्तुत अंकके

## लेखक-समीक्षक

- ☐ डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त, १० ग्रेटर कॅलाश, कालोनी, डाकघर सैनिक कालोनी, जम्मू-१८००११.
- ☐ डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त, १८६१२, आर्यपुरी, मुजफ्फरनगर—२५१००१.
- ☐ डॉ. तिलकसिंह, हिन्दी विभाग, एस. एस. बी. (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय, हापुड़ (उ. प्र.)
- ☐ डॉ. तेजपाल चौधरी, ५६, रामदाम कालोनी, जलगांव—४२५००१.
- ☐ डॉ. प्रयाग जोशी, बी-३/१३, जेल गार्डन रोड, रायबरेली—२२६००१.
- ☐ डॉ. भगीरथ बड़ोले, सी-२८६, विवेकानन्द कालोनी, फ्रीमंज, उज्जैन—४५६००१.
- ☐ डॉ. भानुदेव शुक्ल, ११ लवकुश अपार्टमेंट्स, ईदगाह हिल्स, भोपाल (म. प्र.).
- ☐ डॉ. भैरूलाल गंग, २ ए/१८, विकासनगर, वृन्दी—३२३००१.
- ☐ डॉ. रवि रंजन, हिन्दी विभाग, हिन्दी महाविद्यालय, तल्लागुंटा, हैदराबाद.
- ☐ डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, २१/जी.मेकर गार्डन, मिडो-जुहू, सान्ताक्रुज (पश्चिम), मुम्बई—४०००४६.
- ☐ डॉ. रामनाथ बेदालंकार, वेद मन्दिर, गीता आश्रम, ज्वालानुर (हरिद्वार)—२४६४०७.
- ☐ डॉ. रामशिरोमणि होरिज, प्राचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, वागेश्वर, अल्मोड़ा (उ. प्र.).
- ☐ डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ, ३४/८५, बोहरा गणेश, उदयपुर (राजस्थान).
- ☐ श्री विराज, २७-ए राजपुर रोड, दिल्ली-११००५६.
- ☐ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, १४/५, द्वारकापुरी, अलीगढ़—२०२००१.
- ☐ डॉ. श्रीविलास डबराल, वार्णा विलास प्रकाशन, धामपुर (विजनौर)—२४६७६१.
- ☐ डॉ. सत्यनारायण व्याम, २६ 'नीलकण्ठ', सेंट, चितौड़गढ़—३१२००१.
- ☐ डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी, फुटेरा वार्ड नं. २ दमोह—४७०६६१.
- ☐ डॉ. मुमति अय्यर, ११२/२३६ स्वरूपनगर, हानपुर—२०८००२.
- ☐ डॉ. हरदयाल, एच-५०, पश्चिमी ज्योतिनगर गोकुलपुरी, दिल्ली-११००६४.

## विश्वविद्यालयों / महाविद्यालयों/पुस्तकालयोंके लिए अनिवार्य पत्रिका 'प्रकर'

### शुल्क विवरण

<input type="checkbox"/>	प्रस्तुत अंक		६.०० रु.
<input type="checkbox"/>	वार्षिक शुल्क साधारण डाकसे :	संस्थ : ७०.०० रु.;	व्यक्ति : ६०.०० रु.
<input type="checkbox"/>	आजीवन सदस्यता :	संस्थ : ७५१.०० रु.;	व्यक्ति : ५०१.०० रु.
<input type="checkbox"/>	विदेशोंमें समुद्री डाकसे एक वर्षके लिए :	पाकिस्तान, श्रीलंका	१४०.०० रु.
	अन्य देश :		२००.०० रु.
	विदेशोंमें विमान सेवासे (प्रत्येक देशके लिए) — एक वर्षके लिए :		३३०.०० रु.
<input type="checkbox"/>	दिल्लीसे बाहरके चैकमें १५.०० रु. अतिरिक्त जोड़ें.		

. व्यवस्थापक, 'प्रकर', ए-८/४२, राधा प्रतापबाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर' — मई ६२



**प्रकर**

[आलोचना और पुस्तक-समीक्षाका मासिक]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार

सम्पक : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,

दिल्ली-११०००७.

वर्ष : २४

अंक : ५

ज्येष्ठ : २०४६ [ विक्रमाब्द ]

मई : १९६२ [ ईस्वी ]

**आलेख एवं समीक्षित कृतियां****साहित्य-साधक**

भक्तियोग—डॉ. प्रभाकर माधवे

डॉ. रामकुमार वर्माकी साहित्य-साधना—डॉ. चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा

२

डॉ. हरदयाल

३

डॉ. विजय कृतश्रेष्ठ

**अध्ययन अनुशीलन**

कालं मावसं : कला और साहित्य चिन्तन—सम्पा. नामवरसिंह

५

डॉ. हरदयाल

रूपक अलंकारका क्रमिक विकास—डॉ. पुनम शर्मा

७

डॉ. सत्यनारायण व्यास

दिनकरकी काव्यभाषा : शैली वैज्ञानिक अध्ययन—डॉ. सरला परमार

९

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

हिन्दीका सामाजिक संबंध—

१०

डॉ. तिलकसिंह

**ओशो साहित्य**

(१) शिक्षामें क्रान्ति (२) शिक्षा और साहित्य

(३) शिक्षा और जागरण (४) शिक्षा : नये प्रयोग—ओशो

१३

डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

**उपन्यास**

यह नर वेह—विमल मित्र, अनु. योगेन्द्र चौधरी

१८

डॉ. भगीरथ बड़ोले

अभयकुमारकी आत्मकहानी—डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर

२२

डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

**कहानी**

यामिनी कथा—सूर्यबाला

२६

डॉ. सुमति अय्यर

सम्मान-अपमान—यशपाल बंद

२८

डॉ. सन्तोष तिवारी

दरबारा—बी. आर. पद्म

३०

डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त

**काव्य**

प्रश्नोंकी सलीबपर—दुर्गाप्रसाद झा

३१

डॉ. भगीरथ बड़ोले

वक्तकी परछाइयाँ—सुन्दरलाल कथूरिया

३४

डॉ. प्रयाग जोशी

मैं कृष्णा हूँ—डॉ. अनन्तराम मिश्र

३५

डॉ. श्रीविलास डबराल

जीवन बोलताहै—निरंकारदेव सेवक

३६

डॉ. रामशिरोमणि होरिल

**व्यंग्य**

फाइल पढ़ि-पढ़ि—गोपाल चतुर्वेदी

३७

डॉ. भानुदेव शुक्ल

मुख्य-मन्त्रीका वारिस—एम. उपेन्द्र

३८

डॉ. रवि रंजन

नाकके बहाने—जवाहर चौधरी

३९

डॉ. भैरवलाल गंग

**समग्र रचनावली**

रामेश्वर टाटियाँ समग्र—सम्पा. विश्वनाथ मुकुर्जी

४१

श्री विराज

**वेद और भाष्य**

ज्योतिषां ज्योतिः—जगन्नाथ वेदालंकार

४३

डॉ. रामनाथ वेदालंकार

**श्रद्धांजलि**

संत श्री पोद्दार जी : रसाद्वैत दर्शन एवं साहित्य—डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह

४५

डॉ. रामस्वरूप भायें

दूरदर्शन धारावाहिक—

४६

डॉ. तेजपाल चौधरी

मृगनयनी—

'प्रकर'—ज्येष्ठ २०४६—१



# साहित्य साधक

प्रश्न ?

लेखक : डॉ. प्रभाकर माचवे

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

‘हिन्दीके साहित्य निर्माता’ पुस्तक-मालाके अन्तर्गत बड़ी द्रुत गतिसे प्रभाकर माचवेने कई पुस्तकोंकी रचना की। उन्हींमें से एक है ‘अज्ञेय’। इस पुस्तकमें एक ओर अज्ञेयकी जीवनी और व्यक्तित्वका चित्र उपस्थित किया गया है तो दूसरी ओर उनकी कविता, कहानियों, उपन्यासों, निबन्धों, यात्रावृत्तों, आलोचना सम्पादन और अनुवाद आदिके परिचयके साथ-साथ साहित्यमें उनका स्थान निर्धारित किया गया है। पुस्तक मुख्यतः परिचयात्मक और विवरणात्मक है। इस सीमित दृष्टिसे यह पुस्तक सफल है। अज्ञेय और उनकी रचनाओंका बड़ा आत्मीय और अन्तरंग परिचय इस पुस्तकमें प्रस्तुत किया गया है। यह अन्तरंगता और आत्मीयता ही इस पुस्तककी सबसे बड़ी विशेषता है। इस पुस्तकमें अज्ञेय और उनकी रचनाओंके सम्बन्धमें ऐसी अनेक सूचनाएं हमें मिलती हैं, जिन्हें माचवेही दे सकते थे। उदाहरणके लिए ‘नदीके द्वीप’के चन्द्रभूषण नामक पात्रके नामकरणके सम्बन्धमें यह सूचना “तीन चरित्र भुवन (जो शेखरका ही प्रौढ़ रूप लगता है), गौरा (जो शशिका नया परिवर्धित संस्करण लगती है) और चन्द्रभूषण (जो एक साम्यवादी पात्र है। जैसाकि उन्होंने मुझसे कहा था—नेमिचन्द्र जैनका ‘चन्द्र’ और भारतभूषण अग्रवालका ‘भूषण’ मिलाकर यह नाम उन्होंने बनाया, यद्यपि उस चरित्रमें इन दो मूल नामोंसे भिन्न अधिक कट्टर साम्यवादी उनके सामने रहे)। चन्द्रभूषणको उन्होंने खलनायककी तरह चित्रित

किया है।” (पृष्ठ ५५)। इस अन्तरंगता और आत्मीयताके कारण माचवेजीकी इस पुस्तकको पढ़नेमें संस्मरणों जैसा आनन्द आता है।

माचवेजी कभी अज्ञेयके घनिष्ठ सहकर्मियोंमें रहे थे। वे उनके समवयस्क भी थे। वे उनकी, शक्तियों और दुर्बलताओं दोनोंसे परिचित थे। अज्ञेयके प्रति न तो उनके मनमें द्वेषभाव था और न श्रद्धा। अतः उन्होंने अपनी इस छोटी-सी पुस्तकमें अज्ञेयके अच्छे-बुरे दोनों पक्षोंको प्रस्तुत किया है। माचवेजीके अनुसार हिन्दीके लेखकोंसे अज्ञेयके सम्बन्ध दोहरे थे। कुछ वरिष्ठ लेखकोंके प्रति उनका आदर-भाव था, जैसे हजारी-प्रसाद द्विवेदी या मैथिलीशरण गुप्तके प्रति। कुछके प्रति द्वेष-भाव था—विशेषतः विश्वविद्यालयके हिन्दी प्रोफेसरोंके प्रति। कुछ वरिष्ठ लेखकोंको वे परम्पराके नाते याद करते थे। “कविके नाते उनका अहं स्फीत था और शेष सब हिन्दी कवियोंको या तो वे अपना शिष्य मानते थे या अपना शत्रु। शिष्य कब शत्रु हो जाये, इसका भी ठिकाना नहीं था। ‘मामेक’ शरण ब्रज’ वाली अव्यभिचारिणी भक्ति वे अपने अनुयायियों से चाहते थे। जराभी खटका हुआ, हो गयी कुट्टी। मैंने उनके ‘त्रिशंकु’ पर ‘हंस’ में और ‘अपने-अपने अजनबी’ पर ‘थॉट’ में आलोचना लिखी थी, वे बुरा मान गये।” (पृष्ठ १६)। यह अज्ञेयकी प्रशंसा नहीं है। माचवेजीने उनके व्यक्तित्वका जो मूल्यांकन किया है उसमें ऋण और धन दोनों पक्ष हैं—“वे आदर्शवादी नहीं थे, जैसाकि उनके साहित्यसे लक्षित होता है। वे अत्यन्त व्यावहारिक, हिसाब-किताबमें बहुत टिपटप, हर कामको बड़े सलीके और नफासतसे करनेवाले, अभिजात्य और सुश्रुति सम्पन्नताके जीवनानन्द-लुब्ध विलक्षण विरोधाभासोंसे भरे व्यक्ति थे। उनकी कार्यक्षमता अद्भुत थी।” (पृष्ठ २०)। अज्ञेय “सब सम्बन्ध-विच्छेदोंमें, मित्रोंसे हो या पारिवारिकोंसे सदा

१. प्रका. : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६ । पृष्ठ : १०४; डिमा. ६१; मूल्य : ३०.०० रु. ।

‘प्रकर’—मई ६२—२



अपना पक्ष सही मानते थे । यह आत्मसमर्थनपरक दृढ़ आग्रह कभी-कभी दुराग्रह हो जाता था ।" (पृष्ठ २७) । माचवेजीने अज्ञेयके व्यक्तित्वका जैसा मूल्यांकन किया है वैसेही उनके साहित्यका अज्ञेयका महत्त्व हिन्दी साहित्यमें असंदिग्ध है । प्रभाकर माचवेने इसे मुक्त मनसे स्वीकार किया है ।

जो पाठक इस पुस्तकसे गम्भीर विवेचनकी अपेक्षा न रखकर अज्ञेयके व्यक्तित्व और कृतिस्वसे केवल परिचित होना चाहते हैं, उन्हें भी यह पुस्तक सावधानी से पढ़नी चाहिये; क्योंकि माचवेजीकी लापरवाहीके कारण इसमें तथ्यात्मक त्रुटियाँ रह गयी हैं । पृष्ठ ३८ पर यह वाक्य हमें पढ़नेको मिलता है—“न ‘नदीके द्वीप’ का तीसरा खण्ड ही पाठकोंके सामने आया ।” स्पष्टतः इस वाक्यमें ‘नदीके द्वीप’के स्थान पर ‘शेखर : एक जीवनी’ होना चाहिये । पृष्ठ ४७ पर ‘सिक्का बदल गया’ का सम्पादक डॉ. महीपसिंहको बताया है जबकि इस संग्रहके सम्पादक डॉ. नरेन्द्रमोहन हैं । पृष्ठ ३६ पर अज्ञेयके अन्तिम कविता-संग्रहका नाम ‘ऐसा भी घर देखा है’ लिखा है जबकि उसका सही नाम ‘ऐसा कोई घर आपने देखा है’ है । इस प्रकारकी औरभी त्रुटियाँ पुस्तकमें हैं । इन्हें प्रकाशकभी ठीक करवा सकता था ।

इस पुस्तकमें कई स्थानोंपर अव्यवस्थित और व्याकरणकी दृष्टिसे अशुद्ध वाक्य हमें पढ़नेको मिलते हैं । उदाहरणार्थ दो वाक्य प्रस्तुत हैं—

(१) “देश-विदेशकी कई संस्थाओंने उन्हें देव-पुरस्कार, अकादमी पुरस्कार, यूगोस्लावियाका स्वर्ण-कमल, भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार और उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थानका शिखर-सम्मान (मरणोपरान्त) आदि उन्हें मिले ।” (पृष्ठ २२) ।

(२) “परन्तु मैंने आगरेमें जब मैं विद्यार्थी था तब सन् ‘३८ में आगरा कैण्टमें एक अंग्रेजी सिनेमा देखने हम गये थे तब एक गोरे सोल्जरको गालियाँ देकर तमाचा मारते हुए देखा था ।” (पृष्ठ २६) । □

**डॉ. रामकुमार वर्माकी साहित्य-साधना?**

लेखक : डॉ. चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा

समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

डॉ. रामकुमार वर्माके व्यक्तित्व एवं कृतित्वके

१. प्रका. : साहित्य भवन प्रा. लि. जीरो रोड, इलाहाबाद-२११००३ । पृष्ठ : २०७; डिमा. ६०; मूल्य : ५०.०० रु. ।

रूपमें आलोच्य कृतिका महत्त्व इस रूपमें विशिष्ट हो जाता है क्योंकि लगभग ६० ग्रंथोंके रचयिता कवि, नाटककार एवं आलोचकके वैयक्तिक परिवेशसे लेकर उनके कृतित्वके विषयमें दो सौ पृष्ठोंमें डॉ. वर्माकी सृजन यात्राका विवरण उपलब्ध कराया गया है । इस कृतिकी संयोजनाका स्वरूप क्रमशः डॉ. वर्माकी जीवन रेखाएं, डॉ. वर्मा, नाटककार डॉ. वर्मा, एकांकीकार डॉ. वर्मा, समालोचक डॉ. वर्मा, डॉ. वर्माके साहित्यमें भारतीय संस्कृति, डॉ. वर्माके साक्षात्कार, इस सात अध्यायोंकी सामग्रीका संयोजन क्रम आरोहावरोहात्मक है क्योंकि नाटककार-एकांकीकारका ख्यातिप्राप्त डॉ. वर्माकी नाट्य-साधना (नाटक ११ पृष्ठ और एकांकी १३ पृष्ठ) मात्र २४ पृष्ठोंमें ही चर्चित हुई है । व्यक्तित्व पैंतालीस पृष्ठोंमें आत्मीय ढंगसे प्रस्तुत किया गया है, काव्यत्व छियालीस, समालोचकत्व इक्कीस पृष्ठोंमें ही है और भारतीय संस्कृति तो पृष्ठीय चिन्तन लिये है, जबकि साक्षात्कार (तीन) बाइस पृष्ठमें उपलब्ध होते हैं । संतुलित रूपमें नाटक एवं एकांकी भागोंपर कुछ विस्तार अपेक्षित था ।

डॉ. रामकुमार वर्माके काव्य-व्यक्तित्वपर सपरिश्रम लेखनी उठाकर डॉ. चन्द्रिकाप्रसाद शर्माने उत्तर छायावादमें शिखरस्थ कविकी कृतियोंका विवेचन किया है । डॉ. वर्मा नाटककार-एकांकीकारके रूपमें इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे कि आजके बहुतसे छात्रोंको यह भी ज्ञान नहीं होगा कि वे एक सफल कवि थे । इस दृष्टिसे इस साधनाका मूल्य बढ़ जाता है । डॉ. चन्द्रिका-प्रसादजीने उनकी काव्य कृतियोंको तीन वर्गों—मुक्तक रचनाएं (गीति काव्य), प्रबन्धात्मक (खण्ड-काव्य) और प्रबन्धात्मक (महाकाव्य) में विभाजित किया है तथा उनके गीतकारको प्रेम एवं सौन्दर्यमूलक बताया है । उनके राष्ट्र प्रेम, रहस्यावादी, प्रकृतिप्रेमी गीतोंका सोदाहरण उल्लेख करके डॉ. वर्माके काव्य कोशलका मूल्यांकन बड़ी सफलताके साथ करते हुए डॉ. चन्द्रिकाने उनके गीतकारकी विशिष्टताओंका संकेत किया है जो निस्सन्देह तटस्थ चिन्तककी दृष्टिसे मूल्यांकन लिये हुए है ।

खण्ड काव्य—वीर हमीर, चितौड़की चिता और निशीथ तथा महाकाव्य—एकलव्य, उत्तरायण और ओ अहल्याकी शास्त्रीय विवेचना की गयी है परन्तु ‘अभिशाप’ का वर्गीकरण खण्डकाव्योंमें (पृ. ७७)

‘प्रकर’—ज्येष्ठ २०४६—३



किया गया है जबकि अभिशाप (प्रकाशन वर्ष १९३०) काव्य-कृति है। इसके साथ 'बालि वध' (समस्यामूलक काव्यांग) की भी विवेचना सविस्तार की गयी है। डॉ. चन्द्रिका समालोचक डॉ. वर्मा के कविसे अत्यधिक प्रभावित रहा है तभी सर्वाधिक विस्तारसे विवेचना प्रस्तुत की गयी है। महाकाव्यमें निहित डॉ. वर्मा की काव्यात्मक मनीषाका परिचय देते हुए डॉ. चन्द्रिका स्पष्ट करते हैं कि—डॉ. वर्मा भारतीय संस्कृतिके सम्पोषक महाकवि माने जाते हैं। वे उन विकृतियों की तह तक पहुंचते हैं जो हमारी संस्कृतिको प्रदूषित करने की असफल कुचेष्टा करती हैं। घटनाओं, परिस्थितियों का बिधिवत् अन्वेषणकर तभी वे अपनी तर्कसम्मत मान्यता प्रस्तुत करते हैं। व कभी कल्पनाके बहावमें आकर किसी पौराणिक या ऐतिहासिक तथ्यपर प्रकाश नहीं डालते। (पृ. १२६)।

अध्याय विभाजनकी चर्चा करते हुए संकेत किया जा चुका है कि डॉ. वर्मा के नाटकोंपर चर्चा और विवेचना, जो भी है, वह ग्यारह पृष्ठों पर है यानी डॉ. वर्मा का नाटककार कहीं कविसे कम है। इस दृष्टिसे ही नहीं ग्यारह पृष्ठोंसे प्रथम चार पृष्ठ तो लेखकके साक्षात्कारमें ही पूरे हो गये हैं, शेष लगभग सात पृष्ठों में डॉ. वर्मा के नाटकोंका वर्गीकरण—ऐतिहासिक, सामाजिक, साहित्यिक रूपमें प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक नाटकोंमें बौद्धकालीन, जैनकालीन, हिन्दूकालीन मुस्लिमकालीन, अंग्रेजकालीन तथा स्वतंत्रताके बादके नाटकके रूपमें भी वर्गीकृतकर मात्र पांच पृष्ठोंमें ग्यारह नाटकोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इन पंक्तियों के लेखकका कोई पूर्वाग्रह नहीं, अपितु, यह यथार्थ है कि नाटकोंकी समालोचना नाट्यकलाके आधारपर की जानी चाहिये थी। ठीक ऐसी ही समालोचना पद्धति डॉ. वर्मा के एकांकीकारकी विवेचनामें अपनायी गयी है। वस्तुतः चिन्तनीय है और साहित्यके विद्यार्थी के साते अधिकांश लोग उनके एकांकियों तथा नाटकों या फिर इतिहाससे अधिक परिचित हैं। एकांकीकार वर्माका चार पृष्ठों पर साक्षात्कार, पांच पृष्ठों पर एकांकियोंका वर्गीकरण उपलब्ध कराया गया है। दो पृष्ठों पर उनके एकांकी विवेचनाकी तात्त्विक विचारणाका संकेत करके ढाई पृष्ठोंमें उनके छः एकांकी संग्रहोंका उल्लेख मात्र करनेके उपरान्त विविध विद्वानोंके मतों का संकलन है। इस दृष्टिसे समालोचनाका सर्वाधिक

‘प्रकर’—मई १२—४

कमजोर पक्ष नाटक एवं एकांकीवाले दोनों अध्यायोंमें मिलता है।

समालोकके रूपमें डॉ. वर्माका चौथा कृतिकार हमारे सामने आता है। इक्कीस पृष्ठों पर समालोचनामें डॉ. वर्मा की कृतियों—हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, रीतिकालीन साहित्यका पुनर्मूल्यांकन, साहित्य शास्त्र, साहित्य समालोचना (कविता, कहानी, रंगमंच, समालोचना) अनुशीलन, कबीरका रहस्यवाद, संत कबीर, आदिपर संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत की है। इस अध्यायमें उनके संस्मरण साहित्य—कृतित्व—हिम-हास, स्मृतिके अंकुर, संस्मरणोंके सुमनका सूचनापरक उल्लेखभी किया गया है तथा सम्पादित ग्रंथों—कबीर पदावली, बरवै रामायण, गद्य परिचय, आधुनिक काव्य संग्रह, आधुनिक हिन्दी काव्य, गद्य गौरव, काव्यांजलि काव्य कुसुम, सरल एकांकी नाटक, हस्तलिखित ग्रंथोंकी विवरणात्मक सूचीकी परिगणना भी दी गयी है।

डॉ. वर्मा के साहित्यमें भारतीय संस्कृतिके बोधका परिचयात्मक उल्लेख करते हुए डॉ. चन्द्रिकाने ‘एक लघु’ की भूमिकामें डॉ. वर्मा के कथनका उल्लेख किया है—‘राजनीति और समाजके अन्तरालमें आचार्य द्रोण और शिष्य एकलव्यके चरित्रकी व्याख्या बड़ी मनीषाजनक होगी’ (पृ. १७७) इसके साथही उनका संस्कृति विषयक दृष्टिकोणभी प्रस्तुत किया है—‘मैं संस्कृतिको किसी देश विदेश या जाति विशेषकी अपनी मौलिकता नहीं मानता मेरे विचारसे सारे संसारके मनुष्योंकी एकही सामान्य मानव-संस्कृति हो सकती है (वही पृष्ठ)। इस दृष्टिसे डॉ. चन्द्रिकाने डॉ. वर्मा के सांस्कृतिक समन्वयका दृष्टिकोणभी स्पष्ट किया है। जिसमें वर्णाश्रम धर्म, मानवता प्रेम, यम-नियम पालन, राष्ट्रीय भावना, पुरुषार्थ चतुष्टय, भाग्यवादी दृष्टि, ज्योतिषके प्रति आस्था, शकुन विचार, भूत-प्रेत व जंत्र मंत्र, पूजा पाठ एवं तप-व्रत, ईशाराधना, सत्संग माहात्म्य, गुरु भक्ति आदि तत्त्वोंका उल्लेख रहा है साक्षात्कार-१ और साक्षात्कार-३ में डॉ. वर्मा के अपनी साहित्यिक मान्यताओं अवधारणाओं और चिन्तनके कोणका उल्लेखभी डॉ. चन्द्रिकाप्रसादने किया है। साक्षात्कार-२ मात्र पुनरावृत्ति है। इस दोषसे बचा जा सकता था।

डॉ. रामकुमार वर्मा के व्यक्तित्व पक्षको उजागर करनेमें इस कृतिका योगदान स्मरण योग्य होगा। पुस्तकमें प्रूफ शोधनके प्रति उदासीनता खटकती है।



## अध्ययन : अनुशीलन

### कार्ल मार्क्स : कला और साहित्य-चिन्तन?

अनुवादक : गोरख पाण्डेय

सम्पादक : डॉ. नामवर सिंह

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

आधुनिक युगमें जिन चिन्तकोंने विश्वको अत्यधिक प्रभावित किया है उनमें से एक नाम कार्ल मार्क्स का है। मार्क्सके अध्ययन और मननका मूल क्षेत्र अर्थशास्त्र था और उनकी केन्द्रीय स्थापना भी मानवीय अर्थ-कर्मसे सम्बद्ध है, किन्तु उन्होंने इसे मानव-जीवन और सभ्यताकी घुरी मानकर जीवनके अन्य क्षेत्रोंपर भी लागू किया; जिसके कारण मार्क्सवाद ऐसे दर्शनके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ, जिसमें समस्त जीवन समाहित हो जाता है। अतः मार्क्सवादके साथ साहित्यभी जुड़ गया है।

मार्क्सने साहित्यका व्यवस्थित अध्ययन नहीं किया था और न साहित्यके विषयमें किसी व्यवस्थित सिद्धान्तकी स्थापना की थी; किन्तु साहित्य और कतिपय अन्य ललित कलाओंके प्रति उनकी गहरी अभिरुचि अवश्य थी। उन्होंने अपनी अभिरुचिके अनुसार प्राचीन और मध्यकालीन यूरोपीय साहित्य और कलाके क्षेत्रसे कुछ रचनाकार और उनकी रचनाएं चुन ली थीं और उन्हींका बार-बार अध्ययन और आस्वादन किया था तथा अपनी रचनाओंमें उद्धरणों और सन्दर्भोंके रूपमें उनका उपयोग किया था। उनका प्रिय साहित्य क्या था, इसका अनुमान आगेके उद्धरणसे लगाया जा सकता है—“प्राचीन युगके क्लासिक साहित्यमें मध्य-युगसे गेटेके युग तकके जर्मन साहित्यमें; दान्ते, बोआर्दो पिसो, सर्वान्तीस और शेक्सपियरकी दुनियांमें तथा

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : २१६; डिमा. ६१; मूल्य : ११५.०० रु.।

अठारहवीं और उन्नीसवीं सदीके फ्रांसीसी और अंग्रेजी गद्य-कथा-साहित्यमें वे रमे रहते थे।” (पृ. १६१)। इस साहित्यको लेकर उन्होंने अपने पत्रों और अपनी रचनाओंमें प्रसंगात् टिप्पणियां की हैं। उन्होंने कुछ कला-कृतियोंपर भी टिप्पणियां की हैं। इन्हीं टिप्पणियोंसे मार्क्सके साहित्यशास्त्र या सौन्दर्यशास्त्रका निर्माण हुआ है। मार्क्सकी प्रासंगिक टिप्पणियों तथा मार्क्सके मूल सिद्धान्तोंको साहित्य और कलाओंपर लागू करके मार्क्सवादी विचारकोंने मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र रचा है। मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्रकी रचना करनेवालों में एंगेल्स, लेनिन, प्लेखानोव, मेहरिंग, कॉडवेल, लुकाच ब्रेश्ट, बेंजामिन, गोल्डमान, फिशर, ग्राम्शी, डेला वाल्पोल, मशेरी आदि अनेक विचारकोंका योगदान रहा है। समीक्ष्य पुस्तकमें इन्हीं विचारकोंमें से छहके लेखों या पुस्तकांशोंका अनुवाद संगृहीत है। ये लेख या पुस्तकांश हैं : मिखाइल लिफ्शित्ज—‘कार्ल मार्क्सका कला-दर्शन; जॉर्ज लुकाच—‘सौन्दर्य-शास्त्रके बारेमें मार्क्स और एंगेल्सके विचार; मक्स राफाएल—‘मार्क्सवादी कला-सिद्धान्त; अदोल्फो सांचेज वास्क्वेस—‘सौन्दर्यशास्त्रके स्रोत और स्वरूपके बारेमें मार्क्सके विचार’; स्तेफान मोराव्स्की—‘मार्क्स और एंगेल्स द्वारा विचारित प्रमुख सौन्दर्यशास्त्रीय समस्याएँ’; और एस. एस. प्रेवर—‘कार्ल मार्क्स और विश्व-साहित्य’। मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्रको समझनेकी दृष्टिसे ये छहों रचनाएं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और इस पुस्तक रूपमें एक अच्छा सन्दर्भग्रन्थ हिन्दीमें प्रस्तुत हो गया है। इसके माध्यमसे मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्रकी शक्तियां और सीमाएं दोनों सामने आ जाती हैं।

हिन्दीमें इस पुस्तकके प्रकाशनका सबसे बड़ा लाभ उन भ्रान्तियोंके निराकरण रूपमें होगा, जो हिन्दीके प्रगतिवादी आलोचकोंकी संकुचित दृष्टि और मताग्रहों के कारण प्रचलित हो गयी हैं। हिन्दीमें सबसे अधिक प्रचलित भ्रान्ति यह है कि साहित्य तथा अन्य कलाएं



आर्थिक व्यवस्थासे पूर्णतः संचालित एवं नियन्त्रित होती हैं। उनकी अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। यह मार्क्सवादका अतिसरलीकरण है। जॉर्ज लुकाचेने इसे 'विकृत भौतिकवाद' की संज्ञा देते हुए लिखा है— "इस बुनियादी अवधारणाको गलत ढंगसे समझते हुए विकृत भौतिकवाद, इस प्रकारका यान्त्रिक, भ्रान्त और भ्रामक निष्कर्ष निकालता है कि आधार और अधिरचना में सपाट तरीकेका कारण-कार्य सम्बन्ध है, जिसमें आधार पूरी तरह कारण होता है और अधिरचना पूरी तरह कार्य होती है। विकृत मार्क्सवादकी दृष्टि में अधिरचना उत्पादनके साधनोंके विकासके एक यान्त्रिक कार्यपरक परिणामका प्रतिनिधित्व करती है। द्वन्द्वात्मक पद्धतिके लिए ऐसे सम्बन्ध एकदम अपरिचित हैं। द्वन्द्ववाद किन्हीं भी शुद्ध रूपसे एकांगी कार्य-कारण सम्बन्धोंका निषेध करती है।" (पृष्ठ ३१)। साहित्य तथा अन्य कलाओंके संदर्भमें मार्क्सवादने आर्थिक तत्त्व के साथ-साथ अन्य चीजोंके महत्त्वको भी स्वीकार किया है। मक्स राफाएलने अपने लेखमें एंगेल्सके एक कथनको उद्धृत किया है, जिससे आंशिक रूपमें ही सही, साहित्य आदिकी स्वतन्त्रताको स्वीकार किया गया है— "राजनीति, विधि, दर्शन, धर्म, साहित्य और कला आदिका विकास आर्थिक विकासपर आधारित होता है; लेकिन ये सभी आपसमें प्रतिक्रिया करते हैं और आर्थिक आधारभी इनकी प्रतिक्रियासे प्रभावित होता है। ऐसा नहीं कि आर्थिक परिस्थिति कारण है और सिर्फ अकेले सक्रिय है; और अन्य हर चीज निष्क्रिय परिणाम मात्र है। बल्कि इसके विपरीत, इन सबके बीच आर्थिक अनिवार्यताके आधारपर अन्तःक्रिया होती है और इसमें आर्थिक क्रिया अनिवार्यता अन्ततः हमेशाही अपनेको स्थापित कर लेती है।" (पृ. ६४-६५)।

मार्क्स और एंगेल्स मनुष्य थे, यद्यपि उनके अनुयायियोंने उन्हें मसीहा बना दिया। प्रत्येक मनुष्यकी भांति उनके भी आग्रह थे। यह समस्या उनके सामने भी आयी थी कि प्रातिभ व्यक्तियोंकी रचनात्मक उपलब्धियोंका एक अंश अव्याख्येय होता है, परन्तु वे अपने आग्रहोंके कारण उसे स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं थे। वे यह स्थापित करके ही मानते थे कि प्रत्यक्ष रूपसे न सही, परोक्ष रूपसे तो प्रत्येक मानवीय क्रियाका मूलधार आर्थिक क्रिया है। एंगेल्सका उपर्युक्त कथन इसी आग्रहको प्रमाणित करता है। अन्य सामान्य

'प्रकर'—सई ६२—६

मनुष्योंकी भांति मार्क्सकी भी अपनी रुचियाँ-अरुचियाँ थीं। मार्क्सको रूपवादसे चिढ़ थी। उनकी इस चिढ़का उनके अनुयायियोंपर यह प्रभाव पड़ा कि उन्होंने साहित्यका विवेचन करते समय वस्तुको तो महत्त्व दिया, कलाकी उपेक्षा कर दी। किन्तु मार्क्स अपने अनुयायियोंकी अपेक्षा अधिक सन्तुलित था। रूपवादके प्रति अपनी अरुचिके रहते भी अभिव्यक्तिपर भी उसकी दृष्टि थी। यद्यपि "मार्क्स सभी प्रकारके रूपवाद और सौंदर्यवाद और अलंकारवादसे चिढ़ते थे, जो पारम्परिक चिन्तन, भावुकता या शुद्ध अज्ञानको सुन्दर शब्दोंसे ढककर प्रस्तुत करता है।" (पृ. २०५), परन्तु फूहड़ और दुर्बल अभिव्यक्ति उन्हें स्वीकार्य नहीं थी— "वह मनुष्यों और घटनाओंका चित्रण करनेके लिए साहित्य और साहित्यिक आलोचनासे लगातार रूपक लेते हैं और आखिरी, परन्तु कम महत्त्वकी, बात यह नहीं है कि वह छन्द और लयके विश्लेषण, विम्वविधानकी व्याख्या, वाक्य-संरचनाओंके विश्लेषण जैसी साहित्यिक आलोचनाकी कुछ तकनीकोंका उपयोग अपने विरोधियोंकी शैली और विचारोंका खण्डन करनेमें शक्तिशाली साधनके रूपमें करते हैं।" (पृ. २०६)।

समीक्ष्य पुस्तकसे उदाहरणके लिए हमने कुछ समस्याएं यहाँ प्रस्तुत की हैं। मार्क्सवादी साहित्यालोचनसे सम्बन्धित सभी समस्याएं और समाधान पुस्तकमें विद्यमान हैं जिन्हें पाठक स्वयं देख सकते हैं।

अब कुछ शब्द अनुवादके सम्बन्धमें। सामान्यतः अनुवाद अच्छा हुआ है। पुस्तक पढ़ते समय अनूदित रचना पढ़नेका अनुभव हमें प्रायः नहीं होता है, किन्तु कुछ स्थल ऐसे अवश्य हैं, जहाँ अनुवादमें मूल वाक्य-रचनाको हिन्दीकी प्रकृतिके अनुकूल नहीं बनाया गया है और अनुवाद अखरने लगा है। जैसे—

"वस्तुरूपान्तरणको वस्तुके विलोपके रूपमें, अलगाव और इस अलगावके अतिक्रमणके रूपमें देखते हैं और इस तरह वह श्रमके सारतत्त्वको तथा वस्तुगत मनुष्यकी, सच्चे क्योंकि वास्तविक मनुष्यकी, मनुष्यके अपनेही श्रमके परिणामके रूपमें समझ जाते हैं।" (पृ. ११२)।

रूस और पूर्वी यूरोपमें मार्क्सवादके नामपर जो ढाँचा खड़ा किया गया था वह ढह गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि मार्क्सवाद मर गया है। कोई मौलिक विचारधारा कभी मरती नहीं है। मार्क्सवाद जीवित है



और जीवित रहेगा। अब बदली हुई स्थितियोंमें उसका अधिक स्वस्थ और सन्तुलित रूप सामने आयेगा। बाज मार्क्सवादपर और मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्रपर नयी दृष्टिसे विचार करनेकी आवश्यकता है। समीक्ष्य पुस्तक इस दिशामें प्रेरकका काम कर सकती है। हमें लगता है कि मार्क्सने अर्थशास्त्रको तो ठीक समझा था किन्तु उसके साथ जुड़े मानव-मनोविज्ञानकी उपेक्षा कर दी थी। मनुष्य अपनी क्रियाओंको नियन्त्रित करता है, उसकी क्रियाएं उसे नियन्त्रित नहीं करती हैं। □

## रूपक अलंकारका कविक विकास?

लेखक : डॉ. पूनम शर्मा

समीक्षक : डॉ. सत्यनारायण व्यास

संस्कृत काव्य-शास्त्रके अलंकार-सम्प्रदायमें से केवल एक 'रूपक अलंकार' को लेकर प्रस्तुत किया गया यह शोध-प्रबन्ध, अनुशीलनकी कुशाग्रता और अनुसन्धानिक अध्यवसायकी दृष्टांत है। किसीभी शोधकार्यका मुख्य उद्देश्य है, ज्ञानका विस्तार और परिशोध। नये तथ्योंकी खोजसे ज्ञानका विस्तार होता है और नवज्ञात तथ्योंके परिप्रेक्ष्यमें पुरानी मान्यताओं का परिशोधन होता है। यही नहीं, ज्ञात तथ्योंको यथासंभव अनासक्त चित्तसे देखनेकी भी आवश्यकता होती है। यदि इस दृष्टिसे हम प्रस्तुत पुस्तककी सामग्री पर विचार करें, तो वह इन सभी प्रतिमानोंपर खरी नहीं उतरती।

छः अध्यायोंमें विभाजितकर, रूपक अलंकारके कविक-विकासकी आद्योपान्त छानबीन की गयी है। पुस्तकके 'पुरोवाक्' में ही विदुषी लेखिका, काव्यमें अलंकारकी अनिवार्यतापर आग्रहशील होनेपर भी उसकी 'अति' के प्रति सचेत हैं : "वस्तुतः अलंकृत भाषाके बिना काव्य, काव्य नहीं कहला सकता..." अलंकार-विहीन कविता विधवाके समान होती है। परन्तु वह उचित मात्रामें होना चाहिये।"

विषय-प्रवेशमें अलंकारकी पारिभाषिक विवृति,

१. प्रका. : नटराज पब्लिशिंग हाउस, होली मोहल्ला, आर्यसमाज मन्दिरके पास, करनाल (हरियाणा)- १३२००१। पृष्ठ : १५५; डिमा. ८६; मूल्य : ६५.०० रु.।

उसके स्वरूपगत वैभिन्न्य और अलंकारोंमें रूपककी महत्त्व तथा उसकी प्राचीनताका अनुसन्धान है। ऋग्वेदमें जीवात्मा और परमात्माको दो पक्षियोंका रूपक देकर मंत्रद्रष्टा ऋषिने सर्वप्रथम रूपक अलंकार का प्रयोग किया था, किन्तु यह ध्यान रखनेकी बात है कि तबतक अलंकार-शास्त्रका बीजवपन भी वहीं हुआ था। इसका सर्वप्रथम काव्यशास्त्रीय उल्लेख भरत मुनिके 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है—जहां केवल उपमा, दीपक, रूपक और यमक इन चार अलंकारोंका विधान है। शेष, सैकड़ों अलंकार भरतमुनिके परवर्ती आचार्योंकी देन है। इस कृतिके दूसरे अध्यायमें रूपककी शाब्दिक व्युत्पत्ति, उसका बहु-अर्थी प्रयोग; भरतमुनि, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, रुद्रट, कुन्तक, भोज, मम्मट, रुच्यक, हेमचन्द्र, वाग्भट्ट, जयदेव, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित, और पंडितराज जगन्नाथके मतानुसार रूपक अलंकारके लक्षण एवं स्वरूप-विवेचनको मधुकरी-वृत्तिसे संगृहीतकर उन्हें काल-क्रमबद्ध रूपमें बिना किसी मौलिक टिप्पणीके प्रस्तुत किया गया है। इस श्रमसाध्य आकलनमें लेखिकाका निष्कर्ष है कि प्रायः सभी आचार्योंने उपमान और उपमेयके अभेदात्मक सादृश्यको रूपक स्वीकार किया है, परन्तु वाग्भट्ट एक ऐसे आचार्य हैं, जो उस संबंधको भेदात्मक मानते हैं। पंडितराज जगन्नाथ जहां उपमान और उपमेयमें अभेदात्मक संबंध स्वीकार करते हैं, वहां उनके सामान्य धर्मोंमें भी अभेदात्मकताको चाहते हैं। वस्तुतः पंडितराज जगन्नाथका मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है। (पृष्ठ : ३८)।

रूपक अलंकारके भेदोपभेदोंकी जटिलता और सूक्ष्मान्तरोंसे बोझिल तीसरा अध्याय इस अध्ययनका केन्द्रीय अध्याय है। इस एक अलंकारकी संरचनागत विविधतासे उपजे इसके भेदोपभेद, हमें न्याय-दर्शनके अन्तर्गत प्रमाणोंकी भेदगत जटिलता या शब्दकी तीसरी शक्ति 'व्यंजना' के अपरिमेय भेदोंके ऐन्द्रजालिक प्रभाव की याद दिलाते हैं। एक ओर लेखिका द्वारा धैर्यपूर्वक किया गया तथ्य-संकलन और उनका विश्लेषण-वर्गीकरण प्रशंसनीय है तो दूसरी ओर हमारे आचार्यों की तलस्पर्शी मेधा और प्रत्यय-विशेषके सूक्ष्मतम 'मृणाल-सूत्र' की न केवल पकड़, अपितु उसके लक्षण एवं स्वरूप-निर्णयकी प्रतिभा अद्भुत और चौंकानेवाली है। इसका कारण यह है कि कविकी प्रतिभा और



कल्पनाका कोई अन्त नहीं है, इसलिए इस अलंकारके भेदोपभेदोंका भी कोई अन्त नहीं है।

चौथा अध्याय, 'रूपकका अन्य अलंकारोंसे भेद' से संबन्धित है। लेखिकाका मन्तव्य है कि आरंभमें बहुत थोड़े अलंकार थे। धीरे-धीरे उनकी संख्या बढ़ती गयी और आचार्योंने जहां नये-नये अलंकारोंका आविष्कार किया, वहीं उनकी परिभाषाओंमें भी अपना-अपना मतभेद व्यक्त किया। (पृ. १०१)। इस प्रकरणमें रूपक अलंकारकी उपमा, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, परिणाम, अपह्नुति, सन्देह, भ्रान्तिमान्, निदर्शना, अतिशयोक्ति, साम्य, समुच्चय, अभेद इत्यादि जितनेभी सादृश्य-कुल धर्मके अलंकार हैं, उनसे तुलना करते हुए विभेदकी सूक्ष्मताको निरूपित किया गया है और वह अपने आपमें शोधार्थीके लिए क्लिष्ट-कठिन प्रक्रिया है। वास्तवमें बात यह है कि कविके कथनमें थोड़ा-सा भी अन्तर हो जानेपर अलंकारोंमें भेद होजाना अथवा उसमें समानताकी प्रतीति होना स्वाभाविक है।

इस रूपक अलंकारकी विकास-यात्रामें पंडितराज जगन्नाथके विवेचनको सबसे अंतिम और महत्त्वपूर्ण पड़ाव माना गया है। उनकी विख्यात कृति 'रसगंगाधर' का सारग्राही अनुशीलन करने हुए शोधके आशयके अनुरूप उपजीव्य एकत्रकर उसका विधिवत् परीक्षण किया गया है। 'रसगंगाधर' में अन्य आचार्यों द्वारा की गयी रूपक-परिभाषाओंकी आलोचनासे संबन्धित पुस्तकका पाँचवां अध्याय इस दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण हो उठा है। सभी उदाहरणोंका निष्कर्ष, लेखिकाके अनुसार यह है कि 'रूपक' में रहनेवाला 'अभेद' ही मुख्य धर्म है, यही रूपकका लक्षण है। पंडितराज जगन्नाथ द्वारा पूर्ववर्ती आचार्योंके विचारोंका खंडन करते हुए—लेखिकाने अनुभव किया कि "यद्यपि कई स्थानोंपर उनके द्वारा कीगयी आलोचना उचित है, तथापि कभी-कभी वे सीमाका उल्लंघन कर गये हैं। विशेषरूपसे यह बात अप्पयदीक्षितके खंडनके समय लगती है। कई स्थानोंपर तो वस्तुतः बालकी खाल उतारना ही लगता है। फिरभी यह तो कहनाही पड़ता है कि इनके जैसी आलोचना संस्कृत अलंकार-शास्त्रमें और किसीने नहीं की।" (पृ. १२४)।

इस प्रबन्धका छठा अध्याय पूरे अर्थचतुष्टयके साथ अनुसन्धानके मूल उद्देश्यको एक गौरवपूर्ण उपलब्धि-मूलक गांभीर्य प्रदान करता है, जिसमें पंडितराज

'प्रकर'—मई १२—८

जगन्नाथ द्वारा वर्णित रूपक स्थलीय शब्दबोध और रूपक ध्वनिके बारेमें अत्यन्त सूक्ष्मतासे विचारोंका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। 'शाब्दबोध'से अभिप्राय शब्दकी अभिधा-लक्षणादि शक्तियोंसे अभिप्रेत तात्त्विक और वास्तविकअर्थका निरूपण है। इतनाही नहीं, शब्दोंके पूर्वापर सम्बन्ध और पदविशेषकी प्रधानता और गौणतासे भी शाब्द-बोधका अनिवार्य सम्बन्ध होता है। यहां एक विशेष ध्यातव्य बात यह है कि रूपक अलंकारमें लक्षणा शक्तिका होना अनिवार्य है। यही नहीं, इस अध्यायमें पंडितराजके मतानुसार रूपक में संभावित दोषोंका भी निदर्शन किया गया है कि कवि-सम्प्रदायके विरुद्ध होनेके कारण जिन लिंग वचन आदि भेदोंके द्वारा चमत्कारमें न्यूनता उत्पन्न हो जाती है, उन्हें रूपकके दोष समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त, पंडितराज द्वारा रूपक-ध्वनिपर किये गये विचारका भी विदुषी लेखिकाने प्रत्याख्यान किया है कि जहाँ अभेद-प्रधानरूपसे व्यंग्य होता है, वहाँ वह ध्वनि रूपमें रहता है। इसके भी दो भेद किये हैं—शब्दशक्ति-मूलक ध्वनि और अर्थशक्तिमूलक ध्वनि।

अंतिम अध्याय 'उपसंहार' में समस्त शोधानुशीलन का क्रमवद्ध सारांश प्रस्तुत करते हुए लेखिकाने कतिपय महत्त्वपूर्ण स्थापनाएं की हैं—कि भरतमुनिसे लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक सभी आचार्योंने रूपक अलंकारका निरूपण किया है। परिभाषाके समानही सभी आचार्योंने रूपकके भेद तथा उपभेद किये हैं जैसे दण्डीने बीस भेद, भोजने चौबीस भेद तो मम्मट और विश्वनाथने मुख्यतः तीन और अवान्तर रूपसे आठ भेद स्वीकार किये हैं। यह भी कि पंडितराज जगन्नाथकी रूपकके क्षेत्रमें एक और भी विशिष्ट देन है शाब्दबोध प्रक्रियाका विवेचन। संपूर्ण गवेषणाका एकसूत्रीय निष्कर्ष यह दिया गया है कि "वस्तुतः अबतक जितने आचार्योंने भी अलंकारका विवेचन और विश्लेषण किया है, उन सबमें सबसे अधिक मान्य मत पंडितराज जगन्नाथका ही प्रतीत होता है।"

आलोच्य पुस्तकके उपर्युक्त क्रमिक विवेचनको ध्यानमें रखते हुए, चूंकि यह एक शोध-प्रबन्ध है, यह कहना होगा कि शोधकी सभी शर्तोंपर खरा नहीं उतरता। इसमें प्राचीन तथ्योंकी खोजसे हमारे ज्ञानका विस्तार तो होता है, किन्तु ऐसे नवज्ञात तथ्योंके परि-प्रेक्ष्यमें पुरानी मान्यताओंमें कोई परिशोधन नहीं होता।



वह अवश्य है कि लेखिकाने आद्यन्त तथ्योंपर अन्यासकृत वित्तसे विचार किया है तो साथही यह भी सच है कि इसमें लेखिकाकी मौलिक चिन्तना और स्वकीय वैचारिकता स्थान नहीं प्राप्त कर सकी है। गवेषणा गूढ़-सूक्ष्म है, किन्तु लेखिकाकी स्वकीयता लुप्त हो गयी है। वही सब कुछ कहा गया है, जो पहलेके आचार्य कह गये हैं। यह कमी, यदि हम विषयकी प्रकृतिको ध्यानमें रखें, तो लेखिकाकी विवशता बनकर सामने आती है, जो इस दृष्टिसे उपेक्षणीय है कि इसमें मौलिकता और निजी मन्तव्य रखनेका अवसर नहीं था। फिरभी, यह कहना पड़ेगा कि संस्कृत काव्य-शास्त्र, विशेषकर अलंकार-संप्रदायमें रुचि रखनेवाले जिज्ञासु अध्ययताओंके लिए 'रूपक अलंकार' का यह एकमें सर्वस्व सारभूत ऐतिहासिक संगृहीत विवेचन अपनी उपादेयताके लिए साधुवादका पात्र है। □

## दिनकरकी काव्यभाषा :

### शैली-वैज्ञानिक अध्ययन ?

लेखिका : डॉ. सरला परमार

समीक्षक : वेदप्रकाश अमिताभ

सात अध्यायोंमें विभक्त यह शोध प्रबंध दिनकर की काव्यभाषाका शैलीवैज्ञानिक अध्ययन करनेके उद्देश्यसे लिखा गया है। दो कारणोंसे यह प्रबंध पहली दृष्टिमें ही ध्यान आकर्षित करता है। एक तो यह अहिन्दीभाषी अनुसंधित्सुका प्रयास है दूसरे जिस त्रिषय को लेकर यह लिखा गया है वह शोधके नामपर 'बंडल' बांधनेकी प्रवृत्तिके अनुकूल नहीं पड़ता। 'शैलीविज्ञान' के सहयोगसे हिन्दी शोधके क्षेत्रमें एक नयी दिशा मिली है। प्रस्तुत शोधप्रबंध शैली वैज्ञानिक प्रतिमानों—विचलन, चयन, समान्तरता, अप्रस्तुत विधान आदिका उपयोग करते हुए दिनकरकी भाषा-सामर्थ्यकी पड़ताल करता है। डॉ. परमारने स्पष्ट किया है कि मेरा उद्देश्य दिनकरकी काव्यभाषामें शैलीवैज्ञानिक आधारोंकी अवस्थितिकी खोज मात्र नहीं है। दिनकरकी काव्य भाषापर डॉ. यतीन्द्र तिवारी और डॉ. सुरेन्द्र दुबेके

१. प्रका. : संस्कृति प्रकाशन, निशापोल, झवेरी बाड़, तिलक मार्ग, अहमदाबाद-३८०००१। पृष्ठ : १६४; डिमा. ६०; मूल्य : २६.०० रु.।

प्रबंध पहलेसे उपलब्ध हैं, परन्तु 'प्राक्कथन' में डॉ. परमारने दावा किया है कि उनका प्रबंध पूर्ववर्ती प्रबंधों की तुलनामें अधिक प्रासंगिक बन पड़ा है।

'शैलीविज्ञान' के नामपर बहुतसे पृष्ठ भरनेकी सुविधा होते हुएभी शोध-लेखिकाने पहले अध्याय 'शैलीविज्ञान और काव्यभाषा' में अत्यन्त संक्षेपमें शैली विज्ञानके आधारोंकी व्याख्या की है। प्रारंभमें ही स्पष्ट कर दिया गया है कि शैलीविज्ञान मात्र 'रूप' या 'शिल्प' तक सीमित नहीं है—'शैलीविज्ञान काव्यकृतिको अभिधापरक शब्द-प्रतीकोंका समुच्चय मानकर ही नहीं चलता वरन् वह प्रतीकोंसे उत्पन्न अभिव्यक्तिके विश्लेषण द्वारा 'कथ्य' तक पहुंचानेका प्रयत्नभी करता है।' (पृ. १)। स्वयं शोधलेखिकाने स्थान-स्थानपर इसी प्रकारका 'प्रयत्न' किया है। दिनकरके भाषा प्रयोगोंको केन्द्रमें रखते हुए उनके भावबोध और वैचारिक ऊर्जाकी ओर संकेत करनेमें उसे सफलता मिली है। एक स्थानपर 'इतिहासके आंसू' की पंक्तियोंको उद्धृत करते हुए दिखाया गया है कि किस प्रकार 'व्यथा', 'परिताप' और 'पश्चाताप'—तीन अलग शब्दोंके माध्यमसे वेदनाकी गहनताको उभारना कविका अभीष्ट है (पृ. ८४)। इसी प्रकार एक स्थानपर उर्वशीकी कुछ पंक्तियां देनेके बाद डॉ. परमारने लिखा है—'उपमा और दृष्टान्तके इस सम्मिलित प्रयोगमें मातृत्व की गरिमाकी मार्मिक और सबल व्यंजना हुई है' (पृ. १६२)। भाषाको केन्द्रमें रखते हुएभी कथ्य और शिल्पका संश्लिष्ट विवेचन इस प्रबंधकी उल्लेखनीय विशेषता है।

प्रबंधके द्वितीय अध्याय ('दिनकर काव्यका विकासात्मक अध्ययन') में दिनकरके समग्र काव्यका परिचय दिया गया है। यह अध्याय आवश्यक प्रतीत नहीं होता। अच्छा होता कि कविता, काव्यभाषा और शैली संबंधी दिनकरके विचारोंपर आधारित कोई एक अध्याय रचा जाता। तृतीय अध्यायमें दिनकर काव्यके व्याकरणिक एवं भाषिक विचलनकी मीमांसा हुई है। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, कारक, लिंग, उपसर्ग, अर्थ, क्रम, मुहावरा-लोकोक्तिसे संबंधित विचलनका अनुशीलन करते हुए इस निष्कर्षपर पहुंचा गया है कि दिनकर अपनी काव्य-शैलीमें परिवर्तनके समर्थक रहे हैं। पद-संरचनामें दिनकरने कम परिवर्तन किया है, परन्तु काव्यको लयबद्ध करनेके प्रयासमें पद-क्रम और शब्द-क्रम

'प्रकर'—ज्येष्ठ २०४६—६



में उलटफेरके उदाहरण मिल जाते हैं (पृ. ६६) । चतुर्थ अध्याय (चयन) में 'ध्वनि-चयन', 'शब्द-चयन', 'रूप-चयन', 'वाक्य-चयन' और 'अर्थ-चयन' की परख हुई है। गंभीर विवेचनके उपरान्त डॉ. परमार इस परिणामपर पहुंची हैं कि दिनकर चमत्कारमें विश्वास न रखते हुए भी कथन-वक्रताके पोषक थे। उनकी कथन-वक्रता शब्द-चयन और अर्थ-चयनपर आधारित है। "सुन्दर शब्द-विधानके कारण ही दिनकरकी काव्यभाषा में लाक्षणिकता, अर्थ-गंभीर्य और चित्रविधानका संश्लिष्ट प्रयोग हो सका है" (पृ. ११२) । 'समान्तरता' शीर्षक पाँचवें अध्यायमें बाह्य समान्तरता और आन्तरिक समान्तरता आदिको कसौटीपर दिनकर काव्यको कसा गया है। अंततः पाया गया है—“दिनकर ने मात्र तुककी मांगके लिए अथवा काव्यको गेय बनाने के लिए ही भाषा-प्रयोगमें नवीनताका समावेश नहीं किया, अपितु उन्होंने समध्वनीय, समरूपीय, समशब्दीय अथवा समार्थीय शब्दोंके प्रयोगसे काव्य-वितानको इस प्रकार सजाया है कि वह अधिक ध्वन्यात्मक, व्यंजक, रोचक, सरस एवं भावानुकूल हो गया है।” (पृ. १३०) । पष्ठ अध्याय ('अप्रस्तुत विधान') प्रबंधका सबसे बड़ा अध्याय है। इसमें उपमानों और बिम्बोंका अनुशीलन करते हुए यह जांचनेका प्रयास किया गया है कि अर्थ-ग्रहणके साथ 'बिम्बग्रहण' करानेमें दिनकरकी काव्य-भाषा कहां तक सक्षम सिद्ध हुई है। 'उपसंहार' में निष्कर्षोंको समेटा गया है।

## भाषा विज्ञान

### हिन्दीका सामाजिक संदर्भः

सम्पादक-द्वय : डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव  
डॉ. रमानाथ सहाय

समीक्षक : डॉ. तिलकसिंह

प्रस्तुत सम्पादित कृति १७ निबन्धोंका संकलन

१. प्रकाशक : केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा-२८२-००५ । पृष्ठः २६५; डिमा. ८४ (पुनर्मुद्रण); मूल्य : ३०.०० रु.।

'प्रकर'—मई ६२—१०

सम्पूर्ण शोधप्रबंध शोध लेखिकाके परिश्रम, तथ्य-विवेचन शक्ति और निर्णयशीलताका प्रमाण देता है। प्रायः अनावश्यक विस्तार या स्फूर्तिसे बचा गया है और अपने निष्कर्षों तक पहुंचनेमें दूसरोंके उद्धरणोंकी बेसाखियोंका प्रयोग न के बराबर है। लेखिकाकी भाषा भी प्रबंधोचित गरिमा और गंभीर्य लिये हुई है। 'पष्ठम्' जैसे चिन्त्य प्रयोग बहुत कम हैं। इस प्रबंधमें उपसंहार को भी एक अध्याय माना गया है। शोधनिर्देशकों और अनुसंधितसुत्रोंको इस बातपर विचार करना चाहिये कि क्या 'उपसंहार' को भी अध्यायोंके अन्तर्गत रखना उचित होगा? ग्रंथानुक्रमणिका देकर शोधप्रविधिका पालन किया गया है। लेकिन अच्छा होता कि उपजीव्य और उपस्कारक ग्रंथोंके प्रकाशकों और संस्करणोंका उल्लेख भी किया जाता, यद्यपि इन छुटपुट असंगतियोंसे शोधप्रबंधका स्तर और महत्त्व प्रभावित नहीं होता। निश्चयही यह एक अच्छा और गंभीर शोधप्रबंध है। यह सुखद आश्चर्य है कि लगभग दो सौ पृष्ठके शोध-प्रबंधका मूल्य केवल छब्बीस रु. है। दिल्लीका कोई प्रकाशक इसे छापता तो कमसे कम डेढ़ सौ रु. मूल्य रखता। गुजरात विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच. डी. की उपाधसे विभूषित और विश्वविद्यालय अनुदान आयोगसे आर्थिक सहायता-प्राप्त इस प्रबंधको कम मूल्यपर उपलब्ध कराकर प्रकाशकने निश्चयही साहस का परिचय दिया है। □

है। इनमें पहला लेख सम्पादक डॉ. रवीन्द्रनाथ श्री-वास्तव द्वारा लिखित "आधुनिक-भाषा-विज्ञानका सामाजिक संदर्भ" है और भूमिकाके रूपमें २२ पृष्ठका है जिसमें भाषा विज्ञानके तीनों आयामों—संरचनात्मक भाषा-विज्ञान, मनोभाषा-विज्ञान, समाज-भाषा-विज्ञान—का सैद्धान्तिक परिचय दिया गया है। लेखकी सामग्री तथा प्रस्तुतन पक्ष स्तरीय हैं। पश्चिमी भाषा वैज्ञानिकोंके सिद्धान्तोंका प्रक्षेपण होनेके कारण



व्यवहारिक स्तरपर हिन्दीके संदर्भमें बहुत उपयोगी नहीं कहा जा सकता। हिन्दी तथा उसकी बोलियोंके विश्लेषण-विवेचन भारतीय समाजके संदर्भमें अपेक्षित है। दूसरा निबन्ध मोहनलाल सर द्वारा लिखित "भाषा समुदायके संदर्भमें हिन्दी" है। इस निबन्धका आधा भाग भाषा-विज्ञानके प्रकारोंके सैद्धान्तिक विवेचनसे सम्बन्धित है। आधा भाग हिन्दीके संदर्भमें सिद्धान्तोंकी चर्चा है। हिन्दीके कौन-कौनसे रूप किन-किन प्रयोजनोंकी सिद्धिमें प्रयुक्त होते हैं। हिन्दीकी प्रकृति क्या है, आदिकी चर्चाही प्रभावी रही है। 'बोली भाषा सम्पर्क एवं मानकीकरणकी प्रक्रिया' सर्वाशकुमार रोहराका सैद्धान्तिक लेख है। संरचना, बोधगम्यता, मानकता तथा मानकीकरणके सोपानों का आदर्श हिन्दीके संदर्भमें अच्छा विवेचन किया है। गाँविन, फर्ग्युसन तथा हाँगनके मतोंका भी संकेत किया है। मानकीकरणके सिद्धान्तोंकी चर्चा उक्त भाषा-विदोंके संदर्भमें की है। हिन्दी तथा उसकी बोलियोंके विश्लेषण-विवेचनकी आवश्यकता है। मानकीकरणके सिद्धान्तोंकी चर्चा भी इन्हींके संदर्भमें अपेक्षित है। "हिन्दीका समान कोड तथा सर्वसमावेशी अभिरचना" चन्द्रप्रभाका लेख है। इसमें लेखिकाने हिन्दीकी स्व-निर्मित व्यवस्थाका सामाजिक संदर्भमें विवेचन किया है। निबन्धका आधा भाग समाज भाषाविज्ञानके सैद्धान्तिक विवेचनसे सम्बन्धित है। आधे भागमें हिन्दी, अरबी, फारसी तथा अंग्रेजीकी ध्वनियोंका विवेचन है। इस निबन्धमें सामाजिक वैशिष्ट्य प्रतिपादित नहीं हुआ। हिन्दीकी संरचनामें अरबी-फारसी तथा अंग्रेजीकी ध्वनियोंके प्रयोगके होते हुए भी रचना घटकोंका रचनागत वैशिष्ट्य बना रहता है। हिन्दीमें अघोष अल्पप्राण तथा सघोष अल्पप्राण ध्वनियोंका द्वित्व रूप मिलता है, अरबी-फारसी तथा अंग्रेजीकी ध्वनियों में यह विशेषता नहीं मिलती—इस वैशिष्ट्यका लेखिकाने कहीं संकेत नहीं किया। 'भाषाका सामाजिक परिप्रेक्ष्य' पुष्पा श्रीवास्तवका लेख है। इसमें वनंस्टीनके विस्तृत तथा सीमित कोडोंका सैद्धान्तिक संकेत तथा इन सिद्धान्तोंके प्रेरक आधारोंकी चर्चा है। समाजीकरणकी प्रक्रिया का भी परिचय दिया गया है। लेखकोंने दो श्रमिक वर्गों तथा दो मध्य वर्गोंकी छात्राओंकी भाषाका अध्ययन चित्रोंके आधारपर कहानी लिखवाकर किया

है। लेखिकाने कहानियोंमें प्रयुक्त शब्द विन्यास तथा वाक्य विन्यासके प्रयोगोंके आधारपर दोनों प्रकारके वर्गोंकी सामाजिकताका संकेत किया है। यह मूल्यांकन विदेशी पद्धतिपर अवलम्बित होनेके कारण भारतीय समाजके स्तर भेदोंको सही दिशामें रचनाधर्मिताके संदर्भमें निरूपित नहीं कर सका है। कहानी-लेखनसे अनौपचारिक सामाजिक सम्बन्धोंका ज्ञान नहीं होता।

"बहुभाषिकता हिन्दी भाषा समाज और हिन्दी शिक्षा डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तवका लेख है। इस लेख के तीन भाग हैं :—

१—बहुभाषिकता

२—हिन्दी भाषा समाज

३—हिन्दी शिक्षा

लेखनमें तीनों बिन्दुओंके क्रमिक सम्बन्धोंका तो निर्वाह हुआ है परन्तु हिन्दी शिक्षणकी प्रक्रियागत बात कहकर छोड़ दी गयी है। बोली भाषा शैलीके अन्तः सम्बन्धोंका संकेत तो किया है परन्तु व्यावहारिक तथा प्रयोग स्तरपर बंगला, तेलुगु तथा तमिलके उदाहरण दिये हैं। हिन्दीकी प्रत्येक बोलीमें प्रयोग स्तरपर भाषा, बोली तथा शैली भेद मिलते हैं। ब्रज, अवधी, भोजपुरी कौरवी तथा बाँगरू आदि प्रत्येक क्षेत्रीय बोलियोंमें भाषिक तथा सामाजिक स्तर भेदजन्य शैली भेद मिल जाते हैं। प्रयोग स्तरपर ही नहीं ब्रजके लिखित साहित्य में भी ये भेद-प्रभेद परिलक्षित होते हैं। प्रौढ़ शिक्षा, प्रारम्भिक शिक्षा, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षाके संदर्भोंके बोली समाजोंका अध्ययन अपेक्षित है।

डायग्लोसिया (भाषा द्वैत)—बी. ए. जगन्नाथन का विचारगमित लेख है। लेखकने फर्गुसनके "डायग्लोसिया" लेखके मूल बिन्दुओंका विवेचन किया है। फर्गुसनकी भाषा-द्वैत सम्बन्धी तीन मान्यताओंका उल्लेख हुआ है—१-लोक साहित्यकी प्रचुरता, २-उच्च वर्गीय शिक्षा, ३-कालकी दीर्घता। एक ही भाषा उक्त तीनों आधारोंके संदर्भमें भाषा-द्वैतकी स्थितिमें आ जाती है। एक ही भाषा अथवा बोलीके प्रयोगगत भाषिक प्रभेद भाषा-द्वैतकी कोटिमें आते हैं। वस्तुतः सामाजिक स्तरभेद शैली भेद उत्पन्न करता है और यह स्थिति प्रत्येक भाषामें प्रत्येक कालमें देखी जा सकती है। यह शैली भेद विषय तथा संदर्भ भेदसे ही उत्पन्न होता है। अतः भारतीय भाषायी तथा बोलौगत संदर्भ में भाषा-द्वैतका निर्धारण अपेक्षित है। लेखकने विदेशी



भाषासे जन्मे सिद्धान्तोंका दक्षिण भारतीय भाषाओं पर आरोप किया है।

सामाजिक स्तर भेद और हिन्दीकी सामाजिक शैलियों कृष्णकुमार गोस्वामीका लेख है। लेखकने ट्रिजिल, गंमर्ज, केलकर, श्रीवास्तव तथा दासदानीके शैली विषयक मतभेदोंकी चर्चा की है। लेख सैद्धान्तिक बनकर रह गया है, विवेचन स्तरीय रहा है। लेखकने आप और तुमके प्रयोगगत संदर्भोंकी भी चर्चा की है। इस चर्चाके विभिन्न आयाम संकेतित भी नहीं हुए हैं। भाषा परिवेशजन्य मानव संवेगोंसे भी संचालित तथा प्रभावित होती है। मूल्य, मान्यता, तथा मर्यादागत वैशिष्ट्यभी शैली प्रभेदोंको प्रभावित करता है। आवश्यकता प्रयोगगत विभिन्न संदर्भों तथा उनके प्रेरक तथा संचालक आधारोंके सहसम्बन्धोंके परिज्ञानकी है। इनका संकेतभी इस लेखमें नहीं हुआ है।

“पिजिन और क्रियोल, हिन्दीके संदर्भमें” धर्मपाल गांधीके लेखमें पिजिन तथा क्रियोलको सैद्धान्तिक स्तरपर परिभाषित करके हिन्दी तथा मराठी हिन्दीके पिजिन रूपको स्पष्ट किया गया है। वास्तविकता यह है कि लेखकके मस्तिष्कमें पश्चिमी भाषाविदोंके सिद्धान्त प्रभावी हैं। उनका प्रक्षेपण मराठी-हिन्दीपर किया है। भाषाओं परिवर्तन सामाजिक सम्पर्क, सम्मिश्रण तथा सम्मिलनकी प्रक्रिया स्वरूप उत्पन्न होता है। पिजिन तथा क्रियोल भाषाएँ सामाजिक सम्मिश्रणकी प्रक्रिया के मापक है या सामाजिक सम्मिश्रणकी बहुरूपता तथा सघनता पिजिन तथा क्रियोलकी प्रक्रियाओंको प्रादुर्भूत करती है। हिन्दीकी प्रत्येक क्षेत्रीय बोलीमें यह स्थिति मिलती है। लेखकने हिन्दी बोली-क्षेत्रपर ध्यान नहीं दिया है।

“सम्भाषणके विभिन्न पक्षोंका समाज-भाषा वैज्ञानिक अध्ययन” अशोक कालराके लेखमें विदेशी भाषाविदोंका उल्लेख अधिक है। हिन्दी सर्वनामों तथा अभिवादनपरक शब्दोंके माध्यमसे भारतीय समाजके सांस्कृतिक पक्षका संकेत किया है। लेखकका विवेचन स्तरीय है। लेखकने हिन्दी सम्बोधन शब्दावलीका भी उल्लेख किया है। विवेचनमें गहनता, स्पष्टता, तात्त्विकता तथा क्रमबद्धता विद्यमान है। फिरभी विवेचन शीर्षकके अनुकूल नहीं है। सम्भाषणके सभी पक्षोंके विवेचनका संकेत नहीं मिलता, साथही जोभी उदाहरण दिये गये हैं, वे मानक हिन्दीसे ही सम्बद्ध हैं। अतः

विवेचन एकांगी हो गया है।

“हिन्दीमें टैबू प्रयोग” उमाशंकर सतीशके लेखमें एकभाषीय, द्विभाषीय तथा अन्तःभाषीय आधारपर वर्ज्य प्रयोगोंका संकेत किया है। आधार विदेशी विद्वानों के प्रयोगगत मत हैं। लेखमें प्रयुक्त वर्ज्य प्रयोग बहुत ही स्थल हैं साथही अपभाषासे सम्बद्ध कहेजा सकते हैं। वर्ज्य प्रयोगोंमें गालियाँ, अश्लील शब्दोंका प्रयोग, शकुन-अपशकुन, टोना तथा टोटका सम्बन्धी शब्दावली आती है। इसकी चर्चा नहीं की गयी।

“वैशना नारंगका नाते-रिश्तेकी आधारभूत शब्दावली” लेख भी सांकेतिक तथा एकांगी है। पश्चिमी विद्वानोंके लेखोंके अध्ययनके आधारपर लिखा गया है। विदेशी चश्मा लगाकर भारतीय संस्कृति, तथा उसके रचना घटकोंको नहीं समझा जा सका। आवश्यकता भारतीय संस्कृति, धर्म, शिक्षा, दर्शन तथा समाजको समझनेकी है। तभी नाते-रिश्तेकी शब्दावलीका विवेचन किया जा सकता है। “रंगकी आधारभूत शब्दावली” शारदा भसीनका लेख है। यह लेखभी अन्य लेखोंकी भांति सतही, एकांगी तथा गहन अध्ययनसे विरत मानसिकतापर आधारित है। लेखमें एक वाक्य है ध्वनियोंकी ही भांति कुछ रंग आधारभूत (मूल) हैं तथा अन्य व्युत्पन्न। यह वाक्य अर्थ प्रक्रियाकी दृष्टिसे संगत नहीं है। रंग व्युत्पन्न नहीं विकसित हैं। रंगोंकी आधारभूत शब्दावली व्युत्पन्न कहीजा सकती है। ‘रंग’ समाजकी अभिरुचि, मानसिकता तथा सांस्कृतिक प्रकृतिके बोधक होते हैं। यह लेखसे कहींभी स्पष्ट नहीं है। “हिन्दीके सम्बोधनकी आधारभूत शब्दावली” भारतीय संस्कृति तथा समाजके मानक पक्षतक सीमित रही है। इससे सामाजिक अन्तःसम्बन्धभी इंगित नहीं हुए हैं। विवेचन स्तरीय है। “हिन्दी और सामासिक संस्कृति” गोपाल शर्माका प्रेरक लेख है। तथ्योंकी स्तरीयता तथा विवेचनकी सघनता विद्यमान है। हिन्दीकी सामासिक संस्कृतिको हिन्दीकी संरचनाका विश्लेषण-विवेचन करके उसमें प्रयुक्त भारतीय तथा भारतेतर भाषा तत्त्वोंके संदर्भमें ही समझाजा सकता है। विवेचन सैद्धान्तिक ही अधिक रहा है। ‘संविधानमें हिन्दी’ शेरबहादुर झाका लेख है। लेखमें संविधानकी धाराओंके अनुच्छेदोंकी चर्चा अधिक है इसके प्रयोग पक्षकी सकारात्मक तथा सम्भावनात्मक स्थितियोंको कहींभी रेखांकित नहीं किया गया।



“प्रयुक्तिकी संकल्पना और कार्यालय हिन्दी” लेखमें ठाकुरदासने सैद्धान्तिक चर्चा अधिक की है। एक दो कार्यालयी हिन्दीके उदाहरण देकर इतिश्री मान ली है। अनुभाग, विभाग तथा क्षेत्र-भेदसे प्रयुक्त बदलती है। कतिपय क्षेत्रोंसे उदाहरण देकर इसे स्पष्ट करना चाहिये था। यह नहीं हुआ ! अन्तमें पृष्ठ सं. २८१ से २९५ तक संदर्भ ग्रन्थोंकी सूची है। प्रत्येक लेखके अन्तमें भी ग्रन्थ सूची दी गयी है। अधिकांश संदर्भ ग्रन्थ विदेशी विद्वानोंके हैं। हिन्दी विद्वानोंके जिन ग्रन्थोंकी चर्चा है वे समाज-भाषाविज्ञानसे असम्बद्ध हैं। उक्त सभी लेखोंके आधार विदेशी विद्वानोंके संदर्भ ग्रन्थ रहे हैं परन्तु लेखके विवेचनमें कहीं भी मूलतः या अनुवादतः उद्धरण नहीं दिये गये। ऐसा लगता है कि विदेशी विद्वानोंके लेखोंको पढ़कर उनके सिद्धान्तोंको अपने वाक्योंमें कह दिया है। उक्त कोई भी लेख लेखन-

पद्धतिको स्पष्ट नहीं करता। लेखन-पद्धतिके दो रूप हैं—पहला यह है कि विषयका कथ्य-वैविध्यके संदर्भमें विवेचन किया जाये—विवेचनसे सिद्धान्त निर्धारित किये जायें। इन सिद्धान्तोंके संदर्भमें विदेशी विद्वानोंके सिद्धान्तोंको सत्यापित किया जाये। दूसरी पद्धतिमें लेखके सम्बन्धमें विदेशी विद्वानोंके मतोंकी समीक्षा की जाये फिर लेखगत विषयकी संरचनाका वस्तुनिष्ठ विश्लेषण-विवेचन करके अपने मतको निरूपित किया जाये। दोनोंमें पहला मत अधिक वैज्ञानिक है।

फिर भी उक्त सभी लेख समाज-भाषाविज्ञानके सिद्धान्त पक्षके संदर्भमें आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण सूचना प्रदान करते हैं। हिन्दी शोधकोंको हिन्दी तथा उसकी बोलियोंके संदर्भमें उक्त मतोंके सत्यापन तथा साक्ष्यांकन करने हैं। □

## शिक्षा-चिन्तन और ओशो

१. शिक्षामें क्रान्ति २. शिक्षा और विद्रोह  
३. शिक्षा और जागरण ४. शिक्षा : नये प्रयोग

सभीके लेखक : ओशो

सम्पादन : स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्त्व/

स्वामी योग अमित

समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

ओशो !

रजनीशसे यात्रा प्रारंभ करके आचार्य रजनीश और फिर भगवान् रजनीश बननेवाले इस युगके एक

१. प्रका. : डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि., २७१५, दरियागंज, दिल्ली-११०००२। पृष्ठ क्रमशः २०८, १६०, २०८, १८४, सभी क्राउन ६०; मूल्य प्रत्येक : १५.०० रु.।

ऐसे विचारक, जो अपनी रोचक आकर्षक प्रभावी शैली एवं सरल भाषामें सामाजिक जीवनकी पूरी विसंगतियोंकी ओर ध्यान आकृष्ट करके और अंधविश्वासों पर प्रहार करके अपनी क्रान्तिदर्शितासे प्रबुद्धजनोंको आकर्षित करते रहे, जिनकी महात्माओं जैसी पारम्परिक बाह्याकृति उनकी जीवनशैलीके कुछ पक्षोंसे जरा भी मेल नहीं खाती थी जिसमें वातानुकूलित विदेशी कारों रखना, उन्हें बार-बार बदलना, हीरे लगी टोपी पहनना जैसी चीजें भी शामिल हैं, जिनके अनेक विचार चार्वाककी याद दिलाते थे, जो गुरुडमका विरोध करके भी स्वयं गुरु बने, जो सदा विवादोंके घेरेमें रहे, जो अपने देशको निकम्मा, मरा हुआ और भविष्यहीन बताकर अपना स्वप्नलोक बसाने “धरतीके स्वर्ग” में चले गये, पर वहांसे अपमानित और निष्कासित होकर दूसरे स्वर्गकी तलाशमें भटकनेके बाद पुनः “धर” लौट आये। पर अब, जब वे हमारे बीच नहीं हैं, तब विचार

‘प्रकर’—ज्येष्ठ २०४६—१३



करनेपर लगता है कि वे एकदम भुला देने योग्य भी नहीं हैं। अतः यह आवश्यक है कि उनके वाङ्मयका मंथन करके मानव जातिका हित सिद्ध करनेवाला नवनीत निकाला जाये।

ओशोकी जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें से अधिकांशमें उनके व्याख्यान तथा श्रोताओंके प्रश्नोंके उत्तर संगृहीत किये गये हैं। समीक्ष्य पुस्तकोंमें भी “शिक्षा और जागरण” में केवल कुछ प्रश्नोत्तर, तथा शेष तीनोंमें व्याख्यान एवं प्रश्नोत्तर दोनों संकलित किये गये हैं। निश्चित रूपसे तो पता नहीं, पर अनुमान है कि पुस्तकोंकी विषय-वस्तुका निर्णय उनके शिष्योंने किया है जिनका ध्यान संभवतः पुस्तकोंकी संख्या बढ़ाने पर ही रहा है। इसीलिए इनमें कुछ ऐसे व्याख्यानों/प्रश्नोत्तरोंका भी समावेश कर लिया है जो शिक्षासे उतनेही संबंधित हैं जितना ओशोका शेष माहित्य। जैसे, “शिक्षा : नये प्रयोग” शीर्षक पुस्तकमें “प्रेम, विवाह और बच्चे”, “युकांद क्या है”, “अज्ञातके नये आयाम” या “शिक्षा और विद्रोह” शीर्षक पुस्तकमें, “साध्य और साधन”, “अखंड जीवनका सूत्र” आदि। पुस्तकोंमें संगृहीत व्याख्यान अलग-अलग अवसरोंपर दिये गये, अतः उनमें विषयवस्तुकी पुनरावृत्ति भी हुई है। किसी एक व्याख्यानमें योंभी आवृत्ति प्रायः आवश्यक होती है। फिर व्याख्यान देनेकी ओशोकी जो व्यास शैली थी, उसमें पुनरावृत्ति औरभी होती थी। उनके व्याख्यानोंमें कहानियां सुगुम्फित रहती थीं। इन कहानियोंकी भी अलग-अलग व्याख्यानोंमें आवृत्ति हुई है। इन पुस्तकोंके सम्पादकोंने व्याख्यान/प्रश्नोत्तर और पुस्तक लेखनमें अंतर करना आवश्यक नहीं समझा, वरना इन चारों पुस्तकोंकी शिक्षासे संबंधित सामग्री सम्पादित करके एक-दो पुस्तकोंमें भली प्रकार संयोजित की जा सकती थी।

भारतमें ही नहीं, विश्वमें इस समय बच्चोंको जिस प्रकारकी शिक्षा सामान्यतया दी जा रही है उससे सभीको संतोष कम, असंतोष अधिक है। असंतोषके कारण लोगोंके अपने-अपने हैं। अधिकांश लोगोंके लिए शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है—आजीविकाके लिए तैयार करना। पर शिक्षित बेरोजगार या अल्प रोजगार युक्त लोग सर्वत्र विद्यमान हैं। अतः स्पष्ट है कि यह उद्देश्य पूरा नहीं हो रहा है। जो लोग शिक्षाके वास्तविक उद्देश्योंसे परिचित हैं, उन्हें “रटनेपर बल देनेवाली” केवल

नौकरीके लिए, वहभी अधूरे रूपमें तैयार करनेवाली शिक्षासे औरभी अधिक असंतोष है। योगिराज अरविन्दने तो लगभग एक शताब्दी पूर्व कहाया कि आधुनिक भारतीय शिक्षा न तो आधुनिक है, न भारतीय, और न शिक्षा। इस एक शताब्दीमें शिक्षामें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है। इसीलिए असंतुष्टोंकी संख्याभी बढ़ती गयी है। असंतुष्टोंकी इसी शृंखला की नयी कड़ी हैं, “ओशो” जिन्होंने अपनी जीवन यात्रा वर्तमान शिक्षा व्यवस्थामें एक शिक्षकके रूपमें ही आरम्भ की, और जो बादमें, आजीवन सही अर्थोंमें शिक्षकही बने रहे।

वर्तमान शिक्षाकी प्रमुख विसंगति यह है कि यद्यपि शिक्षाका प्रसार सभी देशोंमें बराबर हो रहा है, विश्वमें कोई पांच हजार पुस्तकें प्रति सप्ताह छप रही हैं, नये विश्वविद्यालय खुलते जा रहे हैं, विद्यार्थियोंकी संख्या बराबर बढ़ती जा रही है, परन्तु दुःख और बढ़ता जा रहा है, अशान्ति बढ़ती जा रही है, पीड़ा बढ़ती जा रही है, और मानवता नीचे गिरती जा रही है। युद्ध घातकसे और घातक होते जा रहे हैं, घृणा और व्यापक हो रही है। स्पष्ट है कि कहीं मूलमें ही कोई खराबी है क्योंकि शिक्षाका उद्देश्य तो मानवताको ऊंचा उठाना है, प्रेमका विस्तार करना है, व्यक्तिकी स्वतंत्र आत्माको जन्म देना है। हमारी धरतीपर पिछले पांच हजार वर्षोंमें आर्थिक और राजनीतिक क्रान्तियां तो हुई, पर शिक्षामें अबतक कोई मूल क्रान्ति नहीं हुई। इसीलिए यह विचारणीय हो गया है कि क्या शिक्षामें मूलतः क्रान्ति हुए बिना मनुष्यकी संस्कृतिमें कोई क्रान्ति हो सकती है (विद्रोह, पृ. ६, ५१, क्रान्ति, पृ. ५१)।

इस शिक्षाका सबसे बड़ा दोष यह है कि यह प्रतियोगितापर आधारित है। प्रतियोगिता यानी हर दूसरेसे आगे निकलनेकी एक पागल दौड़। प्रथम स्थान पर खड़े होनेकी महत्वाकांक्षा। महत्वाकांक्षाका यह ज्वर हम व्यक्तिमें जितना भर देते हैं, उसे उतनाही शिक्षित मान लेते हैं। पहलेही वर्षसे हम बच्चोंको सिखाते हैं दौड़, आगे निकलनेकी दौड़, हम सिखाते हैं प्रतिस्पर्धा, कांपिटीशन। हम सिखाते हैं तुम पीछे मत रुकना, आगे निकल जाना और सबसे प्रथम खड़े हो जाना। हम यह भूल जाते हैं कि हर व्यक्तिका अपना व्यक्तित्व होता है जिसकी तुलना किसी औरसे नहीं हो सकती। शिक्षाका काम उस व्यक्तित्वकी संभावनाओं



को विकसित करना है। इसीलिए सुकरातने कहा था कि शिक्षक को नयी आत्माके जन्म देनेमें दाईका, मिडवाइफ का काम करना है, पर हम हर बच्चेसे आशा करते हैं कि वह दूसरे बच्चे जैसा बन जाये। इसीलिए हम तुलना करते हैं और प्रथम स्थानपर आनेकी सफलताको महत्त्वपूर्ण मानते हैं (विद्रोह, पृ. ३४-४२, ८१, क्रान्ति, पृ. ७६-८०)।

जो प्रथम आ जाता है, उसका आनन्द यह नहीं होता कि मैं प्रथम आ गया हूँ, उसका आनन्द यही होता है कि मैंने दूसरोंको प्रथम नहीं आने दिया है, पीछे छोड़ दिया है। अर्थात् हम हिंसा सिखा रहे हैं। दूसरेके दुःखमें सुख अनुभव करना सिखा रहे हैं। हम लोगोंसे कहते हैं ईर्ष्या मत करो, हिंसा मत करो, जलन मत करो, पर हमारी पूरी शिक्षा ईर्ष्यापर खड़ी है। एक बच्चेको प्रथम लानेके लिए उन्तीस बच्चे विपन्न किये जा रहे हैं, निराश किये जा रहे हैं, उदास किये जा रहे हैं। और ये सफल दस पाँच लोग संसार-विश्व नहीं बनाते, विश्व बनाते हैं वे सब, जो पीछे रह गये, असफल होगये। इन निराश, हताश, उदास, असफल, अपमानित, थके हुए, हारे हुए लोगोंसे यह विश्व स्वर्ग नहीं बन सकता, यह तो नरक बनना निश्चित है। आगे होनेकी इस होड़का प्रारम्भ विद्यालयोंसे होता है और फिर कब्रिस्तान तक चलता है। व्यक्तियोंमें यही दौड़ है, और राष्ट्रोंमें भी यही दौड़ है। युद्ध इस दौड़के ही तो अंतिम फल है। (विद्रोह, पृ. १२, ३५-३६, ५५-५६, ८१, प्रयोग, पृ. २२, ८४-८५, क्रान्ति, पृ. ८६-८९, जागरण, पृ. ५२-५४)।

इसके अतिरिक्त, यह शिक्षा विचार करना नहीं सिखाती, यह तो बस दूसरोंके विचार देकर तृप्त हो जाती है और बच्चोंसे आशा करती है कि वे दूसरोंके इन विचारोंको किसी प्रकार रट लें। यह विचार संग्रह जड़ता लाता है। जीवनमें आवश्यकता होती है बुद्धिमत्ता की, विवेककी, जबकि शिक्षा देती है स्मृति। यांत्रिक स्मृतिपर इतना बल विचार और विवेकके आविर्भावके लिए पातक सिद्ध होता है। यही कारण है कि विश्व-विद्यालय जिन्हें गोल्ड मैडल देता है, जीवन उन्हें मिट्टीके पैडलभी नहीं दे पाता। वे गोल्ड मैडलिस्ट जीवनमें कहां खो जाते हैं, पता नहीं चलता। जीवनमें उनकी कहीं कोई उपादेयता नहीं मालूम पड़ती, बल्कि कई बार तो ऐसा होता है कि विश्वविद्यालयमें जिसकी कोई

गणना नहीं थी, वह जीवनमें बड़ा प्रतिभावान् सिद्ध होता है (क्रान्ति, पृ. ३३-३४, प्रयोग, पृ. १०, जागरण, पृ. ५५, विद्रोह, पृ. ३६)।

हम लोगोंको इंजीनियर बना रहे हैं, डाक्टर बना रहे हैं, यूरोप और अमरीका भेज रहे हैं और यह मान लेते हैं कि हम उन्हें विद्वान् बना रहे हैं, पर हम तो उन्हें केवल रोटी कमानेकी कुशलता सिखा रहे हैं, विद्यावान् नहीं बना रहे हैं, विद्यासे उनका कोई नाता नहीं जोड़ रहे हैं। विद्याका नाता है, जीवनमें श्रेष्ठतर मूल्योंके जन्मसे। विद्या वही है जो मुक्त करे। विद्या वही है जो निर्भय करे, साहस भरे, प्राणिमात्रसे प्रेम करना सिखाये, प्रसुप्त विवेकको जगाये, स्वतंत्र विचारकी क्षमता विकसित करे, विद्रोहकी शक्ति दे, जीवनकी कला सिखाये, सहज स्वतःस्फूर्त विकास करे और जो आत्म-परिष्कार, आत्म-साधना, स्वयंसे निरन्तर ऊँचे उठते जाना सिखाये। (विद्रोह, पृ. ५०-६३, प्रयोग, पृ. १२-१६, क्रान्ति, पृ. ७८-८६)।

शिक्षाका एक दायित्व है संस्कृतिका नयी पीढ़ीको हस्तान्तरण, पर इस आड़में समाज वस्तुतः अपनी पुरानी सारी बीमारियाँ, सारे अज्ञान, सारे अंध-विश्वास हस्तान्तरित करता रहा है। उसका पूरा प्रयत्न होता है कि उसका जो पुराना ढाँचा है, उसे नये बच्चोंमें ट्रांस-प्लांट करदे। शिक्षक पुरानी पीढ़ीके अंध-विश्वासों और अज्ञानोंसे नयी पीढ़ीको बाँधता चला जा रहा है। यह वस्तुतः एक प्रकारका शोषण है जिसमें धर्मगुरुओं, राजनेताओं, सत्ताधारियों, धनपतियों—सभीके निहित स्वार्थ हैं। वे चाहते ही नहीं कि बच्चोंमें स्वतंत्र विचार करनेकी क्षमता विकसित हो। शिक्षक इस शोषणमें सहायक बना हुआ है। इस स्थितिको बदलनेके लिए ओशोने शिक्षकोंका आह्वान किया है। क्योंकि उनका मानना है कि शिक्षक मूल रूपसे इस जगत्में सबसे बड़ा विद्रोही व्यक्ति होना चाहिये, पूर्वाग्रहों और पक्षपातोंसे मुक्त होना चाहिये, शिक्षण कोई व्यवसाय ही नहीं, बल्कि एक आनन्द है, एक सेवा है, एक सृजन है, एक साधना है। (प्रयोग, पृ. १५, १६, २४, ७४-८२, क्रान्ति, पृ. ५४-७५, विद्रोह, पृ. २४, ६६-८१, जागरण, पृ. ५४-५७)।

ओशोका संदेश है कि एक बड़ी क्रान्ति होनी चाहिये जिससे शिक्षाका आमूल ढाँचा तोड़ दिया जाये, और एक नया ढाँचा पैदा किया जाये। उस नये ढाँचे



के मूल्य अलग हों, सफलता उसका मूल्य न हो, महत्वा-  
कांक्षा उसका मूल्य न हो, आगे और पीछे होना सम्मान-  
अपमानकी बात न हो, एक व्यक्तिको दूसरे व्यक्तिसे  
कोई तुलना न हो। प्रेम हो, प्रेमसे बच्चोंके विकासकी  
बेष्टा हो। भारतका शिक्षक यदि निश्चय कर ले कि  
हम नयी पीढ़ीको, लीकके बंधे रास्तोंसे मुक्त करेंगे, तो  
भारतकी आत्माका जन्म हो सकता है। एक नये,  
विलकुल सुवाससे भरे अद्भुत विश्वका निर्माण किया  
जा सकता है। (प्रयोग, पृ. ६१, विद्रोह, पृ. ७३)।

डॉ. राधाकृष्णन्के राष्ट्रपति बननेपर शिक्षा जगत्  
में उनके जन्म दिवसको "शिक्षक दिवस" के रूपमें  
मनानेकी परम्परा पड़ गयी। कुछ समझदार व्यक्ति  
इसके औचित्यपर और इसे मनानेके ढंगपर बराबर  
प्रश्न उठाते रहे हैं। ओशोने भी बहुत सही टिप्पणी  
की है कि एक शिक्षक राष्ट्रपति होजाये तो इसमें  
शिक्षकका सम्मान क्या है? क्या शिक्षक नीचे और  
राष्ट्रपति ऊपर है? तब तो यह शिक्षक या शिक्षाकी  
प्रतिष्ठा नहीं, राजपद और राजनीतिकी ही प्रतिष्ठा  
है। हम प्रथम स्थानपर खड़े होनेको यदि मूल्य मानते हैं  
तो राष्ट्रपति होनेमें अवश्य मूल्य है क्योंकि पूरे देशमें  
प्रथम खड़ा होगया यह व्यक्ति। पर यह शिक्षकका  
सम्मान नहीं, पदोंकी महिमा है। शिक्षकका सम्मान  
तो शिक्षकके अच्छे होनेमें है। हां, कोई राष्ट्रपति अपना  
पद छोड़ शिक्षक बन जाये तब संभवतः शिक्षकके लिए  
सम्मानकी बात होभी सकती है। (प्रयोग, पृ. २१, ७७,  
विद्रोह, पृ. २३, ३५)।

अंध-विश्वासोंपर टिप्पणी करते हुए ओशोने ठीक  
ही कहा है कि हमारी पिछली, एक हजार वर्षकी,  
दुःखकी, दारिद्र्यकी, चिंताकी, दुर्भाग्यकी, हारकी,  
पराजयकी कथा हमारे अवैज्ञानिक होनेकी कथा है।  
हमारे जीवनमें से वैज्ञानिकताका तो जैसे लोप ही हो  
गया है। यही कारण है कि विज्ञान पढ़नेवाला एम. एस.-  
सी. का विद्यार्थी भी परीक्षाके समय हनुमानजीके  
मंदिरमें खड़ा दिखायी देता है। इंजीनियर अपने नये  
मकानको "नजर" से बचानेके लिए हंडीपर आदमीका  
चेहरा बनाकर और बाल लगाकर मकानपर लटका  
देता है। छींक आ जानेपर डॉक्टर प्रस्थान करना  
स्थगित कर देता है। हमारे लिए जनसंख्या वृद्धि  
भगवान्की इच्छाका, गरीबी और अकाल हमारे पिछले  
जन्मके पापोंका फल है। युद्धकी आशंका हो तो हम

महाचंडी यज्ञ करने बैठ जाते हैं। बीमारियां ठीक करने  
के लिए साबीज बांध रहे हैं, देवी-देवताओंकी पूजा कर  
रहे हैं। और ये सारे काम डाक्टर, इंजीनियर विज्ञानके  
प्रोफेसर जैसे लोग कर रहे हैं, जिन्हें हम वैज्ञानिक  
मानते हैं। वे वास्तवमें टेकिनशियन हैं जिन्हें केवल  
"नो-हाउ" पता है। वैज्ञानिककी जो दृष्टि होनी  
चाहिये वह उनमें नहीं है। (क्रान्ति, पृ. १८-२६,  
विद्रोह, पृ. ८४-१०२)।

औसत भारतीय विज्ञानको धर्मका पूरक नहीं,  
विरोधी मानता है। उसे प्रारम्भसे ही इनमें तीन-छहका  
संबंध सिखाया जाता है। ओशोने स्पष्ट कहा है कि  
विज्ञान उपयोगिताकी खोज है, धर्म अर्थकी। विज्ञान  
भी अधूरा है। और धर्म भी अधूरा है। इन दोनोंके  
संतुलन और समन्वयमें ही मंगल है, और पूर्णता है। ओशो जिस धर्मकी बात कर  
रहे हैं वह सम्प्रदाय नहीं है। धार्मिक होना हिन्दू और  
मुसलमान होनेसे बहुत अलग बात है। साम्प्रदायिक  
होना धार्मिक होना तो है ही नहीं, उल्टे वही धार्मिक  
होनेमें सबसे बड़ी बाधा है। धर्म वस्तुतः मनुष्यके  
अन्तःकरणकी शिक्षा है। वह जीवनका आमूल परिवर्तन  
है। धर्मका प्रयोजन है ऐसा मन पैदा करना जो हिंसक  
न हो, ईर्ष्यालु न हो, प्रतियोगी न हो, प्रेमपूर्ण हो,  
कृपासे भरा हो, धर्मको न तो मतलब है आपकी उम्र  
से, न धर्मको मतलब है आपके खेतमें पानीसे, न धर्म  
को मतलब है आपके मकानसे, आपके कपड़ेसे। धर्मको  
तो सीधा मतलब है आपसे। आप कैसे हैं भीतर?  
आनन्दित, शान्त, प्रफुल्लित, परमात्माके प्रति कृतज्ञतासे  
भरे हुए, प्रार्थनासे भरे हुए, प्रेमसे भरे हुए। (प्रयोग,  
पृ. ३१-३४, ४८-६६, विद्रोह, पृ. २७, क्रान्ति,  
पृ. ११-२७)।

ओशोका भाषापर बहुत अच्छा अधिकार था।  
उनके विरोधी भी उन्हें "शब्दोंका जादूगर" मानते थे।  
इस दृष्टिसे कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

(१) धर्म है अंतरकी दिशा। शायद वह दिशा  
नहीं, अदिशा है क्योंकि दिशाएं तो सब बाहरकी ओर  
ही होती हैं। धर्म है अंतरकी ओर गति। लेकिन नहीं,  
शायद वह गति नहीं, अगति है, क्योंकि गतियां तो सब  
स्वयंसे दूर ही ले जाती हैं। धर्म है केन्द्रकी ओर दृष्टि।  
लेकिन नहीं, द्रष्टा और दृष्टि और दृश्यका भेद तो है  
परिधिपर, केन्द्रपर तो ऐसा कोई भेद ही नहीं है।



(प्रयोग, पृ. ३३) ।

(२) आसक्तिमें हम किसीको भी अपना साधन बनाते हैं और प्रेममें हम किसीके साधन बन जाते हैं । आसक्तिमें कोई मेरी जरूरत पूरी करता है, प्रेममें हम किसीकी आवश्यकताएं पूरी करते हैं । प्रेम इस भाषामें सोचता ही नहीं कि मुझे दो, प्रेम इस भाषामें सोचता है कि मुझसे लो । प्रेम दान है और आसक्ति मांग है । (जागरण, पृ. ३५) ।

(३) हमने तीन हजार वर्षमें ऐसा कोई सपना नहीं देखा जिसको पूरा करनेमें हमारी शक्तियोंकी भी पुकार आये, जिसको पूरा करनेके लिए हमारा युवक बड़े, जिसको पूरा करनेके लिए युवककी जवानी रस ले । हमने कोई सपना नहीं देखा । हम स्वप्न न्यून कोम हैं । (क्रान्ति, पृ. १६१) ।

(४) यह शिक्षा हममें गलत मन शुरूसे पैदा कर देती है । चीजोंकी स्वीकृति नहीं आती, बल्कि दौड़ आती है । दूसरोंके पास जो है, वह खयाल आता है । बुद्धके पास जो है उनका रोध नहीं आता । (विद्रोह, पृ. २१) ।

(५) जितने ज्यादा अनुभवकी पर्तें होती हैं, उतना ही तथ्यको देखना असंभव हो जाता है । तथ्यको देखने के लिए कुंवारी आंख चाहिए, अनुभवकी आंख नहीं । (क्रान्ति, पृ. १०२) ।

ओशोने अपने व्याख्यानोंमें कहीं-कहीं अमानक प्रयोगभी किये हैं, जैसे—

(१) चार दफे खोलकर फट्टी बांध लिये हैं, फिर गलेपर ढंगसे डाली है । (जागरण, पृ. २१) ।

(२) हम पूछे तो वह बहुत घबरा गये हैं (जागरण पृ. ८६) ।

(३) खंडवा उतरे तो वह मेरा पैर छुए । (क्रान्ति, पृ. १२७) ।

(४) हम उनका विवाह कर दिये हैं (क्रान्ति, पृ. १०७) ।

(५) शिक्षकको भी समझमें नहीं पड़ता है कि क्या करें (विद्रोह, पृ. ७८) ।

(६) कहीं हम कोई बुनियादी भूल तो नहीं कर लिये हैं (विद्रोह, पृ. ५०) ।

बोलते समय ऐसे स्थलन अस्वाभाविक नहीं हैं, पर लेखनमें इन्हें ठीक किया जा सकता था ।

यद्यपि ओशोने अपने व्याख्यानोंमें दूसरे विद्वानोंके विचारोंका उल्लेख बहुत कम किया है, और ग्रंथोंका तो बिलकुल नहीं किया है, तथापि समीक्ष्य पुस्तकें पढ़ते

समय, विचार-साम्यके कारण, दूसरे लेखकोंके कुछ प्रसिद्ध ग्रंथोंकी याद आ जाती है । भारतीय समाजमें व्याप्त अंध-विश्वासोंपर ओशोके प्रहार स्वामी दयानंद सरस्वतीके सत्यार्थप्रकाशकी याद दिला देते हैं । आधुनिक शिक्षाकी असंगतियोंकी गहन चर्चा पढ़ते समय कतिपय विदेशी लेखकोंके उन ग्रंथोंकी याद आ जाती है जो लगभग दो दशक पूर्व शिक्षा जगत्में बहुत चर्चित थे, जैसे एवरेट रेमरका “द स्कूल इज डैड”, जान होल्डका “हाउ चिल्ड्रेन फेल”, इवान इलिचका “डी-स्कूलिंग सोसाइटी”, पाल गुडमेनका “कम्पल्सरी मिस-एजुकेशन” मोशिये फारे द्वारा प्रस्तुत यूनेस्कोकी रिपोर्ट “लर्निंग टु बी” आदि ।

किसीभी दूसरे व्यक्तिके सभी विचारोंसे पूर्णतया सहमत होना संभव नहीं होता । समीक्ष्य पुस्तकोंमें भी कई संदर्भ ऐसे हैं जिनसे सहमत होना कठिन है । जैसे—

(१) मैं नहीं मानता कि पति-पत्नी कभीभी मित्रकी तरह जी सकते हैं । (क्रान्ति, पृ. ११०) ।

(२) मांसे बच्चेको मुक्त किये बिना नई मनुष्यता पैदा नहीं होगी । (क्रान्ति, पृ. ११५) ।

(३) जबतक दुनियांमें विवाह प्रभावी रहेगा, दुनियांसे वेश्याएं नहीं मिट सकतीं क्योंकि विवाह और वेश्या एक ही संस्थाके दो पहलू हैं (क्रान्ति, पृ. १८६) ।

(४) जिन बीजोंपर प्रार्थना करके पानी डाला, वे जल्दी अंकुरित हुए (क्रान्ति, पृ. १६३-१६४) ।

ऐसे अवसरोंपर हमें ओशोके ही ये शब्द याद रखने चाहिये, “मैं जो कहता हूं, वह सही है, ऐसा नहीं है, मैं जो कहता हूं वह आपको सोचनेमें संलग्न करदे, तो मेरा काम पूरा हो जाता है ।” “शायद आप सोचें और पायें कि बातें गलत हैं तोभी आपका लाभ होगा क्योंकि कुछ बातोंको गलत जान लेनेसे आदमी सहीकी ओर बढ़ जाता है । और यदि कोई बात सही मालूम पड़ जाये तो वह मेरी न रह जायेगी, वह आपकी अपनी हो जायेगी । जिसको हम विचारपूर्वक जानते हैं कि सही है वह उधार नहीं रह जाती । वह स्वयंकी हो जाती है । और केवल वे ही सत्य कारगर होते हैं जो स्वयंके हैं । दूसरेके उधार सत्य सिर्फ बोझ बन जाते हैं । मैं आपका बोझ न बनूं, इसकी आखिरी प्रार्थना करता हूं (क्रान्ति, पृ. ५२, १६७) ।

ओशोकी ये पुस्तकें सभीके लिए पठनीय और मननीय हैं क्योंकि शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्तिकी जन्मसिद्ध अधिकार है । आनेवाली पीढ़ीको हम यह अधिकार अधिक परिमाणमें और बेहतर परिवेशमें उपलब्ध करा सकें—इसीमें हमारी सार्थकता है । □



# उपन्यास

## यह नर देह?

[खण्ड : १, खण्ड : २; बंगलासे अनूदित]

लेखक : बिमल मित्र (स्वर्गीय)

अनुवादक : योगेन्द्र चौधरी

समीक्षक : डॉ. भगीरथ बड़ोले

स्व. श्री विमल मित्र बंगलाके ही नहीं, हिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें भी एक उपन्यासकारके रूपमें चर्चित रहे हैं। बंग साहित्यमें साहित्यिकताकी दृष्टिसे उनकी रचनाओं की गणना टैगोर, बंकिम और शरद वाबूके पश्चात् स्थान पाती है, जबकि लोकप्रियताकी दृष्टिसे उन्होंने अनेकानेक रचनाकारोंकी पीछे छोड़ दिया है और शीर्ष स्थानके पदाधिकारी बन सके हैं। १८ मार्च १९१२ को जन्मे विमल मित्रका जीवन उपेक्षाके वातावरणमें बीता। १९३८ में कलकत्ता वि. वि. से बंगला साहित्यमें एम. ए. की डिग्री प्रथम श्रेणीमें प्राप्तकर आपने रेलवे, सी. बी. आई., आई. जी. आदि कार्यालयोंमें सेवारत रहकर अन्ततः लेखनकी ही अपने जीवनयापनका लक्ष्य बना लिया। स्वतंत्र लेखनका यह पेशा या नशा जीवनके अन्तिम क्षण तक चलता रहा। २ दिसम्बर १९९१ को हुआ आपका निधन साहित्यके संसारकी एक अपूरणीय क्षतिही कही जायेगी।

श्री विमल मित्र मुख्यतः कथाकारके रूपमें जाने जाते हैं। यद्यपि प्रारंभमें उन्होंने कविताएं भी लिखीं, तथापि उनकी पहचान लगभग ५०० कहानियों तथा ७५ से अधिक उपन्यासोंके कारण सुनिश्चित हुई। उनका प्रथम उपन्यास था 'आश' तथा अन्तिम 'जेशेर

१. प्रका. : राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : खण्ड-१, ८१०; खण्ड-२, ३०६; दोनों डिमा. ९१; मूल्य : खण्ड-१, २०० रु.; खण्ड-२, मूल्य : १००.०० रु.।

माशुल'। इस बीच उन्होंने अनेकानेक बृहद्काय उपन्यासोंकी रचना की, जिनपर फिल्में बनी तथा टी. वी. सीरियल लोकप्रिय हुए। उनके प्रमुख उपन्यासोंके अन्तर्गत—वेगम मेरी विश्वास, साहब बीवी गुलाम, इकाई दहाई सैंकड़ा, खरीदी कौड़ियोंके मोल, मुजरिम (आसामी) हाजिर, पति परम गुरु, दायरेके बाहर, सुरसतिया, चलोकत्ता, राजा बदल, वे दोनों और वह आदि अनेक परिगणित हो सकते हैं। अपने लेखनके कारण उन्हें रवीन्द्र एवं अन्य अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। प्रभूत परिमाणमें लिखे गये इस लेखकके अन्तर्गत कुछ विशिष्ट हैं, कुछ अति विशिष्ट तथा कुछ सामान्य भी हैं। इसके बादभी उनकी लोकप्रियता एक लंबे समय तक स्मरणीय रहेगी। वस्तुतः ये भारतीय साहित्य के लोकप्रिय कथाकार हैं।

श्री विमल मित्रकी विचारधारा साम्यवादी चेतनासे अनुप्राणित रही है। उनके लेखनपर डिकेंस, ताल्सताय, दोस्तोएव्स्की, रॉल्सफॉक्स आदि प्रगतिशील लेखकोंकी छाप स्पष्ट अंकित है। इसलिए जहां एक ओर उनके उपन्यास साम्यवादी विचारधाराके पोषक हैं, दूसरी ओर पूंजीवादी व्यवस्थाके आलोचक भी हैं। इसी क्रम में श्री मित्रने परिवर्तित राजनीतिक-सामाजिक स्थितियों के यथार्थको पूरी स्पष्टतासे अंकित किया है। श्री मित्र के उपन्यासोंमें जहां अनादिकालसे प्रेमके प्यासे बृहद् मानव जावनके संत्रासका मनोवैज्ञानिक धरातलपर चित्रण हुआ है, वहीं उन्होंने अपने भोगे हुए यथार्थको भी विश्लेषित किया है। इन सबके माध्यमसे विमल मित्र बदलते जीवन मूल्योंके परिप्रेक्ष्यमें दुःखपूर्ण मानव जीवन की कथा कहते हुए दुःखा जीवनको सांत्वना देनेका उपक्रम करते हैं और यही उनके लेखनका लक्ष्य भी है।

इसी पृष्ठभूमिपर 'यह नर देह' की रचना हुई है। 'यह नर देह' उपन्यास श्री विमल मित्रका हिन्दीमें अनूदित प्रकाशित वह नया उपन्यास है, जिसमें मनुष्यके अपने-पनकी खोज प्रगतिशीलताकी दृष्टिसे की गयी है।



उनके अन्य उपन्यासोंकी भांति यह बृहदाकार उपन्यास दो खण्डोंके लगभग ग्यारह सौ पृष्ठोंमें फैला हुआ है, जिसका मूल प्रतिपाद्य है मानवको उसकी संपूर्णतामें अभिव्यक्त करना। श्री विमल मित्र मानते हैं कि सृष्टि-कृति मनुष्यको अपूर्ण बनाया है और उसकी शक्तियों को चुनौती देते हुए कहा है कि वह अपनी सामर्थ्यसे पूर्ण बनकर दिखाये। पूर्णताकी यह स्थिति ही मनुष्यके जीवनकी उपलब्धि होगी। अतः अपूर्ण जन्मे मानवको पूर्ण बनानेकी सिद्धिके लिए ही इस उपन्यासका सृजन संभव हुआ है। श्री मित्रके अनुसार इस कृतिकी कथा यथार्थपर आधारित है जिसे उन्होंने क्रमशः १९५२ तथा १९७६ में अन्वयोंके मुखसे सुनाया और १९८३ में लेखन प्रारंभकर छः वर्षोंमें इसे लिखा। यहां यह स्मरण उचित ही है कि हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें भी श्री जैनेन्द्रकुमार तथा आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि कथाकार अपने उपन्यासोंमें वास्तविकताके ऐसेही प्रयोगोंकी सृष्टि करते रहे हैं। अतः संभव है कि श्री विमल मित्रने भी इन्हीं युक्तियोंका आश्रय लेकर ऐसी बात कही होगी। इस संदर्भमें यही कहना संगत है कि चाहे ये प्रमाण वास्तविकतासे परे हों, किन्तु 'यह नर देह' की कथा यथार्थके धरातलसे वस्तुतः संबद्ध है।

वस्तुतः 'यह नर देह' की कथा यथार्थसे संबद्ध है तथा जीवनकी स्थितियों तथा सिद्धियोंका अन्वेषण अपने ढंगसे करती है। कथानकका मूल प्रतिपाद्य नष्ट होनेवाली नर देहके माध्यमसे जीवनके सार्थक प्रसंगोंका अन्वेषण ही है। इस बातको विमल मित्रने अनेक बार अभिव्यक्त किया है कि मान, अभिमान, अहंकार, विवाद और समस्याओंके क्रमको जनम देनेवाली इस नर देहको अंततः जलकर राख होना है अथवा कुत्ते-शृंगालोंका खाद्य बनना है। फिर क्यों मनुष्य इस स्थिति से कुछ सीखता नहीं? क्यों वह अपने भीतर पतनपते लालचके कारण दूसरोंका बैरी बना हुआ है? अनीतिके पथपर चलता हुआ मनुष्य कब सीखेगा कि उसके जीवन का ध्येय दूसरोंको सुखी बनाना है? वस्तुतः इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए प्रस्तुत उपन्यासकी रचना हुई है। 'यह नर देह' के अनुसार आदर्शवादी परिवेशमें पला निधन संदीप अपनी माँके सपने पूरे करनेके लिए परमेश मल्लिकके सहयोगसे संपन्न मुकजी परिवारके घर आश्रय पाता है। इस परिवारके मुखिया देवीपद मुकजी तथा उनके बड़े पुत्र शक्तिपद एवं पुत्र वधु शांत

हो चुके हैं तथा बड़े पुत्रकी संतान सौम्यको लेकर देवी-पद मुकजीकी पत्नी अर्थात् दादीमाँ अपने बृद्धावस्थाके दिन काट रही है। दादी माँसे असंतुष्ट छोटी बहू अपने पति मुक्तिपदके साथ एक अलग मकानमें रहती है। असीमित संपत्ति होते हुए भी दादीमाँ सौम्यके भविष्य को लेकर चिन्तित है, अतः उनका घर पूरे विधि-विधान से चलता है जिससे संस्कारित होकर पौत्र सौम्य उन्हें शांति दे सके, जो बहूके कारण छोटा बेटा मुक्तिपद नहीं दे सका। किन्तु सौम्य तो चोरी छिपे गलत रास्तों पर चल चुका था। चूंकि दादीमाँ छोटी बहूके रूपमें धनाढ्य कन्याका आचरण देख चुकी हैं, अतः वे सौम्यके लिए एक निधन परिवारकी सुन्दर कन्या विशाखाका चयन करती हैं और उसे अपने घरके अनुरूप बनानेके लिए स्वयं अपने खर्चसे अपनी देखरेखमें पालती हैं। वे विशाखा और उसकी विधवा माँकी देखभालके लिए संदीपको नियुक्त करती हैं। इधर मुक्तिपद चाहता है कि सौम्यका विवाह चतुर्जी परिवारमें हो जाये, ताकि फैक्टरीमें श्रमिक समस्याओंसे निपटा जा सके। प्रारंभमें दादीमाँ इस बातसे अपना विरोध प्रकट करती हैं, किन्तु श्रमिक समस्याएँ बढ़ने तथा फैक्टरी बंद हो जानेपर वे मुक्तिके प्रस्तावको स्वीकृति दे देती हैं। इस समय सौम्य विदेश गया हुआ था, किन्तु जब लौटता है तो विदेशी लड़की रीताको पत्नीके रूपमें अपने साथ लेकर लौटता है। इस आघातको दादीमाँ नहीं सह पाती।

विशाखाकी देखभालके लिए नियुक्त संदीप जब देखता है कि विशाखाभी उसीकी तरह पितृहीना तथा निधन है, तब स्वाभाविकही वह भावात्मक धरातलपर इस परिवारसे जुड़ने लगता है तथा उनके सुख-दुःखमें सहभागी बन जाता है। अतः जब वह सुनता है कि मुकजी परिवारके लोगोंने दूसरी लड़की पसंदकर ली है तथा अब उस घर विशाखाका नहीं ब्याह होगा, तब इन लोगोंकी भविष्य चिन्तामें डूबकर परेशान हो जाता है। सौम्यका विवाहित होकर विदेशसे आना और भी दुःख तथा चिन्ताएँ खड़ी कर देता है। संदीप जानता है कि विशाखाके चाचा धूर्त एवं लालची हैं तथा वे इनकी सही देखभाल नहीं करेंगे, तब वह इन दोनोंको अपने गांवमें माँके पास भेज देता है। अबतक संदीप बैंकमें नियुक्ति पा चुका था। अपनी बेटीके वैवाहिक संबंधको टूटता देख विशाखाकी माँ रोगग्रस्त हो जाती है। अतः



विशाखाके विरोधके होते हुएभी संदीप उसके लिए वरकी खोजमें जुटताहै, किन्तु सफल नहीं होपाता। इधर विशाखाकी मां अत्यधिक बीमार होतीजा रहीथी, अतः वे संदीपसे आग्रह करतीहै कि वह स्वयं विशाखासे विवाह करले। संदीप अब बैंक मैनेजर बन चुकाथा। उसने अबतक के जीवनमें इस परिवारको सहयोगही दियाथा और इसके बदले कुछ पानेकी आकांक्षा नहीं कीथी। अतः पहले तो वह इस प्रस्तावका विरोध करताहै किन्तु मालव्यजीके कहनेपर प्रस्ताव स्वीकार लेताहै।

इस अंतरालमें मुकजी परिवार अनेक अप्रत्याशित घटनाओंका शिकार हो चुकाहै। श्रमिक आन्दोलनके कारण मुक्तिपदको अपनी फैक्टरी कलकत्तासे हटाकर अन्यत्र ले जानी पड़तीहै। दादीमांकी बीमारी बढ़ने लगतीहै और इसी बीच शराबी सौम्य दुष्टा रीताकी हत्या कर बंदी हो जाताहै। वकील सलाह देतेहैं कि सौम्यको फांसीसे बचानेका यही रास्ता शेष है कि उसका पुनर्विवाह कर दिया जाये। परिणामतः दादीमां पुनः विशाखाको खोजती संदीपके गांव आ जातीहै और संदीपके विवाहको रोककर विशाखासे सौम्यकी शादी करवा देतीहै। दादीमांके उपकार भारसे दबा संदीप इन क्षणोंमें अस्थिर होकर भी मौन दर्शक-सा असहाय ही बना रहताहै। संदीपको पता चलताहै कि विशाखा की मांको कैंसर है तो वह प्राणप्रणसे उनकी सेवामें जुट जाताहै। पर वह न तो उन्हें बचा पाताहै, न ही बीमारीमें भारी खर्चके कारण अपनी आर्थिक स्थितिको सम्हाल पाताहै।

इधर सम्पन्न ससुराल पाकर भी विशाखा दुःखी है। एक ओर पति जेलमें है, दूसरी ओर दादीमांकी मृत्यु हो जातीहै, तीसरी ओर जेलका एजेंट सौम्यको सुविधा देनेके बहाने विशाखाको डेर-सी संपत्ति हड़प लेताहै। दादीमांकी मृत्युसे परिवार बंट जाताहै, मकान बिक जाताहै और विशाखाको रही सही संपत्तिसे एक छोटा घर खरीदकर पतिके जेलसे लौटनेकी प्रतीक्षा करनी पड़तीहै।

जेलसे लौटनेपर भी सौम्यकी आदतें सुधरती नहीं, बल्कि संदीपकी सहायतासे विशाखाको उसका एवं घरका खर्च वहन करना पड़ताहै। सौम्यकी फैक्टरीको पुनः चलानेके लिये विशाखा संदीपसे ढेरसा रुपया मांगतीहै और संदीप उसके सुखके लिए सदा सहायता

करता रहताहै, जिसके लिए उसे बैंकसे गवन तक करना पड़ताहै। फैक्टरी प्रारंभही नहीं होती, लाभ देने लगतीहै, किन्तु गवनके कारण संदीपको जेल हो जातीहै। कई वर्षों बाद जब संदीप जेलसे छूटकर विशाखासे मिलताहै, तो उसे पता चलताहै कि सौम्यने विशाखाको छोड़ दियाहै और उसकी चचेरी बहनके साथ अन्यत्र रहताहै। संदीपके लिए विशाखाका यह दुःख असह्य था। वह सौम्यसे मिलकर समस्या निपटाना चाहताहै, किन्तु क्रोधित सौम्य पिस्तौल चला देता है, जिसकी चपेटमें बिजली आ जातीहै। विशाखाके जीवनके सुखको बचानेके प्रयत्नमें संदीप हत्याका दायित्व अपने ऊपर ले लेताहै। किन्तु सौम्य विशाखा को न अपनाकर किसी अन्यसे विवाह कर लेताहै। हत्या की सच्चाई बताने जब विशाखा जेल पहुंचतीहै, तब तक संदीपको फांसी लग जातीहै, परिणामतः विशाखा वहां अपने प्राण त्याग देतीहै। अंतमें कथाकारने इन दोनोंके अमृत लोक पहुंचनेकी बात कही है।

यह सहजही जानाजा सकताहै कि विमल मित्रकी कल्पनाएँ कथानायक संदीप लाहिड़ीके जीवनक्रमसे प्रत्यक्ष संबद्ध हैं। रचनाकारने इसी चरित्रको संपूर्ण मानव चरित्रके रूपमें ढालनेका विशिष्ट उपक्रम प्रस्तुत कियाहै। अतः सभी घटनाओंके मध्य संदीपका चरित्र ही सर्वाधिक प्रभावित हुआहै तथा पाठकोंको प्रभावित करताहै। अपूर्ण जीवन द्वारा संपूर्णताके छोरको छूनेके इस प्रयत्नमें रचनाकारने आर्थिक स्थितियोंके संदर्भोंको प्रधानतासे उकेरा है। अतः एक ओर आर्थिक प्रभावोंके कारण त्रस्त विशाखाके जीवनकी व्यथा-कथा व्यंजित हुईहै तो दूसरी ओर संपन्न वर्गोंके जीवन क्रममें आयी गिरावटके कारण समाजमें अप्रत्याशित परिवर्तनभी दिखायी देतेहैं। इन दोनों ही प्रकारके जीवनका अतिरंजित प्रत्यक्षीकरण कथानायक करताहै। इनके साथही जीवनके अन्य विविध चरित्रभी यथार्थके परिवेशमें प्रस्तुत होकर जीवनके विविध रूपोंको अभिव्यक्त करते हैं और यह सारी प्रस्तुति आद्यंत रोचक तथा उत्प्रेरकतासे परिपूर्ण है। प्लैशबैंक पद्धतिसे किये गये घटनाक्रमोंका ऐसा संयोजन लेखककी कुशल रचनाशीलता का पर्यायही है।

वस्तुतः संदीपही यह 'नर देह' का नायक है। उसके मनमें जीवनसे संबंधित अनेकानेक प्रश्न उठकर तथा विविध घटना व्यापारों द्वारा उनके उत्तर प्रस्तुत



कर विमल मित्र अपने उद्देश्यको पूर्णताके समीप ले जाते हैं सफल हुए हैं। वचनसे ही संदीप सोचता है कि समाजमें आर्थिक विषमता क्यों है? क्यों मनुष्यताके पसघर जीवनभर गरीबही बने रहे? अंततः इस देहका नाश तो होना ही है और तब धन-सम्पत्ति साथ नहीं देती, तब फिर क्यों इस नश्वर देहको धारण करने वाले संपत्तिके लिए विविध विपरीत रूप धारण करते हैं और रुपया पाकर मनुष्यता भूल जाते हैं? — इन सबके उत्तर संदीपको कलकत्ता आने पर ही मिले, जहां रुपयों के लिए गोपाल हाजरा सर्राखे लोग अवैध धंधा चलाते हैं, युवक-युवतियोंका जीवन नष्ट करते हैं तथा अपने स्वार्थकी पूर्तिके लिए मजदूरोंके पेटपर लात मारनेमें भी हिचकिचाते नहीं। जहां निकट सम्बन्धी होते हुए भी तपेश गांगुली संगी भतीजीकी सहायताकी अपेक्षा धूर्तताके साथ उमे लूटनेमें लगा है और पिता होते हुए भी उनके लिए अपनी बेटीको गलत रास्तेपर चलाने में चूकता नहीं। जहां रुपये कमानेके विचारमें मुक्ति-पद जैसे लोग गलत समझाते करने लगते हैं तथा रुपए पानेके लिए ही जेल कर्मचारीभी अवैध रीतिसे किसी को भी लूटनेमें संकोच नहीं करते। ऐसी प्रवृत्तियोंसे संदीपको चिढ़ है, जबकि हर वस्तु गरीबके प्रति उसके मनमें असोमित सहानुभूतिका समुद्र लहरा रहा है। संदीप जानता है कि दुःख भोगना मनुष्यकी नियति है, ऐसी स्थितिमें मानवीयताके धरातलसे जुड़कर ही मनुष्यको सुख-शांति और संतोष मिल सकता है। उसका विश्वास है कि सभी लोग बुरे नहीं हैं। अतः वह दुनियां में ऐसे मानवोंकी ढूँढ़ मचायेगा और विपरीत स्थितियों के सम्मुख हार नहीं मानेगा। इसी क्रममें वह संकटमें पड़े विशाखाकी प्रतिक्षण सभी प्रकारसे सहायता करता है। यद्यपि इस सहयोगके पीछे कहीं संदीपके मनकी भावात्मक तरलताभी सक्रिय रहती है, तथापि वह अपने बलिदान द्वारा स्वयंको पूर्ण मानव सिद्ध करता रहता है। उसकी दृष्टिमें धन और देह नगण्य है, मान-वता ही वरेण्य है। लेखकने उपन्यासकी नायिका विशाखाको भी ऐसीही विद्रोहिणीके रूपमें चित्रित करना चाहा है किन्तु अंततः जीवनव्यापी संत्रास उसके सारे व्यक्तित्वको लील जाते हैं। इन्हींके साथ रचनाकार ने प्रतीक रूपमें समाजके भिन्न-भिन्न वर्गोंके अनेक पात्रों के चरित्रोंको जीवंत रूपाकार दिया है। एक ओर आदर्शवादी काशीनाथ बाबू, मल्लिकजी तथा मालव्यजी

है, तो दूसरी ओर लंपट सौम्य, धूर्त गोपाल हाजरा, स्वार्थी श्रीपति मिश्र, लालची तपेश गांगुली आदिभी यथार्थके धरातलपर रचे गये जीवन-चरित्र हैं। यथार्थ चित्रणके कारणही इस उपन्यासमें अच्छे पात्र दुःख उठाते हैं, जबकि खलपात्रोंको कोई दण्ड नहीं मिलता। किन्तु इस स्थितिके साथ यह भी सच है कि अच्छे पात्रही पाठकोंकी सहानुभूतिके केन्द्र बनते हैं, जबकि दुष्ट पात्र तिरस्कारके पात्र बनते हैं।

जहांतक कथा-संरचनाका सम्बन्ध है, विमल बाबू की लेखनी प्रत्येक पृष्ठपर अपना चमत्कार दिखाती है। मूल उद्देश्यके अनुरूप असंख्य घटनाओंका संयोजन बड़ी कुशलतासे किया गया है। घटनाओंको टुकड़े-टुकड़े में बांटकर जिस प्रकार इन टुकड़ोंको परस्पर जोड़ते हुए उत्सुकताको बनाये रखनेकी प्रयासपूर्वक चेष्टा दिखायी देती है, वह अप्रतिम है। वस्तुतः 'यह नर देह' में कथानकका अप्रतिम ताना-बाना बुना गया है जो पाठककी दृष्टिको अंततक बाँधे रखता है और उसके हृदयको निरंतर उद्वेलित करता रहता है। एक साथ करीब ग्यारह सौ पृष्ठोंतक कथाको खींचकर ले जानेमें साधारणतः कथा वस्तुके बिखरनेका भय बना रहता है, किन्तु विमल मित्र इस क्रममें आद्यत सचेत और दक्ष बने रहे हैं। यद्यपि अत्यधिक विस्तार-प्रवृत्तिके कारण अनेक स्थलोंपर पुनरावृत्तियां भी उपलब्ध होनी हैं तथा प्रत्येक घटनाको प्रत्येक पात्रके सम्मुख दुहराने तथा प्रत्येककी प्रतिक्रियाओंसे अवगत करानेमें कहीं-कहीं कथा शैथिल्यकी स्थिति भी निमित्त हो जाती है, तथापि लेखकके अभिव्यक्ति कौशलके कारण कृति तत्परतापूर्वक पाठककी दृष्टिको अपनी पकड़के घेरेमें ले लेती है। स्थान-स्थानपर प्रस्तुत उक्तियां जहां एक ओर घटनाओंका विश्लेषणकर तर्कसंगत निष्कर्ष प्रस्तुत करती है, वहां लेखकके प्रगतिशील दृष्टिकोणकी भी अभिव्यंजना करती है। इसी क्रममें एक अन्य बातकी चर्चा करना भी असंगत न होगा, — वह है कथाभूमिसे सम्बन्धित क्षेत्रके प्रति लेखककी जागरूकता। इस बृहदाकार उपन्यासका अधिकांश कलकत्तामें घटित हुआ है अतः लेखकने, जहांभी अवसर मिला, कलकत्ताके परिवर्तित आधुनिक रूपाकार चित्रित करनेमें चूक नहीं की है। कलकत्ता जैसे महानगरमें फैली दरिद्रता और वहांकी वैभवशीलता, राजनीतिका प्रश्रय पाकर पनपते गुण्डोंका आतंक और ठगे जानेवाले गरीब बेरोजगार



युवकोंका जीवन, वहांकी ट्रेड यूनियनोंके नेताओंकी स्वार्थपरता और वहांके अमीरोंके आडंबर आदि सब स्थितियाँ उपन्यासमें जीवंततासे चित्रित हुई हैं। इसे पढ़कर यह भी लगता है कि लेखक बंगालियोंसे बहुत चिढ़ा हुआ है और उन्हें अच्छा आदमी नहीं मानता। इसीलिए स्थान-स्थानपर उन्हें धोखेवाज, पाजी, झगड़ालु, स्वार्थी, निंदक, लंपट, ईर्ष्यालु, घोषित किया गया है। लेखककी यह दृष्टि कुछ अतिवादी अनुभव होती है।

फिर भी विमल मित्रके इस उपन्यास 'यह नर देह' में उनकी उपन्यास कलाकी चरम परिणति भी स्पष्टतासे दृष्टिगोचर होती है। ऐसी कृति साहित्यके क्षेत्रमें उपलब्धिपरक ही कही जायेगी। इसी क्रममें इस कृतिके अनुवादक श्री योगेन्द्र चौधरीके श्रमसाध्य कर्मको भूलना भी अनुपयुक्त होगा। उनका अनुवाद संपूर्णतः यांत्रिक नहीं है, बल्कि आद्यंत उसमें एक रचनात्मक प्रवाह बना रहता है। इसीलिए यह कृति अनूदित कृति अनुभव नहीं होती। समग्रतासे विचार करनेपर प्रतीत होता है कि 'यह नर देह' साहित्य-क्षेत्रकी एक उत्तम कृति ही सिद्ध होती है। एक बात और ! प्रस्तुत समीक्षा उनके निधनके उपरांत प्रकाशित हो रही है। इस संबंधमें विमल मित्रने स्वयंभी इस उपन्यासमें फलेपर पूर्व संकेत कर दिया था—'हो सकता है मेरी मृत्युके बाद लोग इसपर विचार करेंगे कि मैं संपूर्ण मानवकी सृष्टिमें सफल हुआ कि नहीं।' अतः अंतमें पूर्वाभासकी द्योतक इन पंक्तियोंको प्रस्तुत करते हुए उनकी अशेष आत्माकी यह श्रद्धांजलि समर्पित। □

### अभयकुमारकी आत्मकहानी?

लेखक : डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर

समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

हजारीप्रसाद द्विवेदीकी बाणभट्टकी आत्मकथा से प्रेरित होकर डॉ. अय्यरने 'एक टूरिस्ट बस—अभयकुमारकी आत्मकहानी' लिखी है।

१. प्रका. : हिन्दुस्तानी अकादमी, राजर्षि टंडन भवन,  
१२ डी कमला नेहरू मार्ग, इलाहाबाद (उ. प्र.)  
—२११००१। पृष्ठ : १२०; डिमा. ६१; मूल्य :  
५०.०० रु.।

'प्रकर'—मई ६२—२२

केरलका प्राकृतिक और नारी सुषमा, ऐतिहासिक वैभव, सर्वाधिक साक्षर राज्य होनेके कारण राजनीतिक और शैक्षिक वचस्व, सामाजिक-साम्प्रदायिक सौमनस्य, सहज सरल परन्तु जीवंत लोकजीवनके सम्पूर्ण सांस्कृतिक वैभवसे युक्त अतीत और वर्तमानकी यथार्थ कितु रमणीय झांकी इसमें है। शैली है यायावरी-श्रुमक्कड़ी-विधाकी। दो विधाओंका मलयाली मुहावरेमें मणिप्रवाल योग इसमें मिलता है, यायावरी शैली में आत्मकहानी। क्योंकि अभयकुमार कोई सामान्य जड़ या चेतन प्राणी तो है नहीं, जड़को चेतन, अचर को चर बनाकर लेखकने स्वयंको दूसरा प्रजापति सिद्ध किया है। यात्रियोंके वार्तालापसे प्रभावित प्राकृतिक सुषमासे मोहित हड़तालियोंके आक्रोशसे मर्माहत और नदीमें गिर पड़नेसे मरणान्तक पीड़ा भोगनेवाली किसी बसकी आत्मकहानी नहीं लगती अपितु एक जीवित जागृत मानवीय चेतना और विवेक सम्पन्न लोकहितकारी व्यक्तित्वकी गाथा लगती है। मालिक और चालक के स्नेह-सौजन्यसे लालित-पालित, सम्पर्कमें आनेवाले सभी जड़ चेतन प्राणियोंके सुख दुःखसे परिचालित एक भरा पूरा इतिहास, धर्म, दर्शन-कला-साहित्य, राजनीति, खेल, अर्थनीतिका संवेदनशील भंडार एवं जीवन्त व्यक्तित्व है, जिसने अच्छे बुरे सभी दिन देखे हैं, जो मानवीय भावनाओंके प्रति संवेदनशील है। इसीलिए इसका अंत इतना मार्मिक बन पड़ा है।

कुछ छात्रों द्वारा तोड़-फोड़ और कुछ दिनों बाद नदीमें गिर जानेसे कंकालमात्र हुए अभयकुमारकी पीड़ा देखिये—“अब मैं कमाऊपूत नहीं हूँ—फिर भी मालिक पत्नीको समझाते हैं कि कबाड़ी और कसाई बराबर होते हैं—यह हमारा प्यारा अभयकुमार है, इसे ऐसे ही एक कोनेमें रहने दो।... स्वार्थी लोगोसे भरे इस रेगिस्तानमें मेरे लिए मालिकके पोते, नाती, नातिन, पोतीका छोटा दल ही शांति आनन्दका कारण बनता था, वे मुझसे खेलते थे। यदि इस प्रकार मेरे साथ खेलें तो मैं इस दुनियाके अंतिम दिनतक इसी हालत में रहनेको तैयार हूँ।”... पर अंजूर-पंजूर अलग करने कबाड़ीके सजदूर आही गये हैं” तो किस संतोष और वैराग्यसे यह अभयकुमार कहता है—“अलविदा दोस्तो”, “अलविदा”। “आपका जीवन मंगलमय हो अखिर इसमें दुःखी होना भी क्या? यह शरीर त्याग करना तो सभी जीवोंका धर्म है”। आश्चर्य



होता है कि जो अभयकुमार अपनी पूरी जीवन यात्रा में इतना संसारी, संवेदनशील, सहज, ममतालु, स्नेह-शील रहा, वह कितने संतोषसे प्राण विसर्जन करता है। लगता है लेखक के जाने-अनजाने इस आत्मकहानी में उसका निजी आत्मकथ्य आ गया है। विषय वस्तु के साथ प्रगाढ़ तादात्म्य के बिना कोई भी श्रेष्ठ रचना हो ही नहीं सकती। समग्र केरल—अपने मातृप्रदेशसे प्रगाढ़ तादात्म्य स्थापित करनेवाले डॉ. अय्यर ने इस आत्मकहानी में केरल की समग्र झाँकी प्रस्तुत कर 'अपनी जन्म-भूमिसे उन्मूलन होनेका प्रयास किया है। उनके समग्र व्यक्तित्वका उनकी सहजता, ज्ञान, हास-परिहास, लोक एवं शिष्ट संस्कृतिसे गहरी आत्मीयता यहां के धरती-आकाश, सागर, नदी, उद्योग शिक्षा, संस्कृति, कथ-कलिते प्रगाढ़ सम्बन्ध दिखायी पड़ता है। हिन्दी के यात्रा साहित्य में कदाचित् ही कोई कृति इतनी जीवन्त वैविध्य-पूर्ण, कलात्मक, ज्ञानप्रद और सहज हो। इतना व्यापक गहरा तादात्म्य शायद ही कोई यायावर अपने परिवेश के विविध पक्षों से कर पाया हो।

यात्रियों के सहज वार्तालाप, उत्तर-प्रत्युत्तरों के कारण यह आत्मकहानी बड़ी जीवन्त हो उठी है। पान विक्रेता की कलासे सुवासित उत्तर भारत के पान की तुलना घर के पान से की गयी है—और अन्त में मुस्कान के साथ पान लपेटकर उसपर या तो खुशबू की बूँदें छिड़ककर या चांदीका वर्क चिपकाकर आपकी हथेली में रख देता है, वह तो तेल-चावल के अभावका खटराग आठों घर सुनाती मध्ययुग की गृहिणी के पास कहां? बरातियों के विषय में यह कथन कितना यथार्थ और रोचक है—“हर बराती या तो होनहार दूल्हा होता है या भूतपूर्व। होनहार भविष्यका स्वप्न देखता है और भूतपूर्व छुटी हुई बात को कल्पनासे ही पकड़ लेना चाहता है।” इन बरातियों में स्त्रियाँ भी थीं ‘मुंह तड़के जगे नहें मुझे अब माँ के दूध के लिए रोने लगे। लोगों के सामने दूध पिलाकर अपनी असली स्थिति जाहिर करनेसे सकुचाती माताएं वच्चों को मना रही थीं। पर लाड़ले भी उतने ही हठी थे। पोपले मुंह की एक बूँदी और तने इन माताओं को डांटना शुरू किया ‘दूध पीते वच्चों को लेकर ये जवान औरतें न चलतीं तो क्या ब्याह सक जाता?’ ऐसी ही एक नौकशोंक वृद्धाओं, प्रौढ़ाओं और कन्याओं में होती है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की पक्षधर लीला बोली—“क्या हम गाय बैल हैं जो

हमारे पीछे नीलाम की बोली चलती है?” नानीने पोपले मुंह से हँसते हुए कहा—“क्यों री लीला, बात क्या है। कालेज के किसी लॉड को तुमने पटा रखा है। “यह नहलेपर दहला बोली के शब्द ‘लॉड’ के प्रयोगसे और अधिक सप्राण हो उठा है। बरात की बस में गाने के बिना ‘युवक-युवतियाँ कैसे रह सकती हैं। पहले मीरा का भजन फिर फिल्मी गाना एक लड़के के द्वारा—‘तेरे मेरे बीच में कैसा है, यह बन्धन अनजाना’। जिस लड़की को लक्ष्य करके गाया गया वह लड़की शरमाई और बोली घटते-तेरे की, ‘उसने कहा था’ कहानी की तर्ज पर और सब खिलखिला उठे। एक बोला “छुपे रुस्तम तीस पैसे का निमंत्रण भोजना न भूलना।” लड़की ने इसकी बांह पर चिकोटी काटी।” गुवावस्थामें मनःप्रवेश के बिना यह संभव नहीं है।

गुड़ चीनी ईख के लिए प्रसिद्ध ‘तिरूवुल्ला’ पहुंचने पर एकने बताया कि एक सहयात्री की प्रेमिका और अब पत्नी, यहीं की है तो जाजंसे पूछा गया क्या सच-मुच ‘स्वीट हार्ट’ शब्द सार्थक है। जाजं बोला—अंग्रेजी शब्दसे हम धोखा खा गये गुप्तजी! ब्याह के बाद ही पता चला कि श्रीमती जी के हार्ट ही नहीं है, दिन रात मरो फिर भी उनकी माँगें कभी खतम नहीं होतीं।” प्रेयसी का पत्नी में यह पर्यवसान बड़ा कटु लेकिन यथार्थ है। उसके नये शहर में घुसते ही युवक युवतियों का जोरजोरसे नाम पट्ट पढ़ना तथा साथी साथियों लड़कियों को कन-खियों से देखने में सहज चापल्य और संकोच के प्रभावी दृश्य है। ऐसे ही इन यात्रियों की मानसिकता का पता उस समय चलता है “भगवान् की मूर्तिकी ओर अपलक आँखों से देख रहे हैं पर आँखों में भगवान् की जगह चप्पल आती है। वह आँखें जबरदस्ती बन्द करके भगवान् का ध्यान करता है तो मन में चप्पल की सुन्दरता स्मरण आती है”, क्योंकि मंदिर के बाहर कीमती चप्पल लावारिस पड़ी हुई है।

दर्शनीय स्थानों के प्राकृतिक सौन्दर्य की जिन छवियों ने इस यात्रा को अविस्मरणीय बनाया है उनमें से कुछ ये हैं। कन्याकुमारी में सागर संगम का यह दृश्य—“सांय सांय करती हवा का मजा आया। हमारे आगमन की खबर से प्रसन्न समुद्र राजने शायद पवन को अग-वानी के लिए भेजा है।... पलपलपर नवपट परिवर्तन करते हुए बालादित्य अरुणकिशोर... वही सूर्य सन्ध्या को उदास हो पीला चेहरा लिये, चारों दिशाओं के श्वेत



कपोलोंको रुदनसे लाल बनाता पश्चिम सागरमें डूब जाता।" यहां एक दुःखान्त नाटक देखनेकी अनुभूति सहृदय दर्शकको होती है। ऐसाही मार्मिक अंकन 'आरी' की दांतियोंसे चिरते पेड़ोंका क्रन्दन इन (आरा) मिलोंमें दिनरात सुनायी पड़ता है।" प्रकृतिको सजीव मानकर ही यह संभव है। असमिया भाषामें 'श' के स्थानपर 'ह' के उच्चारणकी प्रवृत्तिपर एक लतोफेका उल्लेख है। असमिया भाषाके पंडितसे आशीर्वाद मत लो, क्योंकि 'शतायु' के स्थानपर वे 'हतायु' कहते हैं। बड़ा सहज और जीवन्त हास्य है यह।

इसी प्रकार चेङ्गनूरके प्राचीन वेण्णव मंदिरमें प्रतिष्ठित देवीके ऋतुसवका उल्लेख है जिसमें मासिक धर्मके कारण तीन दिनकी अशुद्धि और चौथे दिनके मंगल स्नानका विधान है। जड़ रुद्धिवादिका चरम सीमा है यह? सवा दो करोड़की जन संख्यावाले केरल में लाखोंकी संख्यामें प्रकाशित होनेवाली 'मलयालय-मनोरमा' पूरे देशके लिए अनुकरणीय है। त्रिचूरमें 'पाठ्य पुस्तकें बगलमें दावे रोमियों जुलियट नाटकका मर्म सैद्धांतिक रूपसे पढ़नेके बदले व्यावहारिक रूपसे सीखनेवाले किशोर मिथुनोंका उल्लेख लेखककी बुढ़ापे में भी जीवन्त दृष्टिका फल है। ऐसे ही तृशूरमें गान गंधर्व कवि चुंगुपुषाकी प्रेम कविताएं युवाओंकी कंठहार बननेकी बात सुरेशने कहा तो भट्टजी बोले—क्यों अब तुमभी किसी चन्द्रिका (चुंगुपुषाकी कविता की नायिका) के पीछे पड़े हो क्या? सुरेशने कहा—यह तो व्यक्तिगत बात है। अगर पीछे पड़े भी हों तो रमणनकी भांति आत्महत्या थोड़ेही करेंगे। प्रेमिका को लेकर शारजा या अबुधाबी चले जायेंगे।" तभी बुजुर्ग महिलाने जोरसे कहा—वाह बेटा! उधर तुम्हारी मां एक मोटर गाड़ी और बंगला पानकी उम्मीदमें है। तुम उसके हाँसलोंपर पानी मत फेरना" युवाओंकी विद्रोही और रोमांटिक तथा प्रौढ़ोंकी व्यावहारिक मानसिकताके संकेतसे यह प्रसंग बड़ा जीवन्त हो उठा है।

केरलीय कन्याओंके नितम्बोंको छूनेवाले घने काले केशोंका जादू तो दर्शकको और विशेषतः उत्तर भारतके दर्शकको अभिभूत कर ही देता है। साम्प्रदायिक सौमनस्यके दृष्योंको भी उभारा गया है। तृशूरपुरके मंदिरोंमें होनेवाली आतिशबाजीकी प्रतियोगिताका ठेका ईसाई लोग लेते हैं। भारतही नहीं दुनियां भरमें

'प्रकर'—मई १२—२४

सरकसमें स्तब्ध कर देनेवाले जोखिमभरे खेलभी इसी केरलकी कन्याएं दिखाती हैं परन्तु रातकी बिजलीकी जगमगाहटमें भड़कीले कपड़ों और खुले सुडौल अंगोंमें मोहक लगती ये युवतियां गूंगे जानवरोंका जीवन बितानेके लिए विवश हैं। यह लेखककी पारदर्शक दृष्टिका प्रमाण है जो केरलके वैभवकी प्राकृतिक चकाचौंध भी यहाँकी कन्याओंके असह्य अभिशापको उभा रना नहीं भूलता। इस आत्मकहानीमें जीवनके कटु-मधुर, रमणीय-क्रूर, वांछनीय-अवांछनीय सभी पक्षोंका चित्रण केरलके जीवनको सम्पूर्ण बनानेवाला यह पक्षभी दर्शनीय है जहां 'पणप्पुट' में किसीपर आर्थिक संकट आनेपर मुहल्लेके लोग अपनी ओरसे राशि जुटाकर पंचायती बैठकमें उसे राशि भेंट कर देते हैं कि वह स्थिति सुधारनेपर राशि वापस कर देगा और स्वयंभी अपना हिस्सा उसमें देगा। 'अंग्रेजोंसे लड़ते' हुए 'आत्मा-हुति देनेवाले केरल वर्मके महलमें घुसनेसे पहले वहां की मिट्टीको सरपर रखकर यात्री अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

मलपुषाके स्वीमिंग पूलपर तैरती हुई अलवसना अप्सराएं-जलपरियोंको देखकर वे बूढ़े लोग चकित रह गये जिनकी युवावस्था असूर्य पश्याओंमें बीती थी। पालघाटके विकट जीवटके उद्यमियोंके बारेमें यह लतीफा है। एडमंड हिलेरी और तेनसिंह जब एवरेस्टपर पहुंचे तो वहां मदरासी होटलके पालघाट निवासी मालिक गरम चाय लिये हुए हाजिर थे। त्रावनकोरकी स्वाधीनतासे पहले और बादके वातावरणके अन्तरको प्रकट करती हुई यह सूक्ति बड़ी सटीक है—'दुःखके समय जो नैतिकता एवं क्षमाशीलता आदि गुण होते हैं वे सुखके समय उड़ जाते हैं'। भारत और बंगलादेश आदिके स्वातन्त्र्योत्तर वातावरणका कारण इसके अलावा और क्या हो सकता है?

अंतमें सबसे प्रमुख तत्त्व है इस आत्मकहानीमें मानवीकरण, जड़ बसको चेतन व्यक्तित्व प्रदानकर उसे मानवीय संवेदनाओंसे भर देना। बरातके प्रस्थानसे पहले "एक युवकने बहुत लम्बा हार लाकर मुझे पहनाया, वदनपर चंदनका लेप किया, मैं पुलकित होगया। तभी तो अभयकुमार कहता है—कंडक्टरकी बातोंका जवाब चालकके खुरांटे दे रहे थे। इससे पहले चालक और कंडक्टरने रातको मेरीही गोदमें विश्राम किया। इसी चेतनाके कारण यह बस यह



दृश्य देख सकी—“खिलखिलाती हंसो” और सरसराती साड़ीकी साथिनोंको अपनी सरसतासे इम्प्रेस करनेकी कोशिशमें लगे सुरेश साथी बड़ी-फुर्तीमें थे। मेरे चालक का भी जी खुश था। सम्भवतः वह ‘लड़कोंको कुछ चिढ़ानेके लिए हार्न बजाने लगा। साथी-साथिन संवाद में रंगमें भंग होगया।” युवक-युवतियोंकी मनोवृत्ति रंगरेलियां, उनसे सहजही—चिढ़नेवाले प्रौढ़ ड्राईवर का यह व्यवहार-अंकन लेखककी सूक्ष्मभेदी दृष्टि और रसज्ञताका सूचक है। बसकी यह आत्मानुभूति ही उसे यह बोध करातीहै—मुझे छोड़ सब पैदल चलें। मैं अब अपने जलपान गृह चला। नेल, पानी और हवाका बढ़िया नाश्ता करके मैं पट्टा बन गया।” असह्य दुर्गन्धवाले पेट्रोल-डीजल-मोबिलआयलसे सड़ते पेट्रोल पंपका बड़ा आकर्षक लेकिन यथार्थ चित्रण है यह। इसे कहतेहैं—यथार्थमें सौन्दर्य खोजनेकी कला।

‘अनेक प्रयासोंके बाद भी चालू न होनेपर मेरे कान उभरे और कहा—बस अब चलें। अनमने होकर मैंने इशारा किया नृशूरके हाथी उत्सवकी ध्वनि थोड़ा और सुनने दीजिये। जड़ बसको चैतन्य प्रदान करनेके बाद फिर उसका स्वतन्त्र अस्तित्व होगया, परन्तु जल्दीही उसे परवशताका बोध होगया चालक कहां छोड़ता। उसने कहा ‘जरा मर्द लोग उतरकर इस वृद्ध को आगे ढेलें। यह कभी-कभी सुस्त होताहै।” औरतें शानसे बैठीं अपने साथियोंको इस मतलबसे देख रही थी ‘देखा महिला होनेका महत्त्व।’ अब लाचार था। तो मुस्ती छोड़कर क्षणभरमें तैयार होगया ऐसेही चलने में आनाकानी करनेपर चालकका यह कथन—‘जरा उतरकर इसे धक्का दीजिये। लाड़ला आज ज्यादा शैतानी कर रहाहै। यात्री उतरकर मुझे थपकियां (धक्के नहीं) देते कहते कि बेटा! हमें धोखा न देना, चलो न।’ मुझे लोगोंपर परस आजाता, थोड़ी देरमें मैं फिर ताकत जुटाकर चल पड़ता। केरल कला मंडल के मंडपमें फाटकके भीतर घुसनेपर मुझे बरसाती तक लेगये। इस संस्थाके कलाप्रेमी व्यवस्थापकको धन्य-वाद, जो मुझे रातकी ठंड और दिनकी धूपमें परेशान होनेकी नौबत नहीं आयी। साथही मैं गायनवादन के मधुर नादका आनन्द पा सकताथा।

सर्वाधिक मार्मिक प्रसंग—माडर्न कैफेके लाउंड-स्पीकरपर किसी अमीना बेगमका कथा प्रसंग चल रहा

था, जिसमें सलीम और अनारकलीसे अपनी सच्ची मुहब्बतकी बातें कर रहेथे। मोहब्बतकी बातें सुनकर मैं क्या करता हाय मेरा जड़ जीवन! (कवितावलीमें) तुलसीके विन्ध्यवासी तापस वटुकोंकी भांति मेरेभी मनमें इच्छा होने लगी कि काश! रामचन्द्र जी इस युगमें होते और पत्थरोंके समान मशीनोंको भी चरण स्पर्शसे मनुष्य बना देते।” रामचन्द्रका अवतार कब होगा? होगाभी या नहीं, (डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर के रूपमें), रामचन्द्रने अवतार लेकर इस यात्री बसको अवश्यही—ऐसी चेतना प्रदान कीहै जो सामान्य मनुष्योंके लिए दुर्लभ हैं, क्योंकि जिस आत्म-संतोषके साथ अभयकुमार प्राण विमर्जन करताहै विश्व की मंगलकामना करते हुए, वह कितने साधकोंको मिलताहै?

बसोंके पीछे लिखे शब्दोंने लेखककी कल्पनाको उदबुद्ध किया—‘शहरमें अपने भाइयोंसे सलाम’ विदा, फिर मिलेंगे कहते-कहते मेरा गला-खरखरा गया।” इस दृश्यकी कल्पना कोई कवि-हृदयही कर सकताहैं। आत्मीयोंसे बिछड़ते हुए कंठावरोधकी स्थितिको कितनी मार्मिकतासे ‘गला खरखरा गया’ में अभिव्यक्त किया गयाहै। चालक कंडक्टर बाबूभी मुझसे-यह कहकर चले कि बेटा तुम भी आराम कर लो। नींद आये तो सो लेना। ये नारियलके पेड़ तम्हें लोरी सुनायेंगे।” पालतू पशु-पक्षियोंके प्रति तो ऐसा ममत्व देखा जाताहै परन्तु बसके प्रति? यह तो अभूतपूर्व है। तभी तो अभयकुमार कहताहै ‘कंडक्टर ने मेरे हाथ पाँव धोये, कपड़ेसे भीतरकी सारी धूल खूब पोंछ डाली, तेलकी मालिशकी, पानीभी पिलाया, इतनी सेवा-मुश्रूषा करनेवालेका हुकम न मानना नमकहरामी होगा। इसलिए मैं चालकके इशारा करते ही जग गया और फुर्तीसे चल पड़ा।

बड़ी गहरी मानवीय संवेदनाओंसे लेखकने इस यात्री बसको जीवन्त व्यक्तित्व प्रदान कियाहै। आधुनिक मनोविज्ञानके आधारपर सूक्ष्म संवेदना, कल्पना और भावुकताके विधानसे परकाय प्रवेशसे आगे बढ़कर भावानुप्रवेश कर एक अद्भुत आत्मकहानी लिखीहै जो अपने वैलक्षण्यमें भी अत्यंत मर्मस्पर्शी और अविस्मरणीय बन पड़ीहै, ऐसा सहृदय पाठकको अवश्य लगेगा। □

‘प्रकर’—ज्येष्ठ २०४६—२५



# कहानी

## यामिनी कथा?

लेखिका : सूर्यबाला

समोक्षिका : सुमति अय्यर

एक बार एक युवा लेखकने लिखा था कि संवेदनशीलता यदि आजके शुष्क होते जीवनमें कहीं बची है तो महिला कथाकारोंके कारणसे। निस्संदेह बाह्य जीवन जटिल होता जा रहा है और अपेक्षाकृत जीवन की गतिभी तीव्र। पर उन सबके साथ जीता हुआ अंतर्जगत् इसमें कहाँ है। पुरुष भलेही कह रहा हो, या कहनेकी प्रक्रियामें हो, पर नारी कहाँ संवेदन जगत्से अलग हो पाती है। अंतर्जगत्के सभी रेशों और तहोंको जान पाना इतना सहज नहीं होता। कभी-कभी तो अबूझ पहली बन जाते हैं वे सब।

‘यामिनी कथा’ सूर्यबालाके एक लघु उपन्यास और दो लंबी कहानियोंका संकलन है। जैसाकि भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है, ये तीनों कहानियाँ शिल्प और कथ्यकी दृष्टिसे अलग-अलग भलेही हों, पर तीनोंकी अंतर्धारा एकही है। विभिन्न मनोभावोंकी भूमि जिनमें एक प्रच्छन्न अवसाद अंतर्निहित है। तीन विभिन्न पात्रों, यामिनी कथाकी नायिका यामिनी, ‘मानसी’ का भुवन और ‘मटियाला तीतरका’ देवू, तीनोंके माध्यमसे तीन विभिन्न मनःस्थितियों एवं इन मनोभावोंकी जटिलताओंका चित्रण इन कहानियोंमें है।

स्त्रीका सामान्य जीवन ही अन्तर्द्वन्द्वोंसे भरा है। गलत निर्णयोंसे समझौता करती, अपने छोटे-छोटे सुबोंको सामाजिकताके लिए होम करती स्त्री...। एक सफल पत्नी, एक सफल माँ बननेको लालायित स्त्री, दोनोंके बीच समझौते करते-करते भीतरही भीतर होम करती स्त्री। कहाँ होती है वह स्वयं इन निर्णयोंमें,

१. प्रका. : ज्ञान गंगा, दिल्ली। पृष्ठ : १७६; क्रा. ९१।

‘प्रकर’—सई—९२—२६

इस जीवनमें। यह सोचनेका अवकाश उसे कभी नहीं होता न ही समाज उसे सोचनेका अवसरही देता है।

पुरुषके लिए स्त्रीकी उपस्थिति और अनुपस्थिति दोनोंही स्त्रियोंसे जुड़ी समस्याएं अपेक्षाकृत स्थूल, सामाजिक होती हैं। संवेदनात्मकभी होती हैं, पर इतनी नहीं, जितनी कि स्त्रीके लिए पुरुषकी उपस्थिति और अनुपस्थिति, वहाँ आर्थिक समस्याओंके साथ जुड़ना है संवेदनात्मक सुरक्षाका प्रश्न। पर जैसाकि होता है, स्त्रीके सभी अन्तर्द्वन्द्वोंका समाजमें एकही सामान्य समाधान थोप दिया जाता है। उसे ढोने, उन थोपे गये मूल्योंकी सुरक्षाका दायित्व उसे ढोना पड़ता है। स्त्रीके लिए पहली शर्त होती है, सामाजिक संबंधोंका निर्वाह। संबंध उसके लिए दायित्व होते हैं जबकि पुरुषके लिए वे दायित्व नहीं। वह मनके स्तरपर भी संबंधको जीता चाहती है, जहाँ वह वंचित रह जाती है और फिर शुरु होती है, एक अनवरत यातना।

विश्वास और यामिनीका दाम्पत्य कुछ इसी प्रकार का है। विश्वासका समुद्री जीवन उसे दाम्पत्यके प्रति एक तटस्थ दृष्टिकोण देता है। उसके लिए पत्नीके साथ होनेका मतलब धरतीपर लौटनेका-सा है। उसे उपहारोंसे लादता है पर उसके अन्तस्को छू नहीं पाता। देहतक जाता है पर यामिनीका मन सूखा रह जाता है। उसके लिए पुरुषत्वकी सीमा शरीरसे भी ऊँचा, भव्य है। विश्वास उसे वह नहीं देपाता। पुतुलके जन्मका समाचारभी वह उसी तटस्थतासे लेता है। उसके अनुसार यामिनीके लिए मनको बहलानेका एक माध्यम यह है। पर उसी पुतुलके माध्यमसे यामिनीतक पहुँचने की कोशिश शुरू होती है। यामिनी भी तो यही चाहती थी। चाहे पुतुल ही माध्यम क्यों न बने। पर इसी बीच विश्वासकी असामयिक मृत्यु, मृत्युके क्षणोंमें विश्वासका पश्चाताप यामिनीके लिए यही सब शेष रह जाता है। निखिलका प्रस्ताव और विवाहके बाद निखिल-पुतुलके बीच विभक्त पत्नी। मांकी भूमिकाकी



वह किसी प्रकार कुशल नटिनीकी भांति संभालनेकी कोशिश करती है। स्त्रीका यह अन्तर्द्वन्द्व शाश्वत है। प्रत्येक संबंधको ईमानदारीमें जीयेका प्रयत्न अतीतके प्रति निष्ठा और उसे झटकेसे तोड़ न पानेका मोह और पीड़ा। नारीकी इसी पीड़ाके आसपास बुना गया है। पर लेखिकाकी दृष्टि अपेक्षाकृत अधिक तार्किक और संवेदनाके स्तरपर अधिक मानवीय है। यही सूर्यबालाकी अपनी पहचान है।

एक ओर पलायनवादी मुक्त स्वच्छंद जीवन दर्शन के अभिशापों और उनकी पीड़ाओंको झेलनेके लिए अभिशप्त यामिनी, सामाजिक आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्वसे संपर्क करनेके लिए निपट अकेली यामिनी... यामिनी अपने अधूरे अतृप्त जीवनका बदला न अपने जीवनके नये पुरुषसे लेती है, न उस नये पुरुषके सान्निध्यका प्रभाव उसके मातृत्वपर पड़ता है। संबंधको पूरी निष्ठाके साथ जीती हुई यामिनी सुदृढ़ पर संवेदनशील नारीके रूपमें उभरती है। यह अलग बात है कि वह किससे कितना खुश रख पाती है। यह समीकरणभी अन्ततः उसीका दायित्व है, तो फिर नारीके लिए जीने योग्य रह ही क्या जाता है? कितने प्रश्न खड़े करती है, उसकी नियति। एक सफल पत्नीके रूपमें अपना सब कुछ लुटाकर विश्वासको बचानेके लिए तत्पर यामिनी, पुतुलके लिए हमेशा चिंतित रहने वाली माँ यामिनी, निखिलको उसका प्राप्य देनेके लिए उतावली यामिनी—कहांसे गलत है वह? नारीकी अंतर्व्यथा है—यामिनी कथा। निश्चित रूपसे ढेरसे प्रश्न छोड़ती है। यही संभवतः मंतव्य है, संवेदनशील लेखिकाका। अनुभूतिके स्तरपर प्रामाणिकताकी पराकाष्ठा तक जा पहुंचती है। यामिनीकी पीड़ा मात्र एक कथा-नायिकाकी नहीं, अनेकों यामिनियोंकी पीड़ा है। उसे मिला क्या है? यही न, कि प्रत्येक व्यक्तिको उसके अधूरेपनकी व्यथा। सूर्यबालाने यामिनीके भीतर घुमड़ते सभी अन्तर्द्वन्द्वोंको उभारा है। निखिल, पुतुल यामिनी वायवी चरित्र नहीं लगते। पुतुलके प्रति पाठकीय सहानुभूति एवं करुणाके बावजूद, अंतमें निखिलको संवेदनशील पिताके रूपमें प्रस्तुत करना सकारात्मक परिणतिकी ओर इंगित करता है। यही इस कहानीका सबसे सशक्त पक्ष है। दुःखद यह है कि यह खूबसूरत पक्षभी पुरुषसे ही जुड़ा है। नारीके मानसिक अन्तर्द्वन्द्वोंके ठीक विपरीत कहानी

है मानसीका कथानक। कुंजा और किरनके बीच तक का वह मानसिक संसार जो एक सेतुकी भांति एकसे दूसरेकी ओर जाता है। कंजा और भुवनके बीचका वह मानसिक संसार स्थूलतासे अलग एक सूक्ष्म अनुभूति तक ले जाता है जिसे प्रेम शब्दसे व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। एक अद्भुत सम्बन्ध है यह। एक बेहद विचित्र-सा मानसिक सम्बन्ध जो किसी रिश्तेको नहीं काटता केवल जोड़ता है, एकसे दूसरेको ईर्ष्या, द्वेष, छल-कपटके खरपतवारको काटता हुआ। इन अनाम अद्भुत सम्बन्धोंका कोई छोर नहीं होता। वे इतने बारीक होते हैं कि बाह्य सम्बन्धोंकी छाया उनपर पड़ जाये तो वो जैसे मूले हो जाते हैं। उनकी खूबसूरती ही होती है कि वे भीतरही भीतर आलोकित होते रहें। भुवनका कंजासे सम्बन्ध कुछ ऐसा ही है, भीतरही भीतर एक समानान्तर संसारमें रचा बसा। जया और कंजाके बीचका रिश्ता इसी कारणसे वैसा नहीं होपाता जो प्रायः ऐसे सम्बन्धोंका होता है। भुवनकी भावनाका प्रतिबिम्ब किरनमें मिलता है। कंजाकी बेट्टी किरन। उसका समानान्तर मानसिक संसार तब खंडित होता है, जब भुवन उसके बनाये चित्रपर प्रश्न करता है। उसपर उचित अनुचितकी मोहर लग जाती है। उस अनुभूति के साथ शब्दोंकी मिलावट जैसे वह अनुभूति सहन नहीं कर पाती और किरनके मुंहसे निकला एकही वाक्य होता है : काश आपने आज न देखा होता सर ! भुवनको सम्मोहनभरी दृष्टिसे देखती किरन कंजाको सम्मोहित दृष्टिसे देखते भुवनको ही प्रतिबिम्बित करती है। दिव्य भव्य-सा यह बंधन जो किसी नीति या संहिताका मोहताज नहीं होता। साराका सारा जैसे शब्दोंसे खंडित हो जायेगा। इस कथाके सूत्रका शब्द नहीं दिया जा सकता।

एक अद्भुत अव्यक्त-सी छटपटाहट छोड़ जाती है यह कहानी। भुवन और किरन दोनोंकी छटपटाहट और उसमें उभरती जया और कंजा। 'यामिनी कथा' के कथा नायकोंसे भिन्न भुवनकी कल्पना निश्चित रूप से चौंकाती है। साथही मानसिक और व्यावहारिक दोनोंही स्तरोंपर सम्बन्धोंको सुन्दर ढंगसे निभातेवाले भुवनके प्रति एक मुग्ध भाव जैसे पाठकके भीतर पैदा होता है। नक्षत्रोंके खत्म होनेके बाद भी शेष छूटते प्रकाशकी भांति इस अद्भुत मोहक संसारमें कहींभी शब्दोंकी उंगली नहीं रखी जा सकती।



आजके व्यावहारिक समाज और उपभोक्ता संस्कृति के चलते इस सामाजिक ढांचेमें एक नया मटियाला तीतर जनमाहै, जो अपनी अचूक दृष्टिसे पूरी व्यवस्था को अपने अकाट्य तर्कोंसे भेदताहै। वह निर्धन स्वाभिमानी बालक जो उस पूरे ढांचेकी कमजोर चूलोंपर उंगली रखताहै, अपने तर्कोंके आधारपर उन्हें तहस-नहस करताहै। देशके भीतरका हठी, स्वाभिमानी नायक जो छल-कपटका उत्तर अपने स्वाभिमान और हठमें देताहै, हां हमारी आँखोंको भेदता हुआ मनकी भीतरी तर्हों तक पहुंचताहै। दूर छूटा हुआ घर मां, भाई, माता, बंधु, इन सबका विकल्प उसे क्या मिल पाया इस दोगली व्यवस्थामें। फिरभी, उसके भीतर वह सम्पूर्ण उत्कृष्टता शेष थी, संबंधोंको व्यापक रूप देनेकी उदात्तता भी। पर व्यवस्थाने उसे न संबंध दिये न ही आर्थिक सुरक्षा। वह छला गया अवश्य था पर उसके स्वाभिमानने निरुत्तर कर दिया, पाठकोंको भी, जिन दीन-हीन, शोषित चालोंको ही देखने, सुनने और पढ़नेके अभ्यस्त होतेजा रहेहैं उसके ठीक विपरीत यह चरित्र एक आस्था जगाताहै, व्यवस्थाके खोखलेपन उसकी क्रूरताकी सीमाका प्रदर्शन उसके विरुद्ध झंडा उठानेमें ही नहीं अपितु उसकी क्षुद्रताका उत्तर एक स्वाभिमानी हठमें भी दिया जा सकताहै... उसका प्रमाण है, यह मटियाला तीतर, जो भागना चाहताहै, मांके पंखोंके बीच। पता नहीं, मांके पंखोंके भीतर उसे स्थान मिलताहै, या सागरकी लहरोंके बीच। पर एक आक्रोश से अधिक यह कथा एक करुणा पैदा कर जातीहै। वह करुणा जो सकारात्मक है। वह तहस-नहस नहीं करती अपितु एक दिशा देतीहै। एक सही कदम उठातीहै, बदलावकी ओर।

व्यवस्थाके विरुद्ध आक्रोशसे ही सारी समस्याओं का समाधान खोजनेवाली आजकी तथाकथित प्रगतिशील कहानियोंके बीच यह कहानी निश्चित रूपसे अलग है। सूर्यवालाकी रचनाभूमि मानवीय संवेदनाओं की भावभूमि रहीहै। इनकी संवेदनशील दृष्टि मानव के भीतरी जगत्की पूरी तर्होंको भेदती हुई वहां पहुंचतीहै, जहांसे इन सभी अन्तःसंबंधोंकी एक नयी परिभाषा मिलतीहै। समाजके मूल्यों, नीतियों और संहिताओंके रहते हुए मानस लोकके विस्तारको कोई नहीं रोक पायाहै। इसी विस्तारके ओर-छोरको नापने का प्रयत्न इन कहानियोंमें सफलतापूर्वक सूर्यवालाने

‘प्रकर’—मई ६२—२८

कियाहै एक अद्भुत विचित्र संसारसे साक्षात्कारकी अनुभूति देतीहैं ये कहानियां।

कलाके अनुरूप भाषाकी ताजगी सूर्यवालाकी विशेषता रहीहै। धारदार भाषा, एकाएक नरम होती हुई रेशम-सी मुलायम हो जातीहै। भाषाका यही लचीलापन कथाकी प्रभावोत्पादकताको अधिक सशक्त बनाताहै। सूर्यवाला शिल्पके स्तरपर सिद्धहस्त लेखिका है। संवेदनशील दृष्टि, गठा हुआ शिल्प, भाषाकी ताजगी और चरित्र-चित्रणकी प्रामाणिकता इस संकलन को विशिष्ट बनातीहै। □

## सम्मान-अपमान?

लेखक : यशपाल वैद

समीक्षक : सन्तोषकुमार तिवारी

महाविद्यालयीन परिसरको केन्द्रमें रखकर अध्ययन-अध्यापन, ट्यूशन, विभागीय उठापटक, प्राध्यापकीय ईर्ष्या-द्वेष, एक दूसरेको नीचा दिखानेकी प्रवृत्ति, प्राचार्यकी ठकुर-सुहाती, छात्रोंके कंधेपर हाथ रखकर सस्ती लोकप्रियता, कार्यालयीन अव्यवस्था, ग्रांट न आने पर आर्थिक दुरावस्था और उससे जुड़ी सभी समस्याओं को यशपाल वैदने जिस सूक्ष्मताके साथ उकेराहै, वह उनकी निरीक्षण शक्ति, अनुभवकी प्रामाणिकता और ‘दत्तक अनुभवों’ का सच्चा प्रतिबिम्ब है। ऐसा लगता है कि लेखकने मानों आँखों देखी ‘कमेन्टरी’ द्वारा कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दियाहै। इन कहानियोंमें शिक्षा-जगत् और साहित्य-जगत् बहुतही शांत और शालीन ढंगसे व्यंग्यकी महीन-मारके साथ सहज अनावृत हो उठाहै। यहां पात्र गौण हो जातेहैं और पूरा परिवेशही आँखोंके सामने झूलने लगताहै। कहानियोंकी एक विशेषता यह है कि इनमें कहीं कृत्रिमता या औपचारिकता, नहीं है, सहज-स्वाभाविक बुनावटमें वे जितनी मुखर है उतनी प्रखरता आजकी कहानियोंमें कम देखनेको मिलतीहै। महाविद्यालयीन परिवेशमें रहकर सब खोलकर रख देना बड़े साहसका काम है।

१. प्रका. : सुयोग्य प्रकाशन, डब्ल्यू-११६, ग्रेटर कैलाश-१, नयी दिल्ली-११००४८। पृष्ठ : ११६।

क्रा. ६०; मूल्य : ४०.०० रु.।



संयहकी छः कहानियां महाविद्यालयीन गतिविधियों को समर्पित हैं। 'कहानीकी आत्मा' कक्षाका हू-ब-हू चित्र सामने खड़ाकर देती है जिसमें मर्मस्पर्शी स्थलोंकी पहचान, रचनाकी प्रासंगिकता और साम्प्रदायिकतापर प्राध्यापकने जो कुछ पढ़ाया, वह तो उजागर हुआ है कि तु वे इस प्रश्नका उत्तर ढाल जाते हैं कि दंगे-फसाद कौन कराता है, क्यों होते हैं? यहां राजनीतिक प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है। मानव-धर्मपर तो उन्होंने जोर दिया किन्तु राजनीतिक पहलू अनछूआ रह गया—यह प्राध्यापककी विवशता है अथवा कहानीकी आत्मासे वचना? विश्लेषणकी तह तक न जाकर संतुष्ट अध्यापनका भ्रम पाल लेना—यही रचनाकारका रचनामें अंतर्निहित व्यंग्य है।

'आघात-दर-आघात' में उन षडयन्त्रोंका भंडाफोड़ है जिनमें चालाकी, काइयांपन और चाटुकारिता प्रमुख हैं। पारिवारिक टूटन, विभागीय उठापटक, ऊर्जामें क्रमशः कमी, छात्रोंकी असम्यक्ता, लड़कियोंका विवाह, अनचाही निर्लिप्तता, मध्यवर्गीय मानसिक दबाव आदि के कारण महत्वाकांक्षी मनका क्रमशः छलनी होना और अंतमें हाटें अटेकका शिकार होकर मृत्यु प्राप्त होना—यही इस कहानीका कथ्य है। मरनेकी स्थिति को भी भुनानेकी कोशिश करना और मनुष्यताका दिखावा करते हुए पद हथियानेकी क्रूर हरकतें भी कहानीमें खुलकर प्रस्तुत हुई हैं। प्रो० शर्माकी मानसिकताका खुलासा इन पंक्तियोंमें देखाजा सकता है—

"न तो जमकर बेईमानीका पैसा कमा पाते हैं और न ही जमकर बेईमानीका विरोध कर पाते हैं। ऐसेमें वे बहुत निरीह होकर रह जाते हैं।"

'फैसला' रचनामें कुछ अपराधी छात्रोंने मि. कुलदीपकी पिटाई करदी क्योंकि उन्होंने परीक्षामें नम्बर नहीं बढ़ाये। छात्रोंसे कतिपय प्राध्यापकोंकी मिली-भगत, कायर चतुराई, नपुंसकता, दिखावा सहा-गुण, अभिभावकके सामनेका ढबूपन, प्राचार्यका घोंचपन—सब कुछ कहानीमें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष बोल उठा है। कॉकसकी राजनीति, कुलदीपकी चूर-चूर होती हुई महत्वाकांक्षाएं और कतिपय वरिष्ठ प्राध्यापकोंकी निम्नस्तरीय हरकतें हमारी संवेदनाओंको झकझोरती हैं। इस कहानीकी एक विशेषता यह है कि प्रत्येक प्राध्यापक अपने विषयको पढ़ाते-पढ़ाते कुछ विषयगत संस्कारों और मनोवृत्तियोंसे जुड़ जाता है। उसका सही उद्घा-

टन यहां हुआ है जैसे अंग्रेजीके प्राध्यापकका दो स्तरोंपर जीना याने प्राध्यापकके साथ दिखाऊ-सहानुभूति और अभिभावकको आश्वासन एवं प्राचार्यकी ओरसे बहुत कुछ बोलना, वस्तुतः उस विभागकी अंग्रेजियतका 'फूट डालो और राज्य करो' वाला सिद्धांत प्रदर्शित करता है।

'हिंसाब-किताब' रचनामें एक प्राध्यापक-दम्पतीका द्यूशनप्रेम, लालची मन, अभिभावकोंके बिजनेसमें सहयोग, शिक्षा जगत्की व्यावसायिकताका सटीक उद्घाटन हुआ है। यहाँपर द्यूशन करते हुए जीवनकी आपाधापीमें मशीन बन जानेकी स्थिति और अपनी प्रशंसाके पुल बाँधनेके स्वभावपर लेखकने महीन व्यंग्य किये हैं। 'सात्वना' कहानी द्यूशनमें व्यस्त दम्पतीका अपनेही सुपुत्रको न पढ़ाना और उसके फेल हो जानेपर आहत होना—बड़ी सफाईसे व्यक्त हुआ है। लड़केसे निरंतर यह कहना कि 'हमारा बेटा पढ़े-न-पढ़े इसके पास लाखों रुपये हैं—मामाके बिजनेसमें हिस्सा है', उसे निश्चिन्त कर देता है। 'तनख्वाह' में प्रो. दीक्षित की मध्यवर्गीय आर्थिक स्थितिको केन्द्रमें रखकर सम्पन्न सहयोगियों द्वारा उन्हें खिजाना, बार-बार उकसाना और उनके दायित्वोंको स्पष्ट करते हुए उन्हें आहत करना—बड़ी बारीकीसे उकेरा गया है।

संकलनकी अन्य कहानियां जैसे—'नौकरी' एक अधिकारीके अपने अदलीपर निर्मम व्यवहारकी कहानी है। पढ़े-लिखे होनेपर भी शोषित होनेकी दुर्दशापर संवेदनात्मक दृष्टिसे एक मार्मिक कहानी है। जहांतक साहित्य जगत्की दुर्दशाका प्रश्न है 'सतहसे उठता एक हिन्दीवाला', 'मूल्यांकन' और 'सम्मान-अपमान' कहानियां उल्लेखनीय हैं। लेखकका किसी स्थानीय संस्थासे अभिनंदन कराने हेतु उसीसे राशि माँगना और न देने पर उपेक्षित करना 'सतहसे उठता एक हिन्दी-वाला' का कथ्य है। 'मूल्यांकन' में लेखकने संवाद-वाताओं और पत्रकारोंके घटिया चरित्रोंको रेखांकित किया है। इसमें पाठियों आनेवाले लोगों, उनकी मनो-वृत्ति और देखने-सुनने, कहने-करनेकी प्रवृत्तिका भली-भाँति उद्घाटन हुआ है। वर्ष भरका साहित्यिक मूल्यांकन संपादक कैसे करते-कराते हैं, यह तथ्य ध्यान खींचने वाला है—'व्यक्तिगत रूपसे भेंट कीगयी पुस्तकोंको तो लेनाही है, बस यही ध्यान रहे कि उपन्यास, कहानी या निबंधकी कोटिमें न डाल दिया जाये।...भाषा और शब्दों जैसे उपकरणोंका प्रयोग जैसा चाहे कर सकतेहो,



भावना-हीनतामें भावना और भावनामें भावनाशून्यता ला देनाभी तो एक निपुणता है।" वास्तवमें निष्पक्ष मूल्यांकनके बहाने पक्षपातकी चरमसीमा दिखलायी गयी है। 'सम्मान-अपमान' कहानी यह सिद्ध करती है कि शांत, संयत, निष्काम व्यक्तिका कभी सम्मान नहीं होता। उसे केवल सम्मान देनेकी सूचना भर दी जाती है। सम्मानके नामपर यह क्या कम अपमान है।

'वात मिस-फिट होनेकी' मूलतः एक मनोवैज्ञानिक लेख है जिसमें आत्मविश्लेषण द्वारा युगीन स्थितियोंकी चर्चा है। यह रचना कहानी होनेका आभास नहीं देती। घृणा और ईर्ष्याकी जगह प्यारका उमड़ना एक शिक्षा-प्रद सुधारात्मक दृष्टिको कहानी प्रतीत होती है जिसमें मनोवैज्ञानिक समझ प्रधान है। ये कहानियाँ छोड़ी जा सकती थीं जिनमें 'बीच समारोह' भी शामिल है। नये कथ्यकी 'कोई अपना' कहानी बहुत प्रभावशाली बन पड़ी है। प्यारका भूखा, हताश और हीनभावनासे ग्रस्त होता हुआ व्यक्ति जब एक डॉक्टरकी धर्मपत्नीसे आत्मीयता भरा सामीप्य महसूस करता है तब वह घातक मनःस्थितियोंसे उभरकर एक स्वस्थ पुरुष बन जाता है—वस्तुतः यह चाह हर प्राणीमें होती है कि 'कोई अपना' हो। 'खला' रचनामें यह दर्शाया गया है कि जब रोमानी तेवर धरतीके यथार्थसे जुड़ते हैं तब एक निस्तब्धता छा जाती है। यथार्थ बहुत खुरदरा होता है।

यशपाल वैदके इस पांचवें संग्रहकी पन्द्रह कहानियों से गुजरते हुए कुछ बातें बहुत स्पष्ट हो जाती हैं—कहानीकारने कई रचनाएं प्रथम-पुरुषमें लिखी हैं, मानो रचनाकारकी उपस्थिति प्रामाणिक अनुभूतियोंकी अभिव्यक्ति है। इससे उनकी संलग्नता व्यक्त होती है। कुछ कहानियोंमें जैसे तटस्थ दशककी भांति आँखों देखा वर्णनकर रहे हों, कुछ इस प्रकार कुरेदते हुए कि व्यंग्य की शालीन मारभी उसमें शामिल हो जाये। मध्य-वर्गीय मानसिकताकी पकड़, बुद्धिजीवियोंकी उलझन और परिवेशगत संपृक्त रचनाकारकी बहुत बड़ी विशेषता है। अधिकांश कहानियोंकी उठान अपने समापन तक निर्द्वन्द्व भावसे एक जैसी बनी रहती है, बिना किसी शिथिलताके, जिज्ञासा-भावसे जुड़ी हुई। मनोविश्लेषणसे सम्बद्ध कहानियाँ कहींभी नग्न चित्रणसे आक्रांत नहीं होतीं, सांकेतिक समझका निर्वाह करती हैं। महाविद्यालयीन हथकंडोंसे जुड़ी हुई कहानियाँ यद्यपि

'प्रकर'—मई ६२—३०

अलग-अलग शीर्षकोंसे प्रस्तुत हुई हैं फिरभी इन्हें जोड़कर देखा जाये तो उक्त संदर्भमें एक लघु औपन्यासिक कृति उभरने लगती है और यह एक महती उपलब्धि है। □

## दर्दनामा ?

लेखक : बी. आर. पद्म

समीक्षक : डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त

हृदयमें पनपते, आंसुओं, सिसकियों और शब्दोंके माध्यमसे व्यक्त होते दर्दके कारण अनेक हो सकते हैं किन्तु दर्दकी अनुभूतियाँ भिन्न नहीं होतीं। बी. आर. पद्म अपनी कहानियोंके माध्यमसे हमें पीड़ाओंके एक ऐसे संसारमें ले जाते हैं जो हमारे आसपासका संसार है। जहाँ-कहीं वह इतिहास और फँटेसीके क्षेत्रमें उड़ान भरते हैं, वहाँ दर्दका बोध उतना गहरा नहीं रह पाता।

इन कहानियोंका स्वर व्यक्तिपरक रहा है। रोमांटिक आख्यानोके मध्यमें लेखकने अपने आपको ही खड़ा पाया है। पहली कहानी 'दर्दनामा' में वह अतीतकी प्रेमिकासे नये सिरसे मिलता है—अठारह वर्ष बाद—और निष्कर्ष स्थापित करता है—यह शरीर और उसका धर्म अलग-अलग है। परिस्थितियाँ और परिवारोंके समाजार्थिक स्तर मनुष्योंके मार्ग अलग कर देते हैं पर हृदय है कि रह-रह कर पुराने पथकी पहचान करने लगता है। जीवनके ऐसे क्षणोंकी स्मृतियाँ दूसरों के लिए रोमांटिक हो सकती हैं परन्तु भोक्ताके लिए ऐसे क्षणोंका सामना करना बहुत पीड़ादायक होता है। इसी संग्रहकी एक अन्य कहानी 'बारीदार' में परिस्थितियों के पेपरवेटके नीचे दबी भावनाएं जब अचानक फड़फड़ाने लगती हैं तो पाठक कहानीके फ्रेमसे बाहर निकलकर जीवनके यथार्थ-अयथार्थकी मीमांसा करने लगता है। कहानियोंके चौखटेसे बाहर निकालकर सोचनेकी क्षमता प्रदान करना बी. आर. पद्मकी कहानियोंकी विशेषता है।

लेखकने भारत-पाक-विभाजनको लेकर भी कहा—

१. प्रका. : कादम्बरी प्रकाशन, ५४५१ शिव मार्किट, नया चन्द्रावल, दिल्ली-११०००७। पृष्ठ : १५२।

क्रा. ६२; मूल्य : ३५.०० रु.।



नियां लिखी हैं। चौतीस साल बाद एक तीर्थयात्री के रूप में पाकिस्तान जाकर लेखक सोचता रह जाता है— धरती के दोनों टुकड़ों पर मंदिरों, गुरुद्वारों और मस्जिदों के लिए तीर्थयात्री आते-जाते हैं परन्तु मन मंदिर तो सूते पड़े हैं।

संग्रह की अधिकतर कहानियां पंजाब की धरती की महक लिये हुए हैं। पंजाब का सामान्य नागरिक आज जिस भयावह यातना से गुजर रहा है उसका भी मर्मस्पर्शी अंकन लेखक ने किया है। 'दहशत' कहानी समसामयिक विषय तथा उसके सीधे-सच्चे प्रतिपादन के कारण प्रभावशाली बन पड़ी है। लेखक विश्वासों की मोतकी घोषणाओं के बीच सोचता रह जाता है— लेकिन पहले वाले विश्वास अभी जिन्दा हैं। उन विश्वासों का नाम है हीर-रांझा, सोहणी-महीवाल,

पूरण भगत... अर्थात् एक लोकमानसाधारित परम्परा। कड़वा सच यह है कि आज के राजनेताओं ने इसी परम्परा को महत्त्वहीन करार देकर एक नयी, ऐसी परम्परा बना देनी चाही जिसका अर्थ और अन्त उन्हीं से होता है। इसी सांस्कृतिक उखड़ेपन का शिकार है आज समूचा देश।

लेखक का फलक व्यापक है। कहीं-कहीं उसकी पकड़ ढीली होने लगती है और पाठक सोचता है—यह अन्त या यह मोड़ उपयुक्त नहीं है। लेकिन यह सोचना भी तो सब का अपना-अपना है। लेखक की सफलता इसी में है कि वह सोचने के लिए मजबूर करता है और एक पीड़ा—एक संवेदना में साझेदारी का निमन्त्रण देता है। □

## काव्य

### प्रश्नों की सलीब पर?

कवि : दुर्गाप्रसाद ज्ञाला

समोक्षक : डॉ. भगीरथ बड़ोले

आधुनिक साहित्यिक जीवन की स्थितियां वैचारिक-विभीषिकाओं से इतनी परिपूर्ण हैं कि उनके बीच मनुष्य की सहज संवेदना को आकार देने वाले काव्य की तलाश निरंतर कठिन बनती जा रही है। कभी तो आज के जीवन को बाहरी परिदृश्य से प्रभावित मानकर व्याख्यायित किया जाता है, तो कभी उसके अदृश्य भीतरी लोक को ही प्रतिनिधित्व देकर जीवन की अपने ढंग की व्याख्या की जाती है। इस कार्य में कभी वर्तमान अपने प्रत्यक्ष रूप में सहयोगी बनता है, तो कभी इतिहास के पृष्ठ या

पूरा संदर्भ उसके उपजीव्य बन जाते हैं। डॉ. दुर्गाप्रसाद ज्ञाला की प्रस्तुत कृति 'प्रश्नों की सलीब पर' को यदि इसी क्रम में परीक्षित किया जाये, तो कुछ असंगत नहीं होगा।

प्रस्तुत कृति 'प्रश्नों की सलीब पर' में जिस कथा को आधार बनाया गया है, उसका विवेचन प्राच्य ग्रंथों में दो प्रकार से मिलता है। 'कठोपनिषद्' के अनुसार नचिकेता राजा वाजिश्रवस का पुत्र था। विश्वजित् यज्ञ में पिता को अपना सब कुछ दान में देते देखकर नचिकेता भी हठ करता है कि उसे भी दान में दिया जाये। क्रुपित पिता आवेश में उसे यम को दे देते हैं। अपने सत्यवादी पिता के आदेशानुसार वह यमलोक पहुंचता है तथा यम के प्रलोभनों के सम्मुख अविचलित रहकर ब्रह्म विद्या और अध्यात्म विद्या सीखकर सकुशल लौट आता है। महाभारतकार के अनुसार नचिकेता प्रभावशाली ऋषि उद्दालक का पुत्र था। पिता द्वारा नदी पर भूली वस्तुएं वापिस न लाने के कारण पिता नचिकेता को क्रोध में यम-

१. प्रका. : मालवांचल प्रकाशन, १/१८, सोमेश्वर मार्ग, राजापुर (म. प्र.)-४६५००१। पृष्ठ : ११४; विमा. ६१; प्रूल्य : ४०.०० रु. (पेपरबैक)।

'प्रकर'—ज्येष्ठ '२०४६—३१



शंनका अभिशाप देते हैं। परिणामतः नचिकेताकी मृत्यु हो जाती है। पिताके अत्यधिक विलाप करनेपर दूसरे दिन पुनरुज्जीवित होकर नचिकेता पिताको यम लोकके अनुभवोंसे अवगत कराता है।

इन दोनों कथाओंके मेलजोलकी आधारभूमिका अपनी वैचारिकताके परिवेशमें प्रयोग करते हुए कतिपय नये कवियोंने जो रचनाएं प्रस्तुत की हैं, उनमें प्रमुखतासे चर्चित कृति है कुंवर नारायणकी 'आत्म-जयी'। इस काव्य ग्रंथमें कविने प्रतीकों और बिम्बोंके सफल प्रयोगों द्वारा आधुनिक जटिलताओं और दुरुहताओंके बीच जीवनके मूल प्रश्न उठाकर स्वानुभूत जीवन सत्यको अभिव्यंजित किया है। डॉ. झालाकी यह काव्य यात्रा भी ऐसेही सत्त्वोंकी खोज की यात्राका एक अंग कही जा सकती है।

मूलतः 'प्रश्नोंकी सलीबपर' की प्रस्थान भूमि नचिकेता की ही कथा रह गई है। डॉ. झालाने मूल कथाके प्रमुख तथ्यों से पाठकोंको परिचित करानेके लिए उसे कृतिके फलपत्र पर उल्लिखित किया है। कृतिके समस्त कथासूत्र इन्हीं तथ्योंके सहारे चले हैं। किन्तु 'प्रश्नोंका सलीबपर' की कथा वैचारिकताके एक भिन्न धरातलपर स्थित है। इसमें मृत्युके आंतकके बीच जीवनके धरातलसे जुड़े रहकर जीवनको जानने-समझनेका प्रयास एक विशिष्ट वैचारिकताके आलोकमें किया गया है। इसीलिए यह कृति पुराकथासे संबद्ध होकर भी अपनी प्रासंगिक पहचानको सुनिश्चित रूपमें आकार प्रदान करती है।

वस्तुतः प्रस्तुत कृति आद्यंत साम्यवादी चेतनाको आधार बनाकर चली है। इसीलिए इसका कथानायक प्रारंभसे अंत तक अपने विद्रोही स्वरूपको बनाये रखने में समर्थ हो सका है। यह चरित्र मिथकीय नचिकेताकी भांति मात्र मोक्ष-प्रज्ञा-कामी नहीं, अपितु जीवनकी हर असंगतिये जूझनेवाला संघर्षजीवी चरित्र है।

प्रथम सर्ग 'जिज्ञासा' के अंतर्गत प्रारंभसे ही नचिकेताका विद्रोही स्वरूप मुखर होने लगता है, जिसके परिणामस्वरूप वह वैभव संपन्नता प्रदर्शित करनेवाले पिताको फटकारता हुआ कहता है—

'आखिर क्यों/ धर्मके नामपर/ एक आत्मरूप संवारा जाता है/ जीवनके सौंदर्यकी कनक किरणों से,/ और किया जाता है लाचार/ अन्य अनेक आत्मरूपोंको / सड़ांधकी बदबू बिखेरती नालियों में/ कीड़ोंकी तरह बिलबिलानेके लिए/ निरंतर

निरंतर...।'

नचिकेता सामाजिक विसंगतियोंका प्रबल विरोधी है। इसीलिए उसे पूर्वजन्म, धर्म, ब्रह्म आदिकी परंपरागत धारणाओंमें विश्वास नहीं है। उसकी सहानुभूति विपन्न श्रमजीवियोंके प्रति है असमानताकी वह जीवनकी आधारभूत समस्या मानता है, इसलिए द्वन्द्व पर आधारित परिवर्तनकी सनातन प्रक्रियाको महत्त्व देता हुआ वह अनंत प्रश्नोंको साथ लिये पिताके सम्मुख निर्भीक खड़ा हो जाता है।

दूसरे सर्ग 'परंपरा : प्रणति और प्रयाण' के अंतर्गत नचिकेता अपनी प्रश्नाकुल चेतना लेकर उस मृत्यु देवतासे साक्षात्कार करने निकल पड़ता है, जिसे जीवत का अंतिम परम सत्य माना गया है। उसका संकल्प जीवनके वर्चस्वको प्रतिष्ठित करनेसे संबंधित है और वह जानता है कि जीवनके नये प्रश्नोंका उत्तर परंपरा नहीं दे सकती। इन उत्तरोंको पानेके लिए 'खुद बनाना' होता है अपना रास्ता, चलते हुए उगलती बालूपर। तीसरे सर्ग 'यात्रा-अंतर्यात्रा' के अंतर्गत नचिकेताकी द्विविधाग्रस्त मनःस्थितिको जीवन्तताके साथ चित्रित किया गया है। यद्यपि उसका यात्रापथ भयानक है तथापि मानवकी वरेण्य महिमाका स्मरण करता हुआ वह मृत्युके अंतिम द्वारपर नये द्वारोंको खोजता, बढ़ता चला जाता है। वस्तुतः अपनी इस यात्रा द्वारा वह मानवके मंगल विधानके लिए इतिहासको तेजस्वी चेतन्यसे मंडित करना चाहता है।

नचिकेता द्वारा यम द्वारपर तीन दिन और तीन-रात तक द्वारकी कुण्डी खटखटाते रहना उसकी संकल्प-दृढ़ताको रूपायित करती है। खोलती मनीषा लिये यम से मुठभेड़ करानेके पीछे उसका लक्ष्य प्रगतिपरक जीवन सत्त्वोंकी खोज ही है। वह जानता है कि प्रश्न ही परंपराके रथकी गति देते हैं, अतः प्रश्नोंकी सलीब पर टंगना कभी व्यर्थ नहीं जाता। विशेष रूपसे ऐसे समय उत्तरोंकी खोज अत्यावश्यक हो जाती है, जब जीवन पर निरर्थकताका धुंध छाजाये, रिश्ते अर्थहीन होजायें, चेहरे मिथ्या सिद्ध होने लगे और करुणा कोरा प्रदर्शन बनकर रह जाये। वह यमको चुनौती देते हुए कहता है—'झेलनीही होगी आपकोभी, प्रश्नोंकी यह टकराहट, अपने कलेजेपर।'।

'यंत्रणाकी परिणति' के अंतर्गत अदम्य जिज्ञासु नचिकेताके लिए यम-द्वार खुलते हैं। उसे अनुभव होता



है कि असत्के पथरीले पथपर चलकर ही सत्के सौन्दर्यकी प्रतीति होती है। चूंकि उसने ये तीन दिन प्रतीक्षा की गतिशील आकुलता झेलकर बिताये हैं, तभी वह शिवत्वका गंतव्य पानेमें समर्थ हो सका है।

अंतिम सर्गके अंतर्गत डॉ. झालाने कथा सूत्रोंको नये आलोक संदर्भोंकी ओर मोड़ा है। यमके उपदेश सुनकर नचिकेता जान जाता है कि 'प्रश्न जहांसे उत्पन्न, उत्तरोंकी खोज वहीं होगी।' जीवनकी संघर्ष यात्रासे कटकर किसीको कुछ नहीं मिलता। इस यात्रा में पूर्णता या ब्रह्म की बात कोरी कल्पना है। नित्य-अनित्यकी बात छलावा है। ऐंद्रिक विलास जीवनको कुंठित, आस्थाहीन और गतिशून्य बनाते हैं। अतः अंधेरेसे अंधेरेकी इस यात्राको छोड़ मनुष्यको संसारमें अनुभवोंकी द्वन्द्वात्मक स्थितिको स्वीकारना होगा, अपने जड़ण्ड मनपर अधिकार करना होगा। क्योंकि अपूर्ण और अधूरा होकर भी मनुष्यमें अद्भुत सामर्थ्य है। लोक जीवनसे जुड़नाही जीवनका परम प्रयोजन है, अतः 'मैं' को 'पर' से जोड़ना होगा। वहीं सही मुक्ति होगी। ताप-तप्तोंकी आश्रय छाया बनकर ही मनुष्य अपनी चेतनाको मंगल रूप देता है—

‘चेतनाका चेतनासे जुड़ना ही तो/ महाभावमें लीन होना है, अल्पका भूमा होना है/अणुका विराट् होना है/और आत्माका परमात्मा होना।

इसीलिए नचिकेता देहको अर्थात् भौतिक सत्ताको स्वीकारता अपने मटमैले संसारकी ओर इस संकल्पके साथ लौट आता है कि—

‘मानवकी वह लोक संभूत चेतना/नहीं रह सकती अब/ पट्टी बांधकर अपनी आंखोंपर/ कोल्हूके बैल की तरह/ नहीं हांका जा सकता उसे/ अब अपने मनमाने ढंगसे/ चाहे जिस दिशामें किसीभी शक्ति द्वारा/ वह तो देखेगी अब चारों तरफ/ और निर्णय करेगी खुद/ अपने रास्तेके बारेमें।’

इस प्रकार दुर्गाप्रसाद झालाने 'प्रश्नोंकी सलीब पर' कृतिके अंतर्गत पुराकथाका उपयोग साम्यवादी चेतनासे प्रतिबद्ध होकर किया है। इसीलिए इन्हें मूल कथाके सूत्रोंमें से बहुत कुछको छोड़ना पड़ा तथा बहुत कुछको बदलना पड़ा। अधिकांश स्थलोंपर वैचारिकी

का अत्यधिक आग्रह उसके समायोजनमें सहजताको व्यंजित नहीं होने देता। विचारपक्षके अत्यधिक घटाटोपके कारण काव्यपर वक्तव्य अधिकाधिक हावी हो गये हैं और प्रारंभसे अंततक रचनात्मकताके धरा-तलपर दर्शन और कविताकी खींचतान अनुभव होती ही रहती है। वैसे प्रस्तुत कथाको जीवंत तथा आकर्षक बनानेके लिए नाटकीय स्थितियोंकी सर्जना संभव हो सकती थी, किन्तु डॉ. झाला कृतिको ऐसा वांछित रूपाकार न दे सके। इसके साथही उपलब्ध दुहरावोंके कारण काव्यमें यत्र तत्र शिथिलताभी अनुभव होती है तथा अयुक्तिसंगत शब्द तथा पद प्रयोग यथा—सूर्य आया और चला गया (७६), कटारों-सी झनझनाती भाषा (११), क्रूर हिंसा (६६) अपना आत्म उद्धार (१६) विवाइयां फटना आदि लेखककी श्रम साधनापर हल्के प्रश्नचिह्न खड़े कर देते हैं।

इस स्वल्प चिन्त्य स्थितिके होते हुए भी डॉ. झाला का यह रचना प्रयास प्रशंसनीय कहा जा सकता है। उन्होंने एक पुराकथा और मिथ चरित्रको आधार बनाते हुए कृतिको जो मोड़ प्रदान किया है, वह अपने प्रासंगिक महत्त्वके कारण स्तुत्य है। जीवनकी विभीषिकाओंको भयग्रस्तताके जीवंत चित्रण द्वारा प्रस्तुत करनेमें डॉ. झालाका काव्य कौशल अधिकाधिक मुखर बन गया है। वस्तुतः नचिकेताकी यह प्रश्न-यात्रा आज की विषम परिस्थितियोंमें मानव चेतनाको नया और उपयुक्त आधार प्रदान करती हुई जीवनकी नयी संभावनाओंके द्वार खोलती है तथा मनुष्यको हताशा और आत्मवादके अंधकूपसे बाहर निकालकर सामाजिक संघर्षके लिए प्रेरित करती है। आज जबकि काव्यकी दिशाएं किसी भित्ति की खोजमें लक्ष्महीन-सी भटकती जा रही हैं, जीवनकी अर्थवत्ताको प्रमाणित करनेवाली डॉ. झालाकी यह कृति 'प्रश्नोंकी सलीब पर' एक विशिष्ट जीवन-दृष्टिको रचनात्मक धरातलपर प्रस्तुत करती है। □



## वक्तकी परछाइयाँ?

कवि : सुन्दरलाल कथूरिया

समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

सुन्दरलाल कथूरियाके प्रस्तुत संकलनकी पचास कविताओंके रचना-उत्समें हमारे समाजके मध्यवर्गीय बौद्धिक द्वारा झेले जानेवाले संकट हैं। उसके भ्रान्त परिवेशमें सौजन्य और हार्दिकता पग-पगपर धोखा खा जाती हैं। ध्ववहारकी चालाकीने विशिष्ट जनोंको भी लोमड़ियोंके झुण्डमें बदल दिया है। दुहरे-व्यवहार और पैतरेबाजियोंके दंशसे घायल व्यक्तिकी व्यथाओंको ये कविताएं व्यक्त करती हैं। ये कविताएं हमें उस आधुनिकतामें प्रविष्ट कराती हैं जिसमें बाहरसे आकर्षक व्यवस्थित और टिपटप दिखनेवाला ही भदेस, उच्छृंखल और विद्रूप प्रामाणित होता है। शान्त और स्थिर जैसा दिखनेवाला हमें लंबे शीतयुद्धमें ढकेल देता है। ऐसा शीतयुद्ध जिसकी विभीषिकाको प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति स्वयंको पाण्डव समझकर झेलनेको अभि-शप्त है। इस समरमें सभी शिखण्डी महारथी हैं। माया बाजार घटोत्कचोंके अधिकारमें हैं। इस युद्धका दर्शन है परजीविता। आजादी इसका सबसे बड़ा व्यंग्य है। वस्तु जगत्के इसी सत्यको संग्रहकी इन कविताओं ने विषयवस्तुके रूपमें अपनाया है।

कथूरियाकी कविता-भाषा पौराणिक व्यक्तिवाची संज्ञा शब्दोंका व्यवहार करके समकालिक विषण्णताओंको पुराना सन्दर्भ दे देती है। वहाँ तेज दांत, नुकीले सींग व खूंखार पंजोंको लिये हुए नृ-सिंह व्यक्ति हैं तो तनाव, निष्कर्षहीनता, और विघटनके व्यूहोंमें घिरे हुए अभिमन्युभी। हिरण्यकशिपु, वृत्रासुर, सुबाहु, मारीच और भस्मासुरोंकी भूमिकाओंको कविताओंमें सहभागिता मिली है तो इसीलिए कि 'वर्तमान' के नाटकके वे उपयुक्त रूप हैं। केवल उन्हें आधुनिक दिखनेभरकी तैयारी करनी है जो वेषभूषा और संस्कृतिकी नकलसे पूरी हो जाती है। मारीचको सुवर्ण मृग बनकर जंगलमें जानेकी जरूरत नहीं चमच-

माती कारमें बैठकर शहर चले जाना है और 'राम' को चकमा देकर स्त्री-हरण करके अपनी विद्या-बुद्धि और तुर्ती-फुर्तीको प्रमाणित कर देना है। इस सभ्यतामें, होलिकाएं फैशनेबुल वेषमें आधुनिकतम संसाधनों द्वारा अपनी भूमिकाओंको ही प्राथमिकता दे रही हैं। कविताएं आजकी चकाचक आधुनिकताको उस भाषा में व्यंग्यका निशाना बनाती हैं जो हमारी जानी-पहचानी है। परन्तु कथूरियाकी कविताका वास्तविक प्रतिपाद्य नकारात्मकके ग्रहणमें नहीं सकारात्मक जीवन-मूल्योंके समर्थनमें हैं। इन मूल्योंके पौराणिक-प्रतिनिधिही उनकी कविताओंमें अपेक्षाकृत अधिक हैं। वहाँ मृत्युसे भिड़नेवाले नचिकेता हैं तो उसके लिए हंसते-हंसते शरीर अपितकर देनेवाले दधीचिभी। चुनौतीके स्वीकारमें जीवन होम कर देनेवाले विश्वामित्र हैं तो इच्छा-मृत्यु महारथी होकर भी परिणामके दर्शनकी अभिलाषासे शरशैल्याका वरण करनेवाले भीष्म भी।

कथूरियाकी कविताओंका मूल स्वर आस्थाका है। वे व्यावहारिक आदर्शके पक्षपाती और संघर्षकी अनिवार्यताको स्वीकारनेवाले कवि हैं परन्तु नियतिके विधान द्वारा 'संत' की स्थापना पर भरोसा करते हैं—

हर अंधेरेमें/ चाहे वह कितनाही घना हो/ मुझे दीखती है / एक प्रकाश-किरण/बादलोंमें कौंधती है,  
एक तड़ित/ मैं कभी/ निराश नहीं होता/ जानता हूं।/ हर रातके बाद आता है सबेरा/ और दुःखके बाद/ सुख।

सहिष्णुतामें कवि, भक्तियुगीन सीमाओंतक 'मूल्य-वत्ता' पाता है परन्तु नये तर्कके साथ। वैखरी उद्दण्डता और स्टंट धूर्तताके प्रतिरोधका संभवतः यही रचनात्मक उत्तर भी है। अन्यथा रचनात्मकताको जीवित नहीं रखा जा सकता। मूल्यकी चिरंतनतामें कविको संदेह नहीं है। वह दृढ़ आशावान् है क्योंकि उसके पास तर्क हैं—

हम/ घास/ सब जगह हमारा अस्तित्व/ और तुम/ जूता पहिने पैर/... हमें रोंदो/ जितना भी रोंद सको/ किन्तु भूलो नहीं/ पैरोंमें रोंदी जानेवाली घास/ जब आंखोंमें पड़ती है/ तब उसकी अहमियत मालूम होती है।

संग्रहकी कविताएं रूपवादकी सीमासे बहुत दूर मानवताके आधारभूत तत्त्वके अंकुरणका आधार

१. प्रका. : विक्रम प्रकाशन, ई-५/१५ कृष्णनगर, विल्ली-११००५१। पृष्ठ : ६४; डिमा. ६०; मूल्य : ₹०.०० रु.।

'प्रकर'—मई ६२—३४



तैयार करनेका प्रयास है। इसीलिए इनमें उद्बोधनकी समता बनी हुई है—

आओ आज/ रोशनीका एक सैलाव/ पैदा करें /  
कि न टिकें/ अंधेरेके पैर / और हर ओर/ प्रकाश  
ही प्रकाश होजाये। □

**मैं कृष्णा हूँ?**

कवि : डॉ. अनन्तराम मिश्र 'अनन्त'

समीक्षक : डॉ. श्रीविलास डबराल

'यमुना' और 'नर्मदा' नामक काव्य-कृतियोंके पश्चात् विरचित इस प्रबन्ध-रचनानामें कविने दक्षिण भारतकी गंगा विष्णुजा कृष्णाको अपने काव्यत्वका अर्घ्य समर्पित किया है। कृष्णाके साथ उसकी प्रमुख सहायक नदियों—भीमा और तुंगभद्रा—को भी वर्णन विस्तार देकर कविने राष्ट्रीय समेकताके अपने उस महदुद्देश्यके प्रति आश्वस्त किया है, जिसके अन्तर्गत वह दक्षिण भारतकी समस्त प्रमुख नदियोंपर काव्य-सृजनकी प्रेरणासे प्रवर्तित है।

सह्याद्रिसे निर्गत, भीमा-तुंगभद्रा आदि अनेक सहायक नदियोंके जल-संभारसे समृद्ध, सागर-संगम तक महाराष्ट्र, कर्णाटक तथा तेलंगण प्रदेशोंको शस्य-सम्पदा और वानस्पतिक हरीतिमासे शोभा-सम्पन्न करनेवाली कृष्णा नदीके भौगोलिक फलकपर उसकी देवशास्त्रीय (मिथकीय) उत्पत्ति तथा उससे सम्बन्धित इतिहास, धर्म और संस्कृतिकी महनीयताको उजागर करनेवाली इस काव्य-कृतिमें कविने भारतकी राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतनाका जो भाव-स्फूर्त स्वरूप उद्घाटित किया है, वह आधुनिक हिन्दी कविताके क्षेत्र में अपनी एक अलग पहचान स्थापित करता है।

सह्याद्रि, कृष्णा, भीमा, तुंगभद्रा, श्रीशैलम् और सागरदेव नामक इस षट्सर्गीय प्रबन्ध रचनानामें कृष्णा नायिका है। सह्याद्रि उसके पिता, भीमा-तुंगभद्रा सखियाँ, श्रीशैलम् उसका तटवर्ती शक्तिपीठ और सागरदेव उसके प्रियतम पति है। इस मानवीकरणसे ये समस्त प्राकृतिक उपादान मानवीय भाव-संवेदनाओंसे

१. प्रका. : अयन प्रकाशन, १/२० महरोली, नयी दिल्ली-११००३०। पृष्ठ : ७६; क्रा. ६१; मूल्य : ३०.०० रु.।

जीवन्त हो उठे हैं। सागरको वरण करनेवाली पुत्री कृष्णाको लेकर सह्याद्रि आशंकित हैं, 'क्योंकि उदधिके अन्तःपुरमें भीड़ लगी है दाराओंकी' तथा 'सागर नागर है, सुवर्ण है, राजनयिक है, छली-बली है। कृष्णा भोली है अबतक आश्रम संस्कृतिमें ढली-पली है।'

(पृ. २५) कृष्णाकी आत्मकथामें भी अनेक सुख-दुःखात्मक भावनाओंका उच्छल प्रवाह है। उसकी चिरन्तनतामें दक्षिणकी सांस्कृतिक परम्पराओं और ऐतिहासिक घटना-क्रमोंकी अन्तः स्मृतियोंका आवेग-प्रवेग है। तभी तो वह कहती है—'मैं दक्षिणके भारतकी सांस्कृतिक जन्मकुंडलियां / रही बनाती और बांचती हूँ नृप-वंशवलियां।' (पृष्ठ ३३)। भीमा, तुंगभद्रा, श्रीशैलम् और सागरदेव सर्गोंमें भी कविने अनेक ऐतिहासिक-सांस्कृतिक संदर्भोंको इसी प्रकार भावात्मकताके साथ व्याख्यायित किया है।

भारतकी संस्कृतिका महिमा-गान और प्रकृतिका शोभा-वर्णन कविके प्रिय विषय हैं। वह संस्कृतिकी अभिव्यंजनानामें प्रकृतिको माध्यम बनाता है और प्रकृति के वर्णनमें संस्कृतिको उजागर करता चलता है। उदाहरणार्थ एक स्थलपर कृष्णा कहती है कि जब पालाघाटकी पहाड़ियोंपर पतझर पदार्पण करता है तो—'एक अघोरी बना दिगम्बर देता पूरे वनको / तरु-दल झर-झर भरते मर-मर अमांगलिक निस्वनको।' (पृ. २६)।

अभिनव उपमान-प्रयोगभी कविकी एक प्रमुख विशेषता है। एक उदाहरण—'संस्मरणोंके निद्रित लोचन मैं उन्मीलित करती।' (पृ. ३१)। शब्दलंकारों में श्लेषका एक मौलिक प्रयोग है—कृष्णा कहती है, 'इन पहाड़ियोंपर पहले पतझर पदार्पण करता / पीत पत्रकारिता लिये जो मेरा हृदय न हरता।' (पृ. २६)। भाषापर कविका असाधारण अधिकार है। यही कारण है कि भावाभिव्यंजन और कलात्मक चमत्कार दोनों क्षेत्रोंमें उसकी लेखनीकी स्वामी देखते ही बनती है। गति, यति, लयसे युक्त मात्रिक छन्दोंके विषयानुकूल प्रयोगोंमें भी वह निष्णात है।

कुल मिलाकर आत्मकथात्मक शैलीमें विरचित यह प्रबन्ध-कृति कथ्य और शिल्पके समंजनका उत्कृष्ट एवं अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करती है। यह भी उल्लेख्य है कि कविने इसमें परम्पराको आधुनिक भाव-बोधसे और आधुनिक भाव-बोधको परम्परासे प्रस्पन्दित किया है। □

'प्रका.'—उद्येष्ठ २०४६—३४



## जीवन बोलता है?

कवि : निरंकारदेव सेवक

समीक्षक : डॉ. रामशिरोमणि होरिल

इस संकलनकी रचनाओंसे यह स्पष्ट होजाताहै कि लेखकके अन्तर्मनमें जो भावनाएँ अनुभूति बनकर गूँज रहीथीं, उन्हें सजीव ढंगसे प्रस्तुत करनेका यह सराहनीय प्रयास है। कवि अपने प्रति ईमानदार है। बनावटकी भाषामें उसने बुनावट नहीं की अपितु बुनावटकी शैलीमें अपनी संरचनात्मकताका प्रयोग कियाहै।

आवरण पृष्ठपर नील गगन तले उन्मुक्त 'विहंग-विहार' और 'बन्दी गूहका मानव इन दो चित्रोंके द्वारा जीवनकी दो स्थितियों—सुख-दुःखका भावात्मक रेखांकन किया गयाहै। बन्दीगूहके मानवकी दृष्टि ऊपरकी ओर है और उन्मुक्त पक्षी जो नील गगनमें तैर रहेहैं, उनकी ओर कुछ-कुछ लगी-सी प्रतीत होती है। दो विरोधी स्थितियोंको रेखांकित करनेवाला आवरण सज्जाकार अपने मन्तव्यमें सफल है क्योंकि ग्रन्थकी अन्तर्निहित भावनाको रूपायित करनेका प्रयास कल्पनात्मक है।

सेवकजीकी रचनाओंका यह संकलन कई दृष्टियोंसे प्रशंसनीय है। कविकी इन रचनाओंमें उसकी भावना रूपायित हो सकीहै। कालखंडके अनुभवोंसे गुजरती कविकी मानसिकता छायावादी बिम्बोंको तोड़ती हुई प्रगतिशील काव्यधारासे मिल गयीहै। कविके इन विचारोंमें सामाजिक क्रान्तिका स्वर स्पष्ट हुआहै। वह दलितोंकी पीड़ा पहचाननेमें समर्थ है। उसकी रचनाओंकी सृष्टि अट्टालिकोंकी प्राचीरोंके बीच नहीं हुईहै। उसे अनुभूतिका वरदान प्राप्त है। प्रगतिवादी धाराका वह एक व्यक्तित्व है।

दलित मानवके प्रति व्यक्त पीड़ा कविके ही शब्दों में देखिये :

पेट काटकर रक्त सुखाकर/भूखे रहकर प्यासे रहकर/जर्जर झोंपड़ियोंके भीतर पड़े पड़े दारुण दुख सहकर/ग्रीष्म शीत वर्षामें अपने तनका स्वेद

१. प्रका. : ग्रन्थायन, सर्वोदयनगर, सासनी द्वार, अली-गढ़-२०२००१। पृष्ठ : १०३; डिमा. ६०; मूल्य : ५०.०० रु.।

'प्रकर'—मई ६२—३६

बहाकर/पृथ्वीसे मोती उपजाकर/मिट्टीसे सोना पैदाकर/महलोंके कायम रखनेको सारे सुख सामान जुटाये/और सदा जगमें कहलाये/दीनहीन असहाय निर्बल औ' निरुपाय।

कविकी वाणीमें विद्रोह है। उसके अन्तर्मनमें समाजकी बनावट और आडम्बरके प्रति आक्रोश है। धर्म, मन्दिर, त्याग, समाज सबके बाह्याडम्बरके प्रति उसका आक्रोश व्यक्त हुआहै। पीड़ित मानवताके प्रति न्याय चाहताहै। समाजमें घटित अन्यायको वह उन्मुलित करता चाहताहै। न्यायके सच्चे स्वरूपको स्थापित हुआ देखना चाहताहै। न्याय और त्यागके घिनीने रूपको वह धिक्कारताहै।

रचनाकारकी मानसिकता और उसके स्वाभिमान की झलक है :

मैं न पूजा विश्वमें जाऊँ कभी/मैं न वैभव नाम धन पाऊँ कभी/पर न जो बाजार दरपर बिक सके/ वह मनुजका मान मुझको चाहिये।  
रचनाओंमें, कुछको छोड़कर, शेषमें दीन-दुखियोंके प्रति कविके मनमें प्यार है। मजदूर किसानोंके प्रति उसका सहज लगाव है। इस धरतीपर वह मानवको देखनेके लिए उत्सुक है। पाषाणकी प्रतिमा, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघरकी चहारदीवारीसे पृथक् होकर वह मानवकी खोजमें है।

संग्रहमें गीत और गजलोंको भी संकलित किया गयाहै। संग्रहके गीतोंमें लयात्मकता और भावुक कल्पनाका स्वर स्पष्ट हुआहै। व्यंग्य रचनाओंका अभाव भी इस संग्रहमें नहीं है। नैतिक मूल्योंको भी स्थान मिलाहै :

हमभी किसीसे कम तो न थे देश-भक्तिमें क्या होगया कि हमको पद्मश्री नहीं मिला।

मेरी गरदन जब कटी तो सबके सब खामोश थे आज उनके चुभ गया कांटा तो चर्चा आम क्यों?

सोने न दिया किया ऐसा उत्पात हरे कृष्ण चिल्लाये वह सारी रात।

देख भाग जायें जो पोखर तालाब उनके मुँह भवसागर तरनेकी बात।

रचनाओंमें वाग्जालका अभाव होनेसे शब्दाकर्षण स्वस्थ प्रतीत होताहै। भाषायी संचेतना पाठकके लिए



मुकर है। कठिन शब्दोंके प्रयोगमें कविकी रुचि नहीं है। इष्टार्थ-संयोजनसे कविके मन्तव्यकी सृष्टि होती है। 'शब्दाकर्षण शैली' की दृष्टिसे कहें तो—शब्द, आकर्षण और शैलीके त्रिविध संयोगसे—कविका इष्टार्थ उसके कथ्यकी पूर्णताको निखारता है। जन-भाषाका प्रयोग इस रचना-संग्रहमें अच्छा स्थान पा सका है। भाषाके गठन और कसावमें कहीं-कहीं न्यूनताएँ लक्षित होती हैं किन्तु ये काव्यके आकर्षणको धूमिल नहीं करती। कुछ पंक्तियाँ :  
पूरी हो या न मेरी मनोकामना

मैं तो कबरोँपर चादर चढ़ाता नहीं।

× × ×

भावनासे बड़ा भगवान् नहीं हो सकता  
कल्पनासे कड़ा पाषाण नहीं हो सकता  
देवताओंकी तरह पुजते तो देखे हैं बहुत  
लेकिन हर आदमी इन्सान नहीं हो सकता।

× × ×

चांदनी रात थी सन्नाटा था  
तुम न थीं दिलमें ज्वारभाटा था।  
एक पत्थरको भरकर भुजाओंमें  
मैंने मुश्किलसे वक्त काटा था। □

## व्यंग्य-विनोद

### फाइल पढ़ि-पढ़ि ?

लेखक : गोपाल चतुर्वेदी

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

बिना अतिरंजनके कहा जा सकता है कि भारतकी जय-कुण्डली लाल फीतेवाली फाइलमें बन्द है। फाइलों के तिलिस्ममें उलझे प्रकरण प्रायः तभी मुक्त होते हैं जबकि उनको सोनेकी तालीकी सहायतासे निकाला जाये। फाइलोंके कीड़े अत्यन्त निर्मम दिखायी देते हैं किन्तु निजी स्वार्थोंके सन्दर्भमें वे संवेदनयुक्त भी बन जाते हैं। सरकारी तंत्रसे जुड़े (रेलवेकी उच्च वित्तीय सेवामें छब्बीस वर्षोंसे कार्यरत) गोपाल चतुर्वेदीने इस फाइल-तिलिस्मके प्रेतोंके माध्यमसे सरकारी-तंत्र तथा नौकरशाहीके कुछ स्वरूपोंको अपने लेखोंमें रूपायित किया है। ऐसा वे इसलिए कर सके हैं कि फाइलोंसे निरन्तर निबटते रहकर भी वे फाइल और मनुष्यके बीचके अन्तरको भुला नहीं पाये हैं। इसीलिए वे नौकरशाही

की मानसिकतापर चोट कर सके हैं।

सरकारी-तंत्रके अपने अनुभवोंको चतुर्वेदीजीने कुछ निबंधोंमें तथ्यों एवं स्थितियोंके माध्यमसे तथा कुछमें इस तंत्रके अंग बने व्यक्तियोंके स्वार्थों, हथ-कण्डों, उत्कण्ठाओं, निराशाओं आदिके निरूपण द्वारा अंकित किया है। दूसरे प्रकारके अंकनमें मानव-हृदयके स्पन्दन तथा जीवनकी ऊष्मा अधिक है। प्रथम खण्डके लेखोंके अतिरिक्त अंतिम खण्ड 'विदाईके क्लेश' के निबंधों 'एक और मौत' एवं 'रिश्तोंके रेगिस्तान' में कागजोंके मजमून नहीं बल्कि मनुष्य प्रधान हैं। एक सेवा-निवृत्त अधिकारीकी हताश मानसिकता एवं येन-केन-प्रकारेण पुनः अधिकार पानेकी तुष्णाको अंकित करनेवाला निबंध 'रिश्तोंके रेगिस्तान' हमें सर्वाधिक मार्मिक लगा है। यह निबंध हिन्दीकी किसीभी श्रेष्ठ कहानीकी टक्करमें खड़ा होनेमें समर्थ है। यदि इसको निबंधसे अधिक कहानी कहा जाये तो अनुचित न होगा।

एक सफल व्यंग्य-लेखक अपना मौलिक मुहावरा गढ़नेकी बड़ी क्षमताके साथही लेखनमें संलग्न हुआ करता है। वह अपनी भाषामें अन्तर्निहित सामर्थ्यके

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली-३। पृष्ठ : २०८; डिमा. ६१; मूल्य : ६५.०० रु.।



उपयोग करता है। नये मुहावरे गढ़नेमें हास्य और व्यंग्य के योग विशेष होते हैं। गोपाल चतुर्वेदीके लेखनमें यह क्षमता पर्याप्त है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

“उनके बाल यकीनन अनुभवकी धूपमें पकेथे पर उनके साथही पके हुए फलोंकी तरह टपकतेभी गयेथे।”

“अधिकारी तो हट गये पर कमीशन अपनी जगह अटल है। पहले बनतेथे, अब ‘मिलते’ और ‘बंटते’ हैं।”

“कुछ महत्वाकांक्षाके शिकार होतेहैं, कुछ गलत-फहमीके।”

“सांपका धमं डसना है. हमारा विरोध करना।”

“यह तय है कि पगार पीछे चलेगी और कीमते आगे।”

“कापुरुष कमेटी करतेहैं, महापुरुष घोटाला।”

“साहबको सलाम अनिवार्य है जबकि सरकारी काम ऐच्छिक है।”

गोपाल चतुर्वेदीने अपने कथात्मक-निबंधोंमें बड़ी कुशलताके साथ चरित्र निर्मित कियेहैं। लेखोंमें केवल कागजी घोड़ेही अपने स्थानोंपर चक्कर काटते नहीं दिखाये गयेहैं बल्कि सजीव मानवभी हैं, कहीं-कहीं तो प्रमुख हैं। इन लेखोंमें कांड्यापन दिखाकर अपने छोटे-छोटे स्वाथ्योंको पानेकी आतुर, आपसमें मिलते-बैठते, हंसते-टकराते, एक दूसरेकी टाँगें खींचते यानी कि अपने-अपने लिए जीते किन्तु सामाजिक प्राणी शर्मा, वर्मा हैं, अथवा अथवा स्वामीनाथन या गोरखनाथ हैं। ये सब अपने अस्तित्वोंकी ऊष्मा प्रदान करतेहैं। विधागत दृष्टि से ये लेख भी सामान्यसे कुछ भिन्न हैं। अनेकमें विवरणों या, सरकारी पत्राचारके माध्यमसे परिस्थितियां प्रदर्शित की गयीहैं। इनको निबंध कहनेमें कहीं कोई उलझन नहीं होती। किन्तु, कुछमें घटनाएं अथवा चारित्रिक विशेषताएं प्रधान हो गयीहैं। तथापि, लेखकका अस्तित्व हमारे सामने उसी प्रकार प्रत्यक्ष होकर बना रहताहै जैसाकि निबंधोंमें हुआ करताहै। ये लेख अपने विधागत वैशिष्ट्यमें उलझनकी सृष्टि कर सकतेहैं।

गोपाल चतुर्वेदीने जिन चरित्रोंको अपने लेखोंमें उपस्थित कियाहै उनपर व्यंग्यभी कियेहैं और समय-समयपर सहानुभूति भी दीहै। यानी कि लेखकके लिए ये लोग फाइल नहीं मनुष्यही बने हुएहैं। चोट करना आसान होताहै किन्तु मनुष्यके स्पर्दनको भी सुन

‘प्रकार’—मई १२—३८

पाना कठिन कार्य हुआ करताहै। चतुर्वेदीजीमें यह शक्ति है। उनके व्यंग्य लेखोंके चौथे संकलनका स्वागत है। □

## मुख्यमन्त्रीका वारिस?

लेखक : एम. उपेन्द्र

समीक्षक : रवि रंजन

दक्षिण भारतके सुपरिचित हिन्दी लेखक श्री एम. उपेन्द्रकी हास्य-व्यंग्य प्रधान कहानियोंका दूसरा संग्रह ‘मुख्यमन्त्रीका वारिस’ महानगरीय अभिजात वर्गके खोखले जीवन-मूल्योंके लिए एक चुनौती तथा वर्तमान सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्थाके विरुद्ध एक उग्र एवं सार्थक प्रतिवाद है। इस प्रतिवादको लेखकने प्रायः कलात्मकताकी शर्तोंपर भी सार्थक रूपाकारोंमें उपलब्ध कियाहै। इस संग्रहकी रचनाओंमें उपेन्द्रजीकी विवरण कुशलता, चयन एवं संयोजन दोनोंही स्तरों पर देखीजा सकतीहै। उपेन्द्रजी कलात्मक दृष्टिसे प्रगतिशीलताके क्षेत्रमें, उन लोगोंमें से कइयोंसे अधिक समर्थ हैं।

उपेन्द्रजीकी कुछ कहानियोंको छोड़कर अधिकांश कहानियोंमें भाषाकी शक्ति, सरलता एवं सहजता उनको अपने समकालीन व्यंग्य-लेखकोंसे अलग कर अपनी एक महत्त्वपूर्ण पहचान बनातीहै। लेकिन कुछ बड़ी कहानियोंमें यह भाषा व्यंग्य और रहस्यका बोध कराती हुई कहानीको अपने ढंगसे जटिलभी बनातीहै। विवेच्य संग्रहकी ‘नल और दमयन्तियां’ शीर्षक रचना इसका अच्छा उदाहरण है। जिससे गुजरते हुए आभास मिलताहै कि लेखक किस प्रकार भाषाको अपनी मुट्ठी में रखताहै और दो उंगलियोंकी दरारसे उसे कथ्य पर गिराता जाताहै।

सच तो यह है कि उपेन्द्रजीकी अधिकांश रचनाएं भाषाके स्तरपर निजता रहस्यमयता एवं प्रतीकात्मकतामें डुबकर सामान्य पाठकोंके साथ आंखमिचौनी खेलनेके स्थानपर प्रायः उनके साथ-साथही चलतीहैं। भाषाके स्तरपर वहां एक प्रकारका जन-जुड़ाव दृष्टि-

१. प्रका. : गीता प्रकाशन, ३-३-७४, कुतबीगुबा

रोड, हैदराबाद-५०००२७। पृष्ठ : ६६; का.

६१; मूल्य : ४०.०० रु.।



गत होता है।

वहां कुछ ऐसे शब्दोंका प्रयोग बारम्बार हुआ है जो हैदराबादके लोगोंके बीच धड़ल्लेसे प्रचलित हैं। इन शब्दोंमें हिन्दी एवं उर्दूके साथ-साथ अंग्रेजीके भी वे सभी शब्द हैं जो लगभग ४५ लाखकी जनसंख्या वाले इस नगरद्वयके निवासियोंके जीवनमें सांप्त-सांप्तकी तरह पैवस्त हैं।

भाषाके अलावा शिल्प एवं कौशलकी दृष्टिसे भी इस संग्रहकी रचनाओंमें एक प्रकारका वैविध्य दृष्टिगत होता है। यहां अधिकांश रचनाओंमें अभिव्यक्ति कौशल बदला हुआ-सा दिखायी देता है। कभी रचना प्रतीकात्मकतासे शुरू होती है, कभी विवरणसे, कभी आत्मकथ्यसे, कभी लम्बे वक्तव्योंसे, कभी कथोप-कथनसे और कई बार लेखकके आत्मालापसे। उपेन्द्रजी की व्यंग्यप्रधान कहानियोंके प्रथम संग्रह 'राजधानीमें हनुमान' (१९८४) की अनेकानेक रचनाओंमें भी लेखक द्वारा शैली तलाशनेकी यह प्रवृत्ति स्पष्ट देखी जा सकती है।

किन्तु जहां उसकी भाषा सहजताकी सीमा लांघकर अतिनाटकीय हो गयी है, वहां रचनाकी साहित्यिक मूल्यवत्ताको भारी नुकसान पहुँचा है।

उपेन्द्रजीकी रचनाओंमें मुझे एक विशेषता दिखायी देती है—वह है परिवेश—चित्रणके द्वारा अर्थ-सर्जनका सफल प्रयास। हिन्दीके अनेकानेक स्थापित कथाकारोंके यहांभी इस शिल्पको देखा जा सकता है। वस्तु-चित्रणके माध्यमसे अर्थ-व्यंजनाका उदाहरण विवेच्य संग्रहकी 'उसकी पूंजी' शीर्षक रचनामें देखी जा सकती है।

समकालीन साहित्यिक रचनाशीलताका एक प्रमुख नारा है—'सड़ी-गली मौजूदा सामाजिक व्यवस्थाका विरोध।' कहना न होगा कि इस विरोधका स्वर मुख्यतः राजनीतिक है। वैसे तो राजनीतिक आधुनिक हिन्दी साहित्यके आरम्भिक चरणसे ही भिन्न-भिन्न रूपोंमें रचनाकी विषयवस्तु बनती रही है परन्तु १९६० के बादके मोहभंग वाले दौरकी रचनाओंमें इसकी भूमिका सीमासे अधिक दिखायी देती है और

स्पष्टही इस दौरकी अनेकानेक रचनाओंमें रचनात्मकताके बजाय तारेबाजीकी प्रधानताके कारण गुणात्मक ह्रासभी दृष्टिगत होता है।

'गाय, शास्त्रीजी और बैल' शीर्षक रचनामें मानव-विरोधी गोभक्त शास्त्रीजी तथा उनके चेलोंके बहाने 'धर्मो रक्षति रक्षितः' का नारा लगाकर अपना उल्लू सीधा करनेवाले सम्प्रदायवादी राजनेताओं, स्वार्थसेवियों तथा उन्हें अपने निहित स्वार्थके कारण सर-आंजोंपर बिठानेवाले प्रतिक्रियावादी वर्गकी अच्छी खबर ली गयी है।

उनकी प्रगतिशील दृष्टि विवेच्य संग्रहकी रचनाओंके वस्तु-चयनके साथही शिल्पके रचावमें भी सहायक हुई है। इसे उनकी 'गुरुकृपा' शीर्षक रचनामें विशेष तौरसे देखा जा सकता है जिसमें शैक्षिक जगत्की विडंबनापूर्ण स्थितिको बहुत तीखेपन और निर्वैयक्तिक तटस्थताके साथ व्यक्त किया गया है। वस्तुतः वहां व्यंग्य रचनाके तथ्यमें रूपांतरित होकर दिशावाचक कण्ठासे संदर्भित हो गया है। कमोबेश यही स्थिति 'गुरुदक्षिणा' शीर्षक रचनाकी भी है पर वहां कण्ठाकी दिशा भिन्न है।

सुप्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक एवं समीक्षक प्रो. कृष्ण-कुमार गोस्वामीने उपेन्द्रजीकी व्यंग्य रचनाओंमें समान में व्याप्त भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण, पाखंड, अंध-विश्वास, मिथ्याचार आदिका सुन्दर उद्घाटन किया है। इन रचनाओंमें लेखककी सूक्ष्म दृष्टि और उसके अभिव्यक्ति शिल्पका परिचय मिल जाता है। उपेन्द्रजीका व्यंग्य केवल हास्य नहीं है, गुदगुदानेवाला नहीं है, बल्कि दिलको कचोटनेवाला है। यही उनके व्यंग्यकी सार्थकता है।

वस्तुतः सार्थकता लेखककी समाजालोचना संबंधी प्रगतिशील दृष्टि एवं इस कृतिमें संगृहीत रचनाओंकी सामाजिकतामें निहित है 'राजधानीमें हनुमान' (१९८४) के बाद 'मुख्यमंत्रीका वारिस' (१९९१) जैसी एक और सार्थक कृतिके प्रकाशन हेतु उपेन्द्रजी वास्तवमें बधाईके पात्र हैं। □

'प्रकर'—ज्येष्ठ २०४६—३६



## नाकके बहाने?

लेखक : जवाहर चौधरी

समीक्षक : डॉ. भैरूलाल गर्ग

प्रस्तुत पुस्तक ३० व्यंग्य रचनाओंका संग्रह है। इनमें लेखकने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक, पारिवारिक आदि क्षेत्रोंमें व्याप्त विषमताओं, विसंगतियों और विद्रूपताओंको अनुभवकी परिपक्वता के साथ उजागर करनेका सार्थक प्रयास किया है। व्यंग्य और हास्यमें कई लोग अंतर नहीं करते लेकिन ऐसा है नहीं। व्यंग्य रचना पाठकको तीरकी भ्रांति ऐसी चुभनका अहसास कराती है कि बड़ी देरतक वह उस पीड़ासे मुक्ति नहीं पाता लेकिन हास्य रचना मनोरंजनतक ही सीमित रह जाती है। हास्य-व्यंग्यमें ऊपर से हंसी तो छूटती है पर अम्यन्तरमें एक कसकभी महसूस होती है। इस स्तरपर प्रस्तुत संग्रहकी रचनाओंका विश्लेषण करें तो लगता है इनमें व्यंग्यके साथ-साथ हास्यका पुट भी है। लेकिन व्यंग्यकी धार-पैनी है इससे इस्कार नहीं किया जा सकता।

आजका समाज अनन्त विसंगतियोंसे भरा है, कदम-कदमपर यह अनुभव हर किसीको होता दीखता है लेकिन इनसे मुक्तिका उपाय कुछभी नहीं सूझता। रचनाकार साहित्यकी विविध विधाओंके माध्यमसे इन्हें अभिव्यक्ति देता है पर पाठक इनसे अवगत भर होकर रह जाता है वह विसंगति उसे गहरे तक प्रभावित नहीं करती। पर व्यंग्यकारका रचनाकर्म इतना आसान नहीं है वह उस विसंगतिको इस रूपमें अभिव्यक्ति करता है कि पाठकका मन-मस्तिष्क आहत होकर रह जाता है और कदाचित् इनके उन्मूलनका उपायभी सोचता है और इन विसंगतियोंसे अपनेको दूर रखनेका प्रयास भी करता है। वह नैतिकता-अनैतिकता औचित्यानौचित्यके द्वन्द्वसे भी गुजरने लगता है। वस्तुतः व्यंग्य आजकी एक सशक्त साहित्यिक विधा है पर बिड़बना यह है कि यह आजभी साहित्यकी एक सम्मानजनक विधाके रूपमें प्रतिष्ठित होनेका अवसर

१. प्रका. : दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५। पृष्ठ : ११२; का. ८६; मूल्य : ₹२.०० इ.।

‘बुद्धर’—मई १२—४०

नहीं प्राप्त कर पाया है।

लेखकने जिन विसंगतियोंको उजागर किया है वे सब हमारे जीवनसे जुड़ी हैं। राजनीतिका क्षेत्र आज इतना अमर्यादित, आदर्शहीन और पतित हो गया है, कहनेकी आवश्यकता नहीं। आज किसी राजनेताके लिए न किसी योग्यताकी आवश्यकता है और न ही ऐसे कोई मान-दण्ड है कि जो उसके चरित्रकी कसौटी हो। अनपढ़, अज्ञानी लोग राजनीति करने लगेंगे तो क्या होगा देश का? ऐसे राजनेताकी खुलकर पोल खोली है लेखकने अपनी पहलीही रचना “गंजी कबूतरी महलमें डेरा” में। “सेवा का आतंक” में एन. एस. एस. कैम्पोंमें छात्रों की उच्छृंखलित भूमिकापर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया गया है कि आजका छात्र जीवन आदर्शहीन होता जा रहा है। पिछले दिनों मंत्रियोंके इस्तीफे काफी चर्चा के विषय रहे। लेखकने “आत्माकी आवाज” में स्पष्ट किया है कि किस प्रकार राजनेता मंत्रियोंसे बरबस इस्तीफे मांग लिये जाते हैं और वे बेचारे “आत्माकी आवाज” की आड़में अपनी इच्छाओंका दमन कर खिसियाकर रह जाते हैं। “ठंडा बाथरूम गरम किस” में आजकी बेहूदी फिल्मोंपर करारा व्यंग्य है। “फ्रीडम एट मिड सावन” देशमें फैलती भ्रष्टाचारिता, देशवासियोंकी गुलाम मानसिकता, पुलिस विभागकी ज्यादतियां, गांधीवादका मखौल, चीजोंमें मिलावटकी विसंगति इन सभीको एक साथ उजागर किया गया है। “डाकघर बचत” बैंकमें सरकारी विभागोंके कर्मचारियोंकी निष्क्रियतापर चोट की है।

लेखकने एकदम पारिवारिक परिवेशके विषयोंपर भी बखूबी लिखा है। “बीबीका आतंकवाद” दाम्पत्य जीवनकी विसंगतिपर आधारित व्यंग्य रचना है। “पेलवानजी और सोसालाजी” में शैक्षिक जगतमें व्याप्त विसंगतियोंपर व्यंग्य है। “ओलम्पिक १९८८” में ओलम्पिक खेलोंमें भारतीय खिलाड़ियोंकी हारपर चोट की गयी है। “मरनेसे जीनेतक” में तेजीमंदीकी स्थिति को लेकर कई विसंगतियोंको लेखकने उजागर किया है—“दुनियां बदल गयी, लोग बदल गये, पर शिक्षक खड़े हैं अपनी जगह रोते-गाते। महंगाई आतंकवादकी तरह डरावनी होतीजा रही है। इधर सरकारका रिवाज है कि बिना जुलूस-हड़तालके वह किसीपर ध्यान नहीं देती। टीचरोंकी कामत (रुपएकी तरह) घटकर पन्द्रह पैसे रह गयी और वह फटीचर होगया।”



(पृ. ५३) ।

“दीवारमें आले और घरमें साले” एक रोचक व्यंग्य रचना है। नये लेखकोंमें रचनाएं छपवानेकी बड़ी उत्कट लालसा होती है लेकिन जब उनकी रचनाएं “सम्पादकके अभिवादन और खेद सहित” लिखी स्लिपके साथ लौटती चली आती हैं तो वे इस नुस्खेकी तलाशमें रहते हैं कि उन्हें रचनाएं छपनेका अवसर कैसे मिले। ‘लेखकके अभिवादन एवं प्रेम सहित’ व्यंग्य आजके लेखक और सम्पादककी विसंगत स्थितिको उजागर करता है। “जीदारोंका प्रजातंत्र” लोकतंत्रकी कमजोरियोंको उजागर करनेवाली एक सशक्त रचना है— “पिछली बार नेताजी चुनकर गये। मंत्री बन गये। नाते-रिश्तेदारोंने अंगड़ाई ली और देशके विकासमें जुट गये। खूब कोटे, परमिट और लायसेन्स लिये, खूब

कमियाँ कीं। अस्तिविकी रेखा परथे। प्रजातंत्रकी डोर पकड़कर उठे। अब पता ही नहीं चलता कि अमीरीकी रेखासे कितने ऊपर हैं।” (पृ. ८०)। “जन आन्दोलन” में भीड़की मानसिकता और भीड़से भिड़कर हार मानते प्रशासनकी कमजोरीको उजागर किया गया है। “नाकके बहाने” में लेखकने एकताके सूत्रको बड़े ही व्यंग्यात्मक स्तरपर अनुभव किया है—“मिले नाक मेरी, तुम्हारी तो नाक बने हमारी।”

जवाहर चौधरीकी ये व्यंग्य रचनाएं विषय और सृष्टि दोनों स्तरों पर कसावट लिये हुए हैं और यही कारण है कि इन्हें पढ़कर पठकको हंसीका कम और दर्दकी प्रतीति अधिक होती है कि आखिर देश, समाज और वैयक्तिक जीवनमें फैली ये विसंगतियां कैसे निर्मूल हो सकेंगी ? □

## समग्र ग्रन्थावली

### रामेश्वर टाँटियाँ समग्रः

सम्पादन : विश्वनाथ मुखर्जी

समीक्षक : विराज

इस ग्रन्थमें स्वर्गीय श्री रामेश्वर टाँटियाकी समस्त रचनाओंका संकलन है। इनमेंसे पहली है—कुछ देखी, कुछ सुनी। इसमें चौतीस मर्मस्पर्शी कहानियां संकलित हैं, जिनमेंसे कई सत्य घटनाओंपर आधारित हैं। इनके विषयमें लेखकका कहना है कि देश-विदेशमें अपने पर्यटन कालमें उन्हें जन-जीवनको निकटसे देखने और समझने का अवसर मिला। इन कहानियोंमें धन-वैभव और पाण्डित्य तथा विद्वत्ताकी तुलनामें आत्मशुद्धि, अपरिग्रह और संयम जैसे सद्गुणोंका महत्त्व दर्शाया गया है। इस

१. प्रका. : हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१०१० । पृष्ठ : ८२६; डिमा. ६०; मूल्य : ५०.०० रु.।

प्रकारके संस्कारोंके परिमार्जनसे लोककल्याण सहजही संभव ही जाता है। ये कहानियां छोटी हैं। कथाशिल्पकी दृष्टिसे बहुत उत्कृष्ट न होनेपर भी मार्मिक प्रसंगोंके कारण दिलको गहराईतक छूती हैं और अपने पात्रोंकी छाप मनपर छोड़ जाती हैं। यह तथ्य कि ये सत्य घटनाएँ हैं, जिनमें पात्रों और स्थानोंके नामभर बदल दिये गये हैं, इनके प्रभावको और गहरा कर देता है। सभी कहानियां आदर्शवादितासे प्रेरित हैं। भाईका भाईके प्रति प्रेम, पिताके लिए ऋणका पुत्र द्वारा भुगतान, आत्म-सम्मानकी रक्षाके लिए राजा द्वारा परित्यक्ता वधूकी हाथीके पैरों तले गिरकर आत्महत्या, बाल विधवा चन्दरी बुआ द्वारा अपने परिश्रमकी कमाईसे गांवके लिए कुएंका निर्माण, करोड़पति हरनामदासका पुनः दरिद्र बनकर सेवाभावनासे बड़े-पकीड़ीकी दुकान चलाना, एक सेठकी भंगिन द्वारा सेठकी कोठीको दूसरी भंगिनके पास सौ रुपयेमें गिरवी रख देना और

‘प्रकर’—ज्येष्ठ २०४६—४१



सेठ द्वारा स्नेहपूर्ण उलाहना, एक अन्य सेठ का धनके मोर्चे में प्रस्तुत किया गया, जिन्हें पढ़ते हुए पाठक उनमें तल्लीन हो जाता है।

इस ग्रन्थकी तीसरी पुस्तक है—आत्मकथा। सामान्यतया ऐसा प्रतीत होगा कि इतने कम विख्यात व्यक्ति की आत्मकथा लोगों को क्या रुचिकर होगी, परन्तु वस्तुतः यह ऐसे व्यक्ति की कहानी है, जो बहुत सामान्य परिवार में जन्म लेकर समृद्धि और प्रभुता के काफी ऊँचे आसन तक पहुँचा और जिसने जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव देखे। इन कारणों से यह आत्मकथा बहुत रोचक बन गयी है। यह एक व्यक्ति की जीवनकथा न होकर उस काल के देश की कथा बन गयी है। न केवल टाटिया जी की पर्यवेक्षण शक्ति सूक्ष्म थी, अपितु अपनी अनुभूति को सरल स्पष्ट भाषा में उतार देने की उनकी श्रमता भी प्रशंसनीय है।

इस आत्मकथा में हमें उस काल की राजनीतिकी अन्तरंग झलकियाँ भी देखने को मिल जाती हैं। टाटिया जी कांग्रेस संसदीय दल के कोषाध्यक्ष थे और कांग्रेस पार्टी के ऊँचे नेताओं तक उनकी सीधी पहुँच थी। उनका यह लिखना कि 'यह काफी तनावपूर्ण लगता कि ऐसे कई मसले रहते, जिनके प्रति पार्टी के निर्णय से मैं सहमत न रहता, किन्तु विवश था। मुझे सहमति देनी पड़ती। सबसे दिक्कत यह थी कि कैबिनेट मिनिस्टर तक मसले को कैबिनेट तक ले जाने में हिचकते; उन्हें नेहरूजी से भय लगता। पाकिस्तान से सटी राजस्थान की सीमा पर बसे मुसलमानों की बड़ी संख्या खतरे की बात थी। धीरे-धीरे जेसलमेर में पाकिस्तानी घुसपैठिये बस रहे थे। इसी प्रकार असम के भी कांग्रेसी कार्यकर्ता पूर्व पाकिस्तान के घुसपैठियों से आशंकित थे, किन्तु समस्याओं का जिक्र उठाना संभव नहीं रहा। शुरुआत करते ही सम्प्रदायवादी मनोवृत्तिका आरोप सहना पड़ता था।... बड़ों के व्यक्तित्व के आगे हम झुक जाते।... राजनीतिक दलीय पोषण-तोषण का हम पर प्रभाव ज्यादा था। राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रहित के लिए अड़ जाने का साहस कम।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि अनेक कांग्रेसी नेता मन में राष्ट्र-हित के विचार रखते हुए भी गांधीजी और नेहरूजी की व्यक्तिगत सनक के आगे झुक जाते थे; इसके परिणाम हमें आज पंजाब, कश्मीर और असम में भुगतने पड़ रहे हैं। सच यह है हर प्रजा को वैसा ही शासन प्राप्त होता है, जिसके वह योग्य होती है। देश की जिस जनताने सावरकर, सुभाष और पटेल

सेठ द्वारा स्नेहपूर्ण उलाहना, एक अन्य सेठ का धनके मोर्चे में प्रस्तुत किया गया, जिन्हें पढ़ते हुए पाठक उनमें तल्लीन हो जाता है।

इस ग्रन्थकी तीसरी पुस्तक है—आत्मकथा। सामान्यतया ऐसा प्रतीत होगा कि इतने कम विख्यात व्यक्ति की आत्मकथा लोगों को क्या रुचिकर होगी, परन्तु वस्तुतः यह ऐसे व्यक्ति की कहानी है, जो बहुत सामान्य परिवार में जन्म लेकर समृद्धि और प्रभुता के काफी ऊँचे आसन तक पहुँचा और जिसने जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव देखे। इन कारणों से यह आत्मकथा बहुत रोचक बन गयी है। यह एक व्यक्ति की जीवनकथा न होकर उस काल के देश की कथा बन गयी है। न केवल टाटिया जी की पर्यवेक्षण शक्ति सूक्ष्म थी, अपितु अपनी अनुभूति को सरल स्पष्ट भाषा में उतार देने की उनकी श्रमता भी प्रशंसनीय है।

इस आत्मकथा में हमें उस काल की राजनीतिकी अन्तरंग झलकियाँ भी देखने को मिल जाती हैं। टाटिया जी कांग्रेस संसदीय दल के कोषाध्यक्ष थे और कांग्रेस पार्टी के ऊँचे नेताओं तक उनकी सीधी पहुँच थी। उनका यह लिखना कि 'यह काफी तनावपूर्ण लगता कि ऐसे कई मसले रहते, जिनके प्रति पार्टी के निर्णय से मैं सहमत न रहता, किन्तु विवश था। मुझे सहमति देनी पड़ती। सबसे दिक्कत यह थी कि कैबिनेट मिनिस्टर तक मसले को कैबिनेट तक ले जाने में हिचकते; उन्हें नेहरूजी से भय लगता। पाकिस्तान से सटी राजस्थान की सीमा पर बसे मुसलमानों की बड़ी संख्या खतरे की बात थी। धीरे-धीरे जेसलमेर में पाकिस्तानी घुसपैठिये बस रहे थे। इसी प्रकार असम के भी कांग्रेसी कार्यकर्ता पूर्व पाकिस्तान के घुसपैठियों से आशंकित थे, किन्तु समस्याओं का जिक्र उठाना संभव नहीं रहा। शुरुआत करते ही सम्प्रदायवादी मनोवृत्तिका आरोप सहना पड़ता था।... बड़ों के व्यक्तित्व के आगे हम झुक जाते।... राजनीतिक दलीय पोषण-तोषण का हम पर प्रभाव ज्यादा था। राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रहित के लिए अड़ जाने का साहस कम।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि अनेक कांग्रेसी नेता मन में राष्ट्र-हित के विचार रखते हुए भी गांधीजी और नेहरूजी की व्यक्तिगत सनक के आगे झुक जाते थे; इसके परिणाम हमें आज पंजाब, कश्मीर और असम में भुगतने पड़ रहे हैं। सच यह है हर प्रजा को वैसा ही शासन प्राप्त होता है, जिसके वह योग्य होती है। देश की जिस जनताने सावरकर, सुभाष और पटेल

इस ग्रंथ में दूसरी पुस्तक है—इतिहास के निरंतर। इस संग्रह में अनुश्रुतियों, जनश्रुतियों तथा ऐतिहासिक कथाओं का भंडार है, जिनके नायक-नायिकाएँ तेजस्वी पुरुष और मनस्विनी महिलाएँ हैं। स्वार्थ के मुकाबले त्याग और तपस्या, मृत्यु भय से शून्य वीरत्व के प्रसंगों को टाटियाजीने इस संग्रह में संकलित किया है। सोमनाथ के मन्दिर को तोड़ने के लिए चले महमूद गजनवी (इस पुस्तक में 'मुहम्मद गजनवी' लिखा है) को रोकने के प्रयत्न में मर खपने वाले गोगावापा, चित्तौड़ का तीसरा साका, बाज बहादुर और रूपमती, टोडरमल चौर, मरण त्योहार, चूड़ावत और हाड़ा रानी के बलिदान, चम्पतराय और रानी सारन्धा, सिंह से निहत्थे युद्ध करने वाला 'ताहरसिंह' मुकुन्ददास, जगत सेठ हीरानन्द, दुर्गादास, हरदोल, तानाजी मालुसरे द्वारा सिंहगढ़ विजय, शिवाजी के जीवन के अनेक प्रसंग जिनमें अफजलखाना का वध प्रमुख है, लंगा फकीर सरमद, सती मस्तानी आदि अनेक मर्मस्पर्शी प्रसंग सरल और सुबोध 'प्रकर'—मई ६२—४२



के मुकाबले गांधीजी, नेहरूजी और श्री फखरुद्दीन अली अहमद जैसे नेताओंको अपना समर्थन दिया, उसके भाग्यमें उसके सिवाय और क्या होनाथा, जो आज उसे मिल रहा है—भ्रष्टाचार, महंगाई, रक्तपात, गुण्डोंका आतंक। श्री टांटियाजीकी यह आत्मकथा ज्ञानवधक और आँखें खोल देनेवाली है।

इस ग्रंथकी चौथी पुस्तक है—विश्व यात्राके संस्मरण। श्री टांटियाजीने तीन बार विश्वयात्रा कीथी। ऐसा सौभाग्य कम भारतीयोंको प्राप्त होताहै। इन संस्मरणोंमें टांटियाजीने अमरीका, यूरोप, जापान और इसके विभिन्न नगरोंका सुन्दर और सजीव वर्णन कियाहै। यह पुस्तक अपने आपमें छोटा-मोटा ज्ञान-कोश ही है। पाठक घर बैठेही उन नगरोंकी सैर-सी कर लेताहै।

इसके बाद अगली पुस्तक—‘कुछ अपनी, कुछ जग की—में उनके इकत्तीस लेख संकलित हैं। ये भी कुछ यात्रा विषयक, कुछ प्रेरक प्रसंग और कुछ आत्मकथा

जैसे हैं। इन्हें पूर्ववर्ती पुस्तकोंसे भिन्न नहीं समझा जा सकता।

इस ग्रंथकी अन्तिम पुस्तक है—डायरीके कुछ पृष्ठ: क्या खोया, क्या पाया। इसमें सन् १९३२ से लेकर सन् १९७५ तकके वर्षोंकी कुछ दिनोंकी डायरी के पृष्ठ उद्धृत किये गयेहैं। ये भी पढ़नेमें रोचक हैं—विशेष रूपसे इसलिए कि पूरी डायरी उद्धृत नहीं की गयीहै, जो उतनी रोचक न होती।

पूरे ग्रंथको पढ़ लेनेके बाद पाठकके मनपर लेखक का बहुत सौम्य और भद्र रूप उभरताहै, जो आदर्श-वादी है, राष्ट्रभक्त है, जाति और धर्मका प्रेमी है, अहं-कारी नहीं है। सेवा, परोपकार, त्याग और तपस्याके प्रति उसकी प्रतिबद्धता है। शौर्य और बलिदानका वह पुजारी है। भाषा बहुत सीधी, सरल एवं बनावटसे शून्य है।

यह पुस्तक पठनीय एवं हर पुस्तकालयके लिए संग्रहणीय है। □

## वेद और भाष्य

### ज्योतिषां ज्योतिः?

[वैदिकसूक्तानाम् आध्यात्मिक व्याख्यानम्]

भाष्यकार-सम्पादक : जगन्नाथ वेदालंकार

समीक्षक : डॉ. रामनाथ वेदालंकार

वेद संस्कृत वाङ्मयके महनीयतम ग्रन्थ हैं। वेद-मन्त्रोंकी अध्यात्म, अधिदैवत, अधियज्ञ आदि विविध दृष्टियोंसे व्याख्या की जाती रहीहै। ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् निरुक्त आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें विविध वेदार्थ-प्रक्रियाओंके सूत्र उपलब्ध होतेहैं। स्कन्द, उवट, सायण, महीधर आदि वेदभाष्यकारोंने अपने

१. प्रका. : राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : २५५; मूल्यका उल्लेख नहीं।

भाष्योंमें वेदोंकी कर्मकाण्डिक या अधियज्ञ व्याख्याएँ ही प्रस्तुत कीहैं, तथापि कहीं-कहीं वे वेदमन्त्रोंके अध्यात्म, अधिदैवत, अधिभूत आदि अर्थभी करतेहैं। कुछ विदेशी विद्वानोंने भी वेदोंके सटिप्पण अनुवाद कियेहैं, जो या तो सायण भाष्यपर आधारित हैं या स्वतन्त्र हैं तो उनमें मानव जातिका इतिहास खोजनेकी प्रवृत्ति पायी जाती है; एवं वे वेदव्याख्याकी ऐतिहासिक पद्धतिको लेकर चलेहैं।

उक्त सब व्याख्याओंमें वेदकी अध्यात्म व्याख्या अपना विशेष महत्त्व रखतीहै। अध्यात्म व्याख्याओंमें योगी श्रीअरविन्दकृत अध्यात्म वेद व्याख्या उल्लेखनीय है। श्रीअरविन्दका वेद सम्बन्धी कार्य श्रीअरविन्दाश्रम पांडिचेरीसे मूल अंग्रेजीमें तथा उसके हिन्दी अनुवादके रूप दो दो-दो खंडोंमें प्रकाशित होकर उपलब्ध है। प्रथम



खंडमें वेदकी अध्यात्म व्याख्यापर सामान्य विचार है तथा उसके प्रकाशमें द्वितीय खण्डमें अग्नि, इन्द्र, वायु, अश्विनी आदि देवताओंके पूरे-पूरे सूक्तोंकी व्याख्या है।

प्रस्तुत पुस्तक 'ज्योतिषां ज्योतिः' के लेखक श्री जगन्नाथ वेदालंकार अरविन्दभ्रम-पांडिचेरीके पुराने साधक हैं, जो श्रीअरविन्दके न केवल वेद सम्बन्धी विचारोंसे अपितु उनके इतर समग्र साहित्यसे भी सुपरिचित हैं। इन्होंने इस पुस्तकमें संस्कृत भाषाके माध्यमसे श्रीअरविन्द वेदव्याख्या पद्धतिका अनुसरण करते हुए वेदमन्त्रोंकी अध्यात्म व्याख्या उपस्थित की है। इसमें ऋग्वेद प्रथम मण्डल सूक्त १-११, १०, १४, सप्तम मण्डल सूक्त ८६, नवम मण्डल सूक्त १, दशम मण्डल सूक्त १२७ व्याख्यात हुए हैं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेदके संवाद सूक्तोंमें से विश्वामित्र-नदी संवाद (३.३३), सरमा-पणिसंवाद (१०.१०८), अगस्त्य-लोपामुद्रा-संवाद (१.१७६) तथा यम-यमी-संवाद (१०.१०) की भी व्याख्या है। यजुर्वेद अध्याय ११, मन्त्र १-६, अध्याय ३४, मन्त्र १-६ तथा अथर्ववेद काण्ड २, सूक्त १, काण्ड १०, सूक्त ७, काण्ड ११, सूक्त ४ एवं काण्ड १५, सूक्त ३ को भी लिया गया है। अन्तमें चारों वेदोंके कुछ प्रकीर्ण मन्त्र तथा कतिपय सूक्तियां व्याख्या सहित उद्धृत हैं।

वेदव्याख्या आरम्भ करनेसे पूर्व संस्कृतमें 'वेदानां प्रतीकात्मकोऽर्थः' शीर्षकसे तथा अंग्रेजीमें: Foreword : The Symbolic Significance of the Veda शीर्षक से लेखकने वैदिक शब्दोंके श्री अरविन्दकृत प्रतीकात्मक अर्थोंपर प्रकाश डाला है। श्रीअरविन्दके अनुसार वेदकी अध्यात्म व्याख्यामें वैदिक देवता प्रकृतिकी सार्वभौम आन्तरिक शक्तियां हैं। अग्नि भागवत संकल्पशक्ति या विराट् संकल्प शक्तिका अधिष्ठातृदेव हैं, इन्द्र दिव्य मनका अधिपति तथा दिव्य प्रकाशका दाता है; मरुत् उस दिव्य मनरूप इन्द्रकी विचार शक्तियां हैं; सूर्य दिव्य सत्यका सूर्य है; उषा दिव्य ज्योति, दिव्य ज्ञान या दिव्य चेतन्यका प्रभात है, अश्विनी आनन्द के अधिपति हैं; सोम आनन्द और अमृतत्वका अधिष्ठातृ देव है, वैदिक देवताओंके आध्यात्मिक स्वरूपके ज्ञानके साथ-साथ कुछ कुंजीभूत प्रधान वैदिक शब्दोंका प्रतीकात्मक अर्थ भी वेदजिज्ञासुके लिए ज्ञातव्य होता है।

'प्रकर'—सई ६२—४४

यथा अध्यात्म अर्थमें 'गौ' दिव्य प्रकाशका, अश्व शक्तिका, घृत मानसिक निर्मलता या मनके निर्मल प्रकाशका, ऋत दिव्य सत्यका और वन आनन्दका बोधक होता है। इसी प्रकार आपः, नद्यः सिन्धवः, मातरः आदि नदीवाचक शब्द चिन्मय सत्ताकी वृष्टि-धाराओंके एवं रत्न, रधि, राधस् आदि धनवाचक शब्द आनन्दैश्वर्यके द्योतक होते हैं। श्रवः शब्दसे अन्तःश्रवण या अन्तःश्रुत ज्ञान सूचित होता है। कवि शब्द क्रान्त-द्रष्टा ऋषिका संकेतक है।

लेखकने उक्त भूमिकामें यह भी स्पष्ट किया है कि श्रीअरविन्दके अनुसार हमारा यह जीवन देवासुर शक्तियोंका संग्राम स्थल है। उसमें एक ओर हैं दिव्य ज्योतिकी शक्तियां अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, भग, अयमा आदि देव और दूसरी ओर हैं अन्धकारकी शक्तियां वृत्र, पणि, दस्यु, नमुचि आदि। इन अन्धकारकी शक्तियोंके विरोधको दूर करनेके लिए दैवी शक्तियोंका आवाहन करवा होता है, जिससे दिव्य सिद्धि प्राप्त हो सके। वह सिद्धि आभ्यन्तर यज्ञसे प्राप्त होती है। जीवात्माही इस आभ्यन्तर यज्ञका यजमान है, हृदयही वेबि है, हृदयस्थ दिव्य संकल्पाग्नि ही पुरोहित है। जीवके देह, प्राण मन ही समिधाएं हैं। मन या बुद्धिकी निर्मलता या प्रकाशमय अवस्था ही धृत है। देह, प्राण, मनकी नांता विघ्न अवस्थाएं भाव और वृत्तियां तथा सत्यके अन्वेषण एवं अभिव्यंजनके लिए किये जाते हुए कार्यही हवि हैं। छुलोकसे दिव्य ऐश्वर्य वृष्टि ही फल है। यह आभ्यन्तर यज्ञ एक यात्रात्मक है।

आलोच्य पुस्तकमें संपादक एवं भाष्यकार श्री जगन्नाथ वेदालंकारने श्रीअरविन्दके इन तथा इसी प्रकारके अन्य विचारोंको आधार मानकर वेदमन्त्रोंकी अध्यात्म व्याख्या सुन्दर शैलीमें निबद्ध की है। व्याख्या में प्रथम पदार्थ लिखा है, फिर भावार्थ शीर्षकसे मन्त्रका आशय स्पष्ट किया है। तदनन्तर विशिष्ट शब्दोंकी व्याकरण प्रक्रिया दर्शायी है। गहन रहस्यमय विषयको भी सुस्पष्ट करनेमें भाष्यकार सफल रहे हैं। संवाद सूक्तोंकी भी अध्यात्म व्याख्या हृदयग्राह्य है। प्रकीर्ण मन्त्र एवं सूक्तियां भी आकर्षक हैं। प्रत्येक वेद-प्रेमीके लिए यह पुस्तक संग्राह्य एवं पठनीय है। □



## संत श्री पोद्दारजी : रसाद्वैत-दर्शन एवं साहित्य?

सम्पादन : डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह

समीक्षक : डॉ. रामस्वरूप आर्य

‘संत पोद्दारजी : रसाद्वैत दर्शन एवं साहित्य’ पुस्तकमें संत प्रवर, निष्काम भक्त, उन्मुक्त विचारक, रसिक संत शिरोमणि श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके ‘रसाद्वैत-दर्शन’ तथा उनके द्वारा लिखित साहित्यपर विभिन्न विद्वानोंके लेख संकलित हैं।

स्वनामधन्य पोद्दारजीने ‘कल्याण’ के सम्पादकके रूपमें धार्मिक, आध्यात्मिक तथा साहित्यके क्षेत्रमें जो महती सेवा की है, वह अद्वितीय है। उनके द्वारा लिखित ‘कल्याण’ के सम्पादकीय लेख तथा पत्रोंके उत्तरभी कई खंडोंमें पुस्तक रूपमें प्रकाशित हो चुके हैं। जीवन के उत्तर भागमें पोद्दारजीका हृदय रसमयी भावोन्मियों से उद्वेलित हो उठा था तथा वे राधाकृष्णके प्रेममें सर्वतोभावेन निमग्न हो गये थे। ऐसे ही चिन्तनके क्षणोंमें ‘श्रीराधा माधव-चिन्तन’ के लेख निबद्ध हुए तथा भावनाके प्रवाहमें ‘पद रत्नाकर’ के पदोंका सृजन हुआ। पोद्दारजीने इस चिन्तन एवं भाव-धाराको ‘रसाद्वैत दर्शन’ नामसे अभिहित किया।

‘रसाद्वैत’ शब्दमें दो शब्द हैं— ‘रस’ और ‘अद्वैत’। इस प्रकार इसमें प्रेम और ज्ञानका अद्भुत समन्वय हुआ है। स्वयं पोद्दारजीके अनुसार-‘जिस प्रकार अद्वैत सिद्धान्तमें ज्ञानकी पूर्णवस्थामें ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयकी त्रिपुटीका अभाव होकर अनिर्वचनीय तत्त्व रह जाता है, उसी प्रकार दिव्य प्रेमकी उच्चावस्थामें प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद अलग-अलग न

१. प्रका. : श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मृति सेवा-ट्रस्ट, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी। पृष्ठ : १६८; डिमा. सं. २०४५ वि.; मूल्य : १००.०० रु.।

रहकर एकही तत्त्वके लीला-रसास्वादानाथ अलग रूप दिखायी देते हैं। इसी स्थितिका नाम ‘रसाद्वैत’ है। ‘पद रत्नाकर’ में वे कहते हैं—

डूँधो प्रेम-पयोधिमें गयो प्रेम की रूप।

रसाद्वैत याको कहत, रहत न भिन्न स्वरूप ॥

समीक्ष्य पुस्तकके प्रथम खंडमें रसाद्वैत-दर्शनके संबंधमें पोद्दारजीके दो तथा अन्य विद्वानोंके ६ लेख संकलित हैं। ‘रसाद्वैत’ में ज्ञानके क्षेत्रमें ‘अद्वैत’ तथा भक्तोंके रसिक भाव दोनोंका समन्वय हुआ है। ज्ञान-मार्गमें आत्मा और परमात्माकी एकतामें आस्वादक-आस्वाद्यका भेद रह ही नहीं सकता जबकि प्रेम-मार्गमें प्रेमी-प्रेमास्पदकी एकतामें आस्वाद्य और आस्वादकका एक अनिर्वचनीय एवं अचिन्त्य भेद बना रहता है, जिसके फलस्वरूप रसका प्रवाह निरंतर अभूण रहता है। रसाद्वैतका यही वैशिष्ट्य है। पोद्दारजीकी इस स्थापनाकी विभिन्न विद्वानोंने शास्त्रोंकी पृष्ठभूमिमें उनके ग्रंथोंसे उदाहरण प्रस्तुत करते हुए पुष्टि की है।

पुस्तकके द्वितीय खंडमें २५ लेख संगृहीत हैं, जिनमें मुख्य रूपसे पोद्दारजीके रसाद्वैत विषयक ‘पद रत्नाकर’ ‘श्रीराधा माधव चिन्तन’ तथा अन्य ग्रंथोंपर अधिकारी विद्वानोंने विभिन्न दृष्टिकोणोंसे विचार किया है। कुछ लेखोंमें पोद्दारजीके पावन चरित्र तथा उनके लोकोपयोगी कार्योंपर प्रकाश डाला गया है। इस दृष्टिसे ‘न भूतो न भविष्यति’ (डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी) तथा ‘अद्वितीय समाजसेवी साहित्यकार श्री पोद्दारजी’ (डॉ. गोपीनाथ तिवारी) लेख उल्लेखनीय हैं। ‘श्री पोद्दारजी महाकविके रूपमें’ (डॉ. विजयेन्द्र स्नातक) में पोद्दारजीके कवि रूप तथा ‘पोद्दारजीका गद्य-साहित्य’ (डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह) लेखमें उनकी निबंध पुस्तकों पर चर्चा की गयी है। एक लेख श्री पोद्दारजीके पत्र-साहित्य तथा सम्पादकीय लेखोंपर भी है।

पोद्दारजीने निरन्तर ४५ वर्षों तक प्रसिद्ध मासिक पत्र ‘कल्याण’का सम्पादन किया तथा प्रतिवर्ष बृहत् विशेष-

‘प्रकर’—ज्येष्ठ २०४६—४५



पाँकोंकी परम्पराका निर्वाह किया। ये विशेषाधिकार विभिन्न दर्शनों, अवतारों, आकर ग्रंथों तथा विविध सामाजिक संदर्भोंसे संबद्ध हैं तथा विषयसे संबद्ध विश्व-कोशीय स्तरकी सामग्रीसे संकलित हैं। अतः पुस्तकमें पोद्दारजीकी सम्पादन-कलापर स्वतंत्र लेख होता तो अच्छा रहता। पुस्तकके आरंभमें पोद्दारजीकी जीवन-झाँकी तथा अंतमें 'परिशिष्ट' में उनके द्वारा लिखित एवं सम्पादित ग्रंथोंकी सूचीका भी अपना महत्त्व

रहता। पुस्तकके द्वितीय संस्करणमें सम्पादक महोदय इस अभावकी पूर्ति कर सकते हैं।

'संत पोद्दारजी : रसाद्वीत दर्शन एवं साहित्य' पुस्तक एक महान् आत्माके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है। इसका मुद्रण सुवचिपूर्ण है। १६८ पृष्ठोंकी पुस्तकका न्यौछावर मूल्य मात्र १०.०० रु. रखा गया है, जो निश्चयही अत्यल्प है। इसके लिए पुस्तकके सम्पादक तथा प्रकाशक बधाईके पात्र हैं। □

## दूरदर्शन-धारावाहिक

### साहित्यिक कृति 'मृगनयनी' : छोटे-परदेकी फिल्मी कहानी

—डॉ. तेजपाल चौधरी

पिछले दिनों जब दूरदर्शनपर वृन्दावनलाल वर्मा के प्रख्यात उपन्यास 'मृगनयनी' का धारावाहिक रूपमें प्रसारण हुआ, तो कुछ प्रश्न मानस-पटलपर उभर आये कि क्या किसी कृतिको इस प्रकार तोड़ मरोड़कर प्रस्तुत करना कृतिकारके अधिकारोंका हनन नहीं है ? क्या कलाभिव्यक्तिकी स्वतन्त्रताको स्वच्छन्दताकी सीमा तक स्वीकार किया जा सकता है और कोई इस प्रकार के प्रयासको चुनौती नहीं दे सकता ? इस सन्दर्भमें प्रायः यह स्पष्टीकरण दिया जाता है कि माध्यमकी भिन्नताके कारण हमें थोड़ी बहुत भिन्नताको स्वीकार करना ही पड़ता है। परन्तु इन कृतियोंके कथानक और पात्रोंके स्वरूपमें जो निर्मम परिवर्तन किया जाता है, वह अनेक बार 'थोड़ा बहुत' नहीं होता। यदि कृतिका मूल स्वर ही आहत होने लगे, तो ऐसा परिवर्तन समझौता नहीं एक भूल बन जाता है। 'मृगनयनी' के साथ भी प्रायः ऐसा ही हुआ है। केवल सन्तोषकी बात यह है कि निर्माताओंकी कलाकी समझके कारण रचना खिल-वाड़ बननेसे बच गयी है।

वस्तुतः उपन्यासकारका उद्देश्य मृगनयनीके लोकोत्तर चरित्रको ऐतिहासिक सन्दर्भोंमें प्रस्तुत करना था, जिसके व्यक्तित्वमें लेखकने कर्तव्य और भावना, कठो-

रता और कोमलता तथा शक्ति और सरस्वतीका अद्भुत समन्वय देखा था। उपन्यासके अन्तमें वृन्दावनलाल वर्माकी मृगनयनी कहती है, : संकल्प और भावना जीवन-तलड़ीके दो पलड़े हैं। जिसको अधिक भारसे लाद दीजिये, वही नीचे चला जायेगा। संकल्प कर्तव्य है और भावना कला। दोनोंके समान समन्वयकी आवश्यकता है। (पृष्ठ ४८७)।

दर्शकके आक्षेपका आरम्भ यहींसे होता है कि धारावाहिककी मृगनयनी मूल औपन्यासिक पात्रके चरित्र और व्यक्तित्वके साथ न्याय नहीं कर पाती। उसका पलड़ा कलाकी ओर झुक गया है। अरने भैंसे को सींग पकड़कर मरोड़ देनेवाली और जंगली सूअर को पीठपर लादकर ले जानेवाली निन्नी शायद वहाँ है ही नहीं। माना कि पल्लवी जोशी एक भावना प्रधान अभिनेत्री है। उसके पास हर्ष-विषादको अभिव्यक्ति देनेवाली आँखें हैं, भावोंके उतार-चढ़ावके साथ रंग बदलता चेहरा है, संवादोंमें जान डालनेवाली आवाज है, परन्तु वह पौरुषमय व्यक्तित्व कतई नहीं जो मृगनयनीकी भूमिकाके लिए अपेक्षित था। शायद इसीलिए निर्माता उसके व्यक्तित्वके इस पहलूको टालता गया है। दर्शक अरने भैंसे और जंगली सूअरके

'प्रकर'—मई १२—४६



शिकारकी प्रतीक्षा करता रहते हैं और धारावाहिक बाघ मारनेके कुछ संकलित दृश्य दिखाकर आगे बढ़ जाता है।

राजा मानसिंहके चरित्रमें भी ऐतिहासिक पात्र की-सी पौरुषेयता नहीं आपायी। वह एक प्रौढ़ तेजस्वी राजा था, जो धारावाहिकमें युवा प्रेमी बनकर रह गया है। विशेष रूपसे उसका नाम-रूप छिपाकर विवाहसे पूर्व निम्नीसे मिलना बिल्कुल 'फिल्मी' हो गया है। मूल उपन्यासमें इस प्रकारका कोई प्रसंग नहीं है। इस परिवर्तनका धारावाहिकमें क्या औचित्य था, कहा नहीं जा सकता? वस्तुतः जब मानसिंहका मृगनयनीसे विवाह हुआ, तो वह यौवनका पूर्वाङ्ग पार कर चुका था और उसकी पहलेही आठ रानियां थीं। मृगनयनीके प्रति उसके आकर्षणका कारण उसका लावण्य नहीं, अपितु वह पराक्रम था, जिसकी कहानियां सुदूर राज्योत्तक जा पहुंची थीं।

कथानकमें ऐसेही एक अटपटे प्रसंगकी कल्पना गायक बैजनाथ और मृगनयनीके सम्बन्धोंको लेकर की गयी है। मृगनयनी और बैजनाथके पारस्परिक आकर्षण का कोई संकेत मूल उपन्यासमें नहीं मिलता। हां, लोककथाओंमें इसका आधार अवश्य विद्यमान है। धारावाहिकमें जहां इस सन्देहको अतिरंजित रूप दिया गया है, वहां संदेह निवारणके बाद राजाके अपराध-बोध को भी, जिसने कथाको त्रिकोण प्रेमका आधुनिक संस्करण बना दिया है। राजा जिस प्रकार इस मौन पीड़ाको सहता है, वह उसके ऐतिहासिक व्यक्तित्व और राजसी अधिकार भावनाके साथ मेल नहीं खाता।

बैजनाथ गायक और कलावतीके चरित्रोंमें भी ऐसाही अवांछित परिवर्तन किया गया है। ये दोनों चन्देरीके राजसिंहके गुप्तचर थे, जिन्हें ग्वालियरके महलोंके नक्शे बनाने और वहांकी राजनीतिक हलचल पर नजर रखनेके लिए नियुक्त किया गया था। परन्तु धारावाहिकमें उनकी गतिविधियां गुप्तचर होनेका कोई आभास नहीं देतीं। बैजू एक गायक है, संगीतके प्रति पूर्णतया समर्पित, चालाकी और व्यावहारिकतासे कोसों दूर, जिसकी न राजनीतिमें कोई रुचि है, न युद्धोंमें। कला उसकी तुलनामें कहीं अधिक गुप्तचर कृतिकी युवती है, किन्तु उसके क्रिया-कलाप भी केवल प्रेमसे संचालित हैं, किसी दबाव या प्रलोभनसे नहीं। 'मृगनयनी' उपन्यासमें वह राजसिंहसे प्यार करती है

और अन्तमें बैजूकी स्वाकारोक्तिसे धबकाकर चन्देरी लौट जाती है, किन्तु बिना राजमहलके नक्शोंके ही। धारावाहिकमें वह बैजूके प्रति अनुरक्त है और बैजूके द्वारा मृगनयनीके सामने अपना भण्डा फूटनेसे पूर्वही वह आत्महत्या कर लेती है।

विवाहके बाद मृगनयनीको ग्वालियरके अन्तःपुरमें जिस सपत्न-दाहको सहना पड़ता है, उसका बहुत सन्तुलित चित्रण उपन्यासमें हुआ है। इस प्रसंगमें भी धारावाहिक अतिरंजनाका शिकार हो गया है। हां, छोटी रानीका मृगनयनीके प्रति आत्मीय भाव एक सुखद आभास देता है। मृगनयनी उपन्यासमें उदार है, पर धारावाहिकमें तो उसकी उदारता देवत्वकी कोटि तक पहुंच गयी है। वह केवल अपने पुत्रोंकी बजाय विक्रमादित्यको सिंहासन प्रदान करनेका आग्रहही नहीं करती, अपितु सब कुछ त्यागकर उदात्तताकी बहुत उच्चभूमिको सहजही प्राप्त कर लेती है। धारावाहिक का यह समापन अंश उपन्याससे भी बाजी मार ले जाता है।

धारावाहिककी एक अन्य कमजोरी राजनीतिक परिवेशके अंकनमें उसकी असफलता है। कुछ ऐतिहासिक तथ्योंको केवल स्पर्श करके छोड़ दिया गया है, तो कुछको मूल कथाके सूत्रमें सुगुम्फित नहीं किया जा सका। वस्तुतः पन्द्रहवीं शताब्दीका वह काल खण्ड, जिसकी पृष्ठभूमिपर मृगनयनीका घटनाक्रम अंकित है, हमारे इतिहासका सबसे संघर्षमय काल माना जाता है। उसे और अधिक सावधानीके साथ फिल्माया जाना चाहिये था।

सिकन्दर लोदीके आक्रमणके पश्चात् बुन्देलखण्डके जन-जीवनकी जिस कारुणिकताके चित्र उपन्यासकारने खींचे हैं, उनकी झलक मात्र भी धारावाहिक नहीं दिखाता। सेनाओंके द्वारा रोंदे हुए खेत, कुंओंमें सड़ती हुई लाशें, आनेवाले कलकी चिन्तामें डूबे ग्रामीण और उजड़े हुए गांव आक्रान्ताओंके अत्याचारोंकी कहानी कहते हैं। यदि इन स्थितियोंको पर्देपर दिखाया जा सकता, तो धारावाहिक हमें उस युगका अधिक प्रामाणिक दस्तावेज प्रतीत होता।

सुलतान गयासुद्दीन और उसके पुत्र नसीरुद्दीनकी विलासिता दिखानेके लिए कैमरा हमें माण्डवगढ़के महलोंमें अवश्य ले जाता है। परन्तु निम्नीके लिए आहें भरते हुए सुलतान और उसकी चापलूसी करते हुए



हवाजा मटरुकी धूततासे अधिक नहीं हुआ है। सांक नदीकी नहर भी, जिसका निर्माण विशेष रूपसे मृगनयनीके लिए कराया गयाथा, उपेक्षित रह गयीहैं।

हाँ, राजाके संगीत प्रेमको अवश्य अपेक्षित महत्त्व प्राप्त हुआहै और प्रसंगानुरूप गायक बैजूकी कलाकी भी। वस्तुतः यही धारावाहिकका सबसे प्रबल पक्ष है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहाजा सकता कि गायक बैजूनाथ, जिसे परम्परा बैजू बावराके नामसे जानतीहै राजा मानसिंहका समकालीन था या नहीं, परन्तु लोक-कथाओंमें उसका नाम राजा मानसिंहके साथ जोड़ा जाना और यह मानना कि गूजरी टोडी और मंगल गूजरी आदि राग मृगनयनीके नामपर रचे गयेथे, अपने आपमें राजाके संगीतप्रेमी होनेका पुष्ट प्रमाण हैं।

वस्तुतः संगीत इस धारावाहिकका प्राण तत्त्व है, जो इसे धारावाहिकोंकी भीड़में खो जानेसे बचाताहै। बैजूके लिए ध्वनि मुद्रित पण्डित जसराजकी गायकी तो अद्वितीय है ही, नटोंके नृत्योंमें लोककलाकी जिस भव्यताके दर्शन होतेहैं, वह भी अविस्मरणीय है। शीर्षक संगीतकी तालके बोल तो दर्शकके मनमें ही बस जातेहैं। और जो बात संगीतको लेकर कही गयी है। वही चित्र कलाकी भव्यतापर भी लागू होतीहै।

धारावाहिककी कुछ उल्लेखनीय विशेषताओंमें जाति प्रथाकी विभीषिकाको अत्यन्त वेधकताके साथ प्रस्तुत करनाभी है। अटल और राखी जीवनभर धर्म-सम्मत विवाहके लिए तरसते रहतेहैं। अटल राजाका साला हुआ तो क्या, स्वयं राजा तो नहीं। अतः बोधन शास्त्रीके मतानुसार भले ही राजपूत राजा गूजर लड़कीसे विवाह कर सकताहै, सामान्य गूजर अहीर लड़कीसे नहीं। समरथको नहि दोष गुसाई !

धारावाहिकका एक और पात्र बरबस ध्यान खींच लेताहै—निहालसिंह ! मिकन्दर लोदीके सामने उसका तेजस्वी रूप देखकर राजपूतोंकी आन साकार हो उठती है। इस पात्रके चरित्रांकनमें भी धारावाहिक बाजी मार ले गयाहै। अन्य पात्र और घटनाएं सामान्य हैं।

कुल मिलाकर 'मृगनयनी' धारावाहिक, अपनी सीमाओंके होते हुएभी दर्शनीय है, जिसे नयनाभिराम फोटोग्राफी उत्कृष्टता प्रदान करतीहै। यदि निर्माता-दल 'स्क्रीन प्ले' के लेखन और घटनाओंके चयनमें और सतर्कता बरतता तो यह उत्कृष्ट कृति बन गयी होती।



# प्रकर

आषाढ़ : २०४६ [विक्रमाब्द] :: जून : १९६२ [ईस्वी]

विशिष्ट लेख

जैनेन्द्र : पौढ़ियोंका साक्षित्व



# Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and Gangotri 'प्रकर' जून ६२ : आलेख, समीक्षित-कृतियां

आलेख

जनेन्द्र : पोढ़ियोंका साक्षित्व	१	डॉ. मूलचन्द सेठिया
अध्ययन-अनुशीलन		
प्रसाद-चिन्तन — डॉ. विमला गुप्त	२	प्रो. घनश्याम जल
प्रसाद : समग्र अनुशीलन — डॉ. प्रभाकर शर्मा	१२	डॉ. महेंद्रसागर प्रचंडिया
हिंदी के मुसलमान कवियोंका कृष्ण काव्य — डॉ. साधना त्रिपाथी	१२	डॉ. निजामुद्दीन
भाषा : लिपि-वर्तनी		
नूतन पर्यायवाची एवं विपर्याय कोश — डॉ. बदरीनाथ कपूर	१५	डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया
लिपि वर्तनी और भाषा — डॉ. बदरीनाथ कपूर	१६	डॉ. हरिश्चन्द्र
काव्य		
तुम ! हाँ बिलकुल तुम — बाइ नूई; अनु — प्रियदर्शी ठाकुर	१८	डॉ. वीरेन्द्रसिंह
इसी जन्ममें पुनर्जन्म सत्यपाल बुध	२१	डॉ. सन्तोष तिवारी
अपने समयका वर्तमान — राजेन्द्र मिश्र	२३	डॉ. प्रयाग जोशी
उपन्यास		
आर्यावर्तकी कुलवधू — मायारानी शवनम	२५	श्री सुरेन्द्र तिवारी
हाथकी डार्ड लकीर — गंगाप्रसाद श्रीवास्तव	२७	डॉ. उत्तम पटेल
कहानी		
यह दाग दाग उजाता — कुरंतूल ऐन हैदर	२६	डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ
मर्यादित — हरदशन सहगल	३१	डॉ. यशपाल वैद
नाटक		
इला — प्रभाकर श्रीवास्तव	३२	डॉ. भानुदेव शुक्ल
सूत्रधार — मुधीन्द्रकुमार	३४	डॉ. नरनारायण राय
व्यंग्य-विनोद		
मनी प्लांट — डॉ. जितेन्द्र महाय	३५	डॉ. श्यामसुन्दर घोष
विष कन्या — रवीन्द्र त्यागी	३७	डॉ. भानुदेव शुक्ल
क्षेत्रीय संकलन		
कलकत्ता : १९६० — सम्पादक : डॉ. कल्याणमल लोहा	३६	डॉ. हरदयाल
भारतीय क्षेत्र : भाषा, इतिहास		
अण्डमान निकोबारके आदिवासी और उनकी बोलियाँ — डॉ. व्यासमणि व्यास	४१	डॉ. प्रशान्त
आप बोती : कश्मीरपर आक्रमण — कृष्णा मेहता	४२	"
संस्कृति-साहित्य		
साहित्य समाज और भारतीयता — डॉ. ब्रह्मदत्त अवस्थी	४३	डॉ. हरिश्चन्द्र
आर्थिक भूगोल		
विश्वका आर्थिक भूगोल — डॉ. बी. पी. यादव	४५	डॉ. हरिश्चन्द्र
काव्य परिचय		
निपट निरंजनकी वाणी — डॉ. राजमल बोरा —	४७	डॉ. नत्थनसिंह
मुधियोंके दीप — जेयाराम चिन्ने निःशंक	४७	डॉ. नत्थनसिंह
मत-अभिमत	४८	

'प्रकर' — जून ६२ —



वर्ष : २४

अंक : ६

आषाढ़ : २०४६ [ विक्रमाब्द ]

जून : १९६२ [ ईस्वी ]

सिद्ध साहित्यकार

## जैनेन्द्र : पीढ़ियोंका साक्षित्व

—डॉ. मूलचन्द्र सेठिया

“जैनेन्द्र : साक्षी है पीढ़ियाँ” (तीन खण्ड) में साहित्य, संस्कृति, धर्म-दर्शन, राजनीति और लोक-सेवाके क्षेत्रमें लब्धप्रतिष्ठ २१५ लेखकोंने जैनेन्द्रके व्यक्तित्व और कृतित्वका विभिन्न दृष्टियोंसे स्मरण, मूल्यांकन और श्रद्धापूर्णा किया है। इन लेखकोंमें से कई जैनेन्द्रकी अपनी पीढ़ीके हैं तो कतिपयने आगेवाली पीढ़ियोंकी ओरसे साक्षित्व प्रस्तुत किया है। पीढ़ियों के अन्तरालकी बात आजकल बहुत की जाती है; परन्तु पीढ़ियाँ सदा खाइयाँ ही नहीं खोदती हैं वे एक-दूसरी के आर-पार जानेके लिए पुलभी बनाती हैं। जैनेन्द्र जब अपनी परख लेकर हिन्दी साहित्य-क्षेत्रमें अवतरित हुए तो प्रेमचन्द अपने कृतित्वके शिखरपर थे, सन् १९३६ में ‘गोदान’ देकर वे चले गये। उसके बाद व्यक्तिके अन्तर्जगत्की उलझनोंके सुलझावका दावा लेकर जैनेन्द्र-अज्ञेयकी पीढ़ी आती है। थोड़े अन्तरालके बाद यशपाल लाल झण्डा फहराते हुए आते हैं और फायडकी तुलनामें मार्क्सकी प्रतिभाकी स्थापित कर देते हैं। मोहन राकेश और राजेन्द्र यादवकी पीढ़ी ‘नई कहानी’ की पताका लहराती हुई आती है और उसके बाद तो कहानी-आन्दोलनोंकी बाढ़-सी आ जाती है—‘अकहानी’, ‘समान्तर कहानी’, ‘आंचलिक कहानी’, ‘सचेतन कहानी’ और न जाने कौन-कौन-सी कहानी। कथा-साहित्यमें पीढ़ियोंके बाद पीढ़ियाँ आती हैं, एक-दूसरेको ललकारती हैं और अपनेको स्थापित करनेके लिए पिछली पीढ़ीको धकियानेका प्रयास करती हैं कि

उसे धक्का देनेके लिए अगली पीढ़ी आ खड़ी होती है। पीढ़ियोंकी यह धकापेल विचार और व्यवहारके स्तरपर निरन्तर चलती ही रहती है। परन्तु, ‘साक्षी है पीढ़ियाँ’ के तीन खण्डोंमें हिन्दीमें एक साथ सृजनरत कई पीढ़ियोंने जैनेन्द्रके माध्यमसे एक-दूसरेको पूरी सहृदयताके साथ समझने और समझानेका प्रयास किया है। इन संस्मरणोंसे गुजरकर यह लगता है कि पिछले साठ वर्षोंमें हिन्दी प्रेरणाका साहित्यिक और सांस्कृतिक जीवन अपने सारे कलह-कोलाहल और वैचारिक वितण्डावादके बावजूद जितना कटा हुआ प्रतीत होता है, उससे कहीं अधिक परस्पर जुड़ा हुआ था। संस्मरण अधिकतर उस संकट-कालमें लिखे गये हैं, जब इस परावाक बक्ताकी वाणी मूक हो गयी थी और केवल मौनही मुखरित हो रहा था। स्वभावतः संवेदनाके स्पर्शने निर्णयकी कठोरताको कुछ कोमल कर दिया होगा, पर श्रद्धातिरेकने कहींपर भी तरल भावुकताका रूप धारण नहीं किया है।

जैनेन्द्रने अपने असाधारण कृतित्वसे हिन्दी कथा-साहित्य और विचार-साहित्यके क्षेत्रमें अपना वर्चस्व स्थापित किया ही था; उनके सरल-सौम्य स्वभाव, मधुर आत्मीय व्यवहार और सूक्ष्म एवं मूलग्राही चिन्तनने उनके व्यक्तित्वको भी एक अपूर्व आभा मंडल प्रदान किया था। ‘अज्ञेय’ ने योंही नहीं कहा था “हिन्दी में जैनेन्द्रकुमार दो नहीं है।” उनका व्यक्तित्व जितना सरल था, चिन्तन उतना ही गूढ़-गम्भीर। विचारोंके

‘प्रकर’—आषाढ़ २०४६—१



वजित क्षेत्रमें पांव रखनेसे भी उन्होंने कभी मार देना नहीं किया। उनके व्यक्तित्वमें कुछ ऐसे बद्धमूल अन्त-विरोध रहे हैं, जो उनको विवादास्पद बनाने के लिए काफी थे; परन्तु उन्होंने स्वयं भी अपने बारेमें गलत-फहमियाँ फैलानेमें कोई कोताही नहीं की। यही कारण है कि उनके बारेमें परस्पर विरोधी धारणाएं पनपती रहीं। मन्मथनाथ गुप्तके शब्दोंमें “कुछ निन्दक कह सकते हैं (वल्कि कहते हैं) कि जैनेन्द्र भौतिक-वादियोंमें भौतिकवादी, अध्यात्मवादियोंमें अध्यात्म-वादी, गांधीवादियोंमें गांधीवादी बन जाते हैं, पर मैं कहूँगा कि इसके विपरीतभी उतना ही सच है, यानी वे अध्यात्मवादियोंमें भौतिकवादी और भौतिक-वादियोंमें अध्यात्मवादी होनेका भ्रम भी उसी सफलतासे पैदा कर लेते हैं।” ‘हां’ और ‘ना’ का यह सह-अस्तित्व सुविधाही नहीं जुटाता, संकटभी खड़ा कर देता है। जैनेन्द्रके बहु-आयामी व्यक्तित्वके कई पहलू बाह्य दृष्टिसे एक-दूसरेसे टकराते और एक-दूसरेको काटते हुए-से प्रतीत होते हैं। कवि ‘अंचल’ को ‘वैष्णवी नम्रताके आवरणमें लिपटा उनका रचनात्मक आभिजात्य अजीब-सा लगता रहा है।” अपने खान-पान, रहन-सहन और वस्त्र-परिधानमें वे जीवनभर एक सन्तकी-सी सरलता, सहजता और निरभिमानताका परिचय देते रहे। धोती-कुर्ता या कुर्ता-पायजामाके अतिरिक्त उन्होंने शायदही कभी कोई और वस्त्र पहने हों। दरियागंजकी एक गलीमें “एक बड़ेसे मकानके पिछवाड़े, दिमागमें काम खत्म होनेपर आये हुए विचारकी तरह एक ऊटपटांग” फ्लैटमें वे आधी सदी तक रहते चले गये, जबकि उन पर आलोचना लिखने और शोध करनेवालोंने कोठियाँ खड़ी कर ली थीं। फिरभी, ऐसे छिद्रान्वेषकों की कमी नहीं थी जो जैनेन्द्रकी सरलतामें कूटनीति-कता, नम्रतामें प्रच्छन्न अहंवादिता और निस्पृहतामें स्वार्थ-सजगताकी झलक देखते थे।

साहित्य-सृजन और चिन्तनके क्षेत्रमें जैनेन्द्रकी वरीयताको निर्विवाद रूपसे स्वीकार किया गया है। दोनोंही क्षेत्रोंमें उन्होंने मौलिकता और मूलग्राहिता का परिचय दिया था। गोपालकृष्ण कौलके शब्दोंमें “अपनी मौलिकताका उत्सव स्वयं थे। उन्होंने सदा अपनाहो अनुकरण किया।” प्रेमचन्दके साथ अन्यतम आत्मीय सम्बन्ध होते हुएभी वे उनके प्रभाव वृत्तसे

‘प्रकर’— जून ६२—२

बाहर ही रहे। उतनी तुलना पारस्परिक समताके लिए उतनी नहीं, जितनी विषमताके लिए की जाती है। ममता कालियाके शब्दोंमें “ये दोनों महान् रचना-कार गंगा और यमुनाकी तरह अलग-अलग वर्ण थे और ऐसे अन्त तक रहे।” एकने सामाजिक यथार्थको प्रधानता दी तो दूसरेने वैयक्तिक जीवन-सत्यको। हिन्दी कथा-साहित्यमें मनस्ताविकता और मनो-वैज्ञानिकताको प्रश्रय देनेकी दृष्टिसे जैनेन्द्र और अज्ञेय के नाम युग्म रूपमें लिये जाते हैं परन्तु जैनेन्द्रकी साहित्य-सृष्टि और जीवन-दृष्टि ‘अज्ञेय’ से सर्वथा भिन्न रही है। गिरिजाकुमार माथुरके शब्दोंमें “अज्ञेय... आन्तरिक मनोवेगों तथा प्रेमके त्रिकोणमें मुझे जैनेन्द्र जीकी परम्पराके पट्ट शिष्य लगते थे। कभी-कभी मुझे ऐसाभी प्रतीत होता था कि अपनी रचनात्मक दिशा में जैनेन्द्रजी मूल आलेख हैं और ‘अज्ञेय’ नये ढंगसे उनकी संशोधित प्रतिलिपियाँ। वीरेन्द्रकुमार जैनकी दृष्टिमें ‘अज्ञेय’ जैनेन्द्रके सारस्वत पुत्र रहे हैं। हाँ, जैनेन्द्र यदि किसीसे प्रभावित नहीं हुए तो उन्होंने दूसरोंको प्रभावित करनेका उपक्रमभी नहीं किया था। उनके पास वह ताम-शाम नहीं था, जिसके बलपर वे दूसरोंको अपनी लोकपर चलनेके लिए प्रेरित और प्रभावित कर पाते। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रियके शब्दोंमें “उन्होंने अपने पास कभी कोई सत्ता-केन्द्र नहीं रखा; किसी लेखक वर्गको उठाकर चमकानेके लिए कोई सप्तक नहीं कसा, किसी पत्र-पत्रिकाके सम्पादक नहीं हुए यानी कुछ नहीं रखा अपने पास बांधने या काटने को।” फिरभी जैनेन्द्रके प्रभावका जादू लोगोंके सरपर चढ़कर बोला है। कट्टर मार्क्सवादी आलोचक डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्यायकी लेखनीसे ये शब्द योंही नहीं निकल पड़े होंगे “जैनेन्द्र जैसा लेखक हिन्दीमें जन्मा, इससे हिन्दी अपनेपर गर्वकर सकती है।” मौरीशसके प्रख्यात लेखक सोमदत्त बखौरीने एक सभा-समारोहमें जैनेन्द्रके निकट बैठाये जानेको ही अपना बहुत बड़ा सौभाग्य माना। कोई आश्चर्य नहीं कि ठाकुरप्रसाद सिंहको महादेवी और जैनेन्द्रका निधन होनेके पश्चात् हिन्दीका साहित्याकाश छोटा दिखायी पड़ने लगा।

जैनेन्द्रपर सम-सामयिक रचनाकारोंके द्वारा साहित्यिक आक्रमण कम नहीं हुए। अपनी व्यक्ति-निष्ठाके कारण वे साम्यवादियोंकी अकृपाके पात्र बने



तो अपनी शाश्वत मूल्योंकी आस्थाके कारण 'क्षणके भोगे हुए यथाथं' के ध्वजधारियोंके विरोधका सामना करना पड़ा। डॉ. रामविलास शमनि उन्हें 'साड़ी जम्पर-उतार' उपन्यासकार कहा तो जगदीश पाण्डेयने 'चौरहरणका कथाकार' कहाथा। परन्तु, उन्हें सबसे तीखे विरोधका सामना 'नई कहानी' के ध्वजधारियों, विशेषतः कमलेश्वरसे करना पड़ा। उन्होंने लिखा है "वैचारिक असहमतिको विरोधका जामा पहना दिया गया और मुझे जैनेन्द्रके विरोधीके रूपमें प्रस्तुत किया जाने लगाथा। सन् ६५ में कलकत्ता महानगरमें कथा-समारोह आयोजित किया गयाथा। कई पीढ़ियोंके लोग एक मंचपर एकत्र हुएथे। कमलेश्वरने जैनेन्द्र-विरोधी अभियानका नेतृत्व अपने हाथोंमें ले रखाथा। इस प्रसंगका बड़ा सटीक वर्णन भीष्म साहनीने किया है। "समूची नयी पीढ़ी एक ओर थी और अकेले जैनेन्द्र दूसरी ओर। सभी युवा लेखकोंने जैनेन्द्रको लक्ष्यकर व्यंग्य-वाण चलाये। जैनेन्द्र सुनते रहे, पर फिर उठे और घण्टा भर बोलते रहे और युवा पीढ़ीकी धुनाई करते रहे, समतल आवाजमें आलोचकोंके तर्क काटते रहे, उनके साथ जूझते रहे। एक और युवा कथाकार नैलेश मटियानीके शब्दोंमें "कोशिश की, जैनेन्द्रको कुछ इस प्रकार अप्रासंगिक होचुका दिखानेकी जैसे कोई पुराना जहाज अब निष्क्रिय हुआ सागरके किसी द्वीप के किनारे खड़ाहो।" परन्तु, जैनेन्द्रने जब अनुद्विग्न भावसे नयी कहानीके दावेदारोंको उधेड़ना शुरू किया तो "नयी कहानी" से लेकर 'मसानी कहानी' तक के ध्वजधारियोंको उन्होंने ऐसे निपटा दिया, जैसे पवित्र क्रिसमसके शान्ता कलाजके द्वारा बच्चोंको पुचकार दिया जाताहै।" गोविन्द मिश्रके शब्दोंमें "उन्होंने जैनेन्द्रको छोटा करनेकी जितनी कोशिश की, जैनेन्द्र उतने और बड़े हुए।" कमलेश्वरने अपने संस्मरणमें लिखाहै "उनके पूर्ववर्ती कथाकारोंमें जैनेन्द्र और 'अज्ञेय' साहित्यिक भूगोलमें उन्नत और विराट् पर्वतोंकी तरह मौजूद थे।" परन्तु, यह क्या आवश्यक था कि उनसे सर टकराया ही जाता ? समसामयिक लेखनको पढ़ने और सराहनेमें जैनेन्द्र अपनी पीढ़ीके रचनाकारों से बहुत आगे थे। वे जब कभी उनमें सार्थकताके बीज और सम्भावनाके सूत्र देखते तो उन्मुक्त भावसे उनको सराहनेमें संकोच नहीं करतेथे। परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दोंमें "नयेसे नये लेखनको बीसवीं शताब्दीके

उत्तरार्द्धमें जैसी स्वीकृति जैनेन्द्रसे मिलीहै, वह अपने ढंगका अकेला अनुभव है।"

अनेक संस्मरणोंमें जैनेन्द्रजीकी धर्मपत्नी स्व. भगवतीदेवीका श्रद्धापूर्वक स्मरण किया गयाहै। जिस किसीने उस ममताकी मूर्तिके स्नेह-संस्पर्शको प्राप्त कियाहै वह अक्षयकुमार जैनके इस कथनसे अपनेको असहमत नहीं पायेगा "पहलीही भेंटमें मुझे श्रीमती जैनेन्द्रमें मांके दर्शन हुए।" स्वतंत्र लेखनही आकाशी वृत्तिके आधारपर जीवन-यापन करनेवाले हिन्दी लेखककी पत्नीको जीवनभर दीपककी तरह जलना पड़ताहै। सुश्री महादेवी वर्माके शब्दोंमें "हमारे समाजमें विशेषतः किसी लेखककी पत्नी अभावोंके बीच ही जीतीहै। पर भगवती भाभी सारे अभावोंके बीच असीम भावसम्पन्न थीं। भाई जैनेन्द्रके पार्श्वमें खड़ी उस शान्त मूर्तिने उन्हें कितना बल दिया होगा, यह कोईभी अनुभव कर सकताहै। वास्तवमें, वे इस गृहस्थीकी धुरीथीं। दादा धर्माधिकारीने यह ठीकही लक्ष्य कियाथा कि वह भगवती है, इसलिए जैनेन्द्रकी गृहस्थी चलतीहै। एक प्रकारसे जैनेन्द्र तो अक्खड़-फक्कड़ आदमी है, गृहस्थ संन्यासी हैं।" भगवती जीके स्नेह-संरक्षणने ही बच्चोंपर अभावकी काली छाया नहीं पड़ने दी क्योंकि वे आसपासके अभाव-त्मक शून्यको अपने व्यक्तित्वकी सम्पन्नतासे समृद्ध करती रही। यही कारण है कि उनके ज्येष्ठ पुत्र भाई दिलीपजी कभी-कभी पिताके प्रति आलोचना और विद्रोहके तीखे तैवर धारण करके भी अपनी माताश्रीके प्रति सदा विनयावनत बने रहे। उस महीयसीकी मृत्युके बाद यदि जैनेन्द्र अपनेको अकेला और अपाहिज-सा अनुभव करने लगेथे तो यह सर्वथा स्वाभाविक था। कई संस्मरणोंमें दिलीपजीके व्यक्तित्वका भी गहरी संवेदनाके साथ चित्रण हुआहै। वे बहुतही खरे आदमी थे—सत्यप्रिय और नीतिनिष्ठ। उनकी तीखा अन्तर्दृष्टि स्थितियों और व्यक्तियोंको आरपार भेद कर वास्तविकताके तलतक पहुंच जातीथी। परन्तु, विधिका व्यंग्य ही कहना चाहिये कि पिताके प्रति अपने अन्तस्में श्रद्धा और स्नेहसे शून्य न होते हुए भी जीवनके एक चरणमें उनके आलोचक बन बैठे। समवयस्कताके कारण सख्य सम्बन्ध तो था ही, उनके जयपुर-प्रवासने और भी निकट सम्पर्कके अवसर प्रदान किये। काश! वे व्यक्तियोंको मापनेके अपने मानदण्डको



कुछ सुनम्य बना पाते और स्थितियोंके साथ काम-चलाऊ समझौता ही कर पाते। एक संक्षिप्त बीमारी के बाद दिलीपजीकी असामयिक मृत्युने जैनेन्द्रजी और भगवतीजीको झकझोर ही नहीं दियाथा, कहीं बहुत गहरेमें तोड़भी डालाथा। उनका यह धाव जीवनभर कमकता रहा। कनिष्ठ पुत्र प्रदीपजी और उनकी पत्नी विनीताजीने पक्षाघातग्रस्त होनेके बाद जिस अनन्य समर्पण भावसे जैनेन्द्रजीकी स्नेह-सुश्रूषा की, उसके उदाहरण इस यांत्रिक युगमें कमही देखने को मिलतेहैं। कई संस्मरणोंमें प्रदीप-विनीताका जो भावभीना चित्र उभरताहै, वह जैनेन्द्रकी जीवन-संध्या को भावात्मक गरिमाका एक करुण-मधुर स्पर्श प्रदान करताहै।

प्रदीपजीको यह शिकायत रहीहै कि जिस किसी को संस्मरण लिखनेको कहा जाताहै, वह सर्जकको ले बैठताहै, व्यक्तिको नहीं पहचानता। परन्तु, जैनेन्द्र के व्यक्तित्व और सर्जक कृतित्वके बीच इतना सायुज्य है कि उनके बीच कोई विभाजक-रेखा खींचना सम्भव ही प्रतीत नहीं होता। जीवनकी लहर-लहरसे खेलने वाले मस्त-मलंग वे कभी नहीं रहे। उन्होंने जो कुछभी देखा अनुभव किया, उसपर गम्भीर चिन्तन भी किया। गुजराती कवि उमाशंकर जोशीके शब्दोंमें "चिन्तनशीलतामें रहना उनका स्वभाव रहा।" लाखों व्यक्तियोंके सम्पर्कमें आनेवाले महामनीषी आचार्य तुलसीने लिखाहै हमने जैनेन्द्रकुमार जैसे गम्भीर चिन्तक और स्थिर एवं सूक्ष्म दृष्टिवाले व्यक्ति कम देखेहैं।" उनका चिन्तन सतही न होकर तलस्पर्शी रहा है। उनके ही शब्दोंमें: "सत्य जिसको कहतेहैं, वह सीधी लकीर नहीं है।" इसलिए वे समस्याओंके सरलीकरणमें विश्वास नहीं रखते, उनमें अन्तर्निहित जटिलताओंको समग्रताके साथ ग्रहण करनेका प्रयास करतेहैं। विद्या-निवास मिश्रके शब्दोंमें "जैनेन्द्र जब अपने आपसे बात करतेथे, तो लगताथा सीढ़ी-दर-सीढ़ी गहराईमें उतरते जा रहेहैं।" उन्होंने जो कुछ पाया, वह शास्त्रों में नहीं, अपने आपमें डूबकर ही पायाथा। श्यामा-चरण दुबेने ठीकही लिखाहै 'जैनेन्द्र प्रशिक्षित दार्शनिक नहीं थे। उनका अधिकांश चिन्तन अनुभवोंपर प्रतिक्रिया है।" जैनेन्द्रकी चिन्तन-प्रक्रियाको स्पष्ट करते हुए विधिवेत्ता डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवीने लिखा है "उनको सुनते हुए कई बार मुझे लगताथा कि उनके

जीवनकी सादगीकी बुनावटमें चिन्तन-प्रक्रियाकी बेहि-साब ग्रंथियां और उन अगणित गांठोंका एक अनोखा पारस्परिक तारतम्य है। तर्कोंकी उधेड़बुनमें जैसे वे अपने आपसे पूछते, जवाब देते, उलझते, सुलझते-सुलझातेहैं।" जैनेन्द्रके साहित्यपर वैचारिकताका इबाव प्रारम्भसे ही रहाहै। परन्तु उनके चिन्तनमें बौद्धिकता एवं तार्किकताके अतिरेकसे उत्पन्न होनेवाली गरिष्ठता और शुष्कता न होकर आत्मीयता एवं हार्दिकताका सुखद संयोग रहाहै। प्रो. कल्याणमल लोढ़ाने जैनेन्द्रके साहित्य-सृजनमें चिन्तनकी इस सकारात्मक भूमिकाको रेखांकित करते हुए लिखाहै "...उनमें कहीं-न-कहीं एक ऐसा दार्शनिक भी विद्यमान है, जिसकी सम्पूर्ण जिज्ञासा रस-धारा बनकर अन्तःकरणको किसी गहरी सांस्कृतिक निष्ठासे जोड़तीहै और यह निष्ठा उस विराट् मानवीय सत्यका उद्घाटन है, जो अपनी निस्सीमतामें व्यक्ति-सत्यके साथ व्यापक सत्य बन जातीहै।" इस चिन्तनशीलतामें जैनेन्द्रका जैनेन्द्रत्व छिपाहै, अन्यथा प्रेम-चन्द युगके अन्य कथाकारोंमें और जैनेन्द्रमें क्या अन्तर रह जाता। उनके चिन्तनकी सूक्ष्मता एवं सृजन-शीलताको डॉ. नगेन्द्रने इन शब्दोंमें स्पष्ट कियाहै विचारकी जटिलताओंको बारीकीसे पकड़नेकी उनमें अद्भुत क्षमता है, जिसके प्रमाण उनके कथा-साहित्य में सज्जनात्मक स्तरपर और वैचारिक निबन्ध-प्रबन्धोंमें बौद्धिक स्तरपर प्रचुर मात्रामें उपलब्ध होतेहैं।"

विचारकके रूपमें जैनेन्द्रका नाम गांधीवादके साथ भी जुड़ा हुआहै। चोटीके कांग्रेस नेता शंकरराव देव ने लिखाथा "जैनेन्द्रजीने जिस रूपमें गांधीको समझा और प्रस्तुत कियाहै वैसा समग्र और तटस्थ भावसे अपनेको गांधीके निकट माननेवाला कोई अबतक नहीं कर सकाहै। गांधीवादके प्रमुख व्याख्याता दादा धर्माधिकारीने भी एक बार विमला ठकारसे कहाथा "हम लोग सर्वोदयके भाष्यकार कहलातेहैं, सच्चा सर्वोदयी अहिंसाका पुजारी तो जैनेन्द्र है।" गांधीवादके मूर्धनी विचारकोंने चाहे जैनेन्द्रको कितनाही गौरवान्वित क्यों न कियाहो, गांधीवादी रचनात्मक संस्थाओं और वैचारिक अवधारणाओंके साथ उनकी कोई प्रतिबद्धता नहीं थी। नरेशचंद्र चतुर्वेदीका यह कथन युक्तियुक्त है "गांधीवादी आदर्शकी अन्तर्वर्ती धारा भलेही उनमें खोजीजा सके परन्तु गांधीवादकी बाह्य आचरण-पद्धतिसे उनके लेखनको जोड़ना बहुत कठिन है।"



गांधीवादी क्षेत्रोंमें जैनेन्द्रको इतनी मान्यता प्राप्त होने का एक सटीक कारण डॉ. नगेन्द्रने प्रस्तुत किया है "हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओंके अग्रणी साहित्य-कारोंने गांधी दर्शनकी अवधारणाओंके प्रायः सरलीकृत रूपको ही ग्रहण किया है, जबकि जैनेन्द्रने प्रखर मेधा के द्वारा अन्तर्विरोधोंको समाहित करनेकी वक्र प्रक्रिया को भी अपनी रचनाओंमें समाहित कर लिया है।" जैनेन्द्रके चिन्तनकी गहनता और सूक्ष्मता कभी कभी गांधीवादी कार्यकर्ताओंके पल्ले भी नहीं पड़तीथी। एक कार्यकर्ताने निर्मला देशपाण्डेको पतेकी बात कही थी 'जैनेन्द्र इतना बारीक काततेहैं कि उसका कपड़ा नहीं बन पाता।'

"जैनेन्द्र : साक्षी है पीढ़ियाँ" साहित्य-समीक्षाका ग्रंथ नहीं है, परन्तु, किसी कृतिकारके जीवनको यदि समग्रतासे चित्रित किया जाताहै तो उसके साहित्यिक कृतिवत्को बिल्कुल दरकिनार भी कैसे कियाजा सकता है? हाँ, यह अवश्य है कि समीक्षा यहां अपेक्षित नहीं है तो मुख्य रूपसे अपेक्षित भी नहीं है। यदि वह है तो केवल आनुषंगिक और नैमित्तिक रूपमें। जैनेन्द्र यदि हिन्दीके मूर्धन्य कथाकार और विचारक नहीं होते तो उनके व्यक्तित्वकी इतनी प्रभुत चर्चा भी क्यों होती? जब आपकी कहानियाँ 'विशाल भारत' और 'त्यागपत्र' आदिमें प्रकाशित होने लगीं तो ऐसा लगा कि यह कहानीकार हिन्दी कहानीको एक नयी अन्तर्दृष्टि, गम्भीरता और अर्थवत्ता प्रदान कर रहा है। प्रेमचन्दके पुत्र अमृतरायके शब्दोंमें "प्रेमचन्दकी कहानियोंकी काफी अलग बू-बासकी कहानियाँ होती थीं उनकी, सामाजिकतासे अलग, मार्मिक पारिवारिक और निजी सम्बन्धोंकी कहानियाँ जो एक दूसरेही स्तर पर मनको छूतीथीं।" उस युगमें दो ही शीर्षस्थ कहानीकार थे—प्रेमचन्द और प्रसाद। इन दोनोंकी जीवन-दृष्टि और कथा-सृष्टिमें मौलिक अन्तर था। कमलेश्वरका यह कथन सही है कि जैनेन्द्रने प्रेमचन्द और प्रसाद दोनोंसे अलग अपनी पहचान बनायीथी। 'त्यागपत्र'के अतिरिक्त उनके सभी उपन्यासोंमें एकही चेतनको बार-बार दुहराया गयाहै—वही पति और प्रेमीके बीच झूलती हुई नारी, कुण्ठित प्रेमी और अविश्वसनीयताकी सीमा तक सहिष्णु पति। लेकिन, जैनेन्द्रकी कहानियोंमें जीवनके अनेक पक्ष समाहित हैं, उनमें पर्याप्त वैविध्य और वैभिन्न्य है। 'टेकनीकके

नामपर जैनेन्द्र बराबर नाक-भौं सिकोड़ते रहे : परन्तु अज्ञेयका यह कथन अयुक्तियुक्त नहीं है कि आजके हिन्दी आख्यानकारों-विशेषतः कहानीकारोंमें सबसे अधिक टेकनीकल वही हैं। टेकनीक उनकी प्रत्येक कहानीकी और (पहले उपन्यासको एक सीमा तक अपवाद मानकर) सभी उपन्यासोंकी आधारशिला है।" यह संभव है कि वे टेकनीकके सचेत प्रयोक्ता न रहे हों पर हिन्दी कहानीमें टेकनीकके सबसे अधिक प्रयोग उन्होंने ही कियेहैं।

जैनेन्द्रने अपने पहले उपन्यास 'परख' से ही हिन्दी साहित्यका ध्यान आकृष्ट कर लियाथा। उसकी ताजगीको देखकर लगताहै कि इस उपन्यास को जैनेन्द्रने लिखा नहीं, उसने स्वयं अपनेको जैनेन्द्रसे लिखा लियाहै। इसके सम्बन्धमें उपन्यास-कारने डॉ. कमलकिशोर गोयनकासे कहाथा 'असल में 'परख' मेरीही 'परख' है...यह एक आत्मसंस्मरणात्मक उपन्यास है। 'परख' का सत्यधन मैं ही हूँ। मैं अपनेको कन्डेम करना चाहताथा।' सत्यधनका चरित्र भावनाके प्रवाहमें बह जानेवाले एक छद्म आदर्शवादी का चरित्र है। 'परख' के बाद प्रकाशित सुनीताके निरावरण प्रसंगको लेकर हिन्दी-साहित्यमें हड़कम्प-सा मच गयाथा। परन्तु जैनेन्द्र सारे विरोधके बीच अविचलित रहे। उन्होंनेने नरेन्द्र कोहलीसे कहाथा...परायी स्त्रीकी ओर देखनेवालेकी आंखें तो नहीं फोड़ीजा सकती न? उसे जीतनेका तो दूसरा ही मार्ग हो सकताहै—जो सुनीताने अपनाया। 'सुनीता' के बाद 'दशार्क' तक सभी उपन्यासोंमें जैनेन्द्रने "स्त्री-पुरुषके बीच प्रेम एवं काम सम्बन्धोंकी त्रिकोण समस्याको अपना केन्द्रीय विषय बनायाहै।" (गिरिजाकुमार माथुर)। इन उपन्यासोंको लेकर आलोचकोंमें गहरी खींचतान रहीहै। प्रगतिवादी और नैतिकतावादी आलोचकोंको पुरुषके समक्ष नारीके आत्म-समर्पणमें उसके अवमूल्यनका आभास प्राप्त हुआहै परन्तु कुछ आलोचकोंने इनके समर्थनमें भी आवाज उठायीहै। गिरिराज किशोरकी दृष्टिमें 'स्त्री द्वारा अपने सम्बन्धों में स्वतन्त्रता लानेकी परिपाटी हिन्दी साहित्यमें उन्हीं से शुरू हुई।' श्यामाचरण दुबे जैसे प्रमुख समाज-शास्त्रीने लिखाहै 'सृजनात्मक साहित्यके माध्यमसे वे एक फेमिनिस्ट—स्त्री-समानताके हिमायतीके रूपमें उभरे हैं। हिन्दीकी दो प्रमुख उपन्यास लेखिकाओं—मृदुला



गर्ग और ममता कालियाने भी इस संदर्भमें अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। मृदुला गर्गके शब्दोंमें 'अगर आज किसी स्त्री रचनाकारको जैनेन्द्रसे कोई वाजिब शिकायत हो सकती है तो यही कि उनकी हर स्त्री पात्र उनके लिए मात्र माध्यम थी, अपने चिन्तनकी आंचपर प्रयोगकी हांडी पकानेकी।' इस रचना-प्रक्रिया में नारीका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व न केवल उभरने नहीं पाता है बल्कि उसका विडम्बन और विद्रूपण हो जाता है।" ममता कालियाको लगता है कि जैनेन्द्रके लगभग सभी उपन्यासोंमें दाम्पत्य जीवनका अवमूल्यन चित्रित हुआ है... पुराने जमानेके स्थापित दृष्टि-मूल्यों के समर्थकोंको यह रचना-संसार अच्छा लगता है क्योंकि ओरत अपनी स्वतंत्र-सत्ताके बावजूद अपने हर कदम पर पुरुषकी सहमतिकी मुहरका लग जाना जरूरी समझती है।" इनमें नारी-स्वतंत्रताका सत्य नहीं, छद्म है, 'त्यागपत्र' जैनेन्द्रका लकीरसे हटकर लिखा हुआ उपन्यास है। आकारमें छोटा है, पर इतना संवेदन-शील और सप्रश्न कि सब कुछ उलट-पुलटकर रख देता है। पाठकको भलेही कोई समाधानका संकेत न मिले, पर उसे लगता है 'सृष्टि गलत है, समाज गलत है, जीवन ही हमारा गलत है, इसमें तर्क नहीं है, संगति नहीं है।" 'कल्याणी' उड़ियाकी कवयित्री कुन्तल कुमारीके जीवनकी ट्रेजेडीपर आधारित है। इन्होंने दिल्लीमें नसिगहोम खोल रखा था और जैनेन्द्र उनके सुपरिचित थे। कई संस्मरणोंमें कुन्तल-कुमारीके सम्बन्धमें कुछ व्योरे दिये गये हैं। 'कल्याणी' के पश्चात् बरसोंतक जैनेन्द्रने कोई उपन्यास नहीं लिखा। प्रायः दो देशकोंके बाद वे 'धर्मयुग' के पृष्ठों पर 'सुखदा' के रचयिताके रूपमें प्रकट हुए। तदनन्तर, 'व्यतीत' 'विवर्त' 'जयवर्द्धन' 'मुक्तिबोध' 'अनाम स्वामी' 'अनन्तर' दशार्क आदि उनके लगभग आधा दर्जन उपन्यास प्रकाशित हुए।

श्री नरेश मेहताका मत है कि "...अपने इस लम्बे मोनके बाद जब वे 'विवर्त' या 'जयवर्द्धन' आदि रचनाएं लेकर पुनः प्रकट होते हैं तो उनमें न पहलेकी सी भाषागत ऊष्मा ही और न ही कोई शिल्पगत वैशिष्ट्य दिखायी पड़ता है... लेखक जैनेन्द्रका चिन्तनके स्तरपर भलेही विकास हुआ हो परन्तु उनके लेखक उनके पात्रोंका सृजनात्मक विकास उस पहले दौरके बाद न हो सका।" उनके परवर्ती उपन्यासोंमें हादिकता

'प्रकर'—जून'६१—६

और प्राणवत्ताके हासका कारण यह भी माना जाता है कि उनके लेखनपर बौद्धिकता और वैचारिकताका दबाव उत्तरोत्तर बढ़ता गया है। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने इस स्थितिका विश्लेषण करते हुए लिखा है "मेरे विचारसे सही या गलत, जैनेन्द्रकी क्रान्तदर्शी सृजना-त्माने उपन्यास तीन ही रचे हैं—'परख', 'सुनीता' और 'त्यागपत्र'। शेष तो उनके विचारोंके ऊहापोहमें से निकले हैं। उनका रचनाकार तिरोहित होता गया उनके तत्त्व चिन्तकमें। मुझे लगता है कि 'परख' से 'दशार्क' तक की उनकी यात्रा एक सर्जकके विचारक होनेकी यात्रा है।" यशपाल जैन जैसे उनके समीपी व्यक्तिको भी लगता है "पहलेके साहित्यमें कला थी, बादके साहित्यमें बोझिल दर्शन है।"

जैनेन्द्रने अपने जीवनकी सान्ध्य-वेला में यह कहकर जैसे बरंके छत्तेको छेड़ लिया था—'पत्नी घरमें प्रेयसी मनमें।' दैनन्दिन जीवनमें सम्बल और साहचर्यके लिए पत्नी आवश्यक है तो साहित्यिक जीवनमें सृजनात्मक स्फूर्तिके लिए प्रेयसीका होना भी अपरिहार्य है। उनके इस कथनका अभिप्राय यह समझा गया कि साहित्यिकके लिए पत्नीके अतिरिक्त एक उपपत्नी भी होनी चाहिये। सही या गलत जैनेन्द्रकी यह धारणा बन गयी थी कि पत्नी आंगनका फूल बन जाती है इसलिए वह कभी आकाशका तारा बनकर सृजनको गति और स्फूर्ति प्रदान नहीं कर सकती। पत्नी कुछ ऐसी सहज सुलभ हो जाती है कि उसमें आकर्षण समाप्त हो जाता है जबकि प्रेयसी दूरस्थ और अलभ्य होनेके कारण सपनोंमें गुलाबी रंग भरती रहती है। पत्नी यदि प्रेयसी नहीं हो सकती तो क्या प्रेमसी पत्नी नहीं हो सकती? नहीं। इन्द्रु जैनेसे जैनेन्द्रने कहा था "प्रेम विवाहसे तुम बचना क्योंकि प्रेम-विवाहमें तुम शादी कर रही हो देवतासे; लड़का शादी कर रहा होता है, अप्सरासे। लेकिन, शादीके बाद पता चलता है कि जिसे अप्सरा समझा, वह स्त्री निकली।" जैनेन्द्रकी दृष्टिमें प्रेयसीके साथ कामाचारके लिए कोई अवकाश ही नहीं था। मर्यादित यौन सम्बन्ध तो केवल पत्नीके साथ ही सीमित रहना चाहिये। अपनी इस मान्यताको जैनेन्द्र बहुतांश गले नहीं उतार सके, पर इस द्वैध सम्बन्धपर सबसे सटीक टिप्पणी की है अमृता प्रीतमने। "उनका हमेशा यह यकीन बना रहा कि जो कल्पना जेहनमें सुलगती है वह घरबार चलानेके लिए नहीं



होती—मेरा यकीन अपनी ऊँह कायम रहो कि जो कल्पना हकीकतके आंगनमें पैर रखतेही टूट जाती है, वह कच्ची मिट्टीकी होती है।” जो व्यक्ति जैनेन्द्र-भगवती के दाम्पत्य जीवनकी अभिन्न एकात्मतासे परिचित है, उन्हें यह धारणा और भी असंगत प्रतीत होगी। नलिन विलोचन शर्माने लिखा था “जैनेन्द्र ऐसी गल्प लिखते रहे हैं, जिसे जीनेका साहस उनमें नहीं रहा होगा।” उन्होंने कुछ ऐसे विचार भी व्यक्त किये हैं, जिनके सूत्र उनके जीवनमें नहीं खोजे और पाये जा सकते।

जैनेन्द्रकी भाषा उनकी अपनी है, जो उन्होंने किसी से सिखी थी और न कोई उनसे सीख ही सकता था। वीरेन्द्रकुमार जैन इसे मंत्रभाषा और सूत्रभाषा कहते हैं। इस भाषाकी प्रमुख विशेषता है लाघव, बड़ीसे बड़ी बातको कमसे कम शब्दोंमें कह सकनेकी सामर्थ्य। शब्दोंका अभाव उन्हें कभी अनुभव नहीं हुआ, उनकी फौज जैसे उनके आगे हाथ जोड़े खड़ी रहती थी। ‘जय-वदंत’ की आलोचना करते हुए कभी यशपालने लिखा था “भाषाके मान्य प्रयोगों और अन्य नियमोंकी अवहेलना अहं और स्व-रतिकी उच्छृंखलता मात्र है।” लेकिन, यह आरोप असंगत हैं। अधिकसे अधिक नन्द चतुर्वेदीके शब्दोंमें यही कहा जा सकता है “यह शास्त्रोक्त भाषा नहीं है। यह छोटे-छोटे वाक्योंमें विचारोंके प्रवाह और आविष्कृतिकी भाषा है।” जैनेन्द्रकी भाषा ही नहीं, बातको कहने या लिखनेका उनका पूरा मुहावराही उनका इतना निजी और आत्यन्तिक रूपसे व्यक्तिगत है कि प्रफुल्लचन्द्र ओझा मुक्तको लगता है “...जैनेन्द्रकी रचनाओंका किसीभी भाषामें सफल और प्रामाणिक अनुवाद नहीं हो सकता क्योंकि उनकी भाषाके तेवर और शैलीकी विलक्षणताकी किसी दूसरी भाषामें उतरना सम्भव नहीं जान पड़ता।” भाषाके सम्बन्धमें जैनेन्द्रका अपना मन्तव्य यह था : ‘वह भाषा दरिद्र है जो जिन्दगीका साथ देनेके बजाय, उसपर सवारी कसती है।’ वस्तुस्थिति यह है कि जैनेन्द्रकी भाषाने उनके चिन्तनकी वक्र-भंगिमाका ही अधिक साथ दिया है।

प्रगतिवादियोंने जैनेन्द्रपर प्रतिक्रियावादी होनेका आरोप मुख्यतः इसीलिए लगाया था कि वे उन्हें घोर व्यक्तिवादी प्रतीत हुए। व्यक्तिके महत्त्वको जैनेन्द्रने तात्त्विक स्वीकृति देते हुए यह लिखा है कि व्यक्ति और समष्टि “दोनों भिन्न नहीं है पर चूंकि मैं व्यक्ति हूं

इसलिए समस्याका समाधान मुझे मूल व्यक्तिकी परिभाषामें खोजना और पाना अधिक उपयुक्त और संभव प्रतीत होता है। नरेश मेहताके शब्दोंमें “जैनेन्द्रका अर्थ ही है व्यक्ति-मानसकी सृजनात्मक जीवन्तता। उनके साहित्यमें सामाजिक जीवनके द्वन्द्व-प्रतिद्वन्द्वभी व्यक्तिके माध्यमसे ही व्यक्त हुए हैं। परन्तु, उनके साहित्यमें व्यक्ति अपने आपमें ही सीमित और समाप्त नहीं है। वे व्यक्तिके अहंको फुलानेमें नहीं, भुलानेमें विश्वास करते हैं।” व्यक्तिके व्यक्ति होनेकी सबसे बड़ी सार्थकता उनके लिए उस व्यक्तिके विसर्जन में यानी आत्मदान-आत्मोत्सर्गमें ही है।” (रमेशचंद्र शाह)। प्रो. कल्याणमल लोढ़ाके शब्दोंमें “जैनेन्द्रके साहित्यमें वैयक्तिकताका आग्रह है, व्यक्तिवादका नहीं।” इसी तथ्यकी संपुष्टि करते हुए अटलबिहारी वाजपेयीने लिखा है “जैनेन्द्रके लिए ‘वाद’ नहीं व्यक्ति बड़ा है; परन्तु उनका व्यक्ति एकाकी नहीं, समाजका अंग है।” व्यक्ति और समाजकी यह परस्पररोमुखताही जैनेन्द्र-साहित्यका प्राण है। कमलेश्वरको भी यह स्वीकार करना पड़ा है कि उनके व्यक्तिका सत्य मनुष्य और इतिहास के विरुद्ध नहीं जाता।”

‘जैनेन्द्र: साक्षी है पीढ़ियां’ एक संस्मरणात्मक ग्रंथके तीन खण्ड हैं; जिनमें इस कालजयी कथाकार और विलक्षण विचारकके बहुआयामी जीवनका विविध दृष्टियोंसे मूल्यांकन किया गया है। ये संस्मरण साहित्य समीक्षा या विचार-विश्लेषणकी दृष्टिसे नहीं लिखे गये हैं; फिर भी प्रायः सभी नेखकोंने जैनेन्द्रके साहित्य और विचार-पक्षको किसी-न-किसी रूपमें स्पर्श किया ही है। संस्मरण लिखनेवाले जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंके मूर्धन्य व्यक्ति हैं इन विभिन्न कोणोंसे जो आलोक-रश्मियां विकीर्ण हुई हैं उनके प्रकाशमें जैनेन्द्रके जीवनसे सम्बन्धित कई प्रियतर पक्ष उद्घाटित हुए हैं तो उनके साहित्यिक कृतित्वके कई नये आयामभी उद्घाटित हुए हैं। अमृतरायने उनके ‘शतरंजके खिलाड़ी’ वाले रूपको उभारा है तो उपेन्द्रनाथ ‘अशक’ ने गुल्ली डण्डा खेलनेके उनके उत्साहको प्रस्तुत किया है। एक गुरु-गम्भीर मुद्रावाले व्यक्ति, जिसके लिए जानकीवत्सलभ शास्त्रीने लिखा है “उनकी हंसीको बारहों महीने तीसों दिन जुखाम हुआ रहता है”—का जीवनको उत्फुल्ल क्रीड़ा-शीलताके प्रति यह झुकाव उसे सहज मानवीय परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करनेमें सहायक हुआ है। कतिपय संस्मरणोंमें



व्यक्ति जैनेन्द्र ही नहीं, उनका युगमैत्री-परिचय ही सही। वताके साथ प्रस्तुत हुआ है। राय आनन्दकृष्णने काशीके सांस्कृतिक परिवेशमें जैनेन्द्रके साथही जयशंकर 'प्रसाद' और रायकृष्णदास आदि दिग्गजोंके संस्मरण बड़ी सजीवताके साथ प्रस्तुत किये हैं। 'अश्व' के संस्मरणमें विभाजन-पूर्वका लाहौर और चिरंजीतके संस्मरण में चौथे दशककी दिल्लीका जीवन्त चित्रण उन्हें मानवोयके साथही एक ऐतिहासिक दस्तावेजका दर्जा प्रदान करता है। आत्मीय संस्पर्शकी दृष्टिसे इनके अतिरिक्त द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण', प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त', ज्ञानचन्द्र जैन, रत्नशंकर 'प्रसाद', डॉ. चन्द्रकान्त बादिबडेकर, परिपूर्णानन्द वर्मा, शंकरदयाल सिंह, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, जानकीवल्लभ शास्त्री, बीरेन्द्रकुमार जैन, विष्णु प्रभाकर आदिके संस्मरण अपनी स्नेह-सिक्त

सम्पादकीय सजगताका अभाव वहां खटकता है, जहां एकही बातको दो-तीन बार प्रस्तुत कर दिया गया है। कुछ भी हो, "जैनेन्द्रः साक्षी है पीढ़ियाँ" एक विराट् अभियोजन है, जिसके १११७ पृष्ठोंमें २१५ लेखकोंने हिन्दीके एक कृती कथाकार और मौलिक विचारकको समझने-समझानेका प्रयास किया है। इनमें केवल भावोन्मत्तवासमय गुण-कीर्तन ही नहीं है। हिन्दीमें तो इसकी अद्वितीयता असन्दिग्ध ही है, पर अन्य भारतीय भाषाओंमें भी ऐसे महत् प्रयास कमही हुए होंगे। सम्पादक विष्णु प्रभाकर और उनके सम्पादकीय सहयोगी महेश दर्पण एवं प्रदीपकुमार निश्चय ही बधाई के पात्र हैं। □

## अध्ययन-अनुशीलन

### प्रसाद चिन्तन?

सम्पादिका : डॉ. विमला गुप्त

समीक्षक : डॉ. घनश्याम शलभ

प्रसादजीके जन्म शताब्दी समारोहके अवसरपर हिन्दी-भारतीके विद्वान् साहित्यकारों और समीक्षकोंने उनके महत् कृतित्वके पुनर्मूल्यांकनका एक बार फिर सार्थक प्रयत्न किया है, उसमें 'प्रसाद चिन्तन' के प्रकाशन का महत्त्व असंदिग्ध है। पुनर्मूल्यांकनके समय उसकी प्रासंगिकताका प्रश्न स्वतःस्फूर्त हो उठा है, क्योंकि उसमें हमें और तथाकथित उत्तर-आधुनिकतावादियों को भी, अपना प्रतिबिम्ब अवभी दिखायी पड़ रहा है। उनका यह कृतित्व हमें इस नये परिप्रेक्ष्यमें, हमारा

नया चेहरा एक प्रत्यभिज्ञानकी तरह, हमारे स्वर-कल्पनाक्षमें उजागर करता है; वहीं हमारी आजकी नियतिको प्रकाशित करनेवाली उसी प्रदीप्तिके कारण, नये सिरेसे हमें सोचनेको विवश भी करता है। उसकी इस वैश्विक शाश्वतताके कारणही हमें उसके पुनर्मूल्यांकनकी बार-बार आवश्यकता प्रतीत होती है। उनकी उस प्रबुद्ध चिन्तन शक्तिकी विद्युत्-धाराके आघात कभी-कभी हमें फिर उसी दिशामें सोचनेको विवश करते हैं।

वैसे प्रस्तुत ग्रंथ एक भावपूर्ण श्रद्धांजलि भी है, और पुनर्मूल्यांकन भी। तभी तो इसमें स्मरणिका, शुभसंदेश, श्रद्धासुमन, पुण्यस्मरण, वे क्षण वह स्मृति, प्रसादके कुछ पत्र, अमृत-कथन—सभी संकलित हैं, यहां। स्व. रायकृष्ण दासजीका महत्त्वपूर्ण आलेख 'प्रसादकी प्रारंभिक रचनाधर्मिता'—उस कृतित्वके मूल उत्सपर अच्छा प्रकाश डालता है। और तभी तो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, महाकवि निराला, 'नई कविता' के सम्पादक और कवि डॉ. जगदीश गुप्त

१. प्रकाशक : मन्त्री, सेठ सूरजमल जालान गल्स कालेज, ८-६ बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००७३। पृष्ठ : ३२०; डिमा. ६०; मूल्य : १००.०० रु.।

'प्रकर'—जून'६२—८



बादिभी उन्हें काव्यांजलि समर्पित करने हैं। सर्वश्री रायकृष्ण दास, लक्ष्मीशंकर व्यास, विनोदशंकर व्यास, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, महीयसी महादेवी, जैनेन्द्रजी और प्रसादके पुत्र रत्नशंकर प्रसादकी भी 'वह स्मृति' उनके व्यक्तित्वपर प्रकाश डालती हैं।

निश्चयही 'कवयः क्रान्तद्रष्टाः' होते हैं, यह सत्य आजभी प्रसादके मूल्यवान् कृतित्वके गहन अनुशीलनसे ज्ञात होता है। इसीलिए सम्पादिकाने 'प्रसाद चिन्तन' का यह श्रद्धासुमन प्रसादको समर्पित किया है। इसके पहले 'पुरोवाक्' लिखा है प्रो. कल्याणमल लोढ़ा ने—यह स्पष्ट करते हुए कि सूर और तुलसीके बाद 'प्रसादही ऐसे सारस्वत पुरुष हैं, जिनपर सर्वाधिक आलोचनाएं और गवेषणाएं हुईं। यह उनकी लोकप्रियताका पुष्ट प्रमाण है, और साहित्यिक महत्त्व भी।' यह भी एक सीमा तक सही है कि प्रसादके काव्य को 'कठिन काव्यका प्रेत' घोषित करनेकी चेष्टा भी कुछ समीक्षकोंने ही की है, कारण—प्रसादको 'त्रिक दर्शन' की विचारधारा उन्हें विरासतमें मिली थी। उनका तो यह 'अनुभूत सत्य' था ही कि 'शरीरं त्वं शम्भो' है। कामायनी इसीलिए तो 'ईशके वरदान', 'भूमाके सत्य' और 'आनन्दके उत्स' का रूपायन करती है, उसकी नायिका श्रद्धा श्रतधरयानी सत्य धारण करती है। प्रसादने सत्यको शिव और सौन्दर्यका उभय पक्ष गिना : श्रेयःप्रेयमयम्। वे तो काव्यको आत्माकी संकल्पात्मक अनुभूति मानते थे। उन्होंने लिखा है कि 'साहित्य स्वतंत्र प्रकृति और सर्वतोगामी प्रतिभाके प्रकाशनका परिणाम है। संसारमें जो कुछ सत्य और सुन्दर है, वही साहित्यका विषय है—वह सत्यको प्रतिष्ठित और सौन्दर्यको विकसित करता है... वह न तो कला है न अमूर्त।' उन्होंने उसे 'श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा, मनन शक्तिकी असाधारण अवस्था जो सत्यको चारुत्वमें सठसा ग्रहणकर लेने' वाली व्यक्त किया है।

'पुरोवाक्' के लेखकने इसीलिए लिखा है कि 'आधुनिक हिन्दी साहित्यमें यदि किसी साहित्यकारमें भारतीय संस्कृति, साहित्य, दर्शन और इतिहाससे अपनी रचनाधर्मिताको सर्वाधिक परिपुष्ट किया है, तो प्रसादने।' पश्चिमकी वरावरीपर आनेकी दयनीय आलोचन

दृष्टिने उन्हें 'रोमेन्टिक रिवाइवल' के काव्य-युगके

सतह तक घसीटनेकी भोंडी हरकतें भी कभी की थीं। छायावादी काव्य युगके पुरोध होनेके कारण कल्पना की अतिशयता, चिन्तनकी गहनता, अस्पष्टता और दुर्बोधता—बिम्बों, प्रतीकों और मिथकोंकी बहुलता और बोझिल स्वप्निलताके आरोप उनके काव्यपर लगाये गये। लिखा गया कि छायावादी काव्यमें 'हृदयकी धड़कन स्पष्ट नहीं सुनायी पड़ती थीं'। एक यशस्वी छायावादी कविके ही शब्दोंमें तो 'वह कवितासे अधिक अलंकृत संगीत बन गयी थी।' वह तो अतीन्द्रिय, वायवी, रहस्यात्मकतासे कुहरिल और अस्पष्ट है, उस युगका 'काव्य रथ आकाशगामी' है, जो अनुभव ग्राह्य नहीं है, भावुकता प्रधान है, उसकी काव्य-नारी श्रद्धा 'रस पगी रही, पाई न बुद्धि' अतः बुद्धिहीन है। पर प्रश्न उठता है कि वादका काव्य-युगभी बौद्धिक अस्तित्ववादी कुहासेमें कौन-सी प्रकाश-किरण खोजता रहा? और क्या छायावादी काव्य मात्र 'किसी बाला के केशपाशमें ही लोचन' उलझाता रहा, किसी 'लाज-भरे सौन्दर्यको' निठल्लेकी तरह बैठ अपलक निहारता रहा, आकाशसे किसी 'मौन निमंत्रण' को सुनता रहा, या फिर 'मधुर मधुर दीपक' की लोपर ही निठावर होता रहा, या 'भुलावा देकर उसका नाविक धीरे-धीरे इस 'कोलाहलकी अवनीको तज' कहीं दूर पलायनकर गया?

वैसे 'फीरोजी होंठपर' जिन्दगी बर्बाद करनेवाले कवि छायावादके बाद कम नहीं हुए हैं, कुछ तो नैतिक दायित्वकी मर्यादाको तिलांजलि देते भी देखे गये हैं, यह समसामयिक परिवेश और उस युगका इतिहास इस सत्यके साक्षी हैं। पर यह आजभी उतनाही सत्य है कि कामायनी, तुलसीदास, रामकी शक्ति पूजा, नये पत्ते, युगान्त, युगवाणी आदिके काव्य-युगकी जड़ें, इस महादेशकी सांस्कृतिक भूमिके गर्भमें बहुत गहराई तक फैली हुई हैं, यही नहीं, बादलोंके स्वप्न और अनन्त आकाशसे उसकी कल्पना-शिराएँ भी जुड़ी हुई हैं। तभी कभी-कभी तो प्रख्यात चित्रकार मकबूल फिदा हुसैनका-सा अनुभव होने लगता है—जब वे यह कहते हैं कि "भारतीय सौन्दर्यशास्त्रके सुकुमार ताने-बानेके लिए सबसे बड़ा खतरा इन कुछ पढ़े-लिखे अज्ञानी कीड़ों-मकोड़ोंसे है।"—निश्चयही उपर्युक्त मतभी एक गहरी खोज और आक्रोशसे भरा हुआ है।

यों प्रत्येक आधुनिक काव्य-युग अपने पिछले



काव्य-युगका उपहास करता रहा है—एक दबी हुई खीज और आक्रोशके साथ। 'छायावादका पतन' जैसे ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं ही। पर सत्य यह है कि प्रत्येक श्रेष्ठ काव्य-युग किसीभी आलोचनाके लिए निःशेष कभी होता है, क्या? 'प्रसाद चिन्तन' के प्रायः सभी प्रलेख इसी बातकी पुष्टि करते हैं। 'आधुनिक सभ्यता का संकट और कामायनी' का लेखक 'विज्ञान सहज साधन उपाय' की इस सभ्यताकी समस्याओंपर प्रसाद का मन्तव्य पूरी दृढ़तासे स्पष्ट करता है कि यह अति-भौतिकता, अतिबौद्धिकता और अतियांत्रिकता तो 'सुख केवल सुख' की संस्कृति है। देव-संस्कृतिका भी इसी-लिए ह्रास हुआ था। इन्हीं समस्याओंसे उत्पन्न संघर्ष के शमनके लिए कविने 'समरसता' की भावभूमि संकेतित की है। भारतीय और पाश्चात्य विचार-धाराओंकी टकराहट और उनके सामंजस्यकी प्रसादने रचनाके विविध क्षेत्रोंमें अपनायी है। उन्होंने तो 'निष्काम कर्मकी स्वीकृत धारणामें, भोगके तत्त्वको जोड़कर, एक नयी और आधुनिक दृष्टिका उद्घोष' श्रद्धाके द्वारा करवाया है। इस मानवीय सृष्टिकी व्याख्याको यह लेखक प्रसादकी मौलिक अवधारणा मानता है, जो भारतीय तत्त्व-दृष्टिमें एक नया आयाम जोड़ती है।

प्रसादके प्रत्यभिज्ञा दृष्टि-बोधपर व्यक्त कुछ अधूरी, अस्पष्ट और भ्रान्त धारणाओंका निराकरण 'प्रत्यभिज्ञा : राष्ट्रीय चेतनाका स्वर' में डॉ. युगेश्वरने बड़ी साफगोईके साथ किया है। फिरभी 'अज्ञानप्रभवं दुःखं ज्ञानेनैव निवर्तते' क्या सही नहीं है? हमारा युग जिसे 'पुनर्जागरण' कहता है, प्रसाद उसे 'प्रत्यभिज्ञा' कहते हैं, जिसका सही अर्थ है पहचान। पूर्वज्ञान। इस लेखकका मत है कि 'पुनर्जागरणमें स्वतंत्रताका भाव नहीं है। यह पुनर्जागरण पश्चिमके 'रिनेसां' का अनुवाद है। पुनर्जागरण दूसरोंका जागृण देखकर होता है, किन्तु प्रत्याभिज्ञा 'स्व' की साधनासे होती है, अतः प्रत्यभिज्ञा 'स्वकेन्द्री' और पुनर्जागरण 'पर-केन्द्री' है। पुनर्जागरण राजनीतिक है, प्रत्यभिज्ञा आत्माका मनो-मय व्यापार है—महात्मा गांधीने जैसे देशको सत्य, अहिंसा दिये, वैसेही प्रत्यभिज्ञा प्रसादकी महत्त्वपूर्ण देन है—अतः उसकी राष्ट्रता राजनीतिककी अपेक्षा दार्शनिक और सांस्कृतिक है—

मैं हूँ, यह वरदान सदृश क्यों  
लगा गुंजने कानोंमें।

'प्रकर'—जून १२—१०

श्रद्धा यही 'आत्मबोध' और 'शक्तिबोध' मनुको क्या नहीं करवाती है? वह मनु जो अपनी चिन्ताको 'चिरनिद्रा' और उसके अंकको हिमानी-सा शीतल मानता रहा, उसे यह नारी 'जीना है तो मरना सीखो' का अभिज्ञान करवाती है। 'यह नारी केवल नेता ही नहीं, जन-नेता है, जो जागरणके साथही नेता-जनताके सम्बन्धका अच्छा उदाहरण भी है।

दार्शनिक दृष्टिसे वह शक्ति या प्रकृति है, समाज दृष्टिमें वह आदर्श सहधर्मिणी भी।

लेखकका तो मानना है कि कामायनीकी 'महा-चिति' पूरे देशकी चेतना है। उसका उन्मीलन होनाही लोकके अन्दरकी दबी हुई शक्तिका जागना है—'बोले, देखो कि यहाँपर कोई नहीं पराया / हम अन्य न और कुटुम्बी, हम केवल एक हमी हैं।'—लेखक कर्म, ज्ञान और इच्छाके लोक, पाषाणी प्रकृतिका वह मंगलमय रूप, समरसता आदिका बड़ा सुचिन्तित विवेचन करता है। प्रस्तुत है एक अवतरण—'समरसता शैव दर्शनका महत्त्वपूर्ण शब्द है, एकता कारण है, अनेकता कार्य। इसीसे बनी है अनेकतामें एकता।... समरसतामें सरसता है। समरसताका जीवन समृद्ध और सुखी होता है। एकतामें जोड़ है। जोड़ कमजोर होता है, सदा टूटनेका भय बना रहता है।'।

स्वतंत्रताका वास्तविक अर्थ बाहरी दबावरहित 'स्वचेतना' है। भीतरकी अनुभूति। वह अनुभूति जो देश और कालकी सीमासे ऊपर उठ जाती है।

'प्रसाद चिन्तन' में उनके विशद और यशस्वी कृतित्वके विविध पक्षों यथा उनके साहित्यमें रूपायित प्रतीक, बिम्ब योजना, मिथकीय तत्त्व, काव्यभाषा, नीतिदर्शन, रचनात्मक संवेदना और उनकी कहानियाँ, उनके नाटक और समकालीन प्रासंगिकता, उनकी दार्शनिक चेतना और कामायनी, प्रसाद : आधुनिक युग-संदर्भ, उनकी प्रासंगिकता, उनके साहित्यमें जनतांत्रिक चेतना, प्रेमका विरल चित्रण आदि-आदिपर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

भारतीय साहित्यके इस अन्यतम 'दार्शनिक महा-काव्य कामायनीकी अर्थ-संरचना' पर अपना मत स्थिर करते हुए डॉ. तारकनाथ बालीने लिखा है कि 'कविता तभी उत्कर्षपर पहुँचती है, जब वह विचारधारा या



दर्शनके पूर्वाग्रहका अतिक्रमणकर जाती है। यह सही है कि कामायनीमें आनन्दवादी दर्शनका आग्रह निरन्तर दिखायी देता है, लेकिन यह दर्शन उसपर कतई हावी नहीं है। यहाँ तो जीवन विरोधी शक्तियोंपर विजय पानेकी कामनाही वह जिजीविषा है, जो दर्शन, धर्म, विज्ञान आदिके रूपमें व्यक्त हुई है। तर्क, बुद्धि, और विज्ञानके विकासकी एकांगिताको भारतने ही, पश्चिमने भी अब चुनौतीके रूपमें स्वीकारा है—‘यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि’—अनजान समस्याएँ गढ़ती हुई, अपनेही विनष्टि की ओर नहीं बढ़ रही हैं क्या? जहाँ ‘जीवन सारा बन जाय युद्ध/उस रक्त अग्निकी वर्षा, वह जाय सभी जो भाव शुद्ध/अपनी शंकाओंसे व्याकुल तुम अपनेही होकर विरुद्ध...!’ जैसी स्थितियाँ तब क्यों नहीं बनेगी? जबकि मानव प्राण इस ‘क्रिया-तंत्रके दास’ बन गये हैं। तब ‘क्षण भर भी विश्राम’ मिलनेका प्रश्न कहाँ है? ‘सतत संघर्ष और कोलाहलके राज’ के अंधकारमें जब दौड़ लग रही हो, तब सारा समाज फिर मतवाला क्यों न होगा?

संघर्ष, हिंसा, प्रतिस्पर्धा, सत्ताके संवेदनहीन क्रूर हथकड़े, शोषण, यौन अतृप्तिसे व्याकुल कुंठाग्रस्त मन का सार्थक रूपायन है कामायनी। वह मात्र द्विवेदी युग की प्रतिक्रिया नहीं है, जैसाकि कतिपय अंग्रेजीदाँ हिन्दी समीक्षक कलतक कहते रहे हैं।

डॉ. वालीने छायावादी काव्यकी अर्थ-संरचनापर जो प्रश्न उठाये हैं, वे ध्यातव्य और महत्त्वपूर्ण हैं। वे लिखते हैं—‘क्या ‘तार-सप्तक’ की कविताएँ व्यक्ति और समाजके संज्ञासको उतनी प्रखरता और ईमानदारीसे व्यक्त करनेके लिए प्रयत्नशील लक्षित होती हैं—जैसा छायावादी कविताओंमें दिखायी देता है? क्या ‘तार सप्तक’ में कामायनीके ‘इड़ा’, ‘कर्म’ और ‘संघर्ष’ जैसी या निरालाकृत ‘रामकी शक्तिपूजा’ जैसी प्रतिबद्धता दिखायी देती है?’ इस लेखकको तो इसी प्रश्नको उस ऐतिहासिक संदर्भमें रखकर देखनेसे इन नयी राहोंके अन्वेषी’ के तारसप्तकमें राष्ट्रीयता और मानवके विरुद्ध एक षडयंत्रकी गंध आती है, क्योंकि उस समय तो हमारा सम्पूर्ण राष्ट्र अपनी स्वाधीनता प्राप्ति के लिए प्राण-प्रणसे संघर्ष कर रहा था और विश्व द्वितीय महायुद्धकी लपटोंमें झुलस रहा था!

ऐसे समय कामायनीकी ‘समरसता’, निश्चयही मध्यकालीन पुनर्जागरणसे प्राप्त इस युगकी गाँधी-दृष्टि

के ‘रामराज्य’ जैसा ही आदर्श है।

ऐसी अनैष्ठिक स्थितियोंमें यदि इस लेखकको ऐसा लगे कि “छायावादका मानव पूर्ण मानव है, और इसीलिए पूर्ण काव्य भी। छायावादोत्तर कविता अपूर्ण है, और उसका मानवभी अपूर्ण ही है—एकायामी मानव—तो कोई विस्मय नहीं।

‘रचनात्मक संवेदना और प्रसादकी कहानियाँ’ के जीवन्त पक्षपर इस आलेखके लेखकने आचार्य शुक्लके उद्धरण कि “इसमें पक्के यथार्थवादके बीच, सुरुचिकी चरम मर्यादाके भीतर भावुकताका चरम उत्कर्ष अत्यंत निपुणताके साथ सम्पुटित है...” को प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि “शुक्लजीकी पूरी टिप्पणी ऐसी है जैसे प्रसादकी कहानियोंके बारेमें की गयी हो।” इसके पूर्व लेखकने कवि-समीक्षक श्री कुंवर नारायणका यह मत कि “इधर प्रसादकी अनेक कहानियोंको फिरसे पढ़ते समय, मुझे लगा कि वे उनके नाटकोंसे ज्यादा नाटकीय हैं—जबकि उनके नाटक लगभग औपन्यासिक हैं—पर भी अपना विचार दोहराने व्यक्त किया है। साथही प्रसादके स्वच्छंदतावाद और यथार्थवादकी विचारधाराका भली-भाँति विश्लेषण भी किया है, यथा—“प्रसादकी विचारधारामें स्वच्छंदतावाद और यथार्थवादका संश्लिष्ट रूप दिखायी देता है।” यथार्थवाद झुठोंका ही नहीं, अपितु महानोंका भी है। वस्तुतः यथार्थवादका मूल भाव है वेदना। जब सामूहिक चेतना छिन्न-भिन्न होकर पीड़ित होने लगती है, तब वेदनाकी विवृति आवश्यक हो जाती है।

इस लेखकने प्रसादकी कहानियोंकी अर्थ-ध्वनियों की विशेषताओंके निकषपर परखते हुए ‘गुण्डा’, ‘मधुआ’, ‘आकाशदीप’, ‘स्वर्गके खंडहर’, ‘देवरथ’, ‘आंधी’, ‘घोसू’, ‘इन्द्रजाल’, ‘छोटा जादूगर’ आदिका भी मूल्यांकन अपने तौरपर किया है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि प्रसादकी कहानियोंकी रचनात्मक संवेदनाको निरन्तर नये ‘पाठ’ की आवश्यकता है, जिस अर्थमें आई. ए. रिचर्ड्सने घनिष्ठ पाठ (क्लोज रीडिंग) को ही साहित्यिक आलोचनाका आदर्श बताया है? प्रसादकी कहानियोंका अंत तो प्रेमचन्दजीको भी ‘अपने ढंगका निराला बड़ा भावपूर्ण और ध्वन्यात्मक’ लगता था। उनकी रचनात्मक संवेदना निश्चयही सदैव शिल्प सजग रही, इसीलिए वे कहानीके अर्थ और प्रयोजनके अनुरूप वर्णनको बिम्बमें और बिम्बको विचारमें बदल







प्रवेश हिन्दी जगत्में कराया । डॉ. साधना निर्भयने कृष्ण काव्य 'कन्हावत' का विशद चित्रांकन किया है जिससे जायसी की अगाध कृष्ण-भक्ति परिलक्षित होती है । अब तक मुस्लिम कवयित्रियों के रूपमें 'ताज' व 'शेख रंगरेजन' के नाम ही लोगों के सामने आते थे, अब एक और कवयित्री 'रूपमती वेगम' (पृ. १६३) का नाम भी कृष्ण-भक्त कवयित्रियों में शामिल हो गया । अभिप्राय यह है कि डॉ. साधना ने इस ग्रन्थ के प्रणयन में काफी श्रम तथा अनुसन्धान किया है ।

हिन्दी के मुसलमान कवियों की साहित्य-साधना पर कई-एक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं । डॉ. शैलेश जैदी ने कई वर्ष हुए "बिलग्राम के मुसलमान हिन्दी कवि" शीर्षक से शोधप्रबन्ध लिखा था । डॉ. उदयशंकर श्रीवास्तव, कमलाधारी सिंह दिनकर, डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल, गंगाप्रसाद सिंह, परमानन्द पांचाल आदि ने हिन्दी के मुसलमान कवियों का विवेचन स्वतंत्र ग्रन्थों के रूप में किया है । डॉ. साधना ने उन ग्रन्थों से लाभ भी उठाया है । यहाँ एक-दो प्रमुख कृष्ण काव्य के मुस्लिम, रचनाकारों के नाम नहीं आसके; उनमें एक है अब्दुर्रशीद खां जिन्हें "आधुनिक रसखान" की उपाधि दी गयी और उत्तरप्रदेश के राज्यपाल ने उन्हें सम्मानित भी किया था । १९८१ में उनका निधन हो गया । उनका मुक्तक कृष्ण काव्य प्रकाशित हो चुका है । दूसरे वृद्ध कवि हैं अली शेर । "कृष्णगीता" के अतिरिक्त उन्होंने स्फुट रूप में कृष्ण पर काफी रचनाएँ लिखी हैं । आधुनिक कृष्णकाव्य में उनका प्रमुख स्थान है ।

आलोच्य शोधप्रबन्ध में पाँच अध्यायों में मुसलमानों के कृष्ण-काव्य का विश्लेषण किया गया है । प्रथम अध्याय में कृष्ण-काव्य की विकासात्मक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गयी है जो बहुत महत्वपूर्ण तथा ज्ञानवर्धक है । यहाँ 'कृष्ण' तथा 'राधा' दोनों की व्युत्पत्ति, लोक-आराधना में उनका प्रवेश, साहित्य में प्रवेश — उपनिषदों में लेकर आधुनिक कृष्णकाव्य तक पर सर्वांग दृष्टि डाली है । दूसरे अध्याय (हिन्दी के मुसलमान कवियों का कृष्ण काव्य) में आदिकाल तथा भक्तिकाल के कवियों का परिचय है । तीसरे अध्याय में रीति-काल से आधुनिक-काल तक के कृष्ण-कवियों की जानकारी उपलब्ध करायी है । ये दोनों अध्याय परिचयात्मक हैं । इनमें कुछ के जीवनवृत्त नहीं दिये जा सके । यदि उनके जीवन के अन्तरंग पक्षों की छानबीन की जाती तो शोध की दृष्टि

से अधिक सराहनीय कार्य समझा जाता । चौथे अध्याय में कृष्णचरित या कृष्ण-लीलाओं को आधार मानकर — बाललीला, गोचारण, चीरहरण, रासलीला, मुरली, गोपी-प्रसंग आदि में कवियों के काव्य की अच्छी समीक्षा की गयी है । सोदाहरण मूल्यांकन अच्छा बन पड़ा है । वैसे कहीं-कहीं — रहीम, ताज वेगम, रसखान आदिके प्रसंगों में पुनरावृत्ति पायी जाती है । ग्रन्थ का पाँचवाँ अध्याय "भारतीय भावात्मक एकता" की दृष्टि से अत्यधिक प्रासंगिक, उपयोगी तथा हमारी गंगा-जमनी संस्कृतिका उज्ज्वल प्रतीक है । कृष्ण क्रान्तद्रष्टा योगेश्वर हैं । भारतीय धर्म, संस्कृति एवं साहित्य को उनके विराट् व्यक्तित्व ने चिरकाल से प्रभावित किया है । भारतीय मुस्लिम कवियों का उनकी ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक है । हिन्दू देवी-देवताओं में मुसलमान कवि कृष्ण की ओर अधिक आकृष्ट हुए । इसके कारण है, जिनमें प्रमुख है उनकी विविध रसाप्यायित लीलाएँ । यहाँ कृष्णचरित अपने संपूर्ण वैभव, सौंदर्य, आकर्षण के साथ विद्यमान है ।

भारतीय वाङ्मय में कृष्ण के चुम्बकीय विराट् व्यक्तित्व की एक लम्बी परम्परा मिलती है जिसे लेखिका ने ऋग्वेद, पुराण, उपनिषद्, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, तथा अनेक सम्प्रदायों के साहित्य में खोजा है । ऋग्वेद के ८ वें मण्डल में (मंत्र ७४) कृष्ण को 'ऋषि' कहा है । छान्दोग्योपनिषद् में देवकी का पुत्र माना गया है । महा-भारत में कृष्ण को वेदान्तका परिज्ञाता तथा ऋत्विक् कहा गया है । 'कर्षति मनः' मन को जो आकृष्ट करे वही कृष्ण है । 'कृष्' धातु में 'ण' प्रत्यय लगाने से 'कृष्ण' बनता है । उधर राधा की व्युत्पत्ति 'राध्' धातु से मानी है जिसमें 'अय्' लगाने से 'राधा' बनता है । उन्होंने राधा को वैदिक 'राधः' या 'राध' का व्यक्तीकरण माना है । वह आराधना का प्रतीक है । शिलालेखों में राधा की खोज की है और चौथी शताब्दी के पश्चात् कृष्ण-राधा सम्बन्धी शिलालेख प्राप्त होते हैं । दक्षिण में विशेषकर महाराष्ट्र में कृष्ण के साथ राधा नहीं, रुक्मिणी की आराधना अर्चना होती है और दक्षिण का वेष्णव सम्प्रदाय उत्तर की अपेक्षा संयमपूर्ण है, वासना-रहित है । इसके ठोस प्रमाण लेखिकाने नहीं दिये । राधा और कृष्ण का सम्बन्ध अविच्छिन्न माना है, कस्तूरी और गंध पृथक् नहीं, वे अभिन्न हैं । कृष्ण के अवतारी रूप की, उनका बाललीला की, माधुर्य भाव की अच्छी, स्पष्ट तथा



विशद व्याख्या की गयी है। इस प्रसंगमें पुष्कल सामग्री एकत्र हुई है। प्राकृत-अपभ्रंश साहित्यमें राधा कृष्णके स्वरूपको खंगालते हुए भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक कालके साहित्यमें उनका रेखांकन किया है। यहां रीतिकालीन ३० कृष्णविषयक-काव्योंकी तालिका भी दी है (पृ. ६३), और इसी प्रकार ७१ पृष्ठपर द्विवेदीयुगीन १० कृष्ण-काव्योंका नामोल्लेख है। यहां किसी मुसलमान कृष्ण-कविका नामोल्लेख नहीं है। यह विवरण पूर्णतः मुसलमानेतर कृष्ण-कवियोंपर ही आधारित है। छायावादी कृष्ण-काव्य (पृ. ७६) में भी यही धारणा है, यहां १७ कृष्ण-काव्योंकी तालिका दी गयी है, और आधुनिक कृष्ण-काव्योंमें १० काव्योंको शामिल किया गया जिनमें द्वापर, महाभारत, कृष्णायन, कुरुक्षेत्र जैसी सुपरिचित कृतियां भी शामिल हैं। १९४७-७० के कृष्णकाव्योंकी तालिका (पृ. ८४-८६) में ४८ कृतियोंका समावेश है। इन सभी आधुनिक प्रमुख कृष्ण-काव्योंपर लेखिकाने संतुलित, संक्षिप्त समीक्षात्मक टिप्पणियां प्रस्तुत की है जो उनकी काव्य-मर्मज्ञताका, विद्वत्ताका प्रतीक हैं। ११ पृष्ठोंका अध्याय लेखिकाने गहन अध्ययनका परिसूचक है। यहां किसी मुसलमान कृष्ण-कविका, नामोल्लेख नहीं किया गया, कृष्ण-काव्यकी तालिकाओंमें भी उनको शामिल नहीं किया है। तालिकामें शामिल करना अच्छा रहता। प्राचीन और आधुनिक कृष्ण-काव्यका अन्तर व्यक्त करते हुए उन्होंने एक स्थानपर कहा है—“आधुनिक युगमें कृष्ण राष्ट्रीय नेता और लोकनायकके रूपमें प्रतिष्ठित हुए और राधा युग-चेतनाकी संवाहिका।” (पृ. ८९) यानी कृष्णके अवतारी या परब्रह्म रूपका तिरोभाव होगया और उसमें शक्ति सम्पन्न महामानवकी परिकल्पना कीजाने लगी। इसे बौद्धिक, वैज्ञानिक युग का प्रभावही माना जायेगा।

ग्रन्थके दूसरे और तीसरे अध्यायमें अनेक मुसलमान कृष्ण-कवियोंका वर्णन विस्तारसे सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। ये दोनों अध्याय इस दृष्टिसे महत्वपूर्ण हैं और शोधप्रबन्धका मुख्य उद्देश्यभी यहाँ विद्यमान है। परिचित, अपरिचित या अल्पपरिचित सभी मुसलमान कवियोंका, उनके कृष्ण-विषयक काव्यका विशद विवरण प्रथम बार देखनेको मिला है। कृष्ण काव्यपर मुस्लिम कवियोंने मुक्तकाव्य अधिक लिखे, प्रबन्धकाव्य या खण्ड काव्य नगण्य रचे गये। लेखिकाने जायसीकृत

,प्रकर'—जून १९२—१४

“कन्हावत” को प्रथम कृष्ण प्रबन्धकाव्य माना है, जो उचित है। इससे पूर्व या बादमें किसी मुसलमान कविने कृष्ण प्रबन्धकाव्यकी रचना नहीं की। इस काव्यका सांगोपांग विवेचन सराहनीय है। उसका महाकाव्यत्व, कथानकका औदात्य, शिल्प-विधान सभीपर दृष्टिपात किया है। मुस्लिम कृष्णकाव्यकारोंमें तानसेन, रसखान, रहीम, इब्राहीम, जमाल, अहमद, मुबारक विलग्रामी, कवि जान, आलम, रसलीन, अब्दुल्लाह, नजीर अकबरावादी, लतीफ हुसैन आदिका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। रूपमती बेगम और ताज बेगम दो मुसलमान कवयित्रियोंको भी स्थान दिया है, उनकी कविताएँ भी उद्धृत हैं। यह एक परिचयात्मक विश्लेषण है।

कृष्ण-काव्यके संदर्भमें हिन्दू-मुस्लिम एकता प्रदर्शित करना शोध प्रबन्धका प्रतिपाद्य मालूम पड़ता है। यह पाँचवाँ अध्याय भावात्मक एकताकी दृष्टिसे महत्वपूर्ण है। उत्तरसे लेकर दक्षिण तक और पूर्वसे लेकर पश्चिम तक सकल भारतमें कृष्ण, कवियोंके नायक तथा आराध्य रहे। मुस्लिम कवियोंने अपनी उदारता तथा सहिष्णुताके द्वारा अवधी, ब्रज, खड़ी बोलीमें कृष्ण काव्यकी रचना की। भारतीय अद्वैतवाद, अवतारवाद, माधुर्यपासना तथा मुस्लिम एकेश्वरवाद एवं सूफीमत सभीका समन्वय कृष्ण-कवियोंमें द्रष्टव्य है। दर्जनों कृष्ण-भक्त मुस्लिम कवियोंके काव्यका यह अनुशीलन हमारी साम्प्रदायिक सहिष्णुता या सर्वधर्मसद्भावकी भावनाको संपुष्ट करता है। मुस्लिम संस्कृतिकी क्या देन है भारतको, इसपर भी विदुषी लेखिकाने विचार किया है और संगीत, वास्तु कला, काव्य, भाषा, रहन-सहन, वस्त्र, वर्तन आदिके क्षेत्रोंके सामने रखकर भावनात्मक एकताका आधार मजबूत किया है। कबूतर, सुराही, जमीन, अंगिया, रजाई, आदि अनेकानेक शब्द अरबी, फारसी, तुर्की भाषाके हैं जो भारतीय संस्कृतिका अभिन्न अंग हैं। प्रेम-प्रवण भावना, तथा सामान्य लोकधर्मसे इन मुस्लिम कवियोंकी बाणी अमृतमय है। जाति, धर्म, सम्प्रदायकी संकीर्णतासे बहुत ऊपर है। हिन्दुओंके समानही मुसलमान कवियोंने हिन्दी साहित्यकी साधना की, उसकी समृद्धि एवं विकासमें अत्यधिक योग दिया। भारतीय मुसलमान कवियोंका कृष्ण-काव्यकी समृद्धि एवं विकासमें क्या योगदान है, इस विषयकी विशद जानकारी इस शोध प्रबन्धसे होजाती है। यही इसकी तथा लेखिकाकी सफलता है। इस अध्ययनमें



कुछेक आधुनिक कवि रह गये हैं । लेकिन यह मार्ग प्रशस्त करनेवाला शोधग्रन्थ है । इस दिशामें और भी कार्य किया जा सकता है । डॉ. साधना निभयका यह

ग्रन्थ स्वागतार्ह है, संग्रहणीय है, यथेष्ट सामग्रीसे आपूर्ण है । कृष्ण-काव्यके शोध-ग्रन्थोंमें इसका अपना महत्त्व है । □

## भाषा : लिपि-वर्तनी

### नूतन पर्यायवाची एवं विपर्याय कोश

सम्पादक : डॉ. बदरीनाथ कपूर

समीक्षक : डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया

भाषाके प्रयोगमें पर्याय कई दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण होते हैं । रचना करते समय रचनाकारके मस्तिष्कमें एकसाथ कई पर्याय उभरकर आते हैं जिनमें से उपयुक्त अर्थकी व्यंजनाके लिए एक पर्याय चुनना पड़ता है । आदर्श पर्याय तो बहुत कम होते हैं जिनका अर्थ एक-दूसरेसे पूर्णतः समान हो । व्यवहारमें इन सब पर्यायोंमें निकटता तो होती है पर अर्थकी समानता कम होती है, उदाहरणार्थ कोमल, मृदु, मृदुल, मुलायम, नाजुक, नरम (नर्म), सुकुमार सभी एक समान भावके होते हुए भी प्रयोगसे उनमें अर्थच्छटा में भिन्नता आजाती है । प्रखर, तीक्ष्ण, तथा कुशाग्र बुद्धिके रूप भिन्न-भिन्न भावमें हिन्दीमें प्रयोगमें मिलते हैं, संभवतः दूसरी भाषामें न हों ।

इस दृष्टिसे डॉ. बदरीनाथ कपूर कृत 'नूतन पर्यायवाची एवं विपर्याय कोश' महत्त्वपूर्ण है क्योंकि डॉ. कपूरने हिन्दी पर्यायोंका भाषागत अध्ययन, बहुत समय पूर्वही शोध हेतु किया था । उसके बाद भी निरंतर कोश कार्यमें जुटे रहे । इस दिशामें अन्य दो विद्वानों—आचार्य रामचन्द्र वर्मा तथा डॉ. ब्रजमोहनसे उनका निरंतर साहचर्य रहा । ऐसी स्थितिमें 'पर्याय' के क्षेत्रमें कार्य करनेके लिए वे सर्वथा उपयुक्त हैं ।

१. प्रका : विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी ।  
पृष्ठ : ४०८; डिमा. ६१; मूल्य : १५०.०० रु. ।

फिरभी पूर्व प्रकाशित अन्य कोशोंसे यह कार्य इस दृष्टिसे भिन्न है कि इस पुस्तकमें पर्यायोंके साथ विपर्याय भी दिये गये हैं ।

पुस्तक तीन खण्डोंमें विभाजित है : १ : पर्यायवाची कोश (पृष्ठ १ से १६१), २ : विपर्याय कोश (पृष्ठ १६२ से १८१), ३ : पर्याय शब्दोंकी सूची (पृष्ठ १८२ से ४०८), (अकारादि क्रममें) । तृतीय खण्ड बहुत उपयोगी है क्योंकि सामान्यतः इस प्रकारके अन्य कोशोंमें शब्दको ढूँढना कष्टसाध्य है । सर्वप्रथम कोश सन् १९३५ में श्री कृष्ण शुक्लका प्रकाशित हुआ, जिसमें २२५१ पर्यायमालाएं हैं जो चार खण्डों और ३७ बर्गोंमें विभाजित है । कोशमें किसीभी शब्दको ढूँढना आसान नहीं था । इसी क्रममें डॉ. भोलानाथ तिवारी तथा राजेश दीक्षितके कोशके साथ डॉ. रामप्रकाश व डॉ. गोपीनाथ श्रीवास्तवके कोश भी आये ।

पुस्तककी भूमिकामें पर्यायमालाओंका निर्धारण, पर्यायमालाओंके प्रमुख या मूल शब्दका निर्धारण, उनका संकलन और प्रस्तुतीकरणपर विचार किया गया है । प्रस्तुतीकरणकी विधिमें डॉ. कपूरने डॉ. भोलानाथ तिवारीकी पद्धतिकी सराहना की है और स्वयंभी उस नीति—पर्यायोंके अन्तर्गत भी अकारादि क्रम—का निर्वाह किया है, जैसे डॉ. तिवारीने 'आरोप' को इस प्रकार प्रस्तुत किया :—

आरोप : आक्षेप, इलजाम, दोष, दोषारोपण, लाँछन ।

एक अन्य उदाहरण है : आरती : दीपदान, नीराजन । जबकि अन्य कोशोंमें मात्र 'नीराजन' शब्द



दिया गया है। इसी प्रकार अन्य कोशों में मात्र 'आरंभ' दिया गया है जबकि डॉ. कपूर ने इस कोश में 'आरंभ', 'आरंभ करना', तथा 'आरंभ होना' के साथ 'आरंभिक' व्युत्पादित रूप भी दिया है। आरम्भ : आदि, उद्घाटन, उपक्रम, प्रवर्तन, प्रारंभ, बिस्मिल्ला, बीजारोपण, शृम्भारंभ, शुरुआत, श्रीगणेश, सूत्रपात।

इसी प्रकार 'आलोचक' के साथ 'आलोचना', 'आवास' के साथ 'आवासिक' भी है। ४३०० पर्याय मालाओं में २५००० से अधिक पर्याय समाहित कर दिये गये हैं, जिनको तृतीय खण्ड में अकारादि क्रम में प्रस्तुत किया गया है। लेखन के साथ बोलचाल में प्रचलित शब्दों को भी इसमें समुचित स्थान दिया गया है, जैसे :— 'आरंभ' की शृंखला में बिस्मिल्ला भी है और शुरुआत भी। सामासिक संस्कृति (अनुच्छेद ३५१) को इस कोश के माध्यम से उजागर किया गया है। 'आलसी' के अन्तर्गत 'अहदी', ढिल्लड़, ढोला, निखट्टू, मट्ठर, लड्डू जैसे बोलचाल के शब्द भी दिये जाने चाहिये। विभिन्न पर्यायवाची कोशों से नमूने के तौर पर तुलनाकर भूमिका (पृ. नौ-दस) में यह प्रमाणित किया गया है कि प्रस्तुत कोश में अन्य कोशों की अपेक्षा बहुत अधिक पर्याय हैं।

प्रस्तुत कोश की अन्यतम विशेषता है कि इसमें 'विपर्याय' भी दिये गये हैं। विपर्याय शब्दों का यह प्रथम संग्रह कहा जा सकता है। वैसे डॉ. कपूर ने बहुत पहले अपनी 'बेसिक हिन्दी' में यह पद्धति प्रस्तुत की थी कि एक साथ दो शब्द सिखाये जा सकते हैं :—

होश-बेहोश, मेल-बेमेल, मजेदार-बेमजा, आधार-निराधार। आलंब-निरालंब, उपाय-निरुपाय, संदेह-निरसंदेह, सप्रयोजन-निष्प्रयोजन।

इस कोश का अनुवाद कार्य में सहायता प्रदान किया जा

- सामासिक संस्कृतिके रूप में अरबी-फारसी शब्दों को प्रस्तुत करना संस्कृतिको 'सामासिक' नहीं बनाता। इसके स्थान पर अन्य भारतीय भाषाओं के कुछ समानार्थक शब्द देना अधिक उपयुक्त होगा। यह प्रवृत्ति भारतीय भाषाओं को विखंडित करने की दिशा में प्रयत्न है और हिन्दी को मात्र उर्दू के अनुवर्ती बनाने के राजनीतिक प्रयत्नों की लकीर पीटना।

सकता है। अंग्रेजी रूपों को शब्दों के साथ-साथ अकारादि क्रम में दिया जाता तो और भी अच्छा होता। लेखक ने स्वयं 'अनुवाद पर्यायवाची की समस्या' पर (अनुवाद शोध, १९६०, पृष्ठ ८४-८८) विचार किया है। डॉ. कपूर का कार्य इस दृष्टि से अनुवादकों के लिए भी महती सेवा कर सकेगा।

पुस्तक समर्पित है तो क्यो विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध विद्वान् तथा हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो. तोशियो तनाका को। हिन्दी सेवा के प्रति समर्पण जो हिन्दी की सेवा में समर्पित है। जिस तेजी से जापान शिखर पर पहुंच गया है आशा करनी चाहिये कि हिन्दी में मशीनी अनुवाद की क्षमता विकसित करने में जापान भारत की सहायता करेगा और प्रस्तुत पुस्तक उसका मूलधार बनेगी। डॉ. कपूर से भी निवेदन है कि वे इस दिशा में मां भारती की निरन्तर सेवा करते रहें। □

## लिपि वर्तनी और भाषा?

लेखक : डॉ. बदरीनाथ कपूर

समोक्षक : डॉ. हरिश्चन्द्र

विद्वान् लेखक का अभिगम वैज्ञानिकता, सुधारवादिता और मानकता की ओर दिखायी पड़ता है। साथ ही वे परिवर्तन का प्रस्ताव करते समय परम्परा और व्यावहारिकता के प्रति सजग रहते हैं। परिणामस्वरूप उन्होंने लिपि, वर्तनी और भाषा में दृष्ट दोषों के परिहार-विषयक जो सुझाव दिये हैं वे क्रांति बिन्दु तक पहुंचकर शनैः-शनैः विवेक स्तर पर उतर आये हैं। उनके अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि की विषमताओं के संबंध में कुछ वास्तविक और कुछ काल्पनिक विचार कहीं अंशों में अनुदार कहे जा सकते हैं। आदर्श लिपि में क्या-क्या गुण होने चाहिये, इसकी उन्होंने व्याख्या तो की है, किंतु उनसे ओत-प्रोत किसी 'रस्म-उल-खत' का नामोल्लेख नहीं किया। कदाचित् यह सम्भव नहीं था। दृश्य-लिपिका आविष्कार प्रत्यक्ष-लेखन और उसकी सहायता से वाचन-अनुरक्षण के लिए हुआ। सहज-बुद्धि के बल पर कहा जा सकता है आरम्भ में एक वाक्-ध्वनिके लिए एक ही वर्ण-चिह्न नियत किया गया

- प्रका. : विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

पृष्ठ : ६४; डिमा. ६०; मूल्य : ३०.०० रु।



होगा। सम्पर्कके व्यापक होनेपर कुछ ऐसी नवीन ध्वनियोंका पता चला होगा जिनसे मिलते-जुलते वर्ण तो फेरी-जाने-वाली मालामें होंगे लेकिन हू-व-हू वैसे नहीं रहे होंगे। संसर्ग-गुण कहिये या संसर्ग-दोष, बहर-हाल उसके कारण उन वर्णोंके संकेत आद्य लिपिमें प्रवेश कर गये होंगे चाहे आदाता उनसे व्यक्त होनेवाली ध्वनियोंके प्रस्फोटनमें समर्थ हुए हों अथवा नहीं। दूसरी ओर कालकी गतिसे कतिपय प्रतीकोंके अनुसार ध्वनन-क्रिया करीब-करीब बंद या अत्यंत विरल हो गयी होगी। किंतु मोह, प्रमाद अथवा किसी अन्य कारणवश वे अपने आसनोपर जमे रहे होंगे। इस रीतिसे लिपि का विस्तार हुआ होगा। वाक्-ध्वनियोंके मध्य सूक्ष्म भेद न कर पानेसे अब यह कहा जाने लगा है कि एक लिपिमें एकसे अधिक चिह्न चलते हैं। सच पूछिये तो यह आकार-वृद्धि सभी जानी-पहचानी लिपियोंमें न्यूनाधिक पायी जाती है।

कामचलाऊपनके आधारपर देवनागरी लिपिमें काट-छांट करनेका प्रस्ताव उचित नहीं ठहराया जा सकता। प्रयोक्ताओं द्वारा कुछेक ध्वनियोंका शत-प्रतिशत अनुकरण न कर पानेसे उनके संकेतोंका वहिष्कार लगभग वैसा ही उपक्रम होगा जैसा उन खिलाड़ियोंकी दाहिनी भुजाओंका विच्छेदन, जो सव्याभ्यासी हों। वर्णोंमें देशी-विदेशी या अपने-परायेकी प्रतीति भी संकीर्ण मनोवृत्ति है। ध्वनि ऊर्जाका रूप-विधान है। सापेक्षता-सिद्धांत बतलाता है पदार्थ (मैटर) ऊर्जा (एनर्जी) में सम्परिवर्तनीय है। ये दोनों ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्याप्त हैं। ध्वनि मात्र 'साउंड' होती है और उसके दो प्रकार हैं : अनाहत और आहत। अनाहतावस्थामें ध्वनि परा है। यही परा अनाहतसे आहतकी ओर बढ़नेपर पश्यन्ती और मध्यमाकी प्रावस्थाओंसे होकर बंखरीमें प्रकट होती है। शब्द आहत या विस्फोटित ध्वनि है जिसे अंग्रेजीके 'वर्ड' का पर्याय माना जा सकता है। पदार्थ (पदम् + अर्थ) अमिधेय है (वस्तु विचारादि) जिसका बोध शब्दसे होता है। शब्दकी इकाइयाँ हैं वर्ण अथवा वाक्-ध्वनियाँ। इसी आधारपर शब्दको वर्णात्मक कहा जाता है।

वर्गसन्ने राशि (क्वांटिटी) को आरंभिक गुणवत्ता (क्वालिटी) से समीकृत किया है। विलोमतः कहा जा सकता है गुणवत्ता राशि की गोचर-पंक्ति (रेंज) है। इस स्थापनासे साध्यकी पराकाष्ठा गुणतासे परिसी-

मित होगी, न कि मात्रा अथवा संख्यासे। यह सही है व्यवहार-जगत्में "बेस्ट इज द एनीमी आफ गुड" की मान्यता भी है। इसलिए जब-तब यथेष्टताका विचार आता है, किंतु यह विस्मृत नहीं किया जा सकता कि यथेष्टता-बोध परिस्थिति-आश्रित होता है, और परिस्थिति स्थिर नहीं रहती। अतएव वर्णों और उनके चिह्नोंका निर्धारण यथेष्टतासे प्रभावित न होकर अभीष्टतासे नियंत्रित होना चाहिये।

वैसे भी योग्यताके आधारपर उन वर्णोंको विदेशी नहीं कहा जा सकता जो भारतीय संविधानमें अनुसूचित किसी भाषाके अंग हों। अंग्रेजीको यह सौभाग्य प्राप्त नहीं है। फिर भी वह संघकी राजभाषा और नगालैंडके सरकारी कार्यालयोंकी भाषा है। उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त संचार माध्यमोंके साहाय्यसे हिन्दीका जो अनूठा रूप विकसित हो रहा है उसमें अंग्रेजी-अरबी-फारसी आदि भाषाओंके शब्द शृंगार-प्रसाधनोंकी भूमिका निबाह रहे हैं। ऐसी दशामें केवल ज/फ़ के अंगीकरणसे शोभा-यात्रा कैसे निकल सकेगी? एक और बात भी है। क/ख/ग के परित्यागसे समझा जायेगा अनुचित भेद-भाव किया गया है। सब जानते हैं अंग्रेजी में ज/फ़ तो चलता है पर क/ख/ग नहीं। विभेदक नीतिका अनुसरण नहीं किया जाना चाहिये। आगत वर्णोंको रखना है तो सबके लिए द्वार सदैव खुले रहें। रोमन लिपिके पद-चिह्नोंका अनुगमन करना है तो जो घुस आये हैं उन्हें भी ड्योढ़ीके बाहर कर तख्ती लटका दी जाये "प्रवेश निषिद्ध है।"

वर्तनीके विषयमें जो सुझाव दिये गये हैं उनसे शुद्धताके स्थानपर प्रयत्न लाघवकी महिमा बढ़ी है। इनके स्वीकार होजानेपर हिन्दीका रहा-सहा रूप भी जाता रहेगा। वर्तनीकी समस्याका मुख्य कारण उच्चारण-दोष होता है। पढ़े-लिखे हिन्दीभाषी अहल्या, छिपकली, छिपना, पहचान, प्रदर्शनी, मंजु, मिट्टी, श्याम, शान्ति, सामग्री, स्वरूप जैसे शब्दोंको अहिल्या, छिपकिली या छुपकली, छुपना, पहिचान, प्रदर्शनी, मंजू, मट्टी, शाम, शान्ती, सामिग्री, सरूप की भांति बोलते और लिखते हैं। पंजाबी-भाषी राजीवको रजीव उच्चारित करते हैं गोया कि यह नजीव या मुजीवका कोई भाई-भतीजा हो।

हिन्दीप्रेमियोंने उर्दू-शब्दोंकी तो मिट्टी पलीद कर रखी है। शीन-काफ़ दुस्त न होनेकी मुसीबत तो



थीही, ऐन और हाए-हीज को अ, आ खा गये। अच्छे भले अल्फाजकी कुटाई-पिटाई कर उन्हें विकलांग बना दिया है।

उदाहरण रूपमें अफसानः को अफसाना, आलः को आला (कभी-कभी आल्हा भी), कत्आ को कता, खानःपुरी को खानापुरी, गिरिह को ग्रह या गृह, चारः को चारा, जिम्मःदारी को जिम्मेदारी, जुम्मेदारी, जिम्मेवारी या जुम्मेवारी, जियादः को ज्यादा, तज्किरः को तस्करा, दारोगः को दरोगा, नक्द को नगद, नाइव को नायब, पयादः को प्यादा, परवा को परवाह या परवह, परेशान को परीशान, फुजूल को फिजूल या फजूल, बआज को बाज, मक्कः को मक्का, मौसिम को मौसम, रौशन को रोशन, लाइक को लायक, बरक को बर्क या बर्क, बआदा को बाइदा, वायदा या वादा, वापस को वापिस, शाइर को शायर, सियासत को स्यासत, सिपुर्द को सिपुर्द या सिपर्द, सहूलत को सहूलियत, हुकूमत को हकूमत और होशियारी को हुशियारी या हुसियारी के मुआफिक तलफूज और तहरीर करते हैं।

ग्रन्थकारने दूषित हिन्दी-प्रयोगके उदाहरण उनके शुद्ध रूप देकर उपकार किया है। हिन्दीकी रेढ़ संवाद-पत्र तो मारही रहे हैं, पाठ्य-पुस्तकें भी गुल खिला नेमें पीछे नहीं रही हैं। “उसने लस्सी नहीं पिया” जैसा निदर्शन-वाक्य प्राथमिक कक्षाओंके लिए स्वीकृत एक ऐसी पुस्तकमें दिया गया है जिसके रचयिता ‘राष्ट्रीय अध्यापक पुरस्कार’ से गौरवान्वित हो चुके हैं। जवाहर-लाल नेहरूजीके इन्दिराजीको अंग्रेजीमें लिखे एक पत्रके

## काव्य

तुम ! हां, बिल्कुल तुम ?

[चीनी कविताओंके अंग्रेजी

रूपान्तरणका हिन्दी अनुवाद]

कवि : वाइ जूई

अनुवाद : प्रियदर्शी ठाकुर ‘खयाल’

समीक्षक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह

एशिया, लैटिन अमरीका और अफ्रीकाकी साहि-

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। पृष्ठ : १२५; डिमा. ६१; मूल्य : ४५.०० रु।

‘प्रकर’—जून’६२—१८

अंशका अनुवाद प्रेमचन्दजीने किया—“चीतेका रंग पीला और धारीदार होता है, उस धूपकी तरह जो दरखतोंसे होकर जंगलमें आती है।” इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालयके स्नातकोंके हिन्दी शिक्षण के लिए अन्यके साथ चर्चित पत्रको पाठ्य-पुस्तकमें सम्मिलित किया गया है।

सच बात यह है कि भाषाको बहुत बांधकर नहीं रखा जा सकता। उसपर शैलीगत नव-प्रवर्तनोंका ध्यान भी रखना पड़ेगा, जिनकी आड़में एंजिनकी जगह गाड़-का डिब्बातक ट्रेनकी अगुआई कर सकता है। इस बात की अनदेखीभी नहीं की जा सकती कि अब हिन्दीके पर निकल आये हैं, यानि कि वह राष्ट्रभाषा होनेका दम भरने लगी है। अहिन्दी समाजका प्यार-दुलार पानेके लिए उसे मर्यादाकी कुछ भेंट तो चढ़ानी ही होगी। लोकप्रिय बननेके चावमें अंग्रेजी भाषा अवांछित छेड़छाड़ को बराबर सहन करती आयी है। फिरभी जो गलत आचार है उसे सही व्यवहारकी संज्ञा नहीं दी जा सकती। मार्क्सिय विचारधाराके अनुसार मनुष्यकी दो चारित्रिक विशेषताएं होती हैं (i) उपकरण-निर्माण (ii) भाषा-निर्माण।

पुस्तक बाहरसे तन्वंगी लगती है परन्तु भीतर झांकनेपर एकदम ठोस ठहरती है। किसी सीमातक इस पर ‘गागरमें सागर’ की उक्ति चरितार्थ होती है। प्रत्येक दृष्टिसे उपयोगी है। लेखकने हिन्दी भाषा-चिंतनके आयामका विकास किया है, जिसके लिए वे बधाईके पात्र हैं। [१]

त्यिक गतिविधियोंसे शायद हम भारतीय कम ही परिचित हैं और इधर कुछ वर्षोंसे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकोंके प्रकाशनसे यह कमी कुछ सीमा तक पूरी हो रही है। हम जितना पाश्चात्य साहित्यसे परिचित हैं, उस मात्रामें एशियाके साहित्यसे नहीं। इसका कारण उपनिवेशवाद और साम्राज्यवादका वह शिकंजा है जिसने हमें अपनी “अस्मिता” के प्रति जागरूक नहीं होने दिया। इस दृष्टिसे ‘पहल’ का एक विशेषांक अफ्रीकी साहित्यपर प्रकाशित हुआ है और अनेक पत्रिकाओंमें (पहल, साक्षात्कार, अक्षरा, मुहिम, भाषा आदि) एशियाई-अफ्रीकी कवियों और रचना-



कारोंकी रचनाएं प्रायः प्रकाशित होती रही हैं जिनसे गुजरते हुए रचनाशीलताकी उनकी हमारी मान-सिकता और सोचमें अनेक समानताएं पायी जाती हैं। जैसे संघर्ष चेतना, राजनीतिक प्रति जागरूकता, प्रेम-प्रकृतिके प्रति मानववादी दृष्टिकोण तथा साम्राज्यवाद से मुक्त होनेकी अदम्य आकांक्षा। यह स्थिति न्यूनाधिक रूपमें जितनी आजके संदर्भमें प्रासंगिक हैं, उतनी ही इतिहासके आदि और मध्यकालमें भी। इसी संदर्भमें प्रियदर्शी ठाकुर 'खयाल' द्वारा अंग्रेजी रूपान्तरसे हिन्दीमें अनूदित प्राचीन चीनी कवि और प्रशासक बाइ जुईकी रचनाओंको लिया गया है। बाइ जुईका जन्म सन् ७७२ ई. में चीनके हेनान प्रदेश के एक गांवमें हुआ। सन् ८०० में वे चीनी साम्राज्यकी उच्चतम प्रशासनिक सेवा 'जिनसी' में उत्तीर्ण हुए और कई बार वे सम्राटके दरबारमें उच्च पदपर भी रहे। इसके साथही जैगजू, हैगजू आदि प्रांतोंके वे अध्यक्ष भी रहे। सन् ८३५ में अस्वस्थ होनेके कारण उन्हें सेवा मुक्तकर दिया गया।

यहां एक महत्त्वपूर्ण तथ्यकी ओर संकेत करना आवश्यक है क्योंकि उनकी कविताओंमें इसका स्वर सुनायी पड़ता है। राजकीय सेवामें रहकर भी वे स्पष्ट-वादी थे और अपने समयके घोर सामन्तवादी वातावरण में भी वे जन-साधारण और गरीबके पक्षधर रहे; इसी से उन्हें चीनमें 'लोक-कवि' के रूपमें मान्यता प्राप्त हुई। उनके रचना-संसारमें आर्थिक-सामाजिक शोषणके विरुद्ध स्वर है तो दूसरी ओर प्रकृति, प्रेम और मानवीय अस्मिताके प्रति एक स्वाभाविक उन्मेष और लगाव। उनका काव्य-संसार सामन्तीय मनोभावोंसे उतना प्रेरित नहीं है जितना कि सामान्य जन-जीवनके व्यापारों और आकांक्षाओंसे। कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि इन दोनोंके मध्य वे द्वन्द्वरत है, वे राजकीय वातावरणमें रहकर भी जन-सामान्यसे अपनेको कभी भी मुक्त नहीं कर सके। कुछ कुछ यही स्थिति रूसी रचनाकार तात्सतोयके बारेमें सत्य है, वह अभिजात वर्गमें रहकर भी जन सामान्यकी पीड़ाओं और संघर्षोंको वाणी देते रहे। तात्सतोयके बारेमें तो यहां तक कहा जाता है कि उनके उपन्यासोंके पीछे किसान और मजदूर उपस्थित रहता है। बाइ जुईकी कविताओंसे गुजरते हुए ऐसा अनुभव होता है कि जन-साधारण उनकी दृष्टिसे कभीभी ओझल नहीं हुआ। कविकी एक सुन्दर

कविता है "नया चोगा" जो कविको ठंडकसे बचाता है, लेकिन वह चाहता है कि—

"सोचता हूं/कि अस्तरशुदा कपड़ेके इस एक टुकड़े को/किस तरह/दस हजार फीट लम्बा कर लूं/और/इस क्षितिजसे उस क्षितिज तकके/तमाम लोगोंके तब ढक दूं/... फिर जैसे मैं आज हूं/वैसे ही गर्म/हर कोई हो जायेगा/और/ कहीं कोई एक आदमीभी /ठंडके मारे न मरेगा।" (पृ. ११०)।

बाइ जुईने राजतंत्र, नीकरशाही और सामन्तवादी व्यवस्थामें रहकरभी वैचारिक स्वतंत्रताको महत्त्व दिया है और इसीके कारण उन्हें ८१५ ई. में दरबारसे निष्कासित किया गया, लेकिन पुनः उन्हें सम्राटने राजकीय सेवामें ले लिया। अनेक पदोंको संभालते हुए कविने अपनी काव्य-यात्राको कभी कुंठित नहीं होने दिया। यही कारण है कि उनकी कविताएं आरोपित नहीं लगती, वे उनके संघर्ष और सोच-संवेदनको प्रकट करती हैं। यह सही है कि उनमें कहीं-कहीं "सपाटपन" तो अवश्य है, पर वह 'सपाटपन' कभी व्यंग्यको तो कभी व्यंजनाको संकेतित करता है; इसीसे उनका 'सपाटपन' गद्यके निकट नहीं आता। उनकी एक कविता "संतुष्टि" है जिसमें कविका मनस्ताप यह है कि वह सरकारी वेतनभोगी है तो अवश्य, पर वह समाजकी गलतियोंको सुधारना चाहता है और कुछ न कर पानेकी दशामें "संतुष्टि" को ग्रहण कर लेता है (पृ. ४६)। यह मनोदशा चीनकी उस राजशाहीके प्रति एक विश्कोभ है जो उसे संतोषकर लेनेको विवश करती है। इस विडम्बनापूर्ण स्थितिमें रहकर भी कवि अपनी जन-प्रतिबद्धताको आंच नहीं आने देता। वह एक ओर 'सरकारी बैल' जो सरकारी गाड़ीको खींचते हैं, उनकी सापेक्षतामें वह मजदूरको नहीं भूलता जो रेतको ढोता है—यह दृश्य "कान्ट्रास्ट" के द्वारा गहराता है :—

सरकारी बैल खींचते हैं

सरकारी गाड़ी, नीचे नदी तक

जहां मजदूर लादता है

खूब भर भर कर रेत

सुबहसे शामतक लगातार। (पृ. ३५)

चीनके प्राचीन इतिहासमें 'शिह' नामके व्यक्ति की नियुक्ति इसलिए होती थी कि वे अपने समयसे पूर्व घटित घटनाओं, शासकोंके कार्यों, परामर्शदाताओं तथा



युद्धोंका लेखन करें जो भविष्यके लिए मार्ग संकेत कर सकें। उन्हें 'संग्रहक' कहा जाता था। इसीके समानांतर बाइ जुईके समयसे पूर्व, लोकगीत 'संग्रहक' भी होते थे जो लोकगीतों और विचारोंके अन्तःप्रवाहको, उनके संवादको निश्चित करते थे। बाइ जुईने "लोकगीत संग्रहक" कवितामें इस परम्पराके लुप्त हो जानेकी त्रासद स्थितिको व्यक्त किया है और ऐसे अफसरों/मंत्रियोंकी बात की है जो सम्राट्की 'हाँ' में 'हाँ' मिलाते हैं और

सुनते हैं वही जो दरबारमें...

कहा जाये—

दुर्ग द्वारसे ठीक बाहर जो

घट रहा है

उससे कतई अनभिज्ञ ! (पृ. २५)

यह कविता चीनके भ्रष्टाचारी मंत्रियों, अफसरों पर व्यंग्य करती है और कभी-कभी यह वर्ग इतना बलशाली भी हो जाता है कि उनके सामने सम्राट्भी असहाय हो जाता है। अंतमें, कवि सम्राट्को यह नेक सलाह देता है (जो सुनी नहीं जाती) —

यदि यह जानना चाहते हों

अपने लोगोंकी सच्ची राय

और उनकी भावनाएं,

तो उन्हें करना चाहिये आमंत्रित

ऐसे लोगोंको, जो

आलोचनामें निपुण हों

और अपनी सोच कर सकें प्रस्तुत

कविताओंमें करके समाहित ! (पृ. २६)

बाइ जुईकी यह कविता अपने समयसे आगेकी कविता है क्योंकि शासन और सत्तामें वैचारिक स्वतंत्रता और निपुण आलोचनाकी भूमिकाको वह जानता था जो आजभी प्रासंगिक है।

बाइ जुईकी कविताओंका एक अन्य आयाम है प्रेम और प्रकृतिका रागात्मक एवं संवेदनात्मक रूप। यहाँ कवि राग-संवेदनके आयामोंको स्पर्श करता है जो गहरी आत्मगत अनुभूतियोंसे सम्बंधित है। प्रकृति हो या मानवीय प्रेमकी अनुभूति, दोनोंमें कविका राग तत्त्व गतिशील रहता है, कभी वह विडम्बनाका रूप ले लेता है, कभी प्रकृति दृश्यकी गहराईको पकड़ता है, तो कभी समर्पणके अर्द्धत रूपको संकेतित करता है इन सभी रागात्मक रूपोंमें कवि जुईका वह रूप मुखर

'प्रकर'—जून'६२—२०

होता है जो यथार्थके एक दूसरेही पक्षको संकेतित करता है जो आंतरिक अधिक है। कविका एक वसंत-चित्र ले जो है तो दृश्य-चित्र, पर 'विडम्बना' को एक सत्य (वृद्ध होना) के रूपमें व्यक्त करता है। दिनकी ऊष्मासे बर्फका कफन धीरे-धीरे गायब होता है, लेकिन अंतमें कवि यह प्रश्न करता है जो एक मानवीय सत्यका संकेत है :—

लेकिन एक काम है

जो यह वसंत नहीं कर सकता—

मेरे कनपटीके बालोंपर

उभर आयी इस सफेदीमें

कोई परिवर्तन" (पृ. ६१)

यहाँपर 'सफेदी' शब्द अत्यंत व्यंजनापूर्ण है जो जीवनका एक सत्य है। दूसरी ओर स्वतंत्र प्रकृति दृश्यभी है जो कविके निरीक्षण एवं संवेदनको प्रकट करते हैं :—

डूबते सूरजकी एक किरनने

आधी नदीको गहरा हरा

और आधीको लाल कर दिया (पृ. ८४)

इन प्रकृति-चित्रोंके अतिरिक्त प्रेमके भिन्न चित्र भी प्राप्त होते हैं। जब प्रेमपात्रकी सूरत देखनेकी कोई आशा नहीं होती है तब कवि कहता है :—

इसलिए मैं अपने ध्यानके परिन्देको

उसकी ओर उड़ जाने देता हूँ। (पृ. ९५)

कविकी एक सुन्दर कविता है "परित्यक्ता" जो प्रकृति रूपाकारों (पहाड़, वटवृक्ष, वसंत आदि) के द्वारा प्रेमकी उग्रता और समर्पणकी तीव्रताको संकेतित करती है। पूरी कविता जैविक रूपमें मानवीय पीड़ा और एकात्मभावकी चरम अनुभूतिको प्रकट करती है। अनुवादित रूपमें कविता मर्मको छूती है, मौलिक रूपमें (चीनी भाषा) वह औरभी मर्मस्पर्शी होगी—यह अनुमान किया जा सकता है। कविके दो छोर हैं या कहें तो दो विलोम। यहाँ महावृक्ष और नन्ही बेलका विलोम प्रतीकत्व है :—

मैं देवदारुसे ऊँचे महावृक्षके पास

उगी दुई एक नन्ही बेल-सी हूँ—

मेरी पकड़ इतनी कमजोर

और तुम्हारी शाखें इतनी ऊँची

कि मैं कितनाभी जोर क्यों न लगाऊँ

तुम्हारे तनेपर चढ़ नहीं सकती।



त करता  
त-चित्र  
को एक  
दिनकी  
होताहै,  
मानवीय

यह तारीका निर्बल रूप अंततः अतिक्रमिit होता है और वह अपनेको भी एक 'महावृक्ष' के रूपमें देखती है जिसकी शाखें समान रूपसे, एक स्तरपर नर-महा-वृक्षसे 'लिपट' सकती हैं। यदि गहराईसे देखा जाये तो यहाँ पितृसत्तात्मक धारणाका सांकेतिक खंडन है और स्त्री-पुरुष युग्मके समान-महत्त्वका सूचक है :—

या तुम्हारे पास

एक और ऊंचा महावृक्ष—

कि हमारी शाखें एक दूसरेसे यूँ उलझी हुई

कि जैसे एक हों। (पृ. ६६)

है जो  
प्रकृति  
को प्रकट

प्रेम-कविताओंसे गुजरते हुए एक तत्त्व विशेष उल्लेखनीय है—वह है प्रतीक्षासे उद्भूत उदासी, व्यथा और निःश्वास। 'उदासी' को कवि इसलिए प्रतीक्षारत पत्नीसे दूर रहनेकी सलाह देता है क्योंकि "मुझे डर है कि उदासी/छीन लेगी तुम्हारा लावण्य/कम कर देगी तुम्हारी जिन्दगी"। (पृ. १०९)।

न्न चित्र  
की कोई

जीवनके अंतिम दिनोंमें अस्वस्थ होनेके कारण जुईने सेवानिवृत्ति ले ली (८३५ ई.) और ८३६ ई. में वह पक्षाघातसे पीड़ित होगया, और ६ वर्ष बाद उसका निधन ल्यांगमें हुआ। इस अवधिकी उसकी कविताएं घर मित्र तथा पत्नीकी यादको एक अजब आत्मग्लानि की अवस्थामें व्यक्त करती हैं जिसमें पीड़ा और दर्दका गहरा संस्पर्श है। घरको लेकर वह कहता है :—

सच पूछो तो अपना नसीब

उस चूहेके बराबर भी नहीं

जो कम-अज-कम

अपने लिए एक बिल तो ढूँढ लेता है।

(पृ. १११)

) जो  
"मा" जो  
ादि) के  
संकेतित  
य पीड़ा  
रती है।  
क रूपमें  
ी—यह  
या कहें  
विलोम

इसी प्रकार अपने समययस्क मित्र लुई युक्सीके नाम लिखी उसकी कविता दो दीवाने बुड्डोंके दर्दको व्यक्त करती हैं और जवानीकी चहलकदमीको याद कराती हैं (पृ. ११४)। वृद्धावस्थाकी दयनीय अवस्थामें उसके फेफड़े खराब हो गये हैं और आंखें कमजोर होनेसे वह पुस्तकें भी नहीं पढ़ सकता। इस दर्दको वह अपनी एक कविता "शान्ति ओम्" में व्यक्त करता है। बदन और दिमाग दोनों शिथिल हो गये हैं और इस अवस्थामें वह पूर्ण शान्ति कहाँ और कैसे प्राप्त करता है, इसे कविताकी अंतिम पंक्तियां अत्यंत मर्मस्पर्शी ढंगसे संकेतित करती हैं :

जवमुगियाँ आंगनसे चली जाती हैं  
अपने दड़बोंमें

मैं जान जाता हूँ

कि शाम हो गयी है

जब बर्फ पड़ती है

और पत्ते गिर जाते हैं

तब मैं समझ जाता हूँ

कि मैंने पूर्ण शान्तिकी स्थिति पा ली है।

(पृ. १२०)

बर्फ गिरने और पत्तोंके गिरनेके द्वारा कविने सांकेतिक रूपसे जीवनके अवसानका मार्मिक चित्र उपस्थित किया है जो व्यक्तिको 'पूर्ण शान्ति' की ओर ले जाता है। मृत्यु-बोधमें यह 'शान्ति' की प्रतीति मृत्युको भी एक अर्थ दे जाती है और जुईकी कविता और उसका जीवन इसी "अर्थ" को मार्मिक रूपसे तलाशनेकी कविता है। वह यथार्थके तीखे अनुभवोंसे गुजरता, हुआ, जन-मानस, की पक्षधरताको वाणी देता हुआ, प्रकृति-प्रेम तथा रागात्मक सम्बन्धोंको अंतर्स्की गहराईमें अनुभव करता हुआ जीवन और कविताके सापेक्ष और समानांतर रिश्तेको अर्थ देनेमें सफल होता है। उनकी कविताएं हमारे जीवन और सोचके निकट हैं; यही कारण है कि उसके रचना-संसारमें भारतीय मानस और जीवन की धड़कनें स्पंदित होती हैं। बाइ जुईकी कविताओंको मैं इसी दृष्टिमें लेता हूँ। □

## इसी जन्ममें पुनर्जन्म?

कवि : सत्यपाल चुघ

समीक्षक : डॉ. सन्तोष तिवारी

सत्यपाल चुघ एक समय कवि और तलस्पर्शी आलोचकके रूपमें हिन्दी साहित्यमें प्रतिष्ठित हैं। आलोचनाके दबावोंने उनकी रचनाको बाधित नहीं किया—यह एक शुभ लक्षण है। आलोचनाकी प्रखरताने संभवतः उनकी रचनाओंको निखारा है। अपने छठवें काव्य संग्रह 'इसी जन्ममें पुनर्जन्म' की भूमिका स्वरूप लिखे 'अन्तःअनुभव' के अन्तर्गत उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि इन कविताओंमें 'दिलकी धड़कन और वक्तकी आवाज' एक हो गयी है। यहां जीवन-यथार्थ, जनजीवन की सांसें और परिवेशसे उत्पन्न संवेदनाएँ हैं। कविने

१. प्रका. : पराग प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ : ६६;

डिमा. ६१; मूल्य : ६०.०० रु.।



अपनी वैयक्तिकता और सामाजिकताका समन्वित मार्ग दर्शाते हुए ऊर्जा, जिजीविषा, आस्था, व्यापक मानवीय संदर्भ और संघर्षोंके प्रभाव-दबावके संश्लेषको स्वीकारा है।

वस्तुतः सत्यपाल चुघके काव्य प्रतिमान यह दर्शाते हैं कि 'जन-जनके मन-मनमें खुशबू' के रूपमें बसकर संघर्षकी आगके बीचभी 'मनस्तलकी तरलता' के साथ स्नेह सिक्त शिव संकल्पमयी प्रखरता और त्रिकालदर्शी काव्यके वे सच्चे हिमायती हैं। 'कला जीवनके लिए है' और यही सिद्धांत सत्यपाल चुघकी कविताओंमें रचा-पचा है। कविताका सर्जनात्मक रहस्य और कविताका स्वरूप स्वानुभूति तथा सामाजिक संवेदनसे संग्रथित होकर रचनाकारमें परिलक्षित हुआ है। 'मर्दानगीके रक्तकी रंगत, शहीदानी संकल्प, सामूहिकताकी तड़प, कर्मण्यताकी कलम'—यही कवि सत्यपाल चुघकी रचना-धर्मिता है—'जल उठे मनोभाव—/अंतस् फटा कि फटी पो/कागजके फलकपर थी/कविता/प्रेमालोककी/धूप-सी/धरतीपर/ओर-छोर/खिलनेवाली।' (पृष्ठ १२)।

कविकी लेखनी 'जमानेभर की खैर-खबरके लिए' खुदही की खबरसे अपनी आंख चुराती है। रचनाकारने बहुत सार्थक किन्तु तीखे सवालोंने द्वारा साहित्य सर्जकोंसे पूछा है, खासकर 'प्रतिबद्धता' के नारे लगाने-वालोंसे—'मेरे कवि और कृतिकर्मीजी/ अपने ही गाढ़े की/अंदरूनी आगके जमालसे/क्या तुमने कभीभी/अपनी ही रात तोड़ी है? /...कलमके हलके फालसे/क्या तुमने कभीभी/जन-मन-परती गोड़ी है? /...राष्ट्र-क्य-प्रेमके इस्पाती बांधोंसे/क्या तुमने कभी भी/प्रांतज धारा मोड़ी है?' (पृष्ठ २३)। कविने हृदयकी तीव्र अनुभूतियों को अंकित किया है। संवेदनाएं कविता बनकर ढली हैं, महज आंखोंसे देखे दृश्यों या स्थितियोंका वर्णन प्रस्तुत नहीं किया है। वे आस्था और आशावादी दृष्टिके धनी हैं—'कहनेको वो बहुत हैं तरकी पसंद/पर टूटी कहां मनकी जंजीर साहब—/जिसने बुझते घरोंको कर दिया रोशन/वही सच्चा मीर और अमीर साहब।' (पृ. ७४-७५)

संकलनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कविताओंमें 'विश्व पुरुष' विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। विश्व-पुरुषकी कल्पना मानववादी चेतनाकी चरम परिणति है। यह 'विश्व-पुरुष' सही अर्थोंमें 'काव्य-पुरुष' भी है। कवि की दृष्टिमें अखिल सृष्टिकी कल्याण कामना है, बृहत्तर

'प्रकर'—जून १२—२२

जीवन मूल्योंकी उद्घोषणा है—'कौन हो पायेगा/ विश्वपुरुष ऐसा/ कि प्यारके विस्तारमें/रूह उसकी होगी भू/मन असीम गगन/उदर सागर गंभीर—/ललाट नव-विहान/नयन करुणायन / कंठ सरगम-संगम / वाणी सर्व-कल्याणी/भुजाएँ हरित दिशाएँ/हाथ जगन्ताथ/चरण मंगलाचरण/रोम समरस लोग—/दृष्टि सारी सृष्टि/ और/पिंड सकल ब्रह्मांड।' (पृष्ठ १३)।

कविका महत् उद्देश्य 'जोर-जुलमसे लोहा लेकर' 'नूतन विहानसे कर्म-कीर्तिका ताम्रपत्र' प्राप्त करनेकी प्रेरणा देता है। रचनाकार आजके परिवेशमें व्याप्त अन्धेरोंकी घनतासे परिचित है, युग जीवनका लेखा-जोखा उसके पास, नफरत, अदावत, दहशत, बहशतके बीच वह आत्म-पहचान और 'चेतना-सम्पन्न सूर्यमुखी' की कामना करता है। मौन संगीतके अंतरंगी उल्लासके साथ वह 'सद्भावी डांट फटकार' बतलाता हुआ अपनी मानवीय सदाशयताका परिचय देता है। 'धूमिल' के शब्दोंमें यही 'प्यारभरी गुराहट' है। वह अव्यवस्था के और 'जिहादी जुनूनके फुफकारते भाषण' के खिलाफ है, न कि जमीरके। 'जन गण मन' की सही प्रयोजनीयता इन पंक्तियोंमें द्रष्टव्य है—'जब स्वदेशके, कण-कणसे, जब स्वदेशके, जन-जनसे, मन होता समरस क्षण-क्षण, तब वह होता जन-गण-मन।' (पृष्ठ ६३)।

आलोच्य संग्रहमें हरिजननोंपर या कह लीजिये वर्ण-व्यवस्थापर भी कविने प्रश्नचिह्न लगाये हैं—विष्णु पदसे निकलकर पूत और अछूतकी स्थिति कैसे संभव है? पौराणिक संदर्भोंको लेकर रचनाकारने कुछ सार्थक प्रश्न उभारे हैं—'बता दो ना, यशोदा मां/कि हरिमुखके / विश्व-दर्शनमें / हरिजन न थे?' (पृष्ठ ४२)। समाजमें 'मेहतर' की स्थितिपर मानवीय सोच की कविता लिखकर जो सामाजिक आशय और अभि-प्रायः कविने प्रस्तुत किया है वह काबिले-गौर है—'जी सकना ही सुख पाना जहां, वहां कैसे पाये वह गौरव, मलसे कमल होनेका, 'हरि' का वास्तविक जन होने का?' (पृष्ठ ४३)।

पौराणिक संदर्भोंमें 'हनुमान पूजा' रचना अत्यधिक उल्लेखनीय है क्योंकि हनुमानको उनकी और कर्मोंके परिप्रेक्ष्यमें नया संदर्भ देकर उन्हें 'मानुष दिव्यता' का भव्य स्वरूप कहा गया है। कविताके अनुरूपही विराट् उपमानोंके प्रस्तुतीकरणसे तो उदात्तता आयीही है, कविने मात्र पूजाघरमें नहीं, कर्मोंमें उतरनेवाली दृष्टि



को रेखांकित किया है। यथाथं कल्पनाओंकी ऊर्ध्व उड़ान, ताकतका तेजस्संधान, संजीवी विश्वास; जुझारु संघात, सौर ऊर्जाका आत्मसात्, सरकमौका पहाड़, जैसी शब्दावली रचनाको हनुमानके अनुरूप भव्यता और मामर्थ्य प्रदान करती है।

संग्रहकी प्रकृतिपरक रचनाएं जो उल्लसित चित्र प्रस्तुत करती हैं, वे बेजोड़ हैं। धूपके पीताम्बरी तेवरके विभिन्न चित्र और अन्तमें लोक कल्याणकारी कामना की अभिव्यक्ति स्तुत्य है—“पीताम्बरी माँ, उष्णांचल दे नव/वर्षं शिशुको/”—(पृष्ठ-२०)। फागुनका आल्हाद भी सदय जन-नायकके रूपमें बहुरंगी लोक-लहर प्रस्तुत करता है। ‘सावनी संवाद’ में ये पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं—“बजे नगाड़े/बादल दल हुए/गुत्थमगुत्था/... ठंडक पाने/भूके उष्ण वक्ष पे/पिघले मेघ/... ग्रीष्म विरोधी/छापामारी मेघोंके/उड़न दस्ते/... काव्याकाशमें/स्वच्छंद छंद घन/उमड़े फूटे।”(पृष्ठ ६२-६३) ‘शरदा-लोक’ में चंद्रकी चमाचम बारात और ‘सूर्यबोध’ में ‘अंतः आलोक समरस समताका प्रबोध उल्लेखनीय है। प्रकृतिने कविको जीवन-संवारनेकी प्रेरणा दी है।

‘हाइकू’ जापानी छन्द है जिसे अज्ञेय जैसे कवियों ने अपनाकर शिल्पके चातुर्यका परिचय दिया है। इन रचनाओंमें सत्यपाल चुघने शब्दोंकी मितव्ययता और वस्तु तत्त्वकी समरसताका परिचय दिया है। ये कविताएं अनुभव-सम्पन्न दृष्टिके साथ मानो सूक्तियोंमें ढल गयी हैं। भवानीप्रसाद मिश्रने ‘गांधी पंचशती’ के अंतमें कुछ इसी प्रकारकी प्रभावशाली रचनाएं प्रस्तुत की हैं जो ‘अनमोल वचन’ बन गयी हैं, अपनी वैचारिक सम्पन्नता में। आलोच्य संग्रहसे कुछ ‘हाइकू’ यहां दिये जा रहे हैं—

- (१) “सांझ पीकर/उगले सुबह जो/वही शंकर।”
- (२) बुद्ध-प्रबुद्ध/लड़-लड़ उबरे/स्वयंसे युद्ध।”
- (३) “महानगर/सौगात रातकी/नींदकी गोली।”
- (४) “है कोई राम/तोड़े अश्वि धनु/जयश्री वरे।”

कवि शब्द और अर्थके रिश्तेको सत्यकी अभिव्यक्ति से जोड़कर अपनी काव्य-भाषामें शब्दोंकी सार्थक पहचानके लिए सदा प्रयत्नशील रहे हैं क्योंकि शब्द केवल उबलती बहसों और सम्भाषण तक सीमित नहीं हैं। ‘दिलको दिलकी राह-सी’ शब्दावलीही मर्मको छू सकती है। कविके ‘तनाव’ और ‘मानसके मोती’ का रदीफ-काफ़िया देखतेही बनता है, एकदम सधे हाथोंसे।

इस संकलनमें कहीं ‘होरी-धनिया’ की व्यथा त्रोल उठी है और कहीं ‘बंध्या मां’ के घुटते-उमड़ते वात्सल्य की मार्मिक झलक। उम्रकी ढलानपर दिलो-दिमागकी सक्रियता, संकल्पशक्ति, चिन्तन और संघर्षशीलता कवि को इसी जन्ममें पुनर्जन्मका तीव्र एहसास देती है क्योंकि ‘त्रिपुरारीका रथ’ उन्हें ‘मानवताकी जय यात्राका उधर्व-मुखी दिशा-दर्शन’ देता है। रचनाकारकी आशावादी ‘दृष्टि’ ‘दो अंधेरी रातोंके बीच दुबके’ ‘बेचारे दिनको’ देखनेकी नहीं है बल्कि ‘दो दमकते दिनोंके बीच छोटी अंधेरी रात’ को देखनेकी रही है। वे परिपक्वताकी उस बुलन्दीपर हैं जहां ‘अनुभूतिजन्य वैचारिकता’ अपनी सही जमीनसे जुड़ी हुई है, एकदम भारतीय। [१]

### ग्रपने समयका वर्तमान?

कवि : राजेन्द्र मिश्र

समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

राजेन्द्र मिश्रकी चालीस कविताओंका यह तीसरा संकलन है जिसमें निजके संसारमें जकड़े हुए कविकी जटिल मानसिक-स्थितिका आभास मिलता है। एकाकी-पन, सैक्स और बाहरी समाजके अभिशापोंने कविताओं को पेचीदे ऊहापोह और असमंजससे भर दिया है। निश्चित विचारधारासे बंधा न होनेके कारण कवि यथाथंके इतने विविध रूपोंसे जूझ रहा है कि उसकी सही दिशाको पहचान लेना कठिन है। समसामयिक जीवनके सकार और नकार दोनोंकी मिली-जुली जुगत इनमें दिखायी पड़ती है। ओढ़ी हुई सामाजिकताके अस्वीकारके बीचसे व्यक्तिकी एकाकी स्थितिकी खोज में लगी इन कविताओंमें, सभ्यताकी असंगतियोंसे उत्पन्न हुए आयामोने कन्ट्रास्टकी सृष्टि की है और उसके दबावोंने छटपटाहट और घुटनकी सृष्टि भी।

संत्रास, अभिशाप, भय और संशय जिनके पंजोंसे हिन्दीकी कविता दो-ढाई दशक पूर्व मुक्त हुई थी यहां अब भी कविताको जकड़े हुए हैं। बेगानेपन और स्वयंके विरुद्ध गुरिल्ला होते जानेकी नियतसे स्वयंको मुक्त करनेका कविके पाम कोई विकल्प नहीं। कविताकी लिए ही कुण्ठित होते जानेकी प्रक्रियामें बहते रहनेसे

१. पका. : अकादमी प्रकाशन, इन्दौर। पृष्ठ : ६६;

डिमा. ८८; मूल्य : ३५.०० रु.।



अच्छा होता कि कवि स्वयंकी सत्तासे परे जनोंमें स्वयं को केन्द्रित करता। कवि अपनीही बनायी हुई एक अपराधहीन यातनामें फंसा हुआ है जिससे बार-बार निकलकर भी वह अनुभव करता है कि वह उसमेंही घंसता जा रहा है। एक आंखोंके पीछे अनेक आंखोंकी भीड़ उसे चीरतीजा रही है। एक शकलके पीछे अनेक शकलें उसे भयमें डाल रही हैं। ऐसा वड़प्पन जो प्रोतात्मा बन हमें ही ग्रसले, उससे अच्छा था साधारण जनकी मनोभूमिमें आकर अपनी पहचान बनाना।

संग्रहकी कविताओंमें अधिकतरका संबंध 'स्त्री' या उसके और पुरुषके बीचके सम्बन्धोंके संसारसे है। स्त्रीको उसके सहज स्वरूपमें स्वीकार न कर पाना ही कविताओंकी जटिलताओंका कारण बना हुआ है। यह स्त्री स्थूल मांसल नहीं है। वह मस्तकको जकड़े हुए उलझन है। कवि उससे मुक्त होना चाहते हुएभी मुक्त नहीं होपाता। मुक्त होकर भी मुक्तिका अनुभव नहीं कर पाता।

सनातनसे कटे हुए होनेके कारण कविकी स्थिति उस बच्चे जैसी है जो अतीत-विहीन और इतिहास-रहित महानगरमें पैदा हुआ। अपने जन्मके साथही सभ्यता और संस्कृतिका उदय समझता है। सभ्यताके जितने अंशसे वह परिचित है उसीको 'पूर्ण' समझे हुए है।

कविताओंमें पलपल महसूस होता निरर्थकता बोध है तो 'क्षण' को ही पकड़नेकी जद्दोजहद भी। अपने होनेके अहसाससे खतरा और उसीको जाने की तलब, इन दो सीमाओंके भीतर रहकर ऐसीही कविताएं लिखीजा सकती हैं। कवि सूक्ष्मताको पकड़ना चाहता है, मौलिक कहना चाहता है परन्तु उपयुक्त दायरोंमें अंग्रेजीके सोचसे हिंदीमें कह पाना शायद बहुत कठिन है। अंग्रेजीका अपना आकाश है हिन्दी की अपनी जड़। हमें लगता है इस तरहकी कविताओं की सृजन रचनासे एक 'टाइप' तो तैयार हो रहा है अच्छी कविताएं बहुत कम संभव हो रही हैं। हां भाषा अवश्य जटिल हो गयी है। कहीं-कहीं तो वह गद्य के बहुत करीब आ गई है। कहीं-कहीं तो जुमले-जुमल शब्दोंके जोड़ सत्तरके दशककी कविताकी याद दिलाते हैं जब कवि कहता है—

(१) अपनेही मौनमें मिमटनेकी भूख फैलती जा रही है

यह पराजयियोंकी जमात आ रही है।

'प्रकर'—जून १२—२४

(२) मुझे अन्तरिक्ष होना है, कुछ भी होकर कुछ नहीं होना है

(३) सूरजका बाथरूममें नहाकर भीग जाना केवल मुस्काने भरकी बात है

क्योंकि फव्वारोंके बीच खुलते हुए अंधेरे में चल रही सारी रात है।

(४) आदमीका थरमस उसका अपना प्रमेय है नयी कविता सचमुच गेय है।

परन्तु संग्रहकी कविताएं मात्र जुमलेबाजी नहीं हैं। कवि नये निहितार्थोंकी संहतिके लिए दूरबीन, माइस्कोकोप, रेडियो सक्रिय धूल, न्यूट्रान, स्पेस, साइनाइड, संगणक, कम्प्यूटर, टेलीविजन, एनेस्थीट, कास्मिक-संसार जैसे शब्दोंका कवितामें व्यवहार संभव करता है। उनके जरिए काव्य-मुहावरे गढ़ता है और पारम्परिक भाषाके संस्कारोंके बराबर वजनके प्रभाव उत्पन्न करता है। यह दूसरी बात है कि इस कविता-भाषाको अर्थाना, सौन्दर्य बोधके क्षेत्रमें प्रविष्ट होना नहीं अपितु सामयिकताके उस बयाबान में जानेकी कोशिश करना है जिसके अनुभव वास्तविक जीवनमें हम अधिक संजोते हैं। कवितामें आये अनुभव तो बहुत कम होते हैं। बहरहाल 'असमान जिदगी के बीच', 'समयके बीचसे गुजरता समय', 'असंतुलन', 'अपने समयका सन्दर्भ' आदि संग्रहकी अच्छी रचनाएं हैं।

स्त्री-पुरुषके अन्तःसंबंध या संबंधहीनताको व्यक्त करती कविताकी पंक्तियां हैं—

अपनी तमाम कोशिशोंके बावजूद/वे वजुदमें नहीं वहुममें मिल सके हैं और अफवाहोंमें जीकर ही उन्होंने समझा है कि वे एक दूसरेको

पा चुके हैं।

पा सके हैं।

अब उनके पास सिवा वादोंके/या एक-दूसरेके लिए वफादारीके दस्तावेजके अलावा कुछ भी नहीं है/ क्योंकि सारे जमानेकी खिलाफतके बावजूद/वे मिल नहीं सके हैं/ केवल अपनेही मनके कारण/ जो उन्हें बंधनेकी इजाजत नहीं देता/ उन्हें एक दूसरेका होनेके बजाय/ खुद अपना होना ज्यादा बेहतर लगता है □



## उपन्यास

### आर्यावर्तकी कुलवधू'

लेखिका : मायाराजी शबनम

समीक्षक : सुरेन्द्र तिवारी

'महाभारत' की कथाको आधार बनाकर या इसके किसी एक चरित्रको लेकर समस्त भारतीय भाषाओंमें कहानी-उपन्यास-नाटक लिखे जाते रहे हैं। लोगोंने भिन्न-भिन्न प्रकारसे इसे व्याख्यायित करने और आधुनिक विचारधारासे जोड़नेका प्रयत्न किया है। माया शबनमने भी 'द्रौपदी' के चरित्रको लेकर ऐसा ही एक प्रयास किया है। 'आर्यावर्तकी कुलवधू' के रूपमें द्रौपदीके जीवनको औपन्यासिक रूप उन्होंने दिया है। किन्तु द्रौपदीके माध्यमसे उन्होंने तब और आजकी स्त्रीके जीवन-मूल्यों, उसकी सामाजिक स्थिति, पुरुषार्थान समाजमें उसका स्थान आदिका विस्तृत चित्रण किया है। उपन्यासके फलपपर इसी बातको रेखांकित भी किया गया है—“इसमें महाभारतकी धरोहर नायिका, आर्यावर्तकी कुलवधू पांचालीका कथा और योग्यताका आकलन वर्तमानकी मौलिक मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिसे किया गया है।”

इस उपन्यासकी कथा मूलतः राजा द्रुपद और द्रौपदीके आसपास ही घूमती है। पांचालराज राजा द्रुपद को अर्जुनने बन्दी बनाकर अपने गुरु द्रोणाचार्यको दक्षिणाके रूपमें समर्पित किया था। इस अपमानको द्रुपद भूल नहीं पाते। वे द्रोणाचार्यसे प्रतिशोध लेनेके लिए आतुर हैं। वे चाहते हैं कि उनके यहां भी अर्जुनकी भाँति एक वीर धनुर्धर पैदा हो जो द्रोणसे प्रतिशोध ले सके। उसके लिए एक मुनिकी बात मानकर वे यज्ञ करवाते हैं। समयोपरान्त उनके यहां एक पुत्र पैदा होता

। किन्तु उसके साथ ही एक पुत्रीका भी जन्म होता है। यही पुत्री पांचाली अर्थात् द्रौपदी है। द्रौपदीके जन्मसे लेकर द्यूत-क्रीडामें युधिष्ठिर द्वारा उसे हार जाने और अपमानित होनेतक की कथा इस उपन्यासमें है। महाभारतकी कथाभी सारांश रूपमें साथ-साथ चलती रहती है। किन्तु उपन्यासकारका मूल उद्देश्य द्रौपदीके माध्यम से नारी जीवनकी विवशताओंको दर्शाना है, अतः जहाँ तक द्रौपदीका जीवन अत्यधिक द्वन्द्वात्मक और तनावग्रस्त है, उसी बिन्दु तक पहुँचकर उपन्यास समाप्त हो जाता है।

लेखिकाने द्रौपदीके जीवन चक्रको अनेक स्थानोंपर नयी दृष्टिसे देखा है। जैसे अबतक यही माना जाता रहा है कि द्रौपदी सम्पूर्णतः अर्जुनके प्रति समर्पित थी, शेष चारों भाइयोंके साथ उसके संबंध औपचारिक ही थे। किन्तु यहाँ लेखिका बताती है कि प्रारम्भमें द्रौपदी अवश्य अर्जुनके प्रति आकर्षित रही, उसीके प्रेमेंमें विभोर थी वह, किंतु विवाहोपरान्त भीम के प्रति वह विशेष रूपसे आकर्षित होती है। पांचालीके हृदयके कोनेमें भले ही अब भी अर्जुनके लिए अक्षय प्रेमकी वर्तिका जल रही थी, किंतु भीमसेनके अछूते पौरुष, हंसमुख मस्त स्वभावने पांचालीको सच्चा आनंद प्रदान किया था। और इस आकर्षणने आस्था और विश्वासका रूप उस समय ले लिया जब दुर्योधनके सामने द्रौपदीको अपमानित किया जा रहा था और अर्जुन चुपचाप तमाशा देखता रहा, जबकि भीमने दहाड़ते हुए प्रतिज्ञा की कि पांचालीको अपमानित करनेवाले दुःशासनकी छाती चीरकर वह खून पियेगा और दुर्योधनकी जाँघें तोड़ देगा। पांचालीकी दृष्टिमें भीमके प्रति आस्था तब बहुत बढ़ जाती है और वहाँसे बाहर आकर वापस लौटते समय एक प्रकारसे अन्य चारों भाइयोंको तिरस्कृत करती हुई वह भीमको अपना लेती है और कहती है—“बस तुम्हींको मैंने

१. प्रका. : स्मृति प्रकाशन, १२४, शहरारा बाग, इलाहाबाद-२११००३। पृष्ठ : २७६; डिमा. ६०; मूल्य : ५०.०० रु.।



पहचाना और पाया अबतक। अब कभी अपनी इन भुजाओंसे मुक्त न होने देना।”

द्रौपदीके आत्मसंघर्ष और अन्तर्द्वन्द्वका चित्रण उपन्यासमें उस समय बहुतही विश्वसनीय ढंगसे हुआ है, जब पहली बार वह कुन्तीके द्वारपर पहुंचती है और कुन्ती बिना कुछ सोचे समझे उसे पांचों भाइयोंमें बांट देती है। इस अन्यायके विरुद्ध वह एक विद्रोहिणी-सी दिखायी देती है। कहतीभी है—“मैं जानती हूं माँ, कि माँ कुन्तीके वचन उनके आज्ञाकारी पुत्रोंके लिए ब्रह्म-वाक्य हैं, किंतु क्या निर्जीव भिक्षा सामग्री और मृज्ज सजीव पांचालकुमारीमें कोई अन्तर नहीं है। कठोर प्रतिज्ञा पूरी करनेपर प्राप्त होनेवाली पत्नी और विव-शतासे याचित भिक्षा दोनोंमें तो धरती और “आकाश का अन्तर है, फिर दोनों न्यायके एकही पलड़ेपर क्यों?” (पृष्ठ-२०२)। और फिर, “नारी कभी भी पौरुषहीन पुरुषको पतिकी संज्ञा नहीं दे सकती। अपने यौवनकी छलकती वरमालाको वह ऐसे किसी पुरुषकी ग्रीवामें डालना चाहती है जो सर्वांग उसका अपना हो, जिसके सम्पूर्ण अधिकारोंकी संरक्षिका वह स्वयं हो, जिसके स्वभावकी मधुर बीणा उसके हृदयके तारोपर मुञ्जरित होती हो, जो अर्हनिश धरती और आकाशकी तरह एकाकार होकर रहें।”

किन्तु द्रौपदी सामाजिक मर्यादाओं और परिस्थितियों के कारण विवश होती है और पांच भाइयोंकी पत्नी बनती है। इसमें सहयोग कृष्णभी करते हैं जब वे उसे बार-बार समझाते हैं, “आर्यावर्तमें धर्म-ध्वजा फहरानेके लिए ही तेरा जन्म हुआ है बहन! परिवार, समाज, राष्ट्रके कल्याणके लिए हम दोनोंको सर्वस्व दांवपर लगाना होगा, तभी इस पतनोन्मुख आर्यावर्तका उद्धार हो सकेगा। राक्षसी वृत्तियोंका उन्मूलन और मानवीय वृत्तियोंका उन्नयन करना है। पांच पांडवही ऐसे सक्षम वीर हैं जो धर्म-यज्ञके याज्ञिक होंगे। तू ही वह समिधा होगी जिसकी आहुति पाकर मानव-धर्म पुष्पित एवं पल्लवित होगा।” (पृष्ठ-२११)।

सचमुच द्रौपदीका जीवन समिधाकी तरह ही है। विवाहोपरान्त भी उसका मिलन अर्जुनसे नहीं होता। उसके साथ दाम्पत्य-धर्म निभानेके लिए पांचों भाइयों ने समय बांट रखा है। पहले युधिष्ठिर और फिर भीम की वह सहधर्मिणी तो बनती है, किन्तु अर्जुनका जब समय आनेवाला होता है, तभी परिस्थितिवश वह बारह

‘प्रकर’—जून १२—२६

वर्षोंके लिए ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके जंगलमें चला जाता है। बारह वर्षों तक द्रौपदी उसकी प्रतीक्षा करती है। किन्तु जब अर्जुन लौटता है तो सुभद्राके साथ। द्रौपदी तबभी अर्जुनको नहीं पाती और सुभद्राके हाथों में खुदही अर्जुनको सौंप देती है। अपने प्रेम और विश्वासको खंडित होते वह बार-बार देखती है, बार-बार उसके कोमल हृदयपर जो वज्राघात होता है, उसे कोई नहीं समझ पाता।

उपन्यासकी भाषा रोचक पर संस्कृतनिष्ठ है। सम्भवतः महाभारतकालीन पात्र और परिवेश होनेके कारणही लेखिकाने ऐसी भाषाका प्रयोग किया जो प्रसादके नाटकोंकी भाषा जैसी है और उसी कालके किसी लेखककी लिखी लगती है। अनेक स्थानोंपर तो कविताका आभास होने लगता है। जैसे—बीहड़ कंठीले कुंजोंवाले वनके बीच उसने शीतल चंदनके वृक्षोंका अनुभव किया है।” (पृष्ठ १६)। इसी प्रकार कुछ स्थलोंपर भाषा-प्रयोग खटकता भी है, जैसे पृष्ठ १७ पर ‘मृज्ज अभागों’ का प्रयोग।

इस कथाको आधुनिक संदर्भोंसे जोड़नेके लिए लेखिकाने नयी-नयी व्याख्याएं दी हैं, किन्तु ‘पूँजीवाद’ का प्रयोग उस कालकी दृष्टिसे विचारणीय है। ‘पूँजीवाद’ शब्दका प्रयोग बहुत बादमें, उन्नीसवीं शताब्दी में, शुरू हुआ। उससे पहले तो ‘राजतंत्र’ था या फिर ‘सामंतवाद’। आधुनिक स्थापनाओंको मान्यताओंको प्राचीन कालपर लादना न्यायसंगत नहीं लगता।

यह सच है कि यह उपन्यास नारी जीवनकी विसंगतियोंको दर्शाता है। नारीका तबभी स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था, आजभी नहीं है। नारीकी सामा-जिक स्थितिमें आजभी बड़ा परिवर्तन नहीं आया है, भले ही वह आर्थिक रूपसे कुछ स्वतंत्र हुई है, किन्तु उसका जीवन आजभी पराधीनही है। द्रौपदीके माध्यम से लेखिकाने इस तथ्यको रेखांकित किया है।

यह उपन्यास साहित्यके गंभीर पाठकोंके लिए पठनीय तो है ही, विचारणीय भी है। हां प्रुफकी गलतियां अर्थका अनर्थ कर देती हैं। जैसे पृष्ठ २४ पर शीर्षक ‘कृष्णका जन्म’ छपा है, जबकि यह ‘कृष्णाका जन्म’ है। कृष्णाभी द्रौपदीका ही नाम है। इस प्रकारकी भूलों पर प्रकाशकको ध्यान देना चाहिये। □

१. देशकी लगभग सभी भाषाएं संस्कृतनिष्ठ हैं, यह

यथार्थ ही हिन्दीको देशकी इन सभी भाषाओंके

निकट लानेमें सहायक होगा।



## हाथकी ढाई लकीरें?

लेखक : गंगाप्रसाद श्रीवास्तव

समीक्षक : डॉ. उत्तमभाई पटेल

यह श्री गंगाप्रसाद श्रीवास्तवका पहला उपन्यास है। उपन्यासमें महानगर दिल्लीके एक विस्तारको कथा-भूमिके रूपमें चुना गया है।

जैसाकि उपन्यासके शीर्षकसे स्पष्ट है, यह ज्योतिष-शास्त्रके विधि-विधान व मान्यताओंसे जुड़ा हुआ है। प्रतीत होता है कि लेखककी ज्योतिषशास्त्रमें गहरी रुचि है। अतः उन्होंने इस विधानके आधारपर कि जिसके हाथमें ढाई लकीरें होती हैं, उसके ढाई विवाह होते हैं—कथावस्तुके ताने-बाने गूँथे हैं। उपन्यासके एक पुरुष पात्र—राधारमणको ज्योतिषीमें विश्वास है और कभी-कभार वह लोगोंके हाथोंकी रेखाएं देखकर उनके जीवनके रहस्योंका उद्घाटन करता है। वह लोगोंको मूखंभी खूब बनाता है। उसने ही अपनी पुत्री मंजुलासे कहा कि उसके हाथमें ढाई लकीरें हैं, तो विवाहभी ढाईही होंगे। ढाई विवाह होनेका मतलब है—“दो पुरुषोंसे तुम्हारा मानसिक और शारीरिक लगाव और एक पुरुषसे बिना मानसिक लगावके विवाह और जीवन यापन।” (पृ. ४१) और इसी तथ्यके आधार पर उपन्यासकार कथानकको विकसित करते चले गये हैं। उपन्यासकार पहले ऐसे वातावरणमें पात्रोंको खड़ा कर देते हैं, किससे कुछ प्रश्न आ खड़े होते हैं। उनके समाधानमें कथानक गतिशील रहता है। जामवंती एक बार विश्वनाथको राधारमणके बारेमें कहती है—“देखो, यकीन करनेके बहुत-से मौके आयेंगे आपके लिए, अभी तो शुरुआत है।” (पृ. २३)। जामवंतीका यह कथन उपन्यासके कथानकके लिए भी बिलकुल सार्थक सिद्ध होता है, क्योंकि उपन्यासका प्रारम्भ भी इतना रोचक और जिज्ञासोत्पादक है कि लगता है कि इसमें भी बहुत से ऐसे स्थल आयेंगे विश्वास करनेके।

उपन्यासके कथानकके प्रति लेखक बराबर सजग है। कहीं-कहीं कुछ आकस्मिक घटनाएं असंभाव्य-सी प्रतीत होती हैं, किन्तु उन्हें हम असंभाव्य न भी मानें

१. प्रका. : उन्मेश प्रकाशन, एन-१६ ए, लक्ष्मीनगर दिल्ली-११००६२। पृष्ठ : २८८; क्रा. १२; मूल्य : ८०.०० रु.।

तो इतना अवश्य है कि लेखक समस्याके समाधानका पूरा प्रयत्न करते हैं। जैसेकि विश्वनाथ और मंजुला किसी बागमें बैठे बातें कर रहे थे कि—“दो गायें तेजी से दौड़ती आयीं और रखें थैलों और विश्वनाथके दायें पांवको कुचलती भाग गयीं।” (पृ. २७१)। बादमें मंजुला बैसाखी बनकर उसे घर पहुंचाती है। लेखकने इस घटनाका आयोजन इसलिए किया है कि विश्वनाथ की पत्नी श्यामा यह जानती थी कि विश्वनाथ बिना मंजुलाके रह नहीं पाता। जिससे एक दिन मौकेपर विश्वनाथसे पूछती है कि—“लगता है तुम्हारी बगलमें लगी बैसाखी किसीने खिसका ली है।” (पृ. २४२)। उप-र्युक्त घटनाके बाद श्यामाभी जब विश्वनाथके पास ही थी, मंजुला कह देती है—“देखिये, इस बार जब पांव ठीकहो जाये तो बैसाखीका सहारा छोड़ दीजियेगा, बल्कि उसकी ओर देखियेगा तक नहीं।” (पृ. २७२)। यहां लेखक भावी घटनाकी ओर संकेत कर देते हैं।

उपन्यासका कथानक रोचक है, किन्तु धीरे-धीरे वह जटिलता ग्रहण करता है। उपन्यास घटना-प्रधान व सामाजिक है।

इस उपन्यासमें अनैतिक सम्बन्धोंकी भरमार है। कैलास और रामेश्वरकी पहली पत्नी माया, भीखमचंद और रामेश्वरकी विधवा भाभी, भीखमचंद और माया, रमणकी बड़ी बेटी अंजु और ए. डी. ओ., शान्ति देवी और ए. डी. ओ., सेठ और जामवंती, भीखमचंद की भाभी और रामेश्वर, वर्मा और शान्तिदेवी (मां जी), ए. डी. ओ. की पत्नी और राधारमण, मंजुला और विश्वनाथ, दिनेश और मंजुला आदिके अनैतिक सम्बन्धोंका चित्रण हुआ है। अनैतिक सम्बन्धोंकी भरमारका यह अभिप्राय नहीं है कि लेखककी इसमें गहरी रुचि है अथवा लेखक कायस्थ-माथुर जाति-समाजमें फैली गंदगीका चित्रण करना चाहते हैं। मूल कारण यह है कि सभीके हाथोंमें ढाई लकीरें हैं। रमण का विश्वनाथसे यह कथन इसका प्रमाण है—“मैंने यह बात कहनेके पहले दो-तीन हाथोंमें भी यह बात पायी थी। अब देखो, मेरे हाथमें भी वे ही लकीरें हैं, रामेश्वरका भी हाथ वैसाही है, दूर क्यों जाइये, भैयाजी तुम्हारे भी हाथमें एकसे ज्यादा लकीरें हैं।” (पृ. २३१-२३२), मां जी और जामवंतीके हाथोंमें भी ढाई लकीरें हैं। इन रेखाओंके संदर्भमें, ज्योतिषशास्त्रकी मान्यताओंके अनुसार लेखक पात्रोंको अनैतिक सम्बन्धोंमें



फँसाता जाता है या यों कहिये कि पात्र स्वयं फँसते जाते हैं। क्योंकि उनका भाग्यही ऐसा है, उन्हें ढाई लकीरें पूरी करनी हैं।

लेखक भाग्यवादी, नियतिवादी अधिक है। वे लिखते हैं—“भैस छुड़ा जाने और दूधका सिलसिला बंद हो जाना था, पर नियतिभी कोई चीज होती है, इसका पता नये प्रकरणसे लगता है।” (पृ. ८०)। कायस्थ समाजके लोग भाग्य व ज्योतिषशास्त्रमें अधिक विश्वास रखते हैं। ये अनैतिक सम्बन्धोंको बुरा नहीं मानते, वरन् उसे शादीकी ओर बढ़नेवाली सीढ़ीके रूप में लेते हैं। मंजुलाकी मां, उसके दिनेश और विश्वनाथ के साथके सम्बन्धोंको इसी दृष्टिसे देखती है। रमणभी ढाई लकीरें पूरी कर चुका है—पत्नी शान्तिदेवी, रखैल कमला और ए. डी. ओ. की पत्नीके साथ। विश्वनाथ भी श्यामा, मंजुला तथा मानसिक रूपसे जामवंतीके साथ जुड़ चुका है। मंजुला, विश्वनाथ और दिनेशसे जुड़ चुकी है, आधी लकीर उसकी बाकी है। उसका यह कथन कि “मेरे हाथकी ढाई लकीरोंमें मेरी समझमें दोकी आहुतिकी पूर्तिके बाद अगली आधी या पूरीकी भी तो आहुति पड़नी है।” (पृ. २८८)। किन्तु जिसे समाजमें अनैतिकता माना जाता है, उस अशुद्ध साधनका सहारा लेकर विवाह जैसे शुद्ध ध्येयकी प्राप्तिके लिए मंजुला प्रयत्नशील नहीं है। वहभी चाहती है कि उसके समाज की अनगिनत युवतियोंकी ही तरह भाग्यको न जानकर या जानते हुएभी उसे भुलाकर शुद्ध विवाहकी उपलब्धि करना चाहती है। किन्तु जब उसकी दिनेशके साथ शादी होनेकी तैयारी हो रही है, वह सोचती है कि आधी लकीर पूरी करनेके लिए मैं किसी दूसरेकी अनैतिक सम्बन्धके रूपमें बलि लूँ, इससे तो अच्छा है कि मैं अपनीही बलि देदूँ। अतः वह नसंके रूपमें जीवन जीने की कामना करके अपने समाजकी मान्यताओंको तोड़ देती है।

लेखकने अनैतिक सम्बन्धोंका जैसा चित्रण किया है, उसका दूसरा कारण उनकी यह मान्यता प्रतीत होती है कि परिवार प्रेमपर निर्मित होना चाहिये। “प्रेमके अतिरिक्त जगत्के किसी व्यक्तिके जीवनमें आत्म-तृप्ति नहीं उपलब्ध होती। प्रेम जो है वह व्यक्तित्वकी तृप्तिका चरम बिन्दु है और जब प्रेम नहीं मिलता तो व्यक्तित्व हमेशा तड़पता हुआ अतृप्त, हमेशा अधुरा, बेचैन रहता है। यह तड़पता व्यक्तित्व

समाजमें अनाचार पैदा करता है क्योंकि तड़पता व्यक्तित्व प्रेमको खोजने निकलता है। उसे विवाहमें प्रेम नहीं मिलता। वह विवाहके बाहर प्रेम खोजनेका प्रयत्न करता है।” (पृ. २७७)। आचार्य रजनीशके उपयुक्त कथनके अनुसार यदि समाज-रचना हो तो अनैतिकता खत्म होसकती है, जोकि कायस्थ समाजमें नहीं है।

इस प्रकार उपन्यासमें अनैतिक सम्बन्धोंका जो चित्रण किया गया है, वह सकारण है। लेखकने भूमिका में स्पष्ट कर दिया है कि—“जीवनकी परिधिके भीतर आदर्श, सिद्धान्त, नीति-प्रणयन अथवा इनका ह्रास एवं विकृति सभी कुछ आ जाता है।” इसलिए अनैतिकता का चित्रण जीवनको व्याख्यातित करने तथा समझने-समझानेके लिए किया गया है।

अनैतिक सम्बन्धोंके चित्रणका आधिक्य होते हुए भी उपन्यासके कुछ पात्र इनसे सदा अछूते रहे हैं। विश्वनाथकी पत्नी श्यामा इसका सुन्दर उदाहरण है। जामवंती और विश्वनाथका सम्बन्ध भी इसी प्रकार का है।

‘हाथकी ढाई लकीरें’ में लेखकने महानगर दिल्ली में रहनेवाले कायस्थ परिवारोंकी सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियोंका सुन्दर चित्रांकन किया है। परिवारोंके आपसी सम्बन्ध, उनका मेल-जोल, उनके झगड़े, मन-मुटाव, बनते-बिगड़ते सम्बन्धों आदिका सजीव चित्रण किया है। किन्तु ये सभी हाथकी ढाई लकीरोंकी पूर्ति के लिए हैं।

इस उपन्यासमें तीन कायस्थ-माथुर परिवारों—विश्वनाथ, राधारमण तथा रामेश्वरकी कथाके ताने-वाने बुने गये हैं। विश्वनाथ, राधारमण तथा रामेश्वर द्वारा जमीनका प्लॉट रखना, दूकानें बनवाना, रामेश्वर की जालसाजी, परिणामस्वरूप विश्वनाथके साथ मन-मुटाव, जामवंतीके माँ-बाप तथा बहन रामवंतीकी कथा, मंजुला-विश्वनाथ-प्रसंग आदि मुख्य घटनाएँ हैं। विश्वनाथ इस उपन्यासका नायक हैं। मंजुलाकी मुख्य स्त्री पात्र कहाजा सकता है। पात्रोंका चरित्र-चित्रण जीवंत बन पड़ा है। रामेश्वर, विश्वनाथ, रमण, जामवंती, मांजी, मंजुला और श्यामा स्मरणीय पात्र हैं। रामेश्वरकी मृत्युमें लेखकका आदर्शवादी दृष्टिकोण झलकता है। वैसे इनकी मृत्युके पीछे ज्योतिषशास्त्रका विधि-विधानही बताया गया है, क्योंकि इनकी पत्नी जामवंती मंगली है, कमला जो रमणकी रखैल है, की



मृत्यु कराके उपन्यासकारने उसके साथ अन्याय किया है।

संवाद कहीं-कहीं बहुत लम्बे हो गये हैं। (पृ. १६७)। कहीं-कहीं पात्रानुकूल भी नहीं। (पृ. ४१)। बातारणकी सुन्दर सर्जना करनेमें लेखक सिद्ध-हस्त है। भाषाका सुन्दर सर्जनात्मक प्रयोग है। मुद्रणके अनेक दोष हैं। एक उदाहरण—‘पहली बात यह कि राघामरण अपने जमींदार पितासे पैदा एक रंडीके

सुपुत्र हैं।’ (पृ. १६)। उपन्यासका अंत संवेदनात्मक है।

संक्षेपमें, ‘हाथकी ढाई लकीरें’ कायस्थ-माथुर समाजके जीवनकी परतों और रहस्योंको उद्घाटित करनेवाला एक सशक्त उपन्यास है। श्रीवास्तवजीका यह पहला उपन्यास उनकी सर्जनात्मक उपलब्धिका परिचायक है। □

## कहानी

### यह दाग दाग उजाला?

लेखिका : कुरंतुल ऐन हैदर

अनुवाद : डॉ. सादिक

समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

ज्ञानपीठ पुरस्कारसे अलंकृत ऐसी सशक्त कहानी लेखिकाको किसी प्रमाणपत्रकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि कहानी-पत्रिकाओंके माध्यमसे उनकी अनेक कहानियोंसे पाठक परिचित हैं। कभी उनका अकादमी से पुरस्कृत कथा-संग्रह पढ़नेको मिलाथा तबभी मन कथकी संजीदगी और उसकी सहज अभिव्यक्ति देखकर बाह्यलादित हो गया था क्योंकि सांस्कृतिक परिवेश और मानव मूल्योंकी धरोहरका कहीं-न-कहीं संरक्षण उस संग्रहमें प्रतीत होता था।

इस कृतिमें उनकी चुनी हुई प्रतिनिधि तेरह कहानियोंका संकलन है तथा परिशिष्टमें उनसे डॉ. सादिक द्वारा किये गये साक्षात्कारका संग्रह है। उसमें सुश्री कुरंतुल यह स्पष्ट करती हैं कि आजतक ‘अगर लिखा गयाथा तो आइटसाइडरके तौरपर। मैंने इसको इन-साइडरकी तरह लिखा है। (पृ. १७०)। निश्चित रूप

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। पृष्ठ : १७६; डिमा. ६०; मूल्य : ६५.०० रु.।

से यह कहाजा सकता है और इस संकलनकी सभी कहानियोंके आधारपर कि ये कहानियां निःशंक रूपसे उनके ‘इनसाइडर विजन’की कहानियां हैं। सुश्री कुरंतुल का पहला कहानी संकलन सन् १९४७ में प्रकाशित हुआथा जो उर्दू कथा साहित्यके इतिहासमें नया मोड़ कहाजा सकता है। उनकी कहानियां न किसी प्रतिबद्धताकी उपज हैं और न किसी प्रकारकी विशिष्ट मानसिकताकी परिचायक। तभी इन कहानियोंके अनुवादक डॉ. सादिकका कथन सर्वथा समीचीन है कि—हर प्रकारकी राजनीतिसे विल्कुल अलग-थलग रहकर बड़ी गम्भीरतासे साहित्य-साधनामें व्यस्त हैं और आजके उर्दू साहित्यमें एक मिथक बन चुकी हैं। उर्दू कहानीके क्षेत्रमें भी कुरंतुल ऐन हैदर एक विशेष स्थान रखती है। (पृ. १७)

इसमें संदेह नहीं कि सुश्री कुरंतुल एक विशेष वातावरण, परिवेश, पात्र, भाषा और शैलीके साथ उर्दू कथा-साहित्यमें प्रवेश करती हैं, जिसे आरम्भमें स्वीकृति नहीं मिली क्योंकि उर्दू कहानी एक परम्परागत अदबके ढर्रेपर थी और नवीनताकी सहज स्वीकृति की रुझान पाठकोंमें विकसित न होने तक सही पहचानमें लम्बा समय लेकर वे चर्चित एवं सशक्त कहानीकारके रूपमें प्रतिष्ठित है। उनकी कहानियोंको आलोच्य संकलन उर्दूके प्रतिष्ठित शायर फ़ैज अहमद फ़ैजकी

‘प्रकर’—आषाढ़ २०४६—२६



सुप्रसिद्ध नज्मकी पहली पंक्तिका अंश लिए हुए है जिसका अर्थ 'आजादीकी भोरके उजालेपर धब्बे या दाग' होता है। फैंज साहबने तत्कालीन वातावरणसे प्रभावित होकर जो नज्म लिखी उसीके आधार नामपर आलोच्य कृति में यह कहानी अपनी प्रतीकात्मकता लेकर चलती है। आत्म-चिंतनके रूपमें यह कहानी टुकड़ा-टुकड़ा दर्द पिरोते चलती है जिसमें स्मृति-खण्ड आ जुटते हैं और वर्तमान (तत्कालीन) भी बन जाता है। कर्नल फल-फूजका कथन यथार्थ और ईमानदारीके उद्धरण रूपमें द्रष्टव्य है—'अगरचे, हमारे पारस्परिक सम्बन्ध राजनीतिक दृष्टिकोणसे फिलहाल बहुत खराब हैं और खुदाने चाहा तो ऐसेही रहेंगे और जाइये आप जहन्नुममें... दूतावासीय दृष्टिकोणसे इस शूतरमुर्गके पुलाव को नोश कीजिये...' (पृ. १६४) निश्चितही आजकी यथार्थपरक मानसिकताका परिचायक है।

इस संकलनकी इन कहानियोंका कथ्य मानसिक एवं भावात्मक प्रक्रियाके गहरे संस्पर्श लिये हुए हैं। पहली कहानी 'आह, ए दोस्त' कहानीसे ही परम्परा तोड़कर उर्दूकी कहानी नयी तकनीक और शैलीकी इंगित करती है जिसमें अर्थहीन जिंदगीका अहसास व्यंजित होता है। तभी गहरी हुताशाकी इन्तहांपर कहानीमें एक ही बात है—जमानेके दुःखको भुला देने के लिए आओ आरेंज स्कॉश पियें' (पृ. १)। महादेव की जिंदगीकी तरह अपनी बीती कहानीको याद करने वाली (लेखिका) अपने निराशावादको आजके अल्ट्रा-फैशनका अंग बताती है। (पृ. ३) जबकि 'कलन्दर' कहानीभी प्रतीकात्मक ढंगसे आगे बढ़ती है जिसमें इकबाल वरक्त सक्सेनाकी सादगी, आत्मविश्वास दूसरोंके लिए जीनेकी कामनाका सीधा-सा अर्थ मानवता है, तभी वह तमाम लोगोंकी समस्याओंका समाधान रखता है। खुदकी सहनशीलताका स्रोत भी मानवीय रिश्तोंमें आँकता है। परन्तु सब तरहसे टूट चुके इकबाल अपने आपको छिपाये रखते हैं। क्योंकि वे जानते हैं—दुनियां में इतना ज्यादा द्वेष और फूट है कि सब लोग एक दूसरेकी जानको आये हुए हैं। (पृ. १२)। इसलिए वे कुछ दुखी आत्माओंको थोड़ी-सी शान्ति दे सकनेमें कोई हर्ज नहीं समझते। (पृ. २२)।

कहना न होगा कि सुश्री कुरंतुल आधुनिक जीवन के यथार्थकी कहानियां लेकर उर्दू साहित्यमें आती हैं। वे स्वयं नारी हैं और समाज में नारीकी कमजोरी और 'प्रकर'—जून ६२—३०

बेबसीको, पूरी सच्चाईको, ईमानदारीके साथ पेश करने में पीछे नहीं हैं। 'कार्मेन' कहानीमें एक गरीब लड़कीको धनाढ्य युवक द्वारा शोषित किये जानेकी कहानी बहुत ही आकर्षक ढंगसे पेश करती हैं। जबकि 'फोटोग्राफर' का फोटोग्राफर गेस्ट हाउसमें आनेवाले प्रत्येक मुसाफिरको देख—बड़ी आशा और धैर्यके साथ अपना कैमरा सम्भाले बागकी सड़कपर टहलने लगता है। (पृ. ३५) क्योंकि—'फोटोग्राफरके कैमरेकी आंख सब देखती और खामोश रहती है।' (पृ. ३६)। फिलॉसफीकी बातें कहनावाला फोटोग्राफर जब पन्द्रह वर्ष बाद अपनी पुरानी ग्राहिकाको पहचान नहीं पाता, मगर वह महिला उसे पहचानकर उसके कहे शब्द जब दुहराती है तो निस्पृह फोटोग्राफर इतनाही कह पाता है—जिंदगी इंसानोंको खा गयी। (पृ. ४०) 'छुटे असोर' कहानी स्वतंत्रता प्रेमियोंके स्वाधीनता आन्दोलनमें भाग लेने और अण्डमान जेलके काले पानीमें भोगे गये त्रासदीकी वर्णनात्मक स्थितिमें गहरी वेदनाका संकेत करती हैं, जो मानवीय सम्बेदन कहाजा सकता है।

'पतझड़की आवाज' तनवीर फातिमाके अनुभवों और उसकी विशेष मानसिकताकी कहानी है, जिसके कारण उसमें एकके बाद एक तीन पुरुष दौपत्य जीवन बितानेके बाद वह पहले पुरुषके साथ विवाह न करनेके निर्णयके बादभी जिंदगी भर उसे याद करती है और अपनी सबसे बड़ी गलती मानती है कि मैंने तो कभी किसीसे फिल टैं तक न किया—खुशबक्त सिंह! तुम्हें अब मुझसे मतलब?" (पृ. ६७) 'जुगनुओंकी दुनिया' अतीतसे वर्तमानकी स्मृतियोंका विवरण लिये हुए है। जिसमें शैशवका भोलापन कबका मिट चुकता है। ठीक ऐसीही कहानी 'हाजी गुलबाब बेतकाशी और 'कुलीन' भी वर्तमानमें अतीत और अर्तातसे वर्तमान तककी यात्राएं हैं जिनमें गहन पीड़ा और व्यथाकी कूचीका रंग साफ-साफ दिखायी देता है। 'सेण्ट फ्लोरा आफ जाजिया', 'जिन बोलो तारा-तारा' और 'कोहरेके पीछे' कहानियांभी वर्तमानमें अतीतके गहरे घाव, सदमे, दुःख-दर्दके सारे दबे छिपे रहस्योंके सजीव स्मृति-खण्ड हैं जिसमें चाहे तो 'फ्लोरा' हो, चाहे 'दुलारे चाचा' और चाहे 'कैथरीन वोल्टन' या 'फादर ग्रेगरी' सभी अतीत की यात्रासे निकलते हुए वर्तमान युगकी सामाजिकता और विसंगतियोंके परिवेशको उजागर करनेकी सफल ईमानदार कोशिशका सफल परिणाम हैं। इसके लिए



सुश्री कुरंतुलको साधुवाद ।

इन कहानियोंमें पीडित-शोषित समाज, संक्रमित परिवेशमें विगतकी स्मृतियोंकी श्रेणियोंमें उत्कीर्ण सौन्दर्यका चित्रण, मानवीय रिश्तोंके बीचका बिखराव और इन सारी विसंगतियोंके बीच कहीं न कहीं पकड़में आते हुए मानवताके सूत्र कहानियोंमें जीवन्तता बुनते हैं और इस बुनाईमें सुश्री कुरंतुल ऐन हैदरका अपना मुहावरा, कथ्यकी तराश, तकनीककी नूतनता, भाषा एवं शैली, आदिने उद्गूँ कहानीका प्रतिष्ठित कथाकार का सम्मान दिलानेमें भरपूर योगदान किया है। अतः उन्हें हिन्दी कहानी जगत्में इस आलोच्य कृतिके माध्यम से निश्चितही उचित आदर प्राप्त होगा । □

### मर्यादित ?

लेखक : हरदर्शन सहगल

समीक्षक : डॉ. यशपाल वंद

हरदर्शन सहगल अर्सेसे लिख रहे हैं और उनकी अपनी पहचान है, पहचानका आधार उनकी ऐसी कहानियां हैं जिनमें जीवनकी सही पकड़ है और छोटी-छोटी बातोंसे जीवन बनता बिगड़ता बीतता चला जाता है और कहीं किसी-न-किसी कोनेमें दर्द छोड़ता है तो मन रिसता है, बुझता है और फिरभी जीवनमें जिन्दा रहनेकी ललक बनी रहती है। मानवीय सम्बन्धोंका चित्रण करनेवाले कहानीकारोंमें, निस्सन्देह हरदर्शन सहगल जैसे ईमानदार कथाकारोंका स्थान सम्मान-पूर्वक लिया जायेगा ।

‘मर्यादित’ कहानी संग्रहमें सतरह कहानियां संकलित हैं । कहानीके प्रचलित मुहावरेसे अपने-आपको अलगाती हुई ये कहानियां इस बातके लिए प्रेरित करती हैं कि इन्हें पढ़नेके बाद इनपर कुछ-न-कुछ अवश्य कहा जाये जबकि कुछ कहना सहज नहीं क्योंकि ये कहानियां उस कोटिकी हैं जिन्हें पढ़कर पाठक स्वयं अभिभूत हो साधारणीकरणकी स्थितिको पहुंच सकता है । कुछ कहानियां सुनाने या विश्लेषण करनेपर अपना अस्तित्व बनाये नहीं रख पातीं । यह सब बात इस

१. पका. : अनुराग प्रकाशन, १/१०७३ डी, महरोली, नयी दिल्ली-११००३० । पृष्ठ : १५५; क्रा. ६०; मूल्य : ५०.०० रु. ।

रूपमें कहीजा रही है कि ‘मर्यादित’ में संकलित अधिकांश कहानियां सामान्य होते हुएभी सशक्त हैं । सामान्यका यहां अर्थ सामान्य जीवनसे मध्यवर्गीय जीवन की रोजमर्राकी बातोंको सामने लाते हुए, जीवनकी जटिलताओं और अन्तर्द्वन्द्वोंको प्रस्तुत करनेमें सूक्ष्म है । प्रथम कहानी ‘मर्यादित’ जिसके आधारपर संकलन है—एक ऐसी कहानी है जिसमें रूमानीयतका सूक्ष्म रूप सामने आता है । आदमी प्यार पानेकी ललकमें मनसे कपटी, ऊपरसे मधुर होकर बातों-बातोंमें कुछ रस बटोर पाता है । सुनैना परकीया है और विनोद पारिवारिक सम्बन्धोंकी आड़में रस पैदा करता है, हंसी, खुली हंसी, मजाक—किन्तु सामाजिक मर्यादाका भय । मध्यवर्गीय परिवारोंके सम्बन्धोंमें प्यारका यह रस परिवारकी मर्यादाको बनायेभी रखता है । व्यक्तिके मन में जो घुमड़ता है, उसका सही प्रस्फुटन इस कहानीमें यथार्थ रूपमें सामने आता है । रोचकता और हंसी—पाठकको भी आयेगी तो इस कहानीकी सार्थकताको दशयिगी । ‘शादीकी सालगिरह’ मध्यवर्गीय मानसिकता और विवशताको इस रूपमें सामने लाती है कि आर्थिक पक्ष कमजोर होनेपर सामाजिक स्टेटसमें जो कुछ मिलता है, बाहरसे, घरमें शेष बचती है रिक्तता और वासीपन । जीवनका कटु यथार्थ इस कहानीमें बारीकी से सामने लाया गया है । ‘बिखराव’में भी आजके सम्बन्धोंमें अर्थके महत्त्वको दिखलाया गया है और कहानीकार इस पक्षको स्वाभाविक रूपसे सामने लानेमें सफल हैं कि किसीके दिलमें जो अनुभवोंके कारण आघात करता है, वह उसे वीतरागी भी बना देता है और कठोर और लापरवाह दिखायी देनेवाला व्यक्ति मनके भीतरसे अति कोमल होता है । ज़रम हरे हो जाते हैं तो दबा हुआ दुःख बाहर निकल आता है । ‘बिखराव’ एक ऐसी कहानी है जो पाठकको कुछ समझदार बननेके लिए सामग्री दे जाती है ।

‘वही मोड़’ ‘टूटते हुए पंख’ ‘भविष्याक्रान्त’ ऐसे रूपमें प्रभावित करनेवाली कहानियां हैं जिनमें जीवन के अनुभवोंकी आहट है और अकेलापन व्यक्तिके लिए कितना घातक सिद्ध हो सकता है, इसका सही वर्णन है । इन कहानियोंमें यथार्थपूर्ण फैंटेसीका सहारा लेकर कहानीकार सहगल तबीन प्रयोग करते दिखायी देते हैं ।

‘प्रहार’ कहानीमें आधुनिकता बोधका दर्शन है । शर्तपर शादी करना यदि लड़कीको रास नहीं आता



तो इसीमें उसकी सफलता है—क्योंकि इसीमें उसकी सही रूपमें जीत होती है। जीवनके बहुत महीन तन्तुको बुना गया है। इस कहानीमें।

हरदर्शन सहगल किसी मुहावरेके तहत कहानी नहीं लिखते, ऐसा उनकी अधिकांश कहानियोंसे प्रतीत होता है किन्तु, 'लाल तरंगें' इसमें एक अपवाद है और यह अपवाद कहानीकारकी सीमाओंपर लगा प्रश्नचिह्न न हटाता है और उन्हें औरभी समर्थ कहानीकार सिद्ध करता है। 'अन्धेरी' में फेंटेसीका रूप है। चारों ओर अन्धेरा, भीतर, बाहर। 'जड़ें' एक पुराने थीमपर लिखी सहज और सशक्त कहानी बन पड़ी है। भावुकता जीवनके लिए कुछ हदतक बहुत आवश्यक है। प्यारकी जड़ें मजबूत होनेपर गिले शिकवे हो सकते हैं और तब मनमुटाव दूर होनेपर प्यारका सागर उमड़ पड़ता है। सहगल अपनी कहानियोंमें रोचकताका विशेष ध्यान रखते दिखायी देते हैं और सेक्सके उस रूपको छोड़ नहीं

पाते जो जीवनमें चाहे-अनचाहे आजाता है। यह उनके कहानीकारका उज्ज्वल पक्ष है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषणका भी, जहां आवश्यक हो, वे सहारा ले लेते हैं—ऐसी एक कहानी है "जलना हुआ पुल", इस कहानीमें भाषा, बिम्ब, प्रतीक उनके कला पक्षकी ऊंचाईका उदाहरण हैं। 'बीच तूफान 'मर्म' और 'नये मोड़' कुछ हदतक उद्देश्यपूर्ण कहानियां होनेके कारण कहीं-कहीं बोझिल बन गयी हैं विशेषकर 'नये मोड़'।

'मर्यादित' कहानी संग्रहकी कहानियां इस बात का भी तकाजा करती हैं कि आजके साहित्य जगत्के मूल्यंकनमें यदि ऐसी कहानियां और ऐसे समर्थ कहानीकार, किन्हीं कारणोंसे, उपेक्षित रह जायें तो यह पाठकोंकी जानकारीके लिए सही साहित्यसे वंचित होना भी है। □

## नाटक : एकांकी

इला?

नाटककार : प्रभाकर श्रोत्रिय

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

नयी पीढ़ीके हिन्दी समीक्षकोंमें प्रभाकर श्रोत्रियने पहचान बनायी है। उनकी पहली प्रकाशित रचनात्मक कृति 'इला' से उनकी रचनात्मक क्षमताका परिचय भी मिलता है। अवश्यही उन्होंने इस नाटककी रचनाके पहले नाटक आदि अनेक विधाओंमें हाथ आजमाये होंगे। क्योंकि इस रचनामें एक अभ्यस्त हाथकी झलक मिलती है। कुछेक कमियोंके बावजूद 'इला' एक उल्लेखनीय नाट्य-कृति है।

१. प्रका. : प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६ । पृष्ठ : १३२; का. ५६; मूल्य : ३५.०० रु.।

'प्रका'—जून'६२—३२

'स्रोत' शीर्षकसे नाटककारने भूमिका प्रस्तुत की है जिसमें 'नाटककारने श्रीमद्भागवतके नवम स्कंधमें वर्णित सुद्युम्नकी कथाका उल्लेख किया है जो आलोच्य नाटककी आधार-वस्तु है। 'स्रोत'में वर्णित तथ्योंमें दो-तीन शंकास्पद होते हुए भी शेष महत्त्वपूर्ण हैं। भागवत के हैं तो ये 'तथ्य' आश्चर्यजनक हैं। इनके अनुसार मनु के हैं तो ये 'तथ्य' आश्चर्यजनक हैं। इनके अनुसार मनु सूर्य और संज्ञाके पुत्र थे (६-१-१३)। (६-१-११) में प्रकट किया गया है कि संज्ञा नामक स्त्रीसे मनुको दस पुत्र प्राप्त हुए थे। संज्ञा मनुकी माता थी अथवा, पत्नी? या कि श्रद्धाके स्थानपर संज्ञा छप गया है? भागवत देखनेपर इस शंकापर विचार होसकेगा जो इस अवसरपर हमारा कार्य नहीं है। अन्य कथाके अनुसार चन्द्रमाने बृहस्पतिकी पत्नी ताराका बलात् अपहरण किया था। इसलिए देवों और दानवोंमें भयानक संग्राम हुआ था (६-१४-५)। दानव किसके



लिए लड़े थे, चन्द्रमाके पक्षको लेकर ? नाटककी वस्तु इन शंकास्पद बातोंसे मुक्त है। इसलिए इसपर अधिक विचारकी यहाँ आवश्यकता नहीं है बस सूचना भर दी गयी है।

सुद्युम्नकी कथा इस प्रकार है—पुत्रकी कामनासे मनुने गुरु वसिष्ठके निर्देशपर 'पुत्र कामेष्टि' यज्ञ किया। मनुकी सहधर्मिणीकी कामना पुत्री पानेकी थी। यज्ञकी होताके रूपमें श्रद्धाने पुत्रीकी इच्छाके साथ आहुति दी। परिणामस्वरूप पुत्रीका जन्म हुआ। मनुको उत्तराधिकारीके लिए पुत्र चाहिये था। उसने गुरु वसिष्ठको प्रकृतिके विधानको बदलनेके लिए तैयार कर लिया। वसिष्ठने आदि पुरुष भगवान्को प्रसन्नकर इलाको सुद्युम्न बना लिया। किन्तु सुद्युम्नकी कायामें इलाका नारी-मन बना रहा। पूर्ण नारीको अर्द्धपुरुष बना तो लिया गया किन्तु एक द्वन्द्वग्रस्त व्यक्तित्व उभरकर सामने आया। कालान्तरमें सुद्युम्नका विवाह हुआ तथा उसके तीन पुत्र जन्मे।

एक समय मृगयाके लिए वनमें गया सुद्युम्न भटक कर सुमेरु पर्वतकी तलहटीके वनमें जा पहुँचा जो शिव-पार्वतीकी रमण भूमि थी। शिवके विधानके प्रभावसे सुद्युम्न सभी सहभोगियों सहित स्त्री बन गया। इला वनकर उसने चन्द्रमाके पुत्र बुधसे विवाह कर पुरूरवा को जन्म दिया। वसिष्ठने इला बने सुद्युम्नको खोजकर शिवकी स्तुति की। शिवने अपने विधानमें संशोधनकर निर्धारित किया कि वह एक माह पुरुष और एक माह स्त्रीके रूपमें पृथ्वीकी रक्षा करेगा। कुछ समय पश्चात् सुद्युम्नने इलाके रूपमें पाये अपने पुत्र पुरूरवाको राज्य सौंपकर वन-गमन किया। क्योंकि उसने अनुभव किया कि पुरूरवाको ही उसने सहज रूप से जन्म दिया था। शेष तीन पुत्र सुद्युम्नके थे जो स्वयं ही कृत्रिम व्यक्तित्व था।

पुरा कथामें निहित मनो-विचलनकी स्थितिको नाटककारने कुशलताके साथ उभारा है। 'अरे मायावी सरोवर' में शंकर शेषने ऐसीही परिस्थितिके निर्माण किये हैं किन्तु शेष मनोविश्लेषणकी गहनतामें नहीं गये हैं। इसलिए शेषके नाटकमें अनुभूतिका तीखापन नहीं है। इसके साथ ही नैसर्गिक प्रक्रियाको चुनौती देनेवाली विज्ञान-प्रदत्त मायावी लीलाकी असफलताकी गाथा प्रस्तुत करके प्रभाकर श्रोत्रियने एक चेतावनी भी प्रस्तुत की है। सुद्युम्नकी ट्रेजेडी प्रकारान्तरसे मानवकी

ट्रेजेडीकी झलक भी देती है।

'इला' का कथ्य सशक्त है तथा इसमें प्रस्तुत चिन्तनभी पर्याप्त पुष्ट है। किन्तु बौद्धिकताका मोह नाटककी गतिमें बाधक बन गया है। इससे मनो-विज्ञान तथा मानव मनकी हलचलके विश्लेषणका आधारभी कमजोर हुआ है। अंक चारका पांचवां दृश्य तो बहुत शिथिल होकर रह गया है। इसमें सुद्युम्नकी उक्तियाँ नाटक नहीं बन पायी हैं क्योंकि वे कोई दृश्यात्मक प्रभाव नहीं छोड़ती। दार्शनिक-चिन्तनको भी दृश्यात्मक गुणोंके साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। 'अरे मायावी सरोवर' में शंकर शेषने ऐसा सफलताके साथ किया है।

नाटकमें चिन्तनसे हमें परहेज नहीं है। किन्तु, अतिरिक्त बौद्धिकता जो नाटककी गतिशीलताको खण्डित करती है, उसको स्वीकार नहीं किया जा सकता। नाट्य समीक्षक वाल्टर कर ने 'हाउ नॉट टु राइट ए प्ले' में ऐसी बौद्धिकतापर विचार किया है तथा ऐसे चिन्तनको रंगमंचीय प्रभावको नष्ट करनेवाला बताया है। रेडियो नाटकमें चिन्तनकी अधिक गुंजाइश होती है तथापि वहाँभी इस प्रकारका चिन्तन भारी सिद्ध होगा, 'इला' तो रेडियो नाटक भी नहीं है।

'इला' में प्रकाशका महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके लिए श्रोत्रियजीने जिस जटिल विधानको प्रस्तुत किया है वह किसीभी रंगमंचके लिए कठिन कार्य होगा। एक उदाहरण प्रस्तुत है "(यौन-परिवर्तनकी प्रक्रियामें कुछ शुक्राणुओंके क्षरण, समीकरण; हारमोन्स ग्रन्थियों के नाश-निर्माणको दर्शानेवाली प्रकाश और ध्वनि व्यवस्था)"। इस निर्देशका पालन कोईभी रंगमंच कर सकेगा ? प्रकाशके बदलते स्वरूपोंसे कुछ प्रभाव उत्पन्नकर भी लिया जाये तो दर्शक कैसे समझेगा कि कौन-सा किरण हारमोन-ग्रन्थियोंको दर्शा रही हैं ? निश्चयही निर्देश एक अर्थहीन प्रयास बन गया है। इससे स्पष्ट है कि नाटककारने अभी रंगमंच सीमाओं पर ध्यान देना प्रारम्भ नहीं किया है।

'इला' में नये हिन्दी नाटककी वह विशेषता सामान्यसे अधिक दिखायी देती है जिसमें पुरा वृत्तोंमें गहन अर्थोंकी तलाशकी चेष्टा प्रमुख रही है, वह चेष्टा जो पुरा वृत्तको समकालीन सन्दर्भोंसे जोड़ती है। गहरे अर्थोंमें नाटकका कथ्य मानव-समाजको कलात्मक माध्यमसे दी गयी एक चेतावनी है कि प्रकृतिके साथ



अतिचारकी प्रवृत्ति अंततः उसके लिए घातक ही सिद्ध होगी। इस प्रकार नाटकका कथ्य गंभीर तथा प्रासंगिक है। कुछेक स्थलोंको छोड़कर 'इला' नाटकके रूपमें पर्याप्त कुशल रचना है। नाटकोंके पाठक प्रभाकर श्रोत्रियसे औरभी नाटकोंकी अपेक्षा रखेंगे। □

## सूत्रधार<sup>१</sup>

एकांकीकार : सुधीन्द्रकुमार

समीक्षक : डॉ. नरनारायण राय

'सूत्रधार' सुधीन्द्रकुमारके एकांकियोंका दूसरा संग्रह है। इस संग्रहमें सुधीन्द्रजीके तेरह एकांकी संकलित है। अंतिम पड़ावका दर्द, अभिनन्दन, कविकी दुनियाँ, गिरगिट, दायरेके भीतर बाहर, दीवारें, न्याय, यन्त्र युग, लाइलाज बीमार, शोध विधाता, साक्षात्कार, सूत्रधार, तथा हंसी हंसीमें संकलित एकांकियोंके शीर्षक हैं। एकांकियोंके विषय क्षेत्रोंमें विविधता है। कोई नवीन शिल्पगत प्रयोग नहीं दिखायी पड़ता। मोटे तौर पर संग्रहके एकांकी आजकी एकांकी रचना-धाराकी परंपराके हैं जिनमें विषयवस्तुके समकालीन सन्दर्भ प्रतिबिम्बित होते हैं।

संग्रहकी प्रथम रचना 'अन्तिम पड़ावका दर्द' वृद्ध माता-पिताके उस दर्दको उभारता है जो उनमें तब पैदा होता है जब वे महसूस करते हैं अपने सम्पन्न पुत्रों, उनके परिवारके लिए वे बोझ हो गये हैं। कहीं गहरे यह 'जेनरेशन गैप' से उपजा दर्द भी है। 'अभिनन्दन' एकांकी विश्वविद्यालय विभागाध्यक्षोंकी आत्मश्लाघा लोलुपता और शोषणवृत्तिको अनावृत करनेवाली रचना है। 'कविकी दुनियाँ' एकांकीका फक्कड़ कवि थोड़ी-सी चापलूसीसे ही खिलकर अपनी कविताएं दान कर देता है और महाजनोंसे उधार खाकर दिन बिताता है। एक दिन उसकी पत्नी विद्रोह कर देती है, चापलूस दोस्तकी अच्छी 'खातिर' करनेके बाद वह कविको लेकर शहरसे गांव चल पड़ती है जहाँ दो जूनकी रोटी शान्तिसे मयस्सर हो सकेगी। 'गिरगिट' एकांकी एक स्वार्थी प्रेमीके बदलते हुए रंग दिखाता है और अंतमें

उसे बदरंग हुआभी, जब उसकी पोल खुल जाती है। 'दीवारें' एकांकी आजके जमानेमें रूढ़ितावादीकी दीवारों के गिरते जानेका आभास दिलाता है जब पिता अपनी पुत्री द्वारा स्वयंवर चुन लिये जानेपर सहज ही अपनी सहमति दे देते हैं। 'न्याय' एकांकीमें भ्रष्ट व्यवस्थासे संघर्ष करनेवाले एक युवकके संघर्षका वर्णन है जिसके संघर्षकी आधारभूमि है 'न्याय'। 'यन्त्रयुग' में भविष्य के विनाशकारी युद्धोंमें मानव जातिके संभावित विनाश और युद्धकी विभीषिकाके काल्पनिक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। अगला एकांकी 'लाइलाज बीमार' एक वहमी पिताके लाइलाज मर्जकी कहानी कहता है जिसे जीवनके किसी संदर्भका सकारात्मक पक्ष कभी दिखायी ही नहीं पड़ता। 'शोध विधाता' एकांकीमें विश्वविद्यालयके एक ऐसे शोध निर्देशककी जानकारी मिलती है जो अपने शोध छात्रोंका शोषण तो करते ही हैं छात्राओंके साथ अभद्र व्यवहार करनेमें भी नहीं हिचकते। 'साक्षात्कार' एकांकी में एक साक्षात्कारकी हास्यापद घटनाओं और संवादों द्वारा हास्य सम्पन्न करनेका प्रयत्न किया गया है। 'सूत्रधार' एक घूसघोर और भ्रष्ट नेताके अंतमें पुलिस द्वारा गिरफ्तार होनेकी घटनापर आधारित एकांकी है जिसके माध्यमसे राजनीतिकी सड़ांध व्यक्त की गयी है। 'हंसी हंसी में' एक फुलझड़ी किस्मकी रचना है और संक्षिप्त होनेके कारण एक झलकीकी तरह। संग्रहकी एक रचना 'दायरेके भीतर बाहर' वस्तुतः रेडियो एकांकी है। शेष मंचीय रचनाएं।

इस संग्रहके ६ (नौ) एकांकी नाटककारके १९८० में प्रकाशित संग्रह 'चारदीवारीके पार' में पूर्व प्रकाशित हैं। साक्षात्कार, सूत्रधार, शोध विधाता, गिरगिट, यन्त्र युग एकांकी इसी शीर्षकसे इस नये संग्रहमें आये हैं पर जनसेवकका न्याय 'न्याय' शीर्षकसे, कवि 'कविकी दुनियाँ' शीर्षकसे, वहमी 'लाइलाज बीमार' शीर्षक से और रेडियो एकांकी चारदीवारीके पार 'दायरेके भीतर बाहर' शीर्षकसे नये संग्रहमें प्रकाशित हैं। इस प्रकार इस संग्रहमें अंतिम पड़ावका दर्द, अभिनन्दन, दीवारें, और हंसी हंसी में—केवल यही चार नयी रचनाएं सामने आ पायी हैं जिनका सृजन संभवतः १९८० से १९९० के भीतर हुआ है।

संग्रहके अधिकांश एकांकी हास्य व्यंग्यकी चासनी में पगे हुए, रोचक और मंचीय दृष्टिसे सुकर नाटक हैं। □

१. प्रका. : कादम्बरी प्रकाशन, नयी चन्द्रावल, जवा-  
हर नगर, बिल्ली-७ पृष्ठ : १६०; का. ९१;  
मूल्य : ४५.०० रु.।

प्रकर—जून ९२—३४



## व्यंग्य-विनोद

मनी प्लॉट?

लेखक : डॉ. जितेन्द्र सहाय

समीक्षक : डॉ. श्यामसुन्दर घोष

‘मनी प्लॉट’ डॉ. जितेन्द्र सहायके व्यक्तिगत व्यंग्य निबन्धोंका पहला संकलन है। इसमें पहले वे कई नाटक और एकांकी लिख चुके हैं और वे अभिनीत भी हो चुके हैं। इस रूपमें वे नाटककारके रूपमें ख्यात और स्थापित है। नाटक और एकांकी, मेरे विचारसे, केवल साहित्यिक कारणोंसे नहीं लिखे जाते। उसके साहित्येतर कारण भी होते हैं। यदि आप रंगमंचसे जुड़े हैं, रंगकर्मियोंसे आपके संबंध हैं, तो उनके कहनेपर भी नाटक लिख सकते हैं क्योंकि उसके अभिनीत होनेकी गारंटी है। यदि आपका सामाजिक व्यक्तित्व ऐसा है, यदि आपके सामाजिक संबंध ऐसे हैं कि उसका एक प्रभाव-वृत्त है, तो भी आपको नाटक लिखनेकी सुविधा है। नाटक एक सामूहिक कला है। इसलिए उसके दोष व्यक्ति-दोष न रहकर समूहकी साझेदारी और सक्रियतासे ढकभी जाते हैं। पर गद्यमें और वह भी ललित और व्यक्तिगत गद्यमें लेखक अपने निष्कवच रूप में उपस्थित होता है। इसलिए उससे उसकी परख पूर्ण रूपमें होनेकी सम्भावना रहती है। तुलनात्मक रूपसे विचार करनेपर ऐसा लगता है कि वे अपने निबन्धोंमें श्यामा सुन्दर और प्रभावशाली रूपमें उपस्थित होते हैं। इस पहली पुस्तकमें ही उनकी कुछ विशेषताएं उजागर हैं।

पहली बात तो यह कि डॉ. सहायको असंगतिकी पहचान है और वे अपनी इस पहचानको चुभती हुई भाषामें व्यक्त कर सकते हैं। यह पहचान वे विविध रूपमें करते हैं—स्वयंभी और उनके द्वारा सृजित पात्र

१. प्रका. : जगताराम एंड संस, मेन रोड गांधीनगर, दिल्ली-३१। पृष्ठ : १३८; का. ६०; मूल्य : ५०.०० रु.।

भी। ये उन्हींके पात्र है जो कह सकते हैं कि “बजरंग-बली आज भी जागृत देवता हैं, उनके चित्रवाले टिनका शौचके लिए इस्तेमाल पाप है, अशोभनीय और अनुचित है।” लेखकको यह बात खटकती है कि भगवान् सूर्य किरासन तेलका विज्ञापन कर रहे हैं तो विघ्नेश गणेश सरसों तेल, घी और बीड़ीके प्रचार-प्रसारजन्य विघ्नोंका नाश करते दिखायी देते हैं। लेखक इसके व्योरे में जाता है और फिर बड़ी निरामिष भाषामें सूक्ष्म व्यंग्यका नशतर लगाता है—“हम लोगोंने राजनीति, व्यापार, धर्म आदिको मिलाकर पूरा गड़बड़ झाला तैयार किया है और वह भी ईमानदार मुद्रामें।”

डॉ. सहायकी रचनाओंमें व्यंग्य दृष्टि यत्र-तत्र-सर्वत्र हैं पर वह आजके-से व्यंग्यकी भांति आक्रामक और ‘चमड़ी उधेड़ू’ नहीं हैं। यह डॉ. सहायकी विशेषता है वे व्यंग्य कभी-कभी इस सादगीसे करते हैं कि समझमें नहीं आता कि वे व्यंग्य कर रहे हैं या बखान कर रहे हैं। जैसे जनता भी जनहितका प्रश्न नहीं उठा सकती, और जन प्रतिनिधि तो उठानेसे रहे’ या ‘देवत्व बाजार भाव तथा अर्थ संचारणका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण भारतीय बाजारमें है’ यहाँ व्यंग्यका एक ऐसा प्रच्छन्न रूप है कि इसे कुछ लोग व्यंग्य नहीं भी मानेंगे। पर यहाँ दृष्टि व्यंग्यकारकी ही है, अर्थशास्त्रीकी नहीं। ऐसा नहीं है कि उनमें सभी स्थानोंपर व्यंग्यकी ऐसीही सहज निर्दोष गहन दृष्टि है। वे ज़रूरत पड़ने पर यह भी कह सकते हैं कि “इन्द्र अप्सराओंके साथ रंगरेलियां मनाते हुए भी लाल तिकोनका झंडा ऊंचा रखते हैं। या रिटायर्ड लोगोंके लिए—“होटल, मुर्गी-अंडे, मांस-मछली सब छूट गयी। अब दोनों प्राणी विशुद्ध वेजीटेरियन हैं।” व्यंग्य यहाँ भी है, पर इसका अंदाज अलग है।

डॉ. सहाय व्यंग्य कई प्रकारसे प्रत्यक्ष करते हैं शब्द प्रयोगसे लेकर नये मुहावरों, कहावतोंके कथन और सृजन तथा साहित्यिक उक्तियों, सन्दर्भों और कृतियों,



पंक्तियोंके उल्लेख द्वारा भी। इसलिए वे होलीको 'अनहोली' नहीं होने देना चाहते या 'एमेम्बली' के बारे में कहते हैं जिसका आरम्भही Ass है उससे उम्मीद ही क्या कीजा सकती है। वे समाजवादको इस रूपमें लेते हैं पहले स्वयं, समाज बादमें। इस प्रकार 'राष्ट्र लाल कार्ड बनकर रह गया' 'अंग्रेजीका कागजफाड़ पक्षपात' 'अपार पैसे और मेहनत लगाकर कौंध भर चकाचौंध पैदा करना', 'निराभिष आदतें', 'व्यक्ति और आदतोंमें साधु और कोपीनका संबंध', 'आदतोंसे पंजे लड़ते रहना', 'बहुरूपा हृदयहीनता', 'नामजद हृदयहीन', 'व्यभिचारी मंत्री' आदिके मूलमें भी व्यंग्यात्मक अंदाज ही हैं।

आधुनिक बुद्धिवादी युगमें देवताओंके महत्त्वका लोप और फिर विज्ञापनों द्वारा उनके प्रचार-प्रसारपर "रूखी टी यह डाल बसन वासन्ती लेगी।" पैरवीके बारेमें यह कहना कि 'यह विशुद्ध भारतीय जीवन पद्धतिका अंग है, प्रयोगवादकी भांति कोई पाश्चात्य प्रभाव नहीं' या कलाको "एक प्रकारका झूठा सच" कहना या 'अवकाशप्राप्त लोग देखी-भोगी स्मृतियोंसे नयी स्फूर्ति क्यों नहीं पा सकते जबकि 'मेघदूत' का यक्ष अलकापुरीके पुराने उल्लासपूर्ण संस्मरणोंके सहारे निर्वासन कालमें भी उत्तेजना पाता रहा', या 'माफ कीजियेगा' कहते हुए कुछके नेत्रोंमें जो कर्षणा भाव दिखता है, जो विनयशीलता झलकती है उसके सामने गोस्वामी तुलसीदासके विनयके पदभी फीके पड़ जाते हैं' या पंतजी के 'पल-पल परिवर्तित प्रकृतिवेश' के स्थानपर 'पल-पल परिवर्तित हृदय-देश' की कल्पना या गुसल गायकीके गुल खिलानेपर 'अकविताकी तरह असंगीतका दौरदौरा अवश्यम्भावी है' कहना और मानना या 'श्रीमतीजीकी सहेलीके बार-बार न आनेपर उनका भगवतीचरण वमकिके उपन्यास 'वह फिर नहीं आयी कहना'में जो व्यंग्यात्मक साहित्यिक सौन्दर्य है वह सभी नहीं समझ सकते।

इन निबन्धोंकी दुनियां बहुरंगी और बहुरूपी है। यहां आपको भांति-भांतिके लोग मिलेंगे एक बड़े आदमी हैं जिन्हें बीबीकी अपेक्षा कुत्तेके साथ सोनेकी आदत है, ऐसे मरीज हैं जो सोचते हैं 'डायटिंग डाक्टर करे, जैसे सर्ती साधवी अपने पतिके लिए व्रत रखती है, ऐसे रईस हैं जो पानका जोड़ा खाते हैं, सिंगल पानको हिकारतकी नजरसे देखते हैं, ऐसे डाक्टर हैं जिनके हृदय

'प्रकर'—जून ६२—३६

नहीं हैं पर उन्होंने बाहर 'हर्ट-स्पेशलिस्ट' की तख्ती लटका रखी है। ऐसे शिक्षक हैं जो 'स्टडी लीव' का मतलब पढ़ाईसे अवकाश लेते हैं। ये शिक्षा-खरीदों शिक्षा-बेचोंके चैंम्पियन हैं। कुछके लिए कालेज पत्नी है, कोचिंग प्रेमिका, कुछ बेचारे कुलपति हैं जिनके पास दयाकी शक्ति भी नहीं है। कारखानेके फिट्टरके पैसे बचाकर धर्मका काम करते, प्रदूषण बढ़ाते उद्योगपति हैं; हमेशा खूनी लाल रंगकी साड़ी और ब्लाऊज पहननेवाली श्रीमती हैं। गन्दे रूमालोंकी सफाईके ब्रह्मे पाकेटकी सफाई करती पत्नियां हैं, विधानसभाई आश्वासन देते सगे-संबंधी हैं, पत्नीके 'पीड़ा' पुराणकी बात सुन हल सुझाते शकुन शास्त्री हैं। ये कुछ थोड़ेसे लोग जो मुझे याद रह गये हैं उनका व्यौरा है। ढूंढ़ने पर कुछ औरभी मिल सकते हैं।

लेखकने स्थान-स्थानपर हेजलिट, डेल कार्नेगी, वर्टेण्ड रसेल, रवीन्द्रनाथ, बंकिमचन्द्र, तोल्सताय, मोहम्मद रजा पहलवी, उनकी पत्नी सुरैया, संत एकनाथ, वाल्टेयर, समरसेट मॉम, बर्नडि शॉ, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, भरत, मम्मट, आनन्दवर्द्धन कार्मिगज, पी. जी. घुडहाउस आदिके भी उल्लेख किये हैं। इससे उनके अधीत होनेका पता चलता है। साथही पुराने धार्मिक संदर्भोंकी जो नवीन व्यंग्यात्मक व्याख्याएं हैं—यथा "हम लोग देव-देवियोंको जो भोग लगाते हैं फल, फूल, मिठाइयां—वे प्रसादके विभिन्न रूपमें डालियां नहीं तो और क्या हैं?—मुझे तो लगता है कि वैदिक स्तुतियां आधुनिक पैरवीका महिमामंडित भास्वर एवं परम विराट् प्राचीन रूप ही हैं—वहभी लेखकके सूक्ष्म व्यंग्यात्मक और खोजी मानसका पता देते हैं।

जहाँ-तहाँ लेखकने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अभिनिर्देशोंका भी परिचय दिया है। उन्होंने प्रशंसाको इस रूपमें लिया है कि 'वह व्यक्तिके अहंको सामान्य तलसे उठाकर उच्च तलपर पहुंचा देती है जहांपर वह असहज मानवताकी भावनाओंसे भर जाता है।' ऐसाही सूक्ष्म विश्लेषण व्यक्तिकी महत्त्वाकांक्षाका है—"हर व्यक्ति चाहता है कि वह महत्त्वपूर्ण व्यक्तिके रूपमें समाजमें स्वीकृत हो। यदि उससे लाभ उठानेके इरादेसे ही सही, उसके आगे तनिक झुककर कोई कहता है—'माफ कीजियेगा' तो उसके भीतर महत्त्वपूर्ण स्वीकृति किये जानेकी जो लालसा खिलती रहती है, उसे तुष्टि मिलती



है।" ऐसे स्थलोंपर व्यंग्य नहीं है, पर विश्लेषणकी बारीकी तो है ही। हां, डॉ. सहायके लेखनमें ऐसे स्थल भी जरूर हैं जहां व्यंग्य और विश्लेषणजन्य बारीकी दोनों हैं जैसे वे गुसलखानेको अत्यन्त जागृतपीठ तो मानते हैं, एक ऐसी जगह भी मानते हैं जहां आदमी केवल अपने कपड़े ही नहीं उतारता बल्कि उन कपड़ोंके साथ मानवीय संस्कृति सभ्यता द्वारा विकसित सारी वनंताओंके लबादे भी उतार फेंकता है।" लेखक गुसलखानाको 'मैं' खाना भी कहते हैं। गुसलखानेमें गानेके रहस्यको वे इस प्रकार स्पष्ट करते हैं—“मनुष्यने जब-जब जल प्रवाह, जल प्रपात या जल वर्षण देखा है उसके मनका सोया संगीतज्ञ अथवा कवि जाग पड़ा है।”

अंतमें आइये लेखकके उक्ति-सौन्दर्यपर—पैरवी अलग रहकर भी घट-घट व्यापी है, अत्याधुनिक हिप्पी होते हुए भी वैदिक ऋचा भी है।... भगवान्से बढ़कर पैरवीकी कृपा हुई तो पलक मारते राईसे पर्वत होंगये और तिलसे ताड़।... पैरवी अनवरत कर्मकी शृंखला है। पैरवी पहाड़ी नदीके उस सोतेके समान है जो बड़े-बड़े पर्वत काटकर राह बनाती हुई, अपने लक्ष्यपर पहुंचती है।... बिना 'कार' के ठीक पैरवी हो ही नहीं सकती... इसकी दुधारी तलवारपर 'खुशामद' और 'उपाहार' की मान चढ़ी रहती है।... लोग 'भूस' को पैरवीकी काटके रूपमें प्रयोग करते हैं और दुःखका विषय है कि अपराजिता पैरवी यहां मात खा जाती है।... पैरवी कला और विज्ञानसे संयुक्त टेकनिक है।... पैरवी आरम्भसे ही लज्जाली रही है, वह एकांतमें ही वरदानदातासे मिलना चाहती है, प्रतिपक्षी या सौतके सामने सितपिटाई रहती है, ... प्रदूषणकी चपेटमें बेचारी पैरवी भी पड़ गयी है। पैरवी इस शतीकी महादेवी है। पैरवीकी भैरवी गुंजायमान होती रहे।... निश्छलतामें जहां कलाका अभाव है, उत्तम छलमें इसकी पराकाष्ठा।... सभ्यताके विकासका अर्थ है ढोंग रचानेकी कलाका विकास। आधुनिक सभ्यता ढोंगकी प्रशिक्षणशाला है।... ढोंग आधुनिक संस्कृति-वाटिकाका वह मनोहर फूल है जिसकी प्रत्येक पंखुड़ीमें अपार सुषमा और कला है। अवकाशप्राप्त लोगोंमें ही सच्ची भारतीयता है, क्योंकि इनमें अविचल एकरसता है, परम्परा प्रेम है, अध्यात्म है।... ब्लाऊजको फैशनका राहु ग्रसता जा रहा है। काशी तो रिटायरोंका 'रिट्रीट' है, अवकाश प्राप्त लोगोंकी 'अलका' है।... रिटायर्ड लोग परिवार-

पड़ोस, मुहल्ले समाजके पुलिसमेन हैं, वाच एण्ड वाइ है, बाडीगार्ड हैं।... आधुनिकताके त्रिकोण—जीवन बीमा, लाल तिकोन, बदलते फैशन... पति-पत्नीका झगड़ा चन्दनपानीका रगड़ा ही तो है... पत्नियाँ जीवनके दैनिक व्यवहारमें हर क्षण डंडी मारती रहती हैं।... लतोंकी लतिका अमरलताकी तरह हैं।... भ्रष्टाचार तो आजका विश्वजनीन परिदृश्य है। अपने देशको उसका आरक्षित हिस्सा ही तो प्राप्त है। ऐसी अनेक उक्तियोंसे पता चलता है कि डॉ. सहाय मर्मकथनके कितने धनी और चोट करने और चुटकी लेनेकी कला में कितने माहिर हैं। विश्वास है ललित व्यंग्यके क्षेत्र में सृजनरत रहकर डॉ. सहाय और भी सुन्दर कृतियाँ, हिन्दीको देंगे। □

## विष-कन्या?

व्यंग्यकार : रवीन्द्रनाथ त्यागी

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

'विषकन्या' रवीन्द्रनाथ त्यागीके सत्ताईस लेखोंका संग्रह है जो इसी शीर्षकके लेखपर आधारित है। इन लेखोंको हास्य-व्यंग्यका प्रकट किया गया है। किन्तु, 'कुछ सरकारी संस्मरण', 'मेरी रचना-प्रक्रिया', 'मेरे मुहल्लेदार', जिन मकानोंमें खाकसार रहा', 'मेरे कुछ दिलचस्प रिश्तेदार', 'सम्पादकोंकी यादमें' आदि अनेक लेखोंमें संस्मरण-शैलीमें हास्य तथा कभी-कभी व्यंग्यके छींटेभर ही उछाले गये हैं। इनमें भी प्रथम दोमें न हास्य है और न व्यंग्य। अधिकसे अधिक स्मित हास्य की झलक मिलती है जो लेखकके अपने खास अन्दाजकी अनिवार्यता है।

त्यागीजीके लेखनमें विषय-वस्तुसे अधिक प्रधानता उनके अपने 'मूड' की दिखायी देती है। पुस्तकके पहले लेख 'विषकन्या' को ही लें। दिल चुरानेवालीसे बात प्रारंभ होकर पामेला सिंह (बोर्ड्स) पर समाप्त होती है। इस समान थीमके बीच अस्पतालमें रोगीके गुर्दे चुराने, अमरीकी राष्ट्रपति बुशकी पत्नीका पशुप्रेम, घटिया लोगोंको 'साहित्यके डाक्टर' की मानद उपाधि दिये जानेपर रुष्ट व्यक्तियों द्वारा दीक्षान्त समारोहके

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। पृष्ठ :

११८ + ६; डिमा. ६०; मूल्य : ४५.०० रु।



आयोजन तथा उसमें गाउन पहनाकर एक गधेको यह उपाधि देने, विधान-सभाओं तथा संसदमें सदस्यों द्वारा गुल-गपाड़ा करनेसे लेकर हाथापाई करने आदि प्रसंग उठाये गये हैं। इसी प्रकार कुछ लेख ऐसे हैं जिनमें पूरी तरह अनेक स्वतन्त्र विषयोंपर स्वतन्त्र लेखन है। 'बिहार, जनसंख्या और प्रेमगीत', संगीत, 'प्रकाशक व कुबेर', 'नोबिल प्राइज, पद्माकर और प्रेमविवाह' आदिमें एक-एक लेखमें तीन-तीन विषयोंपर लिखा गया है तथा हरेक विषय स्वतन्त्र शीर्षकके साथ है। सभी लेख धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, सण्डे साप्ताहिक, नवभारत टाइम्स, सारिका, रविवार आदि में प्रकाशित हुए हैं। तीन असम्बद्ध विषयोंको एक लेख बनानेकी चेष्टासे स्पष्ट है कि किसी एकमें इतनी सामग्री नहीं थी कि आकारकी मांगको पूरा कर सके। विषय-वस्तुकी प्रधानता होती तो यह न होता।

त्यागीजी कवि भी हैं। अपना लेखकीय जीवन उन्होंने काव्य-रचनासे प्रारम्भ किया था। उनकी अबतक छः कविता पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अपने गद्य-लेखन में भी वे काव्य-प्रेमका प्रदर्शन करते हैं। कबीर, इक-बाल, अकबर इलाहाबादी, निराला, पंत, फिराक, चिर-कीन आदिकी पंक्तियों, कभी-कभी संस्कृतकी सूक्तियां प्रयोगमें लायी गयी हैं। इससे उनके लेख सरस तो हुए हैं किन्तु किसी केन्द्रीय विचारके अभावमें कुछ समय तक प्रभाव छोड़नेमें अक्षम सिद्ध हुए हैं। व्यापक अध्य-यनके परिचयभी वे देते हैं किन्तु संकलित सामग्री किसी व्यवस्थित योजनाके अभावमें चमत्कार-प्रदर्शन बनकर रह गयी है। किन्तु, इसका यह अर्थ नहीं है कि उनका व्यंग्य भोथरा है। जहाँ वे सावधान रहे हैं वहाँ उन्होंने बड़े सटीक व्यंग्यभी किये हैं। केन्द्रीय वस्तुके अभावके बावजूद वे गहरी चोट कर गये हैं। तीन उदाहरणों द्वारा हम अपनी बात स्पष्ट करना चाहेंगे :—

“मेरे एक मित्र हैं जिनके जीवनका एकमात्र ध्येय है भाषण देना। यदि भाषण दिये बिना एक दिनभी गुजर जाये तो इनको अपना जीवन व्यर्थ लगने लगता है।”

“इस देशमें लाल तिकोन कभी नहीं चलेगा। इसमें तो चन्दन लगाये शास्त्र पढ़ते हुए ‘चौकोन पुरो-हित’ ही चलेंगे जो जीते-जी राष्ट्रके श्राद्धका पूरा प्रबंध कर देंगे।”

“जूते पालिश करना सदासे एक फलदायी धन्धा रहा है। इसी कारण आप राजधानी चले जाइये और देखिये कि हर बड़ा आदमी अपनेसे बड़े आदमीका जूता पालिश करनेको चौबीस घण्टे तैयार रहता है...”

पुस्तकके फलपपर रवीन्द्रनाथ त्यागीके लेखोंपर अनेक विद्वानोंकी टिप्पणियोंके अंश उद्धृत हैं। परसाई जीने उनके लेखनमें श्रेष्ठ व्यंग्य देखा है। प्रस्तुत निबंधों से तो यह मत पुष्ट नहीं होता। इन लेखोंमें त्यागीजी के मौजी व्यक्तित्वकी झलकही मिलती है जो मनकी तरंग के अनुसार है। उनकी रचनाओंमें केन्द्रीय-विचार या किसी सुनिश्चित उद्देश्यको खोज पाना कठिन है। श्रेष्ठ व्यंग्य-लेखक मनकी मौजसे नहीं बल्कि किसी सुनिश्चित उद्देश्यसे अनुशासित हुआ करता है। त्यागीजीके पास शब्द चातुर्य है, व्यापक अध्ययन है, जीवनके बहुमुखी अनुभव हैं किन्तु व्यंग्य-लेखनके लिए अत्यावश्यक आक्रामकता कदाचित् ही मिले। हास्यके लिए भी सुनिश्चित योजना आवश्यक हुआ करती है। अंग्रेजी हास्य-कथा-कार पी. जी. वुडहाऊस अथवा रिचार्ड गौडन आदि योजना बनाकर रचनाका रूप गढ़ते हैं। हमारे विचार में रवीन्द्रनाथ त्यागीके लेखोंको किसी चौहद्दीमें बांधने की चेष्टाके बजाय इनको उन्मुक्त मनकी क्रीड़ाके रूपमें लेना ही उपयुक्त होगा। कुछ भी हो, आलोच्य लेख एक विशिष्ट शैलीमें रचे गये सरस निबन्ध हैं।

### स्वाधीनता विवसके अवसरपर प्रकाश्य

### “पुरस्कृत भारतीय साहित्य” की विज्ञापन-दरें

सामान्य पूरा पृष्ठ : १०००.०० रु.

“ आधा पृष्ठ : ५५०.०० रु.

“ चौथाई पृष्ठ : ३००.०० रु.

आवरण पृष्ठ दो और तीन

आवरण पृष्ठ चार

अन्तिम पृष्ठपर अतिरिक्त रंग

१५००.०० रु.

२०००.०० रु.

३० प्रतिशत

विज्ञापन आदेश और विज्ञापन-सामग्रीके साथ राशि अग्रिम भेजें।

‘प्रकर’, ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.



## क्षेत्रीय संकलन

**कलकत्ता : १९६० ?**

सम्पादक प्रो. कल्याणमल लोढ़ा

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

१९८५ से कलकत्तावासी हिन्दी साहित्यकारोंकी रचनाओंका अलग-अलग संपादकोंके संपादनमें वार्षिक संकलन प्रकाशित हो रहा है। इस योजनाकी उपयोगिता असंदिग्ध है। इसी योजनाके अन्तर्गत समीक्ष्य संकलन 'कलकत्ता : १९६०' का प्रकाशन हुआ है, जिसमें संपादकीयके अतिरिक्त अवधनारायण सिंहकी कहानी कलाके परिचयके साथ उनकी एक कहानी छह अन्य कहानीकारोंकी कहानियाँ, इक्कीस कवियोंकी कविताएँ, एक रम्य रचना अथवा ललित निबन्ध चार आलोचनात्मक लेख और अन्तमें रचनाकारोंका परिचय संकलित हैं।

प्रो. लोढ़ाने अपने सम्पादकीयमें लिखा है कि 'कलकत्ता एक महानगर है। वह एक ओर नागरिक

१. प्रका. : अपस्तुत प्रकाशन, ५-ए, ग्रीक चर्च रो,  
कलकत्ता-७०००२६। पृष्ठ : १३२; डिमा. ६१;  
मूल्य : ५०.०० रु.।

जीवनका अभिशाप है तो दूसरी ओर उसका वर-वैभव। कलकत्ताके सभी रचनाकार 'भोगे हुए यथार्थ' से अपनी रचनाधर्मिता प्राप्तकर मानवीय अस्मिता स्थापित करते हैं। मशीन और मनुष्यका यह संघर्ष इनमें स्वतः स्पष्ट है।" (पृष्ठ १०)। प्रो. लोढ़ाका यह कथन कलकत्ताके विषयमें पूर्णतः यथार्थ है, लेकिन समीक्ष्य संग्रहके रचनाकारोंकी रचनाओंके सम्बन्धमें आंशिक, क्योंकि रचनाएं तीव्र संघर्षशीलताका आभास कम ही देती हैं।

पहले कविताओंपर बात करें। अधिकांश कविताएँ रक्ताल्प और सामान्य हैं। वर्तमान भयावहताका आभास देनेवाली रामप्रीत उपाध्यायकी कविता 'कुत्ता' अपवाद जैसा है। यह कविता कुत्तेको अभिधा और व्यंजना दोनोंके रूप में प्रयुक्त करती है, लेकिन अन्तिम पंक्तिमें जड़ा 'नकली' विशेषण कुत्तेके व्यंग्यार्थको कमजोर बनाता है।

अरे भाई !/यह कुत्ता है/भौंकता है तो भौंकने दो/  
काटता है तो काट लेनेदो/कम-से-कम वह वही  
करता है/जो है !/डगे मत इस कुत्तेसे/डरो उन  
कुत्तोंसे/जो कभी गुरति नहीं/कभी भौंकते नहीं/पर  
समय पानेपर/ऐसा काटते हैं कि/आदमी बेइलाज  
मर जाता है/आज हमारा देश और समान/ऐसेही

## भारत सरकारके सूचना-प्रसारण मन्त्रालय द्वारा हिन्दीमें कार्य करनेका पूरा बहिष्कार

अभी कुछ वर्ष पूर्वतक भारत सरकारका सूचना प्रसारणका 'विज्ञापन एवं दृश्य प्रचार विभाग हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंको सभी सूचनाएं, अनुबन्ध-पत्र हिन्दीमें भेजता था, अब यह बिल्कुल बन्द कर दिया गया है।

हिन्दी-पत्रोंका उत्तर कभी नहीं दिया जाता।

हिन्दीमें भेजे जानेवाले देयकोंका भुगतान रोक दिया गया है, सम्भव है उन्हें रद्दीकी टोकरीमें फेंक दिया जाता हो।

'प्रकर' को लम्बे समयसे कोई पत्र, सूचना, अनुबन्ध आदि हिन्दीमें नहीं मिल रहे। लगभग दो वर्षसे 'प्रकर' के विज्ञापन सम्बन्धी देयकोंका भुगतान रुका हुआ है। किसी स्मरण-पत्रका उत्तर नहीं। □

'प्रकर'—आषाढ़ २०४६—३६



नकली कुत्तोंसे भर गया है। (पृष्ठ ४७)।

रामप्रीत उपाध्यायकी कविताकी तरह ही विद्या भंडारीकी कविता 'संग-तराश' भी अपवाद जैसीही है, जो प्रेमानुभूतिको अभिव्यक्ति देती है—

मैं तो अनगढ़ पत्थरकी तरह थी/किसी पगडंडीके किनारे/उपेक्षित-सी पड़ी।/संग-तराश !/तुमने अनगढ़को तराशा/अपने स्पर्शसे जीवन दिया/और दी एक स्वतन्त्र पहचान।/संग-तराश !/मेरे रोम-रोममें/व्याप्त है तुम्हारा ही स्पन्दन/तुम्हारे स्वप्नका मैं बन गयी स्फुरण। (पृष्ठ ५२)।

कविताओंकी अपेक्षा कहानियाँ 'भोगे हुए यथार्थ' का अधिक सफल और प्रभावी चित्रण करती हैं। अवध-नारायण सिंहने अपनी कहानीमें सत्तरवर्षीय महानगरीय अध्यापकके अकेलेपनका मार्मिक और विश्वसनीय चित्रण किया है। मास्टर शिवचरणका अकेलापन शारीरिक नहीं मानसिक है। यह मानसिक अकेलापन इस लिए है कि जीवनभरकी दिनचर्यापर एकाएक विराम लग गया है। उनकी समझमें नहीं आता कि वे अपने समयका कैसे उपयोग करें। दूसरोंके साथ सामंजस्य बैठानाभी उनके लिए सम्भव नहीं हो पा रहा है। आज महानगरोंमें मास्टर शिवचरण जैसे तमाम लोग मिल जायेंगे। अनयकी कहानी 'अनादिदासका क्या हुआ?' असफल क्रान्तिकारीकी व्यथा-कथा है। कहानी का अन्त रहस्यमय है, जो पाठकके मनमें कहानीके शीर्षकको गुंजाता रहता है। इसराइलकी कहानी 'आईना-दर-आईना' मजदूरोंकी जिंदगीके यथार्थ और उसके जीवटको चित्रित करती है। प्रतिकूल परिस्थितिमें भी ललनका साहस न खोना और प्रतिशोधके लिए तत्पर रहना मजदूरोंमें कहानीकारकी आस्थाका प्रमाण है। कमलाप्रसाद द्विवेदीकी कहानी 'पाथेय' आर्थिक कारणोंसे मनुष्यके पशुके निकट आजानेकी प्रतीक कथा है। रामवृक्ष चन्द अपनी कहानी 'समयबोध' में ऐसे ब्राह्मण-परिवारका चित्रण करते हैं जो अपनी जातिवालोंके विरोधके बावजूद समयकी गतिको पहचानता है, और ब्राह्मणत्वकी मिथ्या मर्यादाको ताक पर रखकर अपने हाथसे किसनयी करने लगता है। समयकी नब्जको शहरकी अपेक्षा गांवका आदमी अधिक जल्दी पहचानता है। फलतः वह उन भावनाओंसे बच जाता है जिन्हें शहरका मध्यवर्गीय व्यक्ति भोगता है। शहरी मध्यवर्गीय व्यक्तिके यातना-भोगका एक पक्ष 'प्रकर'—जून'६२—४०

विमलेश्वरकी कहानी 'श्री टायर' में चित्रित हुआ है। इसकी यथार्थतासे असहमति असम्भव है। विश्रान्त वसिष्ठने अपनी कहानी 'आँखें' में दहेजके लाचरमें नवविवाहिताओंको जला देनेकी आजकी ज्वलन्त समस्याको उठाया है। उन्होंने अपनी कहानीमें इस समस्याका समाधान प्रतिरोधके रूपमें चित्रित किया है। इस कहानीकी नायिकाको नायक मिट्टीका तेल छिड़ककर जलाता है तो जलती हुई नायिकाभी पति के साथ लिपटकर उसे मृत्युके मुखमें ढकेल देती है। इस कहानीमें हमारी सहानुभूति नायिकाके साथ है।

नथमल केडियाने अपनी रम्य रचना 'क्यों' बुझाते हैं ज्योति जन्मदिनपर ?' में पश्चिमी सभ्यताके दुष्प्रभावका चित्रण किया है। भारतका आधुनिक शिक्षा प्राप्त धनाढ्य वर्ग पश्चिमकी नकल करते हुए जन्म-दिन मनाता है और बिना सोचे-समझे अवस्थानुसार मोमबत्तियां बुझाता है। भारतीय परम्पराके अनुसार जो चीज अशुभ मानी जानी चाहिये, वह शुभ मानी जाने ली है। केडियाकी रचना हमें पश्चिमी प्रभावसे मुक्त होने और भारतकी स्वस्थ और शुभ परम्पराकी रक्षा करनेकी प्रेरणा देती है।

'कलकत्ता १९६०' में संगृहीत चारों लेख सामान्य कोटिके हैं। गीतेश शर्माका लेख 'धर्म और राष्ट्रियता' धर्मकी अपेक्षा राष्ट्रको अधिक महत्त्व देनेकी प्रेरणा देता है। निरालाकी कहानीकी आलोचना प्रस्तुत करते वाला प्रेमशंकर त्रिपाठीका लेख परिचयात्मक बनकर रह गया है। 'मिथक और आधुनिक बोध' शीर्षक गम्भीर लेखमें तारतम्यका अभाव है और मार्क्सवादी आग्रह और बहककी प्रधानता है। इन्दु जोशीका लेख कलकत्ताका १९६०की साहित्यिक गतिविधियोंका अधूरा-सा परिचय देता है। उनके लेखसे तो यही लगता है कि हिन्दीकी साहित्यिक गतिविधियोंकी दृष्टिसे कलकत्ता दरिद्र ही है। अन्तमें रचनाकारोंका जो परिचय दिया गया है उससे स्पष्ट है कि कलकत्ताके अधिकांश हिन्दी रचनाकार हिन्दीभाषी राज्योंमें जन्में और कलकत्तामें आ बसे हैं। उनका महानगरीय बोध सम्भवतः इसीलिए दुर्बल हैं।

अन्तमें यह अपेक्षा की जा सकती है कि कलकत्ता-वासी हिन्दी साहित्यिकोंकी रचनाओंके वार्षिक संकलन भविष्यमें भी प्रकाशित होते रहेंगे और उनमें अधिक अच्छी रचनाएं प्रकाशित होंगी। □



# भारतीय क्षेत्र : भाषा, इतिहास

## अण्डमान तथा निकोबारके आदिवासी और उनकी बोली?

लेखक : डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी

समीक्षक : डॉ. प्रशान्त वेदालंकार

प्रस्तुत पुस्तक अण्डमान निकोबारके सामाजिक और सांस्कृतिक ज्ञानके साथ वहाँके आदिवासियों व उनकी बोलीकी जानकारी देनेकी दृष्टिसे एक उपयुक्त सामयिक पुस्तक है। प्रथम अध्याय 'अण्डमान तथा निकोबार-सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमिमें द्वीप समूह का भौगोलिक संदर्भ है। अण्डमान द्वीप समूह दो भागों में बंटा है—बड़ा अण्डमान और छोटा अण्डमान। बड़ा अण्डमानसे ११५ किलोमीटर दूर निकोबार द्वीपसमूह स्थित है। लेखकने अण्डमानके ऐतिहासिक संदर्भभी दिये हैं। कुछ विद्वान् अण्डमानका सम्बन्ध रामायण कालसे जोड़ते हैं, कुछ अण्डमान हनुमानसे व्युत्पन्न मानते हैं। अन्य विद्वान् अण्डमानकी व्युत्पत्ति अंगमानसे करते हैं। इन्द्रद्युम्न निकोबारकी व्युत्पत्ति नक्कवरम्से, जिसका अर्थ नंगे रहनेवाले देशसे की जाती है। चीनमें इसे नाओ-सियो-चेन-नारीकेल द्वीप कहा जाता है। डॉ. वासुदेव अग्रवाल इन्द्रद्वीपसे अण्डमान तथा नागद्वीपसे निकोबारकी व्युत्पत्ति मानते हैं।

इस अध्यायमें आधुनिक कालमें इस द्वीपपर ब्रिटिश इण्डिया कम्पनी द्वारा कीगयी उसकी खोजकी कहानी दी गयी है, सामाजिक संदर्भभी प्रस्तुत किया गया है। लेखकने बताया है कि यहाँके मूल निवासी आदिवासी हैं। इन लोगोंका रहन-सहन पाषाणकालीन मानवका चित्र उभारती है। ब्रिटिश सरकार द्वारा इस द्वीपमें स्वतं-

त्रता संग्राम सेनानी रखे गये। बादमें ये लोग विवाह सम्बन्धोंमें भी बंधे, यद्यपि स्वतंत्रता सेनानी पठान, पंजाबी, बंगाली, असमी, मलयाली, तमिल, तेलुगु और अन्य क्षेत्रोंके थे। अतः अन्तःजातीय तथा अन्तःक्षेत्रीय विवाहोंका प्रचलन हुआ। मोपला और मांतु समुदाय के लोगभी यहाँ आये। ये लोग हिन्दी बोलते हैं इनमें धार्मिक संकीर्णता नहीं है।

भाषिक सन्दर्भमें लेखकने बताया है कि यहाँकी जनजातियोंकी बोलियाँ भिन्न-भिन्न प्रकारकी हैं। पर स्वतंत्रता सेनानियोंने अपनी हिन्दीका विकास किया है।

दूसरे अध्यायका शीर्षक है 'आदिवासी और उनकी बोली'। द्वीपकी कुल जनसंख्याका छठा भाग आदिवासियोंका है। ये आदिवासी यहाँके थे अथवा बर्माके तटीय भागोंसे आयेथे, इसमें विवाद है। कुछ विद्वान् यहाँके आदिवासियोंको किरात जातिका मानते हैं। इस अध्यायका एक उपशीर्षक है—'अण्डमानके आदिवासी' इसमें अत्यन्त संक्षेपमें यहाँके आदिवासियों के रीति-रिवाजों, रहन-सहन तथा महिलाओंका उल्लेख है। धीरे-धीरे इनपर आधुनिक संस्कृतिका प्रभाव पड़ रहा है। लेखकने यहाँके रहनेवाले ओंगी, जारवा और सेण्टिनली जातियोंका भी परिचय दिया है। निकोबार के आदिवासी एक ही प्रजातिके हैं। पर अलग-अलग स्थानोंमें रहनेके कारण उनकी भाषाएं तथा रहन-सहन में अन्तर आगया है। लेखकने निकोबारी जन-जातिकी उत्पत्तिपर कुछ दंतकथाएं भी लिखी हैं। निकोबारी समाज अपनी न्यायप्रियताके लिए प्रसिद्ध है। इनके यहां तलाक भी प्रचलित है। ये लोग सहभोजके अनेक आयोजन करते हैं। उनका अपने धर्ममें विश्वास भी है। नारियल और सुपारी यहाँकी अर्थ व्यवस्थाके आधार हैं जनजातिका जीवन समुद्र और वहाँकी सम्पदापर आधारित था। आजकल अधिकांश निकोबारी ईसाई हैं।

'प्रकर'—आषाढ़ २०४६— ४१

१. प्रका. : हिन्दी साहित्य कला परिषद्, अण्डमान  
निकोबार द्वीपसमूह, पोर्ट ब्लेयर-७४४१०१।  
पृष्ठ : ८३; का. ६०; मूल्य : ५०.०० रु.।



निकोबारमें शोम्पेन लोग अधिक हैं। इस जातिका भी लेखकने अच्छा परिचय दिया है।

आदिवासी बोलियोंकी सामान्य रूपरेखामें अण्डमान तथा निकोबार वर्गकी दो बोलियोंकी चर्चा है। लेखकने यहांकी बोलियोंका भाषावैज्ञानिक दृष्टिसे विश्लेषण किया है। यहांकी जातियोंके नामपर ही यहां बोलियां विकसित हुई हैं। ओंगोमें अनेक हिन्दी शब्द हैं। इसी प्रकार निकोबारी भाषाकी भी कई उप-बोलियां हैं। यहाँ भाषापर कुछ भाषा वैज्ञानिकोंने शोध कार्यभी किया है।

तीसरा अध्याय 'ध्वनि और शब्द विचार' में इन भाषाओंकी ध्वनियोंका अच्छा वर्गीकरण है। इन बोलियोंमें व्यंजन कम हैं, स्वरोंका क्षेत्र अति विस्तृत है। इनमें ध्वन्यात्मकताकी प्रवृत्ति अधिक है। निकोबारीसे शोम्पेनीका भेदभी प्रतिपादित किया गया है। यहाँ जनजातियोंमें विभिन्न प्रदेशोंके शब्द हैं अतः लेखकने तत्सम-तद्भव तथा विदेशी शब्दोंका अनुसंधान किया है, हिन्दीसे आये शब्दोंका भी उल्लेख हुआ है।

अगले अध्यायमें 'पद विचार' शीर्षकसे बोलियोंकी संज्ञा, लिंग, वचन, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, वाक्य आदि सभीका परिचय दिया है।

अंतमें दो परिशिष्ट हैं। परिशिष्ट एकमें बोलियोंके कुछ गीत हैं तथा परिशिष्ट दो में सन्दर्भ ग्रन्थोंका उल्लेख है।

पुस्तककी रचनाके लिए लेखक बधाईका पात्र है। यदि लेखक आदिवासियोंकी बोलीके साथ वहां मुख्य भूमिसे पहुँचे लोगोंके जीवन व उनकी बोलियोंपर भी प्रकाश डालता तो पुस्तक और अधिक उपयोगी होती। □

## आपबोतो?

[कश्मीरपर आक्रमण और उसके बाद]

लेखिका : कृष्णा मेहता

समीक्षक : डॉ. प्रशान्त वेदालंकार

प्रस्तुत पुस्तकमें स्वतंत्रता प्राप्तिके बाद पाकिस्तान द्वारा कश्मीरपर किये गये आक्रमणका आँखों देखा

१. प्रका. : सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली-१।

पृष्ठ : १५१; क्रा. ६१; मूल्य : १२.०० रु.।

'प्रकर'—जून '६२—४२

हाल है। घटनाक्रम बहुत सजीव है। आक्रमणके समयकी सम्पूर्ण परिस्थिति पाठकोंकी आँखोंके सामने आ उपस्थित होती है।

पाकिस्तानका कश्मीरपर आक्रमण इतना अकस्मात् था कि भारतीय सेना उसको सहन नहीं कर सकी। कई दिनोंतक वह उसका सामना करनेमें असमर्थ रही थी। इससे भारतीय शासकोंकी अकर्मण्यता और उपेक्षाभाव भी प्रकट हुए हैं। अनेक स्थानोंपर भारतमें विशेषतः कश्मीरमें बसे मुसलमानोंकी अपने देशके स्थानपर पाकिस्तानके प्रति निष्ठाके भी इसमें प्रमाण हैं। यहाँतक कि भारतीय सेनाके मुसलमान सैनिकोंकी गद्दारी इससे प्रकट हुई है।

इस विवरणसे मुसलमानोंकी धर्मान्धता उभरकर भी सामने आयी है। भारतपर आक्रमण करनेवाले पठानों और सिपाहियोंने स्पष्ट कहा कि उन्हें, इस्लाम खतरेमें हैं, नारे द्वाारा भारतपर आक्रमण करनेके लिए उकसाया गया है। हिन्दुओंको बलात् मुसलमान बनाने का भी इसमें उल्लेख है। हिन्दुओंके सामने गो को काटकर उसका मांस हिन्दुओंके मुँहमें जबर्दस्ती ठूसने का प्रयत्न किया गया।

इस विवरणसे मुसलमानोंकी क्रूरता भी प्रकट हुई है। स्त्रियोंके साथ बलात्कार और बच्चोंको माताओंके सामने मारने आदिका विस्तृत वर्णन लेखिकाने किया है। यद्यपि लेखिकाने बीच-बीचमें किसी-किसी मुसलमानके मनमें उत्पन्न सहानुभूतिकी भी चर्चा की है, पर कुल मिलाकर उनका क्रूर रूप ही पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत होता है।

भारतीय स्त्रियोंकी अपने धर्मके प्रति निष्ठाके अनेक चित्र लेखिकाने चित्रित किये हैं। विधमियोंके हाथोंमें जानकी अपेक्षा उन्होंने कृष्ण-गंगाकी गोदमें समा जाना अधिक अच्छा समझा। लेखिकाने भारतीय स्त्रियोंके इस साहसका बहुतही कारुणिक चित्रण किया है।

इसमें स्वयं लेखिकाका आदर्श रूप पाठकोंके सामने उपस्थित हुआ है। वह ईश्वरभक्त व कष्ट-सहिष्णु है। वह अपने धर्मके प्रति एकनिष्ठ है। वह अपने पतिके वीरतापूर्ण बलिदानसे विचलित नहीं होती, अपितु उसके हृदयमें इसी प्रकारकी बलिदानकी भावना उत्पन्न होती है। उसके छोटे बच्चेभी उसकी शिक्षाओंसे सत्य



और बलिदानके रास्तेपर आगे बढ़ते हैं। उसके ७-८ वर्षके छोटे-छोटे लड़के और १४-१५ वर्षकी लड़कियां इस महान् आदर्शको प्रस्तुत करती हैं। वे सचमुच द्वितीय हैं।

पुस्तकके उत्तरार्द्धमें लेखिकाने भारत और पाकिस्तानके मध्य हुई संधिका उल्लेख किया है। पर वह संधि क्या है वह इसमें प्रकट नहीं किया गया है। केवल लेखिकाका रावलपिण्डी जेलसे अमृतसर लौट आनेका विवरण प्राप्त होता है।

लेखिकाका उस समयके प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरूसे मिलनेका वर्णन भी हृदयाकर्षक है। इससे पंडित नेहरूकी सहृदयता और मानवताका परिचय प्राप्त होता है। लेखिकाने पंडित नेहरूके परिवारके सदस्य हो जानेका विवरण व नेहरूजीके मानवीय पक्ष को उजागर किया है।

पर उत्तरार्द्धके वर्णनसे पाठक इस दृष्टिसे निराश होता है कि उसमें कश्मीर समस्याका विशेष वर्णन नहीं है। भारत सरकारने कश्मीरको नियंत्रणमें लेनेके लिए क्या कदम उठाये, यह इससे स्पष्ट नहीं होता। यह भी पता नहीं चलता कि कश्मीरको हस्तगत करनेमें पंडित नेहरू अथवा भारत सरकारसे क्या भूलें हुई। लेखिका ने कश्मीरकी सेवाका व्रत लिया, पर उसके सेवा कार्य '—कश्मीरमें क्या महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लासके यह सब अस्पष्ट है। केवल एक बातपर ही लेखिकाने बल दिया है कि वह नेहरू परिवारकी अन्तरंग सदस्या बन गयी।

उसके पंडित नेहरू और इन्दिरा गाँधीसे घनिष्ठ सम्बन्ध होगये। वे संसद् सदस्या मनोनीत होगयीं।

इस सबमें इस बातका तो उल्लेख है कि उसने पंडित नेहरूकी सहायतासे अपने बच्चोंकी शिक्षाकी व्यवस्था करायी, पर होनहार बच्चोंका भविष्य क्या हुआ उसका पता नहीं चलता। पूर्वार्द्धमें लेखिकाने बारबार इन बच्चोंसे अपने पिताके त्याग और सत्य सिद्धान्तोंपर चलनेकी बातें दीहरायी हैं पर वे बड़े होकर क्या बने इसका उत्तर पाठकोंको नहीं मिलता।

अन्तमें पंडित नेहरूके लिखे कृष्णा मेहताको पत्र प्रकाशित किये गये हैं। उनसे भारतीय राजनीतिका कोई पक्ष उजागर नहीं होता केवल यही पता चलता है कि पंडित नेहरूका लेखिकाके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। एक स्थानपर लेखिकाने प्रकट किया है कि वह श्री ओम् मेहताकी बहन है। पर ओम् मेहताके जीवनके किसी पक्षपर उसने प्रकाश नहीं डाला।

फिरभी यह पुस्तक कश्मीरपर पाकिस्तानका प्रथम आक्रमण और उस समयकी दशाका चित्रण करने की दृष्टिसे एक अच्छी पुस्तक है। यदि लेखिका इसी शैलीमें कश्मीरकी आजतककी स्थितिका वर्णन कर सके, विशेष रूपसे विशेष रूपसे भारतपर पाकिस्तानके १९६५ में तथा १९७१ में दूसरे व तीसरे आक्रमणोंका वर्णन कर पाये और उसमें उसकी भूमिका क्या रही, तो संभवतः पुस्तक अधिक पूर्ण होती।

## संस्कृति : साहित्य

### साहित्य समाज और भारतीयता?

लेखक : डॉ. ब्रह्मदत्त अवस्थी

समीक्षक : डॉ. हरिश्चन्द्र

ग्रन्थ एक निबन्ध-संग्रह है। निबन्धका तात्पर्य उस साहित्यसे होता है, जिससे निबन्धकार अपने भावों,

१. प्रका. : प्रभाकर अवस्थी, १/२३६ नगला दीना फतेहगढ़, फर्रुखाबाद-२०६६०१। पृष्ठ : ११६; डिमा. ६०; मूल्य : ६५.०० रु.।

मनोवृत्तियों और विचारोंका प्रकाशन स्वाधीन होकर अपनी भाषा और शैलीमें करे। वस्तुतः कथ्यकी तुलना में कथन-शिल्प निबन्धका विशिष्ट गुण होता है और इसी आधारपर उसका परीक्षण अपेक्षणीय है।

पुस्तकमें विविध विषयोंपर १८ निबन्ध संकलित हैं। आकृति-प्रकृतिमें भिन्न होते हुए भी उनकी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष भाव-भूमि देश-प्रेमापगासे अभिसिंचित है। जैसे कभी-कभी खेतिहर नहरमें पानी आतेही प्या

स  
'प्रकार'—आषाढ़ २०४६—४३



से अधिक जल अपनी भूमिको पिलाने लगता है, वैसेही किसी-किसी अवसरपर लेखकभी अतिराष्ट्रीयताका स्वर ध्वनित करता प्रतीत होता है। रचनाकारने स्वदेश के वर्तमान संतापसे क्षुब्ध होकर अतीतकी अमराईमें बैठकर सुखद भविष्यकी कल्पनामें रुचि प्रकट की है। मानव-जीवन स्मृतियोंके आश्रित होकर चलता आया है और यादोंका इन्द्रधनुष विगतके व्योमपर ही मूर्त हो पाता है। सभ्यताके प्रत्येक चरणमें पुरातनवाद और अभिनववाद द्वन्द्व रहा है। यह स्थिति न्यूनाधिक परिमाणमें आजभी विद्यमान है। विचार-शक्तिकी इन दो चरम सीमाओंके बीच एक बिन्दु ऐसा भी है जिसकी व्याख्या मालविकाग्निमित्रमें कालिदास द्वारा निम्नवत्की गयी है—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं ।

न चापि काव्यं नवमित्यव्ययम् ।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते

मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः ॥

निबन्धकारने लिखा अवश्य है—

चन्दन हैं इस देशकी माटी तपोभूमि हर ग्राम है  
हर बाला देवीकी प्रतिमा बच्चा बच्चा राम है  
किन्तु उसकी चिंतन-थारा प्रायः मध्यमार्गका अनु-  
सरण करती दिखायी पड़ती है।

सभी निबन्धोंमें जीवनके उदात्त और लोकोपयोगी मूल्योंकी खोज और विवेचना की गयी है। लेखकने संप्रेषणीयताको प्रभावकारी बनानेके उद्देश्यसे विवेक-पूर्ण चयन और शिल्प-कौशल द्वारा शब्दकी ऊर्जस्विता का पूरा लाभ उठातेकी चेष्टा की है। पाण्डित्य-प्रदर्शन-विरत प्रबोधनकी शैली निबन्धकारकी प्रशंसनीय उपलब्धि रही है। □

## आर्थिक भूगोल

### विश्वका आर्थिक भूगोल<sup>१</sup>

लेखक : डॉ. बी. पी. यादव

समीक्षक : डॉ. हरिश्चन्द्र

कृति एक पाठ्य-पुस्तक है। शिक्षाविदोंके अनुसार इस कोटिका ग्रन्थ वह होता है, जिसमें अध्ययन-विषय की सामग्रीको व्यवस्थित ढंगसे क्रमबद्ध किया गया हो, और जो निर्धारित पाठ्य-विवरणके अनुकूल हो। इस अवधारणाके आधारपर पाठ्य-पुस्तक विषय-वस्तुमात्र का संकलन न होकर, शिक्षण-पद्धति-अनुभवी व्यक्तियों के निर्देशन, क्रमबद्ध सामग्री, संबंधोंके स्थापन, अधिक अनुशीलनके लिए संदर्भ, नवीनतम सूचनाओं, साधु

भाषा, सुबोध शिल्प, रोचक शैली और शैक्षिक महत्त्व के चित्रों आदिकी अक्षय निधि ठहरती है।

पर्यालोच्य रचनामें आर्थिक भूगोल संबंधी ज्ञेय सामग्रीतो जुटायी गयी है, किन्तु न तो वह क्रमबद्ध हो सकी है, और न उसके अंग-प्रत्यंगमें एकसूत्रताके दर्शन होते हैं। वर्ण्य विषयका अध्यायोंमें विभाजन सादृश्य-सिद्धांतका अनुगमन करता प्रतीत नहीं होता। शीर्षक-उपशीर्षकभी आर्थिक गतिविधिके स्थापित वर्गीकरण का अनुसरण नहीं करते।

पदार्थोंके उद्भव-विषयक ऐतिहासिक तथ्योंको प्रस्तुत करते समय पूर्ण सावधानीसे काम नहीं लिया गया, जिसके कारण सही तस्वीर उभर नहीं पायी। उदाहरणार्थ धानकी उत्पत्ति, (पृ. ७३), गेहूँकी खेती (पृ. ६०), चुकन्दरसे चीनी (पृ. १२४), तथा अनु-मिनियमके व्यावसायिक उत्पादनकी प्रविधि (पृ. २८२)

१. प्रका. : पकाश बुक डिपो, बरेली। पृष्ठ : ४३१;  
डिमा. ६१; मूल्य : ४५.०० रु.।



के संबंधमें अस्पष्ट, अपूर्ण और यातयाय जानकारी देकर संतोष कर लिया गया है। अधुनातन स्थिति यह है कि ईसाके लगभग १३०० वर्ष पूर्व आचार्य पाराशर रचित 'कृषि संग्रह' में धानका उल्लेख मिलता है। डी. कंडोलकी खोजके आधारपर २८०० वर्ष ई. पू. चीनमें धानकी खेती होती थी। अमरीकामें धान-रोपण एक दुर्घटनासे संभव हो सका। सन् १६०० ई. में एक जल-पोत मंडागास्करसे धान लेकर इंग्लैंड आ रहा था। महासागरमें आये भीषण उत्पातके कारण वह अमरीका के दक्षिण केरोलिना राज्यके चार्ल्सटन नामक पत्तनसे जा लगा। स्थानीय नागरिकोंने आपदग्रस्त यात्रियोंकी सहायता सेवा-सहायता की, जिससे अनुगृहीत होकर पोत-नायकने उन कृपालु जनको धानसे भरी एक थैली उपहार-स्वरूप भेंट की। उसे व्यक्तियोंने सहर्ष स्वीकार किया, और बीजको अपने खेतोंमें बोकर धान उगाना आरंभ कर दिया।

शिकागो विश्वविद्यालयके राबर्ट ब्रेडवुडने कार्बन-युक्त दाने इराकके जामो नामक स्थानसे प्राप्त कर उनका वैज्ञानिक परीक्षण करवाया। उससे पता चला कि कम-से-कम ६७०० वर्ष पुराने थे। जामो विश्वका प्राचीनतम विद्यमान ग्राम है। इस खोजके बलपर अनुमान किया जाने लगा है गेहूंकी खेतीका श्रीगणेश इराक की धरतीपर हुआ।

चुक्रन्दरसे चीनी निर्माणका प्रथम सफल प्रयोग जर्मन रसायनशास्त्री आड्रिआस सिगिसमोंड मार्ग्रफने सन् १७४६ में किया था।

सन् १८२७ ई. में फ्रेडरिक वोह्लरने अलुमीनियम क्लोराइडपर पोटाशियमकी अभिक्रियासे शुद्ध अलुमीनियम प्राप्त किया था। सन् १८५४ ई. में डेविलने सोडियम अलुमीनियम क्लोराइडके अपचयन द्वारा अलुमीनियमके औद्योगिक उत्पादनका मार्ग प्रशस्त किया। सन् १८८६ ई. में अमरीकाके चार्ल्स हाल और फ्रांसके पाल हेरोल्टने अपने-अपने देशोंमें लगभग एकही समय अलुमीनाके विद्युत-अपघटन द्वारा अलुमीनियमके व्यावसायिक उत्पादनकी प्रविधिका विकास किया। आश्चर्यजनक संयोग है इन दोनों वैज्ञानिकोंका जन्म १८६३ ई. में और निधन सन् १९१४ में करीब-करीब एकही समयपर हुआ।

वस्तुओंके विनिर्माणकी विधियोंका वर्णन करते

समय विद्वान् लेखक वैज्ञानिक वाजालमें फंसकर वाच्यार्थकी प्रतीति करानेमें प्रायः असफल रहा है। मिसालके तौरपर वह अयस्क (ओर), खनिज (मिनरल) और धातु (मेटल) तथा कच्चा लोहा (पिग आइरन) ढलवाँ लोहा (कास्ट आइरन), और पिटवाँ लोहा (राट आइरन) के बीच भेद-रेखांकनमें समर्थ नहीं हो पाया। उसके द्वारा कही गयी बातोंसे भावार्थ-ग्रहणके स्थान पर भ्रंति-अनुमति होती है। इसका प्रत्यक्ष कारण यह दीखता है कि लेखकने प्रविधिके प्रपंचकारी प्रदेशमें पर्याप्त ज्ञानके अभावमें प्रवेशका दुस्ताहस किया। उदाहरणार्थ मैंगनीजके चर्वान्तर्गत रचनाकारने लिखा है "एक टन इस्पात बनाने हेतु १५ टन मैंगनीजकी आवश्यकता होती है (पृ. २७२)। इसे पढ़कर कोईभी इस्पात-धातुकर्मी अथवा रसायनशास्त्री चौंक पड़ेगा। वास्तविकता यह है कि भूपटलपर मैंगनीजकी उपलब्धता केवल ०.०६ प्रतिशत है, जबकि लोहेकी ५.०६ प्रतिशत। इस्पातमें मैंगनीजका प्रतिशत प्रायः ०.५ प्रतिशत होता है।

"आधुनिक लौह उद्योगका प्रारम्भ आजसे लगभग १४८ वर्ष पूर्व सन् १६३० में ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कर्मचारी सर जोसिहा हीथने मद्रासके निकट (अरकाट में) एक लोहेका कारखाना स्थापित करके की" (पृ. ३१६-१७), से भली-भांति प्रकट होता है कि इस पाठ्य-पुस्तककी रचना १९७८ ई. में हो रही थी। निश्चय ही बाक्यमें आया सन् १९३० न होकर १८३० है। ग्रंथ प्रकाशन-वर्ष १९९१ है। इस प्रकार पुस्तक १३ वर्ष तक लिखी जाती और छजती-छपती रही। पुरानेके स्थानपर तुलनात्मक दृष्टिसे नये वर्षोंसे संबंधित आँकड़ोंसे सारणियोंका पुनरुद्धार कर देनेसे कोई पुस्तक नवीन सूचनाओंकी पिटारा कहलानेकी अधिकारिणी नहीं बन जाती। रहती वह बासी-की-बामी है।

पुस्तक-लेखनमें जिस भाषाका प्रयोग हुआ है उसे साधु कदापि नहीं कहा जा सकता। उसकी भ्रष्टताके कुछ नमूने हैं : उत्तरी टापूमें Male Cattle तथा Bee, Cattle पाले जाते हैं (पृष्ठ ३८), यह लकड़ी Ship Buildings के काममें लायी जाती है (पृ. ६०) यहां पर short staple cotton की ही प्रधानता है (पृ. १३७) Conventional rain के कारण खेतीकी कृषि विस्तृत मात्रामें की जाती है (पृ. १४५)। इतनाही नहीं, रोमन लिपि में अंग्रेजीके पूरे-पूरे वाक्य बिना अनुवाद किये देवनागरी



लिपिमें हिन्दीके वाक्योंके साथ जोड़ दिये गये हैं। यह गंगा-जमुनी (हिन्दी-उर्दू) अपमिश्रण न होकर भागी-रथीका टेम्ससे संगम करानेका दुर्भाग्यपूर्ण उद्योग है। ऐसे दूषित भाषा-प्रयोगोंका अनुकरण कर कितने विद्यार्थियोंका मनोरथ सफल हो पायेगा, चिन्तनीय है। अंग्रेजी शब्दोंकी रोमन वर्तनी देखकर इस भाषाके समर्थकोंतक की छातीपर सांप लोटने लगेगा। कार्कके लिए Cark (पृ. ३२), कैम्फरके लिए Campher (पृ. ३२), स्टेप्सके लिए Staps (पृ. ३३), हर्डिंगके लिए Hardng (पृ. ३३), मिल्चके लिए Male (पृ. ३८), काड फिशके लिए Code Eish (पृ. ५३) थाइलैंडके लिए Thyland (पृ. ८७), जर्मनीके लिए Jermany (पृ. १२६), चेकोस्लोवाकियाके लिए Jakoslawia (पृ. १२७) ऐसी कुछ बानगियाँ हैं।

शिल्पके बोधगम्य होने-न-होनेके निर्णयके लिए दो उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। पुस्तकमें लिखा है “अमरीकामें बर्मिंघमके कारखाने, इंग्लैंडमें मिडलैंड और भारतमें जमशेदपुर कारखाना कोयला खानोंके समीप स्थापित किये गये हैं” (पृ. २६६)। आगे चलकर ब्रिटेनके लौह उद्योगके अधीन मिडलैंड इस्पात क्षेत्रका विवरण देते समय कहा गया है “बर्मिंघम इस क्षेत्रका प्रमुख केन्द्र है (पृ. ३०६)।” विश्वमें कास्टिक सोडा के उत्पादनकी मात्रा-सूचक एक सारणी पृ. ३५० पर दी गयी है, और दूसरी पृ. ३५३ पर। इन दोनोंमें वर्ष १९८६ में हुए कास्टिक सोडाके कुल उत्पादके आंकड़ों में साम्य दृष्टिगोचर नहीं होता। वैषम्यके कारणोंका कहीं उल्लेख नहीं किया गया है।

यद्यपि शैलीके लालित्यका प्रश्न व्यक्तिगत रुचिसे जुड़ा रहता है, तथापि सामान्य पाठक यह अपेक्षा तो करता ही है कि लेखककी शैली कम-से-कम ऐसी अवश्य होगी जो सम्प्रेषणीयतामें अवरोध उपस्थित न होने दे। नमूनेके तौरपर उद्धरणीय है “खनिज सम्पत्ति प्रकृतिकी ओरसे एक भेंट (Gift) है, परन्तु प्रकृति प्रदत्त अन्य पदार्थों और खनिज पदार्थोंमें विशेष अन्तर है। अनेक प्राकृतिक वस्तुएं (जैसे वायु जल सूर्य और किरणें आदि) सीमित होती हैं। वन दुबारा लगाये जा सकते हैं, भूमिकी खोयी हुई उर्वरा शक्ति खादसे पुनः प्राप्त की जा सकती है किन्तु खनिज पदार्थोंके उत्पादन और उपयोग

से इनका अस्तित्व सदाके लिए मिट जाता है। इस प्रकार खनिज सम्पत्ति अन्य प्राकृतिक भेंटोंकी अपेक्षा एक अत्यन्त दुर्लभ और सदाके लिए नष्ट हो जानेवाली भेंट है।” (पृ. २५७)। इन पंक्तियोंको पढ़कर लेखक का भाव सही समझना बड़ी भारी चुनौतीका सामना करना है। रसायन शास्त्रका एक मूलभूल सिद्धांत है कि रेडियोधर्मी तत्वोंको छोड़कर अन्य कोई तत्व नष्ट नहीं होते। मात्र रासायनिक अभिक्रियाओंके फलस्वरूप रूप-परिवर्तन करते रहते हैं। इस दृष्टिसे खनिजोंमें व्याप्त अकार्बनिक तत्वोंके नष्ट होजानेका प्रश्न नहीं उठता। कदाचित् लेखककी दृष्टि खनिज तेलपर जाकर अटक गयी जो खनिज होते हुए भी वस्तुतः जीवाश्म ईंधन है।

टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेडके कारखानेकी चर्चा करते हुए पुस्तकमें उसकी स्थिति विषयक साकची और टाटानगरके नाम दिये गये हैं (पृ. ३१७)। परन्तु अभिषंगी चित्र-६८ में इन दोनों स्थानों को न दिखाकर जमशेदपुर प्रदर्शित किया गया है। ऐसे आरेखसे क्या लाभ, जिसे विवरणसे समीकृत करना द्रविड़ प्राणायामके तुल्य हो।

सत्य यह है पुस्तकके लेखन, मुद्रण एवं प्रकाशन किसी चरणकी उपलब्धिसे संतोष नहीं होता। इसकी सृष्टिमें आदिसे अंततक असावधानी और प्रमादकी झलक मिलती है।

## ‘प्रकर’ विशेषांक

‘प्रकर’ के प्रायः सभी विशेषांक उपलब्ध हैं। कुल मूल्य ३०४.०० रु. है। सभी अंक एक साथ मंगानेपर डाक व्यय नहीं देना होगा।

‘प्रकर’, ए-८/४२ राणाप्रताप बाग  
दिल्ली-११०००७.



## काव्य : परिचय

### निपट निरंजनकी वाणी?

म्पादक : डॉ. राजमल बोरा

समीक्षक : डॉ. नत्थनसिंह

औरंगजेबके समकालीन संत निपट निरंजन हैं। भारतके इतिहासमें मुगल सम्राट औरंगजेब संकीर्ण धार्मिक नीति और इस्लामिक कट्टरताके लिए विख्यात है। उसने भारतकी महान् सांस्कृतिक विरासतको नकार कर उसके ध्वंसपर इस्लामका ध्वज स्थापित करनेका प्रयास किया। उसके इस अदूरदर्शी कार्यका विरोध राजनीतिक स्तरपर मराठा तथा जाटों ने किया था और धार्मिक स्तरपर भारतके अनेक सन्तों ने। निपट निरंजन इसी प्रकारके एक संत थे। मराठा शिवाजी और जाट राजारामने यदि तलवारके बल पर औरंगजेबका स्वप्न भंग किया था, तो संत निपट निरंजनने चमत्कार तथा धार्मिक शक्तिके बलपर उसको परास्त किया था। डॉ. बोराने, इस कृतिमें, निपट निरंजनकी उस बानीका आकलन किया है, जिममें औरंगजेबकी अनेक मान्यताओंको खण्डित किया गया है।

इस कृतिके ५१ पृष्ठोंमें निपट निरंजनके अनेक चमत्कारोंका तथा औरंगजेबके साथ उनकी मुलाकातों का वर्णन किया है और शेष पृष्ठोंमें संतकी बानीका संग्रह है। भारतकी सांस्कृतिक विरासतके कतिपय पक्षों के उद्घाटनकी दृष्टिसे आलोच्य पुस्तक महत्त्वपूर्ण एवं संग्रहणीय है। □

### सुधियोंके दीप

कवि : लेखराम चिले 'निःशंक'

समीक्षक : डॉ. नत्थनसिंह

आलोच्य रचनामें कविकी पचास कविताएं संक-

१. प्रका. : वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-२।

पृष्ठ : १७१, डिमा. ६२; मूल्य : १२५.०० रु.।

लित हैं। इनमें से अधिकांश कविताएं रचनाकारकी सामाजिक प्रतिबद्धताकी साक्षी हैं, उसके चिन्तनकी दिशा की बोधक है और पाठकको रचनात्मक दिशाका संकेत करनेवाली है।

कवि मांको ज्वालाका स्वरूप मानता है और उससे ज्वालाकी याचना करता है। उसको प्रतीत होता है कि घर-घरमें मांफोंका डेरा लगा है और अन्धेरा छाया है। वह प्रकाशकी कामना करता है। कवि सामाजिक तथा राजनीतिक विडम्बनापर भी प्रहार करता है। उसको युवराज गली-गलीमें भटकते, बूढ़े दशरथ राज करते, सुकुमारी सत्तासे बुजुर्ग व्याह रचाते दिखायी पड़ते हैं? वह स्पष्ट देखता है कि आज हमारे समाजमें हिजड़े तलवार भांजते हैं, गौदड़ मूँछ उखाड़ते, जयचंद घरकी दीलतकी बाहर भेजते हैं और अल्लाकी गायकी रखवाली उल्लू करते हैं! वह युवकोंका आन्धान करता है 'लाठी उठा हांक ले बेटा! क्यों मांका दूध लजाता'। कविका यह आह्वान उसकी राष्ट्रीय भावनाका प्रमाण है। यही नहीं, वह युवकोंको राष्ट्रका पहचान मानता है, अतः उनको जगाता तथा सावधान करता है। उसको, भारत-भूमि रूषी चमन वीरान होता नजर आता है, अतः चमन के मालीको सावधान करना अपना दायित्व मानता है। वह, सामायिक यथार्थसे भली प्रकार अवगत है। उसको स्थान-स्थानपर विवेकहीनता, स्वार्थ-संकीर्णता, अन्याय, अन्धकार और आत्मकेन्द्रित चेतनाका ताण्डव होता दिखायी देता है, इतनेपर भी उसकी आकांक्षा है कि वह दीपककी भाँति जले, अंधकार भरे मार्गको आलोकित करे, सुबहकी नयी किरणोंका अभिनन्दन करे और पतझड़-सदृश समाजमें वसन्त बनकर छा जाये।

यह कहा जा सकता है कि 'सुधियोंके दीप'का कवि भारतवासी है, भारतीयताके रंगमें डूबा है और इस रंग में अन्योको भी डुबानेके प्रयासोंमें संलग्न है। □

२. प्रका. : अग्रन प्रकाशन : नयी दिल्ली-३०। पृष्ठ : ७२, डिमा. ८८; मूल्य : ३०.०० रु.।

'प्रकर'—आषाढ़ '२०४६—४७



## मत-अभिमत

### अनादि गाथा : सहस्रशीर्षा प्रकृति और रहस्यपूर्ण अन्तरिक्ष की विराट् शक्तियोंका काव्यात्मक कथारूपक

ऐसा प्रतीत होता है कि 'अनादि गाथा' काव्यकी समीक्षा ('प्रकर' अप्रैल ६२) मात्र दो सगौ तक ही सीमित रही है। समीक्षक काव्यके कथ्यको भी ठीक-से पकड़ नहीं पाये प्रतीत होते। वस्तुतः उसमें सूर्यकी ३६५ दिनकी यात्रा और प्रकृति (शस्यश्यामला) की गाथा वर्णित है। सहस्रशीर्षा प्रकृति और रहस्यपूर्ण अन्तरिक्षकी विराट् शक्तियोंके चिरन्तन सत्यको विविध रूप व्यापारोंमें समाहितकर वैदिक ऋषियोंने कथारूपकोंकी परिकल्पना कीथी। ऋग्वेदके दो शब्द 'विरावण' और 'सीत' ने इस प्रकारके कथारूपकोंके अन्तर्हित कथ्यको अनावृत करने और काव्य-प्रणयनकी प्रेरणा प्रदान की। 'विरावण' का वैदिक कोशमें अर्थ है हिम, बर्फ, पाला और 'सीत' का हल-रेखाजो भूमि जोतते समय फाल धमनेसे बनती है। उसी रेखामें से ही हरियाली (सीता) उगती है।

वाल्मीकिकी रामकथा इसी वैदिक रूपकसे जुड़ी हुई है। इसी वैदिक आख्यानका वाल्मीकिने रामकथा रूपमें मानवीकरणकर एक गाथाकी रचना कर लीथी। यह वाल्मीकिकी काव्य-प्रतिभा थी, कवयः त्रिकाल-दशिनः। त्रिकालभेदी दृष्टिसे "क्रौञ्च प्रसंगकी करुणा से विह्वल, उसी हरण-उद्धार कल्पकथाके आलंबनपर महाकवि वाल्मीकिने उस अपूर्व रामगाथाको युग सापेक्ष जीवन-मूल्य मधुकी स्थापनामें रूपायितकर दिया। वाल्मीकिने जिस इक्ष्वाकुवंशीय रामगाथाका सृजन कियाथा, वह प्रकृति पुरुष सम्मोहनकी कथा रूढ़िसे बहुत साम्य रखती है।" (देखें 'अनादि गाथा' की भूमिका)। जनकको हल चलानेपर ही तो सीता मिली। सूर्य (राम) दक्षिणायनमें हो या उत्तरायण में, विरावणके प्रकोपसे सदैव सीता (हरियाली) का हरण होता है और सूर्य (राम) को किरणोंसे हिम, पाला, बर्फका हनन होता है और सीता मुक्त होती है।

रामने भी सर्वप्रथम अयोध्यासे विश्वामित्रके साथ उत्तरायणकी यात्रा की चंद्रमें। सूर्य भी उत्तरायणकी यात्रा चंद्रमें करते हैं। उत्तरी मिथिलामें सीता रामका वरण करती हैं। सूर्यभी उत्तरायणके ध्रुवपर आच्छादित अर्ध-वतुल चाप (नीलाकाश शिव है) को किरणों

'प्रकर'—जून'६२—४८

से भंग करता है और वसुधाराकी सीता हरियाली सूर्यका वरण करती है। सूर्यके उत्तरायणमें वरणके बाद सीता (हरियाली) सदा साथ चलती है।

दक्षिणायनकी यात्रामें सीता प्रकृतिपर हिमपात अर्थात् सीताहरण। सूर्य, मारुति (दक्षिणी वायु) और घनमेघ (वानर-सेना) के साथ दक्षिणायनकी यात्रा पूर्ण करते हैं। सूर्य दक्षिणी ध्रुवपर आक्रमण करते हैं, सीता मुक्त होती है। दक्षिणी ध्रुवमें विराट् हिम-शिलाएं, राक्षस श्वेतवर्णी शिलामें, राक्षस ब्रह्मज्ञानी (रावणको ब्रह्मज्ञान था), कठोर शिला राक्षसी वृत्ति, सीता वहां बन्दी है हिमसे, षट्मास निद्रित कुम्भकर्ण (उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवमें सूर्य छैः मासमें एक बार उदित होता है) मारा जाता है। दक्षिणके घने वन प्रांतर (इण्डोनेशिया, अफ्रीका, दक्षिण अमरीका आदि) में बड़े-बड़े वृक्षोंके पत्ते झरते हैं, सड़गलकर दूषित वायु उत्पन्न करते हैं, सूर्यकी किरणोंसे मारे जाते हैं, जलते हैं, फिर जाग जाते हैं। वे ही हैं खर-दूषण। दक्षिणी ध्रुव मेरी लंका है, वहीँके कठोर-बर्फीले टीले-पहाड़ रावणका परिवार है। श्वेतवर्णी हैं अतः ब्रह्मज्ञानी हैं, कठोर हैं, इसलिए राक्षसत्व है उनमें। सूर्य और प्रकृतिकी इसी हरण गाथाको छैः ऋतुओंमें मैंने बांट दिया।

सूर्यकी इस वैदिक गाथाके ठीक अनुरूप रामकी कथा है। इसीलिए प्रतिवर्ष यह गाथा चलती है। मेरी काव्य गाथाभी यही है, सुसम्बद्ध है। इसके प्रणयनके बाद मैंने ऋषितुल्य गुरु डॉ. रामनिरंजनजी पाण्डेय (पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग उस्मानिया विश्वविद्यालय) को भी दिखायाथा।

समीक्षक डॉ. प्रयाग जोशीका यह कथन सही है कि मैंने विणिष्ट शैलीमें विशेषणोंके आघारपर इसकी रचना की है। नया प्रयास था। यदि डॉ. जोशी कुछ समय प्रदानकर इस कथा रूपकका आद्योपान्त पारायण करते तो उनकी सम्मति नितान्त भिन्न होती।

प्रो. चक्रवर्ती, गन्धमावन, १७-६-१७६/ए.

कुर्मागुडा, हैदराबाद—५००६५६.



विशिष्ट लेख  
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सौन्दर्य-दर्शक

आचार्य पवित्र गुरुकुल सौख्य-दृष्टि

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

उपन्यास आधा विज्ञान जोष  
दशम शास्त्र उपन्यास जोष  
जोषन और साहित्य उपन्यास  
साहित्य कविता इतिहास



# प्रकाश

[आलोचना और पुस्तक-समीक्षा का मासिक]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालयाध्यक्ष  
सम्पक : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग,  
दिल्ली-११०००३

वर्ष : २४

अंक : ७

श्रावण : २०४६ [ विक्रमाब्द ]

जुलाई : १९६२ [ ईस्वी ]

## आलेख और समीक्षित कृतिर्वा

आलेख

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : सौंदर्य-दृष्टि	१	डॉ. एस. टी. नरसिंहाचार्य
शोध प्रबन्ध		
आधुनिक नाटकोंमें प्रयोगधर्मिता--डॉ. सत्यवती त्रिपाठी	८	डॉ. नरनारायण राव
हिन्दीका समकालीन व्यंग्य साहित्य डॉ. राजेश चोधरी	६	डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ
अनुशीलन-अध्ययन		
तुलसी निर्देशिका—सम्पादक : डॉ. रमानाथ त्रिपाठी	११	डॉ. अबनिजेश अवस्थी
हिन्दी निबन्धके सो वर्ष—डॉ. मृत्युञ्जय उपाध्याय	१२	डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ
पं. गयाप्रसाद अग्निहोत्री रचनावली—सम्पा. डॉ. हरिकृष्ण त्रिपाठी	१४	डॉ. त्रिलोचन पाखरे
सफदर—प्रस्तुति : जननाट्य मंच	१६	डॉ. नरनारायण राव
आत्मसंस्मरण		
सहचर है समय—रामदरश मिश्र	१८	डॉ. अश्विनी पारमार्
काव्य		
नकारात्मक—शिवप्रसाद द्विवेदी	२२	डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित
पेड़की छाया दूर है—अजयकुमार सिंह	२५	डॉ. प्रयाग जोशी
गंध उवार—राम इकबाल सिंह 'राकेश'	२६	डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ
भारतेन्दु पदावली—सम्पा. : सत्यनारायण मिश्र	२६	डॉ. रामानन्द शर्मा
उपन्यास		
ढाई घर—गिरिराज किशोर	२८	डॉ. भगोरथ बड़ोते
शेष नमस्कार—सन्तोषकुमार घोष	३१	डॉ. मृत्युञ्जय उपाध्याय
कहानी		
क्षुधित पाषाण तथा अन्य कहानियां—रवीन्द्र ठाकुर	३३	प्रो. घनश्याम शतपथ
एक नया आसफुद्दौला—कौशलेन्द्र पाण्डेय	३७	सुश्री उषा सक्सेना
नाटक		
देशके लिए—सुदर्शन मजीठिया	४०	डॉ. नरनारायण राव
हास्य-व्यंग्य		
नौर-क्षीर—लतीफ घोंघी	४२	डॉ. भानुदेव शुक्ल
धर्म और चिन्तन		
दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि—कामताप्रसाद जैन	४४	डॉ. निजामउद्दीन
ऋषिवर बोले—श्री रवीन्द्र	४६	डॉ. विजय कुलकर्णी
'५ कर'—जुलाई ६२		



अध्ययनपरक भाषण-आलेख : ३

## आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : सौन्दर्य-दृष्टि [भक्ति-काव्यके विशेष संदर्भमें]

— डॉ. एस. टी. नरसिंहाचारी

### शुक्लजीकी सौन्दर्य-दृष्टि

कलावाद, रूपवाद, अभिव्यंजनावाद आदिके विरोधी रसवादी आचार्य रामचंद्र शुक्लके साहित्य चिन्तन और आलोचनाके संदर्भमें उनकी सौन्दर्य-दृष्टि की चर्चा अन्तर्विरोधी लग सकती है। परन्तु नवीन साहित्यिक चेतनाको अपने रस-सिद्धांतकी परिधिमें आत्मसात् करते हुए उन्होंने सौन्दर्य-चेतनाको भी स्वीकार किया है, भलेही सौन्दर्य संबंधी अतिवादी दृष्टिका विरोध किया हो।

कविताकी रसानुभूतिके लिए सौन्दर्यकी पहचान अत्यन्त आवश्यक है। कवितामें साहित्यकी अन्य विधाओं की अपेक्षा रूपकी प्रधानता होती है। उसके कथ्य और रूपमें सौन्दर्यका ताना-बाना बुना रहा है। कविताकी समीक्षाके लिए सौन्दर्य रूचि, उसकी गहरी पहचान और उससे स्पंदित होनेकी क्षमता प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं। काव्यकी रस-संवेदनाकी व्याख्याके लिए आलोचकका विकसित सौन्दर्यबोध आधार-भूमि है। शुक्लजी रस-संवेदनाको काव्यका अन्तिम लक्ष्य मानते हैं। उनकी समीक्षा इस बातका प्रमाण है कि कवितामें सौन्दर्यभिनिवेशके बिना वह संभव नहीं है। शुक्लजी की समीक्षागत सौन्दर्य-दृष्टि ऐसी है कि उसके द्वारा काव्य-सौन्दर्यकी चेतनाही जागृत नहीं होती, पाठकोंको वह दृष्टि मिलती है जिससे वे कविताके सौन्दर्यके मूल धर्मको पहचान पाते हैं।

प्रश्न उठता है कि द्विवेदी युगके समीक्षकमें काव्य सौन्दर्यको ऐसी सूक्ष्म पकड़ कहाँसे आयी? भारतेन्दु युगकी सौन्दर्य चेतना रीतिकालीन परिधिमें बँधी थी। काव्य-रचनाका विषय भक्तिपरक था, परन्तु अभिव्यंजना

की शैली रीतिकाव्यसे प्रभावित थी। सहजही सौन्दर्य बोध और सौन्दर्य चेतना रीतिकालीन परिपाटीमें थी। नयी सौन्दर्य-चेतनाका उन्मेष नहीं हो सका। आलोचनामें रस-अलंकारके शास्त्रीय आधारपर सतही विचार हो रहा था। काव्यके सौन्दर्य और रसमें उसकी गहरी पैठ नहीं थी। द्विवेदी-युगमें काव्य पुरानी वस्तुका कुछ नया आख्यान करके संतुष्ट था। प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं और प्राचीन काव्य-रचना-पद्धतियोंके पुनरुत्थानमें ही नया सौन्दर्य देखनेका प्रयास किया गया। भक्तिकाव्य और रीतिकाव्यसे पीछे जाकर संस्कृतके महाकाव्योंकी अभिव्यंजना-पद्धति अपनायी गयी। पूर्व स्वच्छन्दतावादी कविताओंमें नये सौन्दर्यका कुछ आभास अवश्य मिल जाता है। आलोचना रीतिकालीन देव और बिहारीकी काव्याभिव्यंजनाकी सूक्ष्मताओंके सौन्दर्यमें उलझी रही।

आचार्य श्री नरसिंहाचारीके आचार्य रामचंद्र शुक्लपर अध्ययनपरक दो भाषण 'प्रकर' के भाद्रपद'२०४८ और माघ'२०४८ अंकोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें शुक्लजीकी साहित्यिक अभिरूचि, सौन्दर्यशास्त्रीय पक्ष, सहृदयता-रसज्ञता और उनके सामाजिक एवं पाश्चात्य-वादों और सिद्धान्तोंका खण्डन करनेपर भी वे नवीन दृष्टि सम्पन्न थे। शोधपरक ऐतिहासिक दृष्टिके कारण उनके साहित्यिक मूल्यांकनने नयी दिशाओंका मार्ग खोला। प्रस्तुत अध्ययनमें भक्ति काव्यके संदर्भमें उनकी सौन्दर्य-दृष्टिका विवेचन है।



इस ऐतिहासिक परिपार्श्वमें शुक्लजीकी सौन्दर्य-चेतना एवं दृष्टि मूल परिवर्तनकारी और तलस्पर्शी सिद्ध हुई। अपने युगकी सीमाओंको तोड़कर वे सच्चे काव्य-सौन्दर्यको पहचानने और उससे विभिन्न तत्त्वों की व्याख्या करनेमें बहुत कुछ सफल हुए। सच्चे सौन्दर्य के संस्कारोंको जगाकर उन्होंने युगीन सौन्दर्याभिरुचिका परिष्कार किया। अपनी सूक्ष्म सौन्दर्य दृष्टिके बलपर उन्होंने भक्तिकाव्यका नया आख्यानही नहीं किया, अपितु नयी-पुरानी सभी काव्यधाराओं और प्रवृत्तियोंने सौन्दर्यमय और सौन्दर्येतर तत्त्वोंको स्पष्ट अलग किया। काव्य-सौन्दर्यको क्षाति पहुंचानेवाले तत्त्वोंका उन्होंने बड़ी निर्ममताके साथ खण्डन किया। उनकी दार्शनिक, सामाजिक और सैद्धान्तिक मान्यताओंकी सीमाएं हो सकती हैं, पर उनके कारण काव्य-सौन्दर्यको पहचानने और उसका सही मूल्यांकन करनेमें कोई बाधा नहीं हुई। बहुतसे नये समीक्षक शुक्लजीकी रीति काव्य और छायावादी काव्यका विरोधी मानते हैं, परन्तु उन्होंने रीतिकालीन सौन्दर्यबोधकी विशेषताओंकी उपेक्षा नहीं की। वास्तवमें रीतिकाव्यके स्थूल भाव-रसपरक तत्त्वों और रूढ़ अभिव्यंजना पद्धतिका विरोध करते हुए भी उन्होंने सूक्ष्म रूप-सौन्दर्य निरूपण, द्वाव-भाव योजनाकी गतिशीलता, क्रीड़ा-माधुर्य, सम्मूर्तन-विधान, लयात्मकता आदि अनेक सौन्दर्यशास्त्रीय तत्त्वों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। छायावादी दृष्टि और वस्तुकी सीमाओंका निर्देश करनेके बाद उसकी भाव-व्यंजनाको मायिकता तथा प्रभावित साम्य के आधारपर अप्रस्तुत योजना, सूक्ष्म उपमानोंके प्रयोग, प्रतीकविधान, विम्बांकन, चित्रकला शैली, मानवीकरण, लाक्षणिक प्रयोग आदिके नये सौन्दर्यकी ओर संकेत करनेवाले प्रथम समीक्षक शुक्लजी ही थे। बादकी आलोचनामें उन्हीं विशेषताओंका पल्लवन और विस्तार होता रहा। शुक्लजीकी पैनी दृष्टिसे छायावादी भाव-व्यंजनाकी कमजोरियां और दूरारूढ़ कल्पनाकी ऊहात्मकता ओझल नहीं थी। पन्तजीकी कविता 'छाया' में कल्पनाके विम्बोंकी क्रीड़ाको अकाव्यात्मक घोषित करके अन्तिम छन्दोंमें भावनाको संवेद्य माननेमें शुक्ल जीके सौन्दर्यबोधका पता चलता है।

ऐसा लगता है कि छायावादी-युगमें विभिन्न पाश्चात्यवादोंके नामपर सौन्दर्य सम्बन्धी नवीन विलक्षण धारणाओं और मतव्योंको देखकर शुक्लजीने अपनी

मान्यताओंके प्रतिपादनके संदर्भमें उनपर विचार करना आरम्भ किया। उनको रस-सिद्धांतके विरुद्ध मानकर पहले खण्डन किया। जब वे रस-अलंकारके तात्त्विक विवेचनमें संलग्न हुए तो काव्यके सौन्दर्यशास्त्रीय पक्ष की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। अलंकार-विधान का प्राणतत्त्व सौन्दर्य है ही, वे रस-संवेदनाकी चर्चा भी जाने-अनजाने सौन्दर्य-चेतनाकी आधारभूमिको पहचानने लगे जो काव्यमें भावको संवेद्य बनाती है। इस प्रकार शुक्लजीकी सौन्दर्य-मीसांसाने खंडनात्मकसे विधायक रूप ग्रहण किया। शुक्लजीके समय छायावादी कवि सौन्दर्य सम्बन्धी चिन्तनधाराओंको लेकर आगे बढ़नेका प्रयत्न कर रहे थे। उनसे शुक्लजी प्रभावित नहीं हुए, परन्तु छायावादी कविताने काव्य-रचनामें सौन्दर्यका जो नवीन और मौलिक रूप सामने रखा, शुक्लजीकी सहृदयता और रसग्राहिता उससे प्रभावित होकर छायावादी सौन्दर्यके तात्त्विक विश्लेषणमें प्रवृत्त हुई। यह माना जा सकता है कि शुक्लजीकी सौन्दर्य चेतनाके विकासमें भक्ति काव्यके साथ छायावादी काव्यकी भी प्रेरणा है। अन्यथा वे पद्माकरकी चर्चामें सम्मूर्तन और घनानन्दकी समीक्षामें लाक्षणिक-प्रतीकात्मक प्रयोगोंकी बात नहीं उठाते।

शुक्लजीके सौन्दर्यबोध और सौन्दर्य-दृष्टिके विकासके मूलमें अनेक तत्त्व क्रियाशील हैं। एक क्लासिकल साहित्यके उदात्त सौन्दर्यके प्रति आकर्षण है, दूसरा मध्यवर्गीय संस्कृतिका गरिमायु रूप है। वास्तव में संस्कृतिही जीवन और साहित्यमें सौन्दर्यके संस्कारों को जगानेवाली आधारभूमि है। तीसरा युगकी नयी चेतना है। शुक्लजी एक ओर परम्पराके अनुयायी थे तो दूसरी ओर उस परम्पराको आगे बढ़ानेवाली नवीन चेतना के आवाहनके समर्थक भी थे। जीवन और साहित्य दोनोंमें उन्होंने प्राचीन रूढ़ परम्पराओंका विरोध किया तो नवीन उच्छृंखलताका भी। चौथा साहित्य और सौन्दर्य सम्बन्धी पाश्चात्य-चिन्तनका ग्रहण और उसे भारतीय परम्परामें आत्मसात् करनेका प्रयत्न है। कुल-मिलाकर उनकी सौन्दर्य दृष्टिने ऐसा प्रबल रूप धारण किया है कि उसमें खण्डनात्मक तीव्रता है। स्पंदनशील संवेदना है और स्वस्थ उदात्त गरिमा भी है। संकीर्ण परम्परा और उच्छृंखल नवीनताका विरोध करते हुए शुक्लजीने सौन्दर्य चेतनाके परिष्कार और उसके विकासका जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, उसका मूल्यांकन



कन करना संभव नहीं है। उनके समीक्षा कार्यके अभाव में काव्य सम्बन्धी नयी सौन्दर्याभिरुचिके विकासकी कल्पना ही नहीं कीजा सकती।

शुक्लजीकी आलोचनाका आधार काव्यके संदर्भमें रस सिद्धांत और रूपके संदर्भमें मुख्यतः आलंकारिक विधान है। काव्यशास्त्रकी परम्परासे भिन्न दोनोंको उन्होंने व्यापक अर्थमें ग्रहण किया है। उनकी रसवादी दृष्टि जीवन-सापेक्ष है। जीवनमें धार्मिक चेतना, सामाजिक मर्यादा और दोनोंकी परिधिमें भावात्मक स्पंदनशीलताको मूल्यवान् मानकर रस-संवेदना या काव्योत्कर्षका मूल्यांकन किया गया है। धार्मिक-सामाजिक चेतनाकी परिणति, जीवनके प्रौढ़ सांस्कृतिक परिवेशमें रसको उदात्तताके धरातलपर पहुँचा देती है जैसे तुलसीके काव्यमें। शुक्लजी जानते हैं कि केवल धार्मिक प्रसंग और साधनामें रसात्मकता नहीं होती। वेन कबीरकी साधनामें काव्यत्व देखते हैं और न तुलसीके मानसके धार्मिक उपदेशोंमें। सामाजिक दृष्टिसे जीवन के अनुशीलनमात्रको भी साहित्यकी संज्ञा नहीं दीजा सकती। उन्होंने प्रेमचन्दके सुधारवादी आग्रहोंको 'प्रोपेण्डा' कहकर व्यंग्य किया है। भावानुभूतिको जीवन सापेक्ष मानकर उन्होंने एक ओर वस्तुके धार्मिक-सामाजिक पक्षों और मूल्योंपर बल दिया है तो दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे उसकी सच्चाई, गहराई, व्यापकता और उदात्तताको परखनेका प्रयास किया है। काव्य धर्म और समाजशास्त्र नहीं है तो वह मनोविज्ञान भी नहीं है। ऐसा लगता है कि शुक्लजी वस्तु और भाव की सौन्दर्यशास्त्रीय परिणति चाहते हैं, तभी काव्यमें काव्यत्व होता है। रचना आस्वाद्य होकर रसानुभूति की भूमिका प्रस्तुत होती है। इन्होंने वस्तु और भावके सौन्दर्यशास्त्रीय पक्षका प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं किया, काव्यकी भावभूमिके महत्त्वका ही आग्रह करते रहे। परन्तु उनकी रसप्राहिता, वस्तु और वस्तुगत भावको संवेद्य बनानेवाले सौन्दर्यात्मक मूल्यको पहचान सकी और उसी आधारपर कविताका मूल्यांकन होता रहा। इस संदर्भमें यह भी ध्यातव्य है कि शुक्लजी कविता में आलंबन या वस्तुका वर्णन, भावकी अनुभूतिके लिए आवश्यक मानते हैं। साधारणीकरणकी चर्चामें कविके द्वारा आलंबनमें सामान्य मानवीय धर्मकी प्रतिष्ठाका आग्रह करते हैं जिससे रचनाका साधारणीकरण होकर रसकी अनुभूति होती है। शृंगारके संदर्भमें आलंबनका

सौन्दर्य, रस-संवेदनाकी आधारभूमि है जिसके सौन्दर्य की छटा और विशेषताओंकी ओर उनकी व्यावहारिक आलोचनाओंमें संकेत किये गये हैं। आलंबनका यह सौन्दर्य मानवीय है, वह व्यक्तिकी विलक्षणता और व्यक्तित्वके वैचित्र्यमें नहीं है। अन्य रसोंके आलंबनभी मानवीय प्रसंग संवेदनाके मूल्योंके प्रतिपादनके द्वारा ही पाठककी मानवीय संवेदनाके विषय हो सकते हैं और तभी रसकी अनुभूति सम्भव है। कहनेका तात्पर्य यह हुआ कि कविता, उसकी वस्तु, आलंबन और उससे उत्पन्न भावनाएँ, सौन्दर्यशास्त्रीय अर्थमें संवेद्य बनते हैं। धार्मिक-सामाजिक प्रसंग सौन्दर्यका उत्कर्ष करते हैं, मानवीय भावात्मक संवेदना उसकी आधारभूमि है।

शुक्लजीकी दृष्टिमें अलंकार सौन्दर्यका साधक तत्त्व हैं। कविताकी रूप-संरचनामें उसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। यद्यपि अलंकारके बिनाभी काव्याभिव्यंजना हो सकती है, कविताकी तीव्र संवेगात्मक अभिव्यक्तिमें कल्पनाकी अप्रस्तुत या आलंकारिक योजना स्वाभाविक है। अपने सैद्धांतिक चिन्तन और व्यावहारिक आलोचनामें शुक्लजीने अप्रस्तुत अलंकारविधानके अनेक सौन्दर्यशास्त्रीय पक्षोंका उद्घाटन किया है, विशेषतः छायावादके संदर्भमें। आधुनिक कवितामें सौंदर्यपरक बिम्ब, प्रतीक, चित्रांकन, मानवीकरण अलंकार-विधान आदि समस्त विशेषताओंको शुक्लजीने अप्रस्तुत योजना शीर्षक देकर विचार किया है। भारतीय रूढ़ परम्परा में लक्षणोंके आधारपर अलंकारोंका निरूपण मात्र शुक्लजीका लक्ष्य नहीं है। सौन्दर्य दृष्टिके अभावमें उन्होंने अलंकार-विधानका विरोध किया है जैसे तुलसी के सांग रूपकोंका, रीतिकालीन ऊहात्मक अलंकरण प्रवृत्तिका या छायावादी अलंकारों या अप्रस्तुतोंकी भरमारका।

सौन्दर्यका दूसरा प्रमुख साधक तत्त्व कल्पना है, इस पर भी शुक्लजीने विस्तारसे विचार किया है। वे जानते थे कि कल्पना कारयित्री प्रतिभा है जिसके द्वारा भाव का सम्मूर्तन होता है। उसका सम्बन्ध कथ्य और रूप दोनोंसे है। परन्तु रसवादी दृष्टिसे भावको अधिक महत्त्व देते हुए उसे साधनमात्र कहते हैं और उसका भाव प्रेरित होना आवश्यक समझते हैं। अनेक स्थानोंपर ऐसा लगता है कि वे कल्पनाको कला पक्षके रूप विधान से ही जोड़ रहे हैं और कल्पना उनकी दृष्टिमें केवल रूपविधायिनी है। वस्तु या भावका बिम्ब खड़ा करनेमें



कल्पना अप्रस्तुत, विम्ब प्रतीक आदिकी योजना अवश्य करती है, पर वही कल्पनाका कार्य नहीं है। आधुनिक कवितामें, विशेषतः छायावादमें भाव-व्यंजनासे अप्रस्तुत विधायिनी कल्पनाकी अधिक क्रियाशीलताको देखकर प्रतिक्रियामें शुक्लजीने अधिक कल्पनाशीलताका विरोध ही नहीं किया, उसके रूपविधायिनी पक्षकी ही अधिक चर्चा की है।

शुक्लजीका सौन्दर्यसम्बन्धी दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठ है। रसानुभूतिकी भांति सौन्दर्यानुभूतिमें भी आलंबन या वस्तुपर बल दिया गया है। उसके साथ “अन्तः-सत्ताकी तदाकार परिणति सौन्दर्यकी अनुभूति हैं।”<sup>१</sup> “सुन्दर वस्तुसे पृथक् सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं है।<sup>२</sup> वस्तु की भावनामें, मन उसमें तन्मय हो जाता है। “कविता केवल वस्तुओंके ही रूपरंगके सौन्दर्यकी छटा नहीं दिखाती, प्रत्युत कर्म और मनोवृत्तिके सौन्दर्यके भी अत्यन्त मार्मिक दृश्य सामने रखती है।”<sup>३</sup> कविकी दृष्टि जीवन-जगत्में “सौन्दर्यकी ओर जाती है, चाहे वह जहां हो—वस्तुओंके रूप-रंगमें अथवा मनुष्यके मन, वचन और कर्ममें।”<sup>४</sup> रसकी भांति सौन्दर्यके भी धर्म हैं—वस्तुनिष्ठता, नैसर्गिकता स्वाभाविकता सात्त्विकता और सामाजिकता। सौन्दर्य केवल कोमलता में नहीं है, रूप और भावकी उग्रतामें भी सौन्दर्यकी झलक मिल जाती है।

कवितामें सौन्दर्यका सम्बन्ध केवल उसके रूप-विधानसे नहीं है। वह जीवनका रस है। शुक्लजीकी दृष्टिमें रसकी भांति सौन्दर्यभी जीवन सापेक्ष है। जीवन की विरूपताओं और विकृतियोंकी अभिव्यंजनामें न सौन्दर्य है और न रस। “काव्य दृष्टिसे जब हम जगत् को देखने हैं तभी जीवनका स्वरूप और सौन्दर्य प्रत्यक्ष होता है।”<sup>५</sup> यदि ऐसा नहीं होता तो “हृदयके विकासका अभाव और जीवनके सौन्दर्यकी अनुभूतिकी कमी समझनी चाहिये।”<sup>६</sup> “जीवनका सौन्दर्य वैविध्यपूर्ण है।”<sup>७</sup> यह सौन्दर्य मंगलमय है। “सौन्दर्यभी मंगलका ही पर्याय है। जो लोग केवल शान्त और निष्क्रिय सौन्दर्य के अलौकिक स्वरूपमें ही कविता समझते हैं वे कविता को जीवन क्षेत्रसे बाहर खदेड़ना चाहते हैं।”<sup>८</sup> शुक्लजी जीवन-जगत्की मधुर कल्पनाओंमें ही सौन्दर्यकी स्थिति नहीं मानते। प्रत्यक्ष जीवनमें सत्य-असत्य, अच्छे-बुरेकी भांति सौन्दर्य-कुरूपताके द्वन्द्वकोभी स्वीकार करना

पड़ता है। कवितामें “कुरूपताका अवस्थान सौन्दर्यकी पूर्ण और स्पष्ट अभिव्यक्तिके लिए”<sup>९</sup> आवश्यक है।

छायावादी युगमें सौन्दर्य सम्बन्धी जो रोमांटिक विचार प्रकट हो रहे थे उनसे भिन्न शुक्लजीकी वस्तुवादी विचारधारा है। सौन्दर्य अलौकिक न होकर लौकिक भावना है। वह कल्पनाकी वस्तु न होकर जीवन सापेक्ष है। सौन्दर्य केवल वस्तु रूपसे ही सम्बन्धित नहीं है, भाव और कर्ममें भी सौन्दर्य होता है। सौन्दर्य शिवसे भिन्न वस्तु नहीं है, वह मंगलमय है। सौन्दर्य केवल कोमल-मधुर भावनामें ही नहीं है, जीवनके कठोर कटु सत्यमें भी सौन्दर्य है। सौन्दर्य जीवनका एक पक्ष मात्र नहीं है, वह जीवनके संस्कारोंसे विकसित जीवन के सभी पक्षोंमें वर्तमान संवेद्य स्थिति है। शुक्लजीका यह सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टिकोण उनकी रस-दृष्टिका अनुवर्ती है।

कलावादी दृष्टिका विरोध करते हुए कविताका जीवनसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध माननेवाले, रसानुभूतिके लिए भावोंका प्रत्यक्ष, प्राकृत, सामाजिक और धार्मिक या सात्त्विक होना आवश्यक माननेवाले शुक्लजी जानते हैं कि कवितामें जीवनका, उसके विविध पक्षोंका कलात्मक या सौन्दर्यात्मक पर्यवसान अनिवार्य है। सौन्दर्य दृष्टि और चेतनाके बिना कविता कविता नहीं है। “सौन्दर्य और कुरूप काव्यमें ये ही दो पक्ष हैं। भला-बुरा, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, मंगल-अमंगल, उपयोगी-अनुपयोगी—ये सब शब्द काव्यक्षेत्रके बाहरके हैं। वे नीति, धर्म, व्यवहार, अर्थशास्त्र आदिके शब्द हैं। शुद्ध काव्यक्षेत्रमें न कोई बात भली कही जाती है न बुरी, न शुभ न अशुभ, न उपयोगी न अनुपयोगी। सब बातें केवल दो रूपोंमें दिखायी देती हैं—सुन्दर और असुन्दर।”<sup>१०</sup> सतही दृष्टिसे देखनेपर ऐसा लगता है कि शुक्लजी कलावादी या अभिव्यंजनावादी शब्दोंमें बोल रहे हैं। वास्तवमें उनका अभिप्राय कला या कवितामें वस्तुके सौन्दर्यमय या सौन्दर्यशास्त्रीय प्रतिपादनसे है जो वस्तु को काव्यत्व प्रदान करता है।

### भक्तिकाव्यकी सौन्दर्य-चेतनाका अनुशीलन

किसी काव्यधारा या प्रवृत्तिकी सौन्दर्य चेतना उसमें आधारभूत जीवनसूत्रोंसे अनुप्राणित होती है। भक्ति-आन्दोलनकी दिशाओंने हिन्दी भक्ति काव्यकी वस्तु और भावनाको ही नहीं, उसकी सौन्दर्य दृष्टिको



भी निर्धारित किया है। शुक्लजीके जीवनदर्शनमें भक्ति-आन्दोलनकी अपने ढंगसे व्याख्या की और तदनुसार भक्तिकाव्यका मूल्यांकन किया। मूलतः भक्ति-आन्दोलन और भक्तिकाव्य आध्यात्मिक और वैयक्तिक साधनापर बल देनेवाले हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी सूरके वात्सल्य और शृंगारको शुद्ध लौकिक नहीं मानते। शुक्लजीकी धार्मिक-सामाजिक दृष्टिने भक्तिको सामाजिक परिपार्श्वमें देखनेका प्रयत्न किया है। वैयक्तिक साधनाको काव्यका विषय स्वीकार नहीं किया गया। उनकी सौन्दर्य दृष्टि धर्म और कर्मके सौन्दर्यमें ही तल्लीन होसकी। इसलिए उनको कबीर आदि संत कवियोंकी वैयक्तिक आध्यात्मिक साधनामें कोई सौन्दर्य दिखायी नहीं पड़ा। जायसीकी भाव-व्यंजनामें प्राकृतिक, पारिवारिक और सामाजिक पक्षोंको लेकर उसकी सौन्दर्य चेतनाकी आवश्यकतासे अधिक प्रशंसा हुई। प्रबन्धकार तुलसी और गीतकार सूरकी तुलना करनेवाले शुक्लजीने कहीं भी जायसी और सूरकी तुलना नहीं की। वे जानतेथे कि सूरके सौन्दर्य-बोध और काव्योत्कर्षकी तुलनामें तुलसीका समर्थन ही कठिन है सो जायसीका प्रबन्ध-कौशल और जीवन-सौन्दर्य-निरूपण हीन कोटिका होगा। ये सूरकी मौलिक काव्य-प्रक्रिया और भाव-व्यंजनाका, उसके काव्य-सौन्दर्यका अत्यन्त सूक्ष्म और तलस्पर्शी विश्लेषण और प्रशंसा करते हुए भी 'लोकमंगलकी साधनावस्था'के काव्योत्कर्ष की महिमा गाते हुए सौन्दर्यतर मूल्योंके आधारपर तुलसीको हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध करते हैं। प्रश्न उठता है कि साधनावस्थामें सर्जनात्मक प्रतिभा और सौन्दर्य-चेतना उस स्थितिपर पहुंचती है या सिद्धावस्थामें? शुक्लजी यह भी भुला देते हैं कि तुलसी काव्य-साधनामें सामाजिक पक्ष जितना प्रबल है उतनाही वैयक्तिक पक्ष। विनयपत्रिकाकी बात भूलकर स्वयं मानसकोही लेते हैं तो वह लोकधर्मका ही नहीं, वैयक्तिक भक्ति-साधनाका भी काव्य है। भक्ति काव्यके सौन्दर्य-शास्त्रीय अनुशीलनमें शुक्लजीकी सीमाएं उनके मताग्रहोंके कारण हैं। सौन्दर्यके सम्बन्धमें उनका दृष्टिकोण सामाजिक है। सौन्दर्यकी वैयक्तिक भावनासे वे अनभिज्ञ नहीं थे। परन्तु उन्होंने जीवनके आध्यात्मिक, साधनात्मक और वैयक्तिक पक्षोंके सौन्दर्यको एकांगी और कभी-कभी सौन्दर्यरहित माना। सहृदयताके साथ जहां कहीं उसका ग्रहण हुआ है, अपनी सैद्धांतिक सीमाओंमें ही।

भक्ति-आन्दोलन और भक्तिकाव्यका एक महत्त्वपूर्ण पक्ष, जिसपर शुक्लजीका ध्यान नहीं गया है और जिसके कारण उनके सौन्दर्यशास्त्रीय अनुशीलनमें कुछ त्रुटियां आ गयी हैं, वह भक्ति काव्यकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति है। काव्य शास्त्रकी लीकको छोड़कर उन्होंने रस और अलंकारकी जीवन सापेक्ष सौन्दर्यशास्त्रीय व्याख्या की। भक्ति-काव्य और आधुनिक काव्यके मौलिक सौन्दर्यबोधको अपने ऐतिहासिक-विकसित परिपार्श्वमें समझनेके लिए यह आवश्यक था। परन्तु सामाजिक-साहित्यिक क्षेत्रोंमें की स्वच्छन्दतावादी मूल प्रवृत्तियोंको न समझकर वे सामाजिक जीवनमें तुलसी की समन्वयवादी दृष्टिको और साहित्यमें अपने वस्तुवादी आदर्शोंको ही काव्यका श्रेय और प्रेय मानते रहे।

स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तिके दो रूप हैं—एक विद्रोह या क्रान्तिकी भावना और दूसरा रूढ़िमुक्त जीवनकी स्वच्छन्दताका आग्रह। भक्ति-आन्दोलन और भक्तिकाव्य में दोनों बातें दिखायी देती हैं। क्रांतिकारी दृष्टि, रूढ़ परम्पराओंका विरोध, धर्मके क्षेत्रमें स्थूल दृष्टिका खण्डन, जाति-पांतिकी व्यवस्थाकी निस्सारताकी अभिव्यक्ति और सरल जीवन बिताते हुए आध्यात्मिक प्रत्यक्ष अनुभूति—संत काव्यकी विशेषताएं हैं। इन वस्तुगत प्रवृत्तियोंके कारण संत कवियोंकी सौन्दर्य-भावना में क्रांतिकारिता, अनुभूतिकी तीव्रता आध्यात्मिक सूक्ष्म चेतनाकी झलक मिलती है। उन्होंने काव्य परम्परासे भिन्न एक नये सौन्दर्यबोधका विकास किया है। यह दूसरी बात है कि काव्यपर नहीं, साधनापर ध्यान केन्द्रित होनेके कारण इस नये सौन्दर्यबोधको साहित्यिक या कलात्मक रूप प्राप्त नहीं होसका। सूफी और सगुण भक्त कवियोंने जीवन और काव्यमें क्रांतिकारिताको अधिक महत्त्व नहीं दिया। वे जीवनमें सात्त्विक भक्ति आध्यात्मिक अनुभूतिकी ही ओर उन्मुख रहे। इस कारण उनकी सौन्दर्य-भावनामें केवल भावात्मक तरलता और स्वच्छन्दता मिलती है। तुलसीने वैचारिक धरातल पर धर्मकी नयी व्याख्याका प्रयत्न किया, पर वह सौन्दर्य चेतनाका अंग नहीं बन सकी। वह लौकिक दृष्टिसे समन्वयवादी या सामाजिक सुव्यवस्थाका आग्रही मात्र रह गयी।

भक्ति-आन्दोलनकी अध्यात्म, धर्म और भक्ति सम्बन्धी नयी मान्यताओंसे अनुप्राणित भक्तिकाव्यमें



सौन्दर्यकी नयी दिशाएँ आलोकित हो उठीं। जीवन और काव्यके क्षेत्रोंमें स्वच्छन्द अनुभूतिका यह परिणाम था। भक्ति-आन्दोलनने जीवनमें नया स्पंदन उत्पन्न किया तो भक्त कवियोंने उस स्पंदनको सौन्दर्यात्मक रूप प्रदान किया। वैचारिक सिद्धांत प्रतिपादनसे बंधे कबीरमें, सूफी साधनाकी परिधिमें सर्जनाशील जायसी में या हिन्दू समाजमें नयी सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के विकासके लिए यत्नशील तुलसीमें भक्तिकाव्यकी स्वच्छन्द भावना, उस रूपमें सौन्दर्यात्मक रूप धारण नहीं कर सकी जिध प्रकार कृष्ण-भक्ति काव्यमें, विशेषतः सूरमें। भक्तिकालमें नवीन काव्य सौन्दर्यके उन्मेषके प्रतिनिधि कवि सूर हैं। वे जीवनके सूत्रोंको भक्तिभावना के भावात्मक धरातलपर ग्रहण करके उसकी अनुभूतिमें मन और आत्माके स्वच्छन्द प्रसारको काव्यके सर्जना-शील सौन्दर्यमें परिणत करनेवाले महाकवि हुए।

भक्तिकाव्यकी स्वच्छन्द प्रवृत्तिमें संस्कृत साहित्य और काव्यशास्त्रीय रस-अलंकारकी परिपाटियाँ चरमरा उठीं। शुक्लजीने भक्तिकाव्यके इस नये सौन्दर्यको पहचाना और देव विहारीकी श्रेष्ठताके विवादमें उलझी हुई सौन्दर्याभिरुचिके परिष्कारका प्रयत्न किया। दर-बारी संस्कृति और सौन्दर्यभावनाका विरोध किया। कल्पनाकी क्रीड़ा और उक्ति-चमत्कारसे भिन्न सच्ची सौन्दर्य चेतनाका विकास किया। हिन्दी साहित्यके इतिहास, सूर, तुलसी और जायसीकी आलोचनामें इनके भक्तिकाव्यके सौन्दर्यके प्रतिमानोंकी ओर अनेक संकेत मिलते हैं। भक्तिकाव्यकी उनकी समीक्षा सौन्दर्य शास्त्रीय न होकर रसवादी अवश्य है, परन्तु उन्होंने रस-सवेदनाकी आधारभूमिके रूपमें सौन्दर्यात्मक चेतना की विभिन्न विशेषताओंका उद्घाटन किया है।

भक्तिकी सात्विकता, उसका रागात्मक प्रवृत्तिसे उत्पन्न भावतरलता, उसके सरल जीवन दर्शनसे विकसित नैसर्गिकता एवं ऋजुता, उसके जीवन परिवेशकी सांस्कृतिक गरिमा आदि भक्ति-आंदोलन और भक्ति काव्यके कुछ महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं जिनसे शुक्लजी प्रभावित हुए और जिनकी काव्याभिव्यंजनाके सौन्दर्यकी साम्य-कताको पहचाननेमें सफल भी हुए। काव्य वस्तु और उससे उत्पन्न भाव-विचारोंमें सौन्दर्य और रस वस्तु-धर्मके रूपमें अवस्थित नहीं होते। भक्त कवियोंने अपनी भावना और कल्पनाके बलपर वस्तु भावगत मूल्योंको पहचानकर उन मूल्योंके व्यवस्थापनमें नया 'प्रकर'—जुलाई ६२—६

सौन्दर्य देखा। अपने भक्ति-दर्शनके आधारपर जीवनके कुछ प्रसंगों और अनुभूतियोंको मूल्यवान् और सौन्दर्य-मय मानकर काव्यके रूपमें सामने रखा। शुक्लजीने भक्तिकाव्यकी उपर्युक्त विशेषताओंकी मूल्य-स्थिति और सौन्दर्यात्मकताको पहचान सके। जैसाकि शुक्लजी ने सौन्दर्यकी चर्चामें संकेत किया है, काव्यमें विशेषतः भक्तिकाव्यमें प्रश्न सौन्दर्य और कुरूपताका नहीं है। जीवनकी कुरूपताभी काव्यका विषय हो सकती है। काव्यमें उसका मूल्य शुक्लजी केवल निषेधात्मक मानते हैं। पर उसका विधायक मूल्यभी हो सकता है। वास्तव में भक्तिकाव्य द्वन्द्वात्मक स्थितिसे परे केवल सौन्दर्य दर्शनका काव्य है। अध्यात्म और भक्तिके ऊँचे धरातल पर सौन्दर्योत्तरके लिए कोई स्थान नहीं है। भक्तिको लौकिक सामाजिक दृष्टिसे भी देखनेके कारण केवल तुलसीके काव्यमें (कहीं-कहीं सूफी काव्यमें) जीवनमें अच्छे-बुरे और शिव-अशिवकी भांति सौन्दर्यके रूपका प्रश्न उठाया गया है। शुक्लजीने भक्तिकाव्यके सौन्दर्यसे अभिभूत होनेके साथ-साथ अपनी अभिरुचिके अनुरूप शील सौन्दर्य और कर्म सौन्दर्यकी चर्चामें प्रकारान्तरसे तुलसीकी भांति, जीवनमें सौन्दर्य और कुरूपताके द्वन्द्व पर भी विचार किया है।

काव्याभिव्यंजनामें सौन्दर्यकी प्राथमिक अनिवार्य आवश्यकता मूर्त्ति विधान है। शुक्लजीकी दृष्टिमें निर्गुण सम्बन्धी परोक्ष उक्तियोंकी अपेक्षा सगुणके प्रत्यक्ष लीला विधानमें यह अधिक संभव है जिससे सगुण भक्तिकाव्य अधिक मनोहारी है। यहां सौन्दर्य सम्बन्धी दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। एक, वस्तु और भावकी मूर्त्ततासे कल्पना द्वारा सौन्दर्यात्मक मूर्त्तिविधानका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। अमूर्त्तभी कला में मूर्त्ति हो सकता है। दूसरा रहस्यात्मकता सौन्दर्यका एक मुख्य धर्म है जो मूर्त्तिविधान और उसकी व्यंजकताको बढ़ा देती है। रहस्यानुभूतिकी प्रतीकात्मक व्यंजनामें यह धर्म सहज रूपमें समाविष्ट होता है।

शुक्लजीके अनुसार सात्विकता और भाव-तरलता भक्तिकाव्यकी सभी धाराओंमें (सम्भवतः ज्ञानाश्रयी शाखाको छोड़कर) मिलती है। नैसर्गिकता सूफी काव्यमें प्रकृतिपरक (और कहीं-कहीं प्राकृत मानवीय भाव व्यंजनापरकभी) है जबकि कृष्णकाव्यमें वह भावात्मक है। सांस्कृतिक गरिमा रामकाव्यकी विशेषता है। कृष्ण काव्यके गोचारण परिवेशकी सांस्कृतिक सरलता और



उत्पन्न सौन्दर्यकी प्राकृतिक स्थितिकी ओर शुक्लजीने संकेत अवश्य किया है, पर उसकी गहराईमें जानेका प्रयत्न नहीं हुआ। वास्तवमें भक्ति-आन्दोलन और भक्तिकाव्यकी प्रवृत्ति तथाकथित उच्च सामाजिक सांस्कृतिक परिवेशकी चीरकर मानवीय रूप और भावनाके—मानव मन और जीवनके नैसर्गिक प्राकृत सौन्दर्यको सामने रखकर जीवनके संस्कृत सौन्दर्यसे परे प्राकृत सौन्दर्यकी अभिव्यक्ति की है। भक्त कविय अपने मन और आत्माको खोलकर सौन्दर्यके सूक्ष्म लोकोंके दर्शन करा सके, भले ही काव्य वस्तुकी निगुण रहस्यमय हो या सगुण लीलापरक। उस सौन्दर्यको शुक्लजीकी भांति लौकिक और स्थूल नेत्रेन्द्रियका विषय ही नहीं मान सकते। सगुण काव्यमें भी कवियोंने ऐन्द्रिय अनुभूतिके माध्यमसे मन और आत्माकी अनुभूतिके घरातलपर पहुंचकर सौन्दर्यकी चकाभौंधसे चमत्कृत कर दिया है। सौन्दर्यकी अद्भुतता भक्तिकाव्य का मूल धर्म है।

जायसीके पद्मावतके विवेचनमें शुक्लजीने प्रकृति वर्णनकी नैसर्गिकता, पद्मावतीके रूप सौन्दर्य वर्णनमें सृष्टिव्यापी उसके प्रसार, बारहमासेमें प्रकृति और मानवकी समान स्पंदनशीलता या सम्बन्ध-स्थापन और नागमती वियोग वर्णनमें भावोंकी नैसर्गिकता, ऋजुता एवं सामान्य मानवीय संवेदनामें सौन्दर्योत्कर्षका निरूपण किया है। सौन्दर्यकी ये विशेषताएं भक्तिकाव्यमें सूफी धाराके वैशिष्ट्यको प्रकट करती हैं और वे सूफी दृष्टि एवं साधनासे निष्पन्न हैं।

सामाजिक मर्यादा, सामाजिक सम्बन्धोंमें औचित्य निर्वाह, सामाजिक व्यवहारमें धर्मबद्धता, पारिवारिक जीवनमें सात्विक रागात्मकता, लोक जीवनमें सात्विक स्नेह, जीवनमें मूल्य-सन्तुलनकी गरिमा, भक्तिकी अनन्यता और उदात्तता—संक्षेपमें धार्मिक, पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेशमें भाव-सौन्दर्य और कर्म सौन्दर्यकी भव्यता, शुक्लजीकी दृष्टिमें तुलसीके काव्यकी सौन्दर्यशास्त्रीय विशेषताएं हैं। उन्होंने तुलसी के वर्णनोंमें रूप सौन्दर्यकी अद्भुततापर कम ध्यान दिया है। कवितावलीके वन-गमन प्रसंगकी छवियोंकी ओर कुछ संकेत मिलते हैं। शीलसे उत्पन्न भावसौन्दर्य और व्यवहार या कर्म सौन्दर्यपर शुक्लजी जितने मुग्ध हैं, उतनी शक्तिकी अनन्त क्रियाशीलतासे उत्पन्न उदात्त सौन्दर्यपर नहीं। कमसे कम उसका विस्तारसे विश्लेषण नहीं हुआ है। जैसाकि कहाजा चुका है, शुक्ल जी तुलसीके धार्मिक उपदेशोंमें नहीं, जीवनमें धार्मिक

क्रियाशीलतामें तुलसीके काव्यका उदात्त सौन्दर्य देखते हैं।

कृष्णकाव्य और सूरकी आलोचनामें शुक्लजीकी सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि अधिक सक्रिय दिखायी देती है। उसकी वस्तु, भावना, कल्पना और अभिव्यंजना सभी सौन्दर्यात्मक हैं। शुक्लजीके अनुसार सूरके रूपवर्णन और लीलासे कीर्तन दोनों सौन्दर्यकी अनन्त छवियोंमें भरे हुए हैं। यहांतक कि आंख और मुरलीपर ही पता नहीं सूर की सौन्दर्य और माधुर्यसे पूर्ण कितनी उक्तियां हैं। रूप की अनुभूति, उससे उत्पन्न भावात्मक प्रतिक्रिया और भाव-व्यंजनामें जो गहराई, व्यापकता और तन्मयता है, उसका शुक्लजीने विस्तारसे विश्लेषण किया है। उनका कथन है कि सूरने ऐसे अनेक मनोभावोंकी व्यंजना की है जिनका मनोविज्ञानमें नामकरण तक नहीं हुआ है। शुक्लजीने वात्सल्य और शृंगारमें रूप-सौन्दर्यकी अपेक्षा भाव-व्यंजनाकी ही अधिक चर्चा की है। तुलसीके काव्य में शील और कर्म सौन्दर्यकी ओर तथा सूरके काव्यमें भाव सौन्दर्यकी ओर उनका ध्यान अधिक आकृष्ट हुआ है। “रूपलिप्सा” से विमुख होकर भी शुक्लजी सूरके काव्यमें रूप सौन्दर्यकी अनन्त छवियोंकी बात कहते हैं। कृष्णलीला संकीर्तनमें अपूर्व सम्मूर्तन उनकी दृष्टिसे ओझल नहीं है। प्रत्येक पदमें लीलाकी एक झांकी नाटकीय दृश्यके रूपमें आंखोंके सम्मुख प्रत्यक्ष होती है। भ्रमरगीतके वाग्वैदग्ध्यमें सूरकी सहृदयता और भाव-ज्ञताकी विशेष प्रशंसा हुई। भक्तिके सौन्दर्यात्मक और रसात्मक पर्यवसानकी पराकाष्ठा कृष्णकाव्य है। सिद्धांततः शुक्लजी दास्य भक्तिको मधुर भक्तिसे श्रेष्ठ मानते हैं। पर उनकी सहृदयता और सौन्दर्याभिरुचि भक्तिके माधुर्यमें तल्लीन प्रतीत होती है। वे धर्म और दर्शनसे काव्य और उसके सौन्दर्यकी महानताको जानते हैं।

भक्तिकाव्यका सौन्दर्यशास्त्रीय विश्लेषण-विवेचन अभी बहुत कम हुआ है। शुक्लजीके भक्तिकाव्य सम्बन्धी सौन्दर्य शास्त्रीय संकेतोंको पहचानकर उस कार्यको आगे बढ़ाना है।

### संदर्भ-संकेत

- चिन्तामणि-I पृ. १६५, १६५१। २. वही-पृ. १६४। ३. वही-पृ. १६६। ४. वही-पृ. १६७। ५. चिन्तामणी-II पृ. ५१, १६४५। ६. वही-पृ. ५१। ७. वही पृ. ५१। ८. वही-५१-५२। ९. चिन्तामणि-I पृ. १६६। १०. वही पृ. १६७।



## शोध प्रबन्ध

### आधुनिक हिन्दी नाटकोंमें प्रयोगधर्मिता<sup>१</sup>

लेखिका : डॉ. सत्यवती त्रिपाठी

समीक्षक : डॉ. नरनारायण राय

‘प्रयोग’ वह साधन है जिसके द्वारा लेखक पूर्वकी समस्त ग्राह्य परम्पराको स्वीकार करता हुआ भी पूर्ववर्ती लेखनसे अपनेको भिन्न बनाये रहता है, अपनी रचनामें नवीन कलात्मक सौन्दर्यकी सृष्टि करता है। इसलिए कोई भी प्रयोगधर्मी रचनाकार अपनी पूर्ववर्ती परम्परासे एकदम टूटता नहीं। परम्परा कोई स्थिर वस्तु है भी नहीं। दूसरी ओर पूर्वागत परम्पराके संदर्भमें भी नये प्रयोग कहीं परम्पराको नकारते भी हैं, परम्पराके विरोध में भी खड़े होते दिखायी पड़ते हैं। ऐसा करते हुए अंततः ये स्वयं भी एक परम्परा बन जाते हैं। इसलिए परम्परा सतत गतिशील और इसलिए परिवर्तनशील एवं विकासमान भी होती है। परम्परा में ही प्रयोगके बीज छिपे होते हैं। परम्पराकी यही परिवर्तनशीलता और उसमें निहित नवीन सम्भावनाओंके बीज नये प्रयोगोंको जन्म देती है। स्पष्ट है कि कला और साहित्यमें नवीनताका आकर्षण, कलात्मक सौन्दर्य और अर्थपनकी नयी अंगिमाएं उत्पन्न करनेके लिए प्रयोग किये जाते हैं। दूसरे शब्दोंमें प्रयोग सर्जनात्मक साहित्यकी अनिवार्यता है और अन्वेषणकी और उसका उन्मुख होना उसकी मुख्य प्रवृत्ति है। प्रयोग प्रायः अज्ञातकी ओर अग्रसर होता है इसलिए सदा कुछ नया लेकर आता है। प्रयोग एक साधन है, साध्य है रचना; रचनाओंके नवीन प्रयोगोंके द्वारा संप्रेषित होनेवाला कलात्मक आनन्द। प्रत्येक युग अपनी अभिव्यक्तिके लिए अपने उपयुक्त रचना विधान को खोजता है और इस प्रक्रियामें नये प्रयोगोंको जन्म देता है। ‘आधुनिक हिन्दी नाटकोंमें प्रयोगधर्मिता’

१. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-२। पृष्ठ : २०८; डिमा. ६१; मूल्य : ६०.०० रु.।

‘प्रकर’—जुलाई ६२—८

समीक्ष्य प्रबन्ध इसी पृष्ठभूमिमें आधुनिक हिन्दी नाटकों में किये गये विविध प्रयोगोंका आकलन प्रस्तुत करता है।

समीक्ष्य प्रबन्धके छैः अध्यायोंमें से प्रथममें ‘नाटक तथा रंगमंचमें प्रयोग और प्रयोगधर्मिता’में प्रयोगका अर्थ और स्वरूप निर्धारित करते हुए प्रयोगकी प्रमुख प्रवृत्तिका निर्धारण और नाटक-रंगमंचसे प्रयोगके संबंध आदिको निरखा-परखा गया है। नाटक और रंगमंचके संदर्भमें ‘प्रयोग’ शब्द और व्यापक हो उठता है, क्योंकि यहां यह शब्द आलेख और प्रस्तुति दोनों पक्षोंसे परीक्ष्य हो उठता है। दूसरे अध्याय ‘काव्य नाटक तथा मिथकीय और ऐतिहासिक विषय वस्तुके नाटक’ में विदुषी लेखिकाने हिन्दीके उन आधुनिक नाटकोंका विश्लेषण विवेचन किया है जो शैलीकी दृष्टिसे काव्य नाटक हैं, या जो विषयवस्तुकी दृष्टिसे ऐतिहासिक या ऐतिहासिक पौराणिक मिथकोंपर आधारित नाटक हैं। ऐसे नाटकों में इतिहास और पुराकथासे गृहीत मिथकोंका नाट्य-वस्तुमें किया गया ‘प्रयोग’ लेखिकाके विवेचनका केन्द्र है कोणार्क, पहला राजा, अन्धायुग, अरे मायावी सरोवर, कथा एक कंसकी, आठवां सर्ग, अग्निलीक, देहान्तर, आदि मुख्य रूपसे ऐसे नाटक हमारे सामने आये हैं जिनमें इतिहास, और मिथकका सार्थक ‘प्रयोग’ संभव हुआ है। तृतीय अध्याय ध्यक्षितवादी और अस्तित्ववादी नाट्य परम्पराके आधे अधूरे, द्रौपदी, मिस्टर अभिमन्यु आदि जैसे नाटकोंका और चतुर्थ अध्यायमें मुद्राराक्षस, विपिनकुमार, मणि मधुकर और रामेश्वर प्रेमके असंगत नाटकोंमें हुए विभिन्न प्रयोगोंका अनावरण और मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। पंचम अध्यायमें सामाजिक यथार्थ और लोकनाट्यसे प्रेरित नाटकोंमें प्रयोग स्थितियोंका अन्वेषण और विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस अध्यायमें जिन नाटकोंकी चर्चा की गयी है उनमें मुख्य हैं बकरी, जादू जंगल और पोस्टर। अन्तिम अध्यायकी वस्तु ‘हिन्दी नाटकोंमें प्रयोग’ शब्दकी कुछ अन्य अध्ययन



प्रवृत्तियाँ' शीर्षकके अन्तर्गत प्रस्तुत हैं और विषय हैं : कहानीका रंगमंच, उपन्यासका रंगमंच, कविताका रंगमंच, नुक्कड़ नाटक और खेलधर । अन्तमें एक उपसंहार है जिसमें पूरी पुस्तकका निचोड़ प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है । प्रबन्ध विधिके अनुरूप एक परिशिष्ट दिया गया है जिसमें सहायक संदर्भोंकी वैज्ञानिक सूची प्रस्तुत की गयी है ।

प्रबन्धकी रूपरेखा और संपूर्ण वस्तुको सामने रखकर यह कहा जा सकता है कि लेखिकाने आधुनिक हिन्दी नाटकोंको एक नवीन दृष्टिसे देखनेका प्रयास किया है । यों 'प्रयोग' को लेकर पहलेभी कुछ पुस्तकें आ चुकी हैं पर इस पुस्तककी दृष्टि अपनी है । मूल्यांकनके क्रममें लेखिकाने मुख्य रूपसे वस्तुगत आधारका ही आश्रय लिया है और प्रासंगिक रूपसे शैली एवं कथ्यगत प्रयोगोंका भी उल्लेख किया है । यदि उन्होंने आधुनिक हिन्दी नाटकोंमें हुए प्रयोगोंकी शैली, शिल्प और कथ्यगत प्रयोगोंके रूपमें वर्गीकृतकर प्रस्तुत किया होता तो निष्कर्ष और अधिक व्यापक फलक प्रस्तुत करता । स्थिति यह है कि हिन्दी नाटकों में जितनेभी प्रयोग हुए हैं उनमें से अधिकांश वस्तु विधान और उसके शिल्पमें हुए हैं परन्तु विभिन्न शैलियोंमें किये गये प्रयोग यथा लोकनाट्य शैलीके प्रस्तुत नाटक, मिश्र शैलीके नाटक, पश्चिमी शैलीके नाटक आदि वर्ग स्पष्ट हैं । इसी प्रकार एकसाथ कई कथ्योंकी योजना, कथ्यका दृश्यत्व, कथ्यकी सम-समकालीनता, प्राचीन कथामें आधुनिक कथ्य आदि प्रयोगोंकी अनेक कथ्यगत भंगिमाएँ भी हैं । यद्यपि लेखिकाने ऐसे अनेक प्रयोगोंके उल्लेख अपने ग्रन्थमें किये हैं पर वे प्रासंगिक उल्लेखके रूपमें आये हैं । प्रस्तुतीकरणके प्रयोगोंका विस्तृत विवेचन अपेक्षित था । कविता, कहानी, और उपन्यासोंके रंगमंचकी बात केवल रूपान्तर शीर्षकके अन्तर्गत प्रस्तुत की जा सकती थी । यद्यपि लेखिकाने प्रायः प्रमुख प्रयोगोंकी नाटकों और उन नाटकोंमें हुए विभिन्न प्रयोगोंका उल्लेख अपने ग्रंथमें किया है फिरभी अनेक ऐसे नाटक शेष रह जाते हैं, जिनपर चर्चा यदि की जाती तो विषय अधिक पुष्ट होता । चौराहा, खेल जारी खेल जारी, सिंहासन खाली है, इन्नाकी आवाज, वजे ढिंढोरा, फिनिक्स, वीरगति, अनुष्ठान, एक था बादशाह, तालोंमें बंद प्रजातंत्र, चिन्दी मास्टर, एक था गुधा,

आवाज, पागलधर, काठमहल, आदि कुछ ऐसेही नाटक हैं, वैसे यह सूची औरभी लम्बी हो सकती है । संभव है प्रकाशनोपयोगी रीतिसे मूल आलेखका संपादन करनेके क्रममें बहुत सारी सामग्री छाँटनी पड़ी हो, इसलिए ऐसे नाटक चर्चासे बाहर रह हों गये । फिरभी यह तो कहा जा सकता है कि लेखिकाने जितने नाटकों की चर्चा की है उनके प्रायः सभी महत्वपूर्ण पक्षोंपर प्रकाश डाला है । अतः एक अर्थमें उनका विवेचन पूर्ण कहा जायेगा । श्रीमती त्रिगाठीकी अपनी लेखन योजना है, अपनी दृष्टि है और स्वाध्यायसे उपलब्ध उनके अपने तथ्य संग्रह हैं । इसे उन्होंने अधिकसे अधिक वैज्ञानिक रीतिसे और तर्क-प्रमाण पुष्ट विवेचन के साथ प्रस्तुत किया है । इसलिए यह एक मौलिक प्रयासभी है । विश्वास है शोध-समीक्षा जगत् इस इस ग्रन्थको अपने लिए निश्चयही उपयोगी पायेगा । [ ]

## हिन्दीका समकालीन व्यंग्य साहित्य?

लेखक : डॉ. राजेश चौधरी

समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

प्रस्तुत कृति राजस्थान विश्वविद्यालयकी पी-एच. उपाधिके लिए स्वीकृत शोध प्रबन्धका संशोधित रूप है । छैः अध्यायोंमें विभक्त इसे प्रबन्धमें मुख्यतः यह जाँचने और पहचाननेकी चेष्टा हुई है कि मनुष्यकी वास्तविक स्थिति एवं अपेक्षाओंको व्यंग्यकारोंने सातवें आठवें दशकमें किस प्रकार चित्रित किया है । पहले अध्याय 'व्यंग्यका स्वरूप' में व्यंग्यकी प्रकृतिको स्पष्ट किया गया है । व्यंग्य और वैचारिकताके अन्तःसम्बन्धपर, शोधकर्ताकी यह टिप्पणी सर्वथा सटीक है कि विकृति विसंगति, जड़ता आदिके उद्गमकी खोज वैचारिकताके कारणही संभव है । इस अध्यायके अन्तमें व्यंग्यको विघ्ना माननेपर बल दिया है और अपने इसी आग्रहके फल-स्वरूप 'रागदरबारी' 'कुरु कुरु स्वाहा' आदि उपन्यासोंको विवेचनका विषय बनाया गया है । कुछ नाटकों-एकांकियों कोभी उपजीव्य सामग्रीमें सम्मिलित किया गया है । अच्छा होता कि इस अवधिकी कुछ व्यंग्य प्रधान कविताओंको भी इसमें समेट लिया जाता । कविताओं

१. प्रका. : संघी प्रकाशन, जयपुर-उदयपुर । मूल्य :

१४०.०० रु.।



को न लेनेसे लगता है कि डॉ. चौधरी व्यंग्य विधाको केवल गद्यतक सीमित रखना चाहते हैं। 'गद्य-व्यंग्य' जैसे पदसे भी यही आभास मिलता है। परन्तु बार-बार कबीर का नामोल्लेख (पृ. १२, पृष्ठ १८) करनेसे स्पष्ट है कि काव्य-केन्द्रित व्यंग्य शोधकर्ता की दृष्टिसे ओझल नहीं रहा।

दूसरे अध्याय 'समकालीन गद्य-व्यंग्य की पूर्व पीठिका' में लेखकर्ता यह स्थापना प्रमाण-पुष्ट है कि भारतेन्दु हिन्दी गद्य के प्रथम व्यंग्यकार हैं। भारतेन्दु के अतिरिक्त प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्णभट्ट, बालमुकुन्द गुप्त आदि प्रारम्भिक व्यंग्यकारों का व्यंग्य सोद्देश्य और सार्थक है। शुक्लोत्तर व्यंग्यकारों में गुलाबराय, निराला, उपेन्द्रनाथ 'अश्व' और केशवचन्द्र वर्मा शोधकर्ता को आश्चर्य करते हैं। पता नहीं क्यों इस अध्याय में अमृतलाल नागर का उल्लेख नहीं है। यदि व्यंग्य की दृष्टिसे प्रसाद के नाटकों की चर्चा हो सकती है (पृ. २६) तो प्रेमचंद के उपन्यासों की उपेक्षा क्यों की गयी है? तीसरे अध्याय 'समकालीन व्यंग्य-निबन्ध' में शोधकर्ता मुख्यतः हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवीन्द्रनाथ त्यागी और सुदर्शन मजीठिया के व्यंग्य निबन्धों की चर्चा की है। इन निबन्धों का विवेचन करते हुए वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि अधिकतर निबन्धों में सामाजिक संलग्नता का निर्वाह देखा जा सकता है (पृ. ६२)। अपनी पसंद के पांच-छः निबन्धकारों को चुन लेने से शोधकर्ता को निश्चय ही सुविधा हुई होगी, पर इन दो दशकों में लिखने वाले दर्जनों महत्त्वपूर्ण व्यंग्य-लेखक नेपथ्य में रह गये हैं। जैसे, दसियों पुस्तकों के लेखक रोशनलाल सुरीरवाला के व्यंग्य-कर्मसे शोधकर्ता अनभिज्ञ दिखायी देता है। चतुर्थ अध्याय (समकालीन व्यंग्य : कहानी) की स्थिति भी प्रायः यही है। श्रीलाल शुक्ल और शरद जोशी की जिन रचनाओं को शोधकर्ता "कहानी" के रूप में अपने शोध का आधार बनाया है, क्या वे कहानियाँ हैं? "जीप पर सवार इल्लियाँ", "अंगद का पांव" की रचनाओं को किस आधार पर "कहानी" माना जा सकता है, यह शोधकर्ता स्पष्ट नहीं किया। सातवें आठवें दशक के प्रतिनिधि कहानीकारों के लेखन को आधार बनाकर उनके व्यंग्य भाव की पड़ताल अधिक सटीक होती। जहाँ तक विवेचन का प्रश्न है, वह निश्चय ही तथ्याधारित और साफ-सुथरा है। रचनाओं में व्यंग्य के फँलाव को रेखांकित करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि व्यंग्यकारों की सहानुभूति जन-साधारण के साथ रही है। (पृ. १००)।

'प्रकर'—जुलाई ६२—१०

"समकालीन व्यंग्य : उपन्यास" शीर्षक पाँचवें अध्याय में "राग दरबारी", "आश्रितों का विद्रोह", "पाँच एब्सर्ड उपन्यास" और "कुरु कुरु स्वाहा"—उपन्यासों का मंथन हुआ है। इस अध्याय में विद्वान् शोधकर्ता ने अनेक विद्वानों के अभिमतों को दृढ़तापूर्वक अस्वीकृत किया है। कहीं वह "कुरु कुरु स्वाहा" के संबंध में धर्मवीर भारती की टिप्पणी से सहमत नहीं होते (पृ. १५०) तो कहीं "राग दरबारी" से संबंधित रानदरश मिश्र का अभिमत उन्हें उचित नहीं लगता (पृ. १२५)। कहीं वे दूसरों के मन्तव्य को निरस्त करते समय अपने विस्तृत अध्ययन की सूचना भी देता है। उदाहरण के लिए "सनसनाते सपने" को राधाकृष्ण का प्रतिनिधि व्यंग्य उपन्यास मानना (पृ. १२२)। छठे अध्याय (समकालीन व्यंग्य : नाटक) में चार नाटकों—'शुतुर मुर्ग', 'बकरी', 'एक था गधा उर्फ अलादाद खा' और 'अंधों का हाथी'—का विवेचन करते हुए पाया गया है कि मुख्यतः राजनीतिक होते हुए भी इन नाटकों का व्यंग्य व्यापकता लिये हुए है। "उपसंहार" के अन्तर्गत शोधकर्ता 'स्पष्ट कर' देता है कि वह रवीन्द्रनाथ त्यागी, शंकर पुणतांबेकर आदिको व्यंग्यकार नहीं मानता। केवल हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल और नरेन्द्र कोहली ही उसकी व्यंग्यकार की कसौटी पर खरे उतरते हैं। और व्यंग्य को विधा मानने का आग्रह, दूसरी ओर कुल चार व्यंग्यकारों को मान्यता एक अन्तर्विरोध का ही प्रमाण देता है। "मेरा मानना है", "मेरा मत है" जैसे प्रयोगों से शोधकर्ता की अहम्मन्यता अधिक झलकती है। वह जिन तत्त्वों को व्यंग्य का निकष बनाता है, वे वस्तुतः हास्य के भेद-उपभेद हैं और इनकी कसौटी पर भी अनेक व्यंग्यकार सफल सिद्ध होंगे। किसी शोधकार्य में नयी स्थापना का महत्त्व है, पर उसके आत्यन्तिक होने पर उसका महत्त्व कम हो जाता है। फिर भी यह प्रबन्ध विचारोत्तेजक होने के कारण पठनीय और स्तरीय है। इसके संबंध में डॉ. वीरेन्द्रसिंह का यह मन्तव्य सर्वथा सही है कि शोध-प्रबंधों की परम्परामें यह अध्ययन आगे का कदम है और शोधकर्ता की भावी संभावनाओं के प्रति आश्चस्तिका भाव जगाने वाला है।



# अनुशीलन-अध्ययन

## तुलसी-निर्देशिका<sup>१</sup>

सम्पादक : डा. रमानाथ त्रिपाठी

समीक्षक : डॉ. अवनिजेश अवस्थी

गोस्वामी तुलसीदास, हिन्दीके वे एकमात्र आलोक पुरुष हैं जिनकी लोकप्रियताको लक्ष्य करके सर जार्ज ग्रियर्सनने कहाथा कि गंगाकी घाटीमें जितना प्रचार इस महाग्रन्थ (रामचरित मानस) का है इंग्लैंडमें बाई-बिल भी उतनी लोकप्रिय नहीं है। सर ग्रियर्सनके ये उद्गार वास्तवमें तुलसीकी लोकप्रियताको तो उद्घाटित करतेही हैं साथही उनके विराट् युगबोध और उसकी सशक्त अभिव्यक्तिकी ओरभी इ गित करतेहैं। तुलसी चाहे भारतके जनमानसमें भक्तके रूपमें प्रतिष्ठित हों और उनका मानस कलिमल पाप विभंजनका कार्य करताहो किन्तु देश-विदेशके हजारों विद्वानोंने तुलसीको विश्वकविके रूपमें भी पहचाना है।

यह मात्र संयोग ही नहीं है कि श्री जे. एन. कापेंटरने समूचे भारतीय वाङ्मयमें तुलसी-साहित्य को हो अपने शोध कार्यके लिए चुना, बल्कि कापेंटर से पूर्वभी हिन्दी आलोचनाके प्रारम्भिक दौर में ही तुलसीको वह स्थान प्राप्त होगयाथा जिसपर वे आजतक प्रतिष्ठित हैं। हो सकताहै कि किसीको यह अतिरंजित वक्तव्य लगे फिरभी तटस्थ दृष्टिसे देखनेपर यह सहजही स्पष्ट हो जायेगा कि हिन्दी शोध और आलोचनाकी विकास-यात्रामें आनेवाले हर मोड़पर तुलसी ही विराजमान है। हिन्दी शोध और आलोचनाके पूरे विकास क्रमको इसी परिप्रेक्ष्यमें परखना एक महत्वपूर्ण हो सकताहै।

१. प्रका : नचिकेता प्रकाशन, एम-६, सेक्टर १३, प्लाट-३८, जी. एस. सोसायटी, रोहिणी, नयी दिल्ली-११००८५। पृष्ठ : २८०; डिमा. ६१; मूल्य : १६०.०० रु.।

आचार्य रमानाथ त्रिपाठी पिछले ४० वर्षोंसे तुलसीको रामकथाके साथ-साथ देश-विदेशकी राम-कथाओंके तुलनात्मक अध्ययनमें लगे रहेहैं। इसी अध्ययन-क्रममें त्रिपाठीजी तुलसीपर होनेवाले अध्ययनसे बार-बार गुजरते रहेहैं। तुलसी-निर्देशिका उनके इसी ४०वर्षोंके संचित अनुभवका सुफल है जिसे व्यवस्थित करनेमें उन्होंने अपने पिछले तीन वर्षोंके दिये।

तुलसी निर्देशिकाको तैयार करनेके मूलमें यही मंतव्य रहाहै कि तुलसी साहित्यसे जुड़े शोधकर्ता, आलोचक, देशी-विदेशी भाषाओंके अनुवादक विदेशी विद्वान्, प्रवचनकर्ता, तुलसी विषयक पत्र-पत्रिकाओं और संस्थाओंकी सूचना चूँकि अबतक एक स्थानपर विधिवत् उपलब्ध नहीं है, अतः तुलसी अकादेमी (म. प्र. भोपाल) तुलसी निर्देशिका तयार करे। अतः इस निर्देशिकामें गोस्वामी तुलसीदास और उनके साहित्य से संबंधित किसीभी अध्ययनको सम्मिलित करनेका प्रयास किया गयाहै। निर्देशिकामें सम्मिलित समूची जानकारीको सात भागोंमें विभाजित किया गयाहै— शोधकर्ता और आलोचक, रचनाकार अनुवादक, विदेशी विद्वान्, प्रवचनकर्ता, पत्र-पत्रिका एवं संस्था। शोधकर्ता-आलोचक, रचनाकार अनुवादक एवं विदेशी विद्वान् इत्यादि जो अधिकांशतः प्रकाशित सामग्री होती है उसे एकत्रकर संग्रहीत कर देना तो अपेक्षाकृत सरल होताहै किन्तु प्रवचनकर्ता, पत्र-पत्रिका एवं संस्थाओंके विषयमें जानकारी एकत्र करना निश्चित रूपसे श्रमसाध्य एवं धैर्यका कार्य है। गाँव-गाँवमें बैठे हुए प्रवचनकर्ताओं और संस्थाओंके बारेमें कहीं से भी पता लगतेही उसके विषयमें प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करनेके लिए जुट जानेके कारणही यह कार्य पूरा हो सकाहै। पत्र-पत्रिकाओंके यदि तुलसी विशेषांक निकलेहैं तो उन्हें भी इसमें सम्मिलित कर लिया गयाहै। पूरी पुस्तकमें अकारादि क्रमकी व्यवस्थाको अपनाया गयाहै एवं अंतमें नामानुक्रम-

‘प्रकर’—आवण २०४६—११



णिका भी दे दी गयी है जिससे किसी भी विद्वान्का परिचय पा लेना बड़ा सरल होगया है।

किन्तु एक पक्ष ऐसा है जिसका उल्लेख कर देना यहां असंगत न होगा। अध्ययन प्रस्तुतिका क्रम विद्वानोंके अकारादि क्रमसे रखा गया है अतः यदि किसी शोधार्थी या अध्येताको तुलसीके किसी एक पक्षपर अबतक हुए अध्ययनको देखना होगा तो पुस्तक में सारी सूचनाओंके होते हुए भी उसके लिए यह काफी दुष्कर कार्य होगा।

कुल मिलाकर अत्यधिक श्रमसे तुलसी निर्देशिका तैयारकर त्रिपाठीजीने तुलसी साहित्यके अध्येताओं को उपकृत ही किया है, तुलसीपर एक स्थानपर इतनी अधिक जानकारी मिलना अन्यत्र असंभव है—वास्तवमें वह तुलसी साहित्यका अध्ययनकोश है।

□

## हिन्दी निबन्धके सौ वर्ष

लेखक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

‘निबन्ध’ को कभी ‘गद्य’ की कसौटी माना जाता था, पर आज निबन्ध-विधा एक उपेक्षित विधा है। न केवल इसके लेखक और पाठक विरल हैं, अपितु समीक्षक भी इनेगिने हैं। ऐसी स्थितिमें यह कृति ध्यान आकृष्ट करनेमें समर्थ है। कृति दो खण्डोंमें विभक्त है। प्रथम खण्ड ‘विकास’ है, दूसरा खण्ड ‘मूल्यांकन’ से सम्बद्ध है। प्रथम खण्डमें हिन्दी निबन्धके विकासके चार उत्थान चर्चित-समीक्षित हैं, जबकि द्वितीय खण्डमें पन्द्रह निबन्धकारोंका मूल्यांकन हुआ है। ये निबन्धकार हैं—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पूर्णसिंह, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास, बाबू गुलाबराय, नन्ददुलारे वाजपेयी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, नगेन्द्र, विवेकीराय, विद्यानिवास मिश्र, कुवेरनाथ राय। सूचीसे स्पष्ट है कि प्रायः सभी मूर्द्धन्य निबन्धकारोंको समीक्षकने मूल्यांकनका विषय बनाया है। ‘दो शब्द’ में

२. प्रका. : गिरनार प्रकाशन, पिलाजी गंज, मेहसाना (उ. गुजरात)। डिमा. ६०; मूल्य : १५०.०० रु.।

‘प्रकर’—जुलाई ६२—१२

उन्होंने इस कृतिके प्रारूपकी चर्चा करते हुए लिखा है—  
“इस कृतिमें मेरा उद्देश्य हिन्दी निबन्धके विकास, स्वरूप एवं प्रवृत्तियोंके अनुशीलनके साथ-साथ प्रतिनिधि निबन्धकारोंका विवेचन-मूल्यांकन रहा है। आज तकके सभी प्रमुख निबन्धकारोंका मूल्यांकन किया जाये तो एक हजार पृष्ठोंकी पुस्तक छप सकती है। इसलिए इस कृतिमें बहुत सोच-विचारकर प्रतिनिधि निबन्धकारोंका ही विवेचन है। अन्य निबन्धकारोंका नामोल्लेख हुआ है।”

‘पृष्ठाधार’ में लेखकने हिन्दीमें निबन्ध-लेखनकी प्रवृत्तिको परिवेशके दबावसे उद्भूत माना है। उसीके शब्दोंमें : “एक ओर भारतवासियोंकी देशहित प्राणोत्सर्ग उत्कटता, तीव्रता, दूमरी ओर अंग्रेजों द्वारा उसे दबानेकी भरपूर चेष्टाने द्वन्द्वोंका झंझावात पैदा किया और निबन्ध-लेखनके द्वारा उसे अभिव्यक्तिका आयाम मिलने लगा” (पृ. ४)। स्पष्ट है, हिन्दी निबन्ध जहां अपने युगकी मांगके फलस्वरूप जन्मा, वहीं प्रतिवादके सशक्त माध्यमके रूपमें प्रयुक्त हुआ। प्रारम्भके निबन्धोंमें आत्मविभ्रंशनाका तत्त्व मुखर है, फिर भी अपने समयसे जुड़ाव प्रारंभिक हिन्दी निबन्धकी उल्लेखनीय विशेषता है। अधिकतर निबन्धकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भांति ‘समस्त राष्ट्रीय चिन्तनको आधुनिक परिवेशमें लाना चाहते थे’ (पृ. १६)। डॉ. उपाध्यायने निबन्धकी परिभाषा, उसके अवयवों और भेदों-प्रभेदोंकी संक्षिप्त चर्चा की है। निबन्धको परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है कि निबन्ध गद्यके माध्यमसे किसी विषय की भावात्मक अथवा बौद्धिक प्रतिक्रियाकी ऐसी अभिव्यक्ति है, जिसमें अपेक्षित निजीपन, स्वच्छंदता एवं संगतिके एक साथ दर्शन होते हैं। यह परिभाषा गुलाबरायकी परिभाषाके निकट पड़ती है और पर्याप्त संतुलित है। पाठकके साथ लेखकके नैकट्यकी अनुभूतिको डॉ. उपाध्याय अनिवार्य मानते हैं (पृ. ६)। पाठकोंसे नैकट्यका अनुभव लेखकको उनपर पांडित्यका बोझ लाने से रोकता है।

डॉ. उपाध्यायने निबन्धके दो मोटे भेदोंको मान्यता दी है—निजात्मक एवं परात्मक। निजात्मक निबन्धोंका एक उपभेद वैयक्तिक या व्यक्तिव्यंजक या ललित निबन्धोंका है। ललित निबन्धोंको लेकर हिन्दी समीक्षा में स्पष्टताका अभाव है। डॉ. उपाध्यायने संक्षेपमें ‘ललित निबन्ध’का अच्छा विवेचन किया है ‘ललित



निबंधको निजात्मक वर्गमें रखते हुएभी वे स्पष्ट कर देते हैं कि नितान्त अकेलेपनमें भी उसमें 'हम' के आह्वान की अपूर्व क्षमता होती है (पृ. ३१)। वे ललित निबंध के संबंधमें डॉ. कुमार विमलके इस अभिमतसे सहमत हैं कि इसमें विषयवस्तुकी ललित सर्जनाके साथ-साथ और उसमें अन्तर्निहित होकर निबंधाकारके व्यक्तित्व का पूर्ण, कान्त संयोग होना आवश्यक है।

हिन्दी निबंधके प्रथम उत्थानके अन्तर्गत भारतेन्दु युगके निबंधकारोंका उल्लेख हुआ है। इस युगके निबंधोंकी दो विशेषताएँ, समीक्षकको विशेष रूपसे आकृष्ट करती हैं। कुछ निबंधोंका सीधा सम्बन्ध सामाजिक समस्याओं से है और कुछ विज्ञान, इतिहास, मनोभाव आदि अपेक्षाकृत गूढ़ विषयोंपर आधारित हैं (पृ. ४१)। विषय-वैविध्य द्विवेदी युगके निबंधोंमें अपेक्षाकृत अधिक है और जीवनसे सम्बन्धित विभिन्न ज्ञान धाराओंको हिन्दी निबंधमें समाविष्ट करनेका प्रयास भी द्रष्टव्य है (पृ. ५०)। तृतीय उत्थानका विवेचन करते हुए समीक्षकने आचार्य शुक्ल सहित करीब डेढ़ दर्जन निबंधकारोंकी चर्चा की है। शुक्लजीकी 'काव्यमें रहस्यवाद' सरीखी रचनाओंको निबंध न मानकर उन्हें साहित्य-विवेचन संबंधी प्रबंध कहना अधिक उपयुक्त समझा गया है (पृ. ६०)। चतुर्थ उत्थान संबंधी विवेचनको समाप्त करते हुए डॉ. उपाध्यायने ऐसे लेखकोंकी एक बृहद् सूची प्रस्तुत की है, जो किसी न किसी रूपमें निबंध-रचनासे संबद्ध हैं।

मूल्यांकन खंडमें भारतेन्दु हरिश्चंद्रसे लेकर कुबेर-नाथ राय तकके प्रायः सभी प्रमुख निबंधकारोंकी विषय चर्चा है। आचार्य शुक्लके इतिहास-दर्शनका विवेचन अलगसे हुआ है। निबंधकारोंके अनुशीलन क्रममें डॉ. उपाध्याय पहले उनकी रचनाओंका समग्र परिचय देते हैं, तत्पश्चात् निबंध-कलाकी विशेषताओंको उद्घाटित करते हैं। इस प्रक्रियाके दौरान विभिन्न आलोचकों से सहमति-असहमतिके गंभीर क्षणभी आते हैं। उदाहरण के लिए भारतेन्दु हरिश्चंद्रके निबंधोंसे परिचित करानेके बाद वे उनके हंसमुख गद्यकी चर्चा करते हैं। इसके साथ ही हेमन्त शर्माके इस मतकी पुष्टि करते हैं कि भारतेन्दु निबंधकारोंकी अपेक्षा गद्यमें अधिक अच्छे ढंगसे अभिव्यक्त हुए हैं (पृ. ८८)। इस खंडमें स्थान-स्थानपर समीक्षकने ऐसे संक्षेप व्यक्त किये हैं जो उसकी विवेचन-क्षमता और निर्णय-शक्ति के द्योतक हैं। उदाहरणार्थ, सरदार पूर्णसिंहके

संदर्भमें यह टिप्पणी—

“पूर्णसिंहके निबंधोंमें द्विवेदी युगकी प्रमुख प्रवृत्ति उपदेशात्मकता, आचरणवादिताकी गंध अवश्य आती है, परन्तु वह एक ऐसे महत् मानवीय आदर्शसे परिचालित है तथा आध्यात्मिकताकी एक ऐसी व्यापक किन्तु सूक्ष्म और गहनवृत्तिसे प्रेरित है कि सहजही उनके निबंध रोमांटिक धरातलका स्पर्श करने लगते हैं। उनमें स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तिके दर्शन होते हैं।” (पृ. १२५)।

इसी प्रकार रामचंद्र शुक्लके आलोचनात्मक निबंधोंके विवेचन-क्रममें डॉ. उपाध्यायने उन्हें मिश्र बंधुकी परम्परामें मानते हुए अलगावके बिन्दुको भली-भांति रेखांकित किया है—“किन्तु तब उनका शास्त्रवाद सैद्धान्तिक शास्त्रवादका स्वरूप ग्रहण करता हुआ मिश्र बंधुके पारम्परिक शास्त्रवादसे भिन्न हो जाता है, जब वे साधारणीकरणको महत्त्व प्रदान करते हैं, व्यक्ति-वैचित्र्यवादकी विगर्हणा करते हैं।” (पृ. १३७)। विवेचनकी स्पष्टता पूरी कृतिमें उपलब्ध है। अतः स्थान-स्थानपर स्पष्ट और दो टूक निष्कर्ष ध्यान खींचते हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदीके निबंधोंमें सांस्कृतिक समन्वयकी विराट् चेष्टा है (पृ. १८७)।

वाजपेयीजीके कुछ निबंधोंमें आकस्मिक समाप्ति दिखायी देती है (पृ. १७९), विवेकीराय चरित्र, पात्र, प्रतिपाद्यको अधिक महत्त्व देते हैं (पृ. २०९), कुबेर नाथ राय लालित्यके नामपर दूर-दूरकी कौड़ी बीनते हैं (पृ. २३४) आदि उपपत्तियाँ इस संदर्भमें मननीय हैं। निबंधकारोंके विवेचनका एक उल्लेखनीय पक्ष यह है यह केवल विषयवस्तु तक सीमित नहीं है, 'शिल्प' की जांच भी यथास्थान हुई है। जैसे ह. प्र. द्विवेदीजीके निबंधोंके विषय-वैविध्यसे गुजरते हुए डॉ. उपाध्यायने उनकी भाषा और शैलीकी विशेषताओंकी उपेक्षा नहीं की है। उनके शब्दोंमें—“उनके ललित निबंधोंकी शैली रचनात्मक, भावात्मक, सहज और आत्मीयतापूर्ण है। ... वे सर्वत्र वक्र भंगिमा, हास्य, व्यंग्य और विनोद का सफलतापूर्वक निर्वाह करते हैं” (पृ. १८९)। अन्त-वस्तु और शैलीको संश्लिष्ट और एक दूसरेके पूरकके रूपमें देखनेका भाव अधिकतर निबंधकारोंके विवेचनमें विद्यमान है।

ऐसा नहीं कि समूची कृति सर्वथा निर्दोष है। उद्धरणोंकी बहुलता इसकी एक सीमा है। कई स्थलों पर दूसरे विद्वानोंके उद्धरणोंके बीच समीक्षकका अपना



मंतव्य छिप-सा गया है। कुछ उद्धरण दुहरा दिये गये हैं। उदाहरणार्थ, गुलाबरायकी निबंधकी परिभाषा पृ. ६ और पृ. ११ पर है, जबकि इसकी आवश्यकता केवल एक स्थानपर है। इसके अतिरिक्त यह कृति एक विचारोत्तेजक प्रश्न उठाती है कि क्या आलोचनात्मक निबंध जैसी कोई चीज आज स्वीकार्य है, जबकि 'आलोचना' एक स्वतंत्र विधाके रूपमें प्रतिष्ठित हो चुकी है। इस कृतिमें नंददुलारे वाजपेयी और नगेन्द्रसे संबंधित विवेचनमें उनकी समीक्षा-पद्धति और आलोचनात्मक उपलब्धियां अधिक स्थान घेरती हैं, शुद्ध निबंध कही जानेवाली रचनाओंका उल्लेख न के बराबर है। इसी प्रकार विवेकीरायके निबंधोंके विवेचन-क्रममें उनके रेखा-चित्रोंकी व्यापक चर्चा आश्वस्त नहीं करती। पर इन छुटपुट अन्तर्विरोधोंसे 'हिन्दी निबंधके सौ वर्ष' का महत्त्व कम नहीं होता। यह समीक्षा कृति है, जो हिन्दी निबंधके अध्येताओंके लिए सार्थक और उपयोगी है। समूची कृतिका प्रारूप एक शोध प्रबंधकी भांति है और शोध प्रबंधकी-सी अनुसंधान-वृत्ति सर्वत्र द्रष्टव्य है। हिन्दी निबंधपर जयनाथ 'नलिन', द्वारकाप्रसाद सक्सेना, मु. ब. शहा आदि कुछ लेखकोंकी कृतियांही पाठकों, विद्यार्थियों और प्राध्यापकों द्वारा अधिक पढ़ी और सराही गयी हैं। डॉ. मृत्युंजय उपाध्यायकी यह कृति इन्हीं कृतियोंकी परम्पराकी एक नयी कड़ी है। □

## संकलन (१)

### पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री रचनावली?

सम्पादक : हरिकृष्ण त्रिपाठी

समीक्षक : डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय

आधुनिक हिन्दी गद्यके विकासमें "द्विवेदी मंडल" के अनेक लेखकोंका योगदान ऐतिहासिक माना जायेगा जिनमें मध्यप्रदेशके लेखक राष्ट्रीय चेतना और भाषा

१. प्रका. : अभिज्ञान प्रकाशन, ७८२, दीक्षितपुरा, जबलपुर (म. प्र.) । पृष्ठ : ३३१, डिमा. ६०; मूल्य : २००.०० रु. ।

प्रकर'— जुलाई ६२— १४ CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चेतनाके कारण विशिष्ट स्थानके अधिकारी हैं। जो महत्त्व स्व. पंडित माधवराव सप्रै, रघुवरप्रसाद द्विवेदी कामताप्रसाद गुरु आदिका है वही महत्त्व पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्रीका भी है जिनके कुछ लेखों, निबंधों और कविताओंका संपादकने यहाँ प्रकाशन किया है। ये रचनाएं सन् १८६५ से लेकर सन् १९३१ तक हिन्दीकी सुप्रसिद्ध पत्रिकाओं, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भारत-मित्र, अभ्युदय, व्यंकटेश्वर समाचार, हितकारिणी आदि में प्रकाशित हुई थी और विषयवस्तु तथा प्रस्तुतीकरण-दोनोंही दृष्टियोंसे आज भी हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं।

इन विभिन्न रचनाओंसे मालूम होता है कि किस प्रकार तत्कालीन हिन्दी लेखक देश-सेवा और साहित्य-सेवाको परस्पर सम्बद्ध मानकर अन्यान्य भाषाओंसे अनुवाद कार्यको प्राथमिकता तो देते ही थे, भाषा-संशोधनको सर्वोपरि महत्त्वपूर्ण मानते थे। राजनीति, सामाजिक दुरवस्थापर भी उनकी दृष्टि बनी रहती थी क्योंकि समाज-सुधार, चरित्र-निर्माण उनका लक्ष्य रहता था।

लेखकने ३७ वर्षोंके अपने साहित्यिक जीवनमें २० से अधिक पुस्तकें लिखी, ५०० से अधिक निबंध-लेख तथा स्फुट कविताओंकी रचना की। यहाँ उनके केवल ४० लेख-निबंध तथा १२ कविताएं ही संकलित हैं। इनसे तत्कालीन अभिव्यक्ति शैलीकी झांकी मिलती है, हिन्दीको संवारनेकी भूमिकाका परिचय मिलता है। संभवतः यह पक्ष इतिहास-लेखनके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है।

अग्निहोत्रीजीका जन्म नागपुरके नयापुरा नामक मुहल्लेमें हुआ था (सन् १८७०) और देहावसान जबलपुर, दीक्षितपुरामें हुआ (सन् १९३१)। प्रारम्भमें उनकी दृष्टि समीक्षा-सिद्धांतों तथा मराठीसे अनुवाद की ओर गयी फिर वे उत्तरोत्तर साहित्यकी अपेक्षा समाज-सुधार, कृषि गोपालन जैसे विषयोंपर एकाग्र हो गये। प्रशासनिक सेवामें रहनेके कारण वे जनसाधारण की दुरवस्थासे भलीभांति परिचित थे, अतः जीवनके अन्तिम समयमें गोपालनके लिए प्रचारात्मक साहित्य तैयार करने लगे। अन्तिम लेख "अहिंसावादकी असफलता" उन्होंने बोलकर लिखा था जिसमें गांधीजीके अहिंसा विषयक सिद्धांतोंकी मीमांसा करते हुए उसे गोपालनसे जोड़नेकी आवश्यकता बतायी थी।



संपादकने ग्रंथके आरम्भमें ही “मानक गद्यके शैली-कार पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री” का जिस प्रकार परिचय दिया है, उनकी कृतियोंका उल्लेख करते हुए उनकी वंशावली दी है, प्रत्येक रचनाकी निश्चित तिथि पत्रिकाके उल्लेख सहित निर्दिष्ट की है, यहांतक कि कुछ घटनाओंका समय काल तक लिख दिया है (पृष्ठ २०), उससे रचनाओंकी प्रामाणिकता तो उजागर होतीही है, यहभी स्पष्ट हो जाता है कि संपादक स्वयं अपने संपादन-कर्मके प्रति कितना सजग है।

संग्रहके सभी लेख-निबन्ध मुख्यतः चार प्रकारके हैं—(१) हिन्दीपरक, (२) धर्म-नीतिपरक, (३) उत्सव और (४) गोरक्षापरक। सर्वाधिक संख्या दूसरे प्रकारके निबंधोंकी है यद्यपि आकारमें हिन्दीपरक निबंध अधिक बड़े हैं। विषयवस्तुकी दृष्टिसे लेखककी अभिरुचि, उद्देश्य शैलीगत विशेषताओंका परिचय मिलता है जो प्रकारान्तरसे द्विवेदीयुगीन निबंध-शैलीकी विशेषताएं थीं।

उक्त लेख-निबन्धोंमें लेखककी चिन्तनशीलता, युक्तियुक्तता और उन्हें सप्रमाण प्रस्तुत करनेकी शैली स्पष्ट होती है। यहां रचना-कर्मकी गंभीरता लक्षित होती है। भाषाके रूपके बारेमें और भाषाओंकी खिचड़ी की पद्धतिसे वे असहमत थे। असहमत होकर अग्निहोत्रीजीने स्पष्ट लिखा कि “यह विचार हमें मान्य नहीं है क्योंकि इसमें खींचा-तानी बहुत है और इसके अतिरिक्त इसमें अव्यवस्था बहुत होगी” (पृष्ठ-६७)। बंगला, मराठी, गुजराती, संस्कृत, तमिल आदि भाषाओंके शब्दोंसे उन्होंने अपना पक्ष प्रतिपादित किया। उनकी यही शैली, अपने विचारोंकी स्पष्टता, सर्वत्र दिखायी देती है। “समालोचना”, “हिन्दीके विभक्ति प्रत्यय”, मध्यप्रदेशमें हिन्दीकी अवस्था, हिन्दी कविता किस ढंगकी हो” शीर्षक निबंधोंमें यही शैली दृष्टिगोचर होती है।

“हिन्दीके विभक्ति प्रत्यय” शीर्षक चार लेखोंमें समकालीन वैयाकरणोंकी तत्सम्बन्धी मान्यताओं की परीक्षा करते हुए उन्होंने विचार व्यक्त किया कि हिन्दीमें प्रकृतिको प्रत्ययसे अलग लिखनेकी प्रथा अत्यन्त सारहीन एवं अंध परंपरा मात्र है। (पृ. १००)। यह विषय सन् १९०६ से लेकर सन् १९२२ तक उनके लिए विचारणीय बना रहा और हिन्दीप्रेमी विद्वानों एवं संस्थाओंसे वे अनुरोध करते रहे कि विभक्ति प्रत्ययोंको

प्रकृतिसे मिलाकर लिखें। उनकी धारणा थी कि यह प्रथा विदेशियोंने प्रचलित की जिन्हें हिन्दी भाषाका पूरा ज्ञान नहीं था। वे इस सन्दर्भमें साहित्याचार्य पं. अम्बिकादत्त व्यास तथा बाबू अयोध्याप्रसाद जैसे लोगों से सहमत नहीं थे।

“मध्यप्रदेशमें हिन्दीकी अवस्था” शीर्षकसे जो विवरण प्रस्तुत हुआ है, उससे ज्ञात होता है कि उस समय मध्यप्रदेशमें लगभग ४५ बैरिस्टर थे जिनमें हिन्दी मातृभाषी केवल ५ व्यक्ति थे। प्रारंभिक पाठशालाओं की हिन्दी पुस्तकें लिखनेके लिए प्रदेशकी सरकारको हिन्दी-भाषी विद्वान् नहीं मिले तो अन्य भाषियोंसे लिखायी गयीं। हिन्दीकी पहली पुस्तक मराठीभाषी पं. विनायकरावने लिखी। (पृ. १६०)। इसीमें लेखकने मुद्रणालयोंकी सूची, हिन्दी पत्रिकाओंकी तालिका तथा प्राचीन-अर्वाचीन हिन्दी ग्रन्थकारोंका संक्षिप्त परिचय दिया है।

धर्म-नीतिपरक निबन्धोंमें “अभिमान”, सत्यदेवकी पूजा (सत्यनारायणकी लोक-प्रसिद्ध पूजा तथा उसकी व्याख्या), स्वधर्म-निष्ठा, उन्नतिके तत्त्व, सनातनधर्म” समयपर चूकना, कर्मकी प्रधानता, सात्विक दान”, आदि प्रमुख हैं, जिनका प्रमुख उद्देश्य चरित्र निर्माण अथवा आदर्श व्यक्तित्वका निर्माण है। ये निबन्ध लेखकके व्यक्तित्वकी छाया माने जा सकते हैं क्योंकि जिन आदर्शोंका वे स्वयं पालन करते थे, उसीके उदाहरण दूसरोंके सामने रखते थे।

उनकी लेखन शैलीपर अनेक भाषाओंका प्रभाव स्पष्ट है। संस्कृतके तो वे विद्वान् थे ही—अनेक निबन्धों का प्रारम्भही संस्कृत सूक्तियोंसे हुआ है। मराठीका प्रभाव उनकी वाक्य-रचना, शब्द प्रयोग, सामाजिकता में दिखायी देता है। “सुचारु रूपेण” “करामलकवत्” “भाषातत्त्वपारिण” विकासतत्त्व वशवर्ती”, अगाध विदग्धता, कुशाग्रबुद्धि, विचक्षण, “प्रकाण्ड पांडित्य सम्पन्न” अकर्मजन्य, “स्वकर्तव्य कर्म विमुखता”, स्वास्थ्यनाशक न्यूनता” जैसे प्रयोग इसके उदाहरण हैं, पुराने प्रयोगोंमें “दबाया चाहें”, लखा दिया है, “प्रकटित”, “हितैषिता”, “चिरकाल” लो, “किया चाहते”, “पूर्वकी नाई”, उत्तेजना देना”, “सोबात” “उन्नना”, “तिसपर” “अयुक्तता”, “अथच हितावह” जैसे प्रयोग लक्षणीय हैं।

वर्तमान हिन्दी तत्काजीन हिन्दीसे कितनी भिन्न



हो गयी है, इसे देखनेके लिए निम्नलिखित वाक्योंपर विचार कीजिये—

१. अतः इस घोर चिन्तापूरित अश्लाघ्य कार्यका सर्वथा त्याग ही योग्य है ।

२. इसी लाभसे आवद्ध हो विद्यार्थीगण उसे अधीत करते हैं ।”

३. “अंगरेजीके शब्दजालको भी लोग सहजहीमें जान लेने लगेंगे ।

४. “मनुष्यका ज्ञानके लिए अभिमानी होना प्रचंड मूर्खता है ।

५. निजके विषयका वर्णन यदि यथार्थ हो तो वह दोष पात्र नहीं होता ।

६. “अब इस निषिद्ध प्रथाकी सारफलगुता प्रायः हिन्दीके लेखकोंको ज्ञात हो चुकी है ।”

७. “पर हम देखते हैं कि सुगमताके स्थानमें उक्त प्रकारसे दुर्बोधता उपस्थित होती है ।”

८. “यह विनायकी टीका क्या है—एक प्रस्फुटार्थ बाहुल्य प्रपूरित आकार ही है ।

आजका लेखक उक्त वाक्योंको कुछ शब्द-परिवर्तनों के साथ लिखना चाहेगा । वह यथासंभव “उपमर्दन”, “गर्वधारक”, “देवेंगे”, “क्योंकर करेगा”, “आवाल्यात्”, “ध्यान-स्थित”, “अभिप्रेतार्थ”, जैसे शब्दोंसे वचना चाहेगा । बीच-बीचमें लेखकने सूक्तियोंका मधुर प्रयोग किया है जैसे—समयपर चकनेके समान हानिप्रद अन्य कोई बात नहीं है, ‘दरिद्रताके दुखसे मरणका दुःख कहीं बढ़के असह्य होता है’, “जो लोग अपनेको बड़ा चतुर एवं बुद्धिमान् समझते हैं वास्तवमें वे अल्पज्ञ ही रहते हैं”, “वेकनने कहीं एक मार्मिक वचन लिखा है कि ऐसे बहुत लोग दीख पड़ते हैं कि जो हम क्या नहीं जानते, यही नहीं जानते ।”

उनकी लेखन शैली निगमन पद्धतिपर विकसित हुई थी जिसके अनुसार पहले विषयानुसार सूत्र-वाक्य कहकर तदुपरान्त उसकी सोदाहरण व्याख्या की जाती है । पाठक तात्पर्य समझ ले, इसके लिए वे वाक्योंके बीचमें सारांश” “नोचेत्”, “अभिप्राय यह है”, “स्वकीय मतानुसार” “संप्रति”, “अस्तु”, “इससे यह सिद्ध हुआ” जैसी शब्दावलीसे उसका दिशा निर्देश करते रहते थे ।

उनकी भाषासर्वत्र विश्लेषण प्रधान है जिसमें क्रम-क्रमसे विषयका विवेचन होता है कहीं वे स्पष्ट संकेत देते हैं कि यहाँतक विषयका विवेचन निष्पन्न हुआ ।

इसका सामान्य विचार करते हैं । इस शैलीका सुन्दर उदाहरण उनका “समालोचना” शीर्षक पहला निबंध है जिसे १५ क्रमांकोंके अन्तर्गत विन्यस्त किया गया है । यही शैली डॉ. श्यामसुन्दरदासके निबंधोंमें भी लक्षित होती है । इसी प्रकार उनका ‘अभिमान’ निबंध आचार्य रामचन्द्र शुक्लकी शैलीका पूर्वाभास-सा कराता है ।

इस संग्रहकी १२ कविताएं कामताप्रसाद गुरु, लोचनप्रसाद पांडेय, तथा महावीरप्रसाद द्विवेदीकी कविताओंका स्मरण कराती है, वही इतिवृत्तात्मकता, वही नैतिकता, वही आदर्शवादिता दिखायी देती है यहाँतक कि संस्कृतसे काव्यानुवादकी प्रवृत्ति भी एक जैसी है । ‘मेघदूत सार’, ‘नर्मदाविहार’, ‘ईश वंदना’, “जीवनकी सफलता”, “सीताजीका उपदेश” आदि कविताएं उपदेश एवं समाजहितके भावोंसे परिपूर्ण हैं । “किसान” तथा “कृषि उद्धार” जैसे सामाजिक विषय यहाँभी ध्यान आकर्षित करते हैं जिनमें सृजनका आवेग कम, किंतु युगकी जागरण भावना प्रधान है ।

द्विवेदीमण्डलके हिन्दी लेखकोंका प्रमुख लक्ष्य था आधुनिक समाज व्यवस्थाको सुधारना, पश्चिमकी ज्ञान-राशिसे लाभान्वित होकर चरित्र निर्माण करना, प्राचीन गौरवकी समुचित रक्षा करना तथा हिन्दी भाषा और साहित्यकी व्यवस्थित प्रगति करना । वह युग परंपरापोषित आदर्शवादी भावधारका प्रतिनिधित्व करता था और अग्निहोत्रीजीकी रचनाएं इसी पृष्ठभूमि की उपज हैं । [१]

## संकलन (२)

### सफदर ?

प्रस्तुतकर्ता : जननाट्य मंच

समीक्षक : नरनारायण राय

‘सफदर’ अपने और कई रूपोंमें चर्चित थे, पर

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली-

२। पृष्ठ : १७१; डिमा. ८६; मूल्य : ७५.००



सबसे अधिक एक रंगकर्मीके रूपमें। उनकी 'रंग संस्था' ने 'जन नाट्य मंच' की ओरसे उनके दिवंगत होनेके बाद उनपर एक पुस्तक प्रकाशित करायी है। समीक्ष्य पुस्तकके कई भाग हैं : सफदरके बारेमें, सफदरके लेख, सफदरसे साक्षात्कार, सफदरकी कविताएं, सफदरके नाटक। प्रस्तुतकर्त्ताओंने सफदरकी सामाजिक संलग्नताके सभी पक्षोंपर सामग्री प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया है। जितनी कम आयुमें सफदर अकाल काल कवलित होगये उस दृष्टिसे यह पुस्तक उनके व्यक्तित्वके सभी अंगोंको भरसक पूर्णताके साथ प्रस्तुत करती है।

दो शब्द लिखते हुए भीष्म साहनी एक ओर तो सफदरके कर्मठ और आकर्षक व्यक्तित्वका स्मरण कराते हैं दूसरी ओर समाजहितके लिए सफदरके त्याग-पूर्ण जीवनकी संक्षिप्त-सी रूपरेखा भी प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार सफदरने अपनी शक्तिका कण-कण समाजको अर्पित किया—अपने लिए उसने कभी कुछ नहीं किया। उसके क्रिया कलाप नुक्कड़ नाटक खेलने और साम्प्रदायिक तत्त्वोंके खिलाफ मोर्चा लेनेपर ही मुख्यतः केन्द्रित रहा। भीष्म साहनीकी दृष्टिमें समाजोन्मुख साहित्यके विकासमें नुक्कड़ नाटक एक महत्त्वपूर्ण घटक हैं और इसमें सफदरकी मंडलीकी भूमिका अग्रणी रही है। हवीव तनवीरने सफदरके सक्रिय रंगकर्मका संक्षिप्त-सा लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए इस बातपर अफसोस व्यक्त किया है कि भारत जैसे स्वतन्त्र देशमें भी व्यवस्था द्वारा किये जा रहे शोषणके विरुद्ध उठने वाली आवाज (सफदर) का गला घोट दिया जाता है। यह जनतंत्रके लिए सोचनेकी बात है। एम. के. रैना ने नुक्कड़ नाटकके संदर्भमें सफदरकी रचनात्मक भूमिका को पहचाननेका प्रयत्न किया है और इस निष्कर्षपर पहुंचे हैं कि सफदर सृजशीलता, राजनीति तथा जनता के अधिकारोंके शिक्षणके संयोगसे एक ऐसी जीवंत शक्तिका निर्माण कर रहा था जो अधिक सुन्दर भविष्य का एक स्रोत बन सके। इसलिए सफदरकी हत्याके व्यापक अर्थ है, एक बड़ा खतरा है, जिसका कलाकारों को सामना करना है। [सड़क घेरने और यातायात रोक देनेके झगड़ोंमें सफदरकी मृत्यु हुई थी, जिसे यहां हत्या कहा गया है।]

भिन्न-भिन्न पत्रिकाओंमें भिन्न कारण और प्रयोजन से लिखे गये सफदरके लेखोंमें से चार लेख संकलित

किये गये हैं जिनमें से तीन नुक्कड़ नाटकपर और एक नाटक खेलनेके अधिकारपर हैं। अपने लेखोंमें सफदरने नुक्कड़ नाटकके महत्त्व और कार्य प्रणालीपर, पारम्परिक रूप एवं उसके भीतरसे नवीनताकी खोजपर, नुक्कड़ नाटकके संकटपर और अंततः अपनी रंग मण्डलीकी विगत दस वर्षों (७५-८५) की उपलब्धियोंपर विचार किया है। एक रंगकर्मीके रूपमें सफदरने अपने साक्षात्कारमें बताया है कि विगत १० वर्षोंमें उसने १६ नाटकोंके तीन हजारसे भी अधिक प्रदर्शन किये जिसे बीस लाख दर्शकोंने देखा है। (पृ. ६६)। सफदर मानते रहे हैं कि नुक्कड़ नाटक न तो अभी आन्दोलनका रूप ले पाया है और न अलग-अलग क्षेत्रोंमें इसका सही ढंगसे विकास हो पाया है।

सफदरकी चौदह कविताएं इस पुस्तकमें संकलित हैं और पांच नुक्कड़ नाटक। कविताओंमें कविता कम हैं और तथ्य-यथार्थकी छन्दबद्ध प्रस्तुति अधिक। सफदरकी कविता 'पढ़ना लिखना सीखो' दूरदर्शनपर भी प्रौढ़ शिक्षा प्रसार कार्यक्रमके प्रचारार्थ प्रस्तुत की जाती रही है पर याद नहीं आता कि कभी सफदरका नाम कविके रूपमें दिखाया-सुनाया गया हो। हल्ला बोल, मशीन, गांवसे शहर तक, राजाका बाजा, अपहरण भाई-चारेका, ये पाँच नुक्कड़ नाटक संकलित हैं। मोटे तौर पर शोषण, वर्गभेद और नये समाजकी रचनाका संकल्प इन नाटकोंमें व्यक्त हुआ है। सफदरकी कविता 'औरत' की मंचीय प्रस्तुति की गयी है। 'मशीन' और 'हल्ला बोल' के प्रदर्शन भी समीक्षकने देखे हैं। इस बात में संदेह नहीं कि साहित्यिक आदर्शोंपर चलनेवाले हिन्दी नाटकोंकी तुलनामें ये नुक्कड़ बहुत जल्दी दिल्ली से हमारे गांव-घर-शहर तक आ गये हैं। इसके अपने कारण हैं। पर एक अच्छे कलात्मक नाटकके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह अपने प्रचार प्रसारके लिए किसी तंत्रसे जुड़ा रहे। जो खूब खेला गया और बहुत फैला-पसरा रहा उसका कला मूल्य भी उतनाही प्रखर हो यह भी आवश्यक नहीं। दोनों स्थितिमें कुछ और और चीजें हैं, कुछ और और चीजें होनी चाहियें जो नहीं हैं, इसलिए कहीं दोनों अलग हो जाते हैं। जनवादी नाट्य लेखनका अपना दृष्टिकोण है, नाटक उसीका लिहाज कर लिखे गये / जाते हैं।

पूरी पुस्तकको सामने रखकर कहा जा सकता है कि इस पुस्तक 'सफदरके जिए नुक्कड़ नाटककी पिछले दशककी



गतिविधिकी पहचान कीजा सकती है। एक दृष्टिकोणसे नुक्कड़ नाटकके दर्शन, शिल्प और आवश्यकताको समझा जा सकता है और इस नाट्य रूपसे जुड़े केवल जनवादी कलाकार रंगकर्मियोंके संकटका अनुमान किया जा सकता है। १७० पृष्ठोंमें से सिर्फ २५ पृष्ठपर सफदरकी

कविता छपी है, शेष सामग्री नुक्कड़ नाटकपर केन्द्रित है। ५ आलेख, ५ लेख और नुक्कड़ नाटक रंगकर्मियों सफदरकी गतिविधियोंपर चार टिप्पणियाँ। पुस्तक इस दृष्टिसे भी पठनीय है। □

## आत्मसंस्मरण

### सहचर है समय?

लेखक : रामदरश मिश्र

समीक्षक : डॉ. अश्विनो पाराशर

कोईभी रचना एक क्षणमें स्फुरित हो या अरसेमें रची जाये यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना यह कि रचनामें उतरे अनुभव किस सीमा तक जीवन-सत्यका काव्य सत्यके रूपमें दर्पण प्रतिबिम्ब बनाते हैं और कितने बड़े फलकपर। और जब-जब यह फलकका प्रश्न उठता है तब-तब रचनाके बाहरी परिवेशका प्रश्न भी उठता है। यह बाहरी परिवेश, रचनाकारकी निजी और सामाजिक संलग्नतासे सीधा सम्बन्धित होता है। रचना मानसिक क्रिया-प्रक्रियाके रूपमें इस संलग्नताकी ही अभिव्यक्ति होती है। और जब कोई रचनाकार अपनी रचना यात्रामें एक लम्बी यात्रा तय करनेके बाद अपने परिवेश और उससे जुड़ी संलग्नताकी पड़ताल करता अतीतपर दृष्टिपात करता है तो पृष्ठभूमिके रूपमें उसे प्रत्येक रचनाकी कड़ियाँ कहीं पीछे, बीते समयके साथ, सीधे-सीधे जुड़ती दिखायी पड़ती हैं। तब रचनाके आस्वादके धरातलपर रचनाकारकी जीवन-यात्राका आरेखभी समानान्तर आस्वादके धरातलपर खड़ा दिखायी देता है।

१. प्रका. : किताब घर, अंसारी रोड, दरियागंज नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ६००; डिमा. ६१; मूल्य : २५०.०० रु.।

‘प्रकर’— जुलाई ६२—१८

रचनानुभव अनुभवके जिस पिटारेसे निकलते हैं, उसमें कितनेही दूसरे संदर्भ रचनानुभवोंको पुष्ट करते हैं, उनकी संवेदनीयताको सघन करते हैं। और, पाठकके समक्ष ये इतर अनुभव एक व्यवस्थित रचना-यात्राके भिन्न पड़ावोंके रूपमें, रचनाकारको पात्रता प्रदान करते हुए प्रस्तुति पाते हैं तो स्पष्ट हैं ये निजी अनुभव ही एक स्वतंत्र रचना और कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण रचनाके रूपमें अपना अस्तित्व स्थापित करते हैं। किसी भी रचनाकारकी रचनायात्रासे जुड़े ये निजी संदर्भ ही अपने विधागत रूपमें ‘आत्मकथा’ अथवा ‘जीवनी-साहित्य’ की संज्ञासे अभिहित किये जाते हैं। अतः ‘जीवनी साहित्य’ में भी रचनात्मकताकी पड़ताल रचना के समान ही गंभीर विवेचन दृष्टिकोण की मांग करती है।

हिन्दी साहित्यमें गत तीन दशकोंमें विशेष रूपसे रचनाकारों द्वारा स्वयं ही अपनी जीवनी अथवा आत्म-कथा लिखनेकी एक परम्परा कुछ अधिक ही विकसित होती दिखायी दी है। कवि-कथाकार-आलोचक राम-दरश मिश्रकी ‘सहचर है समय’ इसी दिशामें एक सुष्ठु कदम है, साहसिक भी। यह रचनात्मक जीवनी लेखनकी दिशामें उल्लेखनीय भी है।

वस्तुतः मिश्रजीके आत्मकथा लेखनकी पृष्ठभूमि में जाये तो पता चलता है प्रारम्भमें ‘जहाँ मैं खड़ा हूँ’ के रूपमें रामदरशजीने अपनी जीवन-यात्राके प्रारंभिक दौरको बचपनसे शैशव काल तकके विकास-क्रमके रूप



में लिखना प्रारम्भ किया था जिसमें गोरखपुर जिले के एक गांव 'डुमरी' में उनका जन्म हुआ। डुमरी गांव, और वह परिवेश जिसने एक बालक के मन में कुछ महत्वाकांक्षाएं जगायीं, किस प्रकार वे अपने भूगोल से बाहर 'झांकने की अभिलाषा' में सोलह वर्ष की आयु में डुमरी से मझगांव के पास ढरसी-स्कूल में विशेष योग्यता परीक्षा की तैयारी करने आये, जबकि १५ वर्ष की आयु में ही उनका विवाह हो गया। 'यह सब एक नया अनुभव था विवाह भी और पढ़ाई के लिए गांव छोड़ना भी। पर रोशनी की इस पगडंडी पर वे जैसे आगे बढ़े तो फिर बढ़ते ही गये।

'जहाँ मैं खड़ा हूँ' खण्ड में कितने ही छोटे-बड़े पात्र मित्र, भाई, पड़ोसी, गुरु, पिता के रूप में आये जुड़े और बालक रामदरश के कोमल मन की सलेट पर एक नाम की भाँति दर्ज होते चले गये। उन्होंने लिखा भी है—“तब कुत्ता पाला था, अब सपने पालता हूँ, अपने लिए, समाज के लिए, देश के लिए। वे छीन लिये जाते हैं, छीनकर किसी और को दे लिये जाते हैं—अपनों द्वारा भी और दूसरों द्वारा भी। और एक यातना, एक आक्रोश लिये हुए मैं तड़पता हूँ। मन ही मन कौंचता हूँ अपने को भी, छीनेवालों को भी। यही मेरी जीवन कथा है यही कथा है मेरे लेखन की भी। लेकिन न जाने क्या है कि मैं टूटा नहीं, बिखरा नहीं, मिट-मिटकर बनता हूँ, गिर-गिरकर उठता गया हूँ, भटक-भटककर रास्ते पर आ गया हूँ।” (पृ. ११)।

अपने गजल संग्रह में उनकी एक गजल का शेर है—  
 किसी को गिराया न खुद को उछाला,  
 कटा जिन्दगी का सफर धीरे-धीरे  
 जमीं खेत को साथ लेकर चलाया,  
 उगा उसमें कोई शहर धीरे-धीरे।  
 बिल्कुल स्पष्ट है—जीवन का एक लम्बा रास्ता तय करने के बाद पीछे छूटी राह भले ही कितनी धुंधली दिखलायी पड़े पर यह लगता है—मानो कोई आवाज तो जरूर दे रहा है। और 'जहाँ मैं खड़ा हूँ' खण्ड के बहाने मिश्रजी ने छूटी उन राहों-पड़ावों की वह आवाज ही शब्दबद्ध की है। तभी तो वे कहते हैं—“जीवन के प्रति आस्था को खंडित करने वाले साहित्य में मेरी आस्था कम नहीं पाती और अपने लेखन में मैं जीवन की आस्था बिना रखने का प्रयत्न करता हूँ।” (पृ. १२)।

यह तो एक संकेतभर है उस विस्तार का, असीम सूनेपन और लोगों की आँखों में छाई स्तब्धता का जो सदैव एक प्रश्न के रूप में पगडंडी के आगे-आगे दौड़ता रहा, रास्ते की टोह देता। महत्त्व इस बात का नहीं कि प्रश्न सुलझा या नहीं, महत्त्व इस बात का है, यह प्रश्न रचनाकार के साथ-साथ यात्रा करता जितनी लम्बी दूरी तय कर पाया आस्था के प्रश्न के रूप में सारी यातनाओं की ये कड़ियाँ जुड़कर रचनाप्रक्रिया के इतिहास और रचना के उत्स की ओर संकेत करती हुई समग्र रचना-लोक का पोट बन जाती हैं और प्रश्न इनका सार्थवाह हो गया है। यहाँ अनुभव किस प्रकार धीरे धीरे मान्यता में फ्रेम होते चलते हैं—यह इसी का आलेख है।

मिश्रजी की कविताओं में, कहानियों, उपन्यासों में प्रयुक्त वस्तु यहाँ चारों ओर बिखरी पड़ी है, यही कुछ उनकी कल्पनाओं की सान पर चढ़कर रचना की शक्ति में सामने आया है। ये प्रकृतिके दुर्लभ चित्र ही नहीं, उनकी टकराहटें भी हैं; उनसे बना रिश्ता और सम्बन्ध-गत संवेदना के वे महीन धागे भी मौजूद हैं जो एक सुई में पिरोये जाने के बाद इस समूचे बिखराव को रचना में सिलते चले जाते हैं। एक प्रकार से 'जहाँ मैं खड़ा हूँ' प्रारम्भ इस आत्म-कथा यात्रा में 'रोशनी की पगडंडियाँ' में आकर घर छूटने की पीड़ा तो अभिव्यक्तिके स्तर पर टंकती ही हैं यहाँ से पड़ावों—और पड़ावों पर ठहरते चलते चले जाने की सहज प्रवृत्ति में स्मृतिके शिलापट्ट पर अनुभवों को भी अंकित करती कविकी लेखनी समाज के साथ बनते-बिछुड़ते सम्बन्धों की एक लम्बी तालिका भी देती चलती है—शायद किसी भी रचनाकार के व्यक्तित्व के मन में यह सारा कुछ कच्चा माल ही तो है जो एक ओर रचना में प्रयुक्त होता है तो दूसरी ओर व्यक्तिकी निर्मितिके लिए भी गारा-ईट-सीमेंट का काम करता है।

रोशनी की पगडंडी पर चलते हुए रामदरशजी का घर से बाहर कदम रखते ही पहला पड़ाव ढरसी का स्कूल था। उन्होंने लिखा है—“ढरसी का स्कूल मेरे लिए एक ऐसा मंच था जहाँ स्थित होकर मैंने परीक्षा ही नहीं पास की जीवन के भी कितने पाठ पढ़े और अनुभव ग्रहण किये। × × इन तमाम गांवों से आये हुए छात्रों की आँखों में वे ही सुख-दुःख तो थे, वे ही अभाव तो थे, वे खेतवारी नदी नाले झाँक रहे थे, वे ही त्योहार पर्व, मेले हट्टिए, ऋतु-मौसम अपनी छाया छोड़े



हुए तो ये फिर ये मेरे पराये कहां हुए ? ” इसी राष्ट्र-भाषा विद्यालयमें, जिसके बारेमें संस्कृत पाठशालाओं का विम्व था और ‘बेचारे’ का सम्बोधन, मिश्रजीने अपनी विशेष योग्यताकी परीक्षाकी पढ़ाई पूरी की। उनकी कहानी ‘खंडहर’ के पंडितजीका आधार ‘विम्व’ एक संस्कारगत भारतीयताके साथ इस परिवेशकी ही देन है। एक ओर कहानी—“अधूरी कहानी” की सुहागी मौजो मामाकी छोटी बहूकी यातनामयी कथा है। यह वही कच्चा माल है जो इन पगडंडियोंसे गुजरते हुए कहीं भीतरही भीतर अवचेतनमें बैठता रहा और समय आनेपर एक रचनामें आकार लेकर अभिव्यक्त हुआ।

मेलेका प्रसंग, नेहरूजीका आगमन, साइकल चलाना सीखना पहली बार, ‘देखा इलाहाबादका जन समुद्र, स्कूल यादें एक-एककर टंकती चली गयी। “यह स्कूल जाने कबका डह-डूह गया और पंडितजी भी काल कवलित होगये किन्तु यह स्कूल मेरे मनमें जो बसा तो बसताही चला गया।” परीक्षामें उनकी द्वितीय श्रेणी आयी। इसपर वे लिखतेहैं ‘प्रथम श्रेणी मेरी श्रेणी नहीं है। यह अच्छाही है... मैं लोगोंके बीच मिले रहनेमें ही आश्वस्त अनुभव करताहूँ।’ अपने बारे में मिश्रजीका यह कथन उनके बेबाक और ‘सहृदय सरल’ पक्षका ही उद्घाटन करताहैं। बाढ़का दृश्य, छाती तक पानीमें चलकर घर पहुंचना और उस बारिशके मौसममें, खुदका पक्का मकान होजानेके बावजूद कच्चे गिरते मकानोंकी चिन्ताग्रस्तता, रिशतोंकी भावुकता और जुड़ाव और दुःख अवसादके बादभी रसिकता, गाँवके माहौलकी महकमें सराबोर करता दृश्य दर दृश्य—पूरा ताना बाना कथा खण्डोंके जुड़ावमें औपन्यासिक विन्यासके साथ लेखककी कल्पनाशील ‘सृजनात्मक दृष्टिका सफल परिचायक है—यह ‘खंड’ जीवनके बननेकी प्रक्रियामें चुने रास्तेका लेखाजोखा प्रस्तुत करताहै—आत्मीय वर्णनात्मकताके साथ।

मिश्रजी समग्र जीवन-यात्रा परिवेशसे जुड़कर, उसके घात संघात सहते हुए परिवेशके बीचसे ही चलकर इस मुकाम तक पहुंचेहैं। सीधे-सीधे इसके दो स्तर अपने झलकने लगतेहैं एक, मिश्रजीका ‘सहज व्यक्ति’ जो जीवनकी यात्रामें आये पड़ावोंके साथ अपना रिश्ता जोड़ता चलताहै, दूसरा उनके भीतरका साहित्यकार—जो इनसे प्राप्त या उद्भूत संवेदनाओं ‘प्रकर’—जुलाई ६२—२०

को पिरोता हुआ रचना यात्रामें रत रहा। कुछभी करनेकी ठान लेनेकी मानसिकता उनकी निराली है, ठीक उसीके समानान्तर थोड़ेसे भी व्यवधान या रुचिके विपरीत बातका उनपर ‘गहरा असर’ होताहै, वे उतनेही प्रबल रूपसे उद्विग्न भी हो जातेहैं। एक प्रकार से सहजता और उद्विग्नताका विचित्र संयोग है मिश्र जीमें। इसीलिए वे अपनी रुचियों और अरुचियोंमें बड़े सतर्क हैं पर एक दृष्टिसे इसीके बीच एक चीज है संकोच, यह एक लीजेंडके रूपमें सहजता और उद्वेग में संतुलित भाव-स्थिति पैदा-करता रहाहै पर इससे हानिभी उठानी पड़ीहै उन्हें !

‘टूटते-वनते’ दिन’ में मुख्यतया जीवन क्षेत्रमें पदार्पणके प्रारम्भसे दिल्ली आनेतक की यात्राका विवरण है। इसमें बनारसमें एम. ए. के बाद पी-एच. डी. का समय, स्कूलमें अध्यापन, वृत्तिकी व्यवस्था और फिर पी-एच. डी. के बाद नौकरीके लिए गुजरातमें नवसारी, अहमदाबादमें बिताये हुए दिनोंकी अनेक खट्टी-मीठी यादें क्रमबद्ध रूपसे आयीहैं। यह आत्मकथा इस बात का चित्र भी है कि रोशनीकी पगडंडियां जहां खत्म हुईं वहांसे रामदरशजी जीवनके अनवरत संघर्षके उस खुले क्षेत्रमें आगये जहाँ निरन्तर बाढ़ग्रस्त रहनेवाली नदी आकर मिलतीथी। ऐसा लगताहै बचपनमें गांव के निकट बहनेवाली राप्ती जो उनकी स्मृतिमें लगा-तार बहती रही, साकार रूपमें अब उनके सामने थी, एक चुनौतीके रूपमें—कि बचपनमें उत्साहमें रातके अंधेरेमें भी पारकर लिया बाढ़का इलाका। जीवनमें इससे किस प्रकार निपटते हो—यह देखनाहै ? परन्तु नदी-नदी है चाहे यथार्थ रूपमें हो या प्रतीक रूपमें अपने सजल थपेड़े देतीहै तो शीतलता भी देतीहै, सींचती भी है। यही बात रही होगी कि मार्गमें आनेवाली कठिनाईयोंके बीचसे गुजरते हुएभी वे एक मुकाम तक पहुंचनेमें कामयाब हुए।

नदी-सा प्रवाह उन्हें बाहर भीतरसे झकझोता रहा तो पत्नीके रूपमें ‘सरस्वती’ उनके लिए आत्मिक संवल बनी। प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें किसी नारीका शक्ति रूपमें विद्यमान होना आवश्यक है। चाहे प्रेमिका रूपमें, चाहे पत्नी रूपमें। प्रेमिकाके संदर्भपर मिश्रजी मौन हैं इसके निजी कारण हो सकतेहैं। पर जिन्हें मिश्रजीके घर जानेका अवसर मिलाहै, और सरस्वती भाभीसे मिलेहैं वे यह कहनेमें संकोच नहीं करेंगे



कि मिश्रजीके समूचे व्यक्तित्वके निर्माणमें इस देवीका महत् स्थान है। स्वयं मिश्रजीने 'जुलूस कहाँ' जारहा है संग्रहमें 'औरत' कविताके बहाने यह सत्य स्वीकार किया है। घर-बाहरके कार्योंसे मुक्त मिश्रजी लेखनमें जुटे रहे इसके पीछे प्रेरणा जो भी रही हो सहायिका-शक्तिके रूपमें उनकी पत्नीका योगदान कम नहीं। उन्होंने कहा है—'मेरे कविको उसकी कविता मिल गयी' (पृ. २६२)।

मिश्रजीके मार्गमें आये अवरोध समय-समयपर उन्हें विचलित करते रहे पर धीरे-धीरे मिटते भी रहे। 'टूटते-बनते दिन' उन्हीं दिनोंकी याद है पर इस दौरमें उपलब्धिके रूपमें—उनके मित्रों, शिष्योंकी, प्रशंसकों की एक लम्बी सूची है जो गुजरात छोड़नेके बाद—आज तक भी मिश्रजीके साथ भावात्मक रूपमें बने हुए हैं। स्थान छोड़ आनेके बाद भी चाहनेवालोंका सिलसिला बना रहे, यह निश्चयही व्यक्तित्वके बड़े पक्षका बाची है। क्योंकि रास्ता साफ करनेमें लग जानेवाले लोग वहींके होकर रह जाते हैं, व्यक्तिको अपने अनुकूल रास्ता बना लेनेपर आगे बढ़ते रहना चाहिये। मिश्रजीने ऐसा ही किया और 'प्रयत्न' सफल हुआ—अहमदाबादमें पैदा हुए निर्वातसे उबरकर वे दिल्लीमें डी. ए. बी. कालेजमें हिन्दी प्रवक्ताके रूपमें नियुक्त होकर आगये।

आत्मकथाका दिल्ली पक्ष, जिसे उन्होंने 'उत्तर-पथ', के रूपमें संबोधित किया है—डॉ. नगेन्द्रके उस विशाल मानवीय पक्षसे प्रारम्भ होता है—जहाँ नगेन्द्रजी केवल मात्र यह जानकर कि मिश्रजी 'आउट ऑफ जॉब' हैं तुरन्त उन्हें अपने विशेष भावसे न केवल साक्षात्कार दिलाते हैं बल्कि नियुक्ति प्रदान करते हैं। दिल्लीके लिए यह एक विशेष उल्लेखनीय बात है—इस विश्वविद्यालय की हिन्दी विभागाध्यक्षकी कुर्सीमें कुछ बातही ऐसी है—उनके बाद डॉ. सावित्री सिन्हा, डॉ. स्नातक, डॉ. उदय-भानुसिंह, डॉ. ओम्प्रकाशसे होती यह परम्परा अद्यतन डॉ. महेन्द्रकुमार, डॉ. तारकनाथ बाली और आज डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त, एक विशाल मानवीय पक्षसे जुड़े उसी भावसे सहृदय और प्रतिभाओंको योग्य मान देने वाले हैं। आज विश्वविद्यालयमें दिल्लीसे बाहरसे आये अनेक विद्वान् इसका प्रमाण हैं और विभाग इन्हीं कुछ चारित्रिक विशिष्टाओंके कारण न केवल दिल्लीमें बल्कि बाहरभी विशेष आदरके योग्य बना हुआ है। हमें इसका गर्व है।

प्राध्यापक होकर आये मिश्रजी शीघ्रही विभाग के सांध्य-कालिजमें रीडर होगये। और एक दिन 'दक्षिण परिसर' (दि. वि. दि.) में प्रोफेसर भी। पर 'उत्तर पद'में, उपलब्धियोंका एक स्तर नहीं—क्योंकि यहाँ सबसे महत्त्वकी बात हुई मिश्रजीके रचनाकार व्यक्तित्वका प्रकाशन। पथके गीत १९५१ में बनारस में ही प्रकाशित हो गया था, तब मिश्रजी एम. ए. कर रहे थे। शोध प्रबन्ध १९६० में आया जब वे गुजरात में थे। वहीं ६१ में 'पानोंके प्राचीर' उपन्यास छपा। १९६२ में मित्रोंके ही सहयोगसे 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' संग्रह प्रकाशमें आया। 'जल टूटता हुआ' उपन्यास का लिखना तो गुजरात (अहमदाबाद) ही शुरू हो गया था पूरा हुआ ६५ में दिल्ली आनेके बाद।

रचनात्मक यात्राके पड़ावमें मुक्तिबोध और फिर अभिन्न होते जारहे 'देवीशंकर अवस्थी' की आकस्मिक मृत्युने काफी झकझोरा पर यही जीवनका दर्शन है। स्मृतियाँ मनपर अंकित होती है, कर्म धीरे-धीरे मुक्त होकर 'आगे बढ़ जाता है'।

१९६८ में 'खाली घर' कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ। अकस्मात् मिल गये डॉ. विनयके साथ अभिन्नताके अनेक स्तर जुड़ते गये परन्तु आन्तरिक विश्वसनीयताके स्तरपर एक 'कन्सर्न' बड़ा 'महत्त्वपूर्ण' होता है, विनयही नहीं अनेक लोगोंके साथ यह 'कन्सर्न' बना और देखतेही देखते मिश्रजी अपनेही मित्र वगैरोंमें केन्द्रीय व्यक्तित्व बन गये, यहाँतक कि महीर्षिसिंह, विनय, बलदेव वंशी, नरेन्द्रमोहन आदिके सहयोगसे भारतीय लेखक संगठनकी स्थापनाने तो दाएं और बाएं चल रहे 'लॉबी' के लोगोंके लिए एक अच्छा चर्चाका विषय बना दिया, जो बादमें हिन्दी अकादमी पुरस्कार प्रसंग में राजेन्द्र यादव तक के साथ जुड़ा। १९६९ में 'हिन्दी कविता: तीन दशक', 'पक गई है धूप' और 'जल टूटता हुआ' के प्रकाशनने मिश्रजीको स्थापितही कर दिया। और यह क्रम जारी है।

मैंने पूर्वही कहा है—मिश्रजी सहृदय व्यक्ति हैं, सहजभी हैं और उद्विग्नता और बेचैनी इसमें विचित्र संयोगरूप में जुड़ी है जिसने उन्हें परिवेशके प्रति सजग भी बनाये रखा और वे जुड़े भी रहे। उनसे जुड़नेवालोंका सूची बड़ी लम्बी है। और 'अब तो स्वयं मिश्रजीपर कितने शोध प्रबन्ध आचुके हैं इसकी गणना भी कठिन है।



एक लेखककी कलमसे उसका जीवन इतिहास, विकास क्रमयात्राके रूपमें रोचक है, ज्ञानदायी भी, पर एक प्रश्न—मिश्रजीने जिन व्यक्तियोंको सहयोग दिया, जिनके-आधार बने वे—उनकी चर्चा कैसे

छूट गयी। क्या इसे मात्र संकोच कह दिया जाये? जो भी है—एक निहायत ईमानदार रचनाधर्मीका जीवन्त दस्तावेज है इसका स्वागत किया जाना चाहिये। [१]

## काव्य

### नकारात्मक?

कवि : शिवप्रसाद द्विवेदी

समीक्षक : डॉ. आनन्दप्रकाश दोक्षित

श्री द्विवेदी अपने समयके साक्ष्यपर उभरी हुई गहरी आत्मानुभूति और सामाजिक संलग्नताके कवि हैं, जिनकी सर्जनात्मक ऊर्जा प्रवाह और आवेगकी सशक्त त्वराके साथ धावित होती है और विश्रमित होती है तो एक लम्बी दूरी तय करनेके बाद ही। वे लंबी दौड़के अभ्यस्त धावक हैं। क्षणोंमें ही साँस टूट जानेका भय उन्हें नहीं रहता। वर्तमान और समकालिक उनके कवित्वकी आधारभूमि है। अपने आसपास और अपने चारों ओरके घटना-संसारमें अपने अस्तित्वको चुनौती देती हुई गर्म और विषाक्त हवाओंका अहसास उन्हें विकल और विह्वल करता है। अपने जीनियस, अपनी मौलिकता और अपनी मनुष्यताकी अस्वीकृति और उनका अपमान कभी उन्हें प्रतिरोधके लिए तत्पर करता है और कभी कटुता, पीड़ा, वे-गुनाह दंडित हो जानेकी यंत्रणा, अजनबी बन जाने और अकेले पड़ जानेकी व्यथासे भर देता है। नारकीय परिदृश्य और विषम वातावरण उनके बुद्धिजीवी सर्जककी आँखमें या तो चुभन पैदा करता है या कभी निराशासे सदैव और कुंठित करके

१. प्रका. : विकास द्विवेदी, १३३/८०, एम ब्लॉक, किदवई नगर, कानपुर । पृष्ठ : ५२; क्रा. ६०; मूल्य : ३५.०० रु. (पैपर बक)

‘प्रकर’—जुलाई ६२—२२

आन्तरिक उत्तेजनाकी आँचको ठंडा कर देता है। इस सारे ध्वंसकी परतोंको फोड़कर आत्मविश्वास और आशाका कोई न कोई एक बीज अपना सिर ऊँचा कर ही लेता है। अस्वीकृति, बिखराव, पराजय, रिक्तता और अप्रासंगिकता तथा आत्म-निर्वासन या निरर्थकताके बोधकी उपज, एक मनुष्यके नकारात्मक दृष्टिकोण के विरुद्ध संभावनाओंका संकेत देता जीवनका सकारात्मक पक्षही उनकी कविताका सत्य है। उसी सत्यकी आहट पाने और अपना साहस तथा अपनी शक्ति बनाये रखनेका उपक्रम है उनकी कविता। नकारात्मकता उसके नाममें है, उनका अभिलषित नहीं है।

एक आत्मकथ्यकी तरह रची गयी इस प्रवन्ध-कवितामें दयनीय करुण स्वर निरंतर बजता हुआ इसे एक त्रासदीमें बदल देता है। किन्तु यह त्रासदी तरल भावुकताकी तरंगें उठाती हुई पाठकको दोलित नहीं करती, उसे वैचारिकतासे संपन्न और सन्तुलित करती है। भाव विचारके अंकमें पलते और त्रिकसित होते हैं और उनके स्पन्दन और हर सांसका अनुभव किया जा सकता है। कथाके अभावकी पूर्ति जीवन-प्रवाहमें तैरते विभिन्न घटना-खंडों और दृश्योंकी अविराम गतिकता से सहज ही हो जाती है। ‘मैं’ की वर्तमानता, उसकी भिन्न रूपोंमें उपस्थिति और उसका बाह्य-आभ्यन्तर संघर्ष, कथानकको सक्रिय और जीवन्त बनाये रखता है। शैली-शिल्पका आचरण यथार्थकी तेजस्विताको बढ़ावा देता है, शैलिक लटककों के चमत्कार नहीं दिखाता।



सच्चाई यह है कि काव्यमें घटनात्मकता है, जीवन व्यापारमें दुर्घटनाग्रस्तताका संकटबोध है, उसके विरुद्ध व्यक्तिकी मानसिक प्रतिक्रिया है, स्थूल घटनाएं नहीं हैं। घटनाओं और उनके विवरणके अभावमें भी, केवल मानसिक प्रतिक्रिया और आन्तरिक अनुभूतिके बल पर पूरे काव्यमें सामाजिकताके दबाव और कवित्वके प्रभावको बनाये रखना, द्विवेदीजीकी सर्जक क्षमताका प्रमाण और उनकी एक उपलब्धिही मानी जायेगी।

इस उपलब्धि तक पहुंचनेके लिए कविकी प्रतिभा कोई जटिल ताना-बाना नहीं बुनती। केवल कालकी बहु-आयामिता, काल-चक्रके प्रवर्तनकी गति, विराट् विश्वके अन्तर्विरोध, और एक अकेली इकाईके रूपमें व्यक्तिकी निरीहताकी अनुभूति, कुछ सार्थक बिम्बधर्मी शब्द-प्रयोगों, प्रतीकों, देशी-विदेशी रचनाकारों, रचनाओं और उनके पात्रोंके संज्ञा-नामोंसे जुड़नेवाले संदर्भों, आशाके हिंदोलपर चढ़कर फिर-फिर नीचे खिसक आनेकी त्रासमयी स्थितियों, वर्तमानसे विगतकी स्मृतियोंके लोकमें जाकर पुनः अनपेक्षित वर्तमानमें लौट आनेकी विवशताओंकी शाब्दिक अभिव्यक्तिके साथ मिलकर उनका यह रचना-विश्व तैयार होता है। प्रकृत सौंदर्यके विरुद्ध जीवनकी निरर्थकताका कंटीला बोध असंगतियोंके जंगलमें फंस जानेपर पग-पगपर होता चलता है। भाषाका विघटन हो या मनुष्यके एक वस्तु या कामोडिटीमें परिणत होजानेकी व्यथा, द्विवेदीजीका रचनाकार तीव्र अनुभूतिके बलपर उसे सहज-सरल भाषामें संजो और संवार-सहार लेता है।

'नकारात्मक' एक कल्पनाशील, आशा-आकांक्षाभरे व्यक्तिकी असफलता-जनित निराशाकी अभिव्यक्तिसे आरंभ होता है :

"सपनोंको बांधना चाहाथा/सपनोंके साथ जीना चाहाथा/सपने और इन्द्रधनुष/फूल और तितलियां/धूप और हवाएं/इनका अपना विश्व होता है/अपनी कायनात होती है/पर मेरे संदर्भमें/ वैसा कुछ न था/वैसा कुछ न हो सकाथा।"

सपने, इन्द्रधनुष, फूल और तितलियां कल्पना-शीलता, सौंदर्य प्रेम, कोमलता और उल्लासके प्रतीक हैं तो धूप और हवाएं स्नेह-सहानुभूति तेजस्विता सुखा-श्रय और परिवेशकी सुखदताकी। "इनका अपना विश्व होता है" पंक्तिमें उपस्थित "विश्व" एक विराट् दृश्यका बिम्ब उभारता है और व्यक्ति-जीवनको सहसा एक विशाल

चित्र-फलकके केन्द्रमें ला खड़ा करता है। इसी प्रकार दीखनेमें बहुत साधारण-सी पंक्तियां "वैसा कुछ न था/वैसा कुछ न हो सकाथा" एक साथ बृहद् काल, क्रिया-त्मकता और निराश मनकी उदासी और गहरे संत्रास की त्रिकोणात्मक अनुभूतिको जगाती हैं।

यहींसे व्यक्तिकी वह पराजय-कथा आरम्भ होती है जिसमें अपने सारे परिचितोंसे वह नकार दिया जाता है, समय अपने प्रवाहमें उसे केवल 'छूकर' निकल जाता है—अपने साथ बहाकर ले नहीं जाता। अपने नीड़ और अपनेपनसे दूर होते जानेकी पीड़ा और घुटनको झेलते, क्रोधका इजहार करते, अपना रजिस्टेंस और अपनी उत्तेजना प्रकट करते, विरोधों और तनावोंके बीच पलते, निराश और कुंठित होते उनके परिवेशके विप्लवसे उसकी मानसिकतामें एक नरक रचता जाता है। नरककी इस दृष्टिमें उसका समझौतावादी मुछौटा भी नाकाम हो जाता है। उसकी आंतरिक ऊर्जा और अपनी विशिष्टता समझौता करनेकी अपेक्षा उसे प्रति-रोधके लिए उकसाती है। उसमें इस बातको लेकर क्षोभ और तिलमिलाहट है कि "लोग खुद यंत्रणा और नरक भोग रहेथे/पर उससे निकलकर बाहर आनेके लिए/तैयार नहीं थे" और फिरभी नितांत सांस्कृतिक अधःपतनकी दशा में भी "अपनी स्थितिको/एक सकारा-त्मक उपलब्धिके रूपमें स्वीकार" कर रहेथे।

ऐसी विषम स्थितियोंसे गुजरते और स्वप्नभरे अतीतका स्मरण करते वह एक दिन लेखकों और कवियों की दुनियांमें पहुंचकर, उन कृतियोंके परिवेशमें और उनके पात्रोंके साथ समय बिताते हुए इस कटु सत्यका अनुभव करता है कि सिर्फ "रचनाओंमें आदमी बचा था/आदमीका नीड़ वहां था/उसके सपने/उसकी संघर्ष-शीलता बचीथी" इसी संसारमें उसे एकमात्र शरणस्थल मिला, परन्तु यहांभी बाह्य यथार्थ और सामाजिक परिवेशके षड्यंत्र, यातना, हिंसा और अपराधका एक ऐसा जगत् था जिसके दबावों और प्रवंचनाओंसे घिरकर वह एकदम अकेला, बाहर-भीतर अकेला पड़ गया, इस अकेलेपनके क्षणमें भी उसकी ऊर्जा नहीं मरी। अपने परिवेशका और खुद अपना या अपने खुदका अतिक्रमण करके अपनेको पुनर्निर्मित करनेकी संकल्प-भावनासे उसे जगाये रखा : "अपनेमें ज्वालामुखी धधकाकर/एक ज्योतिर्मय पुरुषकी भूमिकामें अवतरित होऊंगा"। अपने अकेलेपनमें इस पुनर्निर्माणकी सार्थ-



कतापर अधिक विश्वास न करते हुए वह समाज और परिवेशके बीचही अपनी प्रासंगिकता स्वीकार करते हुए इस निष्कर्षपर पहुँचता है कि :

“अपने वैयक्तिकको/समाज और परिवेशसे अलग-थलग रखकर/जारी नहीं रखा जा सकता/अतः मुझे अपनेको/समाज और परिवेशके बीच/प्रासंगिक बनाना होगा।/सापेक्षिक स्वायत्तता ही/व्यावहारिक एवं सार्थक होगी/इस दिशामें मुझे अपनेको विकसितकर/रचनात्मक बनाना होगा।”

श्री द्विवेदी स्पष्टतः व्यक्तिवादी दृष्टिकोणको एक नकारात्मक दृष्टिकोण मानते हैं और उसके विपरीत समाजवादी सापेक्षिक स्वायत्तताकी प्रगतिशीलताका पक्ष मानकर ‘आत्म-केन्द्रित और आत्मरतिग्रस्त जीवन इकाइयोंमें परिवर्तनकी आवश्यकता’ तथा ‘प्रगतिशील सेतुओं’के निर्माणपर बल देते हैं। एक रचनाकारके नाते वे ‘कटुता और कड़ुआहटको भूलकर/सबके प्रति प्रेम और विश्वाससे भरकर’ लोगोंके पास जाने और रचनात्मक पक्षसे उन्हें परिचित कराने, उन्हें आन्दोलित करने, झकझोरनेको अपना कर्तव्य मानते हैं और विश्वास करते हैं कि इसके ‘बड़े सकारात्मक परिणाम आ सकते हैं।”

श्री द्विवेदीकी बेचैनी यह है कि वे समाजमें रचनात्मक कुछ करना चाहते हैं, पर हर ओरसे धोखाधड़ी और मूल्यहीनता उझककर आड़े आ जाती है। चूँकि इन स्थितियोंसे वे समझौता नहीं कर पाते, इसलिए वितृष्णा और वंचनाओंके मिलन-विदुपर हतचित्त खड़े रह जाते हैं, कुछ सोच नहीं पाते। पर उनके अन्दर साँस लेता यह विश्वास भी तो नहीं मरता कि “मानवीय संवेदनाओंसे युक्त होकर/एक अभिनव परिवेश रच सकते” थे।

“अपनेसे बाहर झांकनेके द्वार” बन्द कर चुके और वस्तु-पूजामें लगे हुए “लोग ड्राइंगरूममें क्रांति”

ला रहे हों, “वस्तुएं आदमीको भोग रही हों”, कुछ लोगोंके सिरोंपर चाकू-छुरियां-रिवाल्वर-स्टेनगन आदि उगी हुई” हो, तब जो असंतुलन पैदा होता है वह मनुष्यको निरी असंगत स्थितिमें लाकर उसे टेबल, कुर्सी, शेविंग मशीन, स्कूटर, कुकर, सिलाईकी मशीन, खाली बोतल, अबबार या कपके उपभोग्य वस्तु-आकारमें परिवर्तित कर देता है। दूसरोंके उपयोगकी वस्तु होने से अधिक उसकी कुछभी सत्ता नहीं रह जाती। चेतना-पुंजके रूपमें उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं रहता।

मनुष्यके अस्तित्वका संकट तो तबभी बना रहता है बल्कि कुछ गहराही हो जाता है जब वह उस अस्तित्वको बचानेके लिए किसी खेमेसे जूड़नेको अस्वीकारकर देता है। अंतरात्माकी आवाज यहां आकर बिल्कुल निरर्थक हो जाती है। और अन्ततः एक ऐसा क्षण आता है जब सारी संभावनाओंको निरर्थक करके मनुष्यकी मानसिकता निगेटिव होकर रह जाती है और उसका अस्तित्व एक तमाशा बनकरही नहीं रह जाता उसे यह भी प्रतीति कराकर छोड़ता है कि वह सिर्फ जूलाजी था, एक माइनस जूलाजी”। कविताका अंत इसी नकारात्मकताकी अनुभूतिके साथ होता है। पर क्या यही नकारात्मकता इस काव्यकी उपलब्धि है? यही रचयिताको अभीष्ट है क्या? हो सकता था, यदि त्रास-दियोंका यही अभीष्ट हुआ करता। त्रासदी हो, पर है तो संघर्ष-कथाही, और परिणाममें हारकरभी त्रासदी का नायक अपनी महत्त्वाकांक्षा, अपनी अनमित ऊर्जा-शक्ति और अपनी दृढ़तासे सहृदयको प्रभावित करता है ‘नकारात्मक’ भी अपने अंकमें जिस सकारात्मकताकी नैरंतर्यके साथ पाल रहा है, विजय-घोष उसका भलेही न गूंजता रहा हो, जीवन्त संघर्षमें दृढ़ खड़े रहनेका बल वह अवश्य देता है, वैसी कामना अवश्य जगाता है। और इस काव्यकी सच्ची परिणति है, यही उपलब्धि भी। □

### ‘प्रकर’ : विज्ञापन-दरें

सामान्य	पूरा पृष्ठ : १०००.०० रु.	आवरण पृष्ठ दो और तीन	१५००.०० रु.
„	आधा पृष्ठ : ५५०.०० रु.	आवरण पृष्ठ चार	२०००.०० रु.
„	चौथाई पृष्ठ : ३००.०० रु.	अन्तिम पृष्ठपर अतिरिक्त रंग	३० प्रतिशत

स्वाधीनता दिवसके अवसरपर प्रकाश्य विशेषांकके लिए आदेशके साथ राशि अग्रिम भेजें।

‘प्रकर’, ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.



## देड़की छाया दूर है?

कवि : अजयकुमार सिंह

समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

भारतीय ज्ञानपीठने 'नये हस्ताक्षर' शृंखलासे हिन्दीके उदीयमान कवियोंकी कृतियोंके प्रकाशनकी योजनाको कार्यान्वित करना शुरू किया है। इसी शृंखलामें उसने अजयकुमार सिंहकी ४६ कविताओंका प्रथम संकलन प्रकाशित किया है।

इन कविताओंमें कविने परिवेश और परिस्थितियोंके एक व्यापक वृत्तके केन्द्रमें स्वयंको बिठाकर उनके साथ अपने सम्बन्धोंको आवाज दी है। जानपद परिपक्वके प्रति कविका लगाव कविताओंमें विशेष रूपसे प्रकट हुआ है। शहरी वर्गबोध अथवा सामाजिक राजनीतिक विचारकी अपेक्षा कविताएं सर्व-साधारण जनोकी सन्निकटतामें स्वयंके संवेदनोंका व्यक्त करती गयी हैं। सृजनात्मकताको अपने व्यावसायिक कार्य-क्षेत्र के ठूठ और निर्मम बीहड़से बचा ले जाना उनकी पलायन वृत्ति नहीं अपितु विशिष्टता बनकर उभरी है। प्रकृतिके प्रति कविताओंमें अबोध किशोर व्यक्तिके मनकी जैसी भावुकता है। आकाश, जल, अंधेरा, प्रकाश, हवा, वादल, चांद, धूप, सन्नाटा, छाया, अंधड़, लहर, आदि प्राकृतिक तत्त्वोंको उसने विविध रंगों, रूपोंका कविताओंमें प्रयोग किया है। बाह्य प्रकृतिके अचंचितकर देनेवाले रूपोंसे अभिभूत होकर जिज्ञासाएं हैं। अपने संलापोंमें उनको भागीदार बनाया है और उनसे आत्मालाप किये हैं। अजयकुमारका कवि प्रश्नाकुलित होता है तो प्रकृतिमें आता है। मर्माहत होता है तो भी प्रकृतिके बीच जाता है। उसकी विराट् सामर्थ्य की अनुभूति लेकर अपने भीतरकी शक्तिको टटोलता है। अपनी अक्षमताओंको कूतता है। एकाकी सपाट निराकारितामें स्मृति-बिम्बोंके माध्यमसे अपनेही अतीत की सहचर प्रकृतिको वर्तमानमें लाता है और समाधान ढोता है। सहज रूपमें सर्वत्र सुलभ और सदा उपस्थित प्रकृतिके शब्दोंके कैमरेसे खींचे गये काव्य-चित्रों से यह संकलन अलबम सजा हुआ है।

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली। पृष्ठ : ७८; डिमा. ६१; मूल्य : ३८.०० रु.।

कविताओंमें खबीले पानीसे भरे अस्थिर खेत हैं जिनमें चांद-सितारे झिलमिलाते हैं तो चिलचिलाती धूपभी है जिसमें देहपर उभरी घमौरियोंके दर्दको अनुभव करती व्यथा है। किरनें हैं पर वे मजबूरीवश देहरीपर सिर टेके हुए हैं। शाम है तो पछुवाके झोंकोंके इंगितोंसे किसीको बुलाती हुई। वर्षाकी झड़ीमें खेत की मेड़ बांधना कृषक है तो बूढ़े ठठेरेकी अनाहद सांस भरती धोकनी भी। लैडस्केपोंके सभी क्लोजअपोंमें वह अपनी और दीन-दुनियाँकी हाल-बेहालीको प्रतिबिंबित करना चाहता है। जीवन-मूल्योंमें आयी गिरावटों का कविको बोध है। प्रतिज्ञाओं और प्रतिवद्धताओंके टूटनेकी खिन्ता है। वचनबद्धताओंसे मुक्तनेकी विषण्णता है। ईमानमें आयी दरारोंका दुःख है। स्वार्थ और पलायनके मलजलों पर सधे जीवनके प्रतीयमान और तात्कालिक लाभ लेनेकी प्रवृत्तिपर पछतावा है।

अजयकुमारकी कल्पनाका अपना आकाश है। उसमें वह जब चाहता है पतंगेकी भांति पंख फड़फड़ाकर उड़ने लगता है। अजयकुमारकी स्मृतियां हंस-बलाका जैसी आकर्षक हैं।

संग्रहकी कविताएं किसी सिद्ध शिल्पकी अनुगामिनी नहीं हैं। वे अनेक 'रूप' लिये हुए हैं। जीवनके सहज विश्वासी पक्षकी पकड़ और दैनिक जीवनके स्तरपर संकट झेलते जन-जनसे कुछ दूर और कुछ ऊंचेमें खड़े होकर निरपेक्ष दृष्टिसे यथार्थके विविध रूपोंको देखते रहनेके सुभीतेने कविमें नयी सम्भावनाएं भरी हैं। हिन्दीकी संस्कृतिमें दीक्षित प्रबुद्ध जनोकी समकालिक कविताओंमें जो बौखलाहट व कड़ुवा व्यंग्य दिखायी पड़ता है वह यहाँ नहीं है। यहाँ जीवनके स्तर की तिक्तता मानो अपने भीतर समाधान ढूँढ़नेमें लगी हुई है। हमें आशा करनी चाहिये कि वह खोज मानवीयताके अधिक गहरे स्तरोंमें उतरनेमें सफल होगी और कविके 'दीपक' का संकल्प हमें उत्तरोत्तर आश्वस्त करता जायेगा कि—

चाहे कितने ही अन्धड़ आयें

अपने शरीरकी

अंतिम तैल बूंदके

अशेष होनेतक

जलता रहूँगा मैं

अपनी इसी मठियामें

आलोक भरनेको



लड़नेको

मिटनेको

सूरजसे सिलनेको □

**गंध ज्वार?**

कवि : रामइकबाल सिंह 'राकेश,'

समीक्षक : वेदप्रकाश अमिताभ

पर्याप्त समयसे कविता लिख रहे राम इकबाल सिंह 'राकेश' का नया संग्रह 'गंधज्वार' एक अलग प्रकारकी कृति है। न तो इसमें विक्षोभ, असंतोष और व्यवस्था-विरोधकी संवेदना कहीं नजर आती है और न यह भाषिक रचावके स्तरपर कहींभी समकालीन कविताके मुहावरेके मेलमें। कुछ कविताओंके शीर्षक उनकी अन्तर्वस्तुको व्यक्त करनेमें समर्थ हैं। 'सिद्ध-योगी सर्वकामवर, कामजित', 'जिस क्षण लेता जन्म सूक्ष्ममन', 'अन्तर्यामी सूत्र चिन्तन' 'यह अनन्त भवविटप चिरन्तन' आदि कविताओंमें कविका दार्शनिक आध्यात्मिक झुकाव स्पष्ट है और प्रायः भारतीय दर्शनके कतिपय सूत्रोंको पद्यात्मक रूप दिया गया है। उदाहरणके लिए ये पंक्तियाँ—

'इदमित्थं' से परे अलक्षित

नित्य सर्वगत नित्य अधिष्ठित

महत् और अणुमें अन्तर्हित

सर्वान्तरका बन आयतन (पृ. ७०)

संग्रहकी 'हृदय रागका सागर', 'रातका पिछला पहर', 'आ गया मधुमास', 'शारदी रजनी' आदि अनेक कविताओंमें कविकी भावुकतासे सीधा साक्षात् होता है। 'रातका पिछला पहर' में छायावादी भावबोध झलकता है—'सुनता तुम्हारेही अन्तरकी धड़कनको / वीर लगी घनी अमराइयोंमें / मद प्रमुदित कोकिलका कल निनाद— / करता प्रवेश जब मनके अन्तरंगमें (पृ. ७)। प्रकृति रागकी संयत अभिव्यक्ति 'आ गया मधुमास' कवितामें द्रष्टव्य है। प्रकृतिका शृंगार होने पर उन्मादके आगनेकी अनुभूतिको कविने विभोर होकर व्यक्त किया है। प्रकृतिका मानवीकरण करते

हुए कविने लिखा—

चित्रकानना प्रकृति सहज उत्फुल्लित  
बरसाती वारुणी प्राणसे प्लावित

उड़ा गंधवह रहा कुसुमका केसर (पृ. ६)

संग्रहकी 'काल' कवितापर पंतके 'परिवर्तन' की छाप है। कालके भयावह रूपको प्रदर्शित करनेमें कवि सफल हुआ है। सुमित्रानन्दन पन्तने भयावहताको 'वासुकी' के प्रतीकके माध्यमसे गहराया था, श्री राकेशने 'तक्षक' का प्रतीक लिया है—'पड़े हुए लोकके गलेमें तक्षक बन'। काली, भुवन भास्कर, राम, मैथिली आदिके स्तवनके रूपमें लिखी गयीं कविताओंमें कविकी आस्था मुखर है। इन कविताओंकी विशेषता यह है कि इनके माध्यमसे अन्याय, पातक, अधर्म आदिके विरोधकी चेतना जगायी गयी है। राम इसलिए प्रणम्य हैं कि उनका आदर्श 'जन युगके पशु-मनको गति पथ प्रदान' करता है और कालीकी महिमा इस बातमें है कि उनका त्रिशूल दारुण दुःखभञ्जन और भव-भयहरण है। गंगा 'कराल कल-काल—काल संहारिणी' होनेके कारण पूज्य हैं। महा-भारतके अनुशासन पर्वके एक उपाख्यानपर आधारित 'कृतज्ञ तोता' में भी सकारात्मक मूल्य दृष्टि है। इस संग्रहसे स्पष्ट है कि पुराख्यान और मिथकीय चरित्रका आश्रय लेकर कविने मानवीय मूल्योंके महत्त्वकी रक्षा की है। इन कविताओंकी सबसे बड़ी सीमा इनकी भाषा है। हरिऔधने 'राकेन्दु बिम्बानना क्रीड़ा कला पुत्तली' जैसी भाषा द्विवेदीयुगमें लिखी थी। लेकिन १९-६० ई. में प्रकाशित कविता संग्रहमें 'रेखाबिन्दु-वर्तना का अलंकरण उन्मादन', सर्वभूतसमुच्छेद आदि मध्य अन्त रहित जैसी भाषाका प्रयोग पाठकोंके लिए प्रीतिकर और संप्रेषणीय नहीं कहा जा सकता। इस संग्रहसे यह स्पष्ट अवश्य हो जाता है कि श्री राकेशकी कविता यात्रा अभी जारी है, न तो उन्होंने कविताको छोड़ा है, न कविता उन्हें छोड़ गयी है। □

**भारतेन्दु पदावली?**

सम्पादक : सत्यनारायण मिश्र

समीक्षक : डॉ. रामानन्द शर्मा

'भारतेन्दु-पदावली' भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके लगभग

१. प्रका. : नागार्जुन पब्लिकेशन्स, हैदराबाद (ओ. प्रदेश)। पृष्ठ : ८०; डिमा. ६०; मूल : ४०.०० रु.।

१. प्रका. : जीवन प्रभात प्रकाशन, गोरगांव, मुम्बई-४०००६३। पृष्ठ : १४६; डिमा. ६१; मूल : ४०.०० रु.।



५०० शृंगारिक पदोंका संग्रह है। संग्रहके मूलमें सम्पादक की यह दृष्टि रही है : “अलौकिक व्यक्तित्व और कृतित्वके धनी भारतेन्दु बाबूके विभिन्न रूपोंपर कई ग्रन्थ व शोध प्रबन्ध निकल चुके हैं। उनके कवि, नाटककार, इतिहासकार, निबन्धकार, पत्रकार आदि रूप तो उजागर हुए हैं, पर उन्हें भक्त-कविके रूपमें अवतक शायदही किसीने सोचा या प्रकट किया हो। हमने इस दिशामें एक शुरुआत की है। उनके लगभग ५०० भक्ति-पदोंको चुनकर इसे ‘भारतेन्दु-पदावली’ नाम दिया है।” उन्होंने मुखपृष्ठपर भी इसे ‘मधुरा भक्तिमें संयोग-शृंगारके सर्वश्रेष्ठ भारतीय कवि भारतेन्दु बाबूके चुने हुए भक्ति-पदोंका निरूपम संग्रह बताया है। प्रस्तुत कृतिसे सम्पादक महोदयकी स्थापना की पुष्टि नहीं होती। भारतेन्दु-ग्रन्थावली, जिसके कई संस्करण अवतक प्रकाशित हो चुके हैं, उनके पांच ग्रन्थ—‘प्रेममालिका’, ‘प्रेमाश्रुवर्षण’, ‘प्रेममाधुरी’, ‘प्रेमतरंग’ और ‘प्रेमालाप’ का यथावत् प्रकाशन कर दिया गया है। अच्छा होता, यदि सम्पादक महोदय उनके समग्र काव्यसे भक्तिपरक पदोंका चयन करके, उनका विषयानुसार सम्पादन करते।

भारतेन्दु बाबूको मधुरा भक्तिके कविके रूपमें प्रतिष्ठित करनेका प्रयास निश्चयही नया है। बहुत सम्भव है कि उनके बहुमुखी व्यक्तित्वके कारण उनका भक्त-कविका रूप प्रकट न हो पाया हो पर मेरी धारणा है कि राधाकृष्णको लेकर संयोग अथवा वियोगके शृंगारिक छन्द लिखना, भलेही उनमें अश्लीलता, कामुकता या ऐन्द्रियताकी प्रधानता न हो, ही भक्तके लिए पर्याप्त नहीं है। भक्तसे वैराग्यमय, भगवत्प्रीति, निवृत्तिमार्गी जीवनकी भी अपेक्षा की जाती है। वह गृहस्थ होकर भी इन अपेक्षाओंको पूर्ण कर सकता है। मधुरा भक्तिमें परकीयाभावकी प्रमुखता भलेही हो, परन्तु भक्तके जीवनमें परकीया भावके लिए अवकाश नहीं होता, वह तो ईश्वरके लिए समर्पित होता है। जिस कविका नाम दो बंगाली महिलाओंसे जुड़ा ही न हो, वल्कि उन प्रेमिकाओंके साथ खिचवाये गये चित्रों को सार्वजनिक रूपसे प्रदर्शित या महिमामण्डितभी किया जाता रहा हो, उसे सूरदास और मोराबाईकी पंक्ति में बिठानेके लिए बहुत सोचना होगा। राधाकृष्णको लेकर कीर्तन लिखनेसे व्यक्ति कवि तो हो सकता है, पर भक्त नहीं। यदि ऐसाही मान लिया जाये तो रीति-

कालके अनेक कवि मधुरा भक्तिके श्रेष्ठ रचनाकार बन जायेंगे।

श्री अनन्तकुमार पाषाणने ‘मधुरा भक्तिमें संयोग-शृंगारके सर्वश्रेष्ठ भारतीय’ शीर्षकसे बारह पृष्ठकी भूमिका दी है। यदि यहाँ मधुरा भक्तिके स्वरूप, विकास तथा प्रमुख भक्तकवियोंका प्रवृत्तिगत विवेचन देते हुए उनकी भारतेन्दुजीसे तुलना की जाती तो कदाचित् विषय एगं स्थापना अधिक पुष्ट एवं ग्राह्य होती, पर यहाँ भी उनकी सर्वोत्कृष्टताका ही स्तवन सर्वत्र मिलता है। विद्वान् भूमिका लेखकने बिना सम्यक् विवेचन-विश्लेषण के ही भारतेन्दुजीकी सर्वोत्कृष्टताका निर्णय ले लिया है।

वैसे पुस्तकने एक नया विचार सामने रखा है जो नितान्त मौलिक एवं विचारोत्तेजक है। आशा है कि भारतेन्दुके अध्येता इस नवीन धारणापर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे और इस विचारमन्थनसे उनके काव्यालोचनको भी नयी दिशा मिलेगी। सम्पादक साधुवाद के पात्र है कि उन्होंने एक नवीन चिन्तन-दृष्टि दी है। यह अवश्यही सम्यक् विवेचन-विश्लेषण साहित्य शोध की दृष्टिसे अधिक श्रेयस्कर होता है। □

## ‘पुरस्कृत भारतीय साहित्य’ विशेषांक

(अवतक प्रकाशित अंक)

प्रकाशन वर्ष	मूल्य
नवम्बर ८३	२०.००
नवम्बर ८४	२०.००
अगस्त ८५	२०.००
नवम्बर ८६	३०.००
नवम्बर ८७	३०.००
नवम्बर ८८	३०.००
नवम्बर ८९	३५.००
नवम्बर ९०	३५.००
नवम्बर ९१	३५.००
अगस्त ९२	४०.००

### अन्य

भारतीय साहित्य : २५ वर्ष	४०.००
अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य	४०.००
सभी अंक एक साथ मंगानेपर	२७५.००
राशि अग्रिम प्राप्त होनेपर डाकव्ययकी छूट	

‘प्रकर’, ए-८/४२, राणाप्रताप बाग, दिल्ली-७



## उपन्यास

### ढाई घर?

उपन्यासकार : गिरिराज किशोर

समीक्षक : डॉ. भगीरथ बड़ोले

‘ढाई घर’ श्री गिरिराज किशोरकी नवीन औपन्यासिक कृति है, जिसमें उन्होंने अपने पूर्व उपन्यासोंकी भांति युग परिवर्तनके साथ-साथ आये मानवीय रिश्तों के बदलावकी जाँच-पड़ताल करते हुए प्राचीन तथा नवीन जीवन मूल्योंके संघर्षको अभिव्यंजित किया है। एक सफल कहानीकार, नाटककार तथा निबंधकारके रूपमें ख्यात श्री गिरिराज किशोर अपने उपन्यास-लेखन से अधिक जाने गये हैं। प्रस्तुत उपन्याससे पूर्व उनके ‘लोग’, ‘चिड़ियाघर’, ‘जुगलबंदी’ आदि उपन्यास विशेष चर्चित रहे हैं तथा इसी कड़ीमें प्रस्तुत कृतिभी प्रस्तुत हुई है।

वस्तुतः श्री गिरिराज किशोर अपने लेखन द्वारा सामाजिक चेतनाको महत्त्व देनेवाले रचनाकार हैं। इसीलिए वे मानते हैं कि उपन्यास मनोरंजनका माध्यम नहीं, बल्कि विगत, वर्तमान और आगतमें बननेवाले मानवीय संबंधोंको व्याख्यायित करनेवाला एक ‘समाज-शास्त्रीय अध्ययन’ है। इस प्रकारके चित्रणसे पाठकोंपर दबाव पड़ता है तथा जीवनके प्रति वैज्ञानिक एवं अद्वैतज्ञानिक दृष्टिकोण बननेमें सहायता मिलती है। इसीके साथ इन रचनात्मक संदर्भोंके माध्यमसे लेखक अपने दायित्वका निर्वाह भी करता है। अतः पूर्व कृतियोंकी भांति प्रस्तुत कृति ‘ढाई घर’ की कथा अंग्रेजी शासन कालसे लेकर स्वतन्त्रता मिलनेके बाद तक की ‘एक लम्बी उठान वाली कथा’ है, जिसमें एक समाजसे दूसरे समाजमें बदलते संबंधोंका रेखांकन खूबीके साथ हुआ है।

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, १८, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-३। पृष्ठ : ४००; डिमा. ६१; मूल्य : ८०.०० रु.।

‘प्रकर’—जुलाई ६२—२८

प्रस्तुत कृतिके रचनात्मक संदर्भोंका स्पष्टीकरण देते हुए श्री गिरिराज किशोरने बताया है कि यह उपन्यास सहृदय पाठकों द्वारा ‘जुगलबंदी’ जैसा उपन्यास लिखने के आग्रहपर लिखा गया है। इस आग्रहपर विचार करते हुए लेखकको लगा कि उस वातावरण और समाजके अभी ऐसे बहुतसे पक्ष शेष हैं, जिनका नये बनते या बने समाजको समझनेके लिए सामने आना आवश्यक है। वे सभी पक्ष लेखकके स्मृति कोषके अंश थे। अतः उन स्मृतियोंके सहारे लेखकने उस जीवनको पुनः जीना प्रारंभ किया, ताकि नये-पुराने समाजकी पहचानके लिए अपने भीतर जारी रचनात्मक दबावसे मुक्ति पा सकें। लेखक यह मानता है कि एक समय और एक समाजमें जो कुछ बदलता है, वह अगले समाजमें बनने वाले सम्बन्धोंका आधार होता है। उन्हें बदलते सम्बन्ध आकर्षित करते रहे हैं, अतः उनका ‘गायक’ बने रहनेकी इच्छा बलवती होती रही। इस प्रकार खुले दिमागसे रचनात्मक चुनौतीका सामना करते हुए लेखकने प्रस्तुत कृतिमें प्रथमतः प्राचीन जीवन मान्यताओंका चित्रण किया है तथा द्वितीयतः नयी सामाजिक शक्तियोंके उभार को अभिव्यंजित करते हुए बदलते मूल्योंको उकेरा है। सामाजिकताके बढ़ते चरण और परिवर्तित मूल्योंकी जाँच पड़ताल प्रस्तुत औपन्यासिक कृतिका प्रमुख प्रतिपाद्य है।

‘ढाई घर’ की कथा स्वतन्त्रताके पूर्व तथा पश्चात् राय परिवारके ही दो भिन्न बिन्दुओंके बीचकी कड़ी बने हुए भास्करराय द्वारा आत्मकथात्मक-शैलीमें कही गयी है। यह कथानायक जहाँ एक ओर घटित घटनाओंका रोचक रीतिसे ब्योरा देते हैं, वहाँ उनका तटस्थ दृष्टिसे विश्लेषणभी प्रस्तुत करते हैं। राय परिवारका जीवन सामंती प्रवृत्तियोंका प्रतीक बनकर सामने आता है। विविध कारणोंसे सम्बन्धोंमें आये बदलाव इस जीवन को दुर्दशाग्रस्त कर देते हैं फिर भी राय परिवार अपनी



उसक नहीं छोड़ पाता। भारतकी स्वतन्त्रताके बाद आये अभूतपूर्व परिवर्तन इस जमींदार परिवारको क्रमशः खेतिहर तथा नौकरी-पेशा बना देता है। इस सामन्ती परिवारके स्थानपर देशमें अब जो नया वर्ग उभरता है, उसकी दो श्रेणियाँ हैं। प्रथम श्रेणी उस नेतृ वर्गकी है जो बदली वेशभूषामें सामन्ती अथवा अंग्रेजी जीवन पद्धतिको अपना लेती है और दूसरी श्रेणी दर-दरकी ठोकर खानेवाले उस युवा वर्गकी है जो इस मृत्युहीनताके युगमें अपने भीतर असंतोषवाले क्रांतिकी राहपर गतिशील होने लगता है। इस प्रकार इस उपन्यासकी कथा एक ओर पराधीनताके युगमें उत्पन्न व्यवस्था तथा उभरती नयी जागरण-लहरोंका चित्र प्रस्तुत करती है, तो दूसरी ओर स्वतन्त्रताके बाद जन्मे नये मृत्युहीन सन्दर्भों तथा असंतोषके साथ मात्र प्रश्न-लपेटे-युवा-विद्रोहके धरातलका भी संस्पर्श करती है। अनेक घटनाओं द्वारा चित्रित जीवनके अनेक पहलुओंको प्रस्तुत करते हुए कथाकारने इसी बीच सम्बन्धोंके तेजीसे बदलते या बदलते जा रहे क्रम-सन्दर्भों को भी युक्तियुक्ततासे निरूपित किया है।

जीवनके विविध पक्षोंको प्रस्तुत करते हुए लेखक ने सम्बन्धित चरित्रोंको जीवन्त आकार दिये हैं। 'ढाई घर' की कथाके प्रमुख राय परिवारके मुखिया हैं बड़े राय श्री हरी राय, जिन्हें आद्यन्त अपनी और अपने वंशकी प्रतिष्ठाका ध्यान बना रहता है। वे पूरे परिवार को अपने ढर्रेसे चलाना चाहते हैं, किन्तु यह सम्भव नहीं हो पाता। अंग्रेजी शासन कालके पैसे और प्रतिष्ठाके बतेपर वे भास्करको हत्याके आरोपसे मुक्त करवा लेते हैं तथा स्वतन्त्रताके बादभी इसी रीतिसे वे वीर बहादुरको निरपराध सिद्ध करवा लेते हैं। घोड़े उनकी सामन्ती शानके प्रतीक थे, जिन्हें वे सर्वाधिक महत्त्व देते रहे। किन्तु जब अंग्रेज कलक्टर उनके प्यारे सफेद घोड़ेकी हत्या करवा देते हैं और फिर जब पल-पल अपमानके अनेक प्रसंग जुटने लगते हैं तो वे अपने को टूटनेसे बचा नहीं पाते। राष्ट्रीय आन्दोलनमें इस जमानमें कभी वे छोटे रायको उसमें सम्मिलित होनेसे रोकते हैं तो कभी उन्हें अंग्रेजोंका पक्षपातपूर्ण व्यवहार असह्य लगता है। स्वतन्त्रताके बाद बहुत कुछ बदल जाता है। दुनियाँका विपरीत आचरण तथा बेटे अरुण एवं भाइयोंका बदला हुआ व्यवहार जब उनका हृदय तोड़ देता है, तो वे स्थिर नहीं रह पाते।

यद्यपि उनमें मानवीयताकी भावना थी, तथापि युगके बदलते दौरमें अपने दुर्दर्शाग्रस्त वंशको देखते हुए अंततः दुःखी अवस्थामें ही उनकी मृत्यु हो जाती है।

बड़े रायके दूसरे भाई कृष्णराय नितान्त स्वार्थी, अहंकारी और अमानुषिक प्रवृत्तिके हैं। पत्नीपर बांझ होनेका मिथ्या दोष लगाकर उसकी मौतके बाद वे चुपचाप अन्य जातिकी स्त्रीसे विवाह कर लेते हैं। वे न अपने घर-परिवार या वंशके प्रति ईमानदार रह पाते हैं, न अपनी नौकरी या जमींदारीके चलते हुए अन्य लोगोंके प्रति। हाँ, तीसरे भाई राघवराय अवश्यही प्रारम्भमें नये प्रगतिशील तथा उदार विचारोंके समर्थक दिखायी देते हैं। सन्तान न होनेपर भी वे दुःखी नहीं हैं और बड़े रायकी दूसरी सन्तान अरुणको गोद ले लेते हैं। पर इसके बाद अरुणके पक्षमें स्वयंको सीमित बनाकर बड़े रायके प्रति असहयोगका रुख अपना लेते हैं। इसी क्रममें दो और चरित्र आकर्षित करते हैं—एक किशन बाबूका और दूसरा रहमतुल्लाका। किशन बाबूका प्रारम्भिक रूप विलासीका रहा, किन्तु गले पड़ी जायदादके चले जानेके बाद उनका वीतरागी तथा फक्कड़ाना स्वरूप उनके चरित्रको जबर्दस्त उठान ही नहीं देता, अपितु सहानुभूतिभी जगा जाता है। रहमतुल्ला बड़े रायके प्रति समर्पित है। अंग्रेजोंकी नौकरी चले जानेपर बड़े रायका संरक्षण उसे बल देता है। अपनी मेहनतपर भरोसा करनेवाला यह पात्र बहुत स्वाभिमानी मनुष्य है। एक हिन्दू वेश्यासे विवाहकर वह जहाँ संकीर्णताकी धारासे दूर है, वहीं क्रांतिकारी जगनबाबूको अपने घर आश्रय देकर राष्ट्रीयताकी धारा से भी जुड़ा हुआ है।

भास्कर बड़े रायका पुत्र है। राय कुलके गर्वको सहेजे यह पात्र अहंकारके कारण न पढ़ पाता, न अनुगामी होनेके कारण कुछ बन पाता। इसके तीन विवाह हुए—पहली पत्नी भयंकर बीमार मिली, दूसरी पत्नी कला एक पुत्री सोना तथा पुत्र रघुबर देकर बिदा हो जाती है। तीसरी पत्नी सारंगा कम उम्रकी कम अकल स्त्री थी। जहाँ कला क्रांतिकारी जगनकी बहिन होनेसे सदैव बंधनकी विरोधिनी तथा स्त्री-चेतनाकी समर्थक थी, वहीं सारंगा संकुचित सोचके कारण परिवारमें अनेक समस्याएं खड़ी करती रहती हैं। इन सभी प्रपंचोंके बीच जाकर भास्करका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व निमित्त नहीं हो पाता। वह न तो बड़े रायके ढर्रे पर चलकर सामन्ती-प्रकर'—आवण' २०४६—२६



मूल्योंको ठीकसे सम्हाल पाता है, न नये मूल्योंकी आँधीमें अपने परिवारपर अंकुश लगानेमें समर्थ होता है। वह पूर्णतः विवश, असहाय और कमजोर प्रकृतिका पात्र है।

बड़े रायकी पुत्री रानीका जीवन समुरालमें दुःख-पूर्ण बीतता है और लगभग यही स्थिति भास्करकी पुत्री सोनाकी भी होती है। पर सोना साहसके साथ विपरीत स्थितियोंका सामना करती है। यद्यपि राय कुल की लड़कीका नौकरी करना परिवारवालोंको सहा नहीं, तथापि सोना अपने बूते पढ़-लिखकर अपने पाँवों खड़ी होना अधिक उचित मानती है। भास्करके बड़े पुत्र रघुवरको भी प्रारंभसे ही सामन्ती तौर-तरीके उचित नहीं लगते। प्रगतिशील विचारधाराका यह चिन्तन-शील पात्र अपने मस्तिष्कमें नये युगके नये प्रश्नोंके उत्तर पानेके लिए इधर-उधर भटकता रहता है। स्वतन्त्रता के बाद जगन मामाके बहाने मंत्रियोंके सामन्ती रूप देखकर तथा स्वार्थी प्रवृत्तियोंमें लीन देखकर उसके भीतर विद्रोह फूट पड़ता है। भास्करको भी लगता है कि बड़े राय सामन्त थे, जबकि जगन “आजादीके दीवाने”। किन्तु स्वतन्त्रताके बाद इन दोनों प्रवृत्तियोंमें अद्भुत साम्य हो गया है। फिरभी भास्करको आशा है कि नये क्रान्तिकारी विचारोंवाला रघुवर कभी-न-कभी जकड़ने वाली रस्सियोंको अवश्य तोड़गा और तब जनता प्रजा होनेकी प्रतीतिसे तथा नेता भाग्यविधाता बननेके भ्रमसे मुक्त होंगे। संभवतः यही उपन्यासके गंतव्यका संकेत भी है।

उपन्यासका शीर्षक ‘ढाई घर’ सार्थकताके विविध आयाम प्रदर्शित करता है। लेखक इसका सम्बन्ध शतरंज के घोड़ोंसे जोड़ते हुए बताते हैं कि जीवन जीने के लिए प्रत्येक क्षेत्रमें अच्छी बुरी सभी दिशाओं की ओर—गतिशील होनेको बाध्य होना पड़ता है। बड़े रायने यही किया था और स्वातंत्र्योत्तर उभरते नेतृवर्गकी भी यही पहचान है। किसीका भी मार्ग सीधा, स्पष्ट तथा सुनिश्चित विधानसे नहीं है। इसी-लिए कहीं न्याय एवं अन्य आदर्शात्मक मूल्य काम आते हैं; तो कहीं नितान्त व्यावहारिक घरातलपर इससे इतर मार्गोंपर चलना आवश्यक होता है। मूल्य मर्यादाओंकी दृष्टिसे देखें तो प्रस्तुत कृतिमें एक ओर सामन्ती जीवनके मूल्य सक्रिय हैं, तो दूसरी ओर स्वतन्त्रताके बाद भारतमें आर्या मूल्यहीनताकी प्रवृत्ति

‘प्रकर’—जुलाई ६२—३०

प्रमुखता ग्रहण कर लेती है। इसीके साथ एक उस वर्ग की भी चर्चा है, जो दोनों स्थितियोंसे असंतुष्ट है तथा जिसके अपने मूल्य आधे-अधूरे आकारमें हैं। वैसे प्रस्तुत कृतिमें घोड़ोंकी चर्चाभी अच्छी-खामी हुई है। शक्तिके मानक ये घोड़े कहीं सामन्ती शानके प्रतीक हैं, तो कहीं सारी विसंगतियाँ सहनेवाले मूक समाजकी स्थिति और मनुष्यकी प्रवृत्तिको भी बिम्बित करते हैं। गुलामीकी स्थितियोंसे कहीं ये देशका प्रतीक बन जाते हैं (१८८), तो कहीं ये नयी चेतनाके संवाहक रघुवरसे जुड़ते हैं—जिसे लगाम नहीं, अहसास चाहिये (३५२)। अस्तु। प्रस्तुत कृति शीर्षक अपनी उप-युक्तताके बहुआयामी सन्दर्भ व्यंजित करता है।

वस्तुतः प्रस्तुत कृति ‘ढाई घर’ द्वारा श्री गिरिराज किशोरने स्वतन्त्रतापूर्व तथा बादके समाजकी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि भिन्न-भिन्न स्थितियोंको चित्रित करते हुए उत्पन्न परिवर्तन को चित्रित किया है। सामन्ती शैलीसे प्रजातंत्रकी ओर कदम बढ़ाते समाजकी स्थितिके रेखांकनमें उन्होंने एक ओर स्वतन्त्रतापूर्व, जहाँ परम्पराएं, रूढ़ियाँ और अन्ध-विश्वास अधिक हावी थे, वहाँ स्वतन्त्रताके बाद नेतृ-मूल्यहीन, संस्कारहीन होकर सामन्ती ढर्रेपर ही चल रहा है। इनका पहनावा बदल गया है, किन्तु मानसिकता नहीं बदल पायी। इस क्रममें यह कहना असंगत नहीं होगा कि लेखकने स्वतन्त्रता पूर्वकी प्रवृत्तियोंका चित्रण जितनी विशदता एवं सूक्ष्मतासे किया है, बादकी स्थितियोंको बे उतना गहरा नहीं पाये। यद्यपि राष्ट्रीय आन्दोलन, सांप्रदायिताके संदर्भ, विभाजनका प्रसंग तथा गांधीकी हत्याकी सूचनाएं तथा प्रतिक्रियाएं इसमें निहित अवश्य हैं, तथापि परिवर्तनके कारणोंको प्रभावित करनेवाली स्थितियाँ व्यापकतासे व्यंजित नहीं हो सकीं। इसकी अपेक्षा आर्थिक कारणोंसे मानवीय संबंधोंकी टूटनको अधिक रेखांकित किया गया है।

‘ढाई घर’ श्री गिरिराज किशोरका एक रोचक एवं महत्त्वपूर्ण उपन्यास है तथा हिन्दी उपन्यास-परम्परा में अपनी स्थितिको बनाये रखनेमें समर्थ सिद्ध होता है।



## शेष नमस्कार<sup>१</sup>

[साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत]

बंगला उपन्यासका अनुवाद]

लेखक : सन्तोषकुमार घोष

अनुवादक : अपर्णा टैगोर

समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

“जीवनमें सभी माँ खो जाती हैं, यही नियम है। जानता हूँ, फिर भी जीवनभर क्या उसीलिए, माँके लिए एक शून्यता, एक संताप, एक सतत प्रयोजन-बोध चेतनाको आघात करता रहता है।। यहाँ तक कि अवचेतनको भी ?” (पृ. ३०० अन्तिम पृष्ठ) इसी उद्देश्य से ‘शेष नमस्कार’ समर्पित किया गया है माँको। लेखक प्रथम पुरुषमें ही आद्यन्त माँ, बाबा, दादा सुधीर मामा, नलिनी, मासी, रजनीगंधा, बूला, अविनाश, बाँसी आदिकी कथा कहता जाता है। इस कथामें पर्याप्त विस्तार है, तो संतुलित कसावट भी है। एक शब्दभी पिष्टपेषण या व्यर्थ नहीं लगता, लगता है कि लेखकके अवचेतनमें सारी स्मृतियाँ संजोयी हुई हैं, क्रमबद्ध, काल-क्रमानुसार उसेही लेखक शनैः शनैः खोलता जाता है।

मूलतः कथा एक परिवार (प्रणव, लेखक, माँ, सुधीर मामा, लेखकके एक बड़े भाई) के आजीवन संघर्षकी कथा है। परिस्थितिकी विषमताही उन्हें घेरे रहती है। विषमताओंका केन्द्र बिन्दु उनका जीवन बन गया है। परन्तु बाबा (लेखकके पिता) इसकी परवाह कहाँ करते हैं—नाटक लिखते हैं। नाटक करते हैं और देशहित संघर्षके सिलसिलेमें यायावरी करते हैं। इसी के बीच दादाकी (लेखकके बड़े भाई) मृत्यु हो जाती है, माँपर दादाकी मृत्युका सदमा है, बाबाके बराबर लापता रहनेका गम है। लेखक अपने बाल्यकालसे ही जारूगक है और उसकी अपनी संघर्षकथा भी इसमें जुड़ती चलती है। “एकस्य दुःख स्यन यावदन्तं गच्छाम्यहम् पारमिवाण्वस्य। तावद् द्वितीयं समुपस्थितो मे, छिद्रेष्वनर्थाः बहूनी भवन्ति ॥” जबतक एक दुःखका अंत नहीं होता

१. प्रका. : साहित्य भवन (पा.) लि., ६३ के. पी. कक्कड़ रोड़, इलाहाबाद। पृष्ठ : ३००; डिमा. ६०; मूल्य : ७०.०० रु.।

है, वह अपार समुद्रकी तरह बढ़ताही जाता है, तब दूसरा समुपस्थित हो जाता है। जहाँ एक छेद (दोष) है वहाँ अनेक अनर्थ होने लगते हैं। परिस्थिति तो यहाँ तक आ जाती है कि आती हुई विपत्तियोंका अपना हितभी कारण बन जाता है। दुग्ध-दोहनके समय माताकी जाँघ ही उसके बछड़ेका बंधन बन जाती है। लेखकने इन सारी स्थितियोंसे साक्षात्कार किया है। ईमानदारीसे, जागरूक रहकर। उसकी ईमानदारीका प्रमाण तो यह है कि वह अपना आत्मान्वेषण कर अपनी दुर्बलताओं, सीमाओं, कमियोंपर टिप्पणी करता चलता है। जिस माँके प्रति उसमें अपार श्रद्धा, आस्था और विश्वास है, समय आनेपर उसके दुबले पक्षपर प्रहार करनेसे वह नहीं चूकता। लेखक कृतिके उत्तरार्द्धमें माँ, बाबाके साथ अपनी दूरकी मौसीके पास आश्रय पाता है। कोई चारा नहीं है—मकानका किराया सिरपर चढ़ गया है और तीन दिनोंमें मकान खाली करनेका नोटिस मिला है। वहाँ जाकर सभी लोग कीतदास ही लगते हैं। लेखक मौसीकी पौत्री रजनीगंधा (उर्फ किशमिश) से प्रेम करने लगता है। माँको बुरा लगता है। लेखककी प्रतिक्रिया ध्यातव्य है—

“एक ओर मेरा हाथसे निकल जाना तुम्हें अच्छा नहीं लगता था। दूसरी ओर लालच। मालिककी बेटी से तुम्हारे बेटेका धूलना-मिलना, बुरा क्या था। एक बार हथियानेके बाद तो मौजही थी। इस घरकी हेड नौकरानी (माँ) से एकदम सास बन जानेका मौका। तुमभी लालचमें पड़ गयी माँ और इसीलिए मुझे प्रश्रय देती गयी थीं। मैंने सिर्फ उस मौकेका फायदा उठाया है।” (पृष्ठ २६७)।

इतनाही नहीं लेखक ‘मनुष्य गंध’ से प्रभावित होनेके लिए माँको भी जिम्मेदार ठहराता है। वह क्यों बाबाकी मृत्युपर सुधीर द्वारा ‘हाथ पकड़नेपर कहने लगी है—“तेरी जुवान लड़खड़ा रही है। आँखें लाल हैं। तेरे मुँहसे भभका आ रहा है। यह काहेकी गंध है ?” (पृष्ठ २६७)। लेखक फुफकारते हुए बोल पड़ता है—“बालिग लड़केके मुँहसे किस चीजकी गंध आती है ? दूधकी तो नहीं ही, यह मैं तुम्हें दाबेके साथ कह सकता हूँ।” (पृष्ठ २६७)।

सम्पूर्ण कृति माँके नाम लिखा गया एक पत्र है, प्रथम पत्र। इसका कारण कृतिके प्रारंभमें ही स्पष्ट होने लगता है—“उसके लिए प्रथम पत्र तो माँको ही



लिखना ठीक होगा ना जो मूल है, धात्री है, जिन्होंने उसे लायाथा, धारण कियाथा। जीवनका ऋण, धारण करनेका ऋण। रक्तका, स्तनका, स्नेहका, नीड़ का। घेरकर रखनेका, ढँककर रखनेका, दृष्टिके द्वारा पीछे-पीछे दौड़ते रहनेका...ममतासे, उत्कंठासे, आतंक से अहर्निश केवल एकही चिन्ता 'तुम्हारा कल्याण हो'...।" (पृष्ठ ६)।

माँके प्रति इस ऋणको चुकानेके लिए इस पत्रकी प्रेरणाभी अवचेतनकी किसी सम्मोहक शक्तिने दी है— "मानों कोई जादुगर, अचानक कहींसे आकर खड़ा हो गया और फिर टेबिलके ऊपर पुलिदा फेंक दिया। सम्मोहक दृष्टिसे मुझे बेधते हुए बोला, 'इन्हें सिलसिले-वार ढंगसे सजालो।' (पृ ६७)। रहस्य, रोमांचकी कहानियोंसी उसकी आँखें सदैव। आवाज सदैव, ऐसा कि ठंडमें सिकुड़कर सख्त हो गयाहो, परन्तु अपार सम्मोहन। उसकी सम्मोहन शक्तिही लेखकको पत्रोंको सजाने और प्रकाशित करनेकी प्रेरणा देती है।

लेखक मूर्तिपूजक है। "उसके इष्टदेव अनेक है। वह अनेकोंके साथ—वासनामें, धृष्टतामें, आशामें, हताशा में, आचार और विचारमें, यहांतक कि कृतज्ञतामें भी लिप्त रहाहैं, जितने खिलोने आज प्रतिमाएँ और सुदूर उद्भासमें धुंधली आँखोंसे दिखायी पड़ रहीहैं, उनमें माँ सबसे ऊपर नहीं होगी, तो और कौन होगा?" (पृष्ठ १०)। लेखक अपनी सीमाभी जानताहै। अपना दिवालियापनभी और 'कौन-सा ऋण कब शोध हुआ है और दिवालिया बन जानेके बाद भी क्या कोई किसी का उधार चुका पायाहै?" (पृष्ठ १०)।

मृत्यु (स्वदेश) लेखकको भी आकृष्ट करतीहै। बार-बार अपनी ओर इंगित कर रहीहै। इसलिए वह स्वदेश लौटनेके पहले समस्त सुख-दुःख, आघात-अभिमानके एक-एक खानेमें वह एक-एक पत्र रख जाना चाहताहै। अपनी समस्त अतृप्तिमें वह उसी प्रकार पूर्णाहुति देगा।

कृतिका चरित्र-संसार व्यापक है, बहुधर्मा, विविधता लिये हुए, पर लेखकका कुशल शिल्प सबको बड़ी सूक्ष्मताके साथ उकेरता चलताहै। न केवल उसके बाह्य आवरणमें झाँकताहै, वरन् उसकी अंतर्वृत्तियों का उद्घाटन भी एक मनोवैज्ञानिककी भांति करता चलताहै। जीवन-सत्य बीच-बीचमें स्वयं छलक आताहै माँको भरी जवानियोंमें बुढ़ापेसे गुस्त देखकर लेखककी

टिप्पणी उसके चरित्र तथा जीवन सत्यका समानान्तर गतिसे साक्षात्कार करतीहै— "चेहरेकी नसें तो दुःखके खूनसे भी उबलतीहैं। जो लोग यह सोचकर उछल-कूद मचातेहैं कि उन्होंने दीर्घकालतक यौवनको बाँध लियाहै, वे इस बातको समझ नहीं पातेहैं कि समय तो अंत तक चुकताही जा रहाहै।" (पृ. १४)।

माँके साथ अंधकार-प्रकाशकी लुका-छिपी करता रहताहै लेखक—खीरका कटोरा तो हैही रहने दो। फिरभी ध्यान अचारके मर्तवानकी ओर चला जाताहै। तुम्हारे साथ मेरा यही एक दूसरे स्तरकी अंधेरे-उजाले की लुकाछिपी चल रहीथी।" (पृ. ८२)। किसीभी मनुष्यको लगातार किसी एकही धारणाके साँचेमें फिट नहीं कियाजा सकता। श्रद्धाके पात्रका अचानकही अंधकार पक्ष उजागर होते देखा गयाहै। श्रद्धाभिभूत सिहर उठताहै। जीवनमें यह धूपछाँह चलती रहतीहै। मनुष्य होताहै मूलतः बहुरूपिया। वह अपने तई बहुरूपिया नहीं होता, हम लोग उसे अनेक रूपोंमें देखते हैं। हमारा संबंध तो उसके बाह्यसे ही स्थायी होता है। आंतरिक रूपमें उद्घाटनका कहीं कोई चिरस्थायी प्रबंध है। ज्वार-भाटा, फिर ज्वार। इसी आलोकमें चरित्रोंका उद्घाटन किया गयाहै।

बांसी लड़का होकर भी लड़कीकी तरह जीनेके लिए अभिशप्त है। लेखक कारणोंकी पड़ताल करता है— उसकी एक बहनका हो गया देहान्त। दादीने देखा स्वप्न कि इस बार आयेगी कन्या, आया लड़का बांसी। फिर स्वप्नसे परिचालित अवचेतनमें बैठी लड़की बार-बार आरोपित होने लगी बांसीमें। पर उसका पौरुष मर कहां पायाहै "बांसीके मनका एक कोना प्रबल साहसी है। उसकी वह नकली साज-सज्जा उसके असली मनका प्रतिवाद है।" (पृ. २४०)।

बाबाके उज्ज्वल एवं अंधकार पक्ष दोनोंका साक्षात्कार है। नलिनी-बाबा प्रसंग को लेखकने वांछित अवकाश देकर कुलवधू एवं वारांगनाका भेद तो स्पष्ट कियाही है, नलिनीके साहसकी प्रशंसाभी कीहै। नलिनीके बारेमें माँको बताते हुए लेखकने जिस असत्य का सहारा लिया, वह सहज, स्वाभाविक है।

इसकी भाषा काव्यात्मक है। विव, प्रतीक, रूपकके नये-नये प्रयोग विस्मय विमुग्ध कर देतेहैं। अवतक समुद्रको बाधा-बंधनहीन सदा हास्य-मनोरंजक देताहै। दूध-मलाई-सहजसे दाँत माँजनेपर जैसे



भाग होती है, कुछ वैसाही। आज देखा सफेद नहीं, लालभी है—झागके साथ मानो दांतकी जड़में खून मिल गयाहो।” (पृ. ६८)। व्यंग्यका एक उदाहरण—“जिस भाषामें वह नाटक लिखता है, उसी नाटकके कुछ पन्ने फाड़कर भेज दिया है।” (बाबाका माँके नाम लिखा गया प्रेमभरा पत्र (पृ. १००)। ‘विनिद्र अंधकार रात्रिका नामही शरशय्या है’ (पृ. १०१), पलभर में भरी आँखोंके सामने ही एक बहुतही जाना-पहचाना

सिंह, मानो एक क्षुद्रकाय पर निष्ठुर और फिसलने वाला सांप बनताजा रहा है’ (पृ. १६८), अभाव नामक वह डाकू जो लालची होनेपर भी लंगोठधारी पहलवान था, हम दोनोंको ही खींच-खींचकर लगातार नीचे घसीटतेजा रहाथा’ (पृ. १८२)। ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे। अनुवाद स्तरीय है। आद्यंत कृतिके मूलका स्वाद मिलता है। □

## कहानी

### क्षुधित पाषाण तथा अन्य कहानियाँ

लेखक : रवीन्द्रनाथ ठाकुर

समीक्षक : शलभ

आलोच्य कृति ‘क्षुधित पाषाण तथा अन्य कहानियाँ’ बांग्ला-साहित्यके एक ऐसे युगकी देन है जिसे हम रवीन्द्र-शरत् युग कहते हैं। कहानियाँ उस युगके पुरोधाकी रचनाएँ हैं जो उसके जीवन्त हस्ताक्षरकी छाप हमपर छोड़ती है। ‘क्षुधित पाषाण’ इस लेखककी एक श्रेष्ठ ‘कल्प सृष्टि’ है, एक फैंटेसी है वह। लेखक की नितान्त निजी अनुभूति, जो उसके संवेदनशील अन्तर्मनकी रूपाकृतिकी एक झलक है। भावबोध और कला-दृष्टि—दोनोंही उस युगकी, अपनी समग्रताके साथ जैसे इनमें उभरी है। और क्या इन रचनाओंमें बापेकी संभावनाओंके बीज अवस्थित नहीं हैं? रवीन्द्र-शरत् युगका आरंभ १९०० ई. के आसपास माना जाता रहा है। यह लेखक तो सूक्ष्म और गहरे स्तरपर, व्यापक जीवन-सत्यकी निरंतर खोज करता रहा है। घटना वैचित्र्यके रोमाँसकी एक झलक ‘क्षुधित पाषाण’ में तो मिलती है, पर अन्य कहानियोंमें मनुष्यके अन्त-

र्मनमें गहराते भावोंका चित्रणही इनका लक्ष्य रहा है, जहाँ न किसी असाधारणत्वकी खोज है, न ही घटना-वैचित्र्यके विस्मयपूर्ण आतंककी ही। ये रचनाएँ तो मुख्यतः सामान्य स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्धोंकी जटिलताओं, उनके अन्तर्वासी विश्वासों, भ्रमों और संस्कारोंकी विकृतियोंको उजागर करती हैं। यहाँ बाहरी जगत्की घटनाओंकी वैचित्र्यभरी बहुलताके स्थानपर, अन्तः सम्बन्धों और आभिजात्य, जटिल और गूढ़ चरित्रोंकी गुत्थियोंका कलापूर्ण विश्लेषण और विन्यास मिलेगा।

अपने समसामयिक जीवन-यथार्थ-बोधसे संवलित ही नहीं हैं ये कहानियाँ, अपितु इनमें एक विराट् सामाजिक यथार्थमें जी रहे व्यक्ति-मनमें निहित सत्यका भी रूपायन हुआ है। इन रचनाओंकी केन्द्रीय अनुभूति है ‘प्रेम’ और ‘त्याग’। इस लेखकने तभी तो स्पष्ट किया है कि ‘त्यागका प्रेमके साथ गहरा सम्बन्ध है, ऐसा सम्बन्ध कि यह निश्चय करना कठिन है कि कौन आगे है और कौन पीछे। प्रेमके बिना त्याग नहीं होता और त्यागके बिना प्रेम असम्भव है।’ उस युगका संशय, क्लान्ति, निराशा और मोह तथा आदिम भावावेग इन रचनाओंमें भी विरल कतई नहीं है। इस दृष्टि से क्षुधित पाषाण, मास्टर साहब, हालदारका परिवार, जीवित और मृत, अपरिचित और पात्र और पात्री—सभी अपना रचना-वैशिष्ट्य रखते हैं। यहाँ जीवनानु-

१. प्रका. : सरस्वती विहार, जी. टी. रोड, गहादरा, दिल्ली-११००३२। पृष्ठ : १४२, का. ६१; मूल्य : २०.०० रु.।



भूतिको एक श्रेष्ठ कवि-दृष्टिने उसे निसर्ग रूपमें प्रस्तुत किया है; जिसके अन्तःस्तलमें कहीं मनुष्य-मन की कृष्णा, किसी टीसती हुई बांसुरीकी मीठी धुन-सी कम्पन पैदा करती है। 'क्षुधित पाषाण' का वह 'करा-माती आदमी' शुस्ता नदीके किनारे दूसरे शाह महमूद के ऐशो-आरामके लिए बने, उस सुनसान पड़े महलकी कहानी कह रहा है, जो ढाई सौ वर्षोंके झूलते समयके काले पर्देको, उसकी दृष्टिपर से उठाती है। कदम-कदमपर लहराती, बल खाती वह शुस्ता (स्वच्छ सलिला) चतुर नर्तकी-सी अब भी नाचती है, पर जहां कभी हम्मामके फव्वारेसे गुलाबकी खुशबूसे भरी फुहारें छूटती रहतीं और 'उन जल फुहारोंसे नम एकान्त कमरेमें संगमरमर जड़ी कोमल शिलापर बैठकर, अपने कोमल नंगे पांवोंको तालाबके स्वच्छ पानीमें फँलाये फारस देशकी नव यौवनाएं, स्नानसे पहले बाल बिखेरे, सितार गोदमें लिए अंगूरी गजलें गाती रहतीं।'

सारा परिदृश्य अपने तिलस्मका असर पाठकके मनको अजीब नशेकी तरह, धीरे धीरे हावी होकर घेरने लगता है। ऐसी सपनीली अदृश्य मरीचिका वरुच में रूईका कर वसूलनेवाले इस कारिन्देके मनको किस प्रकार अभिभूत करती है यथा—'मैंने जैसे साफ सुना कि झरनेकी सैकड़ों धाराओंके समान खेलमें मग्न हँसती-किलकारी भरती हुई, मिल-जुलकर तेजीसे दौड़ती हुई, वे नहानेवालिंयों मेरे पाससे जैसे निकल गयीं हों—देखतेही देखते-शुस्ताके पानीकी अस्थिर सतह किसी अग्निसाक बालोंके तरह घुंघराली हो उठी—मायामयी मुझे फलांगती हुई अपने भीगे आँचलोंसे बूंदें टपकाती-टपकाती फिर मेरी बगलसे होकर नहीं निकलीं, जिस प्रकार हवा गंधको उड़ाकर ले जाती है, उसी प्रकार वे वसन्तके एक उसांसमें उड़कर चली गयीं।... मुझे सुनायी पड़ा झरझर करता फव्वारेका पानी सफेद पत्थरपर आकर गिर रहा है। सितारमें कौन-सा सुर बज रहा है, समझ नहीं पड़ता, कहीं सोनेके जेवरोंकी झंकार सुनायी पड़ रही है। कहीं नूपुरोंका रुनझुन, कभी ताम्बेके बृहत् घंटेपर प्रहर सूचक शब्द, बहुत दूरपर बजती नीवतका आलाप, वायुसे डोलते झाड़की काँचकी लटकनोंकी टुनटुन, वरामदेमें पिंजरे में बंद बुलबुलका गीत, बगीचेसे पालतू सारसका बोल मेरे चारों ओर किसी प्रेतलोककी रागिनी रचने लगी।'

'प्रकर'—जुलाई १२—३४

'क्षुधित पाषाण' के इस प्रेत लोकके अंधेरेमें, सांस रोके निमंत्रण देनेवाली किसी अदृश्य नारीका पीछा करता हुआ एकाएक एक घने नीले परदेके सामने वह चौककर खड़ा हो जाता है—जहां किमखाव की पोशाक पहने, एक भयंकर हब्शी खोजा गोदमें नंगा तलवार लिये दोनों पैर फैलाकर ऊंध रहा है। कोई ईरानी तरुणीकी छाया दर्द, वासना, बौखलाहट, हंसी, कटाक्ष और जेवरोंकी चमककी चिंगारियोंकी वर्षा करके आईनेमें गायब हो जाती है—आधी रात उस अंधेरेमें सुनायी देता है—'तुम मुझे मुक्त करके ले चलो। मायाका कठोर बंधन चूर-चूरकर, मुझे ढोइ पर बिठा छातीसे लगाकर—अपने सूरजकी किरणोंसे जगमगाते कमरेमें ले चलो।' और एकाएक ऊपरसे सिरपर बांसूकी बूंदें आ पड़ीं। कैसी रहस्यपूर्ण, रोमांचक और दिलकश है प्रेतलोककी यह मायाविनी छाया—क्षुधित पाषाण !

तभी इसीके कारण पगलाये मेहरअलीके ये शब्द सुनायी पड़ते हैं—'हट जाओ, हट जाओ, यह सब झूठ है।'—कहते कहते उसी वक्त कुली गाड़ी आनेकी खबर देता है तो वे सभी स्टेशनके वेटिंग रूममें उठ खड़े होते हैं। लेखक अपने थियोसोफिस्ट सूफी रिश्तेदारकी ओर देखते हुए कहता है—'वह आदमी हम लोगोंको बेवकूफ समझ, मजाक-मजाकमें बुद्धू बना गया। कहानी जो शुरूसे आखिर तक कल्पित थी।'

परन्तु इस बेबाक दलीलसे उस रिश्तेदारके साथ इस कथाकारका नाता सदाके लिए खत्म होगया। क्षुधित पाषाणकी यह 'कल्प सृष्टि' यथार्थकी चट्टानसे टकराकर चूरचूर हो गयी थी। क्या यह कहानी विश्वस्तरक कथा-शिल्पीके रूपमें, इस लेखकको प्रतिष्ठित नहीं करती? यह आदिसे अन्ततक पाठकके मन को पूरी तरह विलमाये रखती है, क्यों? उसकी बुनावटका शिल्प और मानवीय संवेदना इतनी सहज और संवेद्य जो है। साथही भाषाका काव्यात्मक सौन्दर्य उसे अधिक मनोरम और जीवन्त बनाता है। जरखरीद दासताके उन क्रूर पंजोंमें छटपटाते सौन्दर्यकी यही कहानी जैसे आजकी नारीके मनमें क्या जिन्दगीके 'सूरजकी किरणोंसे जगमगाते कमरे' की लालसा पैदा नहीं करती? निश्चयही यह कहानी इसी बृहत्तर मानवीय संवेदनासे हमें जोड़ती है। आजकी नारीकी

विषयमी कोहोने के कामवालों की कमी कहाँ है ?



दूसरी कहानी 'मास्टर साहब' अपेक्षाकृत बड़ी है, बारम्बार भूमिकासे होता है—एक किरायेकी गाड़ीमें सफर कर रहे विलायतसे लौटे युवक मजूमदारकी। गाड़ीमें उसे लगता है कि कोई आदमी उसके बगलमें नहीं है तो भी उसकी सीटकी खाली जगहका आसमान ठोस होकर उसे भींच रहा है। वह साईंसको सहायताके लिए पुकारता है, गाड़ीवानसे गाड़ी रोकनेके लिए कहता है, पर साईंस हाथ छुड़ाकर भाग जाता है। मजूमदार भयसे कांप उठता है। उसे अंधेरे मैदानमें खड़े पेड़ भूतोंकी वेआवाज पॉलियामेन्टसे लगते हैं और तभी उसे लगता है कि कोई नजर उसके मुंहकी ओर ताक रही है। आंखें नहीं, फिर भी एक नजर। अंतमें गाड़ी किसी से टकराकर एकाएक खड़ी हो जाती है। वह 'यथार्थ' जाननेके लिए भयभीत गाड़ीवानसे दरियाफ्तभी करता है, पर उसकी कहानी सुने बिनाही किराया देकर चल पड़ता है।

उपयुक्त भूमिकाका सम्बन्ध-सूत्र युवा शिष्य वेणुगोपाल और मास्टर हरलालके जीवनसे ही जुड़ा हुआ है। यह भूमिका ही कहानीका आखिरी छोरभी है। 'सुधित पाषाण' की कहानी भी एक ईरानी जरखरीद दासीका वह पुराना इतिहास बताते-बताते वह हम-सफर, अपने सुपरिचित अंग्रेज मित्रके फर्स्ट क्लासमें चढ़कर, चला जाता है। लगता है इस प्रकारके परिदृश्य तत्कालीन रवीन्द्र-शरत् युगके वातावरणकी कोई विशेषता रही हो, जो अपनी ऐसी रोमांचक रहस्यमयतासे पाठकका मन विचमाती रही हो।

'मास्टर साहब' कहानी निम्नलिखित की निष्ठुर मारको उज़ार करती है। सारी कहानी वर्णनात्मकता लिये हुए है, जहाँ काव्यात्मकताने भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान पाया है, यथा—'अधरलालके घर पहुंचनेके पहलेही दूरसे सुनायी दिया कि शहनाईपर अलहैया बिलावल रागिनीका मधुर स्वरमें आलाप छेड़ा गया है, लेकिन हरलालने अन्दर घुसतेही देखा, ब्याहवाले इस घरमें चहल-पहलके साथ जैसे एक प्रकारकी छटपटाहटकी छाया सभी जगह मौजूद है।'—पिताकी दूसरी शादी से दुःखी पुत्र वेणुगोपाल अपनी दिवंगत माँके कीमती जेवर वह अपने मास्टर साहब हरलालके घर ले जाता है, और जेवरोंकी वह थैली और दो पत्र हरलालकी तिजोरी बंद कर देता है। उसी तिजोरीसे तीन हजार रुपया निकाल लेता है ताकि विलायत जाकर

बार-एट-लॉकी डिग्री प्राप्त कर सके। पत्रोंमें इस बातका खुलासा कर दिया गया है। पिताके पत्रमें अपने पिताको लिखा है कि हरलालसे लिया हुआ तीन हजारका वे कर्ज उसे लौटा दे।

पर पिता जेवरोंकी थैली और पत्र तो ले लेता है, पर रुपये लौटानेसे साफ इन्कार कर देता है, यही नहीं उल्टे उसपर इल्जाम लगाता है कि उसीने उसके पुत्रको गुमराहकर चोरी करवायी है, अतः वह उसे पुलिसमें दे देगा। उधर हरलालके अंग्रेज मालिकने भी उसे एक दिनमें रुपये लौटानेका अल्टिमेटम दे दिया है। हरलाल—'चारा क्या है चारा क्या है' की घनी चिन्ताके चौराहेपर, प्यार और पीड़ासे आहत, बुरी तरह टूटा हुआ, एक बड़ी चूहेदानी जैसे कलकत्ता शहरकी गिर-फ्तमें आ फंसा है। रास्तेपर गैसकी रोशनी फैलकर हजारों खूंखार आंखें खोले अपने इसी शिकारके पीछे पड़ी है। वह एक रुपया पेशगी देकर, एक किरायेकी गाड़ीमें बैठ जाता है, और उसी मैदानमें चक्कर काटता रहता है। रातके घने अंधेरेमें पीड़ाहत मनकी पिछवाई पर, उसकी माँकी सूरत देखते-देखते घर घरमें विशाल रूप धारण करके सारे अंधेरेको जैसे—घेरती जा रही है। उसके मनकी सारी चिन्ता, सारी पीड़ा, सारी चेतना उसीमें समा गयी और गमं भापका बुलबुला एक दम फूट गया। तभी गिरजेकी घड़ीमें एक बजा।

और तभी कोचवानने गाड़ी रोककर पूछा—'बाबू कहाँ जाना है? पर उस प्रश्नका उत्तर फिर कभी नहीं मिला।'

प्यार, त्याग और बलिदानकी जिन्दा मिसाल अब लाश जो बन गयी थी। मानव-मनके अन्तःसम्बन्धोंकी इतनी करुणाजनक है यह कहानी। वर्णनात्मकताके सहज प्रवाह और काव्यात्मक दृष्टिने इसे संवारा है, जो पाठकके मनको संलिप्त करता है।

'हालदारका परिवार' इसी क्रमकी तीसरी कहानी है जो मुख्यतः हरलालके बड़े बेटे बनवारी, उसकी पत्नी किरणलेखा, मधु आरा, मधु कैवर्त और उस परिवार का विश्वासपात्र मुनीम नीलकण्ठ सम्बन्ध सूत्रोंसे बुनी हुई है। कुश्ती, शिकार और अमरुकशतकके श्लोकों मंदाक्रान्ताके छंदोंकी मीठी गुंजार बनवारीको मस्त बनाये रखती है। लेकिन मधु कैवर्त जो मनोहरलालका आसामी था, जिसके साथियोंने ऊंची ब्याज दरपर जालोंके लिए उससे रुपया उधार लिया था, और अब

'प्रकर'—श्रावण'२०४६—३५



जो स्वयं उसी कर्जके जालमें बुरी तरह फँस चुके थे, उसे बचाने के लिए बनवारी नीलकंठ, अपने पिता मनोहरलाल, छोटे भाई बंशी, स्वयंकी पत्नी किरणलेखा—सभीका अप्रिय बन गया। मधु-कैवर्तके लिए वह कारिन्दा नीलकंठको छः मासके लिए जेल तक भिजवा देता है। अपनी प्रिय बंदूक और अंगूठी बेचकर उसके लिए अदालतमें पैरवी के लिए पैसे जुटाता है। इस कारण पिता इतने नाराज होते हैं कि बनवारीको अपनी वसीयतमें बेदखल कर देते हैं। बनवारीभी इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप वह वसीयत-नामा और मिल्कियतके अन्य कागजात चुराकर प्रताप-पुर वाले प्रतिद्वन्द्वी जमींदारको दे देनेका विचार बना लेता है ताकि वह अपने छोटे भाईके पुत्र हरिदास, जिसे वह भी बहुत प्यार करता है, अपनेही साथ विनाशकी सड़कपर लाकर खड़ा कर सके। पर यह सब कुछ नहीं हो पाता। उसके रुमालमें बंधे वे सभी कागजात जिन्हें चम्पाके पेड़ तले छोड़, वह विधवाके जलते हुए घरकी ओर भागकर जाता है, वे हरिदासके हाथ पड़ जाते हैं और उन्हें वह मासूम बालक फिर अपने ताऊ बनवारीको लाकर दे देता है। बनवारीका हृदय उस प्यारी मासूमियतपर, पश्चाताप और गहरी वेदनासे पिघल जाता है। वह उसे साथ लेकर हरिदास और वे सभी कागजात किरणलेखाको सौंप, नौकरीके लिए निकल पड़ता है।

इस व्यक्तिका चरित्र माननीय संवेदनाके दूधसे लबालब भरा हुआ है। वह स्वाभिमानी भी पूरा है। अपनी पत्नी, अपने छोटे भाई बंशी, उसके एकमात्र लड़के हरिदाम, मछुआरा मधु कैवर्त और उसका परिवार और प्रत्येक दीन-हीन दुःखीके दुःख निवारणके लिए सदैव उत्कंठित हो जाता है। अपने पारिवारिक आभिजात्यकी तनिक चिन्ता तक नहीं करता। उसे तो सहज मानवीय रिश्तेही स्वीकार हैं। इसके अभावमें वह घर-वार, प्रियजन—सभी कुछ छोड़कर चला जाता है। उसका सात्त्विक आक्रोश दूधके उफानकी तरह, अन्याय की आंच पातेही उबल उठता है।

‘जीवित और मृत’ कहानी वैधव्य-जीवनकी त्रासदी पर केन्द्रित है। यह भी एक ‘काकी’ की कहानी है, यद्यपि काकी बूढ़ी नहीं, सुन्दर और युवा है। नारी चाहे सुन्दर-असुन्दर, बूढ़ी या यौवनवती हो, पर यदि वह विधवा है तो उसका वैधव्य संभवतः तिरस्कारभरा ‘प्रकर’— जुलाई ’९२— ३६

जीवन ही जीता है। कादम्बिनीकी कहानी भी ऐसीही है कि अचानक हृदयगति रुक जानेसे उसके ससुराल वाले उसे मृत समझ, सावनकी उस घनी अंधेरी रातमें भी, रानीहाटके श्मशानमें अन्तिम संस्कारके लिए चार ब्राह्मण कर्मचारियोंको सौंप देते हैं, अतः उसकी खाट उठाये वे उसे श्मशान घाट ले जाते हैं। घना अन्धेरा, सीलन और गीला मौसम—उन्हें तम्बाकूकी तलब लगती है, और वे खाट रखकर उसकी खोजमें निकल पड़ते हैं।

इसी बीच कादम्बिनीकी चेतना फिर लौट आती है, वह सुबह तक किसी श्रीपतिचरण बाबूके घर पहुँच जाती है, जहाँ उसकी सहेली योगमाया उससे मिलकर बहुत खुश होती है। उधर वे चारों ब्राह्मण झूठमूठी उसके अन्तिम संस्कार सम्पन्न होनेका समाचार उसके परिवारको दे देते हैं।

परन्तु कादम्बिनीकी निपीड़ित मानसिकता स्वयं को अपनीही प्रेतात्मा समझने लगती है, और धीरे-धीरे यह भावना इतनी घनीभूत होती है कि उसे अर्धविक्षिप्तावस्थाकी ओर धकेलती है। सुनसान दोपहरीमें वह कभी-कभी कमरेमें अकेली चीख उठती है। और शामके दीयेके उजालेमें अपनाही छाया देखकर, उसका शरीर थर-थर कांपने लगता है। ऐसी अनुभूति उसे निरन्तर बेचैन किये रहती है और इस अकुलाहटकी तीव्र वेदना का लेखकने मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

इसी बीच श्रीपतिचरण रानीहाट जाकर स्थिति का पता लगा आते हैं, उसे तो वहाँ सभी मृतक मानते ही हैं। जब वे पति-पत्नी बतिया रहे होते हैं, तभी उनके कमरेका दरवाजा खुल जाता है, और दीया भक् से बुझ जाता है, बाहरका घना अन्धकार कमरेमें फैल जाता है, तभी कादम्बिनी एकाएक उस कमरेमें घुस आती है तो पति-पत्नी बेहोश हो जाते हैं। कादम्बिनी किसी प्रकार रानीहाट पहुँच जाती है। सभीकी दृष्टि बचाकर वह उस कमरेमें घुसती है जहाँ बीमार मुन्ना अधनींदमें बोल पड़ता है—‘काकी पानी दो’—सुनते ही झटपट सुराहीसे पानी, मुन्नेको अपनी छातीसे चिपटाकर, पिलाती है। मुन्ना जंग जाता है, देखता है कि यह तो काकीही है—‘काकी तू तो मर गयी थी न?’—उसके अस्फुट स्वर फूटते हैं—‘भरे लाल! अपनी काकीको तू अबतक नहीं भूला है।’ लेकिन मुन्नेके उस प्रश्न ने उसे फिर आहतकर दिया। मुन्ना फिर बोला



—‘अब तो तू मरेगी नहीं न ?’—इसका जवाब देने के पहलेही हल्ला मच गया ।

ये जड़ अन्धविश्वासी संस्कार कितने प्रबल होते हैं और उनका प्रभाव कितना घातक और प्राणलेवा होता है—यह कहानी कादम्बिनी-सी स्नेहमयी जीवित काकीका प्राणवान चित्र खींचती है । कादम्बिनी तुरन्त बोली—‘अरे ! मैं मरी नहीं हूँ रे, नहीं मरी रे, नहीं मरी रे !’—जैसे उसकी सारी लुप्त चेतना फिर मुखर हो उठी है । मुन्नेके प्रति अथाह ममता उसमें जीवन का आलोक फैला देती है । वह चीखती हुई आंगनके तालाबमें, चारों ओरसे हताश हो, कूद पड़ती है, और कहानी का अंतिम वाक्य फिर ऐसी अंधी मान्यताओंपर प्रहार करता है—‘कादम्बिनीने भरकर प्रमाणित कर दिया कि वह मरी नहीं थी ।’ एक अमर्ष, एक तीव्र आक्रोश और साथही वितृष्णा, घृणाभी क्या इससे ध्वनित नहीं होती ? ऐसी त्रासद नियतिका उत्तरदायित्व ऐसीही विगलित मान्यताएँ तो हैं ।

‘अपरिचित’ और ‘पात्र-पात्री’ सामाजिक रुढ़ियों और असंगत परिस्थितियोंका व्यंग्यात्मक पर विवेचन-पूर्ण चित्रांकन है । दहेजका लोभ ‘अपरिचित’ के युवा नायकको उसकी प्रियासे, उसकी मां और मामाके कारणसे हाथ धोना पड़ता है । इस कहानीका उपसंहार महत्त्वपूर्ण और संकेतप्रवण है, कल्याणीके इस कथनसे कहानीका उपसंहार होता है—‘मैं ब्याह नहीं करूँगी... माँकी आज्ञासे’—बादमें वह समझा—माँका संकेत मातृभूमि है । रिश्ता टूट जानेके बाद कल्याणीने लड़कियोंको पढ़ानेका संकल्प कर लिया और नारी जागृति के संकल्प यज्ञमें लग गयी । परन्तु वह युवा नायक उसीकी सुरीली आवाजकी भटकनमें भटकताही रहा ।

‘पात्र और पात्री’ के नायकका विवाह पहले इसलिए रुक जाता है कि उसकी प्रथम बालिका वधू उसके माँकी पसंद थी, परंतु जिसे उसके पिता कतई पसंद नहीं करते थे । उसने भी एक लड़की पसंद की थी पर उसके मां-बापकी दृष्टि सिविलियनोंकी ओर थी । इस विदेशी गुड़ियापर बंकिमी मोठी भाषामें बातें करनेका क्या असर होता ? उसके पिताने जिस लड़कीवालेको बात देदी थी, वह स्वयं नायकको अस्वीकार थी ।

अपने योग्य पात्रीका चयन भी एक बहुत उलझन भरा कार्य होता है, यही इसका केन्द्र बिन्दु है । अब-

रखकी खान खोअते हुए वह छोटा नागपुर पहुंचता है, जहाँ उन्हीं पंडितजीके गरीब परिवारकी सम्पन्नता देख कर, एक दिन उसे लगा कि इतनी सम्पन्नता होते हुए भी वह अबभी नितान्त अकेला है, अपने बोझसे स्वयं थक गया है, चालीस पारकर गया है । अंतमें दिवंगत नंदकृष्ण बाबूकी पुत्री दीपालीके साथ उनकी संगति बैठ जाती है । इसी बीच श्रीपति दीपालीसे ब्याह करना चाहता था, पर दीपाली स्वयं इसके लिए सहमत नहीं थी । अतः ब्याहका दिन तो नहीं बदला, केवल दूल्हा बदल गया । और इसी कारण पचपन वर्षकी उम्रमें उसका घर नतनियों से भर गया ।

रवीन्द्र-शरत् युगकी प्रायः कहानियां अनुभूति प्रधान होती हैं ।

रवि ठाकुरने तो अपनी कहानियोंके लिए जमींदार वर्गको ही अपना लक्ष्य बनाया है, जो स्वाभाविक ही था, अतः इसी जीवन-परिदृश्यका संसार उनकी कहानियोंमें चित्रित हुआ है । फिरभी इन सबके लिए करुण तटस्थताका भाव अन्तःस्रोतके रूपमें प्रबहमान है । शरत्ने अपेक्षाकृत ग्राम्य जीवनको अपनी रचनाओं का आधार बनाया है । फिरभी दोनों अंततः बृहत्तर मनुष्यताके सत्यसे निरंतर जुड़े रहे । निश्चयही इस कवि-कथा शिल्पीकी ये रचनाएँ उस युगकी कहानियों में अन्यतम स्थान रखती हैं । □

## एक नया ग्रासफुद्दौला

कहानीकार : कौशलेन्द्र पाण्डेय

समीक्षक : उषा सक्सेना

यह कहानीकारकी लगभग ४० कहानियोंका नवीनतम संग्रह है । कहानियोंमें ताजगी, नये तेवर, नये अन्दाज, वर्ग-संघर्ष, बदलते परिवेशमें बदलती हुई मानसिकता एवं युगकी पुकार है तथा सूत्र रूपमें एक लक्ष्यतक पहुंचनेकी चाह है । लघु आकारमें भी लेखक के जीवनके घनेरे अनुभव, कथ्यकी विविधता और शिल्पगत नवीनता लिये हुए ये रचनाएँ अपनी गहरी छाप छोड़ जाती हैं । किशोरीका-सा व्यक्तित्व और



सर्वमंगला नारीकी-सी लोककल्याणकी भावनासे युक्त ये कहानियां किसी-न-किसी लक्ष्य, उद्देश्य तथा आदर्श की अभिव्यंजना करती हैं। कथाकार एकही दृश्यपर सारा आलोक केन्द्रस्थकर उसके प्रभावको तीव्रतम बना देता है। सूक्ष्म भावाभिव्यंजनाही लघुकथाओंके रूपको संवारती-निखारती है।

“महात्मा” की कुरूप धृति और निकृष्ट मकड़ी की चरित्र सृष्टि द्वारा लेखकने सिद्ध किया है कि हीनसे हीन प्राणीमें भी स्वावलम्बनका गुण होता है। महात्मा उसकी वेदनासे द्रवीभूत हो कहते हैं—“तू निश्चयही स्वजीवी है, स्वावलम्बी है—न धरतीका भार न आकाशका।” कहानीका लक्ष्य निश्चित रूपसे उपेक्षित प्राणियोंको स्वाभिमानसे जीनेकी प्रेरणा देता है।

अधिकांश कथाएं दैनिक जीवनसे संबद्ध हैं। नित्य प्रति जीवनमें घटित होनेवाली घटनाओंको कहानीका जामा पहना कल्पनाके कलेवरमें गूँथ कथाकारने जीवन के सत्योंको अनावृत किया है। ‘उपलब्धि’का दुःखहरन, ‘निश्चय’का सिपाही दशरथ, ‘निष्काम’ का भिखारी, ‘अपकृत्य बोध’ का शंकरलाल इस सत्यको लेकर आज भी जीवित हैं कि समाजोपयोगी होनेके लिए त्याग और आत्मोत्सर्गकी आवश्यकता है तभी समाज व राष्ट्र प्रगति कर सकता है। ‘स्व’ की भावना इनमें तिरोभूत हो जाती है और वे परमार्थके लिए ही जीवित रहते हैं, भले ही उनका यह व्यवहार इस नये युगमें दूसरोंको अनावश्यक रूपसे संशयकी स्थितिमें क्यों न डाल दे।

सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि, युग-बोध, और संत्रास कथा-शिल्पीको एक नयी दिशाकी ओर मोड़ देते हैं और वह समाजकी विसंगतियों, विकृतियों और विद्रूपताओंका यथार्थ चित्रण करता है—सामयिक समस्याओंको उजागर करता है। “भविष्यहीन” में एक साधारण परिवार के सुनहरे सपने परिस्थितिबश कैसे छिन्न-भिन्न हो जाते हैं—“अब सुस्त चलनेवालों, अछूतों और कोल-भिल्लोंको ही नौकरियां मिलेंगी—औरोंसे अधिक गरीब होते हैं वे।” आरक्षणके अभिशापको कितनी चतुरतासे कथाकारने उजागर किया है। “ममज्ञ न पाया” का शिक्षित नवयुवक कार्यालयमें चपरासियोंके प्रतिनिधि मंडलकी शर्तों और भूख हड़तालकी धमकीसे अवगत हो उनसे भी हेय कार्य करनेको तत्पर हो जाता है—

“मैं सब कुछ कर लूँगा, दफ्तरकी सफाई करने और प्रकर’—जुलाई ६२—३८

बाबुओंको पानी-चाय पिलानेकी नौकरी मुझे देनेकी कृपा करें। मैं तो एम. ए. पास हूँ।” बेकारी बेरोजगारीपर कैसा तीव्र व्यंग्य है !

मानव जीवनके अनेक रंग इस संग्रहमें हैं। कहीं “गिरि सुन्दरी” का अपरूप सौंदर्य मनको बांध लेता है, देवदार तरुओंका सलोनापन मनको आकृष्ट करता है तो कहीं कैम्पटी फालकी चपलता। कृत्रिम सौंदर्यके पीछे ही भटकता रहता है मानव, किन्तु इससे इतर ऐसा भी सौंदर्य है जो आज भी अन्तर्मनको सहला देता है।

नगरीय और ग्रामीण जीवनकी अनेकानेक स्थितियों के भावपूर्ण चित्र कथाकारने अंकित किये हैं। “स्वामि-भक्त” में नये युगकी बदली हुई मानसिकताका चित्रण है यहाँतक कि कुत्ता जो स्वामिभक्तिका प्रतीक है, वह भी युगके अनुरूप अपने आपको ढाल लेता है, बदल जाता है। एक तीव्र कटाक्ष है कि परम्परागत मूल्योंमें अब परिवर्तन हो चुका है और जीवित रहनेके लिए अपने आपको बदलना होगा।

कुछ कथाओंमें नारी स्वातंत्र्यकी झलक है। मानसिक तनाव और समस्याओंसे आक्रान्त पति जब पत्नी पर अकारण ही अपना रोष उतारेगा तो उसका स्वाभिमान भी जागृत हो उठेगा। “सीमा” और ‘जागृति’ में नारी उत्पीड़नके विरुद्ध स्वर मुखरित हुआ है। “सीमा” की प्रताड़ित नायिका अब और अन्याय नहीं सहन करेगी, “दूसरे प्रहारकी आशंकासे वह प्रतिकारकी मुद्रामें खड़ी हो गयी थी”। “जागृति” की बरखा अन्याय सहन करते-करते मनही मन विद्रोहिणी हो उठती है, एक दृढ़ निश्चय लेती है आत्म-विश्वाससे भर असंख्य “शब्दों” के अनावरणका दाम्पत्य जीवन—को संवारनेका” “पति पत्नी तभी चल सकेंगे साथ-साथ दो किनारोंकी तरह।”

मिथ्या प्रदर्शन आजके जीवनमें इतना घुलमिल गया है कि मानव अपनी सीमाओंको भी तोड़ देता है। “शौकिया कर्जदार” कहानी अपने आपमें अनूठी है जो इस सत्यका उद्घाटन करती है कि मनुष्यको झूठी शान और शौकत प्राप्त करनेके लिए अपनी चादरस बाहर पैर नहीं फैलाना चाहिये। कालान्तरमें ऐसा व्यक्ति केवल उपहासका पात्र बनकर ही रह जाता है। “दुविधा” वर्तमान व्यवस्थापर एक पैना कटाक्ष है। बच्चे पुर्जियां निकालकर अपने ही जीतसे राजाका चुनाव करते हैं और



शासककी हठधर्मिताकी कल्पना करतेहैं कि शासक जब योजनाएँ बनायेगा तभी शासन सुचारु रूपसे चला सकेगा। बदली हुई परिस्थितसे बाल मनोविज्ञानभी पूर्ण रूपसे प्रभावित है। “दण्ड” “भ्रान्ति” तथा “समझ” जैसी कथाएँ समाजका यथातथ्य चित्र अंकित करतीहैं। “मार्निंग वाक का वक्त” एक व्यंग्य चित्र है। नये युगमें भ्रष्टाचारके स्तरमें भी गिरावट आ गयीहै, रिश्वतके तौर तरीके विकृत हो गयेहैं। “अब तो जिसका काज नहीं भी करना उससे भी हाथ मिलाये जातेहैं। “मजदूरी” के चंदू बाबू “पोलिटिकल सफरर” हैं, ताम्रपत्र पा चुके हैं, एक लोकनायक नेता के सब सुख भोग रहेहैं, लेकिन स्वतंत्रता दिवसपर गाँव के बच्चोंके साथ वर्षा में कीचड़से लथपथ हो जानेपर मनही मन रुष्ट हो जातेहैं और आगामी वर्षोंमें प्रभात फेरीमें सम्मिलित न होनेका निर्णय ले लेतेहैं। अधिकांश कहानियोंमें लेखकन दोहरी मान्यताओं और नकली मुखाँटोंका यथातथ्य चित्रण कियाहै।

“कहानीका पता” एक ऐसी कथा है जो कहानीकारको एक सही दिशा देतीहै। कहानीके मानवीकरण द्वारा कथाकार एक निश्चित निष्कर्षपर पहुँच जाताहै कि कहानी भोगे हुए यथार्थका चित्र है। आजकी कहानी यथार्थके घरातलपर प्रतिष्ठित है जहाँ जीवन की विषमताएँ, भयावहताएँ, विसंगतियाँ मनुष्यको तनावसे भर देतीहैं और वह आजीवन इनसे त्राण पानेके लिए छटपटाता रहताहै। “क्या” “अकेला” “चीख” “सवालिया निशान” के पात्र एक प्रश्नचिह्न न छोड़ जातेहैं। “सवालिया निशान” का मोटर चालक सड़कपर हुई दुर्घटनाका कारण खोजते खोजते इतना तनावग्रस्त हो उठताहै कि स्वयं ही घटनाका कारण बन जाताहै। “फर्क” कहानीकारकी संवेदनशील और शाश्वत साहित्य सृजनकी ओर प्रेरित करतीहै जिससे वह कालजयी होजाये।

कथाकारने एक ओर संघर्ष संकुल-जीवनकी छटपटाहट, तनावग्रस्त मनःस्थिति, मिथ्या प्रदर्शन तथा बदली हुई मानसिकताको उजागर कियाहै तो दूसरी ओर वर्तमान व्यवस्थापर निर्भीकतासे प्रहार कियाहै। इस दृष्टिसे संकलनकी शीर्षस्थ कहानी “एक नया आसफुद्दौला” एक अनूठा दस्तावेज है। आजसे कई शतक पूर्व अवधके त्यागी, निस्पृह, पररेपकारी नबाब आसफुद्दौला दानशीलताके प्रतीक थे जो भवन-निर्माण करवाते और रातमें ढहाते जिससे दुर्भिक्ष

पीड़ित व्यक्तियोंको रोजी रोटी मिल सके। हर व्यक्ति स्वाभिमानसे जीविकोपार्जन कर सके—। इमामबाड़ा आजभी उनके गौरवको अपने आपमें समेटे हुए उनकी दानशीलताकी कहानी कह रहाहै। आजका अभियंता आसफुद्दौलाका बाना पहन नयी योजनाएँ बना पुलोंका निर्माण कराताहै जो पहली बारिशमें ही टूट जाताहै, अनेकों व्यक्ति मृत्युके मुखमें चले जातेहैं। जीवन, अर्थ द्रव्यकी हानि हो जानेपर यदि उससे प्रश्न किया जाये तो उसका उत्तर है मानव जीवन नश्वर है “फिर नया पुल बनेगा”, फिर सैकड़ों भूखे और गरीब लोगोंको रोजी मिलेगी, रोटी मिलेगी, कपड़ा मिलेगा”, परमार्थ कल्याणका कैसा उपहास है ! नया आसफुद्दौला स्वार्थ-सिद्धि शोषण और अन्यायका प्रतीक है जो दूसरोंके जीवनपर अपने भवन निर्मित करवाताहै। नया युग, बदली मानसिकता, विकृतियों तथा वर्तमान व्यवस्था पर ताँखा प्रहार है “एक नया आसफुद्दौला” !

कथा तथा शिल्पकी दृष्टिसे भी यह कहानी संग्रह अपने आपमें उल्लेखनीय है—भाषामें प्रवाह, सादगी तथा रवानगी है। सूत्र रूपमें कही गयी बातें मनको छू जातीहैं। सहज सम्प्रेषणीयता—इनका प्रमुख गुण है। घटना तीव्र रूपसे विकसित होती हुई चरम बिन्दु तक पहुँचतीहै और सहसाही कहानीकारका मन्तव्य स्पष्ट हो जाताहै। कथ्य, शिल्प, भाव सभी दृष्टिसे यह एक उत्कृष्ट कहानी संग्रह है। □

## सावधान रहें

भारत सरकार हिन्दीका व्यवहार धीरे-धीरे कम कर रहीहै

एक उदाहरण : सूचना प्रसार मन्त्रालयके ‘विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय’ ने (१) हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंको सभी पत्र आदि हिन्दीमें भेजने बन्द कर दिये हैं, (२) हिन्दी पत्रोंका उत्तर देना बन्द कर दिया है, (३) हिन्दीमें भेजे जानेवाले दयकोका भुगतान, हमारे अनुभवसे, गत दो वर्षसे बन्द किया हुआहै।

इसी मन्त्रालयके आकाशवाणी और दूरदर्शनने हिन्दी संपाचारोंकी हिन्दीका उद्घरण शुरू कर दिया है जिसमें हिन्दी सभी भारतीय भाषाओंमें अलग-थलग पड़ जाये।



# नाटक

## देशके लिए

नाटककार : सुदर्शन मजीठिया  
समीक्षक : डॉ. नरनारायण राय

‘देशके लिए’ सुदर्शन मजीठियाका दूसरा नाटक है। यह नाटक देशकी शासन व्यवस्था, राजनीति, और व्यवस्थाके शोषण तन्त्रपर गई गहरे प्रश्न-चिह्न लगाता है, तेजीसे भागती जा रही आजकी दुनियांमें जिनपर कुछ देरके लिए थमकर सोचनेकी आवश्यकता है। नाटककारने अपनी भूमिकामें भी ऐसे कुछ प्रश्न उठाये हैं जिनपर आजके शिथिल और दायित्वपूर्ण सभ्य समाजको सोचना चाहिये और केवल वैचारिक जुगाली ही काफी नहीं, परिस्थितिमें सुधार और परिवर्तन लानेके लिए रचनात्मक प्रयासभी किया जाना चाहिये। कठिनाई यह होती है कि जबभी कोई बड़ा प्रश्न हमारे सामने आता है तो, ‘यह एक गंभीर मामला है’ इसपर सिर तो सबके सहमतिमें हिलते हैं पर उसके समाधान की ओर अग्रसर होनेके लिए कोई नहीं आता। बुद्धिजीवी वर्ग इस निष्क्रियतासे सर्वाधिक आक्रान्त है। पता नहीं प्रश्नोंकी कितनी जलती सलाखें चुभोनेके बाद उनमें चेतना आ पायेगी। आवश्यकता यह है कि प्रयास जारी रहें, थककर प्रयास करना छोड़ न दिया जाये। नाटककारने एक प्रयास किया है, अपने ढंगसे और अपने माध्यमसे। परन्तु इसकी सार्थकता इस बातमें है कि उससे लोगोंको शिक्षा मिले। शिक्षासे व्यवहारमें परिवर्तन आता है, आगसे जल जानेके बाद बच्चा सीखता है और जलती चीजोंसे परहेज करता है। हम बच्चे नहीं हैं और दूसरोंके अनुभवका लाभ उठाना जानते हैं। इसलिए कोई रचनात्मक कदम उठाना ही इस जलते प्रश्नका सटीक उत्तर होगा।

१. प्रका. : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ६०; क्रा. ६०; मूल्य : ३२.०० रु.।

‘प्रकर’—जुलाई ६२—४०

जिस गांवमें आत्माराम रहता है उस गांवके सरपंच की आंख चौराहेपर स्थित आत्मारामके घरपर टिकी है जब किसी उपायसे उस घरको हथियाना संभव नहीं हुआ तो राजनीतिक हथकण्डा अपनाया गया। स्वतंत्रता संग्राममें कभी गांधीजी आत्मारामके घर टिके थे, इसे हथकण्डा बनाकर सरपंच एम.एल.ए. साहबसे बातकर मुख्यमंत्रीके द्वारा यह घोषित करवा देते हैं कि आत्मारामजीका घर राष्ट्रीय स्मारक है और सरकार उसका अधिग्रहण करनेजा रही है। बदलेमें आत्मारामजीको उचित मुआवजा दिया जायेगा। आत्मारामजी इस समाचारसे बिफर उठते हैं—घर छोड़ना उन्हें किसी प्रकार स्वीकार नहीं। सरपंचजी मनाते हैं, नेताजी मनाते हैं, पुलिस धमकाती है, पर आत्माराम अपना घर छोड़नेको राजी नहीं होते। सरपंचजी और बम्बईके एक दलाल आत्मारामको मुंहमांगा मूल्य देनेको राजी होते हैं जिससे उस मकानका स्वामित्व खरीदकर वे सरकारसे ‘अपनी’ मुंहमांगी राशि वसूल सकें। आत्माराम को अपने ‘घर’ का यह व्यापार नहीं सुहाता। उसमें वही गांधीवादी सत्यनिष्ठा है जिसकी सीख कभी गांधी जी ने दी थी। पर गांधीजीके नामपर होनेवाला यह व्यापार उसके गले नहीं उतरता। वह अखबारके रिपोर्टरको असली बात बताता है और रिपोर्टर सचवाई को अपने अखबारमें छापनेका आश्वासन देता है। पर रातोंरात अखबार मालिकपर सरकारी दबाव पड़ता है और रिपोर्टरको कूड़ेदानमें फेंक दिया जाता है। वह मुख्यमंत्रीके पास अपनी फरयाद ले जाता है। पर मुख्यमंत्री अपने विधायक, सरकार और पार्टीकी भाषामें अनुसूची कर देते हैं। वह विपक्षके नेतासे मिलता है पर नारे, जुलूस, प्रदर्शन, जाम, पोस्टर और हड़ताल करानेकी ‘फीस’ आत्माराम नहीं देपाता इसलिए विपक्षभी उससे मुंह फेर लेता है। थकाहारा आत्माराम आवागमिक आरोपमें रातमें हवालातमें बन्द कर दिया जाता है। लौटकर जब वह घर पहुंचता है तो न्याय पाने



की उसकी सारी आशा चूर हो चुकी होती है। पड़ोसी करीम भाई न्यायके नारे लगानेको तैयार होते हैं ताकि सरकार और व्यवस्थाका आदमखोर तंत्र आत्मारामके मकान को निर्विरोध न निगल सके। पर आत्मारामका विरोध उसके घरमें ही होता है। आजीवन तंगी और बदहाली में हाथ बंटानेवाली उसकी पत्नी शीला अन्तमें आत्मारामके सिद्धांतोंका साथ छोड़ देती है। उसके जीवनमें एक अवसर आया है जब वह इस खण्डहरकी मुंहमांगी कीमत वसूलकर शेष जीवन सुख और शान्तिसे बिता सकती है। अतः घर न बेचनेकी आत्मारामका हठ उसे अपने पतिकी मूर्खता प्रतीत होता है। शीला अड़ जाती है कि घर बिकेगा, कमसे कम उसका आधा भाग जिसपर उसका कानूनी हक है आधे भागका आत्माराम जो चाहे करे।

सारी दुनियांकी अवसरवादिता और स्वार्थपूर्ण रवैयेसे आत्माराम जूझता हुआ उतना नहीं टूटाथा, जितना उसे शीला तोड़ती है। अबतक उसे यह आभास था कि पूरे विश्वमें कमसे कम पति-पत्नीका सम्बन्ध ऐसा है जहां सिद्धान्तका स्थान स्वार्थ नहीं ले सकता। यह अन्तिम झटका आत्माराम नहीं झेल पाता और आत्मनिर्णयके किसी भयानक पलमें वह आत्मघाती निर्णय ले बैठता है। पत्नीको झूठा आशवासन देकर वह उसे मन्दिर पूजा करने भेज देता है और बाहर राष्ट्रीय स्मारकके रूपमें अपना घर दान देनेकी आत्मारामकी घोषणा सुनने आये लोगों (जिनमें सरपंच, एम.एल.ए. साहब, दरीगा मुख्य हैं) को भीतर बुला लेता है। फिर उनसे दो मिनट की फुरसत लेकर आत्माराम घरके भीतर चला जाता है। जलने लायक घरकी चीजोंको जमाकर उनपर पिट्टीका तेल छिड़क आत्माराम अपने घरमें आग देता है। घुआं, लपट, और गंधके बीच आत्माराम झुलसा हुआ बाहर आता है, अट्टहास करता हुआ घोषणा करता है—उसे न पंसा चाहिये न सम्मान। “मेरा घर मेरा रहेगा, मेरी इच्छाके विपरीत कोई मेरा घर नहीं लेसकता। मैं लड़ूंगा... अन्तिम सांस तक लड़ूंगा”। मन्दिरसे लौटी शीला भस्म होते हुए घरको देखती है आत्मारामकी घोषणा सुनती है और “मैं आपको अकेले नहीं जलने दूंगा” कहती हुई आत्मारामकी ओर झपटती हुई धुएँमें विलीन हो जाती है।

नाटक यह स्पष्ट करता है कि महात्मा गांधीके नाम पर उनके ही आदर्शोंकी हत्या होती है। आत्मारामसे

उसका घर छीना जा रहा था जिसकी गांधीजी शायद सबसे अधिक भत्सना करते। उनके नामपर चलनेवाला व्यापार उन्हें सम्मानजनक प्रतीत न होकर अपमानजनक प्रतीत होता। क्योंकि इन सबोंके पीछे जो उद्देश्य काम कर रहा है, वह दूषित है। ऐसाही एक नाटक बहुत पहले देखनेमें आया था, सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाका ‘बकरी’। संवेदनाके धरातलपर इन दोनोंही नाटकोंमें पर्याप्त समानता है। दोनोंही नाटक एकही बिन्दुपर चोट करते हैं। ‘बकरी’ में गरीब विपतीकी बकरी जबर्दस्ती छीनकर उसे गांधीजीकी बकरी घोषितकर गांधीजीके नामपर दुर्जनसिंह एण्ड सन्स लंबा-चौड़ा व्यापार चलाते हैं। इस नाटकमें भी आत्मारामका घर छीनकर वही व्यापार चलानेका षडयन्त्र है। दोनों नाटकोंमें एक अन्तर यह है कि ‘बकरी’ का दुर्जनसिंह अन्तमें बकरीको भी मारकर खा जाता है और विपती कुछ नहीं कर पाती। ‘देशके लिए’ का आत्माराम यह मानता है कि घर उसका है, महात्माजीके उसके घर ठहरने न ठहरनेसे उसका स्वामित्व प्रभावित नहीं होता और अपना घर वह किसीभी छल, प्रपंच, भय और प्रताड़ना को समर्पित नहीं करेगा। वह सत्ता, राजनीति, और व्यवस्थाके नामपर हो रहे इस अत्याचारके समक्ष कभी भी घूटने नहीं टकेगा चाहे इसके लिए जो कुछ भी सहना पड़े। यह था गांधी मार्ग, सत्य और न्यायके लिए प्राण रहनेतक संघर्ष। गांधीके आदर्श वे नहीं थे जो गांधीजीके नामपर सत्ता और राजनीतिके कारिन्दे अपनाते हैं। आत्माराम अपने घरको जलाकर बर्बाद कर देता है, इस गृहदाहमें स्वयंभी जल मरता है, पर षडयन्त्र को वह निश्चयही विफल कर देता है। एक पूरी व्यवस्थासे जब एक अकेला आदमी (जिसकी पत्नीभी उससे त्रिमुख होगयी हो) टकराता है तो अन्त प्रायः निश्चित-सा होता है, आत्माराम जैसा अन्त। परन्तु ऐसा एकाध उदाहरण सामने रहनाभी आवश्यक है जिससे सत्ता और राजनीतिका कोई नया षडयन्त्र पनपनेसे पहले अपनी सफलता-विफलताकी संभावनाको भी आंक ले।

मक्कार नेता जब देशभक्तिका स्वर्ग रचते हैं तो विडम्बनापूर्ण स्थितिका निर्माण होता है। वे देशके नाम पर आत्माराम जैसे साधारण नागरिकको अपना सर्वस्व दान देनेके लिए मनुहार कर सकते हैं, उपदेश कर सकते हैं पर उतका अपना कभी एक रोमभी देशके लिए नहीं



जला, भलेही आत्मारामका घर जल गया। दूसरोंको निस्वार्थ बलिदान करनेकी सीख देनेवाले अपना आदर्श भूल जाते हैं। जिसने स्वयं कोई त्याग न किया हो दूसरोंसे उसे त्यागकी अपेक्षा रखनी भी नहीं चाहिये। पर होता आज इसका उलटा है। जो जितना बड़ा मक्कार, सत्ता और राजनीतिपर उसकी पकड़ उतनीही मजबूत होती है। सभी अपने-अपने उद्देश्यसे उसके इशारेकी प्रतीक्षा करते हैं। उसका संकेत मिलनेपर वे आत्माराम जैसे निरीह व्यक्ति उसके परिवार और उसके घरको बर्बाद कर सकते हैं। निस्संदेह यह शक्ति बड़ी है और इसीका बोलवाला है। पर न्याय और सत्याग्रहकी अपनी शक्तिभी कम नहीं। आत्माराम जैसे लोग आजभी सत्ता, व्यवस्था और राजनीतिके षडयन्त्रपूर्ण शोषण अत्याचार और अन्यायका विरोध करते हैं। इस विरोधमें वे नष्ट हो जाते हैं पर षडयन्त्रको विफल करनेके बाद। शोषण, अत्याचार और अन्यायकी सारी शक्ति मिलकर भी आत्मारामका घर प्राप्त नहीं कर सकी, आत्मारामके मनोबलको तोड़नेका मानसिक संतोष नहीं पा सकी। पराजित-सा लगनेवाला आत्माराम एक धरातलपर अपराजेय होगया। इस प्रकार गहराईमें जानेपर नाटक के भीतरकी अर्थकी परतें खुलती हैं और नाटकके रंग बदलते जाते हैं। अर्थ विस्तार और गहराईवाले नाटक काफी प्रशंसा पाते हैं। सुदर्शन मजीठियाका यह नाटक मुझे ऐसाही संभावनापूर्ण प्रतीत हुआ है।

## हास्य-व्यंग्य

### नोर क्षीर?

व्यंग्यकार : लतीफ घोंघी

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

हिन्दी व्यंग्य-लेखकोंमें लतीफ घोंघीका नाम जाना-

१. प्रका : किताब घर, शीलतारा हाउस, अंसारी रोड, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : २००; का. ६०; मूल्य : ६०.०० रु।

‘प्रकर’—जुलाई ६२—४२

अपनी भूमिकामें नाटककारने कुछ प्रश्न उठाये हैं जिनपर विचार किया जाना चाहिये क्योंकि उनका सम्बन्ध आजके नाटक और रंगमंचसे है। आजका रंग-कर्म एक अतिवादी दौरसे गुजर रहा है। हिन्दीमें अच्छे मंचीय नाटकोंकी अब कोई कमी नहीं है फिरभी हिन्दी-तर भाषाओंके हिन्दी अनुवाद आज हिन्दी रंगमंचपर छाये हैं। हिन्दीतर प्रदेशके हिन्दी नाटककारोंकी भी कोई पूछ नहीं। दूरदर्शन नाटक एक दूसरी समस्या है। उसका शिल्प विधान नाटकसे भिन्न है फिरभी नाम टो. वी. नाटक चलता है। क्या कोई सोमा-रेखा नहीं खींची जानी चाहिये? दूसरी ओर इस भूमिकासे नाटककार की नाटक और रंगमंच विषयक उनकी अपनी सुनिश्चित धारणाओंकी जानकारीभी मिलती है: यथा (१) नाटकमें अभिनयके प्रारंभ होतेही मंचका जन्म होता है। (२) नाटक और नाट्य कृतिमें वही अन्तर होता है जो मकान और उसके प्लानमें होता है। (३) नाटककी मौलिकता उसकी वस्तुमें नहीं बल्कि उसकी शैलीमें होती है। (४) समीक्षकका कार्य नाटक उसके मंचनकी व्याख्या करना है।

इस समीक्षकने सुदर्शनजीकी पूर्वकृति ‘चौराहा’को पसन्द किया था। यह नाटकभी साहित्य कला परिषद, दिल्ली द्वारा पुरस्कृत किया गया है। नाटकमें यद्यपि दृश्य कई हैं पर नाटककारने आश्वस्त किया है कि एकही दृश्यबंधपर यह नाटक खेलाजा सकता है। नाटकका मंचन हो चुका है। भविष्यमें भी होता रहेगा, ऐसा विश्वास व्यक्त कियाजा सकता है। □

पहचाना है। उनकी सैकड़ों रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इसमें सामाजिक, राजनीतिक अथवा कभी-कभी व्यक्तिके आचरणकी विसंगतियों या असामान्यताओंकी छिलायी हुई है। घोंघी, परसाईजी या शरद जोशीके समान आक्रामक नहीं हैं। वे हलकी चिकोटियाँ भर लेते हैं, नष्टर बहुत कम अवसरोंपर लगाते हैं।

पुस्तकमें रामपुरके समाचारपत्र ‘अमृत सन्देश’ के दैनिक कॉलम ‘नोर-क्षीर’ के लिए लिखे गये पचास लेख संकलित हैं। ‘मैंने यहभी कोशिश की है कि वे



रचनाएँ केवल व्यक्तिपरक न होकर प्रवृत्तिपरक हों।”  
 “मैंने यह भी महसूस किया है कि पत्रिकाओंकी अपेक्षा  
 अखबारोंमें छपनेवाले व्यंग्योंमें अधिक तेज और तीखे  
 प्रहारकी मांग होती है।” यानी कि लेखक बारीक  
 कातनेके फेरमें पड़ा कि व्यंग्य बेकाबू हुआ। अखबार  
 का पाठक फुरसतसे पढ़नेवाला कम होता है। अधिकतर  
 पाठक अखबारपर सरसरी दृष्टिभर डालनेके अभ्यस्त  
 होते हैं। तथापि, व्यंग्यका तीखापन चबा-चबाकर हजम  
 करनेकी मांग नहीं करता। परसाईजीने भी कॉलम  
 लिखे हैं, सिद्धनाथ कुमार ‘रांची एक्सप्रेस’ के लिए लिखते  
 हैं। घोंघीके लेखनमें विनोदी-प्रवृत्ति अधिक है। आलोच्य  
 व्यंग्य इसीलिए मोटी चमड़ी वालोंपर किये गये कंकड़-  
 प्रहार बनकर मात्र रह गये हैं।

अखगारी-कॉलमके लिए लम्बाईकी एक सीमा  
 होती है। इसलिए उनमें किसीभी प्रश्नपर सम्यक्  
 विचारकी गुंजाइश नहीं रहती। प्रश्नके किसी नाजुक  
 स्थलको तलाशकर उसपर एक-अकेली चोट करो  
 और मिशन पूरा मान लो। चोट गहरी बैठे तो मिशन  
 सफल, नहीं तो अर्द्ध-सफल या असफल। घोंघीका अपना  
 एक उद्देश्य भी है। उसमें वे सफल हुए हैं। तथापि, सभी  
 पाठक शाश्वत ही इन लेखोंको प्रभावशाली व्यंग्य स्वीकार  
 कर पायें। स्वयं लेखकने इन लेखोंको ‘हास्य-व्यंग्य’  
 कहा है। इनको उसी रूपमें देखनेपर ही पूरा होसकेगा।  
 इनमें नीर भी है और क्षीर भी। कुछ कमजोर हाजमे  
 वालोंके लिए यह समन्वय उपयुक्त है।

आक्रोश तभी प्रखर होता है जबकि अनचाही  
 स्थितियाँ समसामयिक हों। अखबारी कॉलम पूरी  
 तरह समसामयिक घटनाओंसे जुड़ा हुआ होता है।  
 अवश्य ही ये घटनाएँ कुछ समय बाद प्रासंगिकता  
 खोने लगती हैं। घोंघीने इस बातको तथा अपनी विनोदी  
 वृत्तिको ध्यानमें रखते हुए प्रवृत्तियों तथा विक्षेपयुक्त  
 निजी विशेषताओंको निशाना बनाया है। यहाँ हम यह  
 स्पष्ट करना चाहेंगे कि प्रायः ही आक्रामकताके मूलमें  
 गहरी सहानुभूतिकी भावना निहित रहती है। सात्विक  
 क्रोधकी सामाजिक आवश्यकतापर आ. रामचन्द्रशुक्लने  
 पार्षद जोर दिया है। घोंघीके लेखोंमें सहानुभूतिजन्य  
 आक्रामकता बहुत कम है। ‘दुःखोंका सिलसिला’ तथा  
 ‘दुःखी महासंघ’ में चिर-विलापकारियोंके नक्शे खींचे  
 गये हैं। ‘क्षमा कीजिये’, ‘सीनियरका वसंत’, ‘सम्पत-  
 शाल—लंका समझौतेवाले’, ‘अपन तो बच गये गुरु’,

‘बहस-प्रेमी नागरिक’, ‘पंजा छाप गुड़ाखू’ आदि लेखों  
 में भी चिन्ता उत्पन्न करनेवाले प्रश्नोंसे नहीं टकराया  
 गया है। समाचार-पत्रका पाठक भी समाचारोंके भरपूर  
 टकरानेके पश्चात् टकराते जानेकी मानसिकतासे दूर  
 हो जाता है। घोंघीके ये लेख सामान्य पाठककी आव-  
 श्यकताको भली प्रकार पूरा करते हैं। इससे अधिक  
 नहीं।

निबंधोंमें व्यक्ति प्रवृत्तियोंके प्रतिनिधि भर हैं।  
 मंगलू, बुधराम, जयाबेन, अब्दुल्ला, गिरिधर प्रसाद,  
 सूर्यनारायण आदि केवल व्यक्ति नहीं हैं। हमारे समय  
 में गयाराम, आयाराम, नटवरलाल आदि नाम मुहावरे  
 बन गये हैं। कुछ लेखोंमें तो व्यक्ति सूचक नाम भी नहीं हैं।  
 ‘संगीत-प्रेमी डाक्टर’, ‘पक्की गायकीवाले गुरुजी’, ‘बहस-  
 प्रेमी नागरिक’ आदिमें यह बात मिलती है। इनमें  
 किसी सामाजिक-विद्रूपके बजाय निजी दुःखोंपर  
 विनोदपूर्ण छोटें हैं। ऐसे महानुभावोंकी समाजमें हमेशा  
 जरूरत रही है। हास्यके आलम्बनोंके महत्त्वको आ.  
 शुक्ल बता चुके हैं। प्रश्नोंसे जूझनेवाले व्यंग्यकार—  
 परसाईजी, सिद्धनाथ कुमार, शरद जोशी सुरेश आचार्य,  
 अरुण शुक्ल, सुदर्शन मजीठिया आदिने इनको लेखन-  
 सामग्रीके रूपमें कम स्वीकार किया है। घोंघीने यह  
 कमी पूरी करनेके प्रयास किये हैं।

हास्य और व्यंग्य—दोनोंके लिए आवश्यक है कि  
 लेखकमें भाषाकी पकड़ अन्य लेखकोंसे अधिक हो।  
 अंग्रेजीके सर्वश्रेष्ठ हास्य-लेखक पी. जी. वुडहाउस की  
 प्रमुखतम विशेषता यही है कि वे अंग्रेजी भाषाकी क्षम-  
 ताओंके उपयोगमें अन्यतम हैं। हास्य और व्यंग्यकार  
 लतीफ घोंघीने भाषा-शिल्पीके रूपमें अनेक अवसरोंपर  
 अपने सामर्थ्यके परिचय दिये हैं।

“मन्त्रीजीकी जिन्दगीके दो प्रयोग हैं। पहला  
 चुनाव लड़ना और दूसरा झंडा फहराना। चुनाव  
 लड़ना उनकी विवशता है तथा झंडा फहराना उनका  
 नैतिक कर्तव्य”, “मैं तो अनशनको एक लोकप्रिय विधा  
 मानता हूँ”, “कानको सीधा पकड़ें या घुमाकर, कान  
 कान ही होता है। पार्षदको घरमें पकड़ें या नगर-  
 पालिकामें, पार्षद पार्षद ही होता है” आदि वाक्य लेखों  
 में मिलते हैं। किन्तु ये व्यंग्यके अवसरोंपर ही हैं, हास्य  
 के निर्माणमें ऐसे भाषा-शिल्पका प्रयोग शायदही मिले।  
 घोंघीमें, जो कि मूलतः हास्य और विनोदभरी विकोटी  
 के लेखक हैं उनमें, यह कमी खटकती है। घोंघी हिन्दी



के पी. जी. वुडहाउस बनना भी नहीं चाहते तथापि, इस विशेष लेखनके लिए आगे बढ़नेका मार्ग इसी शैली द्वारा खुलता है।

एकाध उक्ति घोंघीकी चूकको प्रदर्शित करती है। "मैंने देखा कि नेताजी हीटपर आ गयेथे" (नेताजीका कुरता) में 'हीटपर आना' पशुओंकी एक विशेष स्थिति की सूचना देनेके लिए प्रयुक्त होता है। लेखमें ऐसा कुछ सन्दर्भ नहीं है। अतएव मुहावरा असंगत हो गया है।

अखबारी-कॉलमका लेख पाठकको प्रतिदिन एक के हिसाबसे मिलता है। इसलिए लेखकका अन्दाजे बयां पाठकको नया लगता है, कमसे कम सपाट नहीं लगता। पुस्तकमें संकलित लेखोंको एक या दो बैठकोंमें पढ़नेपर, चार-पाँच लेखोंके बाद एकरसताका अनुभव होना स्वाभाविक है। हमने सभी लेखोंको एक बैठकमें पढ़ा है। अपने निष्कर्षको अंकुशमें रखते हुए प्रारंभके लेखोंके पढ़नेसे बनी धारणाको महत्त्व देनेका प्रयास करते हुए भी संभव है कि घोंघीकी शैलीपर कहीं अतिरिक्त अनुदारता आ गयी हो। रवीन्द्र त्यागीने घोंघाको व्यंग्य

क्षेत्रके पाँच पाण्डवोंकी सूचीमें गिना है। इतना हम विश्वासके साथ कह सकते हैं कि घोंघी न तो गदाधारी भीम हैं और न ही गाण्डीवधारी अर्जुन। उनके प्रहार सीमित संख्यामें तथा हलके हैं। "कई लोग तो धोती अपने विधानसभा क्षेत्रमें पहनते हैं और गठान बंधवाने दिल्ली चले जाते हैं" जैसे एक-दो प्रयोगोंके बलपर वे भीम या अर्जुन नहीं बन गये हैं। भविष्यमें हम प्रतीक्षा करेंगे कि घोंघी इस लेखन शैलीको अधिक अपनायेंगे तथा लिखेंगे 'दिल्लीवालोंकी धोतीकी गठान ढोली होने लगती है तब उन्हें प्रदेशोंकी ओर ताकना पड़ जाता है।'

लतीफ घोंघीके लेखनमें ताजगी है, उनका अनुभव भी व्यापक है। लेखनको सोद्देश्य बनानेमें अवश्य वे कम रुचि रखते हैं। उनके पास अभिव्यक्ति है किन्तु अभिव्यक्तिके कारण सशक्त नहीं है। कमसे कम आलोच्य लेखोंमें यही लगता है। हम क्षीरकी मात्रामें वृद्धिकी कामना करते हैं। क्योंकि, लतीफ घोंघी अखबार के लेखक मात्र नहीं हैं। उनके लेख पुस्तक रूपमें पुस्तकालयोंमें आगये हैं। □

## धर्म और चिन्तन

### दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनिः

लेखक : कामताप्रसाद जैन

समीक्षक : डॉ. निजामउद्दीन

आलोच्य पुस्तक जैनधर्मकी दिगम्बर शाखाकी विशिष्ट रचना है। इसमें दिगम्बरत्वका विशद, तार्किक, प्रामाणिक विवेचन किया गया है। ग्रन्थमें दी गयी पाद-टिप्पणियाँ इसकी प्रामाणिकतामें वृद्धि करती

हैं। यह एक मौलिक ग्रन्थ है और प्रचुर सामग्रीके कारण संदर्भ ग्रन्थके रूपमें मान्य है।

लेखकने दिगम्बरत्वके बहुमुखी पहलुओंको समझ रखकर उसका विभिन्न आयामोंमें विश्लेषण किया है। दिग-सर्वप्रथम 'दिगम्बरत्व' को व्याख्यायित किया है। दिग-म्बर = दिक् + अम्बर; अर्थात् दिशाएं ही जिसका वस्त्र है ऐसा मुनि, साधु। यह शब्द विशेषकर जैन धर्मके मुनियोंके लिए प्रयुक्त किया जाता है। भारतीय संस्कृति

मूलतः दो धाराओंमें विभक्त होकर प्रवाहित हुई— (१) श्रमण संस्कृति (२) ब्राह्मण संस्कृति (या वैदिक संस्कृति)। श्रमण संस्कृतिमें आत्मा केन्द्रमें रहती है। वहाँ किसी सृष्टिकर्ताको मान्यता नहीं दी गयी। उसके विपरीत ब्राह्मण संस्कृति ईश्वरको—

१. प्रका : श्री ग्धुबरदयाल जैन स्मृति ग्रन्थमाला, वी २/२३ शार्पिंग सेंटर, सफदरगंज, नयी दिल्ली-११००२६। पृष्ठ : १६२; डिमा. ६१; मूल्य : स्वाध्याय।



परमसत्ताको सृष्टिकर्ता मानती है। श्रमण संस्कृतिमें दिगम्बर मुनिमें २८ गुणोंकी अवधारणा की गयी है, बिना उनके मुनि नहीं होसकता। इन २८ गुणोंका रेखांकन पृ. २७-२६ पर विस्तारसे किया गया है। दिगम्बर मुनि निर्वस्त्र या नग्न रहते हैं, उनके आचार्य भी नगनावस्थामें विराजमान मिलेंगे। वे खड़े-खड़े कर-पात्रमें आहार लेते हैं। जैसे वस्तुका धर्म उसका स्वभाव होता है इसी प्रकार मनुष्यका निज रूप, उसका नग्नत्व या दिगम्बरत्व है, प्रकृत स्वभाव है। लेकिन यहां यह बात ध्यातव्य है कि तनकी नग्नताके साथ। पूर्व मनकी नग्नता—उसका निर्विकारी होना आवश्यक है। कबीर ने ठीक कहा है कि जोगिया वस्त्र रंगनेसे क्या लाभ, मन को पहले रंग, तब सही अर्थोंमें जोगी, योगी होगा। प्रथम शताब्दी ई. पू. के आचार्य कुन्दकुन्दने मनके निर्विकारकी बात कही है—‘जिन-भावनासे रहित केवलतन नग्न व्यक्ति दुःख पाता है, वह संसार-सागरमें गोते खाता है, उसे बोधिकी प्राप्ति नहीं होती। अतः तनसे नग्न होनेके पहले मनसे नग्न, निर्विकारी होना आवश्यक है।’ (भावपाहुद, गाथा ६८) मोक्ष-साधना के लिए दिगम्बरत्व अनिवार्य है, यह दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है। मुनि यथाजातरूप होता है—नग्न बालक के समान। वह पूर्णरूपेण निष्परिग्रही होता है। अपने लिए कुछभी ग्रहण नहीं करता, तिलका तुषमात्र भी ग्रहण नहीं करता। वह अपरिग्रहधारी होता है; तनसे, द्रव्यके रूपमें कुछ ग्रहण नहीं करता, किसी वस्तुका परिग्रह नहीं करता और न वह मनसे परिग्रही होता है। वह राग-द्वेष-मुक्त होता है। कषाय-मुक्त होता है। तृष्णा-कामनापर विजय पानेवाला होता है।

लेखकने आदिनाथ भगवान् ऋषभदेवकी नगनावस्थामें मान्यता दी है। उनके सुपुत्र भगवान् बाहुबली को नग्न खडासन मूर्तियां अनेक स्थानोंपर देखी जा सकती हैं। श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) की विशालाकार मूर्ति भगवान् बाहुबलीकी सर्वोच्च मूर्ति मानी जाती है। यह मूर्तिकलाका अद्वितीय नमूना है। भगवान् महावीरकी मूर्तियां नगनावस्थामें सैकड़ों स्थानों/मंदिरों में प्रतिष्ठित हैं। हिन्दू धर्मके आदिकालमें, वैदिक युग में, ओपनिषदिक युगमें साधुओंके नग्न होनेकी चर्चा (पृ. १२-१६) सोदाहरण की गयी है, जो न केवल शानवर्धक है बल्कि मार्गदर्शक भी है। इसी प्रकार ईसाई धर्म (पृ. २४-२५) और इस्लाम धर्म (२०-

२३) में दिगम्बरत्वके महत्त्वकी विवेचना की गयी है। १४वीं शताब्दीके ऋषिपरम्पराके प्रवर्तक शेख नूरुद्दीन वली एकमात्र चौगा (‘फिरन’) धारण करते थे। उनका कश्मीरकी आध्यात्मिक परम्परा—निर्गुणभक्तिपर अतुलित प्रभाव है। उनकी समसामयिक लल्लेश्वरी नगनावस्थामें विचरण करती थीं। उन्हें श्रद्धावश ‘ललछद’ कहा जाता है। आज भी मुसलमान उनके ‘बाखों’ को बड़ी श्रद्धासे पढ़ते हैं। उन्हें ‘लल आरिफा’ कहते हैं। भारतके अनेक सूफी सन्त अपरिग्रही थे। हल्लाज सरमदने स्पष्ट कहा जिसमें दोष पाया उसे वस्त्र दिये और जिसे निर्दोष पाया—ऐबसे ऊपर, उसे नंगेपनका लिबास दिया—“पोशानीद लबास हरकरा ऐबे दीद, बे ऐब रा लबास उर्यानी दीद।” (पृ. २२)। यही वह मजजुब, दरवेश सरमद थे औरंगजेबने कत्ल करवा दिया था। जो रुवाई यहां उद्धृत है उसकी अंतिम पंक्ति में ‘अर्यानी’ छपा है, यह ‘उर्यानी’ (नग्नता) शब्द है। दिगम्बरत्वके सदर्थमें जलालुद्दीन रूमीकी विख्यात ‘मसनवी’ से भी उद्धृत हैं जो पाठनीय हैं (पृ. २१)।

लेखकने अति परिश्रमसे दिगम्बर मुनिके पर्यायवाची शब्दोंका विशाल संग्रह यहां प्रस्तुत किया है, उनकी व्याख्या सोदाहरण भी कहीं-कहीं दी है। इन शब्दोंकी संख्या ३४ दी गयी है। जैनागमों तथा बौद्ध-बाङ्गमयसे यह शब्दराशि एकत्रित की है—निगभार, अकिचन, अचेलक, निगन्ध, आर्य, तपस्वी, श्रमण, अदि दिगम्बर मुनिके पर्याय हैं। इसके आगे ६ वें अध्याय प्रागितिहास कालमें दिगम्बर मुनिकी खोज की गयी जिसमें ‘व्रात्य जातिका’ का उल्लेख ‘अथर्ववेद’ में मिलता है। ‘व्रात्य’ दिगम्बर जैन माने गये हैं। पुराणों में—‘पद्म पुराण’, ‘बायु पुराण’, स्कन्धपुराण’ में दिगम्बर मुनिका वर्णन खोजा गया है। मौर्यकालमें दिगम्बर साधु प्रचुर मात्रामें विद्यमान थे, इसके ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। जैन मान्यताके अनुसार चन्द-गुप्त मौर्य जैन-धर्मानुयायी थे—उनके युगमें दिगम्बर मुनि थे। जो विदेशी—यूनानी भारत आये उनमें जैन मुनि अपने धर्मका प्रचार-प्रसार करते थे (पृ. ६६-६७)। गुप्त कालमें, हर्षवर्द्धनके युगमें कितनेही दिगम्बर जैन-आचार्य मौजूद थे। इनकी तालिका द्रष्टव्य है पृ. ७२, पृ. ७५ पर। चीनी यात्री हुएन-सांग, फाह्यान



(सातवीं शताब्दी) में भारत आयेथे, उन्होंने भी नग्न साधुओंका, उनकी केशकुचन क्रियाका उल्लेख किया है। बंगाल, कलिंग, कौशल, मालकूट प्रदेशोंमें जैन साधुओं, उनके मंदिरोंका वर्णनभी किया है। इस ऐतिहासिक सर्वेक्षण द्वारा लेखक कमलाप्रसाद जैन यही दर्शाना चाहते हैं कि दिगम्बर साधुओंकी परम्परा प्रागितिहास कालसे शुरू होकर अद्यावधि विराजमान है। मध्यकालमें—हिन्दू राज्योंमें दिगम्बर मुनि धर्म प्रचारमें लीन थे। श्रावस्ती (११ वीं शताब्दी) में जैनधर्म था। मथुरा, देवगढ़, मालवा, उज्जैन सर्वत्र जैन दिगम्बर साधु विहार करतेथे, चातुर्मास करतेथे। राजा भोज शैव था, उसके दरबारमें जैनाचार्य श्री शान्तिसेनने विद्वानोंसे परिसंवाद कियाथा। जैन मुनियों द्वारा रचितग्रन्थोंका विवेचन भी द्रष्टव्य है। गुजरात, सौराष्ट्र, राजपूताना (आजका राजस्थान) मध्यप्रान्त बंगालमें जैन धर्मका व्यापक प्रचार हुआ। उज्जैन, ग्वालियर, बिन्तीड़ देवगढ़, वाराणसर आदि जैन धर्मके केन्द्र स्थल थे। दक्षिण भारतमें दिगम्बर मुनिका विस्तृत वर्णन २१ वें अध्यायमें सुंदर रूपमें किया है। दक्षिणमें भक्ति आन्दोलन ६ वीं शताब्दीमें शुरू हो गयाथा। शंकराचार्यने दक्षिणसे उत्तरकी ओर धर्म-धारा प्रवाहित कीथी। “भक्ति द्राविड़ उपजी लाये रामानन्द” उक्ति भी इस ओर इंगित करती है कि भक्ति आन्दोलन दक्षिणसे शुरू होकर उत्तरकी ओर अग्रसर होता गया। दिगम्बर मुनि/आचार्य दक्षिणमें गये और वहां जैन धर्मका प्रचार किया, ऐसे ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। भगवान् बाहुबली तथा भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्तियोंका प्राचुर्य इस बातका द्योतक है कि उत्तरकी अपेक्षा दक्षिणमें जैनधर्मका, दिगम्बर सम्प्रदायका प्रचार अधिक था। लेखकने तमिल वेद ‘कुरल’ को आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित माना है (पृ. ६१, १०१), परन्तु इसे प्रामाणिक नहीं कहाजा सकता। तिरुवल्लुवर का ‘कुरल’ निवृत्तिमार्गी उत्कृष्ट काव्य है। इसमें अहिंसा, अपरिग्रहका वर्णन जैनधर्म-सम्मत है। मांसाहारका निषेध है, परन्तु दोनों लेखक पृथक् हैं। इस अध्यायमें जैनाचार्योंका उल्लेख भी है—उमास्वामी, समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक, जिनसेन, विद्यानन्द सभी दिगम्बर मुनि हैं। ये जैनाचार्य तत्त्वज्ञ थे, आयुर्वेद, मन्त्रशास्त्र, ज्योतिषज्ञान न्यायशास्त्रके प्रकाण्ड पंडित थे। जैनोत्कर्षको यहां साकार देखाजा

‘प्रकर’—जुलाई ६२—४६

सकता है। लेखकने जैनाचार्योंका परिचय संक्षिप्त-सा दिया है, इसे और विस्तृत दिया जाता और उनकी कृतियोंकी, साहित्यिक अवदानकी गहनतासे, सूक्ष्मतासे विवेचना होती तो अधिक लाभदायक होता।

संस्कृत-साहित्यमें दिगम्बर मुनियोंके संदर्भोंको खोजनेका प्रयास अच्छा है। भर्तृहरिक का ‘वैराग्यशतक’ दिगम्बर मुनियोंके लक्षण उद्धृत हैं। ‘मुद्राराक्षस’, ‘पंचतंत्र’, प्रबोधचन्द्रोदय’, ‘गोलाध्याय’ आदि संस्कृत-कृतियोंमें दिगम्बर सम्प्रदायके प्रसंगोंको खंगाला गया है। मुस्लिम काल तथा ब्रिटिश कालमें जैनधर्म, दिगम्बराचार्योंका उल्लेख पठनीय है। जैनाचार्योंका मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध मुसलमानोंसे मुस्लिम शासकोंसे सदा रहा। कामताप्रसाद जैनका आलोच्य ग्रन्थ किसी शोधग्रन्थसे कम नहीं। इसमें ६०० से अधिक संदर्भोंको समाविष्ट करनेका विद्वत्तापूर्ण, खोजपूर्ण कार्य किया है। “भारतीय पुरातत्त्व और दिगम्बर मुनि” नामक अध्यायमें लेखक ने अपने मतकी संपुष्टिमें शिलालेखोंको भी प्रमाणिकता से उल्लिखित किया है। जैनधर्मकी विशेषकर सम्प्रदाय की दिगम्बराचार्योंकी सम्यक् जानकारी देनेवाली यह कृति महत्त्वपूर्ण है। जो लोग दिगम्बरत्वको, नग्नताको धृष्टित समझते हैं, उनकी समस्याओं, संदेहोंका निराकरण, परिष्करण इस श्रेष्ठ पुस्तक “दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि” के अध्ययनोपरान्त स्वतः हो जायेगा। इस पुस्तकका मूल्य रूपए या मुद्रामें नहीं, स्वाध्यायमें है और स्वाध्यायके बिना हमारा जीवन कृत्रिम खोखला निष्प्राण बनताजा रहा है। □

## ऋषिवर बोले?

लेखक : रवीन्द्र

समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

वर्तमान युगकी आपाधापी, मूल्य-विषटन, स्वार्थ-परता, किसी वर्ग या सम्प्रदाय प्रदत्त प्रतिबद्ध जीवन दृष्टिमें सर्वत्र संक्रामक स्थिति आ गयी है। ऐसे समय में आध्यात्मिक चिन्तनकी बात करना या कहना उल्टी गंगा बहाना कहाजा सकता है, पर इसमें दो मत नहीं

१. प्रका. : हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. ११०६,  
पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१ ; पृष्ठ :  
२०३ ; हिमा. ६१ ; मूल्य : २०.०० रु.।



हो सकते कि मनुष्य जब-जब अपने-अपने बोधसे प्रता-  
ड़ित और स्वयं अपने लोगोंमें ही अजनबी होने लगता  
है, तब उसे अध्यात्मही स्वस्थ-मानस-सम्पन्न बनाता है।  
'ऋषिवर बोले' कृति ऐसेही अध्यात्म चिन्तनका वह  
स्वानुभूत रूप है जो—'पर उपदेश कुशल बहुतेरे'  
मे पृथक् कथात्मक वृत्तिमें जीवनानुभवसे मानव-मनको  
प्रेरणा देती है और सहज मानवताका अर्थ बतानेका  
सफल प्रयत्न करती है।

आलोच्य कृति में सतहत्तर वृत्त हैं। वृत्त इसलिए  
कहना उचित लगा कि प्रत्येक स्थितिका उल्लेख स्वतंत्र  
है और पृथक् चिन्तनका कोण लिए हुए है। ऋषिवर  
का प्रथम बोलही ऐसा मर्मभरा है कि स्वयंमेव वह  
दिशाद्योतक हो जाता है। अध्यापक मनुष्योंकी नयी  
पौधकामाली होता है। अच्छा अध्यापक अपने प्रभावमें  
आनेवालोंको जीवन-दिशा दे सकता है...लेकिन फिर  
भी समाजमें उसे न तो मान मिलता है, न धन।"  
(पृ. १) अन्य छियत्तर वृत्तोंमें विभिन्न दृष्टियोंसे  
जीवनको दिशा एवं गति देनेके लिए कथान्तर्गत एवं  
दृष्टान्तरूपेण ऐसे सुझाव हैं जो परम्परागत रूपमें बौद्ध  
कथाओंके समीप दिखायी देते हैं।

आलोच्य कृतिमें यदि इन समग्र वृत्तोंको वर्गीकृत  
किया जासकता तो अच्छा रहता क्योंकि कुछ वृत्त  
शैव कालकी सीखके रूपमें हैं तो कुछ युवाओं एवं  
प्रौढ़ वर्गके लिए भी है। यहां यह भी स्पष्ट करना  
उचित है कि इस वर्गीकृत रूपसे विशेष प्रभाव नहीं  
पड़ता क्योंकि अनुभूतिमय जीवन मर्म और अध्यात्म  
की सीखके लिए यह कृत्रिम कहा जासकता है, प्रस्तुती-  
करणकी वैज्ञानिक विधिके रूपसे ही यह विधान संकेतित  
है। कुछ चिन्तन वृत्त एक साथही उपयुक्त प्रतीत होते  
हैं यथा—भारतकी प्रगतिका तरीका, एकता और  
मिन्नता, स्वाधीनता, भारतमाता तो एक वर्गमें आत्म-  
बलिदान, सहनशक्ति, मेहनतकी कमाई, जीवन विज्ञान,  
ब्रह्मचर्य, श्रद्धा, ध्यान, प्रेम, समर्पण, आत्महत्या, लोभ,  
अहंकार, कल्पना, कामवासना, महत्त्वाकांक्षा, अभीप्सा,  
आदि तो दूसरे वर्गमें चोरी (१-८२), कुछ सीखभरी  
कहानियाँ (१ व २), पूरब और पश्चिमकी कहानियाँ  
आदि।

लेखकने जीवनके विविध प्रसंगों एवं क्षेत्रोंमें  
अध्यात्म चिन्तनका संस्पर्श देकर मानव जीवनकी एक  
सपाट व्यवस्थाके जलाशयमें एक पत्थर भर उछाला है।

जो लहर-प्रति लहर ऐसे चिन्तन स्पर्श देता है जिसमें  
वैचारिक धरातलकी मानवधर्म विषयक विविध चिन्तन  
स्पष्ट होते जाते हैं। इसमें जहां अवतारवाद,  
सत्यकी जय, शरीरपर मनका प्रभाव, योग, शारीरिक  
शिक्षा, धनका उपभोग, आशाकी घड़ी, स्त्रियोंकी  
समस्या, पुरुष और स्त्री, चमत्कार योगके बारेमें, योग  
के लिए पात्र, यौवनकी देहलापर जीवनानुभवोंका  
निष्कर्ष घोषित है, वहीं मनुष्य बीना नहीं है, गुरु कौन  
है, गगन ही जिनकी सीमा है, पूर्णताके पथपर, अपनी-  
अपनी बातें, शरीरकी प्रगति, ऊंचा उठना चाहतेहो,  
बुरे विचारोंसे कैसे बचें—विषयोंपर सुचिन्तित विचार  
का सारतत्व मानव जीवनकी दिशा निर्दिष्ट करता है।

पुस्तक उपादेय है। माध्यमिक शिक्षा स्तर तक  
जहाँ नैतिक शिक्षाका अध्ययन-अध्यापन पाठ्यक्रमका  
अंग बनाया गया है, वहाँ ऐसी पुस्तकें एक अभाव  
की पूर्ति करेंगी, पर इतनी प्रचुर सामग्री लेकर नहीं।  
उद्देश्यपूर्तिके लिए इस कृतिको वर्गीकृत रूपमें १०-११  
कथावृत्तोंके खण्ड प्रकाशित करने चाहिये। दूसरी ओर  
साक्षरता अभियानके क्षेत्रमें प्रौढ़ शिक्षाके निमित्त  
भी यह कृति लघु आकारीय और सोलह प्वाइंटमें  
प्रकाशित की जायेगी तो इसकी उपादेयता और भी  
व्यापक हो सकती है। एक लम्बे अन्तरालके बाद ऐसी  
अच्छी एवं सार्थक कृति देखना-पढ़ना मैं सौभाग्य  
मानता हूँ। □

## सावधान रहें

भारत सरकार हिन्दीका व्यवहार  
धीरे-धीरे कम कर रही है

एक उदाहरण : सूचना प्रसार मन्त्रालयके 'विज्ञा-  
पन और दृश्य प्रचार निदेशालय' ने (१) हिन्दी  
पत्र-पत्रिकाओंको सभी पत्र आदि हिन्दीमें भेजने बन्द  
कर दिये हैं, (२) हिन्दी पत्रोंका उत्तर देना बन्द कर  
दिया है, (३) हिन्दीमें भेजे जानेवाले देयकोंका भुगतान,  
हमारे अनुभवसे, गत दो वर्षसे बन्द किया हुआ है।

इसी मन्त्रालयके आकाशवाणी और दूरदर्शनने  
हिन्दी समाचारोंकी हिन्दीका उद्धारण शुरु कर दिया  
है जिससे हिन्दी देश की सर्वा भारतीय भाषाओंसे अलग-  
थलग पड़ जाये।



## स्वाधीनता दिवसके अवसरपर प्रकाश्य 'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' विशेषांक

### [समीक्ष्य कृतियां]

भाषा	कृति	विधा	कृतिकार	समीक्षक
असमी	ब्रह्मपुत्र इत्यादि पद्य	काव्य	अजित बरुवा	नीता बनर्जी
उड़िया	आहि नक	काव्य	जगन्नाथप्रसाद दास	डॉ. वनमाली दास
कन्नड़	सिरिसंपिगे	लोकनाटक	चन्द्रशेखर कंबार	डॉ. शरेशचन्द्र चुलकीमठ
कोंकणी	सपनकुलां	कहानी	मीना काकोडकार	डॉ. चन्द्रलेखा डि सोजा
गुजराती	टोळां अवाज घोंघाट	काव्य	लाभशंकर ठाकर	डॉ. रमणलाल पाठक
डोगरी	अपनी डफली अपना राग	नाटक	मोहन सिंह	डॉ. ओम् गोस्वामी
तमिल	गोपलपुरत्तु मक्कळ	उपन्यास	कि. राजनारायणन्	डॉ. शेषन्
तेलुगू	इट्लु, मी विधेयुडु	कहानी	भमिडिपाटि रामगोपालम्	प्रोफेसर चक्रवर्ती
		काव्य	गिर्मी शेर्पा	डॉ. चन्द्रेश्वर दुवे
बंगला	सादा खाम	उपन्यास	मति नन्दी	डॉ. अवधेशप्रसाद सिंह
मणिपुरी	नुमिति असुम थेङ्गजील्लकलि	(कहानी)	यूमलेम्बम इबोम्बा सिंह	डॉ. देवराज
मराठी	टीका स्वयंवर	आलोचना-लेख	भालचन्द्र नेमाडे	डॉ. इबोहल काङ्गम
मलयालम	छत्रवुं चामर वु	कालिदास-अध्ययन	एम.पी. शंकुणि नायर	डॉ. भगवानदास वर्मा
मैथिली	पसिखैत पाथर	नाटक-एकांकी	रामदेव झा	डॉ. एन.पी. कुट्टन पिल्लै
राजस्थानी	म्हारी कवितावां	काव्य	प्रेमजी प्रेम	डॉ. नरनारायण राय
संस्कृत	स्वातंत्र्यसम्भवम्	महाकाव्य	रेवाप्रसाद द्विवेदी	डॉ. प्रेमचन्द्र विजयवर्गीय
सिन्धी	सोच जूँ सूरतूँ	काव्य	हरिकान्त जेठवाणी	डॉ. कृष्णकुमार
हिन्दी	(१) मैं वक्तके हूँ सामने	काव्य	गिरिजाकुमार माथुर	प्रो. जगदीश लछाणी
				(१) डॉ. हरदयाल
				(२) डॉ. वीरेन्द्रसिंह
				डॉ. मूलचन्द सेठिया
	(२) दशद्वारसे सोपान तक आत्मकथा		डॉ. हरिवंशराय बच्चन	

आनुमानिक मूल्य : ४०.०० रु.

□ इस विशेषांकमें विज्ञापनके लिए प्रकाशक, पुस्तक-विक्रेता आमन्त्रित हैं।

□ आदेश और विज्ञापन-सामग्रीके साथ राशि अग्रिम भेजें।

‘प्रकर’, ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.



# प्रकर

भाद्रपद : २०४६ [विक्रमाब्द] :: अगस्त : १९६२ [ईस्वी]

समाज शास्त्र दर्शन शास्त्र विज्ञान जीवन प्रौढ साहित्य कविता उपन्यास कथा कविता संग्रह साहित्य  
विज्ञान भाषा विज्ञान अर्थशास्त्र भाषा विज्ञान साहित्य उपन्यास कथा कविता संग्रह साहित्य  
स्वाधीनता दिवस उपलक्ष्य में  
परस्कृत भारतीय साहित्य  
विज्ञान दर्शन शास्त्र दर्शन शास्त्र विज्ञान जीवन प्रौढ साहित्य कविता उपन्यास कथा कविता संग्रह साहित्य  
विज्ञान भाषा विज्ञान अर्थशास्त्र भाषा विज्ञान साहित्य उपन्यास कथा कविता संग्रह साहित्य



## केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

- हिन्दी और तमिल की समान स्रोतीय भिन्नार्थी शब्दावली
- हिन्दी और मणिपुरी परसर्गों का तुलनात्मक अध्ययन
- समसामयिकता और आधुनिक हिन्दी कविता
- हिन्दी रूपांतरण व्याकरण के कुछ प्रकरण
- साहित्य में बाह्य प्रभाव
- समान स्रोत और भिन्न वर्तनी की शब्दावली (ओड़िया-हिन्दी और हिन्दी-असमीया)
- पाणिनी व्याकरण में प्रजनक प्रविधियां
- शैली और शैली विज्ञान
- हिन्दी का भाषावैज्ञानिक व्याकरण
- हिन्दी शब्दावली और प्रयोग भाग १-२
- जनजाति भाषाएं और हिन्दी शिक्षण
- बारहवीं सदी से राजकाज में हिन्दी
- हिन्दी की आधारभूत शब्दावली
- शैली विज्ञान और आलोचना की नयी भूमिका
- तेलुगु और हिन्दी ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन
- हिन्दी साहित्य का अध्यापन
- भाषा मूल्यांकन तथा परीक्षण
- उच्च स्तरीय अंग्रेजी-हिन्दी अभिव्यक्ति पुस्तक
- बैकिंग शब्दावली
- कोश निर्माण : सिद्धान्त और परम्परा
- देवनागरी लेखन तथा हिन्दी वर्तनी व्यवस्था
- व्याकरण सिद्धान्त और व्यवहार
- प्रयोजनमूलक हिन्दी व्याकरण
- आंध्र प्रदेश में हिन्दी शिक्षण की समस्याएं
- प्रेमचन्द और भारतीय साहित्य
- हिन्दी का सामाजिक संदर्भ
- भाषा अधिगम
- भाषा शिक्षण सिद्धान्त और प्रविधि
- हिन्दी क्रिया : काल पक्ष एवं वृत्ति
- शोध प्रबन्ध सार
- शिक्षण सामग्री-निर्माण: सिद्धान्त और प्रविधि
- शिक्षण सामग्री-निर्माण : प्रक्रिया और प्रयोग
- अनुवाद : विविध आयाम
- भाषा अनुरक्षण एवं भाषा विस्थापन
- मनोभाषा विकास
- संप्रेषणपरक व्याकरण : सिद्धान्त और प्राकृत
- कोश विज्ञान कोश
- भाषा संप्राप्ति मूल्यांकन
- प्रयोजनमूलक हिन्दी
- हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान
- भारतेंदु : पुनर्मूल्यांकन के परिदृश्य
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और भारतीय समीक्षा
- हिन्दी तेलुगु : व्याकरणिक संरचना
- हिन्दी के अव्यय वाक्यांश
- हिन्दी का कारक व्याकरण
- हिन्दी शिक्षण : अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य
- दूरस्थ शिक्षण में भाषा शिक्षा
- शिक्षा संदर्भ और भाषा
- आधुनिक हिन्दी काव्य के कुछ पात्र
- आधुनिक भारतीय शिक्षा दर्शन
- संप्रेषण और संप्रेषणात्मक व्याकरण
- बैकिंग हिन्दी पाठ्यक्रम
- भाषा शिक्षण तथा भाषा विज्ञान
- कोश विज्ञान : सिद्धान्त और मूल्यांकन
- हिन्दी साहित्य की अधुनातन प्रवृत्तियां
- शब्द : अध्ययन और समस्याएं
- हिन्दी संरचना का अध्ययन-अध्यापन
- संकेतन और संकेत विज्ञान
- भाषाविज्ञान की अधुनातन प्रवृत्तियां
- अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य की परंपरा
- पाठ भाषा विज्ञान तथा साहित्य
- सूक्ष्म शिक्षण एवं शिक्षण व्यूह रचना (हिन्दी शिक्षण के संदर्भ में)
- द्वितीय भाषा शिक्षण में अभिक्रमित अधिगम की तकनालॉजी
- रजत जयंती वर्ष ग्रंथ

संपर्क सूत्र—प्रकाशन प्रबंधक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, ग्रागरा-५

'प्रकर'—अगस्त '६२



# प्रकर [स्वाधीनता-दिवस अंक]

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार  
सम्पक : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग  
दिल्ली-११०००७.

वर्ष : २४ अंक : ८ भाद्रपद : २०४६ [विक्रमाब्द] अगस्त : १९६२ [ईस्वी]

## समोक्षित पुरस्कृत ग्रन्थ एवं आलेख

### सम्पादकीय

साहित्य निरपेक्ष साहित्य अकादमी, विघटनमूलक पुरस्कृत साहित्य ३ वि. सा. विद्यालंकार

### आत्मचित्र : हिन्दी

'सरस्वती सम्मान' से सम्मानित 'वचन' का आत्मचरित ६ डॉ. मूलचन्द सेठिया

### काव्य

मैं वक्तके हूँ सामने (हिन्दी)—गिरिजाकुमार माथुर १६ (१) डॉ. हरदयाल

आहि नक (उड़िया)—जगन्नाथप्रसाद दास १६ (२) डॉ. वीरेन्द्रसिंह

टोळीं अवाज घोंघाट (गुजराती)—लाभशंकर ठाकर २२ डॉ. वनमाली दास

(राजस्थानी) : म्हारी कवितावां—प्रेमजी प्रेम २६ डॉ. रमणलाल पाठक

(सिन्धी) : सोच जूँ सूरतूँ—हरिकान्त जेठवाणी ३१ डॉ. प्रेमचन्द विजयवर्गीय

उपन्यास ३६ प्रो. जगदीश लछाणी

(बंगला) : सादा खाम—मति नन्दी ३८ प्रा. अवधेशप्रसाद सिंह

(तमिल) : गोपलपुरत्तु मक्कळ्—कि. राजनारायन् ४१ डॉ. एम. शेषन्

कहानी ४६ डॉ. चन्द्रलेखा डि सोजा

(कोंकणी) : सपनफुलां—मीना काकोडकार ४८ डॉ. देवराज

(मणिपुरी) : नुमिति असुम थेडजिल्लकिल—युम्लेम्बम इबोमचा ४८ डॉ. इब्रोहल काङ्जम

(तेलुगु) : इटलु, मी विधेयुडु—भमिडियाटि रामगोपालम ५५ डॉ. चक्रवर्ती

नाटक-एकांकी ५६ डॉ. शरेशचन्द्र चुलकीमठ

(कन्नड़) : सिरिसंपिगे—चन्द्रशेखर कंबार ६२ श्री ओम् गोस्वामी

(डोगरी) : अपनी डफली अपना राग—मोहनसिंह ६५ डॉ. नरनारायण राय

(मेथिली) : पणिझैत पायर—रामदेव झा ६६ डॉ. भगवानदास वर्मा

विवेचन-निबन्ध ७३ डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै

(मराठी) : टीका स्वयंवर—भालचन्द्र नेमाडे ६६ डॉ. भूपेन्द्रराय चौधरी

(मलयालम) : छत्रवुं चामर वुं—एम. पी. शङ्कुणि नायर ७३ डॉ. कृष्णकुमार

परिशिष्ट ८१ डॉ. भूपेन्द्रराय चौधरी

(असमी) : ब्रह्मपुत्र इत्यादि पद्य—अजित बरुआ ८४ डॉ. कृष्णकुमार

(संस्कृत) : स्वातन्त्र्यसम्भवम्—रेवाप्रसाद द्विवेदी ८६

कृति, कृतिकार, समीक्षक-परिचय ८६

'प्रकर'—भाद्रपद २०४६—१



## सितम्बर १९६२ के प्रमुख प्रकाशन

प्रतिष्ठित भारतीय	महामहिम डॉ. शंकरदयाल शर्मा	६०.००
देशमणि	"	७५.००
हमारे चिन्तन की मूलधारा	"	६०.००
भारतीय महाकाव्य	नगेन्द्र	२२५.००
हिन्दी-अंग्रेजी अभिव्यक्ति कोश	कैलाशचंद्र भाटिया	२५०.००
आधुनिक जीवन और पर्यावरण	दामोदर शर्मा/हरिश्चंद्र व्यास	२००.००
पर्यावरण शिक्षा	हरिश्चन्द्र व्यास	१५०.००
महादेवी की काव्य-साधना	सुरेशचन्द्र गुप्त	६०.००
रामप्रिया वैदेही (सीता-चरित)	राजेन्द्र अरूण	"
मृगनयनी (उपन्यास)	बुन्दावनलाल वर्मा	"
विराटा की पद्मिनी (उपन्यास)	"	"
अपनी कहानी (आत्मकथा)	"	"
ब्रह्मपुत्र (उपन्यास)	देवेंद्र सत्यार्थी	१५०.००
धरती का बेटा (संस्मरण)	विष्णु प्रभाकर/प्रभाकर माचवे	६५.००
आदमखोर (उपन्यास)	श्रवणकुमार गोस्वामी	१००.००
ज्यों मेंहदी को रंग (उपन्यास)	श्रीमती मृदुला सिन्हा	६०.००
आँखों की दहलीज (उपन्यास)	श्रीमती मेहरन्निसा परवेज	५०.००
गृह प्रवेश (कहानी-संग्रह)	श्रीमती सूर्यबाला	६५.००
बड़ी मछली (कहानी-संग्रह)	दयाकृष्ण विजयवर्गीय	६५.००
आँच का रंग (कहानी-संग्रह)	ललिता शुक्ल	६०.००
ढहता कुतुब मीनार (कहानी-संग्रह)	श्रीमती मेहरन्निसा परवेज	६५.००
आओ मॉडल बनायें (विज्ञान)	श्यामसुन्दर शर्मा	१२५.००
आओ प्रयोग करें (विज्ञान)	"	१००.००
राजधानी कल्चर (निबन्ध)	गणेश मंत्री	५०.००
आधी धूप (कविता-संग्रह)	सुश्री सुनीता बुद्धिराजा	६०.००
शापित यक्षिणी (कहानी-संग्रह)	श्रीमती विद्यावती दुबे	६०.००
चुने हुए बालगीत-१	सं. रोहिताश्व अस्थाना	१२५.००
चुने हुए बालगीत-२	"	१२५.००

अन्य प्रकाशनों की जानकारी के लिए नया सूचीपत्र निशुल्क मंगाएं

### प्रभात प्रकाशन

२०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली - ६

दूरभाष : ३२६४६७६, ३२७६३१६

'प्रकर'—अगस्त ६२—२



## साहित्य-निरपेक्ष साहित्य अकादमी, विघटनमूलक पुरस्कृत साहित्य

साहित्य अकादमीने १९६१ के लिए भारतीय भाषाओंकी जिन पुस्तकोंको पुरस्कृत कियाथा, उस पुरस्कार-वितरण समारोहके आयोजनमें पुरस्कृत रचनाकारोंको अपने उद्गार व्यक्त करनेका भी अवसर प्रदान किया गयाथा । इस अवसरपर भारतीय भाषाओंके जिन रचनाकारोंने भारतीय भाषाओंकी इस धरतीसे अपना रथ ऊपर ले जाकर अपने पूर्व गौरांग प्रभुओंकी भाषामें अंग्रेजीमें जो प्रवचन दियाथा, उनमें महिमामयी पंजाबी भाषाके कवि एवं 'झनां दी रात' काव्य-संकलन जैसे महाग्रन्थ (पृष्ठ संख्या लगभग ८२८) के रचयिता हरिन्दरसिंह महबूब भी थे । उनके प्रवचनके जिस अंशने हमारा ध्यान विशेष रूपसे खींचाथा, उस अंशका अनुवाद प्रस्तुत करना इस लेखकी दृष्टिसे पर्याप्त रोचक तो होगा, बिके रूपमें पुरस्कृत इस पद्यकारकी मानसिकता जहाँ आतीहै, वहाँ उस मानसिकताके निर्माण में सहायक काव्येतर स्थितियोंके योगदानके मूल्यांकन का भी अवसर मिलताहै । उनका प्रबोधन था :

“मेरा काव्यात्मक अनुभव बताताहै मानसिक पीड़ा की जिस कठिन परीक्षामें से निकलना पड़ताहै उसे साकार किये बिना काव्यात्मक उत्कर्ष प्राप्त नहीं किया जा सकता । मानसिक व्यथाको अनेक रूपोंमें परिगणित कियाजा सकताहै—राजनीतिक दमन, सामाजिक अन्याय, अस्तित्व सम्बन्धी तनाव अथवा प्रबल मानसिक द्वंद्वता । साहित्यिक मनोवृत्तिको इतना संवेदनशील तो होना ही चाहिये कि इस प्रकारकी तिमिराच्छन्न स्थितियोंके विरुद्ध अपना प्रतिवाद अंकित कर सके । मानवीय अस्तित्वके अन्तिम उन्मूलनके विकट भयका कविको विरोध करनाही चाहिये...”

यह ‘प्रबोधन’ मानवीय अस्तित्वके अन्तिम उन्मूलन के प्रयत्नसे आक्रान्त है, परन्तु उस अन्तिम स्थितिके

उत्पन्न होनेसे पूर्वकी प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रियाके प्रति कवि की निरपेक्षता अधिक संतुष्ट करनेवाली है और कवि अथवा किसीभी संवेदनशील व्यक्तिकी संवेदन-क्षमतापर प्रश्नचिह्न लगा देतीहै । इसलिए यह अधिक उपयुक्त होगा कि जिस राजनीतिक दमन, सामाजिक अन्याय, अस्तित्व सम्बन्धी तनाव और मानसिक द्वंद्वताको अपने पद्यके आधारके रूपमें अथवा प्रेरणाके रूपमें प्रस्तुत करनेका प्रयास हुआहै, उसपर दृष्टिपात मात्र कर लिया जाये । इस पद्य-कृतिमें जो मानसिकता उभरकर आयीहै, उसका सम्यक् अध्ययन-विश्लेषण हम समाज-विज्ञानियों, मनोवैज्ञानिकों और काव्यशास्त्रियोंके लिए छोड़े दे रहेहैं । हमारा अनुमान है, इस प्रकारके अध्ययन-विश्लेषणके लिए कविकी गद्य-कृति ‘सहजे रचयो खालसा’ नामक दस वर्षकी साधनासे लिखित १२१२ पृष्ठोंके सिख-इतिहासको भी ध्यानमें रखना होगा, क्योंकि पंजाबीके कुछ आलोचकोंका विचार है ‘सहजे रचयो खालसा’ की रचनात्मक शक्ति ‘झनां दी रात’ की कविताओंमें समायी हुईहै । ‘सहजे रचयो खालसा’ सिख धर्मकी दार्शनिक अभिव्यक्ति बतायी गयीहै तो ‘झनां दी रात’ को सिख अस्तित्व, मात्र सिख अस्तित्व के उस संकटका व्यापक चित्र, जो लुप्त होती अस्मिताको पुनः स्थापित करनेका प्रयत्न भी कहीजा सकतीहै और अभियान भी ।

यद्यपि ‘झनां दी रात’को दिये गये पुरस्कारको ध्यानमें रखकर जो विवाद उठाया गयाहै, उसमें कृति की मानसिकताको आधार प्रदान करनेवाले, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक स्तरपर सिखोंकी भारतीय समाजसे पृथक्ताको स्थापित करनेवाले मूल प्रश्नोंकी प्रायः चर्चा नहीं हुई, क्षेत्रीय-साम्प्रदायिक-जातिगत गरिमा (जिसमें पर्याप्त कल्पनाका भी आश्रय लिया गयाहै) को संवर्द्धित रूपमें अवश्य रेखांकित किया गयाहै, परिणामतः



## इन्द्रप्रस्थ भारती

### हिन्दी अकादमी की त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

यदि आप चाहते हैं कि बेहतर पढ़ने को मिले तो आपकी इस जरूरत को

### ‘इन्द्रप्रस्थ भारती’

हिन्दी अकादमी की साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका ‘इन्द्रप्रस्थ भारती’ पूरा करती है, जो महज एक पत्रिका ही नहीं पूरी किताब है।

जिसमें देश के जिम्मेदार लेखक हिस्सेदारी करेंगे।

### यह पत्रिका

समकालीन साहित्य के रचनात्मक मूल्यांकन के साथ विभिन्न भाषाई एवं साहित्यिक गतिविधियों को प्रस्तुत करती है। डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठ की इस पत्रिका के एक अंक का मूल्य आठ रुपये तथा वार्षिक तीन रुपये है। आपका सहयोग हमें बेहतर सेवा के लिए और अधिक प्रोत्साहित करेगा।

वार्षिक शुल्क मनीऑर्डर/बैंक ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर द्वारा इस पते पर भेजें :



सचिव,  
हिन्दी अकादमी, दिल्ली  
ए-२६/२७, सनलाइट इण्डोरेंस बिल्डिंग,  
आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२.



अस्तित्वके संकट और अस्मिताके संरक्षणके नामपर उन प्रसंगोंको उभारा गया है जिन्हें आतंकवाद और हत्या की सीमामें रखा जाता है। 'नीदां दा कतल अते शहीदां दा गजब'में दिवंगत इन्दिरा गांधीके लिए अप-शब्दोंका प्रयोग किया गया है और जरनैल सिंह भिडरा-वालेके साथ-साथ इन्दिरा गांधीकी हत्यामें सम्मिलित वेअन्तसिंहकी स्तुति-प्रशंसा की गयी है। आतंकवाद और हत्याके भागीदारोंकी स्तुति-प्रशंसा न काव्यको न कविको श्रेय प्रदान करते हैं अपितु, दमन, अन्याय, द्वैधतासे मानवीयताकी रक्षाके संघर्षका श्रेय तो कृतिको प्रदान करते ही नहीं।

कविकी पद्य रूपमें प्रस्तुत काव्यात्मक चेतनाका उत्कर्ष उन निर्दोष लोगोंकी हत्यापर निर्भर है जिसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि गुरुद्वारेमें सामूहिक प्रार्थना में सम्मिलित होने आये, परन्तु सैनिक कार्यवाही चालू होनेके कारण जिनकी मृत्यु होगयी। यह सैनिक कार्य-वाही 'ब्लू स्टार' नामसे जानी जाती है। इसी अपराध का दण्ड इन्दिरा गांधीको वेअन्तने दिया जिसकी स्तुति-प्रशंसा करके कविने सिख-अस्मिताकी रक्षा की है।

क्या अस्मिताकी यह रक्षा इसी घटनाके आदि-अन्तसे जुड़ी है अथवा सम्पूर्ण मानवीय अस्तित्वके पूर्ण उन्मूलनके लिए हो रहे एकपक्षीय व्यापक और निरन्तर प्रयत्नोंकी शृंखलाकी यह एक कड़ी है जिससे 'झनां दी रात' का पद्यकार जुड़ गया है! विगत दसियों वर्षोंतक सिख-इतिहास, उसके दार्शनिक-सांस्कृतिक आधारका निर्माण करते-करते पद्यकारका अवचेतना क्षेत्र निरन्तर सीमित होता गया है, उनकी यह ऐकान्तिक साधना सामान्य संवेदनाके क्षेत्रसे उन्हें इतनी दूर ले गयी कि वे मात्र अपने विषयकी राजनीति, सामाजिकता, धार्मिकता और संकीर्ण वृत्तसे बाहर निकलनेमें असमर्थ होगये और इसी कारण वे ब्लू स्टारके घटनाचक्र तो पहुंचे, परन्तु उसके जनक कारणों, उसके व्यापक प्रभावको ग्रहण करनेमें असमर्थ रहे।

यद्यपि ब्लू-स्टार तकके इतिहासकी चर्चा यहां बहुत प्रासंगिक नहीं है, परन्तु मात्र ब्लू-स्टारको किसी वर्गकी अस्मितापर प्रहार करनेवाला स्वीकार करना भी सम्भव नहीं है क्योंकि स्वयं यह वर्ग अपनेही क्षेत्रके अन्य वर्गों को अपने आतंकका अबतक लक्ष्य बनाये हुए है और अकारण उनकी हत्याएं कर, महिलाओंके साथ बला-त्कार कर, उनकी धन-सम्पत्ति, मान-मर्यादाका अपहरण

कर अपनी तथाकथित शक्ति और अस्मिताका निर्माण कर रहा है। उसकी भाषा केवल बन्दूककी नलीसे बाहर आती है। इस आतंक, दमन, अन्याय और अस्तित्व-संकट से पीड़ित वर्गके प्रति इस पद्य कृतिमें कहीं संवेदनशीलता के दर्शन नहीं होते। इस संवेदन शून्यताको देखकर प्रतीत होता है कि पुरस्कार प्रदान करनेवालोंके लिए संवेदनशीलता किसी ऐसे भारतीय भाषाके कोशका शब्द है जिससे वे अपारचित है।

जिस पद्य-कृतिकी संवेदनात्मकतापर हम प्रश्न-चिह्न लगा रहे हैं, १९८४ के प्रसंगको पंजाबी पत्र-पत्रिकाओंने उत्साहसे उछाला है, गत दसियों वर्षोंको हृदयहीन हत्याओंकी उपेक्षाकर। उनकी मान्यता है कि 'झनां दी रात' पंजाबके वर्तमान सन्दर्भका संत्रास है। यह संत्रास एक ओर १९८४ का है तो दूसरी ओर १९४७ का। हरिन्द्रसिंह महबूब १९८४की व्यथाको नहीं सह सके। उन्होंने पंजाबके अतीतको वर्तमान त्रासदीसे जोड़कर ऐसा 'क्रन्दन' किया कि "पांचों नदियोंका पानी गर्जनकर उठा।" पंजाबी पत्र-पत्रिकाओंके इस चित्रण को पढ़कर हमारे मनमें भी कसक हुई कि समग्र आतंकितोंकी पीड़ा और आतंतादके सामूहिक क्रन्दनसे पूरे पंजाबकी पांच नदियांही नहीं सिन्धु नदी सहित भारत की सम्पूर्ण नदियोंका गर्जन विश्वको कम्पायमान कर देता, पर यथार्थके घरातलपर लौटतेही अनुभव किया कि यहां भारत तो क्या स्वयं विभाजित पंजाब अब पंचनद नहीं रहा उनका गर्जन विभाजित हो गया है। और तो और यह विखण्डित पंजाब भी सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक स्तरपर विखण्डित हो गया है। उसके आतंकितोंके क्रन्दनका स्वर समवेत नहीं रहा, ये क्रन्दन भिन्न-भिन्न हैं, उनके स्वर विवादी हैं। आरोपों-प्रत्यारोपोंसे, कटूक्तियोंसे, मन-हृदयोंको खण्डित किये दे रहे हैं। ये मन-हृदय पंजाबकी ही नहीं पूरे देश को खण्डित किये दे रहे हैं। इस द्वैधता, द्वैध मानसिकता को स्थायित्व प्रदान करनेकी दिशामें प्रयत्नशील 'झनां दी रात' का पद्यकार और 'सहजे रचयो खालसा' का साधक कृतिकार मानवीय अस्तित्वके उन्मूलनसे बचाने के लिए जब किसी हत्यारेको सन्त श्रेणीमें लाकर बिठाता है, अथवा 'शहीद दी अरदास' लेकर कंपकंपाते स्वरोंके साथ पुरस्कृत होकर आ खड़ा होता है तो संवेदना परिवर्तित होकर मात्र वेदना ही बन जाती है। यहां साहित्य, काव्य लोकमानसको बांधनेवाला न



होकर दो विरोधी मानसोंमें विभाजित कर देता है।

यह वेदना काव्यात्मक न होकर राजनीतिक और सामाजिक होती है। इसीलिए इस कृतिको हमने पद्य कहा है। काव्य-संकलन, यद्यपि स्वयं कवि इसके 'महा-काव्यात्मक उत्कर्ष' और 'मानवीय अस्तित्वके उन्मूलन का कवि-विरोध' रूपपर बल देनेकी सार्वजनिक घोषणा करता है, ठीक इसके विपरीत वह वर्गगत घृणा, विरोध का वातावरण तैयार करता है, आतंकवादका समर्थन करता है और हत्याओंकी स्तुति-प्रशंसा द्वारा हत्यारोंको 'सन्त' कोटिमें ले जा बैठाता है। भारतीय साहित्यमें यह प्रवृत्ति पर्याप्त समयसे प्रकट हो रही है, इसका आक्रोश, क्षोभ और क्रुद्ध काव्य नामकरणकर प्रगतिवादी प्रवृत्ति कहा जाता रहा है राजनीतिक प्रश्रयसे यही प्रवृत्ति विकसित होकर आतंक और हत्या, बादमें स्तुतिके स्तर तक पहुँच गयी है। हत्याओंकी इस प्रवृत्तिके साथ साहित्यमें काव्य-तत्त्व उसी मात्रामें क्षीण होता गया है और काव्यत्वका स्थान धार्मिकताकी अतिशयता, धार्मिक शौर्य और क्षेत्रीय संलग्नता लेते गये हैं। इस क्षेत्रीय संलग्नताके साथ क्षेत्रीय विस्तारका स्वप्न भी जुड़ा है और सिखोंतक सीमित महत्वाकांक्षाके भावनात्मक आधार को पुष्ट करनेका प्रयास किया गया है। सम्भवतः इसी कारण इस पद्य-कृतिको शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समितिका आणीर्वाचन भी मिला है।

साहित्य अकादमीके पुरस्कार साहित्यिक विधाओं और साहित्य-चिन्तन तक ही सीमित हों, ऐसा अकादमीके वर्तमान विधि-विधानों और नियमोंसे स्पष्ट नहीं है। इनसे जो कुछ सूचनाएं प्राप्त होती हैं वे केवल पुस्तक चयन और पुरस्कार निर्णयकी प्रक्रियासे सम्बद्ध हैं। यद्यपि इस पद्य-कृतिके पक्षमें पुरस्कार-निर्णयकी पद्धति और स्वयं पुरस्कार-निर्णयके औचित्यपर समाचार पत्रोंमें अनेक प्रश्नचिह्न लगाये गये हैं, पर इस विवादको लेकर पुस्तक-चयन सम्बन्धी जो नियम सामने आये हैं, उनकी तो स्पष्ट रूपसे अवहेलना की गयी है। प्रशासनिक और अर्द्ध-प्रशासनिक निर्णयोंमें विधि-विधानों और नियमोंका मूल्य है भी, यही अपने-आपमें एक प्रश्न है। वैसे सामान्यतः भारतीय प्रशासनमें एक ही नियम है, आवश्यकता और रूचिको ध्यानमें रखते किसी भी नियमकी अवहेलना की जा सकती है। अथवा अपनी आवश्यकताके अनुरूप उसकी व्याख्या की जा

'प्रकर'—अगस्त'६२—६

सकती है। यही कारण है प्रतिवर्ष ऐसी कृतियां अधिकाधिक संख्यामें पुरस्कार प्राप्त करनेमें सफल होती रही हैं जिनकी स्तरीयता-गुणवत्ता और मूल्यवत्ताको विभिन्न रूपोंमें चुनौती दी जा रही है। 'प्रकर' के गत दस वर्षोंके 'पुरस्कृत भारतीय साहित्य' विशेषांकोंमें अनेक बार इस प्रकारके प्रश्नचिह्न लगाये गये हैं, वर्तमान विशेषांकमें भी प्रश्नचिह्न लगाये गये हैं। इसलिए यहा उन्हें दोहरानेकी आवश्यकता अनुभव नहीं की गयी।

जहांतक साहित्य अकादमीकी पुरस्कार-निर्णायक-समितिका प्रश्न है, पुरस्कार वितरणके बाद अब दिखे गये उनके वक्तव्योंसे स्थिति स्पष्ट होती है। निर्णायक प्रमुख श्रीमती अमृता प्रीतमका कहना है : 'उन्हें पूरी कृति पढ़नेका अवसर नहीं मिला, पर जो इतने वर्षोंसे साधना कर रहा हो, उसे पुरस्कार क्यों नहीं मिलना चाहिये।' दूसरे सदस्य प्रो. अमरीक सिंहका कहना है : 'यह एक सतही किस्मकी रचना है।' यही उन्होंने लिखकर भी दिया था। एक पत्रकारसे भेंटमें उन्होंने कहा : 'महबूबको मैं निजी तौरपर जानता हूँ, वह मेरा विद्यार्थी रहा है। उसे पंजाबके सांस्कृतिक इतिहासकी पर्याप्त जानकारी है, पर वह कवि नहीं है, वह पद्य लेखक है। अन्य अनेक पंजाबी लेखकोंने भी इसे केवल पद्य-कृति तो माना है, काव्य-कृति नहीं।

साहित्य अकादमीकी अबतककी गतिविधिसे स्पष्ट हो जाता है कि यह संस्था भारतीय भाषाओंके सिद्ध-असिद्ध कृतिकारों और उनकी जोड़-तोड़ (साहित्यिक राजनीति सहित) को प्रश्रय देकर, कुछ टुकड़ें वितरित कर उन्हें तो सन्तुष्ट कर लेती है, परन्तु अब तकका अकादमीका मूल कार्य अंग्रेजी—वह भी इण्डियन इंग्लिश—को देशकी मूल भाषाके रूपमें स्थापित करना रहा है। इस सम्बन्धमें 'प्रकर'में पहलेभी लिखा जा चुका है। परन्तु देशके प्रशासनिक वरद हस्तके कारण उसकी रीति-नीतियां, विधि-विधान सभी भारतीय भाषाओंके हितोंकी उपेक्षाके साधनही बन गये हैं।

हमने इस पुरस्कृत पंजाबी कृतिको पद्य-कृति तो माना है, परन्तु काव्य-कृति नहीं। परन्तु साहित्य अकादमीने इसे पुरस्कृत करते हुए जो प्रमाण-पत्र दिया है, उसके अनुसार यह कृति 'कलात्मक' स्तर पर 'असाधारण' है कृतिमें 'ओजस्वी मानवतावाद' है।



वस्तुतः प्रगतिवादी साहित्यके नामसे प्रचारित-प्रसारित उन कृतियोंको इन्हीं विशेषणोंसे अलंकृत किया जाता है जो आक्रोश-क्षोभ-हिंसात्मक आन्दोलन से गति कर आतंक और हत्या वृत्तिके संवर्द्धनमें प्रगति करती हैं। प्रगतिवादी साहित्यका लक्ष्य राजनीतिक उन्मादके माध्यमसे आतंक और हिंसाका मार्ग अपनाकर अधिनायकवादकी स्थापनामें सहायता देना रहा है तो इस प्रकारकी कृतियोंका लक्ष्य शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समितिके आशीर्वाद और साहित्य अकादमी द्वारा प्रयुक्त साहित्यिक शब्दावलीके संरक्षणमें उन्मत्त धार्मिक राज्यकी स्थापना है।

साहित्य अकादमीकी यह प्रवृत्ति केवल किसी विशिष्ट क्षेत्र तक सीमित नहीं रही, अपितु यह प्रवृत्ति बहु-आमामी है। पंजाबीकी इस पद्य-कृतिके साथ उर्दूका ऐतिहासिक उपन्यास 'आइडेन्टिटी कार्ड' भी पुरस्कृत हुआ है। पूरे उपन्यासका वैचारिक स्तर अलीगढ़ी-चिन्तनका प्रतिरूप है। अलीगढ़ी साम्प्रदायिक चिन्तन और उस चिन्तनके अनुसार मध्यकालीन इतिहासका रूपान्तर इस उपन्यासमें देखा जा सकता है। कुछ समाचार पत्रोंमें इसकी चर्चा भी हुई, परन्तु इस देशकी सत्ता, विशेष रूपसे मानव-संसाधन मन्त्रालयकी हिन्दू-निरपेक्षता नीतिके दबावमें यह प्रसंग दब गया। हिन्दू-निरपेक्षता शब्दका प्रयोग इसलिए है क्योंकि सत्ताके चिन्तनमें हजारों धर्मोंका यह समूहवाचक शब्द मात्र एकही धर्मका वाचक है, इसलिए यह शब्द व्यवहारमें धर्मनिरपेक्षताका पर्याय बन गया है।

इसी प्रसंगमें साहित्य अकादमीकी पुरस्कार करने की एक और प्रवृत्ति उभरकर सामने आयी है, वह है "चरण कमल बन्दो" वृत्तिके चारण-साहित्यको प्रोत्साहन। संस्कृतके पुरस्कृत महाकाव्य "स्वातन्त्र्यसम्भवम्" को इसी श्रेणीमें रखा जा सकता है, क्योंकि यह स्वाधीनता आन्दोलनके इतिहासकी अपेक्षा 'नेहरू-गांधी' वंश की चारणी वृत्तिकी कृति है। इसकी संगति स्वतन्त्र भारतके गत पैंतालीस वर्षोंकी राजनीतिक आर्थिक-सांस्कृतिक और भाषायी प्रगतिसे भी नहीं बैठायी जा सकती।

वस्तुतः साहित्य-अकादमीमें विकसित सम्पूर्ण मान-सिक्ताकी गहरी छानबीनकी आवश्यकता है। □

## हमारे बहुचर्चित उपन्यास

कथा लेखिका मन्नु भण्डारी	
डॉ. ब्रजमोहन शर्मा	६०-००
रंगशिल्पी मोहन राकेश	
डॉ. नरनारायण राय	५०-००
हिन्दी साहित्य के आधारस्रोत	
डॉ. रामशरण गौड़	१५०-००
स्वच्छन्दतावाद : सिद्धान्त और सृजन	
डॉ. दिनेशकुमार गुप्त	४०-००
जगदीशचन्द्र माथुर की नाट्यसृष्टि	
डॉ. नरनारायण राय	४५-००
रस-सिद्धान्त : आक्षेप और समाधान	
डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया	७०-००
मध्यकालीन काव्य-समीक्षा कोश	
डॉ. रामशरण गौड़	२५०-००
सिन्धुपुत्र (उपन्यास)	
अमृतलाल मदान	६५-००
डाक्टर सलीम (पुरस्कृत उपन्यास)	
रजिया नूर मुहम्मद, अनु, कांता आनंद	३५-००
इतिहासनामा (कहानी)	
सुरजीत	४५-००
परिणय (मराठी कहानियां)	
सं. तरनजीत	३५-००
सूत्रधार (एकांकी)	
सुधीन्द्र कुमार	४५-००
चेहरों का जंगल (पुरस्कृत नाटक)	
राजेन्द्रप्रसाद	३५-००
आखिरी मुगल (पुरस्कृत नाटक)	
जितेन्द्र कपूर	३०-००
चमचा : एक दर्शन (व्यंग्य)	
रामगोपाल गौड़	३०-००
भारतीय दार्शनिक : जीवन एवं दर्शन	
डॉ. कर्मसिंह शास्त्री	३०-००

**कादम्बरी प्रकाशन**  
5451 शाव मार्केट, न्यू चंद्रावल  
जयहार नगर, दिल्ली-110007 (भारत)

फोन नं. : २६३००५६ (का.), ५४५७००५ (नि.)

'प्रकर'—भाद्रपद २०४६—७



## पठनीय और संग्रहणीय ग्रंथ

### प्रालोचना :

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य—सम्पादक : डॉ. महेन्द्र भटनागर	सजिल्द	६०.००
	विद्यार्थी संस्करण	३०.००
अन्धायुग : एक विवेचन—डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा (पुरस्कृत)	सजिल्द	४०.००
	विद्यार्थी संस्करण	२५.००
छायावाद : नया मूल्यांकन—प्रा. नित्यानन्द पटेल	सजिल्द	४०.००
'प्रकर' : विशेषांक ['पुरस्कृत भारतीय साहित्य' के नौ अंक, भारतीय साहित्य : २५ वर्ष, अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य, अन्य विशेषांक]		२७५.००

### उपन्यास :

अपराधी वैज्ञानिक : (वैज्ञानिक उपन्यास) —यमुनादत्त वैष्णव अशोक	„	६०.००
ये पहाड़ी लोग—यमुनादत्त वैष्णव अशोक	„	२५.००
सुधा—[मलयालमसे अनुदित]—टी. एन. गोपीनाथ नायर	„	२५.००
शकुन्तला—['अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का औपन्यासिक रूपान्तर]—विराज	„	२५.००
प्रवासी—[बर्मके भारतीय प्रवासियोंकी कहानी]—श्यामाचरण मिश्र	„	३०.००

### नाटक :

देवयानी—डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर	„	१५.००
श्रेष्ठ एकांकी—डॉ. वासुदेवनन्दन प्रसाद	„	१५.००

### जीवन दर्शन :

शंकराचार्य : जीवन और दर्शन—वैद्य नारायणदत्त	„	२०.००
महर्षि दयानन्द : „ „	„	२५.००
गुरु नानक : „ „	„	३०.००
श्री अरविन्द : „ —रवीन्द्र	„	२०.००

### समसामयिक साहित्य :

रूपयेका श्रवमूल्यन और उसका प्रभाव—सम्पा. डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी		४०.००
समाजवादी बर्मा—श्यामाचरण मिश्र		३०.००
विस्तारवादी चीन—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी (पुरस्कृत)	जेवी आकार	८.००
कच्छ—पद्मा अग्रवाल	„	८.००
एवरेस्ट अभियान—डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश	„	८.००
अफ्रीकाके राष्ट्रीय नेता—जगमोहनलाल	„	१०.००

### 'प्रकर' कार्यालय

'प्रकर', ए-८/४२ राणाप्रताप बाग दिल्ली-११०००७.

'प्रकर'—अगस्त '६२—८



## ‘सरस्वती सम्मान’ से सम्मानित ‘बच्चन’ का आत्मचरित : अन्तर्बाह्य समग्रताका आलेख

वर्चित कृतियां :

- (१) क्या भूलूँ क्या याद करूँ (२) नीडका निर्माण फिर  
(३) बसेरासे दूर (४) दशद्वारसे सोपानतक

समीक्षक :

डॉ. मूलचन्द सेठिया

कविद्वर “बच्चन” ने “क्या भूलूँ क्या याद करूँ”, “नीडका निर्माण फिर”, “बसेरासे दूर” और “दशद्वार से सोपानतक” नामके चार खण्डों में अपना ‘आत्म-चरित’ प्रकाशित किया है। आधुनिक हिन्दी कवियों में ‘बच्चन’ ही पहले कवि हैं जिन्होंने युग-सन्दर्भ में अपनी पिछली सात पीढ़ियों से लेकर पौत्र-पौत्रियों तक का विस्तृत और जीवन्त चित्रण इतनी मार्मिकता और अन्तर्दर्शिता से साथ प्रस्तुत किया है। ‘प्रसाद’ अपनी आत्मविभक्तिके सम्बन्ध में गोपनशील ही बने रहे : “सुनकर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्म-कथा/ अभी समय भी नहीं थकी सोई है मेरी मौन व्यथा।” पंतके ‘साठ वर्ष : रेखांकन’ में रेखाएँ ही रेखाएँ हैं, उनमें रंग भरनेका प्रयास नहीं किया गया। निरालाके कथा-साहित्य-विशेषतः ‘कुल्लि भाट’-में उनका जीवन झाँक-झाँक जाता है, परन्तु कुल मिलाकर उनके जीवन के इने-गिने प्रसंग ही सामने आ पाते हैं। महादेवीने ‘अतीतके चलचित्र’ और ‘स्मृतिकी रेखाएँ’ में अपनेसे अधिक अपने सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों की व्यथा-कथा को ही अश्रु-आविल अभिव्यक्ति प्रदान की है। दिनकरकी शायरी में उनके उत्तरकालीन जीवनके कुछ सन्दर्भ अवश्य समेटे गये हैं, पर डायरीको आत्मचरित का स्थानापन्न तो नहीं माना जा सकता। ‘बच्चन’ ने पहली बार अपनी जीवन-यात्रा और सृजन-यात्राका इस प्रकार समानान्तर चित्रण किया है कि उनके जीवनके आलोक में कविताको और कविताके

माध्यमसे जीवनको अधिकाधिक परिपूर्णता और प्रासंगिकताके साथ समझा जा सकता है। ‘बच्चन’ की प्रायः सभी कविताओं की पृष्ठभूमि में उनके जीवनकी घटनाएँ रही हैं। इसलिए उनका पूरा अर्थ कविके जीवन-पार्श्व में ही खुलता है। “मैंने जीवनको काव्यसे अलग कब माना है ? यदि मेरा जीवनही काव्य नहीं है तो कवित्व नामकी कोई चीज मेरे अन्दर नहीं है।”

यानतेनके शब्दोंको उद्धृत करते हुए ‘बच्चन’ ने लिखा है “मैं स्वयं अपनी पुस्तकका विषय हूँ।” आत्म-चरित यदि आत्म-केन्द्रित हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? रवीन्द्रनाथने अपनी “जीवन-स्मृतिके आरम्भ में लिखा है “जीवनकी स्मृति जीवनका इतिहास नहीं है। वह तो किसी अदृश्य चित्रकारकी अपने हाथकी रचना है। उसमें नाता स्थानों में नाता रंग हैं, वह बाहरका प्रतिबिम्ब नहीं है—वे रंग उसके अपने भण्डारके हैं, उन रंगोंको उसे अपने रसमें घोलना पड़ा है।” कविने बाह्य स्थितियों और वस्तुगत तथ्योंके अंकनमें भी अपने आत्म-रसको इस प्रकार उड़ेल दिया है कि “जो व्यक्तिगत है, सीमित है; उसे सर्वगत, सार्वभौम और सर्वभोगी” बना दिया है। रचनाकारके नाते ‘बच्चन’ की यह एक महत् उपलब्धि है। राय कृष्णदासने इस कृति को ‘वस्तुनिष्ठ’ कहा है तो सम्भवतः इसी अर्थ में कि कविने अपनेको युगीन परिवेश और सामाजिक सन्दर्भ से काटकर एक ‘नदीके द्वीप’ की तरह प्रस्तुत नहीं किया है। उसका दावा है “अपनेको समझनेके लिए मैं जहाँ हूँ, जिनके बीच हूँ, उसको और उनको समझनेके लिए

‘प्रकर’—भाद्रपद २०४६—६



मैंने विशेष प्रयत्न किया है।" यह आवश्यक भी था क्योंकि व्यक्तिका विकास शून्यमें नहीं होता, उसके रूपायनमें एक निश्चित देश-कालकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। 'बच्चन' ने अपनी जड़ोंमें झाँककर देखनेके लिए ही अमोढासे आकर इलाहाबाद बसनेवाले पूर्वज मनसासे लेकर सात पीढ़ियोंकी विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओंका विस्तृत परिचय दिया है। यह कोरा वर्णन नहीं है, कवि विश्लेषणके आधारपर कुछ सामान्यीकृत निष्कर्षोंपर पहुँचा है। जैसे, 'मेरे परिवारमें एक विचित्र परम्परा चली आती है--एक पीढ़ीमें पुरुष शासन करता है, दूसरीमें स्त्री।' अपने सम्बन्धमें उनका अभिमत यह कि उनके व्यक्तित्वमें अन्तर्निहित नारीपर तेजीके व्यक्तित्वमें अन्तर्निहित पुरुष शासन करता है।

सामान्यतः कवियोंको अन्तर्मुख और समाजविमुख माना जाता है। वे अपने अन्तर्मुखमें भावोंके आरोह-अवरोहको ही सृष्टि-प्रलयका पर्याय मानते हैं। परन्तु, 'बच्चन' इस नियमके अपवाद हैं, उन्होंने अपने बचपन के अधिवास--चक और कटघर मुहल्लोंका, वहाँकी धूल-भरी गलियों और कच्चे-पक्के मकानों और विविध प्रकारके लोगोंका जो जीता-जागता चित्रण किया है, उसे पढ़कर यह आभासित होता है कि इस कविकी एक आँख अगर ऊपर जाकाशपर केन्द्रित रही है तो दूसरी आँख अपने पैरों तलेकी मिट्टीपर टिकी रहती है। 'मैंने उस मुहल्लेके गली कूँचोंकी ही नहीं पहचाना था, उनमें रहनेवालोंको भी देखा-जाना और उनसे एक प्रकारके अपनेपनका अनुभव किया था। अपने आसपास प्रवाहित होनेवाली जीवन-धाराओंके विपुल वैविध्य और वैचित्र्य का जो जीवन्त और विम्बग्राही चित्रण किया गया है, वह उसके साथ एकात्म हुए बिना कदापि सम्भव नहीं था। कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि 'बच्चन' को अमृतलाल नागरकी कलम उधार मिल गयी है। बस्तीमें रहनेवाले 'भिक्षु', हज्जाम, जर्राह, चिकवे, नैया बांधने वाले, कुंजी लगानेवाले, छाता मरम्मत करनेवाले, कलई करनेवाले, कागजो खिलौने बनानेवाले, पतंग बनानेवाले' और दूसरे अलग-अलग धन्धोंसे पेट पालने वाले ये श्रमजीवी यदि कविकी साँसोंके समीप नहीं होते तो उनकी ऐसी मुँह बोलती तस्वीरें खींचना कभी सम्भव नहीं हो सकता था। मधुशाला और 'मधुबाला' के गीत गानेवाला कवि जो इन्द्रधनुपर शीश धर बादलोंकी सुख-सेजपर सोनेका दावा करता रहा है, चक और कटघरकी 'प्रकर'—अगस्त'६२—१०

धरतीसे उखड़नेके बादभी वहाँके परिवेशका इतना जीवन्त चित्रण इसलिए कर सका कि वह अनुभव करता था 'कटघरकी मिट्टी और चककी मिट्टी मेरे हृदयमें है और जहाँ कहीं भी जाऊँ उन्हें अपने साथ ले जाता हूँ।' प्रगतिवादने मामूली आदमीके साथ प्रतिबद्धताका दावा बड़े जोरशोरसे किया था और नयी कविताके पक्षधरोंने "लघु मानवकी महत्ता" को उद्घोषित किया था, परन्तु अपनी धरती और अपने जनके साथ ऐसी स्नेह-सजगता और अटूट आत्मीयताका परिचय शायदही किसी अन्य कविने दिया हो।

केवल अपने बाह्य परिवेश ही नहीं युग और समाजके अन्तःस्पन्दनों और व्यापक गतिविधियों के प्रति 'बच्चन' पूर्ण सजग और संवेदनशील रहे हैं। "देश-दुनियाँमें क्या होता है, इसमें मैं बराबर रुचि लेता रहा।" उस युगमें इलाहाबाद जैसा ऊँचता हुआ शहरभी सामाजिक परिवर्तनकी हवासे अछूता नहीं रह सका था। स्वयं 'बच्चन' ने हिन्दू समाजकी कई रूढ़ परम्पराओंका उल्लंघन किया था। खान-पानको प्रतिबन्धित करनेवाले जातिभेदके नियमोंको तोड़ा था और जाति बहिष्कृत कायस्थ परिवारोंके साथ हेलमेल बढ़ाकर पंचोंकी चौधराहटकी चुनौती दी थी। बादमें पंजाबके सिख सम्प्रदायकी लड़की से विवाहकर जाति, सम्प्रदाय और प्रदेशकी हृदबन्दी को तोड़ा था। यदि उसने समाजके ढाँचेको गला-सड़ा मानकर उसके प्रति विद्रोह किया था तो समाजभी उस पर प्रहार करनेसे क्यों चूकता? उसके छोटे भाईके विवाहोत्सवमें खानेके लिए बिरादरीमें से कोई नहीं आया। प्रथम पत्नी श्यामाकी शव-यात्रामें सम्मिलित होनेके लिए न किसीको बुलाया गया और न कोई आया। उस मर्महत मनःस्थितिमें समाजका यह क्रूर व्यवहार कविको असह्य प्रतीत हुआ होगा फिरभी वह समाजके साथ समझौता करनेके लिए अपनी स्वतंत्रता को गिरवी रखनेका महंगा मूल्य चुकानेके लिए किसी प्रकार तैयार नहीं हुआ। 'बच्चन' ने अपनी कवितामें सामाजिक चेतनासे अधिक अपने वैयक्तिक राग-विराग और हर्ष-विषादका ही अधिक चित्रण किया है परन्तु इस साहित्यिक व्यक्तिनिष्ठताके बावजूद उसकी सामाजिक चेतना सुधार और असन्तोषसे आगे बढ़कर विद्रोहीकी सीमा-रेखाका स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है।

'बच्चन'के बाल्यकालमें राजनीतिका स्वर उग्र और



आक्रामक नहीं था।" आजादी अभी उच्च वर्गकी चर्चा का विषय थी। परन्तु, इलाहाबाद जैसे जागरूक शहरमें रहते हुए कविकी चेतना राजनीतिके प्रभावसे अछूती कैसे रह सकती थी? वह यथोचित गौरव और गर्वके साथ यह याद करता है कि जिन लड़कोंने लोकमान्य तिलककी गाड़ीको अपने हाथोंसे खींचा था, उनमें से एक मैं भी था। गांधीजीके असहयोग आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेकर जेल जानेकी स्थितिमें न होकरभी उसके मनमें सन्तोष था कि किसी-न-किसी रूपमें तो सहयोग दे ही रहा हूँ। वह खादी पहनता, सभाओंमें नेताओंके व्याख्यान सुनने जाता और जूलूसमें नारे लगाता। सदा राष्ट्रीय विचारोंसे अनुप्राणित रहते हुएभी कविने आन्दोलनात्मक राजनीतिमें कभी सक्रिय भाग नहीं लिया। आजभी उसकी मान्यता है कि "राजनीति जीवनकी औषधि है, वह जीवनके लिए भोजन नहीं बन सकती।"

बीसवीं सदीके प्रथम दशकमें 'बच्चन' का जन्म इलाहाबादके एक मध्यवर्गीय-कायस्थ-परिवारमें हुआ था जो नीतिनिष्ठ और संस्कारी होते हुएभी आर्थिक दृष्टिसे सामान्य स्तरपर ही था। कविने शैशवमें दरिद्रताका गहन नृत्य नहीं देखा तोभी अर्थाभावसे उत्पन्न होनेवाली कुंठाओं और कठिनाइयोंसे वह अपरिचित नहीं रह सका था। अपने अध्ययनको अग्रसर रखनेके लिए उसे ट्यूशननोंका सहारा लेना पड़ा था। दो ट्यूशननों से कुल बीस-पच्चीस रुपये मिलते।" दो बजे सुबह उठ जाता, अपनी पढ़ाई करता, फिर ट्यूशनपर जाता, शामको ट्यूशनसे लौटकर रातको बारह बजे तक पढ़ता। बहुत दिनों तक रातको केवल दो घण्टे सोता, बारहसे दो बजे तक।" जीवन-संघर्षकी यह विकरालता कवि को पराजित नहीं कर सकी, पर विक्षब्ध तो किया ही होगा। नौ बरसोंके वैवाहिक जीवनमें कवि श्यामाको एक सूती साड़ीभी लाकर नहीं दे सका। उसकी चिर-रुग्णतामें चिकित्साका व्यय भार भी उसके पिता ही वहन करते थे। जब कवि स्वयं क्षय-ग्रस्त होकर "इस पार उस पार" के बीच हिचकोले खाने लगा, तबभी उसे डॉ. मुखर्जीके महंगे प्रेस्क्रिप्शनको फाड़कर लुई कुनेकी जल-चिकित्साकी शरण लेनी पड़ी। उसे प्रयाग महिला विद्यापीठसे प्रतिमास तीस रुपये वेतन मिलता था और अध्यापक प्रेससे पैंतीस रुपये। लेकिन, ये नौकरियां भी चार-छः महीने चलकर दम तोड़ देती थीं। ये तथ्य यह

स्पष्ट कर देते हैं कि कविका अर्जक और सजक कितने विषम स्तरोंपर कार्यकर रहे थे। जिसे शान्त चिन्ता-विमुक्त घर नसीब नहीं हुआ था उसने मधुशाला बनायी थी, जिसे तन-मनकी सहज संगिनी नहीं मिली, उसने मधुवालाकी कल्पना की थी— सुन्दरता, शृंगार, उल्लास उन्मादकी ऊंचाइयों तक उठकर जब कोई वास्तविकता की ऊबड़-खाबड़, सूखी चट्टानोंपर गिरता होगा, तब उसकी निराशा कितनी मार्मिक, कितनी मारक होती होगी।" इस वास्तविकताके आमने-सामने खड़ा होकर कौन कविके इस दावेको अस्वीकार कर सकता है। "हूँ लिखे मधुगीत मैंने, हो खड़े जीवन-समरमें!" कविके मनमें अनुभव होनेवाली निराशाकी भावना चाहे कितनी ही विक्षोभकारी क्यों न रही हो, सृजनके क्षणोंमें बहुत कुछ शान्त हो जाती थी। सृजन-प्रक्रियामें भावनाओंका रेचन, परिष्करण और उन्नयन होनेके कारण ही तुलसी ने काव्यके प्रयोजनोंमें 'स्वान्तस्तमः शान्तये' को इतना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। कविके अपने शब्दोंमें "अबभी मनःशक्तियोंका पूर्ण केन्द्रीकरण, तन्मयता और परिपूर्ण आत्म-विस्मरण मैं काव्य-सृजनके क्षणोंमें ही जानता हूँ—जिसे अब मैं 'समाधि' कहने लगा हूँ।

यौवन, सौन्दर्य और प्रेमके कवि 'बच्चन' को बचपनसे ही नारीने बहुत नाच नचाये हैं। "नारी किशोरावस्थासे ही मेरे जीवनकी अंग, आवश्यकता और अनिवार्यता बन चुकी थी।" नर-नारीका यौन सम्बन्ध मूलतः द्वन्द्वात्मक है, जिसमें आकर्षण है, तो निकर्षण भी है और संघर्ष है तो समर्पण भी है। जैनेन्द्र की दृष्टिमें यह सम्बन्ध 'आंशिक स्पर्धा और आंशिक समर्पणका' है। "एक-दूसरेको जितेगा भी परन्तु उसके लिए मरेगा कैसे नहीं?" इस सन्दर्भमें अपना विश्लेषण करते हुए 'बच्चन'ने लिखा है "मानसिक दृष्टिसे प्रत्येक व्यक्ति नर-नारीका सम्मिश्रण होता है, किसीमें अनुपाततः नर अधिक होता है किसीमें नारी। मुझमें अन्तर्निहित नारी प्रमुख है और सम्भवतः मेरे अन्तर्निहित पुरुषसे अधिक सबल है।" इसलिए कविका सम्बन्ध उन नारियोंके साथ अधिक स्वस्थ और सन्तुलित रह सकता है, जिनमें अन्तर्निहित पुरुष प्रबल है क्योंकि आकर्षण विलोमका ही होता है। कविकी एक और मान्यता यह भी है कि "नारी अपने मूल रूप में मां ही है। उसके प्यारका आधार भी दया, कृपा,



सत्रह वर्षकी आयुसे ही नारीके साथ 'बच्चन'के तनमनका सम्पर्क शुरू हो गयाथा। इन नारियोंमें चम्पा, प्रकाशो, श्यामा, आइरिस और तेजीका प्रमुख स्थान है। चम्पा कविके अनन्य मित्र कर्कलकी पत्नी थी। जब कर्कलका विवाह तय होताहै तो कविको लगताहै कि चम्पा आकर कर्कलको मुझसे छीन लेगी और "मैं एकाकी, निरीह निःसंग रह जाऊंगा।" कर्कल उसे आश्वस्त करते हुए कहताहै "जो मेरा होगा, वह तुम्हाराभी होगा। हम शरीरसे ही दो हैं, प्राणोंसे एक।" दैव दुर्योगसे कर्कल अकाल काल-कलवित हो जाताहै और यह भविष्यवाणी सत्य हो जानेके लिए अभिशप्त। चम्पाकी वही दुर्गति होतीहै, जो एक गर्भवती विधवाकी होनी अवश्यम्भावी है। कविके इस प्रथम रोमांसपर घोर वेदना, असीम लज्जा और लांछनाका काला परदा गिर जाताहै। कविके जीवनमें उसके मित्र श्रीकृष्ण सूरिके माध्यमसे जिस क्रान्तिकारिणी महिला का प्रवेश होताहै, उसका नाम है—प्रकाशो। प्रसिद्ध कथाकार यशपालकी पत्नी प्रकाश पालके रूपमें हिन्दी संसार उनसे सुपरिचित है। दिल्ली प्रशासन द्वारा निष्कासित होनेके बाद कुछ दिन वह इलाहाबादमें 'बच्चन'की अतिथि बनकर रहीथी। "उन दिनोंमें रानी (प्रकाशो) दिन-दिन मेरे निकटसे निकटतर आती गयी, रानी मेरे जितने निकट खिंची और मुझे उसने अपने निकट खींचा, वहांपर समाजने खतरेका निशान लगा रखाहै।" ऐसीही कुछ औरभी पंक्तियां हैं जिसके आधारपर स्वयं प्रकाश पाल, यशपाल और कुछ और कुछ अन्य आलोचकोंने भी आपत्ति और विरोधके स्वर मुखरित कियेथे। आश्चर्य है कि कविने इन संस्मरणोंको लिखते समय जिस लोकशीलके निर्वाहका संकल्प कियाथा, उसने लेखनीको और अधिक संयत और मर्यादित रहनेके लिए उसे विवश क्यों नहीं किया? आत्मचरितकारको अपने आपको अनावृत्त करनेका जितना अबाध अधिकार प्राप्त है, उतना किसी दूसरेको उघाड़नेका तो नहीं। विशेषतः नारीके सन्दर्भ में तो औरभी अधिक संयम और संकोच अपेक्षित रहा होगा। प्रकाशोके स्नेह सम्पर्कने कविकी सृजन-चेतना कोभी गहराईसे प्रभावित कियाथा : "मेरे आँगनमें ओसकी एक बूँद टपकी और देखतेही देखते उसने जल-प्लावनका रूप ले लिया। और यह प्लावन गीतोंका एक सावनभी मनमें उठाता आया।" मधुबालाके अधि-

कांश गीत इस रस-प्लावनके मधु-मन्दिर क्षणोंमें ही स्वरित हुएथे।

श्यामा और तेजी पत्नियोंके रूपमें आयीं, परंतु, ये केवल परिणीता मात्र न होकर 'प्रिया, प्राणोंकी प्राण' बनकर रहीहैं। प्रथम पत्नीके रूपमें श्यामा जब कविके जीवनमें आयी तब कविके जीवनके कई मोर्चोंपर एक साथ लड़ रहाथा। "मेरे संघर्षमें श्यामाने अपनी इतनी मंगल-कामना दी, इतना सहयोग दिया, इतनी अपनी सेवा दी, इतना अपनेको दिया कि मैं उस संघर्षमें विजयी हुआ।" परन्तु, कवि अपने सब कुछकी बाजी लगाकर भी श्यामाको उस पार जानेसे नहीं रोक सका। श्यामाकी मृत्यु कविके जीवनकी सबसे बड़ी ट्रेजेडी थी, जिसने उसे बिल्कुल हिलाकर रख दियाथा। "उसकी मृत्युमें आधा मैंभी मर गयाथा। मेरे जीवनमें आधी वह भी जी रहीहै।" श्यामा अपनी चिर हृणताके कारण कभी शरीरकी संगिनी नहीं बन सकी "प्राण प्राणोंसे सके मिल किस तरह दीवार है तन।" परन्तु, प्राणोंके, प्रणय-प्रवेगमें यह देहकी दीवार ढूँढ़कर गिर गयी। उस सर्वस्व समर्पिताको कवि समानताके स्तर पर प्यार नहीं दे सकताथा तो क्या हुआ—वात्सल्य तो दे ही सकताथा। उसने उसे 'खेलकी सहेली' बनाया परन्तु यह 'खेलकी सहेली' कालान्तरमें उसकी अभिलषित जीवन-संगिनी बन गयीथी। 'निशा निमंत्रण' के सारे और 'एकान्त संगीत' के अधिकांश गीत श्यामाकी मृत्युसे पैदा होनेवाले महाशून्यको भरने, घावोंको सहलाने और खिन्न-क्लिन्न मनको बहलानेके बहानेभर हैं। तेजीके साथ 'बच्चन' का विवाह श्यामाकी मृत्युके छः वर्ष बाद सन् १९४२ में हुआथा। 'जब तेजी मेरे जीवनमें आयी तब वह पहली नारी थी, जिसमें देवी की दिव्यता, माँकी ममता, सहचरीकी सद्भावना और प्राणाधारकी प्राणदायिनी धाराका मैंने एक साथ अनुभव कियाथा।" वह कविकी ओर प्यारसे भी अधिक कर्षणाकी प्रेरणासे आकृष्ट हुईथी। उसके प्रति कवि का प्रेम कृतज्ञताजन्य है। तेजीकी व्यावहारिकता, दृढ़ता और कर्मठता कविके लिए वरदान सिद्ध हुई। "यदि सामान्य परिस्थितियोंमें वे फूलमालाके समान कोमल हो सकतीहैं तो चुनौती मिलनेपर लौहदण्डके समान कठोरभी हो सकतीहैं।" कविके जीवनमें तेजी का आगमन होनेके साथही सूनपन और एकाकीपनका समाप्त होना शुरू हो गया। तेजीके आगमन के साथ ही नये नीडमें आशाका दीपक



जल उठा। इस मधुर मिलनकी रागमयी प्रेरणासे ही कविने 'सतरंगिनी' 'मिलन यामिनी' और 'प्रणय पत्रिका' के आनन्द और उल्लाससे भरे हुए गीतोंका सृजन किया था। तेजीके साथ परिणय-सूत्रमें आबद्ध होनेके पूर्व कविके जीवनमें एक असफल प्रणय-प्रसंग भी आया था। आइरिस नामक एक क्रिश्चियन युवती ने बड़े मान-मनुहारके बाद कविके प्रणय-प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया था। इस अस्वीकृतिने कविके तन-मनको एक बार तो बिल्कुल तोड़कर रख दिया था। 'यदि नारी इन्द्रके प्यारकी अवहेलना करदे तो उसे भी अपने इन्द्रासनसे नीची शायद ही कोई जगह दिखायी पड़े।' इस विफल प्रेमकी निराशाने कविसे 'आकुल अन्तर' के वे गीत लिखायेथे, जिन्हें कविने बादमें 'सिनिकल मूड' के गीत कहा था। 'आकुल अन्तर' का मूल स्वर शायद इसी "उदासीनता, निरपेक्षता और निलिप्पता" का है।

'बच्चन' ने लिखा है 'मेरी कविता मेरे जीवनसे इतनी निकटतासे जुड़ी है जैसे मेरी नस-नाड़ियोंमें बहता हुआ रक्त। मैं अपने जीवनकी बात कहूँ तो कहीं न कहीं उसकी चर्चा आ जाना अनिवार्य है।' उनके इस आत्म-चरितमें कविताकी चर्चा हुई है और खूब हुई है। एक बार नहीं बार-बार हुई है। उनके लिए कविता जीवनकी प्रतिध्वनि है, जीवन कविताकी नहीं। कविता को जीवनानुगामी बननेकी आवश्यकता है, जीवनको कवितानुगामी बननेकी नहीं। यदि उसकी कवितामें कहीं दर्शन हैं तो वह भी जीवन-दर्शन ही है। कल्पना हो या चिन्तन, 'बच्चन' को वह तभी स्वीकार्य होता है, जब 'उसका मूल किसी जिये-भोगे-सहे यथार्थ' में हो। कविताकी सार्थकता इसीमें है कि वह जीवन और यथार्थके बीचमें सेतुका निर्माण करती है। भावनाके इस सेतुपर चढ़कर ही वह एक हृदयसे दूसरे तक जाती है। कवि इस संवेदनाकी संप्रेषणीयताको ही कविताका मूल धर्म मानता है। इसके लिए वह 'वचन-प्रवीणता या शिल्पकी बारीक नक्काशियोंको आवश्यक नहीं मानता। जीवनके उत्तरकालमें जब उसने अनुभव किया कि अब संवेदनाके स्रोत सूख रहे हैं और भावनामें कटुता उभर रही है तो फिर उसने 'जाल समेटा' करनेमें तनिक भी विलम्ब नहीं किया। 'तेरा हार' कविकी प्रथम प्रकाशित कृतिका नाम था तो 'जाल समेटा' अन्तिम कृति का नाम है। कविके ही शब्दोंमें " 'हार' यदि मोहका

प्रतीक है तो 'जाल' मोहभंगका।... जीवनके अनुरूप कविता भी मोहसे शुरू हुई थी और मोह-भंगपर समाप्त हो रही है।"

आत्म-चरितके प्रथम खण्ड 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में 'बच्चन' के पारिवारिक परिवेश, बाह्य वातावरण, नारीके साहचर्यसे होनेवाले रस-प्लावन, काव्य-सृजनकी प्रथम प्रेरणा और पृष्ठभूमिका ऐसा सजीव चित्रण हुआ था कि इस पुस्तकका प्रकाशित होते ही जैसा उत्साहभरा स्वागत हुआ वह लेखककी प्रत्याशा के परे था। कविके जीवन-संघर्षकी कटुताके साथ उसकी रोमानी भावनाओंकी मधु-मादकताके मिश्रणका अनुपात इतना सही बैठा था कि पाठकोंको उसमें अपने ही स्वप्न-संघर्षकी प्रतिछाया दिखलायी पड़ी हो तो कोई आश्चर्य नहीं। द्वितीय खण्ड, 'नीड़का निर्माण फिर' श्यामाकी मृत्युसे आरम्भ होता है और तेजीके साथ विवाहके बाद तक चलता है। इसमें कविकी उस मानस यात्राका चित्रण है जो शून्यता, निराशा और वेदनाके अन्धकारसे आरंभ होकर आशा और उल्लासके आलोक की ओर अग्रसर होता है। समान्तर काव्य-यात्राकी दृष्टिसे इसके एक छोरपर 'निशा निमन्त्रण' है तो दूसरे छोरपर 'मिलन यामिनी'। "है चिताकी राख करमें, मांगती सिंदूर दुनियाँ" का विरहाकुल और निराशातुर स्वर 'मधुऋतु-मुकुलित गुलमुहर तले रतनारी प्यारी सारी' में लिपटी नव परिणीताके मिलनकी मधुर रागिनीमें परिणत हो जाता है। 'बसेरासे दूर' तीसरा खण्ड है, जिसमें 'बच्चन' के कविके साथ अध्यापक और शोधार्थी भी कन्धासे कन्धा लगाकर खड़े हो गये हैं। अंग्रेजी कवि ईट्स शुरूसे ही 'बच्चन' के प्रिय कवि रहे हैं। इस कविपर कुछ अवोदिक प्रभाव रहे हैं, जिनमें से कुछ प्रभाव भारत मूलके भी हैं। कवि इस विषय पर शोध करनेके लिए ही कैम्ब्रिज गये थे। उसने सोचा था कि "वह अपने कविको पीछे ही छोड़े जा रहा है पर दिमागकी किसी परतमें छिपकर वह भी कैम्ब्रिज पहुंच गया था। 'प्रणय-पत्रिका' और 'आरती और अंगारे' के बहुतसे गीत कैम्ब्रिजकी धरतीपर ही लिखे गये थे। कैम्ब्रिजसे पी-एच. डी. की शोध-उपाधि लेकर लौटने वाले 'बच्चन' को स्वभावतः यह अपेक्षा रही होगी कि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी उन्हें यथोचित वेतन-वृद्धि और पदोन्नति प्रदान करेगी, परन्तु, यहाँपर उन्हें ठगा दिखा दिया गया। प्रो. दस्तूरके अलावा किसीने उन्हें मनसे



बधाई भी नहीं दी। अंग्रेजी विभागका वातावरण उनके विरुद्ध उपेक्षा ईर्ष्या और अवमाननाकी भावना से भरा हुआ था। कविने भी अपने मनमें इलाहाबादके प्रति विक्षोभ और वितृष्णाका अनुभव किया। तृतीय खण्डके अन्तिम पृष्ठ अपने पुरखोंकी इस धरतीके प्रति कविकी रीझ और खीझकी परस्पर विरोधी भावनाओं से भरे हुए हैं। अपनी द्विधा-विभक्त मनःस्थितिका विश्लेषण करते हुए स्वयं 'बच्चन'ने लिखा है : 'मैं इलाहाबादसे इतना नाराज नहीं था, जितना दुःखी। उससे नाराज होना तो अपनेसे ही नाराज होना होता। क्यों कि मैं उसीकी मिट्टीका था।' इलाहाबाद छोड़कर दिल्ली जाते हुए उसने अपनी कड़वी-मीठी यादोंके साथ जुड़े हुए विभिन्न स्थलों और वहाँके साहित्यिक परिदृश्यका जैसा भावभीना चित्रण किया है, वैसा वही कर सकता है जिसकी सांस-सांसमें इलाहाबाद समाया हुआ हो।

“दशद्वारसे सोपानतक” आत्मचरितका चौथा और अन्तिम खण्ड है। इसे 'सरस्वती सम्मान' से समादृत होनेका सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। सूर्यकी कनक-किरणें अपना हीरक-हार कलश-कंगूरोंको ही अर्पित करती हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि भवन की सारी भव्यता और सुन्दरता उनमें ही समायी हुई होती है। आकारकी दृष्टिसे यह अधिक विस्तृत है और दो पड़ावोंमें विभाजित है। पहला पड़ाव १९५६ से १९७१ तक और दूसरा पड़ाव १९७१ से १९८३ तक की कालावधिकी अपनेमें समेटे हुए है। कविका विशुद्ध मन प्रयागके पिंजरेसे उड़नेके लिए छटपटाही रहा था कि प्रधानमन्त्री नेहरूने उन्हें विदेश विभागमें हिन्दी अनुवादकके रूपमें दिल्ली बुला लिया। प्रारम्भमें उसे दिल्ली अपने सपनोंके स्वर्गसी प्रतीत हुई थी परन्तु शीघ्रही दिल्लीके दंशभी अनुभव होने लगे। सचिवालय में उसे अण्डर सेक्रेट्रीका पद दिया गया था और बैठने के लिए एक कोठरीमें स्क्रौनके पीछे टेबल कुर्सी लगा दी गयी थी। 'बच्चन' यह विश्वास लेकर गये थे "विविधताओंसे भरे इस देशमें केवल भाषाही ऐसा साधन है, जो हमें एकसूत्रतामें बांध सकता है।" परन्तु शीघ्रही वे समझ गये कि वहाँ प्रभुत्व उन लोगोंका है जो हिन्दीको केवल इस योग्य समझते हैं कि उसमें नौकर चाकर और चपरासियोंसे बात की जा सके। जो वगैरे अपनी अंग्रेजीके बलपर ही सारे देशकी छातीपर जम 'प्रकर'—अगस्त ६२—१४

कर बैठा हुआ है वह उसे टससे मस होने देनेके लिए भी तैयार नहीं है। 'बच्चन' के रहे-सहे उत्साहपर भी पानी फिर गया जब विदेश सचिव सुविमल दत्तने उन्हें अपने कक्षमें बुलाकर कह दिया "अभी जैसा चल रहा है, चलने दीजिये।" अब उनके लिए यह माननेके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था : "मैं जिस आशा, विश्वास और उल्लाससे विदेश विभागमें आया था वह मेरा भ्रम था।" अब कविने अपने समय और शक्तिका उपयोग शेक्सपियरके चार नाटकोंका हिन्दी काव्यानुवाद करनेमें किया। काव्य-सृजनका क्रम तो अनवरत चल रहा था।

सन् १९६६ से छः वर्ष तक 'बच्चन' राज्यसभा के राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सदस्य रहे। अपने इस कार्य-कालमें उन्होंने सदनमें शायदही कभी अपना मुँह खोला हो। वे प्रारम्भसे ही जवाहरलालजीके शालीन संभ्रान्त और प्रबुद्ध व्यक्तित्वसे प्रभावित थे। बादके वरसों में इन्दिराजीके साथ तेजी और राजीव-संजयके साथ अमिताभ-अजिताभके जो घनिष्ठ स्नेह-सम्बन्ध स्थापित हो गये थे उन्होंने कविको नेहरू परिवारका अनन्य प्रशंसक और समर्थक बना दिया हो तो यह स्वाभाविक ही था। परन्तु, राजनीतिक निर्णय लेते हुए वे इन वैयक्तिक सम्बन्धोंके धरातलसे ऊपरभी उठ सकते थे। 'बच्चन' ने स्वयं स्वीकार किया है "एक दिन किसीने मुझे प्रधानमन्त्री निवाससे फोन किया, शायद संजयने कि क्या मेरा नाम आपात्कालीन स्थितिके समर्थकोंमें दिया जा सकता है? और यदि मैं सच कहूँ तो केवल गांधी परिवारसे अपनी मैत्री और निकटताके कारण मैंने फोनपर ही हामी भर दी। इस पारदर्शी स्पष्टीकरण पर कोई टिप्पणी न अपेक्षित है, न उसकी कोई आवश्यकता ही है। परन्तु, कविके इस कथनको स्वीकार करना सबके लिए सम्भव नहीं होगा : "जहाँतक इमर्जेंसीका सम्बन्ध लेखनपर नियंत्रणसे था, मेरा विश्वास था कि सृजनशील लेखनपर इसका कोई असर नहीं पड़ेगा। इतनाही नहीं, मेरा विश्वास यह भी था कि नियन्त्रणके कारण सृजनशील लेखन और अच्छा होसकेगा।" फिर तो, लेखनकी उत्कृष्टताके नामपर आजभी सरकारसे पुनः नियंत्रण लगानेकी प्रार्थना की जा सकती है।

सन् १९७१ से १९८३ तक 'दूसरा पड़ाव' है। इसका आरंभ उस अनिश्चयके युगसे होता है जब राज्य सभाकी सदस्यता समाप्त होनेवाली थी और कविके आसानीसे साहित्यिक जीवन में वापस आने का आग्रह किया गया और



क्या करे ? जबतक जीवन है, जीविकाकी समस्या बनी ही रहती है, परन्तु 'बच्चन' के लिए यह समस्या आर्थिक उतनी नहीं, जितनी मानसिक थी। ज्येष्ठ पुत्र अमिताभ सिनेमाकी दुनियाँमें अपना पैर जमानेका प्रयास कर रहे थे। लगातार कई फिल्मोंमें पिट जानेके कारण उनकी स्थितिभी डाँवाडोल हो रही थी। 'जंजीर' के बाद अमिताभ एक सुपर स्टारके रूपमें सुप्रतिष्ठ हो गये और अब नयी पीढ़ीके लिए 'बच्चन' एक कवि कम और अमिताभ बच्चनके पिता अधिक हो गये थे। "अमिताभके साथ कहीं जाइये तो इसके लिए तैयार होकर कि आप उपेक्षित होंगे।" अपनी निजता और अस्मितापर यह आघात कविको कुण्ठित और दुःखित भी कर सकता था, परन्तु उन्हें स्वयं यह उपेक्षित होना सुखकर प्रतीत हो रहा था। अपने आत्मजके हाथों इस पराजयको कवि अपनी विजयके रूपमें ग्रहण कर रहे थे। एक बार उन्होंने स्वयं कहा, "अगर मुझसे कोई पूछे कि आपने सबसे अच्छी कविता कौन लिखी है तो मैं कहूँगा 'अमिताभ'।" इस प्रखण्डमें जितना कविका आत्मकथ्य है, उससे कहीं अधिक अमिताभके संस्मरण है। सफलताके शिखरपर चढ़नेके बादभी माता-पिताके प्रति अमिताभका व्यवहार सदा विनम्र, शालीन और गरिमामय बना रहा।

'बच्चन' ने चार खण्डोंमें अपना जो आत्मचरित लिखा है, उसमें संस्मरण रेखाचित्र, भ्रमण-वृत्त, व्यक्तित्व विश्लेषण, साहित्यिक सिद्धान्तालोचन और व्यावहारिक समीक्षा आदि अनेक साहित्य-विधाओंका सहज समावेश हो गया है। तीन-चाँथाई सदीके विराट् काल-अन्तरालमें जन-जीवनको आन्दोलित करनेवाली प्रायः सभी प्रवृत्तियाँ और गतिविधियाँ इसमें ध्वनित-प्रतिध्वनित होती हुई सुनायी पड़ती हैं। गाँधी और नेहरूसे लेकर डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, मोलाना आजाद, लालबहादुर शास्त्री और इन्दिरा गाँधी जैसी अनेक राष्ट्रीय विभूतियों और सुमित्रानन्दन पन्त, निराला, राहुल सांकृत्यायन, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', बेचन शर्मा 'उग्र', भगवतीचरण वर्मा, 'दिनकर', नरेन्द्र शर्मा, शिवमंगल सिंह 'सुमन', केदारनाथ अग्रवाल जैसे अनेक साहित्य-महारथियोंके व्यक्तित्व और कृतित्वको कहीं किञ्चित् विस्तार और कहीं संक्षेपमें बड़ी जीवन्तता और पारदर्शिताके साथ प्रस्तुत किया गया है। नवीनजी, उग्रजी और भगवती बाबूका

व्यक्तित्व विश्लेषण तो अलगसे हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। पन्तजीके साथ कविके मधुर सम्बन्ध अन्ततः उतने मधुर नहीं रह सके परन्तु कहीं-कहीं ऐसा आभासित होता है कि उनके अंकनमें यथेष्ट तटस्थता और निर्वैयक्तिकताका निर्वाह नहीं हो सका है। महादेवीजी का 'पीर, बवर्ची, भिश्ती, खर' कहकर जिस व्यक्तिकी ओर इंगित किया गया है, वह अनाम होकरभी अज्ञात नहीं रह सका है। यहाँ बच्चनजीकी अनुदारता कटुताका रूप धारण कर लेती है, जो अकारण न होने पर भी अवांछनीय प्रतीत होती है। आत्मकथाकार सबसे अधिक अकरण तो अपने आपके प्रति ही हो सकता है।

'बच्चन' हिन्दीके उन इने-गिने रचनाकारोंमें से है जो कवि होते हुए भी प्रौढ़, प्राञ्जल एवं परिष्कृत गद्य लिखनेकी कसौटीपर खरे उतरते हैं। उनका गद्य काव्य-गंधी गद्य नहीं है। हाँ, कहीं-कहीं उपचार-वक्रता और लाक्षणिक मूर्तिमत्ताका साक्षात्कार अवश्य होता है। कैम्ब्रिजमें शोध-उपाधि प्राप्त होनेके उपलक्षमें उत्सव-आयोजन करनेकी उनकी असमर्थताको यह एक वाक्य कितनी सक्षमताके साथ अभिव्यक्त कर देता है : 'गरीब के घर लड़का पैदा हुआ था।' कैम्ब्रिजसे भारत लौटते हुए इधर डेकपर और उधर तटपर खड़े हुए लोगोंकी उत्सुकताका चित्रण करते हुए उन्होंने लिखा है 'डेकपर, तटपर खड़े लोग आँखेंही आँखें हो रहे थे। कविताकी रचना प्रक्रिया जैसे जटिल और संश्लिष्ट विषयको कविने एक वाक्यमें ही समेट दिया है : "पहले घटित, फिर स्मृति, फिर अचेतनमें स्मृतिका स्वप्न अथवा कल्पनामें रूपान्तरण और अन्तमें सचेतन मस्तिष्क द्वारा स्वप्न अथवा कल्पनाका कला रूपमें अवतरण-किसीभी जीवन्त कला-कृतिके पीछे यही क्रम रहता है।" विस्तार भयसे अधिक उदाहरण नहीं दिये जा सकते। निःसंदेह अनेक वाक्य इतने सजीव और सारगर्भित हैं कि वे सूक्तियोंके रूप में प्रचलित हो सकते हैं, उनकी गागरमें सागर जो भरा है। 'बच्चन' आधुनिक हिन्दीके सर्वाधिक लोकप्रिय कवि तो हैं ही, उनके इस आत्मचरितको भी अनेक दृष्टियोंसे हिन्दीकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृतियोंमें गिना जायेगा। □



## काव्य : हिन्दी

(१)

### बहुस्तरीय सर्जनात्मकता, प्रयोगशीलता, जीवन-मृत्युके छोरका स्पर्श करनेवाली काव्यभाषाके नवप्रयोग

कृति : मैं वक्तके हूँ सामने

कृतिकार : गिरिजाकुमार माथुर

समीक्षक :

डॉ. हरदयाल

‘मैं वक्तके हूँ सामने’ गिरिजाकुमार माथुरका नवीनतम कविता-संग्रह है और इसपर साहित्य अकादमीने उन्हें १९९१ का पुरस्कार प्रदान किया है। इसमें उनकी १९८० और १९८९ के बीच लिखी गयी कविताएँ संगृहीत हैं। ‘इतिहासका पूर्वाभास’ (१९४७) और ‘विक्षिप्तोंका जुलूस’ (१९६६) जैसी कविताएँ अपवाद हैं, किन्तु उन्हें इस संग्रहमें दिया इसलिए गया है कि वे बहुत पहले लिखी जानेपर भी इस संग्रहकी कविताओंके मेलमें हैं।

गिरिजाकुमार माथुरकी कविताका आदर्श क्या है और उनकी अपनी कविताकी प्रकृति क्या है, इसे उन्होंने इस संग्रहके साथ जुड़े अपने ‘वक्तव्य’ के इन शब्दोंमें बहुत स्पष्टता और ईमानदारीके साथ व्यक्त कर दिया है—‘न तो सिर्फ विचार या कथ्यही कविता कहला सकते न कोरी भावना या कला। कविकी प्रातिभदृष्टि कथ्य और कथन-क्षमताके इस नाजुक सन्तुलनको तय करती है कि कौन-सा पक्ष कितनी मात्रामें कवितामें रहेगा। इस गहरी द्वन्द्वात्मक प्रक्रियासे गुजरे बिना कोईभी श्रेष्ठ कलात्मक रचना होही नहीं सकती। उसकी सार्थकता और परिणति मनुष्यकी पक्षधरता, जनोन्मुख जीवन-मूल्यों और संवेदनाके अन्तरंग परिष्कार में होती है। यही वह सूत्र है जो मेरी सौन्दर्य, प्रेम और इतिहास तथा यथार्थकी पिछली रचनाओंको जोड़ता है ‘प्रकार’—अगस्त ६२—१६

और आजतक की रचनाओंमें सदा मेरे साथ रहा है। सम्भवतः इसीलिए मुझे अपनी बनायी हुई रचना-परिधियोंको तोड़कर नयी अनुभव-भूमियोंकी तलाशमें बाहर आना बहुत अच्छा लगता है।” माथुरजीके इस कथन तथा उनकी केवल समीक्ष्य संग्रहकी ही नहीं, अपितु उनकी समस्त कविताओंको दृष्टिमें रखकर यह कहाजा सकता है कि उनकी कवितामें विचार और भावनाका, वैयक्तिकता और सार्वजनिकताका, परम्परा और प्रयोगका, कथ्य और शिल्पका द्वन्द्वात्मक सन्तुलन बराबर बना रहा है। वे स्थिर कभी नहीं रहे। उन्होंने प्रत्येक समसामयिक काव्यान्दोलनमें भागीदारी की। पहले उनकी कवितामें भावना और रूमानियतका पलड़ा भारी था अब विचार और यथार्थका पलड़ा भारी है। पहले उनकी कवितामें शिल्पका पलड़ा भारी था, अब कथ्यका पलड़ा भारी है। गहरी आसक्ति और तीव्र इन्द्रियबोध उनकी कवितामें बराबर विद्यमान रहा है। यह उनकी इस संग्रहकी कविताओंमें भी विद्यमान है। गहरी आसक्तिके उदाहरणके रूपमें इस संग्रहका उन पांच कविताओंको प्रस्तुत कियाजा सकता है जिनका सामूहिक शीर्षक ‘कालके कगारसे’ है। ये मृत्युके सामने आ खड़ा होनेपर लिखी गयी कविताएँ हैं। इन कविताओंसे स्पष्ट है कि जीवनके प्रति कविमें गहरी आसक्ति है, परन्तु उस आसक्तिमें यथार्थबोधका लय नहीं हो गया है। फलतः कवि आसन्न मृत्युको सहजही स्वीकार



कर लेता है। इन कविताओंमें मृत्युके प्रति भय व्यक्त नहीं हुआ है, क्योंकि वह कवि मनमें है ही नहीं। मृत्युके प्रति भयहीनता कविके इस दृष्टिकोणके कारण है—

मृत्यु नहीं है नींद आखिरी/बूंद-भर धड़कता  
आलोकित अन्तराल है/  
जीवनको/वह एक चुनौती है/इस सारे मोहक सपने  
के बीच/  
खुदको समझनेकी/और होसके तो कभी पूरे होने  
के लिए/  
बहुत अच्छे नये सपने छोड़ जानेकी। (पृ. ७८)

'कालके कगारसे' क्रमकी चौथी कविताका शीर्षक 'पुनर्जन्मकी नयी कामना' है। इस कवितामें कवि कहता है कि मृत्यु होजानेपर शरीर तो मिट्टीमें मिल जायेगा लेकिन मन यहीं रह जायेगा मनहरन दृश्योंमें, नये सृजन में, और कर्म-जगत्में। मन यहाँ जिन दृश्यों, कर्मों, स्थितियोंमें रह जायेगा, उनकी कविने जो सूची प्रस्तुत की है, उससे कविकी मनोरचना, उसकी आसक्तियों और उसके इन्द्रियबोधका पता हमें मिलता है। इस कविताका एक अंश उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है :—

ऊँचे यूक्लिडसपर/रोयेंदार फूलते सिरसपर/  
फलमें बदलती कलियों-भरे अमरुदपर/  
आकाशसे नये डोडे झरनेकी प्रतीक्षामें/  
बाँहें खोले सेमलपर/गरबीले अशोकपर/  
चिड़िया बन उड़ेगी/जब-जब/जहां-जहां/  
बच्चे निर्भय हो खेलेंगे/किलकारियां भरेंगे/  
नये खूनकी दौड़ती गुलाबीमें/खिलती कसी लड़कियां/  
बात-बातपर अकारण हंसेंगी/युवा झूमेंगे,  
मुक्त आकाशोंमें/शान्ति-गीत गायेंगे/  
वहाँ-वहाँ वह खुश होगा/उनकी चमकको और तेज  
करेगा/—  
जितने अधूरे छूट गये हैं मेरे काम/पूरा करनेको  
उन्हें उकसायेगा/  
नये रूपोंमें/और अच्छी दुनियांको देखने/  
यह मन/यहीं-यहीं रहता चला जायेगा।

(पृष्ठ ८४-८५)

मृत्युको बिना किसी हील-हुज्जतके एक अनिवार्यता के रूपमें निर्भीक होकर स्वीकार कर लेनेका अर्थ जीवन से उपराम हो जाना नहीं है, उपर्युक्त पंक्तियाँ इस बात को प्रमाणित करती हैं। गिरिजाकुमार माथुरकी जीवन के प्रति आसक्ति उनके सौन्दर्य-प्रेमके रूपमें अभि-

व्यक्त हुई है। उन्हें नारीके मांसल सौन्दर्यसे भी प्रेम है और प्रकृतिके मनोरम सौन्दर्यसे भी। नारीके मांसल सौन्दर्यके प्रति उनका आकर्षण समीक्ष्य संग्रहकी कविताओंमें बीच-बीचमें व्यक्त हुआ है—

जहाँसे आँखोंको जादू/चेहरोको रूपका खिचाव/  
वक्षको भराव/आदमीको पौरुषकी जुझारू आस्था/  
औरतकी बाँहोंको नरम ऊष्मा/कोखको भिगोता/  
ममताका द्राक्षाजल/देहको अनोखा सम्मोहन  
मिलता है/

मेरे शब्द वहींसे/तेरते आते हैं। (पृष्ठ ४-५)

नारी-शरीरके प्रति तीव्र ललक कविके मनमें अब भी विद्यमान है, उसका प्रमाण उसकी यह कामना है—

—मैं नीले आकाशवाली अपनी खाली बाँहोंमें  
तुम्हें फागुनी चांदकी तरह समेट लेना चाहता हूँ  
—मैं धूपकी ऊष्म उँगलियोंसे छूकर  
तुम्हारी देहको आभ्र-बौरों-सा खिला देना चाहता हूँ

—मैं तुम्हारी पलकों और आँखोंके कोयोंको  
किशकके काही, ललाटे रंगोंसे  
और गहरा रंग देना चाहता हूँ  
—मैं तुम्हारे कानोंकी नरम लवोंमें  
गरम झनझनाहट भर देना चाहता हूँ

(पृष्ठ १०६)

कविकी इस कामनामें नारी-देह तो है ही, साथही प्रकृति भी है। नारी सौन्दर्यको व्यक्त करनेके लिए प्रकृति और प्रकृतिके सौन्दर्यको व्यक्त करनेके लिए नारीकी सहायता कवि प्रायः लेते रहे हैं। माथुरजीने भी यही किया है। उन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्यको अपनी कविताओं में बराबर अंकित किया है, लेकिन उसे जीवनसे विच्छिन्न करके कभी नहीं देखा है। अब उनकी कविताओंमें प्रकृतिकी अपेक्षा मानव-जीवनको अधिक महत्त्व मिलने लगा है। 'मैं वक्तके हूँ सामने' में 'वसन्त : सिर्फ फूल नहीं' शीर्षकसे जो तीन कविताएं छपी हैं, उनमें प्रकृति की अपेक्षा जीवन अधिक है, यह बात शीर्षकसे ही स्पष्ट है। भरे पेट लोगोंके लिए वसन्त सौन्दर्य और प्रेमकी ऋतु है, लेकिन जिन्हें अपनी जीविकाकी चिन्ता है, उनके लिए वसन्त कुछ और ही है। किसान फूली हुई सरसों और उसपर मंडराती रंगीले पंखोंवाली तितलियोंके सौन्दर्यको नहीं देखता। वह देखता है आसमान में छाई हुई हल्की बदलीको क्योंकि—

'सूकर'—भाद्रपद २०४६—१७



बस कुछ थोड़ी छीटा-छांटी हो जाये/बच जाये  
फसल ये ओलोंसे/

अच्छे दाम बिक जाये/अबकी जेठ/इसी सरसोंसे  
बिटियाके हाथ पीने करानाहै।

‘मैं वक्तके हूँ सामने’ में सबसे अधिक संख्या उन कविताओंकी है जिनमें कविने वर्तमानके भयावह यथार्थका चित्रण किया है। यह भयावह यथार्थ राज-नीतिक, अर्थनीतिक, नैतिक आदि जीवन विभिन्न पक्षोंमें व्यक्त हो रहा है। आज मनुष्यका देवत्व तो अलग उसका मनुष्यत्वभी व्यक्त नहीं होपा रहा है। जो व्यक्त हो रहा है वह मनुष्यका पशुत्व है—

एक यौन क्रान्ति/एक सांस्कृतिक क्रान्ति/गुफाओं  
और जंगलोंमें/

आदमीकी वापसी/जानवरकी गंध/बीसवीं सदीका  
अन्त/

नहीं कुछ पावन है/नहीं कुछ अन्तरंग/नहीं कुछ  
प्रिय है अब/

नहीं कुछ भव्य, स्मरणयोग, आत्मीय/मांसके फड़-  
कते गट्ठर उठाये/

पीड़ितोंकी वहशी फीज एक/नाशकी बीभत्सताके  
चरम अश्लील क्षणमें/

फाड़कर तिथियोंकी झिल्लियां/समाती चली जाती  
हैं/भावीके गर्भ-रहित छेदमें। (पृष्ठ २७-२८)

सभ्यता और आधुनिकता, संस्कृति और प्रगतिके नामपर मनुष्यकी पशुता, उसकी आदिम भूख, मूल्य-हीनता, स्वार्थपरता, सत्तालोलुपता क्रूरता आदिकी प्रवृत्तियाँ उभरकर सामने आयी हैं। इनके कारण हमारा वर्तमान भयावह हो गया है—

खूनी, जली, बारूदी/चलती हैं आँधियाँ/भूखे जल-  
हीन/

गांव-खेत थरथराते हैं/सत्ताकी चमक तले/लगे  
स्याह मकड़-जाल/

सारी रोगनीको/बीचही में/पी जाते हैं—/

नीचे बहुत उतर गया/जहर फूट-हत्याका/छोटे बड़े

अग्नि-कांड बन जाते हैं/उन्हें नहीं अहसास/कहेगा  
प्रश्न/

वे जो इस सदीको/मध्ययुगमें लिये जाते हैं—  
क्या इतिहास/

(पृष्ठ ७४)

ऐसी स्थितिमें बच्चोंके भविष्यके लिए चिन्ता स्वाभाविक है। भावीकी चिन्ता समीक्ष्य संग्रहकी अनेक कविताओंमें व्यक्त हुई है। लेकिन कवि निराश नहीं है। भविष्यके प्रति कविमें गहरी आस्था और आशावादिता है—

और कबतक रोकेंगे धूप/वह किसीभी मोखेसे/  
संदसे, दरारसे, झरोखेसे/

झरकर कहींसे भी/भीतर आ जायेगी/कहीं फूल/  
कहीं किरन/

कहीं हवा/जलकी झरन/कहीं किलकारी, हंसी/  
बच्चोंका चिन्ताहीन खुला

शोर/शान्ति, खुशी, रहन-सहन/भूखेको रोटी/अधे

को मिले नयन/  
ऐसेही रूपोंमें/रोशनी हमेशा/आदमीको मिल

जायेगी। (पृष्ठ ६५-६६)

स्पष्ट है कि कविका अनुभव-जगत् वैविध्यपूर्ण और विस्तृत है। इस अनुभव-जगत्की अभिव्यक्तिकी कुछ चीजें हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। इनमेंसे एक चीज है कविताओंकी गतिधमिता। कुछ कविताएं गीतधर्मी ही नहीं हैं अपितु गीतरूपमें लिखी भी गयी हैं। भाषाकी प्रतीकात्मकता, आंचलिकता और सटीक विशेषणयुक्तता अपनी अलग पहचान बनाती है।

निष्कर्षतः ‘मैं वक्तके हूँ सामने’ की कविताएं गिरिजाकुमार माथुरके काव्योत्कर्षकी द्योतक कविताएं हैं। आधुनिक हिन्दी कविताका यह एक विशिष्ट संग्रह है। [१]



(२)

## दृश्य स्थिति, परिवेश और संघर्षको गहराते सहज-संवेदनीय रूपोंका काव्य

—डॉ. वीरेन्द्रसिंह

“मैं वक्तके हूँ सामने” एक ऐसे कविका संकलन है जो नयी कवितामें अपना एक स्थान बना चुके हैं और आजकी कविताके साथ चलनेका प्रयत्न कर रहे हैं। कवि माथुरकी संवेदनामें ‘कुछ’ परिवर्तन तो अवश्य आया है, जहां वे कभी-कभी आजकी कविताकी सहज संवेदनीयता और सहज भाषिक संरचनाके निकट आते प्रतीत होते हैं, परन्तु संस्कारजन्य चिन्तनप्रधान भाषामें ही वे अधिक रचनात्मक हो पाते हैं। वस्तुतः यह दूसरा कार्य है कि परिवर्तित काल-बोधके अनुसार कवि अपनी भाषिक संरचनाको भी उसी बहुलताके साथ बदल दें जैसाकि निरालामें प्राप्त होता है। फिर भी माथुरजीकी कविताओंमें कहीं-कहीं ‘सहजता’ के जो दर्शन होते हैं, वह आजकी कविता (युवा कविता विशेष रूपसे) के निकट आते प्रतीत होते हैं—एक उदाहरण लें जहां ‘बच्चे’ का अर्थ-रूपान्तरण होता है—

बच्चा,

सूरजसे पहले जाग जाता है

×

×

×

आते नये वक्तको  
जल्दी बुलाता है—

—घरभर में/दिन-सा निकल आया है

मनमें अचानक

घूम भर गयी है

ठहरी हुई दुनियांको

गति मिल गयी है।

(निथरी हुई बूँद, पृष्ठ ६४)

मेरे विचारसे कविकी उपयुक्त पंक्तियाँ संवेदना को छूती हैं, पर आजकी कवितामें बच्चा (माँ, पिता, बहन आदि) जहां संवेदनाको गहराता है, वहीं वह चिन्तन संघर्ष और अस्मिताकी खोजका प्रतीक ही जाता है। गोविंद माथुर कृष्ण कल्पित, विनोदकुमार श्रीवास्तव,

नीलाभ आदि कवियोंमें पारिवारिक बिम्बोंका यही रूप मिलता है। विनोदकुमार श्रीवास्तवकी कविता ‘बहन’ की ये सुन्दर पंक्तियाँ लें जो आजके तनावपूर्ण यथार्थको सहज-संवेदनीय रूपमें प्रस्तुत करती हैं—

जब सारी हिम्मत/सोख लेती हैं/पिताकी थकी हुई  
बातें/दूर और दूर भागती हैं/माँकी नाउम्मीद आँखें/  
भटकनेके तमाम/टोटकोंके बावजूद/घर लौटा लाती  
हैं/साँझके धुँधलकेमें/टिमटिमाती हुई बहनें/

(पहल-४१)

यहाँ इन दोनों कविताओंके समान विषय (परिवार बिम्ब) की ओर संकेत करना ही नहीं है, दोनोंके ‘ट्राट-मेंट’ के अन्तरको स्पष्ट करना है। जहां माथुरजीकी कवितामें ‘ठहराव’को गति मिलती है, वहीं विनोदकी कवितामें गति को ‘ठहराव’ मिलता है—एक विक्षोभ-जनित तनाव और घुटनका ‘ठहराव’ जो मनमें एक विचित्र कुरेद उत्पन्न करता है जिसे व्याख्यायित करना दुष्कर है। प्रतीतिके धरातलपर ही इस चिन्तन-संवेदन के मर्मको समझा जा सकता है। माथुरजीने बच्चेके प्रथम शब्द उच्चारणको जहां एक ओर जैविक संरचनासे (ऑरगेनिक) जोड़ा है, वहीं दूसरी ओर प्रथम बच्चेका शब्द क्रमशः नये अर्थके साथ भाषामें आया है :—

—सारी ध्वनियोंको यह शब्द

धोकर ले आया है

कोई नया अर्थ

फिर भाषामें आया है। (पृष्ठ ६६)

ऐसे “नायाब चंदोवे” को कवि कहीं रखे, उसे कैसे बचाये अपने ‘समयके अंधेरे’से जिससे वह भविष्यका अग्रदूत बन सके (पृ. ६७)। यह चंदोवा (बच्चा) दुहरे अंधेरेसे सरककर कविके पास आ गया है और तब—

दुहरे अंधेरेमें वह छोटा चंदोवा

और तेज होकर/मेरे पास सरक आया है/



मैंने घबराकर वक्तकी स्याहियोंमें डूबी

अपने कलमकी निब

जोरसे गड़ाकर कागजपर तोड़ दीहै

—आगेकी कविता

वह एक नये रंगकी रोशनाईसे लिखेगा ।

(किसीभी बच्चेके लिए, पृ. ७२)

कविताकी अंतिम दो पंक्तियां 'संभावना' की ओर संकेत करतीहैं जो इतिहासकी गतिको अर्थ दे सकें । माथुरजीकी अनेक कविताओंमें बच्चा, अंधेरा, शब्द, आग, बीज, पहाड़ आदि शब्द या रूपाकार आजकी कविताके प्रिय रूपाकार हैं और इस विदुपर माथुरजी की कविताएँ वक्तसे सीधे टकरातीहैं । इस टकराहटमें अपने समयकी पीड़ा, व्यथा और संघर्षकी स्थितियाँ हैं, यहां शब्द बेमानी हो गयेहैं, ऐसे माहौलमें कविको विश्वास है कि 'वक्त फँसला करने आयेगा/जरूर आयेगा जब उसे नयी भाषा और नया सामूहिक इंसाफ खोजना होगा । (पृ. ११०) । यहां 'वक्त' एक शक्ति है, नियति है जो गतिशील है । मध्यकालीन दैवीशक्तिके स्थान पर अब 'काल' आ गयाहै जिससे कवि टकराताहै, जूझताहै, उसे बदलना चाहताहै । चाणक्यने अर्थशास्त्र में कहाहै कि देश, काल और पौरुषमें पौरुष महान् है क्योंकि पौरुषके द्वाराही हम कालपर विजय प्राप्त करते हैं । यही पौरुष काल है :...

शब्दकी राहसे

रोशनीके लिए

चल रहा वक्तसे युद्ध (पृ. ५३)

माथुरजीकी कविताओंसे गुजरते हुए अनेक चिन्तन के आयाम नजर आतेहैं जैसे काल, इतिहास, राजनीति, प्रकृति तथा विज्ञान आदिके आशय और प्रत्यय उनकी रचनात्मकतामें अन्तर्धाराकी तरह प्रवाहित प्राप्त होते हैं जो परोक्ष रूपसे नयी कविताकी चिन्तनशीलताके परिचायक हैं । इस संग्रहमें चिन्तन (वैचारिकता) और संवेदना या रागका समीकरण अनेक कविताओंमें हैं जिनमेंसे कुछका संकेत ऊपर दिया जाचुका है । कुछ कविताएँ जैसे "इतिहासका पूर्वाभास", "कविता जमीन की", "एक खुला आसमान" "कोईभी रामबहादुर" जैसी कविताएँ यदि संग्रहमें न भी होतीं, तो अन्तर नहीं आता । ये कविताएँ सपाट हैं, विचार संवेदनका समीकरण वहां सार्थक नहीं है । वस्तुतः इन कविताओं का कथ्य एकसे अधिक बार भिन्न रूपाकारोंके द्वारा आ गयाहै; अतः पुनरावृत्ति अखरने लगतीहै ।

'प्रकर'—अगस्त'६२—२० CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

कविकी रचनाशीलतामें भिन्न वैचारिक आयाम हैं—इनमेंसे सबसे प्रमुख आयाम हैं, काल. इतिहास और राजनीति । यदि गहराईसे देखा जाये तो अधिकांश कविताएँ शब्दकी अर्थवत्ताके साथ इन्हीं आयामोंको 'अर्थ' प्रदान करतीहैं । माथुरजीके यहाँ काल गति है, वह अतीत, वर्तमान और भविष्यकी निरंतरतामें इतिहास का सृजन है । यही नहीं, कालही (जल-प्रवाह) ग्रह से नक्षत्रों तक फैला जल-विस्तार है । यहांपर कालका ब्रह्माण्डीय तथा मानवीय रूप सापेक्षतः दिखायी देता है :—

ग्रह से नक्षत्रोंतक

बहता जल अपार हूँ

मैं ही अतीत हूँ/वर्तमान हूँ/अनागत हूँ

हर क्षण बनता

तुम्हारा इतिहास हूँ ।

(समयकी धार)

माथुरजीकी चार कविताएँ "कालके कगारसे" सम्बन्धित हैं जो उस समय लिखी गयीं जब कवि असाध्य रोगके कारण 'मृत्यु' के अनन्त द्वारका अनुभव कर रहाथा । पुराणों तथा महाभारतमें कालको यम या मृत्यु भी माना गयाहै और उसे नियति या शक्ति के रूपमें भी कल्पित किया गयाहै । मृत्युबोधके इस क्षणमें कवि, विलोमों (जीवन-मृत्यु आदि) के बीच अनन्तका अदृश्य द्वार देखताहै जहां जीवन डबडबाया हुआ दिखायी देताहै : यही जीवन और मृत्युका संघर्ष है जो जो कविताओंमें फूट पड़ा—

संयोग और वियोग

जीवन और मृत्युके बीच

एक अदृश्य द्वार है अनन्तका

जिदगी जहां डबडबाती खड़ी रहतीहै

अंजलियां बाँधे हुए । (पृ. ७७),

इस स्थितिमें 'मृत्यु' अन्तिम नींद नहीं है, बल्कि एक चुनौती है, जोभी सांसें बाकी हैं, वे अमोल हैं (पृ. ८०) समय 'संजीवन' है जो सब भर देताहै, एक धुंध है जो सब कुछको डूबो देताहै, "एक पलटा हुआ पन्ना है, उम्र की किताबका" (पृ. ८१), समय सब कुछ ले जाताहै, पर एक चीज नहीं—

हर अधूरी इच्छा

वह समेटकर ले जाताहै

मेरा एक शब्द

यह  
है  
कवि  
जो  
करत  
साक्ष  
अर्थ  
की  
का  
मे  
अर्थ  
का  
उछ  
प्रहा  
जो  
'मह  
का  
वृहद्  
सांके

ऐतिह  
राज  
प्रत्यक्ष  
कार्य



फिरभी बाकी रह जाता है । (पृ. ८२)

यह 'शब्द' का शेष रह जाना, कालपर विजयका सूचक है जिसे मैंने पौरुष-कालकी संज्ञा दी है । माथुरजीकी ये कविताएँ, मेरे विचारसे इस संग्रहकी ऐसी कविताएँ हैं जो व्यापक मानवीय सृजनात्मक आयामोंकी ओर संकेत करती हैं । इनसे गुजरना मानो 'सत्य' का क्रमिक साक्षात्कार है । यह साक्षात्कार संघर्ष और गतिको अर्थ देता है न कि पलायन और निराशाको । कविताओं की भाषिक संरचना इतनी सहज-संवेदनीय है कि कवि का चिन्तन-संवेदन उसमें एकाकार हो गया है । इसी संदर्भ में देश, काल और इतिहासके सांस्कृतिक रूपका एक अर्थवान् बिंब है । 'महावृक्ष' जिसे कविने राष्ट्र या देश का प्रतीक बनाया है जिसका शरीर 'जिंद' लोथड़ोंमें उछट रहा है और यह देश अडिग महावृक्ष-सा कालके प्रहारको सहता हुआ, उन लोगोंको सावधान कर रहा है जो उसकी छायाको भोगनेमें तत्पर हैं लेकिन उस 'महावृक्ष' के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है । "इस अखण्ड वृक्ष का किसे है ख्याल"—इस कथनको कवि अन्तमें एक बृहद् संदर्भमें बदल देता है जो आजकी त्रासद स्थितिको सांकेतिक रूपमें व्यक्त करता है :—

उठ रही इस औघड़ तरुसे

मौन कालकी पुकार

छाया भोगनेवालो होशियार

यह सब तुमपर निछावर किया हर बार

किन्तु वक्त करता नहीं किसीका भी इन्तजार

समयका रथ ज्यादा रुक नहीं पाता है

रखा-रखा अमृत भी विष बन जाता है

चूका हुआ क्षण कभी वापिस नहीं आता है ।

(महावृक्षकी पुकार, पृ. ८-१०)

यह कविता आजके राजनीतिक-आर्थिक कालको ऐतिहासिक संदर्भमें प्रस्तुत करती है । अन्य कविताओंमें राजनीतिक कालका जो भी संकेत है, वह सांकेतिक है, प्रत्यक्ष एवं सपाट नहीं है । माथुरजीके 'रूपाकार' इस कार्यको पूरा करते हैं । ये शब्द चालाक भी हैं क्योंकि

राजनीति, धर्म, सम्प्रदाय इन शब्दोंको विडम्बित करते हैं, ये रूपाकार यथावत् के आराधक हैं" (पृ. १६) जो राजनीतिमें यथास्थितिको बनाये रखते हैं । कविको ऐसे शब्द या रूपाकार नहीं चाहिये जो—

"अब वह शब्द नहीं चाहिये

जो होता है सामने उसे झूठ बतलाते हैं

जो होता नहीं है उसका आसरा दिलाते हैं

असलियतको तुच्छ मान

आत्म दर्शन सिखाते हैं (पृ. १८-६६)

आजके नेताओंकी हालत क्या है—"जुटे हुए हैं वही खिलाड़ी/चाल वही, संकल्प वही/सबके वही पियादे-फर्जी/कोई नया विकल्प नहीं" (पृ. २०) तो दूसरी ओर "वे क्या दिशा दिखायेंगे/दिखता जिनको आकाश नहीं" (पृ. २१)—ये पंक्तियाँ आजके नेताओंके चरित्रको सांकेतिक रूपमें व्यक्त करती हैं । कविको आतंकवाद वहशीपन किस रूपमें लगता है, देखें—

एक यौन क्रान्ति

एक सांस्कृतिक क्रान्ति

गुफाओं और जंगलोंमें

आदमीकी वापिसी

जानवरकी गंध

बीसवीं सदीका अन्त

(पृ. २४)

ऐसी कविताओंमें जीनेका अर्थ मृत्यु है—यही तथ्य प्रकट होता है । आजकी भारतीय स्थितिमें (अन्तर्राष्ट्रीय भी) ये कविताएँ अपने क्रूर समयसे टकराती हैं । भाषाकी संरचना यहाँभी सहज-संवेदनीय हैं । यदा-कदा जो प्रकृतिके दृश्य आते हैं, उनका भी सहज-संवेदनीय रूप है—ये दृश्य स्थिति, परिवेश और संघर्षको गहराते हैं । समग्र रूपसे यह कहा जा सकता है कि माथुरजीका यह कविता संग्रह विचार-संवेदनके भिन्न आयामोंको रचनात्मक "अर्थ" देता है और यह कृति वस्तुतः आजके विचार-संवेदनको भिन्न रूपोंमें 'अर्थ' प्रदान करती है । □



## काव्य : उड़िया

# जीवनके सूक्ष्म निरीक्षण, एकाकीपन, अस्तित्वके विखण्डन और अनिश्चितताके भयसे जूझता काव्य

कृति : आहिन्क

कृतिकर : जगन्नाथप्रसाद दास

समोक्षक :

डॉ. वनमालो दास

‘आहिन्क’ जगन्नाथप्रसाद दासका एक सफल काव्य-संकलन है। कवि दासने वर्तमान जन-जीवनको जैसा देखा है, अनुभव किया है, उसे उसी रूपमें चित्रित करनेका प्रयत्न किया है। इसलिए इसमें कवि दास कल्पनाजीवी नहीं बने, बिल्कुल यथार्थवादी, संवेदनशील युगचेतनाके धनी और युगवेदनासे व्यथित काव्यकार हैं।

कवि दास आधुनिक उड़िया साहित्यके एक विशिष्ट कवि हैं, रमाकान्त रथ, सीताकान्त महापात्रके समान स्तरके हैं बहु-प्रतिभाके धनी हैं। केवल कविताएँ और कहानियाँ ही नहीं, अपितु आधुनिक उड़िया नाट्य-साहित्यको भी समृद्ध किया है, उपन्यास क्षेत्रको भी। अबतक उन्होंने आठ कविता-संग्रह, पाँच कथा-संकलन, चार नाटक, एक उपन्यास कथा, एक ‘आलि-मालिका’ नामके अन्य रचनाओंका संकलन किया है। वे रुचि-सम्पन्न कलाप्रेमी हैं।

‘आहिन्क’ तीस कविताओंका संकलन है। इसमें कविने आजके जन-जीवनकी स्थिति, समस्या, अशान्ति, संक्रास, राजनीति, धर्मधारणा, विज्ञानकी नाशशीलता, अहंवादता, स्वार्थ और शोषण तथा सरकारके नीति-विहीन शासनका स्पष्टता तथा निर्भीकताके साथ चित्रण किया है।

वे यथार्थ द्रष्टा हैं, निरीक्षण दृष्टि सूक्ष्म और तल-स्पर्शी है, उसमें चिन्तनकी गहराई है, इन्हींसे रूप-निर्माण किया है। ‘बालिआपाल’<sup>१</sup> कवितामें कविने कहा है— ‘बालिआपाल’ एक तीर्थ स्थान है। वह कुरुक्षेत्र नहीं,

धर्मक्षेत्र है। यहां प्रवेश करनेके लिए पहले जूता निकासना पड़ेगा, अस्त्रशस्त्र फेंकना होगा, सिर नीचा करना होगा और हाथ जोड़ना होगा। यह पवित्र स्थल है, सत्यका परीक्षागार है, अहिंसाकी प्रयोगशाला है। वह नहीं जानता अमरीका कहाँ है, रूस कहाँ है, और हिरोशिमा कहाँ है, वह मात्र जानता है भूख क्या है, दो मुट्ठी अन्न क्या है। वह केवल जानता और पहचानता है गेहूँको, बादलको, रससौंधीको, फल-फूलोंको, अकाल को और कीड़े-मकौड़ोंको।

यहांका अधिकारी है किसान। यहां अस्त्र-शस्त्र नहीं, सेनावाहिनी नहीं, शीतयुद्ध भी नहीं है केवल मिट्टी, पानी, पेड़-पौधे और घरतीकी हरियाली। अंत में कविने जनताका पक्ष समर्थन करते हुए भविष्यवाणी की है सरकार कुछभी करे जय होगी जनताकी, धान ही धान पैदा होगा, प्रक्षेपणास्त्र नहीं :—

यहाँ तुम धानके बदले / बंदूक गाड़ दो / खादके बदले/बारूद फैलादो / पानीके बदले/ खून बहादो/ पर अन्तमें यहांकी मिट्टीसे / धानही धान पैदा होगा/ प्रक्षेपणास्त्र नहीं।

कवि यथार्थवादी है, कल्पनाविलासी नहीं, स्वप्न-द्रष्टा भी नहीं, सहृदय और संवेदनशील। जन-

१. बालिआपाल—उड़ीसाके बालेश्वर जिलेमें एक स्थलका नाम है, हरा भरा क्षेत्र है। वहां भारत सरकार और प्रक्षेपणास्त्र केन्द्र बनाना चाहती है, किसान विरोध कर रहे हैं।



साधारणकी दुर्दशा, दीनावस्था देखकर वे व्यथित हो उठते हैं। उनकी यह व्यथा 'कलाहांडी' शीर्षक कविता में व्यंजित हुई है :

हर जगह कलाहांडि/  
अन्नछत्रके कंकाल-मेलमें/  
वच्चे नीलाम किये जानेवाले हाट और बाजारमें।  
वेश्यालयमें विक जानेवाली/  
लड़कीकी लम्बी साँसमें/  
गाँव और मिट्टीको छोड़ जानेवाले/  
लोगोंकी आहमें/

फिरभी जनता-सरकारकी दया-दृष्टि उनपर नहीं जाती, जाती है तो नेता और अफसरोंकी और उनकी जेबमें। लोगोंको केवल मिलते हैं झूठे आश्वासन, बना-बटी सहानुभूति, खोखली घोषणाएँ, धूर्तता ही धूर्तता। कविने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है :

और निकटसे कलाहांडीको देखो/  
मिथ्या विवृतिकी शून्य गर्भ घोषणामें/  
अविश्वस्त भाषणोंके झूठे क्रन्दनमें/  
कम्प्यूटर-कागजके अतिरंजित परिसंख्यानमें/  
सभा-समितिकी प्रवचनामें/  
सस्ती सहानुभूतिमें और/  
योजनाकी अर्थहीन प्रतिश्रुतिमें/ २

यहाँ कविकी केवल भावुकता प्रकाशमें नहीं आती, जनताकी पीड़ासे ही वे संतप्त नहीं हो उठते अपितु सरकारकी, नेताओंकी, अधिकारीवर्गकी कर्तव्यहीनता, कपटता, अमानवीयतापर अपनी टिप्पणोंके साथ उनके आचरणको निरावरण कर देते हैं।

आजका वातावरण स्वार्थसर्वस्व है। सत्तामें जमा रहनेके लिए नेता और अधिकारी-वर्ग अपने-अपने स्वार्थ में लगे हैं, अधिकसे अधिक अधिकार और शक्ति जुटाने के लिए प्रयत्नशील हैं। उनकी दृष्टि निर्धनों, दुःखियों और पीड़ितोंकी दीन-दशा की ओर नहीं जाती, जाती है केवल अपने सुख-स्वाच्छन्द्यकी ओर। कवि दास इस स्थितिसे तिलमिला जाते हैं, बेचैन हो उठते हैं। उन्हें गोपबन्धु दासका स्मरण हो आता है, जो त्याग और सेवाके मूर्तिमान स्वरूप थे। इसलिए कविने 'गोप-बन्धु' ३ को लक्ष्यकर लिखा है :

'तुम्हारे लिए कोई कुर्सी नहीं ला देगा / सब अपनी-अपनी कुर्सीके लिए व्यस्त है /' सब नष्ट-भ्रष्ट हो गया / गोपबन्धु ! / तुम्हारा संयम,

तुम्हारी निष्ठा, शिक्षा-दीक्षा, और नीति-नियम / बहताजा रहा है देश प्रलयकी ओर / बंदी बना है सत्य / अखबारोंके पीले पन्नोंके भीतर / छिप गया है आदर्श / स्तूपीकृत अप-संस्कृतिके नीचे / जातीयताने कवर ली है / जाति वर्ण और गोष्ठीकी सकीर्ण सीमामें / छड़े होकर अकेले / करोगे क्या गोपबन्धु ? / अब लौट आओ / फिर एक बार द्रवित हो जाओ / इस देशकी मिट्टीसे मिल जाये तुम्हारा शरीर / तुम्हारी पीठपर चले जायें देशवासी / तुम्हारे ही आदर्शके स्वराज्यकी ओर।

'गांधी' शीर्षक कवितामें भी कविका यह भाव और अधिक पुष्ट होता है ! उसमें कवि दास देशकी आजकी स्थिति, आजके परिवेशको देखकर बहुत चिन्तित, बहुत ही मर्माहत हैं। उन्होंने अपने आक्रोश और क्षोभ को विभिन्न रूपोंमें व्यक्त किया है।

'आत्माको अधिकारमें कर लिया...'  
सुविधावादियोंके व्यवसायने।'

× × ×  
युद्ध-लोलुपोंके हाथ सौंपा जाता है/  
शान्तिका पुरस्कार।'

वस्तुतः यही होता है। जो नारा लगा सकता है, मिथ्याको सत्य बना सकता है, जो पोंगापंथी है, और अपनी चालबाजीसे दूसरोंको नचा सकता है, वही आदर्श है, वही नेता है, जगत् उसीका है।

'महाभारत' शीर्षक कवितामें यह स्थिति और अधिक स्पष्ट होकर नग्न रूपमें सामने आयी है। आज का वोट, वोट नहीं, कपटपाश है। चुनाव केवल दिखावा है, उसमें कोई नैतिकता नहीं वह केवल कूट-नीतिका खेल है। नेताओंकी प्रतिश्रुति बुलबुलेसे भी क्षण-स्थायी है, हीन है। महाभारतमें कविने आजके निर्वाचनके महाभारतका चित्रण किया है।

आह्मिक की कविताओंसे कविकी निर्भीकता और स्पष्टवादिता व्यक्त होती है। पुराने वरिष्ठ आई.ए.एस. अफसर होकर भी इस प्रकार सुविधावादी, अन्यायी

२. कलाहांडि : उड़ीसाका एक जिला, जहाँ अकाल ही अकालकी स्थिति रहती है।

३. गोपबन्धु दास : गांधी युगके उड़ीसाके सेवापरायण त्यागी नेता।



और दुराचारी नेताओं तथा अधिकारी-वर्गपर कड़ी चोट करना बहुत कम अफसरोंमें दिखायी देता है। 'क्रान्ति आसुधि', 'इतिहास', 'भय', और 'धर्मयुद्ध' आदि कविताएँ अफसरशाही-विरोधी रूपको स्पष्ट करती हैं। वे ही इसका यथार्थ प्रमाण दे सकती हैं। 'धर्म-युद्ध' कवितामें कवि दासने आजके धर्मयाजकोंपर कड़ा व्यंग्य किया है। उन्होंने इसमें स्पष्ट कहा है कि आजके धर्मयाजक धर्मके प्रचार-प्रसारके स्थानपर नाना षडयंत्र में व्यस्त रहते हैं; विद्वेषका वातावरण बनाते हैं, युद्धकी तैयारी कराते हैं। उन्हींके कारणही ध्वजसे टपकती है क्रोधाग्निकी ज्वाला। उनकी आँखोंमें घृणा, हृदयमें हिंसा, होठोंपर स्पर्धा और उँगलियोंमें अराजकताकी सृष्टि करनेका संकेत दृष्टिगोचर होता है :

धर्मयाजकी आँखोंमें घृणा/  
छातीमें हिंसा और ओठोंमें स्पर्धा/  
संकेत करती है उँगली अराजकताको/  
विद्वेषका भजन गा-गाकर/  
चलते हैं अनुचर-वर्ग/  
विध्वंसकी गड्डालिकाकी ओर।'

आज देशमें ये ही धर्मयाजक सांप्रदायिकताको, आतंकवादको केवल जन्म ही नहीं देते, उत्तेजना फैलाते हैं, देशमें विघटनकी स्थिति उत्पन्न करते हैं, उपद्रव कराते हैं केवल अपने स्वार्थके लिए और अपने मजहबी उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए। तथाकथित धर्म-मजहब उनके लिए साधन है, साध्य नहीं।

'आहिन्क' चर्चित काव्य-संकलनकी एक कविता है, जिसके नामके अनुसार पुस्तकका नामकरण किया गया है आज लोगोंका कार्य यन्त्रवत् चल रहा है, उसमें कोई नवीनता नहीं, सहजता-स्वाभाविकता नहीं, माधुर्य नहीं। सदा एकही रीतिसे, एकही प्रकारसे काम होता रहता है, जिसमें शुष्कताही शुष्कता है। इसकी अन्तिम पंक्तियोंमें कविने कहा है :

बत्तीके खंबे पुनर्जन्म लेते हैं/  
दिन चला जाता है खिन्न व उदास/  
चुपचाप अन्धकारके भीतर/  
रातकी पहली ट्रेनसे/

यही नीरसता, यही यांत्रिकता केवल नगरमें नहीं देहातमें भी है और कहीं अधिक है। दिन आता है, चला जाता है, कोई सुख-शान्ति नहीं। यही आजका

'प्रकर'—अगस्त ६२—२४

जीवन है। अवश्य आज भोग-विलासकी कमी नहीं, पर वह सामान्य जीवनकी बात नहीं, वह तो थोड़ेसे सुविधाप्राप्तोंके लिए सुरक्षित है। इसलिए कविने उसे कोई महत्त्व नहीं दिया। महत्त्व दिया है सामान्य-जीवनको। सम्भवतः इसीलिए कविताका नामकरण किया है आहिन्क।

आज विज्ञानका युग है। विज्ञानसे कल्याण और सुविधाका लाभ मिलता है। इसलिए उसके प्रति लोगों का आग्रह भी बढ़ता जा रहा है। परन्तु उसकी विनाश-प्रक्रियाके प्रति लोग जितने चिन्तित हैं, उतनेही भयभीत हैं। 'हातपाखरे' कवितामें कविने यही संकेत किया है। सारी प्रकृति विज्ञानके अधीन है। केवल जल-स्थल-आकाश-पवन नहीं, चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र सब उसके अधीन हैं। कविने कहा है :

एक ही संकेतसे आत्मसमर्पण/एकही अणुसे सारा शहर ध्वंस/ ...

सरगका तटस्थ चांद/जरा-सा बुलानेपर/आकाशसे उतरेगा/हाथपर कन्हैयाके/अथवा गिरेगा टुकड़े-टुकड़े होकर/आतंकवादियोंकी गोलीसे/ यही बात उन्होंने 'हिरोशिमा' कवितामें भी कही है जो बहुतही मार्मिक और प्रभावात्मक है :

एकही दिनान्तमें/  
ध्वंस और निःशेष हो जाता है/  
केवल एकही जनपद नहीं/  
समयके साथ विकसित/  
सारी पृथ्वी और मानवता।

विज्ञानकी इस विनाशलीलाको, देश-देशके भीतर सिर उठानेवाली होड़को देखकर कविने स्पष्ट कहा है 'आजकी सभ्यताकी आयु केवल चालीस वर्ष है। फिर क्या होगा ईश्वर जाने। सम्भव है यह भी सम्भव न हो।

कविने प्रस्तुत संकलनमें भौतिकताके साथ आध्यात्मिकताका ताना-बाना बुना है। सम्राट्, महाभारत, क्रान्ति आसुधि, कपयू, कटक, भुवनेश्वर, इतिहास, बालियापाल, हातपाखरे, पक्षी, गोपबन्धु, गांधी, कला-हांडि और धर्मयुद्ध आदि भौतिक कविताओंके साथ पुरी, पाहाच, मृत्युबोध आदि दार्शनिक तथा आध्यात्मिक कविताओंको संजोया है। पाहाच कविकी दार्शनिकताका परिचय देती है। किन्तु मृत्युबोधके संदर्भमें उड़िया साहित्यमें कई प्रसिद्ध हस्ताक्षर पाये जाते हैं, जिनमें



पद्मश्री सच्चि राउतराय, रमाकांत रथ, सैरीन्द्र बारिक आदि प्रसिद्ध हैं। कवि दासने उस कड़ीको और लम्बा तथा उस परम्पराको अधिक पुष्ट किया है। इसमें कवि की मायावादी अथवा अद्वैतवादी भावना झलकती है। यही उनका वैशिष्ट्य है :

सुबह और शाम सब झूठे हैं/  
सब केवल एक/  
मोहमायाशून्य/  
स्मृतिहीन और भावना रहित अवस्था/  
सादृश्य नहीं समय भी नहीं/  
सब कुछ दृश्यातीत है।

परन्तु यह निश्चित है कि इनमें वह दार्शनिकता, वह भक्तिभावना नहीं है, जो मध्ययुगीन कवियोंमें पायी जाती है। वह आत्मचेतना भी नहीं है। यह औद्धिक है और मस्तिष्ककी वस्तु है।

कवि दास स्वभावसे शान्तिप्रिय हैं। ऊर्जाके लिए वे एकान्त चाहते हैं, जहां उमर खैयामके समान वे अपने जीवनको सार्थक बना पाते, चारों ओरके होहल्लेसे अपने को दूर रख पाते, पर यह संभव नहीं हुआ। इसलिए वे अशान्त हैं, निराश हैं। उनमें बड़ी छटपटाहट है, अतृप्ति है, यह भावना उनकी 'खालीघर' कविताका मूल बिन्दु है। यह भाव सुन्दर तथा स्पष्ट रूपमें 'निद नाहि' कवितामें व्यंजित हुआ है। मिलनके अभावकी पीड़ा में कवि उदास है, क्लान्त तथा अस्थिर हैं। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। इसलिए उनका मन बड़ा व्यथित है, संतुष्ट एवं पंडित है। यही कारण है निद न आनेका। मिलनकी आकांक्षामें मन आतुर है।

जगन्नाथजीकी सबसे अच्छी और प्रभावात्मक कविता है 'परवर्ती कविता'। इसमें उन्होंने हृदयकी आशा और विश्वासका प्रश्न उठाया है। उन्होंने कहा है कि मेरी भविष्यकी कविता अन्नक्षेत्रोंमें मुट्ठी-मुट्ठी हँसी बांटेगी, हिंसाके बारूदके स्तूपके ऊपर शक्तिकी चिनगारी वर्षा करेगी। अवश्य यहाँ स्फुलिंग के स्थानपर जलधारा/अमिय धारा बरसायेगी, करते तो संभवतः उपयुक्त होता :

वह आयेगी कपोतके कोमल पंखोंपर/  
युद्धके आकाशके बोमावर्षी विमानोंको लांघकर/  
युद्ध-विरतिका राजीनामा लेकर/  
निरस्त्रीकरणकी शर्तकी सफलताके लिए/  
हिंसाके बारूदके स्तूपके ऊपर/  
शान्तिका शीतल स्फुलिंग होकर.../  
इतनाही नहीं, वह शान्तिवाणी सुनाकर जनतासे धार्मिक संकीर्णताको, हीन भावनाको, संत्रासवादको

भी दूर कर देगी :

'साम्प्रदायिक दंगेके भीतर रामधुन गाकर/  
संत्रासवादीकी बंदूकके सामने अपनी छाती अड़ाकर  
वह आयेगी, वह आयेगी।'

कवि दास चोटोके शान्तिकामी हैं, विश्वबन्धुत्व की वाणी सुनानेवाले हैं और साधारण जनताको सभी प्रकारसे सुखी तथा स्वतन्त्र देखनेवाले हैं। आजके अशान्त परिवेशके लिए उनकी इस प्रकारकी कविताकी आवश्यकता है, इसमें जराभी संदेह नहीं, क्योंकि इसका प्रभाव भलेही आतंकवादियोंके ऊपर न पड़े, पर साधारण जनतापर अवश्य पड़ेगा।

यह निश्चित है कि 'आहिन्तक की कविताएं जीवन यथार्थको वस्तुपरक दृष्टिसे चित्रित करनेकी प्रेरणाको सही रूपमें निभानेमें सफल हो सकी हैं। फिर सम्भावना है, कवि दासमें एक खोज जारी है, जो उन्हें समाजमें, देशमें, सरकारमें छिपी हुई समस्याओंको, कमीको खोल कर लोगोंके सामने रख देनेको प्रवृत्त करती है।

कविकी कविताओंका कथ्य उतना उग्र अथवा आक्रामक नहीं है, जैसाकि उड़ियाके नामी कवि रवि सिंह और ब्रजनाथ रथ अथवा हिन्दीके कवि मणि मधुकरका है। उसमें यथार्थ है, तीखा व्यंग्य है, कड़ी आलोचना है, पर उग्रता नहीं। उनके कथ्यका धरातल है, देश, नगर, व्यक्ति और विज्ञान। कविने अपने कथ्यको नये विम्बोंके माध्यमसे प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है। और अपनी मानस-छवियोंको शब्दचित्र देने में भी वे समर्थ हुए हैं। उन्होंने मिथकोंका प्रयोग भी किया है, पर सीताकान्त महापात्रके समान पद-पदपर नहीं। जो थोड़ा-बहुत किया है, उन्हें नये रूपमें, नये संदर्भमें किया है।

समकालीन उड़िया कवियोंकी एक लंबी परम्परा है, जिसमें सच्चि राउतराय, गुरु महान्ति, चिन्तामणि बेहेरा, रमाकान्त रथ, सीताकान्त महापात्र आदि आते हैं। इनके साथ गुंजायमान होनेवाले कवि जगन्नाथ दास हैं, जिन्होंने उड़िया साहित्यको विभिन्न विधाओं से समृद्ध किया है। आधुनिक कवियोंकी भांति उनकी कविताओंमें भी कहीं-कहीं अबोधता एवं अस्पष्टता सामने आती है, पर उतनी नहीं, जितनी कि भानुजी राव, राजेन्द्र पंडा, दीपक मिश्र, सौभाग्यकुमार मिश्र आदिकी कविताओंमें लक्षित होती है। कई कविताएँ बहुत सरल और भावबोधक हैं, जैसे निद नाहि, परवर्ती कविता, खालीघर, गाँधी, गोपबन्धु, आहिन्तक, गीत गोविन्द आदि। निद नाहि और गीतगोविन्द भावात्मक काव्यत्वसे परिपूर्ण और प्रभावात्मक हैं। □



## काव्य : गुजराती

# विषय-वस्तुओं और शैलियोंके नये प्रयोगों, गहन और सूक्ष्म दृष्टि द्वारा संयोजित काव्य

कृति : टोळां अवाज घोंघाट

कृतिकार : लाभशंकर ठाकर

समीक्षक :

डॉ. रमणलाल पाठक

लाभशंकर ठाकर आधुनिक गुजराती साहित्यके एक समर्थ हस्ताक्षर हैं। काव्यमें ही नहीं एकांकी, नाटक, उपन्यास, आलोचनाके क्षेत्रमें भी उनका प्रदेय विशिष्ट है। विशिष्ट विचारों, भावानुभूतियों एवं उन सबकी निर्भीक भाषाभिव्यक्तियोंके कारण वे बहु-चर्चित भी हैं। इस समय व्यावसायिक रूपसे वैद्यराज डॉक्टर हैं पर उनके व्यक्तित्वके रेशे-रेशेमें, रक्तके कतरे-कतरेमें एक निष्ठावान् कवि प्रवहमान है। ऊर्ध्व से ऊर्ध्वतर लोकोंके उदात्ततम और सुकोमलतम भावों के साथ निम्नसे निम्नतम व्यक्तिकी शारीरिक यंत्रणाओं, एषणाओं और उनकी अ-पूर्तिके कारण होनेवाली प्रतिक्रियाओंको भी अभिनिवेशके साथ सरलता-सफलतासे वे व्यक्त करदेतेहैं। अ-परम्परित अरुढ़ भाषा-प्रयोगों अर्थात् प्रतिभाषाके विशिष्ट शब्दों, वर्णों, वृत्तोंके, लयों के अतिरेकके कारणभी वे बहुचर्चित हैं। 'टोळां' (जन-समूह), अवाज (चीख-पुकार) घोंघाट (कोलाहल), उनका १९६१में प्रकाशित काव्य संकलन है जिसमें १९७५ से १९८८ मध्य तककी समय-समयपर लिखी २६ कविताएं संकलित हैं। इसमें बाल काव्य, पेरुडी, व्यंग्य कविता, अ-छांदस, अपद्य गद्य, पत्रात्मक पद्य आदिका वैविध्य है। अन्तमें कविने अपना स्पष्टीकरण (३०) तथा काव्यकी रचना-प्रक्रिया (३१) के सम्बन्धमें भी विचार व्यक्त कियेहैं। ठाकरजीको इस कविता-संग्रहपर साहित्य अकादमी (दिल्ली) की ओरसे पुरस्कृत किया गया है।

काव्य रचनाके कालक्रमकी दृष्टिसे अपनी पूर्व प्रकाशित रचनाओंमें प्रस्तुत कृति अन्तिम न होकर पूर्व

'प्रकर'—अगस्त'९२—२६

क्रमपर आती है ऐसा कविका कहना है। इसके पूर्व प्रकाशित रचनाओंमें (६) लघुओं, (७) प्रवाहण एवं (८) कालग्रन्थिके पूर्व इसे स्थान देतेहैं। कविकी अन्य काव्य कृतियाँ हैं : (१) वही जती पाठळ रम्य घोषा (१९६५), (२) माणसनी बात (१९६८), (३) मारे नामने दरवाजे (१९७३), (४) घूम काजळमां कोराँ (१९७४)।

कृतिका शीर्षक साम्प्रत महानगरीय मानस-परिवेशका प्रतीक है महानगरमें ही नहीं अपने चारों ओर अपने भीतरके मनमें भी मानव एक साथ कई प्रकारकी, भीड़समूहों, आवाजों एवं अबूझ कोलाहलोंके सुनसान मूक परिवेशको प्रतिपल अनुभव करता रहता है या उसे अनुभव करते रहना पड़ता है। अनियंत्रित, अस्पष्ट, अपरिचित, विशृंखल, अवरोधक बाधक उलझनोंसे भरी मनःस्थिति या साम्प्रत जीवन परिणति, नियतिके प्रति लेखकने भीड़भाड़, आवाज-शोरगुल, निरर्थक कोलाहल आदिके व्यंजक टोळां, अवाज, घोंघाट शब्दोंके द्वारा संकेत किया है।

कृतिकी प्रथम कविता टोळां अवाज घोंघाट १९७५में आजसे लगभग १५ वर्ष पूर्व लिखी गयी थी परंतु वह १९६१ के भी साम्प्रत परिवेशमें प्रतिक्षण अनुभव किये जानेवाले एकाकीपन निस्सहायता, अमानवीयता, दूरी (वियोजन) आदिको यथार्थ रूपमें प्रतिघोषित-प्रतिबिम्बित करती है। यह भीड़भाड़, शोरगुल, कोलाहलका वातावरण जो सर्वत्र, सदैव अनुभव किया जाता है उसके रूप, प्रभाव, कार्य-व्यापारका अनुमान कविके इत शब्दोंसे किया जा सकता है : निरर्थक घूमते-रहते, रोते,



पड़भड़ते, ये जनसमूह गाते, गिरते-पड़ते, बोलते-बिगड़ते, चूमते, नाचते, नाक छींकते चलेजा रहे हैं।

(१) टोळां अवाज घोंघाट

रडतां रखडतां भसतां, भीसतां, चुमतां चीखतां  
गातां गबडतां बोलतां गबडतां बाजता बजाडता  
नाचतां नसीफता पडतां पछाडतां।

बच्चोंकी भांति भोले और निम्ब-पीपलके पेड़पर झूमते,  
उसके फलकी भांति निर्दोष टोलेकी एक झांकी :

(२) बबडतां साथ बालक जेवां स्वैर

लवडतां झाड परथी लीबळी-पीपळा जेवां  
भोळां—

भीड़, आवाज और होहल्लेका एक और रूप-समां :

(३) पण क्यारेळ वकरतां-चकरतां-चकरतां

अकळातां-अथडातां

वळ खाई ने एक थई जतां

मारतां-तोडतां-बाळी नाखतां

शतसहस्र बाहुओथी अटकावी देता यंत्रने

अधवच (पृ. ४)

ये प्रतिपल चपोचप सरकते वर्धमान होते रहने  
वाले टोले, चीखपुकार एवं कोलाहलकी स्थिति मनुष्य  
को भीचती रहती है—उसके व्यक्तित्वको कचोटती  
रहती है। जिस प्रतारणा, संत्रास, निस्सहायता, अलगाव  
घुटन आदिको मनुष्य अनुभव करता है उसे कविके शब्दों  
में देखिये :

उभां छे चपोचप सरकतां वर्धमान

तारां कागळना कांटे, तारी आंखोना ओवारे

तारा मनना मिनारे : टोळां अवाज घोंघाट

तारी जीभना टेखे : टोळां अवाज घोंघाट

तारी पांपणना पलकारे : टोळां अवाज घोंघाट

तारी बहेराशना कूवामां ऊंडे ऊंडे उछळतां

टोलां अवाज घोंघाट (पृ. ५)

भीड़ और उसके कोलाहलके परिणामस्वरूप व्यक्ति  
वधिरता/श्रवण-संवेदना-शून्यताके गहरे गर्तमें गिर  
पड़ता है। इन पंक्तियोंमें रूपविधान-अलंकरण भी  
द्रष्टव्य है :

(५) कागजके किनारपर : कागळ नां कांटे

आंखोंके घाट (पनघट) पर : आखों ना ओवारे

बधीरताके कूपमें गहरे-गहरे-उछलते : बहेराशना

कूवामां ऊंडे ऊंडे उछळतां (पृ. ५)

दूसरी रचना 'अने वागे पोताने ज एकघाफ एकांत

मां खाली खम' भी साम्प्रत कटुतापूर्ण, हताशापूर्ण  
स्थितिमें होते रहनेवाले मानसिक आघातों, प्रत्याघातों  
के परिणामस्वरूप उत्पन्न तनावोंकी तंग दशाओं-  
दिशाओंके प्रति संकेत करती है। मनुष्यका मन इतना  
दिक्शून्य हो जाता है, इतना रिक्त हो जाता है कि वह  
स्वयं उसे सतत चुभता रहता है।

मनुष्य तनाव अनुभव करता है क्योंकि उसके भीतर  
अपने कुछ होनेका—बननेका आभासपूर्ण वाद-प्रतिवाद  
का मनोविकार एकाएक उठता है : इन विकारोंको चरि-  
ताथं करनेकी मानसिकतामें कवि फँस जाता है, उससे  
निस्तारका अन्य कोई मार्ग उसे दिखता नहीं। वह  
तर्कजालमें छटपटाता है, किन्तु मुक्त नहीं होपाता।  
दूसरेही क्षण व्यक्ति यह अनुभव करता है कि जिस  
सिद्धान्तवादके जालके प्रति आकर्षित पीड़ित, प्रपीड़ित  
हो रहा था उसका घातक नशा, एकाएक उतरभी गया  
है। उसके मनका तनाव दूर हो गया है फिरभी उत्तेजित  
मनोदशामें पहले वह जैसा असामान्य हो गया था वैसा  
असामान्य इस सिद्धान्तवाद रहित दशामें अब भी है।  
अर्थात् असामान्यतासे अपना पिण्ड नहीं छुड़ा पाता।  
नये-नये मतवादों शिष्ट विशिष्ट प्रशिष्ट-सी प्रतीत होने  
वाली और तुच्छ-सी प्रमाणित होनेवाली विचारधाराओं  
में ग्रस्त होते रहनेमें और इन सिद्धान्तवादोंसे मुक्त हो  
जानेकी अवस्थामें भी उसे जीवन नीरस, निरर्थक, शून्य  
सा एवं पीड़ापूर्ण अनुभव होता है। कवि कहता है कि  
सिद्धान्तवादिका नशा जब चढ़ता है तब उसके भीतर  
उछलनेवाली अवचेतना-चेतना एक नागिनकी भांति  
भाषाकी बांवीपर फूँकार करती है—शब्द-प्रतिशब्दको  
विषाक्त कर देती है, उलटा-मुलटाकर तोड़-मरोड़ देती  
है इतनाही नहीं विरोधाभासी कल्पनाओंमें सरक जाती  
है। जिनको कवि कानोंसे सूँघ सकता है और त्वचासे  
चूँच सकता है। यथा :

(१) सळवळे शक्ति, नखशिख, नवा इज्मनी—

उछळे सपिणी समी फुत्कारती

नकं नी फेण पछाडती—

भाषा ना ढगला पर—

एक एक शब्दने विषाक्त करी

अवळसवळ अचडी-मचडी

कल्पनाओ करे—

आम कान थी सूँधी शकाय एवी अने चामडीथी  
चाखी सकाय एवी कल्पनाओ। (पृ. ८)



कवि अपने चतुर्दिक् प्रतिपल जो भीड़, चीख-पुकार और कर्णकटु कोलाहल अनुभव करता है उसे व्यक्त करनेके लिए जिन क्रियावाची शब्दोंकी संरचना करता है वह भारतीय कवितामें प्रवर्तमान अभिव्यक्तिके नये-नये भाषा प्रयोगों, कौशलकोंका प्रतिनिधित्व करती है। अपने मनसे, मस्तिष्कसे और अपने हाथसे भी अलग होकर चलते, अटकते, सरकते, दौड़ते, गाते, हंसते, झगड़ते, मुंह बिचकाते, बिगाड़ते, गिर जानेपर गिड़गिड़ाकर आगे बढ़ जानेपर वह एकमात्र भीड़, चीख-पुकार, कोलाहलका ही अनुभव करता है— (कहींभी प्रेम, सहानुभूति सहायता नहीं), कविके शब्दोंमें :

(२) अरे पोताना मनथी पण मगजथी पण हाथथी

पण

साव अलग चालतां-अटकतां-सरकतां-दौडतां-गातां-

हंसतां-झगड़तां-बगडतां-गगडतां

टोळां अवाज घोघाट

(पृ. ४)

एक प्रकृति चित्र भी द्रष्टव्य है जिसमें कविने वर्षा ऋतुके श्राव्य, चाक्षुष, बिम्बों-प्रतिबिम्बोंको व्यक्त किया है। एकाएक बरस पड़नेवाले ओले, नगरके मकानोंके छप्परपर तड़ातड़ गिरनेवाले ओलोंकी आवाज मानों कि घोड़े दौड़ रहे हों। ओलोंके कारण छप्परपर उड़ते से दिखायी पड़नेवाले पानीके फव्वारे, पानीकी बूंदें, बूंदोंसे बनी दडुड़ियां, धारा, प्रचण्ड रूपसे झूमते वृक्षोंकी किचुड़-किचुड़ भिचुड़-भिचुड़ ध्वनि आदिका जो चित्रण किया है वह द्रष्टव्य है :

(३) एकदम घसी आवेल, वरसादनुं करा साथेनुं  
तोफान

पछी फुवारो, ददुडो, धार

चारे बाजु मकानो आव्यां होय एवी नगरनी  
जग्यामां

छापरा उपर घोड दोड ।

कचड कचड बधुं भचड भचड बधुं ।

कवि नदी-सागर तट और तटकी दूर्वापर बैठकर अनुभव करता है कि सर्वत्र हईसो-हईसो मचा हुआ है। प्रकृतिके कारीगरोंको अहर्निश कठोर श्रम करनेपर उनके मुंहसे निकलती रहनेवाली हईसो-हईसोकी लयबद्ध ध्वनि और उसकी प्रतिध्वनिको कवि अपने व्यक्तित्वकी समग्रतासे कानोंसे, आँखोंसे त्वचासे अविरत प्रतिपल उलीची जारही शब्दमयतासे अशब्दमयतासे व्यक्त करनेका चेष्टा करता है—

‘प्रकर’—अगस्त १२—२८

(३) दरियाकांठे बेठो छुं : हेईसो हेईसो

दर्भ घासना अग्र भागपर हेईसो हेईसो

जळनुं टीपुं ऊंचक्युं छे : हेईसो हेईसो

दरिया ने उलेचुं छुं : हेईसो हेईसो

अविरतने उलेचुं छुं हेईसो हेईसो । (पृ. ८३)

पितृकुल, मातृकुल, मत्स्यमूल, ज्ञानकोश, चित्रकोश, रक्तकोश, शब्दकोश आदि आदिको उलीचनेकी इच्छा जिसमें अहर्निश उठा करती है वह कवि यह भी बताता है कि उलीचते रहनेकी इस लयबद्धतामें कौन किसको उलीचता है, इसका भ्रम होनेपर भी उलीचते रहो जबतक उलीचते रहनेकी गति-शब्द ब्रन्द न हो जायें, धूल बनकर ढुलक न पड़ें, मृत्युका मूल पाने तक बस उलीचते ही रहो। उलीचते-उलीचते सारी नदीको खाली कर दो। तथा :

(४) गति थाय ना गूम त्यां लग उलेचो

ढळी पडो थड धूळ त्यां लग उलेचो

भोत लगणनुं भूळ भळशे उलेचो

उलेचो रे उलेचो रे उलेचो

दरियो थाशे डूल आखो उलेचो

उलेचो रे उलेचो रे उलेचो

(पृ. ८४)

पृथ्वीके जीवनके सिम्पलेस्ट लिंविंग ओर्गेनिज्ममें से होनेवाली विकास-लीलाके साथ साथ कविका शब्द वर्ण प्रासका प्रासपूर्ण खिलवाड़भी देखिये। कविता है ‘पुत्तमताय पुत्ताजी’।

(१) सिम्पलेस्ट लिंविंग ओर्गेनिज्म

झमझम अेमांथी केटलुं बधुं झम्युं छे ।

मम ममथी भांडीने

अनेक कईं इज्मस

संगीतना रिध्मस

आ कईं विरहना गम

ने तुं मारी चमचम

ने मोटर नुं पमपम

ने मशीनोनुं धमधम

ने लेफ्टराईट धमधम

आ जिन, विहस्की ने रम

नातजातना क्रम

अवकाशी विक्रम

भूत-वृत्त ईश्वर-फिश्वरना मातीजळ भ्रम

भूळे तो एक सिम्पलेस्ट लिंविंग ओर्गेनिज्म

(पृ. ६-१०)



चीख-पुकार और कोलाहलके जंगलमें फंसा मनुष्य अपनेको अर्थहीन समझता है। ऐसा मनुष्य व्यर्थ काल-श्रेय कैसे करता है—देखिये :

(३) आ सतत शोधवुं, सततो बोधवुं, सतत रोधवुं  
सतत नोधवुं

ने सतत क्रोधवुं आम  
के रघुपति राघव राजाराम  
के दुःखनिवारण नाम  
के मुरलीधर घनश्याम  
आ अर्थहीन व्यर्थ मनुष्यनो

कालक्षेप छे. (पृ. ११)

विविध क्रियाकलापोंमें व्यस्त-ग्रस्त मनुष्यका शब्द प्रासपूर्ण एवं त्रासपूर्ण एक और चित्र देखिये, जिसमें कवि मनुष्य औषधकी टिकिया खानेपर मृतता रहता है। मनुष्यका यह मृतना हाथीके मृतनेके समान है। उस हाथीका नाम कुछभी हो सकता है। उसका नाम गणपत अर्थात् गणपति भी हो सकता है। मनुष्य गणपत होता है—(और गणपत मनुष्य भी)।

(३) आकाशे जई अडे अने दरियामां ऊंडे ऊतरे

एक टीकडी गळीने गणपत हाथी जेवुं मूतरे

एवो आदिम जीवतो सूत रे

रच्या करे बूतरे

ने कर्पा करे ना-बूतरे

गणित जेवां अगणित एना तूत'रे

आज लगण आ जीवी गयेलो एक कोषी अनेक

कोषी पूत रे (पृ. ११)

ऊतरे (उतरना) और मूतरे (मूतना) शब्दोंमें के 'रे' से प्रास मिलानेके लिए कवि शेष शब्दोंमें 'रे' आलम्बन जोड़कर प्रासलीला, लय-क्रीड़ा पैदा करनेका सफल प्रयास करते-करते कविताको लम्बी करता चलता है।

जबसे जन्म धारण किया तबसे गर्भाधान, अर्थहीन गर्भाधान, प्रसव, पीडा, सतत संततिको प्रसूतती रहती नारीसे कवि पूछता है—कि तू कहां पहुंचना चाहती है। तुझे पता है कि तेरा मूल कहां है? कविके शब्दोंमें—

(१) शीद नारी तू धर्या करे छे अर्थहीन ओधानरे

तुं पीडाने धारण करती तु पीडाने प्रसवे

सतत संतति सातत्योथी क्यां पूगपुं छे हवे ?

(पृ. ६२)

कवि कहता है कि प्रतिपल प्रसूते रहनेवाली नारी

को न तो 'स्व'के आदि रूपका बोध है न तो अंतकी झांकीका—

आदिनी ना जाण, जाणना अंत लगीनी

व्यक्त मध्यनी वात निरर्थक संत लगीनी,

(पृ. १२)

'पुरुषोत्तम पुत्र' साम्प्रत परिवेशमें नाम अर्थ प्रतिभा, पहचान शून्यमात्र 'पुत्तमत्ताय पुत्ताजी' रह गया है। पुरातन पुरुषोत्तम पुत्र आज रह गया है मात्र काटनेवाला कुत्ता। एक समय था जब मनुष्यके लिए कहा गया था कि "न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्" उसकी आज क्या स्थिति हो गयी है उसके दो-तीन चित्र द्रष्टव्य हैं :

(२) आदिम तारुं मूळ मळे ना, ओ पुत्तमताय

पुत्ताजी

अने ऐनी आ सतत शूळ, छेदन-भेदन फाण,

फरडना कुत्ताजी

न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्

फूट-शुं पण एकादुं ये इंचित्

केम जे तुं ससान छे के तुं पुत्तमताय पुत्ता छे

(पृ. १२)

'न मानुषात् श्रेष्ठतरं' कथनके प्रत्याख्यानमें यहां तक कह दिया है कि फुट तो क्या एक इंच तक मनुष्य किसीसे भी श्रेष्ठ नहीं है। इसी कविता-संग्रहकी 'घाण' कवितामें दर्शों दिशामें एकमात्र ब्रह्मका ही दर्शन अनुभव करनेवाले भक्तकी भाँति कवि एकमात्र मनुष्य का ही दर्शन-अनुभव करता हुआ ऊर्ध्वबाहु होकर कहता है कि मैं मनुष्यको बाहर खोजनेके साथ-साथ अपने भीतरभी टटोलता हूँ। ऐसा मानव जो भेद (भाव) रहित हो, खेद (परिताप) रहित हो जो निरा-मय निर्मल हो, भेद और स्वेद शून्य हो। कविकी प्रतीति है कि मनुष्य है और वह उसकी आँखोंमें फड-कता है, अंतस्में स्पंदित होता है। वह कविके सामने खड़ा है, पीछे खड़ा है, दाएं खड़ा है, बाएं खड़ा है। कवि उसे सूँघता है, स्पर्शता है, देखता है, चाहता है। कवि उसकी साँस तक सुनता है। कवि निर्विकार होकर देवता है कि मनुष्य सर्वत्र है। (पृ. (१०१)) इसी कवितामें कवि यह भी कहता है कि 'मेरे सहस्र नयन हैं, सहस्र कान हैं, सहस्र नाक हैं, पैर हैं। हजारों शब्दोंमें से सारे आकाशको टटोल रहा हूँ और अपनी विपुल त्वचाके द्वारा भौम भौम (भूमि भूमि) को व्याप कर देता हूँ। (पृ. १००)। कवि यह भी कहता है कि



मुझमें एक निर्मम; विनंगत, साझीवत् जलकमलवत् रहनेवाले एक ऐसे प्राणीका अनुभव होताहै जो अनिद्रित है निष्पलक है। जिसके नेत्र अहनिश देखते रहते हैं जिसे मैं शब्दमें रूपांतरित करनेके तो प्रयत्न करता रहताहूँ, वे अभी कहां समाप्त हुए हैं ? (पृ. १०५)

भाषा-प्रयोगों व लय-अतिरेकसे चिढ़नेवाले आलोचकोंको प्रत्युत्तर-सा देता हुआ—‘हूँ’ अटवातो नथी आ शोध मां’ नामक कवितामें कवि कहताहै कि मैं अपने विशिष्ट भाषा-प्रयोगों, लय, प्रलयपूर्ण प्रलापों के गलियारोंसे निकलना नहीं चाहता। ‘चाहे आप मुझ पर कितने भी आक्षेप क्यों न करें। मैं अपने भाषा-प्रयोगोंके फंसा नहीं हूँ। नये-नये भाषा प्रयोग करते रहनेका उत्साह मेरा वर्धनशील है। मैं अपने भाषा-प्रयोगोंमें द्वारा आपके रुढ़िग्रस्त एवं भूलभूलैयाग्रस्त भाषा-व्यापारको पूर्णरूपसे मिटा दूंगा। आपने भाषामें पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कारिक, नैतिक-वैयक्तिक-शाब्दिक भूलभूलैया जो निर्मित-विनिर्मित कीहैं उसका मैं समूच विनाशकर दूंगा। वास्तवमें मैं अपनी भाषाके द्वारा भाषाहीन बनूंगा। कवि कहताहै कि बोरसल्लीके तरुपर बैठकर प्रिक प्रिक प्रिक करते पंछीकी भांति मैं भाषामुक्त हो जाना चाहताहूँ। कवि अनुभव करताहै कि पेड़ पर तो एक पंछी बैठाहै पर मेरे भीतरकी शाखा-प्रशाखापर अनेक असंख्य अनन्त अविरत क्षण-पंछी प्रति निवासित हैं—जो प्रतिपल प्रिक् प्रिक् प्रिक् करते रहते हैं। मैं उन सभी पंछी-क्षणोंको शब्द बनकर सहज रूप से अनुभव करना चाहताहूँ। वह कहताहै कि दर्पणमें व्यक्त होते उन नव नव क्षणोंको प्रतिबिम्बित होते मैं नहीं देख पाता। क्योंकि भाषाके दर्पणपर पौराणिकता, ऐतिहासिकता, धार्मिकता, सामाजिकता, सांस्कारिकता, नैतिकता, वैयक्तिकता और तो ओर शाब्दिकता चिपक चिपट गयीहै। अपने दर्पणको तोड़ डालनेकी गलती करना मैं नहीं चाहता क्योंकि यह निश्चित है कि ऐसी गलती करना मृत्युके समान है। मैं मरना नहीं चाहता मौतके आनेपर भी मैं नहीं मरूंगा। मुझे तो तैरना है—प्रतिबिम्ब बनकर दर्पणमें क्षण-प्रतिक्षण तैरने रहना है। कवि कहताहै कि मैं (पुराकालसे चली आती) भाषाका कदापि विरोधी नहीं हूँ। मैं स्वयं सतत् उसको घिसता रहताहूँ—उसे निर्मल, स्वच्छ-उज्ज्वल करनेके आशयसे। इस प्रकार मैं भाषाको भाषा (भाषित

‘प्रकर’—अगस्त’ ६२—३०

प्रकाशित या प्रकाशपूर्ण) बनानेका प्रयत्न करना चाहताहूँ। कवि कहताहै कि सदियोंसे रुढ़ियोंकी दलदलमें फंसी-धंसी मृत दबी पड़ी भाषा का उत्खननकर उसे नये रूपमें जीवन्त रूपमें प्रस्तुत करना चाहताहूँ। और यह उत्खनन करते समयभी मैं इस बातका सदा ध्यान रखताहूँ कि कोमल भाषा-देहको खरोच तो क्या मेरे उसांसकी आंच भी न लगे जिससे वह सदा तरोताजा बनी रहे।

काव्य सर्जनको लाभशंकरजी ‘वर्बल गेम (Verbal Game)’ कहतेहैं। काव्यवृत्ति प्रवृत्तिकी क्रीड़ासे सुखद इसलिए है कि उसमें स्वयं अकेलेही विकसनेकी गुंजाइश रहतीहै। कविने इस काव्य वृत्ति प्रवृत्तिको काव्य-कंडु कहाहै। कंडु अर्थात् खुजली और उसकी खुजलाते रहनेकी खंजोलते रहनेकी प्रक्रिया रीति-नीति। कवि कहताहै कि पत्रके शरीरपर आद्यंत काव्य-खुजली फैल जातीहै। खंजोलते रहनेमें कविको अनन्य मिठास अनुभव होताहै। कवि जब यह कहताहै कि मेरे शब्द प्रति-शब्दपर ब्रह्माकी अंगुलियोंके बड़े हुए नाखून एक धारा-वत् रममाण है तब कथ्य एक नये आयामकी अभिव्यंजना करताहै। अभिव्यक्तिके नये-नये कौशलों के विकास एवं निदर्शन रूपमें ठाकरकी ‘नो चोईस’ (पृ. २३-२६) ‘आम खेंचीए जराक जोरथी’ (पृ. ३७-४३), धाण (पृ. ६६-१०२), कविताएं प्रस्तुत कीजा सकती हैं। ये कविताएं कोलाज (Collage) जैसी बन गयी हैं—दीर्घ कविताके बीचमें छंदके टुकड़े, बाल चुटकुले, गद्य, मध्यकालीन भक्तिगीतकी अनुगूँज-सी पंक्तियाँ, श्रुतिगोचर कल्पन की अनेकविध श्रेणियों, आदिका संसार। भाषाके चिरपरिचित अन्वय, तत्सम पदावली, परम्परागत समास योजनाका परित्यागकर अपनी विशिष्ट-भाषा शैलीमें (गुजराती आलोचकोंने कवि लाभशंकर ठाकरकी भाषा-शैलीको ‘लाभशंकर लढण’ कहाहै) जो प्रसन्न शब्द क्रीड़ा कीहै वह शिष्ट और विशिष्ट दोनों हैं। कविने अपनेको ‘मनमौजी’ कहा है। मनमौजी कवि कालक्षेप—समय निर्वहण करनेके उद्देश्यसे प्रेरित होकर अपने काव्य माध्यमके सरोवरमें गोते लगाता रहताहै और बार-बार आनन्द पाताहै। विश्वके विविध व्यवहारोंमें फंसे मनुष्य जीवनकी विफलता उसकी मानसिक विफलताकी वकालतके पक्ष-प्रतिपक्ष, वादी-प्रतिवादीकी वादवादिता इन सबका कवि विद्वत्भावपूर्ण, सहज विरूपण करता चलताहै। लेखन



अपने आप बढ़ता रहता है—कविताका अभिधान या गर्भाधान पाता रहता है। कवि ऐसेही लयका प्रलय रेलाता चलता है, प्रलयमें डूबता उतराता चलता है और अपने उच्छ्वासके उपहारके रूपमें नयी-नयी कविताएं अवकाशमें क्षिप्त-प्रक्षिप्त करता रहता है।

कविका प्रशंसक वर्ग इस प्रकारकी सामग्री पाकर अभिभूत होजाता है और कृतज्ञतावश अपने पास जोभी होता है उससे कविको पुरस्कृतभी करता चलता

है। मजें व वजे यह है कि पुरस्कार लाभके बावजूद लाभशंकर जी, शंकर बाबाही बने रहते हैं, ठगे जानेपर भी 'ठाकर' कहलाते जाते हैं। लाठा (लाभशंकर ठाकर) ठाला (ठाकर लाभशंकर) अर्थात् कविता सज्जनकी सुखद-क्रिया-प्रक्रियाके पश्चात्—प्रसन्न हलके-फुलके बोझ रहित—ठाले बन जाते हैं किंतु दृढ़ प्रतीति कराते हैं कि वे आजीवन कभी निठल्ले नहीं होंगे। [१]

## काव्य : राजस्थानी

# हाड़ीती अंचलकी ठेठ धरतीसे जुड़ा रूपकधर्मिता, धारदार व्यंग्यका बहुआयामी काव्य

कृति : म्हारी कवितावां

कृतिकार : प्रेमजी प्रेम

समोक्षक :

डा. प्रेमचन्द विजयवर्गीय

प्रेमजी प्रेम राजस्थानके हाड़ीती क्षेत्रमें बोली जानेवाली हाड़ीती भाषाके सुपरिचित साहित्यकार हैं। उनकी प्रकाशित काव्य कृतियोंमें एक हास्य व्यंग्य काव्य संग्रह (चमचो), एक गीत संग्रह (सरवर, सूरज अर संघ्या), एक गीत-संग्रह (सांवल्लो सांच), एक गीत-गजल-संग्रह (मूँ गाऊँ मन नाचै), एक खंड काव्य (सूरज) और एक कविता संग्रह (म्हारी कवितावां) है। कविके अतिरिक्त प्रेमजी प्रेम कथाकार भी हैं—'रामचन्द्राकी राम कथा' उनका कहानी संग्रह है तो 'सेली छाँव खजुरका' उनका उपन्यास है। उनका एक कहानी संग्रह (खजानो) और एक उपन्यास (माल को मजीरो) अभी प्रकाशनकी प्रतीक्षामें है। प्रेमजी प्रेम एक निबन्धकारभी हैं और 'हाड़ीतीका तीरथ' उनका सद्यःप्रकाशित निबन्ध संग्रह है। प्रेमजी प्रेमने

राजस्थानीमें तीन ग्रंथ सम्पादितभी किये हैं जिनमेंसे 'आज रा राजस्थानी कहानीकार' तथा 'विधग्या जो मोती' तो कथा-संकलन हैं और 'बानगी' एक गद्य-पद्य-संकलन है। इसके अतिरिक्त प्रेमजी 'चामळ' नामक पत्रिकाका सम्पादन भी कर चुके हैं।

प्रेमजी प्रेम हाड़ीती क्षेत्रकी भाषा और लोक संस्कृतिसे घनिष्ठ रूपसे परिचित हैं। उन्होंने हाड़ीती बोलीमें साहित्य-सृजनके अतिरिक्त हाड़ीती क्षेत्रके लोक-संगीत, लोक-नृत्य और लोक-नाट्यके प्रचार-प्रसारमें भी सक्रिय योगदान किया है। वे इस क्षेत्रकी समस्त लोक कलाओंके प्रेमी होनेके साथ उनके पोषकभी हैं। पर वे अब हाड़ीतीकी सीमाओंको तोड़कर अखिल भारतीय स्तरपर ख्याति और प्रतिष्ठा अर्जित कर चुके हैं। 'म्हारी कवितावां' कविता संग्रहके लिए केन्द्रीय



साहित्य-अकादमीने उन्हें पुरस्कृतकर अखिल भारतीय स्तरका सम्मान प्रदान किया है। प्रेमजी प्रेमकी काव्य यात्रा सन् १९५६ से आरम्भ हुई और १९८८ में प्रकाशित उनके इस काव्य संग्रह 'म्हारी कवितावां'ने उन्हें शिखरपर ला बैठाया। कविने अपनी सफलताको अपनी काव्य-यात्राकी 'पुण्य संगतका प्रताप' कहा है। गरीब लोगोंके मनमें सोया मनुष्य ललकारकर जाग जाये और गजंन करने लगे—इस काव्यकी कविताओंके लेखनके पीछे कविका यही उद्देश्य रहा है।

यों मुक्तक काव्य होनेके कारण इस काव्य संग्रहकी कविताओंमें विषयगत विविधता है, तथापि अधिकांश कविताओंमें सामान्य जन विशेषतः गरीब और उनकी गरीबी तथा वर्तमान स्थितियां ही मुखरित हुई हैं, और इसका कारण कविकी अपनी रुचि, प्रकृति और विचार-धारा है।

गांव मात्र और विशेषतः अपने गांवके प्रति कविमें तीव्र अपनत्व ममत्व, लगाव और आत्मीयताका भाव है जिसे कविने एक कवितामें रूपकात्मक शैलीमें यह कह कर व्यक्त किया है कि—“म्हारो गांव कोई न्हं/ म्हारो गीत छै/ मनमें अति छै/ गावो ही कन्हं/ गावो ही कन्हं/ गावों ही कन्हं।” (गांव, पृ. १०२)। कविकी रुचि अपनी झोंपड़ी और उसकी टाटीके निर्माणमें है, महलके दरवाजोंमें नहीं (टाटी, पृ. २०)। प्रतीकात्मक शैलीमें कविने अपना यह भाव भी व्यक्त किया है कि वह बाहर का दरवाजा बननेकी अपेक्षा पिछवाड़ेकी दीवार बनने का प्रयत्न करता है, पर साथही वह अपने भीतर इतनी शक्तिभी रखना चाहता है जिससे वह अपने घरपर आने वाला पूराका पूरा संकट झेल जाये। दूसरे शब्दोंमें वह सबसे पिछली पंक्तिका आदमी बना रहकर भी अपने देशकी रक्षाके लिए मन्मथ रहना चाहता है। कविकी गांवके धूपेड़ेसे इतना लगाव है कि वह यहातक कह उठता है कि उसे चाहे गांवसे बाहर निकाल दो पर धूपेड़ासे दूर मत करो, क्योंकि वह उसके तपसे ही जीवित है (ज्ञान, पृ. ६५)। यह कवि इस तपनेको कवि मात्रके लिए भी आवश्यक मानता है, उसका कहना है कि कविके भावका घड़ा रोज रोज आगमें तपकर पकता है, कवि रोज रोज मरता है, टका, चून, हांडी और आग उसके रिश्तेदार हैं। वह कविकी पूजा-पतियोंसे श्रेष्ठ मानता है, उसकी मान्यता है कि आर्थिक दृष्टिसे ठेकेदार, दलाल, व्यापारी भलेही अच्छे हों पर 'प्रकर'—अगस्त'१२—३२

वे कविकी बराबरी नहीं कर सकते (मोल, पृ. ४३)। कविके सामने अपना लक्ष्य और मार्ग स्पष्ट होना चाहिये। कविका मानना है कि अनिर्णयात्मक विचार-द्वन्द्व ही काव्य-सृजनमें बाधक होता है, अन्य कुछ नहीं। दूसरोंके आर्डर—आदेश—पर कविता लिखना कविकी अच्छा नहीं लगता (बोध, पृ. ३७), राज प्रशस्ति लिखने और गानेवालोंकी कवि ब्याज स्तुतिके माध्यमसे निन्दा ही करता है। वह पीढ़ियोंके दवे लावेको बाहर निकालकर उसमेंसे दीनता और चाटुकारिताको भस्म कर देना चाहता है (लाय, पृ. २१)। प्रेमजीका जुड़ाव राजसे नहीं लोकसे रहा है। वे स्वयं लोक और लोक-संस्कृतिको भली प्रकार समझते हैं, इसी कारण सिद्धान्ततः लोक-कलाको समझनेके लिए लोक-संस्कृतिकी समझको आवश्यक मानते हैं, और इसी कारण उन्होंने लिखा है कि फड़में चित्रित चित्रकी इबारतको पढ़नेके पहले व्यक्ति उसके संस्कारसे जुड़े (चतराम पृ. ७७)। कविकी इस बातका भी दुःख है कि प्रदर्शनीमें रखी कला कृतियां सबको दिखायी पड़ती हैं, पर उनके बनाने वालोंके बीचमें उनके पीठसे चिपके पेट किमीको दिखायी नहीं पड़ते (सीसाड़ो पृ. ६७-६८)।

काव्य-सृजनकी यात्राके सम्बन्धमें अपना विचार व्यक्त करते हुए उसने अपनी 'जातरा' शीर्षक कवितामें लिखा है कि काव्य-सृजन यात्राभी बड़ी अनोखी है—वह भावनाको अर्थ देना, अर्थको अक्षर देना, फिर अक्षरोंकी माला पिरोना और फिर मौन रहकर भीतरही भीतर चलना है। और अपने सम्बन्धमें यह कवि यह नहीं मानता कि वह अपनी इस सृजन-यात्रामें निरन्तर चलते हुए जमानेभरसे आगे भाग रहा है उसका नाता तो घरती से जुड़ा है, वैसेही, जैसे चन्द्रमा कितना भागे घरतीसे उसका गठजोड़ा नहीं टूट सकता, सृजन-यात्राभी ऐसी ही है (पृ. १०१)। अपनी काव्य-यात्रा करनेके लिए इस कविने यात्राका मार्ग पूछा तो सबने अलग-अलग बताया, पर कविका कहना है कि वह तो बिना किसीके बतायेही काव्य सृजनके वर्तमान मुकामपर आ पहुंचा है (यात्रा : एक, पृ. १००)। साहित्यके क्षेत्रमें भी दूसरे साहित्यकार विरोध करने और उसे उखाड़नेका प्रयत्न किया जाता है, पर इस कविका मानना है कि अपनी जड़ें मजबूत हों तो कोई नहीं उखाड़ सकता (जड़ें, पृ. ३२)। यह कवि जमानेके प्रवाहमें नहीं बहता, वह अपने स्थान पर वर्षोंसे अडिग खड़ा है, लोग चाहे उसे मूर्ख कहें (जोर पृ. ४४-४५)।



कविके काव्य, कला, कवि और स्वयंके सम्बन्धमें व्यक्त विचारोंको देखनेके पश्चात् जब हम इस काव्यके प्रधान सामाजिक पक्षकी ओर मुड़तेहैं तो वहाँ हमें देश, नेता और आम जनता सम्बन्धी अनेक यथार्थ बातें देखने को मिलतीहैं। जैसा कि आरम्भमें कहाजा चुकाहै, कवि को गांवोंसे बड़ा लगाव है, पर उसने उनकी यथार्थ स्थितिसे आंखें नहीं मूंदीहैं। उदाहरणार्थ कविने अपने इस काव्यमें चम्बलके किनारे बसे एक गांवकी दुर्दशा का, मानवीकरण करते हुए वास्तविक चित्रण कियाहै। कविने पंचोंकी भ्रष्टताको भी सम्भवतः देखाहै, इस कारण उसके विचारसे पंच जिस बड़की छायामें बैठकर न्याय सुनातेहैं वह उन पंचोंसे भी बड़ा होताहै, क्योंकि पंच तो भ्रष्ट हो सकतेहैं पर बड़ नहीं। जनताके बीच विचारण करनेवाले इस कविने गरीब, उनके बच्चों और उनकी आदतोंको भी देखाहै और उसने पायाहै कि गरीबों के बच्चोंको सूखी रोटी और बासी साग खानेकी आदत पड़ जातीहै, इसलिए फिर उनके पेटमें गरम साग और फूली हुई ताजा रोटी नहीं उतरती, क्योंकि उनका वही (सूखी रोटी, बासी साग खाना) धर्म होजाताहै, इसलिए कविका व्यंग्यमें निवेदन है कि उन्हें गर्म रोटी-सब्जी खाना मत सिखाओ (आदत, पृ. ८८)। 'पुंगी' कवितामें कविने विदेशोंमें जाकर सांपोंका प्रदर्शन करनेवाले सपेरों और भारतमें ही रहनेवाले सपेरोंकी तुलना करते हुए बड़े मार्मिक और व्यंग्यात्मक ढंगसे यह लिखाहै कि यह एक विडम्बना है कि इस देश का सपेरा विदेशोंमें जाकर मालामाल होजाताहै, उसके भीतर सर्पत्व आ जाताहै और वह मनुष्यों (दर्शकों)को नचाने लगताहै, पर अपनेही देशमें सपेरोंकी जाति जीवन भर केवल सांपही नचाती रह जातीहै (पुंगी, पृ. ७१-७३)। इसी कवितामें आरम्भमें कविने सम्पूर्ण मनुष्य जातिसे स्वयंकी तुलना करते हुए लाक्षणिक ढंगसे लिखा है कि पूरी मनुष्य जाति सांपोंको नचातीहै, पर वह स्वयं ऐसा सांप है जो मनुष्योंको नचाताहै, धीरे धीरे उसकी पुंगीमें सांसके स्थानपर सांपका वंश बढ़ताजा रहा है (पुंगी, पृ. ७२-७३)।

गरीबोंकी स्थितिको कविने बंदरके माध्यमसे भी व्यक्त कियाहै। 'बांदरो' कवितामें कविने लिखाहै कि मदारीके बंदरके लिए टपरीके छेद, पानीके बरसने, उन छेदोंसे पानीके चूने और अपने कपड़े भीगनेकी चिंता करना व्यर्थ है, क्योंकि वह उतनेसे ही समयका तो

दूल्हा हैं जितनी देर कि मदारी उसे डुगडुगी वजाकर नचाताहै (पृ. ६१)। गरीबी एक सीमाके बाद असह्य हो जातीहै, तब भूखे लोग रोटी न मिलनेपर अपनेसे (धन, पदमें) बड़ोंका भक्षण भी कर सकतेहैं (दोणा, पृ. ५८)।

गरीबोंके अतिरिक्त कविने हमारे समाजमें व्याप्त अस्पृश्यताको अपनी 'ढाणो' कवितामें विषय बनाते हुए यह बतायाहै कि किस प्रकार गांवके पंडितजीमें छुआ-छूतकी भावना विद्यमान है (पृ. ६४) और अस्पृश्यता को माननेवाले लोगोंपर 'अछूत' कवितामें व्यंग्यभी कियाहै (पृ. ६३)।

हमारे देशमें चिकित्सा विभागमें आज जो दोष दिखायी पड़तेहैं उनपर भी इस संग्रहकी एक दो कविने ताओंमें प्रकाश डाला गयाहै। 'फांगी' कवितामें कवि-यह बतायाहै कि डाक्टर अस्पतालमें भी सोजातेहैं, वे मरीजको अस्पतालमें न देखकर, अपने घरपर बुलाकर देखतेहैं और वहां दुगनी फीस लेतेहैं, कहीं अस्पतालमें ओपरेशन करनेके औजार ही नदारद हैं। 'चीरो' शीर्षक कवितामें व्यक्त किया गयाहै कि कैसे डाक्टर द्वारा गलत अंगुलीमें ऑपरेशन कर दिया जाताहै (पृ. ४६)।

प्रस्तुत संग्रहमें देशके राजनीतिक जीवन और राज-नेताओं आदिसे सम्बन्धितभी कुछ कविताएं हैं। 'राज-नीति' शीर्षक कवितामें अन्योक्तिके माध्यमसे आजके राजनीतिक वातावरणपर व्यंग्य किया गया है कि कोई किसीकी दुःखोंसे रक्षा नहीं करता, केवल अपनी सहा-यताके लिए दूसरोंको बुला लेताहै (पृ. ४१)। आजके राजनीतिक वातावरणमें समाजकी कांचली (आवरण या पर्दे) के पीछे असली और नकली लोग या नेता शक्ति-परीक्षा कर रहेहैं—ऐसे कि न पत्रकार देख सकें और न प्रेस-फोटोग्राफर उनका फोटो खींच सकें। यद्यपि अब समाजका वह परदा गलता जा रहाहै, तथापि वे असली और नकली नेता स्वयं तो उस पर्देको फाड़ना ही नहीं चाहते ताकि वे उसमें छिपे-छिपेही लड़ते रहें। सामान्यीकरण करें तो कविके शब्दोंमें ये असली और नकली और कोई नहीं आप और हमही हैं। कविके विचारसे, सब राजनेता एक जैसेही हैं, इसलिए, एक सत्तासीन राज-नेताकी मृत्युपर दुःख करना और नये राजनेताके सत्ता-सीन होनेपर हर्षित होना व्यर्थ है ('शुक्यो शुक्यो माथो' पृ. ४२)। आज भ्रष्टाचारकी यह स्थिति है कि—भ्रष्टा-चार कहाँ है यह बतानेके लिए भी रिश्वतकी मांग की



जाती है। (खीज, पृ. ५१); और शोषणकी स्थिति यह है कि आज हाथी (बड़े लोगों) का पेट भरनेके लिए गरीबोंका पेट काटा जाता है। ऐसी स्थितिमें कविको ऐसा लगता है कि एक दिन ऐसा आयेगा जब मनुष्य-मनुष्यको खाने लगेगा (अब, पृ. ४६-५०); यहाँ कारण है कि कविको भूत प्रेतोंसे अधिक गांवका—आदमी का-डर लगने लगा है। कविकी रुचि आजके राजनेताओं में ही नहीं, इतिहास पुरुषोंमें भी नहीं रही। कविका जुड़ाव ऐतिहासिक व्यक्तियोंकी अपेक्षा भूख-प्यास, पाप-प्रायश्चित्त, धर्म और दंड (वाले सामान्यजन) से अधिक है (कुण, पृ. ५५)।

स्वतंत्रताका पक्षधर यह कवि उस बंदरतक की व्यथासे व्यथित है जिसके गलेमें मदारीकी साँकल बंधी है। वह गुलामीके समान भिक्षा वृत्तिका भी विरोधी है, वह मनुष्यके स्वाभिमान और गौरवकी प्रतिष्ठा चाहता है।

वर्तमान स्थितियोंमें सुधारके लिए कविने देशके नेताओंसे वातावरणको विषाक्त न बनानेकी अपील की है, साथही उसने उनसे संवेदनशील बननेका आग्रह भी किया है (अड़ाव-भराव, पृ. ७८)। कविको यह भी अनुभव होता है कि सामाजिक बुराईयोंको दूर करनेके लिए कड़वी बातोंकी आवश्यकता है (तीत्यो, पृ. ३५)। वह मनुष्यका पक्षधर अवश्य है क्योंकि वह यह मानता है कि मनुष्यकी वास्तविक पहचान उसकी मनुष्यता है, पर कविको दुःख है इतिहास मनुष्यको उसके मनुष्यपनेसे नहीं पहचानता, रंगसे पहचानता है जबकि शक्ति न रंग में है न वस्त्रोंके स्वरूपमें। वास्तविक शक्ति तो हिम्मत में होती है, उस हिम्मतका पता राजसी भूषावाले रईसों को तब चलेगा जब चीथड़े पहने गरीब अपना तेवर बदलकर उन्हें ललकारेंगे (रंग, पृ. ८२-८३)। और अब यह तेवर सचमुच बदलता-सा लगता है—चारणोंमें युगानुरूप नयी चेतना, संवेदना और सहानुभूति आगयी है (चारण, पृ. २६) तो मुर्दा घसीटनेवालोंमें भी नयी चेतना आ गयी है (घोसोड़ी पृ. ६६)। दूसरी ओर ऐसेभी लोग हैं, जो बड़प्पनका आभरण गलेमें डाल तो लेते हैं पर उसके कारण अहंका जो फुलाव होता है उससे फिर उनका ही गला घुटने लगता है, पर तब उस आभरणको न तो पहने रहा जाता है न उतारते बनता है, क्योंकि दोमोंमें ही कष्ट होता है। इस प्रकार आजकल यह ओढ़ा बड़प्पन ऐसा विष बन गया है जिसे न निगलते बनता है न

‘प्रकर’—अगस्त’६२—३४

थूकते (खूं गाली, पृ. ६३)। आवश्यकता है कि मनुष्य इस बड़प्पनको ओढ़ना छोड़दे, क्योंकि वह मनुष्य मनुष्य के बीच दीवार खड़ी करता है। इसीलिए कवि यह कामना करता है कि मनुष्य मनुष्यसे ऐसे मिले जैसे संध्या के समय दिन और रात मिलते हैं (काँकड़, पृ. ६६)।

आज प्रत्येक चीजका, प्रत्येक कामका, व्यवसायीकरण हो गया है, यहांतक कि अच्छे कामोंका भी। कवि का कहना है कि आज लोग सांसारिक गोरखधंधोंमें इतना फँस गये हैं कि भक्ति और पूजा-पाठ करनेपर भी उनके गोरखधंधे नहीं छूटते, वे मकड़ीकी भांति अपनेही जाल में फँस जाते हैं और अपनी जान दे देते हैं। लोगोंके देवालयोंको ढोकने, वहाँ जागने, नाचने और गानेमें भी कवि को गोरखधंधा ही दिखायी पड़ता है (जागण, पृ. ८४-८५)। ‘जागण’ के समानही ‘दरसाव’ कविताभी धार्मिक दृष्टिकोणसे किये जाते रात्रि-जागरणके ढोंगपर व्यंग्य करती है, जिसमें यह बताया गया है कि गांवके मंदिरमें ‘लगन बिन जागे न निरमोही’ गीतकी धुन चल रही है, इस जागरणमें मगन होकर वस्तुतः ‘जागण’ कर रहे हैं—कीर्तनियां कीर्तनमें, गांववाले तपनमें, ठाकुरजी घरमें, इवा चलनेमें, और कुछ युवक स्त्रियोंके बारेमें बात करनेमें !

उपर्युक्त परिस्थितियोंके संदर्भमें कविके पास कुछ विचार एवं समाधान हैं। प्रथमतः तो कवि पलायनवाद का विरोधी है, उसमें पलायन करनेवालोंके प्रति आक्रोश है, और वह लोगोंको, पलायन न कर, समाजमें आग लगानेवालोंका सामना करनेकी प्रेरणा देता है। भ्रष्टाचार मिटानेका प्रयत्न करनेवालोंसे कविकी अपील है कि वे पहले दमन करनेवालोंको रोकें (संगत, पृ. २३)। कविका यह विश्वास है कि अत्याचारीका विनाश प्रतिरोध करनेके साहससे ही सम्भव है (मौत, पृ. ४७)। कवि भाग्यवादी नहीं कर्मवादी है, वह मानता है कि प्रयत्न करनेपर भिखारीभी धनवान बन सकता है (कला, पृ. ६५-६६)। कवि ‘काल’ को केवल मनका भाव मानता है, उसके विचारसे मर्दका काम ‘काल’ का भय मनसे निकाल देना है। पर ऐसा करनेके साथ साथ बुद्धिका द्वार खुला रखना भी आवश्यक है, क्योंकि कवि के विचारसे बुद्धिका द्वार बंदकर उसमें अगंला लगा देने पर उसके भीतर ज्ञान प्रवेश नहीं कर सकता (भज्या-कुल, पृ. ६८)। पर बुद्धि-बलके साथ मनुष्यमें शरीर-बल भी होना चाहिये, क्योंकि जो बलवान होता है वह



दूसरेके श्रम-फलका भोक्ता नहीं होता, वह अपना भोजन स्वयं प्राप्त कर लेता है (ताकत, पृ. ३४)। इसके अतिरिक्त जीवनमें सफलता प्राप्त करनेके लिए कविका यह परामर्श है कि समयकी प्रतीक्षा करो, अपने बोलनेका समय आनेपर ही बोलना चाहिये (बगत, पृ. ३८)।

इस प्रकार इस काव्यमें कवि युग-दृष्टा और विचारक दोनों रूपोंमें हमारे सामने आता है। उसका कविकर्म अपने युगकी सामाजिक, राजनीतिक, तथा आर्थिक स्थितियोंको व्यक्त करने और उनके कारणों तथा समाधानोंके सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त करनेमें ही विन्यस्त हुआ है; उसके सम्मुख उसने शिल्प धर्मकी चिन्ता नहीं की है। लोक जीवनसे जुड़े होनेके कारण उसके इस काव्यमें भी लोक-जीवन-सी सहज, सरलता और निराडम्बरता ही उपस्थित है। उसकी काव्य-भाषाभी ठेठ हाड़ीतोके रूपमें लोकभाषा ही है, शब्द-प्रयोग और मुहावरा दोनोंके स्तरपर। उसकी अभिव्यञ्जना-शैलीके इस काव्यमें चार रूप हैं—१. काल्पनिक कथात्मक शैली २. बोलचालकी शैली, ३. संवादात्मक शैली, और ४. व्यंग्यात्मक शैली—‘फांगी’ कविता इसका एक समग्र उदाहरण है। सम्पूर्ण काव्यमें मुक्त छंदका प्रयोग होने के कारण सर्वत्र सहजता और प्रवाह है।

अलंकार प्रयोगके प्रति कविके सचेष्ट न होते हुए भी इस काव्यमें कहीं-कहीं प्रतीक और रूपकोंका प्रयोग मिलही जाता है। शब्दगत प्रतीक प्रयोगके उदाहरण हैं पृ. ८२ पर बागाँ, लीरड़ा, पृ. ६६ परी-घर, दर-वाजा, पछीत, जो क्रमशः रईस, गरीब, देश, अग्रिम पंक्ति,

और अंतिम पंक्तिके व्यक्तिके प्रतीक है। रूपक प्रयोग का एक उदाहरण है—बड़प्पनकी खूंगाली (पृ. ६३)। कवि द्वारा किये गये विम्ब विधानका सुन्दर उदाहरण है इस संग्रहकी अंतिम कविता ‘गाँव’, जिसमें कविने शब्द-चित्रात्मक शैलीमें अपने गाँवका यथार्थ और सुन्दर विम्ब प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

“इंद्राणीका महल सू/ जादा सोवणो छे/ म्हारो गाँव/...कादा सू भर्या गर्गाला, / गच्च गच्च पग धरता बेल/ भाटा धर धर खड़ता मनख,/...बड़ सू परणी पीपल/ नीमड़ीमें उग्यो झाड़/ नदी, तीर, खाल, कर्ग्याड़/ टापड़ा पै गाल सुणता मोरड़ा/ खेतामें चोकारा पाड़ती सारस्या,/ ..घूँघटानकी खड़क्यां, मूछ्यानका मरोड़ा/...मेलाको हमाल हलाता हाथ/ बार बार गीतां की मनवार करता/ पंच पटैलां कापेमिल्या मूंडा.../”

पर कुल मिलाकर इस काव्य-कृतिकी शक्ति उसके कवित्व या शिल्प-सौन्दर्यमें नहीं, उसमें चित्रित युग-जीवनके यथार्थ और चित्रणकी यथार्थवादी तथा व्यंग्यात्मक शैलीमें है। अनुभव और अनुभूतिकी सचाई तथा अभिव्यक्तिकी सहजताने इसे भाव और विचार दोनों स्तरोंपर सम्प्रेषणशीलता और ग्राह्यता प्रदान की है। यह कृति लोकभाषा हाड़ीतोकी काव्याभिव्यक्तिकी क्षमता को भी संदेहातीत रूपसे सिद्ध करती है। कहना न होगा यह काव्य कृति हाड़ीतो बोलीकी सशक्त प्रगतिशील रचनाके रूपमें चिरस्मरणीय रहेगी। □

## ‘प्रकर’ विशेषांक शृंखला

### पुरस्कृत भारतीय साहित्य

सन् ८३ से प्रति वर्ष ‘प्रकर’ के उपर्युक्त नामसे विशेषांक प्रकाशित किये जा रहे हैं। इनमें प्रति वर्ष पुरस्कृत होनेवाली कृतियोंकी समीक्षा रहती है जो भारतीय साहित्यके विकास और प्रगतिका चित्र प्रस्तुत करती हैं। प्रति वर्ष समग्र भारतीय साहित्यकी प्रत्येक भाषाकी एक विशिष्ट पुस्तक की समीक्षा द्वारा प्रत्येक भाषाकी शैली, अभिव्यक्ति, कला-पक्ष और बाह्य प्रभावोंका परिचय एक स्थानपर मिल जाता है। आप ये अंक प्राप्त कर सकते हैं :

सन् ८३	मूल्य : २०.००	सन् ८८	मूल्य : ३०.००
” ८४	” २०.००	” ८९	” ३५.००
” ८५	” २०.००	” ९०	” ३५.००
” ८६	” २५.००	” ९१	” ३५.००
” ८७	” ३०.००	” ९२	” ४०.००

### अन्य विशेषांक :

अहिन्दी भाषियोंका हिन्दी साहित्य (प्रकाशन वर्ष १९७१) ४०.००

भारतीय साहित्य : २५ वर्ष (... .. १९७३) ४०.००

सभी विशेषांक एक साथ मंगानेपर (डाक व्ययकी छूट) २८०.००

‘प्रकर’ ए-८/४२, राणा प्रताप बाग दिल्ली-११०००७



## काव्य : सिन्धी

# राष्ट्रीय-जन जीवनके अभद्र रूपोंपर प्रहार करनेवाला और मानवीय मूल्योंके प्रति आग्रहशील काव्य

कृति : सोच जूँ सूरतूँ

कृतिकार : हरिकान्त जेठवाणी

समीक्षक :

प्रो. जगदीश लछारणी

सिन्धमें जन्मे, आकाशवाणी दिल्लीमें समाचार विभागके सिन्धी खण्डके प्रधान, सिन्धीके सुप्रसिद्ध बहुमुखी साहित्यकार श्री हरिकान्तकी साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत (१९७१) नवीनतम काव्यकृति “सोच जूँ सूरतूँ” नयी कविताओंका काव्य-संकलन है। यह कविके काव्य-विकासकी अगली कड़ी है। कविकी कृतियोंमें क्रमबद्ध वैचारिक निरन्तरता है।

“सोच जूँ सूरतूँ” हरिकान्तका पाँचवाँ काव्य-संकलन है। पहला संकलन प्रीह खां पहिरि है, अन्य दो नयी कविताओंके संकलन हैं :—‘उघाड़ा आवाज’ (नग्न आवाजें) और ‘लप भरि रोशनी’ (मुट्ठी भर प्रकाश)। एक हिन्दी काव्य-संकलन ‘एक टुकड़ा इतिहास’ है इनके अतिरिक्त कविने कहानियाँ और नाटक भी लिखे हैं।

हरिकान्तके सम्पूर्ण काव्य-साहित्यपर यदि दृष्टि-पात करें तो इनकी कवितामें विचारक्रम स्पष्ट रूपसे उभरकर सामने आता है। ऐसा लगता है कि साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत कविकी यह नवीनतम काव्यकृति पूर्ण प्रकाशित काव्यकृति ‘लपभरि रोशनी’ का विस्तार है और इसी प्रकार ‘लपभरि रोशनी’ भी कविके प्रथम काव्य-संग्रह ‘उघाड़ा आवाज’ का विस्तार है। यह भी कहा जा सकता है कि कविका एक अपना निजी दृष्टि-कोण है, समाजको देखने और उसपर चिन्तनका एक क्रम है, जो इनकी तीनों काव्य-कृतियोंमें अग्रसर होता रहा है। ‘एक टुकड़ा इतिहास’ (हिन्दी) में, उनकी एक लंबी कवितामें भी हम वही भाव पाते हैं।

‘प्रकर’—अगस्त ६२—३६

इस काव्य-संग्रहकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें नयी कविताको समझानेके लिए कविकी ओरसे छोटी या बड़ी कोई भूमिका नहीं है, अन्यथा नये कवि को कई बार अपनी कविताओंको समझाने/सरल बनाने के लिए स्वयं व्याख्या करनी पड़ती है। कविने इस प्रयोजनसे दूसरे किसी आलोचककी भी सहायता नहीं ली। सरलता इस काव्य-संग्रहकी एक और विशेषता है।

कविने इस काव्य-संकलनमें महरवाणु मामताणीके आधुनिक शैलीके छः चित्र दिये हैं, जो आधुनिक जीवन पद्धतिकी ओर संकेत करते हैं। आधुनिकताकी इस रुचिके कारण कविने ‘वर्तमान’ के साथ सीधा साक्षात्कार कर, आजके समाजको उसके यथार्थ अथवा विकृत रूपमें प्रस्तुत किया है।

समाज, धर्म, नैतिकता एवं राजनीतिके प्रति अपने निजी दृष्टिकोणसे कविके यथार्थको निस्संकोच वाणी दी है। ‘नग्न सत्य’ इनके संकलनोंमें उपलब्ध है। ‘नग्न सत्य’ के उद्घाटनमें कविकी भाषा व्यंग्यात्मक अधिक हो गयी है। श्री हरिकान्तकी भाषा पर अधिकार और शब्द एवं मुहावरोंके प्रयोगकी कुशलता ध्यान खींचती है। परम्परागत मुहावरोंके प्रयोगके साथ वांछित प्रभाव उत्पन्न करनेके लिए अनेक नये मुहावरे गढ़कर उनका कलात्मक ढंगसे प्रयोग किया है। ये मुहावरे कविकी भावना एवं विचारोंको सशक्त ढंगसे व्यक्त करनेमें सक्षम है।



कविताओंके कुछ उदाहरण हैं आजके सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्योंमें गिरावट आजानेसे आजका मानव चेहरेपर मुस्कराहट फैलाये बगलमें कटार लेकर घूमता है :

अशिराफ्त

इमकानु आहे अज ।

मुँह ते मुस्कराहट भरेव

खंजर, खीसेमें खणी पियो घुमे हरि शखशु ।

राजनीतिकी परिभाषा देखिये —

न राजु आहे, न नीति

पोई बि राजनीति ।

चुनावके समय किस प्रकार भोली-भाली जनताको मूर्ख बनाया जाताहै, उसके सामने बड़ी-बड़ी बातें एवं योजनाएँ रखी जातीहैं, जो कभी पूरी नहीं कीजातीं ।

वरी वरी जीअराथी उथंदा आहिनि मुर्दा

मदारीअ जे बाँदर वांगुरु

चूँडुनि जा दुहिलडीअते

बेवकूफ बणाइण लाइ

अण पडिहयल अन्बूहखे ।

आज ऊँचे ऊँचे पदोंपर बैठे लोग किस प्रकार चरित्रको तिलाँजलि देकर, लोगोंकी भावनाओंसे खिल-वाड़ करतेहैं और फिर अपनी चरित्रहीनताको छिपाने के लिए बड़े बड़े भाषण बघारतेहैं...

उहिदे,

या अखतियारीअजे दमते

मुरबी सदाइण जो हकु हासुलु करे

रइयत जे कुंवारियुनि ख्वाहिशुनि सां

जोरीअ जनाउ करिणखां पोइ

अगठजी डिलाई डकिण वास्ते

अखिलाकी उसूलनि ते भड़िकाऊ भाषण

खूब बुधा आहिनि असां ।

आज राजनीति एवं अपराधवृत्ति घुलमिल गयेहैं:

सियासतजे अपराधीकरण

ऐ अपराध जे सियासीकरण वइदि

देशसेवा बणिजी पवंदा आहिनि के तिराई गुनाह

पूजियो वेंदो आहे गुनहगार निखे

मुल्क जो मामो या बाबो कोठे ।

पैगम्बर बनने एवं पूजे जानेकी उत्कट कामनाके कारण लोग किस प्रकार अपने पैगम्बरकी जूतियोंको गले लगाये रहतेहैं, इसपर कविका व्यंग्य है—

पंहिजे पंहिजे पैगम्बर जूँ चाखिडियूँ चटींदे

खलीफो बणिजी पियो आहे हरि शखसु

अहम जे वहिम हेठि

समिझे पियो हरिको

संदसि ई जन्म दीन्ह खां लेखिबी शुरुआत

नए सम्बत जी ।

कलात्मक दृष्टिसे देखा जाये तो हरिकान्तके आग-मनसे सिन्धी कवितामें एक नूतन स्वर उभरकर सामने आयाहै । मुहावरोंके नूतन प्रयोगसे हरिकान्तने सिन्धी कवितामें एक नया अन्दाजे-बयाँ स्थापित कियाहै, जिसे हम कविका अपना निजी अन्दाजे-बयाँ भी कह सकतेहैं । शब्दोंका प्रयोग सौन्दर्य और अभिव्यक्तिमें हरिकान्तजी अप्रतिम हैं ।

अनुभूति क्षेत्र विस्तृत होता गयाहै और गहराता जा रहाहै, इसीकारण उनकी अभिव्यक्ति अधिक पैनी और व्यंग्यात्मक हो गयीहै । इस काव्य-संग्रहकी शैलीमें पहलेकी अपेक्षा अधिक तीखापन एवं आक्रोश है ।

संक्षेपमें कहाजा सकताहै कि हरिकान्तका 'सोच जूँ सूरतूँ' पुरस्कृत काव्य-संकलन अपने नग्न सत्य, मुहावरोंके नूतन प्रयोग एवं जीवनके यथार्थ साक्षात्कार के कारण सिन्धी काव्य जगत्में उल्लेखनीय देन है । □



## उपन्यास : बंगला

# संवेदनशीलता, संप्रेषणीय चरित्र-चित्रण तथा आधुनिक जीवनके यथार्थ चिन्तन एवं मार्मिक परिस्थितियों का उपन्यास

कृति : सादा खाम

कृतिकार : मति नन्दी

समीक्षक :

प्रा. श्रवधेशप्रसाद सिंह

“सादा खाम” मति नन्दीकी एक गंभीर यथार्थ-वादी औपन्यासिक कृति है। आधुनिक भारतीय जीवन एवं समाजका एक कटु यथार्थ पुरी संवेदनाके साथ इस उपन्यासमें अभिव्यक्त हुआ है। उपन्यासकारने परिस्थितियों द्वारा सृजित व्यक्ति एवं उसकी मानसिकता का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए प्रकारान्तरसे सामाजिक एवं आर्थिक विसंगतियोंपर करारी चोट की है। इस उपन्यासमें आधुनिक भारतीय जीवनके ज्वलन्त प्रश्नों को विभिन्न पारिवारिक-सामाजिक संदर्भोंमें व्याख्यायित करनेकी चेष्टा की गयी है। “मनोवैज्ञानिक प्रकरण—अध्ययन” के रूपमें एक मानसिक उद्बेलनों क्रिया-प्रतिक्रियाओं, विचारों, अन्तर्द्वन्द्वों तथा आत्मान्वेषण को मार्मिक अभिव्यक्ति दी गयी है। इसमें गहन संचारी मनोभाव तो प्रकट हुए ही हैं साथही आधुनिक विसंगतियों एवं मूल्यहीनताके युगमें भी मनुष्यके भीतर दबी मनुष्यताको उजागर करनेकी लेखककी सार्थक एवं ईमानदार चेष्टा भी दृष्टिगोचर होती है।

जीविकाका प्रश्न आज इतना गंभीर है कि व्यक्ति किसीभी स्तरपर उतरकर उसे पानेमें किसी प्रकारकी हिचकिचाहट महसूस नहीं करता। जीविकाका आधार पाने हेतु वह जो कुछ कर गुजरता है उसके परिणामों पर वह तबतक विचार नहीं करता जबतक परिणाम स्वयं उपस्थित नहीं होजाते। स्थितिकी गंभीरताका पता ‘प्रकर’—अगस्त’६२—३६

तो तब चलता है जब स्थितिग्राही सामने आकर खड़ी हो जाती है और व्यक्तिके पास कोई विकल्प नहीं रह जाता। वह न तो उनका मुकाबला कर पाता है, न उनसे बच पाता है और न ही उनके समक्ष आत्मसमर्पण करनेको सहजतासे तैयार होता है। परिणामतः वह एक झूठी लड़ाई लड़ता है जिसे आत्म-प्रवंचनाके अतिरिक्त कोई संज्ञा नहीं दीजा सकती।

प्रस्तुत उपन्यास आकारमें लघु परन्तु संवेदनात्मक स्तरपर पर्याप्त व्यापक है। कुल १२३ पृष्ठोंके कथानक में लेखककी प्रौढ़ रचनाधर्मिताका दर्शन होता है। एक एक व्यक्तिके जीवनके केवल दो प्रमुख प्रसंगोंको केन्द्रित कर लेखकने जिन सामाजिकार्थिक विसंगतियों, मानसिक आलोड़नों, आंतरिक तनावों एवं अन्तर्द्वन्द्वोंको वहु रूपी यथार्थके साथ प्रस्तुत किया है वह उसके लेखकीय कौशल, व्यापक जीवन-बोध एवं सूक्ष्म मनोविश्लेषणात्मक क्षमताका परिचायक है।

प्रियव्रत नाग अपना नाम बदलकर छद्मनामसे नौकरी पाता है। इस कार्यमें उसकी सहायता फणीपाल नामक व्यक्ति करता है और उसे अतुलचन्द्र घोष नामक व्यक्तिका जाली सर्टिफिकेट प्रदान करता है। इसके बदले वह उससे एकमुश्त पांच हजार रुपये लेता है, साथही प्रतिमाह तीन सौ रुपये लेता है जिसे बादमें बढ़ाकर पांच सौ रुपये प्रतिमास कर देता है। प्रियव्रत नाग अपने कार्यालयमें अतुलचन्द्र घोष बनकर लगातार



छब्बीस वर्ष कार्य करता रहता है। इन छब्बीस वर्षों में वह अपने आत्मीयों, पड़ोसियों, बंधुओं एवं सहकर्मियों सभीसे स्वयंको दूर रखकर अपना एक अलग दुर्ग निर्मित कर लेता है और इस पूरे समय मुखौटा लगाये सबसे अपने को छिपाये उस स्व-निर्मित दुर्ग में चौकन्ना बना भय में एक-एक पल व्यतीत करता है। वह क्रमशः अपने चतुर्दिक एक कठोर आवरण तैयार करता जाता है जिससे बाहरका कोई भी ताप, प्रकाश, हवा शब्द आदि उस कठोर आवरणको भेदकर उसमें प्रवेशन कर सके। प्रियव्रत पूरी चेष्टा करता है कि कोई भी व्यक्ति उसके जीवनमें झाँककर यह न देख सके कि वह मुखौटा लगाये एक बेनामी आदमी है। घड़ीके कांटेकी भाँति एक-एक पल उसका जीवन आगे बढ़ता जाता है जिसकी गति प्राणहीन एवं उद्देश्यहीन है। वह जीवनको मात्र ढो रहा है जिसमें किसी प्रकारकी संवेदनशीलता एवं गति नहीं है।

उसकी पत्नीकी मृत्यु हो जाती है, परन्तु वह दूसरा ब्याह नहीं करता। अपने एक मात्र पुत्र हितुका पालन पोषण निर्विकार भावसे करता जाता है। निर्जन शील के स्थिर जलकी भाँति उसके जीवनमें एकभी तरंग नहीं उठती। इन छब्बीस वर्षों में बाहरका एक भी कंकड़ आकर उसमें नहीं गिरता कि छोटीही सही पर कोई तरंग उठे और उसके किनारेको छुए। उसका पुत्र बड़ा होकर अखबारका संवाददाता बन जाता है। वह चीजोंको अपनी दृष्टिसे देखने-समझने एवं परिभाषित करनेकी चेष्टा करता है। वह पिताके स्थिर, गतिहीन एवं निःसंग जीवनपर बेलाग टिप्पणी करते हुए कहता है कि “चालीससे लेकर पचासकी आयुमें पुरुष अपने जीवनकी ऊँचाइयों पर होता है। इस आयुमें पहुंचकर वह अपने संपूर्ण जीवनका लेखा-जोखा करता है कि तु आपमें मैंने वह नहीं देखा। वर्ष प्रति वर्ष आप एकही प्रकारसे, एकही कुर्सी-टेबुल पर बैठकर नौकरी करते रहे। मैं मानता हूँ कि आपकी जितनी योग्यता है या विद्याबुद्धि है उसे देखते हुए इससे अधिक करना संभव नहीं है कि तु उसे छोड़ भी दें तो भी जीवनका उपभोग तो कर ही सकते थे। अर्थात् इस आयुमें जीवन को शराबकी भाँति चुस्की ले-लेकर पीना चाहिये था”। परन्तु प्रियव्रत ऐसा नहीं कर सका। संभवतः इसके शेष आर्थिक कारण हों। छद्मनामसे नौकरी करके धनसे वह अपना और अपने पुत्रका भरण-पोषण करता

है, उसे लिखा पढ़ाकर इस योग्य बनाता है कि वह कुछ कर सके। परन्तु क्या सचमुच उसे ऐसाही गतिहीन जीवन अभीष्ट था। इतने वर्षों में उसने क्या अर्जित किया? क्या वह सुखी है? सफल है? क्या उसने ऐसेही जीवनकी कामना की थी?

तिल-तिल भय और आत्मग्लानिसे मरते हुए अपने जीवनके साथभी वह एकरस हो गया था परन्तु एकाएक नियतिने उसे एक और भयानक भंवरमें डाल दिया। हठात् एक दिन उसके बजपनके साथी बुदीकेलोक की लड़की निरूपमासे उसका साक्षात्कार हो जाता है। एक अभावग्रस्त पिताकी पाँच पुत्रियोंमें से सबसे बड़ी निरूपमा मात्र २००/- रु. की जीविका अर्जन हेतु जहाँ कार्य करती है वहीं उससे बलात्कार करके उसकी अस्मिता लूट ली जाती है। पुलिस केस होता है और बलात्कारी पकड़े जाते हैं। निरूपमाको उनकी पहचान करनी है ताकि उन्हें दंड मिल सके। परन्तु ये समाज-विरोधी इतने शक्तिशाली हो उठे हैं कि खुलेआम निरूपमा और उसके पिताको धमकी दे जाते हैं कि यदि निरूपमाने उनकी शिनाख्त की या उन्हें सजा दिलानेकी चेष्टा की तो उसकी हत्या कर दी जायेगी। यही नहीं घरपर आकर निरूपमाके पेटमें चाकूका फनक सटाकर चेतावनी दे जाते हैं कि उसके साथ-साथ सारे परिवारको समाप्त कर दिया जायेगा। इस घटनाको आठ मास बीत गये हैं अब केस खुल गया है। निरूपमाको कोर्टमें उपस्थित होना है। इसी स्थिति में प्रियव्रतकी भेंट निरूपमा एवं उसके पितासे होती है। बाल्यबंधु होनेके नाते निरूपमाका पिता उससे थोड़ी सहायता मांगता है। प्रियव्रत निरूपमाको अपने घर ले आता है। उसकी सारी कहानी सुनता है और उससे सहानुभूति जताता है। निरूपमा उससे अनुनय करती है कि वह उसे अपने घरमें छिपाकर रख ले। निरूपमाकी मानसिक स्थिति द्वन्द्वोंसे भरी है। आर्थिक अभाव, पेटकी ज्वाला, जिजीविषा, एकही साथ गुण्डा एवं पुलिस दोनोंका भय, परिवारकी सुरक्षाकी कामना एवं आश्रयकी आकांक्षासे वह प्रियव्रतको आशाभरी आँखोंसे देखती है क्योंकि प्रथम साक्षात्कारसे लेकर अब तक उसमें प्रियव्रतके व्यवहारसे, उसे जितना समझा है, उससे उसमें एक आशा जगी है। विधुर प्रियव्रतकी आँखोंमें उमने स्पष्ट एक आकर्षण पड़ा है। बसमें उसके शरीरके संवेदनशील अंगोंके इच्छाकृत स्पर्शसे, घरमें



बात-चीतके दौरान सहानुभूतिभरी बातों एवं उसकी आन्तरिक चाह आदिसे उसमें एक कामना जागृत हुई है। वह प्रोत्साहित होकर उससे आश्रय मांगती है। परन्तु प्रियव्रत उसकी आशाके विपरीत भीतू, कायर और क्लोव साबित होता है। वह सुखाकांक्षी तो है परन्तु इसके लिए कोई जोखिम उठाना नहीं चाहता। वह बिना निवेश किये पूरा प्रतिलाभ प्राप्त करना चाहता है। निरूपमाको उसके इस छद्म रूपसे घृणा हो जाती है और उसके भीतर छिपे कापुरुष एवं लोभी व्यक्ति का वह पर्दाफाश कर देती है। वह उसके कठोर खोलके फाँकमें उंगली डालकर एक ऐसा चीरा लगाती है कि प्रियव्रत नाग पूरी तरह बेपद हो जाता है। यही नहीं उसी फाँकसे प्रियव्रतकी नियतिभी प्रवेश करती है।

प्रियव्रतने कभी सोचाथा कि किस प्रकार उसने अपने जीवनके छब्बीस वर्ष गुमनाम अंधेरेमें गुजार दिये हैं बाकी के संभवतः छब्बीस वर्षभी इसी प्रकार गुजर जायेंगे। पर ऐसा नहीं होता। निरूपमा उसके जीवनमें एक तरंग उत्पन्न कर देती है, जिससे उसके जीवनका स्थिर ठहरा हुआ जल गतिशील हो उठता है। उसके भीतरका दाब इतना प्रबल हो उठता है कि वह उसके प्रचंड वेगको रोक नहीं पाता और अन्ततः अपने सारे मुखोटे उतार फेंकता है। निर्भीक मुक्त उसका मन पूरी ताजगीसे भरा प्रतीत होता है। जीवन की मूल्यवान् आयुको उसने जिन यंत्रणाओं, कुण्ठाओं एवं भयावह दंशनोंके साथ गंवाया है उनसे एकाएक वह मुक्त हो उठता है। जिस जीविका, परिवार, पुत्र आदिके मोहसे उसने वह छद्म पथ अपनायाथा, वह सब निष्फल एवं व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं। फिर तो पूरे साहसके साथ वह लापरवाह निर्मोहकीन तथा मुखोटा-रहित स्वच्छंद व्यक्तिके रूपमें स्वयंको प्रतिष्ठित करता है। वह यह चिन्ता भी नहीं करता कि भावी जीवनका क्या होगा या आगे किन परिणामोंको भोगना पड़ेगा। सम्भवतः ऐसे मुक्त मनकी प्रतिष्ठापनाही लेखकका अभीष्ट रहा हो। क्योंकि कथानायकका चारित्रिक विकास दिखलाना भी इस उपन्यासका एक प्रयोजन रहा है। उपन्यासकार दिखलाता है कि प्रियव्रत नाग वचनसे ही विरोधी शक्तिशाली शक्तियोंसे भागता रहा है और उसकी कामना रही है कि देवही उसे उन शक्तियोंसे बचाये। स्कूली जीवनमें तीनकोड़ी के भयसे वह तबतक मुक्त नहीं होता जबतक यह नहीं

सुन लेता कि उसके पाँव ट्रामसे कट गये हैं। उसके पैर कटनेका समाचार सुनकर वह दुःखी होनेकी जगह प्रसन्न हो उठता है। फणीपालकी मृत्युकी कामना लिये वह वर्ष-दर-वर्ष व्यतीत करता जाता है और उसकी मृत्युका समाचार पाकर वह मुक्तिकी साँस लेता है। पर इनसे सामना करनेका साहस वह कभी जुटा नहीं पाता। उसके चरित्रमें एक नया मोड़ तब उपस्थित होता है जब निरूपमा और हितु उसके भीतर छिपे-दबे पुरुषपर प्रहार करते हैं। उसका अहं जाग उठता है। अबतक कार्यालयमें कर्मचारियोंके सहज-साधारण आपसी बातचीतमें भी भद्की बू खोजनेवाला, घोंघेकी भाँति जरा-सी आहटपर अपनी सँड समेट लेनेवाला प्रियव्रत निडर हो जाता है। फणीपालके पुत्र गौरांगकी धमकियोंके समक्ष झुकनेकी बजाय वह और कठोर हो उठता है। वस्तुतः निरूपमाकी प्रताड़ना उसके भीतर दबे पुरुषको जागृत कर देती है। फिर कोई बाधा, कोई भय, कोई भयावह परिणाम उसे डरा नहीं पाता और वह पूरी शक्तिके साथ सभी परिस्थितियोंका सामना करनेके लिए तत्पर एवं सन्नद्ध हो उठता है। यही इस उपन्यासकी प्रयोजनीयता एवं उपलब्धि है।

प्रियव्रतके अतिरिक्त निरूपमाका चरित्र भी हमें प्रभावित करता है। अभाव, तिरस्कार, निस्सहायता एवं बलात्कारकी शिकार निरूपमा अल्पायुमें ही जीवन एवं जगत्की विसंगतियों एवं तह-दर-तह नकाबोंमें छिपे लोगोंका पहचान करनेकी शक्ति अर्जित कर लेती है। पेट एवं प्राणकी रक्षाके लिए माता-पिता एवं संतानोंके रिश्तेके खोखलेपनको देखकर इस दुनियाँमें जीवित रहनेकी उसकी सारी इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं। मृत्युभयसे मुक्त होकर भी वह बलात्कारियोंकी पहचान नहीं करती ताकि प्राण एवं पेट भयसे त्रस्त उसके माता-पिता एवं बहनें बच सकें। वह उन गुंडोंके हाथों मरनेकी बजाय शरीर ताहका वरण करती है। हालांकि लेखकने निरूपमाके भीतर उठते अन्तर्द्वन्द्वोंपर ध्यान नहीं दिया है क्योंकि उसका सारा ध्यान प्रियव्रतका चरित्र-चित्रण करनेपर लगा रहा है, परन्तु उपेक्षित निरूपमा पूरे उपन्यासमें एक प्रमुख भूमिका निभाती है। वही प्रियव्रतके सारे मुखौटोंको पलभरमें उतार फेंकती है। संभवतः निरूपमा न होती तो प्रियव्रतका चरित्र अधूरा ही रह जाता और लेखकका प्रयोजनभी सिद्ध नहीं होता। निरूपमा ऐसी नारियोंके चरित्रका प्रतिनिधित्व करती



जो सब ओरसे निराश होकर अपने भीतरकी शक्ति का सहारा लेती हैं। जब उन्हें लगता है कि वे निहायत अकेली एवं निस्संग हो गयी हैं तो उनके भीतर एक प्रबल शक्ति उत्पन्न होती है। फिर तो वे सभी भय आतंक एवं भीरुतासे ऊपर उठ जाती हैं और किसी भी परिस्थितिका सामना करनेके लिए तत्पर हो उठती हैं। निरूपमा जब अपने पिता, माता, प्रियव्रत एवं पुलिससे किसी प्रकारकी सहायता नहीं पाती और उसे लगता है कि उसे अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी पड़ेगी तो वह निर्भय होकर आततायियोंका सामना करने जाती है और अन्ततः अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर देती है। खुदी-केलो, फणी पाल, गोरंग पाल, वैज्ञानिक डाक्टर गुप्ता, कार्यालयके कर्मचारी, पुलिस, समाजविरोधी तत्त्व आदि पात्र केवल परिस्थितियोंके संवाहक हैं और कथाके

विकासमें सहायक भर हैं।

जहाँतक उपन्यासके शिल्प एवं भाषाका प्रश्न है, वह पर्याप्त प्रौढ़ एवं चुस्त है। एकाध स्थलोंपर अश्लील भाषाको छोड़ दें तो सम्पूर्ण कृति भाषायी दृष्टिसे संप्रेषणीय है। मनोभावोंकी अभिव्यक्तिमें लेखकको पूरी सफलता मिली है। उपन्यासमें जीवनके विविध पक्ष सूक्ष्मताके साथ अभिव्यक्त हुए हैं। यह बंगला साहित्य की एक अभिनव संयोजना एवं उपलब्धि है तथा इसे साहित्य अकादमी पुरस्कार देकर पूरा न्याय किया गया है। अपनी संवेदनशीलता, सशक्त भाषा-शैली, सुगठित शिल्प, संप्रेषणीय चरित्र-चित्रण तथा आधुनिक जीवन की यथार्थ एवं मार्मिक परिस्थितियोंके प्रभविष्णु प्रतिपादनके कारण यह उपन्यास पाठकोंपर गहरा प्रभाव छोड़ेगा। [१]

## उपन्यास : तमिल

# जीवन-संघर्ष, जिजीविषा, स्वातन्त्र्य-चेतनासे प्रेरित, समाजके संक्रमण और विकासका उपन्यास

कृति : गोपल्लपुरत्तु मक्कळ्  
कृतिकार : कि. राजनारायणन्

समीक्षक :  
डा. एम. शेषन्

तमिलनाडुके सुदूर दक्षिणांचल तिरुनेलवेली जिले के कोवलपट्टि तालुकाके निकटके 'इडैचेवल' नामक गाँवमें जन्मे कि. राजनारायणने अपने चालासवें वर्षके बाद लेखनके क्षेत्रमें प्रवेशकर कहानियाँ, लघु उपन्यास, ग्राम-कथाएं, पत्र, कोश, इतिहास आदि विभिन्न प्रकार के साहित्यिक प्रयासोंमें लगे रहकर प्रमुख रूपसे अपनी साहित्यिक साधना की है। करिसलकाडु नामक तमिल अंचलसे सम्बन्धित आंचलिक कथाओंके सृजनमें वे पुरो-

गामी और प्रमुख कथाकारके रूपमें समादृत हैं। एक अंचल विशेषके जनजीवनको मुख्य रूपसे उजागर कर साहित्यमें एक नयी परम्पराका सृजन करनेका श्रेय उन्हें प्राप्त है।

कि. राजनारायणकी अभिरुचि, लगाव, संवेदना सदा शोषित ग्रामीण, किसान-मजदूरोंके प्रति ही रही है। फिरभी उनकी कथाएं एक वर्ग विशेषकी कथा नहीं मानी जा सकती। एक अंचल विशेषके जनजीवनका



चित्रण करने तथा वहाँकी विशिष्ट भाषा-शैलीके प्रयोग करने मात्रसे उन्हें केवल आंचलिक कथाकार कहकर उनके महत्त्वको कम या सीमित करना उचित नहीं लगता। ग्राम जीवनके समग्र पहलुओंको मानवीय संवेदना एवं दृष्टिकोणके साथ समग्र वीक्षणसे देखने-परखने तथा विश्लेषित करनेकी दृष्टि रखनेसे उनके चित्रण पाठकोंके हृदयको स्पर्श करनेमें सफल हुए हैं। वे मूलतः ग्राम-चेतनासे सपन्न ग्राम-कथाकार हैं और यही उनके सृजनकी विशिष्टता मानी जायेगी।

चर्चित उपन्यास लोकप्रिय साप्ताहिक पत्रिका 'आनन्द विकटन' में चौतीस सप्ताह धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुआ और बादमें सन् १९६० में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। 'स्वतंत्रता संग्रामका वीर इतिहास' और सामान्य मानवोंको कथानायकके रूपमें चित्रित करनेवाला 'महाकाव्य' कहकर अधिकांश पाठकोंने इसकी प्रशंसा की है। इस प्रकार यह एक बहुचर्चित उपन्यास है।

कि. राजनारायणने इसके पूर्व सन् १९७६ में 'गोपल्लग्रामम्' उपन्यास लिखा था जिसमें करिसल-काडुके अंचलके गोपल्ल गाँवके जनसमाजका सामिक चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास उसी जनसमाजकी कथाकी अगली कड़ी है। वास्तवमें 'गोपल्लपुरत्तु मक्कळ' उपन्यास और पूर्वर्चित 'गोपल्लग्रामम्' में पूर्वापर सम्बन्ध माना जा सकता है।

'गोपल्लग्रामम्' की कथा तमिल प्रदेशके प्रसिद्ध वीरसेनानी कट्टबोम्मु नामक पालेयवकार शासकके सौ वर्ष पूर्व अर्थात् अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें अनेक कारणोंसे आन्ध्र प्रदेशसे निकलकर तमिलनाडुमें प्रवेश कर सुदूर दक्षिणांचल तिरुनेलवेली जिलेकी छोटी-सी पहाड़ी ढलानमें आकर बसे कम्मवार जातिके इतिहास की ग्रामीण जन-जीवनके दृष्टिकोणसे देखने और चित्रित करनेका औपन्यासिक प्रयास है।

इस प्रदेशमें जब कहने योग्य कोई शासन नहीं रहा, उस समय शासनाधिकार दक्षिणके नवाबों और ईस्ट इण्डिया कम्पनीके बीच बारी-बारीसे बदलता रहा। उस समय लूटपाट, मारकाट, हत्याएं, अनाचार अत्याचार फैल रहा था। साधारण जनता द्वारा उनका प्रतिरोध करने, साहसपूर्वक लूटेरोंका सामना करनेके अनेकों सम्मिलित प्रयास हुए। इनमें उन ग्रामीणोंकी वीरता,

'प्रकर'—अगस्त '६२—४२

साहस, जातीय एकताकी भावना आदि सुन्दर ढंगसे प्रदर्शित हुई।

इस वीर जातिकी परम्परामें आयी एक वृद्धाके मुँहसे पुराने समयके इतिहासका वर्णन किया जाता है। वही उन पुरानी स्मृतियोंका जीवित प्रतिनिधि बनकर रहती है और विस्मृत कथाके अंश दूसरोंको सुनाती है और शेष कथाको कल्पना द्वारा पूरा करती है। इस प्रकार अपनी जातीय परम्पराकी कथाको विस्तार देने में समर्थ होती है। उसकी कथाका आरम्भ अकाल, भुखमरी, मुसलमान आक्रमणकारियोंके अत्याचारोंके वर्णनसे होता है। यह कथा नाट्यार जातिकी परम्पराके अनुकूल चलती है। इतिहासके लिए वांछित वास्तविक कारण भुलाये जानेपर नाट्यार जातिकी परम्पराके अनुरूप सशक्त कारण कल्पितकर अस्वाभाविक एवं अतिमानवीय घटनाओं तथा कथाओंको चित्रित करने का प्रयास हुआ है।

सुदूर तिरुनेलवेली जिलेके करिसलकाडुमें पहुंचकर ये तेलुगुभाषी लोग वहाँके वनांचलको अपने परिश्रम, लगन, और उत्साहसे कृषि योग्य उपजाऊ भूमिमें परिवर्तित करनेमें जी जानसे जुट जाते हैं। कृषि योग्य भूमि बनानेमें एक बंजर भूमिको उपजाऊ बनानेमें उन्हें कई पीढ़ियाँ लग गयीं। अंतमें अपनी जिजीविषा, साहस और लगनके बलपर वे रहने योग्य अच्छे गांव बस्तियोंका निर्माण करने, सुख-चैनसे जीवन बितानेके साधन जुटाने में सफल हो सके। इस कार्यमें उनका सम्मिलित परिश्रम, सामुदायिक भावना एवं जिजीविषा प्रेरक बनती है। एक छोटेसे नवसमाज और नवसमुदायके रूप में वह गांव नया जीवन पाता है। इन परिवर्तनोंके मध्य उन्हें अनेक प्रकारकी बहुत कठिनाईयोंका भी सामना करना पड़ा, अनेक प्रकारके त्याग और उत्सर्ग उन्हें करने पड़े। शिकारी एवं वन्य जीवनकी स्थितिसे कृषि जीवनको अपनानेमें उनका जीवट, शक्ति और जगर साहस द्रष्टव्य है। कृषकोंके अतिरिक्त कई प्रकारके दूसरे कारीगर, मजदूर जैसे बढ़ई, मोची, सुनार, चमार लुहार आदि यहां बस गये और वस्तुओंकी बदला बदली द्वारा उनका अर्थतंत्र कारगर होता था। उन्होंने पीढ़ियोंतक गाँवमें रुपये और टकेकी सूरत नहीं देखी थीं। धीरे-धीरे भूस्वामीके रूपमें कुछ लोगोंका परिवर्तन होने लगा था। एक दूसरेकी सहायता एवं सहयोग के बलपर आपसमें मिल-जुलकर रहने लगे।



धीरे-धीरे अनेक प्रकारके आर्थिक व्यापारों और कार्यकलापोंमें विकास होने लगा। क्रमशः किसान और भूस्वामीके बीच भेदभाव सिर उठाने लगा। लेखकने गोपलग्राम तथा आसपासके कई गाँवोंके विकासको उनकी कृषि अर्थ व्यवस्थाका सजीव कलात्मक चित्रण किया है।

कुछ समय बाद राजनीतिक हलचलकी ओर संकेत मिलता है। कम्पनी शासनकाल शुरू होता है और गोपल ग्रामका प्रमुख मुखिया कंपनीकी ओरसे प्रतिनिधि नियुक्त किया जाता है। धीरे-धीरे कम्पनी शासनकी व्यवस्था ग्रामीणोंके विश्वासको तोड़ देती है और अब इंग्लैण्डकी रानी विक्टोरियाकी नयी घोषणा सुनकर गाँववासी आश्वस्त हो जाते हैं। कालान्तरमें यह शासनभी उन्हें सुखी और सम्पन्न न बना सका। लेखक यहीं गाँव-वासियोंके मनमें स्वतन्त्रताकी भावनाके उदयका चित्रण करता है।

‘गोपलपुरत्तु मक्कळ’ की कथा इसके पूर्वकी कथाको आगे बढ़ाती है। चर्चित एवं पुरस्कृत इस उपन्यासमें ब्रिटिश शासन स्थापित हो जानेपर ग्रामीण जीवनमें आये आर्थिक, सामाजिक एवं वैचारिक परिवर्तनोंकी झाँकी, कथाके माध्यमसे प्रस्तुत की गयी है। उस युगमें इन्हें हम युगान्तरकारी परिवर्तनके रूपमें मान सकते हैं। अंग्रेजोंके शासनकालमें रेलकी पटरियाँ बिछायी गयीं, रेल आयी, तार आया, मुद्रण यंत्र आया, बिजली आयी, नयी चिकित्सा पद्धतिका प्रचलन हुआ, लोगोंमें चाय, काफी पीनेकी आदत आयी, गाँवमें पाठ-शालाओंकी स्थापना होने लगी। नयी पीढ़ीके बालक-बालिकाएँ इन स्कूलोंमें पढ़ने जाने लगे। पुरानी शिक्षा पद्धतिके स्थानपर अंग्रेजी शिक्षापद्धतिका प्रचलन होने लगा पुराने रीति-रिवाजों, आचार-विचारोंमें परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। पुराने मूल्योंको अविश्वासकी दृष्टिसे देखा गया। दूसरी ओर नये आगमन और पुरानेसे चिपके रहनेका मोह—इन दोनोंके बीचके संक्रमणकी स्थितिका भली-भाँति वर्णन है। उपन्यासमें ग्रामीण जातीय परम्पराओं, उत्सव, पर्व, त्यौहार आदि का बीच-बीचमें सुन्दर वर्णन हुआ है। ग्रामीणोंकी व्यथा कथा, आह-कराह, दर्द-पीड़ा, वेदना-व्यथा के साथही उनके हर्षोल्लास एवं उत्साहका भी चित्रण है। पुराने रीति-रिवाजोंमें ग्रामीणोंका विश्वास, परम्पराओंके पालनमें उनका लगाव आदिका अच्छा चित्रण हुआ है

जिसके कारण ग्रामीण जनजीवनका एक संपूर्ण तथा यथार्थ चित्र पाठकोंके सम्मुख आ जाता है। ‘जल्लिकट्टु’ नामक खेल—जिसमें सांडोंसे गाँवके बलिष्ठ युवकों के भिड़ने और उन्हें वशमें करनेके पुराने जातीय साहस-पूर्ण खेलोंका भी विस्तारसे वर्णन है। लेखक परिवर्तनों का चित्रण करते समय किसान-खेडूतोंके खान-पानमें हुए परिवर्तनोंकी ओर भी संकेत करते हैं। जहाँ गाँवके किसान तथा सामान्य जनता ज्वार या चावलकी दलिया पिया करते थे, वहाँ अब धीरे-धीरे भात, दाल आदि खाने लगे और छाछभी पीने लगे। उनके घरोंमें अब, सम्पन्न परिवारोंकी भाँति इडली, दोसा खानेका चलन हो चुका था। इस प्रकार बाहरी और भीतरी परिवर्तनोंकी ओर संकेत है।

गाँवमें अच्छी शिक्षाकी व्यवस्था न हो पानेसे पास के एट्टयपुरम जाकर गाँवके लड़के अंग्रेजी शिक्षा पाने लगे। इसके फलस्वरूप इन लड़कोंके रहन-सहन रंग-ढंगमें पर्याप्त अन्तर आने लगा। गाँवके लड़के पहले चोटी रखते थे, वहाँ अब चोटीकी जगहपर ‘क्राप’ रखने लगे। इन युवकोंके बाल कटवानेपर गाँव-घरोंमें हो हल्ला होने लगा। स्त्रियाँ कहने लगीं कि बड़ा अनाचार हो गया है।

एट्टयपुरमसे पासके शहर ‘कोथिलपट्टी’में लड़के पढ़नेके निमित्त जाने लगे। गाँवके मुखिया नुन्न-कोण्ड नायककरके ज्येष्ठ पुत्रका विवाह मदुरै नगरके एक सम्पन्न घरानेमें हो गया। वह मदुरै नगरसे न केवल वधू ले आया, बल्कि कई नयी चीजेंभी अपने साथ गाँव ले आया। कमीज-कुरता, हाथकी कलाईकी घड़ी, दीवारपर टंगनेवाली घड़ी आदि जिन्हें गाँववालोंने अब तक देखा नहीं था। इसी भाँति दियासलाई, सुई-धागा, आदि वस्तुओंके आनेसे गाँववासी इन्हें बड़े आश्चर्यसे देखने लगे। कथाकार गाँवमें होनेवाले सामाजिक परिवर्तनोंकी ओर संकेत करते हैं और माथही ग्रामीणोंकी नयी मानसिकताकी ओर भी।

जब पहली बार गाँवके पाससे होकर रेलगाड़ी चलने लगी तो उसके ‘प्रथम दर्शन’के लिए गाँवके लोग किस प्रकार भीड़ जमाकर उसे न केवल देखने आये बल्कि आरती उतारने लगे, नारियल फोड़ने लगे, कपूर जलाकर रेलके सामने दंडवत् नमस्कार करने लगे। यह उस समयका स्वाभाविक और यथार्थ चित्रण है। टार्च लाइटके आनेपर कई प्रकारके अन्धविश्वास



दूर होते दिखायी दिये । लेखकने जहाँ नयी पीढ़ीमें आये परिवर्तनोंका विस्तारसे वर्णन किया है, वहाँ पुरानी पीढ़ीका असंतोषभी चित्रित किया है । उन्हें लगा कि अब 'कलियुग' जल्दी अनेवाला है ।

प्रथम विश्वयुद्धके छिड़तेही उसकी चर्चा गोपल्ल गाँवमें होने लगी । प्रत्येक घरसे सेनामें भर्ती होनेके लिए युवक प्रेरित किये जाने लगे । महात्मा गांधीके क्रांतिकारी विचारों और सामाजिक सुधारोंकी बातों का प्रभाव गाँवके शिक्षित नवयुवकोंके मनपर होने लगा । फलस्वरूप गाँवकी शराबकी दूकानोंको बन्द करानेका प्रयत्न हुआ, मन्दिरोंमें हरिजनों और निम्न जातिके लोगोंको प्रवेश करानेकी बात जब उठी तो पुरानी पीढ़ी के लोगों द्वारा उसका प्रतिरोध होने लगा । धीरे-धीरे 'वन्देमातरम्', 'अल्लाहो अकबर', 'बोलो, महात्मा गांधी जीकी जय' के नारे गूँजने लगे । खादीका तिरंगा झण्डा फहरानेमें युवकोंमें उत्साह देखा गया । इसपर सरकारी अफसरोंमें बड़ा असंतोष प्रकट किया जाने लगा ।

जिला बोर्डोंका निर्माण होने लगा, गाँवकी व्यवस्था में अब पर्याप्त अन्तर देखनेमें आया । शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़कोंकी मरम्मत आदि कार्योंके दायित्व अब जिला बोर्ड को सौंप दिये गये । लड़के-लड़कियोंको शिक्षाके लिए अलग-अलग जिला बोर्ड स्कूल खुलने लगे । वहाँकी अध्यापिकाओंकी वेशभूषा, रहन-रहन, रंगदंगकी नकल उतारनेमें लड़कियोंमें उत्साह देखा गया । गाँवकी स्त्रियाँ पहले 'ब्लौज' नहीं पहनती थी, अब लड़कियाँ पहनने लगीं । सुगन्धित साबुनका प्रयोग वे घरोंमें करने लगीं । डाकघर खुल गये, समाचारपत्र गाँवमें नियमित रूपसे आने लगे । कई घरोंमें अब 'सुदेश-मित्रन्' 'आनन्दबोधिनी' जैसी तमिल पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ी जाने लगीं । इन दैनिक पत्रिकाओंके द्वारा वे देश-विदेश के समाचार जानने लगे । उनपर गाँवमें चर्चाएँ भी चलने लगीं । सन्ध्या समय गाँवके चौपालमें कोई पढ़ा-लिखा आदमी जोरसे समाचारपत्र पढ़कर खबरें सुनाता था और उन्हें सुननेके लिए उत्सुकतासे अनपढ़ लोग उनके सामने इकट्ठे हो जाते थे । उत्तर भारतके क्रांतिकारी युवक भगतसिंह, मंगल पाण्डे जैसे देशभक्त युवकोंके त्याग और बलिदानके समाचार सुनकर उन्हें बड़ी प्रेरणा मिलती थी । धीरे-धीरे उनमें भी स्वतन्त्रताकी चेतना जगने लगी । प्रायः बाहरसे कोई कांग्रेसी स्वयं-सेवक, प्रचारक या कार्यकर्ता गोपल्ल गाँवमें आकर

'प्रकर'—अगस्त ६२—४४

स्वतन्त्रताकी आगकी फैलानेका कार्य करते थे । इस कारण गोरों और अंग्रेजोंके प्रति घृणाका भाव बढ़ने लगा । इस प्रकार 'करिसल काडु' के किसी कोनेमें स्थित गोपल्ल गाँवके निवासियोंके मनमें स्वतन्त्रताकी भावना जागृत होने लगी । लेखक देशकी गतिविधियोंको पत्रों के आपसी वार्तालापके द्वारा स्पष्ट करते जाते हैं जिससे कथामें निरन्तरता और प्रवाह आ गया है । बम्बईमें सन् चालीसके दशकमें नाविकों द्वारा किये गये विद्रोहका विस्तारसे वर्णन मिलता है ।

जब भारतको स्वायत्त शासनाधिकार देनेकी ब्रिटिश सरकारकी घोषणा हुई तो देशवासी इसेभी अंग्रेजोंकी कोई कुटिल चाल मानकर उसपर विश्वास करनेकी तैयार नहीं हुए । पहले अंग्रेजोंके जो 'भक्त थे वे अब कांग्रेसके समर्थक बनने लगे ।

अब गाँवमें एक ओर साम्यवादी युवकोंका प्रचार होने लगा तो दूसरी ओर 'ब्राह्मण-अब्राह्मण'की समस्या, जातिवाद आदि सिर उठाने लगे । सन् १९४७में जब देश पूर्णरूपसे स्वतन्त्र हुआ तो गाँवमें भिन्न-भिन्न पार्टीवाले अपने-अपने ढंगसे उस उत्सवको मनानेमें व्यस्त थे । उस समय बापूजी कलकत्ताके पास नौआ-खाली या किसी गाँवमें मौन धारण कर चरखा काते रहे । भारतकी नयी स्वतन्त्रताका उनपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा । भारत-पाकिस्तानके विभाजनने उनके कोमल हृदयको चकनाचूर कर दिया, उनकी भावनाओंको ठेस पहुँची । उनकी इच्छाके विरुद्ध देशका बंटवारा हुआ, पाकिस्तानका उदय हुआ । यह उन्हें शूल की तरह पीड़ित करने लगा ।

प्रस्तुत 'गोपल्लपुरत्तु मक्कल' आंचलिक उपन्यास में कोई क्रमबद्ध कथा नहीं है । दक्षिणांचलके एक अंचल विशेष (करिसलकाडु)को समग्रतासे उजागर करनेका लेखकका प्रयासही इसमें दृष्टिगोचर है । वहाँ की सामाजिक, आर्थिक एवं वैचारिक विशेषताओंको अंचल विशेषकी ज्वलंत समयाओं और घटनाओंको उजागर करते हुए, उसका सामना करनेवाले समाजके आपसी सम्बन्ध और कार्योंको प्रकट करने तथा मानवीय स्वभाव, चरित्रके गुणदोषोंको चित्रित करना लेखक का अभीष्ट रहा है । अंचल विशेष जनमानसको चित्रित करने के साथ-साथ लेखकने राष्ट्रीय कार्यक्रमों की चर्चा विस्तारसे की है ।

गोपल्ले गाँवकी कथाको विस्तार देते हुए उपन्यास-



कार अंग्रेजोंके शासनकालमें हुए विभिन्न प्रकारके परिवर्तनोंका विस्तारसे वर्णन करते हैं। नये और पुरानेके बीचका संघर्ष केवल भौतिक रूपसे न दिखाकर मानसिक स्तरपर भी दिखाया है जो स्वाभाविक लगता है। पुरानी परम्पराओं और निरर्थक रूढ़ियोंमें जकड़े गांव-वासियोंमें क्रमशः जो परिवर्तन आने लगा उनका भी स्वाभाविक चित्रण हुआ है। पुराने और नयेके बीच हो रहे संघर्षमें नयेकी विजयको लेखकने रेखांकित किया है।

'गोपलपुरत्तु मक्कळ' उपन्यासके दूसरे खण्डमें देशभरमें स्वतंत्रताकी प्राप्तिके लिए राष्ट्रनेताओं द्वारा किये विभिन्न प्रयास और उनके फलस्वरूप गांवके युवकोंपर पड़े गहरे प्रभावका स्पष्ट चित्रण करनेमें कथाकारको सफलता मिली है। गोपल गांवके ग्रामीणों में जो नयी चेतना आयी वह सुदूरपूर्व तमिलनाडुके करिसलकाडुके लोगोंपर ही नहीं, देशके कोने-कोनेमें स्थित सात लाख गांवोंको भी प्रभावित करती है, उन्हें आलोकित-विलोकित कर देती है। सारा देश एकजुट होकर इस स्वतन्त्रताके महायज्ञमें अपनी-अपनी आहुति देनेको कटिबद्ध हो जाता है।

उपन्यासमें एक पूरे युगको, कम्पनी शासनके पूर्व का युग, कम्पनी शासनका युग, विक्टोरिया महारानीकी घोषणाका काल, फिर अंग्रेजोंके शासनकाल और अन्तमें भारतवासियों द्वारा स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए किये गये संघर्ष और स्वतन्त्रता प्राप्ति का काल आदि विभिन्न कालोंको उजागर किया है। इस प्रकार एक लम्बे युगको सफलतापूर्वक पुनः सृजित करनेका प्रयास हुआ है।

आंचलिक कथाकारको अपनी जन्मभूमिकी माटी, वहां के लोगोंके प्रति, जनजीवन और संस्कारोंके प्रति विशेष लगाव और प्रेमका होना स्वाभाविक है। उपन्यासकार कि. राजनारायणको अपनी माटीके कण-कणसे लगाव है जिसे वे अपनी लेखनीके द्वारा उतारनेमें सफल हुए हैं। लेखककी आत्मस्वीकृति है कि :

"करिसलकाडु अंचलकी जनताकी बोली-बानी, संस्कार, चिन्तन, मनोभाव, जीवनानुभवोंको सृजित करनेकी मेरे मनमें प्रबल कामना उठती है, लालसा तीव्र होती है। मेरी तीव्र कामना है कि उनकी हर सांस, माटीकी सोंघी गन्धको हुबहु अपनी लेखनीमें ले आऊं, इसी अभिलाषासे मैं अपनी लेखनी चलाता हूँ। मुझे

अपनी माटीसे, अपने अंचल विशेषसे गहरा लगाव है प्रेम है। (नानुम् एन् एलुत्तुम्)।

उनकी कृतियोंके अध्ययनसे स्पष्ट है कि राजनारायणको अपनी मनोभिलाषाकी पूर्तिमें बहुत कुछ सफलता मिली है। करिसलकाडुकी माटी, वहांके लोगोंके सुख-दुःख, आशा-निराशा, व्यथा-वेदना वहां प्रचलित दन्तकथाओं, प्रयुक्त आंचलिक भाषा-, शब्दोंके विशिष्ट प्रयोग, अंचल विशेषके हावभाव, मुद्रा आदिको अपनी कृतियोंमें भलीभांति उतारनेमें कि. राजनारायणका अपार उत्साह देखते ही बनता है। करिसल भूमिकी माटीमें जन्मे पाठकोंको अपने संस्कार, जीवनानुभवोंको मर्मस्पर्शी ढंगसे तथा कलात्मक सूक्ष्मता से विरलेही दूसरा कोई कथाकार चित्रित कर सकता है। यही लेखक राजनारायणकी विशिष्टता है जिसके कारण वे दूसरे कथाकारोंसे भिन्न दीखते हैं।

कभी-कभी यथार्थ चित्रणके उत्साहमें उपन्यासकार अपनी रचनामें घिनौने चित्रोंको भी अंकित कर देता है। जिससे रुचि-भंग होता है। ऐसे नग्न यथार्थ चित्रणों से न तो कथाके लिए कोई प्रेरणा मिलती है और न लेखकके साथ पाठकोंकी भावनाओंका तादात्म्य हो पाता है।

राजनारायणके पात्र अपने गांवके चिरपरिचित साधारण मानव ही हैं। अधिकांश पात्र कृषिसे सम्बन्धित हैं, गरीबीमें पैसे मजदूर हैं, धरतीके छोटे-छोटे टुकड़ों, के छोटे-छोटे भूमिहारभी है इने-गिने भूस्वामीभी हैं। कुछ लोग रोजी-रोटीके निमित्त बाहरसे गोपाल गांवमें आकर बसे हुए हैं। उनके कुछ पात्र विकलांग या मानसिक रोगसे पीड़ित लोग भी हैं। बाहरी संसारसे इन ग्रामीणोंका अधिक नाता सम्बन्ध नहीं रहता। कभी-कभार आवश्यकता पड़नेपर पासके शहरतक जाकर लौट आनेवाले लोग हैं, अन्यथा उपन्यासके पात्रोंका संसार मात्र अपना गांवही है और वही तक उनके जीवनानुभव सीमित होते हैं। आधुनिक जीवनकी सुख-सुविधाओंसे या तो अपरिचित हैं या अल्पपरिचित हैं। उनका जीवन परम्परागत ढंगसे छोटी परिधि के भीतर ही चालित है। अतः उपन्यासमें चित्रित मानव अत्यन्त सामान्य मानव ही है। अभी तक अपरिचित या अल्प परिचित एक ग्रामीण जीवनको एक अलग संसारको लेखक हमारे सामने खोलकर दिखाते हैं और उसमें उनका अपार उत्साह प्रकट होता है। वे ग्रामीण जीवन



के गहरे रसिक है और इस रसिकताके कारण उन्हें कोशलके साथ अभिव्यक्त करते हैं। पाठकभी इस कारण प्रभावित होते हैं।

‘गोपल्लग्रामम्’ तथा ‘गोपल्लपुरत्तु मक्कळ’ दोनों उपन्यास अभी तक लिखे तमिलके ग्रामीण उपन्यासोंसे भिन्न लगते हैं, शैली-शिल्पकी दृष्टिसे यथा विषयवस्तुके चयनकी दृष्टिसे भी। सामान्य अर्थमें एक नावेलके लिए कथांशकी उतनी आवश्यकता नहीं होती। साठो-त्तरी तमिल उपन्यासोंमें कुछमें इसकी साध्यताको निरूपित किया है। फिर भी सभी उपन्यासोंमें घटनाओं

का तारतम्य मिलता है। पात्रभी पूर्णता पाकर चमकने लगते हैं। पर राजनारायणके दोनों उपन्यासोंमें इस प्रकारके पूर्णपात्र नहीं मिलते। इस दृष्टिसे वे कुछ भिन्न प्रकारके उपन्यास माने जा सकते हैं। इन उपन्यासोंमें राजनारायण उपन्यासकारकी अपेक्षा, ग्राम चेतना एवं ग्राम संस्कारोंमें डूबे एक ग्रामीण कथाकार का आधिक्य ही सर्वोपरि दीखता है। एक शताब्दी पूर्व और उसके आगेकी कथाको विस्तार देना ही इस उपन्यासका मुख्य ध्येय प्रतीत होता है। □

## कहानी : कोंकणी

# प्रतिदिनके अनुभूत जीवनके गहरे निरीक्षण एवं संवेदनशील क्षमताका कहानी संकलन

कृति : सपनफुलां

कृतिकार : मोना काकोडकार

समीक्षिका :

डॉ. चन्द्रलेखा डि सोजा

यह कहानी-संग्रह जीवनके विभिन्न प्रकारके स्वप्नोंका संवेदनात्मक और वैचारिक रूप है। लेखिका कहानीके अतिरिक्त अन्य विधाओं नाटक लेख आदिमें भी समान रूपसे गतिशील हैं। इनके लेखनकी विशेषता है कि ये मानव-मनका चित्रण करती हैं। प्रायः कहानियोंमें स्त्रियोंके सुख-दुःखके प्रसंग हैं और नन्हें बच्चोंके मानसिक जगत्का चित्रण है। स्वयं लेखिकाके अनुसार कहानी जीवनके विभिन्न रूपों और पक्षोंका चित्र होते हैं। बचपनके रंग यौवनके रंगसे भिन्न होते हैं। यौवनके रंगसे बुढ़ापेका रंग भिन्न होता है। आयु के साथ भावनाएँ बदलती, समस्याएँ बदलती हैं, समस्याओंके समाधान बदलते हैं। समस्या और समाधान

समयके साथ बदल जाते हैं।

प्रस्तुत संग्रहमें बचपनसे संबंधित और स्त्री जगत्की कहानियोंके अतिरिक्त प्रकृति विषयक और वर्ग संघर्ष की कहानियाँ हैं। प्रथम वर्गमें ‘नन्हा पंछी’, ‘नटखट’, ‘पप्पा आप हँसते हो’, कहानियाँ हैं। ‘नन्हा पंछी’में मौसी और एक बालकके अन्तर्जगतका चित्र है। मौसीके कोई बच्चा नहीं है पर वह एक मातृहीन बच्चेको माँका प्यार देती है। बच्चा मौसीको माँका सम्मान तो देता है, पर माँका प्यार नहीं दे पाता। प्यार और सम्मान की इस दुविधाका चित्रण कलात्मक ढंगसे हुआ है।

‘पप्पा आप हँसते हो’ में एक युवा विधवा द्वारा विवाह करना चाहती है। तब उसकी नन्हें बच्ची



अपने पापाकी तस्वीरके साथ बातचीत करती है, अपने दादा-दादीसे प्रश्न करती है। मांसे पूछती है, “मम्मी, आप फिर विवाह कर रही हो?” सुभा ने अचानक प्रश्न पूछा, मम्मीको समझमें नहीं आता, क्या उत्तर दे। ‘क्यों मम्मी?’ प्रश्नका उत्तर कैसे दिया जाये, मम्मी सोच रही थी। “आप पप्पाको भूल गयीं?” सुभाके छोटेसे जगत्की हलचल पूरी कहानी व्यक्त करती जाती है।

दूसरे वर्गकी कहानियाँ हैं : ‘खिड़कीके उस पार’, ‘तिलम्मा तुम जा रही हो?’, ‘नया जन्म’, ‘चंदनका वृक्ष’, ‘बंधन मुक्ति’ आदि। इनमें भिन्न-भिन्न समस्याएँ उठायी गयी हैं। कुमारावस्थामें, विवाहसे पहले लड़कीके व्यक्तित्वकी अपनी अलग पहचान होती है पर विवाह होतेही जैसे पूरे परिवारके लिए तो जिंदा होती है, पर अपने लिए वह कहीं खो जाती है। बहुतों को तो इस ‘खोनेका’ अनुभव ही नहीं होता। ऐसा क्यों होता है? विवाहके बाद पुरुषके व्यक्तित्वको कुछ भी खोना नहीं पड़ता बल्कि वह अपना विकास और कर सकता है। सब, ज्यादातर स्त्रियाँ अधिकतर चंदनकी प्रतिमा बन जाती हैं, जिन्हें बहुमूल्य कपड़ोंमें अलमारीमें सजाकर रखा जाता है। प्रतिमाको अलमारीमें रखा जा सकता है पर जीवित स्त्रीको अपने व्यक्तित्वके अस्तित्वको, सुगन्धित पदार्थकी भांति सहेजना होता है। जैसे चंदन का वृक्ष अपने तनेके गर्भमें सुगंध संजोये रहता है, तनेको छीलनेपर उस चंदनकी यह सुगंध वातावरणमें फैल जाती है। इसी प्रकार प्रत्येक स्त्रीके लिए आवश्यक है कि वह अपनी चंदनकी सुगंधको पहचाने और उसे फैलाये! हमारे समाजमें ऐसा कितनी स्त्रियाँ कर पाती हैं? इसी समस्याका समाधान खोजनेका प्रयत्न किया गया है।

‘नया जन्म’ में एक बहूकी मूक व्यथाको चित्रित किया गया गया है। आजभी हमारे समाजमें बेटीका जन्म उल्लासके साथ स्वीकार नहीं किया जाता। बेटा और बहू डाक्टरके पास जांच कराने जाते हैं। पता चलता है कि गर्भमें बेटी है। सास और बेटा बहू को अवांशं करानेको कहते हैं। जीवनमें पहली बार बहू अपनी बच्चीके लिए घरवालोंसे विद्रोह करती है। प्रस्तुत कहानीमें माँ और बच्चीकी बातोंको मृदुल रूप में व्यक्त किया गया है —

“—ए s s तुम कौन ? बेटा या बेटी ?

—मैं बेटा—

—सच ?

—कैसे बनाया ? मम्मी मैं बेटी—

—तुम्हें बेटी अच्छी नहीं लगती ?

—क्यों नहीं अच्छी लगेगी ? बेटा या बेटी तुम मेरी ही संतान हो।

अंतमें सबसे कह देती है कि बेटा हो या बेटी, मैं अपनी संतानको खोना नहीं चाहती। (पृ. ११२)

तीसरे वर्गकी कहानियोंकी चर्चाके प्रसंगमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कौंकणी साहित्यमें प्रकृति का विशेष स्थान है। यह ठीकभी है क्योंकि यहां समुद्रका खुला किनारा, नारियल, काजूके पेड़, आस-पासकी हरियाली, मांडवी और ज्वारीकी बहती धारा क्षण-क्षणमें परिवर्तित होती प्रकृतिका नया रूप संवारती है। पर औद्योगीकरणके दबावमें प्रकृतिका परिवर्तित रूप कौंकणी साहित्यमें दिखायी नहीं देता। बहुत कम साहित्यकारोंने संघर्षात्मक प्रकृतिको निहारकर उसे अभिव्यक्ति दी है। इस कहानी-संग्रहमें, प्रकृतिका सुन्दर रूपही प्रस्तुत किया गया है। ‘साज’, ‘पारिजात...परिजात’, ‘रे किन्नरा’ आदि।

‘रे किन्नरा’ कहानीमें पक्षियोंकी मधुर ध्वनि, वर्षाके वे दिन, गरजता सागर, सागर किनारे गीली रेत, नारियलके पेड़, उसके पत्ते, पत्तोंकी सरसराहट, पत्तोंसे झरते वे मोती कण, सूर्यकी सुनहली झांकी इस वातावरणमें उस किन्नर पक्षीकी मधुर तान प्रकृति प्रेमीको विभोर कर देती है। इस सागर-किनारेकी उस विशाल अट्टालिकाके निर्माणमें कितने कल्पवृक्षोंको धराशायी कर दिया गया होगा ? समुद्र किनारे घूमने वाले, खानेपीनेकी चीजोंसे उसे गंदा कर रहे हैं, वहाँ सीमेंट-कंकरीटका जंगल बढ़ रहा है। जितने वृक्ष काटे जाते हैं उतने धरतीसे फिर फूटने चाहियें, यह बिचार समकालीन कौंकणी साहित्यमें लुप्त है। यहां हिप्पियों ने नया संसार हीं उभारा है जिससे हमारे बच्चे पथ-भ्रष्ट हो रहे हैं। पर यह विकृति यहांके साहित्यमें प्रायः उपलब्ध नहीं है।

चौथा वर्ग वर्ग-संघर्षकी कहानियोंका है।

‘ऐसे स्वप्न-ऐसी जिंदगी’ का गरीब किसानका बेटा पढ़ना चाहता है, पिता भी उसे पढ़ाना चाहता है पर दादा इसलिए विरोध करते हैं कि पढ़ाईके बाद हमारे देशके युवकको खेतमें काम करना अखरता है।

‘प्रकर’—भाद्रपद २०४६—४७



हमारा शिक्षणभी बहुत बार हमें ठगता है। पिता ने अपना सपना पूरा करनेके लिए बेटेको पढ़नेकी अनुमति दे दी। अचानक एक दिन पिता अकस्मात् घायल होते हैं, चलने-फिरने योग्य नहीं रहते, खेतमें काम बाकी पड़ा है, पर पितामें यह साहस नहीं है कि वह बेटेको खेतमें जानेके लिए कहें। बेटा स्वयं दादाजीके पास जाता है, और कहता है “दादाजी—अपना खेत मैं बोऊंगा।” आनन्द उसे देखते ही रह गये। अपने सपने, रामूकी पढ़नेकी लगेन—सब कुछ उनकी आंखोंके सामने घूमने लगा। मैं बहुत पढ़ूंगा, कहनेवाला रामू आज विश्वाससे खेत बोनेकी बात कर रहा था।—बाहर रामू दादाजीको, खेतमें जानेके लिए पुकार रहा है, घर

के भीतर पिता एक कोनेमें पड़े हैं। देहलीजपर खड़े दादाजीकी दृष्टि रामूके बस्तेपर जाती है, उस लटकते बस्तेपर जाती है, उस लटकते बस्तेको छातीसे लगाकर आंसू बहाते हैं। (पृ. ४०-४१)। सपने देखना संजोना प्रत्येकको अच्छा लगता है पर वास्तविक धरतीसे टकराकर उन सपनोंकी बिखरन मनुष्यको तोड़कर रख देती है। दादा, पिता पुत्र, तीनों अपने-अपने दृष्टिकोण से सही लगते हैं।

इस प्रकार पूरा कहानी संग्रह विभिन्न क्षेत्रोंकी समस्याओंकी चर्चा करता है। रचनाकार सामाजिक समस्याओंकी ओर ध्यान खींचकर रह जाता है, यही उसकी सीमा है। □

## कहानी : मणिपुरी

नयी कथ्य चेतना, अभिव्यक्तिके क्षेत्रमें अतियथार्थवादी प्रयोग एवं आधुनिक जीवनके आन्तरिक स्वरूपकी कहानियां

कृति : नुमिति असुम थेङ्जिल्लक्लि

कृतिकार : युम्लेम्बम इबोमचा

समोक्षक : डॉ. देवराज

डॉ. इबोहल काङ्जम

“नुमिति असुम थेङ्जिल्लक्लि” (दिन ढलता जा रहा है) कहानी संग्रह भलेही सन् १९६०में प्रकाशित हुआ, किन्तु इसकी आठ-दस कहानियां सातवें-आठवें दशकके सन्धि-वर्षोंमें ही चर्चाके केन्द्रमें आ गयी थीं। उस समय “रत्नाकर”, “मिराडू” (मकड़ीका जाला), “खुदोल” (उपहार), “पि गी ममल्” (आंसू का मोल), “नोड् असुम चूरि” (वर्षा निरन्तर जारी है), “नोड् डानखिद्रवा अहिङ्” (कभी समाप्त न होनेवाली रात), “ईशिङ्” (पानी) और “लाक्खि-प्रकर”—अगस्त ६२—४८

गद्रा” (क्या फिर आयेगा) आदि कहानियां “ऋतु”, “वाखल” तथा “साहित्य” जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छपकर पाठकोंके हाथोंमें पहुँची। उसके थोड़े दिनों बाद ही, “मे” (आग) व “शहर” जैसी कहानियां “मैरिक” पत्रिकामें प्रकाशित हुईं।

इन कहानियोंने प्रकाशित होतेही मणिपुरी कहानी-जगत्में हलचल पैदा कर दी। इसके मूल कारण थे—इनकी नयी कथ्य-चेतना, अभिव्यक्तिके क्षेत्रमें साहसपूर्ण एवं अप्रचलित प्रयोग तथा आधुनिक-जीवनके नितान्त भीतरी स्वरूपका सही चित्रण। इन्हीं कहा-



नियोंमें से आईशुड् (जिसने पाठकोंके साथ समी-  
क्षकोंका भी बहुत ध्यान खींचा था) का नायक शहरभरमें  
पानीकी तलाशमें मारा-मारा फिरता है। होटलोंमें जाता  
है, मुहल्लोंके घरोंके दरवाजे खटखटाता है, रास्ता चलते  
राहगीरोंसे निवेदन करता है, लेकिन उसे कहींभी पानी  
नहीं मिलता। ऐसा नहीं कि होटलके बँरे और घरकी  
मालकिनें गिलासोंमें भर-भरकर उसके सामने पानी  
नहीं रखते। सब उसे सहानुभूति और सम्मानके साथ  
गिलास थमाते हैं, पानीसे लबालब भरे गिलास,  
लेकिन वह उन्हें देखतेही उदास हो जाता है। उसकी  
प्यासके लिए यह पानी पर्याप्त नहीं है। उसकी दहकती  
प्यासके लिए जो पानी चाहिये, वह तो इन गिलासोंमें  
नहीं है। वह हर स्थानसे उठकर चल देता है। लोग उसे  
पागल कहकर दरवाजे बन्द कर लेते हैं। उसके भीतर  
की प्यास लपटोंमें बदलने लगती है। तब वह सोचता है  
कि यदि वह शहरकी ऊँची दीवारोंके पार जा सके तो  
सम्भवतः पानी मिल सकता है। किन्तु क्या शहरको  
पार करना इतना सरल है ?

“× × × इस शहरको पार करनेके लिए उत्तरसे  
दक्षिण, पूर्वसे पश्चिम घूमा फिरा हूँ किन्तु कहाँ है इस  
शहरका पार। चारों ओर घूमकर भी इस शहरके  
अन्दरही हूँ, पार नहीं जा सका।”

एक दूसरी कहानी ‘नोड् डान्खिद्रवा अहिड्’  
(बिना सुबहकी रात) का नायक एक विचार-स्वप्नमें  
डूबा हुआ दिखाया गया है। वह अपने मित्रोंकी चौकड़ी  
में एक शराबखानेमें विद्यमान है। हंसी-मजाकका दौर  
चल रहा है। तभी एक सवाल उछलता है कि हमारी मां  
हमें क्यों जन्म देती है ? चौकड़ीमें से ही कोई दार्शनिक  
अन्दाजमें कहता है कि क्या यह भी कोई गम्भीर कविता  
है। पत्नी और मां, दोनों औरतें हैं, — दोनोंकी इच्छाएं  
एक हैं। इसके बाद शराब परोसनेवाली स्त्री अपना  
ब्लाउज उतारकर उसके पास आती है और नायकको  
लगता है कि वह उसे आमन्त्रित करके कह रही है कि  
“आओ दोनों एक क्षणको इस संसारको भुला दें।”  
नायकका विचार-स्वप्न आगे बढ़ता है। वह स्त्रीके साथ  
विस्तर तक जाता है, उसके सारे वस्त्र उतार डालता है  
और संसार भूल जाता है। इसके पश्चात् स्त्रीके रोने  
की आवाज आती है। नायक पूछता है कि वह स्त्री कौन  
है ? उत्तर मिलता है, उसे जन्म देनेवाली माँ। यह  
सुनकर नायक दियासलाई जलाता है। देखता है कि

उसकी मां मुस्करा रही है। वह फिर प्रश्न करता है कि  
वह स्त्री कौन है ? इस बार उत्तर मिलता है कि वह  
उसकी पत्नी है। इसी बीच दियासलाई जलकर बुझ जाती  
है।

इसी कालकी एक और कहानीकी चर्चा करके  
आलोचना प्रसंगपर ध्यान केन्द्रित किया जाये। यह  
कहानी है—“शहर”। इसका नायक शहर पहुंचकर  
एक ऐसे स्थानकी खोजमें भटकता है, जहां वह सुख-चैन  
से रह सके। बड़े-बड़े भवन, रंग-बिरंगी रोशनियां और  
भड़कीले वकीमती वस्त्रोंमें लिपटी महिलाएं देखकर उसे  
आशा बंधती है कि वह अपने मन लायक एक जगह पा  
जायेगा, किन्तु उसकी आशा पूरी नहीं होती। ऊपर  
जितनी चकाचौंध है, भीतर उतनीही गन्दगी भरी है।  
वह एक विचित्र प्रकारके तनावका शिकार होने  
लगता है। कुछ देर बाद वह एक आदमीके आग्रहपर  
होटल वीनसमें पहुंचता है और मन मारकर एक कमरा  
बुक करा लेता है। जब वह खाना खाने डायनिंग हालमें  
पहुंचता है तो उसे लोग विचित्र प्रकारके आर्डर देते  
दिखायी देते हैं। कोई कह रहा है—सत्रह वर्जिन ब्रैस्ट  
(१७ वर्षकी लड़कीकी छाती) और कोई मांग रहा है  
—सोलह थाइ (१६ वर्षीय लड़कीकी जंघा)। वेटर  
उसेभी मनचाहा चुननेको कहकर चला जाता है। नायक  
के भीतर अज्ञात भय और व्याकुलताका जन्म होने  
लगता है। वह सोचने लगता है कि उसे शहरने स्वीकार  
नहीं किया है। इसके पश्चात् उसे एक वृद्ध और एक  
संन्यासी मिलते हैं। वृद्ध उसे महाप्रसाद देता है, जिसमें  
कटी हुई मानव-अंगुलियां तथा मांसके टुकड़े हैं और  
संन्यासी उसे बदबू तथा सीलन-भरी गलीमें घकेल ले  
जाता है, जहां नायकका गला दबाया जाता है। इस  
भयातक त्रासदीमें जो प्रतिक्रिया जन्म लेती है, वह इस  
प्रकार है—“× × × ओह मुझे भी। मुझे भी तरकारी  
बनना होगा। चीखनेकी भी शक्ति नहीं रही। हंसी  
आना चाहती है। हंसना चाहता हूँ। मैं यहाँ क्यों आया।  
ये भयानक हाथ इतने मजबूत क्यों हैं। मैंने कहाँ गलती  
की। गलती मेरी थी या उनकी ? हे शहर तुम मुझे  
मत मारो। मेरा यहां आनेका उद्देश्य इस तरह मरना  
नहीं है। × × × × इस भांति नष्ट होजाना उचित  
है ? इतनी हंसी। इतनी कायरता। लेकिन किया  
क्या जाये। कितनी जबरदस्त हैं यह पकड़ें। इतनेपर  
भी इस तरह नष्ट होना ठीक नहीं। अचानक ऐसी लात

‘प्रकर’—भाद्रपद २०४६—४६



नहीं मारनी चाहिये कि औंधा गिरे ? एक बार पूरी ताकत लगाकर सही जगह लात मारना ठीक है न ? हे शहर मुझे मत मारो । मुझे एक घर तो दे दो ।”

ये तीनों कहानियाँ अपने दौरकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं और इनमें वह हलचल दिखायी देती हैं, जो सातवें दशकके ढलानपर पहुँचते-पहुँचते मणिपुरी समाज में पैदा होने लगी थी । पाठकोंको यह बताना आवश्यक नहीं कि सातवाँ दशक भारतभरमें मोहभंगका काल माना जाता है किन्तु यह बताना आवश्यक है कि मणिपुरी समाजके लिए यह काल एक-दूसरे रूपमें महत्वपूर्ण है । इसके तीन कारण हैं । पहला तो यह कि आर्थिक विकास योजनाओंके नेहरू मॉडलके गुब्बारेमें जो सुई चुभ गयी थी तथा उसकी हवा जिस गतिसे निकलनी शुरू हो गयी थी, उसने अनेक निराशाएँ उत्पन्न कीं । इस मॉडलमें स्वप्न दिखाकर भ्रष्टाचार करने और सत्ता पर पकड़ बनाये रखलेकी सुविधाएँ थी । चालाक राजनीतिज्ञोंने इसका पूरा लाभ उठाया । इतनाही नहीं, उन्होंने आर्थिक नियोजनको लगातार ऊपरसे थोपना जारी रखा यह कुछ ऐसी उलझी हुई शैली थी जिसने एक साथ उपभोक्ता संस्कृति, बेरोजगारी और रिश्वतखोरी को जन्म दिया । ये बुराइयाँ कमोवेश सारे भारतमें आयीं, किन्तु मणिपुरी समाजमें इनमेंसे रिश्वत और दूसरे प्रकारके आर्थिक भ्रष्टाचार देशके अन्य भागोंसे कुछ अधिक ही बढ़े । यहाँतक कि रिश्वत सामान्य चर्चा और खुलेआम प्रचलनमें आगयी । एक प्रकारसे यह आर्थिक बेईमानीको सार्वजनिकस्वीकृति देने जैसा था । तभी तो रिश्वत देकर यदि काम नहीं हुआ तो उसे लौटानेकी घटनाएँ भी आम होगयीं । नेतासे लेकर दफ्तरके चपरासी तक इस जालसे नहीं बच सके । इसके पीछे उपभोक्ता संस्कृतिकी वह विपैली प्यास थी जिसके चलते बांस-गारे और टीनके मकान बहुमंजिली इमारतोंमें बदलने लगे थे, साइकिलोंकी जगह स्कूटर और दूसरे मोटर वाहन दौड़ने लगे थे तथा बाजारमें महंगा नाश्ता करना फैशन हो चला था ।

सामाजिक हलचलका दूसरा कारण था वैचारिक स्तरपर होनेवाला परिवर्तन । बढ़ती हुई शिक्षा और विस्तार पाते हुए सम्पर्कने दिमागकी खिड़कियाँ खोल तो दी थीं, किन्तु एक प्रकारका प्रतिक्रियावाद भी नये सिरसे जागने लगा था । कुछ विदेशी संस्थाओं (इन्होंने

धार्मिक लंबाई आँदकरी काँम किया तथा खुलेआम वैचारिक भ्रष्टाचारको जन्म दिया । यह हिन्दुस्तानकी त्रासदी ही कही जायेगी कि सरकार कभीभी इनके विरुद्ध कोई प्रभावशाली कदम नहीं उठा सकी) ने इसे अनेक रूपोंमें हवा दी । अंततः इसने पहचानके संकटका रूप ले लिया । स्थिति यह बनी कि पहचान और संस्कृति रक्षाके नामपर कृत्रिम विभाजन खड़े किये जाने लगे । ये विभाजन ऐसे भावनात्मक तर्कोंपर आधारित थे कि इन्होंने अच्छे-भले पढ़े लिखे लोगोंतक कोभी प्रभावित किये बिना नहीं छोड़ा । आज यह वैचारिक हलचल प्रतिक्रियावादी सहायक तत्त्वोंके साथ आंधीका रूपले चुकी है ।

सामाजिक संस्कृतिमें इन्हीं दिनों एक बदलाव आन्तरिक टकराहटोंके कारण पैदा हुआ । ये आंतरिक टकराहटें परम्परागत नैतिकता तथा उन्मुक्त व्यवहार वाली आधुनिक जीवन-शैलीके बीच थीं ।

ऊपर विश्लेषित तीन कारणोंने जो वातावरण निर्मित किया उसीने युग्लेखम इवोमचा जैसे रचनाकार पैदा किये । इन रचनाकारोंने पतनोन्मुख समाजाधिक मूल्यों, सांस्कृतिक जीवनकी विसंगतियों तथा आधुनिक जीवनके खोखलेपनको अपनी रचनाका विषय बनाया । प्रारम्भमें जिन तीन कहानियोंकी चर्चा की गयी है, वे तथ्यको पुष्ट करती हैं । यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि मणिपुरी कवितामें जो “क्रुद्ध-कविता-आन्दोलन” फूटा था और जिसने एकही बारमें प्रचलित सामाजिक और साहित्यिक मान्यताओंको तोड़-फोड़ डाला था । वह ठीक इसी समय जन्मा था । स्वयं इवोमचा उसके सशक्त स्तम्भ थे । अतः इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि उन्होंने अपनी कहानियोंकी बुनावटमें भी क्रुद्ध-कविता-आन्दोलनसे कुछ-न-कुछ प्रेरणा ग्रहण की । यह अलग बात है कि उनका कहानियाँ उनकी कविताओंसे कुछ अधिक उदार हैं । उनमें व्यक्तिकी निराशा और उसके भीतर फैलते खोखलेपनके रेगिस्तानके प्रति अधिक समझदारीभरा या कहिये कुछ अधिक गंभीर संवेदना-सहकार विद्यमान हैं । यही कारण है कि जब वे शहरसे मुखातिब होते हैं तो उनकी कहानीका नायक बड़ी सहज प्रतिक्रियाका आभास देता है । ठीक यही बात एक दूसरी कहानी “होटेलसिंगी वारी” (इस होटलकी कहानी) में भी दिखायी देती है । जो पहले झोंपड़ीमें पीते थे वही आज



होटलमें पीतेहैं किन्तु होटलसे झोंपड़ी तक की यह यात्रा किस प्रकार व्यक्तिके जीवनकी परतोंको प्याजके छिलकोंकी शक्लमें ढालकर अर्थहीन बना देतीहै इसे कहानीकारने सच्चाईके साथ जियाहै—“होटलका दृश्य अनायास परिवर्तित होताहै। अनेक पात्र बिखरे पड़ेहैं। कुछ लोग अपने पात्रोंको घुमाकर देख रहेहैं हैं। कुछ दूसरे अँधा करके देख रहेहैं।

“सच है कि ये पात्र खाली हैं। इनमें कुछ नहीं है।”

“वह आदमीकी समझसे बाहर है। खाली पात्रोंसे क्या पी सकेंगे? कौन-सा स्वाद मिलेगा?”

“पीना हमारी आदत है।”

“जबतक यह होटल रहेगा तबतक इसमें रहनेवाले बिना पिया नहीं रह सकेंगे।”

“किन्तु पात्र तो खाली हैं। इनमें कुछ भी नहीं है।”

अपने आप कुछ न समझ सकनेवाला कोई एक स्वयंसे पूछताहै।

—“क्यों पी रहाहूँ? क्या पी रहाहूँ?”<sup>३</sup>

संवेदनाकी यही झनझनाहट “लाक्खिद्रा” (आयेगा क्या) कहानीमें भी दिखायी देतीहै। विचार स्वप्नकी भांति बुनी गयी इस कहानीका नायक एक स्त्रीके साथ कङ्गला-पार्कमें पत्थरकी बेंचपर बैठाहै। वहाँ वह उससे जीवनकी व्यर्थताका बखान करताहै। फिर वह उसके साथ बाजारमें जातःहै वहाँ उसे दिखायी देतीहैं—लाश, पुलिस, लपटें, घुआँ और बन्दूककी आवाजें। वहीं उसे एक कारमें एक मोटी सुन्दर औरत, मोटे पेटवाले एक पुरुषके साथ दिखायी देतीहैं। वह उन दोनोंकी जोंक से तुलना करताहै और चाकूसे उनके पेट चीरकर उनके रक्तका रंग देखना चाहताहै। उसके बाद फिर वही वेचनी, अकेलापन और अन्धेरा—

—“हम कहां हैं?”

—शायद बाजारमें।

—घरका रास्ता नहीं है?

—शायद हो।

—किसीके घर या दुकानसे रोशनी आ रहीहै या नहीं देखो?

—उससे हमारा रास्ता दिखेगा?

—यहाँ इसी प्रकार रोशनी होनेका इन्तजार करें?

—क्या रोशनी होगी?

—होतीहै या नहीं देखे।<sup>४</sup>

इबोमचाकी कहानी “गाड़ी” भी ठीक इसी संवेदनासे जुड़ी हुईहै। नायक अपने एक मित्रके साथ गाड़ी में मफर करताहै और इस निष्कर्षपर पहुंचताहै—

“हमें योंही जाना पड़ेगा

हम क्यों आयेहैं—

...आना। जाना। आना। जाना। गाड़ीके सफर

में

कुछ नहीं समझ सके

कोई उपाय नहीं”<sup>५</sup>

यही उपायहीन नायक लगातार पुराने जमानेके गांवके स्मृति-दुःखमें डूबता-उतराता रहताहै और फिर शहरके आगे संभावित ज्वालामुखी तथा अग्निसागर के डरको अपने भीतर उतरता हुआ महसूस करताहै। यहीं डर आदमीके पूरे चरित्र और सोचको एक्सडें बना देताहै। जब व्यक्ति, सामने लावेकी नदीमें बाढ़ आतेहुए देखकर भी उसी ओर बढ़नेको विवश होजाये तो फिर उसका वैचारिक तथा संवेदना धरातल चिथड़े-चिथड़े होता हुआ तो लगेगाही। तब उसके लिए कुछभी कहना और करना अस्वाभाविक नहीं रहेगा। सडाय शेल (धूमकेतु) कहानी ऐसे ही आदमीको प्रस्तुत करती है। कहानीका नायक युवकोंके एक ऐसे समूहमें पहुंचताहै जो जीवन संघर्षके कटुताभरे पड़ावमें एक स्कूल के मैदानमें बैठेहैं और मृत्यु-बोधका आनन्द ले रहेहैं। नायकको वहीं यह वार्तालाप सुनायी पड़ताहै—

—“येस, येस, अब हम सब एकसाथ खत्म होना चाहतेहैं।

—हे ईश्वर

—ह्वाट ईश्वर? ह्वेयर इज ईश्वर? नो ईश्वर। नो गॉड एट ऑल

—ईश्वर हरामीका पिल्ला। नॉन सेन्स ईश्वर। हम जैसे बेकारोंको क्यों पैदा किया? मस्तकपर पदाघात करो और पाखानेमें पैर सानकर लात मारो।”<sup>६</sup>

यहां, इस निष्कर्षपर पहुंचना आसान है कि इन कहानियोंमें जो एक्सडेंसेस है वह समाजके उस तबके के पूरे मन संसारसे आयीहै तो परिस्थितियोंके हाथों इतना अधिक पीड़ित है कि अपने होने, जन्म लेने तथा जीनेकी सांस्कृतिकतासे बहुत दूर जा पड़ाहै। कभी-कभी कहानीकार कहतेहैं कि जिस समाजमें रहकर लेखकने ये कहानियां



रची हैं वह तो ऊपरसे ऐसा दिखायी नहीं देता। जी हाँ, बहुत हद तक यह सच है। मणिपुरमें पूरे वर्ष लाइहराओबा, थावलओड्बा, शुमाङ्गलीला चैराओबा, गायन-कीर्तन, संगीत-नाटक, विश्व सांस्कृतिक समारोह, पोलोका खेल और न जाने क्या-क्या होता रहता है। यह सब ऐसा बोध कराता है कि मणिपुर का समाज अभी तक रास-रंगमें पगा हुआ है और यदि हम केवल इसीपर अपना ध्यान केन्द्रित रखें तो फिर इबोचाकी इन कहानियोंमें कोई रिलेवेन्स भी नहीं बचता, इस तर्कको जोड़कर भी कि लेखक ने अपनेको विश्व जीवनसे जोड़नेके लिए ऐसी कहानियां लिखी हैं। लेकिन इससे इबोमचाके पूरे कृतित्वके प्रति अन्याय होजायेगा इसका कारण यह है कि लेखक यत्नपूर्वक अपने समाजपर ढके उस लौह-आवरणको तोड़ सका है, जो अच्छे-अच्छे लेखकोंको समझाते करनेके लिए विवश कर देता है। आजभी मणिपुरी भाषामें ऐसे लेखकोंका अभाव नहीं है, जो कहानीकारोंको आदर्श नायक-नायिकाके गढ़े-गढ़ाये, मॉडल थमाकर कहते हैं कि “ऐसे चरित्र बनाओ ताकि समाज सुधारका आन्दोलन चलाया जा सके।” ये छुइमुइ मानसिकताके धनी लेखक तोल्स्तोय, शेक्सपीयर, रवीन्द्रनाथ, शरत्, लक्ष्मीनाथ बेजबराआके बाद बड़ा साहस करके प्रेमचन्दके घर तक पहुंचते हैं और यदि इनके सामने अत्याधुनिकताकी चुनौती खड़ी हो तो, ये झटसे हिन्दीके “अज्ञेय”का गुणानुवाद करने लगते हैं। इबोमचाकी कहानियां इन सबको अंगूठा दिखाकर त्रासदी भरी गुफा से बाहर निकलनेको छटपटाते आदमीकी कहानियां हैं। इसीलिए उनमें मणिपुरी समाजकी आदर्शोन्मुख दृष्ट्यावलीके स्थानपर उस समाजके चित्र हैं, जिसमें मादक-द्रव्योंकी शिकार युवा-पीढ़ीका क्रन्दन, आतंकवादके और सरकारी आतंकवादके छत्तीसी रिश्तों से पीड़ित जनताकी विवशता तथा पारिवारिक सम्बन्धोंपर आत्म-प्रदर्शन एवं अहम्मन्यताकी पड़ती काली छायासे निष्पन्न दुःख भरा है। जरा, “पीगी ममल” (आंसुका मोल) कहानीपर गौर करें। कहानीका बूढ़ा नायक सड़क बनानेके लिए पत्थर कूटकर अपनी मातृ-विहीना लड़कीको पालता-पोसता है। जब एक दिन लड़की बिना खाना खाये स्कूल चली जाती है, तो बूढ़ा दुःखके सागरमें डूब जाता है। उसे पत्थर कूटते हुए अपनी लड़की आती दिखायी देती है।

तो वह उसे कुछ पैसे देना चाहता है। किन्तु उसकी सगी बेटी ही उसे अपना बाप कहनेसे इन्कार कर देती है—

“चाचाजी, यह सब बादमें पिताजीके साथ कीजिये। मुझे तो किसी कामसे जाना है।” उसके बाद सहेलियोंकी ओर घूमकर—“हमारे पिताजी ऐसे लोगों की संगति क्यों...” इस तरह बड़बड़ाते हुए पीछे देखे बिना चली गयी। बूढ़ा आश्चर्यसे खड़ा देखता रह गया।” ७

पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धोंके इस विकृत होते हुए रूपको “खुदोल” (उपहार) “मिराङ्” (मकड़ीका जाला) और “मीगीसू शागीसू” (मानवका भी पशुका भी) कहानियोंमें भी चित्रित किया गया है। “खुदोल” निरन्तर सूखते मैत्रीपूर्ण सम्बन्धोंपर से रहस्यका पर्दा हटाती है। “मिराङ्” निर्धनसे एकदम धनी बने नव-धनाढ्योंके चरित्रमें आये परिवर्तनका लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है और तोम्बीमचाके माध्यम से अहंपूर्ण लोगोंकी वास्तविकता बयान करती है। इन सबसे इन सबसे अलग, “मीगीसू शागीसू” उन लोगोंके विषयमें बताती है, जो सामाजिक सम्बन्धोंको अपनी समृद्धिकी सीढ़ीके रूपमें प्रयोग करते हैं और जब उन्हें अपना लक्ष्य प्राप्त हो जाता है, तो वे साबुत सीढ़ियांभी अपने पेटमें उतार लेते हैं।

इस संग्रहकी पाँच कहानियां ऐसी हैं, जो आतंकवाद उग्रवाद और सरकारी आतंकवादके विविध रूपोंका चित्रण करनेका प्रयत्न करती हैं। इनमें से “मै” (आग) कागज व्यापारी गंगालालके गोदाममें लगी आग और उसमें एक बूढ़ी नौकरके जल जानेकी कहानी है। युवकोंमें चर्चा होती है कि आग एक्सट्रीमिस्टने लगायी थी, ताकि कागजके दाम बढ़ाकर जनताको लूटने वाले गंगालाल एण्ड सन्जको पाठ पढ़ाया जा सके। किन्तु क्या ऐसा हुआ? व्यापारीको सरकारके साथ बीमा कम्पनीसे भी नुकसानकी भरपाईके नामपर पैसा मिल गया, ऊपरसे उसने आगका बहाना करके कागज में दाम औरभी बढ़ा दिये। चर्चा करनेवाले युवक सिनेमा हालकी तरफ चले गये।

यदि इस कहानीकी थाह ली जाये तो पता चलेगा कि आर्थिक-शोषण, सामाजिक-निष्क्रियता और उग्रवाद के बीच एक समीकरण है। व्यापारी, महाजन, बड़े भूमिपति आदि जितनेभी शोषक-वर्ग हैं, वे साम, दाम, धन की संहारा लेकर जनताका शोषण करते हैं।



समाजका एक बड़ा वर्ग जो समय रहते ध्यान देकर इस शोषणको रोक सकता था—हमेशा निष्क्रिय बना रहता है। जब पानी सिरसे उतरने लगता है, तो आतंकवाद और उग्रवादकी जमीन तैयार होने लगती है। इसी बिन्दुसे सरकारी आतंकवादभी जन्म लेता है, क्योंकि सरकारें प्रायः शोषक-वर्गोंके हितोंकी रक्षा करनेके लिए बन्दूकके सामने बन्दूक लेकर खड़ी हो जाती हैं। सरकारकी बन्दूकें यदि समाज-घातक लोगोंके विरुद्ध ही कार्यवाही करतीं, तबभी कुछ बात थी, पर वे समाजके प्रत्येक युवाको ही अपने शिकारके रूपमें देखने लगती हैं। तब फिर अत्याचारोंका क्रम शुरू होता है। इबोमचाकी कई कहानियां इस स्थितिका चित्रण करती हैं। “थेड्गाइनबा” (टकराव) में एक बूढ़ीको धोखे से मिलेट्रीकी गोली लग जाती है और बाजारमें भगदड़ मच जाती है। “तूमिन्ना लैबा” (खामोशी) में एक एम. ए. पास शहरी लड़कीके ग्रामीण पतिको पुलिस पकड़कर ले जाती है। बहुत दिनतक तो वह लौटता ही नहीं, किन्तु जब वापसभी आता है, तो पुलिसकी मारसे अधमरा होकर शिक्षित स्त्रीको अपने बीमार पतिके लिए मजदूरिन बन जाना पड़ता है। “अवाबा” (दुःख) का अध्यापक-नायक स्वप्नमें अपनी बीमार माँके लिए बाजारमें दवाई लेने आता है और पुलिसके हाथों पड़ जाता है। फिर—

“सिपाही मुझे घसीटकर ले जाने लगे। मेरे शरीर पर एकभी वस्त्र नहीं रहा। × × × मुझे अपने नग्न शरीरपर रोना आया। शर्मके मारे बुरा हाल हो गया। ऐसा अनुभव हुआ कि पृथ्वीके सारे डर मुझपर सवार हो गये हैं। “मुझे वहां मत ले जाओ। मुझे मत ले जाओ। मैं सीधा-सादा अध्यापक हूँ। बाल-बच्चे वाला। मेरा क्या कसूर है। मैं कहींभी शामिल नहीं हूँ, कुछ नहीं जानता...”

“मड्लाकनवा” (दुःस्वप्नका संत्रास) में यही स्वप्न एक छोटी बच्ची अपने पिताके विषयमें देखती है। तोम्बीमचाके पिता (चाओबा) को कुछ वर्ष पूर्व पुलिस पकड़कर ले गयी थी। तबसे वह घर नहीं लौटा। तोम्बीमचाके बाल-मनपर इसी घटनाका प्रभाव होगा, जिसने उसे त्रासदीभरे स्वप्नमें लेजाकर पटक दिया। उसके स्वप्नका एक अंश इस प्रकार है—

“एक सिपाहीने गरजते हुए चाओबासे पूछा

तुम विद्रोहमें भाग लेते हो ?

चाओबाने सिर हिलाया, संकेत किया कि भाग नहीं लेता।

कैसे नहीं लेते ? तुम पी.एल. ए. के हो न ?

चाओबाने फिर नकारमें सिर हिलाया।

पी. एल. ए. नहीं तो प्रिपाक होगे।

तुमने सिपाहियोंको मारा था न ?

चाओबाने जोरसे गर्दन हिलायी।

उनके छिपनेकी जगह कहां है, बताओ।

+ + + +

मुँह खोलो

चाओबाने मुँह खोल दिया। सिपाही फिर

चिल्लाया जीभ बाहर निकालो

चाओबाने जीभ बाहर नहीं निकाली। सिपाही की ओर देखता रहा। सिपाहीने चाओबाके मुँह में से जीभ बाहर खींच ली और कमरेमें लटकी छूरीसे उसकी जीभ काटने लगा।”

ये कहानियां हमें आतंकवादके सरकारी चेहरे और उसे कानून तथा जनरक्षाके नामपर पहननेके बाद गलेको ऊपर तक अहिंसाकी दास-भाषासे गुंथी मालाओं से ढकनेवाली सत्ताके यथार्थके भीतर ले जाती हैं। कोई भी रचनाकार, जो उग्रवाद और आतंकवादपर कलम चलाता है—कभीभी उसका समर्थक नहीं होता। कभी भी और किसीभी रूपमें उसके भीतरका रचनाकार उसे उग्रवादके पोषणकी अनुमति नहीं देता। तबभी दुनियांकी सब भाषाओंके लेखक अपने-अपने ढंगसे उग्रवादको सृजनका विषय बनाते हैं। उन रचनाओंको पढ़कर अन्य छोटे-छोटे प्रश्नोंके साथ एक बड़ा प्रश्न यह सामने आता है कि उग्रवाद या विद्रोहसे जुड़ी रचना प्रायः ही सरकारों या उनकी पुलिस व सेनाके विरुद्ध खड़ी हुई क्यों दिखायी देती है ? यह प्रश्न इस समीक्षा के संदर्भमें न उठाया जाता, यदि इबोमचाकी ऊपर उल्लिखित पांचों कहानियां स्वयं ही इसे न उठातीं। तब क्या यह नहीं कहा जा सकता कि उग्रवादकी समस्या से त्रस्त राष्ट्रों और राज्योंमें सरकारोंकी भूमिका अधिकतर शक्तसे शक्तको दबानेकी नीतिसे निर्मित होती है ? वस्तुतः इबोमचाकी ये कहानियां इसी ओर ध्यान खींचना चाहती हैं और कहना चाहती हैं कि उग्रवाद या आतंकवाद किसी युवा आदमी द्वारा हाथमें बन्दूक उठा लेनेका नाम नहीं। वह उस विवशता-जन्य क्षोभका नाम है, जो राज्यकी नपुंसक-नीतियों,



शक्तिके थोथे अहंकार और समाजको बदलनेका दम भरनेवाले बुद्धिजीवियोंकी कायरतापूर्ण निष्क्रियताके मिश्रणसे जन्म लेताहै। यह मिश्रण जितना सान्द्र होता जाताहै, क्षोभ उतनाही बढ़ता जाताहै और बारूदका वैभवभी उसी परिमाणमें बढ़ता जाताहै। ये कहानियाँ यहभी कहतीहैं कि उग्रवादपर काबू पानेके लिए सर-कारोंको बन्दूक फेंककर युवाओंके क्षोभके असली कारणोंको खोजना होगा और सारी औपचारिकताको परे सरकाकर स्वस्थ-संवादका वातावरण बनाना होगा, कहानीकारकी यह उपलब्धि निस्सन्देह अभिनन्दनीय है।

इन महत्त्वपूर्ण कहानियोंके अतिरिक्त इस संग्रहमें कुछ ऐसी कहानियाँभी हैं, जो बहुत समर्थ कहानी-कला या रचनाशैलीका परिचय नहीं देतीं। “खुनगी कैथेन् मचा अमा” (गाँवका छोटा बाजार), “माङ्खवा थोना” (टूटता साहस), “मकखोयगी पीक्लबा युम” (उनका छोटा घर परिवार), “पोइनु थागी” (पोइनु माहू की), “मचेत्ता लोइबा” (मध्यका विराम), “उपाय लैतबा” (उपाय नहीं है) और “औझा दिन-चन्द्रगी मङ्ग” (मास्टर दिनचन्द्रका स्वप्न) ऐसीही कमजोर कहानियाँ हैं। निर्धनता और शराबी पुरुषोंसे लड़ती स्त्रियाँ, आर्थिक-विषमता बनाम आभिजात्य मनोवृत्तिका संकट, महाजनी प्रथाकी चक्कीमें पिसते ग्रामीण किसान-मजदूर, मादक द्रव्योंके व्यापारकी दलदलमें लगातार नीचे बैठता जीवन, असहाय व्यक्ति पर विकलांग साँसोंका अन्धा आक्रमण और शीघ्रातिशीघ्र घनी होनेके लिए लाटरीकी कोठरीमें बन्द हो जानेकी हास्यास्पद मूर्खता जैसे समसामयिक विषयोंको केन्द्रमें रखकर लिखी गयी ये कहानियाँ इतनी कमजोर हैं कि इन्होंने इन विषयोंके भीतरकी गम्भीरताको भी क्षतिग्रस्त कर दियाहै। इनके शिल्पका ढाँचा तो बेहूद लचर हैही। यदि स्वयं इवोमचाभी इन्हें फिरसे लिखने बैठे तो बहुतोंकी लिखेगा ही नहीं और बहुतोंके ड्राफ्ट को पूराका पूरा बदल डालेगा।

इसी संग्रहकी “सुनीता अमसुङ मेनका” (सुनीता और मेनका) तथा “अनौबा खोङअप” (नया जूता) कहानियाँ इनपर भारी पड़तीहैं। ये दोनों दो अलग स्थितियोंमें मनुष्यके मनोविज्ञानको विश्लेषित करती हैं। इनकी शैलीभी लेखकके प्रयोगधर्मी होनेका प्रमाण देतीहै।

यह प्रस्तुत संग्रहकी पच्चीस कहानियों (इसमें कुल सत्ताइस कहानियाँ हैं) का लेखा-जोखा है। शेष बची दो कहानियाँ—“नोङ असुम चुरि (यूँ ही वारिण पड़ रहीहै) तथा नुमिति असुम थेङजिल्लक्लि (दिन ढलताजा रहाहै) ये दोनों दो अलग कारणोंसे उल्लेख की मांग करतीहैं। “नोङ असुम चुरि” एक कमजोर रचना होते हुएभी लघुकथा होनेकी शर्तको पूरा करती है। यह सन १९६६ की रचना है, अतः कहाजा सकता है कि अभीतक उपलब्ध प्रमाणोंके आधारपर मणिपुरी भाषामें लघुकथाका आरम्भ १९६६ में हुईथा, जिसका श्रेय इमथोचाको है। दूसरी रचना, समीक्ष्य-संग्रहकी शीर्षक कहानी होनेके साथही साथ समकालीन मनुष्यकी संघर्ष-धर्मी मनोवृत्तिको चित्रित करतीहै। जब नायकको कहीं भी रहनेकी जगह नहीं मिलती तो वह सोचने लगता है—

“मरुभूमिकी आँधीभी आग जैसे बगुले उठाती आ रहीहै। भागनेका मार्ग नहीं। घरभी नहीं कि घुसा जाये। शरीरमें दौड़ते रक्त और आर्द्रताकी बूंद तक सूख गयीहै। इतनेपर भी क्या यूँही चुप रहना होगा, उन्होंने मेरे रहनेके लिए जगह नहीं छोड़ी तो क्या मैं यूँ ही चुप रह जाऊँगा। लातसे एक दरवाजा तोड़कर बलपूर्वक रहना चाहिये। क्या लातसे एक दरवाजा तोड़कर भी बलपूर्वक नहीं घुस सकूँगा। लातसे कोई एकभी दरवाजा तोड़कर कोईभी दरवाजा तोड़कर।”<sup>१०</sup>

व्यक्ति मनका यह विद्रोह यदि कभी साकार होसका, तो सत्ता-साधनोंपर कुण्डली मारे फणिधरोंकी कुशल नहीं।

#### संदर्भ :

१. नुमिति असुम थेङजिल्लक्लि (ईश्रिड.), पृ.-३६
२. वही, शहर, पृ.-४५
३. वही, होटेलसिंगी बारी, पृ.-५२
४. वही, लाकखिगद्रा, पृ.-१६
५. वही, गाड़ी, पृ.-२२
६. वही, शङायशेल, पृ.-११८
७. वही, पीगी ममल, पृ.-८६
८. वही, अवावा, पृ.-१४८
९. वही, मङ्गलाक्नबा, पृ.-१५५-१५६
१०. वही, नुमिति असुम थेङजिल्लक्लि, पृ.-२६।



## मध्यवर्गीय जीवनकी विविध विषय-वस्तु हास्य और विडम्बना प्रधान कहानियां

कृति : इट्लु, मी विधेयुडु

कृतिकार : भमिडिपाटि रामगोपालम

समीक्षक :

प्रो. चक्रवर्ती

तेलुगु कथा साहित्यकी परम्परित संस्कृतनिष्ठ एवं अलंकारिक भाषा शैलीसे हटकर श्री गुरजाड़ा वेंकट अप्पारावकी "पुनरुद्धार" (दिदुवाटु) नामक कथा का प्रणयन-प्रकाशन सन १९१० में हुआ था। जनभाषा और लोककंठमें रचित वह कथा इतनी लोकप्रिय हो गयी थी कि उस कथा-शीर्षकके अनुरूप, आधुनिक तेलुगु कथा साहित्यकी शैली और शिल्पका पुनरुद्धार ही हो गया था। उसी परम्पराके सशक्त हस्ताक्षर हैं श्री भमिडिपाटि रामगोपालम (भरागो)। सनातनी पिताकी अभावग्रस्ततामें संचित पुराणों और प्रसिद्ध तेलुगु पत्रिकाओंके विशेषांकोंके अध्ययनका सुअवसर वचनमें ही श्री भमिडिपाटि रामगोपालमको मिला था। कल्पना कीजिये बी. ए. के उस युवा छात्रके आश्चर्यकी जिसकी भारती पत्रिका (१९५०) में सद्यः प्रकाशित कहानी 'पिचिका' (चिड़िया) जब अंग्रेजीकी क्लासमें, पढ़ाई रोककर तेलुगुके वरिष्ठ साहित्यकार एवं बहुभाषा-विज्ञ अंग्रेजीके प्रोफेसर श्री रोंगकी अप्पल स्वामीने न केवल उसकी चर्चा की बल्कि भूरि-भूरि प्रशंसाभी की। भरागोकी उस तीसरी रचनाने तत्कालीन तेलुगु साहित्यके दिग्गज विद्वानोंका ध्यान आकृष्ट किया और तत्काल उस उदीयमान युवा कथाकारको आंध्र अकादमीने अनेक तेलुगु साहित्यकारोंके बीच सम्मानित किया। पिताने प्रशंसा करते हुए कहा था कि एक मासकी नौकरीमें जो मैं कमाता, उसे तुमने एक कहानीले कमा लिया।

भरागोने सन् १९४८ में स्वतन्त्रता दिवसके वार्षिकोत्सवपर 'संध संस्करण—चट्टाल पात्र' नामक एक

निबंध लिखकर अपनी सृजन-यात्राका श्रोगणेश किया था। ११ फरवरी, १९४९ को आंध्र पत्रिका (साप्ताहिक) में उनकी पहली कहानी 'नेनु मा आविडि' (मैं और मेरी पत्नी) प्रकाशित हुई थी। भरागो विश्व-विख्यात चेखोव, मोम्पासा और ओ'हेनरीसे तथा तेलुगु के सर्वश्री श्रीपाद सुब्रह्मण्यम शास्त्री, चिन्ता दीक्षितुलु, चलम, राचकोण्डा विश्वनाथ शास्त्रीसे अत्यधिक प्रभावित थे। श्री चागण्टि सोमायाजुलु आपके कथागुरु थे और श्रीपाद सुब्रह्मण्यम शास्त्री आपके आदर्श कथाकार थे।

वचनसे ही भरागोको बड़ा आत्मविश्वास था। पहले अपने अध्यापकोंको प्रभावित करनेके लिए वे लिखा करते थे, फिर धन कमानेके लिए। अनदेखे और काल्पनिक प्रसंगोंपर उन्होंने कभी नहीं लिखा। आस-पड़ोस और गली कूचोंमें दिन-प्रति दिन घटनेवाली छोटी-छोटी घटनाओंके शब्द चित्र बनानेमें वे सिद्धहस्त हैं। व्यंग्य-विनोदके प्रसंगोंमें भी वे अपने परिवेशके प्रति सजग रहते थे। उनके सर्वतोन्मुखी व्यंग्यमें किस्सा-गोईका पुटभी रहता है। वही भरागोकी लोकप्रियताका कारण है।

उनकी मान्यता है कि ओ'हेनरीकी कहानियां जीवनको चित्रित करती हैं। उनकी कहानियां जीवनको गतिमान करती हैं किन्तु उसके लिए समय चाहिये। बुराईमें जो आकर्षण होता है, वह अच्छाईमें नहीं होता अच्छी कहानी लिखनेके लिए आत्म-परिशीलन और ज्ञानकी आवश्यकता है। चार दशकोंकी लम्बी अबधिमें विरचित एवं विभिन्न पत्रिकाओंमें प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ

'प्रकर'—भाद्रपद २०४९—५५



वावन कहानियोंको भरागोने 'इट्लु, मी विधेयुडु' (आपका विनीत) में संगृहीत किया है जो छःसौ पृष्ठों का बृहत् संकलन है।

उक्त संकलनकी भूमिकामें कुछ साहित्यकारोंकी समीक्षाएँ हैं। भरागोके लेखनपर प्रकाश डालते हुए श्री नन्दूरी राममोहन राव अपना मन्तव्य व्यक्त करते हैं—“उनकी कहानियोंमें सामाजिक यथार्थके चित्रणमें सामाजिक क्रूरता, पाशविकता और दुष्टताकी निम्न-स्तरीय तमकी रेखाएँ नहीं हैं, अपितु मध्यवर्गीय व्यक्ति की वेदना और सामूहिक यातना रेखांकित होती है। उन्होंने अल्प महत्त्व रखनेवाली स्थितियों और समस्याओंको ही कथावस्तु बनाकर, जगमानसको सन्तोष दिलानेवाली कहानियोंका सृजन किया।”

वस्तुतः भरागोने व्यक्तिके अन्तर्जगत्की जटिलताओं और विसंगतियोंकी अपेक्षा बहिर्जगत्की स्थितियों और समस्याओंका ही चित्रण किया है, इसलिए तात्त्विक कसौटीपर उनकी कथाओंमें भलेही कहानीपनका अभाव हो, किन्तु यथार्थके फलकपर चित्रित मानवपन और जीवनके बहुआयामी शीतोष्ण रूप देखनेको मिलते हैं। चार दशकोंसे निरन्तर सृजनशील भरागोके शिल्पमें वर्णनात्मकता और सादगीकी एकरूपता है। उनकी सर्वतोन्मुखी सूक्ष्म दृष्टि सामाजिक संकटबोधकी अपेक्षा मध्यवर्गीय व्यक्तिके विषमताबोधकी ओर अधिक रही है इसीलिए 'इट्लु, मी विधेयुडु' में संकलित कथाएँ तेलुगु पाठकोंमें विशेषतः गृहिणियोंमें अत्यन्त लोकप्रिय रही हैं। प्रतिमास इनकी कथाओंको बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा होती है। 'इट्लु, मी विधेयुडु' में संकलित ५२ कथाएँ अत्यन्त लोकप्रिय रही हैं और कथाओंके शीर्षक लक्ष्यार्थ व्यञ्जक है।

“वंटाच्चिना मोगाडु” (रसोई बनानेवाला मर्द) उनकी सुप्रसिद्ध अनुभूतिपरक कथा है। समीक्षकोंने उसे कथा-नायकसे जोड़ा है। उस कथाकी भूमिका समझाते हुए सहज भावसे कहते हैं—“मानव जीवनमें पकवानका बड़ा महत्त्व है, किन्तु लोग इसकी अवहेलना करते हैं। वह एक बड़ी कहानी है। कहनेके लिए ही मैंने कहानी लिखी है। मुझे रसोईमें दिलचस्पी है। वस्तुतः बचपनमें मुझेही रसोई बनानी पड़ती थी। माताजीकी दृष्टि कमजोर थी। घरमें कोई लड़कीभी नहीं थी। पिताजी नौकरीके लिए दूर जाते थे। इसलिए मुझे पकाकर खिलाना पड़ता था। मर्दका अर्थ केवल अंग्रेजीका 'प्रकर'—अगस्त '६२—५६

मर्द नहीं है, मर्दका अर्थ है परिपूर्ण मानव, जिसे पाक-कलाका भी पूर्ण ज्ञान हो।”

भरागोका विचार है कि हास्य कहानी जैसी कोई कहानी नहीं होती। ऐसा कहें तो अपहास्य कहानी बन जायेगी। कहानीमें जैसे अन्य गुण अन्तर्लीन होते हैं, वैसे ही हास्यभी होता है। कहानियां विशेष रूपसे हास्यको व्यक्त नहीं करतीं बल्कि हास्य रस उसमें अन्तर्धाराकी भांति प्रवाहित होता है। हास्यके बिना कोई नहीं रहता। सब लोग हास्यप्रिय होते हैं। 'मुझे पत्नी चाहिये या पति' एक व्यंग्यपरक कहानी है। अपने तातैय्या (नाना या दादा) की प्रत्येक बात आंख मूँदकर मानने वाला आधुनिक युवा नाती तातैय्याके प्रस्तावित 'मंश्री की कन्या' की अपेक्षा, मनपसन्द सरस्वतीसे विवाह कर लेता है। तातैय्यासे उसका प्रश्न है—मुझे पत्नी चाहिये या पति? तातैय्याका उत्तर है—“अपनेसे अधिक पढ़ीलिखी विदुषीसे विवाह करनेपर तो तुम्हें उस लड़की की पत्नी बनकर रहना पड़ेगा।” तातैय्याकी व्यंग्योक्ति में नयी पीढ़ीकी विवेकहीनतापर सरल व्यंग्य है और साथही अनुभूतिधर्मा पुरानी पीढ़ीकी मनोवृत्तिके समर्थन का द्योतक है। भरागोकी किस्सागोईका एक और उदाहरण द्रष्टव्य है। पनिकिरानी कथा (बेकार कहानी) उत्तम पुरुषमें है।

'रेलगाड़ी रुकनेही वाली थी। मेरे बहनोई मिलने के लिए स्टेशनपर आनेवाले थे। वे गाड़ीमें मुझे एक ओरसे दूसरे छोर तक ढूँढ़ेंगे। रोज़ा, द्वारपर खड़े रहने से उन्हें आसानी होगी। जैसे ही मैं खड़ा हुआ, गाड़ी रुक गयी। तातगारू (नाना या दादा जैसे वृद्ध पुरुषके लिए सम्बोधन) क्या आप उतर रहे हैं? मैं द्वार तक पहुँच गया था। 'तात-गारू कृपया' घूमकर देखा। ४० वर्षीया वह प्रौढ़ा, चार बच्चोंकी अम्मा जो कोनेमें बैठी थी, मुझे सम्बोधितकर रही थी। मुझे देखते हुए फिर कहा— तातगारू। दोनों ओर देखा, कोई नहीं था मेरे सिवाय। 'नहीं मैं उतर नहीं रहा हूँ।' 'कष्ट न हो तो तातगारू इसमें थोड़ा-सा पानी ले आइये, बच्चे बड़े प्यासे हैं।' मैं भौंचक्का था। कुछ संयमित होकर कहा 'ठोक है दांजिये मुझे।'

मैं तो केवल ३५ वर्षीय हूँ पर मेरे बाल बर्तकें समान श्वेत हैं। इसलिए पैंतालीस वर्षीय दिख रहा हूँ। वरना चालीस वर्षीयाका मुझे 'तातगारू' कहनेका कोई प्रयोजन नहीं। मेरा मुलायम चर्म, कसरती शरीर,



साफ उच्चारण । उनपर क्या उसका ध्यान नहीं गया । क्या उसने मेरे पहनावेको नहीं देखा । गाढ़े रंगका पनामा पेंट, सौ प्रतिशत टेरिलिन कमीज, अतिआधुनिक काले डायलकी घड़ी । क्या किसीपर भी उसकी दृष्टि नहीं पड़ी । यहाँतक कि मेरी पुस्तकोंपर जिन्हें मैं पढ़ता आ रहा हूँ । न भगवद्गीता है न ब्रह्मसूत्र । वे न उपनिषद् है न दार्शनिक प्रवचन । युवा मनोवृत्तिके योग्य रंगीन पत्रिकाएँ हैं । मैंने चश्मा भी धारण नहीं किया जिससे दोषहीन दृष्टिका पता चलता है । ये सब चीजें घोषित करती हैं कि मैं 'तातगारू' नहीं हूँ । फिर भी मेरे श्वेतवर्णी केशोंको देखकर सम्भवतः मेरे आन्तरिक सौष्ठवको ध्यानमें रखकर उसने मुझे सम्बोधित किया था तातगारू । उसके उस सम्बोधनको क्या मैं, वृद्धावस्थाके प्रति आदर भाव समझूँ या उसके अपने बचावके लिए सरल भाव । भरागोकी विशिष्ट शैलीमें रचित—इस कहानीमें एक युवा व्यक्तिकी मनःस्थितियोंका वर्णन है । उनके साथ उस रेलयात्रामें पाँच घटनाएँ होती हैं । उपर्युक्त पहली घटनाके बाद, एक साहित्यप्रेमी पूर्ववर्ती वरिष्ठ साहित्यकारोंका समकालीन समझता है, जिन सबका निधन उस समयतक हो गया था । जब वह प्राथमिक शालामें था । तात्पर्य कि उनकी भी बड़ी आयु होगयी होगी ।

तीसरी घटनामें एक महिला जो विवाहपूर्व मेरी हत्नीकी पूर्वं परिचिता थी, मुझे देखकर मेरी पत्नीके प्रति सहानुभूति प्रकट करती है । कारण उसकी सहेली मेरी दूसरी या तीसरी पत्नी होगी समझकर ।

चौथी घटनामें मेरेही प्राध्यापक, मुझे देखकर अपना प्रोफेसर मान बैठते हैं ।

और पाँचवीं घटनामें उनके मर्मको छूता हुआ एक व्यक्ति उन्हें अपना पिता समझ बैठता है । अन्ततः भरागो अपने सरके बालोंको रंगनेका निर्णय ले लेते हैं ।

ये तो भरागोकी विशिष्ट शैलीकी रचना है । उत्तम पुरुषमें उन्होंने अपनीही हास्यास्पद स्थितियोंका वर्णन किया है । तेलुगु जनमानसको उन्होंने किस्सागोई से इतना मुग्ध कर लिया है कि प्रतिमास उनकी कथाओं की प्रतीक्षा रहती है । यद्यपि अनुभूतिधर्मा, भावप्रवण और संवेदनशील भरागोकी सूक्ष्म दृष्टि, मानव जीवनकी अव्यवस्था-दुर्व्यवस्था परिशालन, नैतिक-अनैतिक विश्लेषण, व्यक्ति-सम्बन्ध विवेचनकी गहराइयोंका अवलोकन

करती रही है तथापि सृजनके धरातलपर उनका ध्यान सामाजिकताकी अपेक्षा रूढ़ियोंपर, राजनीतिकी अपेक्षा दल नीतिपर, आर्थिकताकी अपेक्षा भ्रष्टाचारपर और धार्मिकताकी अपेक्षा धर्मान्ध साम्प्रदायिकतापर अधिक केन्द्रित हुआ है । उनके लिए कोई क्षेत्र नहीं बचा जो अचीन्हा हो ।

भरागोकी कहानियोंमें व्यक्ति, समाज और व्यवस्थाकी समस्याओंकी त्रिवेणीभी प्रवाहित है । आलोचकोंके इस आरोपका, कि जन साधारणकी समस्याओंको तो विषय बनाया किन्तु कभी समाधान नहीं दिया, वे कहते हैं—“हां समस्याएँ तो रहती हैं, पर मैं कभी समाधान नहीं देता । समस्याओंके समाधान देनेका उत्तरदायित्व लेखकका नहीं होता । जैसा शासनसे कहें कि हैदराबादके लकड़ीके पुलसे बस स्टाप को जरा दूर हटा दें तो बहुत उचित होगा । किन्तु इसके लिए कहानी तो लिखी नहीं जा सकती । बस चढ़नेवालोंकी यातना कहानी बन सकती है । बस स्टाप कहां होना चाहिये, सरकारको इसकी सूचना देना, कहानीकारका काम नहीं है । यह ठीक है कि समस्याका हल सूचित करनेवाली रचनाओंने हुकूमत पर अपना प्रभाव डाला है । उदाहरणार्थ 'अंकल टाम्स कैबिन ।' हमारी सरकार 'थिक स्किन्ड' है उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । रवि शास्त्रीने 'माया' कहानीमें शासन-व्यवस्थाकी कमजोरियोंका सविस्तार विवरण प्रस्तुत किया है । यह दुर्व्यवस्था आजभी बनी हुई है हमारा शासन व्यक्तिका आदर नहीं करता । दुर्भाग्य है कि व्यक्तिकी जहां पहचान होनी चाहिये, वहां अपने स्वार्थको ही वह देखता है ।”

भरागो विशाखापट्टणमके निवासी हैं । श्रीकाकुलम और विशाखापट्टणम वामपन्थी प्रधान क्षेत्र हैं । किन्तु वैचारिक एकांगिता, असंतुलित पूर्वाग्रह और सैद्धांतिक पक्षधरतामें उनका कोई विश्वास नहीं है । मार्क्सवाद, मनुचरितम् और श्रीमद्भगवद्गीता उनके लिए समान है । अपने एक साक्षात्कारमें उन्होंने इसे स्पष्ट किया — “मैंने मार्क्सवाद नहीं पढ़ा । श्रीमद्भगवद्गीता भी नहीं । इसलिए मैंने लेफ्ट ओरियन्टेड कहानियाँ नहीं लिखीं । भक्तिपरक भी नहीं । मेरी दृष्टिमें दोनों ही धर्म हैं । मार्क्सवादके लिए जितना सोशियल रिलेवन्स होता है उतनाही भगवान्के लिए । इन दोनोंसे दूर मैं बड़े मजेसे पति-पत्नी, साले-सालियों, जीजा-बह-



नोईकी कहानियां लिख लेता है। कहानियोंमें आक्रामकता और कटुता नहीं है, किन्तु सरल हास-परिहास और व्यंग्य-विनोदका आधिक्य है। भरागो सरल हृदयके हैं, किन्तु बड़े मुँहफट हैं। तेलुगु कथा साहित्य और कवितापर अपने विचार व्यक्त करते हुए, वे कहते हैं—श्री भूषणमजीकी 'कोण्डागालि (पहाड़ी हवा) संग्रहमें मात्र सैद्धान्तिक कहानियां हैं। यों तो तेलुगु कहानियोंमें स्लगन इन्प्ल्युयेंस कम होता है। तेलुगु कहानी अभी बिगड़ी नहीं, सच पूछो तो तेलुगु कविताही बिगड़ गयीई। आजकी कवितामें पिक्चर्रैजेशन, इमेजिनेशनका जो स्तर होना चाहिये, नहीं है। वे कहानियोंका ही अनुकरण कर रही हैं। जैसे वेगुन्ट मोहनप्रसादने एक सद्यःजात कविता प्रकाशित की है, जिसका कथ्य उनकी अपनी बायोग्राफी है।"

भरागो शैलीकी अपेक्षा कथा वस्तुको महत्त्व देते हैं। वे कहते हैं—“हर कहानीकार केवल लिखताही नहीं है, पढ़ताभी है। अपने पढ़ने और लिखनेके बीच एक अनुपात होता है। पढ़ी जानेवाली चीज लिखी जाने वाली चीजसे अच्छी होती है। मैं स्वयं सायास प्रयत्न नहीं करता। हां, प्रारम्भमें मैंने १५ मास प्रयत्न करके टेकनीक प्रधान 'मनोधर्मम्' की रचना की थी, फिर कभी ऐसा प्रयास नहीं किया।"

समीक्षकों द्वारा उनके नारी-पात्रोंमें ढीठपनके आरोपण और उनके व्यक्तिगत जीवनमें आयी ऐसी किसी नारीकी प्रेरणाके प्रश्नपर वे कहते हैं—“ऐसी कोई नारी मेरे सम्मुख नहीं आयी और मेरे नारी

वरन् विचार करनेकी शक्ति भी है।" समुद्रतटीय नारियोंका यह नैसर्गिक गुण है। उनकी दृष्टिमें अच्छी कहानीका अर्थ है “जो कहानी पढ़नेपर दस वर्ष तक स्मरण रहे और जिसमें आत्मीयताका परिचय हो।"

‘कहानीके लिए शैली चाहिये या शिल्प’ पर उनकी मान्यता है कि कहानीके लिए शैली शरीर है और शिल्प प्राण। जैसे रंग रूपमें अन्तर होता है वैसेही शैली शिल्पमें अन्तर।

एक साक्षात्कारमें नयी पीढ़ीके कथाकारोंपर विचार व्यक्त करते हुए वे कहते हैं—“आजके कहानीकार अपने मस्तिष्कपर जोर दे रहे हैं, सायास प्रयत्न कर रहे हैं। रचनाओंमें आद्रंता पैदा नहीं कर पा रहे हैं। आजकी कथा वस्तुओंमें ऐक्सेप्टेबिलिटी (स्वीकृति) का अभाव-सा दीखता है। हमारे जमानेमें साहित्य पढ़कर तथा जीवनकी अनुभूतिके आधारपर लिखनेका स्वभाव रहा है।"

वे कहते हैं—“व्यावसायिक दृष्टिसे लिखी गयी कहानियोंके कारण, प्रयोजनशील कहानियोंका मूल्य न घटा है और न गिरा है।" एक साक्षात्कारमें उन्होंने कहा—“कभी-कभी लेखकोंसे जैसे प्रश्न किया जाता है:—‘क्यों नहीं लिख रहेहो’ उसी प्रकार अनेक बार लोगोंने मुझसे प्रश्न किया—‘क्यों लिख रहेहो?’ इस नये युगके प्रयोगधर्मी कहानीकार नया ट्रेंड सेट करके, तेलुगु कथा साहित्यको नये क्षितिज दिखा रहे हैं तब इस सत्यसे साक्षात्कार करता हूँ—मैं क्यों लिख रहा हूँ?"

## आगामी अंकसे नयी लेखमाला “हिन्दी व्याकरण मीमांसा”

लेखक : पं. काशीराम शर्मा

आगामी अंक, सितम्बर ६२ से ‘हिन्दी व्याकरण-मीमांसा’ लेखमाला शुरू कीजा रही है। गिल क्राइस्ट, जे. शेक्सपीयर, डब्ल्यू येट्सने प्रारम्भमें हिन्दीके जो व्याकरण तैयार किये, वे अंग्रेजीके स्कूली व्याकरणोंके आधारपर लिखे गये थे, जिनकी उपयोगिता आज संदिग्ध है। हिन्दी व्याकरणोंकी विभिन्न असंगतियोंपर इस लेखमालामें विस्तारसे विचार किया जायेगा।

‘प्रकर’—अगस्त ६२—५८



## नाटक : कन्नड़

# कथ्य, संवेदन, चिन्तन, लोक-तत्त्व, लोकमंचीय नाट्य शैली, लोकभाषाका परिपूर्ण नाटक

कृति : सिरिसंपिगे

कृतिकार : चन्द्रशेखर कंबार

समीक्षक :

डॉ. शरेशचन्द्र चुलकीमठ

चन्द्रशेखर कंबार कन्नड़के ऐसे प्रयोगधर्मी नाटक-कार है जिन्होंने आधुनिक रंगमंचको लोक-परंपराके साथ जोड़नेका सार्थक प्रयास किया है। शिल्पके स्तर पर उन्होंने 'यक्षगान', 'बयलाट', 'दोड्डाट', 'सण्णाट', 'संग्या-बाल्या' 'पारिजात' आदि लोकनाटकोंकी शैली का प्रयोग किया है तो भावबोधके स्तरपर जनपदकी आस्थाओं और विश्वासोंको अभिव्यक्ति देनेके साथ मानव-मनकी परतोंको खोलनेकी प्रक्रिया अपनायी है। इस सबके लिए उन्होंने लोककथाओं और जनश्रुतियों का आधार ग्रहण किया है। उनके काव्य, उपन्यास और नाटक इसी लोकतत्त्वसे अनुप्राणित हैं। लोकतत्त्व उनके साहित्यमें तकनीक बनकर नहीं बल्कि प्राणतत्त्व बनकर उपस्थित हुआ है। जनपदकी लोकोन्मुखी परम्पराको आधुनिक सन्दर्भोंमें विश्लेषित करना उनका लक्ष्य रहा है। अतः उनके नाटकोंमें 'लोक' हमारी संस्कृतिके सार तत्त्वको उसकी निरंतरताको और उसकी संघर्ष-शील स्थिति-गतियों तथा जीर्णशीर्ण तत्त्वोंको नाटकीय अभिव्यक्ति देनेवाला आधारभूत घरातल है। व्यक्तिके अन्तर्द्वन्द्वका चित्रण इनके नाटकोंकी विशेषता है। समकालीन जीवनकी विसंगतियोंकी कलात्मक अभिव्यक्ति इनकी रचनाओंको विशिष्ट बनाती है। अबतक उनके बीस नाटक प्रकाशित हैं। उनमें 'सिरिसंपिगे' एक मौलिक नाट्य रचना है जिसे राज्य साहित्य अकादमी तथा केन्द्र साहित्य अकादमीकी ओरसे पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

'सिरिसंपिगे' नाटकमें एक लोककथाको यक्षगान

शैलीमें नाटकीय अभिव्यक्ति दी गयी है। यह नाटक यक्षगान शैलीमें क्यों लिखा गया है—इस सम्बन्धमें नाटककी भूमिकामें लेखकने कहा है कि 'हमारा अपना रंगमंच जो हमारे जीवनके साथ जुड़ा हुआ है उसे भूलकर पश्चिमी रंगमंचकी शैलीमें अपनी अनुभूतियोंको, चिन्तनको तथा दर्शनको अभिव्यक्त करनेका प्रयास हास्यास्पद है।'।

स्त्री-पुरुषके अन्तर्विरोधी सम्बन्ध, जीव और आत्मा की समस्या, द्वन्द्वातीत मानव-नियति, मनुष्य और प्रकृतिके आपसी रिश्ते आदिने ऐसी विकट स्थितियोंका निर्माण किया है। जिनके बीच घिरा व्यक्ति दैहिक स्तरपर ही नहीं आत्मिक स्तरपर भी खंडित हो गया है। प्रस्तुत नाटक इसी यथार्थकी नाटकीय अभिव्यक्ति है। जीव और आत्माका संघर्ष इसका-मूल-संवेद्य है। नाटककारने एक सुदृढ़ वैचारिक घरातलपर खड़े होकर मनुष्यके मनकी जटिल किंतु रहस्यात्मक गुत्थियों को खोलनेका प्रयास किया है।

'सिरिसंपिगे' नाटक १६ दृश्योंमें विभाजित है। कथानक काफी उलझा हुआ है। नाटकका केन्द्रीय पात्र है शिवनागदेव जो एक राजकुमार हैं। उसने अभी-अभी यौवनमें कदम रखा है। वह दृढ़काय सुन्दर पुरुष है। उसकी माता शिवापुरकी महारानी है। पुत्र को गद्दीपर बिठाकर विश्राम लेना चाहती है। शिव नागदेव विवाहके लिए तैयार नहीं है अतः उसका राज्याभिषेक भी संभव नहीं है। शरीर और आत्माके

अलगावको और उसके दृढ़को न माननेवाला शिव-



नागदेव एक निर्दोष संपूर्ण स्त्रीको पानेका आकांक्षी है। वह स्वप्नमें एक सुन्दर कन्याकी दीपशिखाके रूपमें देखकर उसके प्रति आसक्त हो जाता है। यह कन्या और कोई नहीं उसकी ही अंतश्चेतनाका प्रतिरूप है। उस नारीको पानेकी लालसा उसकी चिन्ता बन जाती है। वह उसे खोजने लगता है वास्तवमें उसकी यह खोज अपनी चेतनाकी ही खोज है। उसे एक उपाय सूझता है। वह अपनी माता और परिजनोसे कहता है कि उसके शरीरको चीरकर दो टुकड़ोंमें बांटा जाये और उन्हें मिट्टीके दो घड़ोंमें भरकर गाड़ दिया जाये। पूर्णिमाके दिन उन्हें खोल दिया जाये तो एक घड़ेसे वह स्वयं निकल आयेगा और दूसरेसे दीपशिखा-सी कन्या। बादमें वह उसीके साथ विवाह करेगा। राजकुमारके कहे अनुसार ही किया जाता है। एक घड़ेसे तो राजकुमार निकल आता है किन्तु दूसरे घड़ेसे कन्या नहीं काला नाग निकल आता है और वह जंगलकी ओर भागकर गायब हो जाता है। राजकुमार दीपशिखा-सी कन्याके विरहमें डूब जाता है। बादमें वह मांके दबावमें आकर सिरिसंपिगे नामक कन्यासे विवाह कर लेता है। पर उसके साथ दाम्पत्य जीवन नहीं बिताता। पत्नीके साथ उसका शारीरिक सम्बन्ध स्थापित होताही नहीं। वह अपनी सपनोंकी रानी दीपशिखा-सी कन्याकी यादमें कराहता रहता है। काला नाग वास्तवमें राजकुमार शिवनागदेवके शरीरका ही आधा भाग है। काला नाग बहुरूपिया है। वह शिवनागदेवका रूप धारणकर सिरिसंपिगेसे मिलता है तो सिरिसंपिगे उसके प्रति आकर्षित हो जाती है। दोनोंका दैहिक संबंध स्थापित होता है। दोनों भोगजीवनका आनन्द लूटने लगते हैं फलतः सिरिसंपिगे गर्भवती हो जाती है। उसकी पवित्रतापर प्रश्नचिह्न लगना स्वाभाविक है। शिवनागदेव क्रुद्ध हो जाता है। किन्तु उसकी मां सिरिसंपिगेको कुलटा माननेके लिए तैयार नहीं है। राजकुमार शिवनागदेव जानता है कि अपनी पत्नीके साथ कभीभी उसका शारीरिक संबंध स्थापित नहीं हुआ है। पर कोईभी यह माननेको तैयार नहीं है। अन्ततः सिरिसंपिगेको अपनी पवित्रता सिद्ध करना अनिवार्य हो जाता है। वह उस परीक्षामें सफल हो जाती है। तब शिव नागदेवकी समझ में आ जाता है कि यह सब कालेनागका मायावी खेल है। वह काले नागको मार डालनेकी सोचता है। सिरिसंपिगे मान लेती है कि कालेनागसे सम्भोग करके ही

उसने यह गर्भ धारण किया है। किन्तु वह पाप-बोधसे पीड़ित नहीं है। क्योंकि उसके लिए काला नाग कोई पराया व्यक्ति नहीं है, वह तो उसके पति शिवनागदेव का ही प्रतिरूप है, उसके शरीरका दूसरा भाग। जब शिवनागदेव उसे मारने जाता है तो काला नाग उससे संघर्ष नहीं करता, उसके मनमें शिवनागदेवके प्रति स्नेह उमड़ आता है। अतः वह उनके सामने कम-जोर पड़ जाता है। शिवनागदेव उसे मार डालता है। तब उसे पता चलता है कि कालानाग और कोई नहीं उसके शरीरका ही अंग है, उसकी मांस-मज्जाका अंश है। तब वह सिरिसंपिगेके गर्भसे जन्मे बच्चेको अपनाता है। अंतमें शिवनागदेवकी भी मृत्यु हो जाती है। यह इस नाटकका कथानक है।

शिवनागदेवकी कथाके समान्तर दो विदूषकोंकी कथा चलती है। ये विदूषक जुड़वे भाई हैं। दोनों यह निश्चय नहीं कर पाते कि दोनोंमें कौन बड़ा है और कौन छोटा। से इसी द्वन्द्वसे घिरे ये दो जीव वास्तवमें एकही शरीर के दो रूप हैं। दोनोंकी इच्छा है कि कमलसे विवाह कर लें। कमल द्वन्द्व युद्धके लिए अवसर नहीं देती। दोनोंमें से एकका वरण कर लेती हैं तो दूसरा जंगलकी ओर चला जाता है। कमलको विवाहका सच्चा सुख नहीं मिलता। कुलदेवताका आदेश होता है यदि वह गांव के बाहर स्थित बल्मीकपर खिले जूहीके फूलोंको तोड़कर उनकी माला बनाकर पतिके गलेमें डालनेसे बसका पति सर्प बनकर उससे संभोग करेगा तो उसे संतान लाभ होगा। कमल ऐसाही करती है। उसका पति सर्प बन जाता है तो उसी समय उसका भाई उसे मार डालता है। तब कमल क्रोधित होकर—अपने दोनों स्तनोंको निकाल फेंकती है और अदृश्य हो जाती है। शिव नागदेवने जिम समस्याका सामना किया था वे दोनों जुड़वे भाईभी उसी समस्याको झेलते हैं। नाटक-कारने उन्हें विदूषकोंके रूपमें प्रस्तुत करके नाटकमें हास्यमय घटनाओंका नियोजन किया है। हास्यप्रधान दृश्य शिवनागदेवकी त्रासदीकी विडम्बनाको औरभी गहराते हैं।

इस प्रकार एक विलक्षण लोककथाको नाट्यका स्वरूप प्रदानकर नाटककारने मनुष्यके मनकी विभिन्न परतोंको खोलनेका प्रयास किया है। जीव और आत्मा का संघर्ष अनंत कालसे विद्यमान रहा है। फलतः मनुष्य खंडित होताजा रहा है। जीव और आत्माका द्वन्द्व-



अत्यंत गंभीर दार्शनिक समस्या है। यह बौद्धिक स्तर पर वैचारिक वाद-विवादका विषय है जो अत्यंत संश्लिष्ट है। किंतु नाटककार कंबारने उसे संवेदनाके स्तरपर दृश्यत्व प्रदान करके उसे सहज संप्रेषणीय बनाया है। समस्या अत्यंत क्लिष्ट, विकट तथा असामान्य प्रतीत होती है। नाटककी घटनाएं असंभवनीय लगती हैं। हां, उनके भौतिक अस्तित्वपर प्रश्न चिह्न लगाया जा सकता है, उनकी सम्भवनीयताको नकारा जा सकता है। किन्तु मानव मनके विराट्, रहस्यमय जगत् में सब कुछ घटित होता आया है। इस नाटकका प्रत्येक पात्र, घटना, दृश्य आदि प्रतीकार्थको व्यंजित करते हैं। सांकेतिकता इस नाटककी शक्ति है और सीमा भी। विभाजित व्यक्तित्वको ढोनेवाला आधुनिक व्यक्ति शिवनागदेवसे भिन्न नहीं है। अपनीही भीतरी अंतश्चेतनासे अनभिज्ञ मानव अपनीही भीतरी सृजन-शक्तिसे अनभिज्ञ है। प्रकाशका अनंत स्रोत उसके अपने भीतरही है पर वह उसे देख नहीं पाता। अपनीही सृष्टिको नकारना, उसे किसी औरका मानना, इतनाही नहीं उसे पापका फल मानना आँखें होते हुए भी अंधा हो जाना है। यह अबोधताकी, मूढताकी तथा मूर्खताकी चरम सीमा है। अंधा मनुष्य अपनेही अंगको पराया मानकर काट डालता है। अपने आपको शत्रु मानना आत्मघाती प्रवृत्ति है। सत्यका दर्शन ऐसा व्यक्ति सहन नहीं कर पाता। वह आत्महत्याकी स्थितिसे गुजरता है तो अपने आपको समाप्त करनेके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रह जाता। नाटक-

कारने इसी यथार्थका साक्षात्कार कराया है। शिवनाग देवकी आत्मारति आधुनिक व्यक्तिकी 'पासिसिस्' मनो-वृत्तिको सकेतित करता है। प्रस्तुत नाटकमें अस्तित्व बोधकी गहन चिन्ता भी है।

इस प्रकार नाटककारने लोक जीवनसे कथा-वस्तु ग्रहण करके उसे यक्षगान शैलीमें नाट्य रूप प्रदानकर लोक विश्वासों और आस्थाओंको दृश्य-बिम्बों द्वारा मूर्त रूप देनेका प्रयास किया है साथही मनुष्यके अचेतन मनकी जटिल किन्तु रहस्यमय गुत्थियोंको खोलनेका प्रयत्न भी दो समान्तर कथाओं और पात्रोंकी सृष्टि करके विलक्षण नाटकीय प्रभाव पैदा करनेके लिए नाटककारों ने नवीन शिल्प विधान अपनाया है। दृश्य संयोजन यथार्थपर पड़े रहस्यमय परदोंको एक-एक करके हटाते हुए दर्शकको अभिभूत करनेके साथ चिन्तनशील बनाने में सफल हुआ है। श्रव्य और दृश्य बिम्ब संश्लिष्ट कथानकको सहज ग्राह्य बनानेमें सक्षम हैं। नाटक मूल संवेदना और उसके आधारभूत द्वन्द्वको कलात्मक अभिव्यक्ति देनेमें नाटककार कंबारको सफलता मिली है। इस नाटकमें भागवतका पात्र महत्त्वपूर्ण है। वही कथावाचक है किंतु वह निर्लिप्त नहीं है। वह नाटकके भीतरभी है और बाहरभी। उसके कण्ठसे निकले पद मधुर भी हैं और अर्थगर्भित भी। कंबारने सर्वथा एक नवीन शैलीका प्रयोग किया है। कथ्य, संवेदना, चिन्तन लोक-तत्त्व, नाट्य शैली आदि सभी दृष्टियोंसे यह एक परिपूर्ण नाटक है और इसमें कोई संदेह नहीं कि यह रचना इस दशककी मौलिक कृति सिद्ध होगी। □

## क्या देशके प्रशासनका संविधानमें विश्वास है ?

भारतीय प्रशासन संविधानकी बारबार दुहाई देता है और उसके पालनकी मांग करता है। परन्तु भारतीय प्रशासनके अपनेही विभाग संविधानके अनुच्छेद ३४३ के अनुसार "संघकी राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी" को मान्यता नहीं देता। भारतीय प्रशासनके मन्त्रालय और विभाग हिन्दी पत्रोंका उत्तर नहीं देते, यह संविधान और उसकी व्यवस्थाका अपमान है। इस तथ्यको ध्यानमें रखते हुए संसद्, प्रशासन, संचार माध्यमों द्वारा संविधानकी दुहाई देना बन्द कर देना चाहिये।



## नाटक-एकांकी : डोगरी

# राजनीतिक छलकपट, बेरोजगारी और रूढ़िवादी सामाजिक प्रवृत्तियोंको रेखांकित करते तीन एकांकी

कृति : अपनी डफली अपना राग

कृतिकार : मोहनसिंह

समीक्षक :

श्रीम गोस्वामी

वर्ष १९६१ ई. के लिए साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत 'अपनी डफली अपना राग' तीन एकांकियों का संग्रह है, ये हैं : (१) अपनी डफली अपना राग, (२) नमी भावाज्ञ (नयी आवाज), (३) दनां सोचो ते सई (जरा सोचें तो)। तीनों एकांकी 'नुकड़ नाटक' के रूपमें एकाधिक बार मंचित भी किये जा चुके हैं। 'अपनी डफली अपना राग' में समकालीन जीवन-मूल्यों पर राजनीतिकी शोषक छाया का चित्रण है। पिछले एक दशकमें नेता एवं जनता के कथानक पर एकाधिक नाटक एवं एकांकी भारतीय भाषाओंमें लिखे और खेले गये हैं। 'अधिकार का रक्षक' (उपेन्द्रनाथ अशक) के कथानक को यद्यपि बार-बार दोहराया गया है, परन्तु उस जैसा चूटीला व्यंग्य नहीं उभर पाया। कथानक की दृष्टिसे इस डोगरी एकांकीमें नयापन न होते हुए भी इसमें डोगरा क्षेत्र की सांस्कृतिक परम्पराओं यथा— गीतडू, भगत, गगैहल आदिका प्रयोग करके आकर्षण पैदा किया गया है। यह अवश्य है कि इन लोकशैलियों का बारंबार प्रयोग कथानक को एकदम कमजोर बना देता है, पर लेखक संभवतः नयेपन के मोहमें इन शैलियों के भिन्न-भिन्न रंगों के प्रयोग का लोभ संवरण नहीं कर पाया।

प्रथम एकांकीमें जीवन के कुछ विभिन्न पक्षों को चित्रित किया गया है। इस एक एकांकी के कलेवरमें इतना कुछ भरने का प्रयास किया गया है कि शैली बोझिल होने लगती है। फिर भी, लेखक ने बोझिल वातावरणमें ठहाके भरने का प्रयास किया है। इस 'प्रकर'—अगस्त ६२—६२

प्रयोजनसे लेखक ने डोगरी कवि कुलदीप सिंह जिन्द्रा-हिया के 'साहूकार और कुत्ते' वाले चुटकुले का प्रयोग तथा साहूकारों के विषयमें प्रचलित एकाध अन्य लोक-व्यंग्य का भी सहारा लिया है। परन्तु बादके राजनीतिक घटनाक्रमसे इन प्रसंगों का तारतम्य नहीं बैठ पाता। यही कारण है कि जीवन के भिन्न-भिन्न छाया-चित्र देखकर लगता है मानो एकांकीमें कोई केन्द्रीय कथानक नहीं है और असम्बद्ध बातों अथवा संवादों का संग्रह मात्र है। संभवतः यही शैली इसे आधुनिकता का दावेदार भी बनाती है। जीवन के भिन्न-भिन्न रंगों, कही-सुनी बातों, चुटकुलों और लोकशैलियों के जमघट द्वारा एक 'कोलाज' प्रस्तुत किया गया है।

इस नुकड़ एकांकीमें २० पात्रों को ठूँसा गया है, जबकि सभी भूमिकाओं को ८-१० पात्र निभा सकते थे। इससे एकांकी समग्र रूपसे अधिक प्रभावशाली होता और कथानकमें बिखराव न आने पाता। कथानक के बिखराव की बात तीनों एकांकियों पर समान रूपसे लागू होती है। वस्तुतः नुकड़ एक ऐसी शैली है जिसमें पाण्डुलिपिका बहुत महत्त्व नहीं होता, क्योंकि कलाकार और निदेशक प्रत्येक स्थान पर यथावसर इसमें परिवर्तन कर लिया करते हैं। नुकड़ नाटक का महत्त्व तो उसके मंचनमें अधिक है, क्योंकि (मूल प्रलेख) में अधिक बातें या तो अस्पष्ट होती हैं अथवा उन्हें सांकेतिक रूप से प्रस्तुत किया गया होता है। इन्हें संगति अभिनय द्वारा प्रदान की जाती है। यह कुछ वैसा ही है जैसे किसी फिल्म या दूरदर्शन के धारावाहिक का 'स्क्रीन प्ले'



उतना प्रभावोत्पादक पाठ्य माध्यम नहीं होता जितना कि उसपर निर्मित फिल्म या धारावाहिक मनोरंजक लगते हैं। एकांकी अथवा नाटक एक दृश्य-माध्यम होने के कारण इनका मूलभूत सम्बन्ध देखे जानेसे अधिक है पढ़े जानेसे कम। नुक्कड़ नाटक दृश्य श्रेणीमें आता है, इसलिए उसके 'मूल प्रलेख' का प्रकाशन इस दृष्टिसे तो स्तुत्य है कि अधिक-से-अधिक निर्देशक इसे प्राप्त कर मंचित कर सकें, परन्तु पाठ्यके लिए यह न तो उत्साहवर्धक पाठ्य सामग्री प्रस्तुत कर पाता है और न इसका संप्रेषणही पाठक तक उस धरातलपर हो पाता है जितना कि मंचीय माध्यम होनेके कारण अपेक्षित है। जिस प्रकार त्रुटिपूर्ण छंद रचना किसी कुशल गायककी स्वर-माधुरीमें अपने अभावोंको छिपा लेती है या कुशल गायक उसकी कमियोंको स्वर लोचसे पूरा कर लेता है, कुछ उसी प्रकार कुशल निर्देशक 'मूल प्रलेख' की कमियोंको और उसमें निहित सांकेतिक एवं अगूरे प्रसंगोंको यथा-स्थान गांठकर रस-भोक्ताके लिए एक समग्र प्रभावकी सृष्टि कर देता है। इसी कारण प्रस्तुत नुक्कड़ नाटक पढ़नेमें नीरस और उबाऊ लगते हैं। इसी सीमाके कारण 'अपनी डफली अपना राग' में रस-बाधाके अनेक स्थल दृष्टिगोचर होते हैं।

संग्रहका दूसरा एकांकी 'नमीं अवाज' बेकारी, प्रेमिका, गरीबीके खोखले नारों और शोषण आदि के पिटे-पिटाये कथानकपर आधारित है। इस एकांकी में एक अज्ञात आवाजका परिचय पात्र-तालिका में पात्र के रूपमें दिया गया है और एक संवादमें बताया गया है कि यह किसी सत्ताधीश षड्यंत्रकारीकी आवाज है। परन्तु इस आवाजका सांवादिक प्रयोग देखकर पाठक इसके विषयमें यह तो जान लेता है कि यह लोलुप सत्ता की जानी-पहचानी आवाज है, फिर क्या इस एकांकी का नामकरण इसी षड्यंत्रकारी आवाजपर किया गया है, यह स्पष्ट नहीं हो पाता।

एक प्रश्न यह भी है कि क्या नेपथ्यकी एक आवाजको नयी आवाज माना भी जा सकता है क्योंकि यह तो स्वतंत्र भारतकी शोषक सत्ताधीश शक्तियों की प्रतीक है, जबकि 'नयी आवाज' किसी आदर्श या नव-संदेशका वाहक शब्द-पद है। संदेश नामक पात्रको अन्तर्गत क्रान्तिकी जिस दिशाकी ओर प्रेरित किया गया है वही उसकी स्थितियां, पात्र अथवा संवाद किसी निश्चित दिशा अथवा समाधानकी ओर नहीं ले जाते।

एकांकीको लटकाये रखनेके लिए अथवा कथानकको आगे बढ़ानेके लिए एक निपट बचकानी तकनीकका प्रयोग किया गया है। एक पात्र तो अपनी गलत-सही कहता जाता है, जबकि दूसरा सिर्फ हाँ-हूँ कहकर सुनता रहता है। इस पद्धतिकी विसंगति यह है कि मुख्य अथवा सक्रिय पात्र द्वारा ऐसी बातें लाद दी जाती हैं जो गौण अथवा निष्क्रिय पात्रका अभिप्रेत नहीं थीं। यही कारण है कि यह एकांकी पढ़ते हुए यह धारणा बनती है कि लेखक जानबूझकर अपने गौण पात्रोंकी जीवंतता और तर्क-शक्तिको कुंठित कर रहा है।

'नमीं अवाज' में संजोगता नामक लड़की गम्भीर पात्रके रूपमें उभरती है, परन्तु उसका प्रेमी संदेश बहुत-सी ऐसी बातोंपर उससे बहस करता है जो न तो एकांकीके कथानकका अंग हैं और न ही संजोगताने उससे कही हैं। इस बचकाने प्रयोगसे एकांकीकी कथा-वस्तु हास्यास्पद होने लगती है। एकांकीके उद्देश्य क्षेत्र से बाहरका सृजन लेखकका धर्म नहीं है, उसका प्रत्येक शब्द सार्थक हो यह अपेक्षा पाठकको रहती है।

तीसरा एकांकी 'दनां सोचो ते सेई' निम्न मध्य-वर्गकी दोहरी मानसिकतासे जुड़ा एक सराहनीय एकांकी है। घरकी कलह, मध्यवर्गीय लिप्सा एवं महत्वाकांक्षा, बेकारी और व्यक्तित्वके टकरावकी छोटी-छोटी बातों को इसमें बुना गया है। मुख्य पात्र सुवधाराम परिवार को नियन्त्रणमें रखनेके लिए घरके प्रत्येक सदस्य की भावनाको ठुकराते हैं, इसीसे उनके अहंभावकी तृप्ति होती है। पत्नी और अन्य सदस्योंसे उनका निरन्तर टकराव घरमें तनाव और मन-मुटावकी अभेद्य दीवार खड़ी कर देते हैं। यह स्थिति उन्हें परिवारके सदस्योंसे इतनी दूर ले जाती है कि अपनेको सहसा एकाकी पाकर वे अवाक् रह जाते हैं।

आजकी औसत मध्यवर्गीय मानसिकता स्वार्थसे पीड़ित होकर बौद्धिक दीवालियेपनका उद्घोष करती प्रतीत होती है। सुवधाराम ऐसे ही वर्गका प्रतिनिधित्व करते हैं। वे घरके प्रत्येक प्रसंगपर अपनी पकड़ इस सीमातक मजबूत रखना चाहते हैं कि मात्र असहमत होनेके लिए ही वे प्रत्येक उचित बातका विरोध करते हैं। वस्तुतः वे ऐसी राजपूती मानसिकताके प्रतिनिधि भी हैं जो सामन्ती अधिकार खो जानेपर भी अपने खोखले अहंको सर्वोपरि मानती है एवं दूसरोंके विचारों और भावनाओंकी उपेक्षा करती है। जबकि उनके परि-



वारके दूसरे सदस्य समयकी बदली हुई वास्तविकताओं से भली भाँति परिचित हैं। सुवधाराम और उनकी पत्नीमें अनबन इस स्थिति तक पहुँच जाती है कि दोनों बेटीके व्याहृके लिए अलग-अलग वर खोज लेते हैं। विडम्बना यह है कि वे अपने युवा बच्चोंकी असहमत के विरोधमें मतभेद भुलाकर एकमत और एकजुट हो जाते हैं।

सुवधाराम इस बातके पक्षमें नहीं हैं कि शादी-विवाहके लिए लड़के-लड़कीकी इच्छाका पता कर लिया जाये। इस दृष्टिसे पति-पत्नी दोनों रूढ़िवादी मूल्योंके प्रतिनिधि भी है। परन्तु सुवधारामके साथ समस्या यह भी है कि वे स्वयं को परिवारका एकमात्र स्वामी मानते हैं। एकांकीके अन्तमें जब उनके छोटे पुत्र आज्ञाकी सगाईको लेकर घरमें तनाव बढ़ता है, वे आज्ञाको घर छोड़नेका आदेश देते हैं तो परिवारका नियन्त्रणही उनके हाथसे निकल जाता है। आज्ञा उनके अबतकके वर्चस्वको चुनौती देते हुए कहता है कि हम क्यों घर छोड़ें? आपही क्यों नहीं चले जाते। बहुत सह लिया अब...

इस एकांकीकी पारिवारिक समस्याओंपर केन्द्रित कथानक द्वारा नये-पुराने विचारोंका संघर्ष प्रस्तुत किया गया है। लेखकने पात्रोंका नामकरण भी सांथक ढंगसे किया है। 'सुवधाराम' ऐसे स्वार्थी व्यक्तिका नाम है जो घरकी प्रत्येक सुविधापर तानाशाहकी भाँति एकाधिकार जमाये हुए है, उनकी पत्नी 'शांति' अपने नामके विपरीत निरन्तर झगड़े और अशांतिकी आगमें घी डालती रहती है। बड़ा बेटा 'क्रांति' अपने नामके उलट नितान्त शिष्ट, शांतिप्रिय और माता-पिताका आज्ञाकारी बेटा है, जबकि छोटा बेटा 'आज्ञा' अवज्ञा और चिद्रोहका सूत्रधार है। कुल मिलाकर यह एकांकी रोचक भी है और पठनीय भी।

'अपनी डफली अपना राग' एकांकीका अभिप्रेत राजनीतिकी कलुषताको उजागर करना है। इस एकांकी के नेताजी अपनी नेतागिरी बनाये रखनेके लिए षड्यंत्र और दमनका सहाराही नहीं लेते, वे गांधीजीका नाम ले-लेकर अपनी दुकानदारी भी चलाये रखते हैं। अपनी कूटनीतिसे उन्होंने जनतामें फूटके बीज बो दिये हैं। लोगोंकी फूटमें नेताजीकी शक्ति निहित है। इसलिए उन्होंने प्रत्येक व्यक्तिको एक-एक डफली दे दी है, ताकि वह अपना राग अलापता रहे। लोग इकट्ठे न हों और उनका शोषण जारी रहे।

'प्रकर'—अगस्त'६२—६४

'नमीं आवाज' एक शिथिल एकांकी है। यह मानस-पटलपर कोई प्रभाव नहीं छोड़ पाता। इसकी तुलनामें 'दनां सोचो ते सेई' अधिक सांथक प्रयास लगता है।

मोहनसिंह मुख्य रूपसे कवि हैं। उनकी कवितामें अधिक सामर्थ्य है। अच्छा होता उन्हें उनके किसी आगामी कविता संग्रहपर पुरस्कृत किया जाता। परंतु डोगरीमें तो यह लीकही चली आ रही है, जो जिस व्यक्तिका मुख्य क्षेत्र है, उसे उसमें पुरस्कार न देकर किसी ऐसी विधामें सम्मानित किया जाता है जिसपर उसका पूरा अधिकार न हो। ऐसे बहुतसे पुरस्कार पहले भी दिये जा चुके हैं। वर्ष १९६१ का पुरस्कार उसी परम्पराकी अगली कड़ी है।

डोगरीकी अधिकांश पुस्तकोंमें सर्वमान्य वर्तनीका प्रयोग न कर प्रत्येक लेखक वर्तनीके सम्बन्धमें स्वच्छन्दतावादी है। डोगरीमें कम पढ़े लेखकोंका आधिक्य है जो मानक डोगरी वर्तनीका प्रयोग नहीं करते। वे न तो भाषाके अनुशासनकी आवश्यकताको समझते हैं और न उन्हें लेखन और उच्चारणकी जानकारी ही है। इसलिए प्रायः प्रत्येक पुस्तकमें प्रबल रूपसे वर्तनीका अन्तर दिखायी देता है। वर्तनीकी यह अराजकता इस पुस्तककी विशिष्टता है।

प्रुफकी स्थिति यह है कि प्रतीत होता है संशोधन कार्य अनावश्यक है। भूमिका और लेखकके प्राक्कथन (किश गल्लाँ) की लगभग प्रत्येक पंक्तिमें कोई-न-कोई त्रुटि अवश्यही दिखायी दे जाती है।

अशुद्ध भाषायी प्रयोगों और प्रुफकी त्रुटियोंको ध्यानमें रखते हुए साहित्य अकादमीको धन्यवाद देना चाहिये कि कृतिको पुरस्कृत करनेके लिए उसने वर्तनी, भाषा प्रयोग और प्रुफकी त्रुटियोंपर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा रखा। केवल इतनाही नहीं अनेक स्थलों पर संवादोंका तारतम्य और उनका औचित्य असमंजस में डाल देता है। हिंदी फिल्मोंके कुछ प्रसिद्ध अंग्रेजी संवादोंका प्रयोग पुस्तकको प्रामाणिक बनानेके प्रयत्न की इसलिए सराइना कीजानी चाहिये क्योंकि इससे पुस्तक पुरस्कार योग्य हो गयी है। अरबी फारसीकी ऐसी ध्वनियोंके प्रयोगोंसे भाषाको अस्वाभाविक बनाने पर भी पुरस्कार प्राप्तिमें सहायता मिली होगी क्योंकि इनके उच्चारण डोगरीमें नहीं होते। सम्भव है कि संस्कृतिके लिए सांस्कृति, सभ्यताके लिए सभ्यता, कपट के लिए कष्ट, कल्याणके लिए कल्याण जैसे अनेक प्रयोगभी पुस्तककी गुणवत्ता बढ़ानेमें सहायक रहे हों। ऐसी पुस्तकें भी अकादमीकी महिमामण्डित करती हैं!



# ऐतिहासिक, पौराणिक, समकालीन विषयोंके नाटक, लघुनाटक और एकांकी

कृति : पसिझैत पाथर

कृतिकार : रामदेव झा

समीक्षक :

डॉ. नरनारायण राय

“पसिझैत पाथर” डॉ. रामदेव झा द्वारा समय-समयपर लिखी सात छोटी-बड़ी नाट्य रचनाओंका संग्रह है। संग्रहकी सबसे बड़ी रचना ‘पसिझैत पाथर’ (४२ पृ.) नाटक है जो चार अंको का है। मध्यम आकार की समतुल रचनाएं हैं; लोचन धाए फेयाएल, चाननक बसात, एवं रहस्यदियौ गंगाके निर्मल, (क्रमशः २४, २५, एवं २२ पृष्ठ) जिन्हें आजके नवनाट्य रचना शिल्पके अनुसार लघु नाटक कहाजा सकता है। दुलारक भूख, मनुष्यक देवता, पिपासा तीन एकांकी भी इसी संग्रहमें लिये गये हैं। संग्रहके प्रारंभमें प्रकाशकीयके अंतर्गत मैथिली ग्रन्थोंके प्रकाशनकी चिन्ताजनक स्थिति की ओर संकेत किया गया है जिसका निदान मैथिली भाषा प्रेमी व्यक्ति ही कर सकते हैं। यदि पुस्तकें बिकें ही नहीं तो प्रकाशक छापें कैसे और क्यों। केवल मैथिली-प्रेमके नारेकी घोषणासेही मैथिली साहित्यका विकास नहीं हो सकता, भाषाप्रेमियों द्वारा सत्साहित्य के लेखन और प्रकाशनको भी सहयोग देना होगा और सहयोगका सबसे कारगर माध्यम है कि प्रकाशन बिक जायें, गोदामोंमें सड़ें नहीं। टीन पीटकर संगीतको सुगम नहीं बनायाजा सकता। गंभीर विपरीतताओंके होते हुएभी रामदेव झाके इस नाट्य संग्रहको लेखन, प्रकाशन, और साहित्य अकादमी द्वारा तुरत पुरस्कृत किया जाना—लेखन और प्रकाशन दोनोंके लिए उत्साहवर्धक घटना है। मैथिलीप्रेमी निश्चयही प्रभु-दित होने क्योंकि उनका अपनी गाँठसे कुछ लगा नहीं और रंग चोखा आया।

संग्रहकी प्रतिनिधि रचना है “पसिझैत पाथर”। यह

नाटक चार अंकोंका है पर आरम्भके तीन अंक वस्तुतः दृश्यके आकार लिये हुए हैं। यदि नाटकको अंक और दृश्योंमें बांटा जाता है तो अंक और दृश्यकी शास्त्रीय मर्यादा निभायी जानी चाहिये। यदि प्रयोग अभीष्ट था तो आजके प्रचलित प्रयोगात्मक शिल्पका आश्रय लियाजा सकताथा और अंक दृश्य योजनासे बचाजा सकताथा। वस्तुतः नाटककार इस चक्करमें रहे कि अगल-अलग अंक इस प्रकार गढ़े जायें कि एक स्वतंत्र इकाईके रूपमें प्रत्येक अंककी अलग पहचान भी बनी रहे और चारों अंकोंको जोड़कर एक पूरे नाटकका कथानक भी तैयार होजाये। यहभी एक प्रयोगात्मक शिल्प है और हिंदीमें कुछ नाटक ऐसे आ चुके हैं जिनके किसी खंड विशेषका स्वतंत्र मंचन किया जा सकता है, और सभी खंड मिलाकर एक पूर्णांगी नाटक के रूपमें भी। रामदेव झा ने अपनी भूमिकामें लिखा है कि इस नाटकका अगल-अलग खंडोंमें, स्वतंत्र इकाईके रूपमें भी, और संपूर्ण नाटकका एक साथभी, कई बार मंचन हो चुका है। इसमें दो मत नहीं कि चारों अंकोंका वस्तु-विधान स्वतंत्र और निरपेक्ष हैं और एक साथ पूर्ण कथानक भी। परन्तु साढ़े चार पृष्ठोंका प्रथम अंक और लगभग सात पृष्ठोंका तृतीय अंक—एकांकीकी जगह झलकी अधिक लगते हैं।

‘पसिझैत पाथर’ चार कथा खंडोंका मिश्रण है। प्रथम अंकमें एक नाटकका आयोजन है जिसमें धनेश्वर जीकी लिप्सा और क्षुद्र मानसिकताका अनावरण किया गया है। धनेश्वरजीको यह जगहसाई सहन नहीं होती। बात हाथापाई तक पहुंचती है। मंत्रीजीके हस्त-

‘प्रकर’—भाद्रपद २०४६—६५



क्षेपसे किसी प्रकार मामला शांत होता है पर चानन (शोषित) और धनेश्वर (शोषक) का वैर भाव स्पष्ट हो जाता है। दूसरे अंकमें वृद्ध गणेशजी अपनी पुत्रीके विवाहकी चिन्तामें व्याकुल हैं एक सत्पात्र उपलब्ध है पर पिता धनेश्वर नामधारी जीव दहेज-लोभी हैं और दहेजकी रसम विवाह स्थिर करनेमें एक बड़ी बाधा है। अपने मित्र सुरेन्द्रको प्रतिमाके विवाहका भार देकर गणेशजी आत्महत्या कर लेते हैं, पर उनकी मृत्यु को स्वाभाविक मानकर बीमा कंपनी जो रुपये देती है प्रतिमाका विवाह उस धनराशिसे हो जाता है। इस अंककी मुख्य चिन्ता है दहेज और उससे उत्पन्न होनेवाली विभीषिकाएँ। प्रथम अंकका विद्रोही चानन नयी सरकारी नीतियोंके चलते अब अपनी जमीन पाकर अपनी खेती करने लगता है। धनेश्वरजीका ऋण सरकारी घोषणाके अनुसार माफ हो चुका है। अब वह अपनी पत्नी चंपाको लिवाने आया है जो धनेश्वरजीका ऋण चुकानेके लिए उस कॉलेजके हॉस्टलमें नौकरी करती है जिसमें प्रतिमा प्रोफेसर है। पति-पत्नीकी सुख-दुःख की बातों और नौकरी छोड़कर चंपा द्वारा अपने पति के पास रहनेके निर्णयके साथ तीसरा अंक पूरा होता है। इस अंकके कथका दबाव चंपा (नारी) द्वारा नौकरी (आर्थिक स्वावलंबन) करने अथवा पारिवारिक जिम्मेदारियाँ स्वीकार कर उसे छोड़नेके द्वंद्वपर आधारित है। चौथा अंक बड़ा है इसमें तीन दृश्य हैं। प्रथम दृश्यमें चंपा और प्रतिमाकी बातचीत है। स्पष्ट होता है कि चंपा नौकरी छोड़कर जा रही है पर वह प्रतिमाके अकेलेपनसे दुःखी है। प्रतिमा उसके नवजीवन के लिए शुभकामनाएँ और उपहार देती है किसी आगंतुककी सूचनासे दृश्य पूरा होता है। दूसरे दृश्यमें स्पष्ट होता है कि आगंतुक विमल नामका व्यक्ति प्रतिमाका परिचित और आत्मीय है और प्रतिमासे मिलना चाहता है। तृतीय दृश्यमें स्पष्ट होता है कि प्रतिमा विमलकी पत्नी है। उसे आभास है कि उसके विवाहके लिए उसके पिताने दहेजकी रकम बीमा कंपनीसे उपलब्ध करानेके लिए आत्महत्या की थी और स्वाभाविक मृत्यु का रूप दिया था। इसलिए धनेश्वरजीके पुत्र विमलसे विवाह होनेके बाद उसने शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की और कॉलेजमें शिक्षण कार्य करना शुरू कर दिया। अपनी आयसे अपने भाई-बहनोंका पोषण करती रही और ससुरालका त्यागकर हॉस्टलमें रहने लगी। विमल एक

'प्रकर'—अगस्त'६२—६६

समझदार और उदार प्रकृतिका व्यक्ति है और प्रतिमा के पाषाण होगये हृदयको पिघलानेकी कोशिश करता है जिससे वह जीवनको उसकी स्वाभाविकतामें जी सके। पर दहेजके लिए धनेश्वरजीका दबाव और पित की चुप्पी उसे सामाजिक व्यवस्थाकी जिस क्रूरता का बोध कराती है, उसने उसके हृदयको भावशून्य एवं पत्थर बना दिया है। पतिके सारे मनुहार विफल हो गये। उसने बताया कि किस प्रकार कष्ट सहकर उसने इतने पैसे जमा किये कि प्रतिमाके आश्रितोंका पालन-पोषण होसके। पर प्रतिमा इसपर भी नहीं पिघली और विमलके साथ पत्नीकी भांति रहनेके लिए उसने ससुराल जाना स्वीकार नहीं किया। विवाहके समय ही गयी सिन्दूरकी डिब्बी वापस माँगकर विमलने अपना अन्तिम शस्त्र चलाया जिसके चलते प्रतिमा विचलित होउठी। जयशंकर प्रमादके पात्रोंकी तरह 'सहसा प्रवेश' करते हुए प्रतिमाके पिताके चिरमित्र सुरेन्द्र बाबूने प्रतिमाको जब यह बताया कि प्रतिमाको उचित सम्मान दिलानेके लिए विमलने क्या कुछ नहीं किया और विमलके पिताने भी अपने कियेके प्रायश्चित्त स्वरूप प्रतिमाकी छोटी बहनके साथ अपने दूसरे पुत्रका दहेज रहित विवाहभी स्वीकार कर लिया है। इसलिए इतने सारे बदलावोंके संदर्भमें प्रतिमाको भी अपना निश्चय बदल देना चाहिये। पितातुल्य और पिताके मित्रसे ये सारी बातें सुनकर और जानकर प्रतिमा अविश्वास नहीं कर सकी और उसका पाषाण होगया हृदय भावों की आंचमें तपकर अश्रु-बूंदोंके रूपमें पिघलकर बहने लगा। इस प्रकार नाटकका शीर्षक "परिज्ञैत पाथर" चरितार्थ हुआ। मैथिली भाषामें पिघलनेके अर्थमें "पसिझैत" शब्द व्यवहारमें आता है।

लघुनाट्य आधुनिक नाट्य रचना शिल्पकी एक नवीन उपलब्धि है। यह एकाँकीसे बड़ा और पारम्परिक त्रयअंकी शास्त्रीय नाटकसे आकारमें छोटा होता है। मंचीयता और क्षिप्रता इसकी अन्यतम विशिष्टता है। हिन्दीके अधिकांश लोकप्रिय हुए नाटक मूलतः इसी शिल्पसे अनुप्राणित हैं। यह प्रभाव अन्यत्रभी देखा जा सकता है। बंगलामें बादल सरकारके कुछ नाटक इसके उदाहरण हैं। मैथिलीके अरविन्द अवक, लल्लनप्रसाद ठाकुर, गंगेश गुंजन, रामचन्द्र चौधरी और रोहिणी रामण झा, आदि नवोदित नाटककारोंने एक या एकाधिक ऐसेही नाटक लिखे हैं। समीक्ष्य संग्रहमें तीन रच-



नाएँ ऐसी हैं जिन्हें लघुनाटकोंकी श्रेणीमें रखा जाना चाहिये: लोचन धाएँ फेथाएँ, चाननक वसात और रहस्यदियो गंगा कैं निर्मल । इनमें से प्रथम रचना “लोचन धाएँ फेथाएँ” कवि विद्यापतिके जीवनसे जुड़ी घटना पर आधारित है यद्यपि कथा राजा शिवसिंह एवं रानी लखिमाकी है। तीरभुक्तिके राजा शिवसिंहपर मुसलमान आक्रांता सुलतानने आक्रमण किया। पराजयकी सम्भावना देखकर राजा शिवसिंहने विद्यापतिसे अनुरोध किया कि वे रानी लखिमाको सुरक्षित लेकर पड़ोसी और उनके मित्र द्रोणवार राजा पुरादित्यके राज्यमें चले जायें। वे शीघ्रही यवनोंको पराजित कर उनसे मिलेंगे। नाटकका प्रथम दृश्य गुप्तचर द्वारा पुरादित्यको इनकी संभावित उपस्थितिका संकेत देता है क्योंकि वे अपरिचित हैं। दृश्यके अन्तमें पुरादित्य द्वारा भेंट किये गये आभूषण भिजवाकर रानी लखिमा अपनी उपस्थिति संकेतित करती है—और पुरादित्य उन्हें पहचान जाते हैं दूसरे दृश्यमें पुरादित्य द्वारा छिपकर विद्यापतिके पद सुननेका प्रसंग है और विद्यापति अपनी उस आंतरिक पीड़ासे उन्हें अवगत कराते हैं जो पति-वियोगमें और किसी समाचारके अभावमें रानी लखिमा झेल रही हैं। पीड़ाकी यही अनुभूति विद्यापतिकी कवितामें प्राणरूप ध्वनित हैं, पुरादित्य इसे समझ जाते हैं। इसीलिए राजसभामें विद्यापतिका काव्य पाठ सुननेका अपना आग्रह छोड़ देते हैं। ऐसा करना राज्यसभामें रानी लखिमा को नंगा करना होता। तृतीय दृश्य अधिक मर्मस्पर्शी है। शिवसिंहको बिछुड़े बारह वर्ष व्यतीत होनेको हैं। अंतिम रात बीत रही है। अगली सुबह विद्यापतिको निर्णय देना है कि रानी लखिमा विधवा होगयी या नहीं। क्योंकि हिन्दू धर्मकी मान्यताओंके अनुसार १२ वर्षकी सूचनारहित अनुपस्थितिके बाद उस व्यक्तिको मृत मानकर उसका अन्तिम संस्कार कर दिया जाता है। विद्यापति चिन्तामें है। अतीतावलोकन प्रणालीसे उनकी और शिवसिंहकी अंतिम भेंटका दृश्य आता है। विरहाकुल रानी और अनिश्चयके द्वन्द्वमें बारह वर्षोंसे रोती रानी लखिमा उनके सामने है और दूसरी ओर मित्र राजा शिवसिंहका दिया हुआ वचन कि वे अवश्य मिलेंगे। अब कल उन्हें निर्णय देना है कि रानी लखिमा का कर्तव्य क्या है। रचना मर्मस्पर्शी है, इसमें दो मत नहीं, लेकिन एकही छोटे दृश्यमें अतीत और वर्तमान दोनों दृश्योंका समायोजन सुकर नहीं। प्रदर्शित कर

लिया जाये यह बात दूसरी है पर प्रभावके खण्डित होनेमें संदेह नहीं रह जाता।

दूसरी लघु नाट्य रचना “चाननक वसात” मिथिलांचलीय ग्रामीण परिवेशमें नवशिक्षित उदारवादी युवकों द्वारा लाये जानेवाले सुधारों, रूढ़िवादी महारथियोंके विरोध तथा अंततः उन युवकोंके सत्प्रयासके अभिनन्दनका नाटक है। “चानन” चदनके लिए मैथिली शब्द है। नवयुवकोंके प्रयाससे गांवकी गन्दगी दूर होती है और लगता है जैसे मलय पर्वतसे आनेवाली स्वच्छ निर्मल वायु उस गांवसे होकर बहने लगी है। इसे ही नाटककारने “चाननक वसात” कहा है। प्रथम दृश्य सार्वजनिक स्थानका, दूसरा दृश्य नायक धीरेन्द्रके निवासकी कोठलीका, तृतीय दृश्य गांवके एक अन्य भागका, चतुर्थ दृश्य गांवके एक और अन्य भाग का है। ये दृश्य दिखाये तो जा सकते हैं परन्तु स्वल्प कालमें इतने अधिक दृश्योंका बदलना नाटकके पक्षमें नहीं जाता। तीसरा लघु नाट्य “रहस्यदियो गंगाके निर्मल” शिक्षा जगत्में फैले भ्रष्टाचारकी ओरभी संकेत करता है और इस बातकी ओरभी कि ऐसी स्थितिमें जो पवित्रता और आदर्शोंके साथ जीना चाहते हैं उन्हें भ्रष्ट करनेके लिए लोग किस प्रकार तुल जाते हैं। दृढ़ चरित्रके आदर्शवादी प्रोफेसर रघुराज अंक बढ़ानेके लिए उत्कोच देते हुए सदानन्दजीको भ्रष्टाचार निरोध विभागके अधिकारीके हाथों रंगे हाथ पकड़वाकर इस अग्नि परीक्षामें खरे उतरते हैं।

संगृहीत अन्य तीन रचनाएँ एकांकी हैं। ‘दुलारक भूख’ में जगदीश बाबूका लोकोपकारी स्वभाव एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करता है। एकांकीमें दो अतीतावलोकन दृश्यभी है जिन्हें वर्तमानमें जोड़ा गया है। “मनुष्यक देवता” एक ऐसे ग्रामीण चिकित्सक (वैद्य) का चरित्र प्रस्तुत करता है जो मनुष्यके रूपमें देवताका आदर्श लिये हुए है। अपने मुमुर्षु पुत्रको छोड़कर भी अन्य रोगीको देखनेके लिए मूसलाधार वर्षाके बीच अंधेरी रातमें उतने ही उद्यत भावसे चल पड़ते हैं, जैसे वहभी उनका ही स्वजन हो। “पिपासा” पौराणिक कथापर आश्रित एकांकी है। प्याससे व्याकुल उत्तक मुनिको चाण्डाल वेशमें इन्द्र विष्णुके अनुरोधपर अमृत पिलाने आते हैं, पर चांडालके हाथसे जल पीनेकी अपेक्षा उत्तक मृत्युकी प्रतीक्षा अधिक अच्छा समझते हैं। जब भगवान् कृष्ण उत्तकको चांडालका



वास्तविक परिचय देते हैं तो उत्तंककी आँख खुलती है और अपनी वर्णभेद दृष्टिपर लज्जित होते हैं। कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं। प्याससे विकल उत्तंक बेहोश हो जाते हैं। जल लेकर वापस आया शिष्य भद्रमुख जब उन्हें जगाता है तो चाँडाल और कृष्ण प्रसंग उन्हें स्वप्न-सा प्रतीत होता है, पर वे इससे मिली शिक्षाको अवश्य अंगीकार करते हैं। पारसी रंगमंचकी चमत्कार-पूर्ण प्रस्तुति-शैलीमें कृष्णका आगमन और अन्तर्धान होना इस कारण खटकने लगता है कि कुशल रंगकर्मियों द्वारा प्रकाश व्यवस्थाके सहारे इस चमत्कारिक रंग-निर्देशको मंचपर प्रस्तुत किया जा सकता है पर इस प्रक्रियामें प्रदर्शनकी अधिकांश ऊर्जा केवल आविर्भाव-तिरोभाव दिखानेमें ही नष्ट हो जायेगी और कथ्य उपेक्षित-प्रभावहीन रह जायेगा।

संग्रहकी समस्त रचनाओंको एकसाथ सामने रखते हुए कई बातें तत्काल स्पष्ट हो जाती हैं। नाटककारने पारम्परिकताको निभाते हुए भी आधुनिकताके प्रभाव, विषयवस्तुके चयन और शिल्पविधान, दोनोंही धरातलों पर स्वीकार किये हैं। अतीतावलोकनकी नयी रंग-तकनीक, वस्तुविन्यासमें रूढ़िका त्याग, बदलते युगके अनुसार नयी सोच और समझकी गति देनेवाले विषय की उपस्थितिको प्रमाणके रूपमें प्रस्तुत किया जा सकता है। अधिकांश रचनाएं यथार्थवादी शैलीकी हैं। पुराणका लेकर चलनेवाली दो रचनाएं हैं जो उत्तंक मुनिकी कथा और विद्यापतिकी कथापर आधारित है—अतः इनकी काल्पनिकताकी स्थिति स्पष्ट है। मोटे रूपमें शैली, शिल्प और कथ्य तीनोंही दृष्टिसे रामदेव झाकी रचनाएं समयोचित और समयके प्रभाव समेटे हुए हैं। जहाँ प्रयोग है, वहाँ वे कोई नयी जमीन तोड़ते दिखायी नहीं देते। जहाँ पारम्परिकता है वहाँ भी वे गतानुगतिकतासे परिचालित होकर रूढ़ि-बद्धताका नहीं, अपनी स्वतंत्रचेता शक्तिका परिचय देते हैं। प्रभावकी दृष्टिसे “पसिझैत पाथर” और “लोचन घाए फेयाएल” संभवतः सर्वाधिक प्रभावशाली रचनाएं हैं। ‘पसिझैत पाथर’ शिल्पगत नवीन प्रयोग के कारण भी उल्लेखनीय है अतः इसे संग्रहका प्रति-निधित्व करनेका गौरव मिलनाही चाहिये था। पूरे संग्रहमें बस एकही बात बहुत अधिक खटकनेवाली है कि यह एकसाथ नाटक, लघुनाटक और एकांकी तीन भिन्न प्रकृतियोंकी रचनाएं सामने रखती हैं। यदि यह समझकी

समस्त नाट्य रचनाओंका संकलन है तो “रचनावली” या “रामदेव झा समग्र” जैसे शीर्षकके साथ आना चाहिये था, या फिर नाटक, लघुनाटक एवं एकांकियोंके अलग-अलग संकलन बनाये जानें थे। इनके प्रत्युत्तर लेखकके पास (और प्रकाशकके पास भी) होंगे, पर शायद समाधान नहीं। वैसे अपने वर्तमान रूपमें यह संकलन एक नाटककारके रूपमें रामदेव झाको स्थापित करनेमें सक्षम है। मैथिलीमें प्रकाशन व्यवस्थाकी चिन्ताजनक स्थिति होते हुए भी डॉ. रामदेव झाके कथा साहित्य (चार), समीक्षा ग्रंथ (तीन) संपादित ग्रन्थ (पांच) का प्रकाशन यह स्पष्ट करनेके लिए पर्याप्त हैं कि डॉ. झा संपादित साहित्यकार हैं।

आधुनिक मैथिली नाटकका प्रारंभ पण्डित जीवनाथ झा (प्रचलित नाम जीवन झा) द्वारा १९०४ ई. के आसपास लिखे गये नाटकोंसे होता है। जीवन झा एक समर्थ नाटककारके रूपमें उभरे और एक संभावना-पूर्ण नाटककारके रूपमें अपनी पहचान बनायी। यह खेदका विषय है कि ऐसा प्रतिभाशाली नाटककार केवल तीन नाटक लिखकर रह गया। जीवन झा और रामदेव झा (पसिझैत पाथर) के बीच लगभग ८५ वर्षोंका अंतराल है। इन नौ दशकोंमें मैथिली नाटक को कहाँसे कहाँ चला जाना चाहिये था। मैथिली नाटकों के विकासकी गति अवरूद्ध रहनेके यों तो कई महत्वपूर्ण कारण बताये जा सकते हैं, जिनमें से एक है प्रकाशन और विक्रय व्यवस्थाका अभाव जिसके चलते अधिकतर मैथिली साहित्यकारोंको किसी प्रकाशनके छद्म नामसे अपनी रचनाएं स्वयं छपवानी पड़ती रही हैं। छपनेके बाद उनका बिकना भी एक गम्भीर समस्या रही है। जीवन झा और रामदेव झाके बीच ईशनाथ झा, सुधांशु, शेखर चौधरी और गोविंद झाके नाम आते हैं। यह संख्या चिन्ताजनक रूपसे कम है। नयी पीढ़ी के कतिपय चर्चित नाटककारोंका नामोल्लेख किया जा चुका है। नाटक और नाटककारोंकी लम्बी सूचीके बीच सार्थक रचनाओंकी खोजमें कमही नाटक और नाटककार उल्लेखनीय प्रतीत होते हैं। वह प्रसन्नताका विषय है कि मैथिली नाट्य लेखन अब उस स्तरको स्पर्श करने लगा है जहाँ साहित्य अकादमी जैसी केन्द्रीय संस्था के पुरस्कार दिये जाते हैं। मैथिली साहित्यकी अन्य वधाएं पहले पुरस्कृत हो चुकी हैं। मैथिली नाटकको महिमामंडित करनेके लिए डॉ. रामदेव झा बघाईके पात्र हैं।



## आलोचना-निबन्ध : मराठी

# मध्यकालसे आधुनिक काल तकके प्रचलित आलोचनात्मक प्रतिमानोंका पुनर्मूल्यांकन

कृत : टीका स्वयंवर

कृतिकार : भालचन्द्र नेमाडे

समोक्षक :

डॉ. भगवानदास वर्मा

डॉ. भालचन्द्र नेमाडे मराठीके उन समकालीन रचनाकारोंमें अग्रणी रहेहैं, जिनकी प्रत्येक कृति और उक्तिने साहित्य जगत्में तहलका मचा दियाहै। उनकी प्रत्येक रचना, फिर वह उपन्यास हो, कविता हो या आलोचना, साहित्यिक क्षेत्रोंमें विवादका विषय रहीहै। वस्तुतः नेमाडे एक विवादास्पद रचनाकार हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि वे विवाद खड़ा करनेके लिए लिखतेहैं, बल्कि यह कि उनकी हर बात लीकसे हठी हुई होतीहै, अपनी जगह निहायत मौलिक एवं विचारोत्तेजक होतीहै। ताजापन नेमाडेकी विशेषता है। यह माननाभी भूल होगी कि डॉ. नेमाडे जोभी लिखते रहे हैं वह हमेशा सही होगा। उन्होंने कतिपय बातें ऐसी भी कहीहैं जिनका प्रतिवाद संभव है। परन्तु अपना मुद्दा रखते समय नेमाडे जिस चिन्तनशील तक प्रणाली का परिचय देतेहैं उसे निरस्त करना सहज नहीं होता। एक बात निश्चित है कि डॉ. नेमाडेकी प्रत्येक कृतिने मराठी साहित्य और साहित्यिक-संस्कृतिमें मौलिक पत्थरका काम कियाहै। उनका 'कोसला' (जिसका हिन्दी अनुवाद इन पंक्तियोंके लेखकने कियाहै।) १९६३ में प्रकाशित हुआ। उसके बाद तीन उपन्यास (उपन्यास त्रयी) क्रमशः बिठार (१९७५), जरीळा (१९७७), झूल (१९७९) प्रकाशित हुए। इन चारों उपन्यासोंने, विशेषतः 'कोसला' ने स्वातंत्र्योत्तर युगके मराठी उपन्यासको नयी दिशा दी। 'कोसला' के कारण नेमाडेका नाम मराठीके महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षरोंमें लिया जाने लगा। उसके बाद १९७० में उनका 'मेलडी' काव्यसंग्रह तथा हालमें १९९१ में 'देखणी' काव्य संग्रह

प्रकाशित हुए।

स्वतन्त्रताके बाद छठे दशकके आस-पास महाराष्ट्र में लघुपत्रोंका एक जबरदस्त आंदोलन छिड़ाथा। नेमाडे इस आंदोलनके प्रारंभिक बिंदुसे ही इसके सक्रिय भागीदार रहेहैं। कहना नहीं होगा कि लघुपत्रोंके इस आन्दोलनने तत्कालीन तथा पूर्वकालीन उच्च मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाले मराठी साहित्यके विरुद्ध विद्रोहात्मक स्वर अपनायाथा। इधर यह आन्दोलन लगभग समाप्त हो चुकाहै फिरभी युवा रचनाकारोंके मनमें साहित्य-संस्कृतिके प्रति निषेधके स्वर अबभी गूँज रहेहैं। इस निषेधके रचनात्मक आविष्कारकी एक शाखा दलित साहित्यके रूपमें मराठीमें विकसित हो रहीहै। इसकी दूसरी शाखा दलितेतर लेकिन उच्चवर्णीय सवर्णोंकी कथित अभिजनवादी संस्कृतिके समानान्तर बहुजन वर्गकी जनवादी रचनाधर्मितामें पनप रहीहै। नेमाडे इस वर्गका प्रतिनिधित्व करते हैं।

१९६१ से आजतक डॉ. नेमाडेने रचनात्मक लेखन के साथ आलोचनात्मक लेखनभी खूब कियाहै। साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत 'टीका स्वयंवर' उनके आलोचनात्मक लेखोंका संकलन है। इस पुस्तकमें संगृहीत लेखोंपर समय-समयपर गरमागरम बहसें होती रहीहैं। ग्रंथके रूपमें प्रकाशित होनेके बादभी इसपर कतिपय चर्चा-गोष्ठियां हुईं। साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओंमें इसपर बहुत लिखा गया। इस ग्रंथमें संकलित लेखोंपर चर्चा करनेसे पहले हिंदी पाठकोंके लिए इतना बता देना आवश्यक है कि समकालीन मराठी रचनाधर्मिताके



बारेमें इतनी सम्यक्, चिन्तनशील तथा जागरूक आलोचना कमही देखनेको मिलतीहै। मराठी आलोचनाके क्षेत्रमें नेमाड़े जैसा बहुआयामी व्यक्तित्व इना-गिनाही है। निरालेपनमें तो उनके जोड़का कोई नहीं।

‘टीका स्वयंवर’ में कुल २८ लेख और ३ इंटरव्यू हैं। इन लेखोंको चार भागोंमें विभाजित किया गयाहै। सभी लेखोंपर विस्तारसे बात करनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रस्तुत लेखकी सीमाको ध्यानमें रखते हुए प्रत्येक भागके कथ्य-विशेषपर टिप्पणी करते हुए कुछ महत्त्वपूर्ण लेखोंकी समीक्षा करना चाहेंगे।

पहले भागमें उन लेखोंको लिया गयाहै जिनमें लेखकीय दायित्व एवं प्रतिबद्धताके आस-पास उठनेवाले प्रश्नोंको उठाया गयाहै। दूसरे भागमें मराठीके समकालीन कवियोंपर लेखकी आलोचनात्मक टिप्पणियां समाविष्ट की गयीहैं। तीसरेमें दलित साहित्य और उससे जुड़े प्रश्नोंकी चर्चा है तो चौथेमें मराठी उपन्यास की सामाजिक चेतना, प्रेरणा एवं स्वरूप, संस्कृति-संयोग तथा नैतिकता जैसे मूल प्रश्नोंपर लेख हैं। तीन भेंटवाताएँ भी इसमें हैं, इसमें से एक इन पंक्तियोंके लेखकने लीहै।

१९६८ में नेमाड़ने अपने लघुपत्र ‘वाचा’ में एक लेख लिखाथा। लेखका शीर्षक था ‘हल्ली लेखकाचा लेखकराव होतो तो का?’ (अर्थात्, इधरके लेखक कीधरही ‘श्रीमान लेखकजी क्यों बन जातेहैं?’) इस लेखमें लेखकोंके रचनात्मक दायित्वको लेकर व्यंग्य शैलीमें कई मूल प्रश्न उठाये गयेहैं। नेमाड़के अनुसार अभिव्यक्तिकी स्वतन्त्रताका दावा उन्होंने लेखकोंको शोभा देताहै जिनके पास अपने सम्पूर्ण अस्तित्वको रचनामें उँडेल देनेकी क्षमता होतीहै। परन्तु दुर्भाग्यसे लेखकीय व्यक्तित्वको घुनकी तरह खोखला करनेवाला एक तत्त्व विद्यमान है भोगवादी वृत्ति। ऐहिक सुखों एवं सुविधाओंको अंगीकृत करनेवाले लेखक इस खोखलेपन के तुरन्त शिकार हो जातेहैं। नेमाड़ने लेखकोंकी इस स्थितिपर बहुत विस्तारसे लिखाहै। वे इस बातका संकेत करतेहैं कि इधर हमारे लेखकोंको भौतिक सुख-सुविधाओं, मान-सम्मान, पदों तथा उसके साथ जुड़ी प्रतिष्ठाओंके कारण सुरक्षित वातावरणमें सुविधाप्रद जीवन बितानेकी आदत पड़ जातीहै। यही वह स्थिति है जिसके रहते हमारा लेखक अपने स्वत्वसे ढलनेपर विवश हो जाताहै। उसकी ‘आदि शक्ति और ऊर्जा’

ऐयाशीके माहौलमें पतंगकी भांति आधार-भूमि छोड़कर दिशाहीन भ्रमण करने लगतीहैं। परिणाम वही निकलताहै जो किसीभी लेखकीय चेतनाके लिए लाभकारक नहीं होता। साहित्यिक संस्कृतिमें गुटबाजोंकी दुकानें शुरू हो जातीहैं। यही वह बिन्दु है जहां लेखक का कायान्तर ‘श्रीमान लेखक’ में हो जाताहै। स्पष्ट है डॉ. नेमाड़े लेखन कर्मको एक गंभीर सांस्कृतिक दायित्व मानतेहैं।

इस सम्बन्धमें उनका एक और विचार है। ऐसे लेखक जो अतिरिक्त स्तरपर दुःख एवं पीड़ाको जीते नहीं हैं, वे रचनात्मक स्तरीयता प्राप्त नहीं कर सकते। पीड़ाओंको जीना मात्र व्यावहारिक जीवनमें अभावों का सामना करना नहीं होता, अपितु परिवेशमें व्याप्त मानवी पीड़ाओंको अनुभवके स्तरपर महसूसना होताहै। नेमाड़ने जब ‘एक चादर मैली सी’ के लेखक राजेन्द्रसिंह वेदी, साने गुरुजी (मराठीके बहुचर्चित उपन्यासकार) और संत तुकाराम (मध्यकालीन संत कवि) को महान् रचनाकारोंकी श्रेणीमें रखतेहैं, तो उनके उपर्युक्त मन्तव्यकी दिशाका पता चलताहै। मध्यकालीन मराठी वारकरी संतों (भागवत धर्म) के आन्दोलनकी आविष्कार शैलीपर लिखे लेखमें उन्होंने कहाहै कि मध्यकालीन सन्त-साहित्यकी सबसे बड़ी विशेषता यह रहीहै कि उसमें साहित्यके मूल तत्त्व अर्थात् लोकरंजन, ज्ञान-सुरक्षा तथा प्रस्ताव तो विद्यमान थेही, इस साहित्यने उच्चतर सामाजिक परिवर्तनके लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका भी निभायीथी।

साहित्य और प्रतिबद्धताकी समस्यापर उन्होंने टीका-स्वयंवरके अनेक लेखोंमें प्रसंगानुरूप टिप्पणियां कीहैं। इस विषयपर उनके मन्तव्यका संक्षेप इस प्रकार हो सकताहै : साहित्य क्योंकि समष्टि-मानसके आंतरिक स्तरोंको परस्पर जोड़नेवाला रचनात्मक माध्यम होताहै, उसमें सामाजिक प्रतिबद्धताके संदर्भ अपने आप सम्मिलित हो जातेहैं। जो रचना मानवीय मनोको परस्पर बाँधनेमें सक्षम नहीं होती, वह मात्र शब्दोंका चमत्कार बनकर रह जातीहै ! वैसे, साहित्य मात्र सामाजिक आलेख नहीं होता वह कला होतीहै। इस लिए उसमें व्यावहारिक समाज-मूल्योंसे परे किसी उच्चतर इकाईका रूपायन अभीष्ट होताहै। इसी उच्चतर इकाईको नेमाड़े साहित्यकी नैतिकता कहतेहैं। कहना नहीं होगा कि इस कसौटीपर व्याज-लेखन कर्म



को वास्तविक लेखनकर्मसे पृथक् किया जा सकता है। साहित्यकी नैतिकतामें सौन्दर्यमूल्य तथा सामाजिक मूल्यका अद्वैत स्पष्ट है।

‘टीका स्वयंवर’ में दलित साहित्यके स्वरूपपर आलोक डालनेवाले कुछ लेख समाविष्ट किये गये हैं। इन लेखोंमें डॉ. नेमाड़ेने दलित साहित्यके मूल्यांकनकी एक नितान्त नयी दृष्टिका संकेत किया है। उनकी इस दृष्टिके प्रति कई समीक्षकोंने (विशेषतः स्वयं दलित समीक्षकोंने) अपनी असहमति व्यक्त की है। नेमाड़े जिस कटुतासे उच्चवर्णीय (जिसको इधर ‘ब्राह्मणी’ साहित्य कहकर पुकारा जाता है) पर टूट पड़ते हैं, उतनी ही कटुतासे वे दलित साहित्यकी त्रुटियों पर प्रहार करते हैं। ब्राह्मण बनाम दलित इस रूपमें सामान्य एवं सर्वपरिचित ढंगसे समस्याका सामना करना नेमाड़े को पसंद नहीं है। उन्होंने दलित साहित्य, व्यापक रूपसे समग्र साहित्य व्यापारको सामाजिक नृविज्ञानके आधारपर परखे जानेकी आवश्यकतापर बल दिया है। वे मानते हैं कि किसी समाज एवं संस्कृतिकी सम्पत्ति पहचानके लिए उसके भौतिक, ऐहिक तथा बौद्धिक-सांस्कृतिक इकाइयोंके अन्योन्याश्रित अद्वैतको मानक के रूपमें स्वीकार करना होगा। ये इकाइयां एक दूसरे को आधार देती हैं, संतुलित रखती हैं तथा अर्थवान् बनाती हैं। वैसे यह विचार आधुनिक व्यक्ति केन्द्रित जीवन-दृष्टिके विरोधमें पड़ता है। आधुनिकतावादी दृष्टिमें व्यक्ति केन्द्रित कलात्मक गतिविधिकी स्वायत्तता को महत्त्व दिया गया है। इसलिए वहां जीवन जीनेके लिए वैयक्तिक चुनाव, स्वयंप्रेरणा, आत्मनिष्ठा जैसे मूल्यों को प्राथमिकता मिली है। उपर्युक्त दो अवधारणाओं को सम्मुख खड़ा करके डॉ. नेमाड़ेने लेखक, आलोचक और पाठकके मूल दायित्वको विश्लेषित किया है। उनका मानना है कि साहित्यिक-व्यापारकी समूची प्रक्रिया समाजको अधिक उन्नत तथा मुसंस्कृत बनाने की ओर उन्मुख होनी चाहिये। यहां यह मानना भूल होगी कि डॉ. नेमाड़े अपनी इस सामाजिक नृवैज्ञानिक दृष्टिको किसी कर्मठ मार्क्सवादीकी भांति एकमात्र ‘समीक्षा-मान’ के रूपमें लेते हैं। नहीं! उन्होंने इस अवधारणाको एक आदर्शप्रणाली (नार्मेटिव) के रूपमें विश्लेषित किया है। कुछ दलित रचनाओंको उन्होंने इस कसौटीपर श्रेष्ठभी ठहराया है। यही वह आधार है जिसकी तुलापर उन्होंने दलित साहित्यकी जाति-

सापेक्ष पहचानको नकारा है। वे मध्यकालीन संत साहित्यकी विद्रोही धाराको आधुनिक व्यवस्था-विरोध के साथ जोड़कर बहुजनीय-संस्कृतिके साहित्य धर्मका पुरस्कार करते हैं।

‘टीका स्वयंवर’ में एक और मूल समस्याकी ओर ध्यान खींचा गया है। इसपर लम्बी बात हुई है। यह समस्या है साहित्यमें ‘जातीय चेतना’ की वापसीका। कथित आधुनिकता तथा उससे जुड़ी (एक विश्व) वैश्विकताको महत्त्व देनेवाले विचारकोंने जातीय-चेतना जैसे संकुचित-सीमित (उनकी दृष्टिमें) तत्त्वसे साहित्य को बाँधनेका विरोध किया है। नेमाड़े इस विरोधका बड़ा तर्कपूर्ण खंडन करते हैं। उनके कतिपय लेखोंमें अनेक स्थलोंपर साहित्यकी जातीय पहचान (मराठीमें) इसे ‘देशीयता’ कहा गया है) को विवादास्पद बनाकर उसे प्रधानता दी गयी है। “साहित्यमें देशीयता” नामक उनका लेख इस दृष्टिसे विचारणीय है। उस निबन्धमें भी वैचारिक मार्ग सामाजिक नृवैज्ञानिक ही है। भारतीय साहित्यमें, विशेषतः मराठी साहित्यमें, ब्रिटिश राजकी स्थापनाके बाद ‘अंग्रेजियतके निरोधमें जातीय चेतनाको आगे लानेके प्रयास दिखायी देते हैं। उपनिवेशवादी अंग्रेजी साहित्य दृष्टिका सामना करनेके लिए ‘देशीयता’ के अस्त्रने भारतीय साहित्यको ‘राष्ट्रीय चरित्र’ की बृहत् मुद्रामें विस्तार दिया। हिन्दी साहित्य भारतेन्दु युगसे लेकर द्विवेदी और छायावादी युग तक भारतीय पुराख्यान परम्परासे ही रस ग्रहण करता रहा है। इतनाही नहीं राजनीति तथा इतिहासके क्षेत्रमें भी इसको प्रोत्साहन मिलता रहा है। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद भारतीयताकी खोजका पुनः प्रयास साहित्यकी सभी विधाओंमें आरम्भ हुआ। तब फिर नेमाड़े जैसे चिन्तनशील लेखक देशीयताकी भूमिकाको इतने आक्रामक तरीकेसे क्यों प्रस्तुत करते हैं? नेमाड़े ‘देशीयता’ के प्रसंगको केवल उपनिवेशवादी प्रभावसे मुक्ति पाने का साधन नहीं मानते। उनका विचार और गहरा है। तर्कप्रणाली नवीन है। इसे समझ लें।

देशीयताकी अवधारणाको नेमाड़े इस प्रकार स्पष्ट करते हैं। विशिष्ट भौगोलिक पर्यावरणमें विशेष प्रकार की वनस्पतियां तथा प्राणी-सृष्टिका विकास होता है। वहांकी भूमिका रचनात्मक विन्यास और गुंथन भी विशिष्ट होता है। मौसम, सर्दी-गर्मी, ऋतुचक्र, आदि चीजें अन्योन्याश्रित होती हैं। इस विशिष्ट भौगोलिक



पृष्ठिकापर बसनेवाले लोकसमूहोंकी भाषा, उनकी वेश-भूषा, उदरनिर्वाहके व्यवसाय, खानपान पद्धति, रीति-रिवाज, लोकदेवता आदिके मध्य विकसित होनेवाली समाज व्यवस्था 'देशीयता' का अटूट अंग होती है। भारतीय समाज एक स्तरपर बहुत अधिक वैशिष्ट्यपूर्ण है, तो दूसरी ओर उसमें जातीय तत्त्वोंसे उद्भूत एकात्मताका सूत्र विद्यमान है। प्राचीन युगोंसे भारतीय महाद्वीपमें विविध वंशोंके जनसमूह आते रहे हैं। देशके अलग-अलग भूप्रदेशोंमें बसते रहे हैं। इन वांशिक समूहों को यहांके पर्यावरणने उन वंशोंके रीतिरिवाजों, लोक-देवताओं एवं खानपानकी पद्धतियों सहित अपनेमें समाहित कर लिया है। उन्हें भारतीय रंगमें रंग दिया। इस एकान्वयनकी प्रक्रियासे हमारे प्रदेशों और क्षेत्रोंमें दो महत्त्वपूर्ण बृहत् व्यवस्थाएँ अपने-आप विकसित होती हुई स्थिर बनती रही हैं। इसमें एक है जाति व्यवस्था, तथा दूसरी है देश व्यवस्था (प्रदेश)। इस देशके इतिहास और भूगोलके पटलपर किसीभी व्यक्ति को उपर्युक्त दो व्यवस्थाओंके मिलन-बिन्दुपर ज्योंही प्रश्रय मिलने लगता है वह स्वयंको सुरक्षित अनुभव करने लगता है। इन व्यवस्थाओंकी कई और सूक्ष्म उप-व्यवस्थाएँ भी होती हैं। एक पूरा एकात्म जाल फैला हुआ होता है इस प्रकार 'देशीकरण' की यह प्रक्रिया निर्बाध गतिसे चलती रहती है। भारतीयताका एक बृहत् बिम्ब उभरता है। उन्हींके शब्दोंमें—'हिन्दुस्तान यह मात्र एक केन्द्रीय राष्ट्र न होकर धीरे-धीरे परिवर्तित होनेवाला बहुकेन्द्रीय एवं बहु-अक्षी भूमि-सातत्य है।'।

आधुनिकतावादो विचार दृष्टि डॉ. नेमाड़ेके उप-युक्त मतके विपरीत पड़ती है। आजका कथित शिक्षित वर्ग अपनी दृष्टिसे 'जातीय चेतना' जैसी पुरातनपन्थी

विचारधारासे छुटकारा पाना चाहता है। वह अन्तर-राष्ट्रीय तथा सार्वभौमिक बननेके लिए लालायित है। राजनीतिक संस्थाएँ अर्थ, उद्योग, नगरीकरण, तंत्रज्ञान आदि क्षेत्रोंमें २१वीं शतीमें छलांग लगानेकी होड़-सी लगी है। सभी इकाइयाँ 'एक-विश्व' के प्रतिमानसे प्रबल रूपसे आकृष्ट हैं। लगता है लोगोंमें अपनी भूमि संबंधी श्रद्धा ही कहीं समाप्त हो गयी है। तीसरी दुनियाँके देशोंमें इस प्रकारका एक नया शिक्षित वर्ग विकसित होता दिखायी दे रहा है। इससे जुड़ी बात यह है कि दुर्भाग्यसे यही वर्ग देशोंके सत्तासूत्रोंको चलाने वाला वर्ग है। परिणामतः इसी नये पर्यावरणके प्रभाव में पैदा होनेवाला साहित्य दिन-प्रति-दिन अपनी जड़ोंसे कटकर आरोपित प्रतिमानोंको स्वीकार करता चला जा रहा है। समूची रचनाधर्मिता कथित अन्तराष्ट्रीय शोषणके षड्यंत्रका शिकार बनती जा रही है। डॉ. नेमाड़े संभवतः इसलिए चिन्तित हैं। इसलिए वे देशी-यताको न केवल भारतीय समाजकी प्रतिष्ठाका विषय मानते हैं, बल्कि वे इसे देशकी अस्तित्वगत शर्त भी मानते हैं।

इधर एक बात अच्छी हो रही है। तीसरी दुनियाँके चिन्तक नयी पाश्चात्य सभ्यताके खोखलेपनको समझने लगे हैं। वे नये संकटसे परिचित हो रहे हैं। सभी देशों में अपने जातीय एवं स्वायत्त ऊर्जा केन्द्रोंकी ओर लौटनेकी प्रवृत्ति दिखायी दे रही है। नेमाड़ेकी 'देशी-यता' का क्षेत्र व्यापक है। इसके अतिरिक्त 'टीका स्वयंवर' में औरभी कई मूल समस्याओं और प्रसंगोंपर चर्चा हुई है। वास्तवमें इनकी विस्तृत चर्चा अपेक्षित है। 'टीका स्वयंवर' का प्रत्येक लेख विचारोत्तेजक और मूलगामी है। हिन्दी पाठकोंके लिए इन लेखोंका अनुवाद उपलब्ध करा दिया जाना आवश्यक है। □



## कालिदासके कालातीत प्रभावकी सक्षम सम्प्रेषण- क्षमताके भावात्मक और बौद्धिक निबन्ध

कृति : 'छत्रवुम् चामरवुम्'

कृतिकार : एम. पी. शङ्कुणि नायर

समीक्षक :

डॉ. एन. पी. कुट्टम पिल्ल

कालिदास संस्कृतके सर्वश्रेष्ठ महाकवि माने जाते हैं और उनपर समय-समयपर कई समीक्षात्मक ग्रंथ लिखे गये हैं और अब भी लिखे जा रहे हैं। फिर भी कालिदास काव्यके अनुसंधाताओंको कुछ-न-कुछ नयी बात कहनेको रह जाती है। मलयालमके मूर्धन्य समीक्षक एम.पी. शङ्कुणि नायरका समीक्षात्मक ग्रन्थ 'छत्र और चामर' कालिदास-वाङ्मयपर बिलकुल नूतन ढंगसे विचार करता है और नयी उद्भावनाएं प्रस्तुत करता है।

'छत्र और चामर' प्रथम दर्शनमें निबन्धोंका संग्रह लगता है क्योंकि विषय-सूचीमें बाईस शीर्षक दिये गये हैं और ग्रन्थका नामकरण प्रथम शीर्षक 'छत्र और चामर' के आधारपर किया गया है। पर ग्रन्थका सम्यक् अध्ययन करनेपर वह स्पष्ट विदित होगा कि यह कोई निबन्ध-संग्रह नहीं, एक प्रबन्ध है, जो बाईस शीर्षकोंमें कविकुल-गुरु कालिदासके काव्योंका विस्तृत एवं गंभीर अध्ययन प्रस्तुत करता है। यही कारण है, लेखक ने भूमिकामें इसे प्रबन्ध ही कहा है। लेखकका यह प्रयास रहा कि विभिन्न शीर्षकोंमें कालिदास-काव्यका मंथन एवं विवेचन करके उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभाको प्रकाशमें लाकर संस्कृत वाङ्मयमें उनके छत्र-चामर विमूषित काव्य जीवनदर्शनका आश्लेष करे।

प्रथम शीर्षक 'छत्र और चामर' के अन्तर्गत कालिदासका समय, उनकी रचनाएं, उनके पूर्ववर्ती साहित्यकार, कालिदास संज्ञाका तात्पर्य आदि प्रतिपाद्य विषय हैं। भारतीयोंके लिए यह बहुतही लज्जानक बात है कि इतने शीर्षस्थ कवि एवं भारतीय संस्कृतिके

आख्याताके जन्म-स्थान, समय, उनकी रचनाएं आदि आज भी विवादके विषय हैं, इन बातोंपर हमारी निश्चित धारणा नहीं बन सकी है। कालिदासके समयके सम्बन्धमें मुख्यतः तीन मत हैं—(१) कालिदास षष्ठ शतकमें विद्यमान थे (२) कालिदासकी स्थिति गुप्त कालमें थी और (३) कालिदास विक्रम संवत्के प्रारंभमें जीवित थे। शङ्कुणि नायरने कविका समय-निर्धारण करनेके प्रयासमें बताया है कि सातवीं शतीके पूर्वार्द्धमें बाणने अपने हर्षचरितमें कालिदासका उल्लेख किया है और तबतक कालिदास बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे। पुलि-केशी द्वितीयके ६३४ के आदेशमें कालिदासका उल्लेख आया है। भारवीके किराताजुं नीयपर रघुवंशकी स्पष्ट छाया है और प्रभाकर मीमांसकने भारवीका उद्धरण दिया है, जिसके आधारपर भारवी छठी शतीके ठहरते हैं। भामह दूत-काव्योंकी चर्चा करते हुए पहले-पहल मेघदूतका उल्लेख करते हैं, इसलिए कालिदासका समय पाँचवीं शतीसे पूर्व अवश्य रहा है। पर आगे हमारे पास मात्र किवदन्तियोंका ही सहारा है। कई विद्वान् कालिदासको विक्रमादित्यका समकालीन मानते हैं। पर ये विक्रमादित्य कौन है? इसका निर्णय नहीं हो पाया है। लेखकने भारतीय इतिहासमें उल्लिखित चौदह विक्रमादित्योंपर प्रकाश डाला है। कालिदासके काल-निर्णयसे सम्बन्धित विक्रमादित्य वृहत्कथामें भी आये हैं। भोजके समकालीन परिमलाख्य पद्मगुप्तके नवसाहसांक चरितमें उज्जयिनीके विक्रमादित्यका संकेत है। भोज दशरूपककार के पहले तथा मम्मटके बादमें हुए। शकोंको हरानेसे विक्रमादित्य शकारि कहलाये। पर शक कौन थे?



कालिदासने 'शक' शब्दका प्रयोग नहीं किया है। मृच्छ-  
कटिकके 'शकारि' का अर्थ अभिनवगुप्तभी समझ नहीं  
सके हैं। छठी शतीमें कई शासकोंने शकोंको पराजित  
किया था। पादताडितक भागमें एक सौराष्ट्र शक-राज-  
कुमार आया है अतः लेखक कालिदासको पाँचवीं शतीका  
सिद्ध करनेके सारे युक्तिवादको सप्रमाण अस्वीकार  
करता है। कालिदासके समयके देवता, राष्ट्रोंका पार-  
स्परिक संबंध, भाषा, राष्ट्रीय संस्कृति आदि नाना  
तत्त्वोंके आधारपर लेखक कालिदासका काल-निर्णय  
उचित समझता है और इस प्रयासमें उसका मन्तव्य है  
कि कालिदास गणपतिसे परिचित नहीं थे। कार्तिकेयके  
ज्येष्ठ भ्राता गणपति कुमारसम्भवमें नहीं है। भारवी  
की किराट शिव-सेनामें भी गणपति नहीं हैं। अश्व-  
घोषके बुद्धचरितमें मारसेनामें एक गजमुख यक्षका  
संकेत है। वहीं एकदन्तका भी वर्णन है। 'गणानां त्वा  
गणपति हवामहे' वाले वेदमन्त्रके गणपति गजमुख नहीं।  
नाट्यशास्त्रके गणपति भी गजमुख नहीं, एक अमुर  
नेता हैं। एक ग्राम्य दुर्देवताके रूपमें आयोंने बादमें  
उनको कल्पित किया—शिव तथा कुबेरके बीचका एक  
कुरूप यक्ष। वह वास्तवमें पार्वतीपुत्र है, शिव-पुत्र नहीं  
है। प्रथम बार एक कुल-देवताके रूपमें वह बृहत्संहिता  
में रंग-प्रवेश करता है। वाण, भवभूति, कुमारदास आदि  
गजमुखकी वन्दना करते हैं।

आगे लेखककी स्थापना है कि कालिदासके  
समय दशावतारोंमें मत्स्य तथा कूर्मको स्थान नहीं था।  
दिग्पतियोंके वर्णनमें कालिदासने मात्र चार (इन्द्र, यम,  
वरुण और कुबेर) का उल्लेख किया है। पर मनुस्मृति,  
अमरकोश आदिमें उनकी संख्या आठ है। नाट्यशास्त्र  
में भी वे मात्र चार हैं। कालिदासके समय यज्ञ प्रधान  
वैदिक धर्म और शैव-वैष्णव भक्तिधारा परस्पर मिले  
हुए हैं। कालिदास-काव्यमें कहींभी दोनोंमें वैमनस्यका  
उल्लेख नहीं है। त्रिमूर्तियोंकी एकताकी बार-बार चर्चा  
करनेवाले कालिदास हैरण्यगर्भ सम्प्रदाय, शैव-संप्रदाय  
और वैष्णव सम्प्रदायके बीच वैमनस्यके एक युगकी  
ओरभी संकेत करते हैं। कुमारसम्भवके पंचम सर्गमें  
शिवदूषण अवैदिक शैव-सम्प्रदायके प्रति जनताकी  
अवज्ञाका द्योतक है। कालिदास गोपूजामें विश्वास  
रखते हैं। राजनीतिक दृष्टिसे दक्षिणापथके सम्बन्धमें  
कालिदासका ज्ञान सीमित है। कालिदासके समय  
ब्राह्मणके लिए मद्य-मांस निषिद्ध नहीं था। उनके

'प्रकर'—अगस्त ६२—७४

कुछ राजा पगड़ी बाँधते हैं तो अन्य मुकुटधारी हैं। पति  
की मृत्युपर स्त्रियां अग्निप्रवेश करती थीं, पर प्रचलन  
नहीं था। घरके बाहर निकलते समय स्त्रियां घूँघट  
तथा स्तनोत्तरीय पहनती थीं, कंचुलिकाका वर्णन नहीं  
है। राजा लोग ब्राह्मणोंको अग्रहार प्रदान करते हैं,  
कृषि भूमि नहीं। कलिंग तटपर नारिकेरका उल्लेख है।  
केरलमें नारिकेरका प्रवेश प्रथम शती ईस्वीमें हुआ था।  
कालिदास-काव्यमें रथ और रथ-युद्धका वर्णन है।  
सातवीं शती तक आते-आते भारतमें रथयुद्ध समाप्त  
हुआ था।

कालिदासकी संस्कृत महाभाष्यकारकी संस्कृतसे  
सुवासित है। पाणिनीके पद, धातु, तद्धित वैचित्र्य,  
लकारार्थ प्रक्रिया सब कालिदासके समय लुप्तप्राय हैं।  
भाषामें समासोंकी बहुलता नहीं, प्राकृत भाषाका  
प्रचार है। उनकी भाषा पतञ्जलि भाषाके समीप है।  
भास, शूद्रक, कालिदासके समय उदयन, पालक जैसे  
योगंधरायण, शबिलक जैसे ब्राह्मण थे। यह क्षत्रियोंके  
पतन तथा आयुधजीवी ब्राह्मणोंके प्रभावकी सूचना है।  
लेखकके अनुसार यह चन्द्रगुप्त द्वितीयके पहलेकी दशा  
थी। अतः कालिदास ई. पाँचवीं शतीके पूर्वके थे।

कालिदासीय कृतियोंपर विचार करते हुए लेखक  
ऋतुसंहारको कालिदासकी रचना नहीं मानते क्योंकि  
उनके समय कुलीन स्त्रियां गात्रिक—कुंचुलिका नहीं  
पहनती थी, स्तनांशुक मात्र पहनती थी। सीमा (देश),  
मनोरथानि, वप्रम् (कृषिस्थल), वितरीतरीतु आदि  
कालिदासीय प्रयोग नहीं हैं।

लेखक व्यास, वाल्मीकिको सिद्ध कवि और कालि-  
दासको साध्य कवि मानता है। उसका मन्तव्य है—  
"महाभारत तुल्य राष्ट्रीय जीवनसे प्रतिबिम्बित रघुवंश,  
रामायण-तुल्य गाँहिकचर्या-दर्पण कुमारसंभवके बरा-  
बरका काव्य बादमें यहां नहीं हुआ। संस्कृतकी नूपुर-  
ध्वनि मात्र कालिदास-काव्यमें सुनायी पड़ती है। उनका  
काव्य भारत-श्रीके छत्र-चामर हैं। (पृष्ठ ६०)।

'कालिदासकी सभा' की विशेषताओंपर प्रकाश  
डालते हुए यह दिखाया गया है कि उनके समय तक  
नागरिक जीवन एक रूप प्राप्त कर चुका था।  
कण्व, कश्यप, दिलीप, रघु आदि द्वारा कविने जीवनके  
चिरंतन आर्ष धर्म और क्षात्र धर्मको ऊपर उठाकर  
दिखाया है। सबमें कुछ समान कालिक चिह्न हैं, जो  
संभवतः उस कालके नागरिक जीवनकी छाया होगी।



जीवन उनके लिए एक उत्सव-सा था। दया-दाक्षिण्य एवं दक्षता उनके पात्रोंका वैशिष्ट्य हैं। संस्कृतके अन्य किसीभी काव्यमें इतना नृत्य-गीत सान्द्र वातावरण देखनेको नहीं मिलता। रस-ध्वनि कालिदासके काव्यकी विशेषता है। उनके नागरिक संकेत भर देते हैं, व्यंजक पदोंका प्रयोग करते हैं। लेखक कहता है कि कालिदासके लिए व्यंजना एक कला-संकेत मात्र नहीं है, जीवन-पद्धति भी है। इसका कारण उनके सहवासी नागरिक वृन्दही हैं (पृष्ठ ७४)।

अगला शीर्षक है 'धर्मधीवर', जहाँ लेखकने यह दर्शाया है कि मनुके समयसे चली आरही वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्थासे कालिदास तनिक भी विचलित होना नहीं चाहते। कालिदास धर्म-पालनपर जोर देते हैं, तभी तो कसाईका काम करनेवाला धर्मव्याध अपना घन्धा बुरा नहीं समझता। शाकुन्तलम्का धीवर रामायणके केवटके समान स्थितप्रज्ञ है, जो निछ होनेपर भी अपने सहज धंधेको छोड़ बैठनेको तैयार नहीं है।

'मेघालोक' शीर्षकके अन्तर्गत कालिदास-काव्यमें मेघके महत्त्वकी चर्चा की गयी है। कालिदासकी उक्ति है—'मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृत्ति चेतः'। कालिदासको रवित-विरक्तिके द्वन्द्वके समर्थ प्रकाशक कवि सिद्ध किया गया है। मेघके प्रति कालिदासके अति-आकर्षणके पीछे लेखकका अनुमान है कि मेघदर्शनसे प्राप्त आमोद, वामनपुराणमें वर्णित यक्षनिशा महोत्सव, चिरन्तन प्राप्य दूतकाव्य संकेत, उपनिषदोंका उत्तरायन मार्ग-वर्णन आदि प्रेरक तत्त्व रहे होंगे। मेघदूतमें कवि के निजी अनुभवकी छायाभी देखी गयी है। लेखकका अनुमान है कि किसी राजकुमारी या राजनर्तकीके साथ कविका संपर्क राजकोपका कारण बना होगा और स्वदेश कुन्तल विदर्भ लौट जानेका राजादेश हुआ होगा। मेघदूत तथा विक्रमोर्वशीयमें परिवेदन हुआ है। भोजने मेघदूतको संघात काव्य माना है। रामायणका हनुमान इसमें तीन बार प्रत्यक्ष होता है। लेखक मेघदूत तथा रामायणके हनुमन्त दूतमें कुछ साम्य देखता है—मेघ और पवनतनय दोनों स्वेच्छाचारी हैं और इच्छा स्वीभी। एक जाता है दक्षिणकी ओर, दूसरा जाता है उत्तरकी ओर। रक्षोवसती लंका और यक्षोवसती अलका, रावण और उसके भाई वैश्रवणकी नगरियां। लंका राक्षसीके स्थानपर है अलका लक्ष्मी। रामगिरि और यक्षगिरिमें समानता है। हनुमान तथा मेघ दोनोंकी

छाया ग्रहण करनेवाले भी हैं। मैनाक और आम्रकूट पर्वत। अशोकवन और यक्षिणीका वासस्थान छाया-प्रतिछाया लिये हुए हैं। दोनोंमें अन्तर है तो यह है कि रामायणका दौत्य वर्षा ऋतुमें चातुर्मास्यके बाद होता है तो मेघसंदेश चातुर्मास्यके पूर्व। राम-शरके समान सीधे बढ़ते अंजनानंदन ब्रह्मचारी है, पर मेघ संपूर्ण मार्गके विहार-प्रसंगोंका उपभोग करनेवाला विलासी है। मेघ-दूतको सुन्दरका अभिधान है तो हनुमत् चरितवाले रामायणका कांड है सुन्दरकांड। मेघसंदेशका दूत अचेतन है, जो काव्यको नया आयाम प्रदान करता है।

कालिदासने मंदाक्रान्तामें मेघदूत लिखा है। द्रुत और विलंबित स्पंदनोंको एक विशेष अनुपातमें मिलाकर यह छन्द चलता है। समछन्द होनेसे इसमें वैचित्र्य का अभाव रहता है। इस अभावको दूर करनेके लिए कवि संस्कृत विभक्ति-मिश्रण, समास, श्रुत्यनुप्रास, वृत्त्यनुप्रास आदिका सहारा लेता है। उदाहरणके लिए मेघदूतके प्रथम छन्दमें यक्ष और शाप बाध-बाधक हैं। इनका द्वन्द्व भाव व्यक्त करनेके लिए प्रथमा और तृतीया विभक्तियोंका मिश्रण किया गया है। 'जनकतनया स्नान पुण्योदकेषु' में सीताके दीर्घ स्नानकी व्यंजना है तो 'कान्ताविरह गुरुणा', 'अस्तंगमितमहिमा', 'स्निग्ध छाया तरुषु' आदिमें भाव नैरन्तर्य है।

'गंधर्व और अप्सराएँ' प्रसंगमें तत्संबंधी वैदिक और पौराणिक आधारोंपर प्रकाश डाला गया है। लेखक के अनुसार कामदेवभी गंधर्व हैं। 'कंदर्प' शब्द गंधर्वका ही प्राकृत रूप है। ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण आदिमें प्राप्त कथाकी पृष्ठभूमिमें कालिदासने पुरुरवा-उर्वशी की कल्पना की है, पर उर्वशी नामक अग्निकन्याको कुलीना नारीके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। गंधर्व गंध-युक्त हैं और अप्सराएँ लावण्यमयी हैं। इन्द्र अप्सराओं को प्रणिधि कहते हैं। कालिदासके अनुसार उत्तर-पश्चिम भारत अप्सराओंका शक्तिकेन्द्र रहा। लेखकने भारतके ऋषियोंके अप्सराओंके साथ सम्बन्धपर विस्तारसे विचार किया है। यहाँ मानव तथा अप्सराओंमें विवाह होता था। कई ऋषि लोग अप्सराओंकी संतान थे। भारतके कई राजा-महाराजा अप्सराओंपर अनुरक्त थे। द्रविड़ राजाभी अपवाद नहीं थे। स्मृतिकारोंके अनुसार द्रविड़ गणिकाएँ पंचचूडाकी वंशजा हैं। महाभारतके अनुसार उर्वशी और घृताची मलय पर्वतपर रह चुकी थीं। लेखकने यह स्पष्ट दर्शाया है कि उर्वशीको अरणी



मानकर कीगयी वेद-व्यवस्था स्वीकार करें तो कथाको एक वैदिक अर्थ मिल सकता है। उर्वशीने अप्सराओंके लिए निर्धारित कर्मोंका अतिक्रमण किया। जनता अप्सराओंके प्रति उभयमुखी दृष्टि रखती थी। अप्सराएँ निन्दा तथा स्तुतिकी पात्री बनी हैं। निरूपम कोई भी वस्तु स्पर्धा एवं संघर्षका कारण बनती है। इसलिए प्राचीनकालमें वह सर्वसाधारणकी संपत्ति या राजसंपत्ति मानी जाती थी। 'रत्नहारीतु पार्थिवः' का यही तात्पर्य था। लेखकका स्पष्ट मत है कि मध्य एशियाकी 'उर' नगरीमें प्राप्त पुजारी देवदासियां ही उर्वशी आदिकी कल्पनाका आधार हैं। अप्सराओंका नामकरण उर्वशी (उरुजा) तिलोत्तमा (तिलसे उत्तमा), रंभा (लंभा, गणिका), मेनका (मान्या) सोद्देश्य था। मागध, वैतालिक आदिका आदर्शकृत रूपही गंधर्व है।

'वाग्मेयकार कालिदास' शीर्षकके अन्तर्गत लेखक की यह स्पष्ट धारणा है कि कालिदासके समय एक विपुल गीत साहित्य रहा। हालकृत सप्तशती तथा कालिदास कृत गीतोंमें एक ही भावमुद्रा देखी जा सकती है। कालिदासके मुख्यगीत महाराष्ट्री एवं मागधी प्राकृतोंमें हैं।

अगला प्रतिपाद्य विषय कुमारसंभव है। समीक्षकोंकी शिकायत है कि कुमारसंभव अधूरा रह गया है। इसमें कुमारसंभवका वर्णन नहीं है और तारकवध भी नहीं है। उपलब्ध काव्य 'गिरिजा विवाह' या 'कामदहन' रह गया है। बात यह है कि आज प्राप्त कुमारसंभवके प्रथम आठ सर्गोंकी ही कालिदासकृत माना जा रहा है, शेषको अन्य किसी कवि द्वारा लिखा गया बताया जा रहा है। लेखकभी प्रथम आठ सर्गोंकी ही कालिदास कृत मानता है, पर कथाको आगे ले चलनेकी आवश्यक सामग्री कालिदासके अन्य ग्रंथोंमें संकेत रूपमें प्राप्त है। राजकुमारोंके वर्णनके समय स्कंदही कालिदासका आदर्श रहा है। तेजस्वियोंका जन्म—कुमारसंभव—लोकहिताय होता है, यह कालिदासका विश्वास है। स्कंदको अयोनिज दिखानेका प्रयास पुराणोंमें हुआ है। लेखक कालिदासके वचनोंसे प्राप्त कथा-संकेतों द्वारा काव्यको पूर्ण करनेकी कल्पना करते हुए बताता है कि अग्निदेव द्वारा शिवतेजस् स्वीकार करना नवम सर्गका विषय बनता है। रघुवंशमें बताया गया है कि अग्निने उस तेजको मंदाकिनीमें पहुंचा दिया। गंगाप्रवाहसे वह वीर्य किनारे शरवणमें पहुंचता है। मेघदूतमें 'आराधनं

शरवणभवं देवम्।' छः कृत्तिकाओंने उसका पालन-पोषण किया है। दसवां सर्ग शरवणभवका शैशव होगा। ग्यारहवेंमें उसकी शस्त्रविद्या या 'प्रपेदिरे प्राक्तन जन्म-विद्याः' के आधारपर स्वयं प्रकाशित होनेकी बात होगी। बारहवें सर्गमें स्कंदका सेनापति रूपमें अभिषेक एवं युद्धयात्रा होगी। तेरहवां सर्ग तारकवध होगा। अन्तिम सर्गमें सेनानीका कैलामगमन तथा पार्वती-परमेश्वरकी वंदना होगी। विक्रमोर्वशीयमें युद्धांतर स्कंद के गंधमादनके कुमारवनमें बस जानेका वर्णन है। रामायणके बालकांड, शतपथ ब्राह्मण, शिवपुराण, स्कंदपुराण, कालिकापुराण आदिमें भी कुमारसंभवकी कथा मिलती है। पर पुराणोंकी रचना कालिदासके बादमें हुई है। लेखकने कुमारसंभवपर आधारित अन्य भाषा-काव्योंकी भी चर्चा की है। इसी प्रसंगमें तमिलके मुरुकनपर भी प्रकाश डाला गया है। इन्दोनेशियाके 'कविभासा स्मरदहन' काव्यमें तारकका हन्ता गणपति है। प्रश्न उठता है कि कालिदासको यह कथा कहाँसे प्राप्त हुई। भौतिक शक्तियोंकी पराजय तथा ज्ञान-तप शक्तियोंकी विजयका उदाहरण बनकर उमा हैमवतीकी कथा उपनिषद्में है। लेखकका अनुमान है कि उसकी व्यापक व्याख्या प्रस्तुत करनेवाली पुराण कथाएं रही होंगी।

'अहो ! उदग्र रमणीया पृथ्वी' शीर्षक देकर कालिदासके प्रकृति सौन्दर्यपर विस्तारसे विचार किया है और बताया है कि कालिदास प्रपंच-प्रतिभासको ईश्वरकी विभूति मानते हैं। कालिदास मुख्यतया प्रकृति मृदु कोमल एवं मधुर रूपोंके चित्रे हैं और इस कारण प्रकृतिके क्रुद्ध रूपमें भी एक मधुर मुस्कान छिपी हुई है।

'अधिकार हस्तारण' पर विचार करते हुए यह बताया गया है कि कालिदासने इस देशका नाम-निर्देश नहीं किया, पर दुष्यन्त-पुत्र भरतको नाटकका विषय बनाते समय भारत सम्राट्की संकल्पना उनके मनमें रही होगी। कालिदास राजत्वको दिव्य मानते हैं, भले ही उनके समयतक वर्णाश्रम धर्म एवं राजाका क्षत्रियत्व समाप्त हो चुका था। ब्रह्मक्षत्र सहयोग उन्हें प्रिय था। दिलीप, रघु, अज, दशरथ, रामकी राज्य-प्राप्ति और उनके शासनपर गम्भीर विचार प्रस्तुत करके यह दिखाया गया है कि कालिदासने रघुके बाद उनका-सा महत्त्व मात्र अतिथिको दिया है। कालिदासकी यह मान्यता रही कि राजवंशी एक बालकमें भी शासन-भार



संभालनेकी क्षमता है। यही कारण है कि उन्होंने ध्रुव-सिद्धिके छहवर्षीय बालकके राज्याभिषेकका अनुमोदन किया है। लौकिक भोगासक्तिमें तन्मय अग्निवर्णभी कालिदासकी प्रशंसाका पात्र रहा।

अगला प्रकरण है 'शाप और प्रमाद।' कालिदासकी मान्यता रही कि महान् लोगोंका वचन असिद्ध नहीं हो सकता। प्रशस्त देवताको साक्षी बनाकर अन्यकी विपत्तिकी अभिशंसा ही शाप है। शपथ शापके समीप है। वर शापका विपरीत धर्म है। पुराणोंमें वर्णित शापों तथा उनके मुक्ति-साधनोंपर व्यंग्य-कटाक्ष करते हुए लेखकका कथन है कि शाप-मुक्तिकी रीतिही विचित्र है। देखनेसे मुक्ति, स्पर्शसे मुक्ति, सूँघनेसे मुक्ति, स्मरणसे मुक्ति। कुछ शाप कालिकभी होतेथे। शाप देनेवाला मुक्ति दे, यहभी आवश्यक नहीं था। उर्वशी शापित हुई भरतसे, पर मुक्त हुई इन्द्रसे। शाकुन्तलम् में वर्णित शाप-कथा मूलमें नहीं है, वह कल्पित है। कालिदासने शकुन्तला-शापमें मात्र दुर्वासिको दोषी नहीं ठहराया, नियतिका भी खेल था क्योंकि अंगुलीय खोने की बात शापमें नहीं थी। अंगुलीय दिखाकर शकुन्तला दुष्यन्तको विवाह-कथाका स्मरण दिला सकतीथी। पर नियतिने ऐसा होने नहीं दिया। कालिदासकी दृष्टिमें अहितका एक कारण प्रमादभी है—जागृतिका अभाव। यही कारण है पुराणोंमें समावर्तनके समय प्रमाद दूर करनेके उपदेशकी बात लिखी हुईहै।

आलोच्य ग्रंथमें अगले छः प्रकरण शाकुन्तलम्पर हैं। लेखकने यह दिखायाहै कि चार अक्षरोंकी संज्ञा-युक्त कालिदास, चार अक्षरोंका शाकुन्तलम्, उसमें चौथा अंक और उसमें चार पद्य अत्यन्त प्रशंसनीय हैं। 'यास्यत्यद्य' वाला श्लोक कण्वकी दुःख-चिन्ताका सूचक है। 'पातुं न प्रथम' शकुन्तलाके लिए भावुकाशंसा देने हेतु शस्य-लतादिसे कण्वका आग्रह सूचक है। 'अस्मान् साधु' संयम धन, यशोधन, स्नेह-धनवाला संदेश दुष्यन्त के लिए है। 'शुश्रूष्व गुरुन्' शकुन्तलाको उपदेश है। इन्हींको पाश्चात्योंने जीवनका दुःखगीध कहा तो भारतीयोंने निश्चल आह्लाद गीतकी संज्ञा दी। चौथे अंकका आश्रम जीवन न महाभारतमें है, न रामायणमें। कालिदासने आश्रमवासियोंको संन्यासी नहीं, वैखानस कहा है। गौतमी जैसी वृद्धा, शकुन्तला, प्रियंवदा अनसूया जैसी तरुणियां उच्चशिरा कण्वके आश्रमवासी हैं। कण्व वन-वासी होकर भी लोकज्ञ हैं, स्थितप्रज्ञ हैं। कालिदास

पोषक पिता कण्वमें साक्षात् पितृत्वका दर्शन करतेहैं।

नाटकमें संघर्षको महत्त्व देनेवाले नव्य समीक्षक चतुर्थकी अपेक्षा पंचम अंकको वरीयता देतेहैं। ऐसे समीक्षकोंसे प्रतिवाद करते हुए लेखक पंचम अंककी कथाका विस्तृत विवेचन करताहै और दिखाताहै कि पतिगृह पितृग्रहसे परित्यक्ता शकुन्तलाके लिए पुरोहितका घर ही रह गयाहै, जैसे रामसे परित्यक्ता सीताके लिए वाल्मीकिका आश्रम। पर शकुन्तला सीताका स्मरण करके भूमिगर्भ में जाना चाहतीहै। सीता भूमिगर्भमें चली गयी, पर शकुन्तला मेनका द्वारा ऊपर उठा ले जायी जातीहै। कालिदासने शकुन्तलाको सत्ववती रूपमें प्रस्तुत कियाहै। सत्ववती नारीके साथ किया गया अन्याय भारी जुगुप्सा से युक्त है। इस अंकके अन्तमें सभी पात्र पीड़ित विवश हो रंगमंच छोड़ जातेहैं। यहां न मारकाट है, न शापही। कृत्रिम भाषाके आक्षेपसे युक्त संस्कृत भाषामें कालिदासकी करतूत उसकी नाड़ी पहचान पाने वाले ही समझ पायेंगे। यह रंगमंचीय नाटक मात्र नहीं है, उत्तम काव्यभी है।

शाकुन्तलम्के प्रथम और सप्तम अंकोंमें स्पष्ट दिखायी देनेवाले कुछ साम्योंपर लेखकने प्रकाश डाला है। सातवां अंक मातली और दुष्यन्तकी रथयात्रासे आरम्भ होताहै। प्रथम अंकमें सूत और राजाको इसी रूपमें हम देखतेहैं। दोनों अंकोंमें प्रकृति-सुषमा अपनी पराकाष्ठापर है। दुष्यन्त तपस्वियोंकी सुख-स्थितिसे गौरवान्वितहो सकतेहैं तो सप्तममें देवताओं द्वारा वीर-गाथासे। पर प्रथम अंककी प्रकृति-सुषमासे बढ़कर है हेमकूट-सुषमा। प्रथम अंकमें सूतको बाहर छोड़कर राजा आश्रममें जातेहैं तो सप्तममें राजा बाहर रहकर सूत को मारीचाश्रममें भेजतेहैं। प्रथममें शकुन्तला केन्द्र-बिन्दु है तो सप्तममें दो तपस्विनियोंसे अनुगत बालक। देशको भारत नाम देनेवाले भरतको सर्वदमनके रूपमें अवतरित करनेके पीछे कविका कोई उद्देश्य रहा होगा। कविका यह संकल्प रहा होगा कि दण्डधारी भरत भारत धर्मका प्रतीक बनेगा।

शाकुन्तलम्के द्वितीय तथा षष्ठ अंकोंकी भी तुलना की गयीहै। दोनों विदूषकांक हैं। द्वितीय अंक प्रथम अंक की घटनाओंका संधान है। षष्ठ अंकमें पांचवें अंककी ओर कटाक्षक्षेप है। पहलेको आलंकारिक अयोग विप्रलंभकी संज्ञा देतेहैं तो दूसरेको शाप प्रवास विप्रलंभ। दोनोंमें विदूषककी अनुपस्थितिमें घटित घटनाओंकी दुष्यन्त उससे चर्चा करतेहैं। विदूषककी दृष्टिसे दोनों अंक



महत्त्वपूर्ण है। द्वितीय अंकमें स्रष्टाको चित्रकार और शकुन्तलाको चित्र रूपमें कल्पित किया गया है तो पष्ठ में दुष्यन्तही चित्रकार बनते हैं।

लेखक आर्यपुत्रके नामपर भी विचार करता है। उनके नामके चार रूप मिलते हैं—दुष्यन्त, दुष्पन्त, दुश्यन्त और दुष्मन्त। विदूषकका नाम माढव्य, माठव्य, माधव्य तीन रूपोंमें मिलता है। शपथ तथा महाभारतमें 'दुष्पन्त' रूप मिलता है। पुरुवंशी होनेसे कालिदास पौरव नामके प्रति विशेष लगाव दिखाते हैं। कालिदासने दुष्पन्त रूप स्वीकार किया है। लेखकने भोजके व्याकरण तथा सरस्वती कंठाभरणको आधार मानकर दुष्यन्त रूपको स्वीकार किया है। अंगुलीयमें अंकित नाम क्या था, इसका कहीं संकेत नहीं है। लेखकका अनुमान है दुष्पन्तका एक गूढ़ार्थ है, जो पालीमें है। दुष्ट (जिसका पालन न किया जाये) सन्ध (प्रतिज्ञा) मिलकर दुस्सन्ध बनता है। कालिदासने प्रतिज्ञा अर्थमें सन्धका कई बार प्रयोग किया है। प्राकृतभाषिणी प्रियंवदा आदिके कथनमें यह अर्थ अधिक स्पष्ट होता है। दुस्स (दुष्टता) का अन्त अर्थभी लिया जा सकता है।

'शकुन्तला' शब्दकी व्युत्पत्तिपर भी लेखक प्रकाश डालता है। प्राचीन ग्रन्थोंमें शकुन्तलाकी दो बहनें आती हैं—एक मेनका और विश्वासुकी पुत्री प्रमद्वरा प्रमदाओंमें श्रेष्ठा, दूसरी मदालसा जो मेनकाकी पुत्री है। शकुन्तलाका एक भाईभी है, महाभारतके अनुसार विश्वा मित्र-पुत्र शकुन्त। शतपथ ब्राह्मणकी हरिस्वामी रचित व्याख्यामें शकुन्तलाको अप्सरा कहा गया है। सहजन्त्या, चित्रलेखा नामक अप्सराओंको हंस रूपमें कल्पितकर वर्णन विक्रमोवंशीयमें मिलता है। इस आधारपर मेनका रूपी हंसिनीसे पालिता होनेसे शकुन्तला नाम सार्थक है। हास-परिहासमें दुष्यन्त शकुन्तलाको कृष्णमृग शावकों सहित पालित कहते हैं, पर शकुन्तों द्वारा पालित नहीं। दुष्यन्त आकाशगामी, परभूत, द्विज आदि शब्दोंका प्रयोगभी शकुन्तलाके संदर्भ में करते हैं। उणादि सूत्रके अनुसार शकुन्त सामान्य पक्षी वाचक शब्द है। कालिदास साहित्यमें शुक, पारावत मोर, गरुड़, हारीत, कलहंस चक्रवाक, सारस आदि अनेक पक्षियोंका उल्लेख है। कालिदास संभवतः कलहंसको शकुन्तला-पालनका भार सौंपना चाहते हैं। पर प्रश्न है कि लालिताके अर्थमें 'शकुन्तला' पदको वैयाकरणोंकी स्वीकृति मिलेगी? लालिता कैसे ला होगा?

'प्रकर'—अगस्त १२—७८

शकुन्तः ला स्वीकार करना कठिन है। शकुन्तोंका सखियोंके रूपमें लानम्—आदान वैयाकरण स्वीकार करेंगे। पत्रलमितिलातेः के; ला आदाने (वामन—काव्यालंकार) हिन्दीभाषियोंको भी स्वीकार होगा। शकुन्तला दीर्घापांग नामक हरिण-शावकको पालती थी। पर कालिदासने शकुन्तको पालने या खेलनेकी सामग्री बनानेकी बात नहीं कही है। 'ल' प्रत्यय वेदोंमें अल्पार्थमें प्रयुक्त हुआ है। काशिराज पुत्रियों में सबसे छोटी अंबालिकाके ल क देखें। उस रूपमें शकुन्तलाको वात्सल्य द्योतक छोटी पक्षिणी बना सकता है। इस प्रकार लेखक शंकुणि नायरने शकुन्तलाके संभावित अर्थोंपर विचार किया है।

'शकुन्तलाकी विदेशी बहनें शीर्षक देकर लेखकने उन विद्वानोंकी भर्त्सना की है, जो विदेशी भाषा साहित्यों में शकुन्तलाके समतुल्य पात्रोंकी खोज करते हैं। कई शोधार्थियों तथा विद्वानोंने डब्ल्यू. एच. हड्सनके उपन्यास ग्रीन मासपेन्सकी रीमा, शेक्सपियरके 'दि विन्सेंस टेल' की परदिना तथा 'टेम्पेस्ट' की मिराण्डासे शकुन्तलाकी तुलना की है और साम्य दिखाया है। लेखक स्वयं स्वीकार करता है कि 'टेम्पेस्ट' के प्रोस्पेरो तथा कवमें 'कई सिद्धियां देखी जा सकती हैं। पर टेम्पेस्टकी मिराण्डा लोकज्ञान विहीन भोली लड़की है, शकुन्तला लोक ज्ञान विहीना नहीं है। यही नहीं मिराण्डा तथा शकुन्तला दो भिन्न संस्कृतियोंकी उपज है। दोनोंमें समता देखना हमारे तथाकथित पण्डितोंकी मूर्खताका द्योतक है। कालिदासके अतिशय महत्त्वको कम करना है। शंकुणि नायरने यह स्वीकार किया है कि भास कालिदासके पूर्ववर्ती नाटककार हैं तथा 'मालविकाग्निमित्र' और 'स्वप्नवासवदत्ता' कई बातोंमें समता रखते हैं।

कालिदासके काव्योंमें नाटकीय द्वन्द्वपर सविस्तार प्रकाश डालते हुए लेखकने यह स्वीकार किया है कि नाटकीय द्वन्द्व कालिदास-काव्यका एक वैशिष्ट्यही है। जीवित प्रपंचमें निजी अनुभवोंके आधारपर साधर्म्य-वैधर्म्योंकी कल्पना करके दोनोंका द्वन्द्व दिखाकर जीवन की संभावनाओंसे अवगत होनेके दिव्यचक्षु कालिदासको प्राप्त हुए थे। रघुवंशमें सिंह-दिलीप द्वन्द्व तथा आगे रघु-महेन्द्रके बीच द्वन्द्व दिखाया गया है। यही क्यों, सर्वस्वदान करके निर्धन बने रघुके पास कौत्स घनकी अभ्यर्थना लेकर आते हैं तो रघु कौत्सको खाली हाथ



लौटाना नहीं चाहते। वे कुवेरको जीतकर धन लाना चाहते हैं। कुवेर धनकी वर्षा करता है, पर रघु अपने लिए उस धन-राशिसे एक कौड़ी तक लेनेको तैयार नहीं। कौत्स उस धनको छूना तक नहीं चाहते। यह निःस्पृहता एवं त्यागशीलता देखकर अयोध्यावासी रोमांचित हो उठते हैं। आगे रघु धर्मरक्षानिरत वानप्रस्थाश्रममें नगरकी सीमापर रहते हैं और अर्थोन्मुख कार्योंमें दत्तचित्त हैं। दोनोंके उद्यमोंमें स्पर्धाका वर्णन कालिदासकी विशेषता है। कुमारसंभवमें शिव-पार्वती विवादकी भासुरता दर्शनीय है। शाकुन्तलम्के पांचवें अंकमें चित्रित नगरवासियों, आश्रमवासियोंका द्वन्द्व अपने-आपमें विशिष्ट है। मधुर और क्लिष्ट, सादृश्य-वैसादृश्यके अनुधावनमें कविकुलगुरु कालिदासका प्रतिद्वन्द्वी नहीं है।

‘पद-वाक्य विचार’ प्रकरणमें कालिदास-काव्यकी अभिव्यंजना शैलीपर गम्भीर विचार प्रस्तुत किया गया है। कालिदासको कोशके आधारपर समझा नहीं जा सकता। महाकवि वर्ण्य विषयको इन्द्रियग्राह्य बनानेकी कलासे अवगत हैं। वहां पद-प्रयोग एवं वाक्य विन्यासकी निजी शैलियाँ हैं। कालिदास धात्वर्थको पकड़कर व्यंग्य प्रयोगमें अपना सानी नहीं रखते। कालिदास-काव्य व्यंजनाप्रधान है, वहां पाठककी कल्पना-क्षमताकी परीक्षा होती है। उनका रचना-सौन्दर्य वाक्य-वक्रतामें निहित है। कालिदासकी उपमाओंमें द्वयीकरणकी प्रवृत्ति साधारण है। साधारण उपमाओंमें दो रेखाएं एकसाथ मिलती हैं, पर कालिदासकी एकही रेखा दो भागोंमें विभक्त होती है। उपमा उत्प्रेक्षाकी ‘होमरिक’ रीति कालिदासको प्रिय नहीं। कृत्रिम समान-रचनासे कालिदास बचे रहे। उनके समास द्योतन-शक्ति बढ़ाने वाले हैं। आरोपित शब्द लिंग-कल्पना जैसे ब्रह्म-माया, प्रकृति-पुरुष, शिव-शक्ति आदि कालिदासको प्रिय है। लेखकने यह ठीक ही बताया है कि कालिदास काव्यमें माधुर्यका कारण श्रुत्यनुप्रास एवं महाराष्ट्री प्राकृतका सम्पर्क। सौन्दर्य, माधुर्य एवं वेषभूषाके लिए महाराष्ट्र-विदर्भ प्रसिद्ध हैं ही। संस्कृतकी मुख्य नायिकाएँ रुक्मिणी, दमयन्ती इन्दुमती, रेणुका, मालविका, सुकन्या, लोपामुद्रा आदि इसी प्रदेशकी हैं। कालिदासकी वैदर्भी शैली इसीकी देन है।

‘प्रेम असमाप्तोत्सव’ शीर्षकमें लेखकने यह दर्शाया

है कि कालिदासके पाँचों काव्य प्रेम प्रधान हैं। उसकी यह भी मान्यता है कि प्राचीन भारतमें प्रेम और काममें कोई विभाजक रेखा नहीं खींची गयी थी। अनुरागका प्रथम सोपान तृष्णा है और द्वितीय सोपान प्रसन्नता। इसे यहाँ क्रमशः काम और रतिकी संज्ञा दी गयी है। शिवने कुमारसंभवमें मात्र कामको जलाया है, रति शेष है। विवाहानन्तर काम पुनर्जीवित भी होता है। कामभी देवता कोटिमें है, सोमयज्ञमें उसकी मंत्रोपासना है। कालिदास-काव्यमें गृहस्थाश्रमको महत्त्व मिला है, अन्य तीनों उषीके अंग हैं। गृहस्थाश्रममें अरुन्धती, अनसूया आदि हैं, जिनके प्रति कालिदासमें पूज्य भाव है। ये नारियाँ मनुष्य-मार्गपर चलकर सिद्धाएँ बन गयी हैं। फिरभी अरुन्धती भर्तृपादापिता है। भारतमें मातृत्व ईश्वर-साक्षात्कारका पर्याय है। सुख-तृष्णावाले प्रेमके प्रतीक हैं यक्ष, उर्वशी, पुरुरवा और अग्निवर्ण। कालिदासने तृष्णाको समुद्रान्तर्गत ‘वाङ्वाग्नि’ कहा है। यही कारण है, शाकुन्तलम्में धरा स्वर्गकी ओर उठती है जबकि ‘विक्रमोर्वशीय’में स्वर्ग धरा पर उतर आता है। कालिदास प्रेमके उदात्तोरणके अनुमोदक हैं। शिव-पार्वती उनके आदर्श दम्पती हैं।

अंतमें लेखकने यह निष्कर्ष निकाला है कि भारत की चेतनाके साथ समग्रतः तादात्म्य-प्राप्त महात्माही कालिदास हैं। उनके समय तक विभिन्न सांस्कृतिक धाराएँ समन्वयको प्राप्तकर चुकी थीं। कालिदास-काव्यका अध्ययन एक तीर्थयात्रासे कम महत्त्वका नहीं है। भारतके समस्त पुण्यतीर्थ, पवित्र नगरियाँ, पावन नदियाँ, वन-पर्वत सबकुछ तीर्थटकोंके लिए प्रेरणादायक रहे हैं भारतीय संस्कृति और ज्ञानका प्रचार तीर्थटनों द्वारा संभव हुआ है। कालिदास, पुण्यतीर्थों, पवित्र नगरियों, नदियों वन-पर्वतोंके प्रति परम श्रद्धालु हैं।

सारांशमें ‘छत्रदुम् चामरदुम्’ एम. पी. शंकुणि नायरके व्यापक अध्ययन गम्भीर चिन्तन और क्रान्त-दर्शित्वका परिचायक ग्रन्थ है। उनकी खोजपरक दृष्टि और उससे प्राप्त मौलिक विचार आद्यन्त द्रष्टव्य हैं उनकी तत्त्वान्वेषी दृष्टि मात्र संस्कृत तक सीमित नहीं है, प्राकृत-पालि, मलयालम, तमिल तथा पाश्चात्य साहित्यों तक पहुंच जाती है। यही कारण है कि किसी प्रसंग या पात्रपर आतेही नायर वेद, उपनिषद, पुराण तथा अन्य भाषा-साहित्योंसे उसकी संगति ठानेका प्रयास करते हैं। किसी निर्णयपर पहुंचनेके लिए संज्ञापदोंके धात्वर्थको भी वे



प्रश्रय देते हैं। उपनिषद् में एक नग्नजितका वर्णन है। लेखक पूछता है—नग्न कौन ? उत्तर वह स्वयं देता है 'वेद संस्काररहित लोग नग्न कहलाते हैं' (पृष्ठ १११)। 'विदर्भ' पर विचार करते हुए उसका कथन है कि वैदिक कर्मों के लिए आवश्यक दर्भ घास न प्राप्त होने वाला आर्यावर्त के बाहरका प्रदेश। बहुत दर्भ मिलनेका अर्थ भी हो सकता है। किसी बात के समर्थन में लेखक कई स्थानों से प्रमाण प्रस्तुत करता है। उसका कथन है कि भारत के कई राजवंशों एवं ऋषि वंशोंका अप्सराओं से सम्बन्ध रहा। इसके समर्थन में वह लिखता है—  
 "वसिष्ठ और अगस्त्य उर्वशी-पुत्र थे। शुक घृताची-पुत्र थे। ऋष्यशृंग भी उर्वशी पुत्र थे। भरद्वाज-द्रोणकी माता घृताची थी। स्थूलशिरा रंभा का प्रेमी था। विश्वामित्र मेनकाका प्रेमी था। कई राजाओं ने अप्सराओं से सम्बन्ध रखना चाहा। अंगराज के बारे में कालिदासका कथन है 'सुरांगना प्राथित यौवन श्रीः'। अप्सराओं मानवों के बीच मिश्र विवाह होते थे। (पृष्ठ १११)।"

समीक्षा जैसे नीरस विषयको सरस बनाने के लिए शंकुणि नायर अवसर पाते ही हास-परिहास एवं व्यंग्य का सहारा लेते हैं। भावना-कल्पना से बंचित अत्याधुनिक कवि, समस्त भारतीयता पर पाश्चात्य रंग बढानेका प्रयास करनेवाले समीक्षक, धूर्त राजनीतिज्ञ, पाश्चात्य पोशाक में बाबू बन घूमते-फिरते मुखं घनाढ्य, परद्रोही पुरोहित वर्ग, रिश्वत लेकर गलत प्रमाणपत्र बांटते अधिकारी लोग, सब कोई उनके व्यंग्य के शिकार बनते हैं और इस हास-परिहास या व्यंग्य के लिए वे बहुधा अंग्रेजी शब्दोंका प्रयोग करते हैं। दो-एक उदाहरण द्रष्टव्य है : "पक्षियोंका जन्मस्थान भारत हो तो राजनेता या प्रशासनिक अधिकारीकी धूर्तता के बिनाही 'नेटिविटी सर्टिफिकेट' उन्हें मिल सकेगा" (पृष्ठ ८८)। विदेशी वस्त्रों में बने बैठे लोगों पर व्यंग्य कटाक्ष करते हुए लेखकका कथन है—  
 "भारतीय आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज पहुंच सूट-बुट पहनकर बाबू बने। वैसेही मागध-बैतालिक, गणिकाएँ स्वर्ग में पहुंच वेषभूषा बदलने पर गंधर्व-अप्सराएँ बन गये (पृष्ठ ११६)। फादर हेरास और उनके समर्थक मलयालम के आलोचकोंकी भर्त्सना करते हुए लेखक लिखता है :  
 "फादर हेरास ने मोहन जोदड़ो (मोए-जो-दड़ो) में गजमुखको प्रत्यक्ष देखा है। उनके साथ बालकृष्ण पिल्ले भी रहे होंगे (पृष्ठ १४३)।" कालिदास के श्लोकों में दोष देखकर उनका संशोधन करनेवाले समीक्षकोंको 'प्लास्टिक सर्जन' की संज्ञा देते हैं (पृष्ठ २२६)। "दुर्वासा

कण्वाश्रम में कुलपति कण्वकी अनुपस्थिति में गेस्ट हाउस की सेरप्रैस विजिट के लिए नहीं आये होंगे (पृ. २००)।" शाप वाणी पर परिहास के स्वर में लेखक कहता है—  
 "उनकी दृष्टि में संस्कृत में ही यह क्षमता है (शापका प्रभाव)। मलयालम में शापका प्रभाव नहीं। हांणी में बिलकुल नहीं। हिन्दी में ? आधा प्रभाव पड़ता है। आधा होता और आधा नहीं होता। आधा-आधा (पृष्ठ १६३)।" कहीं-कहीं परिहास के शब्द कुछ कटु भी हो जाते हैं, जैसे "हमारे देश में श्रमिकोंकी पीठ पर सवार कुछ लोग हैं, राजनीतिज्ञ नामक बदमाश, अधिकारी नामक धूर्त और पुरोहित नामका परद्रोही। बिना श्रम के खाने वाले ये दुष्ट पीठ पर से उतर जाते तो वे सीधे खड़े रह पाते थे (पृष्ठ २७४)।"

शंकुणि नायरकी भाषा संस्कृत गर्भित है, प्रत्येक पद पांडित्यका स्रोतक है। समीक्षा साधारण जनताको दृष्टि में रखकर लिखी नहीं जाती, अतः भाषाका शिष्ट प्रयोग अपेक्षित है। पर इसका यह भी तात्पर्य नहीं विद्वान् लोग लेखकको समझ पाने के लिए बार-बार कोशका सहारा लेते रहें। नायर ने कई ऐसे शब्दोंका प्रयोग किया है, जो शिक्षित लोगोंकी भी समझ में नहीं आते। यही नहीं, प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृत के अनेक श्लोक उद्धृत हैं, जिन में से दो-एकका तात्पर्य समझाया गया है। शेष श्लोकोंकी व्याख्या-तात्पर्य समझाया नहीं गया। लेखक यह आशा नहीं कर सकता कि उसका प्रत्येक पाठक संस्कृतका विद्वान् होगा। श्लोकोंका यथास्थान तात्पर्य दिया होता तो ग्रंथकी उपादेयता और भी बढ़ जाती। लेखक द्वारा प्रयुक्त कुछ संज्ञा पदोंका उच्चारण रूप जैसे कुमरिल भट्ट, पुलाकेशी, विक्टर यूगो, महिभट्ट, अप्रोडाइटी, एलियड विवादका विषय बन सकता है। लेखक के अनुसार कालिदास के पूर्व ही वर्णाश्रम धर्म तथा राजाका क्षत्रियत्व समाप्त हो चुका था। उसने उदाहरण के रूप में लिखा है कि मौर्य चन्द्रगुप्तका वृषलत्व असंदिग्ध था (पृष्ठ १६६)। चन्द्रगुप्तका वृषलत्व आज विवादास्पद है। हिन्दी के महाकवि जयशंकर प्रसाद ने अनेक प्रमाणों द्वारा चन्द्रगुप्त मौर्यको क्षत्रिय सिद्ध किया है और इस आधार पर 'चन्द्रगुप्त' नाटक लिखा है।

उपयुक्त त्रुटियाँ बिलकुल नगण्य हैं। शंकुणि नायरका ग्रंथ 'छत्रवुम् चामरवुम्' असाधारण प्रतिभा एवं विवेचन-क्षमताका परिचायक समीक्षा ग्रंथ है। विषय वस्तुकी प्रौढता एवं मौलिकता तथा अपूर्व अभिव्यंजना शैली के कारण प्रस्तुत ग्रंथ मलयालम समीक्षा साहित्य में विशिष्ट स्थानका अधिकारी है। □



## बौद्धिक प्रखरता और नवीनताका असमी काव्य

कृति : ब्रह्मपुत्र इत्यादि पद्य

कृतिकार : अजित बरुवा

समीक्षक :

डॉ. भूपेन्द्रराय चौधरी

अजित बरुवा असमिया आधुनिक साहित्यके एक विशिष्ट कवि हैं। पांचवें दशकमें वे कविके रूपमें उभरे। बहुत कम कविताएं लिखकर भी उन्होंने असमिया काव्य साहित्यमें अपनी पहचान बनायी है। वे क्यों लिखते हैं, इसका कारण बताते हुए 'ब्रह्मपुत्र इत्यादि पद्य' काव्य की भूमिकामें लिखा है— 'पर मैं लिखता हूँ अपनी प्रीति हेतु। स्वप्रीतिरेव प्रधानम्। शब्दोंसे, उपमाओंसे खेलनेपर एक आनन्द मिलता है। पर कभी कभी भारही। फिरभी वे शब्द अच्छे लगते हैं जो सुन्दर ध्वनिकी महिमासे आनन्दप्रदायक होते हैं अथवा उन वस्तुओंके नाम अवलुप्त हैं।' कविने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि वे काव्य बिम्ब आदिके लिए नैसर्गिक सौन्दर्यसे अधिक प्रेरणा प्राप्त करते हैं, अध्ययनसे। यह सही भी है। अजित बरुवा असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, फ्रांसीसी साहित्यके अधिकारी विद्वान् हैं, उर्दू शायरीके प्रति भी वे दिलचस्पी रखते हैं। अनेक देशी-विदेशी साहित्यकारोंसे वे प्रभावित हैं जिन्हें वे अपनी कविताके संदर्भ में बतानेपर हिचकते नहीं हैं। विशेषतः वे इलियटसे अधिक प्रभावित हैं। इसे वे स्वीकारते हैं इस प्रकार : 'अंग्रेज कवि टी. एस. इलियटसे मैंने काव्य-शैली अपनानेका प्रयत्न किया है।' इलियटकी भांति प्रस्तुत कवि की भी मान्यता है कि कुछ मानसिक अवस्थाके शब्दगत साम्य प्राप्त करनेके लिए कवि शब्दोंकी खोज करता है। सम्भवतः इसलिए वह कुछ लिखता है।

अजित बरुवाके दो काव्य-संकलन प्रकाशित हैं— किछुमान पद्य आरु गान (कुछ पद्य और गीत, १९८२ ई.) तथा साहित्य अकादमी द्वारा सद्यःपुरस्कृत

कृति ब्रह्मपुत्र इत्यादि पद्य (१९८६ ई.)। प्रथम काव्य-संकलनके प्रति कविके मनमें जो कुहासा था वह दूसरे संकलनके अंतराल तक प्रायः छंट गया है। कविमें आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया है—उनके लिए विकासका एक नया मार्ग प्रशस्त हो गया है।

असमिया काव्य-साहित्यमें अजित बरुवाकी विशेषतः दो कविताएं—'मन कुंवली समय' तथा 'जैराइ १९६३' विशेष उल्लेखनीय रचनाएं हैं। आधुनिक जीवनकी जटिल मानसिक स्थितियोंके चित्रण तथा काव्यरीति, प्रतीक, बिम्ब-विधानके कारण उनकी ये दोनों कविताएं सार्थक आधुनिक असमिया कविताओंकी पहचान बनाये रखेंगी। उनके प्रारंभिक काव्य-संकलनमें भी कुछ सार्थक कविताएं संकलित हैं।

प्रस्तुत काव्य-संकलन (ब्रह्मपुत्र इत्यादि पद्य) में बाईस कविताएं संकलित हैं। कविने इन्हें तीन भागोंमें विभाजित किया है—लम्बी कविता, छोटी कविता एवं अनूदित। लम्बी कविताओंके अन्तर्गत तीन कविताएं हैं—ब्रह्मपुत्र, स्किज्जोफ्रेनियार (Schizophrenia खण्डित मनस्क) विषये और चैनर पारत। अन्य सत्रह कविताएं छोटी कविताओंके अन्तर्गत हैं, यथा : शुवनि आमार गाँवखन अति, सृष्टि ओलटार कथा, एजार गधर बेजार गुचाइ फुलिल हेजार फुल, प्रश्न सोधा चराइ, अलंकार शास्त्री आदि। दो अनूदित कविताएं हैं—निर्वासन (फ्रांसीसी : सेंट-जन पेच) एवं ईष्ट कोकर (अंग्रेजी : टी. एस. इलियट)। मूल फ्रांसीसी तथा अंग्रेजीसे अनूदित करके इन दो कविताओंको संकलनमें स्थान



देनेके प्रसंगमें कविने कहा है— 'इन दोनों कविताओंके अनुवाद करनेका एक मात्र कारण है यह प्रत्याशा, जिससे इन दोनों कविताओंकी शैलियोंके प्रभावसे मेरी रचनाओंके उत्कर्षमें संवर्द्धन हो। फ्रांसीसी कवि सेंट जन पेचंके अनुकरणसे मैं अत्यधिक लाभान्वित हुआ हूँ। असमके गांवके नैसर्गिक दृश्य और जीवन-यात्राके उपादानमें मेरे इस प्रिय कविकी शैलीका सतकंतापूर्वक प्रयोग किया गया है।' स्मरण रहे कि कवि बरुवाने काव्यानुवादके साथ कवि-परिचय, संदर्भको स्पष्ट किया है जिससे रसिक पाठकको अनुदित कविताओंका पूर्णतः रसास्वादन हो सके।

'ब्रह्मपुत्र' इत्यादि पद्य की प्रथम कविता है— 'ब्रह्मपुत्र' २३३ पंक्तियोंकी इस कविताको बारह उपशीर्षकोंमें इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि मानो बारह कविताओंकी मणियोंको एक मालामें गूँथ दिया गया हो। 'पूर्वाद्ध' तथा 'उत्तराद्ध' दो प्रारंभिक और अंतिम कड़ीके मध्य 'प्रतिश्रुतदेशः रामधेनु प्रपात', 'नील-पक्ष्म पक्षी', 'प्रभुर सेवकर आगमन' इत्यादि उप-शीर्षकोंमें कविताका विस्तार दिया गया है। हिमालयके मानसरोवरसे उत्पन्न होकर तिब्बत, अरुणाचल प्रदेशसे होते हुए असमके मध्यसे बहकर बंग-सागरमें मिलने वाला ब्रह्मपुत्र नदी अनेक ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवनका जीवन्त साक्षी है। इस कविताका 'पूर्वाद्ध' प्रारंभ होता है तांत्रिक साधकके प्रभात कालमें जागरण कर अपने गुरु को सहस्रदल-कमलचक्रमें आराधना करनेके साथ—

अनवतप्त हृद स्वयंभू मंडल, अष्टदल शय्या  
कैलाश शिखरकी छायामें

धरतीके उद्भवके साथ साथ.....

पन्ना-सी हरी रेतसे

मेरा पुण्य-समर्पण

रम वह्न्यात्मकं पुण्यम्—अग्निगर्भं पुष्प

ऊँ

नमः सद्गुरवे तुभ्यं भुक्ति-मुक्ति प्रदायिणे।

कवि बरुवाने कभी (१९४३ ई.) एलडस इस्कलि की कोई रचना (कुसंस्कारपर) पढ़ते समय जापानी संन्यासी एकाई कवागुचि द्वारा लिखित 'तिब्बतमें तीन वर्ष' का संदर्भ प्राप्त किया था और रोमांचित होकर 'ब्रह्मपुत्र' पर कविता लिखनेके लिए प्रेरित हुआ था। तब से १९८० तक का समय व्यतीत हो जाता है जब

'प्रकर'—अगस्त '९२—८२

कविको 'तिब्बतमें तीन वर्ष' पुस्तक काठमांडूमें खरीदनेको मिलती है। कवागुचिकी पुस्तकमें ब्रह्मपुत्रके उत्पत्ति स्थल मानसरोवरका वर्णन, टचांगयो नदीका विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। इसी पुस्तकसे कविने अपनी ब्रह्मपुत्र कविताकी प्रारम्भिक पंक्ति 'अनवतप्त हृद, स्वयंभू मंडल, अष्टदल शय्या' स्वीकार की है। तिब्बती नदी टचांगपो (ब्रह्मपुत्रका तिब्बती नाम) के रहस्य जालमें कवि खो जाते हैं—

रहस्य संधानी लकड़ीके टुकड़े

बह जाते हैं कहीं खोकर

रहस्य रहस्य बना रहता है

टचांगपो टचांगपो।

(ब्रह्मपुत्र : पूर्वाद्ध)

अतः 'ब्रह्मपुत्र' कविताका प्रारम्भिक भाग पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह किसी रहस्यमय मंत्रसे उद्भूत होकर पेमाको दोगे पागसो का स्वागत-तोरण पार करते हुए महाबाहु ब्रह्मपुत्रके रूपमें बहता आया है। इसी ब्रह्मपुत्रके तटपर बसनेवालोंके जीवनके सुख-दुःख, उत्थान-पतन-धार्मिक भाषिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक क्रमको कविने प्रतीक रूपमें अभिव्यक्त किया है। और कविताके उत्तराद्ध तक आते-आते कवि ने अनुभव किया है :

विचित्र जीवन-मार्ग !

त्यागके पथपर है जो मुक्ति

भोगके पथसे भी है वही ?

इन्द्रियकी उपलब्धि होती है शतगुण वृद्धि

वह एकही मार्ग

और एक है भोग वंचनाका ?

सागर संगम मानो विश्वव्यापी प्रसारित स्वस्ति  
का विश्वास !

सागर अंबर जहां अंबर सागर, भीम भेरी मन्द्र  
सप्तकमें। यात्रा जहाँ विराममें होती है स्तब्ध।

अथवा अनन्त यात्रा चिर निस्पन्दित।

(ब्रह्मपुत्र : उत्तराद्ध)

कवि बरुवाने दो प्रकारकी आगका अवलोकन किया है—आगत और मृत। इस आगके धुंधलेपनमें कवि स्किज्जोफ्रेनियाकी उपलब्धि करता है जो वस्तुतः एक मानसिक व्याधि है। 'स्किज्जोफ्रेनियाके बारेमें' कवितामें अंग्रेज मनोविज्ञानी डेमिड लेडका प्रभाव देखा जा सकता है। इस कविताको पांच भागोंमें विभक्त किया गया है जिसका विशेष कोई औचित्य नहीं लगता।



प्रथम भागमें संयुक्त हुए हैं स्किज्जोफ्रेनिया ग्रस्त दो साधारण रोगी, द्वितीय भागमें युक्त हुआ है एक स्किज्जोफ्रेनिया हत्याके योगमें मृत्यु दंडित व्यक्ति । तृतीय भागमें वर्णित हुआ है अध्यात्म-संधानी अनुमित स्किज्जोफ्रेनियाग्रस्त पुरुषके विषयमें । चतुर्थ भागमें लेखकके रूपमें स्किज्जोफ्रेनियाग्रस्त व्यक्ति और पंचम भागमें चित्रित हुआ है स्किज्जोफ्रेनियाग्रस्तके रूपमें एक अभिनेता । कवि बरवाने बदलेमर, गेरिक तथा तांत्रिक साधक मत्स्येन्द्रनाथकी भाँति आत्मतत्त्वकी उपलब्धि की है—

देह अंध कारागार

देह जीवन्मृत

देह शव अनुभूतिमय ।

देह और आत्माका भेद

साधनाका निर्देही अध्यात्म ।

(स्किज्जोफ्रेनियाग्रस्त विषये)

बरवाकी अन्य एक लम्बी कविता 'चेनार पारत' (चेनाके तटपर) में कवि विदेशकी किसी चेना नदीके तटपर बैठकर असमकी स्मृतिमें खो जाते हैं । उन्हें यह कहतेमें संकोच नहीं होता—

मैं असमको चाहता हूँ मूर्खकी भाँति

विश्व ब्रह्माण्डको है मेरा नमस्कार ।

'चेनाके तटपर' कविताके शीर्षकके नीचे कविने कोष्ठमें 'घर-विरहीकी उक्ति' लिखा है, जिससे उनका आशय स्पष्ट हो जाता है । इसलिए उन्हें असमके किसी आजरा गाँव, फरकटिंग स्टेशन, बरचिला पोखर, कालदिया नदी, पागलादिया नदी इत्यादि स्मरण हो आते हैं ।

शेष कविताओंमें, यथा : युवनि आमार गाँवखन अति, सृष्टि ओलटार कथा, सुवास बहुतर हम, प्रश्न सोधा चराइ, बादुलि ओलमा राति, फेंटी कपौ, अलंकार शास्त्री इत्यादिमें कवि बरवाने विभिन्न प्रतीकों, बिम्बोंका सफल प्रयोग किया है । कविने किसीभी बात को सहज-सरल रूपसे कहनेका प्रयत्न नहीं किया । जीवनकी जटिल मानसिकताको कविने मानो सार्थक शब्द देनेका प्रयास किया है—

वर्गक्षेत्रके बीच वर्गक्षेत्रके बीच

वर्गक्षेत्र

बनाकर मुझे आनन्द आता था

और पइथागोरसका उपपाद्य

समद्विभुज त्रिभुजके कोणके ऊपर

जीवनकी बानगी

(एजार गछर बेजार गुचाई है फुलिल  
हेजार फूल)

+

+

+

वर्तमान और मृत्युके बीच

अस्तित्वका एकमात्र अर्थ ।

आसंग-लिप्साका घ्राण

परस्परकी प्रतीक्षामें दृढ़ दृश्यपट ।

(सुवास बहुतर हम)

कविने विभिन्न प्रतीक और बिम्बोंका सफल प्रयोग किया है । ये प्रतीक या बिम्ब जटिल जीवन एवं मानसिक अवस्थाओंके द्योतक बन गये हैं । घिसी-पिटी या परिचित चित्रकल्पोंकी उन्होंने उपेक्षा कर दी है । उनकी कविताओंमें आधुनिक असमिया कविताकी एक नवीन उपलब्धि प्राप्त होती है, इसमें कोई संदेह नहीं । यथा :

१. स्थिर पानीमें खिले हुए सरसों

चलो देखने चले । पीला फागु ।

(सृष्टि ओलटार कथा)

२. पर मेरी रेल जायेगी भविष्य

रातकी रेल रातकी रेल चीतल हरिणी रातकी रेल  
चीतल हरिणी रातकी रेल ।

मेरी पसलीके स्लीपरमें ।

अन्धत्वके उस पार । (बादुलि ओलोमा राति)

३. हाय प्रेम, प्रेम मेरा

छातीके पानीकी दरिक्कण मछली । (फेंटी कपौ)

४. रक्त जबांस निर्गंत होता रहा स्नेह ।

हृदयके बीच

गौरैयाकी तरह आतुर होकर

दीवारपर टकराकर घूमती रही

केवल एकही बात ।

(हृदयविद्ध होबार सुवासेरे)

५. दरीपर सोते हुए चमगादड़ गिनता हूँ

उड़ जाता है चमगादड़ एकके बाद एक

चांदके मृगको बार बार ढककर (लेचेरी बौटला)

बरवाकी कविताएँ पढ़नेपर लगता है कि वे बहुत

मनन करनेके बादही कुछ कहना चाहते हैं जो साधारण पाठकोंके लिए न होकर प्रबुद्ध पाठकोंके लिए ही विशेषतः होता है । उनकी कविताकी कुछ पंक्तियों, कुछ



प्रतीकों या बिम्बोंसे ऐसा प्रतीत होता है कि कोई प्रिज्म है जिससे प्रकाशके प्रतिबिम्ब रंग प्रकट होते हैं।

कवि बरुवा वस्तुतः बुद्धिवादी कवि हैं। बुद्धिवादी धुंधलेपनके कवि होनेके कारण उनकी कविताएँ सामान्य रूपसे ग्राह्य नहीं हैं। निस्संदेह बरुवाने असमिया कवितामें प्रयोगका नवीन आयाम प्रस्तुत किया है जिससे असमिया कविता बौद्धिक विकासके पथपर अग्रसर है। प्रस्तुत पुरस्कृत कृति 'ब्रह्मपुत्र इत्यादि पद्य' काव्य-संग्रह एक सार्थक रचना ही नहीं

है, असमिया काव्य साहित्यकी एक अन्यतम विकास सीढ़ी भी है। इसका विकास क्रम सतत बना रहे, संभवतः कविकी यही स्वर्णिम आकांक्षा है। इसलिए कवि कहता है—

मैं उदासी नहीं हूँ अलंकार शास्त्री

हवाकी झोंक है उदासी।

इधर-उधर धूमती रहती है, कहाँसे आती है

किस दिशामें जाती है चली।

(अलंकार शास्त्री) [?]

## संस्कृत महाकाव्य

# कविसुलभ कल्पना, शैली और शब्दावली इतिहास और काव्यपर अधिकारका महाकाव्य

कृति : स्वातन्त्र्यसम्भवम्

कृतिकार : रेवाप्रसाद द्विवेदी

समीक्षक :

डॉ. कृष्णकुमार

भारतके स्वतन्त्रता संग्रामके इतिहासपर एक ओर जहाँ इतिहासविदोंने इतिहास ग्रन्थोंकी रचनाएँ की हैं, दूसरी ओर देशप्रेमकी भावनासे ओतप्रोत महाकवियोंने इस संग्रामका उज्ज्वल ओजस्वी चित्रण महाकाव्योंकी रचनाके माध्यमसे किया है। भारतमें प्रचलित प्रायः सभी भाषाओंमें इस प्रकारके काव्योंकी रचना हुई है। संस्कृत भाषाभी इससे अछूती नहीं है। संस्कृत लेखनकी परम्परा से समृद्ध विद्वान् परिवारमें जन्मे डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदीने संस्कृत भाषामें 'स्वातन्त्र्यसम्भवम्' महाकाव्यकी रचना कर भारतमाताके चरणोंमें श्रद्धाके सुमन अर्पित किये हैं। इस महाकाव्यकी रचनाके द्वारा डॉ. द्विवेदीने एक ओर जहाँ कालिदास जैसे कवियोंकी श्रेणीमें स्थान प्राप्त किया है, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय सम्मानके भी वे अधिकारी हुए। साहित्य अकादमी द्वारा संस्कृत भाषा में लिखी गयी इस वर्षकी रचनाओंमें सर्वश्रेष्ठ कृति 'प्रकर'—अगस्त १२—८४

के लिए प्रथम पुरस्कारका दिया जाना इस महाकाव्यकी श्रेष्ठताका प्रमाण है। भाव, भाषा, कथा संयोजन आदि सभी दृष्टियोंसे 'स्वातन्त्र्यसम्भवम्' महाकाव्य उज्ज्वल गुणोंसे सम्पन्न है।

विश्व इतिहासमें भारत प्राचीन कालमें मूर्धन्य रहा था। विद्या, कला, शौर्य, राजनीति आदि गुणोंसे श्रेष्ठ भारतीय मनीषियों और वीरजनोंने सम्पूर्ण विश्वमें अपनी सम्यक्ता संस्कृति, धर्म और विद्याका प्रसार करनेके साथही राजनीतिक प्रभुत्वभी स्थापित किया था। ईसासे पूर्वकी शताब्दियोंमें आधेसे अधिक विश्व किसीन किसी रूपमें भारतीय प्रभावके अन्तर्गत था। परन्तु विधिकी विडम्बनाको कौन सहनकर सकता है। भारतीय भौतिक समृद्धिसे आकृष्ट होकर दुर्दान्त विदेशियोंके आक्रमण हुए तथा यहांके शासकोंकी आन्तरिक निर्बलताओंने उनको इस देशको पादाक्रान्त करने



का अवसर दिया। परन्तु इसके साथही स्वतन्त्रताकी, देशप्रेमकी भावनाओंसे सम्भूत भारतीय वीरोंने पराधीनताके पाशोंको काटने एवं विदेशी शासनके जुएको उतार फेंकनेका सदा ही प्रयास किया।

प्लासीके युद्धमें मिराजुद्दौलाको युद्धमें पराजितकर लार्ड क्लाइवने भारतमें ब्रिटिश राज्यकी नींवकी पुष्ट कियाथा। धीरे-धीरे अंग्रेजोंने कूटनीति और पराक्रम का आश्रय लेकर सम्पूर्ण भारतको अपने आधिपत्यमें ले लिया। कुछ प्रदेशोंमें तो प्रत्यक्ष रूपसे ब्रिटिश शासन स्थापित होगया तथा शेष देशमें देशी राजा तो रहे, परन्तु वे ब्रिटिश शासकोंके नियन्त्रणमें कस लिये गये। एक प्रकारसे वे ब्रिटिश शासकोंके अधीनस्थ राज्यही थे। सम्पूर्ण भारत, उत्तरमें तिब्बतसे लेकर दक्षिणमें कन्याकुमारी तक तथा पश्चिममें खैबरकी घाटीसे लेकर पूर्वमें बर्मातक ब्रिटिश शासनके अन्तर्गत होगया।

परन्तु स्वातन्त्र्यकी भावना भारतीयोंमें सर्वथा नष्ट हो गयीहो, ऐसा नहीं था। भारतीय मनीषियों और वीरोंने देशको पराधीनताके पाशोंसे मुक्त करनेके लिए अपना सब कुछ समर्पित कर दिया। स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेके लिए भारतीयोंने जो युद्ध किये, प्रयास किये, उनका ही विशद चित्रण काव्यात्मक संस्कृत भाषामें डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदीने 'स्वातन्त्र्यसम्भवम्' महाकाव्यमें कियाहै।

'स्वातन्त्र्यसम्भवम्' महाकाव्यकी रचना २८ सर्गों में हुईहै। प्रतिभाशाली विद्वान् कविने १८५३ ई. के स्वतन्त्रता संग्रामके वर्णनसे इस महाकाव्यको प्रारम्भ करके कांग्रेसके स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं महात्मा गांधी तथा जवाहरलाल नेहरूके नेतृत्वमें लड़े गये स्वाधीनता संग्रामका विशद वर्णन करके स्वतन्त्रता-प्राप्तिके वर्तमान समयतक, श्रीमती इन्दिरा गांधीकी हत्यातककी घटनाओंका चित्र इस महाकाव्यमें अंकित कियाहै। संक्षेपसे २८ सर्गोंका विवरण इस प्रकार है—

प्रथम सर्ग पीठिकाके रूपमें विविध देवताओंकी वन्दनाके बाद कवि-भारतीकी प्रशंसा की गयीहै। दूसरे सर्गमें स्वतन्त्रताका संकल्प लेकर काशी और झाँसीश्वरी लक्ष्मीबाईका वर्णन है। तीसरे सर्गमें १८५७ ई. के स्वातन्त्र्य युद्धका चित्रण करते हुए भारतीय आदर्श उपस्थित किये गयेहैं। चौथे सर्गसे कवि जवाहरलाल नेहरू के वर्णन प्रारम्भ करतेहैं। प्रयागका वर्णन करके नेहरू जीका कमलाजीके साथ विवाह वर्णित हुआहै। पांचवें

सर्गमें वसन्तका वर्णन करके दम्पती द्वारा सन्तानोत्पत्ति की कामना वर्णित है, छठे सर्गमें कमलाजीकी गर्भावस्थाका वर्णन हुआहै। सातवें और आठवें सर्गोंमें देश और प्रकृतिका चित्रण है। सातवें सर्गमें कश्मीरका सौन्दर्य एवं शरद ऋतुका वर्णन है तथा आठवेंमें भारतीय ग्रामोंका चित्रण है। नवें सर्गमें भारतीय जनों द्वारा स्वतन्त्रताके आन्दोलनका वर्णन है। दसवें सर्गमें इन्दिराजीके जन्मका वर्णन हुआहै। ग्यारहवें सर्गमें सरसीके चित्रणके साथ वहां रहनेवाले हंसके कथनके माध्यमसे स्वदेशकी प्रशंसा की गयीहै।

बारहवां और तेरहवां सर्ग कश्मिर रससे पूर्ण हैं। बारहवें सर्गमें जवाहरलाल नेहरूजीकी पत्नी कमलाजी के महाप्रयाण और तेरहवें सर्गमें जवाहरलालजीके पिता मोतीलाल नेहरू एवं काँता स्वरूपरानीके महाप्रयाणका वर्णन कविने कियाहै। इसी सर्गमें इन्दिराजी के विवाह एवं पुत्रप्राप्तिका वर्णन कविने कियाहै। चौदहवें सर्गमें स्वतन्त्रता प्राप्ति एवं भारत विभाजनका वर्णन हुआहै। एक ओर भारतका प्रधानमन्त्रित्व जवाहरलालने संभाला तो दूसरी ओर जिन्ना पाकिस्तानके अधिपति हुए। सारी भारतभूमि रक्त और माँस से भर गयी। पन्द्रहवें सर्गमें पूर्वी पाकिस्तानमें विशेष रूपसे तो नोआखालीमें हुए नरसंहारके दृश्य कवि ने चित्रित कियेहैं। सोलहवें सर्गमें भारतीय सुशासनके वर्णनके साथही चीन और पाकिस्तान द्वारा किये गये आक्रमणोंका उल्लेख हुआहै। सतरहवें सर्गमें जवाहरलाल नेहरूके स्वर्गवासका मार्मिक चित्रण कविने किया है। अठारहवें सर्गमें कविने वर्णन कियाहै कि जवाहरलाल नेहरूके बाद लालबहादुर शास्त्री प्रधानमन्त्री हुए। उस समय पाकिस्तानने भारतपर आक्रमण किया, परन्तु वह पराजित हुआ। पाकिस्तानके साथ सन्धि हुई, परन्तु शास्त्रीजी के प्राण नहीं रहे। अठारहवें सर्गमें पाकिस्तानके साथ सन्धि करनेके लिए लालबहादुर शास्त्री ताशकन्द गये, परन्तु वहीं उन्होंने अन्तिम श्वास लिये। बीसवें सर्गमें कविने लालबहादुर शास्त्री के लिए शोक प्रकट कियाहै। उनके बाद इन्दिरा प्रधानमन्त्रीके पदपर आसीन हुईं।

इक्कीसवें सर्गमें भारतके साथ पाकिस्तानका युद्ध है। इसमें पाकिस्तानपर विजय हुई तथा उससे बंग देश पृथक् होगया। बाइसवें सर्गमें भारतमें उथल-पुथल एवं निर्वाचनोंके वर्णन हैं। इस समय इन्दिरा गांधीने



आपात्कालकी घोषणा की। तदनन्तर निर्वाचन हुए। तेईसवें सर्गके अनुसार निर्वाचनमें इन्दिरा पराजित होकर जनता पार्टीका शासन प्रारम्भ हुआ और मोरार जी देसाई प्रधानमंत्री बने। चौबीसवें सर्गमें वर्णन है कि जनता पार्टी अपना शासन न संभाल सकी, अपने ही बोझसे यह टूट गयी। इसपर कविने आक्रोश प्रकट किया है। पचीसवें सर्गमें कविने वर्णन किया है कि विषम विपाकोंकी शान्तिके लिए इन्दिराजी हिमालय पर्वतमें वैष्णवी देवीके दर्शनके लिए गयीं। यहाँ कविने वैष्णवी देवीकी स्तुतिके स्तोत्रोंकी रचना की है। छब्बीसवें सर्गमें निर्वाचनमें पुनः इन्दिराजीकी विजय एवं प्रधान-मंत्री बननेका वर्णन कविने किया है। सत्ताइसवें सर्गमें कविने वर्णन किया है कि इन्दिराजीने साहसके साथ स्वर्ण मन्दिरमें हुए उपद्रवोंको शान्त किया। परन्तु उनकी हत्या कर दी गयी। इस प्रकार सत्ताईस सर्गोंमें कविने स्वराज्य प्राप्तिसे लेकर 'इन्दिरा जीके परिनिर्वाणतकका इतिहास काव्यमें निबद्ध किया है। अठाइसवें सर्गमें स्वर्गमें जवाहरलाल नेहरूकी स्थितिका वर्णनकर जगत्के कल्याणकी कामना की है।

'स्वातन्त्र्यसम्भवम्' महाकाव्यके कथानकके इस सार से यह स्पष्ट है कि कविने महाकाव्यकी रचनामें जवा-हरलाल नेहरूके परिवारकी कथाका वर्णन करनेपर अधिक ध्यान दिया है। १८५७ ई. के स्वतन्त्रता संग्रामके कथानकसे प्रारम्भ करके वे इस महाकाव्यको वर्तमान समयमें श्रीमती इन्दिरागान्धीके परिनिर्वाण तक ले आते हैं। भारतीय स्वतन्त्रताके अन्य सेनानी पृष्ठभूमिमें ही ही पड़ गये हैं।

काव्यकी भाषा सुललित, स्पष्ट एवं गुणोंसे विशिष्ट है। शब्दोंका चयन विषयके अनुरूप है और अर्थोंकी गम्भीरतासे गम्भीर है। शरद्वस्तुके वर्णनमें कविने अलंकारोंके मनोरम निवेशके साथ भाषाके सौन्दर्यको प्रकट किया है—

नभसि विट इवोज्ज्वलैः परीते

चिकुरभरैर्विशरारुभिः पयोदैः ।

विलिखति विधये शरद् द्विरेफैः

कमलदलं पदमात्मनस्त्यजेति ॥

अपगतपरमाणुरेणुकोषै-

रियमधुना कुसुमैः शरीरशेषैः ॥

अपि सुमनसि कौतुकं सद्गण्डा

'प्रकर'—अगस्त'६२—८६

जरठवधूरिव केतकी शृणाति ॥

—स्वातन्त्र्यसम्भवम् ७.२७-२८ ॥

डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदीका वैशिष्ट्य विविध भावों और रसोंकी अभिव्यञ्जनामें है। उसके सम्पूर्ण सौन्दर्य का वर्णन तो इस लघु समीक्षामें सम्भव नहीं है तथापि कुछ उदाहरण अवश्य दिये जाते हैं।

कविने भारतकी स्वतन्त्रताका वर्णन इस महाकाव्य में किया है। अतः भारत देशके प्रति भक्ति-भावनाकी अभिव्यञ्जना समुचित है—

देशं च कालं च नमामि याभ्यां

विशेषभाग्यामितिहासगात्रे ।

विलिख्यते क्रान्तिमुपेयिवद्भ्यां

विक्रान्तिभाजां धवला प्रशस्तिः ॥

देशेषु सर्वैस्वर्षिभारताख्यो

देशोऽस्मदीयो ननु देशराजः ।

प्रशस्यते यत्र तथान धातु

यथा कवेः कश्चन सर्गबन्धः ॥

—स्वातन्त्र्यसम्भवम् ४.१-२

भारतवर्षकी त्वतन्त्रताके प्रसंगमें कविने स्थान-स्थानपर वीररसकी उद्बोधना की है। इनमें नारी शक्तिको भगवतजी दुर्गाका रूप प्रदान किया है। रानी लक्ष्मीबाई तथा श्रीमती इन्दिरा गान्धी उसकी विशेष आराध्या हैं। लक्ष्मीबाईके लिए कवि कहते हैं—

अंग्रेजशासन-विनाशकृत-भूति-योगां

सा भारतस्य वसुधां करवालहस्ता ।

दुर्गाम्बिकेव दिवमैच्छददित्यपत्य—

पाशाद् विमोचयितुमाशु मनुष्यरूपात् ।

॥ २.७२ ॥

इन्दिरा गान्धी द्वारा बंग विजयका उपसंहार कवि ने निम्न रूपसे किया है—

इत्थं बंगान् व्यजयत मही

भारतीयाऽऽत्मशशक्त्या

कृत्वा कारायमसदनयो-

रध्वनीनानतरातीन् ।

गान्धी देवी ध्यजयत पुनः संसदं संसदीये

तन्त्रे प्राणानिव निदधती

लोकनिर्वाचनोत्थान् ॥ २१-८२ ॥

भारतके विभाजनके प्रति कविका महान् आक्रोश है। १४वें सर्गमें कविने भारत-विभाजनकी पृष्ठभूमि दी है और अन्तमें पाकिस्तानके निर्माणके प्रति शोक प्रकट







सेनानियोंके निधनपर कविने महान शोक प्रकट किया है। इनके निधनका वर्णन निश्चय रूपसे पाठकोंके हृदयोंमें करुण रसका उद्रेक सम्भूत करता है। कमला नेहरू, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री और इन्दिरा गाँधी इनमें विशिष्ट हैं।

डॉ. द्विवेदीने स्वतन्त्रताके पश्चात् भारतमें हुई औद्योगिक एवं कृषि क्रान्ति, समृद्धिका मनोरम आकर्षक चित्रण किया है। सोलहवें सर्गमें स्वराज्यम् और सौराज्यम्का वर्णन करते हुए विभिन्न प्रसिद्ध औद्योगिक संस्थानोंका तथा कृषिके लिए विकसित किये गये सिंचाई साधनों, सेतुबन्धों आदिका वे वर्णन करते हैं। भिलाई और राउरकेलामें लोहेके विशाल कारखाने हैं।

कृषिको देवायत्त ही न मानकर नदियों आदिपर महान् सेतुबन्ध बनाये गये हैं—

देवायत्ता कृषिरिति नदीमातृकाणानिदानी-  
मस्माकं नः स्पृशति हृदयं नैव गाथा पुराणी ।

वारां राणीनपि लवणितान् न्यक्चिकीर्षन्तमीनः

पीयूषाम्भो निभूतजठरासोतुबन्धा महान्तः ॥

१६.१६ ॥

कवि न केवल मानवीय भावनाओंका चित्रण करने में कुशल है, वह प्रकृतिके विविध आकर्षक चित्रभी शब्दों द्वारा अंकित करनेमें समर्थ हैं। उदाहरणके रूप में निम्न वर्णन रोचक होंगे—

निदाघसरसी—

हंसा गता गतवती च विहंगपंक्तिः

शुष्कं जलं सुभग कर्दममात्रशेषा ।

एषा निदाघसरसी गृहवन्धुभिश्च

मण्डूकमत्स्यसदृशैः परिघट्टितस्त्वम् ॥ ११.४ ॥

कश्मीरस्थित उत्पलाद्रि—

इह हि गगनाभोगे प्रातर्हि नस्ति गमस्तिराड्

यमपि तिमिरस्तोमं क्षीमं नु मेचकिमेचकम् ।

तममृतकरैश्च स्तोकं सुधा विशदीकृतं

निशि निशि दृढं यूनां स्वान्ते निवेशयते कृती ॥

कविकी देवी-देवताओंके प्रति दृढ़ भक्ति है और वह इस काव्यमें स्थान-स्थानपर अभिव्यक्त होती है। विशेष रूपसे शिव-पार्वती वैष्णवदेवी और भारती (सरस्वती) के प्रति यह अधिक प्रकट हुई है : भारती (सरस्वती)

स्वातन्त्र्यसम्भवं तं हि भारतीयं विसिन्वती

भारती सर्गबन्धेऽस्मिन् व्यापिपात्तियदृच्छया ।

कविने काव्यके अन्तमें लोकमें शान्तिकी कामना करते हुए राष्ट्रके कल्याण और समृद्धिकी आशंसा उज्ज्वल, ओजस्वी और हृदयावर्जक शब्दोंमें की है—

भूयःसुः प्रतिशैलकुक्षि पयसां स्रोतांसि भूयांस्यथो

स्रोतस्स्वेषु समुल्लसन्तु मधुना पूर्णाः स्वराः पञ्चमा

प्रीतिस्फीतिसपीतिभिः सुमनसां भीतिद्रुहो नीतयो

भूयासुः प्रतिराष्ट्रमेव च महाकाजेश्वरस्य प्रियाः ।

माध्वीकेन युता भवन्तु मरुतां व्राताः समालिंगिता

यैर्गर्भं दधतेतरां व्रततयो लोकं पूर्णांगच्छदाः

माध्वीकं रजसामुरस्सु पृथिवीलोकोत्थितानामणी-

यस्स्वेषु प्रतिराजतामधिकृताम्भो वहि नवाय्वात्मसु

२८. २६-२७ ॥

यह महाकाव्य काव्यगत सम्पूर्ण विशेषताओं और गुणोंकी गरिमाको धारण करता हुआ १८५७ ई. से लेकर १९४७ ई. तक हुए स्वातन्त्र्य संग्राम और स्वतन्त्रता प्राप्तिके पश्चात् भारतवर्षके विशाल समृद्धि पराक्रम और राजनीतिके स्वरूपके चित्र प्रस्तुत करता है। स्वतन्त्रताके पश्चात् इस देशको अनेक युद्धोंका सामना करना पड़ा, उनका उज्ज्वल वर्णन तथा युद्धों में विजयका चित्रण कविकी स्वाभाविक प्रतिभा एवं काव्य-निर्माणकी दक्षताका परिचायक है।

डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी प्रतिभाशाली सिद्धलेखक हैं। स्वयं इस प्रकारके प्रतिभाशाली, विद्यानिष्णात विद्वान्को उनके 'स्वातन्त्र्यसम्भवम्' महाकाव्यके लिए सम्मानित करके साहित्य अकादमीने अपनेको तथा नेहरू वंशकी स्तुतिको सम्मानित किया है। □



## परिशिष्ट : २

❑ कृति विवरण

❑ कृतिकार परिचय

❑ समीक्षक परिचय

[भाषाओंके अकारादि क्रमसे]

### असमी

कृति: ब्रह्मपुत्र इत्यादि पद्य (काव्य)

कवि : अजित बरुवा

जन्म : १९२६, गुवाहाटी (असम) । शिक्षा : कलकत्ता वि. वि. से अंग्रेजीमें स्नातकोत्तर उपाधि । कार्य : असम और केन्द्रीय सरकारके विभिन्न विभागोंमें प्रमुख पदोंपर । १९८६ में असम राजस्व बोर्डके अध्यक्ष पदसे सेवा-निवृत्त ।

साहित्य क्षेत्र : अल्प वयसे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित । साहित्यिक विषयोंपर एक निबंध संग्रह प्रकाशित । अपने काव्य-संकलनका अंग्रेजी और बंगलामें अनुवादके अतिरिक्त कामूके नाटक 'ले जस्ट' का फ्रांसीसीसे असमियामें अनुवाद ।

सम्पर्क : नाओजन रोड, जोरपुखुरी पार, गुवाहाटी-७८१००१.

समीक्षक : डॉ. भूपेन्द्रराय चौधरी

कार्य : गुवाहाटी विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभाग में रीडर ।

सम्पर्क : ७२, विश्वविद्यालय परिसर, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)-७८१०१४.

### उड़िया

कृति : आहिन्क (काव्य)

प्रकाशक : ग्रंथ मन्दिर, कटक-२ । मूल्य : ३५.०० रु. ।

कवि : जगन्नाथप्रसाद दास

जन्म : १९३६, कटक (उड़िसा) । शिक्षा : उत्कल वि. वि. और इलाहाबाद वि. वि. । कार्य :

भारतीय प्रशासनिक सेवामें कार्यरत परन्तु पूर्व-सेवानिवृत्ति ले ली और लेखन तथा अनुसंधानमें संलग्न ।

साहित्य क्षेत्र : (१) काव्य-संकलन : प्रथम पुरुष, अन्य सबु मृत्यु, जे जाहार निर्जनता, अन्य देश भिन्न समय, यात्रार प्रथम पाद, आहिन्क, स्थिर चित्र, सचराचर । नाटक : सूर्यास्त पुर्वर, सबा शेष लोक, असंगत नाटक, पूर्व राग । कहानी : भवनाथ एवं अन्य माने, दिनचर्या, आमे जेऊं माने, साक्षात्कार, प्रिय विदूषक । उपन्यास : देश काल पात्र । अन्यान्य : आलिमालिका । उड़िया कलापर दो पुस्तकें । प्रायः सभी रचनाएं भारतीय भाषाओं में अनूदित ।

सम्पर्क : ३०५, एस. एफ. एस., डी. डी. ए. प्लेट्स, होजबास, नयी दिल्ली-११००१६ ।

समीक्षक : डॉ. वनमाली दास

जन्म : १९२९, डमणभूमि गांव (पुरी) । शिक्षा : जबलपुर वि. वि., उत्कल वि. वि. कटक । कार्य : प्रशासनिक कालेजोंमें प्राध्यापन, अब सेवा-निवृत्त ।

साहित्य क्षेत्र : शोध प्रबन्ध : फकीर मोहन और प्रेमचन्द : एक तुलनात्मक समीक्षा ; समीक्षा : ओड़ियाकी कृति और कृतिकार (पुरस्कृत) । उपन्यास : बेसुरा रागिणी । प्रचुर अनुवाद कार्य और पाठ्य-पुस्तकें ।

सम्पर्क : प्लॉट नं. ६३, सिरिपुर, भुवनेश्वर-७५१००३.

### कन्नड़

कृति : सिरिसपिगे (लोक नाटक)

कृतिकार : चन्द्रशेखर कम्बार

जन्म : १९३७, गोड गेरी (जि. बेलगांव) । शिक्षा :



कर्नाटक वि. वि. धारवाड़से एम. ए., पी-एच. डी. (कन्नड़ साहित्य) । कार्य : बेंगलूर वि. वि., अमरीकाके शिकागो वि. वि., सम्प्रति हम्पी कन्नड़ वि. वि. के कुलपति ।

**साहित्य क्षेत्र :** कवि; नाटककार और लोकवार्ताकार । काडुकुदुरे, नायी कथे सहित बीस नाटक, तकरारिनवरु और साविरद नेरळु सहित पांच काव्य संकलन, तीन उपन्यास : करिमायी, सिगारेव्व मत्तु अरमने, जी. के. मास्तरन प्रणय प्रसंग, लोक-साहित्यपर दस शोधपरक ग्रंथ है । कन्नड़ लोक-साहित्य-कोश भी आपके सम्पादनमें प्रकाशित हुआ है । राज्य और केन्द्र प्रशासन द्वारा पुरस्कृत ।

**सम्पर्क :** कुलपति, हंपी कन्नड़ विश्वविद्यालय, होसपेट (कर्नाटक) ।

**समीक्षक :** डॉ. शरेशचन्द्र चुलकीमठ

**जन्म :** १९५०, धारवाड़ । शिक्षा : एम. ए., पी-एच. डी. (हिन्दी), एम. ए. (रूसी भाषा एवं साहित्य) । कार्य : अध्यक्ष हिन्दी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ ।

**साहित्य क्षेत्र :** मोहन राकेशके कृतित्वपर शोध कार्य । काव्य-संकलन, सम्पादन । केन्द्र प्रशासन से पुरस्कृत । **सम्पर्क :** फोर्ट, धारवाड़-५८०००८.

## कोंकणी

**कृति :** सपनफुलां (कहानी-संग्रह)

**कृतिकार :** मोना काकोडकार

**जन्म :** १९४४, पालोलेम (गोआ) । शिक्षा : विल्सन कालेज मुम्बईकी स्नातक । मातृभाषा कोंकणीके अतिरिक्त मराठी-हिन्दी-अंग्रेजीमें निष्णात । कार्य : गोआ प्रशासनके लेखा निदेशालयमें कार्यरत ।

**साहित्य क्षेत्र :** पत्र-पत्रिकाओंमें रचनाओंके प्रकाशनसे इस क्षेत्रमें, प्रथम कहानी-संग्रह 'डोंगोर चानवल्ला' १९७६ में प्रकाशित, राज्य अकादमीसे पुरस्कृत । अब 'सपनफुलां' केन्द्रकी साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत ।

**सम्पर्क :** 'श्रेयस' विद्यानगर कालोनी, लेन ३, विद्यानगर, मरगांव (गोआ) ४०३६०१.

'प्रकर'—अगस्त'९२—९०

**समीक्षिका :** डॉ. चन्द्रलेखा डि'सोजा

गोआ वि. वि. से पी-एच. डी. । कार्य : एम. ई. एस. कालेजमें कोंकणीका अध्यापन ।

**साहित्य क्षेत्र :** हिन्दी-कोंकणी दोनों भाषाओंमें लेखन । शोध-विषय : धर्मवीर भारती और प्रकाश पाडगांवकारकी कविताओंका तुलनात्मक अध्ययन । हिन्दी और कोंकणी दोनों भाषाओंकी पत्र-पत्रिकाओंमें लेख ।

**संपर्क :** ४, शशि सदन, प्रथम तल, मुण्डिवेल, वास्को-डि-गामा (गोआ)-४०३८०२.

## गुजराती

**कृति :** टोळां अवाज घोंघाट (काव्य)

**कृतिकार :** लाभशंकर ठाकर

**जन्म :** १९३५, सेडाला (सुरेन्द्रनगर) गुजरात ।

**शिक्षा :** गुजराती भाषा और साहित्यमें स्नातकोत्तर उपाधि, आयुर्वेदमें डिप्लोमा । कार्य : १९६५ से १९७२ तक गुजरातीके प्राध्यापक, आयुर्वेद चिकित्सा कार्यमें भी संलग्न ।

**साहित्य क्षेत्र :** अल्प वयसे कविता लिख रहे हैं । प्रथम संकलन 'वाही जाति पछाल राम्या घोषा'के लिए गुजरात प्रशासन द्वारा पुरस्कृत-सम्मानित । महत्त्वपूर्ण कृति 'पोलू' गुलाब अणे हुं' (नाटक) को व्यापक मान्यता, गुजराती साहित्य परिषदसे पुरस्कृत । 'मानसानी वात', 'प्रवाहन' और 'लाघरो' अन्य काव्य संकलन । 'मारी बा' और 'क्षण-तत्क्षण' गद्य रचनाएँ व्यापक रूपसे प्रशंसित ।

**सम्पर्क :** 'ए-२, कैपिटल कार्मशियल सेंटर, प्रथम तल, संन्यास आश्रमके निकट, आश्रम मार्ग, एलिस ब्रिज, अहमदाबाद-३८०००६ ।

**समीक्षक :** डॉ. रमणलाल धनेश्वर पाठक

प्रोफेसर हिन्दी विभाग, म. स. विश्वविद्यालय, वड़ोदरा (गुजरात) ।

**सम्पर्क :** ब्राह्मण फलिया, तरसाली, वड़ोदरा-३९०००६.

## तमिल

**कृति :** गोपल्लपुरत्तु मक्कळ (उपन्यास)

**कृतिकार :** कि. राजनारायणन्

[पूरा नाम : राजयंगल श्रीकृष्ण राजनारायण  
पेरुमाल रामानुजन्]



**जन्म** : १९२३, इडै चैवल। (चिदम्बर नारमावट्टम)।  
 औपचारिक शिक्षा आठवीं तक, मातृभाषा तेलुगु,  
 लेखन तमिलमें। **कार्य** : स्वतन्त्र लेखन, सम्प्रति  
 पाण्डिचेरी केन्द्रीय विश्वविद्यालयमें विजिटिंग  
 प्रोफेसरके रूपमें कार्यरत।

**साहित्य क्षेत्र** : बीससे अधिक कृतियाँ प्रकाशित।  
 मुख्य रूपसे कथाकार, दस कहानी-संग्रह (कुल दो  
 सौ कहानियाँ) अबतक प्रकाशित। चार उप-  
 न्यास, तीन लोककथा संग्रह, तीन निबन्ध संग्रह  
 और एक जीवनी।

**सम्पर्क** : १८ थर्ड मेन रोड; और्वनगर, पाण्डिचेरी  
 ६०५००८.

#### समीक्षक : डॉ. एम. शेषन

**जन्म** : मदुरै (तमिलनाडु)। **शिक्षा** : तमिलनाडु,  
 उ. प्र. में आगरा एवं वाराणसी वि. वि. में।  
 काशी हिन्दू वि. वि. वाराणसीसे स्नातकोत्तर  
 उपाधि, मद्रास वि. वि. से पी-एच. डी.। **कार्य** :  
 सरकारी कालेज एवं मद्रास वि. वि. के द्वारका-  
 दास गोवर्धनदास वैष्णव कालेज, मद्रासमें हिन्दी  
 विभागाध्यक्ष, कुल ३२ वर्षों तक सेवारत।

**साहित्य क्षेत्र** : तमिलके शैव सन्त, तमिल साहित्य  
 एक झाँकी, भारतीय राष्ट्रीय संग्रामका तमिल  
 उपन्यासोंपर प्रभाव (सभी पुरस्कृत)। शोध-  
 प्रबन्ध: कल्कि एवं वृन्दावनलाल वर्मा : एक तुलना।  
 लेखोंके रूपमें पर्याप्त सामग्री प्रकाशित।

**सम्पर्क** : ११, डॉ. ए. रामस्वामी मुदलियार रोड,  
 के. के. नगर (पश्चिम), मद्रास-६०००७८.

#### तेलुगु

**कृति** : इट्लु, मी विधेयुडु (कहानी-संग्रह)

**कृतिकार** : ममिडिपाटि रामगोपालम (भरागो)

**जन्म** : १९३२, पुण्यगिरि (जि. विजयनगरम्)।  
**शिक्षा** : तेलुगु साहित्यमें स्नातकोत्तर उपाधि।  
**कार्य** : सर्वेक्षण विभागमें। गत नौ वर्षोंसे आंध्र  
 भूमि साप्ताहिकके लिए स्तम्भ लेखन। विशाखा-  
 पत्तनम्के प्रमुख लेखक संगठन 'विशाख-समिति'  
 के सक्रिय सदस्य।

**साहित्य क्षेत्र** : विद्वान् पिताके प्रभावसे सत्रह  
 वर्षकी वयमें लिखना प्रारम्भ, दो वर्षोंके भीतर  
 एक उपन्यास और एक दर्जन कहानियाँ प्रकाशित।  
 अबतक १४० कहानियाँ, तीन उपन्यास, रेडियो

नाटक तथा पुस्तक समीक्षाएं प्रकाशित। प्रमुख  
 प्रकाशनोंमें वंटोचिन मोगडु, उपन्यास ना की  
 उद्योगम वद्दु,, हास्य-व्यंग्य रचनाओंका संकलन  
 'कथाना कुतुहलम्' सम्मिलित हैं।

**सम्पर्क** : एम आई जी वन बी-७३, एम.वी.पी.  
 कालोनी, विशाखापत्तनम-५३००१७.

#### समीक्षक : प्रो. चक्रवर्ती

**जन्म** : १९३१, धालभूम (टाटानगर, बिहार)।

**शिक्षा** : रायपुर, मारिस कालेज नागपुर, उस्मा-  
 निया वि. वि. से स्नातकोत्तर उपाधि एवं पी-एच.  
 डी.। **कार्य** : उस्मानिया वि. वि. में हिन्दी  
 प्राध्यापक। १९६१ में हिन्दी विभागाध्यक्ष पदसे  
 सेवा निवृत्त।

**साहित्य क्षेत्र** : काव्य : पीड़ा, शृंगलद, अपूर्वपूर्व,  
 जिजीविषा, अनादिगाथा; नाटक : पुलकेशिन;  
 समीक्षा : प्रसादकी काव्य चेतना; वैदिक एवं  
 औपनिषदिक वाङ्मय एवं हिन्दीके महाकाव्यों  
 के तुलनात्मक अध्ययनमें विशेष रुचि।

**सम्पर्क** : गन्धमादन, १७-६-१७६/ए, कुर्मागुडा,  
 हैदराबाद-५००६५६.

#### बंगला

**कृति** : सादा खाम (उपन्यास)

**कृतिकार** : मति नन्दी

**जन्म** : १९३१, कलकत्ता। **शिक्षा** : कलकत्ता वि.  
 वि.। **कार्य** : कोशकार सहायक, स्वतन्त्र संवाद-  
 दाता, आनन्दबाजार पत्रिकाके संवाददाता।  
 क्रिकेट, फिल्मोंमें विशेष रुचि। कलकत्ता स्पोर्ट्स  
 जर्नलिस्ट क्लबके अध्यक्ष।

**साहित्य क्षेत्र** : पच्चीस उपन्यास, पाँच कहानी-  
 संग्रह प्रकाशित। क्रिकेटपर एक निबन्ध-संग्रह,  
 क्रिकेट अभिलेखोंपर एक पुस्तक। कुछ उपन्यासों  
 पर फिल्में।

**सम्पर्क** : २ विधान शिशु सरणि, फ्लैट ४०५,  
 स्काई लाइन, कलकत्ता-७००१५४.

#### समीक्षक : अवधेशप्रसाद सिंह

**शिक्षा** : कलकत्ता वि. वि. से एम. ए. (हिन्दी)  
 प्रथम श्रेणी। **कार्य** : १९७७ से १९८१ तक  
 कलकत्तामें एक महाविद्यालयमें प्राध्यापक,  
 १९८१ से यूको बैंकके प्रधान कार्यालयमें राज-  
 भाषा अधिकारी।



साहित्य क्षेत्र : 'राधा : अर्थ एवं स्वरूप', 'प्रसाद की इतिहास-दृष्टि', 'मिथक और साहित्येतिहास', 'भारतेन्दुका इतिहास-बोध', 'साहित्येतिहास : अर्थ, स्वरूप एवं दर्शन' आदि आलेख विभिन्न पुस्तकोंमें प्रकाशित। अनुवाद कार्य : आशुतोष मुखोपाध्यायकी रचना 'जातीय साहित्य' का बंगलासे हिन्दीमें अनुवाद, परमानन्द सरस्वती की रचना 'उत्तर मीमांसा' का बंगलासे हिन्दी में अनुवाद, एलडुअस हग्सले की 'श्रीमद्भगवद्-गीताकी भूमिका' का अंग्रेजीसे हिन्दीमें अनुवाद। आकाशवाणी और दूरदर्शन कलकत्तासे विभिन्न साहित्यिक कार्यक्रम। पत्र-पत्रिकाएँ— 'वाग्धाराका सम्पादन, 'समकालीन सृजन के सम्पादनमें सहयोग।

संपर्क : ३१-डब्ल्यू., एन. के. घोषाल रोड, कलकत्ता-७०००४२.

## मणिपुरी

कृति : नुमिति असुम थेङ् जिल्लबिल  
(कहानी संग्रह)

कृतिकार : युम्लेम्बम इबोमचा

जन्म : १९४९, कैशाम्पात् लैमजम् लैकाइ, इम्फाल। शिक्षा : गुवाहाटी वि. वि. के विज्ञान-स्नातक। कार्य : कुछ वर्ष विज्ञान अध्यापक, अब जिला विज्ञान निरीक्षक। रचि पत्रकारिता और फिल्मोंमें।

साहित्य क्षेत्र : काव्य-संकलन : शन्द्रेम्बी थोरक्लो नहुम पोनजेन् शाबिगे; कहानी-संग्रह : नुमिति असुम थेङ् जिल्लबिल। प्रस्तुत कहानी संग्रहपर साहित्य अकादमीके पुरस्कारसे पूर्व काव्य-संकलन मणिपुर राज्य कला अकादमीसे पुरस्कृत। विशेष : इबोमचाकी लघुकथा 'नोङ् असुम चरि' (रचनाकाल १९६९) से ही मणिपुरी भाषामें लघुकथा विधाका आरम्भ हुआ।

संपर्क : कैशाम्पात् लैमजम् लैकाइ, इम्फाल-७६५००१.

समीक्षक : (१) डॉ. इबोहलसिंह काङ्जम

(२) डॉ. देवराज

दोनों विद्वान् मणिपुर विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागमें कार्यरत। दोनोंसे सम्पर्क : हिन्दी

विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, इम्फाल (मणिपुर)-७६५००३.

## मराठी

कृति : टीका स्वर्यवर (विवेचन-निबन्ध)

कृतिकार : भालचन्द्र नेमाडे

जन्म : १९३८, सांगवी (जलगाँव)। शिक्षा : पुणे, मुम्बईमें भाषा विज्ञान, अंग्रेजी और मराठी का अध्ययन, मराठावाड़ा वि. वि. औरंगाबादसे पी-एच. डी.। कार्य : विभिन्न महाविद्यालयों, वि. विद्यालयोंमें अंग्रेजी साहित्य और भाषा-विज्ञान का अध्यापन। सम्प्रति मुम्बई वि. वि. में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ तुलनात्मक साहित्यपीठमें आचार्य।

साहित्य क्षेत्र : अल्पवय में कविता लेखन प्रारम्भ। प्रथम उपन्यास 'कोसला' २५ वर्षकी वयमें प्रकाशित। 'बिठार', 'जरीळा', 'झूल' (उपन्यास), 'मेलेंडी और देखणी काव्य-संकलन; अनेक साहित्यिक और भाषा वैज्ञानिक अध्ययनों सहित बारह अन्य कृतियां प्रकाशित। विभिन्न पुरस्कारोंसे सम्मानित।

सम्पर्क : गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर तुलनात्मक साहित्यपीठ, मुम्बई विश्वविद्यालय, विद्यानगरी, मुम्बई-४०००६८.

समीक्षक : डॉ. भगवानदास वर्मा

जन्म : १९३२, महाराष्ट्र। शिक्षा : एम. ए. (हिन्दी) एम. ए. (अंग्रेजी), पी-एच. डी.। कार्य : सरस्वती भुवन महाविद्यालय, औरंगाबादमें अध्यापन, सेवा-निवृत्त होकर सम्प्रति "देवगिरि समाचार" हिन्दी दैनिक (औरंगाबाद) के सम्पादक।

साहित्य क्षेत्र : दस आलोचना कृतियां : कहानी की संवेदनशीलता, साहित्य शास्त्र, आधुनिकताके रचना-संदर्भ, साहित्यकी विधाधर्मिता, जननायक राम, एक दुनियां कोणांतर, मध्यकालीन बोध—मानवीय प्रयोजन, साहित्य-संस्कृति और संप्रेषण। दो कृतियोंका सम्पादन। 'कोसला' (भालचन्द्र नेमाडेका उपन्यास) सहित तीन कृतियोंका हिन्दीमें अनुवाद। हिन्दी नाटक 'वर्षा' (इन्द्र पार्थसारथी) का मराठी अनुवाद।

सम्पर्क : ९७ श्रेयनगर, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)।



**मलयालम****कृति : छत्रवुम् चामरवुम् (निबन्ध)****कृतिकार : एम. पी. शंकुणि नायर**

**जन्म :** १९१७, मेषतूर (पालघाट) । **शिक्षा :** मद्रास वि. वि. से शिरोमणि (संस्कृत) और एम. ए. (संस्कृत) । **कार्य :** पञ्चव्यप्पास कालेजमें प्राध्यापक तथा प्रोफेसर । सम्प्रति सेवानिवृत्त ।

**साहित्य क्षेत्र :** 'नाट्यमण्डयम्', 'नाटकीयानुभव-मेन्तररसम्', काव्यव्युत्पत्ति, कालिदासीय नाटकों की समीक्षा तथा छत्रवुम् और चामरवुम् सहित ग्यारह आलोचना कृतियाँ प्रकाशित । आधुनिक मलयालम कहानियोंका दो खण्डोंमें संकलन-सम्पादन । पर्ले एस. बक के 'गुड अर्थ'कामलयालम में अनुवाद तथा प्राचीन तमिल कविताओंके पद्य रूपान्तर । अनेक पुरस्कारोंसे सम्मानित ।

**सम्पर्क :** मेषतूर मलंपुरम् जिला, केरल राज्य ।

**समीक्षक : डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै**

**जन्म :** १९३५, तट्टयिल ग्राम (केरल) । **शिक्षा :** उस्मानिया वि. वि. से हिन्दीमें एम. ओ. एल., "पन्त काव्यमें बिम्ब योजना" शोध ग्रंथपर पी-एच. डी. ।

**साहित्य क्षेत्र :** 'पन्त : छायावादी व्यक्तित्व और कृतित्व', 'पन्त काव्यमें बिम्ब योजना', 'छायावादी बिम्ब विधान और प्रसाद', 'सन्त कबीर', 'प्रसाद और कामायनी', 'केरल : साहित्य और संस्कृति' सहित बाइस ग्रंथ प्रकाशित । 'मलयालमकी अध्यात्म रामायण' एवं 'उत्तर रामायण' का सानुवाद लिप्यन्तरण ।

**सम्पर्क :** १९० स्टेट बैंक आफ इण्डिया कालोनी, गांधीनगर, हैदराबाद (आं प्र.) ५००३८०.

**मैथिली****कृति : पसिझैत पाथर (नाटक)****कृतिकार : रामदेव झा**

**जन्म :** १९३५, सहोरा (दरभंगा) । **शिक्षा :** पटना वि. वि. से मैथिलीमें स्नातकोत्तर एवं पी-एच. डी. । **कार्य :** सम्प्रति ललित नारायण मिथिला वि. वि., दरभंगा में मैथिलीके प्रोफेसर । **साहित्य क्षेत्र :** अबतक बीस कृतियाँ प्रकाशित, जिनमें चार आलोचना ग्रंथ, दो कहानी-संग्रह

और 'पसिझैत पाथर' नाटक सम्मिलित हैं ।

**सम्पर्क :** काबिलपुर, लहेरियासराय दरभंगा-८४६००१.

**समीक्षक : डॉ. नरनारायण राय**

हिन्दीके सुप्रसिद्ध नाटक-समीक्षक । हिन्दीके प्राध्यापक (प्रोफेसर) ।

**सम्पर्क :** गढ़बनैली (पूर्णिमा बिहार)-८५४३२५.

**राजस्थानी****कृति : म्हारी कवितावां (काव्य)****कृतिकार : प्रेम जी प्रेम**

**जन्म :** १९४३, घघाटाना (कोटा) । **शिक्षा :** राजस्थान वि. वि. से हिन्दी, अंग्रेजी और इतिहास में स्नातकोत्तर उपाधियाँ । **कार्य :** सम्प्रति कोटा में भारत सरकारके एक उपक्रममें लेखाधिकारी । **साहित्य क्षेत्र :** हिन्दी और राजस्थानी दोनों भाषाओंमें लेखन कार्य । राजस्थानीमें छै काव्य कृतियाँ, एक उपन्यास, एक कहानी-संग्रह, और हिन्दीमें एक कहानी-संग्रह और एक निबन्ध-संग्रह प्रकाशित । पत्रिकाओं, ग्रन्थोंका भी संपादन किया है ।

**सम्पर्क :** भंवर भवन, कर्बला, लाडपुर, कोटा-३२४००६.

**समीक्षक : डॉ. प्रेमचन्द विजयवर्गीय**

**जन्म :** १९२७, कोटा । **शिक्षा :** एम. ए. (हिन्दी) पी-एच. डी. (हिन्दी) । **कार्य :** वनस्थली विद्या-पीठमें प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषाएं विभाग । सम्प्रति सेवा निवृत्त । **साहित्य क्षेत्र :** शोधग्रन्थ - आधुनिक हिन्दी कवियोंका सामाजिक दर्शन, पांच समीक्षा ग्रन्थ, ३ काव्य पुस्तकें, छै सम्पादित ग्रन्थ । पत्र-पत्रिकाओंमें समीक्षात्मक एवं शोधपरक तथा साहित्येतर विषयोंपर लेख । पत्र-पत्रिकाओंका सम्पादन भी ।

**सम्पर्क :** १०५, अग्रसेन बाजार, कोटा-३२४००६.

**संस्कृत****कृति : स्वातन्त्र्यसम्भवम् (महाकाव्य)****कृतिकार : रेवाप्रसाद द्विवेदी**

**जन्म :** १९३५ नांदेड (भोपाल) । **शिक्षा :** काशी हिन्दू वि. वि. से संस्कृतमें स्नातकोत्तर उपाधि ।



साहित्याचार्य । रविशंकर वि. वि. से पी-एच. डी., जयलपुर वि. वि. से डी. लिट् । कार्य : प्राध्यापक । साहित्य क्षेत्र : 'उत्तर सीताचरितम्' सहित बारह काव्य कृतियाँ प्रकाशित । 'यूथिका' नाटक भी बहुप्रशंसित है । संस्कृत साहित्य ग्रन्थोंपर टीकाएं प्रशंसित । पन्द्रह ग्रन्थोंके आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित, कालिदासकी सम्पूर्ण रचनावलीका सात खण्डोंमें आलोचनात्मक संस्करण इनमें सम्मिलित है । कालिदासकी कृतियोंकी शब्दानुक्रमणिकाभी महत्वपूर्ण कार्य है ।

सम्पर्क : २८ महामनापुरी, वाराणसी-२२१००५.

समीक्षक : डॉ. कृष्णकुमार

जन्म : १९२५, मुरादाबाद । शिक्षा : आगरा वि. वि., वाराणसीसे साहित्याचार्य, आगरा वि. वि. से पी-एच. डी. । कार्य : विभिन्न महाविद्यालयोंमें संस्कृत प्रवक्ता, गढ़वाल वि. वि. श्रीनगर में संस्कृत विभागाध्यक्ष । सम्प्रति सेवा निवृत्त । साहित्य क्षेत्र : संस्कृत साहित्यसे सम्बद्ध बीसियों ग्रंथ प्रकाशित, जिनमें शोध, समीक्षात्मक अध्ययन, सम्मिलित हैं । शोध वृत्तिके विद्वान् । सम्पर्क : प्राच्य विद्या अकादमी, मिश्रा गार्डन, हनुमानगढ़ी, कनखल-२४६४०८.

सिन्धी

कृति : सोच जूँ सूरतूँ (काव्य)

कृतिकार : हरिकान्त जेठवाणी

जन्म : १९३५, जैकबाबाद (पाकिस्तान) । शिक्षा : पंजाब वि. वि. के स्नातक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागसे साहित्यरत्न । दिल्ली वि. वि. में दर्शन और मनोविज्ञानका अध्ययन । कार्य : पत्रकार जीवन, आकाशवाणीके समाचार सेवा प्रभागमें सिन्धी एककके प्रधान ।

साहित्य क्षेत्र : ग्यारह प्रकाशन, जिनमें दो नाटक संग्रह और तीन अनुवाद । चार काव्य-संकलन, जिनमेंसे 'एक टुकड़ा इतिहास' हिन्दीमें है । एक संकलन 'लप भर रोशनी' और कहानी संग्रह 'फहल जनदड़ रेगिस्तान' शिक्षा मन्त्रालयसे पुरस्कृत । तीन पत्रिकाओंका सम्पादन ।

सम्पर्क : ई-५, आकाशभारती अपार्टमेंट्स, २४ इन्द्रप्रस्थ एक्सटेंशन, दिल्ली-११००६२.

समीक्षक : प्रो. जगदीश लछाणी

शिक्षा : एम. ए. (हिन्दी) । कार्य : श्रीमती चाँदी-बाई हिम्मतमल सुखाणी कालेज, उल्हासनगरमें हिन्दी एवं सिन्धीके प्रवक्ता ।

सम्पर्क : ७०१, राजीव अपार्टमेंट, गोल मैदान, उल्हासनगर (ठाणे)-४२१००१.

हिन्दी

कृति : मैं वक्तके हूँ सामने

कृतिकार : गिरिजाकुमार साथुर

जन्म : १९१६; गुना (मध्यप्रदेश) । शिक्षा : लखनऊ वि. वि. से अंग्रेजी साहित्यमें एम. ए., विधिकी उपाधियाँ । कार्य : आकाशवाणीके अनेक वरिष्ठ पदोंपर, दूरदर्शनके उपमहानिदेशक के पदसे सेवानिवृत्त ।

साहित्य क्षेत्र : प्रथम रचना १९३६ में 'कमंवीर' में प्रकाशित । प्रथम काव्य-संकलन 'मंजीर' १९४१ में प्रकाशित । तार सप्तकके प्रमुख कवि, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद दोनों आन्दोलनोंसे संलग्न रहे । दस काव्य कृतियाँ, एक नाटक और एक समीक्षा ग्रंथ प्रकाशित । विभिन्न संस्थाओंसे पुरस्कृत और सम्मानित ।

सम्पर्क : 'मंजीर', बी.-३/४४, जनकपुरी, नयी दिल्ली-११००५८ ।

समीक्षक : (१) डॉ. हरदयाल (२) डॉ. वीरेन्द्रसिंह डॉ. हरदयाल : प्राध्यापक हिन्दी विभाग, श्यामलाल कालेज, शाहदरा दिल्ली ।

सम्पर्क : एच-५०, पश्चिमी ज्योतिनगर, गोकुलपुरी, दिल्ली-११००६४.

डॉ. वीरेन्द्रसिंह : रीडर हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर ।

सम्पर्क : ५३ १५, जवाहरनगर जयपुर-३०२००४.

हिन्दी

पुरस्कृत कृति : दशम द्वारसे सोपान तक

[संपूर्ण आत्मकथाकी पृष्ठभूमिकी स्पष्ट करनेके लिए आत्मचरित्रके चारों खण्डों—'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड़का निर्माण फिर', 'बसेरासे दूर', 'दशम द्वारसे सोपान तक' की समग्र समीक्षा] प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६.



कृतिकार : डॉ. हरिबंशराय बच्चन

जन्म : २७ नवम्बर १९०७, इलाहाबाद । शिक्षा :  
म्यूनिसिपल स्कूल, कायस्थ पाठशाला, इलाहाबाद  
वि. वि. । कार्य : १९४१ से १९५२ तक इलाहा-  
बाद वि. वि. में अंग्रेजी प्राध्यापक, फिर दो  
वर्ष शोध रूपमें 'डब्ल्यू बी. येट्स एण्ड ऑक-  
लिट्जम' पर कैम्ब्रिज वि. वि. से डाक्टरेट । लौट-  
कर पुनः इलाहाबाद वि. वि. में कार्य । कुछ मास  
इलाहाबाद आकाशवाणीमें, १९५५ में भारतीय  
प्रशासनके विदेश मन्त्रालयमें विशेष कार्या-  
धिकारी (हिन्दी) । यहांसे दस वर्ष बाद सेवा  
निवृत्त ।

साहित्य-क्षेत्र : १९१५ में मधुशालाके प्रथम  
सार्वजनिक पाठने ही अनुठी ख्याति प्रदान की,  
उसके बाद मधुशाला, मधुकलश प्रकाशित हुए ।  
इस मधुकाव्यके बाद निशा निमन्त्रण, एकान्त  
संगीत, आकुल अन्तर । जीवनके नये मोड़के  
बाद सतरंगिनी, मिलन यामिनी, प्रणय पत्रिका  
प्रकाशित हुई जिनकी कविताओंमें प्रेम और  
प्रणयान्मादकी नयी सृष्टि हुई । प्रणय क्षेत्रसे  
हटकर 'खादीके फूल'का प्रकाशन । लगभग तीस  
संकलन प्रकाशित हुए हैं । इनके अतिरिक्त उमर  
खयाम, भागवत् गीत, येट्स, शेक्सपीयर आदिके  
अनुवाद भी चर्चित और लोकप्रिय हुए हैं ।

सम्पर्क : 'सोपान', बी-८, गुलमोहर पार्क, नयी  
दिल्ली-११००४६.

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द सेठिया

शिक्षा : एम. ए., पी-एच. डी. । डाक्टरेटका शोध  
विषय : 'सन् १९४०से १९६५ के मध्यवर्ती हिन्दी  
उपन्यासोंका मूल्यांकन । राजस्थान विश्वविद्या-  
लयके एसोशिएट प्रोफेसर पदसे सेवा निवृत्त ।  
प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओंमें शोध और समीक्षासे  
सम्बन्धित शताधिक निबन्ध प्रकाशित ।

सम्पर्क : ८/२७६, विद्याधर नगर, जयपुर-  
३०२०१२.

## हमारे उत्कृष्ट प्रकाशन

- १—गुरिल्ला युद्ध कर्म : २०.००  
रक्षा मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत  
लेखक डॉ. परशुराम गुप्ता
- २—परमाणु निरस्त्रीकरण : २०.००  
रक्षा मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत  
लेखक डॉ. परशुराम गुप्त
- ३—अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर युद्ध का प्रभाव : ३२.००  
रक्षा मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत  
लेखक डॉ. लल्लन जी सिंह
- ४—रूपहले शिखरों के सुनहरे स्वर— ५०.००  
कुमाऊँ की लोक गाथाएँ  
(उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत)  
लेखक डॉ. कृष्णानन्द जोशी
- ५—रमोला—कुमाऊँ की लोक गाथा : ७५.००  
उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत  
लेखक डॉ. कृष्णानन्द जोशी
- ६—प्रसाद काव्य में मिथक प्रतीक १२०.००  
लेखक डॉ. सुषमा अरुण
- ७ छायावादी काव्य में संगीतत्व १५०.००  
लेखक डॉ. कौशलानन्द गोस्वामी
- ८—हिन्दी कविता में गजल-संवेदना १६०.००  
और शिल्प—लेखक डॉ. जे. पी. गंगवार
- ९—राष्ट्रीयता की अवधारणा और १२०.००  
पंडित श्याम नारायण पांडेय का काव्य  
लेखक डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य
- १०—आधुनिक हिन्दी कहानी : १२०.००  
मनोवैज्ञानिक विवेचन  
लेखक डॉ. इन्द्रा आचार्य
- ११—आधुनिक पंचतंत्र ५०.००  
लेखक डॉ. सरन माहेश्वरी
- १२—कौटिल्य का युद्ध दर्शन ६५.००  
लेखक डॉ. लल्लन जी सिंह
- १३—सैन्य शक्ति के आर्देने में विश्व ६०.००  
लेखक डॉ. अशोककुमार सिंह
- १४—भारत पाक का चौथा युद्ध ४०.००  
शर्त और सम्भावनाएँ  
लेखक डॉ. अशोक कुमार सिंह
- १५—बांग्ला देश का मुक्ति संघर्ष ६०.००  
डॉ. बाबूराम पांडेय

प्रकाशक : प्रकाश बुक डिपो

दूरभाष संख्या—७४२६१

बड़ा बाजार बरेली (उ. प्र.)-२४३००३

(कृपया सम्पूर्ण सूची-पत्र के लिए लिखें ।)







पुस्तक  
25/2/92

# प्रकर

कार्तिक : २०४६ [विक्रमाब्द] :: अक्तूबर : १९६२ [ईस्वी]

24  
10

विशिष्ट आलेख  
हिन्दी व्याकरण मीमांसा-२



# अंककी सामग्री

मत अभिमत	१	
स्वर : विसंवादी		
विजयदशमी : विजयकी मानसिकता जागृत करनेका पर्व	३	वि. सा. विद्यालंकार
हिन्दी व्याकरण		
हिन्दी व्याकरण मीमांसा-२	५	पं. काशीराम शर्मा
भाषा विज्ञान		
शब्द-प्रयोग—डॉ. नरेश मिश्र	११	डॉ. रामदेव शुक्ल
निबन्ध		
भारत और यूरोप : प्रतिश्रुतिके क्षेत्र—निर्मल वर्मा	१२	प्रो. घनश्याम शलभ
वार्ता-प्रसंग—हरिकृष्ण त्रिपाठी		डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय
फूल और कांटे—डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर		डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त
अध्ययन अनुशीलन		
साहित्य सृजन और अन्तःक्रिया—बी. डी. गुप्त	२१	डॉ. मूलचन्द सेठिया
कविताके आसपास—मूलचन्द सेठिया	२३	डॉ. वीरेन्द्रसिंह
काव्य		
श्रमणा—अवधेश	२६	डॉ. मानधता राय
हरा गुलाब और मैं—इन्दु सुन्दरी	३०	डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला
मृगछाला—गोविन्दप्रसाद गुप्त	३१	डॉ. प्रयाग जोशी
उपन्यास		
भंगी दरवाजा—राजेन्द्र अवस्थी	३२	डॉ. सत्यपाल चुध
सिन्धुपुत्र—अमृतलाल नागर	३६	डॉ. तेजपाल चौधरी
कहानी		
बसका टिकट—गंगाधर गाडगिल	३७	सुरेन्द्र तिवारी
हारा हुआ आदमी—रूपसिंह चन्देल	३९	डॉ. यशपाल बंद
व्यंग्य		
तलाश कालिदासके पेड़की—शिवसिंह सुयोगी	४०	डॉ. भानुदेव शुक्ल
अस्मिताका चन्दन—डा. सुदर्शन मजीठिया	४२	"
खूंटोपर टंगी आत्मा—रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'	४३	"
पत्र-पत्रिकाएं		
प्रयास—सम्पा. डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री	४४	डॉ. हरिश्चन्द्र
जन संसार—सम्पा. गीतेश शर्मा		डॉ. प्रशान्तकुमार
'प्रकर'—अक्टूबर '६२		



स्वर : बिसंवादी :: साहित्य-निरपेक्ष

साहित्य अकादमी, विघटनमूलक पुरस्कृत साहित्य

‘प्रकर’ (अगस्त १९२) में उपर्युक्त सम्पादकीय पढ़कर विशेष तृप्ति मिली ।... आपके सम्पादकीयों में देश, संस्कृति, राष्ट्र, राष्ट्रीयता, मानवता, राष्ट्रभाषा, सांस्कृतिक अस्मिता, सामाजिक न्याय, मानवीय और साहित्यिक मूल्यों आदिके विषय में गहरी चिन्ता और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि निहित रहती है । दृष्टिको स्वच्छता और सच्चाई ही आपका वास्तविक बल है । वैसे आपकी ददंभरी सच्चाइयों की ओर कौन ध्यान देता होगा ।

साहित्य अकादमियों का चरित्र हमारे राष्ट्रीय चरित्र का ही प्रतिबिम्ब है । देश की अधिकतर साहित्य-अकादमियों पर उन लोगों का आधिपत्य है जो इस देश के धर्म, दर्शन, संस्कृति, साहित्य, इतिहास के प्रति अनास्था रखते हैं और विदेशी चिन्तन के प्रति घोर साम्प्रदायिक सीमा तक कटु रहकर भी स्वयं को धर्म-निरपेक्ष घोषित करते रहने में आत्म-गौरव का अनुभव करते हैं । साहित्य-अकादमियों की छत्र-छायामें लेखकों का यह अनास्थावादी वर्ग पल रहा है, जिसकी निष्ठाएं विदेशी हैं । यह लेखक-वर्ग भारतीय संस्कृति, दर्शन, धर्म और साहित्य की आयातित विचारधारा की संकीर्ण और सतही दृष्टि के आधार पर मनमानी व्याख्याएं करके राष्ट्रीय और सांस्कृतिक अस्मिता के आधारभूत विचारों और प्रतीकों की पहचान मिटाने और राष्ट्रीय चिन्तन के घूमिल और दिग्भ्रान्त बनाने के काम में जुटा हुआ है । विभिन्न साहित्य-अकादमियों द्वारा गत दशक में तैयार कराये गये ग्रन्थों की एक उच्चस्तरीय समिति द्वारा न्यायिक जाँच कराने से उक्त कथन की प्रामाणिकता की सहज ही पुष्टि हो सकती है ।

साहित्य-अकादमियों के चरित्र के साथ निर्णायकों और लेखकों का चरित्र भी जुड़ा है । साहित्यकार जीवन-मूल्यों और कला-मूल्यों के विरोधी हों तथा निर्णायक न्याय-निरपेक्ष हों, तो साहित्य-अकादमियों का सतीत्व कहां तक सुरक्षित रहेगा ? प्रश्न निष्ठाओं का है । व्यावसायिकता, स्वार्थ, यशलिप्सा और धन-लिप्सा ने हमारी सनातन निष्ठाओं को निगल लिया है ।

एक निवेदन ।... आपके सम्पादकीय में पद्य और कविता का पार्थक्य रेखांकित किया गया है । कोरी तुक-बन्दी कविता नहीं हो सकती । गद्य गद्य है, पद्य पद्य है और कविता कविता है । गद्य तो कविता हो ही नहीं सकता । इसी प्रकार कविता गद्य नहीं हो सकती ।... आशा की जाती है ‘प्रकर’ के स्तर पर गद्य और कविता में भेद किया जाये और कविता को उसके छन्दोबद्ध रूप में ही मान्यता दी जाये । वैदिक युग से आधुनिक युग तक जो छन्दोबद्ध कविता-धारा व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, कबीर, सूर, तुलसी, बिहारी, भारतेन्दु, प्रसाद, पन्त, दिनकर की प्रतिभा के जल से वेगवती रही है, वही वास्तविक काव्य-धारा है । ‘प्रकर’ अगस्त अंक में जिन काव्य-पुस्तकों की समीक्षाएं छपी हैं, वे संस्कृत महाकाव्य ‘स्वातन्त्र्यसम्भवम्’ को छोड़कर, वास्तव में गद्यात्मक कृतियां हैं । क्या गद्य की पंक्ति को कई पंक्तियों में तोड़कर रखने से कविता बन सकती है ? अभिनेता नेता भले ही बन जाये, किन्तु गद्य कविता नहीं बन सकता । समीक्षकों की समीक्षा-दृष्टि भी धन्य है जो गद्य में ही कविता का दर्शन करती है और उसे ‘स्तुत्य’ कहकर अपने आशीर्वाद से अभिषिक्त करती है । जगता

‘प्रकर’ — कालिक २०४६—१



है कविता, समीक्षा, समीक्षक समीक्षा पत्रिका के अन्तर्गत किये जाते हैं, बड़े नौग हैं। यह बात हमारे पूरे राष्ट्रीय जीवन और चिन्तन पर भी लागू होती है।

—डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा, पोफैसर हिन्दी विभाग,  
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक-१२४००१.

(२)

‘प्रकर’ (अगस्त-६२) में ‘स्वर : विसंवादी’ में आपने केन्द्रीय साहित्य अकादमीकी मानसिकताको बहुत स्पष्टतासे उजागर किया है। हरिदरसिंह महबूब के प्रबोधनका ‘अंश’ उद्धृतकर आपने इस प्रकरणमें विवादकी कोई गुंजाइश ही नहीं रहने दी है। आश्चर्य है कि अन्य पत्र-पत्रिकाओंको इस प्रबोधनका स्वर कैसे नहीं सुनायी दिया। यहां तो सब कुछ स्पष्ट है। अमृता प्रीतमने तो अन्यत्र भी कहा है कि उन्होंने पूरी कृतिको नहीं पढ़ा, आपने उनका जो कथन उद्धृत किया है वह बहुत रोचक है : “जो इतने दर्पोंसे साधनाकर रहा हो, उसे पुरस्कार क्यों नहीं मिलना चाहिये ?” हो सकता है अमृताजी यह मानती हों कि साहित्य अकादमी कृतिके आधारपर नहीं, वर्षोंकी गिनतीके आधारपर पुरस्कार दिया करती है। यह बात तो हम अल्पबुद्धि लोग समझ लिया करते हैं कि निर्णय

भारत सरकार : घोटाला सरकार

महानगर टेलिफोन निगम

द्वारा टेलिफोन बिलों द्वारा

उपभोक्ताओंकी लूट

भारत सरकार द्वारा संचालित और नियन्त्रित “महानगर टेलिफोन निगम” द्वारा बढ़ा-चढ़ाकर बिल बनानेका सरकारी व्यवसाय घन्घा शुरू किया है। इस प्रकार टेलिफोन उपभोक्ताओंसे लाखों-करोड़ों रुपये झपटनेका नया उपाय कर लिया है। टेलिफोन कालोंका विवरण मांगनेपर कोई उत्तर नहीं दिया जाता। इसके साथ व्यक्तिगत रूपसे जाकर शिकायत करनेपर एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भगानेकी समय और पैसा नष्ट करनेका प्रणाली अपना ली गयी है।

क्या देशको ऐसी लूटपाट करनेवाली सरकारी एजेंसियोंकी ही आवश्यकता है ?

—‘प्रकर’

‘प्रकर’—अक्तूबर-६२—२

तो निर्णय करते समय अपनी ही समझका प्रयोग करते हैं, उन्हें नियमोंसे क्या लेना-देना ?

स्थिति जो भी हो, कुछ समय पूर्व ‘आइडेंटिटी कार्ड’ और फिर अब “झनां दी रात” पर उठे विवादने यह तो स्पष्ट कर ही दिया है कि साहित्य अकादमीका आन्तरिक स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा, रोगको परख और उपचार होना ही चाहिये।

प्रगतिवादी साहित्य : ‘झनां दी रात’ पर उठे विवादकी चर्चा करते हुए आपने प्रगतिवादी साहित्यपर भी प्रहार किया है। जिसे हम प्रगतिवादी साहित्यके नामसे जानते हैं, जैसे निराला, मुक्तिबोध, शमशेर, भीष्म साहनी, रामविलास शर्मा आदिका साहित्य, उसपर तो आपकी टिप्पणी लागू नहीं होती है। पता नहीं किस प्रगतिवादी साहित्यको दृष्टिमें रख आपने यह टिप्पणी की है।

सम्पादकका उत्तर : प्रगतिवादी निस्सन्देह साहित्यके व्यक्ति हैं। मूलतः मार्क्स और प्रगतिवादसे जुड़े लोगभी और प्रगतिवादके क्षेत्रको व्यापक बनाने और राजनीतिक-साहित्यिक शक्ति प्रदान करनेके लिए जोड़े गये लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक भी। अनेक बार उनका साहित्य ‘वादी’ अधिक हो जाता है, प्रगतिकी शालीनता क्षीण हो जाती है। ‘वाद’ से जुड़नेपर न केवल विशिष्ट प्रकारकी अतिशयता जन्म लेती है, अनेक बार यथार्थमें दूरीके कारण उन्हें विवादास्पद भी बनाती है और विकृतिका रूप भी प्रदान करती है। यह वस्तुतः यथार्थपर विशिष्ट चिन्तनका आरोपण होता है।

पत्र लेखकका पत्त्युत्तर : प्रगतिवादी साहित्यके क्रममें आपने पत्रमें ठीक लिखा है। जहां विचार आरोपित रह जाता है, रचनामें घुलमिल नहीं पाता है, या विचार रचनापर हावी हो जाता है, वहां निश्चयही साहित्य क्षीण हो जाता है। प्रगतिवादी साहित्यमें बहुत कुछ ऐसा है जो या तो मात्र नारा है या मार्क्सका उल्था। पर इसके आधार पर बात नहीं होनी चाहिये, साहित्यपर उसकी श्रेष्ठताके आधारपर बात होनी चाहिये। यह अतिवाद केवल प्रगतिवादी साहित्यमें नहीं है। पन्तजी की “लोकायतन” में भी तो यही है। अनेकानेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जहां मार्क्सवाद नहीं है पर विचारातिरेक है।

—डॉ. दुर्गाप्रसाद श्रमवाल, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, सिरौही-३०७००१



वर्ष : २४

अंक : १०

कार्तिक : २०४६ [ विक्रमाब्द ]

अक्टूबर : १९६२ [ ईस्वी ]

स्वर : विसंवादी

## विजयदशमी : विजयकी मानसिकता जागृत करनेका पर्व

विजयदशमी देशभरमें राष्ट्रीय पर्वके रूपमें मनाया जाती है। दुर्गाका एक नाम विजया होनेसे शाक्त और अन्य देवीभक्त लोग इसे 'विजया-दशमी' नामसे मनाते हैं। सभी वर्ग इसे 'विजय' का पर्व स्वीकार करते हैं और कुछ समय पूर्वतक विजय पर्वको प्रतीक रूपमें मनानेके लिए राजा लोग युद्ध-जय के लिए सैन्य निकलते थे। इस अवसर पर शस्त्रपूजन का चलन रहा है। परन्तु स्वातन्त्र्यपूर्वके राजनीतिक अहिंसात्मक आन्दोलन और राजनीतिक स्तरपर ही विजयकी सामाजिक चेतनाको कुण्ठित करने और इसकी वास्तविक भावनाको क्षीण करनेका ही नहीं अपितु अप्रभावी बनानेको नयी परिकल्पनाएं भी प्रस्तुत की गयी हैं। इस कार्यमें भारतीय साहित्यकी भारतीय चेतनाको जागृत करनेकी आन्तरिक शक्ति और क्षमता का भी सूक्ष्म परन्तु प्रचुर उपयोग किया गया है।

राष्ट्रकी विजय-चेतनाको प्रबुद्ध करनेके सामूहिक प्रयत्नोंकी आज आवश्यकता नहीं रही क्योंकि प्रतिवर्ष यह कार्य स्वतःस्फूर्त हो उठता है और दीपावली तक इसका प्रभाव बना रहता है। स्वतःस्फूर्त चेतना भारतीय मानसकी अवचेतनाका अंग बन चुकी है, परन्तु आजकी जन-चेतनाको विचलित करनेके जिन नूतन मनोवैज्ञानिक उपायोंका प्रयोग किया जाता है उनमें जन-साधारणकी सुप्त वर्ग-चेतनाको जागृत करना है। वर्ग-चेतनाकी यह जागृति चाहे क्षणिक हो, परन्तु समाजको लम्बे समयके लिए विभाजित कर देती है। परिणामस्वरूप विभक्त और ध्वस्त समाज किसी 'विजय-भावना' की कामनाकी कल्पना करने योग्य भी नहीं रहता। प्रतिवर्ष 'विजय' की कामनासे सामूहिक उत्सव मनानेवाला समाज किस प्रकार खण्डित हो जाता है, यह विभाजनकी प्रक्रियासे स्पष्ट हो जाता है।

आजके हमारे विभाजित समाजमें, यदि उस पीड़ादायी प्रक्रियामें से निकलनेके बाद, अपनी पराजयमें यह माला जपने लगे कि 'जय-पराजय, सफलता-विफलता, हार-जीत' सब निष्फल कर्म हैं, उस समाजके विखण्डनकी ओर बढ़नेको अथवा पूरे राष्ट्रकी अन्तर्बाह्य-रूपरेखा में परिवर्तनको नहीं रोका जा सकता। आचार्य चाणक्यने मगध साम्राज्यकी क्रूरताओं-नृशंसताओं-भ्रष्टाचारोंको ही समाप्त नहीं किया था, अपितु नये सशक्त राष्ट्रकी नींव रखी थी जिसका विस्तार मोटी बुद्धिके विस्तृत स्मिथ जैसे इतिहासकारको भी आश्चर्यचकित करता रहा। परन्तु उसी राष्ट्रके सम्राट अशोककी कलिंग विजयमें भावावेगके साथ आविर्भूत 'करुणा' ने जिस करुणामय धर्मको राजकीय स्तरपर देशपर लादा, उसका परिणाम एक ऐसी 'अहिंसा' (अहिंसाकी शपथ लेनेवाली) धार्मिकताका जन्म हुआ जिसके पड़यन्त्रोंसे अशोकके राजप्रामादमें ही उसके भाईयोंकी हत्याएं की गयीं, उन्हें बौद्ध साधु बननेको विवश किया गया अथवा राज्यसे निर्वासित कर दिया गया। इसी धार्मिक साम्राज्यमें बौद्धेतर लोगोंको जो पीड़ाएं सहनी पड़ी, वे आजभी इतिहासमें अंकित हैं। इसी युगकी सबसे बड़ी देन है बाल-विवाह। अविवाहित बालिकाओंका बौद्ध-मठ अपहरण कर लेते थे और मठोंमें इन्हें कुमारी रूपमें विवश भावसे रहना पड़ता था, क्योंकि उनकी मान्यताके अनुसार मृत्युके बाद मुक्त जीवोंका पुनर्जन्म नहीं होता, इससे वे अनन्त काल तक मुक्त जीवनका आनन्द लेते रहेंगे, न उनका पुनर्जन्म सम्भव होगा, न मुक्तिलोकमें भीड़ बढ़ने पायेगी। इसीसे पीड़ित होकर और मठोंमें कुमारिकाओंके उत्पीड़न और दुराचारोंसे घबराकर बालिकाओंका छोटी आयुमें ही विवाह किया जाने लगा। ऐतिहासिक यथार्थ यह है कि जिस राजनीतिक स्थिरता और एकता ने

'प्रकर'—कार्तिक'२०४६—३



अशोकसे पूर्व जन्म लिया था वह चन्द्रगुप्त और बिन्दुसारकी विजय यात्राओंका सहज परिणाम था, जबकि दिग्विजयका स्थान धर्म-विजयके लेनेपर देशकी राष्ट्रीयता और राजनीतिक गौरव नष्ट होगये। इसी वंशके शालिशुकके समयमें राष्ट्र खण्डित होना शुरू होगया, पूरा उत्तरापथ इस राष्ट्रसे पृथक् हो चुका था, कलिंग और आंध्र-महाराष्ट्र भी लगभग इसी समय तक स्वतन्त्र हो चुके थे।

यहां हम केवल विजय-चेतनाके लुप्त होते जाने और पराजयकी स्थितियोंके उत्पन्न होनेकी चर्चा कर रहे हैं। इस चेतनाको पुनर्जागृत करनेके भी बीच-बीचमें प्रयत्न होते रहे। यह भी राष्ट्रीय अनुभव है कि निरन्तर पराजयों-असफलताओंने ऐसी अस्मिताहीन पीढ़ियोंको जन्म दिया जो किसीभी मूल्यपर आक्रमण-कारियोंका साथ देनेको तत्पर रहती थीं, अपनेही बन्धुओं को उत्पीड़ित करनेमें आगे रहती थीं, उनके आदेशपर सामूहिक हत्याएं करती थीं, उनके लिए लूटपाट करती थीं, विशाल सैनिक अभियानपर निकलती थीं—अपनी विजय के लिए नहीं—आक्रमणकारियोंके लिए क्षेत्र-विस्तार के लिए और उन्हें प्रस्तुत करती थीं अपनी बहू-बेटियां। पराजयकी इससे अधिक हीन स्थितिकी कल्पना करना कठिन है। ऐसी आत्म-गौरवहीन पीढ़ियां केवल मध्य-युगमें भी इस भूभागपर नहीं फैली थीं, अपितु ब्रिटिश युगमें थी खूब पनपी, फली-फूली। इस राजभक्तिके पुरस्कारमें उन्हें खण्डित भारतकी सत्ता उपहारमें मिली। कृतज्ञतावश ये पीढ़ियां इस देशपर ब्रिटिश चिन्तन, ब्रिटिश आचार-व्यवहार-विधि-विधानोंको तो देशपर लागू किये हुए हैं, उन ब्रिटिशोंसे बढ़कर सम्पूर्ण देशको ब्रिटिश-यूरोपीय सभ्यताकी प्रतिकृति बनानेपर तुली हैं। इसे वे 'आधुनिकता' कहते हैं, ऐसी आधुनिकता जिसमें इस देशके निवासियोंको अपनी भाषा नहीं ब्रिटिशजनकी भाषापर निर्भर रहना पड़ता है। अत्याचार-अनाचार-भ्रष्टाचारमें ये लोग अपने प्रभुओंसे तो आगे बढ़ ही गये हैं, सम्पूर्ण देशको अधिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक स्तरपर पश्चिमी और पश्चिमी एशियायी देशोंके लिए उन्मुक्त कर दिया है, देशके भूखण्ड मुक्त-हस्तसे बांट रहे हैं, पूंजी और विदेशीजनोंके निर्बाध प्रवेशके सभी द्वार उन्मुक्त कर दिये हैं।

यहभी स्पष्ट है कि इस समय पूरे शासन और प्रचारतन्त्रपर आधुनिकताका नगाड़ा पीटते राजनीतिज्ञों और उनके इंडियन इंग्लिश निष्णात, मात्र अनुकृति-पटु पत्रकार प्रचारकोंका अधिकार है। इस-

'प्रकर'—अक्तूबर '९२—४

उपयोग कर वे प्रचारित करते रहते हैं कि अयोध्याकी समस्या साम्प्रदायिक है। साम्प्रदायिकताके आवरणमें अयोध्या सहित देशव्यापी आक्रमणको नकारनेका उन्हें ऐसा अमोघ 'नुस्खा' हाथ लगा है कि वे दिन दूने और रात चौगुने इसीको रटते रहते हैं जिससे आक्रमणकी विभीषिकाओंके प्रभावको न्यूनतमकर उसे केवल सामयिक भावात्मक उवारका रूप दिया जा सके क्योंकि उनकी दृष्टिमें "भावनाओंका उवार कभी स्थायी नहीं होता। भावनाओंसे आन्दोलन उभर तो सकते हैं परन्तु उन्हें स्थायी भावभूमिपर खड़ा नहीं किया जा सकता है।" प्रतीत होता है कि आधुनिकताके इस दर्शन और चिन्तन-शास्त्रका विकास अभी हुआ है अन्यथा स्वाधीनता-आन्दोलनके दिनोंमें उमसे ध्यान हटानेके लिए ब्रिटिश शासन स्वाधीनता-आन्दोलनसे जन साधारणका ध्यान बंटानेके लिए केवल साम्प्रदायिक दंगोंका ही आयोजन नहीं करता, अपितु अपने शक्तिशाली प्रचार साधनोंसे पूरे स्वाधीनता आन्दोलनको साम्प्रदायिक घोषित कर "साम्प्रदायिकता" के भारतीय राजनीतिक आविष्कर्ताओंको अपने पक्षमें जुटा लेता। वस्तुतः आक्रमण और साम्प्रदायिकतापर अधिक विवेचनकी आवश्यकता है क्योंकि आक्रमणका क्षेत्र अधिक क्रूर और व्यापक होता है।

मानसिक स्तरपर भी साहित्य तथा अन्य माध्यमों से जन मानसमें जड़ता उत्पन्न करनेका ऐसा सुविचारित प्रयत्न किया गया है कि जिससे विजयकी कामनाको ही कुण्ठित कर दिया जाये। अथवा, विजयकी कामनाका स्वरूप सामाजिक और राष्ट्रीय न रहकर व्यक्तिगत अथवा वर्गगत होजाये। आजके अर्थ और भ्रष्टता बहुल वातावरणमें विजयकी कामना व्यक्तिगत हो गयी है, यदि मार्क्सवादकी परिभाषामें इसे प्रस्तुत किया जाये तो पूंजीवादी व्यवस्थाकी यही अन्तिम परिणति है। परन्तु मार्क्सवादी सांचेकी वर्गगत विजयभी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें उतनीही घातक सिद्ध हुई है और पूरे समाज और राष्ट्रको विघटित करनेकी और अधिनायकवादकी क्रूर यन्त्रणाओं द्वारा हाड-मांसका पुतला बनानेकी इतिहासकी सर्वाधिक एक आधुनिक यान्त्रिकता और व्यवस्था दोनों ही व्यवस्थाएं मानवीय विजयकी, इसलिए समाज और राष्ट्र की विजयकी, विरोधी है क्योंकि विजयकामी समाज और राष्ट्रमें सर्वतोमुखी प्रगति और विकासकी कामना जागृत होती है। [१]



# हिन्दी व्याकरण मीमांसा-२

भाषा-लिपि सम्बन्ध, वर्ण और अक्षरका अर्थभेद,  
मात्राएं तथा अन्य चिह्न, संयुक्ताक्षर आदि

—पं. काशीराम शर्मा

१७. दी. के व्याकरणका प्रथम अध्याय : लिपि  
—इसमें देवनागरी लिपिका परिचय देते हुए उसके स्वरूपपर तो विचार हुआही है, पर लिपिके विविध अक्षरोंसे व्यक्त स्वनोंके उच्चारण स्थान आदिकी भी चर्चा की गयी है जिसका लिपिसे कोई संबंध नहीं है और जिसपर अगले अध्यायमें पुनः विस्तारसे विचार कियाही गया है। व्याकरण भाषाका विश्लेषण करता है अतः हमारे प्राचीन व्याकरणोंने लिपिपर विचार ही नहीं किया क्योंकि लिपि भाषाका आवश्यक तत्त्व नहीं है न उसका किसी भाषासे अभेद्य संबंध है। संसारमें आजभी ऐसी हजारों भाषाएं हैं जिनकी कोई लिपि नहीं। अनेक ऐसी लिपियां हैं जिनका अनेक भाषाओं से संबंध हैं। संस्कृत भाषाके अनेक कालों और अनेक प्रदेशोंमें लिखे गये अभिलेख मिलते हैं जिनकी लिपियोंमें प्रभूत भेद है। मुद्रणालयोंके प्रचलन से पूर्व संस्कृत देशके विविध भागोंमें विविध लिपियोंके माध्यमसे पढ़ी और लिखी जाती थी। बंगालमें आजभी संस्कृत ग्रंथ बंगला लिपिमें भी छपते हैं। यूरोपमें अनेक स्थानोंपर संस्कृत रोमनके संशोधित रूपकी सहायतासे पढायी-लिखाया जाता है। जो देवनागरी आज संस्कृतकी प्रमुख लिपि मानी जाती है, उसपर हिन्दी, मराठी, नेपाली, डोगरी आदिका भी समान अधिकार है। अब सिन्धीकी पुस्तकें भी देवनागरीमें छपती हैं। अनेक विद्वानोंका मत है कि पूरे देशका साहित्य यदि देवनागरीमें उपलब्ध होजाये तो देशकी भाषाएं अधिक निकट आ सकेंगी। इस दिशामें पर्याप्त प्रयास भी हुए हैं। इस प्रयाससे सहमत होते हुएभी हमारा एक अतिरिक्त सुझाव है कि हिन्दी शिक्षणके लिए पुस्तकें भारतकी सभी लिपियों में उपलब्ध होनी चाहियें जिससे देशकी किसीभी लिपिकी जाननेवाला पाठक

हिन्दीको सरलतासे सीख सके। यह सम्पूर्ण विवेचन केवल यह स्पष्ट करनेके लिए किया गया है कि किसी भाषाका लिपि विशेषसे कोई अभेद्य संबंध नहीं होता। इसलिए भाषाकी शिक्षा (अर्थात् व्याकरण) में लिपि का विवेचन आवश्यक नहीं होता।

१८. व्याकरणमें लिपि चर्चाका औचित्य : हमारे विचारसे व्याकरणकी पुस्तकमें लिपिकी चर्चा करना वैसाही है जैसा 'शरीर क्रिया विज्ञान' की पुस्तकमें विविध खाद्यान्नों, पेय पदार्थों, मल त्यागके साधनों आदिकी चर्चा करना। शरीर क्रिया विज्ञान यह तो

गत अंकमें यह स्पष्ट किया गया था कि देशमें ब्रिटिश-साम्राज्य विस्तारके प्रयत्नोंके कारण ईसाई पादरियोंने इस साम्राज्यकी सहायता तथा ईसाईयतके प्रचारके लिए हिन्दी व्याकरण पर अनेकों पुस्तकें लिखीं। इसी परम्परामें रूसी व्याकरण डॉ. जाल्मन दीर्माश्तसने भी हिन्दी व्याकरण लिखा और इस ओर ध्यान खींचा कि हिन्दी व्याकरण अंग्रेजीके स्कूली व्याकरणोंकी प्रणालीपर लिखे गये हैं। स्व. श्री कामताप्रसाद गुरुने जो व्याकरण लिखा है वह भी मुख्यतः अंग्रेजी व्याकरणोंको ध्यानमें रखकर लिखा गया है, कहीं-कहीं संस्कृत प्रणालीका भी अनुकरण किया गया है। आचार्य किशोरीदास वाजपेयीने हिन्दी व्याकरणका विवेचन प्रायः संस्कृत व्याकरणका अनुवर्ती मानकर किया है।

प्रस्तुत लेखमें भाषा और लिपिका सम्बन्ध अनिवार्य नहीं, वर्ण और अक्षरका अर्थभेद आदि अनेक हिन्दी व्याकरणके प्रसंगोंकी चर्चा है।



बताता है कि पाचन तंत्र कैसे काम करता है, खाद्य-पेयों की शक्त को शरीर किस प्रकार ग्रहण करता है और अनावश्यकका उत्सर्ग मल रूप में किस प्रकार करता है। पर इसके लिए यह जानना आवश्यक नहीं कि खाद्य-पदार्थ कितने प्रकारके हो सकते हैं, वे बाजार में कहां मिलते हैं और किस भाव मिलते हैं आदि। न यह जानना आवश्यक है कि मलका उत्सर्ग कैसे स्थानों पर कब और किस प्रकार बैठकर या खड़े-खड़े करना चाहिये। यही स्थिति भाषा में लिपिकी है। इसीलिए भारत के प्राचीन वैयाकरणों ने लिपि पर विचार नहीं किया। किंतु यूरोप की ग्रामरों ने लिपि-विचार भी होता था अतः वहां के विद्वानों ने भारतीय भाषाओं के व्याकरणों में भी लिपि विचार किया। उनके अनुकरण पर गु. आदिते भी किया। इस परम्परा के कारण हम भी उसे मान लेते पर दी. ने तो भारतीय शब्दों का भी मनमाने अर्थ में भ्रामक प्रयोग किया जो ठीक नहीं। इसकी पुष्टि आगे उदाहरणों से करेंगे।

१६ 'वर्ण' और 'अक्षर' शब्दों का नया अर्थ : भारतीय वैयाकरण 'वर्ण' और 'अक्षर' का पर्यायवत् प्रयोग करते थे। माहेश्वर सूत्रों में परिगणित स्वर्णों को सामान्यतया वर्ण कहते थे (सर्वे वर्णाः सकृदुपदिष्टः) पर अन्यत्र 'अक्षर' भी कहते थे (येनाक्षरसमाप्तायमधिगम्य महेश्वरात्)। उस वर्ण समाप्तायम से सारे व्यंजन और अ-इ-उ-ऋ-लृ-ए-ओ-ऐ-औ स्वर समाविष्ट थे। इनमें प्रथम स्वरों के अठारह-अठारह और शेष के बारह-बारह भेद मात्रा (ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत), अनुनासिकता (अनुनासिक अनुनासिक) स्वर (उदात्त-अनुदात्त-स्वरित) के आधार पर किये गये थे। लृ का दीर्घ रूप नहीं होता और अंतिम चार का ह्रस्व रूप नहीं होता। यों पुरानी वर्ण-माला में नौ ही स्वर थे। आजकल प्रथम तीन स्वरों के दीर्घ रूप भी वर्णमाला में सम्मिलित होते हैं। ऋ के दीर्घ रूप तथा लृ को हिन्दी में नहीं गिना जाता। अस्तु, वर्ण, अणु अक्षर' शब्दों का उच्चरित स्वर्णों के अर्थ में प्रयोग रहा है। उनका अर्थ विस्तार उनके द्योतक लिपि संकेतों के लिए भी होता है। दी. ने परम्परागत अर्थ की उपेक्षा की है। 'वर्ण' का प्रयोग तो लगभग परम्परागत अर्थ में किया है पर 'अक्षर' का उससे भिन्न किंतु कई अर्थों में किया है। वह संयुक्त व्यंजनों को संयुक्ताक्षर कहता है पर साथ ही 'अक्षर' का प्रयोग अंग्रेजी के 'सिलेबल' के पर्याय रूप में भी करता है जिसकी संकल्पना से भारत के 'प्रकर'—अक्षर ६२—६

अंग्रेजी विद्वानों की भाँति एक ही प्रतिशत ही परिचित होगा। हमारा विनम्र मत है कि परम्परा प्राप्त शब्दों का प्रयोग या तो परम्परागत अर्थ में ही किया जाना चाहिये या ग्रंथ के आरंभ में संज्ञा प्रकरण देकर स्पष्ट कर देना चाहिये कि किस पारिभाषिक संज्ञा का प्रयोग किस अर्थ में होगा। हमारा मुझाव है कि 'वर्ण' का प्रयोग उच्चरित स्वर्ण के लिए और 'अक्षर' का उसके लिपिगत संकेत के लिए किया जा सकता है। पर यह बात आरंभ में बतानी चाहिये। हम इस लेखमाला में इन दो अर्थों में दोनों शब्दों का प्रयोग करेंगे।

२०. दी. के शब्द-प्रयोग से भ्रान्ति—दी. ने वर्ण-और अक्षर का यथाप्रसंग यथारुचि प्रयोग करके विचित्र बात कही है। वह कहता है 'देवनागरी लिपि वर्ण-मूलक है।' फिर कहता है : 'देवनागरी लिपि अंशतः आक्षरिक है।' भारतीय पाठक चक्कर में पड़ेगा कि वह वर्ण पूर्णतः वर्णमूलक है या अंशतः क्योंकि वर्ण-मूलक और आक्षरिक तो पर्याय हैं। पर लगता है दी. ने 'फोनेटिक' और 'सिलेबिक' कहना चाहा है। सच बात यह है कि देवनागरी को 'वर्णिक' या 'आक्षरिक' के कठ-घरों में बाँधा नहीं जा सकता। उसमें स्वरों के दो रूप हैं : मानक अक्षर रूप और मात्रा रूप। मात्रा रूप तब प्रयुक्त होता है जब स्वर किसी व्यंजन के ठीक बाद आये। अ का मात्रा रूप व्यंजन के मानक रूप में निहित होता है। शुद्ध व्यंजन के लिए मानक रूप नहीं होता। मानक व्यंजन रूप 'अ' स्वर के साथ होता है। यथा क = क् + अ। शुद्ध व्यंजन दिखाने के लिए हल् के चिह्न ( ) का प्रयोग होता है। दो या अधिक व्यंजन साथ हों तो पूर्ववर्ती व्यंजन हल् चिह्न से व्यक्त होता है या मानक के खंडित रूप से। यथा : डाक्टर, वक्ता। 'र' अनेक रूप धारण करता है। अनुनासिक व्यंजन अनुस्वार रूप भी धारण करते हैं। विसर्ग भी होता है। यह सब वैचित्र्य वर्णमूलक और आक्षरिक जैसे शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता। यदि देवनागरी वर्णमूलक होती तो एक वर्ण को एक ही अक्षर से संकेतित किया जाता और एक अक्षर एक ही वर्ण का संकेत होता। पर 'क्' दो वर्णों का संकेत है, क् और अ का तो अकेले 'इ' वर्ण के दो संकेत हैं, यथा : इस और किसमें। अच्छा होता यदि दी. वर्णमूलक-आक्षरिक जैसी कृत्रिम संज्ञाओं का प्रयोग न करके लिपिकी वास्तविक विशेषताएं बता देते। पर खेद है कि विशेषताएं



बतानेके स्थानपर ऐसी अनावश्यक चर्चा की गयी है जिसका देवनागरीके प्रसंगमें उल्लेख सर्वथा अनपेक्षित था। लिखा है, 'देवनागरी लिपिमें छोटे और बड़े वर्ण नहीं होते। वर्णोंके हस्तलिखित और मुद्रित रूपोंमें कोई भेद नहीं है।' पता नहीं ये निषेधात्मक लक्षण क्यों बताये गये हैं। क्या रोमन या खसी लिपिकी चर्चा करते हुए यह बताना आवश्यक होता है कि उनमें स्वरों के मात्रावाले रूप नहीं होते, व्यंजनोंके मानक रूपमें 'अ' निहित नहीं होता, न हलन्त चिह्नकी व्यवस्था होती है, न अनुस्वार विसर्गकी। हमारा स्पष्ट मत है कि जिस लिपिकी चर्चा प्रासंगिक हो, केवल उसीके लक्षण बताये जाने चाहिये। अन्य लिपियोंके विशिष्ट लक्षणोंके अभावोंका वर्णन सर्वथा अवांछित है।

**२१. वर्णोंके नामों आदिके विषयमें प्रदत्त भ्रान्ति**—संस्कृत वैयाकरण अ, क, इ, च आदि वर्णोंके उच्चरित रूपका नामकरण अकार-ककार आदि रूपों में भी करते हैं। ये नाम उच्चरित वर्णके हैं; यथा हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। किन्तु दी. ने उस नामकरणको भी देवनागरीके साथ जोड़ दिया है। लिखा है: 'देवनागरी वर्णमालाके प्रत्येक वर्णका अपना नाम है जो उस वर्णके साथ 'कार' जोड़कर बनता है।' ध्यान रहे 'कार' के साथ वर्णको नामित करनेकी पद्धति भारतकी प्रायः सभी भाषाओंमें है, केवल हिन्दीमें नहीं। देवनागरीका भी उसपर एकाधिकार नहीं है। अन्य लिपियोंके अक्षरोंको भी 'कार' से अभिहित किया जा सकता है। फिर स्वरों की संख्या ११ और व्यंजनों की ३३ बताकर २५ व्यंजनोंके कण्ठ्य-तालव्य आदि पाँच वर्गोंमें विभक्त होनेकी चर्चा की गयी है। तत्पश्चात् चार अंतस्थ (?) स्वरों और तीन उष्म स्वरोंको चिह्नित करनेवाले वर्णोंका उल्लेख है। अंत में कहा गया है कि अंतिम वर्ण महाप्राण व्यंजन है यद्यपि उसका नाम नहीं बताया है। निष्कर्ष यह है कि हिन्दीके लिए प्रयुक्त देवनागरी लिपिमें ४४ मूल वर्ण हैं। यों लिपिके विषयमें स्वरों, संबंधी अनेक बातें बतायी गयी हैं जो स्वन विचारवाले अध्यायमें पुनः विस्तारसे बतायी गयी हैं। हिन्दी वर्णमाला और देवनागरी लिपि दोनोंको एक मानकर सारी चर्चा की गयी है। इसीलिए व्यंजनोंको पाँच वर्गों में तथा अन्तस्थ-उष्म महाप्राणअसन्ध आदि प्रकारोंमें

विभक्त किया गया है। तदनन्तर उन अक्षरोंका विवेचन किया गया है जिनके नीचे नुकता भी लगाया जाता है। इनमें इ. इ. को मूर्धन्य सघोष व्यंजक बताकर क, ख, ग, ज, फ, वर्णोंके विषयमें लिखा है कि वे अरबी फारसी मूलके शब्दोंमें हिन्दीके लिए अलाक्षणिक स्वनिमोको चिह्नित करनेके लिए प्रयुक्त होते हैं। यह भी बताया गया है कि कोशोंमें उनके लिए वर्णक्रममें कोई पृथक् स्थान नहीं है। पता नहीं, जो हिन्दीके लिए अलाक्षणिक हैं और कोशकारोंके लिए अमान्य, उनकी चिन्ता हिन्दीके वैयाकरणको क्यों हुई। अंग्रेजीके कोशोंमें हमारा 'पंडित' शब्द गृहीत तो हो जाता है पर न कोई नुकताचीनी होती है, न शुद्ध उच्चारणका प्रयास जोर न वैयाकरण उसके लिए कोई विशेष विधान करता है। बस उसे बैंडिट (Bandit) का जुड़वाँ भाई मानकर उच्चारण कर लिया जाता है। पर हिन्दीके वैयाकरणोंको विदेशी शब्दोंके उच्चारणकी ही नहीं, लेखनकी भी चिन्ता रहती है और कोशकारोंसे शिकायत भी कि उनका अलग क्रम क्यों नहीं निर्धारित किया। फिर लिखा है: 'क्ष' और 'ज्ञ' संयुक्ताक्षर होते हुए भी अलग वर्णोंके रूपमें लिखे जाते हैं किन्तु वर्णमालामें इन्हें 'क' और 'ज' वर्णोंसे अलग नहीं रखा जाता। 'क्ष', 'क्स' के अलावा 'क' के सभी संयोगोंके बाद तथा 'ज्ञ' 'ज' के अन्य संयोगोंसे पहले आता है।' दी. का यह कथन भी विचारणीय है। हमारे विचारसे यदि चर्चा आवश्यक ही थी तो यों कहना चाहिये कि क् ष और ज् ञ संयुक्त रूपमें 'क्ष' 'ज्ञ' लिखे जाते हैं यद्यपि वे भी अन्य संयुक्त व्यंजनोंके समान ही हैं और इसीलिए कोशकारों ने उन्हें वर्ण क्रममें वहीं रखा है जहां 'क्ष' 'ज्छ' को रखा जाता। यदि आकृतिकी पहचान कठिन होनेसे ही इन्हें अलग वर्ण मानें तब तो व्र-श्च को भी अलग वर्ण मानना चाहिये था; क्र-प्र आदिको भी। अंतमें निकाला गया निष्कर्ष हास्यास्पद है कि 'हिन्दी वर्णमाला में 'क्ष' और 'ज्ञ' समेत कुल तौ सहायक वर्ण हैं।' यह नहीं बताया कि वे किसकी सहायता करते हैं। शिक्षार्थीके लिए तो वे संकट ही पैदा करते हैं।

**२२. मात्राएं तथा अन्य चिह्न**—यों वर्गीकरण पूर्वक ४४ वर्णों सहायक वर्णोंका उल्लेख करके दी. ने मात्राओं तथा अन्य चिह्नोंकी चर्चा की है। लिखा है: 'व्यंजनोंके साथ स्वरोंका संयोग मात्राओं



द्वारा व्यक्त होता है। फिर सोदाहरण बताया है कि 'अधिकांश मात्राएं तत्संबंधी स्वर वर्णका संक्षिप्त रूप हैं। यहाँ दी. को 'डॉक्टर' जैसे शब्दों में लगनेवाला चिह्न भी याद आ गया है और उसने बता दिया है कि वह अंग्रेजी मूलके शब्दों में (O), (O:) स्वरों को लक्षित करनेके लिए प्रयुक्त होता है।' लगता है पहले उसे भूल गये थे अन्यथा उसे भी सहायक बताया जा सकता था क्योंकि वह अंग्रेजीके शुद्ध उच्चारणके प्रयत्न में अवश्य थोड़ी बहुत सहायता करता ही होगा। हलन्त चिह्नका उपयोग भी बताया है। फिर बिना परिभाषा दिये ही 'नासिक्यरंजनता' के चिह्नका उल्लेख है। 'नासिक्यरंजनता' का अर्थ संभवतः 'अनुनासिकता' है पर यह बताया नहीं गया है। अगला वाक्य है : 'चंद्र बिन्दु (°) यह दर्शाता है कि स्वर अनुनासिक है।' फिर बताया गया है कि अनुनासिक स्वरोंके लिए केवल चंद्र बिन्दु ही प्रयुक्त नहीं होता। अनुनासिकके स्थानपर बहुधा अनुस्वारका प्रयोग होता है। यों उच्चरित वर्ण और उसके लिपिगत रूपको एक ही माना गया है जबकि अनुनासिक और अनुस्वार उच्चरित वर्णके लिए प्रयुक्त होते हैं और उनके लिपिगत रूप है क्रमशः चन्द्र बिन्दु और बिन्दु। दी. का कथन ठीक नहीं क्योंकि अनुनासिकके स्थानपर अनुस्वारका प्रयोग कभी नहीं होता। हां, चंद्र बिन्दु के स्थानपर केवल बिन्दु का होता है। यथा मैं, में, यहीं, कहाँ, आंख आदि सबमें स्वर तो अनुनासिक है किन्तु उसे पहले तीन शब्दोंमें केवल बिन्दुसे व्यक्त किया गया है जबकि शेष दो में चंद्र बिन्दुसे। उच्चरित रूप (अनुस्वार) और लिपिगत रूप बिन्दुको एक ही मानकर अगले प्रच्छेदको दो उपखंडों (क) और (ख) में विभक्त किया गया है। (क) में जो उदाहरण दिये हैं वे वस्तुतः अनुस्वारके लिए प्रयुक्त बिन्दुके हैं, यथा : गंगा, चंचल, कंठ आदि। (ख) के उदाहरण अनुनासिक स्वरके लिए प्रयुक्त बिन्दुके हैं। यथा : भैंसें, मेजें आदि फिर एक प्रच्छेदमें कोशोंके वर्णक्रमका भी भ्रामक प्रतिपादन किया गया है : हिन्दी शब्द कोशोंमें अनुनासिक तथा अनुस्वार चिह्नवाले शब्द अन्य शब्दोंसे पहले दिये जाते हैं। यह कथन सत्य नहीं क्योंकि वास्तवमें अनुस्वार और अनुनासिकतायुक्त स्वर, विसंगयुक्त स्वर और शुद्ध स्वरका क्रम रखा जाता है। विसंग चिह्नके प्रसंगमें उसके उच्चारणकी अनावश्यक चर्चा

की गयी है और कोशोंके वर्णक्रमके विषयमें वैसीही भ्रामक बात कही गयी है जैसी अनुस्वारके विषयमें। देवनागरीके विवेचनमें हिन्दी कोशोंके वर्णक्रमकी क्यों चर्चा करनी पड़ी, यह तो लेखक ही जाने किन्तु यह अवश्य सत्य है कि देवनागरीके अटपटापनके कारण हिन्दी कोशोंके प्रयोक्ताओंको कठिनाई होती है। इस कठिनाईका एक कारण यह भी है कि किसी हिन्दी कोशकारने अनुस्वार-विसर्गके वर्णमालागत क्रमको नहीं समझा और अनुस्वार-अनुनासिकको दो तत्त्व केवल हिन्दीशब्द सागरके नये संस्करणमें माना गया है। शेष सभी कोशकार उन्हें एक ही मानकर चले हैं। फिर भी इस प्रसंगका लिपि चर्चामें औचित्य नहीं था। इसलिए हम इस विषयपर पृथक् लेखमें विस्तारसे प्रकाश डालेंगे। क्रमकी चर्चा 'स्वन विचार' के प्रसंगमें भी करेंगे।

२३. संयुक्ताक्षरोंका विवेचन—संयुक्ताक्षरकी परिभाषामें दी. ने लिखा है कि वे तत्संबंधी व्यंजनोंके निश्चित अंशोंको मिलाकर लिखे जाते हैं। वास्तवमें व्यंजन तो उच्चरित स्वनका नाम है और वह तो पूरा ही होता है। हां, उसके लिपिगत अक्षर रूपमें अवश्य कुछ तोड़फोड़ होती है। इस तोड़फोड़को समझनेसे पूर्व दी. ने लिपिगत अक्षरके कुछ सामान्य तत्त्व बताये हैं। वे हैं शीर्षरेखा या सिरा और खड़ी पाई। पता नहीं प्रचलित शब्द 'शिरोरेखा' को छोड़कर उसे 'सिरा' क्यों कहा गया। सिरा शब्द ठीक नहीं है यद्यपि 'शीर्षरेखा' चल सकता है। फिर लिखा है : सिरा टूटा हुआ भी हो सकता है (भ, झ, घ)। उदाहरणमें मुद्रककी भूलसे 'झ' का सही रूप नहीं दिया गया क्योंकि जो रूप दिया है उसमें शिरोरेखा टूटी हुई नहीं है। फिर लिखा है : 'इन सामान्य तत्त्वोंके अलावा प्रत्येक वर्णका अपना लाक्षणिक अंश होता है, वह अंश जो वर्णमें से खड़ी पाई या सिरा हटा लेनेपर बचता है। जैसे : 'म' वर्णका लाक्षणिक अंश 'म्' है, 'ग' का 'ग्' 'घ' का 'घ्' इत्यादि। इनमें खड़ी पाई हटानेके उदाहरणही दिये गये हैं, 'सिरा' हटानेके नहीं। देवनागरी अक्षरोंका संयोजन ऊपर नीचे भी होता है, अगल-बगल भी। जब संयोजन ऊपर नीचे होता है तो प्रायः पूर्ववर्ती अक्षर पूरा होता है, परवर्ती खंडित; अगल-बगलवाले क्रममें पूर्ववर्ती खंडित होता है, परवर्ती पूरा। इस बातको किंचित जटिल रूपमें व्यक्त किया गया है : 'संयुक्ताक्षर वर्णों



की खड़ी रेखामें अर्थात् ऊपर-नीचे मिलाकर या प्रायः पड़ी रेखामें अर्थात् अगल-वगल मिलाकर बनाते हैं। संयुक्ताक्षरमें आद्यवर्ण पूरा लिखा जाता है और उसके नीचे परवर्ती वर्णका विशिष्ट अंश, जैसे : ढ, ढ्र। पड़ी रेखामें बने संयुक्ताक्षरोंमें संयोजनके अन्त्य व्यंजन का वर्णन पूरा लिखा जाता है। संयोजनके पहले व्यंजन के वर्णका विशिष्ट अंश इसमें बाईं ओरको जोड़ा जाता है; जैसे : ग् + न = ग्न, प् + य = प्य...। जिसे पहले 'लाक्षणिक अंश' बताया गया है, उसे ही यहां विशिष्ट अंश बताया गया है। 'खड़ी-रेखा पड़ी-रेखा' जैसा विवरण भ्रामक है क्योंकि रेखा तो कहीं होती ही नहीं। संयुक्ताक्षरोंके विषयमें अंतिम प्रच्छेद तो तथ्यों के विरुद्ध है। लिखा है : 'ङ, ञ, ण, न, म वर्ण अपने वर्गके अन्य वर्णोंके साथ मिलकर ही संयुक्ताक्षर बनाते हैं, दूसरे शब्दोंमें ये क्रमशः कण्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य तथा ओष्ठ्य व्यंजनोंके साथही मिलते हैं।' यह कथन ठीक नहीं है। वाङ्मय, अरण्य, हिरण्मय, अन्वय, अन्य, साम्य, सम्राट् आदिमें ये वर्ण अपने वर्गसे भिन्न वर्गके वर्णोंसे मिलते हैं और अपने वर्ग के वर्णसे पूर्व तो वे प्रायः बिन्दु (अनुस्वार) के रूपमें लिखे जाते हैं जैसा दी. ने स्वयं लिखा है : 'ङ, ञ, ण, न तथा म—ये पाँच वर्ण (अंतिम तीन जब व्यंजनोंके साथ संयोजनमें अनुनासिक सघोषोंको व्यक्त करते हैं तब) संयुक्ताक्षरोंमें प्रायः अनुस्वार (बिन्दु) के रूपमें भी लिखे जाते हैं, जैसे अंक, कुंजी, कंठ, हिंदी, लंबा।' अंतिम तीन विषयक जो बात कोष्ठकमें दी गयी है उसे समझनेमें हम असमर्थ रहे हैं। यों पूरा विवेचन प्रायः भ्रान्तियोंसे भरा है। इसमें कितनी भूल मूल लेखककी है, कितना योगदान अनुवादकका है वे ही जानें।

अंतमें बहुधा प्रयुक्त संयुक्ताक्षरोंकी एक सूची दी गयी है जिनमें ण्य, न्य, म्य, म्र, म्ल जैसे संयोगभी बताये गये हैं जो ऊपरके प्रच्छेदमें दी गयी सूचनाका खंडन करते हैं क्योंकि उस सूचनाके अनुसार तो ये वर्ण केवल अपने ही वर्गके वर्णोंके साथ संयोग करते हैं।

२४. अंक विचार—दी. के अनुसार हिन्दीमें १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ० अंक प्रयुक्त होते हैं। उसने संविधान सम्मत राजभाषा हिंदीकी कोई चिन्ता नहीं की जिसमें भारतीय अंकोंके अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूपको ही मान्यता दी गयी है। राजभाषा विषयक यह निर्णय आजकल इतना हावी हो गया है कि विद्यालयोंमें देव-

नागरी अंक सिखाये ही नहीं जाते। हम दी. के आभारी हैं कि उसने केवल उन्हें ही हिन्दीके अंक माना।

२५. विराम चिह्न : अध्यायकी समाप्ति विराम चिह्नोंके परिचयके साथ की गयी है। पर यह नहीं बताया गया कि किस चिह्नका प्रयोग कहां किया जाता है। केवल नाम गिना दिये गये हैं। नियमोंके विषय में विवशता व्यक्त की है कि 'हिन्दीमें विराम चिह्नोंके कोई निश्चित नियम अभीतक नहीं बने है। यह भी बताया गया है कि शब्दोंके संक्षिप्त रूप दर्शानेके लिए '०' अथवा बिन्दु चिह्न है, जैसे डॉक्टर—डा०, डा.। खैरियत है कि स्वस्तिक (卐), खड्ग (+) आदि चिह्न नहीं गिनाये यद्यपि पुस्तकोंमें पाद टिप्पणियों के संकेत रूपमें उनका भी प्रभूत प्रयोग होता है।

२६. हमारा मत : हमारे विचारसे 'लिपि' की चर्चा, विशेषकर देवनागरी लिपिकी चर्चा, हिन्दी व्याकरणकी पुस्तकमें आवश्यक नहीं है। हिन्दी किसी भी लिपिके माध्यमसे सीखी जा सकती है। केवल मौखिक उच्चारण सुनकर भी सीखी जा सकती है। हमारी पुरानी परंपरा यही है। भारतके संविधान में संघकी राजभाषा हिन्दी बतायी गयी है और लिपि देवनागरी। इसका उद्देश्य संघके राजकाजके लिए देवनागरीमें लिखी हिन्दीका प्रयोग विहित करना है, पर न तो अन्य लिपियोंके माध्यमसे हिंदी सीखनेवालों पर कोई प्रतिबंध है और न मौखिक रूपसे सीखने वालोंपर ही। सहज शिक्षा तो बिना लिपिके ही होती है। फिर भी यदि हिन्दी व्याकरणकी पुस्तकमें देवनागरीके लक्षणोंका परिचय अभीष्ट ही हो तो संक्षेपमें इस प्रकार बता सकते हैं :

देवनागरी लिपिमें स्वरों और व्यंजनोंको व्यक्त करनेके लिए प्रयुक्त मानक अक्षर रूप ये हैं :

(क) स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ

(ख) व्यंजन—(१) क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह,

(२) (अनुस्वार), : (विसर्ग)

(अ) स्वरोंके अनुनासिक उच्चारणको व्यक्त करनेके लिए अक्षरपर बिन्दु (ँ) अथवा चंद्र बिन्दुका प्रयोग किया जाता है इस विषयमें एकरूपता नहीं है। बहुत कम लोग हैं जो सर्वत्र केवल चंद्र बिन्दुका प्रयोग



करनेका आग्रह करतेहैं। कुछ लोग सर्वत्र बिन्दुसे ही काम चलातेहैं। जो वस्तुतः अनुस्वारका द्योतक है। अधिक लोग अनुनासिकता व्यक्त करनेके लिए कहीं बिन्दुका तो कहीं चंद्रका प्रयोग करतेहैं। यदि अक्षरके ऊपर कोई मात्रा हो तब तो चंद्रबिन्दुका प्रयोग प्रायः नहीं किया जाता।

(आ) स्वर यदि व्यंजनके ठीक बाद हो तो 'अ' स्वर तो व्यंजनके मानक रूपमें निहित रहताहै पर शेष स्वर मात्रा रूपमें प्रयुक्त होतेहैं जो इस प्रकार हैं :  
 १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११

(इ) व्यंजन अक्षरोंके मानक रूपमें अ-स्वर निहित रहताहै अतः यदि अकेले व्यंजनको ही लिखित रूप देनाहो तो मानक रूपके नीचे ( ) चिह्न लगाते हैं जिसे हल् कहतेहैं।

(ई) यदि व्यंजनके बाद व्यंजनही आये तो संयुक्ताक्षर बनानेकी विस्तृत विधि है जिसे संक्षेपमें यों कह सकतेहैं :

(i) पूर्ववर्ती व्यंजन अक्षर यदि खड़ी पाईवाला है, (क ख, ग, घ, च, ज, झ, ञ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, ल, व, श, ष, स) तो उसकी खड़ी पाई हटाकर संयोजन किया जाताहै। (क और फ का परवर्ती मुड़ा भाग पाई माना जाताहै) यथा क्व, रव्य, ग्व, फल आदि

(ii) यदि वह अक्षर खड़ी पाईवाला न हो तो हल् चिह्न लगातेहै। यथा: ट्ठ, ड्ढ, द्य ह्व, आदि

\*\*\*\*\*

## लेखन सोखें

घर बैठे लेखन व पत्रकारिता सोखें। विवरण के लिए लिखें :

शुभ तारिका मासिक

ग्रम्बाला छावनी-१३३००१

\*\*\*\*\*

'प्रकर'—अक्तूबर ६२—१०

(iii) नियम (ii) 'र' के संयोगोंपर लागू नहीं होता। वह जिस अक्षरसे पूर्व हो उसके ऊपर रेफ रूपमें यथा : 'सर्प' में, पाईवालेके बाद हो तो ऋ रूपमें, यथा: विप्र, चक्र, सम्राट् आदिमें, यदि बिना पाई वालेके बाद हो तो नीचे, यथा द्र, ड्र, में पर ह्र में बीचमें, जुड़ताहै। 'श' का तो रूपही बदलकर 'श्र' कर देता है।

(iv) क् + ष और ज् + ञ के संयोग क्ष और ज्ञ रूपमें लिखे जातेहैं।

(V) ड्, ञ्, ण्, न् म् यदि अपने ही वर्गके अक्षरसे ठीक पहले हों तो प्रायः पूर्ववर्ती अक्षरके ऊपर 'बिन्दुके रूपमें लिखे जातेहैं। यथा अंडा, दंत, चंपा।

(उ) अनुस्वार और विसर्ग ऐसे व्यंजन है जिनसे पूर्व स्वर होना आवश्यक है। अनुस्वारको उस स्वरके ऊपर (चाहे स्पष्ट रूप हो, चाहे निहित या मात्रा रूप) बिन्दु लगाकर और विसर्गको बादमें दो बिन्दु (:) लगा कर व्यक्त करतेहैं। यथा संयम, अंश, प्रायः, दुःख, अः आदि।

(ऊ) देवनागरीके अंक हैं : १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०, पर अब १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०, का भी प्रयोग होने लगाहै।

सार यह कि यदि देवनागरी लिपिकी चर्चा करनी हो तो विषयको उसी लिपि तक सीमित रखना चाहिये। न वर्णोंके उच्चारण स्थानों, वर्ग विभाजनों, कोशगत वर्णक्रमों आदिकी चर्चा करनी चाहिये, न रोमन, रुसी, ग्रीक, फारसी आदि लिपियोंके साथ तुलना करनी चाहिये। □

१. संविधानके वर्तमान रूपमें प्रावधान यह है कि : "संघकी राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघके शासकीय प्रयोजनोंके लिए प्रयोग होने वाले अंकोंका रूप भारतीय अंकोंका अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।" परन्तु पाश्चात्य-वृत्तिसे जुड़े भारतीय मूलके लोगोंने इन तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीय अंकोंको शासकीय प्रयोजनोंके लिए सीमित न रखकर इसे देवनागरी लिपिका ही अंग बना दियाहै। इस प्रवृत्तिका विस्तार इस रूपमें होनेकी पूरी सम्भावना है कि भारतीय लिपिका अन्तर्राष्ट्रीय रूप रोमन लिपिही देशकी

राष्ट्रीय लिपि होजाये।



## शब्द प्रयोग?

लेखक : डॉ. नरेश मिश्र

समीक्षक : डॉ. रामदेव शुक्ल

भाषा-विज्ञान एक जीवन्त विषय है किन्तु विश्व-विद्यालयोंमें इसे प्रायः अरुचिकर विषय बनाकर छोड़ दिया जाता है। दूसरी ओर ऐसे भाषावैज्ञानिकोंकी एक लम्बी परम्परा है कि जो भाषा-विज्ञानको इस प्रकार विज्ञान बनानेपर तुले रहते हैं कि सजीव शब्द, अर्थ और इस प्रकार मानवीय सांस्कृतिक प्रक्रियासे उसका सम्बन्ध ही नहीं रह जाता। डॉ. नरेश मिश्र जैसे भाषा-चिन्तक उन अपवादोंमें है जो भाषा-विज्ञान को जीवनसे सीधे जोड़कर देखते-परखते हैं और भाषा-चिन्तनको साहित्यकी रचनात्मक विधाओंके समान रोचक बना देते हैं।

चार अध्यायोंकी पुस्तक 'शब्द-प्रयोग' के पहले अध्यायमें संस्कृत और हिन्दीके प्रसिद्ध विद्वानों और ग्रंथोंके आधारपर शब्दकी व्युत्पत्ति बताते हुए उसकी परिभाषा की गयी है। लेखकका निष्कर्ष है कि "शब्द भाषाकी अर्थवान् स्वतन्त्र इकाई है।" इसके बाद शब्द विज्ञानको परिभाषित करके उसके सम्भावित क्षेत्रोंकी गणना की गयी है। शब्दके साथ ध्वनिका अध्ययन व्यावहारिक स्तरपर करते हुए वर्तनीके साथ उच्चरित रूपोंको रखकर लेखकने एक आवश्यक कार्य सम्पन्न किया है। शब्द और अक्षर, शब्द और पद, शब्द और वाक्य, शब्द और प्रोक्ति जैसे उपशीर्षकोंमें शब्दका सूक्ष्म और व्यावहारिक अध्ययन किया गया है।

द्वितीय अध्याय है 'शब्द एवं शब्दार्थकी सांस्कृतिक भूमिका।' महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि हिन्दीमें आनेवाले विदेशी शब्दोंके साथ जुड़ी हुई सांस्कृतिक चेतनाको

रेखांकित कर रिया गया है। शब्द और अर्थका क्या सम्बन्ध है, अर्थ संकोच अर्थ-विकासकी प्रक्रिया क्या है और किस प्रकार दूमरी भाषाओंके शब्द हिन्दीमें अपने अनेक अर्थ छोड़कर एक अर्थमें प्रचलित हो गये हैं, इसका रोचक विवरण है। उदाहरणके लिए फारसीका गरीब है, जो हिन्दीमें गरीब हो गया है। वहां इसके पांच अर्थ हैं,—१. विदेशी, २. जो यात्रामें हो, ३. दुःखी, ४. दीन, ५. निर्धन। हिन्दीने इसके अन्तिम अर्थ को ही स्वीकार किया है। ऐसा ही संस्कृतके अनेक शब्दोंके साथ हुआ है। अरबी और अंग्रेजीके अनेक शब्द इसी प्रकार एक निश्चित अर्थके लिए ही हिन्दीमें स्वीकृत हैं। इसी प्रकार अनेक शब्दोंके मूल अर्थ ही हिन्दी तक आते-आते बदल गये हैं। अन्तमें लेखकने वर्तमान समयकी हिन्दी शब्दावलीके आधारपर निष्कर्ष निकाला है कि कैसे प्राचीन भारतीय आदर्श, मुस्लिम संस्कृति और पाश्चात्य सभ्यताकी झलक केवल शब्दों और उनके स्वीकृत व्यावहारिक अर्थके साथ उपस्थित हो जाती है।

तीसरा अध्याय 'ध्वनि-परिवर्तन' है। संस्कृतसे हिन्दीमें तद्भव रूपमें आये शब्दोंकी तद्भवीकरणकी प्रक्रियाका अध्ययन सावधानीके साथ किया गया है। सामान्य पाठकके लिए यह समझनेमें कठिनाई हो सकती है कि 'महापात्र' 'महावत्' में कैसे बदल गया। ऐसे ही अनुनासिकता जहां किसी कारणसे आयी हो, उसका उल्लेख तो है ही, उन शब्दोंका भी है जिनमें वह 'अकारण' आयी है। अरबी, फारसी, तुर्की और अंग्रेजीसे आये शब्दोंकी ध्वनियोंमें परिवर्तन किन कारणोंसे किन रूपोंमें और किन परिणामोंके साथ हुए इसका विस्तृत विवरण यहां मिल जाता है। ध्वनि विज्ञानकी सर्वमान्य पुस्तकोंके साक्ष्यके साथ लेखकने हिन्दी भाषाकी वर्तमान स्थितिके अपने व्यावहारिक ज्ञानका भरपूर लाभ उठाकर ही यह महत्त्वपूर्ण अध्ययन किया है।

१. प्रका. : चिन्ता प्रकाशन, पिलानी (राजस्थान)।  
पृष्ठ : १४५; डिमा. ८८; मूल्य : ७५.०० रु।

'प्रकर'—कात्तिक'२०४६—११



चौथा अध्याय है, 'शब्द-प्रयोग' जिसमें शब्द-प्रयोग के विज्ञानको सरल, सहज और सरस रूपमें समझा दिया गया है। इस अध्यायमें शब्द-चयनकी प्रवीणताको रचनात्मक स्तरपर रेखांकित करते हुए विशेष कार्य किया गया है। समान अर्थछायावाले पर्यायवाची शब्दों के सूक्ष्म अन्तरको प्रयोगके साथ स्पष्ट किया गया है। इससे हिन्दी भाषामें कार्य करनेवालोंकी व्यावहारिक कठिनाई दूर होगी। उदाहरणके लिए अंक-संख्या, अंकुश-नियन्त्रण, अधिक-बहुत, अनबन-खटपट, अनशन-व्रत, अनिवार्य-आवश्यक, आरम्भ-प्रारम्भ, आयु-अवस्था,

गिला-भोगी, चतुर-चालीक, पुस्तक-ग्रंथ, संन्यासी-साधु, लक्ष्य-ध्येय, सरल-सुगम जैसे शब्दोंके अन्तरको प्रयोग सहित बताया गया है।

वस्तुतः डॉ. मिश्रकी यह पुस्तक हिन्दी भाषाकी प्रकृतिको समझानेमें जितनी सहायक है, उतनीही रोचक शैलीमें लिखी गयी है। लेखकने व्याकरण, भाषा-विज्ञान और साहित्यके गम्भीर अध्ययनका उपयोग इस सहजतासे किया है कि ज्ञानका बोझ पाठकको बोझिल नहीं करता। व्यावहारिक हिन्दीकी एक महत्त्वपूर्ण पुस्तकके रूपमें इसका समादर अवश्य होगा। □

## निबन्ध

### भारत और यूरोप :

#### प्रतिश्रुतिके लेख

लेखक : निर्मल वर्मा

समीक्षक : घनश्याम शलभ

लेखकका यह चौथा निबन्ध संग्रह है, जिसके भाग एकमें चार, भाग दो में छः और परिशिष्टमें एक वक्तव्य है। प्राक्कथनमें लेखकने स्वयं लिखा है कि यूरोप उसकी चिन्ताओंके हाशियेपर हमेशा मंडराता रहा है, और न वह इन्हें (निबन्धोंको) किसी खास 'थीम' या विषयके दायरेमें बांधना चाहेगा। एक प्रकारसे ये उसकी विचार-यात्राके पड़ाव अंकित करते हैं। फिरभी खास 'थीम' या विषय तो इनमें मौजूद है ही, यथा—'भारतीय संस्कृति और राष्ट्र', 'मानववाद : कुछ आत्म छलनाए', 'भारत और यूरोप : प्रतिश्रुतिके क्षेत्रकी खोज', 'भारतीय जीवनकी निराशाए'

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, १-वीं नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १२०; डिमा. ६१; मूल्य : ७०.०० रु.।

'प्रकर'—अक्तूबर ६२—१२

'संस्कृतिके आत्मबिम्ब', 'साहित्यिक कृति और सत्यकी अवधारणा', 'कलाकी प्रासंगिकता', 'क्या साहित्य समाजसे कट चुका है?', 'आलोचनाके 'भटकाव', 'लेखककी स्वतंत्रता और स्वधर्म' और परिशिष्टमें—'भारतीय लेखकका स्वप्न और जिम्मेदारी'।

'लेखककी स्वतंत्रता और स्वधर्म', जो अज्ञेयजी की स्मृतिमें लिखा गया है, में लेखकने यह स्वीकार किया है कि 'मैं जो आजतक प्रेमचन्द, सुदर्शन, यशपाल की आहार-सामग्रीपर पलता आया था'—दसवीं कक्षामें पढ़ी गयी अज्ञेयकी 'कड़ियाँ' कहानीने उसकी अन्त-श्चेतनाकी खिड़की खोल, एक ऐसा परिदृश्य दिखाया कि 'कहानीकी स्मृति अब उनकी (अज्ञेय की) रचना नहीं, उसके अनुभवका अभिन्न अंग बन गयी थी। और वह अनुभव तो अबभी लेखकका अभिन्न अंग बना हुआ है ही। स्कूलके दिनोंमें प्रेमचन्द, सुदर्शन और यशपाल अच्छे लगनेही थे, सो लगे भी। वैसेभी यह लेखकभी, यदि उसीकी शब्दावलीका प्रयोग करें जो उसने राजा राममोहनरायके लिए की थी तो वह स्वयं भी 'जन्मसे हिन्दू और शिक्षा-दीक्षासे यूरोपीय' ही है। इससे एक लाम यह हुआ यह लेखक यूरोपीय शिक्षा-



दीक्षासे सम्मोहित अन्यान्य भारतीयके आन्तरिक विग्रह, मनोव्यथा, हताशा और दुविधाओंका विश्लेषण बखूबी कर पाया है—विशेषतः आत्मखण्डित और अहंस्त यूरोपीय चेतनाके संदर्भमें, जो एक हिंसात्मक शक्ति-धाराके रूपमें, अनेक गैरयूरोपीय समाजों और संस्कृतियोंमें आज तक हस्तक्षेप करती रही है, और जिसके कारण भारतीय बुद्धिजीवी अपनेको 'आधुनिक और पश्चिमी मनुष्य' की आदर्श इमेजमें ढालनेकी लालसा पालनेमें अब तक लगा हुआ था। पर भारतीय संस्कृति ग्रीस या मिस्रकी भांति कोई ऐतिहासिक स्मृति या पिरामिड मात्र या गौरवावशेष तो है नहीं कि जिसे केवल किसी अजायबघरका अजूबा मानकर संतोषकर लिया जाये ? क्योंकि इस लेखककी मान्यता है कि 'एक भारतीयका सभ्यता-बोध उसे एक ऐसी समग्रता देता है जो धर्म, राजनीति और राष्ट्रीयताके लेबलोंमें परिभाषित नहीं होपाती, न ही उसकी अस्मिता उन चौखटोंमें फिट हो सकती है, जो आजके भारतीय सत्तारूढ़ वर्गने पश्चिमकी राज्य-व्यवस्थाओं से उधार लेकर अपने समाजपर आरोपित करने चाहे है।' और यह भी गेटेकी भांति 'अपने भीतर मनुष्यके सम्पूर्णता-बोधको बचाना' चाहता है। आज तो इस वर्गीकृत व्यवस्थाने जैसे आदमीको 'एक आर्थिक प्राणी, एक धार्मिक प्राणी, एक राजनीतिक प्राणीके रूपमें विघटित कर दिया है। भारततो बहुजातियोंके सह-अस्तित्ववाला देश सदैव रहा है, परन्तु उपनिवेशवादी अंग्रेजी प्रशासन-तन्त्रने उस सहअस्तित्ववाली नैसर्गिक एकताको खण्डित करनेका पुरजोर प्रयत्न किया है उसने उसकी एवजमें अपनी मान्यताओंके आधारपर स्वतन्त्र व्यक्तित्व, स्वतन्त्र राष्ट्रीय सत्ता और सेक्यूलर केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था दी। अतः यह स्वाभाविक ही है कि उस समय भारतके 'सविष्यका आदर्श' कहीं सुदूर यूरोपमें था, यद्यपि उसका अपना गौरवशाली अतीत उसकी चेतनापर पूर्ण रूपसे छाया रहा।

लेखकने ठीक ही लिखा है कि 'देशकी इस अन्त-विभाजित मनःस्थितिकी यूरोपीय धाराका प्रतिनिधित्व यदि पं. नेहरू करते थे तो उसके अतीतोन्मुखी पक्षके समर्थक जिन्ना और सावरकर थे।' परन्तु गाँधी इसके सशक्त विकल्प रूप उभरकर सामने आये, जिन्होंने भारतीय आत्माको पश्चिमी सभ्यताके समक्ष सार्थक रूप से परिभाषित किया। यही क्यों, महर्षि अरविन्द और

रमण, रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द, ऋषि दयानन्द सरस्वती और बंकिम चट्टोपाध्याय और रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे अनेक साहित्यकारोंने भारतीय परम्पराके उस अखंडित और समग्र आत्मबोधको उस समय उजागर किया था।

लेखकने गांधीजीके इस दिशामें किये महत् अवदान का मूल्यांकन करनेका प्रयत्न किया है। क्योंकि 'गांधीजी यदि भारतकी भौगोलिक अखंडताको महत्व देते थे तो सिर्फ अन्धे देशप्रेम अथवा किसी ऐतिहासिक पूर्वाग्रह के कारण नहीं, बल्कि इसलिए कि किसी सभ्यताके जीवन्त-तत्त्व भूमिके एक ऐसे खण्डमें ही प्राणवान् बने-रह सकते हैं—जिसने सदियोंसे एक संस्कृतिकी स्मृतियों को संजोया है और जिसे उपनिवेशवादी अंग्रेजी प्रशासन तन्त्रकी पूरी शक्तिभी नष्ट नहीं कर पायी थी। यह यह ठीक है कि वह घायल अवश्य हो गयी थी।

कहा जाता है कि यूरोपीय सभ्यता मूलतः मानववादी है, यह लेखकभी ऐसा ही मानता है, पर क्या वह मानवतावादी या ह्यूमेनिटेरियन भी है, जहां 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की-सी उज्ज्वल अवधारणाकी जड़ें, उसकी मिट्टीके रेशे-रेशेतक फैल बहुत गहराईमें अवस्थित हों ? 'वी आर द क्रिस्ट आफ द यूनीवर्स' की अहम्मन्यतासे उद्वत सभ्यताही दो बड़े विश्वयुद्धोंकी रचना कर सकी है। यह भी उतना ही सही है कि 'सभीके ऊपर मनुष्यको वरीयता' हमारे देशमें भी दी गयी है, परन्तु उसमें 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' का आत्मबोध भी सन्निहित रहा है। फिर भी यूरोपीय मानववादने अपनी आत्म-छलनाओंसे भारतीय बुद्धिजीवियोंको भी पर्याप्त रूपसे प्रभावित किया है। यह ठीक है कि मनुष्यही इस सृष्टिके केन्द्रमें है, पर वह अब तक शोषणविहीन, न्यायसंगत और भाईचारेसे सम्पन्न समाजोंकी स्थापना कहाँ कर पाया है ? वर्गहीन समाजकी कल्पना अब भी कल्पना भर बनी हुई है। रंगभेद, वर्गभेद, जातिभेद, नस्लवाद, साम्प्रदायिक और प्रौद्योगिक प्रदूषणके चलते तस्करों और माफिया का क्रूर चक्र अब तक जारी है। आये दिन राजनीतिक हत्याएं घड़लेसे हो रही हैं, अलगाववादी ताकतोंका आतंक ही समूचे विश्वको आक्रान्त किये हुए है।

और विकसित राष्ट्रोंका अब भी वही मित्र है जो उसकी स्वार्थसिद्धिमें सहायक होता है, अन्यथा उनके लिए और सभी नगण्य हैं। उस स्वर्गकी भी वास्त-



विकता अभी लॉस ऐंजिल्सके दंगोंमें क्या उजागर नहीं हुई ? एमनेस्टी इंटरनेशनल तकने उसकी भर्त्सना की है। स्वार्थपरता और रंगभेद नीतिका वह विषैला प्रभाव कितना घातक हो सकता है, ये दंगे उसके ज्वलंत उदाहरण हैं। लेखकने तो ठीक ही लिखा है कि 'माक्सवादी क्रान्ति और कुछ नहीं, उस स्वप्नको पूरा करनेका पवित्र और ऐतिहासिक मानववादी अभियान था, जो बुजुर्ग लोकतन्त्रमें सिर्फ एक तृष्णा, एक तड़प एक आकांक्षा तक ही सीमित होकर रह गया।'।

परन्तु इसके बाद वह माक्सवादी शासन-व्यवस्था के वास्तविक रूपके चित्रणमें लग गया। उसीके शब्दोंमें—लेनिन द्वारा अन्य विरोधी पार्टियोंका दमन स्तालिन लेबर कैम्प, सैकड़ों सोवियत लेखकों-कवियों-चित्रकारों की हत्याएं, सेंसरशिप, झूठे, भुक्तम, यूक्रेनका दुर्भिक्ष, घोर विपन्नता, आदिके तथ्य प्रस्तुत करते हुए वह अपनी बिबेक-तुलापर इस व्यवस्थाको फासिज्मके साथ तोलता है, और निष्कर्षतः लिखता है—'तोभी कमसे कम आंकड़ोंकी दृष्टिसे कम्यूनियज्मका रिकार्ड फासिज्मकी तुलनामें कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण रहा है।'।

उसका यह विचार-दोहन, और ऐसी विचारतुला—दोनोंही तो उसके अपने हैं। उसे भी संशय तो है ही कि 'लोकतन्त्रके प्रति सम्मोहनभी एक छलनासे टकराकर, दूसरी छलनाकी भूलभुलैया-में भटकन तो नहीं है ?'—जहां लोलुपता, स्वार्थ और शोषणपर टिकी भौतिक सुविधाओंकी व्यवस्था क्या अबभी उतनी ही त्रासद नहीं है ? और अन्तमें यह लेखक अपने प्रिय चेक लेखक वात्सलाव ह्रावेलके शब्दोंकी शरण लेता है—'मुझे यह लगता है कि कोई शक्ति हमसे ऊपर है, कि हम जो करते हैं—उसपर निर्णय लिया जाता है। हमारे पास यह सोचनेका कोई अधिकार या तर्क नहीं है कि हम सब कुछ समझते हैं, और जो चाहे कर सकते हैं।'—ठीक है, 'जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये' न फिर ?

'भारत और यूरोप : प्रतिश्रुतिकी खोज' अज्ञेय मेमोरियल लेक्चर्सके अन्तर्गत दिया गया व्याख्यान है, अतः उसका प्रस्थान बिन्दु अज्ञेय द्वैही—जीवनका पश्चिमीकरण और भारतीयताके साथ हुआ है उनका विविध विकास। भारतीय संस्कृति हिंस्र विदेशियोंकी प्रभुसत्ताके बीच कैसे अपनेको अक्षत रख सकी। उस सबका लेखा-जोखा यहां प्रस्तुत किया गया है। बौद्ध-  
'प्रकर'—अक्टूबर ६२—१४

धर्म, इस्लाम, श्रद्धा, वर्ण व्यवस्था, ईसाई मिशनरी आदि को लेकर एक तर्कसंगत विवेचन जैसा यहां किया गया है, वह कोई असाधारण तत्त्वान्वेषण नहीं है। कई अन्य विद्वान् पहले ही 'क्या बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी'—पर काफी कुछ लिख चुके हैं। माक्स, हीगेल और मैक्समूलरके विचार-दोहनसे इस लेखकने भी अपना यह मत स्थिर किया है कि 'भारतका अतीत सनातन रूपसे समकालीन था, उसी प्रकार जैसे अतीत के विश्वासों और संस्कारोंमें वर्तमान सनातन रूपमें अनुबन्धित था, अपने धर्ममें जो अनादि अनंत है'। लगता है इस लेखकके लिए, प्रत्येक बातकी साक्षीके लिए कोई-न-कोई विदेशी लेखक आवश्यक है, तभी तो हाइड्रर की यह नसीहत कि 'भारत तभी अपनेको एक बार फिर मूर्तिमान् कर सकेगा, जब वह अपने अतीतको यूरोपीय वर्तमानमें ढालेगा।'।

परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या यूरोपका वर्तमान आजभी कोई आदर्श छवि भारतके लिए प्रस्तुत कर पाया है ? क्या पश्चिमी सभ्यताकी यह विकसित वैज्ञानिक और उपभोक्तावादी अवस्था—बर्बर, आक्रामक, असहिष्णु, अहंग्रस्त और आत्मविखंडित नहीं है, जहां कहीं-कहीं तो अंधी और ईर्ष्यालु राष्ट्रियता फिर सिर उठा रही है ? लेखकने यूरोपीय उपनिवेशवादके तीन चरणोंपर विचार करते हुए अंतमें निष्कर्षतः लिखा है कि 'पर कुछभी 'आत्मन्' को कभी पूरे रूपमें उपनिवेश नहीं बनाया जा सकता।'। हीगेलके विचार भारतीय दर्शन और संस्कृतिके विषयमें उथले और सतहीभी हैं, नहीं तो जर्मनीके रोमांटिक उसे गंभीर चुनौती क्यों देते ? महाकवि गेटे 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' से कितने प्रभावित थे यह क्या सच नहीं है ? जिस यूरोपका आत्मकेन्द्रित मनुष्य अबभी उसी स्वार्थपरताकी परिधि से घिरा हुआ हो वह 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहीं 'अधमाई' वाली अवधारणावाले भारतीय जनसमाजके लिए क्या अबभी 'आदर्श छवि' हो पायेगा इसमें सन्देह है।

फिरभी इस लेखकने बहुत गहराई और कुछ सीमा तक तटस्थताके साथ प्रतिश्रुतिके क्षेत्रकी पड़ताल की है, और अन्ततः वह मैक्समूलरके उस सुखद आश्चर्यपर विचार करते हुए लिखता है कि 'भारतीय और यूरोपीय वस्तुतः बहुत पुराने बिछुड़े बन्धु हैं—एकही इंडोआर्यन परिवारके सदस्य जो चार हजार वर्षोंके इतिहासके



अन्तरालके बाद दोबारा मिल रहे हैं, ... आवश्यकता यह है कि दोनों संस्कृतियोंकी अद्वितीयताओंको एकही प्रयोगधर्मी ढाँचेमें ढालकर देखा जाये, जहाँ आत्माकी सजगतामें अनिवार्यतः 'अन्य'के प्रति जागरूकता शामिल हो सके—'श्रेष्ठ' और 'अन्य' एक अखंडित चेतनाके दो पहलू हों।

पर अधिकतर यूरोपीय बुद्धिजीवियोंकी समझमें क्या भारतीय सभ्यता 'एक निद्राग्रस्त सभ्यता' अब भी है ? भारतीय तो प्रसादजीके शब्दोंमें—'बोले, देखो कि यहाँपर कोई नहीं पराया / हम अन्य न, और कुटुम्बी हम केवल एक हमी हैं' की मान्यताके अब भी कायल हैं। महाकवि गेटे तकने अलगाववादी दृष्टिको कभी प्रमुखता नहीं दी, उनके लिए तो प्रत्येक प्रकारके अलगावमें विक्षिप्तताके बीज होते हैं, इसे ध्यानमें रखना चाहिये कि उसे पनपने न दें।—महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण रहा है। मनुष्यकी मनुष्यता 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की संवाहिका शक्ति है। परन्तु विस्मय तो तब होता है, जब यह लेखक यह सम्मति व्यक्त करता है कि 'यूरोपीय संगीत और कविताके माध्यमसे पहली बार भारतीयोंने आत्माकी उस भूखसे साक्षात्कार किया था जो न पूरे रूपमें अलौकिक है और न पूरे रूपमें शरीरी, पर दोनोंमें ही अपनी पूर्णताको खोजती है।

क्या उपर्युक्त तथ्य वास्तवमें सच है ? 'सोरोज ऑव वर्थर' या 'ओथेलो' अथवा, 'अन्ना केरेविना' ने ही पहली बार भारतीयोंको वैसी भूखसे साक्षात्कार करवाया था ? सम्भवतः यह बात वही कहता है जो रामायण और महाभारतकी विराट् मानवीय भावभूमिसे अपरिचित हो। यूरोपीय और भारतीय प्रेमके रूबानी संवेदनमें एक मौलिक अंतर यह भी है कि उसमें शाश्वतताकी अवधारणा निरन्तर बनी रहती है—प्रेमका अंत इसी जीवनके साथ समाप्त नहीं हो जाता। प्रेमानुभूतिका नैरंतर्य बना रहता है, अतः आत्मक्षयी पेशनका वहाँ अवकाशही कहाँ है ? रही बात हृदयविदारक पीड़ाकी—क्या सूरकी यह पंक्ति उसे उजागर नहीं करती कि—'रूपल कौन अधिक सीता सो, जनम वियोग मरी'। रामके यह जानते हुए भी कि उनकी प्राणप्रिया नितान्त पवित्र है, फिर भी उसके गर्भवती होते हुए भी बनवास तक दे दिया गया, जहाँसे वह फिर कभी भी उस प्रियतमके देहरी-द्वार लौटीही नहीं। कितनी कठणाकलित मर्यान्तक

मनःस्थितियोंसे निकली है सीता ? और राम ? क्या भवभूतिके 'उत्तररामचरित' को भी हम भूल सकते हैं ?

राम राजा थे, राजकीय मर्यादाओंके रक्षक रूपमें उन्हें जनमत और लोकापवादकी मर्यादाकी भी रक्षा करनी थी। परन्तु व्यक्तित्वरामके लिए अपनी प्राणप्रियाके त्यागका यह प्रसंग कितनी हृदय विदारक त्रासदी है कि उसका कोई विकल्प नहीं। इसीलिए सीताका वह अनन्य प्रेमिल व्यक्तित्व भारतीय जनमानसमें चिरस्मरणीय आज तक बना हुआ है। 'ज्ञान' और 'क्रिया' की ऐसी भिन्नता भी सीताके उस कालजयी प्रेमको क्षरित कर सकी है ?

महाभारत तो संशय, द्विधा, प्रबल मनोद्वेग, निरन्तर घहराता अन्तर्मन्थन और अनेक त्रासद स्थितियोंसे नहीं भरा पड़ा है, क्या ? अर्जुन, कर्ण, द्रौपदी, भीष्म, कुन्ती, धृतराष्ट्र और गान्धारी आदि-आदि क्या अपनी उन त्रासद स्थितियोंके लाक्षागृहोंसे नहीं निकले हैं जिनके वे स्वयं निर्माता हैं।

'संस्कृतिके आत्मबिम्ब' में होमरकी कलात्मक निरपेक्षता और विलक्षण समदृष्टिकी चर्चा की गयी है। ईलियड और महाभारतकी तुलना करते समय प्रश्न उठाया गया है कि क्या व्यासभी कौरवों और पाण्डवों के प्रति उभी प्रकार निष्पक्ष थे जैसे होमर अपने पात्रों के प्रति थे। और उसका उत्तर भी स्वयं लेखकही देता है कि व्यास अपनी सम्यक् दृष्टिके होते हुए भी निर्णायक क्षणोंमें निरपेक्ष नहीं थे। लेखक यह भी मानता है कि व्यासकी कला-निरपेक्षताकी क्षमता भी अद्भुत थी, पर उनकी दृष्टि निरन्तर धर्मपर आधृत रही जो भारतीय संस्कृतिसे उन्हें मिला था, 'यतो धर्मस्ततो जयः' की दृष्टि।

पर क्या यह दृष्टि एक निस्संग, तटस्थ किन्तु निष्काम प्रतिबद्धताकी दृष्टि नहीं है ? वस्तुतः वह तो कृष्णकी ही निष्काम कर्मयोगवाली दृष्टि है, जो व्यास के उस समुचे कृतित्वमें अन्तर्निहित है। वही तो उसे भारतीय संस्कृतिकी मूल्यवान् धरोहर और कालजयी बनाये हुए है। भारतीय जनमानसकी तो प्रकृति, अपनी परम्परा और आत्मासे गहरा लगाव प्रायः सर्वकालिक रहा है, उन्हींके अनेकानेक बिम्ब जो उसके अन्तर्मनकी गहराइयोंसे उपजे हैं उनका संस्कृतिके क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण अवदान रहा है, इसे कौन अस्वीकार करता है। तभी तो

'प्रकर'—कात्तिक' २०४६—१५



आनन्दकुमार स्वामीका यह भारतीय दृष्टिकोण कि 'यदि हम कलाकारसे पूछें कि उसने अपने चित्र किसके लिए बनाये हैं, यदि वह सच्चे अर्थमें कलाकार है तो उसका निर्भीक, एक टुक उत्तर होना चाहिये—ईश्वर के लिए।' क्या इसीलिए टी.एस. इलियट अपनी 'बंजर भूमि'के बाद फिर कैथोलिक चर्चकी ओर नहीं लौट गये थे ? 'मंडर इन द कैथेड्रल' का यह सत्य कि 'वी आर लिविंग एण्ड हाफ लिविंग' का सा संशयात्मक सत्य उस मस्तिष्कपर छाया रहा। अनास्थामें भी आस्था, संशयमें विश्वास, अस्थिरमें स्थिरताकी खोज का यह क्रम निरन्तर प्रत्येक श्रेष्ठ कृतिकारके कृतित्व की विशेषता रही है, चाहे फिर उस दुनियांसे समस्त देवता विदा ले चुके हों, पर देवत्वकी खोज तबभी जारी रहती है। इस देशकी संस्कृतिमें दृष्टि और मनकी मुक्तावस्थाका महत्त्व सदैव रहा है—तभी तो 'यथास्मै रोचते विश्वं तथैवं परिवर्तते'—इस अपार काव्य-संसारमें रचनाकार और उसकी रचनाके विषयमें यह अवधारणा निरन्तर बनी हुई है। 'साहित्यिक कृति और सत्यकी अवधारणामें इस लेखकको मनुष्यका विकास आत्मनिर्वासनका इतिहास लगता है, वह मानता है कि 'जिसे हम मनुष्यकी चेतनाका विकास मानते हैं, वहींसे मनुष्यकी आत्मविस्मृतिका अन्धकारभी शुरू होता है' और यहभी स्थिर करता है कि 'कलाकृतिका सत्य—यदि उसका सत्य हो सकता है तो वह मनुष्यको उसकी स्मृतिमें लौटाना है।' वह नीत्शेकी साक्षी देकर कहता है कि 'मैन पजेजेज आर्ट लेस्ट इट शुड पेरिश बाई द ट्रुथ'। सत्यसे नष्ट होनेसे बचनेका एक रक्षा-स्थान है कला। लीविसके मतसे भी 'कला एक अभी-प्सित स्वप्न है, और यथार्थ घृणास्पद' है ही।

यह लेखक अपने विचारोंमें 'स्वप्नके यथार्थको यथार्थके स्वप्न' से अलगानेकी बात निरन्तर इसीलिए करता रहा है। और इसी 'स्वप्नके यथार्थ' में रचनाके सत्यको खोजता रहा है। वह भी 'रचना' को 'टैक्स्ट'ही मानता है, इसीलिए उसकी रायमें निरालाकी 'सरोज-स्मृति' का सत्य न निरालामें है, न उसके पाठकमें... कविताकी समूची पीड़ा और वियोग-यातना उसके शब्दों, शब्दोंके बीच खाली विरामों और उनके बीच लयमें समाहित है।

आशय यह कि 'सरोज स्मृति' एक ऐसी 'टैक्स्ट' जो उसके रचनाकारसे निरपेक्ष और स्वायत्त है। यही 'प्रकर'—अक्टूबर '६२—१६

तो है वह उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टि। निरालाकी 'सरोजस्मृति' की 'समूची पीड़ा' और 'वियोग यातना' यातनासे क्या लेना-देना है ? प्रश्न यह है कि क्या रचनाकारके अन्तर्मनकी घनीभूत पीड़ा जिसने उस 'टैक्स्ट'की रचना की है, उससे कोई सम्बन्ध ही नहीं रखती ? यहां केवल 'कृति'के महत्त्वपर बल है, कृतिकार नगण्य हैं, यही उत्तर आधुनिकतावादी दृष्टिका निष्कर्ष है, यहां 'कविएकः प्रजापतिः' का महत्त्व नहीं है। फिर आगे यही लेखक 'कलाकी प्रासंगिकता' में स्वीकार करता है कि 'क्योंकि मुझे भय है कि जो कुछ भी कहूंगा—वह कलाकृतिका सत्य नहीं—मेरे निजी अनुभवकी व्याख्या होगी' और जब फिर वह व्याख्या 'टैक्स्ट' बन जायेगी तो सम्भवतः उसका 'वह जो कुछ कहना'—तब इस लेखकसे कोई सम्बन्ध नहीं रखेगा ? इलियट भी तो कहते हैं, 'इट इज एन एस्केप फ्रॉम लाइफ, इन टू लाइफ'। क्या इसी लेखकने डब्ल्यू. बी. ईट्सकी कविताकी समीक्षा करते समय ईट्सके सशक्त व्यक्तित्वके प्रतिफलनको स्वीकृति नहीं दी थी ? स्रष्टा की संवेदनशील दृष्टिके अस्तित्वके बिना क्या सृष्टि सम्भव हो सकती है ? यह तो आपका अपना दृष्टिकोण है कि आप 'सरोज-स्मृति' में सन्निहित उस गहरी अन्तर्वेदनाको निरालाके अन्तश्चेतनसे विलग करके देखें।

और ऐसे अनेक स्थल हैं—जहाँ असहमतिके लिए पर्याप्त अवकाश हैं। वैसेभी ये निबन्ध लेखकके विचारों के पड़ावको अंकित करते हैं फिरभी उनकी विचारयात्रा के ये पड़ाव एक गहरी दृष्टिसे सम्पन्न हैं, जहाँ दृष्टि-भंगिमा मौलिक और विचारोत्तेजक है। यह विचार-यात्रा भी एक चिन्तक-सर्जककी है, किसी शोध-ग्रन्थ लेखककी नहीं। फिरभी किसी सर्जकके विचार उसीके रचनातंत्र के विषयमें ही अधिक सही और साथक होते हैं, क्योंकि प्रत्येक कृतिकारकी मनःस्थितियां भिन्न जो होती हैं। ये निबन्ध यों तो एक सृजन-साक्षात्कार हैं। निर्मल भाईका गद्य उनके सर्जक-चिन्तक मनके अत्यन्त अनुरूप है, इस दृष्टिसे विशिष्टभी है। [१]



## वार्ता-प्रसंग?

लेखक : हरिकृष्ण त्रिपाठी

समीक्षक : डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय

लगभग ४० वर्षोंकी दीर्घावधिमें लिखे गये श्री त्रिपाठीजीके ये निबंध मात्र संग्रह नहीं है क्योंकि इनकी योजनाके भीतरसे लेखकके उस व्यक्तित्वका साक्षात्कार होता है जो साहित्यानुराग और राष्ट्रीय चेतना दोनोंसे जुड़ा है। इनके प्रस्तुतीकरणकी शैली पत्रकारिता और अध्यापकीय दृष्टिका परिचय अवश्य देती है किन्तु इनके भीतरसे एक रचनात्मक लेखककी क्रियाशीलताभी झाँकती है और यह क्रियाशीलता तब और सजीव हो उठती है जब हम इनके द्वारा मध्यप्रदेशकी, विशेषकर जबलपुरसे सम्बद्ध जनपदीय जीवनकी, जातीय चेतना का आभास पाने लगते हैं।

प्रस्तुत संकलनके ३२ लेख, निबंध अथवा वार्ताएँ प्रायः चार प्रकारकी हैं—(१) इतिहासपरक, (२) व्यक्तिपरक, (३) हिन्दीपरक, और (४) विविध। प्रारंभिक पाँच लेखोंमें त्रिपाठीजीने हिन्दी निबंधोंका संक्षिप्त विकास दिखाते हुए जिसप्रकार साहित्यकी स्थानीय गतिविधियोंका परिचय दिया है उससे हिन्दी साहित्यके इतिहास लेखकको कुछ उपयोगी सामग्री मिलती है। एक तो यह कि हिन्दी निबंधोंके प्रारंभिक विकासपर मराठी-निबंधोंका आदर्श प्रभावी बना रहा जिसके उदाहरण महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा रामचन्द्र शुक्लकी शैलियोंमें मिलते हैं।

दूसरी बात यह कि मध्यप्रदेशके हिन्दी योगदानमें अभी नागपुर और जबलपुरके साहित्य-सेवियोंका वास्तविक योगदान अंकित नहीं किया जा सका है। राष्ट्रीय चेतनाकी जो धारा महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश तक समान रूपसे प्रवाहित हो रही थी, उसी का संकेत त्रिपाठीजीने “जबलपुरके हिन्दी पत्र और पत्रकार”, “जबलपुर : काव्य यात्राके आठ दशक” शीर्षक लेखोंमें किया है।

सन् १९२०-३० के बीच साहित्य-समाजोंमें जिस

१. प्रका. : अग्निज्ञान प्रकाशन, ७८२, बीक्षितपुरा, जबलपुर। पृष्ठ : २२४; डिमा. ६१; मूल्य : १००.०० रु.।

प्रकार समस्या-पूर्ति एक काव्य-विधाका रूप ग्रहण कर रही थी, वह केवल विनोदका साधन मात्र नहीं थी। वह कविताप्रेमियोंको संगठित करनेका एक सुनियोजित प्रयास थी। ऐसे आयोजनों द्वारा यदि राष्ट्रीय भावना का पोषण होताथा तो नये कवियोंको प्रतिभा-प्रदर्शन का अवसरभी मिलताथा।

स्वयं उनके पिता पं. बालमुकुन्द त्रिपाठी, जो समर्पित राष्ट्रकर्मी तथा साहित्यकार तो थेही, कवि-समाजोंके उन्नायक भी थे। समस्यापूर्ति शुद्ध ब्रजभाषा अथवा शुद्ध खड़ी बोलीमें की जातीथी तथा उसकी उत्तमताका निर्णय एक समिति करतीथी। इस प्रकार द्विवेदी युगके कवि एक ओर प्राचीन-नवीन काव्यादर्शों का परिपालन करतेथे, दूसरी ओर कांतासम्मत उपदेश को माध्यम बनाकर युगबोधकी दिशामें अग्रसर होतेथे। उस युगके तायित्व-बोधकी ओर यहाँ त्रिपाठीजीने संकेत किया है।

इन लेखोंमें न केवल नगरकी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं का ज्ञान होता है अपितु राष्ट्रीय धाराके विकास-क्रममें उन्मेषशाली रचनाकारोंका परिचय मिलता है। त्रिपाठी जीके मतानुसार जबलपुर नगरको प्रांतके प्रथम पत्र और प्रथम प्रेसका अधिष्ठाता मानना चाहिये। (पृष्ठ-३७)। यह प्रथम पत्र था—“विक्टोरिया सेवक” जिसका प्रकाशन सन् १८६१ में जबलपुरके अंजुमन प्रेससे हुआ। तदुपरांत “शुभचिंतक”, “कान्यकुब्ज नायक”, “हितकारिणी”, श्रीशारदा “कर्मवीर”, छात्र सहोदर” जैसे पत्र प्रकाशित हुए जिनसे सेठ गोविन्ददास, पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र, पं. मातादीन शुक्ल, आदि प्रसिद्ध लेखक-संपादक जुड़े हुएथे।

इन समाचारपत्रोंने अनेक स्तंभ लेखकोंके रूपमें युवकोंको प्रोत्साहित किया जिनमें श्री हरिशंकर पर-साई, अनंतराम दुबे, श्रीबाल पांडेय, हीरालाल गुप्त, गोविन्दप्रसाद मिश्र, नर्मदाप्रसाद सराफ, मोहन शशि, राजकुमार तिवारी सुमित्र, अजितकुमार वर्मा आदि आज लेखन-क्षेत्रमें अपना स्थान बना चुके हैं। इसीके साथ लेखकने कुछ पत्रिकाओंके संदर्भमें जैसे “समता” (१९४६), “वसुधा” (१९५६)की असफलताके कारण भी बतलाये हैं। त्रिपाठीजी चूँकि स्वयं, दैनिक नवभारत नवीन दुनियाँ, आदि पत्रोंसे सीधे जुड़े हुएथे, अतः उनके लेखबद्ध अनुभव साहित्यिक इतिहासके लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं।

‘प्रकर’— कालिका २०४६ — १७



उनके दूसरे प्रकारके लेख या तो साहित्यकारोंके व्यक्तिगत संस्मरण हैं या उनकी रचनाओंके मूल्यांकन से संबंध रखते हैं। स्व. पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्रीकी स्मृति, पं. प्रयागदत्त शुक्ल : एक स्मरणीय विभूति, स्व. मातादीन शुक्ल, अजेय योद्धा और समर्पित सर्जक : पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र, पं. भवानीप्रसाद तिवारी, यदि पहले प्रकारके लेख हैं जिनमें विशेष अंतरंगी झलक है तो “राष्ट्रभारतीके दुन्दुभिवादक : पं. माखनलाल चतुर्वेदी, उषा परिणयसे प्रेम-विजयतक की काव्य यात्रा और सेठ गोविन्दास, छायावादके पुरस्कर्ता : पं. मुकुटधर पांडेय, अंचलका कथा संसार” आदि लेख दूसरे प्रकार के माने जा सकते हैं जहां एक दो सामान्य विशेषताओं के आधार पर अपना अभिमत प्रकट किया गया है।

अंतरंग स्मृतियोंकी दृष्टिसे तीन लेख विशेष उल्लेखनीय प्रतीत होते हैं। एक लेखमें नागपुरवासी पं. प्रयागदत्त शुक्लकी मार्मिक झांकी है जो विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलनके केन्द्रीय भवनमें निमित्त “सबकी झोपड़ी” में रहते थे। उन्होंने संदर्भ लेखन, इतिहास, नृत्व और पत्रकारिताकी सेवामें अपना पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। उन्होंने विदर्भ तथा मध्यप्रदेशकी उस साहित्यिक परम्परा तथा इतिहासको शोधका विषय बनाया जो तिमिराच्छन्न था।

दूसरा संस्मरण स्व. पं. रविशंकर शुक्लका है जिनकी निकटता लेखकको सहजही प्राप्त हो गयी थी। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे एक साधारण शिक्षकसे बढ़कर इस प्रदेशके निर्माता और यशस्वी मुख्यमंत्रीके रूपमें विकसित हुए। अनेक अंतरंग प्रसंगों से उनकी स्पष्टवादिता और वैयक्तिक जीवनकी मधुरता झलकती है। उनमें अहंकार और व्यर्थ आडंबरका लेश नहीं था। सन् ३० में सविनय अवज्ञा आन्दोलनके समय महाकोशलके राष्ट्रकर्मियोंमें तीन व्यक्तियोंकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी—पं. रविशंकर शुक्ल, पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र और सेठ गोविन्दास जिन्हें देखने-सुननेका अवसर लेखकको बाल्यावस्थासे ही मिलता रहा। अतः स्वाभाविक है कि प्रसंग आनेपर इनके चित्र यदा-कदा उनकी स्मृति कथाओंमें सजीव हो उठते हैं।

तीसरा मार्मिक चित्र स्वयं लेखकके पिताश्री पं. बालमुकुन्द त्रिपाठीका है जिनको उन्होंने सहजही “समर्पित राष्ट्रकर्मि और साहित्यानुरागी” विशेषणोंसे ‘प्रकर’—अभूतवर् ६२—१८

संबोधित किया है। इस संस्मरण अथवा “चित्रछवि” में द्रष्टव्य यह है कि लेखक अपने पिताश्रीके संबंधोंकी गलदश्रु भावुकतामें न बहकर वस्तुगत गुणोंके आधारों पर उनका छायांकन करना चाहता है। स्व. त्रिपाठीजी इसलिए स्मरणीय है कि वे अपनी नैष्ठिक संस्कार-शीलता, वैचारिक प्रबुद्धताके कारण सार्वजनिक जीवन में सक्रिय हो गये थे और अंतिम क्षणों तक स्वराज्य तथा हिन्दी हितचिंतनके लिए समर्पित रहे। वे अपने समय के श्रेष्ठ वक्ता थे और जेल-प्रवासी अनेक नेताओंके आत्मप्रचार, ढकोसलोंसे उन्हें अरुचि थी।

प्रस्तुत संकलनमें तीसरे प्रकारके हिन्दीपरक लेख, जिन्हें टिप्पणीपरक लेख कहना चाहिये, संख्यामें सबसे कम हैं। इनकी पृष्ठ संख्या भी ४, ५, पृष्ठों तक सीमित है और इन्हें लेख माना जाये अथवा वार्ता—यह कहना कठिन है। “हिन्दीका प्रश्न : एक राष्ट्रीय आन्दोलन”, तुलबन्दी और हिन्दी कविता”, “राष्ट्रभाषा और प्रेम-चंद” इसी प्रकारके लेख हैं जिनमें लेखक कोई एक सामाजिक विचार प्रस्तुत करता गया है। इनका लेखक भूँकि किशोरावस्थासे ही अध्ययन-विश्लेषणके प्रति आकर्षित रहा है इसलिए संभवतः प्रसंगानुसार हिन्दी की एकाधिक समस्याओंपर टिप्पणी करता गया है। मराठी प्रयोगके अनुसार इनके लिए “गुजगोष्ठ” शब्द संभवतः अधिक उपयुक्त हो जैसा कि लेखकने मराठी लेखक फड़केका मंतव्य उद्धृत करते हुए लिखा है। (पृष्ठ १०)।

चौथे प्रकारके लेख विविध विषयोंसे सम्बन्ध रखते हैं जैसे—“जबलपुरके गोंडकालीन अवशेष, गुरु गोविन्दसिंहका धर्मदर्शन, स्वामी विवेकानंदका ज्ञान-योग, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य : कुछ जीवन प्रसंग, “पुराणोंके सन्दर्भमें भारतीय संस्कृतिके आयाम” आदि। इन लेखोंसे विभिन्न विषयोंके उन पक्षोंका परिचय होता है जिनमें लेखककी विशेष अभिरुचि है। “जबलपुर” नामकरणकी व्युत्पत्तिके प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक है क्योंकि लेखककी जन्मभूमि, कर्म-भूमि यही स्थान है। इस संदर्भमें दो धारणाएँ प्रचलित हैं—एक धारणाके अनुसार जाबालि ऋषिकी तपस्या स्थली होनेके कारण इसे जबलपुर कहा गया। दूसरी धारणाके अनुसार यहां चारों ओर काले पत्थर बहुत हैं और फारसीमें काले पत्थरको “जबल” कहते हैं। चारों ओर पाषाण शृंखला होनेके कारण इसे वर्तमान



नाम दिया गया ।

किन्तु नामकरणके प्रति लेखककी उतनी जिज्ञासा प्रतीत नहीं होती जितनी स्थानीय विशेषताओंके प्रति प्रतीत होती है। रानी दुर्गावतीके स्मारक "मदनमहल" को देखकर उन्हें हिन्दी पत्रकार श्री देवीदयाल चतुर्वेदी "मस्त" की कविताका स्मरण हो आता है। स्थानीय काव्य परंपराका विकासक्रम निरूपित करते हुए लोक-साहित्यका उल्लेख करते समय वे कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तवके बुन्देली काव्य-संग्रह "भौरहा पीपर" तथा रासबिहारी पांडेयके मनोरंजक मुक्तकोंका उल्लेख करना नहीं भूलते जो साहित्यकी नयी प्रवृत्तियोंको प्रकाशित करते हैं।

विविध लेखोंमें किसी विषयके केन्द्रीय तथ्यपर ध्यान देना लेखकको प्रमुख विशेषता मालूम पड़ती है, स्वामी विनैकानंदके ज्ञानयोगकी चर्चा करते हुए वे वर्तमान समयमें उनकी प्रासंगिकताकी बात उठाते हैं। राजगोपालाचार्यकी चर्चा करते हुए वे उनके सुधारवादी दृष्टिकोणका मूल सूत्र मितव्ययतामें निहित मानते हैं जो आजभी सही है। पुराणोंके संदर्भमें उन्होंने भारतीय संस्कृतिकी उस विशेषतापर जोर दिया है जिसके अनुसार मनुष्यके जीवनसे आचार-विचार और तदनुसार व्यवहारका संगम बहुत महत्वपूर्ण है।

लगता है कि त्रिपाठीजी इन लेखोंको लिखते समय एक सर्जक साहित्यकारकी कलम उठाकर चले हैं किन्तु उनके पत्रकाराने भीतरके सर्जकको बांधकर अनुशासित कर दिया है। यह पत्रकार उत्तरार्धके लेखोंमें अधिक हावी हो गया है। यदि वे प्रत्येक लेखके अंतमें उसकी प्रकाशन-प्रसारण तिथिका उल्लेख भी कर देते तो अच्छा होता। □

## फूल और कांटे?

लेखक : डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर

समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

दक्षिण भारतीय विश्वविद्यालयोंके हिन्दी आचार्यों प्रोफेसरोंमें सर्वाधिक सक्रिय और लोकप्रिय होनेके

१. प्रका. : स्वाति प्रकाशन, २६/२०३५ कालेज लेन, तिरुवनन्तपुरम् (केरल) । पृष्ठ : १४२; का. ९१; पृष्ठ : ५०.०० रु. ।

कारण डॉ. अय्यरको पूरे भारतसे सम्मेलन और संगोष्ठियोंके लिए आमन्त्रित किया जाता है। उनके निमित्त विभिन्न स्थानोंकी यात्राएं वे प्रायः सपत्नीक करते हैं। शैक्षिक लक्ष्यके अतिरिक्त इन यात्राओंका एक सांस्कृतिक उद्देश्य भी हो जाता है उन स्थानोंका याया-वर दृष्टिसे अवलोकन। इसको जब वे लिपिवद्ध करते हैं तो यात्रा स्थलोंका परिवेश, विशेषतः सांस्कृतिक, उभर आता है। सम्मेलन और संगोष्ठी तो निमित्त मात्र रह जाते हैं। प्रमुख हो जाते हैं, वहांके परिवेशके जीवन्त अनुभव, वर्तमान परिदृश्य और उनकी पृष्ठभूमिमें उनका प्रासंगिक अतीत। 'फूल और कांटे' भी ऐसीही सोद्देश्य यात्राओंसे उपलब्ध मौजमस्तीके मूडमें लिखे गये यात्रापरक संस्मरणात्मक निबन्ध ही है। इनमें लेखककी पर्यवेक्षण शक्ति, सारग्राहिणी प्रवृत्ति और दृश्यके प्रति रागात्मकता सहज रूपसे व्यक्त हुई है। इन लेखोंमें बहुत प्रगाढ़ रागात्मकता और अत्यन्त सूक्ष्म भाव व्यंजना तो नहीं मिलती पर ज्ञानप्रद सूचनाएं तथा सहज उपलब्ध तथ्योंकी रोचक शैलीमें प्रस्तुति अवश्य मिलती है सामान्य पाठकके लिए सामान्य सूचनात्मक शैलीमें विवरणात्मक निबन्ध ही इन्हें कहा जा सकता है।

'आप क्यों हंसते हैं?' सामान्य निबन्ध है हास्यके कारणोंके विषयमें। 'फूल और कांटे', केरल विश्व-विद्यालयके एरणाकुलम् केन्द्रके नये परिसर उद्घाटनके माध्यमसे इस विश्वविद्यालयके विकासकी कथा कहता है। 'दो आंखें हजार नजारे' में लेखक अपनी चिकित्साके लिए भरती, अस्पतालके झरोखेसे त्रिवेन्द्रमके दीख पड़नेवाले भवनोंका विवरण देता है। महानगरीय भीड़माड़में भी उसे यह दिखायी पड़ जाता है—'अस्पतालके डॉक्टर-डाक्टर-नियोंका मिठे नमकीनके साथ जवानीकी मुस्कान-शारीरिक सात्त्विक एवं आंगिक अनुमान आदिका मजा मुफ्त में लूटनेका मौका उन्हें नयी स्फूर्ति देता है (पृ. २५)। पचास वर्षोंसे छात्रोंके सम्पर्कमें रहनेसे कारण यह सूक्ष्म दृष्टि लेखन जीवन्तताका स्पर्श कराती है। रोगियोंके सम्बन्धियोंके आगमनपर भी यही होता है, "आंखोंको सेंकनेका, अपने दुखददंको भुलानेका अच्छा मौका मिलता है। दर्दकी दुनियांमें बच्चोंकी किलकारियों कुछ खुशी ले आती है। बड़ा ही सहज और जीवन्त चित्रण है, रोगीकी मानसिकताका। उ. प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा



अखिल भारतीय हिन्दी साहित्यकार सम्मान समारोहके लिए लखनऊ यात्राका प्रसंग लेखकको मिला जिसके फलस्वरूप उसने लखनऊके अतीत और वर्तमानकी झांकी प्रस्तुत की। लखनऊके साहित्यकारोंकी चर्चके बिना डॉ. अय्यरकी यह यात्रा पूरी नहीं हो सकती थी। 'केरलका चायपुराण' में अपनी जन्मभूमिके गुणगानका अवसर लेखकने निकाल ही लिया। चायकी दावानगीके एकसे एक बढ़कर उदाहरण कोईभी सुना सकता है पर जो 'धूप और सर्दीमें दो पत्तियां और एक कली तोड़ती है और आधा पेट खाती और आधा तन ढंकती किसी झोपड़ीमें अपना पारिवारिक जीवन बिताती है" (पृ. ४३), उसके दुःख दर्दको चाय पीते समय कितने लोग सोचते हैं? असाधारण संवेदनाकी ऐसी झलक कहीं कहीं इस संकलनमें मिल जाती है।

कर्नाटकके सुदूर गांव 'दोमिमल्ल' में स्थित राष्ट्रीय खनिज विकास निगमके खान कार्यालयमें हिन्दी सप्ताह के उद्घाटन हेतु निमन्त्रित लेखककी यात्राका भौगोलिक और आर्थिक विवरण 'यंत्रदेवो भव' है, जिसमें दानवाकार यंत्रोंके माध्यमसे लोहा पातालसे निकाले जानेका संकटपूर्ण लोमहर्षक चित्रण है। 'या पाए वौराय' में कर्नाटककी कोलारकी स्वर्णखदानमें स्वर्ण प्राप्तिके लिए यांत्रिक और मानवीय कौशलका बड़ा रोमांचक दृश्य प्रस्तुत किया गया है। नेहरूजीकी पुण्य तिथिपर भावुक होकर लिखा गया पत्र लेखककी राष्ट्रनायकके प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि ही है। 'आजा रे परदेसी' में केरलके कोचीनके वर्तमान परिवेशको लेकर लिखा गया निबन्ध है जिसमें अतीत सहज रूपसे झांकता है। विश्व इतिहासके परिप्रेक्ष्यमें कोचीनका यह विवरण रोचकभी है। 'अपना-अपना भाग्य'। अंकोंसे सम्बन्धित लोक-विश्वास अन्धविश्वास-प्रतीकोंको लेकर लिखा गया है। वृन्दावन शोध-संस्थान द्वारा आयोजित संगोष्ठी हेतु की गयी वृन्दावनकी भक्तिपूर्ण यात्राका सांस्कृतिक विवरण प्रस्तुत किया गया है, प्राचीन इतिहासके साथ नवीनतम हरेकृष्ण मन्दिरका उल्लेख करते हुए। कृष्ण केन्द्रित ललित कलाओं और विशेषतः रासके आनन्दो-ल्लासके संकेतसे यह पठनीय बन पड़ा है। नंदकी धेनु मंझारन चरनेकी जो लालसा रसखाने व्यक्त की थी अब ब्रजमें उपलब्ध स्विट्जरलैंडके गाय बैलोंकी संतानें कृत्रिम मोटी-वदसूरत लगती हैं, उन्हें कामधेनुकी वंशज कहनेमें कष्ट होता है। (पृ. ६)। वृन्दावनका वर्तमान 'प्रकर'— अक्तूबर ६२—२०

दृश्य एक प्रश्न खड़ा करता है। इधर भारतीय अपनी धार्मिक परम्पराको छोड़कर विदेशी संस्कृतिमें डूबनेको अधीर हो रहा है उधर भौतिकवादी विदेशों के ये लोग भारतके सनातनियोंसे भी सनातनी और भक्ति सम्प्रदायके प्रवर्तक होनेके लिए अधीर हो रहे हैं।" (पृ. १७) क्योंकि दोनोंको उपलब्धमें अब कोई आकर्षण नहीं रह गया है विकृतियोंके कारण। इसीलिए दोनों एक-दूसरेकी ओर लपक रहे हैं।

'जुहूका ऊंट' में बम्बईके जुहू तटपर सेलानियोंकी भीड़में महानगरीय जीवनका पूरा दृश्य वांछनीय-अवां-छनीय तथ्योंके साथ उपलब्ध है। राजस्थानी ऊंटपर सवारी करनेका आनन्द लेनेवाली आधुनिकाओंकी चुहुलबाजी लेखकको आकृष्ट कर लेती है। गूंगे पशुओं की ही नहीं अपितु देवताओंकी प्रतिमाओंकी भी व्यापार करनेवाले व्यावसायियोंपर व्यंग्य किया गया है। छात्रोंके साथ आगरा यात्राका वर्णन 'प्रेम समाधि की चांदनीरात' में हुआ है। दिनमें लालकिला तथा रातमें शारदीय पूर्णिमामें ताजका दर्शन करते हुए जबरदस्ती से लायी हुई किसी-किसी वधूकी (काजलमय) आंखोंके पानीने जमुनाके श्याम जलको औरभी अधिक श्याम बनाया होगा।" (पृ. ११६)। लेखककी यह सूक्ष्म संवेदना पाठकको विभोर कर देती है। ऐसे ही लेखकका कवि जाग पड़ता है। चांद अपनी अमृत किरणोंकी बर्फसे इस समाधिको नहला रहा है।" (पृ. १२०)। हियेकी आंखोंसे ही यह दिखायी पड़ता है। ग्राम्यजीवनके रस को प्राकृतिक परिवेशमें व्यक्त किया गया है 'गाएं गांव की गाथा' निबन्धमें। लेकिन पन्तजीकी यह चेतन-वनी भी सुनायी पड़ती है लेखकको 'सुन्दरताका मूल्य वहां क्या? जहां उदर है क्षुब्ध नग्न तन'। कर्नाटक विश्वविद्यालयके हिन्दी विभाग द्वारा आयोजित माखन-लाल चतुर्वेदी जन्मशती संगोष्ठीके निमित्त यात्राके साथ गोवाका प्राकृतिक आर्थिक और सांस्कृतिक वैभव उसके अतीत और वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें अंकित किया गया है। विदेशी पर्यटकोंके स्वर्गके रूपमें प्रसिद्ध गोवा का आकर्षण बार-बार आनेका निमन्त्रण देता प्रतीत होता है मधुमती फिल्मके गाने 'आजा रे परदेसी'के स्वर में।

इस प्रकार ये यात्रा संस्मरणपरक निबन्ध पर्यटन के औत्सुक्य, यात्राके ज्ञान और निबन्धके आनन्दकी त्रिवेणीमें पाठकको स्नान कराते हैं। उदार, सूक्ष्म,



विराट् दृष्टिसे आँके गये प्राकृतिक दृश्योंकी मनोहारी छटा, मानवीय स्वभावकी गरिमा और अतीत वर्तमान का संकेत इन निबन्धोंको पठनीय बनानेके कारण, घर बैठे यात्राका सुख देताहै। अधिकांशतः ये निबन्ध

सामान्य फूलही है। कहीं-कहीं इनका रंग और गंध मानसमें बस जातीहै, पर इनमें काँटे तो खोजनेपरभी नहीं मिले, फिर क्यों इनके नामकरणमें काँटे जोड़ दिये ? [7]

## अध्ययन-अनुशीलन

### साहित्य सृजन और अन्तःक्रिया?

लेखक : वी. डी. गुप्त

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द सेठिया

साहित्य-सृजनके सम्बन्धमें पारम्परिक मान्यता यह रहीहै कि साहित्यकार एक ऐसा प्रजापति होताहै जो अपनी स्वतंत्र इच्छा और रुचि-प्रवृत्तिके अनुसार साहित्य सृष्टि करता रहताहै। साहित्य-सृजनका उद्देश्यभी स्वान्तःसुखाय माना गयाहै। आधुनिक दृष्टिकोण यह है कि साहित्यका सृजन भलेही व्यक्ति के माध्यमसे होताहो, परन्तु उसका एक निश्चित सामाजिक सन्दर्भ भी होताहै। साहित्यकार चाहे कितनाही अन्तर्मुखी क्यों न हो अपने जीवन-क्रममें अनेक व्यक्तियों एवं स्थितियोंके सम्पर्कमें आताहै और व्यवहारके स्तरपर कहे सामाजिक समूहोंके साथ अपने व्यावहारिक सम्बन्ध स्थापित करताहै। विभिन्न व्यक्तियोंके संपर्कमें आनेकी प्रवृत्तिसे साहित्य-सृजनकी यह अन्तःक्रिया स्थापित होतीहै। डॉ. वी. डी. गुप्तने इस वृत्तिमें साहित्यका समाजशास्त्रीय पक्ष प्रस्तुत कियाहै। उन्होंने साहित्य-सृजनकी प्रेरणा, उद्देश्य, प्रक्रिया और उसके अनेक अन्तर्बाह्य पक्षोंसे संबंधित एक प्रश्नावली विभिन्न लेखकोंको प्रेषित कीथी। प्रायः

११० लेखकोंने इस बृहत् प्रश्नावलीको उत्तरित कर साहित्यके इस समाजशास्त्रीय सर्वेक्षणमें अपना सहयोग प्रदान कियाहै। प्रश्नावली प्रविधिसे प्राप्त प्रभूत तथ्योंके विश्लेषणके आधारपर लेखकने इस शोध सर्वेक्षणके परिणामोंको आलोच्य पुस्तकके रूपमें प्रस्तुत कियाहै।

लेखन एक व्यक्तिके द्वारा सम्पन्न होनेपर भी मूलतः एक सामाजिक क्रिया है। अपनी सृजन-प्रक्रियाके मध्य लेखक एक सीमातक ही स्वतंत्र है। उसकी पैतृक परम्परा, पारिवारिक परिवेश, सामाजिक वातावरण, व्यावसायिक सन्दर्भ और राजनीतिक प्रतिबद्धता आदि बाह्य स्थितियाँ अनेक स्तरोंपर उसकी स्वतंत्रताको परिसीमित करती रहतीहै। कभी “कला कलाके लिए” के दावेदार भी उठ खड़े हुएथे; परन्तु वस्तु-स्थिति यह है कि कला और साहित्यका सृजन एक सोद्देश्य प्रक्रिया है। साहित्य-सृजनका उद्देश्य कभी प्रत्यक्ष होताहै तो कभी परोक्ष, कभी स्थूल होताहै तो कभी सूक्ष्म और कभी समसामयिक होताहै तो कभी शाश्वत, परन्तु नितान्त निरुद्देश्य कभी नहीं होता। साहित्य यदि व्यवसाय नहीं होताहै तो भी वह “आत्मा-भिव्यक्ति एवं आत्मतुष्टिके साथ-साथ सामाजिक-मोर्चेपर संघर्ष करने तथा समाजसे संवाद करने” का माध्यम तो होताही है। साहित्य-सृजन शून्यमें नहीं, एक निश्चित देश-कालके परिप्रेक्ष्यमें होताहै और उससे प्रभावित भी होताहै।

साहित्यकार अपने भाव-संवेदन और विचार-दर्शन को प्रायः अपने पात्रोंके माध्यमसे प्रस्तुत करताहै।

‘प्रकर’—कार्तिक’२०४६—२१

२. प्रका. : सीता प्रकाशन, मोती बाजार, हाथरस-  
२०४१०१। पृष्ठ : १४२; डिमा. ६१; मूल्य :  
६०.०० रु.।



प्रश्न यह है : अपने पात्रोंके चयनमें वह कहांतक स्वतंत्र है ? यह सही है कि कई पात्रोंमें लेखक अपना ही प्रक्षेपण करता है; परन्तु पूरे रूपमें वह उनमें अपने व्यक्तित्वको नहीं ढाल पाता। उनमें कुछ-न-कुछ कल्पना का सम्मिश्रण तो होता ही है। विमल मिश्रने कहा है "मेरे प्रत्येक उपन्यासका नायक मैं ही हूँ" परन्तु अपने सभी उपन्यासोंमें विमलदा क्या अपनेको समान रूपसे प्रक्षेपित कर सके हैं ? यदि ऐसा होता तो उनके विभिन्न उपन्यासोंमें भयंकर एकरूपता और एकरसता की स्थिति उत्पन्न होजाती। एक सीमातक ही लेखक अपने अनुभवों, भोगे हुए जीवनकी भावनाओं और विचारोंका आरोपण अपने पात्रोंपर कर सकता है। सच तो यह है कि सशक्त पात्र एक बार अपना विशिष्ट व्यक्तित्व धारण करनेके पश्चात् अपने स्रष्टा के नियंत्रणको चुनौती देने लगते हैं।

श्री लाल शुक्लकी दृष्टिमें "संवेदना सर्जनशीलता का मूल आधार है, केवल सहायक नहीं।" जो संवेदनशील ही नहीं, वह सृजनशील कैसे होगा ? परन्तु संवेदनापर केवल लेखकोंका ही एकाधिकार नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी सीमातक संवेदनशील होता है। परन्तु सामान्य व्यक्तिकी अपेक्षा एक लेखक की संवेदना अधिक गहन, तीव्र और व्यापक होती है। वह अपने अनुभवको व्यक्तिगत स्तरपर भोगकर ही सन्तुष्ट नहीं रह सकता, उसे व्यापक परिप्रेक्ष्यमें रखकर एक सामाजिक सन्दर्भ प्रदान करनेका प्रयास करता है। सर्जक अपनी संवेदनाको सम्प्रेषणकी ओर अग्रसर करता है जिससे उसकी व्यक्तिगत संवेदना सामूहिक संवेदनमें परिणत हो जाती है। राजेन्द्र यादवके शब्दों में वह अनुभवको अर्थ देता है, समय और समाजके सन्दर्भमें। इस प्रकार लेखकीय संवेदना, जो उसके सृजनका मूलाधार होती है, व्यक्तिगत होकर भी अन्ततः सामूहिक चेतनाके विविध आयामोंसे संयुक्त हो जाती है।

लेखकके भी अपने पारिवारिक और सामाजिक दायित्व होते हैं। प्रायः वह अपने परिवारका प्रमुख सर्जनशील सदस्य होता है। भारतमें आज लेखनकी ही व्यवसाय बनाकर सम्मानपूर्वक जीवित रहनेकी स्थिति नहीं है। इसलिए, लेखकको किसी-न-किसी व्यवसायके साथ जुड़ना ही होता है। व्यवसायका यह चुनाव और उस व्यवसायमें लेखककी स्थिति उसके लेखनकी भी 'प्रकार'—अक्तूबर'६२—२२

अवश्य प्रभावित करती है। आज अधिकतर लेखक आर्थिक दृष्टिसे निम्न मध्यवर्गमें ही परिगणित किये जा सकते हैं। उनका अधिकांश समय और शक्ति परिवारके उदर-भरणकी समस्याके समाधानमें ही समाप्त हो जाते हैं। स्त्री लेखिकाओंको तो गृहस्थी, नौकरी और लेखनके तीन मोर्चोंपर एक साथ जूझना पड़ता है। लोगोंमें पठन-पाठनकी प्रवृत्ति वैसे ही कम है और स्तरीय साहित्यमें रुचि रखनेवालोंकी गिनती तो अंगुलियोंपर ही कीजा सकती है। इस परिस्थितिमें केवल लेखनसे सुविधापूर्ण सामाजिक स्थितिकी प्राप्ति दूभर ही प्रतीत होती है। सुविधाओंपर सत्ता और व्यवस्थाका एकाधिकार है फिर वह चाहे राज्यकी हो या पूंजीकी। लेखकके सामने यह एक बहुत विकट समस्या है कि सत्ता और व्यवस्थाके साथ उसकी शर्तों पर समझौता किये बिना वह किस प्रकार अपनी बात कह सके और श्रेष्ठतर मानव-मूल्योंके साथ अपनी प्रतिबद्धताका निर्वाह कर सके ? यह असमंजसकी स्थिति उसके मानसमें कुण्ठा, असन्तोष और आक्रोशकी मनःस्थितिको जन्म देती है जिसे अपने सृजनमें रचनात्मक रूप देकर ही वह सामाजिक परिवर्तनकी प्रक्रियामें अपनी सार्थक भूमिका निभा सकता है।

साहित्य-सृजनके मूलमें 'एकोऽहम् बहुस्याम्' की प्रेरणा होती है, इसलिए सम्प्रेषणकी समस्या उपस्थित हो जाती है। प्रकाशक पुस्तकको छापेगा तभी तो वह पाठकतक पहुंचेगी। परन्तु लेखकका सर्वाधिक शोषण प्रकाशकके द्वारा ही होता है। परन्तु, चाहे-अनचाहे लेखक और पाठकके साथ प्रकाशकका चित्र बन ही जाता है। प्रकाशक एक ऐसी अनिवार्य बुराई है, जिससे लेखक बहुत चाहनेपर भी बच ही नहीं पाता। उसके हथकण्डोंसे वह कभी पार नहीं पा सकता। वह लेखक को कभी पूरी रॉयल्टी नहीं देगा और जो देगा वह भी ऐसे कि जैसे कृपापूर्वक भिक्षा दे रहा हो। लेखक के आत्माभिमानको सबसे गहरा आघात प्रकाशकसे ही लगता है। परन्तु, प्रकाशकके भी अपने तर्क हैं। वह कहता है कि हिन्दीमें पुस्तकको, यदि वह पाठ्य पुस्तक ही नहीं है तो, खरीदकर पढ़ता ही कौन है ? थोक खरीदमें खपनेके लिए उसे अपनी कमाईके एक बड़े भागसे अधिकारियोंकी जेबें गर्म करनी पड़ती हैं। पुस्तक पढ़ना तो पहलेभी हमारे शिक्षित वर्गके व्यसनों



में सम्मिलित नहीं था और अब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने तो उसका भट्टा ही बिठा दिया है।

लेखकका सबसे प्रत्यक्ष और घनिष्ठ सम्बन्ध तो पाठकसे होता है। यह कहा जाये तोभी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वह पाठकके लिए ही लिखता है। पाठक के अभावमें लेखकका विनिवेदन या सम्प्रेषण किसके प्रति होगा? जिस लेखकके प्रभूत पाठक होते हैं, उसकी धाक प्रकाशकपर भी जमी रहती है। विमल मित्रके शब्दोंमें “जबतक मेरे पाठक रहेंगे, तबतक प्रकाशकसे मेरे मधुर सम्बन्ध रहेंगे।” प्रबुद्ध पाठकको साहित्यकी परख एक अधिकचरे आलोचकसे भी अधिक होती है। नाटकके अभिनेताओं और कवि-सम्मेलनके कवियोंको अपने श्रोताओं और दर्शकोंके साथ सीधा संवाद स्थापित करनेकी जो सुविधा होती है, वह कविता, कहानी, उपन्यास आदि विधाओंके लेखकोंको नहीं होती है। परन्तु, अब पाठक पत्रादिके द्वारा लेखकों तक अपनी प्रतिक्रिया प्रेषित करनेकी दिशामें अग्रसर होने लगे हैं। प्रायः ये पत्र प्रशंसा और प्रोत्साहनसे भरे हुए होते हैं परन्तु कभी-कभी इनसे लेखकोंको चुनौती भी मिलनी पड़ती है। इनसे लेखकको पाठकोंकी रुचिका सम्यक् अवबोध भी होता है। पाठक-मंचकी स्थापना होनेसे अब लेखक और पाठकके बीच औरभी घनिष्ठ-तर सम्बन्ध स्थापित होनेकी सम्भावना प्रकट होने लगी है।

लेखक और आलोचकका सम्बन्ध सदा तनावभरा रहता है क्योंकि लेखकको आलोचकसे वांछित समझ और सहानुभूतिके अभावका अनुभव होनेके साथही उसके व्यवहारमें दम्भ और दुराग्रहका आभास प्राप्त होता है। लेखकभी आलोचकका उपहास करनेका अवसर कभी हाथसे नहीं जाने देता। स्वयं प्रेमचन्दने लिखा था, “असफल कवि आलोचक बन बैठा।” आधुनिक लेखक अधिकांश आलोचनाको अध्यापकीय आलोचना कहकर उसका अवमूल्यन करता है। आलोचकसे लेखक और पाठकके बीच पुल बननेकी अपेक्षा की जाती है परन्तु वह दोनोंके बीच खाई खोदता हुआ नजर आता है। ‘हृदयेश’ और अब्दुल बिस्मिल्लाहकी यह उचित शिकायत है कि आलोचक साहित्यकी राजनीति करते हैं, वे अपने-अपने शिविरके लेखकोंको चढ़ाने और दूसरोंको गिरानेका प्रयास करते हैं। फिरभी गोविन्द मिश्रको यह विश्वास है कि “आलोचक थोड़े समयके लिए कृति

को उछाल या गिरा सकता है, लम्बे समयतक टिकनेके लिए कृतिको अपने आपपरही खड़ा होना पड़ता है।” अधिकांश आलोचन कृति-केन्द्रित न होकर व्यक्ति-केन्द्रित है। कुछ लेखकोंकी यह शिकायत भी निराधार नहीं है कि कुछ आलोचक कृतिको पढ़े बिनाही—और कभी-कभी तो उसे देखे बिनाही उसके बारेमें अपना फतवा दे डालते हैं। आलोचकको पाठक और लेखकका विश्वास प्राप्त करनेके लिए अपने कर्मके प्रति अधिक दायित्व, सजगता, श्रमशीलता और समर्पण भावनासे कार्य करना होगा। पहले अपने स्तरकी ऊपर उठाकर ही आलोचक लेखनके उन्नयनमें सहायक हो सकेगा। कुछभी हो, रचनाके आन्तरिक उत्सोंको उद्घाटित करने, उसमें निहित जीवन मूल्योंको व्याख्यायित करने और उसे व्यापक सामाजिक सन्दर्भसे जोड़नेमें आलोचककी महती भूमिकाको नकारा नहीं जा सकता।

“साहित्य-सृजन और अन्तःक्रिया” का प्रकाशन हिन्दी जगत्में एक नये समारम्भका सूचक है। हिन्दीमें साहित्यके समाजशास्त्रीय पक्षके अन्तर्गत केवल सामाजिक रूपान्तरणमें साहित्यकारकी भूमिकाके बारेमें ही चर्चा होती रही है। डॉ. बी. डी. गुप्तने साहित्य-सृजन से सम्बन्धित रचनाकारकी मानसिकता, उसके सामाजिक परिवेश और सृजन-सम्प्रेषणके साथ सम्बद्ध लेखकेतर घटकों—पाठक, प्रकाशक और आलोचक आदिको केन्द्रमें रखकर एक उपयोगी परिचर्चा आयोजित की है। प्रश्नावलीका फलक व्यापक एवं बहुआयामी है और इस व्यस्त युगमें ११० लेखकोंसे उनके विस्तृत मन्तव्य प्राप्त कर लेनाभी अपने-आपमें एक उपलब्धि है। फिरभी, इस क्षेत्रमें यह प्रारम्भिक प्रयास विशद विवेचनकी भूमिका मात्र प्रस्तुत करता है। आशा है, भविष्यमें डा. बी. डी. गुप्त ही इस क्षेत्रमें गहन और तलस्पर्शी अध्ययन प्रस्तुत करनेकी दिशामें औरभी महत्त्वपूर्ण प्रयास करते रहेंगे। [१]

## कविताके भासपास?

लेखक : मूलचन्द सेठिया

समीक्षक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह

आजकी आलोचनाके व्यापक परिदृश्यको ध्यानमें

१. प्रका. : श्याम प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर-  
३०२००३। पृष्ठ : १४४; डिमा. ६२; मूल्य :  
१००.०० रु.।



रखकर एक बात जो स्पष्ट दिखायी दे रही है, वह है मताग्रहों और पूर्वाग्रहों के मध्य ऐसे भी आलोचक हैं जो विचारधाराओं को लेते हुए भी, उनका उचित स्थान-निर्धारण करते हैं और व्यर्थ के दुराग्रहों से बचते हुए, रचना और आलोचना के स्वस्थ सम्बन्ध को रेखांकित करते हैं। विचारधाराएं आलोचना-दृष्टि को विकसित करती हैं न कि सीमित, परन्तु दूसरी ओर यह भी सत्य है कि प्रतिबद्ध विचारधारा को भी भिन्न संलग्नताओं से जोड़कर व्यापक भी बनाया जा सकता है। 'कविता के आसपास' से निकलते हुए डॉ. सेठिया की उस आलोचना-दृष्टिका प्रथम बार एक समग्र रूप में (क्योंकि लेखक की यह पहली कृति है) साक्षात्कार हुआ जो उनके स्पष्ट पूर्वाग्रह रहित विचार-संवेदन की प्रक्रिया को समक्ष रखते हैं। यह दूसरी बात है कि उनके विचारों से हम कहीं असहमत हों, पर इतना अवश्य है कि हम उनकी स्पष्टवादिता और उलझावहीन भाषिक संरचना से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। उनकी आलोचना-प्रक्रिया साफ-सुथरी और व्यर्थ के "जागृती" से काफी सीमा तक मुक्त है। इस संग्रह के लेखों को पढ़ जाने के बाद यह धारणा बनती है कि अब तक डॉ. सेठियाने अपने प्रति तो अन्याय किया ही है, इसके साथ उन्होंने आलोचना के प्रति भी अन्याय किया है क्योंकि वे आलोचना को बहुत कुछ दे सकते थे जो उन्होंने नहीं दिया।

इस संग्रह में कालका दीर्घ आयाम समेटा गया है अर्थात् नवजागरण से लेकर नयी और समकालीन कविता तक का परिदृश्य। इसी के साथ, उन्होंने राजस्थानी की आधुनिक कविता से सम्बन्धित दो निबन्ध भी अन्त में दिये हैं जो हिन्दी और राजस्थानी कविता के आन्तरिक सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं, परन्तु राजस्थानी कविता में वह बहुआयामिता और विचार-संवेदन की वह गहराई और विस्तार नहीं है जो हमें हिन्दी कविता में प्राप्त होती है। लेखक ने जो विवेचन और आयाम राजस्थानी कविता के दिये हैं, वे परोक्ष रूप से यह संकेत करते हैं।

कवियों के निर्वाचन को लेकर यह कहा जा सकता है कि लेखक ने गुप्तजी, प्रसाद, निराला, बच्चन, दिनकर, नागार्जुन, सुमन, भवानी भाई और कन्हैयालाल सेठिया के काव्य सृजन को विवेचित किया है, यदि इस सूची में मुक्तिबोध, शमशेर और अज्ञेय को भी सम्म-

'प्रकर'—अक्तूबर ६२—२४

लित कर लिया जाता तो आधुनिक काव्य का सारा महत्त्वपूर्ण परिदृश्य उजागर हो जाता। फिर भी जिन कवियों को लेखक ने लिया है, उनके प्रति उसने पूरा न्याय करने का प्रयत्न किया है जिसके द्वारा वे कविका स्थान-निर्धारण भी कर सकते हैं। यह बात हम उनके अनेक निबन्धों में देख सकते हैं। गुप्तजी की नारी-परिकल्पना के प्रति लेखक का यह कथन कि "उनसे यह आशा करना क्या दुराशामात्र नहीं था कि वे नारी की अभिनूतिको भी अंकित करते?" (पृ. २६)। लेखक ने उसके लिए कविका सीमा ही माना है जो उचित है क्योंकि गुप्त जी सम्भवतः ऐसा संस्कारवश नहीं कर सकते थे, जो आगे के कवियों ने किया। डॉ. सेठिया के दो निबन्ध बच्चन और नागार्जुन पर मुझे विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण लगे क्योंकि ये दोनों निबन्ध डॉ. सेठिया के उस अध्ययन के परिचायक हैं जो रचना से निकलते हुए क्रमशः विवेचन और मूल्यांकन की समानांतरता को प्रकट करते हैं। बच्चन-काव्य के विवेचन से उन्होंने तीन निष्कर्ष निकाले: एक कि कविका काव्य आपसी-जगती-स्वरूप है (पृ. ३६), दूसरे उनका काव्य भाग्य के आगे नत-शिर नहीं है अर्थात् उनका काव्य किसी-न-किसी स्तर-पर पौरुष-काल की अभिव्यक्ति करता है (पृ. ४१) तथा स्वप्न को क्रमशः यथार्थ की कठोर भूमि से जोड़ते हैं (पृ. ४४-५५) —और लेखक बच्चन-काव्य को गतिशील मानता है। स्वयं लेखक के शब्दों में "चिता की राख से लेखक "सिन्दूर की रेखा तक" के सारे पट-परिवर्तनों में बच्चन ने कभी मृत्यु की पूजा नहीं की, वे सदैव जीवन की ही आरती उतारते रहे" (पृ. ४८)। इसे दूसरे शब्दों में रखा जा सकता है कि बच्चन-काव्य 'मधु' से 'हलाहल' तक की यात्रा का काव्य है जो उनके काल-बोध की भिन्न दशाओं से सम्बन्धित है। (देखें मेरा लेख "स्वच्छन्दवादी काव्य में कालबोध—मधुमती जुलाई १९६१) दूसरा लेख है "नागार्जुन की राजनीतिक कविताएं", जो मेरे विचार से नागार्जुन की मूल काव्य चेतना को सही सन्दर्भ देती हैं क्योंकि नागार्जुन एक ऐसे कवि हैं जिनका काव्य स्वतन्त्रता से पूर्व और उसके बाद के राजनीतिक आंदोलनों, विचारों और संघर्षों का एक रचनात्मक सांकेतिक दस्तावेज है जो सम्भवतः पहली बार हिन्दी काव्य की एक ऐसी घटना है जिस पर गर्व करना चाहिये। डॉ. सेठियाने राजनीति एवं कविता के सम्बन्धों को रेखांकित करते हुए नागार्जुन-काव्य का जो



अर्थवान् विवेचन किया है, वह उपयुक्त कथनको पुष्ट करता है। नागार्जुन-काव्यके विवेचनमें लेखकने दो महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष दिये हैं। एक, यह कि वे 'ठण्डे दिमागसे नाप-तोलकर निर्णय लेनेवाले विचारक नहीं हैं, वे तो सामयिक धाराको अपनी समझके अनुसार खुली अभिव्यक्ति प्रदान करनेवाले लोकधर्मी कवि हैं।" (पृ. ६५)। दूसरा निष्कर्ष है—“राजनीतिक कविताएं उनके समग्र काव्यका केवल एक पक्ष है, परंतु उन्हें इतनी प्रमुखता प्राप्त हो गयी है कि उनकी प्रकृति-प्रेम एवं मानवीय प्रेमसे सम्बन्धित कविताएं डक-सी गयी हैं।" (पृ. ६७)। लेखकके उपर्युक्त मत एक सीमा तक ठीक हैं और यह भी सही है कि उनके काव्यका समग्र मूल्यांकन अभी अपेक्षित है जिसमें उनकी सृजनात्मकताके अन्य पक्ष (प्रकृति, प्रेम, मानवीय राग संवेदन आदि) भी समाहित हों। इधर मैंने कविके इस उपेक्षित पक्षको लेनेका प्रयत्न किया है (देखें दस्तावेज-३६ और मधुमतीमें प्रकाशित लेख) और मेरा यह मानना है कि कविका मूल्यांकन इस पक्षके बिना किया ही नहीं जा सकता। यह ठीक है कि उनके काव्यमें राजनीतिक कविताएं अधिक हैं, पर ये कविताएं मात्र सामयिक नहीं हैं, वरन् उनमें से कुछ कविताएं भविष्योन्मुख हैं और सार्वकालिक। डॉ. सेठियाने इस पक्ष की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया और कविताओंके समसामयिक महत्त्वको ही स्वीकार किया है। कविकी “बड़ी मछली छोटी मछली” कविता एक ऐसीही कविता है जो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भोंमें सदैव प्रासंगिक रहेगी। उधर नागार्जुन काव्यपर व्यवस्थित रूपसे लिखते समय (पुस्तकाकार) मैं इस निष्कर्षतक पहुंचा हूँ।

इस संग्रहमें भवानी भाई और कन्हैयालाल सेठिया पर जो आलेख है, उनमें स्थापित विचारोंकी ही पुनरावृत्ति है। भवानीप्रसाद मिश्रकी कविताओंका विवेचन करते हुए लेखकने उन्हें “सहजके कवि” कहा है और भाषासे अधिक बोलीके कविके रूपमें स्वीकार किया है। (पृ. ८३)। मुझे इसमें आपत्ति है क्योंकि मेरे विचारसे कवि भवानी भाई भाषा और बोलीके मध्यके कवि हैं जिसे उन्होंने ‘सहज’ रूपसे स्वीकार किया है। यह सहजताका गुण आजकी कविता में भी द्रष्टव्य है, विशेषकर युवा कवियों और कुछ

पुराने कवियोंमें जैसे केदारनाथ सिंह, बलदेव वंशी आदि। इस ‘सहजता’ के भिन्न स्तर हैं जो हमें आज की कवितामें स्पष्ट दिखायी देते हैं। सेठियाजीका रचना-संसार सीमित है जिसे लेखकने माना है, यह सही है। साथही उनकी कविता द्वैतका अतिकांतकर (नकार नहीं) अद्वैतकी भूमिको स्पर्श करती है—मेरे विचारसे लेखकका यह मत सन्दर्भानुसार सत्य है।

इस संग्रहका सबसे लम्बा लेख “नयी कविता: कथ्य और शिल्प है” जो नयी कवितापर एक ऐसा लेख है जो नयी कविताके लगभग सभी पक्षोंको संक्षेपमें समाहित करता है जैसे नारी/प्रेम, प्रकृति, क्षणवाद और लघुमानव आदि। इसी प्रकार शिल्पके तत्त्वों यथा छन्द उपमान, प्रतीक आदिका विवेचन भी किया गया है। लेखकको कुछ नये सन्दर्भ भी देने चाहियें जो मूलतः नयी कविता और समकालीन कविताके सन्दर्भमें नहीं उठाये गये हैं जैसे विज्ञान बोध, इतिहासका रूप, मिथक प्रयोग और कालबोध (क्षणका संक्षिप्त विवेचन है जो एक अंश है) वस्तुतः यह लेख पाठ्य पुस्तकके अधिक निकट है, आलोचनाके कम। यह अवश्य है कि कहीं-कहीं लेखककी टिप्पणियाँ हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं जो नये सन्दर्भोंको संकेतित करती हैं। उदाहरण-स्वरूप प्रकृतिके प्रति उनका यह कथन “वे (कविगण) प्रकृतिमें डूबते कम और उसके बारेमें सोचते अधिक हैं” (पृ. १०६)। इसका कारण नयी कविताका चिन्तन प्रधान रूप है जो उनकी संवेदनाको गहराता तो कम है, विस्तार अधिक देता है। इसी प्रकार लेखकने क्षणवादपर अपने मतको प्रस्तुत करते हुए नयी कवितामें क्षणकी गहनतम अनुभूतिकी बात की है और यह मत भी प्रस्तुत किया है कि भोगवादकी प्रवृत्तिके पोषणका कारण यह क्षणवाद नहीं है। (पृ. १०८)। यह मत नितान्त तार्किक है और लेखककी अन्तर्दृष्टिका परिचायक है। नयी कविताके सन्दर्भमें छन्दकी लय, अर्थ की लय, प्रतीक-बिम्ब आदिका विवेचन इस तथ्यको प्रकट करता है कि लेखकने संक्षेपमें इन कारकोंका सार्थक विवेचन किया है और उनके निर्धारणका भी प्रयत्न किया है। उदाहरणस्वरूप ‘अर्थकी लय’ के विवाद को लेखक इस प्रकार प्रस्तुत करता है—‘वस्तुस्थिति यह है कि नये कवियोंने अर्थकी लयके नामपर शब्दकी लयकी उपेक्षा की है और परिणामस्वरूप अनेक कविताएं गद्यवत् प्रतीत होती है।” (पृ. १२१)। अर्थकी



लयके नामपर गद्यवत् कविताको प्रश्रय देना, मेरे विचारसे उचित नहीं हैं क्योंकि गद्य और कविताकी संरचना और प्रकृतिमें अन्तर है। डॉ. सेठियाने इसे स्वीकार किया है और छन्द और लयकी 'गतियों' को मान्यता दी है जो अज्ञेयमें कम, गिरिजाकुमार माथुरमें अधिक है (पृ. १२१)। समग्र रूपसे यह कहा जा सकता है कि डॉ. सेठियाने नयी कविताके उन तत्त्वोंका भी स्पर्श किया है जो विषादास्पद रहे हैं। यही नहीं लेखक ने आजकी सारी कविताको आत्मसात् करते हुए उसके मूल्यांकनका भी प्रयत्न किया है—“यदि आजकी कविता समयके 'सच' को सहेजते हुए जीवनकी आंतरिकता, कोमलता और रागात्मकताकी ओर अग्रसर हो रही है तो वह अपनी सही धरतीसे, अपनी जड़ोंसे

जुड़नेका प्रयास कर रही है। इस जुड़ावसे उसका जकड़-बन्दी टूटेगी, और संवेदना-वृत्तका विस्तार होनेसे कथ्य और शिल्पके नये आयाम उद्घाटित होंगे।” (पृ. १२६)। डॉ. सेठियाका उपर्युक्त अभिमत एक तटस्थ मूल्यांकन है जिसमें विचार और संवेदनाके व्यापक परिदृश्यका समाहार प्राप्त होता है।

लेखककी यह कृति मुझे यह कहनेके लिए विवश करती है (और अनुरोधभी) कि डॉ. सेठियाकी यह पुस्तक मात्र प्रस्थान बिन्दु हैं उनकी उस भविष्योन्मुख आलोचना-दृष्टिकी जिसके विकासकी पूरी संभावनाएं हैं। इन संभावनाओंकी ओर 'दृष्टि' एकटक लगी हुई है। □

## काव्य

### श्रमणा?

[शबरीके राम]

कवि : अवधेश

समीक्षक : डॉ. मान्धाता राय

'श्रमणा' रामकाव्यकी परम्परामें एक नूतन कड़ी है। 'साकेत' के पश्चात् इस महाकाव्यकी रचनाभी बुन्देलखण्डमें ही हुई है। रचनाकार अवधेशजीने युगानुरूप इस महाकाव्यमें रामके उदात्त मानवीय रूप को प्रभावशाली ढंगसे प्रस्तुत किया है। इसकी रचनामें कविका प्रधान लक्ष्य रामकथाकी एक गौण किन्तु महत्त्वपूर्ण पात्र शबरीके चरित्रको महिमामण्डित करना है। उन्होंने सरल भाषामें शबरीको केन्द्रमें रखकर उसके सन्दर्भसे पूरी रामकथाको उपस्थित किया है। इसके लिए उन्होंने महर्षि वाल्मीकि

और उनसे भी अधिक उनके अवतार गोस्वामी तुलसीदासके प्रति आदर व्यक्त किया है। किन्तु अवधेशजीका उद्देश्य इन महाकवियोंकी रामकथाको दुहराना नहीं है। इसमें शबरी, जिसे श्रमणा नाम दिया गया है, के उज्ज्वल और रामके प्रति अखण्ड समर्पित चरित्रका यशोगान किया गया है। 'साकेत' में कथाका केन्द्र-बिन्दु साकेत (अयोध्या) है तो 'श्रमणा' में पंचवटी प्रदेश, उसमें भी श्रमणा है। इसके साथही कविने कई युगीन एवं मानवता सम्बन्धी शाश्वत प्रश्नोंका समाधान प्रस्तुत कर ग्रंथको गरिमाशाली एवं बहुमूल्य बनाया है। रचनाकारने श्रमणाको रामकी प्रिया-आराधिका और अन्तमें भक्तिका मूर्तरूप बतलाकार सभी पात्रोंको उसके समक्ष नतमस्तक दिखाया है। रामचरित मानसके भरत चरितकी तरह कविने श्रमणाके चरित्रको गौरवान्वित किया है।

'श्रमणा' महाकाव्यकी कथा २१ सर्गोंमें विभक्त है जिसमें आरम्भिक दस सर्गोंको 'गूहखण्ड' तथा उत्तरार्द्धके ग्यारह सर्गोंको 'वन खण्ड' की संज्ञा दी गयी

१. प्रका. : अंजलि प्रकाशन, झांसी। पृष्ठ : ३३१;

डिमा. ८६; मूल्य : ७०.०० रु.

'प्रकर'—अक्तूबर ६२—२६



है। पूर्वाद्धकी कथामें 'शबर' राजकी वरद पुत्रीके रूप में श्रमणाका जन्म, उसके द्वारा पिताके राज्यमें हिंसाका विरोध, नारद मुनि द्वारा उसके तथा दशरथपुत्र राम के रूप, गुण और आयुकी समानताका वर्णनकर उसके हृदयमें रामके प्रति आकर्षण जगाना, श्रमणके समय बेहोश मारीचके घर लाये जानेपर उससे रामका चित्र अंकित बाण प्राप्त करना तथा विश्वामित्र यक्ष सम्बन्धी पूरी कथाका वर्णन हुआ है। मारीच देवासुर संग्रामकी व्यथा सुनाकर कैकेयीकी वीरता, त्याग और राष्ट्रभक्ति की प्रशंसा करता है। मारीचको कविने रामभक्त दिखाया है। मैथिलीशरण गुप्तसे भी आगे बढ़कर कैकेयीको जनकल्याणमें रत दिखाया गया है। इसमें रामवन गमन कैकेयीकी दुष्टताके कारण नहीं अपितु आर्य संस्कृतिकी रक्षा हेतु दिखाया गया है। रावणके उत्पातसे प्रस्त जन-समूह एवं ऋषिगण श्रमणाके पास आते हैं जिन्हें वह अपने दो सेवकोंके साथ अयोध्या राजा दशरथके पास भेजती है। महाराज दशरथ द्वारा रावणके विरुद्ध युद्धमें असमर्थता व्यक्त करनेपर कैकेयीकी प्रेरणासे राम निराश दक्षिणवासियोंकी रक्षाका संकल्प सरयू तटपर जाकर लेते हैं। उनके प्रातःकाल बन जानेकी सूचना पाकर राजा दशरथ उनके राज्याभिषेककी घोषणा करते हैं। रामको इस संकटसे उबारनेके लिए कैकेयी दो वरदानोंका सहारा लेती है। राम द्वारा अहल्या उद्धार और जनकपुरकी कथाकी सूचना श्रमणाको शुक द्वारा, सीतासे विवाहकी सूचना नारद द्वारा तथा राम वनगमन एवं दशरथ मरणकी कथा उसके सेवक द्वारा अयोध्यासे लौटकर कही जाती है। कुम्भज ऋषिके यहां से लौटते समय शिव और सती श्रमणासे मिलकर उसके अलौकिक स्वरूपकी जानकारी देते हैं। श्रमणा आजीवन क्वारी रहकर रामके प्रति अनन्य प्रेमके लिए वैराग्य धारण करनेका निश्चय करती हैं। शबरराज निषादराज के पुत्रसे उसका विवाह करनेका निश्चय करते हैं। विवाहके दिन वधके लिए रखे गये पशु-पक्षियोंको रात में चुपकेसे खोलकर श्रमणा स्वयंभी उनके साथ जंगलमें चली जाती है। यह घटना कविपर जैनधर्मके प्रभावकी पुष्टि करती है। इसमें गहरी मानवीयताकी भी झलक है।

रामचरित मानसमें शबरीका प्रसंग छोटा होकर भी मार्मिक और प्रभावशाली है। मानसका सारांश 'नवधा भक्ति' का उपदेश श्रीराम शबरीको ही देते हैं। 'श्रमणा' में यह उपदेश पिता देते हैं। इसीके साथ वे

उसको नारी धर्मभी समझाते हैं। कैकेयी प्रसंगमें नारी की प्रशंसामें बुन्देलखंडकी गौरव झांसीकी रानीकी वीरताकी झलक मिलती है —

नारी ही राष्ट्रीय चेतना तन मनमें भरती है।

आवश्यकता पड़नेपर वह स्वयं युद्ध करती है।।

बुद्धि प्रधान वगं और नारी करती हित चिन्तन है।

ऐसे राष्ट्र भागवशालीका हुआ न कभी पतन है।

(चतुर्थ सर्ग)

मानसमें शबरीको साधवी दिखाकरभी तुलसीदास जीने उसके लिए भामिनि शब्दका प्रयोग किया है। इसी को आधार बनाकर अवधेशजीने उसे रामप्रिया सिद्ध करनेका प्रयास किया है। श्रीरामके अयोध्या त्याग और राजा दशरथके मरणके कारण शृंगबेरपुर बरात नहीं जाती है। उधर घर छोड़कर जंगलमें तप करती श्रमणा से विश्वामित्रजी की भेंट होती है। वे गायत्री मन्त्रकी उत्पत्ति और उसके महत्त्वको समझाते हैं। यह कथा मौलिक होकर भी जोड़ी गयी जैसी लगती है और मुख्य कथाके साथ इसका सहज मेल नहीं बैठ पाया है। इसी क्रममें चारों वर्णोंकी उत्पत्तिकी मानवतावादी व्याख्या प्रस्तुत करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, को क्रमशः ज्ञान, रक्षा, कर्म और सेवाका प्रतीक बताकर चारोंके महत्त्वको एक समान सिद्ध किया गया है। कविने वर्ण व्यवस्थाको जन्मनाके स्थानपर कर्मणा माना है। विश्वामित्रजी श्रीरामके कार्यमें सहयोग देनेके लिए श्रमणाको किष्किन्धा जाकर वानरोंको संगठित करने का परामर्श देते हैं।

उत्तरार्द्धकी कथामें जटायु श्रमणासे चित्रकूटमें राम-भरतके मिलनकी कथा सुनाते हैं। उधर किष्किन्धा में श्रमणाकी उपस्थितिमें जनसभाका आयोजन होता है जिसमें बालिकी अनुपस्थितिमें सुग्रीवको राजा चुना जाता है। वापसीके समय उसकी भेंट सूर्यपखासे होती है, जो उसे लंकाके वैभव, राक्षस संस्कृति और रावण के पराक्रमसे अवगत कराती है। मतंग ऋषि श्रमणाको दीक्षा देते हैं। वे धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका विश्लेषण करके आदर्श मानवके गुणोंका वर्णन करते हैं। यहां मानसके 'परहित' धर्मको और विस्तार एवं गहराई मिली है। श्रमणा अपनी सेवा और निष्ठासे सर्वप्रिय हो जाती है किन्तु दूसरे आश्रमोंके साधु आकर वृद्ध मतंग ऋषिपर आक्षेप करते हैं कि स्त्रीको स्थान देकर उन्होंने आश्रमकी पवित्रता भ्रष्ट की है। मतंगजी श्रमणाको



भक्तिका अवतार बताकर उनका परिमार्जन करते हैं। पंपासरके काला जलको श्रमणाके स्पर्श मात्रसे शुद्ध कराकर उसके अलौकिकत्वको पुष्ट किया गया है। मुनि-गण श्रमणाकी स्तुति करते हैं किन्तु उन लोगोंके व्यवहार से भुब्ध मर्तग ऋषि श्रमणासे अग्नि ऋषि और वेदवती की कथा सुनाकर सीता रूपी संस्कृतिकी सुरक्षा के लिए उन्हें अग्नि ऋषिके पास रखकर उनके स्थानपर वेदवतीको लंका जानेके लिए सन्देश देनेकी बात बताकर देह त्याग करते हैं। मुनि स्तीक्ष्ण श्रमणासे विराध वध तथा गोदावरीके निकट पंचवटीमें श्री रामके आनेकी कथा सुनाते हैं। इसी बीच भगवान शिव पुनः श्रमणासे मिलकर सती मोह, दक्ष मखभंग, सतीमरणकी कथा सुनाते हैं। यह प्रसंगभी ऊपरसे पैवंद जैसा हो गया है। सती मोहकी बात तो ठीक है किन्तु उसके पश्चात् 'बीते संवत् सहस्र सतासी' की अवधि को झट-पट घटित दिखाना अस्वाभाविक हो गया है।

मारीच श्रमणासे मिलकर वालिवध, सूर्पणखा प्रसंग, खरदूषण वधकी कथा सुनाता है। रावणके दबाव में कंचनगुग बनकर सीताके अपहरणकी योजनाभी वह बताता है। मर्तग ऋषिकी आज्ञानुसार श्रमणा अग्नि ऋषिसे मिलकर सीताके स्थानपर वेदवतीको बदलकर लंका जानेकी बात कहता है। यहाँ सीता और वेदवती की उत्पत्ति रावण द्वारा करमें वसूले गये दो घड़ोंमें संचित ऋषियोंके रक्तसे बतायी गयी है जिन्हें रावण अयोध्या और मिथिलामें गाड़ देता है। अतः वे सगी बहनें और एक रूप हैं। वेदवतीको अग्नि ऋषि अयोध्या से लाते हैं। वह विष्णुके पति रूपमें पानेके लिए तप करती है। कामान्ध रावण उन्हें उठाना चाहता है किन्तु उनका शरीर अग्नि सदृश जलने लगता है तो छोड़ देता है। वे अपवित्र होनेपर चिन्तित हैं और लंका जाकर उसका सर्वनाश करनेका निश्चय करती हैं। अग्नि ऋषि के समझाने और स्वप्नमें दीगयी दशरथजीकी आज्ञाको यादकर सीता पति की बात मानकर अग्नि ऋषिके साथ चली जाती हैं। यहाँ रावण वेदवतीका अपहरण करता है। लक्ष्मण उस समय कुटियासे दूर जंगलमें थे अतः इस परिवर्तनको वे नहीं जान पाते हैं। लंका विजयके पश्चात् पुनः परिवर्तन होता है और सीता रामके पास, चली जाती है।

बीसवां सर्ग ग्रन्थका हृदय है। इसी सर्गमें श्रमणा की चिर प्रतीक्षा समाप्त होती है। रामके पहुंचनेपर वह बेहोश मिलती है। वे उसका सिर अपनी गोदमें रखकर

'प्रकर'—अवतार' ६२—२८

पीताम्बरसे मुह पीछकर मूर्च्छा छुड़ाते हैं। श्रमणा उनके चरणोंमें लिपटी जाती है। राम भूख मिटाने के लिए खानेको मांगते हैं। और एक जूठी बेरका दाना उठाते हैं। श्रमणाके छीननेपर भी वे एक बेर खाकर भूख मिट जानेकी बात कहते हैं। श्री राम उसको प्रेमकी महिमा समझाते हैं। मोहको मनका बंधन बतलाकर वे अन्तर्मुखी होनेके उपाय द्वारा उसके मोहको दूर करते हैं। रामके पीताम्बरमें लगे खून के घब्बसे जटायु वधका प्रसंग खुलता है। अन्तिम सर्गमें श्रमणा राम-लक्ष्मणका पूजन करती है। इसी क्रममें मानव जीवनके सदुपयोगकी शिक्षा दी गयी है। श्रमणा द्वारा आगेकी कथा जाननेकी जिज्ञासा करनेपर राम बतलाते हैं कि ऋषि वाल्मीकि आकर बतायेंगे। रामके जातेही समस्त ऋषि आकर उसकी वन्दना करते हैं। वाल्मीकिजी आगेकी पूरी कथा सुनाकर उसे आशीर्वाद देते हैं। उनके जानेपर श्रमणा द्वारा वन्दनकर ध्यानस्थ हो जाती है। यहीं कथा समाप्त हो गयी है।

मानसकी अलौकिक कथाको अपनी ओरसे लौकिक एवं सहज विश्वसनीय बनानेके लिए कविने कहीं वाल्मीकि रामायण तो कहीं दूसरे ग्रंथोंमें उपलब्ध कथा का सहारा लेकर कल्पनाके सहारे पूरी कथाको नया रूप दिया है। किन्तु श्रमणाके यहां नारद मुनि एवं भगवान शिवका दो बार जाना, उसे वरद पुत्री तथा भक्तिका अवतार बतलाना, विश्वामित्र और वाल्मीकि ऋषिको भी उसके यहाँ भोजना, ऋषि-मुनियों द्वारा उसकी प्रार्थना सब मिलाकर कविकी श्रमणाभक्ति उसे अलौकिकता प्रदान करती है। घटनाक्रमकी जिस सहजताकी बात कविने की है उसका सबसे कमजोर अंश यही है। वाल्मीकिजी का उसके यहां जाकर आगेकी रामकथाको जल्दीमें समेटना उसी प्रकार है जैसे 'साकेत' में वशिष्ठजीका अयोध्यावासियोंको दिव्य दृष्टि देकर लंकाके सारे घटनाक्रमको दिखलाना। आश्चर्य है कि वहीँके जंगलों में रहनेवाले कुम्भज ऋषिको श्रमणाके दर्शनसे कविने क्यों वंचित कर दिया? अलौकिक प्रसंगोंको लौकिक मानवीय बनाकर प्रस्तुत करनेवालोंके साथ यही गड़बड़ी होती है। गाड़ी फंस जानेपर जासूसी उपन्यासोंकी तरह लोग घटनाओंको चमत्कारिक बना देते हैं।

दूसरा प्रश्नचिह्न श्रमणाके प्रति इतनी भक्ति



रखकर उसके यौवन और रूपका चित्रण करना है। तुलसीदासजीने शिव-पार्वतीके शृंगार और सीताकी लौकिक छविका वर्णन जगत् माता भावके कारण नहीं किया है। अलौकिक सौन्दर्यकी झलक रूपक द्वारा दी है। शुक द्वारा कथा कहनेकी घटनाभी विश्वसनीय नहीं है। कतिपय सीमाओंके बावजूद कवि द्वारा कथा में किये गये अनेक परिवर्तन मौलिक होनेके साथ-साथ घटनाको अधिक सहज, मानवीय और विश्वसनीय बनाते हैं। दक्षिणसे दुःखी लोगोंका दुःख दूर करनेके लिए रामका जंगल जाना मानसकी तुलनामें अधिक सहज है। बाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस में कैकेयीको एक दुष्ट नारीके रूपमें प्रस्तुत किया गया है भलेही उसके लिए सरस्वती और मंथराका सहारा लिया गया है किन्तु 'श्रमणा' के कविने 'साकेत' से भी आगे बढ़कर कैकेयीके चरित्रको निर्मल और राष्ट्रके प्रति समर्पित दिखाया है। यहां उसका वरदान मांगना लोक-हितमें है। मोह्यस्त महाराज दशरथके अवरोध को हटानेके लिए वह वरदान मांगती है। कविका मत है 'मोह तथा आवेश सहित जो कर्म किया जाता है /

उसका दुष्परिणाम सामने तो अवश्य आता है।' (पृ. ५६)। कैकेयी राष्ट्र और संस्कृतिकी रक्षिका बनकर उभरी है। यहां सीताको दिव्य वस्त्राभूषण अनसुझा नहीं कैकेयी पहनाती है। ये वस्त्राभूषण उन्हें देवासुर संग्राममें कुशल रथ संचालन और भीषण कष्ट सहनेकी घटनासे प्रसन्न होकर देवराज इन्द्रने दिये थे। महाराज दशरथकी इन्द्र-मैत्रीको मित्र-धर्मके रूप में स्थापित करनेमें कविको सफलता मिली है। दशरथ शब्दका नया अर्थ कविने दिया है—'दसों इन्द्रियां मनके वश हों तब दशरथ कहलाता / दूसरी ओर इसके विपरीत होनेपर दसो इन्द्रियोंके वश मन हो, तब दस मुख बन जाता।' (चतुर्थ सर्ग पृ. ५०)।

वेदवती प्रसंग तथा सीताके स्थानपर वेदवतीके अपहरणकी कथा पूरे प्रकरणकी मानवीय एवं विश्वसनीय बनाती है। छाया सीताकी अलौकिक घटनाकी तुलनामें यह प्रसंग अधिक सहज है। अग्नि देवताके स्थानपर अग्नि ऋषिका आना व्यावहारिक है। इसी प्रकार अहल्याको शिलाकी बजाय प्रस्तरकारामें बन्द करनेकी घटना अधिक विश्वसनीय है।

ग्रंथके मार्मिक प्रसंग हैं—शबरराजका पुत्री प्रेम, देवासुर संग्राममें कैकेयीका कष्ट सहन, चित्रकूटमें

जनकराजकी पत्नीका सीताको संन्यासिनी वेशमें देखकर मूर्च्छित होना एवं रामसे उलाहना, श्रमणाका वधके लिए रोके गये पशुओंके प्रति प्रेम, राम-श्रमणा मिलन, वेदवतीका रावण द्वारा स्पर्श किये जानेके बाद पश्चा-ताप और रामकी दक्षिणसे आये लोगोंके समक्ष प्रतिज्ञा।

कविने युगानुरूप कई विचारोंको भरनेका प्रयत्न किया है। मानसमें वर्णाश्रम व्यवस्थापर बराबर बल दिया गया है। इसमें वर्णाश्रम व्यवस्थाके कर्मणासे हटकर जन्मना होनेपर जातिमें बदलावको समाजकी अधोगति का कारण बताया गया है। मारीचके चरित्रको उठाकर उसे सन्तकी संज्ञा दी गयी है। रामसे पहली ही भेंटमें उसका हृदय परिवर्तन कराकर भक्त बना दिया गया है। कविकी स्थापना है कि इसी कारण रामने ताटका और सुबाहुको मार डाला किन्तु मारीचको दूर फेंक दिया। उसकी पीठमें लगे रामका चित्रयुक्त बाण पाकर श्रमणा उसी दिनसे रामके प्रेममें उसी प्रकार दीवानी हो गयी जैसे मीरा। ग्रंथमें रामचरित मानसकी भाँति उदात्त मानवीय मूल्योंकी स्थापना सर्वत्र की गयी है। दूसरोंकी सेवा अभिमानका त्याग और सबको समान माननेका परामर्श आद्योपान्त दिया गया है।

कविने बीसवीं शतीके चतुर्थ चरणमें ग्रंथ रचना करके भी महाकाव्यके अनेक पुराने लक्षणोंको अपनाया है जैसे सर्गके आरंभमें किसी देवता की प्रार्थना तथा संगन्तिमें छन्द बदलना। शान्त रस मुख्य है। बीचमें शृंगारकी भी झलक दिखायी गयी है। वैराग्य, धर्म, गृहस्थ, हृदय परिवर्तन, सत्य, अहिंसाकी बात बार बार कही गयी है। कैकेयीके चरित्रमें वीरांगनाकी पुट देकर झाँसीकी रानीके त्याग, शीयें, साहस और धैर्यका चित्रण किया गया है। नारी जाति के प्रति उदात्त भावना पूरे ग्रंथमें विद्यमान है। ग्रंथ की सरल भाषा, मानवतावादी दृष्टिकोण तथा कविका रामकथा एवं श्रमणाके प्रति भक्ति-इस ग्रंथकी उपलब्धियाँ हैं। इसके नायक तो रामही हैं किन्तु नायिका सीताकी जगह श्रमणा हैं। उसे राम-प्रियाके रूपमें स्थापित करनेका कविने पुरजोर प्रयत्न किया है। यही कवि की उपलब्धि और सीमा दोनों हैं। ग्रंथ नामकरण और प्रभावकी दृष्टिसे नायिका प्रधान हैं। जैसे पदमावत। तुलसीकी शबरीसे श्रमणा इस अर्थमें ऊँची है कि शबरी रामसे भक्ति मांगती है जबकि श्रमणा कुछ



नहीं मांगती। प्रेमिका देना जानती है मांगती नहीं। मानसके चार वक्ताओंकी भांति यहाँ भी शुक, नारद ऋषि, भगवान् शिव और वाल्मीकि-मारीच कथाके आधार हैं।

आध्यात्मिक एवं दार्शनिक तत्त्वोंकी विवेचना तर्कसंगत की गयी है। मनोविकारोंका चित्रण स्थान-स्थानपर किया गया है। युगानुरूप विचारोंमें कवि आदर्श लोकतंत्रका समर्थक है। उनकी मान्यता है—

सभी स्वधर्म स्वकर्तव्योंपर हैं आरूढ़ वहाँपर।

वहाँ वहाँ परिवर्तन परहित सबका लक्ष्य जहाँ

पर ॥ (चतुर्थ सर्ग पृ. ५८)

इसके लिए पांच तत्त्वोंको कविने आवश्यक बताया है :

दृढ़ संकल्प, कठिन श्रम, अनुशासनपर सब

चलते हैं।

सह अनुभूति, सुदूरदर्शिता पाँचों ब्रत पलते

हैं ॥ (चतुर्थ सर्ग पृष्ठ ५८)

गांधीजीके सत्य, अहिंसा, हृदय परिवर्तन, अस्पृश्यता निवारणका समर्थन तथा अनास्था एवं अविश्वासके स्थानपर आस्था एवं विश्वास जगानेका प्रयास कविने किया है। विनम्रताके साथ ग्रंथको श्रद्धा-भक्ति सहित पढ़नेपर भक्तिकी प्राप्ति होने, मनोकामना पूरी होने जैसी बात कहकर कविने स्वयंको भी वाल्मीकि और तुलसीकी परंपरामें अवतरित होनेका व्यामोह मनमें पाल रखा है। आधुनिक विश्वकी बरवादीका कारण केवल भौतिक उन्नतिकी आपाधापी है। कविने इसे रावणत्व प्रतीक बताया है। रावणने भी आध्यात्मिक सिद्धिका प्रयोग भौतिक उपलब्धिके लिए किया। वही उसके नाशका कारण बना।

जहाँतक छन्दकी बात है कविने साकेत और कुरु-क्षेत्रके छन्दोंका प्रयोग अधिक किया है, जैसे (१) दूटों मानव मर्यादाएं राम जोड़ने आये। युगों युगों तक आर्य स्वत्वकी छाप छोड़ने आये ॥ (चतुर्थ सर्ग) (२)—चाहते सब, सब करें मुझसे मधुर व्यवहार। दूसरोंके साथ सबके व्योम विरुद्ध विचार ॥ (प्रथम सर्ग)

अवधेशजीने राम कथा और मानवताके प्रति नित्य घट रही आस्थाको एक बार पुनः जगातेका प्रयत्न इस महाकाव्यमें किया है इसके लिए वे बधाईके पात्र हैं। [१]

‘प्रकर’—अक्तूबर १२—३०

## हरा गुलाब और मैं

कवयित्री : इन्दु सुन्दरी

समीक्षक : दुर्गाप्रसाद ज्ञाला

“हरा गुलाब और मैं” पचहत्तर छोटी-छोटी कविताओंका संकलन है। इन कविताओंमें बाहरका संसार तो अधिक नहीं है, लेकिन इस बाहरके संसारने कवयित्रीके मनमें अनुभूति और संवेदनाकी जो छोटी-छोटी लहरें उठायी हैं, उनकी सूक्ष्म और तरल अभिव्यक्ति पाना है। इसलिए इन कविताओंको मूलतः अन्तर्मनकी हलचल या मनःस्थितिकी कविताएं कहा जा सकता है।

कविताके बारेमें कवयित्रीकी मान्यता है : “कविता हमें वह सब दिखलाती है जिसे हम देखते हुए भी नहीं देख पाते तथा वह भी जिसे हम उसकी दृष्टिगत अनुपस्थितिमें भी देख लेते हैं। साथही यह यथार्थसे कल्पना तथा कल्पनासे यथार्थतक की यात्रा है जिसमें कुछ पड़ाव तो बड़ेही रूमानी रोमांचकारी, सलोने और मनोहारी होते हैं लेकिन कुछ उतनेही शुष्क, कंटीले, रेतीले और अजनबी।” ये कविताएं न्यूनाधिक इसी कविता-दृष्टिका प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें जीवनका वह स्पंदन है जो कल्पना और यथार्थ के दो छोरोंसे टकराता हुआ निरन्तर गतिशील रहता है। इसलिए इसकी भाषा कभी तो उस सपनेको साकार करनेके लिए छटपटाती-सी लगती है, जिसे वह अपनी कल्पनाकी आंखोंसे देखती है; और कभी वह यथार्थकी विद्रूप चट्टानसे टकराकर लहलुहान भी होती है तथा मनकी टीस और कसकको एक रूप—एक आकार प्रदान करती है। इस काव्य-संकलनका शीर्षक ‘हरा गुलाब और मैं’ इसको इसी काव्य-संवेदनाके मूल चरित्रकी ओर संकेत करता है। ‘हरा गुलाब’—उस काल्पनिक जीवनका प्रतीक है, जिसकी खोजमें कोई संवेदनशील ‘मैं’ अनवरत लगा रहता है तथा सुख-दुःख, उल्लास-विषादकी पगडंडियोंसे गुजरता हुआ मानो साथही साथ अपने ‘आत्म’ की भी तलाश करता रहता

१. प्रका. : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १०५; डिमा. ८६; मूल्य : ६०.०० रु.।



है। इस तलाश-यात्रामें वह 'मैं' मौसमके अलग-अलग रूपोंकी तरह 'आँसू' तो कभी 'मुस्कान' बांटता फिरता है :

ये गरजता मौसम/ ये बरसता मौसम/ ये लरजता मौसम/ ये ठहरता मौसम/ समेटेहैं अपनी डलिया में/ चंद मोती आँसूके/ और चंद फूल मुस्कानोंके/ जिन्हें बांटता फिरताहै यह/ अन्धे नवाबकी तरह ।  
[अंधा मौसम] ।

मनःस्थितिकी ये कविताएं अनेक स्थलोंपर दार्शनिक गहराई और मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताका अहसास करातीहैं। कुछ कविताएं तो अपनी अति लघुताके कारण सूझवत् हो गयीहैं। यथा: "कोलम्बस" के तथा "मैं और मैं" शीर्षक कविताओंको देखाजा सकता है :

[१] हर कोलम्बसकी नियति है/ सुनिश्चित/ उसे मिलेगा/ उसका अमेरिका/ या फिर वह कोलम्बस नहीं । [कोलम्बस]

(२) मेरी मैं/ बहुत प्रिय है/ पर बहुत मुश्किल है/ दूसरीकी मैं को/ उतना ही प्यार देना । (मैं और मैं)

कुछ कविताओंमें इस दुनियाँके आन्तर और बाह्य दोनों रूपोंकी विसंगतियां अपने नंगे और बेलौस रूपमें अभिव्यजित हुईहैं। अपने समयकी आंचको इनमें महसूसआजा सकती हैं। विशेष रूपसे निम्न मध्यवर्गके आदमीकी एकरस जिन्दगीकी यांत्रिकता और तज्जन्य उदासीनता, क्षोभ, बेचैनी तथा अर्थहीनताको ये कविताएं उजागर करतीहैं। मूल्योंको पानेकी छटाहटपटभी इनमें है और तत्संबंधी असफलताके कारण उसकी हताशा भी। 'आखिर', 'शहरमें बसंत', 'शहरमें', 'वे तीन लड़कियां', 'सवेरा', 'परिवर्तनका डर', 'जिन्दगी', 'समाधान', 'सौ साल बाद'—आदि कविताएं इस संदेहमें उल्लेख्य हैं।

कहाजा सकताहै कि ये कविताएं सूत्रात्मक ज्यादा हैं। जीवनके ठोस व्योरोसे—उनके सही और नंगे रूप से ये कमही रू-ब-रू होतीहैं। पर, एक उदार तथा चिन्तनपरक मानवीय संवेदनासे सिकत दृष्टि बोधके साथ अन्तर्भनकी सूक्ष्म-तरल अभिव्यक्ति इन कविताओं को एक विशिष्ट अस्मिता प्रदान करतीहैं। कहीं-कहीं अछूती और टटकी बिम्ब-योजनाने इन्हें सहज रूपमें

अलंकृत कियाहै :

(क) जाड़ों में/ मखमली दूबपर खिली धूप-सी/ सुखद लगी/ तुम्हारी बात । (शायद)

(ख) बिना रेगुलेटरके पंखेकी तरह/ घूमती यह जिन्दगी । (जिन्दगी)

यदि किसी कवि/ कवयित्रीका पहलाही कविता-संकलन इस प्रकारका या इतनी प्रतीति भी अपने पाठकोंको करानेमें समर्थ है, तो निश्चित ही भविष्यमें उससे अधिक अच्छी अपेक्षाएं आश्वस्त भावसे कीजा सकतीहैं। [१]

## मृगछाला

कवि : डॉ. गोविन्दप्रसाद गुप्त

समीक्षक : प्रयाग जोशी

हरिवंशराय बच्चनकी 'मधुशाला' के ढंगपर, उसीकी प्रेरणासे लिखी गयी 'मृगछाला' कृति हाला-वादका विपक्ष प्रस्तुत करनेके लिए लिखी गयीहै। नैतिकता, मर्यादा, श्रेय और भारतीयताकी स्थापनाका इसमें आग्रह है। एक सौ पन्द्रह चतुष्षिदियोंका क्रमभी वही है। बच्चनकी स्वीकृतिपूर्वक पुस्तक उन्हींको समर्पित है।

पल्लवमें स्व. डॉ. रामकुमार वर्माकी शुभकामना है। डॉ. रामेश्वर शुक्ल अंचलने 'सार्थक अभिव्यक्ति' शीर्षकसे सम्मति लिखीहै। कविने निवेदनमें लिखाहै, 'एक प्रकारसे जीवनमें व्याप्त विसंगतियोंका एक सांकेतिक समाधान प्रस्तुत करके 'मृगछाला' के सुरुचिपूर्ण वातावरणको मैंने नैतिक मूल्योंका माध्यम बनायाहै।' मृगछाला शब्दसे निवृत्ति, आध्यात्मिक, वैराग्य और उदासीन आदि अर्थ लियेजा सकतेहैं। पर छन्दमें इसका प्रयोग एकही अर्थमें नहीं है। 'मृगछाला' की घोषणा है—

पुरखोंका है/ असर जिन्होंने/ भर-भरकर इतना ढाला/ मिली तुम्हारे लोहमें है। पचहत्तर प्रतिशत हाला/ असर उसीका/ करनेको क्रम/ ओ ! मधुशालाके गायक/ देती प्रथम/ निमंत्रण तुमको/ मेरी विषहर मृगछाला ॥

१. प्रका. : साहित्य भवन प्रा. लि., ६३, के. पी. कवकड़ रोड, इलाहाबाद। मूल्य ३०.०० रु।



कृतिमें प्रवाह है। परन्तु फिट्जेरेल्डके माध्यमसे उमर खंयामकी जैसी दार्शनिक छाया बच्चनने ग्रहण की उसी प्रकारके प्रभावकी यहां आशा नहीं की जा सकती। भाषा, भाव और लयकी दृष्टिसे यह कृति प्रौढ़ रचना है। मधुशालाके जैसे प्रभावशाली छन्दोंकी रचनाके लिए उसीके युगकी भाषाका सहारा लिया गया है। कहीं-कहीं आजके युगकी सामान्य और निराकार असंगतियोंपर भी सरसरी दृष्टि डाली गयी है— आज अर्थ-सत्ताके मदमें / झूम रहा नर पंतवाला/ डूब गया है/ स्वार्थ-तिमिरमें परमारथका उजियाला/ कैद अहम्के / बन्दीगृहमें / सत्य और ईमान सखे/ जिन्हें देख/ जग हँसी उड़ाता/ धैर्य बंधाती मृगछाला ॥

जहां, पैरोडी, व्यंग्य, प्रतिपक्ष अथवा कटाक्षके लिए मधुशालाके छन्दको दिमागमें रखकर छन्दो-रचना की कोशिश नहीं है वहां छन्द औरभी मौलिक और

प्रभावशाली बने हैं :

वंशीकी जिस धूनको सुनकर/ हुई बावरी ब्रजवाला/ झूम उठे जिस स्वरमें अगणित/ सुर-नर-मुनि-किन्नर वाला/ जिसके स्वरमें / सतत / वेदमंत्रोंकी ध्वनि अविराम सखे/ उसी सरस ध्वनिका प्रिय प्रतिक्षण—श्रवण कराती मृगछाला ।

आजके मादक पदार्थोंके सेवनके रोगके युगमें जब कि हेरोइन, स्मैक, मारिजुआना, चरस, अफीम आदिके विरोधमें दुष्य-द्रव्यके व्यापक माध्यम खुलकर बहस करते हैं, कवितामें छापी हालाके विरोधमें लिखी गयी ये पंक्तियां प्रभावशाली लगती हैं—

बेच-बेच तबके आभूषण/ बढ़ता है पीनेवाला/ कितना करुण दृश्य, मधुशाला/ ये लुटती घरकी बाला/ घरमें है—भूखे बच्चे जो—उनका क्या आधार कहो/ यही प्रश्न/ पीनेवालोंसे करती मेरी मृगछाला ॥ □

## उपन्यास

### भंगी दरवाजा?

उपन्यासकार : राजेन्द्र अवस्थी

समीक्षक : डॉ. सत्यपाल चुध

श्री राजेन्द्र अवस्थीका 'भंगी दरवाजा' (१९९२) लघु उपन्यास है। रचना-क्रमकी दृष्टिसे यह उनका दसवां उपन्यास है। विषय-विधानकी दृष्टिसे यह उनके अन्य उपन्यासोंसे भिन्न है, एक नये प्रयोगका प्रभाव डालता है। यह भारतके समसामयिक राजनीतिक परिवेशसे सम्बद्ध ऐसा राजनीतिक उपन्यास है, जिसकी अपनी सामाजिक अपील भी है। इसमें आजकी राजनीतिकी मूल्य-मर्यादाहीनताके असंगत-निरर्थक यथार्थ

के प्रभावको, अपने मूल रूपमें उतासनेके लिए 'एन्सर्ड' या बिखरे-बेतुके-से-शिल्प-विधानसे काम लिया गया है।

उपन्यासमें पिता-पुत्रीके रूपमें दो ही प्रमुख पात्र हैं और शेष अधिकांशतः परोक्ष एवं अपेक्षतया गौण हैं। ये दो पात्र हैं भूतपूर्व विदेशमन्त्री राजनेता श्यामबाबू और उनकी सुशिक्षित तलाकशुदा बेटी रूपाली। पात्रोंके समान ही यहां स्थान और कालभी सीमित हैं, नाटकीय संकलनत्रयका आभास देनेवाले और प्रभाववर्द्धनमें कुछ-न-कुछ सहायक। दो हजार फुटकी ऊंचाईपर बसा, तीन ओर गहरी खाइयोंसे घिरा, पहाड़ियों, झरनों, झीलों, तालाबों एवं नानाविध पेड़-पौधों-फूलोंसे मालामाल, बाजबहादुर-रानी रूपमती प्रणय-कथाका आधार और इतिहासकी कई करवटों का केन्द्र मध्यप्रदेशका मांडूही इस उपन्यासका क्रीडा-स्थान है, जहां विश्रामके लिए आते हैं उपयुक्त दोनों

१- प्रका. : राजपाल एंड संस, कश्मीरी बरवाजा, दिल्ली-११०००६ । पृष्ठ : १११; क्रा. ९२; मूल्य : ४०.०० रु. ।

'प्रकर'—अक्तूबर ९२—३२



पात्र । यहाँ पठनीयताको सम्भव बनाने के लिए इन दोनोंकी चारित्रिक रहस्य-जनित उत्सुकताही प्रधान है, कोई बनी बनायी कथा नहीं । मांडूमें विभिन्न ऐतिह्य स्थलोंको देखने एवं प्राकृतिक या सामान्य परिवेशमें घूमनेसे सहज स्फूर्त विगत स्मृतियोंके रूपमें एवं दोनों पात्रोंके मनःस्थिति-परिस्थितिके सूचक आपसी संवादों, अन्तर्विवादों और इन्टरव्यूके माध्यमसे दोनों चरित्र धीरे-धीरे खुलेहुँ और वे भी काल-क्रम-विपर्यस्तताके साथ । इससे लेखकने मांडूके इतिहासको आज की राजनीतिसे जोड़नेका प्रयास किया है । उदाहरण-तया, उपन्यासके दूसरेही पृष्ठपर गाइड रूपालीको जानकारी देता है—“कभी यहाँ सिंहोंकी भरती गर-जना होती थी । चीते, शेर, भालू और स्यारोंकी तो गिनती नहीं । शिकारियोंने सब चौपट कर दिया ।”

“उस (रूपाली) ने जोरकी साँस ली—शिकारियोंने । अपने पापाकी याद हो आयी—श्यामबाबू ! वह घूमने निकली थी तो श्यामबाबू सो रहे थे । उनका नाम शिकारियोंके सन्दर्भमें कैसे आया ?” यहाँ रूपाली की भाँति पाठक भी यही सोचता है । गाइडसे आगे प्रश्न करनेपर रूपालीको पता चलता है कि खूँखवार जंगली जानवरोंका शिकार करनेवाले शिकारी और भी ज्यादा खूँखवार होते हैं और उन्हें पकड़ने-मारनेके लिए उनके पीछे भागते हैं ।” भागता है तो थकता है और थकता है तो फिर रात सोता भी है ।”

(इसपर रूपाली कहती है) “ठीक है, ठीक है, ...पापा इसीलिए अभी भी सो रहे हैं । लौटकर जाऊँ तो भी शायद सोते मिलें ।”

उसके पापा (पूर्व विदेशमंत्री) के खूँखवारिताके चरित्र-रहस्यको जाननेके लिए पाठकोंकी उत्सुकता स्वाभाविक है । इसका दूसरा उदाहरण लें । रूपमती का विवाह चन्देरीके जमींदार मानसे हुआ था पर ज्यादा दिन चल नहीं सका । गाइडसे जानकारी प्राप्तकर रूपालीको अपने आई.ए.एस. अफसर पति बिनोदकी याद हो आती है, जो विवाहकी प्रारम्भिक रातोंमें भी बहुत-कुछ नामर्द सिद्ध होता है किन्तु पत्नीको थप्पड़ मारने या क्रूर व्यवहारकी धमकियाँ देनेमें मर्द सिद्ध होता है । रूपमतीकी कहानीसे स्पष्ट होता है कि वह सोलह सालकी बच्ची या कमसिन थी और संगीत-प्रेम के कारण उसका पचास वर्षके बाजबहादुर (मालवेके सुलतान) से प्रेम हुआ । आदमखान (क्या आदमखोर

...जैसा नाम वैसा घरम) ने बाजको मार डाला और उससे बचनेके लिए रूपमतीको आत्महत्या करनी पड़ी । कच्ची उमरकी रूपमती जिंदगीका सुखचैन लिये बिना चली गयी । इस सन्दर्भमें स्वयं पाँड़ाका जीवन बिताती हुई रूपालीको अपने पतिही नहीं राजनेता पापाकी भी याद आती रही और मानो उनके खूँखवार शिकारी होनेके रहस्यका सामाजिक समाहार उसने इस प्रकार किया—“यह आदमियोंकी दुनिया है न, औरतोंका शिकार सदियोंसे किया जा रहा है । करते रहेंगे ये भेड़िए और वे चीखती रहेंगी ।” लेखकने समाहरण चाहे पहले सात-आठ पृष्ठोंमें ही कर दिया किन्तु इनके प्रमाणोंके लिए पाठकोंको उत्सुक बना दिया ।

श्यामबाबूके माध्यमसे अद्यतन राजनीतिक माहौल को साकार किया गया है । वह लगातार दस साल तक मन्त्री रहा—वित्त, वाणिज्य, कोयला, खान, पेट्रो-लियम तथा प्रधानतया विदेश विभागमें मन्त्री । यों तो नानाविध अनुभवोंको प्राप्त कर वह ऊपरसे यही कहता रहता है कि उसे राजनीतिसे घृणा या चिढ़ हो गयी है किन्तु रूपाली बखूबी जानती है कि उसके पापाकी राजनीतिकी ‘लत’ छूटनी बहुत कठिन है । पिछले चुनावमें पार्टीके हार जानेमें और पद-मुक्त होकर वह अपने चुनाव न लड़नेके बारेमें चाहे कितनाही सोचता-कहता रहा किन्तु उसके अभावकी ग्रन्थि उसके बार-बारके खाँसीके दौरोंमें व्यक्त होती रहती है । इसलिए एक अवसरपर, रुग्णावस्थामें भी, ‘राजनीति’ शब्द सुनतेही उसकी शक्ति लौटने लगती है । एक ओर उसको बेटी राजनीतिके घिनीनेपनसे मजबूर होकर “आजसे हम राजनीतिकी बात नहीं करेंगे” पापा को निपट निर्णय सुनाती है और दूसरी ओर मरणांतक खाँसनेके दौरसे मुक्त होकर श्यामबाबू उससे भी अधिक दुढ़तासे कहते हैं—“राजनीति तो मेरी जिन्दगी है...जो आदमी जिस वातावरणमें पलता है उससे मुक्त नहीं होसकता । वह मर सकता है, आत्महत्या तबभी नहीं करेगा । मेरा रोम-रोम राजनीतिको समर्पित है । राजनीति मेरी यज्ञशाला है ।” अन्यत्र जब पत्रकार उनसे सवाल करते हैं कि वह इतने दिनों बाद राजनीति में क्यों लौट रहे हैं तो वह कहता है कि वो गयाही कब था । क्योंकि राजनीतिमें जो आदमी एक बार आगया, समझ लीजिए शहदमें डूब गया... “राजनीतिमें गंदगी



बढ़ने, सारी आचार संहिताएं टूटने, चुनावोंमें मारकाट, लूटपाट, हत्याएं, रिश्वत आदिका माहोल श्यामबाबू को सुचवाता है कि क्या वे इसलिए आजाद हुए थे ? महन्तजी बड़ी बेबाकीसे इस गन्दगीके लिए श्यामबाबू और उनके सहयोगियोंको जिम्मेदार ठहराते हैं क्योंकि कोई जैसा बोयेगा वह वैसाही तो काटेगा। जब श्यामबाबू इसका कोई और उत्तर नहीं दे सका तो वह इसका सामान्यीकरण कर बचनेका प्रयास करता है—“देखिये महन्तजी, यह दुनियांभर में चल रहा है। समूची दुनियां मीडियाकर नेतृत्वसे पीड़ित है...” लेखक ने इसी श्यामबाबूकी विगत-वर्तमान जीवन-गति, अन्तर्विवादी एवं कथनोंसे एक ऐसे सर्वांगीण भ्रष्ट उच्च राजनेताको प्रदर्शित किया है, जो प्रधानमन्त्री-पद के दावेदारकी सम्भावना प्रकट करने लगता है। ऐसा व्यक्ति सबसे पहले महत्वाकांक्षी और स्वार्थसेवी होता है, और इसके लिए वह अपनी पार्टी छोड़ दलबदल भी बन सकता है, मोहनसिंहके प्रसंगमें वह कहता है—“पारटी क्या होती है, होता आदमी है। राजनीतिमें पारटीका महत्त्व भी क्या है—जब चाहे बदल लो...” वह इतना व्यावसायिक प्रकृतिका हो जाता है कि किसी की अकारण सहायता या भला नहीं करता और गिन-गिनकर उसे भुनाता है। मोहनसिंहको उसने चुनावमें जितायाथा, मेंहनतसे मिनिस्टर बनायाथा, इसलिए पदारूढ़ न रहनेपर वह उससे अपनी उपेक्षा सहन नहीं कर पाता और क्रोधावेशमें उसकी हत्या करवा देनेका दम भरने लगता है। उसकी अहम्मन्य दुस्साहसशीलता मांडू तकको उजड़वाने या ‘तहस-नहस’ करनेकी बात कर सकती है, मानो ऐसा न कर वह उसके ‘प्रेमकी दुनियां’ या ‘प्रेममय’ नैसर्गिक सौन्दर्य पर रहम कर रहा हो। उसने इतनी धन-सम्पत्ति जमा कर रखी है, जो उसके आनेवाली असंख्य पीढ़ियोंके लिए काफी होगी, यही उसकी शक्ति है, वह डींग मारता है—“हजारों, लाखों क्या करोड़ोंका वारा-न्यारा मंत्री करते हैं। एक चुनाव काफी है दो पीढ़ियोंके लिए, मैं तो दस साल तक मन्त्री रहा, उतनी पीढ़ियां ही नहीं हैं...स्विट्जरलैण्डमें जमा राशि। कितने शहरोंमें घर हैं, खेत हैं, होटल हैं, और शेयर मार्केट जब चाहे गिरादूँ जब चाहे चढ़ादूँ।” ऐसा आदमी भी कभी दार्शनिक बातें करने लगता है और कभी सिद्धांत बघारने और जनतासे वायदे करनेमें कोई कंजूसी नहीं ‘प्रकर’—अक्तूबर’६२—३४

करता किन्तु उसकी लड़कीही नहीं, वह स्वयं भी अपनी असलियत जानता है, यही नहीं, स्वीकारता भी है—“दस सालोंमें इतने पाप किये हैं कि अब घड़ा पूरी तरह भर गया है।” इस पापके स्वरूपकी सीमा अफीमकी तस्करी और समाजकी धार्मिक भावनाओंसे खेलनेतक विस्तृत है। इसका प्रमाण है मोहनसिंह प्रसंग। वहाँ लेखकका व्यंग्य है—“एक बोरा अफीम बिना रोक-टोकके सीमा पारकर जाये, यह लोकतन्त्रका सर्वोच्च प्रतीक है।” जनताकी धार्मिक भावनाओंकी उकसाकर काम निकालनेके लिए, वह मोहनसिंहको देवांका रथ चलाकर जुलूस निकालनेका गूरुमन्त्र देता है किन्तु अपने लिए निष्पक्षताकी छवि बनाये रखकर मुसलमानों के वोटभी प्राप्त करता है।

सारे देशमें अव्यवस्था, घरमें व्यवस्थाहीनतासे अन्तःसूत्रित है। इसलिए श्यामबाबूकी पत्नी अपने पति के प्रति असहयोगकी स्थितिमें घरमें घुटती-जलती रहती है और रूपाली पसीजकर अपने पापासे तरह-तरहके प्रोटेस्टकरके। आकार-प्रकार एवं केश वेश-भूषामें सुन्दर श्यामबाबूके कामाचारकी सांकेतिक व्यंजनाएं हुई हैं। अखबार वाले लिखते रहे—“हर दौरेमें एक खूबसूरत लड़की न जाये तो विदेशमन्त्रीजीका दौरा अधूरा...” कहते हैं। उनकी केबिनमें हर बार एक नयी संवाददाता लड़की अकेली होती थी। “मम्मी क्यों नहीं समझ पाती कि गुड़ होगा तो चीटियां तो लगेंगीही। “बिना बाज-बहादुरके रूपमती नहीं रही”—यह अनुभूति होतेही रूपालीको अपने उस पापाकी कौंध आती है जिनका दरबार आधी रात तक लगा रहताथा और जो देरतक सोकर उठते थे। वह अपनी ममीके दुःखका अनुमान लगा लेती है क्योंकि उस दरबारमें सुन्दर चेहरोंका एक सिल-सिला रहताथा—एकसे एक खूबसूरत कमसिनें।... (उसे) एकके बाद एक कितनी खूबसूरत लड़कियां मिलती थीं बंगलेके द्वारतक पहुंचते-पहुंचते।...” श्याम बाबू मानो यह मानते थे कि वह आदमी क्या जिसकी रात खनकती हुई चूड़ियोंमें न बीते। मांडूमें वे आसपास पसरी प्रकृतिके तालाबमें नवजात कमलोंको घूर रहे थे। कमलोंके पास कमलनियां भी थीं। और पूरे तालाबमें चहलकदमी कर रहे थे। ...तालाबके उस पार पलाश वन है। पलाशकी डालों पर कीड़े लाख बनाते हैं। इसी लाखकी चूड़ियां बनती हैं। श्यामबाबू को लगा पलाश वन चूड़ियोंसे भरा है...श्यामबाबूको



लाखमें महीन नयीसे नयी कारीगरी देखनेका शौक था। इसलिए वे गोरी कलाइयोंको हाथमें लिये आँखोंमें यूँ भरते कि मुर्गा बोलने लगता। मुर्गेकी बाँग कोरी कलाइयोंको तिलमिला देती पर श्यामबाबूने जिदगीमें हार नहीं मानी। सोकर ग्यारह बजेभी उठें तो क्या होगा? कौन पूछेगा? एक नवाबकी जिदगी किसीकी मोहताज नहीं होती।” श्यामबाबू रूपालीको अपने पहले चुनावके अनुभवके रूपमें पार्टीमें उस खजांची यानी ट्रेजररकी एक घटना सुनातेहैं जिसके गहरे दोस्त थे तस्कर, डाकू, दलाल आदि। उस खजांचीका टिकटार्थियोंकी भीड़में, औरतोंको मिलनेका ‘खाम तरीका’ होताथा। तदनुसार लतिका जैसी महिलाके साथ गुलछरें उड़ाते समय वह उसकी माँसे चपल्लोंसे पिटाताहै और पिछले दरवाजेसे भाग खड़ा होताहै। वहाँ श्यामबाबूने लतिकाको समझाया कि वह इस घटनाकी चर्चा किसीसे न करे क्योंकि बदनामी उसी की होगी और खजांची जैसे नेताजीके लिए वैसे काम एक दिनके नहीं। “आखिर लोकतन्त्रमें चुनकर आ जाना और मन्त्री बन आना, मजाक तो है नहीं। यह तो पिजरेमें कैद राजकुमारको मुक्त करनाहै जो सात समन्दर और सात पर्वतोंके पार आलीशान इमारतमें कैद है।” अपने अन्तिम वाक्यमें तो श्यामबाबू सारे शिष्टाचारका अतिक्रमण कर कहते हैं—“फिर लतिका तुम्हीं सोचो, चरित्र क्या होताहै!” और जब रूपाली को इसपर अविश्वसनीय एवं करुण आश्चर्य होताहै कि उसके पापा ऐसा कहतेहैं तो उसके पापा चरित्रहीनकी विडम्बनापूर्ण व्याख्या करतेहैं जिसमें ऐसे कामाचारी नहीं आते—“हां बेटी! चरित्रहीन वह है जो रिश्वत खाताहै, चोरबाजारी करताहै, मिलावटी सामान बेचताहै, झूठ बोलताहै, देशके साथ दगा करताहै”, इस पर रूपालीकी अपनी पापाके विरुद्ध विस्फोटक प्रतिक्रिया होतीहै और ‘शटअप’ कह उठतीहै और उसे अपनी मम्मीकी नाराजगी, भाईके बिना स्वयं अपनेमें अकेली सन्तान होनेका रहस्य समझमें आ जाताहै। बेटीकी ऐसी निर्मम प्रतिक्रियाके परिणामस्वरूप श्यामबाबूको खाँसोका मरणांतक दौरा पड़ताहै किन्तु पहली बार रूपाली पत्थर बनी रहतीहै और अपने पापाका कोई उपचार नहीं करती। यही रूपालीकी प्रधान औपन्यासिक उपयोगिता सामने आतीहै कि वह अपने पापाकी घिनौनी राजनीतिके दुष्प्रभावके कारण होने

वाली बेचैनीका विवेकपूर्ण एवं संवेदक मापमान बनकर उभरीहै। उसका तर्क-सम्मत मत है—“राजनीतिसे बढ़िया खेल और कुछ नहीं है। जब बड़ेसे बड़ा अफसर वैज्ञानिक और अधिकारी रिटायर होताहै, उसे बेकार समझ लिया जाताहै, राजनीति तभीसे शुरू होतीहै। राजनीतिमें आयुकी कोई सीमा नहीं है। ८०-९० साल के खूबसे देशको प्रगतिका पाठ पढ़ातेहैं। वे क्या जानें कि आजके युवक और युवतियोंकी माँगें क्या हैं? उनकी दशा क्या है? उन्हें जो शिक्षा दी जातीहै उसका मतलब क्या है? पढ़कर बेकार फिरेगा जो, वह आखिर करेगा क्या?” मोहनसिंह जैसे लोग जिन्होंने स्कूलका मुंह नहीं देखाथा, श्यामबाबू—जैसे लोगोंकी सहायतासे टिकटही नहीं पाते मन्त्रीभी बनते हैं। वस्तुतः राजनीतिने तलुए चाटनेवालोंका एक वर्ग ही स्थापित कर दियाहै। श्यामबाबू स्वीकारताहै—“तलुए चाट-चाटकर कितना गिरा देताहै आदमी अपने को। एक ओर गिरताहै, दूसरी तरफ दूसरोसे अपने तलुए चटवाताहै।”

राजनीति-ग्रस्त सम्पन्न राजनेताओंकी छायामें वर्तमान विपन्न मांडूके जनजीवनकी दुर्दशाका चित्रण विषमताको विचारोत्तेजक बना देताहै। गंदी सड़कें, कीचड़ भरे रास्ते, फूसकी छतोंवाली झोंपड़ियाँ, बीमारी के घर खण्डहरोंमें भरे हुए पानीकी दूर-दूरसे लाती नारियाँ किसे सोचनेपर मजबूर नहीं करेंगी? अपनी सचाईके क्षणोंमें बाजबहादुर श्यामबाबू यही कहकर रह जाताहै—“मेरा वश चले तो मैं सारे मांडूको उजाड़ दूँ! उन खण्डहरोंमें शाही जिन्दगीकी दुर्गन्ध भरीहै” (वस्तुतः वो उजाड़ ही सकताहै निर्माण तो कर नहीं सकता)। आगे श्याम बाबूने मांडूका लम्बा इतिहास सुनायाहै और निष्कर्ष रूपमें उस लुटेरे रसीले गयासुद्दीन खिलजी द्वारा मांडूको ‘सादियाबाद’ नाम दिये जानेको रेखांकित कियाहै जिसका अर्थ होताहै “मजे-मौजका शहर...आनंदनगर, सभी राजाओंने यहाँ आनन्द ही तो कियेहै। अब भी...“यही जहूनियत बनी हुईहै शासकोंकी। श्यामबाबूके अनुसार हिन्दुस्तान यही मांडूमें ही अंग्रेजोंको बेचा गयाथा...शाहजहां द्वारा रोशनाराके जन्मकी खुशीमें, शराबी मूडमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीके डॉ. सर टामसको यहाँके कुछ नगरों सूरत, भड़ौच, मछलीपट्टम और कलकत्ता... में खुलकर व्यापार करनेकी इजाजत देकर। इस तरह



मांडू स्वयंमें प्रतीकात्मक हों गया है : क्या आज भी हमारा प्यारा भारत विकनेसे बचा हुआ है ? अपार विदेशी कर्जा हमारी नीतियों एवं अस्मिताको प्रभावित किये बिना कैसे रह सकता है ? यह यथार्थ कितना भयानक है कि सदियोंसे भारत यहाँके शासकों और उनके दलालोंके लिए 'मोजमजे' का 'आनंदनगर' बना हुआ है और इस जहनियतमें इजाफा जारी है ।

मांडूमें प्रवेश करते समय भंगी दरवाजा पहले आता है और तब दुर्गमें प्रवेश कर सकते हैं । गाइड जगदीशके अनुसार 'भंगियों के बिना किसी शहर, गांव और देशका काम चला है ? रूपाली इस जातिमूचक व्याख्याका विरोध करती हुई भंगी दरवाजाके नीचे 'बनाम सरकारी दरवाजा' लिख देनेकी तजवीज रखती है । अन्तमें श्यामबाबू भंगी दरवाजाको नमस्कार करता है क्योंकि उसके बादही दिल्ली दरवाजासे गुजरा जा सकता है । 'मांडूमें प्रवेश करते समय दिल्ली दरवाजा बादमें आता है और जाते समय पहले—'यहाँभी प्रतीकात्मक सांकेतिकता स्पष्ट है और आधुनिक प्रासंगिकता थी । यह उल्लेखनीय है कि भंगी दरवाजा मांडूके विनिष्ट दरवाजेका ऐतिहासिक नाम है ।

लेखकीय टिप्पणी है—'इतिहास निर्मम होता है ।' अनेक पग-चिह्नोंको मिटाया जा सकता है, परन्तु इतिहास तो मनुष्यकी ही परछाई है । किससे फरियाद करेगा वह ? समय बदलता है, लोग बदलते हैं । काम करनेका रंग-ढंग बदलता है, मनुष्यको इन सबसे निरन्तर लड़ना पड़ता है । एक लम्बी लड़ाई है, कभी न खत्म होनेवाली लड़ाई । जिसे कभी गलत कहकर बदलाया, वही गलत-गला घोट देता है । इस पूरे बदलावमें सही क्या है, इसका न्याय किसी अदालतमें नहीं होता । X X एक अनवरत सिलसिला है वह और चलता जायेगा । इसी प्रकार 'भंगीदरवाजा' इतिहाससे लेकर वर्तमान राजनीति तकके प्रति हमारी समझको सूचित कर गहराता है और बेचैनी भी देता है, पर क्या उससे लड़ने की शक्ति भी ? इसकी कथा पाठकोंके मनमें, उनकी ग्रहणशील कल्पना-क्षमताके बलपर बनती है, जिससे रागात्मक प्रभाव क्षीण हो गया है । फिरभी, कड़वे यथार्थके अनुरूप इसकी प्रायोगिकता या एक्सडें नव्यता के अपने आकर्षणको नकारा नहीं जा सकता और उसकी अपनी सार्थकता है । □

'प्रकर'—अक्टूबर १२—३६

## सिन्धुपुत्र ?

लेखक : अमृतलाल मदान

समीक्षक : डॉ. तेजपाल चौधरी

भारत विभाजनकी त्रासदीको लेकर हिन्दीमें काफी साहित्य लिखा गया है, जिसमें साम्प्रदायिक मदान्धता और हिसावूत्तिके अनेक रूपोंसे हमारा साक्षात्कार होता है । परन्तु विस्थापित लोगोंके जीवन संघर्ष को स्वर देनेवाली रचनाएं कमही देखनेमें आयी हैं । अमृतलाल मदानका यह नवीनतम उपन्यास जीवनके इसी पहलूको रूपायित करता है ।

'सिन्धुपुत्र' स्वातन्त्र्योत्तर कालकी, विशेषकर छठे-सातवें दशककी, सामाजिक पृष्ठभूमिपर आधारित है, यह वह समय था, जब विभाजनकी विभीषिकाको ढोते हुए करोड़ों मनुष्य स्थितियोंसे जूझ रहे थे । उन लोगों के सामने ढेरों प्रश्न थे । नये लोगोंमें नयी जगह पांव जमानेका प्रश्न था, रोजी-रोटी तलाशनेका प्रश्न था, अपने अस्तित्वको पुनः आकार देनेका प्रश्न था, और अनेक प्रश्न थे, जो मानवकी जिजीविषासे जुड़े थे ।

'सिन्धुपुत्र' का कथानक अमर नामक एक विस्थापित युवकके आन्तरिक और बाह्य संसारके इर्दगिर्द घूमता है, जिसके जीवनमें कटुताएं ही कटुताएं हैं । देश के विभाजनकी रक्तरंजित स्मृतियां, 'रिफ्यूजी' सम्बोधन सहन करनेकी लाचारी, उच्च शिक्षाके बावजूद पोस्ट आफिसमें क्लर्की करनेकी बाध्यता, और पिताके अनियोजित परिवारमें टूटते-बिखरते सपनोंकी पीड़ा उन कटुताओंके कुछ रूप हैं ।

उपन्यासका फलक काफी व्यापक है और समाज और राजनीतिक अनेक पहलुओंको स्पष्ट करता है । वस्तुतः जातीयता, प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता, भारतीय लोकतन्त्रके वे चेहरे हैं, जिनपर मानवता, राष्ट्रीयता और धर्म निरपेक्षताके मुग़ाटे चढ़ाकर हम चुनावी राजनीतिक खेल खेलते रहे हैं । 'सिन्धुपुत्र' में नगरपालिकाके चुनावोंके माध्यमसे इन राजनीतिक हथकण्डोंसे हमारा साक्षात्कार होता है । यद्यपि 'सिन्धु-

१. प्रका. : कादम्बरी प्रकाशन, ५४५१, शिव मार्केट, नया चन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली-११०००७।

पृष्ठ : २३२; डिमा. ६१; मूल्य : ६५.०० रु.।



पुत्र' में ये चित्र कहीं कहीं अतिरंजित भी हो गये हैं। "गायकी" नहीं "गायकी" कटी पूंछ फेंककर दंगा भड़कानेका प्रयास ऐसीही घटना है।

हाँ, शिक्षाके क्षेत्रमें शोषणके जिस करुण रूपको अमृतलाल मदानने रेखांकित किया है, वह आज छठे-सातवें दशकसे अधिक विस्फोटक हो गया है। प्रत्येक छोटे-बड़े कस्बेमें घाघ राजनीतिज्ञ शिक्षाकी दुकानें खोले बैठे हैं, जहाँ कितनेही अमर नौकरी करते हैं और जहाँ कमसे कम वेतनमें ज्यादासे ज्यादा काम लेनेको 'प्रबन्ध' माना जाता है। इसीलिए विवेच्य उपन्यास का चेलाराम फीका पड़ जाता है।

प्रशिक्षण संस्थानमें युवकोकी बहस दक्षिणपंथी और वामपंथी चिन्तनके दो ध्रुवोंको स्वर देती है। यों, इन बहसोंमें प्रगतिवादी चिन्तन अधिक हावी रहा है, जो इतिहासकी उदात्तताको नकारता है और अतीतकी व्यवस्थामें आर्थिक शोषणके बीज तलाश करता है। (पृष्ठ ६३)। इस प्रयासमें उपन्यास भावुक आदर्शों का भी शिकार हो गया है। दिल्लीके रेलवे स्टेशनपर ख्वाजा साहब और उनके साथी पाकिस्तानी नागरिकों

के स्वागतके लिए उमड़ती विस्थापित नागरिकोंकी भीड़ एक स्पृहणीय किन्तु अयथार्थ कल्पना है।

उपन्यासका सबसे कमजोर पक्ष कथानककी सामाजिक धाराको प्रणय कथाकी दिशामें मोड़ देना है। अमरका दाढ़ी मूँछ लगाकर सरितासे मिलना या सुजानसिंहके आग्रहपर भग्न मन्दिरमें मूर्तिके फेरे लेना बिल्कुल फिल्मी हो गया है। बल्कि रातके सुनसान वातावरणमें उसका सरिताके साथ घर जाना, पिछले दरवाजेसे अन्दर पहुँचना और अकेली कोठरीमें उसके साथ रातें बिताना उपन्यासकी सुरुचिताको ठेस पहुँचाता है।

फिरभी उपन्यास गलित रुढ़ियोंको तोड़नेका प्रयास करता है, सबूतों और तर्कोंपर टिकी न्याय व्यवस्थाको चुनौती देता है, नैतिक मूल्योंको ताकपर रखकर समृद्धि और प्रतिष्ठा पानेवाले तत्त्वोंकी कलई खोलता है, साम्प्रदायिक सद्भावको प्रेरणा देता है और संघर्ष-पूर्ण विजिगीषाका उद्घोष करता है। और यही सोद्देश्य लेखनकी पहचान है। [१]

## कहानी

### बसका टिकट?

लेखक : गंगाधर गाडगिल

समीक्षक : सुरेन्द्र तिवारी

मराठीके ख्यातिप्राप्त रचनाकार गंगाधर गाडगिल जहाँ एक ओर अपनी कहानियों और उपन्यासोंके लिए चर्चित रहे हैं वहीं दूसरी ओर व्यंग्य-लेखनमें भी उनकी ख्याति अतुलनीय है। मराठीके हास्य-साहित्यके

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, १८ इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३।

पृष्ठ : ३८ + २१८; डिमा. ६१ ; मूल्य : ८०.०० रु.।

प्रवर्तक कोल्हटकरकी परम्पराको आगे बढ़ानेवाले गाडगिल अपने विविध-रंगी व्यंग्य-लेखनके कारण भारतीय व्यंग्यकारोंमें विशिष्ट स्थान बना चुके हैं। और ये रचनाएँ गाडगिलके व्यंग्य-साहित्यका प्रतिनिधित्व करती हैं।

पुस्तकमें सर्वप्रथम 'बण्डू कथाएँ' हैं। गाडगिलकी लिखी कहानियोंमें से अधिकांश कहानियाँ 'बण्डू कहानियाँ' रही हैं, अर्थात् इन कहानियोंका केन्द्रीय चरित्र 'बण्डू' रहा है। बण्डू एक साधारण व्यक्ति है जो एक कार्यालयमें बाबू है। वह सीधा-सादा, भोलाभाला पर उत्साही जीव है, हट्टा-कट्टा शरीर पाया है, उसे प्रायः ही दूसरे लोग ठग लेते हैं, पर इससे कभी वह हतोत्साहित

'प्रहर'—कात्तिक'२०४६—३७



या निराश नहीं होता। ऐसे एक चरित्रको लेकर गाड-गिलने अनेक कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें से पांच कहानियाँ इस पुस्तकमें उपलब्ध हैं। 'बसका टिकट', 'बण्डू और उसकी छतरियाँ' पारिवारिक सुखभरा एक दिन 'बण्डू एन्जाय करता है', और 'स्नेहलताको चोरोने चकमा दिया'। ये पांचों कहानियाँ अलग-अलग ढंगसे मध्यवर्गीय जीवन और संस्कृतिकी त्रुटियों और दोषों का अंकन करती हैं। परन्तु व्यंग्य कथाएं होते हुए भी ये रचनाएं घटनाओं और चरित्रोंकी मार्मिक गहराइयों और संवेदनशक्ति को भी समेटती चलती हैं। जैसे 'बण्डू और उसकी छतरियाँ' में एक प्रसंग है कि बण्डू अपना छाता निकालनेके विचारसे परदातीपर चढ़ता है और वहां पड़ी पुरानी चीजोंको देखकर उसे लगता है कि अभी तो इन सबका पुनः उपयोग किया जा सकता है। 'रनिंग' के लिए खरीदे गये जूते, चैस्ट-एक्सपांड, टेनिस रैकेट, लेजम, क्रिकेटका बल्ला, कालेजकी पाठ्य-पुस्तकें आदि सारी चीजें उसे अपने अविवाहित जीवनकी ओर खींचती हैं और एक टीससे भर उठता है वह। विवाहोपरांत किस प्रकार सब कुछ काठ कबाड़ बनकर रह गया है।

इस प्रकारकी सामान्य स्थितियोंके बीच बण्डूका जीवन एक पूरे वर्गका प्रतिनिधित्व करता है। 'बसका टिकट' में एक दिन अनजानेमें वह टिकट नहीं ले पाता और अचानक ही इंस्पेक्टर द्वारा पकड़े जानेपर उसे जुर्माना भरना पड़ता है साथही हास्यका पात्र भी बनना पड़ता है। दूसरी बार वह बसमें बैठते ही सौ रुपयेका एक नोट कंडक्टरको देता है, जिसे कंडक्टर अपनी जेब में रख लेता है और उससे पुनः टिकटके पैसे मांगता है। बण्डू, सौ रुपयेकी बात करता है तो कंडक्टर उसकी कालर पकड़ लेता है। यात्रीभी हंसते हैं और कहते हैं—'कहता है सौ का नोट दिया।' बसका टिकट खरीदनेके लिए भला कोई सौ का नोट देता है। कंडक्टर बण्डूको पुलिसके हवाले करनेकी बात करता है तो एक यात्री उसे बससे नीचे उतर जानेको कहता है। बण्डू लाचार सा नीचे उतर आता है। और जब इन स्थितियोंसे घबड़ाया वह अपने कार्यालयमें पहुंचता है तो गुस्सेमें अपने माथेपर ही पेपरबैट मार लेता है। शर्टकी कालर कसकर अपना गला घोटनेकी कोशिश करता है, और फिर उठकर चाय पीने चल देता है। क्योंकि लेखक 'प्रकर'—अक्टूबर '६२—३८

मानता है कि एक मामूली-सा क्लक गुस्सा होनेपर इससे ज्यादा कुछ नहीं कर सकता।

इन बण्डू कहानियोंके बारेमें इस पुस्तककी भूमिका-लेखिका सुधा जोशी कहती हैं कि "बण्डू कहानियाँ रुढ़ार्थमें पारिवारिक हास्य-प्रधान कहानियाँ नहीं हैं, इसको कहानियोंकी उन्मुक्त-विपुल अनुभव क्षमताओं के सहारे भी समझा जा सकता है।" तथा "इन कहानियोंकी एक विशेषता उच्छृंखल विक्षिप्त और नट-खट ढंगके विनोदमें निहित है। इस विनोदके अनेक रूप 'बण्डू कहानियोंमें देखे जा सकते हैं।' (पृष्ठ-पच्चीस)।

बण्डू कहानियोंके अतिरिक्त दो अन्य हास्य-कहानियाँ हैं, एक 'उषा ताई जाती है फिल्म देखने', और, दो, 'मेरी खाहमखाही'। पहली कहानीमें एक गृहिणी फिल्म देखने जाना चाहती है किन्तु घरके कामकाज और अन्य परिवारजनोंके झंझटोंके कारण एक छोटी-सी चाहत पूरी करनेमें भी उसे कितनी कठिनाईयोंका सामना करना पड़ता है इसका यथार्थ चित्रण है। 'मेरी खाहमखाही' में एक ऐसे व्यक्तिका चित्रण है जो अपने एक मित्रकी सहायता करता रहता है किन्तु उसकी प्रत्येक सहायता मित्रके लिए और अधिक कठिनाईका कारण बन जाती है। वास्तवमें पारिवारिक जीवनमें छोटी-छोटी बातें भी कितना अर्थ रखती हैं, इसको यह कहानी दर्शाती है।

हास्य और व्यंग्य कहानियोंके अतिरिक्त इस पुस्तकमें अन्य विधाओंकी व्यंग्य-रचनाएं भी संकलित हैं, जैसे यात्रा वर्णन, हास्य लेख, आर्थिक नवल कथाएं आदि। 'मेरी अमरीकी साइकिल' और 'रोमांचक रोम' दो यात्रा वर्णन हैं। किन्तु इन्हें हास्य कहानियों की श्रेणीमें ही रखा जा सकता था, क्योंकि इनमें कथा के सारे तत्त्व विद्यमान हैं। व्यंग्यकी पैनी धार इन रचनाओंमें है। अमरीकामें सड़कपर साइकिलपर सवार होनेवाले एक युवकको एक वृद्धा समझाती है, जब कभी मोलहसे बाईस सालका युवा अमरीकी आपकी ओर मोटर उड़ाता आता दिखायी दे तब तुरन्त रुकें और किनारेके किसी पेड़पर चढ़ जायें। संभव है कि तब कहीं आप निभ जायें।" तब युवक कहता है, "मैं वैसेभी पेड़पर चढ़ना नहीं जानता, फिर साइकिल के साथ उसपर कैसे चढ़ पाऊंगा।"

इस प्रकारकी अनेक रोचक स्थितियोंका वर्णन



इस रचनामें है। अमरीकामें साइकिलपर सवारी करना कितना हास्यास्पद माना जाता है, इसका रोचक वर्णन यह रचना करती है। 'रोमांचक रोम' में कथात्मकताका अभाव अवश्य है, किन्तु उत्सुकता और रोचकता किसी कहानीकी भाँति ही बनी रहती है। इसमें चरित्रोंका प्रतीकात्मक वर्णन बहुत अच्छा हुआ है, जैसे, हाईकोर्टके जजकी भाँति रोबीली चाल चलनेवाला बैरा 'अष्टमीके चन्द्रके आकारवाला गंजड़ मार्गदर्शक' आदि।

गाडगिलने सामान्य कहानियोंके अतिरिक्त कुछ 'आर्थिक नवलकथाएं' भी लिखी हैं, जिनमें से पाँच कथाओंको इस पुस्तकमें भी संकलित किया गया है। वास्तवमें गाडगिलने विनोदके सहारे जहाँ सामाजिक और राजनीतिक असंगतियोंपर, दोषोंपर उँगली रखी है वहीं आर्थिक विसंगतियोंकी भी उपेक्षा नहीं की है। और इसके लिए उन्होंने एक नयी विधा 'आर्थिक नवलकथा' की ही सृष्टि कर डाली। इन कहानियोंमें सरकारीकरणकी हवस, सार्वजनिक स्वामित्वमें चल रहे उद्योगोंकी दुर्दशा, कल्याणकारी राज्यके नामपर गर्वीली नौकरशाही, राजनीतिक भाई-भतीजावाद और सैद्धांतिक गुलामी जैसी आर्थिकदुरवस्थाके मूल कारणों और लक्षणोंके पाखण्ड-खंडनका चित्रण हुआ है। इस प्रकार की रचनाओंमें गाडगिलकी शैली उपहास-परिहासात्मक अधिक है, कलात्मक कम।

पुस्तकके अन्तमें गाडगिलका एक भाषण 'विनोद और समीक्षा = एक महीन चुम्बन' और परिशिष्टमें गाडगिलके व्यक्तित्व और कृतित्वपर धर्मवीर भारती का लेख 'एक समकालीनका स्वागत' पठनीय है। अपने भाषणमें साहित्य, समाज और राजनीतिपर चुटकी लेते में गाडगिल पीछे नहीं रहे हैं। कहते हैं, "इस समाजकी चालीस प्रतिशत जनता खाली पेट रहकर आक्रोश करती है कि वह दरिद्र-रेखाके नीचे है। सरकार करोड़ों रुपये खर्चकर इसे दरिद्र-रेखाके ऊपर उठानेका प्रयत्न निरन्तर करती है पर माईकी लाल जनता चूँ तक नहीं करती, ऊपर उठनेकी बात तो बहुत दूर रही।" (पृ. २०३)। यह बड़ी खुशी और संतोषकी बात है कि जिनपर अन्याय हुआ है उनपर अनुदानों और रियायतों की खैरात करनेके लिए सरकार सदा कटिबद्ध रहती है (पृ. २०४)। "गम्भीर साहित्यके सर्जक अभिनन्दनके पात्र हैं, वे काफी आगे बढ़ चुके हैं। आजकलकी दस-

बीस पंक्तियोंवाली कवितामें समाजकी पीठपर कमसे कम दस-बीस कोड़े तो लगाये जातेही हैं।" (पृ. २०५)। आजकलके सारे सम्मेलन अखिल भारतीय स्तरके होते हैं। सौ-पचास ग्रामवासियोंका अपने गांवमें आयोजित सम्मेलन भी अखिल भारतीय होता है।" (पृ. २०६)।

वास्तवमें गाडगिलने साहित्य और जीवनके प्रत्येक क्षेत्रसे 'विनोद' को चुना है और सही चरित्रों और स्थितियोंके माध्यमसे उसे विशिष्ट शैलीमें अपनी रचनाओंमें प्रस्तुत किया है, और यही उनकी उपलब्धि है।

## हारा हुआ आदमी?

कहानीकार : रूपसिंह चंदेल

समीक्षक : डॉ. यशपाल बंद

'हारा हुआ आदमी' विशिष्ट है क्योंकि विजयी आदमीकी विजयपर कई बार प्रश्न चिह्न लग जाता है—कारण, आज मूल्यहीनताकी स्थितिमें जुगाड़से भी आदमी जीत जाता है, सफलतापर सफलता पाता चला जाता है। ईमानदारी और परिश्रम मुंह बाए खड़े दिखायी देते हैं। यह घोर निराश और हताश करने वाली स्थिति है इसलिए हारा हुआ आदमी यदि परिश्रमरत है—तो वह हमारी प्रशंसाका पात्र है, भलेही इस कोरी प्रशंसासे न तो उसका पेट भरता हो और न दिल, क्योंकि यह प्रशंसाभी दबे स्वरमें आती है। मेरी दृष्टिमें रूपसिंह चंदेलका प्रस्तुत कहानी संग्रह 'हारा हुआ आदमी' इस दृष्टिसे उपलब्धि है कि इस संग्रहकी लगभग सभी कहानियाँ इस लेबिलके अन्तर्गत आ जाती हैं और लेखकीय दृष्टिको उजागर करते हुए जीवनके परिवेशगत यथार्थको सामने लाती हैं।

'मोह' कहानीका शीर्षक और कहानीका अन्त अवश्य इस कहानीको संवेदनशील कहानीका दर्जा दे देता है और भीमाका चरित्रवान् होना, बहादुर होना—दूसरी ओर सामाजिक बुराइयोंके लिए तथाकथित समाज सुधारक बनाम ठेकेदार नग्न रूपमें सामने आ

१. प्रका. : पारुल प्रकाशन, ८८६/५८, त्रिनगर, दिल्ली-३५। पृष्ठ : ११८; का. ६०; मूल्य : ३५.०० रु.।



जाते हैं। गांव हो या शहर ऊंच-नीचकी भावनाके कारण आदमी-आदमीमें अन्तर हो जाता है और बुढ़ापेमें भीमाका बेटा-बहू क्योंकर अपने इस बहुत अच्छे आदर्श पिता-श्वसुरकी अवहेलना-उपेक्षा ही नहीं, तिरस्कार भी करते हैं? ऐसे प्रश्नोंका उत्तर कहानीके शब्दोंमें नहीं मिलता—ऐसा प्रतीत होता है कि चंदेल पाठकको इस विचारकी ओर प्रेरित करना चाहते हैं और यही कहानीकी सफलता मानी जा सकती है।

‘सुनो पुनिया’ में जहां एक ओर एक बार फिर सम्बन्धोंमें अनुभवोंसे सतर्कताकी भावनाकी ओर खींचा गया है—और यहाँ भी त्रिकोणका रहस्य और गलतफहमी आदमीकी जी-जानके लिए आफत बन जाती है। ये गलतफहमियां दूर क्यों नहीं हो पातीं? संभवतः इनका जीवनमें दखल बाँछनीय है पर जिनको यातना सहनी पड़ती है, उन्हींके लिए पाठकभी संवेदनशील ही नहीं सहायक भी हो जाये—ऐसा कहानीकार कहानीके माध्यमसे कह पाता है।

‘अब और नहीं’ तथा ‘आदेश’—शोषक-शोषितकी समस्याको एक नये कोणसे देखनेका प्रयास मात्र है पर कोई नया दृष्टिकोण नहीं, हां रूपसिंह चन्देल इस कहानीमें अपना अलग पहचान बरकरार रख पाते हैं।

‘सहयात्री’ और ‘उसका स्वप्न’, ‘आखिर, कब तक’ ऐसी कहानियां हैं जहां जिसे लज्जित होना चाहिये वह लज्जित नहीं और जिसे स्वाभिमान होना चाहिये, वह स्वाभिमान ही नहीं—यह एक गुंजल है और

यही इन कहानियोंकी नवीनता है।

‘हारा हुआ आदमी’ जैसाकि प्रारम्भमें कहना स्वाभाविक लगा—अपने आपमें एक साधारण-सी कहानी है लेकिन इस संग्रहकी शेष कहानियोंमें अपने शीर्षकसे जान डाल देती है और इस संग्रहकी यदि फेंटेसी की सहायतासे उपन्यास माननेका जोखिम पाला जाये तो इस कहानीकी उपयुक्तता बढ़ जाती है। परन्तु मैं ‘कुट्टी’ कहानीको दो-चार अन्य कहानियोंके साथ इस संग्रहकी सशक्त रचना माननेको तत्पर हूँ। कहानी का आरम्भ बच्चोंके भोलेपन और आत्मिक शुद्धतासे होता है। मीनू एक ऐसीही छोटी बच्ची है। छोटे-भोले बच्चे अपने निष्छल प्यारसे बाँध लेते हैं और इस बड़ी दुनियांमें जहां छल-कपट, बहानेबाजी और महत्वाकांक्षाओंकी दौड़में आदमी अन्धाधुन्ध दौड़े चले जा रहा है, वहां जब ऐसे बच्चे सदा-सदाके लिए ‘कुट्टी’ कर चले जाते हैं तो शेष रह जाता है—दुःख, दुःखकी असह्य अनुभूति जिसे अमूर्त्तकी संज्ञा देकर चन्देलने कहानी रचनेका सही सार्थक काम किया है। निःसन्देह आदर्श और यथार्थके बीच भावपूर्ण सम्बन्धों की कहानियोंमें रूपसिंह चन्देलकी कहानी ‘कुट्टी’का स्थान सुरक्षित रहेगा।

कहानीकारकी भाषामें सहजता तो है—कहीं-कहीं व्यक्ति चित्र, बाहरी और भीतरी, अत्यन्त प्रभावित करते हैं। □

## हिन्दी व्यंग्य : कुछ तेवर-२

[गतांकसे आगे]

—डॉ. मानुदेव शुक्ल

तलाश कालिदासके पेड़की?

व्यंग्यकार : शिवसिंह सुयोगी

आलोच्य पुस्तकमें ‘सुयोगी’के तेईस निबंध संकलित हैं। सभी निबंध श्रेष्ठ हैं। किन्तु, हमको भूमिका के रूपमें सुयोगी द्वारा व्यंग्यपर व्यक्त विचार और भी अधिक महत्त्वपूर्ण लगें हैं। व्यंग्यपर सुयोगीका विचार

‘प्रकर’—अक्तूबर’६२—४०

है—“मेरे विनम्र मतमें उसका काम मनुष्यके अन्दर सोयी मनुष्यताको उद्घाटित करना है।” साधारण आदमीकी मानसिकतापर पाखण्डों तथा अन्ध-विश्वासोंके झाड़-झंखाड़ जमा हो रहे हैं। “व्यंग्यका काम इन झाड़-झंखाड़ोंको झाड़कर मनुष्यको उसकी अपनी अप्रतिहत मौलिक और तेजस्वी अस्मिताके दर्शन कराना है। अतएव उसका स्वरूप व्यापक है, वह मात्र



विसंगतियोंके उद्घाटन या तात्कालिक व्यवस्थाके परखचे उड़ाने तक सीमित नहीं है।...व्यंग्यको तबतक मात्र विसंगतियों, कुंठाओंके उद्घाटन या ठिठोलीके तीरोसे सजाकर जीवनके कुरुक्षेत्रमें खड़ा नहीं किया जा सकता जबतक उसे मनुष्यताके दर्शन नहीं हो जाते और इस मनुष्यताके द्वारा वह जीवन-संघर्षके कारणोंको समझ नहीं लेता। वस्तुतः व्यंग्य क्रान्तिदर्शी और शाश्वत मूल्योंकी वह कसौटी है, दृष्टि है जो सैकड़ों वर्षोंके शोषण-दर्शन और कुमंस्कारोंमें बंधे मनुष्यको मुक्त करती है, गलत जीवन-दर्शनके कारण सोच और आचारमें पैदा हुई उलझनको दूर करती है।" आगे सुयोगीते स्पष्ट किया है कि "मनुष्यता वाद नहीं है। वादकी लाठीसे वह घायल होती है।" सुयोगीने व्यंग्य की आत्माके दर्शन किये हैं—“व्यंग्य सातत्य रूपमें सामग्रीमें अन्तर्भूत रहना चाहिये। उस अन्तर्भूत सातत्य व्यंग्यको उभारनाही शैलीका एक अंग है, वह अपने आपमें व्यंग्य नहीं है।”

सुयोगीने समकालीन विद्रूपोंके स्वरूपोंपर अपनी लेखनी चलायी है। आजके यथार्थको देखते हुए लेखकने गीताकी आदर्शात्मकताको संशोधित करनेकी आवश्यकता अनुभव की है। नये सत्यके दर्शन के लिए कृष्ण अर्जुनका मुंह देखते हैं। (जब कृष्णने गीतामें संशोधन किया)। आज स्थिति यह है कि कुर्सी पर पत्थर बैठ गया तो उसपर सिन्दूर पोतकर आराध्य बना देनेका काम सरकारके सूचना विभागका एकमात्र काम है। (जिस दिन मंत्रीजी कुछ नहीं करते) एक और नेताजी जनताकी स्तुतिको गाये बिना पानी नहीं पीते तो दूसरी ओर उनके गुण्डे लट्ठ द्वारा प्रजातन्त्रकी ढीली चौखटको दुरुस्त करते रहते हैं (जय जनता जनार्दनम्... जय), साहित्यको भैंसके समक्ष तुच्छ माननेवाले 'साहित्य प्रेमी' मन्त्रीजी (कविता बड़ी कि भैंस), अपने-अपने क्षेत्रोंमें लूटके लिए प्रतिदिन निकलनेवाले 'सरकारी आदमी' (दो उल्लुओंकी बातचीत), सदनसे बहिर्गमन में विशेषज्ञ देशसेवक विपक्षी दलके सदस्य तथा आंकड़े पकानेवाले मन्त्री (कवियोंकी मर्दुमशुमारी), कुर्सी भक्त बिकाऊ नेता (कुर्सीके लिए, कुर्सीके द्वारा, कुर्सीकी सेवा), एक दूसरेकी डाल काटनेवाले समझदार (तलाश कालिदासवाले पेड़की) आदिपर सुयोगीकी लेखनीने प्रहार किये हैं। सुयोगीजी, हमारे देशमें वन साफ हो गये हैं, पेड़ कहां मिलेगा? आश्चर्य नहीं कि

भावी पीढ़ी आश्चर्य करे कि पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए रामको वन कहां मिला? लेकिन व्यंग्य-कारकी हिमाकतको कौन टोके जो कालिदासवाले पेड़ को खोजनेपर तुला बैठा है। सुयोगीने तो अपने ढंगसे तलाश भी पूरी की है।

सुयोगीने अपने खास तेवरमें समकालीन परिस्थितियों तथा आम आदमियोंके प्रश्नोंको उठाया है जिनमें पीड़ा और सहानुभूतिभी विद्यमान है तथा आक्रोशमरे परशु-प्रहारभी हैं। सुयोगीकी अभिव्यक्ति के कुछ रूप प्रस्तुत हैं। इनसे उनके लेखनके अनुमान किये जा सकते हैं—

“सहायता आदमीको नहीं, वोट-कबाड़ शक्ति को मिलती है।”

“सत्ता सुभोगना है प्यारे तो भ्रान्तिमें जियो और भ्रान्ति फैलाते रहो। यह उसी प्रकार सत्य है जिस प्रकार राम-नाम सत्य है।”

“देशके सामने कितनी बड़ी-बड़ी समस्याएं हैं—

राम जन्मभूमि विवाद, चेम्बर ऑफ कामर्सकी बैठक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोषसे कर्ज, अखबारी कागजकी कीमत में बढ़ोतरी, उपचुनाव... और आप साधारण आदमी को लिये बैठे हैं देशकी समस्याएं बड़ी हैं कि आम आदमीकी।”

“उधर मैंने देखा हाथसे खींचे जातेवाला रिकशा और पसीनेमें लथपथ नर-कंकाल, जिसकी आँखें अन्धरे कोटरोंसे झांक रही थीं वह ऐसे हाँफ रहा था जैसे कुत्ता हाँफता है। उसके पैरोंकी तलीसे गरम-भरम पिघला हुआ उम्बर चिपका था। आसमान और उम्बरकी सड़ककी लपटोंके बीच उसकी आत्मा भूखका धुआं उगल रही थी।”

सुयोगीजीके पास अनुभूति है, शैली-वैविध्य है, और सामाजिक-सरोकारका खरापन है—एक उत्तम व्यंग्य लेखकके ये ही प्रमुख गुण हुआ करते हैं। आज हमारे देशमें जहाँ मनुष्य केवल वोटर रह गया है और सारे मूल्य 'वोटर-बैंक' की तुलना में तुच्छ बना दिये गये हैं वहाँ 'ताजतंत्र'के पुजारियोंपर व्यंग्यके कोई भलेही प्रभाव न डालें किन्तु ताजनेताओं के अमृत-कुण्ड 'वोटर बैंक' को सुखानेका अन्देशा पैदा कर कुछ हलचल तो मचाही सकते हैं। सुयोगी सफ़दर हाशमीकी तरह मारे तथा परसाईकी तरह पीटे नहीं जायेंगे क्योंकि उनके व्यंग्य व्यंजनासे आवृत्त हैं तथा



संस्कारहीन राजनीतिके गुणोंकी समझमें कमहीआयेंगे। कलात्मक व्यंग्य केवल शर्मदारों के लिए होतेहैं। यह उसकी सीमा हुआ करतीहै। सुयोगीके व्यंग्योंमें एक भी हलका नहीं है, सभी सुसंस्कृत जनके लिए लिखे गयेहैं। यह उनकी विशेषता भी है और सीमा भी।

## अस्मिताका चन्दन?

### डॉ. सुदर्शन मजीठिया

'अस्मिताका चन्दन' में डॉ. सुदर्शन मजीठियाके इकतीस व्यंग्य-लेख तथा व्यंग्य-कथाएं संकलित हैं। संकलित रचनाओंमें छः डॉ. मजीठियाकी पुस्तक 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं'में संकलित थीं। ये छः रचनाएं हैं—आदमी बनाम बन्दर, सटिफिकेट फाड़ो आन्दोलन, भारतीय संस्कृतिमें जेलोंका महत्त्व, शोर प्रधान संस्कृति, मुख्यमन्त्रीका डंडा, एक सालमें एक सालकी छुट्टी तथा अमृतपुत्र। 'अमृतपुत्र'का शीर्षक पहले कितने शामियानोंमें कितनी बार था। 'अमृतपुत्र'में भ्रष्टाचार आदिके अनश्वर होनेकी सूचना मिलतीहै। भ्रष्टाचार आदिकी जड़ें हमारे अपने स्वार्थपूर्ण व्यवहारमें होनेसे अनश्वर होतीहैं, इस तथ्यकी व्यंजना इस शीर्षक द्वारा होतीहै। 'कितने शामियानोंमें कितनी बार'में टोपी बदल भ्रष्ट राजनेताओंपर भी व्यंग्य है और उससे भी बड़ा व्यंग्य है उस स्थितिपर जिसमें अलग-अलग खेमों या दलोंमें घुसे राजनेताओंके समान आचरण क्षलकतेहैं क्योंकि अपने स्वार्थकी पूर्तिमें सब कुछ करनेकी नीतिमें सब समान हैं। पिछले डेढ़-दो दशकोंमें मूल्यहीन राजनेताओंका वर्चस्व हुआहै तथा उससे उत्पन्न स्थितिपर 'कितने शामियानोंमें' शीर्षक अधिक सटीक बैठताहै। सत्ता पक्षका आचरण—चाहे किसीभी दलके हाथमें सत्ता हो—एक-सा होताहै तो विरोधी दल भी—चाहे कोई दल हो—समान आचरण करताहै। खोखले नारे उछालने तथा हंगामा खड़ा करनेकी विशेषज्ञतामें सभी दल एकसे दिखायी देतेहैं। शामियाना कोई हो उसमें घुसे व्यक्तियोंके चरित्र एक-से मिलतेहैं। ऐसी स्थितिमें पहलेका शीर्षक, हमारे विचारमें, अधिक तीखा तथा हमारे 'महान् लोकतंत्र'के चरित्रका उद्घाटक होनेसे अधिक राष्ट्रीय है।

संकलनके नये लेखोंमें 'एक नेताका अवतार' तथा 'खुदाबख्श स्वामी सदाचारी' सर्वाधिक प्रभावशाली हैं।

'प्रकर'—अक्टूबर '६२ / ४२

दोनों व्यंग्य-कथाएं हैं। अक्टूबर १९८५ के 'प्रकर' में डॉ. मजीठियाकी पुस्तक 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं' में हमने प्रकट कियाथा—“हमारे विचारमें 'मजीठिया को व्यंग्य-कथाओंमें पूर्ण सफलता मिल सकतीहै। यह उनकी निजी शैलीके विकासमें भी सहायक हो सकतीहै।” उपर्युक्त दोनों व्यंग्य-कथाओं, 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं' की व्यंग्य कथाओं तथा आलोच्य संकलनकी व्यंग्य कथाओं 'ताशके बादशाह' तथा 'भूसाखोर अफसर' को देखनेके पश्चात् हम दृढ़ताके साथ अपनी बातको दुहरानेकी स्थितिमें हैं। मजीठिया एक सशक्त कहानीकारके गुण इन कथाओं में प्रदर्शित कर सकेहैं।

संकलनके लेखोंके विषयभी विविध हैं तथा शैलीमें भी वैविध्य है। विषय राष्ट्र तथा मानवमात्रके प्रश्नोंसे जुड़ेहैं। तथा इनमें आक्रोश, चिन्ता तथा अन्तर्निहित पीड़ा विद्यमान हैं। मानवकी अस्मिताकी रक्षाही इनकी केन्द्रीय वस्तु है। इसलिए पुस्तकका शीर्षक बहुत सार्थक है। शैलियोंका वैविध्यभी उल्लेखनीय है। 'देशका स्वास्थ्य', 'नई राष्ट्रभाषा हिमलिश' तथा 'भूखा कौन पूरी तरह तथा 'खुदाबख्श स्वामी सदाचारी', 'ताशके बादशाह' आदि तीन-चार लेख आंशिक रूपसे वातांताप प्रधान हैं। 'असफलताकी सफलता' साक्षात्कार शैलीमें रचा गयाहै। व्यंग्य-कथाओंपर ऊपर लिखाही जा चुका है। रचनाओंसे हम दो-तीन उद्धरण देना चाहतेहैं जिनमें मजीठियाके विचार तथा अंशतः उनकी शैलीके कुछ परिचय मिलतेहैं—

“मन्दिर मस्जिदको तो आदमीने बनायाहै पर आदमीको तो खुदाने बनायाहै न ! मन्दिर-मस्जिद टूटेंगे तो इन्सान पुनः उसकी रचना कर लेगा पर इन्सानही मर गयातो उसे पुनः कौन जीवित कर सकेगा ? मस्जिद तो खुदाके नामसे होतीहै फिर बाबरी नाम कहाँसे चल निकला ?” (हिन्दू मुस्लिम खाई खाई)

इन झगड़ोंको कौन खड़ा करताहै ? मजीठिया भारतकी समस्याओंके मूलपर उंगली रख देतेहैं—“दंगों का समीकरण नेता जानताहै। दंगोंके साथ एकता समितियोंके समीकरणका समीकरण भी वह जानताहै। कौमी दंगे करवानेवाला नेताही एकता समितियोंका नेता बनताहै” तथा इन दंगोंमें “मरनेवाला एक अद्वितीय इन्सान होताहै।” (दोनों उद्धरण 'हिन्दू मुस्लिम खाई खाई'से)। वास्तवमें कुर्सी पकड़नेके एकसूत्रीय कार्यक्रममें



नेता विद्रोहके बीज बोते हैं—कभी भाषाका, कभी धर्म-स्थानका, कभी नदी-जलका तो कभी आरक्षणका विवाद खड़ा करते हैं। विवाद न रहें तो ये बेचारे नेता कहाँ जायें ? ये नेता न हों तो देशकी आजादी और लोक-तंत्र किस कामके ?

अन्य चिन्ताके विषय हैं जो हमारे देशके अस्तित्व पर संकट बनकर छाये हैं : छुट्टी-प्रेम, अनावश्यक शोरगुल की प्रवृत्ति (हंगामाप्रधान लोकतन्त्र जिसका परिणाम है), अंग्रेजीमें लिखड़ी राष्ट्रभाषा, डिग्री दिलानेवाले शिक्षाके कारखाने आदि। सभी विषयोंपर सुदर्शन मजीठियाने बेबाकीसे विचार व्यक्त किये हैं। उनके सोद्देश्य तथा प्रभावशाली लेखको सटीक मुहावरोंने सजाया है—“नारियलके असली साइजका पता उसके रेशे निकाल देनेके बादही लगता है” आदि। हम डॉ. मजीठियासे आग्रह करेंगे कि वे व्यंग्य-कथाओंके अधिक लेखनमें संलग्न हों। यह उनकी अधिक पुष्ट लेखन-भूमि भी है तथा हिन्दीमें इसकी अधिक आवश्यकता भी है।

### खूँटीपर टंगी आत्मा<sup>३</sup> रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

‘खूँटीपर टंगी आत्मा’ में हिमांशुके बीस लेख संकलित हैं। इनमें एकका भी नाम इस शीर्षकके अनुसार नहीं है। संभवतः लेखकका आशय यही है कि आज समाजमें स्थिति यह बन गयी है कि व्यक्ति आत्माको कर्माजके समान अलगकर खूँटीपर रखकर बाहर निकलते हैं। जो व्यक्ति ऐसे हैं उनपर हिमांशुने प्रहार करने के संकल्पकी भी प्रकारान्तरसे सूचना दी है। तथापि, अधिकतर चेष्टा ऐसी नहीं दिखायी देती है। प्रायः सभी लेखोंमें विनोदके स्वर प्रमुख है; कुछमें हलके व्यंग्य हैं जिनको विनोदकी चाशनीमें लपेटा गया है। ये ‘शूगर कोटेड’ गोलियाँ मर्जोंके इलाजके बजाय स्वादके लिए ही हैं। इनमें अधिकसे अधिक विनोदभरी चिकोटियाँ भर है, प्रहार भूले-भटके शायद ही कहीं मिले। किन्तु, लेख रोचकभी हैं तथा लेखकमें एक उत्तम व्यंग्य-लेखक की संभावनाओंके संकेत भी देते हैं।

पुस्तककी भूमिका शंकर पुणतविकरने लिखी है। भूमिकामें अनेक महत्वपूर्ण तथ्योंको विचारार्थ प्रस्तुत किया है। व्यंग्य चरमोत्कर्षपर पहुँचकर निरन्तर अधो-गतिको प्राप्त हो रहा है। ऐसा इसलिए हुआ है कि “वह

साहित्य कम अक्सर अधिक बनता चला गया, वह युग प्रवाहमें कम दिनदिन पतंगमें अधिक जुड़ता गया, वह संवेदनात्मक ध्वनि कम प्रतिक्रियात्मक आक्रोश अधिक होचला। व्यंग्य स्थापित और लोकप्रिय हुआ अपनी पैनी धार अथवा विचारात्मक नुकीलेपनसे और उसीको व्यंग्य क्रमशः अखबारी लेखनके कारण खोता चला गया।” “इसीलिए आज व्यंग्यके दो स्पष्ट वर्ग हैं—एक अखबारी और दूसरा गैर-अखबारी।” हिमांशु के व्यंग्यपर पुणतविकरजीने विचार करते हुए, अनेक लेखोंमें कमजोर व्यंग्य बताते हुए भी उनको चालू व्यंग्य से दूर बताया है। उनके लेखोंमें यह गुण हमें भी दिखायी दिया है तथा हम पुणतविकरजीके मतसे सहमति व्यक्त करनेमें हंसीका अनुभव कर रहे हैं।

हिमांशुके पास व्यंजनापूर्ण तथा प्रभावशाली भाषा है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—“फाइल एक ऐसा कब्रिस्तान है जहाँ तरह-तरहकी जाँच रिपोर्ट, सदा-चारियोंके कच्चे-चिट्ठे, भण्डाफोड़ करनेवाले निष्कलंक कारनामे अंतिम सांस लेते हैं।”

“आम आदमी नेता नहीं होता वरन् भीड़ होता है।”

“कुत्ता पाये तो सदा मन खाये नहीं तो दिया ही चाटकर रह जाये।”

हिमांशु व्यंग्यकी आत्माको समझते हैं। ‘अपनी बात’ में उन्होंने स्पष्ट किया है—“बीभत्सकी नुमायश लगाना व्यंग्य नहीं। व्यंग्य हमारे हृदयमें करुणा जगाता है, हंसीभी जगाता है। लेकिन इस हंसीमें उन्मुक्त खिलखिलाहट नहीं वरन् दबी-दबी-सी हूक है। एक अच्छे व्यंग्यके मूलमें कहीं-न-कहीं करुणा निहित है। ऐसी करुणा जो शोषकवृत्तिके विरुद्ध क्रोधका पोषण करती है।” हमें विश्वास है कि हिमांशु अपने लेखनको इस दिशामें अग्रसर करेंगे।

× × ×

हमने यहाँपर हिन्दीके छः व्यंग्य-लेखकोंकी नव्य-प्रकाशित पुस्तकोंपर विचार किये हैं। इन व्यंग्य-रचनाओंके विवेचन-विश्लेषणसे कुछ मान्य तथ्य अधिक पुष्ट हुए हैं—

१. प्रभावशाली व्यंग्य-रचना किसी सुदृढ़ तथा व्यापक उद्देश्यकी नींवपर ही खड़ी हो सकती है।

२. उत्तम व्यंग्य-रचनामें व्यक्तिगत शिकायतके बजाय सामाजिक-आक्रोशकी हुंकार हुआ करती है,

‘प्रकर’—कालिका २०४६—४३



२. अति गंभीर वैचारिकता, दार्शनिक विवेचन अथवा अति-अतिरंजना आदिसे व्यंग्यकी क्षमता कम-जोर होती है तथा

४. एकरसता व्यंग्यके लिए घातक सिद्ध होती है। अनुभवका दायरा सीमित होनेकी स्थितिमें लेखक कथ्य को दुहराने लगता है; साधनामें कमी होनेपर वह भाषा प्रयोगोंमें पुनरावृत्तियोंका शिकार होजाता है। ऐसी स्थितियोंमें व्यंग्यकी धार उतरने लगती है।

एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि कबीरसे आज तकके हिन्दी लेखकोंमें एक भी व्यंग्य-लेखिका हमारी दृष्टिमें नहीं है। बहुत खुरचनेपर हमारी जानकारीने मन्नु भण्डारीके 'महाभोज' का नाम हिचकते हुए दिया है। भारतीय तथा विदेशी भाषाओंमें भी किसी व्यंग्य-लेखिकाका नाम हमारी दृष्टिमें नहीं है। अन्तरिक्ष-यात्रा, ऐवरेस्ट-विजय आदि दुःसाध्य कार्योंमें 'नारी पुरुषके निकट खड़ी है, राजनीतिके अत्यन्त निमग्न क्षेत्रमें गोहडा मायर, मारग्रेट थैचर, श्रीमावो बन्दरनायके

तथा इन्दिरा गांधी पुरुष प्रतिद्वन्द्वियोंसे आगे रहो हैं और मुस्लिम देशों पाकिस्तान तथा बंगलादेशमें भी अधिक पीछे नहीं है, वहां किस रासायनिक प्रक्रियाके अभावमें नारी-वर्ग व्यंग्यसे अक्षम हो रहा है? नारी-मनोविज्ञानके विद्वान् खोजकर बतायें, यह उनके क्षेत्रका प्रश्न है।

### सन्दर्भ

१. प्रका. : पारूल प्रकाशन, ८८६/५८ त्रिनगर, दिल्ली-११००३५। पृष्ठ : १२ + १२४; का. ६२, मूल्य : ४०.०० रु.।
२. प्रका. : जयभारती प्रकाशन, ४४७-पीली कोठी, नई बस्ती कीडगंज, इलाहाबाद-२११००३। पृष्ठ : १२ + १७२; का. ६१; मूल्य : १५.०० रु.।
३. प्रका. : अयन प्रकाशन, १/२० महरोली, नयी दिल्ली-११००३०। पृष्ठ : १६ + ७८; का. ६१; मूल्य : ३०.०० रु.।

## पत्र-पत्रिकाएं

### प्रयासः

[पुरस्कृत निबन्ध संग्रह : १९६२ : वार्षिकी]

सम्पादन : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री  
(मुख्य अधिकारी राजभाषा)

समीक्षक : डॉ. हरिश्चन्द्र

ग्रन्थ अपने प्रकारका विशिष्ट संकलन है जिसमें ६६ व्यक्तियों द्वारा विषयों अर्थात् बैंकोंका निजीकरण : एक समीक्षा, ग्राहक-सेवाके नये आयाम, बैंकोंमें मानव संसाधन विकास, बैंकोंमें प्रशिक्षणका महत्त्व, विगत दशक एवं आगामी दशककी प्रमुख प्रवृत्तियां

१. आयोजक एवं प्रकाशक : भारतीय स्टेट बैंक, राजभाषा विभाग, केन्द्रीय कार्यालय, मुम्बई।

'प्रकर'—अक्तूबर '६२—४४

प्राथमिकता-प्राप्त क्षेत्रोंका संरक्षण, लाभ और लाभ-जंनशीलता, मर्चेन्ट बैंकिंग और पट्टा व्यवसाय, मुद्रा अवमूल्यन तथा घरेलू और विदेशी व्यापार, जमा योजनाएं और उनकी तुलनात्मक समीक्षा, बैंकमें मेरा पहला दिन, शाखा-प्रबन्धकके रूपमें मेरा अनुभव तथा सम्पर्क भाषा हिन्दीमें से किसी एकपर लिखे गये ६६ उपयोगी निबन्ध संगृहीत हैं। भारतीय स्टेट बैंककी ओरसे वर्ष १९६१ में मण्डलों तथा केन्द्रीय कार्यालयों के कर्मचारी-वृन्दके लिए हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपिके माध्यमसे जो निबन्ध-प्रतियोगिता आयोजित की गयी, उसके परिणामस्वरूप जिन रचनाओंको पुरस्कृत किया गया उन्हें इस पुस्तकमें स्थान दिया गया है। निबन्ध परम्परा और रीतिके बन्धनोंसे मुक्त साहित्य



की सबसे लचीली विधा होती है। इसीलिए किसीके ज्ञानके स्तर और उसका परिचय देनेके लिए भाषापर उसके अधिकारकी स्थितिसे अवगत होनेके लिए, उससे निबन्ध लिखनेको कहा जाता है। सफल प्रतियोगी वही विषय चुनता है जिसमें उसको पैठ अपेक्षाकृत अधिक रही हो। इन पुरस्कृत निबन्धोंमें सर्वा विषयोंपर आधारित रचनाओंकी संख्या समान न होकर विषयोंके पूर्वोक्त क्रमसे १६, ११, ६, १, ६, ४, २, ३, १, १, ११, ३ और १ रही है। सभी विषयोंसे सम्बन्धित निबन्धोंमें तीनों श्रेणी (प्रथम, द्वितीय, तृतीय) की पुरस्कार-योग्य रचनाओंका न पाया जाना, परीक्षकों द्वारा वस्तुपरक मूल्यांकन किये जानेका बोध कराता है।

संकलनके सभी निबन्ध स्तरीय हैं। सच पूछा जाये तो उनकी गुणवत्ता मात्र इस तथ्यसे द्योतित हो जाती है कि वे हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपिमें लिखे गये हैं, बैंककी विविध शाखाओं-प्रशाखाओंमें कार्यरत उन अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा, जिनमें अनेक अहिन्दी-भाषी महिलाएं और पुरुष हैं, और बहुतसे जिन्हें हिन्दी अतीभी होगी, वे भी बैंकके अंग्रेजी-बहुल सम्प्रेषण-समाजमें काम करते हुए संस्कारहीन होने लगे होंगे। भारतीय स्टेट बैंकके प्रबन्धकोंने हिन्दी-लेखनकी इस परिपाटीका सूत्रपात कर निस्संदेह राज-भाषाके प्रति अपने दायित्वका निर्वाह ही नहीं, अपितु बैंकिंग व्यवसायमें लगे सभी प्रतिष्ठानों और व्यक्तियों का मार्गदर्शन किया है। वे साधुवादके पात्र हैं। इसके साथही जिन प्रतिभागियोंने प्रतियोगितामें रुचि ली, उनकी हिन्दी-निष्ठा सराहनीय है।

ग्रन्थका नाम सचमुच सार्थक रहा है। वास्तवमें यह सही लोगों द्वारा सही लोगोंके लिए सही दिशामें किया गया सही प्रयास है। बधाई। □

## जन संसार?

[वार्षिक पत्रिका]

सम्पादक : गीतेश शर्मा

समीक्षक : डॉ. प्रशान्तकुमार

जन-संसार हिन्दीकी ऐसी पत्रिका है जो तथाकथित

१. सम्पक सूत्र : १६ बी, जवाहरलाल नेहरू रोड,  
कलकत्ता-७०००८७।

प्रगतिवादी अथवा साम्यवादी विचारधाराका पोषण करती है। इसका उद्देश्य हिन्दी साहित्यके गौरवपूर्ण पृष्ठोंको उजागर करना नहीं है अपितु उसे एक ऐसी दिशा देनेका प्रयत्न है जो व्यक्तिको प्रगतिवादी लेखनके लिए प्रोत्साहित करे। इसलिए लेख केवल प्रगतिवादी अथवा जनवादी लेखकोंके ही हैं।

पत्रिकाके सम्पादकीयमें उपभोक्ता संस्कृतिपर प्रहार किया गया है। उपभोक्ता संस्कृतिके कारण साहित्य के गिरते स्तरसे देशमें विद्यमान भ्रष्टाचार, बलात्कार आदिके साथ वर्तमान व्यवस्थापर भी चोट की है। सम्पादकका यह निष्कर्ष ठीक है, पर उपभोक्ता संस्कृति के विरुद्ध संघर्षरत संस्थाओंमें साम्प्रदायिक एवं आतंकवादी पीपुल वार ग्रुप, इण्डियन पीपुल्स फ्रंट जैसी कुछ प्रगतिवादी संस्थाओंका ही उल्लेख है। अन्य राष्ट्रवादी संस्थाएं भी उपभोक्ता संस्कृतिका विरोध कर रही हैं, इसका सम्पादकने कोई उल्लेख नहीं किया।

श्री नागाजुन द्वारा लिखित भ्रष्टाचार लेखमें भ्रष्टाचारियोंमें कांग्रेसकी वर्तमान तानाशाही, राजनीतिक दलोंके पुराने नेता, धनकुबेर, बड़े ओफीसर, विचौलियों और साहित्यकारोंकी गणना की है। इसी प्रकार समाजपर राजनीति एवं धनके महत्त्वका अधिक प्रभाव स्वीकार किया गया है। साहित्यकी उपादेयता उतनी नहीं आंकी गयी। लेखकका मत है कि साहित्यकारको पद्मषण और पद्मश्री आदि तमगोंसे खरीदा जा सकता है। श्री नागाजुनका मत है कि भ्रष्टाचारके विरुद्ध संघर्ष करनेके लिए साहित्यकार अथवा बुद्धिजीवीकी मुख्य भूमिका है। पर इसके लिए समाज भी उत्तरदायी है इस तथ्यको लेखकने प्रकट नहीं किया।

श्री निहाररंजन रायके लेख 'राष्ट्रीय एकता और विछिन्नतावाद' में अनेक भ्रातियां हैं। लेखकने इस देशकी भाषाकी भिन्नतापर प्रकाश डाला है। उन्हें इस देशकी सभी भाषाओंमें विद्यमान एकताकी कड़ीका ज्ञान नहीं है। लेखकने राष्ट्रीय एकताका आधार केवल भूभागको स्वीकार किया है, उसकी सांस्कृतिक एकताकी कोई चर्चा नहीं की। नगालैण्ड, मिजोरम आदिकी संस्कृतिको एकदम भारतको सामान्य संस्कृतिसे काटकर देखना देशमें पृथक्तावादी तत्त्वोंको बढ़ाना है। लेखककी यही दृष्टि आदिवासी संस्कृतिके बारेमें है। इसी प्रकार हिन्दू, मुस्लिम, सवर्ण-हरिजन, राष्ट्रीय अर्थतन्त्र और



और आदिवासियोंकी आर्थिक स्थिति तथा ग्रामवासी, और नगरवासीके बीचकी खाईको तो लेखकने देखा है उनपर बने पुलोंकी कोई चर्चा नहीं की। जमीनकी व्यवस्थामें व्यक्तिगत मालिकाना पद्धतिपर की गयी चोट साम्यवादी विचारधारासे प्रभावित है।

नामवरसिंहका लेख 'साहित्यकी मुक्ति या कछुआ धर्म?' एक अच्छा लेख है, जिसमें उन्होंने साहित्य व साहित्यशास्त्रके क्षेत्रमें भारतीय मूल्योंके महत्त्वको स्वीकार किया है। पर, केवल धर्मकी छाप स्वीकार करना भारतीय चिन्तनके अनुकूल नहीं है। समग्र जीवन में धर्म, अर्थ, कामके बादही मोक्षकी बात कही गयी है। इसीप्रकार लेखकका उत्तर आधुनिकतावादपर किया गया आक्षेप भी एकांगी है।

श्री पुष्पोत्तम अग्रवालका लेख 'भारतीयताके खिलाफ खड़ा है हिन्दूवाद' में पूर्वाग्रहके कारण सावरकरजीके विचारोंकी अनावश्यक रूपसे आलोचना की गयी है। लेखकने इस लेखमें उग्र हिन्दू राष्ट्रवादकी चर्चा की है। उग्र हिन्दू राष्ट्रवादको वे स्पष्ट नहीं कर सके। उन्हें राष्ट्रीय विचारधाराका यह विचार कि विभाजनके साथही धर्मके आधारपर आबादी परिवर्तन न हो जानेका पछतावा है—लिखकर विभाजनके इतिहासके साथ मजाक किया है। लेखकको धर्मसे चिढ़ है वह कहता है कि २-४ वर्षमें करोड़ों लोगोंको पूरे रूप में धर्म-विमुख कर दिया जाये—न रहे धर्मका बाँस न बजे साम्प्रदायिकताकी बाँसुरी। वस्तुतः यह कहकर लेखकने यथार्थके एक पक्षको देखा है। लेखक सम्प्रदाय के संकीर्ण मनोभावोंको तो देख सका है पर प्रत्येक सम्प्रदायकी उदारताका उसे ज्ञान नहीं है। लेखक ने बारम्बार बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक सम्प्रदायिकताकी चर्चा की है वह सबको भारतीय रूपमें चित्रित नहीं कर सका। लेखक यह भी नहीं कह सका कि जो व्यक्ति इस देशको मातृभूमि अथवा पुण्यभूमि नहीं मानता वह इस देशमें समान अधिकारोंके साथ रहनेके योग्य नहीं है।

रमेश उपाध्यायके लेख—“समकालीन हिन्दी कहानी : दिशा और दृष्टि”—में लेखक कहानीको न कोई दिशा दे सका है और न ही उसके पास दृष्टि है। वह केवल जनवादी कहानीका समर्थक है। पर उसके स्वरूप और उसके कलात्मक अभिव्यक्तिके बारेमें उसने कुछ नहीं लिखा। लेखकने दूरदर्शनपर प्रस्तुत अनेक 'प्रकर'—अक्तूबर'६२—४६

धारावाहिकोंकी चर्चा की है पर बादमें स्वयं सुधीर पचोरीकी इस बातके लिए आलोचना की कि वे हिन्दी कहानीको टी. वी. की बीबी बना देनेके लिए सरकारी नाऊ ठाकुर बने—कथादर्शन बघार रहे हैं ?

श्री विमल वर्माके लेख 'प्रेमचन्द और साम्प्रदायिकता' में प्रेमचन्दकी अनेक कहानियों—मृतकभोज, मसीहा, दो कब्रे, मुक्तिधन, भ्रमा, न्याय, ईदगाह—हज्ज-एक-अकबर तथा कायाकल्प उपन्यासके आधारपर साम्प्रदायिक दृष्टिसे विवेचन किया है। वस्तुतः सभी महान कलाकार अपने साहित्यके माध्यमसे उच्च मानवीय सांस्कृतिक मूल्योंकी स्थापना करते हैं उनके साहित्यमें साम्प्रदायिकता या असाम्प्रदायिकताका अनुसंधान बचकाना प्रयत्न है। इसी प्रकारका एक प्रयत्न डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठीने 'हिन्दी साहित्यमें असाम्प्रदायिक चेतना' की परम्परा और अमृतलाल नागरका प्रतिपादन भी ठीक नहीं है।

श्री हर्षनाथका 'त्यागमूर्ति' व्यंग्य अवश्य अच्छा बन पड़ा है। आधुनिक राजनीतिज्ञोंपर लेखकने गहरी चोट की है।

पलाश विश्वासकी कहानी 'सागौरी मण्डल अभी जिन्दा है' कोई उच्च स्तरीय कहानी नहीं है। इसके केवल सागौरी मंडल तथा अन्य आदिवासी स्त्रियोंसे हुए बलात्कारका रूप उभरता है। कहानीमें नारायणदत्त तिवारी जैसे जीवित नेताओंका नामभी उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

अनय द्वारा लिखित कहानी 'दस हजारी बेल' यद्यपि अतिशयोक्तिपूर्ण है, फिरभी ग्रामीण क्षेत्रमें शिक्षाकी दुरवस्था और भ्रष्टाचारके विकराल रूपको समझनेकी दृष्टिसे उचित बन पड़ी है।

श्री विजयके लेख—'धर्मका धर्मोत्तर प्रयोग कहाँ तक जायज है' में धर्म और धर्मनिरपेक्षताका ठीक स्वरूप स्पष्ट नहीं हो सका। इसका एक उद्देश्य भाजपाका विरोध करना है। लेखकको यह स्थापना भी गलत है कि संस्कृति सामूहिक क्रियाकलापोंसे बनती है।

श्री प्रेम कपूरके लेख—'सन् दो हजार तक मुसलमान बहुसंख्यक होंगे' में लेखकने यह स्वीकार करके भी कि मुसलमान हिन्दूओंकी तुलनामें अधिक बढ़ रहे हैं, यह स्वीकार नहीं किया कि कभी मुसलमान संख्यामें अधिक हो जायेंगे। लेखक मुसलमानोंकी इस कटनीतिकी समझ नहीं सका कि उनका प्रयत्न केवल







## पठनीय और संग्रहणीय ग्रंथ

### श्रालोचना :

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य—सम्पादक : डॉ. महेन्द्र भटनागर	सजिल्द	६०.००
	विद्यार्थी संस्करण	३५.००
अन्धायुग : एक विवेचन—डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा (पुरस्कृत)	सजिल्द	४०.००
	विद्यार्थी संस्करण	२५.००
छायावाद : नया मूल्यांकन—प्रा. नित्यानन्द पटेल	सजिल्द	४०.००
'प्रकर' : विशेषांक ['पुरस्कृत भारतीय साहित्य' के नौ अंक, भारतीय साहित्य : २५ वर्ष, अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य, अन्य विशेषांक]		२७५.००

### उपन्यास :

अपराधी वैज्ञानिक : (वैज्ञानिक उपन्यास) —यमुनादत्त वैष्णव अशोक	„	६०.००
ये पहाड़ी लोग—यमुनादत्त वैष्णव अशोक	„	२५.००
सुधा—[मलयालमसे अनूदित]—टी. एन. गोपीनाथ नायर	„	२५.००
शकुन्तला—[‘अभिज्ञान शाकुन्तलम्’ का औपन्यासिक रूपान्तर]—विराज	„	२५.००
प्रवासी—[बर्मके भारतीय प्रवासियोंकी कहानी]—श्यामाचरण मिश्र	„	३०.००

### नाटक :

देवयानी—डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर	„	१५.००
श्रेष्ठ एकांकी—डॉ. वासुदेवनन्दन प्रसाद	„	१५.००

### जीवन दर्शन :

शंकराचार्य : जीवन और दर्शन—वैद्य नारायणदत्त	„	२०.००
महर्षि दयानन्द : „ „	„	२५.००
गुरु नानक : „ „	„	३०.००
श्री अरविन्द : „ —रवीन्द्र	„	२०.००

### समसामयिक साहित्य :

रूपयेका श्रवमूल्यन और उसका प्रभाव—सम्पा. डॉ. लक्ष्मीमल सिधवी		४०.००
समाजवादी बर्मा—श्यामाचरण मिश्र		३०.००
विस्तारवादी चीन—जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी (पुरस्कृत)	जेबी आकार	८.००
कच्छ—पद्मा अग्रवाल	„	८.००
एवरेस्ट अभियान—डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश	„	८.००
अफ्रीकाके राष्ट्रीय नेता—जगमोहनलाल	„	१०.००

### 'प्रकर' कार्यालय

'प्रकर', ए-८/४२ राणाप्रताप बाग, बिल्लो-११०००७.

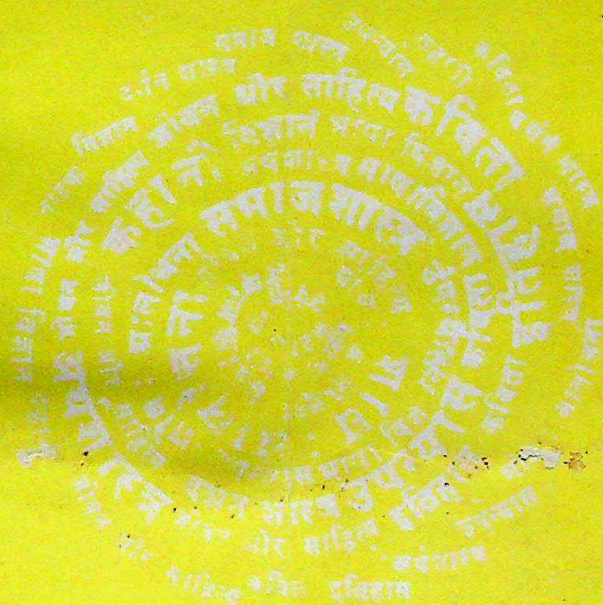


404/23/2192

# प्रकर

मार्गशीर्ष : २०४६ [विक्रमाब्द] :: नवम्बर १९६२ [ईस्वी]

24  
11





## अंककी सामग्री

### स्वर : विसवादी

राज्य सत्ता : धर्म सत्ता : संगति-विरोध	१	वि. सा. विद्यालंकार
इतिहास : इतिहासमें राजनीति		
कश्मीर समस्या और विश्लेषण—जगमोहन	५	डॉ. प्रशान्त वेदालंकार
इतिहासकी पुनर्व्याख्या—(आठ लेखकोंके समाचारपत्रीय लेखोंका संकलन)	११	श्री भगवान सिंह
मराठी-हिन्दी आदान-प्रदान		
मराठीसे हिन्दीमें अनूदित दलित साहित्य (आलेख)	१५	डॉ. गजानन चव्हाण
व्याकरण-भाषा विज्ञान		
हिन्दी व्याकरण मोमांसा-३ (आलेख)	२२	पं. काशीराम शर्मा
हिन्दी-गुजरातीका तुलनात्मक व्याकरण—डॉ. जे. जे. त्रिवेदी	३१	डॉ. उमेशप्रसाद सिंह
तेलुगुकी रजक क्रियाएँ (लेख)	३३	श्री पि. वेंकट रामशास्त्री
अध्ययन-अनुशीलन		
माक्सवादी सोन्दर्यशास्त्रकी भूमिका—रोहिताश्व	३५	प्रो. घनश्याम शलभ
समन्वयवादो आलोचना—डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय	४१	डॉ. रामदेव शुक्ल
निबन्ध		
कुंवरनाथ रायके प्रतिनिधि निबन्ध—डॉ. रहमान अल्लाह, डॉ. मान्धातारास	४२	डॉ. मूलचन्द सेठिया
कुछ जमीनपर : कुछ हवामें—श्रीलाल शुक्ल	४४	डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त
काव्य		
मुझ और अभी कहना है—गिरिजाकुमार माथुर		डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त
'जुआ घर' तथा 'एक शख मेरे हाथों दो'—श्यामसुन्दर घोष		डॉ. वीरेन्द्रसिंह
'पकर'—नवम्बर'६२		



**स्वर : विसंवादी****राज्यसत्ता : धर्मसत्ता : संगति-विरोध**

**आधुनिक** चिन्तनमें धर्म और राज्यसत्ता दो प्रतिद्वन्द्वी शक्तियाँ हैं जिन्हें निरन्तर संघर्ष-रत माना जाता है। राज्य सत्ता धर्मकी सामाजिक व्याप्तिकी विरोधी है और उसे वह व्यक्तिगत धारणाओं और मान्यताओं तक सीमित रखना चाहती है, यदि सम्भव हो तो व्यक्तिको भी धर्मकी अवधारणाओं, मान्यताओं, संस्कारोंसे जड़ मूलसे मुक्तकर उसे भावहीन भौतिक पुतलेके रूपमें प्रयुक्त करना चाहती है। इस अन्तर्निहित कूटभावनाके साथ वह सत्तात्मक और राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्तिके लिए, धर्मकी अंतर्भेदी शक्तिको नष्ट करनेके लिए ऐसे भौतिक कल्पनामय स्वर्गका चित्र प्रस्तुत करती है, जिसके द्वारा वह व्यक्तिको उसके संस्कार निर्मित मध्य कल्पना-जगत्के नशेसे मुक्तकर भविष्यके वास्तविक (?) सुख-समृद्धिपूर्ण लोकमें ले जानेका प्रस्ताव करती है। इस परिदृश्यके निर्माण और नाटकके पर्देपर से उसे लुप्त होते हम सभीने देखा है।

इस यथार्थके भीतर झाँककर देखतेही स्पष्ट होता है कि एक तो राजनीतिक और सत्तात्मक महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्तिके लिए सत्ता धर्मकी उन कट्टर जड़तावादी मान्यताओं और विधि-विधानोंका उसीके विरुद्ध प्रचारात्मक उपयोग करती है, जिनमें मानव नहीं होता बल्कि जड़ विधि-विधानोंसे जकड़ा और पूजा-पाठ अथवा कर्मकाण्डसे बंधा विवश व्यक्ति होता है। इन जड़ विधि-विधानों और कर्मकाण्डोंका भी एक 'राजनीतिक' और 'सत्तात्मक' पक्ष होता है जिसके दर्शन

हम पश्चिमी एशिया और उसके निकटस्थ क्षेत्रोंमें कर सकते हैं। इस पूरे क्षेत्रमें धर्मका राजनीतिक और सत्तात्मक रूप इतना आतंक और उन्मादपूर्ण है, कि इन क्षेत्रोंमें जानेवाले किसीभी असावधान विदेशी और वहाँके राजकीय धर्मसे असम्बद्ध व्यक्तिका जीवन तक संकटमें पड़ जाता है। यहाँ धार्मिक उन्मादके कारण इस जीवन (इहलोक) में चाहे जो कष्ट उठाने पड़ें, परन्तु परलोकके विविध और प्रचुर सुख-समृद्धि तथा यौन-उन्मुक्तताके आकर्षक आश्वासनोंसे वहाँके मरुस्थलमें भी भीगी बिल्ली बने रहनेका अवसर मिलता है। फिरभी यह स्पष्ट है कि इस मजहूबी सनकके घेरे में व्यक्तिको बांधे रखनेके लिए राज्य सत्ताको उसे अपने हाथोंमें रखना पड़ता है। वहाँ सर्वोपरि सत्ता धर्म है, उसकी सत्ताको स्थापित किये रखनेके लिए राज्यसत्ता उसकी सैनिक होती है।

इस आधुनिक स्थिति — राज्य सत्ताकी सर्वोपरिता, धर्मकी सर्वोपरिता और दोनोंका अपने हितोंकी रक्षा के लिए एक-दूसरेका उपयोग — मानवीय इतिहास, उसकी प्रवृत्तियों, उससे निमित्त परम्पराओं और संस्कारोंके भारतीय प्रवाहपर भी एक दृष्टिपात करने की इसलिये आवश्यकता है कि वर्तमान राजनीतिक, धार्मिक एवं तथाकथित साम्प्रदायिक वातावरणकी पृष्ठभूमिकी झाँकी द्वारा उसे ठीक प्रकारसे हृदयंगम किया जा सके। अति प्राचीन कालका जो धार्मिक-आध्यात्मिक साहित्य उपलब्ध है, उससे तथा लोकमान्यताके अनुसार यह युग 'सतयुग' था और मानवीय आकांक्षाओं एवं आदर्शों जीवनका युग था। मूल वैदिक



साहित्यसे यदि इस युगका कोई चित्र बनता है तो वह आध्यात्मिक नहीं अपितु ऐसा भौतिक युग था जिसमें नैतिकताके प्रति सहज भाव सरल वृत्तिके मानवों द्वारा नवजीवनके निर्माणकी और बाधक स्थितियोंसे संघर्षकी प्रवृत्तिका युग रहा होगा। उपलब्ध उत्तर वैदिक साहित्य में आध्यात्मिकताका रंग इसलिए दिखायी देता है क्योंकि जीवन और प्रकृतिके रहस्योंको उद्घाटित करनेके मानवीय चिन्तन और उसकी दिशा किसी रहस्यमयी शक्तिकी परिक्रमा करने लगी। राज्य सत्ता और धर्मके पारस्परिक सम्बन्धोंका चित्र चाणक्यके अर्थशास्त्रसे मिलना प्रारम्भ होता है जिसमें धर्म राज्य सत्तासे शासित है। इससे पूर्व युगका जो चित्र उभरता है वह हमारे आख्यानो द्वारा प्रस्तुत हुआ है जिसमें धर्म और राज्य सत्ताका अपेक्षाकृत सन्तुलित सम्बन्ध प्रस्तुत होता है। इन आख्यानोमें रामायणका स्थान प्रमुख है। इस प्राचीन युगमें ऐसे कालखण्ड भी हैं जिनमें राज्य सत्ताकी तुलनामें धर्म और नैतिकता अधिक प्रभावी हैं और ऐसे कालखण्ड भी जिनमें राज्य सत्ता ही अन्तिम निर्णायक थी। 'अर्थशास्त्र' (चाणक्य) की चर्चाके साथ यह भी ध्यान रखना होगा कि उस समय तक धर्म शास्त्र आदि सामाजिक और राजनीति ज्ञान सम्बन्धी वाङ्मयका विकास हो चुका था। अर्थशास्त्रकारको पुराणों, रामायण और महाभारतका ज्ञान था, धर्म पक्षकी शक्ति और जन-जीवनपर उसके प्रभावसे भी वह परिचित था। इसी कारण धर्म, राजनीति, राज्य सत्ता सम्बन्धी चर्चामें 'अर्थशास्त्र' की प्रासंगिकताका उल्लेख तथा उसके बादके कालकी स्थितिके अध्ययनमें सहायता मिलती है।

व्यावहारिक रूपमें चन्द्रगुप्त मौर्य और बिन्दुसारके राज्यमें 'अर्थशास्त्र'की व्यवस्थाओंका चलन रहा क्योंकि इनका आधार, धर्म, व्यवहार, संस्था और न्याय था। फिरभी, अशोकके जीवन कालमें बौद्ध धर्मकी राजकीय मान्यता मिली, धर्म-महामात्यकी नियुक्ति हुई। विजय-यात्राओंका स्थान धर्म-यात्राओंको दिया गया। वस्तुतः राज्यसत्ताके केन्द्रमें बौद्ध भिक्षु-संघ शक्तिशाली हो गये। स्वयं अशोकका प्रासाद धार्मिक षड्यन्त्रोंका केन्द्र बन गया। इस विकट स्थितिमें अमात्योंने अशोकको राज्याधिकारसे वंचित (हताधिकार) कर दिया। इस प्रसंग का इस रूपमें महत्व है कि बौद्ध संघने उसके बाद अपना धार्मिक आग्रह ही नहीं बढ़ा दिया, बल्कि उसका

रूप दमनात्मक होगया। जिसकी परिणति बौद्ध राज्य की समाप्तिमें हुई।

धर्म सत्ता और राज्य सत्ताके सम्बन्धोंकी दृष्टिसे यह भी उल्लेखनीय घटना है कि मौर्य राजा बृहद्रथको अपदस्थ करनेके बाद पुष्पमित्र शुंगने अश्वमेध यज्ञ करने तक राजाका पद ग्रहण नहीं किया। प्रतिक्रिया में धार्मिक रूपका आग्रह और बढ़ गया। इस युगके बाद स्मृति ग्रन्थोंका निर्माण हुआ, जिनमें मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति प्रमुख हैं। इन स्मृति ग्रन्थोंमें भी प्राचीन भारतीय राज्य संस्थाके लिए मूल आधार धर्म, व्यवहार, चरित्र और न्यायको ही माना गया। इन ग्रन्थोंमें धर्म शब्दका प्रयोग बहुत व्यापक अर्थमें है। यहाँ धर्म कुल जाति धर्म नहीं है। धर्मके साथ जुड़े विशेषणों (जनपद धर्म, ग्राम धर्म, सामयिक धर्म, निकाय धर्म) से स्पष्ट होता है जिन विधि-विधानोंका जिस वर्ग, श्रेणी, कुल, भेद, अधिवाससे सम्बन्ध है, वे सब धर्म गिनाये गये हैं। धर्मका अर्थ मात्र परम्परागत, आचार सम्बन्धी विधि-नियम-प्रतिषेध ही नहीं था।

यहाँ राज्य सत्ता और धर्म सत्ताकी चर्चाका उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि धर्म भारतीय परम्परामें कोई रूढ़ और संकीर्ण स्थिति नहीं है, न ही इस रूपमें यह 'मजहब' शब्दका सामानार्थक है। यहाँ धर्मका अभिप्राय उस धारणासे है जो जीवनके किसीभी क्षेत्रसे सम्बद्ध हो सकती है; विधि-विधानसे, ग्राम-जनपद-देश की व्यवस्थासे, आर्थिक स्थिति, राजनीतिक-सामाजिक स्थिति और व्यवस्थासे, जिसमें व्यापकता है। इसी व्यापकताके कारण यह राज्य सत्तासे जुड़ा रहा है, इसी कारण राज्य सत्ता इन सम्बन्धोंको लेकर जबभी, असमंजसकी स्थितिमें आयी है तो वह अपने अमात्यों तथा अन्य विशिष्टजनों और वर्गोंसे परामर्श द्वारा निर्णय करती रही है।

आधुनिक चिन्तनमें, जैसा कि प्रारम्भमें ही कहा गया है, धर्म और राज्य सत्ता प्रतिद्वन्द्वी हैं, सम्भवतः यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि एक-दूसरेके विरोधी हैं और एक-दूसरेको केवल घात-प्रतिघात द्वारा नीचा दिखानेके लिए प्रयत्नशील ही नहीं रहते, अपितु सम्पूर्ण व्यवस्था और सत्ताको अपने अधिकारमें लेनेके लिए लालायित रहते हैं। यह आधुनिक चिन्तन भारतीय राजनीतिमें भी आवश्यकतासे अधिक प्रवल हो उठा है। यह उन प्रभावों, अनुभवों, स्मृतियोंसे भी ग्रस्त है जो विदेशी आक्रमणों, कृत्यों और व्यवहारोंसे उत्पन्न हुए



हैं। इन्हें हम तीन प्रकारके वर्गोंमें बाँट सकतेहैं, आक्रमणकारी, आक्रमणकारियोंके भारतीय सहायक, उत्पीड़ित आक्रान्त। इन तीन वर्गों द्वारा जो स्थिति उत्पन्न हुईहै, उनपर दृष्टिपात करना अनुपयुक्त न होगा।

जिस आक्रमणने देशकी राजनीतिको आजतक प्रभावित किया हुआहै वह पश्चिम एशियासे ईरानके मार्गसे सिन्धमें हुआ। इसी आक्रमणने सर्वप्रथम इस देशके निवासियोंको, चाहे वे किसीभी धर्म-सम्प्रदायके थे, 'हिन्दू' नाम दिया, जो सम्भवतः ईरानमें प्रचलित सिन्ध (सिन्धु) नदीके हिन्द-हिन्दूसे लिया गयाथा। यद्यपि पश्चिम एशियासे आनेवाले इस्लामी जंगखोरों ने पूरे भारतीय समाजका 'हिन्दू' नामकरण किया, परन्तु उसमें सौहार्द नहीं था क्योंकि वे इस सम्पूर्ण समाजको 'काफिर' मानतेथे और आजभी हिन्दूके काफिर होनेकी रट लगाये हुएहैं तथा हिन्दू और काफिरको वे पर्यायवाची मानतेहैं। इस प्रकार भारतीय समाजमें वे आक्रमणकारी रूपमें अपनी श्रेष्ठताका प्रदर्शन करतेहैं और बहुमतके प्रति अपने अल्पसंख्यक समुदायमें युगानुरूप किसीभी रूपमें आक्रमणकी भावनाको जागृत रखनेके लिए प्रयत्नशील रहतेहैं। यह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण है और यह प्रच्छन्न भावना वर्षों के प्रयत्नके बादभी सद्भावका वातावरण बनानेमें बाधक बनी हुईहै।

इसी प्रसंगमें हम यह नहीं भूल पाते कि भारतीय सभ्यता केवल सिन्धु या सिन्ध नदी तक सीमित नहीं थी, उसका विस्तार तो मध्य एशियासे लेकर वर्तमान श्रीलंकाके दक्षिणी समुद्र तट तक था। वस्तुतः भारतीय प्रतिभा किसी नदीसे जुड़े नामको कभी स्वीकार नहीं कर सकी। अब, यह भी कठिनाई है हिन्दू नामसे जुड़ी स्वयं सिन्ध नदी भारतीय सीमासे बाहर इस्लामी क्षेत्र में स्थानान्तरित हो गयीहै। यों भी स्वयं हिन्दू शब्द भारतीय प्रतिभाकी देन नहीं है। जब इस शब्दके साथ 'धर्म' जोड़ दिया जाताहै तो स्थिति औरभी हास्यास्पद हो जातीहै, क्योंकि जिस समग्र समाजको 'हिन्दू' नाम दिया गयाहै, वह विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, पंथों का एक ऐसा संगठन है जिसमें ये सभी धर्म, पंथ और सम्प्रदाय धर्मोंका चिन्ता किये बिनाभी, चिन्तन और विचार वैभिन्न्य, रीति-रिवाज, वेष-भूषामे समानता न होते हुएभी किसी अन्तर्निहित भावनासे समाज-राष्ट्र

के रूपमें समान अधिकारों एवं समान नागरिकताके साथ रहते आयेहैं। यह समाज-राष्ट्र अपनेको धर्म-निरपेक्ष कह सकताहै, परन्तु धार्मिक साम्राज्यकी स्थापनाके उद्देश्यको लेकर किये गये आक्रमण क्या इस धर्म-निरपेक्षताको मान्यता दे पातेहैं? इसके विपरीत इस धर्म-निरपेक्षताको भंगकर वे केवल अपने धर्म-मजहबकी विश्वव्यापी सत्तामें विश्वास रखतेहैं और उसीके लिए विभिन्न समयोंपर विभिन्न नीतियां अपनातेहैं। इस मनोवृत्तिका प्रदर्शन अभी कुछ दिन पूर्व इलाहाबाद उच्च न्यायालयकी लखनऊ खण्डपीठमें अयोध्या-विवादके भूमि-अधिग्रहणके प्रश्नपर वकील अब्दुल मन्नानने एक रोचक तर्क द्वारा किया कि 'देश के स्वतंत्रता संघर्षसे ही धर्म-निरपेक्ष व्यवस्थाका जन्म हुआ, इसलिए राज्यके प्रशासनको किसीका पक्ष नहीं लेना चाहिये। तर्क प्रस्तुत करनेवाले वकील महोदय इस तथ्यसे अपरिचित हैं कि भारतीय समाज व्यवस्था और संगठनकी दृष्टिसे अपने आपमें धर्म-निरपेक्ष है, इसी संगठित समाजने स्वतंत्रता आन्दोलनका संचालन किया, उसे नेतृत्व प्रदान किया। परन्तु आक्रमणकारी शक्तियोंका सहयोग करनेवालोंकी सहायतासे धर्म-निरपेक्षताकी लाशपर ही स्वतंत्र भारत बना और उसी भारतके एक खण्डमें इस्लामी राज्य पाकिस्तानका जन्म हुआ। स्वयं खण्डित भारतमें ही संविधानके अनुच्छेद ३७० के 'अस्थायी उपबंध' द्वारा कश्मीरको मुस्लिम राज्य बना दिया गया। तबसे अबतक निरन्तर इस 'अस्थायी उपबंध' को पहले प्रच्छन्न रूपमें अब प्रत्यक्ष रूपमें 'स्थायी मुस्लिम राज्य' के रूपमें परिवर्तित करने के प्रयत्न चल रहेहैं, इसलिए हिन्दू कहलानेवाले मूल निवासी वहाँसे निष्कासित कर दिये गयेहैं, उनके मानवीय अधिकारोंकी रक्षाका तो प्रश्न ही नहीं उठता, संविधान द्वारा प्रदत्त उनके अधिकारोंकी रक्षाके लिए भी इस देशका 'धर्म-निरपेक्ष प्रशासन' प्रस्तुत नहीं है।

आक्रमणकी जो परम्परा सैकड़ों वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुईथी, वह मुस्लिम और ब्रिटिश दोनों काल-खण्डोंमें बनी रही। इस आक्रमण परम्पराका विस्तार इसलिए सम्भव हुआ कि इसमें विभिन्न भारतीय वर्ग सहायक हुए। इन वर्गोंने आक्रमणकारियोंको निमंत्रित किया, आक्रमणकालमें अपना सहयोग प्रदान किया, आक्रमणकारियोंको राज्य-विस्तारके लिए अपने निकटस्थ और



सहयोगियोंकी भी बलि दी। आक्रमणके विस्तारमें यह सहयोग केवल सैनिक नहीं रहा, अपितु धार्मिक स्तर पर, सांस्कृतिक स्तरपर और सामाजिक स्तरपर भी यह सहयोग बहुत व्यापक रहा। भाषा स्तरपर भी यह सहयोग व्यापक रूपसे गहराया। आक्रमणकारियोंके इन भारतीय सहायकोंने अपने सामने होनेवाले बलात् धर्म-परिवर्तनसे आँखें चुरायीं तो उनके प्रत्येक अनाचारसे आँखें फेरलीं।

मुगल कालमें शासनकी भाषा फारसी रही, तो उनके भारतीय सहायक फारसीके आलिम-फाजिल हो गयेथे। ब्रिटिश काल शुरू होनेपर इन आलिमों-फाजिलोंपर यह कहावत चरितार्थ होने लगी कि 'पढ़ें फारसी, बेचें तेल'। तत्काल अपने नये स्वामियोंकी भाषाके 'एक्सपर्ट' बनने लगे। ब्रिटिश शासनमें भी यही लोग ब्रिटिश संकेतोंको भांपनेमें 'एक्सपर्ट' हो गये। देशकी धरती और जनमानससे क्षितिजीय दूरी होते हुए भी ये लोग अपने-अपने युगोंमें फारसीपर अधिकार और अंग्रेजीकी विशेषज्ञताके कारण शासकों और सत्ताके इतने निकट आगये कि वे मन-मस्तिष्क से उन्हींके होगये। वे उन्हींके हितोंके ही केवल प्रतिनिधि-नायक नहीं बने अपितु उसीके साथ एकाकार होते गये। उन्हींकी शिक्षा-दीक्षा, उन्हींका चिन्तन, उन्हींकी वैचारिकता और उन्हींकी प्रवृत्तियाँ अपनाकर वे अपने शासकोंकी तुलनामें उनसे कहीं अधिक प्रबलतासे उन्हें लागू करने लगे जो बहुधा देशके निवासियों और धरतीके प्रति आक्रोश और घृणासे मिश्रित होतीथी। लोक-धरतीसे ऊपर उठकर उनसे भौतिक-मानसिक दूरी रखकर (यह दूरी प्रायः छत्तीस जैसी होतीहै) उनके हितों, उन्हें नवजीवन-नवप्रकाश प्रदान करने एवं उस लोक-धरतीको पूर्ण आधुनिक बनानेके आशवासनों द्वाराही नहीं, बल्कि उनके लिए पूर्ण प्रतिबद्धता विज्ञापित करते हुए ब्रिटिश-साम्राज्यसे उपहारमें खण्डित भारतका साम्राज्य प्राप्त करनेमें सफल हो गयेथे। पश्चिम एशियासे इस्लामी आक्रमणके सामने सम्पूर्ण आत्म-नमर्पण करनेपर भी उन्हें इतना बड़ा उपहार नहीं मिलाया। मुस्लिम कालकी समाप्ति होते-होते और ब्रिटिश सत्ताके उदय होनेपर वे तेल बेचनेवाले 'फारसीदा' ही रह गयेथे, परन्तु ब्रिटिश शासनने विदाईसे पूर्व उन्हें अपने हाथों सत्ता सौंपकर उनका राजतिलकभी कर दिया। इस देशकी भाषाएँ बोलने वालोंको चना-मुरमुरा बेचनेवाला बना दिया।

'प्रकर'—नवम्बर'९२—४

ब्रिटिश और मुस्लिम कालमें इस वर्गको न केवल लोक और धरतीसे असम्बद्ध और पृथक् रहकर शासन-कलाका आन्तरिक ज्ञान होगया अपितु शासितोंको विभाजित रखनेका, उनकी धार्मिक भावनाओंको समय-समयपर भड़काते हुए, धार्मिक आधारपर उन्हें निरंतर विभाजित रखते हुए, धार्मिक आक्रमणोंके प्रत्येक स्मारक को वैचारिक मान्यता प्रदान करते हुए, प्रत्येक समुदाय के धार्मिक विधि-विधानोंको पृथक् रखते हुए—उनका विस्तार करते हुए और संरक्षण प्रदान करते हुए धर्म को ही राजनीतिक शतरंजकी गोटी बनाकर देशको मानसिक स्तरपर भी पूरा-पूरा विभाजित कर दियाहै। भौतिक रूपसे देशको खण्डित करनेमें ब्रिटिशोंकी सहायता करनेवालोंको मानसिक स्तरपर देश-राष्ट्रको विभाजित करनेकी ब्रिटिश-प्रणालीका प्रशिक्षण पहले ही मिल गयाथा।

यह खण्डित और विभाजित देश-राष्ट्रही उनका आर्थिक स्वर्ग भी बन गयाहै। ब्रिटिश-प्रणालीपर निर्मित देश-राष्ट्रमें प्रारम्भसे अबतक खरबोंकी सम्पत्ति देशके बाहरके बैंकोंमें चली गयीहै। उन्हीं लोगों द्वारा यह सम्पत्ति बाहर भेजी गयीहै जो अपनेही राजनीतिक गुरुओंपर आरोप लगातेथे कि वे देशकी सम्पत्तिको लूट कर बाहर ले जा रहेहैं। मुगल बादशाहों द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनीको देशमें व्यापारकी अनुमति देनेके उदाहरणको सामने रखकर अब उन्हीं लोगोंको देशमें पुनः लौटाकर उद्योग-व्यापार स्थापित करनेके लिए उनकी चिरीरी कर रहेहैं, जिससे उस विदेशी शोषणमें वे भी भागीदार बन सकें जिसका उन्हें पहले सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआथा। शीर्षका यह आर्थिक झण्टाचार रिस-रिसकर प्रशासनके निम्नतम स्तर तक पहुंच गया है।

धर्मको राजनीतिकी गोटी बनानेवाले लोकतांत्रिक परन्तु लोकसे कटे देशके इन महाप्रभुओं और उनके शासकीय प्रचार माध्यमों और उन्हींकी भाषा और चिन्तनसे जुड़े इण्डियन इंग्लिश (इंडिश) समाचार-पत्रों और उनके अनुवादी संस्करणोंने 'यथार्थ'को भी 'अयथार्थ'की कलामें परिवर्तित कर दियाहै। इस कला से कहानीको अकहानी कविताको अकविता आदिमें परिवर्तित करनेकी स्थितिसे देशका साहित्यिक वर्ग भी परिचित है। आजकी प्रचारक पत्रकारितामें यदि आतंक-

[शेष पृष्ठ ५२ पर]



## इतिहासः इतिहासमें राजनीति

# कश्मीर समस्या : भारत सरकारकी असफलताकी कहानी

कृति : कश्मीर समस्या और विश्लेषण?

समीक्षक :

कृतिकार : जगमोहन, भूतपूर्व राज्यपाल जम्मू-कश्मीर

डॉ. प्रशान्त वेदालंकार

भारतके राजनीतिक इतिहासमें जनाब नेहरू साहबके जो उल्लेखनीय कृतित्व हैं, वे हैं : भारत-विभाजन, कश्मीर विभाजन और साष्टांग प्रणामके साथ चीनको तिब्बत-अर्पण । कश्मीर विभाजनका जो रूप सामने आ रहा है, उससे प्रतीत होता है कि इसके पीछे राजनीतिक उद्देश्य यह रहा है कि भारतकी धर्मनिरपेक्ष नीति विश्वके लिए ऐसा चमत्कारिक उदाहरण बने, जहां इस्लामको देशके अन्य सम्प्रदायों-विश्वासों-पन्थोंका सहवर्ती दिखाया जा सके । परन्तु इस प्रयोजनसे जो नीति अपनायी गयी, वह थी संविधानके अनुच्छेद ३७० के 'अस्थायी उपबन्ध' द्वारा विशुद्ध मुस्लिम बहु-मतके राज्यका निर्माण । इस क्षेत्रमें आजतक कोई धर्मनिरपेक्ष विधि-विधान लागू नहीं हुआ, राजनीतिक स्तरपर इसे धर्म-सापेक्ष राज्य बनानेके ही प्रयत्न किये गये । वर्तमान केन्द्र सरकार अब अनुच्छेद ३७० के अस्थायी उपबन्धको स्थायी बनाकर एक मुस्लिम 'राज्य-राष्ट्र'के निर्माणमें लगी है ।

इस विषयकी उल्लेखनीय 'कश्मीर समस्या और विश्लेषण' कृति पर समीक्षा दो अंकोंमें प्रस्तुत कीजा रही है । का प्रथम अंश यहां प्रस्तुत है ।

भारत विभाजनके साथही कश्मीरकी समस्या हमारे साथ आकर चिपक गयी । भारत सरकार और देशके मान्य नेता कश्मीरकी वास्तविक घटनाओंकी भारतीय जनताके सामने तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करते रहे और कश्मीरको भी अपने साथ जैसे-तैसे जोड़े रहे ।

पर कश्मीरके अन्तःस्तलमें सुलग रही आगने एक दिन विस्फोटक रूप ले लिया । कश्मीरसे वहांके ३ लाख पण्डितों को खदेड़ दिया गया, और वहां आतंकवादियोंका साम्राज्य होगया । हमारी सेनाएं वहां हैं, पर वे कुछ करती नहीं ।

श्री जगमोहन अप्रैल १९८४ से जून १९८६ तक तथा जनवरी १९९० से मई १९९० तक कश्मीरके राज्यपाल रहे । यह वह काल है जब कश्मीरमें सर्वाधिक उथल-पुथल हुई । श्री जगमोहनने अनुभव किया कि भारतीय राजनीति के पाखंड और उथलेपनके ही कारण कश्मीर समस्या विकट

१. प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा,  
विल्ली-११०००६ । पृष्ठ : ४६४; डिमा. ६१;  
मूल्य : १७५.०० रु. ।

'प्रकर'—मार्गशीर्ष २०४६—५



हुई। उन्होंने अपनी पुस्तक : “कश्मीर समस्या और विश्लेषण” में विस्तारसे कश्मीरकी समस्या पाठकोंके सामने प्रस्तुत की। यह पुस्तक केवल कश्मीरकी समस्याको ही हमारे सामने प्रस्तुत नहीं करती, उससे देशकी राजनीतिक दिवालियेपनके भी दर्शन होते हैं और इतिहास, संस्कृति तथा अनेक विचारोंका भी पाठको ज्ञान होता है। इस दृष्टिसे यह एक अद्भुत पुस्तक है। “पृष्ठभूमिमें ऐसा होगया। और ऐसा बार-बार होता है। और ऐसा फिर होगा।” यह वाक्य लिखकर लेखकने नाटकीय शैलीमें अपनी इस रचनाको प्रारम्भ किया। लेखकको दुःख है कि कश्मीरकी समस्याके समाधानके लिए कोई उपाय नहीं किया जा रहा।

कश्मीर समस्याके विकराल रूपका निदर्शन लेखकने प्रारम्भमें ही प्रस्तुत कर दिया है, पर समस्याको ठीक ढंगसे प्रस्तुत करनेके लिए उसने कश्मीरके विगत इतिहासपर प्रकाश डाला है। कश्मीरके हिन्दू और बौद्ध राजा, मुसलमान सुलतान, अफगान, सिख और बादमें जम्मूमें डोगरोंके उदयकी विस्तृत जानकारी लेखकने दी है। लेखकका कहना है कि डोगरा राजवंशका संस्थापक गुलाबसिंह असाधारण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति था। उसे लद्दाखका इतिहास और उसके डोगरा राज्यमें विलयकी कहानी भी लिखी है। लेखक ने कहा है कि अर्वाचीन भारत अपनी प्रारम्भिक सभ्यतामें कश्मीरके भव्य ध्वंसाशेषोंसे अधिक उपयोगी कुछ नहीं रखता है।

लद्दाखके बारेमें उसकी स्थापना है कि ‘दुनियांकी छत’ और ‘भारतका छोटा-सा तिब्बत’ लद्दाखका एक ठंडा रेगिस्तान है। यह कश्मीर घाटीके पूर्वमें स्थित है। इसकी समुद्र सतहसे २,४४० से ४,५७० मीटर तक ऊंचाई है। इसमें जनसंख्या दूर-दूर तक फैली है। इसकी जनसंख्याका घनापन प्रति वर्ग किलोमीटर २ है। परन्तु सैनिक दृष्टिसे यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उस लद्दाखपर १८३६ में गुलाबसिंहने अपने सबसे प्रतिभाशाली सेनापति जोरावरसिंह को भेजकर विजय प्राप्त करली। पर जब जोरावरसिंहने तिब्बतपर अपना अधिपत्य करना चाहा तो एक बर्फानी तूफानमें फंसकर तिब्बतीके हाथ मारा गया।

लेखकने सन् १८३६ में रणजीतसिंहकी मृत्यु और ऐंग्लो-सिख युद्धोंके पश्चात् सिखोंकी पराजय और उसके बाद अंग्रेजोंकी सिखोंसे सन्धिका उल्लेख किया है।

स्वतन्त्रता प्राप्तिके उपरान्त राजा हरिसिंहका कश्मीर पर स्वतन्त्र सत्ताका विचार प्रथम भूल थी। पर पाकिस्तान के उसपर आक्रमण कर देनेके कारण महाराजाने माउंट-

‘प्रकर’—नवम्बर’६२—६

बेटनको लिखा—“मेरे राज्यकी इस समय जो स्थिति है और जैसा संकट उपस्थित है, उसमें मेरे पास भारत, स्वतंत्र उपनिवेशसे सहायता मांगनेके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं।”

लेखकने राज्यकी रक्षाके लिए भारतीय सेना द्वारा किये गये प्रयत्नोंका सजीव वर्णन किया है। पाकिस्तानी आक्रमणकारियोंने लद्दाखपर अधिकार करनेका प्रबल प्रयत्न किया परन्तु भारतीय स्थल और वायुसेनाकी कुशल सैन्य रचना और साहसके कारण उसे बचा लिया गया।

पर १ जनवरी १९४८ को भारत कश्मीरके विषयको संयुक्त राष्ट्र संघमें ले गया जोकि उसकी भारी भूल थी। कश्मीरके सम्बन्धमें ‘डिक्सन’ योजनाको भारत और पाकिस्तान दोनोंने अस्वीकृत किया। इस भूलका परिमार्जन महाराजने कश्मीरका भारतमें विलय करके किया। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि महाराजने कश्मीरके सम्बन्धमें भारतके प्रथम गृहमंत्री सरदार पटेलको शेख अब्दुल्लाके व्यवहारकी शिकायतभी की।

कश्मीरके भारतमें विलयके बाद संविधान निर्माणका प्रश्न आया। युवराजने १ मई १९५१ को संविधान निर्मातृ सभाकी स्थापना की। इसके लिए ४०,००० की जनसंख्याके क्षेत्र बनाकर चुनाव किये गये जिसमें नेशनल काँग्रेसने सभी ७५ सीटें जीतीं, पर जम्मू प्रजापरिषदने इसका बहिष्कार किया था।

विलयके बाद घटनाक्रममें तीव्र परिवर्तन हुए। दिल्ली समझौता हुआ जिसके अनुसार पैतृक शासनतंत्रकी समाप्ति, अवशिष्ट शक्तियोंका राज्यको सौंपा जाना, ‘राज्यकी प्रजा’ के लिए विशेष नागरिकता बनाये रखना, राष्ट्रीय ध्वजको अलग और विशिष्ट स्थान देते हुए राज्य ध्वज को फहराना तथा कुछ प्रतिबंधों व सीमाओंके अन्दर मौलिक अधिकारों, राष्ट्रपतिकी आपात्कालीन शक्तियों, सर्वोच्च न्यायालयके क्षेत्रसे सम्बन्धित प्रावधानोंको राज्यपर लागू होना आदि बातें हैं।

पर इसकी आपत्तिजनक बात यह रही कि राज्याध्यक्ष पदकानाम ‘सदरे रियासत’ रखा गया जिसका कि प्रजापरिषदने खुलकर विरोध किया। भारतीय जनसंघने इस आन्दोलनका समर्थन और सहयोग किया। यह जनाब नेहरू का शेख अब्दुल्लाको प्रसन्न करने और उपहार प्रदान करने का अनुपयुक्त रूप था। शेख अब्दुल्लाने कश्मीरको केन्द्रसे पृथक् करनेका आन्दोलन चला दिया, इस कारण उन्हें मंत्रीपदसे हटाकर बखशी गुलाम मुहम्मदको प्रधानमंत्री



बनाया गया। बख्शीने रचनात्मक रवैया अपनाया। शेखके उसका विरोध करनेपर उन्हें जेलभी भेजा गया। दूसरी बार उन्हें मिर्जा अफजल बेग और २२ अन्य लोगोंको पाकिस्तान द्वारा राज्यको अपनेमें जबर्दस्ती मिलाये जानेका षडयन्त्र रचनेके आरोपमें 'कश्मीर कांस्पिरेसी केस' के अन्तर्गत बन्दी बनाया गया।

यहां लेखकने माये-ये-मुकद्दस केसका भी उल्लेख किया है जिसका सम्बन्ध २७ दिसम्बर १९६३ को हजरबल मकबरेसे पैगम्बर मोहम्मदके बाल—पवित्र अवशेष चोरी चले जानेसे है।

इस केसको गुलाम मुहम्मदके विरुद्ध वातावरणके रूप में प्रयोग किया गया। इसलिए नेहरू साहबको कामराज योजनाके अन्तर्गत उन्हें हटाना पड़ा, पर वे अपने समर्थक शमशुद्दीनको विधानसभाका नेता निर्वाचित करानेमें सफल होगये।

२९ फरवरी १९६४ को गुलाम मोहम्मद सादिक प्रधानमंत्री नियुक्त हुए। 'प्रधानमंत्री' और 'सदरे-रियासत' के पद बदलकर क्रमशः 'मुख्यमंत्री' तथा 'राज्यपाल' (गवर्नर) कर दिये गये। सादिकका शेखके प्रति नरम रुख रहा। शेखका पाकिस्तान जाना, बादमें हजके लिए जाना, पर वहांभी अपने राजनीतिक प्रचारको जारी रखना, इसी आशामें चीनके प्रधानमंत्रीसे मिलना-आदि कारणोंसे उनके ९ मई १९६५ को भारत लौटनेपर दिल्ली हवाई अड्डेपर गिरफ्तार करना पड़ा।

लेखकने १९६५ में भारत पाक-युद्ध, १९७१ का बंगला देश मुक्ति आन्दोलन, इन्दिरा गांधी-भुट्टो समझौता, इन्दिराका शेखके बारेमें यथार्थ निर्णय, १९७७ में जनता पार्टीके शासनमें आने, तभी शेख द्वारा कांग्रेसको धोखा देने, जनता पार्टीके संयोजक मौलाना मसूदीके नेतृत्वमें मौलवी फारूकको 'अवामी एक्शन' जैसी निराश पार्टियोंका एकत्र होना, शेख अब्दुल्लाका ३० जून १९७७ के चुनावोंमें कूटनीतिक विजयके बाद पुनः मुख्यमंत्री बनने, १९८२ में शेख की मृत्युके बाद फारूख अब्दुल्लाके मुख्यमंत्री बनने आदि घटनाओंका संकेत किया है। लेखक २६ अप्रैल १९८४ को राज्यपाल बने और ७ जुलाईको उन्होंने फारूक अब्दुल्लाके मंत्रीमंडलको भंग कर दिया। ७ नवम्बर १९८६ को राजीव-फारूख सहमतिके बाद पुनः फारूख मुख्यमंत्री बने। १९८७ में चुनाव हुए।

तीसरा अध्याय 'चेतावनीके संकेत' और चौथा 'मूल कारण' है। लेखक (तत्कालीन राज्यपाल) ने देखा कि १७

अगस्तकी देर शामको जब जनरल जियाकी मौतकी खबर मिली तो श्रीनगरके निचले क्षेत्रमें बड़ी मात्रामें इकट्ठे होकर लोगोंने भारत और रूस विरोधी नारे लगाये। धार्मिक मंच से; मौलवी हमेशा राजनीतिक परामर्श देते हैं। जमाते-इस्लामी, उमत-ए-इस्लाम, इस्लामिक स्टूडेंट्स लीग और अहल-ए-हदीस जैसे दल स्थानीय रीति-रिवाजोंपर लगातार हमला कर रहे हैं और पाकिस्तान तथा बंगला देशके इस्लामीकरणसे प्रेरणा ले रहे हैं।

शेख अब्दुल्ला धर्मको राजनीतिक रंग देनेके लिए सदा प्रयत्नशील रहे। कश्मीर समझौता (१९७५) संधिपर हस्ताक्षर करके सत्तामें पुनः आनेके बाद शेख अब्दुल्ला फिर से धर्मनिरपेक्षताका मसीहा बन गया। शेख अब्दुल्लाकी आन्तरिक इच्छा थी कि अर्द्धस्वतन्त्र राजाकी तरह काम करे और 'शेख शाही' स्थापित करले, जहां उसे पूछनेवाला कोई न हो।

इस प्रसंगमें लेखकने कश्मीर समझौता (फरवरी १९७५) का उल्लेख किया है। इस समझौतेका मुख्य प्रावधान यह है कि धारा ३७० जारी रहेगी और शेष अधिकार राज्य सरकारके पास रहेंगे। लेखककी मान्यता है कि इसका प्रमुख ध्येय शेख अब्दुल्लाको पुनः सत्तामें लाने और इस बातकी झलक देनेसे थी कि रियासतकी स्वायत्ततापर विचार किया जा सकता है। लेखकका स्पष्ट कथन है कि इस परिवर्तनकी आवश्यकता इसलिए पड़ी कि जम्मू-कश्मीरकी जनताका कुछ प्रभावशाली वर्ग अभी भारतीय राष्ट्रवादकी मुख्यधारामें नहीं था।

लेखकने अपनी वेदना व्यक्त करते हुए लिखा—१९७५ में कश्मीर समझौते, विशेष रूपसे १९७७ में कश्मीर राज्य विधानसभाके चुनावोंके बाद राज्यके भारतसे एकीकरणकी प्रक्रिया विपरीत दिशामें चल पड़ी। अखिल भारतीय सेवाओंका ढर्रा ही बदल दिया गया। धारा ३७० को रक्षा दीवारके रूपमें और सुदृढ़ किया गया। इस उल्टी प्रक्रिया का सबसे अधिक स्पष्ट प्रमाण "जम्मू-कश्मीर रीसेटलमेंट एक्ट १९८२" को लागू करना था। "रीसेटलमेंट एक्ट १९८२" का प्रत्यक्ष ध्येय उन कश्मीरियोंको घाटीमें पुनः बसाना था जो या तो पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर या पाकिस्तान चले गये थे। केन्द्र सरकारकी कमजोरी, उसका दुर्लभ मुलपन, उसके दृष्टिकोणमें निरन्तर परिवर्तन, सरकारी लक्ष्योंकी अस्पष्टता, राज्यपालोंका शुतुरमुर्गीय दृष्टिकोण, शेख अब्दुल्ला और उनके परिवारकी असंगत और अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा आदि इन सबका कुल मिलाकर यह



प्रभाव हुआ कि नेशनल कांफ्रेंसको उपर्युक्त रुख अपनानेका साहस बढ़ा। वहाँ जो पोस्टर लगतेथे उसमें से एकपर लिखा था—“ओ खुदा, कश्मीरकी स्वतंत्रताकी आत्माका हनन करने वाले इस क्रूर हाथको तोड़ दे।”

कष्ट लेखकको इस बातका है कि यह सब उस पार्टीने किया जिसके महान् नेता शेख अब्दुल्लाके लिए अक्टूबर १९७७ में राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डीने ‘शेरे कश्मीर’ के साथ ‘शेरे भारत’ कहाथा।

जम्मूके एक उर्दू कवि मुहम्मद अमीन चुगताईने यह बात बहुत पहले ४० के दशकमें ही भांप लीथी। शेख अब्दुल्लाके ‘नये कश्मीर’ के विचारोंका पद्योद्बद्ध कियाहै, उसका भाव यह है—“शेख अब्दुल्लाकी इच्छा है कि नये कश्मीरका निर्माण हो और उसके बाद यह उसकी घरेलू जागीर बन जाये। यदि कोई उसके विरोधमें कुछ कहताहै तो बख्शीकी छड़ी तलवारकी शकलमें बदल जातीहै और विरोधीसे बदला लेतीहै। लेखकने प्रतिपादित कियाहै कि कश्मीरका शासन अपने विरोधीसे बदला लेने व मित्रको धोखा देनेका रहाहै। फारूख अब्दुल्लाको मुख्यमंत्री पदसे हटानेवाली उसकी सगी बहन खालिदा शाह थी। इस अवसर पर बेगम शेख अब्दुल्लाने अपने बेटेका पक्ष लिया और बेटेके लिए नमाज-ए-जनाजा (मरनेपर प्रार्थना) अता की। बेगमने यहभी ऐलान कर दिया कि मेरी ओरसे बेटे मर चुकीहै। राजीव गांधी स्वयं कहते रहे कि फारूख अब्दुल्लाके पाकिस्तान-समर्थक तोड़फोड़ करनेवाले तत्त्वोंसे सम्बन्ध हैं—पर विडंबना यह कि कांग्रेस (ई) ने फारूख अब्दुल्लासे समझौता करके मार्च १९८७ में मिलकर विधानसभाके चुनाव लड़े और उसके साथ साक्षात् सरकार बनायी।

श्री जगमोहनके अनुसार राज्यमें हिंसा और आतंकवादके वातावरणका मूल कारण भूतकालकी निकृष्ट देन। ६ अगस्त १९५५ को मिर्जा अफजल बेगने जनमत संग्रह मोर्चा स्थापित कियाथा। इस मोर्चेकी स्थापना की प्रेरणा शेख अब्दुल्लाकी ही थी। इस मोर्चेका मुख्य ध्येय संयुक्त राष्ट्र संघकी देखरेखमें जनमत संग्रहकी मांगपर जोर देनाथा। १९६५ में भारत-पाक युद्धके समय इस मोर्चे ने पाकिस्तानी घुसपैठियोंके कश्मीर घुस आनेको उचित बतायाथा। इस मोर्चेके पाकिस्तानसे गुप्त सम्बन्ध थे। पाकिस्तानमें प्रकाशित रिपोर्टमें बताया गयाथा कि मोर्चेको १९५४ और १९७४ के बीचके समयमें साढ़े सात करोड़ रुपएकी सहायता दीगयी। जनमत संग्रह मोर्चेने विधान सभाके पहले दो चुनावोंमें भाग नहीं लिया क्योंकि कश्मीरका ‘प्रकर’—नवम्बर’६२—८

संविधान मोर्चेको मान्यता नहीं देता। परन्तु मोर्चेने स्थानीय संस्थाओंके चुनावोंमें भाग लिया और भारी संख्यामें जीते। बंगलादेशके युद्धसे मोर्चेको मनोवैज्ञानिक धक्का लगा।

कश्मीरकी स्थितिके विघटनमें अल्फतह तथा अन्य आतंकवादी संगठनोंका हाथ भी कम गम्भीर नहीं रहा। इन द्वारा गुप्तचरी, बम विस्फोट और विमानोंके अपहरण आदिकी घटनाओंने कश्मीरी युवकोंकी मानसिकताको प्रभावित कियाहै। लेखकका कहनाहै कि जनवरी १९६५ से जनवरी १९७१ तक कश्मीर में ८० के लगभग गुप्त संगठन काम कर रहेथे। स्वयं डॉ. फारूख अब्दुल्ला देशद्रोही गतिविधियोंमें लिप्त थे। राजेन्द्रकुमारी वाजपेयीने कहाथा, “डॉ. फारूख अब्दुल्लाके सम्बन्ध सदासे उन लोगोंसे रहेहैं जो कश्मीरको भारतसे अलग करनेकी सोचतेहैं।”

पांचवाँ अध्याय ‘मूल कारण : अप्रच्छन्न विचार’ है। इस अध्यायमें लेखकने बतायाहै कि पहले शेख अब्दुल्ला और उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्र फारूख अब्दुल्ला और नेशनल कांफ्रेंसने धर्मका उपयोग राजनीतिक उद्देश्योंके लिए किया। नेशनल कांफ्रेंसके नेता अताउल्ला सुहरावर्दी (भूतपूर्व मंत्री और उपाध्यक्ष) राज्य विधानसभामें अपने भाषणमें यह कहाथा—‘मैं पहले मुसलमान हूँ फिर भारतीय। इस्लामको अपने प्रसारके लिए किसीका सहारा नहीं चाहिये। यह अपने आपही फैल रहाहै। विभाजनके समय देशमें केवल साढ़े चार करोड़ मुसलमान थे। भिवंडी, मुरादाबाद, अलीगढ़ और दूसरे क्षेत्रोंमें साम्प्रदायिक दंगों और हजारों मुसलमानोंकी हत्याके बादभी मुसलमानोंकी जनसंख्या १४ करोड़ हो गयीहै।...। लेखकने इसी अध्यायमें जस्टिस मुनीर, गेटे आदि विद्वानोंके इस्लाम विषयक उदार विचार प्रकट किये। सर आरेल स्टाइनने लिखाथा—‘कश्मीरमें इस्लामने अपना मार्ग बलपूर्वक विजयसे नहीं धीमे-धीमे किये गये धर्म परिवर्तनसे बनाया है। इसका प्रसार करनेका मुख्य श्रेय सैयदअली हमदानी और सैयद मुहम्मद हमदानी जैसे धर्म-प्रचारकोंको जाताहै। लेखकका माननाहै कि ऋषियों और सूफियोंकी श्रेणीके जो मूल गुण थे, जो कश्मीरमें इस्लामका भी केन्द्र बिन्दु थे। जिहादका अर्थ है मानवकी भीतरी बुराइयोंके विरुद्ध लड़ाई करना और इसमें भौतिक इच्छाओंका दुनियावी खुशियों को नियन्त्रित करके ही सच्ची विजय प्राप्त कीजा सकती है। कश्मीरमें सूफी आन्दोलनकी प्रमुख ज्योति सैय्यद अली हमदानी (१३१४) थे। हमदानीके अनुसार रचयिता और



प्राणी दो अलग वास्तविकताएं हैं : 'रचयिताका कोई रूप नहीं है—उसकी जैसी कोई चीज नहीं है। जो कुछ भी व्यक्ति उसके बारेमें समझता है, वह उससे परे है।' प्राणी अपने रचयितासे आध्यात्मिक सम्बन्ध रख सकता है। पर उनके पुत्र सैयद मुहम्मद हमदानी उग्र थे। सैयद अली हमदानी द्वारा प्रचारित सूफी धर्मकी तुलनामें ऋषि धर्म अधिक उदार था। इस संघके दो प्रमुख संत थे लालदे और शेख नूरुद्दीन। अबुल फजल भी ऋषियोंकी भूमिकासे प्रभावित हो गये थे। ऋषि लोग मांस नहीं खाते और विवाह नहीं करते। लेखकने कश्मीर इस्लामके—ध्यान-मनन, तप, आत्मत्याग, संयम, सादापन, सह-अस्तित्व इत्यादि—जोकि हिन्दू, बौद्ध, और जैन धर्मके भी सर्वाधिक मान्य गुण हैं, विशेषताएं निर्दिष्ट की हैं। पर बादमें जमात-ए-इस्लामी जैसे संगठनोंने कश्मीरी राजनीतिक स्वभावको धार्मिक उन्माद की ओर मोड़ दिया। लेखकने जमाते इस्लामीके धार्मिक उन्माद उत्पन्न करनेके विशाल प्रयत्नोंका अच्छा चित्र खींचा है। यह धर्मनिरपेक्षता और समाजवादको नहीं मानती। वह भारतके तथाकथित भारतीय उपनिवेशवाद और ब्राह्मण साम्राज्यवादकी भर्त्सना करती है। जमात-ए-इस्लामीने मुकदमा-ए-इलटकमें लोगोंको कहा—'तुम, कश्मीरी मुसलमान राष्ट्रके तुम लोग, कबतक आसानीसे बनाये नये गुलामोंकी सूचीमें स्वयंको गिनवाते रहोगे।...पर तुमको लड़ना है इस्लामके नामपर।'।

प्राथमिक कक्षाओंमें लगी एक किताबके पद्यांशके अनुसार—'हम कश्मीरी हैं और हमारा देश कश्मीर है। यह भारत, चीन और ईरानसे घिरा है। शेख अब्दुल्लाने जून, १९७७ में, डॉ. फारूख अब्दुल्लाने जून, १९८३ में और जी.ए. शाहने दिसम्बर १९८४ में इसी नीतिका सहारा लिया। लेखकने यह सभी जानकारी उस समयके प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी व भारत सरकारको दे दी थी।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि कश्मीरमें अखिल भारतीय सेवाएं प्रभावहीन होगयीं। न्यायमें प्रायः लापरवाही बरती जाने लगी। पक्षपातका एक निदर्शन पुलिसके डायरेक्टर जनरलके चयन-प्रक्रियाके व्यौरसे मिलती है। उन्होंने बताया कि मुख्यमंत्रीके निर्देशानुसार उन्होंने ७० प्रतिशत उम्मीदवारोंको योग्यताके आधारपर तथा ३० प्रतिशत उम्मीदवारोंको सत्ताधीन पार्टीके नेताओंके परामर्श पर चुननेका निर्णय लिया था। भ्रष्टाचारका एक अन्य निदर्शन लेखकको तब देखनेको मिला जब उन्होंने देखा कि

२ मई १९८८ को जम्मूमें बच्चोंके अस्पतालकी एक तिस-जिला इमारत ताशके पत्तोंसे बने घरकी तरह बिखर गयी। लेखकको दुःख इस बातका है कि केन्द्रीय सरकारने तो सामान्यतः कश्मीरमें फैले भ्रष्टाचारसे आंखें ही फेर ली थीं।

लेखकने बताया कि 'लाल किताब' नामसे प्रकाशित एक लघु पुस्तिकामें शेख अब्दुल्ला और उनके परिवार द्वारा किये गये भ्रष्टाचारके कृत्योंकी सूची थी। अस्सीके दशक के प्रारम्भमें यह गुप्त रूपसे पढ़ी जाती थी। आबिदा हुसैनकी अपनी पुस्तक 'शेख अब्दुल्लाका जीवन' में यह दर्ज किया है—'शेख अब्दुल्ला और उनके परिवारके पास, सत्तामें आनेसे पूर्व, थोड़ी-ही सम्पत्ति थी। आज उनकी अचल सम्पत्तिका मूल्य ही ३० करोड़ रुपयेसे अधिक है।'।

लेखकको कश्मीरके बिगड़ते पर्यावरणपर विशेष रूपसे चिन्ता हुई। कहींका भी पर्यावरण उसकी आध्यात्मिक सुदृढ़ताका परिचायक होता है। पर्यावरणके मुद्देमें संस्कृति, मूल्यों, राजनीति और समाजके आर्थिक स्वरूपके मुद्दे भी सम्मिलित हैं। अबुलफजलने प्रसिद्ध डल झीलको "धरतीका स्वर्ग" का नाम दिया था। पर अब लेखकने देखा कि डोंगोंमें रहनेवाले नाविक या हाउसबोटके निवासी सारा मल और गन्दगी झेलम नदी या डल झीलमें छोड़ देते हैं। पर्यावरणकी समाप्ति बाढ़ों, जंगलके नष्ट होने आदिके रूपमें भी प्रकट हो रही है। लेखकको इस बातसे भी वेदना हुई कि जम्मूमें डोगरा आर्ट गैलरी, जो कलाका और पुराने महलोंका संरचनात्मक अद्भुत नमूना है, उपेक्षित रहा है।

लेखकने लद्दाखकी स्थितिपर भी प्रकाश डाला है। इसका क्षेत्रफल ६८,००० वर्ग कि.मी. है जिसकी ऊंचाई ४,००० मीटर है। १९८१ की जनगणनाके अनुसार इसकी जनसंख्या १,२०,००० है। चीन और पाकिस्तान दोनोंके साथ इसकी एक लम्बी सीमा है। युद्धनीतिकी दृष्टिसे इसकी स्थिति अत्यधिक महत्वपूर्ण है। पर आज लद्दाखके लोग यह अनुभव करते हैं कि उनकी प्राचीन संस्कृतिकी विनम्रता और सहिष्णुताको कायरता और असहायता समझा जा रहा है।

उन्होंने बताया है कि लद्दाखके स्कूलोंमें उत्तीर्ण होनेवाले बच्चोंकी संख्या शून्य थी क्योंकि राज्य सरकारने वहां अध्यापक नियुक्त करनेकी चिन्ता ही नहीं की। 'उर्दू' को कार्यकारी भाषाके रूपमें थोप दिया गया जबकि 'बोधि' की उपेक्षा की गयी।। लेह जिलेके २५ स्कूलोंमें से केवल



कुछ स्कूलोंमें बोधि भाषाके अध्यापक थे। लद्दाखियोंकी दूसरी शिकायत यह थी कि १९८९ में डॉ अब्दुल्ला मन्त्रिमण्डलमें ३० मंत्री थे, लेकिन एकभी उनके क्षेत्रका नहीं था।

छठे अध्यायका शीर्षक है—मूल कारण : अनुच्छेद ३७०। 'अनुच्छेद ३७०' के अनुसार न तो राष्ट्रपति इस राज्य के संविधानको ही रद्द कर सकता है न ही अनुच्छेद ३६५ के अन्तर्गत इसे कोई निर्देश दे सकता है। भारतका संविधान केवल एक नागरिकताको मान्यता देता है। परन्तु जम्मू-कश्मीरके नागरिक दुहरा लाभ उठाते हैं—भारतके नागरिक के रूपमें, दूसरा जम्मू-कश्मीरके नागरिकके रूपमें। लेखकने धारा ३७० के विभिन्न दुष्प्रभावोंका उल्लेख किया है। उसके अनुसार (क) यदि जम्मू-कश्मीर राज्यकी कोई महिला किसी अन्य राज्यके नागरिकसे विवाह कर लेती है तो वह जम्मू-कश्मीरमें अपनी सारी सम्पत्ति खो देगी, यहांतक कि वह अपने माता-पिताकी पैतृक सम्पत्तिका अधिकार भी खो बैठेगी। (ख) सरकारी भवनोंपर राज्य और राष्ट्र दोनोंका झण्डा फहराया जाता है। (ग) नगर भूमि परिसीमन अधिनियम १९७० पूरे भारतमें लागू है पर इसे जम्मू-कश्मीर पर लागू नहीं किया जा सकता। (घ) राजनीतिक कुलीन-तंत्र स्थापित करनेके लिए भी ३७० का दुरुपयोग किया गया है। उदाहरणके लिए, विधानसभामें दल-बदल रोकने का केन्द्रीय विधान जम्मू-कश्मीरमें पूर्णतया लागू किया गया।

लेखकने अनुच्छेद ३७० के पक्षमें दिये जानेवाले इस तथ्यको आधारहीन बताया है कि इससे वहांकी संस्कृति सुरक्षित रहती है। उसका कहना है कि यदि ३७० से कश्मीर के सांस्कृतिक अस्तित्वका संरक्षण करनेमें सहायता मिलती है तो ऐसा विधान सभी राज्योंके लिए होना चाहिये था। लेखकका स्पष्ट अभिमत है कि ३७० के कारण हम भारतीय पैसेसे एक सल्तनत, शेखवाद या लघु पाकिस्तान पाल रहे हैं। यह उल्लेखनीय है कि जम्मू-कश्मीरके लिए प्रति व्यक्ति केन्द्रीय अनुदान १९८९-९० में ११५२ रुपये था, जोकि भारतके प्रत्येक प्रदेशसे अधिक है।

जम्मू क्षेत्रके लोगोंकी यह पुरानी शिकायत रही है कि अनुच्छेद ३७० और राज्य संविधानकी आड़में घाटीके नेताओं ने नीतियों और निर्णयोंको कुछ इस प्रकार तोड़ा मरोड़ा है कि राज्य सत्ताका ढांचा स्थायी तौरपर कश्मीर क्षेत्रके पक्षमें झुका रहता है। जम्मूका कुल क्षेत्र कश्मीरसे ७० प्रतिशत बड़ा है और यहां राज्यकी ४५ प्रतिशत जनसंख्या

रहती है। पर राज्य विधानसभाकी ७६ सीटोंमें से जम्मू की केवल ३२ सीटें हैं और कश्मीरकी ४२। जबकि जम्मू में वैष्णो देवीके तीर्थस्थलपर ही लगभग बीस लाख धार्मिक यात्री या पर्यटक सुविधाएं प्रदान करनेके लिए राज्य द्वारा लगभग न के बराबर व्यय किया जाता है। इसी प्रकारका सौतेला व्यवहार लद्दाखके साथ भी होता है।

लेखककी मान्यता है कि अनुच्छेद ३७० की समाप्ति गरीबी और पिछड़ापन हटानेमें सहायक होगी जिससे कश्मीरी संस्कृति पुनर्जीवित होगी। उसका स्पष्ट अभिमत है कि कोईभी संस्कृति अकेलेही विकसित नहीं हो सकती। इसके लिए इसका दूसरी संस्कृतियोंसे सम्पर्क आवश्यक है।

लेखकका मत है कि अनुच्छेद ३७० को हटानेमें जो संवैधानिक अड़चनें बतायी जाती हैं, वे निराधार हैं क्योंकि संविधानके अनुसार (१) नाम और भारतका क्षेत्र भारत राज्योंका एक संघ होगा, (२) राज्य और क्षेत्र प्रथम अनुसूचीमें दिये गयेके अनुसार होंगे, (३) भारतके क्षेत्र (क) राज्योंका क्षेत्र (ख) केन्द्र शासित प्रदेशोंका क्षेत्र जैसाकि प्रथम अनुसूचीमें बताये गये हैं, (ग) और ऐसे अन्य क्षेत्र जो प्राप्त किये जायेंगे, इसके अन्तर्गत आते हैं। लेखककी मान्यता है कि अनुच्छेद ३६८ के अन्तर्गत केन्द्रीय संसद द्वारा जो प्रदेशके लोगोंका भी प्रतिनिधित्व करती है, संविधानको संशोधित किया जा सकता है।

३५५ के अनुसार भारतीय संघपर बाहरी आक्रमण या आन्तरिक अशांतिकी परिस्थितिमें राज्यकी सुरक्षाका कर्तव्य-भार भी केन्द्रपर है। पर अनुच्छेद ३७० भारतीय संविधान द्वारा इस कर्तव्यको पूरा करनेमें बाधक है, तो इसे रद्द ही करना होगा। यह भी कहा जा सकता है कि ३७० अनुच्छेदकी तीव्रता को ३५९ को रद्द करके भी समाप्त किया जा सकता है। यदि यह रद्द होती है तो धारा १९ (१) (ई) और (जी) का पूरा पूरा प्रयोग होगा। धारा १९ (१) (ए) और (ई) घोषणा करती है—'हर नागरिक को'—(अ) भारतके किसीभी क्षेत्रमें रहने और बसने तथा (आ) कोईभी पेशा, व्यवसाय या व्यापार करनेका अधिकार होगा। लेखकने अनेक राजनीतिज्ञों व न्यायाधीशोंके उद्धरण देकर अपनी बातकी पुष्टि की है।

इस अध्यायमें लेखकने राज्यपालके अधिकारसे फारूख अब्दुल्लाको हटानेको न्यायोचित सिद्ध करनेके लिए अनेक तर्क दिये हैं। लेखकने संवाददाताओंको बताया था कि एक आदर्श राज्यपाल वह है जो जितना संभव हो कम



बोले और अधिकसे अधिक पढ़े। उसने एक अन्य अवसर पर कहा कि राज्यपाल उस व्यक्तिकी भांति है जिसके सिर पर ताज है और पैरोंमें वेड़ियां।

गोपनीयताके कारण गवर्नरको चुप्पी साधनी पड़ती है। एकही प्रकारकी परिस्थितियोंमें भिन्न राज्यपालोंने अलग-अलग प्रकारके निर्णय लिये हैं। इस संबंधमें सुनहरा सिद्धान्त यह है कि राज्यपालकी निर्णायक स्थितिको राष्ट्रीय सुरक्षा, अखंडता और जनताके कल्याणके दृष्टिकोणसे जांचा जाये। लेखककी मान्यता है कि जम्मू कश्मीरका राज्यपाल इस संवैधानिक व्यवस्थाके भंग होनेपर राज्यका प्रशासन जम्मू और कश्मीरके संविधानकी उपधारा ६२ के अन्तर्गत अपने हाथमें ले सकता है। और वह भारतके राष्ट्रपतिकी सहमति से इस सम्बन्धमें उद्घोषणा जारी कर सकता है। उसके लिए संविधानके अनुच्छेद ३५६ के अनुसार राष्ट्रपतिकी विवरण या प्रतिवेदन बनाकर भेजनेकी आवश्यकता नहीं है।

लेखकका कहना है कि अधिकांश राज्योंके राज्यपाल मुख्यमन्त्रियोंके अनुचित कार्योंके प्रति उपेक्षा अथवा मूक दर्शककी भूमिका अपना लेते हैं, पर लेखक इस प्रकारकी भूमिका अपनाना नहीं चाहते थे। उन्होंने इस अध्यायमें फारूख अब्दुल्लाके साथ हुए अपने व्यवहारको उद्धृत कर उन्हें उनके पदसे हटाना न्यायोचित माना है। □

(आगामी अंकमें समाप्त)

## इतिहासकी पुनर्व्याख्या

लेखक मंडल : रोमिला थापर, नासिर तैयब जी,  
माइकल डब्ल्यू माइस्टर, आर. नाथ,  
सतीशचन्द्र, ज्ञानेन्द्र पाण्डे, विपिनचंद्र  
समीक्षक : भगवान सिंह

हमने इतिहास लिखना अंग्रेजोंसे सीखा और लगभग उसी रूपमें सीखा जिस रूपमें वे लम्बे समयतक हमारा इतिहास लिखते-लिखाते और समझाते रहे थे। इतिहासके इस विशिष्ट ढंगके लेखनके पीछे उनके कुछ उपनिवेशी स्वार्थ भी थे और ये ही भारतीय इतिहास लेखनकी दृष्टि निर्धारित करते थे अतः इतिहास एक वस्तुपरक विवेचनके स्थान पर भारतीय मानसिकताको उपनिवेशी हितोंके अनुरूप ढालने

का काम अधिक करता था। कहे, उन्होंने भारतका इतिहास इतिहासेतर आग्रहोंसे लिखनेकी परम्परा डाली जो आज तक किसी-न-किसी रूपमें चली आ रही है। परन्तु यह काम उन्होंने इतनी सूझ-बूझ और परिश्रमसे किया था कि उनके लेखनकी प्रासंगिकता आजभी समाप्त नहीं हुई है जबकि राष्ट्रीय और वैज्ञानिक इतिहासके नामपर जो काम हमारे इतिहासकारोंने पिछले कुछ दशकोंमें किया है उससे इतिहास की समझही कुंठित नहीं हुई है अपितु एक विधाके रूपमें इतिहासकी विश्वसनीयतापर भी संदेह किया जाने लगा है।

कोई विज्ञान सबसे पहले अज्ञातको जाननेके आग्रहसे आरम्भ होता है, और जादू टोना ज्ञातव्यको छुपानेके आग्रह के साथ। जाननेकी भूख और विचारोंको व्यक्त करनेके अधिकारको महापातक बताकर उस सत्यको और इसका उद्घाटन करनेवालोंको समाजके लिए एक खतरा बतानेका काम दूसरी श्रेणीके लोग करते हैं और यह एक विचित्र बात है कि उनके पास तथ्योंके स्थानपर सिद्धांतपर बल अधिक रहता है। सिद्धांत और तथ्यकी लड़ाई नयी नहीं है। इसका लम्बा इतिहास है। भ्रामक सिद्धांत भ्रामक तथ्योंसे अधिक खतरनाक सिद्ध होता है। सच कहे तो भ्रामक तथ्य होतेही नहीं, या तो वे तथ्य होते हैं या अतथ्य। पर भ्रामक सिद्धांत होते हैं और इस बातका निर्णय करना प्रायः मुश्किल होता है कि सिद्धांत सही है, या नहीं। और जहां सिद्धांत सही होते हैं वहांभी जब तब उनका प्रयोग स्वहित और आत्मसम्मोहन के साथ किया जाता है और इसलिए वे जितने सही होते हैं उतनेही खतरनाक बन जाते हैं। तथ्य अक्सर अधूरे होते हैं, एकांगी होते हैं और उनका निराकरण पूरे तथ्यको सामने रखने मात्रसे हो जाता है। रोचक बात यह है कि अधूरे और एकांगी तथ्योंको लेकर भी सिद्धांत गढ़े जा सकते हैं और गढ़े जाते हैं फिर भी यह निर्विवाद है कि सिद्धान्त विविध पहलुओंसे एकत्र किये गये विपुल तथ्योंके सार होते हैं अतः सिद्धांतसे अनमोल पढ़ने वाले तथ्य एक भिन्न व्याख्याकी मांग करते हैं। इतिहासके विषयमें एक स्वस्थ और संतुलित दृष्टि अपनानेके लिए इन प्रश्नोंसे टकराना आवश्यक है और राजकमल द्वारा प्रकाशित पुस्तक इतिहासकी पुनर्रचनाको यदि अकादमिक तकाजोंको प्रधानता देकर संपादित किया गया होता तो यह इस दृष्टि से महत्वपूर्ण और प्रासंगिक मानी जा सकती थी। इसका प्रकाशन एक ऐसे समयमें हुआ है जब इतिहासको राजनीतिक और व्यक्तिगत कारणोंसे विकृत करनेके प्रयत्न कई ओरसे हो रहे हैं और एकके द्वारा कीगयी तोड़-मरोड़का प्रयोग दूसरी तरहकी तोड़-मरोड़का औचित्य सिद्ध करनेके

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, श्री नेताजी सुभाष मार्ग,  
नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १४३; डिमा. ६१;  
मूल्य : ६०.०० रु.।



लिए किया जाने लगा है और इसके अपवाद कम देखनेमें आ रहे हैं। अपवाद होनेका गौरव इस पुस्तकमें सम्मिलित निबंधकारोंको भी नहीं दिया जा सकता।

“इतिहासकी पुनर्व्याख्या” में रोमिला थापर, नासिर तैयब जी, माइकल डब्ल्यू माइस्टर, आर. नाथ, सतीशचंद्र, ज्ञानेंद्र पांडे, हरबंस मुखिया और विपिनचंद्रके निबंध प्रकाशित हैं। पुस्तक दो खण्डोंमें विभक्त है। इतिहासका मिथकीकरण खंडमें प्रकाशित सभी निबंध पहले **सेमिनार** नामक पत्रिकाके एक विशेषांकमें और सांप्रदायिकता और भारतीय इतिहास-लेखनमें प्रकाशित निबंध अन्य पत्रोंमें और पी पी एच द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं और जो लोग अंग्रेजीका ज्ञान रखते हैं वे इन्हें पढ़ चुके हैं और मोटे तौर पर पुस्तककी अन्तर्वस्तुसे परिचित हैं। यदि विशेष महत्त्व है तो इन्हें एक साथ पढ़नेका और फिर हिंदीमें पढ़नेका। पुस्तक के पहले खण्डका अनुवाद नरेश नदीमने और दूसरेका बद्रीनाथ तिवारीने किया है।

क्योंकि प्रकाशित निबंध सामान्य समाचारपत्रोंमें, आम पाठकोंके लिए, एक खास अभियानके अन्तर्गत लिखे गये और प्रकाशित हुए थे, अतः पत्रकारिताकी सीमाएं लगभग सभी निबंधोंमें प्रकट हैं—इनमें इतिहासको विकृत करके उसका सांप्रदायिक उपयोग करनेके विरुद्ध एक बौद्धिक अपील अधिक और प्रमाणों और गहन विश्लेषणपर बल कम है। कहीं इनमें तात्कालिकताका दबाव अधिक और स्थायित्वकी चिन्ता कम है जो समाचारपत्रोंमें प्रकाशित होते रहनेवाले लेखोंकी एक सीमा है। अपनी विशिष्ट प्रकृतिके कारण अखबारी लेखन काल-प्रवाहमें समर्पित दीपमालाकी तरह होते हैं। यही कारण है बहुत प्रखर संपादक और अग्रलेखका भी अपने ऐसे लेखोंको पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं कराते। प्रस्तुत लेखकोंने भी स्वयं ऐसा नहीं किया है। यह काम प्रकाशकने स्वयं किया है। जो भी हो पुस्तकाकार प्रकाशित होनेपर भी इनका महत्त्व न्यून ही रह जाता है। इसका एक कारण तो यह है कि पुस्तकका कोई संपादक नहीं है और बने बनाये माल को केवल अनुवाद कराकर पुस्तक तैयार कर लेनेकी जल्दी में प्रकाशकोंने सुसंपादित पुस्तकके महत्त्वकी ओर ध्यानही नहीं दिया है। जो भी हो अन्य बातोंके साथ लेखकोंसे यह अनुरोध कर सकता था कि इन्हें पुस्तकाकार प्रकाशनके योग्य बनानेके लिए वे इनमें अपेक्षित परिवर्तन संशोधन कर लें और संदर्भ तथा टिप्पणियां जोड़ लें। पहले खंडके निबंधों के साथ गहन अध्ययनके लिए संदर्भके नामपर कुछ पुस्तकों के नाम दिये गये हैं पर वे मुख्यतः पुरानी हैं जिनके नाम ‘प्रकर’—नवम्बर’९२—१२

से इतिहासके सामान्य विद्यार्थी सुपरिचित हैं। नवीनतम पुस्तकोंके नामपर रोमिला थापरके निबंधमें आलिचनकी १९८२ में प्रकाशित कृति तथा १९८४ में प्रकाशित उनकी अपनी पुस्तक, पासेल की १९८२ में प्रकाशित पुस्तक, तैयब जीके निबंधमें सेमिनार व दि मार्क्सिस्टमें १९८६ में प्रकाशित पांड्यन तथा रणदिवेमें निबंध, ईसंचिककी १९८६ में प्रकाशित पुस्तक, माइस्टरके निबंध में १९८४ में स्वयं उनके द्वारा संपादित पुस्तक तथा १९८८ में प्रकाशित शिकोहीकी पुस्तक, आर. नाथके निबंधमें १९८५ में प्रकाशित उनकी पुस्तक, सतीशचंद्र के निबंधमें १९८६ में प्रकाशित मुजफ्फर आलमकी पुस्तक, ज्ञानेंद्र पांडेके निबंध में इकनामिक ऐंड पोलिटिकल वीकलीके १९८६-८९ के अंकों तथा ३१ अगस्त १९८९ के इंडिया टुडेके अंक और वेक्करके १९८४ की पुस्तकको पढ़नेका सुझाव दिया गया है। आर.नाथ और ज्ञानेंद्र पांडेने कम-से-कम अपने लेखोंमें कुछ हवाले उद्धरण सहित दिये हैं पर शेष लेखोंमें ग्रंथों और लेखोंके किन स्थलोंका लेखमें आये किन विवरणोंसे संबंध है यह पता लगाना कठिन है। दूसरे खंडमें प्रकाशित निबंधों में संदर्भ ग्रंथों और हवालोंका जिक्र तक नहीं है अतः लेखों में एक वायवीयता बनी रहती है और यह विश्वास करके चलता पड़ता है कि जो कुछ कहा गया है उसका कोई ठोस आधार होगा ही। कम-से-कम जिन्होंने इन्हें लिखा है उनकी सर्वोत्तम जानकारी और विश्वासके अनुसार लेखमें लिखी बातें सच तो होंगी ही।

नयी सामग्रीके दारिद्र्य या जैसा कि दूसरे खंडमें देखने में आता है, इसके अभाव और ठोस उद्धरणोंके न होनेसे आयी वायवीयताके संदर्भमें सेमिनारके संपादक द्वारा लिखी गयी समस्याकी रूपरेखाका निम्न कथन, बहुत रोचक है, “चूंकि ऐतिहासिक विश्लेषण एक निरन्तर चलती रहनेवाली प्रक्रिया है, इसलिए उन पुराने सिद्धांतोंका जारी रहना, जिनका महत्त्व अक्सर अतीतमें प्रमाणोंके अभावके कारण सीमित रहता है, मिथक निर्माणका एक रूप बन जाता है जिससे ऐतिहासिक व्याख्याकी जगह कोई और उद्देश्य पूरा होता है। दूसरी ओर पूर्वकल्पित निष्कर्षोंका उपयोग प्रमाणके चयनको निर्धारित करता है और उन प्रमाणोंपर ध्यान नहीं दिया जाता जो इन निष्कर्षोंके अनुरूप नहीं होते। फिर कई लोग संदिग्ध प्रमाणोंका भी सहारा लेते हैं और कभी मनगढ़ंत प्रमाणोंका भी।” सच तो यह है कि यह बात जिन असंदिग्ध और काल्पनिक तथा बास्तविक लेखों और पुस्तकोंको ध्यानमें रखकर



लिखी गयी है और जिनका हम केवल अनुपाय लेना सकते हैं, उनपर तो लागू होती ही होगी, स्वयं इन लेखों में से अनेक पर लागू होती है। ऐसा लगता है कि कुछ लेख तो जिन संभावित पुस्तकों को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं उन्हें लेखक ने देखा तक नहीं है। ये लेख अधिकतर सुनी-सुनायी और कुछ काल्पनिक बातों के आधार पर लिखे गये हैं और इनमें गम्भीर अन्तर्विरोध और प्रमाद देखने में आता है। ऐसे लेखों में रोमिला थापर के दोनों खंडों में सम्मिलित एक-एक निबंध भी हैं। उन्हें इस बात का बोध तक नहीं है कि कुछ कृतियों में उनके लेखों में व्यक्त अन्तर्विरोध को छोड़कर आर्य समस्या पर वह सब कुछ है जिसे वह अपेक्षित मानती हैं। उदाहरण के लिए वे मानती हैं कि आर्य "शब्दको जातीय अर्थ में लेना एक गलती थी, इसी प्रकार द्रविड़ व आस्ट्रो-एशियाई-भाषी समूहों को जातियों के रूप में देखना गलत था, यह गलत मान्यता थी कि वर्णका त्वचा का रंग अर्थ करना और आर्य और दास को दो जातियों के रूप में देखना गलत था, भारत पर आर्यों के आक्रमण की मान्यता गलत थी, "असल में ईसा पूर्व दूसरी सहस्राब्दी के दौरान इस उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिम हिस्से में बड़े पैमाने पर हुए किसी आक्रमण का कोई प्रमाण नहीं मिलता।" भारतीय "समाज का चित्रण उन सुन्दर ग्राम समुदायों के जीवन के रूप में" करना और यह दिखाना कि उनमें लड़ाकूपन का अभाव था, गलत था, इत्यादि, और इसके बावजूद यदि उन्हें ऐसी किसी पुस्तक का पता नहीं है जिसमें उनकी इन मान्यताओं की तो पुष्टि होती ही है उन भ्रमों का निवारण भी होता है जिनके कारण तथाकथित आर्य समस्या सबसे बड़ी पहली मालूम होती है तो न तो उन्हें अपने विषय के संबंध में अद्यतन जानकारी है न ही उनकी दृष्टि स्पष्ट है। अखबारी लेखन कामचलाऊ लेखन है और उसे देखते हुए उनके उद्गार क्षम्य हैं। यदि यही बात पुस्तकाकार प्रकाशन के लिए लिखनी होती तो संभवतः वह उस पुस्तक को भी देखना पसंद करतीं जिसने एक नया आतंक पैदा कर दिया है और तब वह संभवतः इस लेख के स्थान पर कोई अन्य लेख लिखतीं या इसे किसी अन्य रूप में लिखतीं। जब हम निश्चित उद्धरणों की बात कर रहे थे तो केवल रस्मी ढंग से नहीं। जब हम उद्धरण देते हैं तो यह पता चल जाता है कि जो कुछ कहा जा रहा है वह पुस्तक पढ़ कर कहा जा रहा है और जिन बातों पर आपत्ति की जा रही है वे सचमुच उस ग्रंथ में लिखी गयी हैं। उनमें भूत उतारने वाले ओझों की तरह काल्पनिक सवालों से काल्पनिक लड़ाई नहीं लड़ी जाती। यदि लेखों में इस अपेक्षा की पूर्ति न की गयी

हो और दावे सिद्ध नहीं होकर किये गये हों तो मिथक बनाने के दोषारोपण से इनकी रक्षा कैसे की जा सकती है और इस मिथकनिर्माण में प्रकाशक को मुख्य रूप से दोषी सिद्ध होने से कौन बचा सकता है। कारण जहाँ लेखक या संपादक होता है वहाँ दायित्व उसका होता है, जहाँ नहीं होता वहाँ एकमात्र प्रकाशक का।

पुस्तक में प्रकाशित सभी लेख एक तरल परिस्थिति में लिखे गये थे जब राममंदिर और बाबरी मस्जिद विवाद पर मंडल कमीशन की असामयिक घोषणा से आहत सर्वजनवाद ने अपना फन तान लिया था और एक विशेष राजनीतिक दल ने मुक्तिबोध के शब्दों में 'यहाँ गोली चल गयी वहाँ आग लग गयी' वाला वातावरण बना दिया था और रोज नयी शर्तें रखकर उस सरकार के अस्तित्व को समाप्त करने पर कटिबद्ध था जिसके साथ उसका चुनावी समझौता था और धर्मनिरपेक्षता के प्रसार की अपनी विशिष्ट समझ के चलते इतिहासकार और उस सरकार के प्रवक्ता अपने भाषणों से वातावरण को सरगर्म बनाये हुए थे जो भी हिन्दुत्व को खुराक दे रहा था।

इतिहास का एक निष्कर्ष यह भी है कि बहुत बुद्धिमान लोगों ने बहुत सोच-समझकर किये गये निर्णयों में भी बहुत बड़ी गलतियाँ की हैं। अतः हम उस समय इस बात का निर्णय नहीं कर सकते थे कि उस समय इस प्रकार के लेखों का औचित्य था या नहीं। हमारी अपनी समझ अवश्य यह थी कि यह समय इतिहास के सत्यासत्य विवेचन का नहीं इतिहास के प्रति एक सही दृष्टिकोण अपनाने का है कि हम समाज को मध्यकाल में वापस ले जाना चाहते हैं या वर्तमान चुनौतियों का सामना करते हुए आगे ले जाना चाहते हैं और केवल इस नुस्ते से विरोध करते हुए पश्चगामी प्रवृत्तियों के विरोध में समस्त बुद्धिजीवियों का समर्थन जुटाने का है और इस विषय पर समय-समय पर लिखा भी था। कहीं इतिहास पर विवाद करके उन प्रवृत्तियों की भयावहता को उजागर नहीं किया जा सकता था क्योंकि पक्ष-विपक्ष में बहुत कुछ ऐसा कहा जा सकता था जिसमें सामान्य पाठक के लिए सही-गलत का फैसला करना कठिन होता और हुआ भी। परन्तु मध्यकालीन प्रवृत्तियों को उभारने और आधुनिक चुनौतियों का सामना करने के विकल्प में दुविधा का प्रश्न नहीं था और इससे विचारकों के ऊपर पक्षधरता का आरोप लगाकर उसका लाभ भी नहीं उठाया जा सकता था जो उठाया जा रहा था। इसमें केवल हिंदू सम्प्रदायवादियों का भी चेहरा सामने आता था अपितु मुस्लिम सम्प्रदायवादियों का भी चेहरा सामने आता था जो अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए केवल भारत में ही



नहीं सभी पिछड़े देशोंमें अनेक रूपमें मध्यकालिकी वापसी के लिए प्रयत्नशील हैं और जोभी हिंदुत्वके उभारके लिए पर्यावरण तैयार कर रहे हैं। परंतु अपनेको औरोंसे अधिक धर्मनिरपेक्ष सिद्ध करनेकी होड़में इतिहासकार कूदकर समस्या के केन्द्रमें आगयेये और बने रहना चाहतेये। तत्कालीन शीर्ष जनोंकी दृष्टिभी तात्कालिक लाभपर थी और धर्मनिरपेक्षताकी अपनी खास समझके चलते वे भी साम्प्रदायिकताको उत्तेजक घोषणाओंसे खुराक दे रहेथे और उन्हीं की दृष्टिमें बने रहनेकी चिंता इतिहासकारोंको कातर कर रहीथी और वे अपना इतिहास लेकर वर्तमानसे लड़ रहेथे। आज नरसिंह रावको चाहे जिस बातका दोष दिया जाये इतिहासकार चुप हैं। हो चाहे जो, पर इस बातकी आशा बनी हुईहै कि इस विकट समस्याका कोई हल निकल सकताहै। आजके दिन प्रकाशकोंको यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि इस प्रकारके लेखोंने सांप्रदायिकताको कम करने में सहायता नहीं कीथी और इतिहासकार अकादमिक निष्पक्षतासे अपने कामको स्तरीय बनाकर ही इतिहासके विरूपणका उत्तर दे सकताहै, एक प्रकारके विरूपणसे दूसरी प्रकारके विरूपणका नहीं। दोनों ऊपरसे देखनेमें विरोधी होते हुएभी सारतः एक हैं और इतिहासके विरूपण उन्हीं की सहायता करतेहैं जो इतिहासके विरूपणको राजनीतिक

लाभके लिए प्रयोग करवा चाहतेहैं। यदि लेखकोंकी समझ में इस बीच यह बात आ भी गयीहो तो इस गलतीको भुनानेकी चिन्ता करनेवाले व्यवसायी प्रकाशककी समझ में यह बात कौन उतार सकताहै।

आजकी परिस्थितियोंमें इन लेखोंका न तो तात्कालिक मूल्य है न ही इनका इतिहासकारोंके लिए कोई महत्त्व है क्योंकि इन्हें गंभीर और अद्यतन बनाये बिना अधीरतासे लेकर प्रकाशित कर दिया गयाहै। जिसके लिए दोष इतिहासकारोंका नहीं अपितु प्रकाशकका है जिसने संपादनका खर्च बचानेके लिए—मुफ्त हाथ आये तो बुरा क्या है—वाले नुस्खेपर काम करते हुए एक पुस्तक तैयार कर लीहै।

इन सीमाओंके होते हुएभी आर. नाथका निबंध—ताजका मकबरा—बहुत सूचनापरक है और यह इतिहास को विकृत करनेके उन प्रयत्नोंका अच्छा उत्तर मात्र अपनी तथ्यपरकताके कारण बन जाताहै जिसमें मध्यकालकी सभी वास्तुकृतियोंको हिंदू बताकर एक बाजार खड़ा किया गयाहै परंतु इसका भी कारण यह है कि यह १९६९, १९७२ और १९८५में उनके द्वारा लिखे गये निबंधोंका ही प्रतिरूप लगता है। कहे, यह आपाधापीमें लिखा गया निबंध नहीं है। □

## ‘प्रकर’ विशेषांक

### ‘पुरस्कृत भारतीय साहित्य’

‘पुरस्कृत भारतीय साहित्य’ विशेषांक सन् १९८३ से प्रतिवर्ष प्रकाशित हो रहेहैं, जिनमें प्रतिवर्ष देशभर की सभी भाषाओंकी पुस्तकोंकी समीक्षा और परिचय दिया जाताहै। भारतीय भाषाओंके तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययन तथा भारतीय साहित्यकी एकात्मकताकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण।

सन् १९८३ (पृ. ११२) २०.०० रु.

सन् १९८४ (पृ. ९६) २०.०० रु.

सन् १९८५ (पृ. ९६) २०.०० रु.

सन् १९८६ (पृ. १२६) २५.०० रु.

सन् १९८७ (पृ. १०८) ३०.०० रु.

सभी अंक एक साथ मंगाने पर डाकव्यय की छूट २५०.०० रु.

सन् १९८८ (पृ. १००) ३०.०० रु.

सन् १९८९ (पृ. ११२) ३५.०० रु.

सन् १९९० (पृ. १००) ३५.०० रु.

सन् १९९१ (पृ. ८४) ३५.०० रु.

सन् १९९२ (पृ. ९६) ४०.०० रु.

### अन्य विशेषांक

अहिन्दी भाषियोंका हिन्दी साहित्य

(हिन्दीतर हिन्दी लेखकोंके परिचय सहित)

भारतीय साहित्य : २५ वर्ष

१९६९ के उल्लेखनीय प्रकाशन

१९७० के उल्लेखनीय प्रकाशन

१९७१ के उल्लेखनीय प्रकाशन

समग्र विशेषांक एक साथ (डाकव्यय की छूट)

प्रकाशन वर्ष ७१

प्रकाशन वर्ष ७३

प्रकाशन वर्ष ७०

प्रकाशन वर्ष ७१

प्रकाशन वर्ष ७२

३५.०० रु.

४०.०० रु.

५.०० रु.

१५.०० रु.

१५.०० रु.

३२५.०० रु.

‘प्रकर’, ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७

‘प्रकर’—नवम्बर’९२—१४



## मराठी-हिन्दी आदान-प्रदान

### मराठीसे हिन्दीमें अनूदित दलित साहित्य

लेखक : डॉ. गजानन चव्हाण

मराठी दलित-साहित्य अपने आविर्भावके तीस साल पारकर चुका है। इस अल्प अवधिमें उसने एक स्वतन्त्र कक्षकी प्रतिष्ठा प्राप्तकर सम्पूर्ण मराठी साहित्यको ही नयी दिशा दी है। यह साहित्य-दृष्टि साहित्यको समाज-परिवर्तनके आंदोलनका एक साधन मानकर चलती है। दलित साहित्य दलितोंकी मुक्तिके लिए दलित लेखकों द्वारा दलितोंपर लिखा गया साहित्य है। यह परिभाषा उसे तीन आयाम देती है। दलितोंपर लिखे हुए होनेसे उसको कथ्यगत नूतनताका आयाम प्राप्त होता है। दलितोंकी मुक्तिका उद्देश्य उसे मुक्ति-आन्दोलनकी प्रक्रियाके साथ जोड़ देता है और दलितों द्वारा लिखे होनेसे उसके अनुभव जगत्को लेखकीय साक्षेदारीका आयाम प्राप्त होता है। ये तीनों आयाम उसे परम्परागत मराठी साहित्यसे अलगाते हैं। नकार और विद्रोह उसके प्राणतत्त्व बताये जाते हैं।

मराठी दलित-साहित्य अनियतकालिक लघु पत्रिका की उंगली पकड़कर खड़ा हुआ। दलित पैथरके आधारपर वह चलने लगा। "अस्मितादर्श", "विद्रोह", "आम्ही" पत्रिकाओंने उसे अच्छी तरहसे पाला पोसा। द्वितीय दलित साहित्य सम्मेलन तक आते-आते इसको स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्राप्त हुआ। तबसे अबतक इसके पक्ष-विपक्षमें बहुत कुछ कहा और लिखा गया है। इसके वृत्तमें कहानी, कविता, आत्मवृत्त, एकांकी, नाटक, उपन्यास आदि विधाओंमें लिखी गयीं विपुल रचनाओं का समावेश होता है फिरभी इनमें से हिन्दीमें अनूदित रचनाओंकी संख्या अल्पही माननी होगी।

मराठी साहित्यके हिन्दीमें अनुवादका क्रम कमलेश्वरके संपादकत्वमें निकलनेवाली "सारिका" से आरंभ होता है। "समांतर कहानी" आंदोलनके क्रममें निकले "सारिका" के दो विशेषांक (दलित साहित्य विशेषांक, अप्रैल-मई १९७५) का इस सन्दर्भमें महत्वपूर्ण योग-

दान रहा। ये दोनों अंक डॉ. बाबा साहब आंबेडकरके जन्म दिवसके अवसरपर उनकी स्मृतिको सादर समर्पित किये गये हैं। बादमें "संचेतना" का मराठी दलित-साहित्य विशेषांक निकला। इसका सम्पादन महीपसिंह तथा डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकरने किया। "आजकल" "मधुमती", "रविवार", "जनसत्ता", "समकालीन भारतीय साहित्य" आदि पत्रिकाओंमें भी मराठी दलित-साहित्यके अनुवाद फुटकल रूपमें छपे हैं। अनुवादोंके पुस्तकाकार सम्पादनके सन्दर्भमें "दलित कहानियाँ" (संपा. डॉ. रणसुभे और डॉ. कमलाकर गंगावणे) "दलित रंगमंच" (संपा. डॉ. कमलाकर गंगावणे और त्र्यंबक महाजन), "समकालीन मराठी कहानियाँ" (संपा. डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर और डॉ. लक्ष्मीनारायण नंदवाणा) उल्लेखनीय हैं। पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकाकार छपे अनुवादोंमें जिन साहित्य प्रकारोंका समावेश हुआ, वे हैं—कहानी, कविता एकांकी तथा रिपोर्ताज। नारायण सुर्वेके काव्य-संग्रह "माझे विद्यापीठ" का अनुवाद "मेरा विद्यापीठ" शीर्षकसे निकला है। दलित आत्मवृत्तों "बलुते" "आठवणीचे पक्षी" "तराळ-अंतराळ" के अनुवाद क्रमशः "अछूत" "यादोंके पक्षी" "तराल-अंतराल" शीर्षकसे छपे हैं। हालही में "अक्करमाशी" का अनुवाद भी निकला है।

मराठी साहित्यके एक महत्वपूर्ण कक्ष दलित साहित्यसे हिन्दी पाठकोंको परिचित करानेके उद्देश्यसे जिन विद्वानोंने अनुवाद कार्य किया है उनमें प्रकाश भातंकर, रतनलाल सोनग्रा, महेंद्र झा, रेखा देशपांडे, लच्छोराम चौधरी, रेखा सिंह, विष्णु निवसरकर, हरगोविंद "चेतक", चित्रा मुद्गल, सुमति मालवीय, सुरजीत, उषा मन्त्री, चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, लीला बांदिवडेकर, रामजी तिवारी, निशिकांत मिरजकर, निशिकांत ठकार, मनोज सोनकर, दामोदर खंडसे,



चन्द्रकान्त पाटील, केशव प्रथमवीर, कमलाकर गंगावणे, त्र्यंबक महाजन, सूर्यनारायण रणसुभे, भारत जयशेट्टी, वामन जगताप, बी. के. चौदंते, नामदेव उतकर, माधव सोनटके आदि उल्लेखनीय हैं। साहित्यके जिज्ञासुओंको इस अनूदित साहित्यमें से कहानी, कविता, आत्मवृत्त एवं एकांकी साहित्यका परिचय देनाही इस अभिलेखका उद्देश्य है।

## कहानी

हिंदीमें अनूदित मराठी दलित कहानियोंकी संख्या को देखते हुए सर्वप्रथम उसीका परिचय देना उचित जान पड़ता है। मराठी दलित कहानीकारके रूपमें बाबू-राव बागूलका स्थान ऊंचा है। उनकी कहानियाँ झोपड़पट्टीके सांस्कृतिक परिवेशके यथार्थ अंकन, अनुभूत जीवन यथार्थके सजीव चित्रण, अदम्य जिजीविषासे ओतप्रोत पात्रोंके चरित्रांकनके सन्दर्भमें सराही गयी है। वे इसलिए भी सराहे जाते हैं कि वे अपनी वैचारिक प्रतिबद्धताको पात्रोंपर थोपते नहीं। उनकी कहानी—“जब मैंने जाति छिपायी थी” को दलित साहित्य आन्दोलनको अद्भुत शक्ति प्रदान करनेवाली कहानीके रूपमें बार-बार उल्लिखित किया गया है। यह दलित युवककी उन मानसिक बेचैनियों तथा तनावोंको चित्रित करती है जो किरायेपर मकान पानेके लिए जाति छुपानेके कारण उत्पन्न हुई थीं। उनकी “मां” कहानी में दलित विधवाके आंतरिक और बाह्य संघर्षके साथ उस किशोर पुत्रके मनकी छटपटाहट भी अंकित की गयी है जो अपनी विधवा बनी माँके अवांछित चारित्रिक परिवर्तनके कारण संतुष्ट हुआ है। कहानीमें अंकित विधवा अपने पुत्रको पालपोसकर कमाऊ बनानेकी चिन्तामें है किन्तु परिस्थितियोंका दबाव उसे ऐसा करने नहीं देता। इस विवशतापूर्ण स्थितियोंमें मुहल्ले का वासनाथ मुकादम उसे नाटकीय ढंगसे अपने चंगुल में फंसा देता है। इस पूरी प्रक्रियामें विधवा, किशोर और पड़ोसियोंकी मानसिकतामें जो परिवर्तन हुआ है उसको सूक्ष्मताके साथ अंकित किया गया है। चिन्ता, आशंका, सन्देहसे गुजरनेवाले पात्र बहुत ही सजीव प्रतीत होते हैं।

शंकरराव खरात मराठीके सशक्त कहानीकार हैं। उनकी “पत्र” कहानी निरक्षरतासे उत्पन्न दुःखद स्थितियोंपर प्रकाश डालती है। शिक्षित उच्च वर्गकी निर्ममता और स्वार्थको बेनकाब करनेवाली यह कहानी

अछूत समस्यापर लिखी गयी कहानियोंमें अपनी सहज-सरल शैलीके कारण संस्मरणीय है। हमारे देशके दलितोंका भाग्यचक्र कुछ ऐसा है कि वे सामाजिक प्रतिष्ठाको प्राप्त करनेके लिए अपने कुल-वंश-जाति सूचक नामको बदलनेके लिए विवश हो जाते हैं। इस यथार्थसे संबंधित विविध पहलुओंके दर्शन शंकरराव खरातकी कहानी “मेरा नाम” में भी होते हैं। जाति छिपानेके प्रयासमें व्यक्तिको पगपगपर भय, शंका, अपराध-बोधके अनुभवसे गुजरना पड़ता है। खरातकी सधी हुई लेखनीसे निस्सृत यह कहानी नाम बदलने की स्थितिके वहाने अछूतोंके जीवनकी विभीषिकाको उभारती है तथा उनकी अस्मिताको भी जगाती है।

दया पवारकी “विटाळ” कहानी लेखकके छुआ-छूत सम्बन्धी कड़वे अनुभवोंपर आधारित है। इन कड़वे अनुभवोंके बीच कहीं-कहीं पारिवारिकों, रिश्तेदारों, पड़ोसियोंसे सम्बन्धित रोचक प्रसंग और मानवीय मरोकारोंके निर्वाहके लिए लेखककी छटपटाहट घने काले बादलोंकी चमकीली कोरोंके समान प्रतीत होती है। दलित जागृतिके आंदोलनमें आंबेडकरी जलसों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। इन जलसोंके स्वरूप एवं कार्यप्रणालीके साथ-साथ सवर्णों द्वारा इनके विरोध की एक झांकीभी इस कहानीमें मिलती है। यह कहानी लेखकके संतुलित, संयत दृष्टिकोणकी भी प्रतीति कराती है। यह दृष्टिकोण सामाजिक भेदभावको मिटानेका प्रामाणिक प्रयास कर रहे सवर्ण लोगोंका उत्साह बढ़ानेमें निश्चय ही सहायक है।

केशव मेश्रामकी “पत्तल” कहानी सामाजिक यथार्थ के अनेक सन्दर्भोंको संयोजित किये हुए है : कहानीके पात्र पिछड़ी हुई—महार और मांग—जातिके होते हुए भी इसमें जो प्रश्न उठाये गये हैं वे मात्र पिछड़ी जातियों तक सीमित नहीं हैं। गरीबी, टोटके-टोनके, विधवा जीवनकी विवशताएं, इन विवशतापूर्ण परिस्थितियोंसे अनुचित लाभ उठानेवाले पुरुषोंके स्वार्थपूर्ण काले कारनामे इस कहानीके कथ्यके वृत्तमें आते हैं। कहानीकारने इन्हें परिवेशके मध्य रखकर अंकित किया है। उनकी “परोपजीवी” कहानी दलितोंमें उभरे सफेद-पोश वर्गके दर्शन कराती है। इस कहानीसे स्पष्ट होता है कि दलित लेखक अपने ही वर्गमें विकसित हो रही सवर्णों जैसी प्रवृत्तियोंपर भी चिन्ता करने लगे हैं। मेश्रामकी कहानी “बदनसौत्र” दलित लेखकोंकी कहा-



नियाँ प्रायः अंकित निषेध तथा विद्रोहकी चिरपरिचित लीकसे हटकर चली हैं। यह अभावग्रस्त जीवन और शराबी पिताकी मारपीटसे संतुष्ट हो लम्बई भागकर आनेवाले एक दलित युवककी त्रासजनक कहानी है। यह कहानी घरसे भागे हुए लड़कोंके संबंधमें देखी-सुनी जानेवाली सामान्य घटना-शृंखलाको जीवंत रूप में अंकित करती है। इस बहुआयामी कहानीमें बेरोजगारीकी स्थितिमें किये गये गलत कार्यों, दूकानोंमें शीशा-सफाईके व्यवसायकी बारीकियों, असाध्य रोगसे ग्रस्त रिश्तेदारके अनपेक्षित आगमनसे परिवारमें उत्पन्न लज्जा एवं तनावपूर्ण परिस्थितियोंका विलक्षण अनुभव, पूर्वदीप्ति तथा चेतना-प्रवाह शैलीमें उभारा गया है। कथ्यकी नूतनता, कथन शैलीके मिश्र प्रयोग और घटनाको दिये गये नाटकीय मोड़के कारण “बदनसीब” एक उच्च कोटिकी कहानी बन गयी है।

अर्जुन डांगळेकी कहानियोंमें समस्यागत विविधताके दर्शन होते हैं। मानवीय मूल्योंके प्रति आकर्षण इनके व्यक्तित्वका वैशिष्ट्य है। उनकी कहानी “गारदी” का दलित युवक-नायक नौकरीके लिए दर-दर भटकता है किंतु वह हड़तालके कारण नौकरीसे निकाले गये मजदूरोंके स्थानपर नौकरी स्वीकारनेको बेईमानी मानता है। उसकी यह प्रतिज्ञा कि “भूखा मर जाऊंगा पर यह धोखेवाजी नहीं करूंगा” उसकी व्यापक एवं संस्कारित मानसिकताको उजागर करती है। इस प्रकारकी ऊँची संस्कारित मानसिकता दलित साहित्यकी मूल्यगमिताको निश्चयही वृद्धिगत करती है। डांगळेकी मेलोड्रामिक ढंगकी कहानी “सफेद पाँवोंवाली” विधवाके आकर्षणको व्यंजित करती है और समाजकी अंधश्रद्धापर भी प्रकाश डालती है। उनकी “प्रमोशन” कहानीमें आरक्षणके संबंधमें सवर्णों की तीखी प्रतिक्रियाको अभिव्यक्ति मिली है। “बाँधपर जी रहे लोग” दलित युवतीपर किये गये निमंत्रण अत्याचारोंकी गाथा है।

योगिराज वाघमारेने अपनी कहानियोंमें प्रायः सफेदपोश दलितोंकी मानसिकताको शब्दांकित किया है (पन्नी) किन्तु उसकी “नये सूरजकी खोजमें” का कथ्य भिन्न है। इसमें उन्होंने दलितोंकी आवास संबंधी समस्याको उठाया है और स्पष्ट किया है कि शिक्षित दलित युवकों तथा सरकारके संयुक्त प्रयासोंसे ये समस्याएं सुलझ तो सकती हैं परंतु स्वार्थप्रेरित सवर्णों

के प्रतिशोध-भावके कारण ये समस्याएं कुछ दूसरेही रूपमें उठ खड़ी होती हैं। दलितोंको सामूहिक बहिष्कार और आगजनीकी घटनाओंके साथ जूझना पड़ता है। फिरभी हार न मानते हुए वे नयी व्यवस्थाकी खोजमें गांवकी दक्षिण दिशामें बढ़ते जाते हैं। उनका यह बढ़ते जाना लेखकको आयों द्वारा खदेड़े गये अनार्यों की दक्षिण यात्रा जैसा लगता है। वर्तमान घटनाओंको ऐतिहासिक प्रसंगोंके सम्मुख रखकर देखने-दिखानेका यह प्रयास ऐतिहासिक प्रसंगोंके संबंधमें लेखकीय दृष्टिकोणका परिचय कराता है। पाठकोंको अंतर्मुख बनाना यदि जीवनवादी साहित्यका वैशिष्ट्य है तो यह विशेषता वाघमारे और अर्जुन डांगळेकी कहानियोंमें भी भरपूर मात्रामें विद्यमान है।

वामन होवाळकी कहानी “दुमंजिला घर” जातिगत घमंडसे उत्पन्न हिंसक मनोवृत्तिको कलात्मकताके साथ उजागर करती है। दलितोंकी समस्याका एक पक्ष यह भी है कि जी-तोड़ श्रमकर बड़ी कठिनाईसे अर्जित की गयी उनकी भौतिक उपलब्धियाँ भी उच्च वर्गके कर्ता-धर्ताओंसे देखी नहीं जातीं। वामन होवाळ अर्जुन डांगळेकी ही तरह आस्थावान् कहानीकार हैं। उनकी कहानीके पात्र प्रतिकूल परिस्थितियोंके तापमें भी अपनी अस्मिताकी सुरक्षा हेतु डटे रहते हैं। यह अडिगता दलित वर्गसे परे किसीभी युवकमें उत्साहको बढ़ाने एवं उसे बनाये रखनेमें प्रेरक सिद्ध हो सकती है। ऐसेही संदर्भोंके कारण वामन होवाळकी कहानी जातिगत दीवारोंको लाँघ जाती है।

भीमराव शिरवाळेकी “संक्रांति” मूल्यगर्भित कहानी है। यह मनुष्य स्वभावकी भिन्नताका परिचय भी देती है। इसमें एक ओर गरीबोंमें भी पतिकी प्रतिष्ठाको सर्वोपरि माननेवाली पत्नी है और दूसरी ओर गरीबीसे उबरनेके लिए पत्नीको शील बेचनेका परामर्श देनेवाला पति है। एकही परिस्थितिके प्रति पात्रोंकी भिन्न प्रतिक्रिया द्वारा व्यक्ति-वैचित्र्यकी कलात्मक प्रतीतिके कारण यह कहानी निश्चयही स्तरीय बन गयी है। उनकी “अजस्र” और “हथियार” कहानियोंमें दलितोंके शोषणकी समस्या उठायी गयी है। बेकारीके कारण बढ़ते कुकर्मोंकी शृंखलाका भी अच्छा अंकन “हथियार” में मिलता है।

मराठी दलित कथा साहित्यमें बंधू माधवका अलग स्थान है। वे सवर्णोंके दोगलेपनको बड़े साहस



के साथ प्रकट करते हुए उन व्यक्तियों और शक्तियों का आत्मीयतापूर्ण परिशसन भी करते हैं जो सवर्णों के दोग-लेपन की भर्त्सना भी करती हैं। "और इन्सानियत मर गयी" कहानी इस संदर्भ में देखी जा सकती है। सटीक संवाद-योजना द्वारा परिस्थितियों के अंकन के संदर्भ में भी बंधु माधव की कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। उनकी "महार बिरादरी में जन्म" दलितों की दीन-हीन स्थितियों की मीमांसा बेबाक शब्दों में कर देती है— "महार तो मुपतका घोड़ा है... कोई भी बैठो, कहीं भी ले जाओ और भूखा मरने दो... थू ! ये भी कोई जिदगी है ?" कहना न होगा कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के प्रमुख पड़ावों की अभिव्यक्ति भी बंधु माधव इतनी ही स्पष्टता के साथ करते हैं। मासिक स्थलों का विस्तार-पूर्वक वर्णन और पात्रों के स्वभाव परिवर्तन के लिए सहज स्वीकार्य, विश्वसनीय भूमिका का निर्माण उनकी कहानी की अन्य विशेषताएं हैं। "महार बिरादरी में जन्म" इस दृष्टि से भी अच्छी कहानी है। उनकी "सारा आकाश फट चुका है" दलितों की अवमानना का अभिलेख है।

अविनाश डोळस की "ढायरी के कुछ पन्ने" में जाति प्रथा की दीवारों से उत्पन्न रुकावटों के अतिरिक्त, पुलिस अधिकारियों के कुकर्मों, बुद्धिजीवियों के विसंगत व्यवहारों, बालविवाह के दुष्परिणामों का संकेत मिलता है। डोळस ने इन पन्नों में उस युवती की विसंगतियों को भी दर्शाया है जो दलित युवक से विवाह करने की शपथ लेकर भी समय आने पर उसी युवक के विरुद्ध पुलिस में शिकायत करने से नहीं चूकती।

भास्कर चंदनशिव की कहानियाँ बदलते हुए ग्रामीण परिवेश के परिप्रेक्ष्य में दलित समस्याओं को उठाती हैं। उन्होंने इस यथार्थ को भी स्पष्ट किया है कि ऊँच-नीच का भेद दलितों में भी होता है। पानी की समस्या पर भी उन्होंने लिखा है। उनकी कहानी 'पानी' में बताया गया है कि महारों द्वारा नदी में बनाया गया झिरा गांव के सवर्णों ने इसलिए बुझवा दिया कि वह नदी में उनके झिरे से ऊपर की ओर था। सवर्णों के मन-मस्तिष्क में पैठा हुआ जातिगत दुरभिमान का भूत उन्हें घृणा और तिरस्कार के किस छोर तक पहुंचा देता है ! दलित-आंदोलन के आरंभिक कालखंड में स्थितिवादियों और परिवर्तनवादियों के बीच संघर्ष का होना स्वाभाविक था। इस प्रकार के संघर्ष का प्रतिबिम्ब कई

दलित कहानियों में दिखायी देता है। चंदनशिव की कहानी "पानी" में भी वह क्षीण रूप में मिलता है। उनकी "स्मशान" कहानी भी सामाजिक भेदभाव के दाहक अनुभव को उजागर करती है।

प्रकाश खरात की "तड़प" कहानी महाविद्यालयीन दलित छात्र के अंतर्द्वन्द्व को चित्रित करती है। इस अंतर्द्वन्द्व का स्वरूप पारिवारिक दायित्व और सामाजिक दायित्व में से किसी एक के चयन की समस्या पर आधारित है। पात्रों की मानसिक उथल-पुथल की सर्जनात्मक अभिव्यक्तियों के कारण "तड़प" अपना अलग स्थान बनाये हुए है।

दलित कहानीकारों में से सुधाकर गायकवाड़, अमिताभ, योगेंद्र मेश्राम, शंकरराव सुरडकर, श्रीराम गुं देकर की अनूदित कहानियाँ क्रमशः इस प्रकार हैं— "उद्देग", "पड", "आक्रोश", "इसे छोड़कर कोई भी", "अमानत"। इन कहानियों में भी भूख, अभाव, बेकारी, अवमानना, निषेध, विद्रोह के स्वर सुनायी देते हैं।

### काव्य

मराठी की दलित कविता विषय स्वतंत्रता और खोखले आशवासनों से सोधे टक्कर लेने वाली कविता है। इसने अपनी यात्रा में दो पीढ़ियों के कवियों का योगदान प्राप्त किया है। प्रथम पीढ़ी के कवियों में नामदेव ठसाळ, क्रोध, घृणा के साथ बुनियादी सवाल उठाने वाले कविके रूप में जाने और पहचाने जाते हैं। उनकी अनूदित कविता "स्वाधीनते" में मोहभंग की स्थितियों पर आक्रोश व्यक्त किया गया है। "यहाँ का हर मौसम" में वे अपने काव्यदर्शन को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "शब्दों की नजाकत ही सब कुछ नहीं होती। "दरगाह की राह पर" निराश्रित बालक की मनोदशा को बिंबों के माध्यम से अंकित करती है और "कविता" शीर्षक दीर्घ कविता अभाव, उपेक्षा की ज्वालामें खाक होते हुए मानव के दर्शन कराती है।

केशव मेश्राम स्थूल संघर्षों की अपेक्षा सूक्ष्म अनुभवों को काव्य रूप देते हैं। वे जीवनार्थ की तलाश के लिए नित्यही सजग रहते हैं। "बाप किसका नहीं मरता ?" में वे आंखे डकर के जीवन-दर्शन के विस्मरण से चिंतित लगते हैं तो "निःशब्द" में दलितों के मौन के कारणों की परिकल्पना करते हैं। "एक दिन मैंने भगवान् को" कविता में मेश्राम निषेध और नकार की तीखी



दया पवार सन्तुलित कवि है फिरभी कभी-कभी चुभते प्रश्न उठाते हैं। उनकी कविता "मुन्नी" पुराण कथाओं की व्यर्थताको अंकित करती है। वे "शहर" कविता में जाति प्रथा जनित विषमताका फन्तासीके माध्यमसे चित्र उभारते हैं। पहली पीढ़ीके ही यशवंत मनोहर वैचारिकता और काव्यात्मकता दोनोंको समृद्ध करने वाले कविके रूपमें जाने जाते हैं। निर्वासनका दुःख उनकी कविता में प्रखरताके साथ उभरा हुआ मिलता है। उनकी "नकारने होंगे" कविता गुलामी और जड़ता को बढ़ानेवाले दर्शनको बड़े तीखे शब्दोंमें नकारती है। वामन निवाळकर शब्दकी शक्तिको पहचानकर संघर्ष के लिए आह्वान करनेवाले दलित कवि हैं। दुःखार्त मनका आक्रोश, अस्मिताकी खोज, वेदनाके अंधेरेका चित्रण उनकी कविताओंमें भी मिलता है। उनकी कविता "कलके सूर्य" में भविष्यका आश्वासन प्राप्त होता है। व्यंग्य सपकाळे विषमताके चित्र उतारनेवाले और आंबेडकरके विचारोंको काव्य रूप देनेवाले कवि हैं। उनकी "बाराखड़ी" कविता में जन्मसे ही उपेक्षाके आघात सहनेवाले बालककी व्यथित मानसिकताको अभिव्यक्ति मिली है। "यह भाग्य सिर्फ आपको मिलने वाला" में वे मध्यवर्गीय साहित्यकी सीमाओंपर प्रकाश डालते हैं। उनके मतानुसार मध्यवर्गीय साहित्य ठंडे गोलेके समान है।

प्रथम पीढ़ीके कवियोंमें नारायण सुर्वे सबसे निराले कवि हैं। वे जातिगत संकीर्णताकी भावना तक ही सीमित नहीं रहे। उनकी "दलित संकल्पना में जातिगत पिछड़े वर्गके साथ-साथ पूरा शोषित तथा मजदूर वर्ग भी समाविष्ट है। सुर्वेकी यह घोषणा कि "सार-स्वतोंके साम्राज्यमें अपराध करनेके लिए उन्होंने काव्य-क्षेत्रमें प्रवेश किया है" उनकी विनम्रताके अतिरिक्त और कुछ नहीं। वास्तवमें प्रतिबद्धताके साथ-साथ रचनात्मकताके निर्वाहमें नारायण सुर्वेकी सबसे अलग सफलता प्राप्त हुई है। "मेरा विद्यापीठ" की कविताएं कविकी इस प्रतीतिको दृढ़ताके साथ अंकित करती हैं कि जीवन-अनुभव ही ग्रंथ है। इस रचना में संकलित चालीस कविताएं जीवनकी विविधताके दर्शन कराती हैं। अभाव, स्वार्थ, साम्प्रदायिकता, निष्ठुरताके कड़वे अनुभवोंके कारण कविने जीवनका परिचय अवश्य ही "जंग लगी जिंदगी" के रूपमें दिया है परन्तु उसे लगता है कि यही जीवनका समग्र रूप नहीं है। जीवनमें

कठोर परिश्रम, मानवीय संलग्नता, अदम्य आस्था, जीवनार्थकी तलाशमें लगनके भी दर्शन होते हैं। "मनुष्य जितना सामर्थ्यवान् दूसरा कोई सजक मिला हो नहीं" पंक्तियां कविकी आस्थाकी परिचायक हैं तथा मनुष्य की सामर्थ्यकी परिशंसाभी करती हैं। शोषितोंके प्रति अंतर्वाह्य लगाव "मेरा विद्यापीठ" की मूल संवेदना है। एक विशेषता इस काव्यकी यह भी है कि इसमें मात्र मानवीय संलग्नताको देख पानेवाले व्यक्तियोंके प्रति उपजी हुई ममताको उस रागात्मकताके साथ व्यक्त किया है कि पाठकको सद्भाव और मानवीय आत्मीयताकी ऊर्जा अनुभव होने लगता है। इस ऊर्जा में साम्प्रदायिकता और संकीर्णताक कूड़ा-करकट जलकर खाक होनेकी आशा निर्माण होने लगती है। शिल्प और भाषापर नारायण सुर्वेकी गहरी पकड़ है। मूल संवेदना और प्रवाहको बनाये रखनेमें अनुवादक मनोज सोनकरने पूरी सतर्कता बरती है।

मराठी दलित कविताकी दूसरी पीढ़ीके कवियोंमें से अर्जुन डांगळे, प्रल्हाद चेंदवणकर, ज. दि. पवार, प्रकाश जाधव, अरुण कांबळे, शशिकांत लोखंडे, राजेंद्र सोनवणे, बी. रंगाराव, राम दातोंडे की कविताओंके अनुवादभी हिन्दीमें प्रकाशित हुए हैं। इन सबकी कविताओंमें दलित साहित्यकी मौलिक प्रवृत्तियोंके दर्शन होते हैं फिरभी अर्जुन डांगळे आंबेडकर की विरासतके नित्य स्मरणके संदर्भमें [आज मैं खड़ा हूँ], प्रल्हाद चेंदवणकर सवर्णोंके प्रति तीखे क्रोधके संदर्भमें [पाढील], ज. वि. पवार दुःखकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति [पूँजी] और मोहभंगसे उत्पन्न आक्रोशके चित्रणके संदर्भमें [उफन रहा हूँ] उल्लेखनीय हैं। प्रकाश जाधव जन्मसे ही अपमानके जहमको वहन करनेवाली युवक मानसिकताको व्यंजित करते हैं [कल] अरुण कांबळे क्रांति की हिमायत [गोर्की] के साथ-साथ विषमताके चित्रण के लिए परस्पर विसंगत वाक्यखंडोंको अपनाते हैं। शशिकांत लोखंडेको मानवता, समानता, स्वातंत्र्यके प्रसारके संदर्भमें कविताका दायित्व महत्त्वपूर्ण लगता है [कविता क्रांति]। राजेंद्र सोनवणे हिंदू धर्ममें व्याप्त विषमता (तब वे) और राम दातोंडे कमकरोँकी प्रवंचना (सार) पर प्रहार करते हैं।

अबतक उल्लिखित कविताएं मराठी दलित कविताका प्रातिनिधिक चित्र प्रस्तुत करनेमें निश्चय ही सहायक हैं। इनके आधारपर सार रूपमें कहा जा



सकता है कि इनमें नकार और विद्रोहका जितना तीखा स्वर है उतना और वैसा हिन्दीमें नहीं है।

## आत्मवृत्त

दलितोंके शोषणकी सर्वांगीण अभिव्यक्तिके उद्देश्य से कुछ दलित लेखकोंने आत्मवृत्त विधाको अपनाया। उन अभिवृत्तोंमें "अछूत", "यादोंके पक्षी" और "तराल-अंतराल" महत्त्वपूर्ण हैं। दया पवारके "अछूत" की साहित्य जगत्में बहुतही चर्चा हुई। इस आत्मवृत्तके आरम्भिक और अन्तिम कुछ पन्नोंमें लेखकने कुछ ऐसा प्रावधान किया है कि वह लेखकको उसके 'अंतरंग स्व' से अलग कर देता है। 'अंतरंग-स्व' के अन्तर्गत लेखक अपने अतीतकी स्मृतियोंकी रीलको प्रस्तुत करता है। स्मृतियोंकी इस रीलमें प्रत्येक स्तरपर ईमान-दारीके दर्शन होते हैं : दलितोंके जीवनमें विषमता अंध परम्परा, शोषणके कारण हृदय हिला देनेवाली नारकीयता सामान्य बात थी। दया पवारने अपनी अनुभूत पीड़ाओंको पूरी तटस्थताके साथ अंकित किया है। उनकी विशेषता है कि उन्होंने अपने विरोध भावको आक्रोशमें परिवर्तित नहीं किया है। अछूतोंकी जीवन पद्धति, अस्पृश्य समाजमें प्रचलित रीति-रिवाज, बलुतं प्रथा और येसकर जीवन अपने समग्र रूपमें पहली बार इस कृतिके माध्यमसे सामने आया है। "अछूत" की नवीनतामें पाठकोंको आकर्षित करनेकी शक्ति है।

"यादोंके पक्षी" में प्र. ई. सोनकांबळेने उन विपत्तियोंका संस्मरणात्मक शैलीमें विवरण दिया है जो उन्हें शिक्षा ग्रहण करते समय उठानी पड़ी थी। उनके संस्मरणोंकी जीवंतता अभिभूत करनेवाली है। सामाजिक समताकी मांग करनेवाले किसीभी पाठकके धीरज का बांध यह अनुभवकर अवश्यही टूट सकता है कि व्यक्तिकी श्रेष्ठताके पारंपरिक आधार—कुल-गोत्र—की जड़ें दूरतक फैलकर मानवताको किस सीमातक कलंकित कर देती हैं। सोनकांबळे केवल पीड़ादायक तत्त्वोंपर ही प्रहार नहीं करते बल्कि उन तत्त्वोंसे दलितोंको मुक्त करनेवाले उपकारकर्ताओंके प्रति असीम कृतज्ञताको भी व्यक्त करते हैं। उनका लेखकीय व्यक्तित्व सामाजिक सौहार्दकी अंतःसलिलाको प्रवहमान करनेमें सहायक है।

शंकरराव खरातने अपने आत्मवृत्त "तराल-अंतराल" में अपने बचपनसे लेकर कुलगुरु बननेतक की

जीवन-यात्राको सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षणिक, साहित्यिक परिवेशके साथ अंकित किया है। "लेखकने इन क्षेत्रोंमें घटित महत्त्वपूर्ण घटनाओंके परिप्रेक्ष्यमें अपने व्यक्तित्वको सामने रखा है। इस आत्मवृत्तको सभी प्रकारके परिवेशोंका इतना अधिक स्पर्श प्राप्त हुआ है कि यह एक व्यक्तिके आत्मवृत्त तक ही सीमित नहीं रहता। यह अनेक स्थलोंपर सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहासकी सामग्री भी प्रस्तुत करता है। मानवीय संलग्नताओंको गहरी संवेदनशीलताके साथ अंकित कर देनेसे सहृदय पाठक इस रचनाके प्रवाहके साथ बहता चला जाता है। "तराल-अंतराल" का अनुवाद इसलिए भी पठनीय है कि अनुवादकर्ताने इसमें प्रयोक्ताजन्य भाषा विकल्पनकी मूल विशेषताको सुरक्षित रखा है।

## नाटक

मराठी दलित नाट्य-साहित्यके अनुवादका एकमात्र उदाहरण है कमलाकर गंगावणे और त्र्यंबक महाजन द्वारा संपादित संग्रह "दलित-रंगमंच"। महाराष्ट्रकी लोकनाट्य परंपराको विकसित करनेमें दलित जातियोंका बहुत बड़ा योगदान रहा है। आंबेडकरकी विचारधारा और धर्मान्तरकी घोषणाका प्रचार-प्रसार करनेमें इस लोकनाट्य परंपराका उपयोग कर आंबेडकरी जलसे प्रस्तुत किये गये। किसन फागू बनसोडेका नाम इस संदर्भमें उल्लेखनीय है। उनकी रचना "पंचरंगी तमाशा सनातन धर्मका" में दलित अनुभूति लबालब भरी हुई है। इसमें ब्राह्मण पुरोहितोंकी दोगली नीतिपर कठोर प्रहार किये गये हैं। "धर्मान्तर" में भीमराव करडकने धर्मपरिवर्तनकी प्रक्रियाके प्रबोधन-पक्ष को नाटकीय रूपमें प्रस्तुत किया है। म. भि. चिटणीस का एकांकी नाटक "जाग उठी" छायाएँ" वर्ण व्यवस्थाका तर्कपूर्ण खंडन प्रस्तुत करती हैं। इस संग्रहकी रचना "मृत्युशाला" प्रयोगशीलताके संदर्भमें बहुतही महत्त्वपूर्ण लगती है। सामाजिक अन्यायमें सम्मिलित समस्त तत्त्वोंको एकही स्थानपर प्रस्तुत करनेकी दिशा में लेखकने मृत्युशालाकी परिकल्पना की है। यह "मृत्युशाला" सभी वर्णोंकी मानसिकताको दर्शाती है। कल्पना और यथार्थका सुंदर समन्वय "मृत्युशाला" में मिलता है। दत्ता भगतका "आवर्त" अविनाश डोलसका 'बिन चेहरेका गांव', प्रेमानंद गजवीका 'घूँटभर पानी'



प्रभाकर दुपारेका “सात समंदर परे” दलित समस्याके विभिन्न पहलुओंको उठाती है। अभिनयकी दृष्टिसे इनकी सफलता प्रमाणित हो चुकी है। “दलित रंगमंच” कृति प्रमाणित करती है कि दलित लेखकोंका मंचीय तंत्र भी परंपरागत तंत्रसे भिन्न है।

## उपसंहार

मराठी दलित साहित्यके हिन्दी अनुवादोंका स्वागत किस प्रकार हुआ ? — इस प्रश्नका उत्तर देना कठिन है। उत्तरकी संपूर्णताका दावा करना तो और भी कठिन। फिर भी वर्तमान अध्ययनसे कुछ रोचक तथ्य सामने आते हैं। “सारिका” के दलित साहित्य विशेषांकोंको लेकर लगभग दो हजार पाठकोंने संपादकको पत्र लिखे थे। अधिकतर पाठकोंने इन अंकोंका उत्साह से स्वागत किया था। “सारिका” के इन अंकोंको ‘क्रांतिकारी कदम’, ‘हिन्दी साहित्यके इतिहासके मोटे पन्ने’, ‘हिन्दी साहित्यके वैचारिक कलमषको धोनेमें सहायक साहित्य’ तथा ‘दलितोंका दर्पण’ कहकर सराहा गया था। कुछ पाठकोंने तो यहाँ तक लिखा कि उन्हें ये अंक इतने प्रिय लगे कि उन्होंने शादी-ब्याहके प्रसंगोंमें इनकी प्रतियाँ ही उपहारमें दीं। कुछ पाठकोंने इन अंकोंमें प्रकाशित कहानियोंकी श्रेष्ठता कनिष्ठताके संबंधमें भी राय दी थी। उल्लेखनीय बात यह है कि इन अंकोंके कारण पाठकोंमें एक प्रकारका वैचारिक मंथन आरंभ हुआ। कई समस्याएं सामने आयीं। कुछ केवल सामाजिक पक्षकी थीं। साहित्यसे सम्बद्ध कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न भी सामने आये जो इस प्रकार हैं—

१. क्या साहित्य रचनात्मक रहते हुए भी क्रांतिकी भूमिका निभा सकता है ?

२. क्या जाति विशेषसे बंधे रहकर साहित्य आगे बढ़ सकता है ?

३. दलित साहित्य विशेषांकोंका आरंभ मराठी दलित साहित्यसे ही क्यों आरंभ किया गया ?

“संचेतना” के मराठी दलित साहित्य विशेषांकों पर बादके अंकोंमें पाठकोंकी जो प्रतिक्रियाएं प्रकाशित हुई हैं उन्हें पढ़कर प्रतीत होता है कि इसका स्वागत भी उत्साहके साथ किया गया। मध्यवर्गीय अनुभूति और दयाभरी दृष्टिके चर्वित-चर्वणसे ऊबे हुए पाठकों को इसके वाचनसे मानसिक तुष्टि मिली। अभिनवता, समृद्धि, विशिष्टता, उपयोगिता और उत्कृष्टताकी

कसौटीपर पाठकोंने इसे ‘संग्रहणीय’, ‘दलितोंके गूँगे मुखकी जीभ’, ‘तलवारकी पैनी धार’, ‘विश्वमें दुर्लभ’ संग्रह कहा। हिन्दी साहित्यको एक अनदेखा आयाम प्रदान करनेका यह प्रायस निश्चय ही साहित्य-जगत्की महत्वपूर्ण घटना है। “संचेतना” के इस विशेषांकके प्रकाशनसे सबसे बड़ी बात यह हुई कि दलित-साहित्य के संदर्भमें हिन्दी साहित्यको टटोला जाने लगा। जिन्हें महाराष्ट्र और हिन्दी प्रदेशके सामाजिक, राजकीय और साहित्यिक इतिहासका अच्छा ज्ञान था उन्होंने हिन्दीमें दलित साहित्यके न होनेके कारणोंकी अच्छी समीक्षा की, परंतु जो सभी दृष्टियोंसे हिन्दी साहित्यकी श्रेष्ठता का उद्घोष सुनने-सुनानेकी आत्मसंतुष्टिके चक्करमें थे ढूँढ ढूँढकर हिन्दी साहित्यमें दलित चेतनाके प्रमाण देने लगे। हिन्दी कथाकारों-कवियोंका इस संदर्भमें नये सिरे से विश्लेषण-मूल्यांकन आरंभ हुआ। “कफन”, “गोदान”, “चतुरी चमार”, “नाच्यो बहुत गोपाल”, “महामोज” आदि कृतियोंकी समीक्षाओंमें दलित चेतनाके संदर्भ विस्तारके साथ आने लगे। हिन्दीमें दलित चेतनापर अनुसंधान कार्य होने लगा। दलित संदर्भको केंद्रमें रखकर भारतीय साहित्यके व्यापक स्तरपर संगोष्ठियोंकी आवश्यकता अनुभव कीजाने लगी। दस साल पूर्व सिद्धेश्वरप्रसादने अपनी प्रतिक्रियामें लिखा था कि ‘आज आवश्यकता इस बातकी है कि इस विषयपर एक अखिल भारतीय गोष्ठीका आयोजन किया जाये।’

मराठीसे हिन्दीमें अनूदित कहानियों, एकांकियोंके जो संग्रह निकले हैं उनका समीक्षकोंने अच्छा स्वागत किया है। “समकालीन मराठी कहानियाँ” पर राजस्थानमें काफी संगोष्ठियाँ हुईं और संग्रहमें समाविष्ट कहानियों—“मेरा नाम” तथा “बदनसीब”—की काफी चर्चा हुई। आत्मवृत्तोंमें से “अछूत” का बहुत अच्छा स्वागत हुआ। कहीं-कहीं तो यह लिखा गया है कि अनुभवोंकी ताजगीके संदर्भमें यह एक प्रतिमान स्थापित करता है। यह इस अनूदित साहित्यकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। हिन्दीमें अनूदित मराठी दलित साहित्यके उत्साहपूर्ण स्वागतको देखते हुए यह आशा बलवती हो जाती है कि अनुवाद कार्य द्वारा साहित्यिक अभिसरणकी प्रक्रियामें रुचि रखनेवाले साहित्यप्रेमी, मर्मज्ञ और अनुवादक दलित साहित्यकी छूटी हुई शिखर कृतियोंके अनुवादके लिए भी प्रेरित होंगे।



संदर्भ :

(क) पत्रिकाएं—१. सारिका—समांतर कहानी विशेषांक-७, दलित साहित्य (मराठी) अप्रैल १९७५, २. सारिका—समांतर कहानी विशेषांक-८, मई १९७५, ३. सारिका—जुलाई १९७५, ४. अगस्त १९७५, ५. संचेतना—दिसम्बर १९८१ (प्रकाशित मार्च १९८२), ६. समकालीन भारतीय साहित्य—अक्तूबर-दिसंबर १९८०, जनवरी-मार्च १९८१, जुलाई-दिसंबर १९८२, अक्तूबर-दिसंबर १९८२, जनवरी-मार्च १९८५, अप्रैल-जून ८५, अक्तू. दिसं. ८५, अक्तू. दिसं. ८६, जन.-मार्च ८८, ७. दस्तावेज—जुलाई-सितंबर १९९०, ८. प्रकर—सितंबर १९८२, सितंबर १९८५, मार्च १९८१, ९. आलोचना—जुलाई-सितंबर १९७७, १०. मधुमती—दिसंबर १९८२, ११. आज-

कल—सितंबर १९८२, अक्तूबर १९८६, १३. संपक—जून १९९१ ।

(ख) ग्रंथ : १. मेरा विद्यापीठ—कवि नारायण सुर्वे, अनु. मनोज सोनकर, २. दलित रंगमंच—संपा. कमलाकर गंगावणे, त्र्यंबक महाजन, ३. दलित कहानियां—संपा. सूर्यनारायण रणसुभे, कमलाकर गंगावणे, ४. अछूत—दया पवार—अनुवादक दामोदर खडसे, ५. तराल-अंतराल—शंकरराव खरात—अनु. केशव प्रथमवीर, ६. यादोंके पंछी—प्र. ई. सोनकांबळे—अनु. सूर्यनारायण रणसुभे, ७. समकालीन मराठी कहानियां—संपा. डॉ. चंद्रकांत बांदिबडेकर, डॉ. लक्ष्मीनारायण नंदवाणा, ८. दलित वाङ्मय प्रेरणा व प्रवृत्ति (मराठी)—शंकरराव खरात । □

## व्याकरण

### भाषा विज्ञान

## हिन्दी व्याकरण मीमांसा-३

### स्वन विचार : हिन्दी स्वर एवं व्यंजन

—पं. काशीराम शर्मा

२७. स्वन विचार : दी. ने अपने व्याकरणमें लिपि परिचयके पश्चात् 'स्वन विचार' नामक खंड रखा है जिसमें स्वर, व्यंजन, अक्षर और अक्षर विभाजन, बलाघात एवं संधि शीर्षक पांच अध्याय हैं । इन सभीको 'हिन्दीके स्वन' नामक बड़े शीर्षकसे अभिहित किया है । स्वर कैसे स्वनोको कहते हैं यह बताये बिनाही स्वरोंके भेद बताना आरंभ कर दिया है । प्रथम वाक्य है : 'हिन्दीके स्वरोंमें निम्न लक्षणोंके अनुसार भेद किया जाता है : उच्चारणके समय जीभकी स्थिति, जीभके उत्थापन, आलेखमें दी. गु. और वा. संक्षिप्त नामोंका प्रयोग हुआ है, पूरे नाम हैं : डॉ. जाल्मन दीमशित्स, श्री कामता-प्रसाद गुरु, पं. किशोरीदास वाजपेयी ।

'प्रकर'—नवम्बर'९२—२२

ओष्ठोंकी स्थिति, मुहु तालुकी स्थिति तथा उच्चारण का काल । जीभकी स्थितिके अनुसार स्वर अग्र, मध्य और पश्च होते हैं; जीभके उत्थापनकी दृष्टिसे सवृत, अर्ध सवृत, अर्ध विवृत तथा विवृत; ओष्ठोंकी स्थितिके अनुसार बतुंलित (ओष्ठ्यरंजित) तथा अवतुंलित; मुहु तालुकी स्थितिके अनुसार सानुनासिक तथा निरनुनासिक; उच्चारण कालकी दृष्टिसे ह्रस्व (लघु) तथा दीर्घ (गुरु) ।' भेदोंके आधारको सर्वज्ञात मानकर बिना समझाये ही छोड़ दिया गया है । 'जीभकी स्थिति के अनुसार' से लगता है कि जीभ आगे, पीछे या बीचमें रहती है जैसा कि ओष्ठोंकी स्थितिमें होता है । वे या तो गोल होते हैं या फेले रहते हैं । किंतु 'जीभकी स्थिति' कहना ठीक नहीं । होता यह है कि जीभका अगला,



मध्यका या पीछेका भाग ऊँचा उठता है। किंतु लेखकने स्पष्ट करनेकी कोई आवश्यकता वहीं समझी। ह्रस्व और दीर्घको क्रमशः लघु और गुरुका पर्याय मान लिया गया है जो हैं नहीं। पाणिनिने स्थिति स्पष्ट करनेके लिए तीन सूत्र बनाये थे एकमें बताया कि ह्रस्व सामान्यतया लघु होता है, एकमें बताया कि दीर्घ सदा गुरु होता है। पर एक सूत्रमें स्पष्ट किया कि संयुक्त व्यंजनसे पूर्ववर्ती ह्रस्वभी गुरु होता है। यथा 'अष्ट' का अ गुरु है यद्यपि ह्रस्व है। अंश का अ तथा दुःख का उ भी गुरु हैं यद्यपि ह्रस्व हैं। दो प्रच्छेदोंमें सानुनासिक-निरनुनासिक का भेद विस्तारसे स्पष्ट किया गया है। पता नहीं जिसे लिपिके प्रसंगमें अनुनासिक कहा गया था उसके पूर्व यहां 'स' क्यों जोड़ा गया है, लिपिके प्रसंगमें तो इसकी नासिक्यरंजकता भी बतायी गयी थी! अच्छा है कि यहाँ नहीं बतायी। ऋ को स्वरों में सम्मिलित नहीं किया यद्यपि बादमें स्वरोंका संक्षिप्त विवरण देते समय उसे भी सम्मिलित किया है।

२८. अर्थ प्रभेदकताका व्यर्थ विचार—पता नहीं क्यों दी. ने इस बातका उल्लेख आवश्यक समझा कि हिन्दी स्वरोंकी दीर्घता अर्थ प्रभेदक है। दीर्घ स्वरका पृथक् उल्लेख होनेसे ही यह बात तो स्पष्ट हो जानी चाहिये थी कि हिन्दीमें दीर्घ रूप पृथक् स्वनिम होता है।

२९. एकस्वरक-द्विस्वरकका विचार—दी. ने एकल स्वरोंको साधारण स्वर माना है और उन्हें एक स्वरक भी कहा है तथा संधि स्वरोंको संयुक्त स्वर तथा द्विस्वरकभी कहा है पर संयुक्त स्वरकी जो परिभाषा दी है उसे समझना कठिन है। लिखा है : 'जो दो स्वरों (एक आक्षरिक तथा एक अनाक्षरिक) के एक अक्षरमें उच्चारणसे बनते हैं।' फिर द्विस्वरको अर्थात् 'ऐ-ओ' के निरनुनासिक-सानुनासिक भी होनेका उल्लेख है। किन्तु इन्हीं अक्षरोंसे हिन्दीमें व्यक्त होनेवाले उन उच्चारणोंका कोई उल्लेख नहीं किया है जो घैयं-ऐश्वयं, मौन-योन जैसे शब्दोंमें होता है और जो 'अइ-अउ' संधि-उच्चारणसे मिलता है।

३०. हिन्दीकी स्वर प्रणाली—इस शीर्षकसे हिन्दी के स्वरोंका स्थान, दीर्घता और उत्पादनके आधारपर वर्गीकरण सारणीके माध्यमसे दिया गया है और निष्कर्ष निकाला गया है कि हिन्दीमें १० शुद्ध (निरनुनासिक) स्वर हैं (८ एकस्वरक और २ द्विस्वरक),—तथा

प्रत्येक शुद्ध स्वरके समनुरूप एक सानुनासिक स्वर है। लेखकही जाने कि अनुनासिक होनेमें क्या दोष है जो निरनुनासिकको ही 'शुद्ध' माना। सारणीमें 'अ-अं' को अग्र विवृत बताया गया है और 'आ-आं' को मध्य विवृत जबकि प्रमुख भाषाशास्त्रियोंके अनुसार (देखें : हिन्दी भाषाका विकास--देवेन्द्रनाथ शर्मा) 'आ-आं' पश्च विवृत है और 'अ-अं' मध्य अर्धविवृत। संस्कृत व्याकरणोंने तो 'अ'को 'प्रयोगे संवृतम्' तक कहा था। फिरभी इतना तो सर्वमान्य है कि 'अ' का उच्चारण मध्य है तथा विवृतसे ऊपर है। पता नहीं दी. ने 'अ-आ' को विवृत किस आधारपर माना तथा 'अ-आ' की अग्रता कैसे उलट दी। इसके पश्चात् दी. ने हिन्दी स्वरोंका क्रमशः संक्षिप्त विवरण दिया है जिसमें 'ऋ' का विवरणभी सम्मिलित है तथा वे दोषभी विद्यमान हैं जिनका ऊपर उल्लेख हो चुका है। विवरणके अन्तमें रूप-विचारका प्रसंग भी समाविष्ट कर दिया गया है जिसका 'स्वन विचार' के अंतर्गत कोई औचित्य नहीं है। सकर्मक तथा प्रेरणात्मक क्रियाओंके निर्माणमें होने वाला त्वर परिवर्तन रूप-विचारके क्षेत्रमें आता है पर दी. ने यहां सोदाहरण दिया है यथा बनना-बनाना, बैठना-बिठाना, फिरना-फेरना, रुकना-रोकना, सोना-सुलाना। यही नहीं श्रवणका, घुड़चढ़ा, बिटवा जैसे उदाहरण भी दिये हैं।

३१. 'अ' ह्रासका विस्तृत विवेचन—हिन्दीमें 'अ' स्वरका समावेश लिखित रूपमें अनेक ऐसे स्थलों पर भी होता है जहां वस्तुतः उसका उच्चारण नहीं होता। चलना-गिरना, चलन-पठन आदिका उच्चारण प्रायः चल्ना-गिर्ना, चलन्-पठन् तुल्यही होता है। वा. इस स्थितिको स्वीकार-नहीं करते किन्तु हमारा विचार है कि यंत्रोंकी सहायतासे 'अ' के लोप की जांच की जा सकती है। दी. ने विस्तारसे वे सब परिस्थितियां बतायी हैं जिनमें 'अ' के उच्चारणका ह्रास होता है। यद्यपि भाषा मूलतः उच्चरित रूपका ही नाम है अतः लिखितको महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिये किन्तु हिन्दी का अध्ययन मुख्य रूपसे देवनागरी लिपिके माध्यमसे किया-कराया जाता है अतः दी. द्वारा परिगणित स्थितियोंकी उच्चारणकी शुद्धतामें निश्चय ही उपयोगिता है। इस जानकारीके बिना उस विद्यार्थीको कठिनाई होगी जो विदेशी है और चलना का उच्चारण चल्ना जैसा सुनकर समझनेमें कष्ट पाता है।



३२. व्यंजनोका वर्गीकरण : भारतके प्राचीन वैयाकरणोंने व्यंजनोका वर्गीकरण तीन आधारोंपर किया था : करण, प्रयत्न और स्थान । वह वर्गीकरण इतना स्पष्ट था कि कहीं भ्रमकी गुंजाइश नहीं होतीथी । करण वे शरीरके अवयव हैं जो भाषागत उच्चारणमें प्रयुक्त होतेहैं यथा उर (फुफ्फुस) जो प्राण वायुको बाहर निकालनेके लिए फेंकताहै । तब आतीहैं कंठमें स्थित स्वरतंत्रियाँ जो या तो शिथिल पड़ी रहतीहैं या तन कर निकट आ जातीहैं जिससे प्राणवायु गुंजारके साथ आगे बढ़तीहै । तीसरी भूमिका है नासिका द्वारकी जो या तो बंद होताहै और केवल मुख मार्गसे वायुको निकाल देताहै या खुला होताहै और वायुको अंशतः नासिका मार्गसे भी बाहर निकलने देताहै । चौथी और सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है जिह्वाकी जो न हो तो भाषाका उच्चारण ही असंभव है । यह ऊंची उठकर बाहर जाती वायुको रोकनेका यत्न करतीहै । इस यत्न में वह या तो इतनी ऊपर उठतीहै कि मुखकी छतका स्पर्श कर लेतीहै और वह जब रास्ता देतीहै तभी वर्ण उच्चारित होताहै । दूसरी स्थितिमें वह उतनी अधिक तो नहीं उठती पर वायुको बाधाका काफी सामना करना पड़ताहै और वह घर्षण करती हुई ही निकल पातीहै । तीसरी स्थितिमें उससे भी कम उठतीहै और बाधा अतिस्वल्प होतीहै । चौथी स्थितिमें वह उठती तो है पर इतनी कम कि बाधा होती ही नहीं । जीभके पश्चात् होठोंकी भूमिका होतीहै जो परस्पर स्पर्श करके वायुको रोकतेहैं या ऊपरके दाँत नीचेके होठकी ओर झुककर वायुका मार्ग संकीर्ण कर देतेहैं । होठ गोलभी होतेहैं, नहीं भी होतेहैं । यह उच्चारणके करणोंका परिचय है । उर द्वारा वायुको कम वेगसे फेंकना या अधिक वेगसे फेंकना उसके दो प्रयत्न हैं जिनके आधारपर उच्चरित वर्णको क्रमशः अल्पप्राण या महाप्राण कहतेहैं । शिथिल रहना या तनकर निकट आना स्वरतंत्रियोंके दो प्रयत्न हैं । पहली स्थिति अधोष वर्णोंके लिए हेतु है, दूसरी घोषके लिए । नासिका मार्गका खुला होना और बंद होना वे प्रयत्न हैं जिनके आधार क्रमशः अनुनासिक या अननुनासिक वर्णोंका उच्चारण होताहै । जिह्वाका प्रयत्न उसके किसी भागका ऊँचा उठना है और उस उठानको मात्राकी अधिकताके आधारपर स्पर्श, ऊष्म, अन्तःस्थ और स्वरका विभाजन होताहै अर्थात् 'बाधा रहित स्थिति स्वरोंकी है, शेष तीन स्थितियाँ व्यंजनोकी

जिन्हें क्रमशः न्यूनतम बाधा (अंतःस्थ), मध्य बाधा (ऊष्म) और पूर्ण बाधा (स्पर्श) में विभक्त किया जाताहै । होठोंके प्रयत्न गोल होना (वर्तुल) और न होना (अवर्तुल) है । परस्पर स्पर्शसे वे वायुको रोक लेतेहैं तब ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजन उच्चरित होतेहै । स्थानमूलक वर्गीकरण इस आधारपर है कि जीभ ऊपर उठकर मुखकी छतके किस भागकी ओर जाती है । होठोंका प्रयत्नभी स्थानका आधार बनताहै । स्थान की दृष्टिसे मुख मार्गको कंठसे होठ तक मुख्यतः पाँच भागोंमें विभक्त किया गयाहै । इस आधारपर वर्ण कंठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य, ओष्ठ्य आदि वर्णोंमें विभक्त होतेहैं । यह प्रक्रिया समझाये बिना ही स्वरों, व्यंजनोका वर्गीकरण बताने लगना उचित नहीं होता । यह मानकर नहीं चलना चाहिये कि व्याकरणको पढ़ने वाला उसकी सारी पारिभाषिक संज्ञाएँ पहले कहीं और सीखकर आयेगा । पहले परिभाषा समझाकर ही संज्ञा बतानी चाहिये ।

३३. स्वर व्यंजनका वर्गीकरण :—जैसाकि हम देखचुकेहैं, दी. ने स्वर-व्यंजनका भेद स्पष्ट किये बिन ही पहले स्वरोंका वर्गीकरण कर डालाथा । आगे व्यंजनोका कियाहै । पर व्यंजनोके वर्गीकरणपर विस्तारसे विचार करनेसे पूर्व हम स्वर-व्यंजनका भेद स्पष्ट कर देना आवश्यक समझतेहैं जिसका किंचित् उल्लेख विगत् प्रच्छेदमें किया गयाहै । यह बताया जा चुकाहै कि उरसे चलकर स्वरतंत्रियों और नासिक द्वार के पास आगे बढ़ती हुई वायु मुख मार्गमें आतीहै जहाँ जिह्वा ऊपर उठकर उसे रोकतीहै और कर्भा-कभी होठ भी परस्पर निकट आकर अथवा गोल होकर उसे विशेष दिशा देतेहैं । जीभ कितनी ऊंची उठतीहै इस आधार पर स्वर-व्यंजनका वर्गीकरण है । जीभ यदि इतनी कम उठे कि कोई बाधा ही न हो तो उच्चरित वर्ण स्वर होगा । यदि किंचित् भी बाधा हो तो वर्ण व्यंजन होगा । व्यंजनोके तीन भेद इसी उठानके आधारपर हैं । जब बाधा नगण्य-सी हो तो उच्चरित वर्ण अन्तःस्थ कहलातेहैं अर्थात् वस्तुतः वे स्वरों और व्यंजनोके बीचके हैं । स्वर इसलिए कि वे दो स्वरोंके मेलसे ही बने हैं यथा 'इ-उ' के पश्चात् कोई अन्य स्वर ही आये तो 'इ-उ' का परिवर्तन क्रमशः य्-व् व्यंजनोमें हो जाताहै क्योंकि इनके उच्चारणके समय वायुके मार्गमें किंचित् बाधा आतीहै । इनसे अधिक बाधा होनेपर मुख मार्ग



संकीर्ण हो जाता है और वायु घर्षण करती हुई निकल पाती है। यह स्थिति ऊष्म वर्णों की है जिन्हें 'घर्ष' भी कहते हैं। यह सर्वविदित है कि घर्षणसे ऊष्मा उत्पन्न होती है, इसीलिए प्राचीनोंने ऐसे व्यंजनोंको ऊष्म संज्ञा दी। तीसरी स्थिति एक क्षणके लिए वायुमार्गके पूर्णतः अवरुद्ध हो जानेकी है जिसमें या तो जिह्वा मुखकी छतका स्पर्श करती है या होंठ परस्पर स्पर्श करते हैं। यों उच्चरित वर्ण स्पर्श कहलाते हैं। किंतु ये तीनों ही स्थितियां बाधाकी मात्रापर आश्रित हैं। बाधा तीनोंमें ही है अतः उच्चरित वर्ण व्यंजन कहलाते हैं। बाधा रहित वर्ण स्वर कहलाते हैं। वा. आदिने परंपरागत परिभाषा दी है कि स्वर स्वतः बोले जा सकते हैं पर व्यंजनोंको स्वरोंकी सहायता अपेक्षित होती है। यह परिभाषा नहीं, सामर्थ्यका उल्लेख है। वास्तविक भेदक लक्षण जीभकी उठान है जिसे दी. ने उत्थापन कहा है। स्वर निर्बाध वर्ण हैं, तो व्यंजन सबाध।

**३४. व्यंजनोंका दी. कृत वर्गीकरण :** दी. ने व्यंजनोंका वर्गीकरण थोड़ा बहुत परंपरासे हटकर करने का यत्न किया है। फलतः वर्गीकरण न तो तार्किक हो पाया है और न व्याप्ति-दोषोंसे रहित ही। क्रमशः विवेचन से स्पष्ट होगा। दी. के अनुसार 'हिन्दी व्यंजनोंमें उच्चारण स्थान तथा प्रयत्नके अनुसार भेद किया जाता है।' फिर 'प्रयत्नके अनुसार व्यंजन स्पर्श, संघर्षी तथा कंपित माने हैं। स्पर्शकी परिभाषा तो ठीक है पर उसके तीन उपभेद करनेमें दी. गड़बड़ा गये हैं। बताये गये तीन उपभेद हैं : सरव, स्पर्श-संघर्षी और सघोष। फिर सरव व्यंजनोंके दो अनुभेद बताये हैं : अघोष तथा घोष। अघोषके विषयमें कहा है कि घोष तंत्री कंपित नहीं होती जबकि घोष व्यंजनोंमें होती है। जब प्रथम वर्गीकरण स्पर्श, संघर्षी तथा कंपितका है तो स्पर्शके उपभेद के रूपमें स्पर्श-संघर्षीकी गणना समझमें नहीं आती। दूसरे सरव जब स्पर्श का एक उपभेद है तो उसके अनुभेदों घोष अघोषको कंपित-अंकंपित कहकर समझना कैसे ठीक होगा क्योंकि कंपित तो मूल भेदोंमें से एक है। तदनुसार तो कोई भी स्पर्श कंपित नहीं होना चाहिये। फिर स्पर्शके उपभेद सरवका अनुभेद कंपित कैसे होगा। स्पष्ट है कि संज्ञातिघारणमें कहीं भूल हुई है। यही नहीं सरवके दो अनुभेद अघोष तथा घोष किये हैं पर यह भी लिखा है 'स्पर्श सघोष व्यंजन स्पर्श सरव व्यंजनोंसे इस बातमें भिन्न है कि इनके उच्चारणमें बाधा कम होती है और रव भी

कम।' पहले सघोषकी गणना किसी भेद उपभेद अनुभेदमें नहीं की थी पर बादमें उसको पूरे एक प्रच्छेदमें सोदाहरण बताया। परिभाषासे लगता है कि सघोषका प्रयोग अनुनासिकके लिए किया है क्योंकि लिखा है 'श्वास नास विवरसे भी निकलता है (न् म्)। दी. के वर्गीकरणकी इस मायाको समझनेमें हृष असमर्थ रहे हैं। संघर्षी व्यंजनोंके परिचयमें करण शब्दका भी प्रयोग किया गया है जिसका अभी तक कोई उल्लेख नहीं था। पर उनका परिचय भ्रामक है। लिखा है संघर्षी व्यंजन सरव और सघोष होते हैं पर उनके अंतर्गत श्-स् भी गिनाये हैं जो सघोष नहीं होते। अंतमें कंपित व्यंजन का परिचय दिया है जो अकेला 'र्' है।

**३५. स्थान भेदके अनुसार वर्गीकरण :**—दी. ने यह वर्गीकरण भी भ्रामक रीतिसे किया है। पुराना वर्गीकरण मुखके उस भागको ध्यानमें रखकर था जिमकी ओर जिह्वा उठती है या फिर होंठोंके आधार पर था। दी. ने इस वर्गीकरणके बीच जिह्वाके विविध भागोंके आधारपर भी वर्गीकरण करनेका यत्न किया। यदि जिह्वांशके आधारपर पृथक् वर्गीकरण होता तो कोई हानि नहीं होती, पर दी. ने तो एक साथ ही आधा तीतर आधा बटेर कर दिया। उसका वर्गीकरण है : कंठ्य, अलिजिह्वीय, तालव्य, जिह्वा-ग्रीय, ओष्ठ्य और ग्रसन्य अर्थात् चलेथे कंठसे, पहुंचे ओष्ठ तक और वापस मुड़े तो कंठसे भी पीछे चले गये। कंठ्यमें परंपरागत क् ख् ग् घ् ङ् गिनाये हैं तो अलिजिह्वीय विदेशी वर्णोंकी रक्षाके लिए रखे गये। वे हैं, क् ख्, ग्, । तालव्योंके लिए लिखा है कि उनके उच्चारणमें जिह्वाका मध्य भाग कठोर तालुका स्पर्श करता है या उसकी ओर उठा होता है (च् छ् ज् झ्, ज्, य्, श्) जबकि इन्होंने वर्णोंके प्रयत्नके प्रसंगमें लिखा था कि इनके उच्चारणमें घर्षण होता है अतः ये व्यंजन स्पर्श-संघर्षी या अनुघर्षी कहलाते हैं। स्पर्श और घर्षण दोनों एक साथ कैसे होते हैं, हम नहीं समझ पाये। चौथे भेद जिह्वाग्रीयके लिए लिखा है कि इन्हें दंत्य वा वत्स्य भी कहा जाता है (त्, थ्, द्, ध्, न्, स् इत्यादि)। फिर जिह्वाग्रीयके तीन भेद किये हैं : 'जिह्वाफलकीय, जिनके उच्चारणमें जिह्वाका फलक भाग लेता है (त्, द्, न्, स्, , आदि), ज्, मूर्धन्य (ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, ष्) तथा जिह्वान्तीय (ल्, र्)।' हमें तो समझमें नहीं आया कि जिह्वाफलकीय और जिह्वा-न्तरीय जिह्वाग्रीयके भेद कैसे होगये। ग्रसन्य 'ह्' के



परिचयमें जिह्वा मूल शब्दका भी प्रयोग किया है जिसे अबतक नहीं याद नहीं किया था ।

३६. दी. की कुछ विचित्र स्थापनाएं :—दी. के अनुसार 'हिन्दीमें कुल ४० व्यंजन स्वन हैं, जिनमें ड, ज्ञ, तथा ण को छोड़कर शेष सभी स्वनिम हैं । उप-युक्त तीन स्वन न स्वनके विकल्प हैं जो इनके बाद आनेवाले स्पर्श व्यंजनपर निर्भर होते हैं ।' हमें तो ऐसा नहीं लगा । वाङ्मय, तन्मय, और हिरण्मय तीनों में ही बादमें आनेवाला स्पर्श व्यंजन 'म' है पर यदि ड्-ण् के स्थानपर 'न' करेंगे तो उच्चारणभी अशुद्ध होगा और अर्थ भी समझमें नहीं आयेगा । आगे दी. ने महाप्राणत्व और मूधंन्य स्वनोंको हिन्दी व्यंजनोंकी एक विशिष्टता बताया है । यूरोपवालोंको चाहे ये तत्त्व अपरिचित हों पर भारतकी तो प्रायः सभी भाषाओंमें ये तत्त्व समान रूपसे मिलते हैं । यहांतक कि फारसी सेलसे बनी उर्दूमें भी ये तत्त्व भरपूर हैं यद्यपि वे न फारसीमें हैं, न अरबी या तुर्कीमें । इसके पश्चात् कोई छः पृष्ठोंमें व्यंजनोंका सारणीबद्ध वर्गीकरण और स्वनिक विवरण दिया है जिसपर वे सब बातें समान रूपसे लागू होंगी जो ऊपर बतायी गयी हैं । यह भी लिखा है कि 'अनुनासिक + स्पर्श सरव अथवा स्पर्श संघर्षी प्रकारके संयोजन हिन्दीके लिए सर्वाधिक लाक्षणिक है, जैसे : नङ्गा, गुञ्जन, अण्डा, बन्द ।' हमें तो यह हिन्दीका कोई विलक्षण लक्षण नहीं लगा, भारतकी सभी भाषाओंमें है यहांतक कि अंग्रेजीमें भी इङ्गलिश (english), एञ्जोय (enjoy), एंडोस (endorse) आदि हैं । हिन्दीके व्यंजनका द्वित्व होना अर्थ प्रभेदक लक्षण बताया गया है । पर यह लक्षण तो अन्य सभी भारतीय भाषाओंमें भी है । अंग्रेजीमें भी बट-बट्ट (But-Butt) लेटर-लेटर (Later-Latter) आदिमें हैं । 'अक्षर और अक्षर विभाजन' का विवेचन व्यर्थ लगा पर बलाघातका उपयोग है ।

३७. गु. और वा. का वर्ण विचार : गु. ने संस्कृत व्याकरणके परंपरागत शब्दोंका प्रयोग करके ही स्वर-व्यंजनका परिचय देनेका यत्न किया है । पर एक तो परिचयका क्रम ठीक नहीं रखा और दूसरे भाषा ऐसी नहीं रखी जिससे बात स्पष्ट होती । स्वर और व्यंजनकी कोई परिभाषा दिये बिनाही उच्चारण स्थानके आधारपर सारे वर्णोंका वर्गीकरण कर दिया है । यथा : 'कंठ्य—जिनका उच्चारण कंठसे होता है ।'

'प्रकर'—नवम्बर' १२—२६

इसीप्रकार तालव्य, मूधंन्य आदि भी बताये हैं । बताया जाना चाहिये था कि वर्गीकरण मुखकी छतको चार भागोंमें विभक्त करके और ओठोंको पांचवां भाग मानकर किया जाता है । कंठ्य-तालव्य आदि वर्णोंके उच्चारणमें जीभ उस-उस भागकी ओर इतनी ऊंची उठती है कि श्वासका मार्ग तबतक रुका रहता है जबतक जीभ हटती नहीं । जीभके हटनेपर ही ध्वनि उच्चरित होती है । ओष्ठ्यमें ओठ मिलकर मार्ग रोकते हैं । मार्ग पूरा रुकनेके बाद उच्चारण हो तो स्पर्श व्यंजनोंका उच्चारण होता है, उससे कम अवरोध होनेपर ऊष्मोंका, उससे भी कम होनेपर अन्तःस्थोंका और अवरोध न होनेपर स्वरोंका । पर इससे भी पूर्व उच्चारणकी पूरी प्रक्रिया और उसमें प्रयुक्त शरीरावयवोंका परिचय दिया जाना चाहिये । गु. ने यह कुछ नहीं किया । समझाया भी ऐसे जिससे कोई अर्थ स्पष्ट नहीं होता । यथा : 'स्पृष्ट—इनके उच्चारणमें वागिन्द्रियका द्वार बंद रहता है ।' इस पर चूटकी लेते हुए वा. ने लिखा है :—'छात्र पूछेंगे बोलनेमें वागिन्द्रियका द्वार कहां बन्द रहता है ? तब अध्यापक बगलें झांकने लगेंगे ।' इसीप्रकार घोष-अघोष का परिचय देते हुए गु. ने लिखा है : 'अघोष वर्णोंके उच्चारणमें केवल श्वासका उपयोग होता है, उनके उच्चारणमें घोष अर्थात् नाद (नहीं ?) होता । घोष वर्णोंके उच्चारणमें केवल नादका उपयोग होता है ।' पर बात उपयोगकी नहीं है । बात है स्वरतन्त्रियोंके तनकर निकट आने अथवा शिथिल पड़ी रहनेकी । जब वे शिथिल होती हैं तो श्वास आरामसे बाहरको जाता है पर उनके तनकर निकट आनेपर श्वास गुंजकी नाद या घोष बन जाता है । स्वरोंके वर्गीकरणमें भी गु. बड़बड़ाये हैं क्योंकि वे स्वरके दीर्घ रूप और दीर्घ संधि को एक मान बैठे हैं अतः 'अ इ उ ऋ' को तो मूल स्वर मानते हैं पर आ ई ऊ को ए ऐ ओ औ के समान संधि स्वर । आ ई ऊ वस्तुतः अ इ उ के ही दीर्घ रूप हैं अर्थात् उनके उच्चारणमें ह्रस्व रूपसे कोई दुगुना समय लगता है । इसीप्रकार अनुस्वार—अनुनासिकका भेद स्पष्ट करते हुए गु. ने लिखा है 'अनुस्वार, तीव्र और अनुनासिक धीमी ध्वनि है ।' इसी कथनकी समीक्षा करते हुए वा. ने लिखा है—'यह कोई भेदकी बात नहीं है और गलतभी । अनुनासिक कोई पृथक् ध्वनि नहीं है ।'

३७.२ वा. ने स्वर और व्यंजनकी परिभाषासे



आरम्भ किया है और परम्परागत परिभाषा दी है—  
 'जो वर्ण स्वयं स्थिर रहते हैं, स्वयं राजन्ते—वे स्वर  
 कहलाते हैं।' ... जिनका उच्चारण करने में स्वरकी सहा-  
 यता लेनी पड़ती है, 'व्यंजन' कहलाते हैं। स्वरकी  
 बैसाखी लगाये बिना ये खड़े नहीं रह सकते।' यह  
 परिभाषा देते हुए भी पता नहीं क्यों अनुस्वार विसर्ग  
 को व्यंजन मानने पर रुष्ट होकर लिखा है 'यह गलती  
 है'। हमारे विचारसे बैसाखी तो इन्हें भी चाहिये।  
 पर शेष व्यंजनों का इनसे भेद यह है कि इन्हें स्वरकी  
 बैसाखी पहले ही चाहिये, बाद में नहीं। यदि बाद में लगे  
 तो अनुस्वार 'म्' बन जायेगा और विसर्ग 'र्'। इन्हें  
 बैसाखी पहले चाहिये इसीलिए वर्णमाला में इन्हें शेष  
 व्यंजनों से पहले स्थान दिया गया। अन्य व्यंजन तो  
 पहले भी बैसाखी रख सकते हैं, बाद में भी और दोनों  
 ओर भी। वास्तविक बात यह है कि विसर्ग 'ह्' का  
 ही अघोष रूप है। इसीलिए माहेश्वर सूत्रों में उसे  
 अघोषों के अन्त में स्थान दिया गया और 'सघोष ह्'  
 को घोष व्यंजनों में सर्वप्रथम। अघोष 'ह्' में जब  
 उच्चारणार्थ 'अ' जुड़ा तो उसका उच्चारण भी घोष  
 हो गया और वातिककारको आक्षेप करने का अवसर  
 मिल गया कि 'हकार दो बार क्यों।' महेश्वर उत्तर  
 देने को था नहीं, और कोई दे नहीं सका। पतंजलि ने  
 केवल लीपा-पोती की। अनुस्वार तो 'म्' का ही संधि-  
 गत रूप है जिसका उच्चारण स्थान परवर्ती वर्ण के  
 उच्चारण स्थान के अनुसार बदलता है, इसीलिए महेश्वर  
 ने उसे वर्णसमाप्त्यर्थ पृथक् स्थान ही नहीं दिया। पर  
 ये बातें कोई व्याकरण नहीं बताता। वा. की तो  
 दूसरों पर आक्षेप में ही अधिक रुचि है। इसलिए गु.  
 के प्रयोग 'सानुनासिक' पर आक्षेप करते हुए अनेक  
 तर्क देकर लिखा 'सानुनासिक गलत, अनुनासिक  
 सही।' हम तर्कजाल में न पड़कर केवल इतना कहेंगे  
 कि 'सानुनासिक' का प्रयोग पाणिनीय शिक्षा में है :  
**अन्तस्था द्विप्रभेदा रेफवर्जिताः सानुनासिकाः निरनुनासि-  
 काश्च।** वा. ने स्वरों के वर्गीकरण और परिचय को  
 जंजाल बताकर पूर्व पीठिका में ही हाथ झाड़ लिये :  
 'वर्णों के स्थान बताना तो ठीक, स्पष्ट चीज है। और  
 'अल्पप्राण', 'महाप्राण' ये दो प्रयत्न भी ठीक परन्तु  
 इनके अनन्त और जंजाल हैं हिन्दी के लिए, उन्हें क्यों  
 भरा जाये।' इसके पश्चात् पूरे दो पृष्ठों में गु. का  
 परिहास है। अन्त में लिखा : 'क्योंकि मेरी समझ में नहीं

आता ! तब दूसरों को क्या समझाऊँ ? जिन्हें यह सब  
 समझने की इच्छा हो, वे 'सभा' द्वारा प्रकाशित 'गुरु'  
 जी का 'हिन्दी व्याकरण' देखें। वहाँ सब मिल  
 जायेगा।' आक्षेप और भी विस्तृत है। हम विस्तार  
 में नहीं जायेंगे। यदि स्वरों-व्यंजनों के उच्चारण की  
 प्रक्रिया को समझना हिन्दी के लिए जंजाल है तो उसे  
 छोड़ने में हमें आपत्ति नहीं है पर आश्चर्य है कि वा.  
 ने हिन्दी के मूल स्वरों अ इ उ का तो नामोल्लेख करके  
 ही छोड़ दिया जिनके चलपर हिन्दी टिकी है और 'ऋ-  
 लृ' की कथा तीन पृष्ठों में गाते चले गये जिनका हिन्दी  
 स्वरों में कोई स्थान ही नहीं है। जो 'ऋ' ह्रस्व रूप में  
 भी केवल कुछ तत्सम शब्दों में 'रि' के रूप में उच्चरित  
 होता है उसकी कथा से पूरे स्वर विचार को भी देने का  
 औचित्य हमें तो समझ में नहीं आया। तत्सम शब्दों की  
 वर्तनी में 'ऋ' की रक्षा के तो हम भी समर्थक हैं पर  
 व्याकरण तो उच्चरित रूप का अन्वाख्यान करता है,  
 वर्तनी का नहीं। अतः जिनके विषय में स्वयं वा. का  
 स्पष्ट मत है कि 'कुछ भी हो, ऋ स्वर हिन्दी के गठन में  
 नहीं हैं' उसपर तथा उसके आ ई 'लृ' पर तीन पृष्ठ  
 क्यों काले किये जिसकी सत्ता संस्कृत में भी संदिग्ध है।  
 वा. ने ई-ऊ आदिको तो संधि स्वर नहीं माना पर ए-  
 ओ को संस्कृत का व्याकरण अनुकरण करके संधि-  
 स्वर ही माना है। इस बात का कोई उल्लेख नहीं  
 किया कि हिन्दी में ये मूल स्वर हैं और ह्रस्व-दीर्घ दोनों  
 ही रूपों में मिलते हैं। यद्यपि इ-ए और उ-ओ के बीच  
 की ध्वनियों को गु- और वा. दोनों ने ही स्वीकार किया  
 है जो 'ए-औ' के ह्रस्व रूप हैं और लिपि में उनके लिए  
 पृथक् अक्षर न होने के कारण कभी इ-उ रूप में तो कभी  
 ए-ओ रूप में लिखे जाते हैं। गु. के अनुसार इकट्ठा  
 (एकट्ठा), मिहतर (मेहतर), गुबरेला (गोबरेला)  
 उदाहरण हैं तो वा. के अनुसार इतना (एतना),  
 उतना (ओतना)। यों ए-ओ के ह्रस्व रूपों को गु. और  
 वा. दोनों स्वीकार करते हैं जो मूल स्वर का लक्षण है,  
 फिर भी दोनों इन्हें संयुक्त या संधि स्वर ही मानते हैं।  
 यों हमारे विचार से न गु. का विवेचन ठीक है, न वा.  
 का ही। दी. का कैसा है, यह पहले ही देख चुके हैं।  
 अतः स्वन विचार को अपनी दृष्टि से जैसा उचित  
 समझते हैं यहाँ दे रहे हैं।

३८. हमारा प्रस्तावित स्वन विचार : हिन्दी के  
 वर्णों का परिचय और वर्गीकरण भाषा शिक्षा का एक



आवश्यक अंग है। उसकी मोटीमोटी रूपरेखा हमने पहले ११ के अन्तर्गत दी है। फिरभी पूरे विषयको व्यवस्थित रूपसे समझानेका आगे पुनः प्रयास किया जायेगा :—

(१) भाषा :—मनुष्य अपने मनके भावोंको व्यक्त करनेके लिए अपने मुखसे कुछ ध्वनियोंको उच्चरित करता है जो क्रम विशेषमें उच्चरित की जाती है और श्रोता यदि उच्चरित भाषाका जानकार है तो उसे समझ जाता है। इन उच्चरित ध्वनियोंको 'स्वन' कहा जाता है ताकि उसका अन्य प्रकारकी ध्वनियोंसे भेद किया जा सके। भारतके प्राचीन वैयाकरणोंने इन स्वनोका विशेषणकर संस्कृत भाषामें उच्चरित स्वनो की व्यवस्थित गणना की थी और ऐसे प्रत्येक स्वनको 'वर्ण' का नाम दिया था।

(२) वर्णोंके उच्चारणमें प्रयुक्त करणों अर्थात् शरीरके अवयवोंका परिचय :—उर अर्थात् फुफुस द्वारा बाहरकी ओर फेंकी गयी प्राणवायु वर्णोंका मूल कारण होता है। वह वायु बलके साथ फेंकी जाये तब उच्चरित वर्ण महाप्राण होता है, अन्यथा अल्प-प्राण। वह वायु जब कण्ठमें पहुँचती है तब वहाँ विद्यमान स्वरतंत्रियोंकी भूमिका होती है। स्वरतंत्रियाँ या तो शिथिल पड़ी रहती हैं या तनकर निकट आ जाती हैं। इन दोनों स्थितियोंके परिणामस्वरूप वर्ण अघोष या घोष होते हैं। अगली भूमिका नासिका द्वारकी होती है वह बोलनेके समय अधिक स्थितियोंमें बन्द रहता है अतः सारा वायु मुखसे ही बाहर निकलती है। यदि द्वार खुला हो तो वायु अंशतः नासिका मार्गसे भी निकलती है। पहली स्थिति अननुनासिक वर्णोंकी होती है, दूसरी अनुनासिककी। चौथा और सबसे महत्त्वपूर्ण करण है जिह्वा, जिसके अभावमें वर्णोंका उच्चारण संभवही नहीं। जिह्वा वायुको रोककर विविध वर्णोंका उच्चारण करती है। वह वायुका मार्ग रोकनेके लिए जब सबसे कम उठती है और वायुको बिना किसी बाधाके निकलने देती है तो उच्चरित वर्ण स्वर होता है। उससे अधिक उठान होनेपर थोड़ी बहुत बाधा होती है। बाधापूर्वक उच्चरित वर्णोंको व्यंजन कहते हैं। व्यंजन पुनः बाधा की मात्राके आधारपर तीन भागोंमें विभक्त हैं। सबसे कम बाधावाले अन्तःस्थ कहलाते हैं, अर्थात् वे स्वरों और व्यंजनोंके बीचके हैं। अतः उन्हें यूरोपवाले अर्ध-स्वरभी कहते हैं। वस्तुतः वे इ-उ जैसे स्वरोंके बाद अन्य स्वर आजानेपर ही बनते हैं अर्थात् य्-व् आदिमें

बदल जाते हैं। जीभके और अधिक उठनेपर वायुका प्रवाह मार्ग संकरा हो जाता है और वायु घर्षण करती हुई निकलती है। यों उच्चरित श्-ष्-स् आदि व्यंजन ऊष्म व्यंजन कहलाते हैं। उन्हें घर्ष व्यंजन भी कहते हैं। जिह्वाके उठानकी अन्तिम सीमा वह है जब वह मुखकी छतको या दाँतोंके मूलको स्पर्श करती है। इस स्थितिमें उच्चरित होनेवाले व्यंजन स्पर्श कहलाते हैं। ओष्ठभी परस्पर स्पर्श करके उच्चारणमें अपनी भूमिका निभाते हैं। यों उच्चरित वर्णभी स्पर्श कहलाते हैं। जिह्वा किस भागको स्पर्श करती है इस आधारपर स्पर्श वर्ण चार भागोंमें विभक्त है : कंठ्य, तालव्य, मूर्धन्य और दन्त्य। होठोंके स्पर्शके फलस्वरूप उच्चरित वर्ण ओष्ठ्य कहलाते हैं। यह पाँच वर्गोंमें विभाजन उच्चारण स्थानमूलक है।

(३) स्वरोंका वर्गीकरण :—सभी स्वरोंके उच्चारणमें जिह्वा इतनी कम उठती है कि वायुका प्रवाह अबाध रहता है। फिरभी उठानकी मात्रा समरूप नहीं रहती। उस मात्राको पुनः चार भागोंमें विभक्त करने हैं : सबसे कम, उससे अधिक, उससे भी अधिक और सबसे अधिक। इन स्थितियोंमें उच्चरित स्वर वर्ण क्रमशः विवृत, अर्ध विवृत, अर्ध संवृत और संवृत कहलाते हैं। आ विवृत है, ऐ-ओ अर्ध विवृत, ए-ओ अर्ध संवृत और इ-उ संवृत। इनमें 'आ' के उच्चारणमें जीभका मध्य भाग उठता है, ओ-ओ-उ के उच्चारणमें पिछला। 'अ' के उच्चारणमें मध्यका भाग उठता है पर विवृतसे अधिक और अर्ध विवृतसे कुछ कम। ऐ-ए-इ के उच्चारणमें जीभका अगला भाग उठता है। यों स्वर जिह्वाकी उठानके आधारपर चार भागोंमें तथा जिह्वाके भागके आधारपर अग्र-मध्य-पश्चमें विभक्त होते हैं। सभी स्वरोंके उच्चारणमें नासिकाका द्वार खुला हो सकता है। तब उच्चरित स्वर अनुनासिक कहलाते हैं। बन्द रहनेकी स्थितिमें उच्चरित अननुनासिक। उच्चारणमें लगनेवाले कालकी मात्राके आधारपर स्वरों का वर्गीकरण ह्रस्व-दीर्घमें तो होता ही है, विशेष परिस्थितियोंमें प्लुत भी हो सकता है। ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतकी मात्राएं क्रमशः एक-दो-तीन होती हैं। प्लुतका प्रयोग दूरसे पुकारने या जोर देनेके लिए होता है। सामान्यतः ह्रस्व-दीर्घ दो ही रूप हैं। परंपरासे अ-इ-उ तीन ही स्वरों के ह्रस्व-दीर्घ रूप माने जाते रहे हैं। शेष स्वरोंको सदा दीर्घ माना जाता है। परन्तु हिन्दीमें उन



सभीके ह्रस्व रूप भी हैं। क्रियाओंके प्रेरणाथक रूपोंमें जो ह्रस्वीकरणकी प्रक्रिया दृष्टिगोचर होतीहै वह इसका प्रमाण है। सीखना-सिखाना, लूटना-लुटाना में जो प्रक्रिया है वही अन्यत्र भी है जिसे स्पष्ट करनेके लिए हम दीर्घ स्वरको अधोरेखांकित करके ह्रस्वीकृत दिखायेंगे क्योंकि विद्यमान लिपिमें ह्रस्व रूप न होनेके कारण उन्हें या तो दीर्घ रूपसे ही दिखातेहैं या अन्य-विध विकारसे। खेलना-खेलाना (लिखित रूप 'खिलाना' जो 'खिलना' का प्रेरणाथक रूप भी है), फैलना-फैलाना, बैठना-बैठाना (जो 'बिठाना' लिखा जाताहै), ओढ़ना-ओढ़ाना (जो उढ़ाना लिखा जाताहै), दौड़ना-दौड़ाना, लौटना-लौटाना, आंकना-आंकवाना। यह विवृत आँ है किन्तु लिखा जाता : अंकवाना है। 'आ' विवृत स्वर

है जिसका ह्रस्व विवृत रूप हिन्दीमें प्रचुर मात्रामें प्रयुक्त होताहै। 'आ' विवृत स्वर है जिसका ह्रस्व विवृत रूपमें हिन्दीमें प्रचुर मात्रामें प्रयुक्त होताहै। वह 'अ' से भिन्न है। लड़का बेटा, पढ़ना आदिका आ ह्रस्व विवृत और लड़का, अब आदि का प्रथम अ अर्ध विवृत से कुछ कम और मध्य स्वर है, विवृतके समान पश्च नहीं। इन स्वरोंका वर्गीकरण एक और प्रकारसे होगा जो होठोंकी स्थितिपर आश्रित है। उच्चारणमें यदि होठ गोल हों तो स्वर वतुल कहलायेंगे अन्यथा अवतुल। उ-ओ-औ अपने ह्रस्व-दीर्घ, अनुनासिक-अननुनासिक सभी रूपोंमें वतुल हैं। शेष सभीमें अवतुल। स्वरोंके वर्गीकरणको यों सारणी-बद्ध कियाजा सकताहै :—

### स्वर सारणी

ओष्ठ स्थिति/ जिह्वाका भाग/		अवतुल				वतुल			
		अग्र		मध्य		पश्च			
जिह्वाकी उठान अननुनासिक		अनुनासिक		अननुनासिक		अनुनासिक		अनुनासिक	
ह्रस्व दीर्घ		ह्रस्व दीर्घ		ह्रस्व दीर्घ		ह्रस्व दीर्घ		ह्रस्व दीर्घ	
संवृत	इं ईं	इं ईं						उ ऊ	उं ऊं
अर्ध संवृत	ए ए	ए ए						ओ ओ	ओं ओं
अर्ध विवृत	ऐ ऐ	ऐ ऐ						औ औ	औं औं
				अ		अं			
विवृत				आ आं		आं आं			

टिप्पणी—ऊपरकी सारणीमें जो रेखांकन कियाहै उनका सामान्य भाषामें भी प्रयोग किया जाये यह हमारा सुझाव नहीं है। कोई लिपि इतनी पूर्ण नहीं होती कि उसके माध्यमसे सभी वर्णोंके उच्चारण व्यक्त किये जा सकें। पर उच्चारणको समझनेके लिए यह बताना आवश्यक है, अतः व्याकरणमें किया जाना चाहिये। अन्यथा छात्र यह नहीं समझ पाता कि जब, 'फैलना-फैलाना' का जोड़ा है तो बैठना-बैठानाका क्यों नहीं। वहां 'बिठाना' क्यों हो जाताहै। वस्तुतः उच्चारण फैलाना-बैठाना ही होतेहै पर किसीने 'बैठाना' में ह्रस्वत्वको व्यक्त करनेके लिए 'बिठाना' लिखना आरंभ कर दिया और वह चल पड़ा जबकि 'फैलाना' इसी रूपमें लिखा जाता रहा यद्यपि ह्रस्वीकरण उसमें

भी होताहै अनुनासिकता व्यक्त करनेके लिए हमने केवल बिंदुका प्रयोग कियाहै क्योंकि चंद्रभी लगाते तो छपने में कठिनाई होती।

ऊपर परिगणित स्वरोंके अतिरिक्त अइ, अउ के संधिगत उच्चारणभी तत्सम-तद्भव शब्दोंमें प्रयुक्त होतेहै यद्यपि उन्हें संस्कृतकी परंपराके अनुसार ऐ-औ के रूपमें ही लिखा जाताहै, यथा : ऐश्वर्यं, भौतिक, गैया, कौआ आदिमें। तत्सम शब्दोंमें संस्कृतकी वर्तनी के कारण 'ऋ' भी स्वर माना जाताहै यद्यपि उसका उच्चारण रि या र के तुल्य होताहै। यथा : संस्कृत, कृपा, ऋषि आदिमें।

(४) व्यंजनोका वर्गीकरण—हिन्दीकी वर्णमाला में व्यंजनभी एक विशेष क्रममें रखे गयेहैं। सर्वप्रथम



स्पर्श वर्ण रखे गये हैं, तब अन्तःस्थ और अन्तमें ऊष्म तथा ह । स्पर्श वर्णोंको उच्चारण स्थानके आधारपर पांच-पांच वर्णोंके पांच वर्गोंमें विभक्त किया गया है जो क्रमशः कंठ्य (कवर्ग), तालव्य (च वर्ग), मूर्धन्य (ट वर्ग), दन्त्य (त वर्ग) और ओष्ठ्य (प वर्ग) हैं । फिर प्रत्येक वर्गमें पहले अघोष रखे गये हैं, तब घोष । अघोषोंमें पहले अल्पप्राण, तब महाप्राण हैं । यही क्रम सघोषोंका है और अंतमें है अनुनासिक । यों स्पर्श वर्णोंका क्रम है क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म । तदनन्तर तालव्य-मूर्धन्य-दन्त्य और ओष्ठ्यके क्रम ही में ही चार अंतःस्थ हैं : य, र, ल, व । इनमें र के उच्चारणमें जीभ मूर्धा और दंत मूलके बीच लुढ़कती है अतः इसे लुठित या जुठितभी कहते हैं । लू के उच्चारणमें वायु जीभके पाश्वर् भागोंसे निकलती है अतः उसे पाश्वर्कभी कहते हैं । 'व' के उच्चारणमें ऊपरका दांत नीचेके होठकी ओर आता है अतः उसे दन्तोष्ठ्य कहते हैं : अन्तःस्थ वर्ण घोष हैं । श, ष, स घर्षणसे उच्चरित होते हैं जिससे श्वासमें ऊष्मा आ जाती है, इसीलिए ऊष्म कहलाते हैं । इनका क्रम तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य का है । ये अघोष वर्ण हैं । 'ह' को परंपरासे कंठ्य माना जाता रहा है । उसका उच्चारण 'अ' का महाप्राण रूप है जिसमें जिह्वा कुछ अधिक उठती है जिससे घर्षण के कारण श्वासमें ऊष्मा आ जाती है । विसर्ग 'ह' का ही अघोष उच्चारण है । महेश्वरने इसीलिए उसे 'श ष स र् । हल् ।' में स्थान दिया । अर्थात् अघोषोंके साथ रखा । सघोष 'ह' को व्यंजनोंमें सर्वप्रथम स्थान दिया क्योंकि आरंभमें सघोष वर्ण रखे । महेश्वरने अनुस्वारकी गणना नहीं की थी और उसका उच्चारण भी छ ज्ञ ण न म में से किसी एकके अनुरूप यथास्थिति अर्थात् परवर्ती व्यंजनके उच्चारण स्थानके अनुसार होता है । यथा : 'सिह् (सिङ्.ह), संयम (सञ्जयम), संस्कार, (सन्स्कार) संवत्सर (सम्बत्सर), अंक (अङ्क), संचय (सञ्चय), कंटक (कण्टक), अंत (अन्त), कंपन (कम्पन) आदि) ।

पाठक आश्चर्य कर सकते हैं कि हमने क, ख, ग, ज, फ, ड, ढ, को हिन्दी व्यंजनों में सम्मिलित क्यों नहीं किया। उनके बिना उच्चारण शुद्ध कैसे होगा। पर इनमें ड-ढ तो क्रमशः ड-ढ के ही वैकल्पिक उच्चारण है जिनका स्थान प्रायः निर्धारित है। ड-ढ शब्दके आरंभ

‘प्रकर’—नवम्बर’६२—३०

स्थान	कठ्य	तालव्य	सूत्र्य	दन्त्य	ओष्ठ्य
प्रयत्न	अघोष	अघोष	अघोष	अघोष	अघोष
	अनुनासिक	अनुनासिक	अनुनासिक	अनुनासिक	अनुनासिक
	घोष	घोष	घोष	घोष	घोष
स्पर्श	क	ख	ग	घ	ङ
	च	छ	ज	झ	ञ
	ट	ठ	ड	ढ	ण
	त	थ	द	ध	न
	प	फ	ब	भ	म
	य	र	ल	व	श
	स	ह	र	ल	व
ऊष्म	विसर्ग				
अंतःस्थ					



में अथवा द्वित्व-संयुक्त रूपमें श्रुतिगोचर होतेहैं तो ड-ढ अन्यत्र । डब्बा, ढब, डंडा, ढंग, अड्डा, बुड्डा, जाड्य; अड़ना, बड़ना, घड़ा, बड़ा, बाड़, बाढ़ आदि उदाहरणोंसे यह बात स्पष्ट है । निडर-टोडर आदि अपवाद प्रतीत होतेहैं पर हैं नहीं, क्योंकि वे लिखे जाहे एक 'ड'से ही जायें पर उच्चारण द्वित्व का ही होता है । आधुनिक भाषाशास्त्री ड-ड ढ-ढ एक ही स्वनिमके उपस्वन मानेंगे । शेष वर्ण अन्य भाषाओंके गृहीत शब्दोंके शुद्ध उच्चारणके मिथ्या प्रयास मात्र हैं । भाषाकी स्वाभाविक प्रवृत्ति अन्य भाषाके शब्दोंको अपनी भाषाके ढाँचेमें ढालकर लेनेकी ही होतीहै । इसी रूपमें वे अपनाये भी गये । अर्थात् क-ख-ग-ज-फ रूपमें ही गृहीत हुए । इसीलिए उनके ही नीचे नुकते लगाये गये अन्यथा तो वे स्पष्ट वर्ण हैही नहीं । हां, अधिकतर भाषाएं किसी-न-किसी अन्य भाषाको आकर भाषा मानतीहै और उसके शुद्ध उच्चारणोंकी रक्षा करनेका यत्न करतीहै यद्यपि कर नहीं पातीं । उदाहरणार्थ अंग्रेजी में फ्रांसकी भाषाके रेस्त्रां जैसे शब्दोंके शुद्ध उच्चारण का प्रयास किया जाताहै यद्यपि वहांकी राजधानीको पेरिस बना दिया जाताहै जो 'पावी' जैसा कुछ उच्चरित होना चाहिये । उर्दू अरबी-फारसीके शुद्ध उच्चारण की रक्षाका यत्न करतीहै और उर्दू वालोंके इस प्रयास के अनुकर्ता लोग हिन्दीमें भी उनकी रक्षा करना चाहते हैं । पर कर तो उर्दू वाले भी नहीं पाते । वे न ऐन का ठीक उच्चारण कर पातेहैं, न स-त आदिके विविध भेदोंकी रक्षा न 'हदरत' का सही उच्चारण कर पाते हैं । जब उन भाषाओंके शुद्ध उच्चारणके लिए दृढ-प्रतिज्ञ लोगभी असमर्थ रहतेहैं तो हम क्यों चक्करमें पड़ें । हमने जिस रूपसे उसे अपनायाहै उसी रूपमें उच्चरित करना चाहिये । लिखनेमें तो हम अपने शब्दों को भी ठीकसे नहीं लिख पाते जैसा कि स्वरोंके प्रसंग में हम बता चुकेहैं तो पराये वर्णोंकी चिन्ता क्यों करें जिनको बोलभी नहीं पाते । [१]

## हिन्दी-गुजरातीका तुलनात्मक व्याकरण विचारः

[आधुनिक भाषाविज्ञानके वाक्य-केन्द्रित परिप्रेक्ष्यमें]

लेखक : डॉ. जे. जे. त्रिवेदी

समीक्षक : डॉ. उमेशप्रसाद सिंह 'शास्त्री'

आधुनिक भाषा-विज्ञानके वाक्य-केन्द्रित परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत हिन्दी-गुजरातीके तुलनात्मक व्याकरण-विचार संबद्ध यह पोस्ट-डॉक्टरल शोधकार्य प्राचीन भारतीय एवं आधुनिक पाश्चात्य भाषा-चिन्ताधारा संबद्ध पिछली दो दशाब्दियों पर्यन्त सारस्वत अनुशीलनकी स्वाभाविक फलश्रुति है । हिन्दी-गुजरातीके तुलनात्मक व्याकरण-विचारके व्याजसे लेखकने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओंके तुलनात्मक अध्ययनके हेतु भाषा विश्लेषण-प्रविधिका विशिष्ट प्रतिदर्शभी उपस्थित कियाहै । एकही उत्स संस्कृतसे निष्पन्न हिन्दी और गुजराती दोनों आज न केवल अपनी जननीसे बल्कि एक दूसरेसे भी दूर चली गयीहैं । डॉ. त्रिवेदीने पाणिनि-पतञ्जलि-भर्तृहरि प्रणीत भारतीय भाषा-चिन्ताधारारके अन्तर्गत प्रतिपादित "महावाक्य" की संकल्पनाके साथ आधुनिक चॉम्स्कीयन एवं चॉम्स्की-परवर्ती रूपान्तरणक संसर्जक व्याकरणकी विश्लेषण प्रणालीका समन्वय करके एक नवीन भारतीय प्रविधि-विमर्श प्रतिष्ठित कियाहै जो इस अध्ययनकी महती उपलब्धि मानीजा सकतीहै । इस अभिनव आविष्कृत-परिष्कृत प्रविधि-प्रतिदर्शको प्रतिष्ठित करके डॉ. त्रिवेदीने सचमुच ही अपने साहसिक कदमका परिचय दियाहै । गुजराती भाषा-विज्ञानके अद्यावधि चिर-प्रतीक्षित एवं अनुसंधानापेक्षी अंशकी पूर्ति करते हुए प्रथम बार लेखकने आधुनिक गुजरातीका विज्ञानवादी दृष्टि-संवलित मौलिक भाषातात्त्विक विश्लेषण उपस्थित कियाहै ।

कुल बारह अध्यायोंमें बितरित इस ग्रंथके उपस्थापनमें अपने पी-एच.डी. परवर्ती शोधकार्यकी उपयोगिता एवं महत्तापर प्रकाश-निक्षेप कियाहै । इससे प्रारम्भसे ही लेखकके भाषाविषयक पांडित्यकी

१. प्रकाश : साहित्य संगम प्रकाशन, चौटा बाजार, सूरत-३६५००३ । पृष्ठ : २६४; डिमा.; मूल्य : ६०.०० रु. ।



झांकी मिलती है। द्वितीय अध्यायमें हिन्दी-गुजराती व्याकरण-शास्त्रकी ऐतिहासिक भूमिका उल्लेखित है। यहां लेखकने तल्लोसे उभय भाषाओंकी गुत्थियोंका उन्मीलन किया है। तृतीय अध्याय हिन्दी-गुजरातीके तुलनात्मक रूप-स्वनिमीय विचारपर आधारित है। जिस विद्वत्पूर्ण स्वच्छन्दताके साथ उभय भाषाओंकी रूप-स्वनिमीय मीमांसा लेखकने यहां की है उससे यह सिद्ध हो जाता है कि उनकी पैठन केवल गुजराती या हिन्दीमें किन्तु आधुनिक भारतीय भाषाओंके तुलनात्मक विवेचनमें भी सर्वथा समर्थ एवं मौलिक रही है। चतुर्थ अध्यायमें हिन्दी-गुजरातीके तुलनात्मक वाक्य-विचारपर मौलिक ढंगसे विवेचन किया है। गुजराती भाषाशास्त्रके सर्वथा उपेक्षित विषय “वाक्य-संरचना” पर तो यहां प्रथमही बार प्रकाश-निक्षेप हुआ है। पंचम अध्यायमें उभय भाषाओंकी शैली व अभिव्यंजना प्रकारपर वैय्यासिक स्तरपर विवेचन प्राप्त है। षष्ठ अध्यायमें लेखकने अत्यन्त मनोयोगपूर्वक विवेच्य भाषामें पद-संरचनाके साम्य एवं वैषम्यमूलक भाषा-तत्त्वोंका विशद आकलन प्रस्तुत किया है। इस अध्याय में लेखक अपने अभिमतको बड़े साहसके सहित व्यक्त करते हैं: “यह रूझान भर्तृहरि-प्रणीत “वाक्य-पदीय” रूझान है, जबकि रुढ़िवादी रूझान तो “पद-वाक्यीय” रहा है।” लेखककी सारस्वत पृष्ठभूमि संस्कृतकी भी समृद्ध रही है। उन्होंने यास्क, पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि, भर्तृहरि, चन्द्रगोमिन एवं भट्टोजी दीक्षित प्रभृति वैयाकरणोंका विधिवत् अध्ययन-चिन्तन किया है। सप्तम अध्याय इस अध्ययनका सर्वथा मौलिक कहा जा सकता है। इसमें लेखकका विवेचन हिन्दी-गुजराती को पाकर समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओंके तुलनात्मक अध्ययनके रूपमें व्यापक हो उठता है, जहां हमारी इन भाषाओंकी तुलनाके लिए लेखकने एक मौलिक विश्लेषण प्रविधि-विमर्श प्रस्तुत किया है तथा एक सर्वथा नूतन प्रविधि-प्रतिदर्श प्रतिपादित किया है। इसके मूल में वाक्यार्थ सत्ता ही अनुस्यूत है। इस प्रविधि-प्रतिदर्श पर आनेके पूर्व लेखककी चिन्ताने स्वयं चॉम्स्की द्वारा भिन्न-भिन्न समयमें तीन बार परिष्कृत-संशोधित होती चली आयी प्राविधिक आधारभूमिकी पूर्ण यात्रा की है और अन्तिम चॉम्स्कीयन पड़ाव “थर्ड एक्सटेंडिड थ्योरी” एवं चॉम्स्की परवर्ती भाषा-मीमांसाको अपना लक्ष्य-स्थल बनाया है। डॉ. त्रिवेदी द्वारा प्रतिपादित

यह भाषा-विश्लेषण प्रविधि मूलतः पाश्चात्य प्रविधि-विमर्शका ही नवीन भारतीय प्रतिदर्श है।

डॉ. त्रिवेदीने इसी प्रवाहमें उभय भाषाओंपर विदेशी प्रभावकी भी बड़े अधिकारके साथ तथा मौलिक ढंगसे समीक्षा की है जो षष्ठम अध्यायमें प्रस्तुत है। हमारी भाषाओंकी सर्जनाक्षम सामर्थ्यको कतनेके लिए लेखकने विदेशी प्रभावके अन्तर्लीन होनेकी मात्रा को निकष रूपमें ग्रहण किया है। लेखकका यह प्रविधि-चिन्तन नितान्त मौलिक है। यह हमें उर्दू के स्वरूपको भाषातात्त्विक दृष्टिसे सूक्ष्मतः विश्लेषित करनेका अवसर प्रदान करता है। नवम अध्यायमें उभय भाषाओं की वाक्य-रचनामें स्वनिमीय मैत्री-निर्वाह जैसे गूढ़ विषयको लिया गया है। यथा लेखक स्वयं कहते हैं, यहाँ “मैत्री” शीर्षक मूलतः डॉ. सुधा कालराका है। दशम अध्यायमें यहां प्रथम बारही पार—रूप-स्वनिमीय रूझान अर्थात् अतिखण्डीय संरचनाके कठिन विषयको विवेचित-विश्लेषित किया गया है। यहां भाषा विवेचनाका आधारभौतिकी बन गया है। सुर, सुर लहर तथा जंकचरको लेकर उभय भाषाओंके भेदक भाषा-तत्त्वोंकी सूक्ष्म गवेषणा यहां प्रस्तुत है।

भाषाशास्त्रीय विवेचनकी भाषाका प्रतिदर्श भी प्रकारान्तरसे डॉ. त्रिवेदीने यहां संकेतित करते हुए इस ओर भाषाविदोंका ध्यान आकृष्ट किया है। वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठताके साथ साहित्यिक लालित्यका सायुज्य, डॉ. त्रिवेदीके भाषा-विवेचनकी भाषाका लक्ष्य-योग्य तत्त्व है। इस ग्रंथके माध्यमसे स्वल्प तथा एक सीमा तक अस्पष्ट तथ्योंके भीतर प्रवेशकर एक अन्वित अभि-प्रायकी योजना एवं प्रस्तुतीकरण लेखकके लिए एक चुनौतीका विषय रहा है। अस्पष्ट प्रतीत होनेवाली ओर एक सीमा तक द्वन्द्वात्मक विचारोंका प्रतिपादन करने वाली संकल्पनाओंके भीतर एक अन्वित एवं तर्कग्राह्य अर्थसमष्टिकी योजना भी यहां लक्ष्य-योग्य है। “अधि-मीय”, “रूप स्वनिमीय”, “रिक्तित्व”, “अनुवर्तित्व”, “मैत्री निर्वाह” इत्यादि नवीन पारिभाषिक शब्दावली ही नहीं, “क्रियापूरक वाक्यांश”, “वाक्य खण्डीय वाक्यांश”, “जंकचर रूपिम”, “परा—रूप स्वनिमीय संरचना” प्रभृति नवीन व्याकरणिक संकल्पनाओंका प्रचलन करके अछूते व्याकरणिक तथ्योंपर भी प्रथम बार डॉ. त्रिवेदीने प्रकाश निक्षेप किया है। तथ्य-निरूपण शीर्षकों-उपशीर्षकोंमें वितरित करते हुए अनुसंधानके



अद्यतन प्रस्तुतीकरण शैली अपनायी गयी है। विस्तार को गूढ़ गहनतामें परिणत करनेके हेतु बीजगणितिक सूत्रों तथा “पी. एस. जी रूल्स” (प्रजनक नियम सूत्रों) का, तुलनात्मक भारतीय भाषाविज्ञानमें प्रथम बार प्रयोग यहाँ प्राप्त है, जिसके पीछे डॉ. त्रिवेदीके भाषा संस्कार-संपन्न व्यक्तित्वकी झांकी मिलती है। भाषा-संस्कारकी अनुभूतिमें रचे-पचे बिना केवल विदेशी सिद्धान्तोंके बलपर ही भाषाकी परख नहीं हो पाती।

[!]

## लेख

### तेलुगुकी रंजक क्रियाएँ

लेखक : पिडपति वेंकट रामशास्त्री

तेलुगुमें यद्यपि रंजक क्रिया शब्दका व्यवहार नहीं होता, फिरभी डॉ. मायाप्रकाश पांडेय (‘प्रकर’, वैशाख २०५६) द्वारा सूचित ‘रंजनका व्यापार कतिपय क्रियाओंकी सहायतासे होता है’, उनके रूप और प्रयोगमें हिन्दी और गुजरातीके साथ समानताएँ अधिक हैं। हिन्दी और गुजरातीकी अपेक्षा तेलुगुमें रंजक क्रियाएँ कम हैं। अतः अन्य रंजक क्रियाओंके स्थानमें तेलुगुमें प्रसंगोचित शब्दोंका प्रयोग होता है या प्रचलित रंजक क्रियाओंकी सहायतासे ही आवश्यक अर्थ अभिव्यक्त किया जाता है।

‘रंजन’ के लिए तेलुगुमें इन धातुओंका प्रयोग होता है—वेयु, पोवु, कोनु पारवेयु, चायु, पेट्टु, पडु और वच्चु। इनमें प्रथम को का प्रयोग अधिक होता है। अंतिम दोनोंके दर्शन बहुधा लाक्षणिक प्रयोगोंमें होते हैं। इनके क्रियाथक संज्ञा रूप—

ग्रांथिक

वेयुट

पोवुट

कोनुट

बोलचाल

वेयटं, वेयडं,

पोवटं, पोवडं,

कोनटं, कोनडं (‘ओ’

कार का ह्रस्व

उच्चारण)

पडटं, पडडं

पडुट

वच्चुट

रावडं, रावटं इत्यादि

(मैंने ग्रांथिक और बोलचालके रूप इसलिए दिये कि ग्रांथिक रूप आजभी कुछ प्रांतोंकी बोलचालमें व्यवहृत होते हैं, तथा व्यावहारिक (बोलचाल) तेलुगुके आरंभ के सौ वर्षों बादभी हम ग्रांथिक रूपोंका सर्वथा परित्याग नहीं करते, मिश्रण होता है, भाषणमें और लेखन में भी। इसीलिए उच्च कक्षाओंमें भी, व्यावहारिक भाषा लिखनेकी मान्यता होनेपर भी प्रारंभिक कक्षाओं से लेकर ग्रांथिक व्याकरणकी शिक्षा दी जाती है।)

अर्थकी दृष्टिसे उक्त क्रियाएँ हिन्दी क्रियाओंके समांतर निम्न प्रकार प्रयुक्त होती हैं :

तेलुगु

हिन्दी

वेंयू, वीजु

जा, दे, लेट, बैठ, डाल आदि

वच्चु

मर

कोनु

ले

पडु

पड

वच्चु

आ

पेट्टु

दे

पारवेयु (पारेयु)

डाल दे

गुजरातीके समान तेलुगुमें रंजक क्रिया प्रधान क्रियाके पूर्वकालिक कृदन्तके बाद प्रयुक्त होती है।

वच्चि वेयुट

आवी जाबु

आ जाना

वेल्लि पोयेनु

चाली गयो

चला गया

कोनु (ले)

जब प्रयुक्त होती है तब “नु” के उकारके अनुकरणमें बोलचालमें प्रधान क्रियाका अंत्य ‘इकार’ का ‘उकार’ हो जाता है।

ब्राति कोनु

लिख ले

रातु कोनु (बो. चा.)

तीसि कोनु

(ले ले)

तीसु कोनु (बो. चा.)

वदुबु कोनु

—पडु ले, नेचूं

कोनु-सीख ले--आदिके

उकार देखकर कोई उन्हें धातु रूप नहीं माने। यदि वे धातु रूप होते तो रासुकोनु, तीसु कोनु आदि रूप नहीं बनते। क्योंकि उनकी धातुएँ ब्रायु और तीयु हैं। इनके ग्रांथिक रूप हैं—ब्रासि कोनु, तीसि कोनु।

वेयु और पत्त्य का प्रयोग अकर्मक और सकर्मक क्रियाओंके साथ होता है। पेट्टु, पायेवु और कोनु का प्रयोग सकर्मक क्रियाओंके साथ होता है और पोवु



का अकर्मक क्रियाओंके साथ। पड़ और बच्चु के लाक्षणिक प्रयोगोंका पर्यवसन अकर्मक अर्थमें होता है।

तिनि बेयुट-खा ज्ञाना, बच्चि बेयुट-आ जाना  
चदुबु कोनुट-पड़ लेना, बेल्लि पीबुट-चला जाना  
बेल्लि पड़ुट-(तुफानकी गतिसे) चला जाना, चोच-  
चुकु-बच्चुट-घुस आना कोनु-“ले” के अर्थमें मुख्य

क्रियाके स्थानपर प्रयुक्त नहीं होता। ‘तीसु कोनु’ का प्रयोग होता है। शब्दार्थ-तीसु-निकाल, कोनु-ले, तीसु कोनु-ले या ले ले। यहां मान्य लेखकके द्वारा विश्लेषित मूल्योंके आधारपर साम्य प्रकट किया जाता है—

रंजक क्रिया	प्रयोग	मूल्य		
		प्रक्रियात्मक दूरी	पक्षात्मक कार्यसंपन्नता	अभिवृत्तिक
१. जाना--तेलुगु: पिल्लि पालु अन्ती तागैसिदि: हिंदी : बिल्ली सारा दूध पी गई		शीघ्रता	कार्य संपन्नता	असहमति
२. लेना--ते. : नौकर डब्बुलु उंचंसु कान्नाडु हि : नौकरने पैसे रख लिए		स्वलाभ	कार्यसंपन्नता	
३. डालना--ते. : कुक्क बट्ट चिपेसिदि हि : कुत्तेने कपडा फाड डाला		असावधानी	कार्यसंपन्नता	उग्रता
४. आना--ते. : मेघालु मूसुकु बच्चायि हि. : बादल घिर आए		सामीप्य	आगम	भावुकता
५. डाल देना मारना-ते.-आदि राति पारेशा हि. उसको लिख मारा		निरादर सा	शुद्धा का उपभाव	
६. देना : मोहनुडु नव्वेशाडु मोहन हंस दिया ईपनि चेबि पेट्टु यह काम कर दो।		प्रतिक्रिया	विकल्पहीनता	
७. पडना बाडु तुल्लिपड्डाडु ८. मरना, चेंसिया लेगा ? कर मरता (तो पूरा होता)		प्रतिक्रिया	संल्लव राहित्य खीडा	

पहले लिखा गया है, पड़ और बच्चु के लाक्षणिक प्रयोग पाये जाते हैं।

यथा—बच्चिपड़ुट-आ जाना, हठात् प्रबल वेगसे आना

पड़ुट-विरचुक पड़ु-टूट पडना, चढाई करना

ते.-वाडु शत्रुबु मोद विरचुकु पड्डाडु

हि.—वह शत्रुपर टूट पड़ा। उसने शत्रुपर आकस्मिक चढाई की

ऊडि पड़ुट-टपक पडना, अकस्मात् जा जाना

ते.—एककडिनुंचि ऊडिपड्डा वु।

हि.—कहां से ठपक पड़े, अकस्मात् आ गये।

जब ‘पड़’ का प्रयोग कर्मवाच्यमें होता है, तब वह रंजक नहीं है। जैसे वाडि से पुस्तकं चदबबडु—चुन्नदि उससे पुस्तक पढी जाती है। (कर्मवाच्य कायडु संधि में बड़ होता है)

बच्चुट

ते. कण्टालु मुंचुकु बच्चायि



हि. कठिनाइयां घिर आईं  
ते. चीकदलु मुंचुकु बच्चायि  
हि. अंधकार घिर आया।

तेलुगुमें अंधकारका बहुवचनमें भी प्रयोग होता है : एकवचन-चीकटि, बहुवचन-चीकदलु

नकारात्मक एवं प्रश्नार्थक वाक्योंमें भी रंजक क्रियाओंका प्रयोग तेलुगुमें होता है। नकारात्मक लेटु, वटु, और प्रश्नार्थक “आ” अंतमें प्रयुक्त होते हैं। अब दोनोंका प्रयोग एक वाक्यमें करना पड़ता है, तब पहले नकारात्मक शब्द और बाद प्रश्नार्थक “आ” आते हैं—

नुव्वु बच्चेड्य बद्दु तुम मत्तू आओ (आजाओ)  
बाडु बेल्लि पोताडा क्या वह चला जायेगा ?  
तमरु इच्चेयय लेदा ? क्या आपने नहीं दिया ?  
(दे नहीं दिया)

अधिक सामीप्य व्यक्त करनेके लिए ‘कोनु’ का लाक्षणिक प्रयोग द्रष्टव्य है। आनु-लग

ते. वाडि इल्लु रोड्डनु अनुकोनि उंदि

हि. उसका घर सड़कके बहुत समीप है।  
वेयु और कोनु का संयुक्त प्रयोग भी पाया जाता है।

ते. मौर ई वाक्यालु रासेसु कोन्नारा ?

हि. क्या तुम लोगोंने ये वाक्य लिख लिये।

रासेसु कोनु—रायु (प्रांधिक प्रायु) + वेयु + कोनु (संधिमें वेयु के बकारका लोप)

यद्यपि तेलुगुमें क्रियाके तीन रूप-अकर्मक, सकर्मक प्रेरणार्थक, या सकर्मक द्विकर्मक, प्रेरणार्थक रूप—व्याकरणके नियमोंसे निष्पन्न होते हैं, फिर भी दो रूपों का ही प्रयोग होता है। दोनोंके साथ रंजक क्रियाएं प्रयुक्त होती हैं—

बच्चुट—रप्पिंचुट—रप्पिंप जेयुट

बच्चुट—बच्चि-बेयुट-आना, आ जाना

रप्पिंचुट रप्पिंचुकोनुट, बच्चु आ का सकर्मक रूप (उसके साथ रंजक ‘ले’ का प्रयोग)

तेच्चुट—चेच्चुकोनुट-लाना ले आना

तेप्पिंचुट—तेप्पिंचुकोनुट—मंगाना मंगवा लेना।

□

## अध्ययन-अनुशीलन

### माक्सवादी सौन्दर्यशास्त्रकी भूमिका?

लेखक : रोहिताश्व

समीक्षक : शलभ

“सैंकड़ों फूल खिलने दो”—यही तो कहाथा उस दिन माओत्से तुंगने भी ? इसलिए कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, हमारा सारा ज्ञान समाज-केन्द्रित है, अतः उसकी सौन्दर्य-सम्बन्धी अवधारणाएं भी समाज-स्फूर्त ही होगी न ? तभी तो अन्स्ट्रै फिशर तक की

यही मान्यता है कि ‘देखने-सुननेकी नवीन भंगिमाएं केवल विकसित एवं परिमार्जित इन्द्रिय चेतनाका परिणाम मात्र नहीं है, बल्कि उनका सम्बन्ध हमारे सामाजिक यथार्थसे भी होता है।’—और यह विकास त्रिधात्मक होता है—स्थापना, प्रतिस्थापना, समस्थापनाकी द्वन्द्वात्मक प्रक्रियासे। चाहे फिर आप उसे ‘वाद, विवाद और संवाद’ ही कहलें। पर यह भी उतनाही सच कि ‘मनुष्य’ समाज-सागरका बिन्दुवत् होते हुए भी वह सागरधर्मा ही होता है, क्योंकि वह उस सागरकी ही उपज है, ‘बाढ़ हि पुत्र पिताके धर्मा’, उसका विकास समाजके बीच, उसके बृहत्तर परिवेशमें ही तो होता है। अतः माक्सके चिन्तनमें भी ‘मनुष्य’ अंशतः परन्तु समाज ही मुख्यतः है। मनुष्यके स्वभावका निर्माण मूर्त

१. प्रका. : राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८ अंसारी मार्ग, बरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : २५४; क्रिमा. ६१; मूल्य : १७५.०० रु.।

‘प्रकर’—मार्गशीर्ष २०४६—३५



व्यक्तियों के व्यवहार और सम्बन्धों से होता है, व्यवहार और सम्बन्ध ऐतिहासिक परिवेश में होते हैं, अतः ऐतिहासिक भौतिकवाद के बिना, बदलते मानवका अध्ययन कर पाना सम्भव नहीं है।

माक्सवादकी मान्यता है कि समाजके भौतिक जीवनसे ही आध्यात्मिक जीवन नियंत्रित रहता है। अतः उनके अनुसार आध्यात्मिक जीवन भी भौतिक जीवनका प्रतिबिम्बन है। ठीकही तो है—‘अन्नमयं हि सौम्य मनः’। और भौतिक जीवनके विकासके लिए आर्थिक आधार असंदिग्ध रूपसे महत्त्वपूर्ण है। यह भी उत्पादन-तन्त्रपर निर्भर है। माक्स और एंगेल्सकी ‘भौतिकवाद’ सम्बन्धी व्याख्या मारिस कार्नफोर्थने संक्षेपमें इस प्रकार की है—१. सारा विश्व पदार्थ निर्मित है, और प्रत्येक वस्तुका निर्माण भौतिक कारणों और पदार्थके गतिके नियमोंके आधारपर होता है। २. पदार्थ एक निरपेक्ष सत्य है और मानवीय विचारोंकी स्थिति, भौतिक प्रक्रियाका परिणाम है—कारण नहीं। ३. विश्वके नियम सम्पूर्णतः ज्ञातव्य हैं, और हो सकता है—हम बहुत कुछ न भी जानते हों, तो भी किसी भी तत्त्व या सत्यका कहीं भी कोई अस्तित्व नहीं है जो मानव ज्ञानकी परिधि के बाहर हो (डायलैक्टिकल मॅटीरियलिज्म)।

पर यह सत्य है कि हम अब भी बहुत कुछ नहीं जानते। हमारी ही स्वर्गों के असंख्य नक्षत्र-तारे हमारी इस वैज्ञानिक मेधासे अब भी अनन्त दूरीपर अवस्थित हैं। यही नहीं, बकौल श्री गजानन माधव मुक्तिबोधके—‘हमारे पास—ईमानका डंडा है, बुद्धिका बल्लम है, अभयकी गैंती है—हृदयकी तगारी है, तसला है—नये नये बनानेके लिए भवन आत्माके, मनुष्यके’—फिर भी माक्सवाद की लोकशाही अपने सत्तर वर्ष बाद भी ‘आत्माके, मनुष्यके’ वे नये नये भवन न जाने क्यों नहीं अब तक बना पायी? हमें आसमानकी स्वर्गों के नक्षत्र-तारे खंगालनेके बजाय, अपनी इस धरतीके ग्रहपर मिली इस अपरिहार्य असफलतापर अवश्य विचार करना ही चाहिये, क्योंकि ‘किसी भी तत्त्व या सत्यका कहीं भी, कोई अस्तित्व नहीं है जो मानव ज्ञानकी परिधि के बाहर हो।’

माक्सवाद की सौन्दर्य दर्शनके सजग और सशक्त शिल्पी हैं हमारे मुक्तिबोध जो ‘नये नये भवन—आत्माके, मनुष्यके’ बनानेके लिए निरन्तर आजीवन सृजनरत

‘प्रकर’—नवम्बर ६२—३६

रहे थे। यह कैसी ठोस वास्तविकता है और तथ्य है कि हम फिर जैसे उसी चौरस्ते पर आकर खड़े हैं जहाँ से कभी समाजवादी मानवताकी नयी दुनियाँ बनानेका संकल्प लेकर चले थे। वह संकल्प भी घनी चुनौती भरा था, पूछते थे कि ‘निर्णय करो किस ओर हो तुम?’—और जैसे हमारी सारी शक्ति एक महाशक्ति बननेमें ही लग गयी, पर ‘आत्माके, मनुष्यके’ नये नये भवन अब तक नहीं बन पाये। संभव है डॉ. रामविलास शर्मा का यह दृष्टिकोण सही हो कि ‘राज्यसत्ता मजदूर वर्ग की डिक्टेटरशिप होगी—यह सिद्धान्त गलत है। पहले ‘मजदूर वर्गकी डिक्टेटरशिप, फिर कम्युनिस्टकी डिक्टेटरशिप, और अन्तमें पार्टीकी केन्द्रीय और उसके नेताओंकी डिक्टेटरशिप’ की यह श्रृंखला जनहिताय कैसे हो सकती है? कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह की ये काव्य पंक्तियाँ भी कि ‘बहुत बड़ी कुर्बानी देकर / उन्होंने एक मूर्तिकी स्थापना की थी / आज वह ढही पड़ी है / उसका उनके लिए कोई मतलब नहीं—क्या हमें विचारोत्तेजनसे नहीं भर देता? और तब फिर प्रश्न उभरता है ही कि वस्तुजगत्से परे भी अन्तर्जगत्में अब भी ऐसा बहुत कुछ है जो यद्यपि मानवज्ञानकी परिधि के बाहर नहीं है, उसकी गहराइयोंका कोना क्या हम छान सके हैं? यह ठीक है कि वस्तुजगत्की प्रतिच्छाया मानव-मस्तिष्कपर पड़ती है, और उसे चिन्तनके लिए प्रेरित करती है। वस्तुजगत्से मनुष्यका सम्पर्क अनुभवों की सृष्टि करता है। पर क्या वस्तुबोध और मनुष्यके चिन्तनकी प्रक्रिया उतनी ही जटिल अब भी नहीं बनी हुई है? ईमानका डंडा, गैंती, बल्लम, तसला-तगारी—सभी होते हुए भी ऐसा कौन-सा गत्यवरोध है जो हमें हमारे महत् कर्ममें अब भी ‘सिसिफस’ से बनाये हुए हैं? प्रश्न उभरता है कि क्या हमारे पास वे सभी मानवीय संसाधन हैं जो मुक्तिबोधने हमारे लिए रेखांकित किये हैं? गेटेने भी कभी, कहा था—कला मात्र चिन्तन नहीं है, वह कर्म है।’ माक्सवाद तो रचनाको उत्पाद-वस्तु मानता ही है, पर ब्रेख्त के अनुसार यह उत्पादित (या सृजित?) वस्तु किसी जूतेकी फैक्टरीका जूता नहीं है। मुक्तिबोध रचनाको ‘आत्मसम्भवा’ मानते हैं, अतः स्रष्टा उत्पादक होते हुए भी उस मजदूरकी भाँति नहीं है जो फैक्टरीमें कार्य करता है, फिर वह फैक्टरी किसी भी सत्ता द्वारा संचालित क्यों न हो? और जिसे वेतन बोनास, भत्ता, छुट्टियाँ नियमित तौरपर



मिलते हैं, उसे हड़ताल करनेका भी अधिकार है। पर रचनाकारको तो ये सुविधाएँ भी नहीं हैं, 'एक भारतीय आत्मा' दादा तक ने अपने एक निबन्धमें इसी ओर स्पष्ट संकेत दिया था। मार्क्सने मिल्टन और उनके 'पैरेडाइज लॉस्ट' के प्रकाशनका उदाहरण देकर प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है—प्रकाशक पूंजीपति, पैरेडाइज लॉस्ट वस्तु और मिल्टन मजदूर है। उसे उसकी इस रचनाके प्रकाशनके पारिश्रमिक तीरपर पाँच पौंड मिले थे।

प्रश्न तो यह है कि क्या मिल्टनने पाँच पौंडके लिए 'पैरेडाइज लॉस्ट' लिखा था? या जैसाकि मार्क्सका विचार है कि वह प्रकाशक जो उनकी कृति छापता है, धनी बनाता है अथवा इस रूपमें भी कि वह एक पूंजीपतिके लिए वेतनभोगी मजदूर है? (भूमिका पृष्ठ १००)।

मिल्टन तो एक विद्रोही कवि थे, कवि ही नहीं महाकवि थे। उनका 'पैरेडाइज लॉस्ट' इसीलिए प्रकाशक छापनेके लिए तैयार न थे, कठिनाईसे ही यह महाकवि छप सका। अंधा होनेके कारणही सत्ताने उन्हें छोड़ दिया था। उसके दूसरे संस्करणपर तो उन्हें चार ही पौंड मिले थे, यह है इस रचनाकार (मजदूर?) का वह ऐतिहासिक सामाजिक परिवेश। मिल्टन-सा विद्रोही कवि मात्र पाँच पौंडके लिए ऐसी मजदूरी करेगा—यह इस सिद्धान्तका एक सरलीकरण है, चाहे फिर कोईभी क्यों न करे?

'मार्क्सवादी सौन्दर्य शास्त्रकी भूमिका'—अपने शोधपरक बृहत्तर कलेवरमें दो सौ बीस पृष्ठ तक घेरे हुए है, जो इस लेखकका एक महत्त्वपूर्ण 'टेबुल-वर्क' है, फील्ड-वर्क नहीं। मार्क्सवादी सौन्दर्य-सिद्धान्तोंपर प्रायः अबतक लिखे गये विविध ग्रन्थोंका इस विद्वान् लेखक ने सम्यक् रूपसे दोहनकर, यहां प्रस्तुत किया है, जो तीन मुख्य अध्यायोंमें विभक्त हैं। पहला—'मार्क्सवादी सौन्दर्य शास्त्रीय आलोचना और समकालीन कविता' पर केन्द्रित है, लेकिन जिसमें भाववादी और भौतिकवादी सौन्दर्यशास्त्र और मार्क्सवादी दर्शन, मार्क्सवादी-लेनिनवादी सृजनात्मकता, प्रगतिशील जीवन दृष्टि, मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्रकी अवधारणा, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद और मार्क्स-एंगेल्सकी कला-साहित्य एवं सौन्दर्य विषयक अवधारणाएँ ही प्रमुखतासे स्थान घेरे हैं, समकालीन

कवितापर तो नगण्य-सा दृष्टिक्षेप भर है।

दूसरा अध्याय अपनी विशेषता इसलिए रखता है कि इसमें अनेक पाश्चात्य विचारकों—सृजेताओंके नहीं, उपयुक्त शास्त्रपर विचार-विश्लेषणपरक उद्धरण हैं, जिनमें प्रमुख हैं—रूसी, ब्रिटिश, जर्मन, हंगेरियन, आस्ट्रियन, पोलिस, फ्रांसिसी, चीनी, स्पेनिश, अमरीकी, इटैलियन व रोमैनियन आदि।

तीसरे अध्यायके भी दो मुख्य भाग हैं जो भारतीय विचारकोंके भागमें आये हैं। पहला अंश प्रारंभिक विचारकोंका है, जिसमें हिन्दीके प्रतिष्ठित विद्वान् और रचनाकार हैं। दूसरा अंश मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्रके घोषित धारकोका है, जिसमें सर्वश्री रामविलास शर्मा, गजानन माधव मुक्तिबोध, नामवर सिंह, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, शिवकुमार मिश्र, रमेशकुन्तल मेघ और कुछ अन्यान्य भी। भूमिकाके समर्पण-पृष्ठपर विराजमान हैं—डॉ. नामवर सिंह, डॉ. रमेश कुन्तल मेघ, प्रो. अरविन्द पाण्डेय, डॉ. शिवकुमार मिश्र, डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, प्रो. इन्द्रनाथ चौधुरी, प्रो. के. के. गोस्वामी, और डॉ. जी. पुष्पलता—प्रायः सभी इस विषयके अधिकारी विद्वत्जन हैं, इसमें क्या संदेह है! लेखकने यथासंभव ईमानदारी, गहरी लगन और निष्ठासे इस भूमिका लेखनमें जो श्रम किया है वह भी सराहनीय है। यहां प्रत्येक विद्वान् लेखकने अपने ग्रंथों में अपने ढंगसे जो विचार प्रस्तुत किये थे, उनमें पर्याप्त मतभेदकी गुंजाइशभी रही है। पर लेखकके दृष्टिपथके मूल केन्द्र मार्क्स-एंगेल्स और लेनिन ही अधिक रहे हैं। फिर भी मार्क्सवादी सौन्दर्य विषयक अवधारणाओंमें होनेवाले युगानुरूप परिवर्तनोंका परिचयभी लेखकने उतनीही निष्ठासे दिया है।

किसीभी सिद्धान्तका शास्त्रबद्ध होकर रह आना निश्चयही जड़ताका स्मृति-चिह्न है। देश, काल और सामाजिक परिस्थितियोंके कारणभी उनमें बदलाव आना स्वाभाविकही है। सौन्दर्य है तो वह मनभावन होगाही—अबतक असत्य सिद्ध कहाँ हो पाया है? सौन्दर्य-वस्तुके तो अनेक रूप, यही नहीं, विरूपभी इस क्षेत्रमें प्रसादक ही नहीं, विचारोत्तेजक भी रहे हैं, पर सौन्दर्य जब किसी 'वाद' से विजड़ित हो जाता है, तभी जकड़नकी गांठ बनती शुरू हो जाती है। देश और काल के कारण आया बदलाव तत्कालीन जनसमाजके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। आजके इस युगके छोरपर

'प्रकर'—मार्गशीर्ष २०४६—३७



खड़े होकर देखनेवालेको भारतीय भाववादी सौन्दर्य-शास्त्र व काव्यशास्त्र साम्राज्य युग या सामन्त युगकी उपज लग सकते हैं। उसे आश्रमवासिनी संस्कृतिके भरतमुनि तक साम्राज्यवादी युगके विचारक लग सकते हैं, क्योंकि वह आधुनिक युगकी शब्दावलीका तोतारटन्त वाला जीव जो है। पर सच तो यह है कि उस समय साम्राज्य अवश्य थे, किन्तु वहाँ 'वाद' कहाँ था? राजा थे तो उनके सामन्त भी थे, पर, 'सामन्तोंका वाद' उस समय भी नहीं था। ये सारी फ्रेजोलॉजी तो हमारे युगकी ही देन है, जहाँ आजभी तथाकथित लोकतन्त्रके होते हुएभी राजा या महारानी अबतक उनके महत्त्वपूर्ण अंग बने हुए हैं। 'सामन्तवाद' का ऐसा प्रचलन नहीं था इसीलिए अवधेश रामको अपनी प्रिया तकको वनवास देना पड़ा। जनमत कैसा भी रहाहो, उसका प्रभाव तबभी इतना प्रभावशाली था ही। वे सिद्धान्त या आदर्श उस युगकी सामूहिक चेतनाकी देन थे जो उनके लिए वरेण्य थे। वह वर्णाश्रमी समाज आज-पा वर्गवादी नहीं था। क्या आज इस देशमें वर्ण और जाति व्यवस्था विधोपित हो गयी है, जहाँ चुनाव तक प्रकारान्तरसे इन्हींके आधारपर हो रहे हैं, आरक्षण तक हो रहे हैं? कुम्भके महापर्वोंपर तो करोड़ों देशवासी पावन स्नान अवधी कर रहे हैं, अब भी हमारे देश के सुदूर जनांचलोंमें कबाले अपनेही ढंगसे जी रहे हैं। फिर इस अन्तरिक्ष छूते वैज्ञानिक युगमें प्रत्येक सामाजिक विकृतिकी भांति सामन्तवादी विकृति क्या आज भी विद्यमान नहीं?

फिर मार्क्सवादी दर्शनभी कोई 'डागमा' या अपरिवर्तनीय सिद्धान्त नहीं है, जिसे आंख मूंदकर मानना जरूरी हो। यह दर्शन कठमुल्लापनका भी समर्थक नहीं रहा। मार्क्स इसीलिए मानते थे कि 'कलाके वास्तविक आनन्दके लिए व्यक्तिको कलात्मक दृष्टिसे सम्पन्न होना चाहिये।' और कि 'रचनात्मक श्रेष्ठता यथार्थके कलात्मक प्रतिबिम्बनमें है।' लेनिन, लियो टाल्स्टायको प्रतिक्रियावादी लेखक मानते हुए भी, उनके कृतित्वमें रूसी जीवनके कलात्मक प्रतिबिम्बनकी शक्ति सर्वाधिक मात्रामें परिलक्षित होना मानते थे। वे तो उसे क्रान्ति का दर्पण तक कहते थे। उनके सामने जन-क्रान्तिके लिए जन-चेतनाको उत्तेजित करने व चेतनाके रूपांतरणका प्रश्न प्रमुख था। फिरभी प्लेखानोवके विचारानुसार सौन्दर्यशास्त्रीय चिन्तनके लिए राजनीति

को निर्देश देनेका कोई अधिकार नहीं है कि उसे किस विशेष स्थितिमें, किस विशेष विधिसे कार्य करना चाहिये। सौन्दर्यबोधभिरुचि समाज-सापेक्षता व वस्तुगत होती है। वह रचनात्मक प्रवृत्ति युयुत्सु भी हो सकती है और निषेधकारी भी (पृष्ठ १०६) — जिसे इस भूमिका लेखकने भी रेखांकित किया है।

वैसे मार्क्सवादी दर्शनकी सौन्दर्यशास्त्रीय अवधारणाके कुछ सामान्य विचार-सूत्र ये हैं — प्रथमतः 'वह मनुष्यकी शक्तिपर अटूट आस्थाका सन्देश है; कि रचनाकार पैदा नहीं होता, वह लोकवद्ध प्राणी है, उसका सारा ज्ञान लोकवद्ध है, अतः उसकी सौन्दर्यसम्बन्धी धारणा भी लोकवद्ध ही होगी; कि कोई अज्ञात सत्ता रचयिताको शक्ति नहीं देती, उसका सौन्दर्यबोध न तो प्रकृति-प्रदत्त विशिष्ट अन्तर्दृष्टि है, न विशिष्ट दैवी प्रकृति, कि प्रतिमा दैवी गुण नहीं, न ही सौन्दर्य भी किसी दिव्यकी देन है, कि सुन्दरता मूल रूपमें वस्तुगत होती है — यही विचार मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्रका मूलाधार है; कि वह सतत विकासमान और सतत परिवर्तनशील है; कि मार्क्सवादी सौन्दर्य-आयाम के अन्तर्गत 'कला' और 'क्रान्ति' का संगम होता है; कि यह दर्शन कला-सृजन और उसकी उद्देश्यमयताका मूल कारण 'सामूहिक हित चिन्तन' से सम्बन्धित विचारों या दृष्टियोंको मानता है; कि 'रूप' लेखककी सम्पत्ति है, वह उनका आन्तरिक व्यक्तित्व है, शैली तो स्वयं लेखक है, इस रूपमें कलापक्ष सराहनीय है; कि मार्क्सवाद इस बातपर जोर देता है कि 'रूप' और 'तत्त्व' एक-दूसरेसे अलग, निष्क्रिय और विच्छिन्न नहीं हैं, 'तत्त्व' 'रूप' को जन्म देता है अतः वे सम्बद्ध और अविच्छिन्न हैं। यद्यपि तत्त्व-वस्तुको प्राथमिकता प्राप्त है, तथापि 'रूप' विषय-वस्तुपर प्रभाव डालता है और कभी निष्क्रिय नहीं रहता (राल्फ फॉक्स); कि सौन्दर्य 'अंशी' होता है और विचार, भाव, शब्द, अर्थ, अलंकारादि 'अंश' होते हैं — सौन्दर्य वस्तुके आन्तरिक अवयवोंपर निर्भर रहता है, वह मात्र द्रष्टागत नहीं है, यह अवश्य है कि द्रष्टाकी मानसिक स्थितिके अनुरूप वस्तुगत सौन्दर्य भिन्न-भिन्न रूपमें प्रतीत होता है, इस दृष्टिसे सौन्दर्य को दृश्य और द्रष्टाके सम्बन्धसे उत्पन्न 'प्रतीति विशेष' भी कह सकते हैं; कि मार्क्सवाद परम्पराके श्रेष्ठ दायको स्वीकारता है; कि लेखकभी श्रमिक है, और उसकी रचना उत्पाद-वस्तु; कि बाह्यसत्ता और चेतना-सत्ताके



संघर्षका रासायनिक सहयोग स्फूर्ति-ऊर्जा की जन्म देता है; कि ऊर्जा रचना शक्ति है; कि पंचतन्मात्राएँ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ऐतिहासिक प्राकृतिक विकास के फलस्वरूप प्राप्त हुई हैं; कि परिकल्पनाएँ विभेदकी अर्थात् दुनियाँ के संज्ञान प्राप्त करनेकी सीढ़ियाँ हैं, इसलिए स्वयं बदल जाती हैं, वे निरन्तर विकसित होते भौतिक जगत् को प्रतिबिम्बित करती हैं; कि कलाओं का उद्भव और विकास श्रमकी ऐतिहासिक प्रक्रिया के अन्तर्गत हुआ है जो एक मूलभूत मार्क्सवादी स्थापना है—प्रायः इन्हीं सिद्धान्त-सूत्रोंका संयोजन, जिन्हें मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन और अन्य विद्वान् चिन्तकों ने अपने ग्रंथोंमें व्यक्त किया है, इस लेखक ने सजग दृष्टि के साथ और सार्थक रूपमें अपनी बृहत् भूमिका में किया है।

मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्रीय अवधारणा निश्चय ही 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' है, और असंदिग्ध रूपसे बृहत्तर मनुष्यताकी पक्षधर है। इसमें पर्याप्त विकसनशील लचीलापन है। 'द एस्थेटिक डायमेशन टुवर्ड ए क्रिटिक आव मार्क्स एस्थेटिक्स' के लेखक हर्वर्ट मारक्यूज भी नववामपंथी रहे हैं। इस नववामपंथ के चिन्तनका स्वरूप भी अस्तित्ववादी चिन्तकों यथा सात्र, कामू के प्रभावसे निर्मित है। मारक्यूज तो 'साइ-किक इतर्जी' के स्वैच्छिक प्रकटीकरणपर ही सामाजिक विकासकी गतिको निर्भर मानते हैं। बगदृष्टि महत्त्वपूर्ण होनेपर भी जार्ज लुकाच को भी किसी वर्गका नकार साहित्यमें स्वीकार नहीं है। यथार्थवादी कलाके पक्षधर हावर्ट फास्ट 'रूप तत्त्व' की सत्ताको अस्वीकार नहीं करते, वे तो रूप तत्त्वके निषेधको कलाका ही निषेध मानते हैं। यद्यपि वे 'रूपवाद' को अफीमकी तरह मानते हैं जो मनुष्यकी संघर्षशील चेतनाको क्षति पहुंचा कर, सत्यको पहचाननेकी क्षमताको नष्ट कर देता है।

इन मार्क्सवादी सौन्दर्य द्रष्टा-चिन्तकों के लिए 'मिथक' और 'स्वप्न' प्रत्येक मानवको मानव बनाने अर्थात् स्वप्न-द्रष्टा-स्रष्टा 'कवि' बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। लेनिन तक ने कहा है—'हमें स्वप्न देखना चाहिये', क्योंकि वे जानते थे कि मिथक स्वयं क्रियारत जीवन है (भू. पृ. १५६)। फ्रांसिसी लेखक रोजर गारोदी मिथकको सृजनशीलता के लिए महत्त्वपूर्ण मानते हैं; वे इसी क्षेत्रके महत्त्वपूर्ण विवेचक भी हैं : मार्क्स मिथकको श्रमका ही एक रूप मानते हैं; उनके अनुसार

मनकी आकांक्षा प्रकृतिका प्रवाह है, जबकि श्रम प्रकृति का अतिरोहण करता है। ये मिथक मानवके वे आदर्श रूप हैं जब वह अपना अतिरोहण करता है, और जब वह उन अवधारणाओंकी कक्षाको पार करता है, जो पूर्व निर्मितकी अभिव्यक्ति करती हैं। इसीलिए वह काव्य अथवा प्रतीक है।

हंगेरियन लेखक जार्ज लुकाच जिन्हें उनके पक्षधर 'सौन्दर्यशास्त्रके मार्क्स' की संज्ञासे अभिहित करते हैं, उनका जीवन तो मार्क्सवादकी अथक यात्रा है। उनके विषद् विचार उनके ग्रन्थ 'सौन्दर्य शास्त्र' और 'सत्त्वकी मीमांसा' में विद्यमान है। उनका स्पष्ट अभिमत है कि कला तो आत्मबोध (सेल्फ अवियरनेस) और मानव जातिकी स्मृति-रूपक (द मैमोरी ऑव मैनकाइन्ड) है। कला केवल ज्ञान मीमांसाकी माध्यम ही नहीं, बल्कि 'संसारकी ज्ञेयता' की भी माध्यम है, उसकी प्राथमिक उपादेयता, मूल्यवत्ता और सामाजिक तुष्टि मात्र नहीं। सौन्दर्यशास्त्रके क्षेत्रमें उन्होंने उसी कलाके महत्त्वको स्वीकारा जो मानव समाजमें अपनी सम्पूर्णता प्रक्षेपित करे। वे कभी भी किसी सरलीकरणके पक्षधर नहीं रहे, चाहे फिर वह बुजुर्ग आ शिल्प हो या फिर प्रगतिवादी कला ही। उनके अनुसार सौन्दर्यशास्त्रकी दो मौलिक समस्याएँ हैं—१. प्रतिफलन (रिफ्लेक्शन), २. प्रतिरूप (रिप्रेजेंटेशन)। वे विज्ञान, जादूविद्या, धर्माचार और प्रतिदिनके क्रियाकलाप तकको 'प्रतिफलन' मानते हैं; शिल्पभी प्रतिफलन है। किन्तु इसमें एक भेद है—क्योंकि जादू विद्या या धर्माचार किसी यथार्थको प्रतिफलित करता है, जबकि शिल्प मनुष्यकी वास्तविकताको, अर्थात् उसकी प्राकृतिक सत्ताको, उसकी आन्तरिक सुषमाको प्रकाशित करता है। शिल्पमें वस्तु या विषयका मानवीकरण होता है, जिसमें विषय पर विषयी, सत्य और सौन्दर्यकी द्वैतताका लोप हो जाता है, अतः मनुष्य 'समग्र यथार्थ' की धारणा प्राप्त करता है। लुकाचने 'इतिहास चेतना' को भी अनिवार्य उपादान माना है—स्पर्श योग्य प्रत्यक्ष यथार्थ, समग्रता, जनप्रियता, वाक्परिमिति और सुषमाके महत्त्वको भी रेखांकित किया है।

आस्ट्रियन अन्स्टैफिशर जिन्होंने मार्क्सवादी सौन्दर्य शास्त्रके केन्द्रमें 'मनुष्य' को रखकर, 'कला और सह-अस्तित्व' की धारणापर अपना चिन्तन व्यक्त किया है, यथा—“'अभिजात', 'सर्वसाधारण', 'बुजुर्ग', और

'प्रकर'—मार्गशीर्ष २०४६—३६



सर्वहारा' जैसे चरित्रके मुखौटे क्षणिक होते हैं—हमारे सारे संघर्षकी सार्थकता और उद्देश्य हैं मनुष्य—सार्वजनिक मनुष्य। अतः कवि या कलाकारकी सृष्टि, समय निर्धारित यथार्थोंके प्रतिबिम्बनसे अधिक, अनागतदर्शी का अध्यय है, आगामीका पूर्वानुमान है, सीमाओंका अतिक्रमण है, और अद्यावधि अन्वेषित यथार्थोंका अन्वेषण है।

अतः साहित्य और कला अंशतः ही निश्चित आर्थिक-सामाजिक सम्बन्धोंकी बाह्य रचना है—कृति विशिष्ट रूपमें मानव सातत्यकी ही वाहक है। फिगर वर्गहीन साम्यवादी समाजमें आस्था रखते हुए कहते हैं कि 'उसमें कलाके विकासकी पूर्ण सम्भावनाएं होंगी—मानव आकांक्षाएं' नये रूपोंकी सृजना होगी—जबतक मनुष्य जीवित है, कला भी जीवित रहेगी।

जार्ज लुकाचकी 'समग्रताकी अवधारणा' जो मूलतः हीगेलीय है, और जिसे मार्क्सने भी ग्रहण किया है, इसी शताब्दीमें प्रचलनमें आयी। लूसिए गोल्डमानका 'उत्पत्तिमूलक संरचनावाद' (जेनेटिक स्ट्रक्चरलिज्म) भी समग्रतापर बल देता है। उसके अनुसार कृतिके सृजनका श्रेय अकेले उसके कृतिकारको नहीं है, बल्कि कृतिकार-व्यक्तिकों अतिक्रान्त करनेवाली उस चेतनाको है, जिसके माध्यमसे पूरे सामाजिक वर्ग की मानस-संरचना अभिव्यक्त होती है। और आलोचकका कार्य उस बृहत्तर मानस-संरचनाको खोज निकालना है जो कृतिकारके अन्तर्जनेही उसकी कल्पना को संघटित करती है। यह चेतना दो प्रकारकी है—  
१. 'वास्तविक' और २. 'संभाव्य'। गोल्डमानकी आस्था सामान्यतः समाजवाद और मानवतावादमें है, पर उनकी दृष्टि नवपूँजीवादी भ्रमोंसे पूर्णतः मुक्त नहीं है। वैसे उनका मत है कि रचनाकार विश्व-दृष्टिकोण व ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्योंकी संगतिमें केवल यथार्थ की नकल नहीं करता और न ही वह सच्चाइयाँ सिखाता है। वह व्यक्तियों और वस्तुओंका सृजन करता है जो थोड़ा-बहुत एक विशाल और एकात्म संसार बनाते हैं।

अतः यह स्पष्ट है इस शताब्दीके मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्रियोंकी चिन्तन-दृष्टि अधिक मुक्त और वैश्विक जीवन-यथार्थपर टिकी रही है। रचयिताके सृजनकी मौलिकतापर उनकी आस्था बनी हुई है। क्योंकि वह केवल यथार्थकी नकल नहीं करता, न ही मात्र

'प्रकर'—नवम्बर'१२—४०

सच्चाइयाँ सिखानेका कम ही उसकी रचनाधर्मिता है। वह अपने व्यक्तित्व और ऐतिहासिक सामाजिक यथार्थ का अतिरोहणकर अपने पात्रोंका सृजन करता है जो न्यूनाधिक रूपसे एक बृहत्तर संसार प्रस्तुत करता है। जो एकात्म होता है।

'मानवमूल्य' और 'साहित्यमूल्य' की एकताके प्रतिष्ठापक हैं रांगेय राघव; पर वे मानवमूल्योंके लिए साहित्यिक मूल्योंका बलिदान नहीं चाहते हैं। उनके अनुसार मैक्सिम गोर्कीने भी स्थायी साहित्यके मूल्य पर जोर दिया था। उनका स्पष्ट मत है कि 'साहित्य का उद्देश्य मार्क्सवादकी व्याख्या करना नहीं, जीवन का चित्रण करना है—'समग्रता' और गंभीरता—दोनों की संगति जीवन और साहित्यमें होती है' (पृ. १८७)।

गजानन माधव मुक्तिबोधकी चिन्तनपरक दृष्टिभी पर्याप्त मुक्त है। वे तो 'स्वप्नकथा' कवितामें मनो-विश्लेषणशास्त्र, रहस्यवाद, अस्तित्ववाद और मार्क्सवादमें सामंजस्य स्थापित करनेका प्रयत्न करते हैं। अतः उनका काव्य-सृजन फैंतासीमय है। यही नहीं, वे ब्रेख्त की भाँति ही नयी विषय-वस्तुकी खोज और नये शिल्पके विकासपर जोर देते हैं। उनका यह मत भी महत्त्वपूर्ण है कि 'सौन्दर्यानुभूति उच्चस्तरपर, अधिक उदात्त स्तरपर जीवनानुभूतिका ही एक रूप है, जीवनानुभवोंका ही एक कल्पनोद्भासित पुनरनुभव है।'।

प्लेटो, अरस्तूसे लेकर हिन्दीके काडवेल माने जाने वाले डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, 'साक्षी है सौन्दर्य प्राशिनक' और 'अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा' के लेखक 'मेघ' आदि विद्वानोंके अनेक उद्धरणोंसे समृद्ध मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्रकी इस भूमिकाका लेखक निश्चय विषयके प्रति गहरी निष्ठा और लगन रखता है। विषयपर पकड़भी मजबूत है, चिन्तनदृष्टि गहरी और वस्तुनिष्ठ है। उसका यह श्रमभी सराहनीय।

अंतमें यशस्वी चित्रकार श्री मकबूलफिदा हुसैन का सौन्दर्य विषयक यह विचार भी कि 'मैंने महान् संस्कृतिको चारों तरफ घूमकर देखा है, अपनी विविधता और जटिलताके कारण यह मौलिक है, यह मानवताकी विविध धाराओंसे सराबोर है, लेकिन भारतीय सौन्दर्यशास्त्रके इस नाजुक ताने-बानेके लिए सबसे बड़ा खतरा इन कुछ पढ़े-लिखे अज्ञानी कीड़ों-मकोड़ोंसे है'—क्या दृष्टिको मुक्तावस्थापर बल नहीं देता?



अन्ततोगत्वा कोई भी संस्कृति बन्धनोंमें बंधकर कभी पनपी ही नहीं, कारण—यह गंगा अपने उत्समें सिमटकर नहीं रह सकती है। [१]

## समन्वयवादी आलोचना?

लेखक : डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय

समीक्षक : डॉ. रामदेव शुक्ल

हिन्दी आलोचनाके विविध आयामों और प्रकारों में समन्वयके सूत्र ढूँढ़कर एक ऐतिहासिक आधार देने का कार्य 'समन्वयवादी आलोचना' में हुआ है। यह कार्य डॉ. उपाध्याय सुगमताके साथ इसलिए कर सके हैं कि वे अंग्रेजीके माध्यमसे पाश्चात्य काव्यशास्त्रका अध्यापन करते हैं। हिन्दी और भारतीय काव्यशास्त्रका अध्ययन भी उनके लिए बहुत सहायक है। आलोचना की समन्वयवादी परिणतिकी ओर लेखकने अनेक कोणों से प्रकाश डाला है। वे मानते हैं कि साहित्यिक जगत्में रसको प्रवाहित करनेवाली, सौन्दर्यको जागरित करने वाली, मनको विश्लेषित करनेवाली तथा आत्मानुभूति को अभिव्यक्तिके स्तरपर वाणी देनेवाली यदि कोई आलोचना-पद्धति है तो वह है समन्वयवादी आलोचना। लेखकने रसवाद, मनोविश्लेषणवाद, स्वच्छन्दतावाद, सौन्दर्यवादके समन्वित विकासके क्रमका अध्ययन अपने शोधप्रबन्धके सात अध्यायोंमें किया है।

शोधप्रबन्ध लेखनकी परम्पराका पूरा निर्वाह करते हुए लेखक पहले अध्यायमें समन्वयवादी आलोचनाका अर्थ बताते हैं, फिर उसके लक्षणोंका निरूपण करते हैं, व्युत्पत्ति बताते हैं और उसे परिभाषित करते हैं। इसके बाद आलोचनामें समन्वयके आधार बताते हैं।

दूसरे अध्यायमें मध्यकालसे लेकर शुक्लोत्तर आलोचनाका विकासक्रम दिखाते हुए समन्वयके सूत्रों की खोज की गयी है। इसके बादके अध्यायोंमें पश्चिम की आलोचना-प्रवृत्तियोंका अध्ययन किया गया है। तीसरे अध्यायमें स्वच्छन्दतावादी आलोचनाकी प्रवृत्तियों को रेखांकित किया गया है और चौथे अध्यायमें मनो-विश्लेषणवादी आलोचनाकी प्रवृत्तियोंमें समन्वयके

तत्त्वोंका लेखा-जोखा है। पांचवां अध्याय सौन्दर्यवादी आलोचनाको समर्पित है। पाश्चात्य काव्यशास्त्रमें सौन्दर्यवादी प्रवृत्तिके महत्त्वकी पहचान करते हुए लेखक सामंजस्यको रेखांकित करते हैं। छठे अध्यायमें रसवादी आलोचनाके रूपमें हिन्दी आलोचनापर विस्तृत रूपमें विचार किया गया है। सातवें अध्यायमें समन्वयवादी आलोचनाकी सम्भावनाओंका अध्ययन किया गया है। लेखक मानते हैं कि समन्वयवादी आलोचनाकी सर्वोपरि उपलब्धि यह है कि वादी आलोचकों के खेमोंसे यह सर्वथा मुक्त है।

हिन्दी शोधकी परम्पराको आगे बढ़ानेवाले इस ग्रन्थमें शोधकनिति अध्ययन, विश्लेषण, निष्कर्षणमें 'व्यक्तिगत अनुभव' को विशेष महत्त्व दिया है। उनका कहना है कि "आलोचना विज्ञान नहीं है और न इसमें कोईभी व्यक्ति अन्तिम सीमारेखा खींचनेका काम ही कर सकता है। यह मेरा व्यक्तिगत अनुभव है—कोई सैद्धान्तिक स्वर नहीं। अस्तु।" (पृ. १६४)।

समन्वयवादी आलोचनाकी इस परिणतितक 'पहुँचने' के लिए इस पुस्तकको पढ़ना बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। □

## राजनीतिक इतिहास

भारत और चीनके बीच बहुत सौहार्दपूर्ण राजनयिक बातचीत चलती रहती है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे, राजनीतिक और सैनिक दृष्टिसे दोनों देशोंके सम्बन्ध कैसे रहे हैं, इसके लिए यथार्थ सम्बन्धों की अत्यन्त उपयोगी पुस्तक पढ़ें :

## विस्तारवादी चीन

मूल्य मात्र १०.०० रु.

इसके अतिरिक्त पढ़ें :

समाजवादी वर्मा	३०.०० रु.
अफ्रीकाके राष्ट्रीय नेता	१०.०० रु.
कच्छ	८.०० रु.

'प्रकर' : ए-८/४२ राणा प्रताप बाग,  
दिल्ली-११०००७.

१. प्रका. : तारामण्डल, ३६८, आवास विकास,  
कालोनी, सासनी गेट, अलीगढ़-२०२००१। पृष्ठ :  
१७४; डिमा. ८६; मूल्य : ७०.०० रु.।

'प्रकर'—मार्गशीर्ष २०४६—४१



## कुबेरनाथरायनके प्रतिनिधि निबन्धः

सम्पादक : डॉ. रहमत उल्लाह,

डॉ. मान्धाता राय

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द सेठिया

आचार्य शुक्लके शब्दोंमें "यदि पद्य कवियोंकी कसौटी है तो निबन्ध गद्यकी कसौटी है। गद्य-काव्यमें गद्य कविताका अनुवर्ती हो जाता है तो उपन्यासमें औपन्यासिक और नाटकमें नाटकीय रूप धारण कर लेता है; परन्तु, गद्यके आत्मस्वरूपका सीधा साक्षात्कार तो निबन्धमें ही होता है। किसीभी भाषाकी प्रौढ़ि और परिष्कृतिका मापदण्ड उसका निबन्ध साहित्यही होता है। ज्ञान विज्ञानके संवाहकके रूपमें यह अनेकरूपान्तर धारण कर लेता है; परन्तु उसका निजी रूप वैयक्तिक निबन्ध या ललित निबन्धमें ही व्यक्त होता है। इनमें निबन्धकार अपने मनकी मौजके अनुसार चलता है इसलिए वैयक्तिकता, उन्मुक्ताता और अनौपचारिकताका इनमें सहज समावेश हो जाता है। बेकनने निबन्धकी विषय-वस्तुको 'उच्छिन्न चिन्तन' कहा है; परन्तु, वस्तुस्थिति यह है कि किसी बाह्य प्रतिबन्धसे बंधा हुआ न होनेपर विधाके आन्तरिक अनुशासनको तो उसे मानना ही पड़ता है। निबन्धकार प्रसंगान्तर करते हुए चाहे कितनीही उछलकूद क्यों न करे अन्ततः उसे जहाजके पंछीको तरह पुनः जहाजपर आकर सन्दर्भके मूल सूत्रको पकड़नाही पड़ता है। साहित्य कोशकारका यह कथन सर्वथा युक्तियुक्त है कि निबन्धकारकी अनियमिततामें भी नियम होता है और उसकी अव्यवस्थामें भी एक व्यवस्था होती है। कुबेरनाथ रायने एक सांस्कृतिक विम्वरके माध्यमसे इस मन्त-

व्यकी ही पुष्टि करते हुए लिखा है "विषयके आस पास शिवके सांडकी भांति मुक्त चरण और विचरणही ललित निबन्ध है।" वैयक्तिक निबन्धोंकी प्रमुख विशेषता यही होती है कि उनका विषय चाहे कुछभी क्यों न हो, पाठककी रुचि लेखककी वैयक्तिक प्रतिक्रिया और अभिव्यक्तिकी विशिष्ट भंगिमापर केन्द्रित रहती है। इनमें दार्शनिककी-सी गुरु-गम्भीर मुद्राका कोई मूल्य नहीं होता। वैयक्तिक निबन्धका वातावरण तो काँफी हाउस जैसा होता है, जहाँ गम्भीरसे गम्भीर विषयकी चर्चा भी शास्त्रीयता और औपचारिकतासे कोसों दूर रहकर चुहल, और चिकोटीके साथ चलती रहती है।

हिन्दीमें निबन्धोंका आरम्भ भारतेन्दु युगमें बड़े समारोहसे साथ हुआ था। उस युगके निबन्धोंमें जिन्दा-दिली कूट-कूट कर भरी हुई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र और बालमुकुन्द गुप्तके निबन्धों में उनके भीतरका प्राण-रस जैसे छलका पड़ता था। इन लेखकोंकी पंक्ति-पंक्तिपर उनके उत्साह और उमंगसे भरे व्यक्तित्वकी छाप लगी हुई है। परन्तु, द्विवेदी युग में निबन्धके विषय-वैविध्यका प्रसार तो हुआ परन्तु उनका आन्तरिक रस-स्रोत जैसे सूखने लगा था। फिर भी, माधवप्रसाद मिश्र, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और अध्यापक पूर्ण सिंहके विद्वत्तापूर्ण निबन्धोंमें सजीवता और प्राणवत्ताके साथ व्यंग्यवत्ताका भी अभाव नहीं पाया जाता। प्राचार्य शुक्ल और हजारीप्रसाद द्विवेदी के वैचारिक दृष्टिकोणमें चाहे कितनाही अन्तर क्यों न हो, यह निश्चित है कि दोनोंही जितने समर्थ समा-लोचक थे, उतनेही बड़े निबन्धकारभी थे। हजारी प्रसादजीके उत्तरवर्ती निबन्धकारोंमें विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ रायने लोक और शास्त्रकी समन्वित दृष्टिसे भारतीय संस्कृतिके विविध पक्षोंका प्रतिपादन किया है। हजारीप्रसादजी अपने निबन्धोंमें पाण्डित्यकी

१. प्रका. : साहित्य भवन, प्रा. लि., ६३ कै. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-२११००३। पृष्ठ : ७५; डिमा. ६१; मूल्य : ११.०० रु.।

'प्रकर'—नवंबर ६२—४२



पचाकर कहीं निर्मल हास्य तो कहीं हलके-गहरे व्यंग्य की मनोरम सृष्टि करते हैं; परन्तु, कुबेरनाथ रायकी दृष्टिमें “प्रत्येक निबन्धकारका पहला कर्त्तव्य होता है पाठककी मानसिक ऋद्धिको परिवर्द्धित करना।” इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए वे साहित्य, धर्म और संस्कृति विषयक अनेक सन्दर्भोंको अपने निबन्धोंमें आयासपूर्वक अनुस्यूत करते हैं। इससे निबन्ध ज्ञान-गरिष्ठ हो जाये और उसकी रसवत्तामें ह्रास हो जाये तो भी उनके लिए चिन्तित होनेका कोई कारण उपस्थित नहीं होता। उन्होंने अपनी निबन्ध रचनाका प्रमुख उद्देश्य बतलाया है : “भारतीय संस्कृतिके अन्दर आर्येतर तत्त्वोंकी महिमाका उद्घाटन।” लम्बे समय तक असम जैसे उत्तर-पूर्वी सीमान्त क्षेत्रमें रहनेके कारण उन्हें किरात और निषाद संस्कृतियोंका घनिष्ठतर परिचय प्राप्त करनेकी सुविधाभी प्राप्त होगयी। इससे उनका यह विश्वास दृढ़तर होगया कि “हम आर्येतरकी महिमा और उसके दानका सही सही मूल्यांकन करें और उसे पहचानें कि हमारे भीतर महासर्जक चतुराननके चारों चेहरे—आर्य, द्रविड़, निषाद, किरात समान रूपसे हमारे अपने हैं।”

डॉ. रहमतउल्लाह और डॉ. मान्धाता राय द्वारा सम्पादित ‘कुबेरनाथ रायके प्रतिनिधि निबन्ध’में ये पांच निबन्ध संकलित हैं—‘निषाद बांसुरी’, ‘कामधेनु’, ‘स्नान : एक सहस्रशीर्ष अनुभव’, ‘महाश्रमण इतना विराग असह्य है’ और ‘संस्कृतिका शेष नाग’। ‘निषाद बांसुरी’में निषाद संस्कृतिकी केन्द्रीय महत्ताका विवेचन किया गया है। लेखककी यह मान्यता है कि निषाद-द्रविड़-आर्य-किरात इन चारों महाकुलोंमें निषादही अग्रज है। भारतीय भाषाओंकी मूल संज्ञाएं और भारतीय मनके आदिम संस्कार इन्हींकी देन हैं। दुर्गा पूजा, शीतला पूजा आदि अपने आदिम रूपमें निषाद संस्कृतिसे ही आरम्भ होती हैं। कदली, नारिकेल, लाल, तम्बूल, निबुक, जम्बूक आदि अनेक वृत्तों और वनस्पतियोंके नामोंका मूल स्रोत निषाद भाषा ही है। सिन्दूरका प्रयोगभी आर्योंने निषादोंसे ही ग्रहण किया है। उत्तर भारतका आर्यीकरण होनेके बादभी ऐसा प्रतीत होता है कि आदिम निषाद राजनीतिक स्तरपर पराजित पर मानसिक और बौद्धिक स्तरपर विजयी हो गया है। रवीन्द्रनाथने जिस भारतको ‘महामानव समुद्र’ कहा है, उसमें अनेक संस्कृतियोंका संगम हुआ है। कुबेरनाथ

रायकी दृष्टिमें “आजकी भारतीयताका पिता है आर्य, पितामह है द्रविड़ और प्रपितामह है निषाद। भारतीय संस्कृतिमें समन्वित विभिन्न तत्त्वोंका विश्लेषण करते हुए उन्होंने लिखा है ‘आर्योंकी अग्नि उपासना अर्थात् यज्ञका रूपान्तर हुआ ‘हवन’। निषादों और द्रविड़ोंका स्नान प्रेम बना ‘तीर्थ’, द्रविड़ोंकी भावना-साधना बनी ‘कीर्तन’ या ‘भजन’ और आर्योंकी चिन्ताशीलता बनी ‘दर्शन’। इस प्रकार हवन, तीर्थ, कीर्तन, दर्शनके चार पहियोंपर हिन्दू धर्मकी बेलगढ़ी चली और चलती रहेगी निरन्तर।’

‘कामधेनु’ निबन्धके सांस्कृतिक केन्द्रमें स्थित है आर्य धर्म, दर्शन और उससे सम्बद्ध मयिक। निबन्ध के प्रारम्भमें ही ‘गो’ और ‘धेनु’के अनेक पर्यायोंका उल्लेख किया गया है, जो सभी बहुअर्थी हैं। उनके मतानुसार ‘गो’ और ‘धेनु’ का प्राचीनतम अर्थ ‘वाक्’ या ‘विद्या’ है। अन्य प्रसंगोंमें इसका अर्थ ‘ऊषा’ ‘भूता-हुति’ और ‘किरण समूह’ भी है। अन्ततः लेखक ‘कामधेनु’ की मूल स्थिति प्रत्येक व्यक्तिके मानस लोकके शिखर पर ब्रह्मरन्ध्रमें घोषित करता है। यह सारा विवेचन तार्त्त्विक भाषा-वैज्ञानिक होनेके कारण काफी जटिल और गरिष्ठ हो गया है; परन्तु प्रथम निबन्धके अन्तमें लेखक जैसे अपने अन्तस्में निषाद बांसुरीके स्वरको अविराम गूँजता हुआ पाता है वैसे ही द्वितीय निबन्धके अन्तमें वह घोषित करता है ‘सर्वदा नहीं तो कभी-कभी जरूर अपने मनोलोकमें इस कामधेनु की वत्सल पुकारको सुनता है।’ इन दोनोंही निबन्धोंमें विरल वैयक्तिक संस्पर्शोंके होते हुए भी भावात्मक तारत्वकी अपेक्षा वैचारिक घनत्वकी ही प्रधानता है।

‘स्नान : एक सहस्रशीर्ष अनुभव’ में लेखकके व्यक्तित्वका अधिक स्पष्टता और प्रगाढ़ताके साथ अभिव्यंजन हुआ है। ये पंक्तियां कोई कवि-हृदय लेखक ही लिख सकता है : ‘हम स्नान करते समय अनुभव करते हैं कि भीतर-भीतर आत्माभी तरल होकर प्रवाहमयी बन गयी है, सारी ग्लानि, सारा संताप कट जाता है और लगता है कि हम चाहें तो उड़ सकते हैं, चाहें तो धरतीसे एक हाथ ऊपर चल सकते हैं।’ परन्तु इस निबन्धमें भी लेखकपर गवेषक हावी हो जाता है और भारतीय जाति के स्नान-प्रेमके मूल उद्गमकी खोज करते हुए वह निषाद संस्कृति तक पहुंच जाता है। फिर तो वह रोमन सभ्यता और ग्रीक सभ्यतामें स्नानके प्रति अतिशय



अनुरक्ति की चर्चा करते हुए मुगलों के स्नान-प्रेम को भी याद कर लेता है। दशाश्वमेध घाट पर किसी स्नान-पर्व को 'हजार-हजार के बीच स्नान करते हुए' लेखक को लगता है कि 'मैं ही हजार-हजार होकर स्नान कर रहा हूँ।' 'महाश्रमण, इतना विराग असह्य है' का सम्बन्ध बौद्ध धर्म और संस्कृति से है। प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभसे लेकर गोरख-कबीर तक श्रमण और सन्त-परम्परा ने जीवन में राग और भोग के स्थान पर त्याग और वैराग्य को ही प्रस्थापित करने का प्रयास किया है। "संयम जब अत्यन्त असहज और अप्राकृतिक हो जाता है तब विपरीत ध्रुव की ही जीत होती है। असहज और अप्राकृतिक संयम को लोक-जीवन स्वीकार नहीं करता।" बौद्ध धर्म मूलतः मध्यमार्गी था परन्तु हीनयानी स्थविरों ने इसे अतिवादिता की ओर अग्रसर कर दिया। मनुष्य के मंगल और जीवन के रस और सौन्दर्य-बोध को नकारे जाने की प्रतिक्रिया स्वरूप लोक-भावना ने विरोध का शंख-नाद कर दिया और लोकधर्म के दबाव से अन्ततः 'मैदान बौद्धों के हाथ से निकलकर भागवतों के हाथ में आ गया। 'संस्कृतिका शेषनाग' में लेखक ने यह प्रतिपादित किया है 'छोटे-छोटे किसान गृहस्थ ही संस्कृति का शेषनाग हैं और सबका भार वहन करने के लिए अभिशप्त हैं।' कुबेरनाथ राय की दृष्टि में 'असल भारत है—किसान भारत और असली संस्कृति है—किसान संस्कृति।' परन्तु, विडम्बना यह है कि 'आज राजनीतिक तुमुल द्वन्द्व में उसका कोई मुखपात्र नहीं है।' वामपंथी राजनीति से लेखक को यह शिकायत है कि वह लोक-जीवन के मंच से किसान को विस्थापित कर वहाँ पर 'मजदूर' को स्थापित करना चाहती है। किसान की दुर्गति और दुर्भाग्य के प्रति निबन्धकार का रोष इन शब्दों में व्यक्त हुआ है 'कृषक भेद्य यज्ञ चालू है... किसान का भविष्य कभी भी इतना अन्धकारमय नहीं था, जितना आज हो गया है।'

ये पाँचों निबन्ध अपने विषय वैविध्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु यह कहा नहीं जा सकता कि कुबेरनाथ राय के प्रायः निबन्धों की सभी कोटियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्होंने रामकथा केन्द्र में रखकर भी अनेक निबन्ध लिखे हैं, परन्तु, इस संकलन में उनका प्रतिनिधित्व नहीं हो पाया है। इन निबन्धों में लेखक का व्यक्तित्व उनके ज्ञान-भार के नीचे दबकर रह गया है। हजारी प्रसाद जी के निबन्धों में

उनका पाण्डित्य पृष्ठभूमि में रहता है परन्तु कुबेरनाथ राय के इन निबन्धों में वह मंच पर ऐसा जमकर बैठ गया है कि लेख के व्यक्तिगत भावावेग और उमंग-तरंग को नेपथ्य में ढकेल दिया गया है। ऐसा नहीं है कि उनमें कवित्व का संस्कार है ही नहीं या उनकी कलम चित्र खड़ा करने का जादू जानती ही नहीं। आँखल में धान डालकर मूसल से उसे कूटती हुई तरुणी नारी के विम्ब का उन्होंने एक स्थान पर कैसा सजीव और गतिशील चित्रण किया है "मूसल के साथ ऊपर से नीचे तक अंग-प्रत्यंग धिरकते हैं। एक विशिष्ट छन्द में मूसल गिरता है। नख-शिख देह धिरकती है और अंग-श्री की सारी समृद्धि को व्यक्त करती जाती है। यह सारा कर्म एक लयबद्ध नृत्य का रूप ले लेता है।" कौन कह सकता है कि इन पंक्तियों को लिखने वाली कलम के पीछे एक भावुक हृदय छिपा हुआ नहीं है। परन्तु, कुबेरनाथ राय इस महा-देश में विभिन्न संस्कृतियों के संगम-स्थल पर बैठकर अलग-अलग लहरों की पहचान करने में इतने व्यस्त रहे हैं कि उनके निबन्धों में उनका भाव-प्रवण व्यक्तित्व यदा-कदा प्रच्छन्न रूप से ही व्यक्त हो पाया है। फिर भी, निबन्ध एक कोटि के ही तो नहीं होते। उनके विविध रूपों में कुबेरनाथ राय के ये निबन्ध भी अपने विशिष्ट रूप और रस-रंग के कारण अपनी अलग पहचान कायम करने में कृतकार्य हो सके हैं। यह भी कोई साधारण सफलता नहीं है। □

## कुछ जमीन पर : कुछ हवा में?

लेखक : श्रीलाल शुक्ल

समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

प्रस्तुत निबन्ध संकलन के पूर्वार्ध में 'कुछ जमीन पर' में विभिन्न पत्रिकाओं में लिखित लेख तथा उत्तरार्ध में रेडियो वार्ताएँ हैं। शुक्लजी व्यंग्य लेखन के सशक्त हस्ताक्षर हैं। निबन्धों के अतिरिक्त 'रागदरबारी' उन्होंने व्यंग्य उपन्यास के रूप में लिखा है। स्वतन्त्र भारत की सर्वव्यापी दुर्दशा पर तिलमिला देने वाले व्यंग्य उन्होंने किये हैं। 'छोटी तथा उन्नीस सौ चौरासी' लेख प्रेमचन्द के गोदान के नायक होरी की लगभग पचीस

१. प्रक.: राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-२। पृष्ठ : २३६;  
क्रा. ६०; मूल्य : ७५.०० रु.।



वर्ष बादकी स्थितिका व्यंग्यात्मक अंकन है। ग्रामीण प्रधान इस देशमें ग्रामीणोंको लेकर जो कुछ हुआ है, दिन-रात रेडियो, दूरदर्शन और राज्य तथा केन्द्र सरकारके विज्ञापन विभागों द्वारा उसका धुआंधार प्रचार-प्रसार जो हो रहा है उसकी वास्तविकताको उजागर किया है और विडम्बना देखिये कि यही व्यंग्य बन गया है। पैतालीस अरब रुपया किसानोंको बंटा गया है इस पर आजके होरीकी टिप्पणी है—“मार डाला बेईमानों ने। अब उसपर सरकारसे रोजगारके लिए मिलनेवाला कर्ज है तथा शादी, मौत बीमारीके लिए गाँवके महाजनसे लिया गया कर्ज भी है। सरकारी कर्जसे मुक्तिका कोई उपाय नहीं है जो सरकारी फौजके द्वारा स्थानीय एम. एल. ए. की कृपासे बांटा गया है। भैंसकी जरूरत न होनेपर भी उसे तीन थनवाली भैंस थमा दी जाती है, सरकारी अफसरोंकी कमीशनखोरीकी सांठ-गांठ के कारण, और यही भैंस उसकी ज़बतीका कारण बनती है। गैर-सरकारी सूदखोर गड़ेही कठोर हो गये हैं, शादी आदिके लिए उन्हींसे कर्ज मिल सकता है बड़ी कठोर शर्तोंपर। जंगल और बाग सरकारी वन महोत्सवोंके ढकोसलोंके बावजूद कट गये हैं। होरीके लिए न कोई न्यूनतम मजदूरीका नियम लागू होता है, बीमार पड़ने पर न कोई डॉक्टर है, बदमाशोंसे बचानेके लिए कोई सिपाही थानेदार भी नहीं हैं। हाँ, बच्चे पैदा होनेसे रोकनेके लिए, भूदानमें मिले ऊसरके टुकड़ेके लिए, सरकारी ऋणका आधा, तिहाई भाग उसे मिलता है। डकैतोंकी गोलीसे बचनेके लिए रपट लिखवाने उसे चौदह किलोमीटर दूर थानेपर जाना पड़ता है, पर पोलिंग बूथ उसके दरवाजेपर बना दिया गया है। होरी के जीवनकी वास्तविकता दर्शनीय है—१. फ़िल्म एक्टर संगीतकार, प्रबन्ध विशेषज्ञ, वैज्ञानिक अन्तरिक्ष यात्री, उद्योगपति, न्यायविद् हमारा ज़िन्दगीको समृद्धतर बनानेमें लगे है पर होरीकी बदकिस्मती कहिये उस ज़िन्दगीपर हुकूमत छुरेबाजों, दलालों, सूदखोरों, बौद्धिक नपुंसकों, डकैतों संवेदनहीन हाकिमों और राजनीतिक मौकापरस्तोंकी है” (पृ. २०)।

राष्ट्रपति शासन प्रणालीपर बहस चलती है। ‘प्रणाली’ शब्दका तद्भव है ‘नाली’—‘जो गंदा पानी एक नालीमें बह रहा है, उसे दूसरी नालीमें बहानेसे कौन-सा लाभ होगा ? काफी हाँउसमें कक्षाएं लेनेवाला प्रोफ़ेसर भी इस बहसमें दार्शनिकता व्यक्त करता है, पर एक

पुराने स्वतंत्रता सेनानीके अनुसार पहले तो गांवको गरीबी और चोर-डकैतोंसे, शहरको लापरवाही और दादागीरीसे, आदिवासीको साहूकारों और जंगलोंके उजाड़ेसे, राज्यको भाषा और दल-बदलुओंसे, देशको राजनीतिक कबाड़ीपन और नेता अफसर सेठके गठ-बन्धनसे चौपट किया अब इसको राष्ट्रपति शासन प्रणालीसे बचाने चले हैं” (पृ. २३)। इसपर एक लोक कहावतका शुद्धिकृत रूप लागू होता है। यदि कमरके घावका इलाज मत्था सेंककर हो सकता है तो जनताके दुःखका निवारण राष्ट्रपति शासन प्रणालीसे क्यों नहीं हो सकता” (पृ. २३)। इस फालतू बहस पर बड़ा तीखा व्यंग्य है।

प्रेमचन्दकी तरह लेखकभी लखनऊको भाड़ों और नपुंसकोंका पुरातन रंगस्थल मानता है, जो नवाबी और अंग्रेजी सभ्यतामें बंटा हुआ है। विश्वविद्यालयके बुद्धिजीवी कुछ ऐसा अचम्भा है कि प्रायः वही सोचते हैं, जो सरकार सोचती है।” (पृ. २६)। लखनऊकी नवाबी रंगीनीका प्रभाव आजभी वहाँके जनजीवनमें है। (गेगुलसे बुलबुलके पर बाँधनेकी परम्पराको टूटने नहीं दिया) और उसके लखनऊके मस्तिष्कने किसी प्रकारका कष्ट नहीं उठाया (पृ. ३६)। ‘जीती जागती सरकारका एक हसीन सपना’ लेखमें खुलेआम नकलको, बढ़ती हुई परीक्षाथियोंकी संख्यामें मंत्रीजीने नगण्य बताकर सरकारको बदनाम करनेवालोंकी नीयत का ‘पर्दाफाश’ किया है। स्कूल कालेजोंमें बढ़ती हुई नकलचियोंकी संख्यामें कुछ असहाय और मूर्खोंके पकड़ जानेको उछाला जा रहा है। युवावर्गमें आठ हजारका घूस न दे पानेके कारण नौकरी हाथसे निकल जानेका दर्द व्यक्त हुआ है।

महापुरुषोंकी यादमें तेजाबी व्यक्तियोंको छोड़कर छोटे-छोटे वर्गों और जाति समूहोंके लिए अलग-अलग महापुरुषोंको पुराण, इतिहास और लोक-विश्वासकी धुंधली भूलभूलझोंसे निकालकर बाहर ला रहे हैं। महाराजा अग्रसेन जयन्ती, बाल्मीकि जयन्ती, रविदास जयन्तीके रूपमें। अग्रसेन जयन्ती तो जातिगत उभार है, पर बाल्मीकी और रविदास जयन्ती हरिजनोंके आत्म-गौरवकी स्थापनाके प्रयास हैं। पाबलो नेरू दाके द्वारा इंगित नेहरूजीकी उनके प्रति उदासीनताका संकेत चौंकानेवाला है तभी तो लेखककी यह टिप्पणी विचारणीय है—‘उनकी (महापुरुषोंकी) भूलोंसे भी हमें



बहुत कुछ सीखनेकी सामग्री मिल सकती है (पृ. ५७)। 'फावड़ा बनाम हवाईजहाज' में सरकारी अफसर अपने निकम्मेपनको कैसे बचाते हैं "गिरफ्तारी तो भाई उसी की होगी जो अपनेको गिरफ्तार कराये जैसाकि अटल बिहारी वाजपेयी या जार्ज फर्नांडीजने कराया। असामाजिक तत्त्व भी अपनी गिरफ्तारी कराये तो एतराज नहीं, उन्हें भी गिरफ्तार कर लेंगे" (पृ. ६३)।

आत्मप्रचारमें कुशल साहित्य व्यवसायी लेखकों पर तीखा व्यंग्य किया है 'हिन्दी इतिहासमें एक नया युग' जो दुलारेलाल भार्गवकी यशोलिप्सापर कटाक्ष करते हुए लिखा है। "दूरदर्शन द्वारा प्रदर्शित अनेक कार्यक्रम भ्रष्टाचारको जादुई घड़ीसे मिटानेका नुस्खा बताते हैं, 'रजनी' जैसे धारावाहिकोंके द्वारा। 'दूरदर्शन का जीवन-दर्शन' लेखमें उक्त कार्यक्रमोंकी स्थूल उद्देश्य-परकताकी अप्रामाणिकताको उधेड़ा गया है। सुरेन्द्र चतुर्वेदी तथा डॉ. लक्ष्मीनारायण लालकी स्मृतिमें लिखित संस्मरण उनके व्यक्तित्वको उजागर करते हैं। सत्ता और संस्कृतिके रिश्तेको लेकर सत्ताका संस्कृतिपर कब्जा करके अपनी दासी बनानेकी प्रवृत्तिका विरोध किया गया है। जातिसूचक उपाधि नामके पहले लगाने में अंग्रेजीकी धूर्तता थी जो आजभी चुनाव निकट आने पर जुझारू नेताओंके नादान अनुयायियोंको बाँटनेके लिए की जाती है। जो नेहरू अपनेको ब्राह्मण कहे जाने तथा पैर छुए जानेपर गजों उछलतेथे उनके नाती राजीव गाँधी, ब्राह्मण वोटको बटोरनेके लिए उन्हीं नेहरूजीको बार-बार पंडितजी कहते हैं। तभी तो लेखक राज्यकी प्रशासनिक सेवामें भर्ती लोगोंकी नामावलीको जन्तु उद्यानका रजिस्टर' कहता है। यह अंग्रेजों की चाल थी जनतामें सामूहिक चेतनाके उभारको रोकने के लिए, उसे पंडित, ठाकुर, बाबू, लाला आदिमें बाँट कर जातिगत क्षुद्र हितोंको भड़कानेका। तभी तो मोतीलाल मिस्टर नेहरूसे पंडित मोतीलाल होगये और बीसवीं शताब्दीमें कैम्ब्रिजसे लौटे हुए जवाहरलाल नेहरू अपनी खरी साहबियतके बावजूद पंडितजीकी उपाधिसे विभूषित होगये। 'महोत्सवके बाद' में लखनऊकी संस्कृतिका प्रदर्शन था जो बेकसरकी लड़ाई और वाजिदअली शाहकी जलावतनीके दो पाटोंमें पिसते हुए बेचैन इतिहासमें विलासोन्मुख बेफिक रईसोंकी जिन्दगीके इदंगिर्द पनपीथी।" (पृ. १०५)।

'दूराचार बनाम भ्रष्टाचार' में देश विदेशके संक्स

'प्रकर'—नवम्बर १९८६

कांडोंपर व्यंग्य है। पामेला बोडस तो सिर्फ लीबियाके सेनापतियों, अदनान खागोशी जैसे अस्त्र-शस्त्र व्यवसायियों, चन्द्रास्वामी जैसे तांत्रिकों और कुछ मिनिस्ट्रोंके बीच अपनी अस्मिताकी तलाश कर रही थी (पृ. १२७)। 'जनवाणी महाजन वाणी' में दूरदर्शनपर जनताकी अदालतमें मंत्रियोंको खड़ा करके सरकारी निकम्मेपनको दिखाये जानेकी प्रवृत्तिपर व्यंग्य है 'जब हम अपनी तरफसे ही छतपर बेलिबास खड़े हैं तो आपने हमें नंगा कहकर कौन-सी नयी खोज कर ली?' दूरदर्शनपर इसको दिखानेके पीछेकी नीयतको लेखक साफ करता है 'शासक पार्टीमें सभीके पास तलवार है, ढाल किसीके पास नहीं है। इसलिए वहाँ असली खूनखराबा हो सकता है। सरकारमें राजनीतिक केंचुएं हैं जिनकी सुरक्षाके लिए उनके ऊपर नौकरशाहीका कछुआ है जिसकी पीठ हर छड़की चोट उसी इत्मीनानसे झेल सकती है जोकि कछुएकी ठोस और ठस पीठके लिए सम्भव है (पृ. १३६)। दो स्थितियोंमें जनता मंदिरमें साम्प्रदायिकताको भड़कानेका बड़ा सस्ता नुस्खा बताया गया—आप श्री भगवान्के दरबारको उजड़वाना तो शुरू कीजिये जनता बिना बुलाये ही आ जायेगी। 'काश मैं मोटर साइकिल होता' में पुलिस अधिकारीकी अपनी जिम्मेदारीको दूसरे पर टालनेकी मनोवृत्तिपर व्यंग्य है—'जिस नालीमें आप पड़ेहों वह परतापगढ़में है पर मोटर साइकिल जहाँ पड़ी है वह जमीन इलाहाबादके जिलेकी है। मोटर बीमावाले इलाहाबादसे आकर इसे ले जायेंगे। इसकी भरममत इलाहाबादमें होगी और आपकी परतापगढ़में। दुर्घटनामें मृत व्यक्तियोंके सम्बन्धियोंको मिलनेवाले मुआवजेकी बन्दरबाँटको लेकर एक नया हितोपदेश लिखा गया है। एक देहातीकी नजरमें शहरके सौ मीटर में प्रतिष्ठाके लिए होनेवाले प्रदर्शनों-आन्दोलनोंकी भीड़ में लेखकका पैर पकड़कर जो बच्चे पैसे ले गयेथे, वे ही कुछ दूरपर बीड़ी पीते हुए 'रेशमी जुल्फोंके अंधेरेमें' आगे बढ़नेका गाना गा रहेथे, फिरभी लेखक सोचता—'सब कुछ किसी न किसीकी प्रतिष्ठाका सवाल है पर वे रिरियाते हुए बच्चे उसकी प्रतिष्ठाके सवालसे जुड़े होंगे' (पृ. १६७)। लेखककी यह सोच उसकी गहरी मानवीय चिन्ताको व्यक्त करते हैं। 'आम आदमी की तलाश' राजनीति और साहित्यके धंधेबाजोंपर तीखा व्यंग्य है, जिसमें यह चेतावनी दी है—'आप



चाहे समाजमें आमूल परिवर्तन करनेवाले कोई महान् राजनीतिक कार्यकर्त्ता हों या विचारोंमें क्रांति लानेवाले साहित्य स्रष्टा, आपकी ओरसे आम आदमीकी तलाश तबतक शायद कामयाब न होगी जबतक आप खुद खास आदमी बनकर किसी ऊँची मीनारमें बैठे हैं।

साहित्यिक शोधकी निरर्थकतापर व्यंग्य करते हुए लिखा है 'आगे चलकर साहित्यके विद्यार्थियों और विद्वानों, शोध संस्थानों आदिको सैकड़ों बरसके लिए शोधका मसाला मिलेगा। मेरी बातोंमें वे बातें ढूँढ़ी जायेंगी जो वहाँ कभी थी ही नहीं। इसीलिए लेखक निष्कर्ष देता है कि महान् लेखक हमेशा बनते नहीं, बनायेभी जाते हैं' (पृ. १८७)। 'प्रासंगिकता उपादेयता और सार्थकताका सवाल' इन बहुप्रचलित निष्कर्षोंकी छानबीनके लिए लिखा गया है। प्रासंगिकताका निष्कर्ष लेखकके अनुसार सार्थकतामें और मूल्यवत्तामें है, जिसका सीधा सम्बन्ध हमारे अनुभवों और संवेदनाओंसे होकर हमारी जिन्दगीके सुख-दुःख का अंग बननेमें है। 'साहित्यके लिए मेरी कसौटी' में अनुभव संसारको विस्तृत करने संवेदनाओंको जागृतकर उसके गहराईमें उतरनेकी सामर्थ्यमें मानो मानी है। 'बढ़िया किस्मका घटिया साहित्य' की उलट-वासीका अर्थ लेखक यह देता है कि जो अनुभवकी गहराईमें जानेसे रोककर हमारी भावुकताका फायदा उठाता है। 'साहित्यका नया आयाम : उपन्यासके क्षेत्र में', उपन्यासकी जिन्दगीका सशक्त कलात्मक दस्तावेज

बनाने में ना ना है। अंतर्राष्ट्रीय सन्दर्भमें हिन्दीके प्रयोगकी सम्भावनाको उजागर किया गया है, जिसकी झलक विश्व हिन्दी सम्मेलनोंमें दिखायी पड़ी है। 'विधा और अभिव्यक्ति' में हिन्दीके नवीनतम उपन्यासोंकी उपलब्धिकी चर्चा है। 'यशपालकी रचना-धर्मिता' में उनके कथा साहित्यमें व्यक्त संवेदना और वैचारिकताकी सामर्थ्य और सीमाका लेखा-जोखा है। 'मुझे अपनेसे दूर मत करो वसुन्धरा' में अपनी धरतीसे जुड़े रहनेकी कामना है उसकी सारी बुराइयों और कमियोंके बावजूद, न कि उससे पलायन करनेमें राग दरबारीके रंगनाथकी तरह—विदेश बौद्धिक ऐशगाहके प्रतीक शोध संस्थान, ज्योतिष, सामुद्रिक, तंत्रमंत्र, रहस्यवाद या सूर सुन्दरी शाल मंजिका, अलस कन्याके साथ जुड़े पुरातन रोमांसकी यानी उन सबकी जो निष्क्रिय बुद्धिजीवियोंको ग्रामजीवनके दुरन्त यथार्थसे बचा सके (पृ. २३३)। नपुंसक बुद्धिजीवियोंके पलायनपर बड़ा तीखा व्यंग्य है।

शुक्लजीने इस लेखनमें समाजके अधिकांश वर्गोंमें व्याप्त भ्रष्टाचार, दुराचार, हरामखोरी, निष्क्रियता, पलायन, धूर्तता, दुर्बलतापर सोद्देश्य व्यंग्य किये हैं, अधिकतर छेड़-छाड़की मूडमें। कहीं-कहीं तीखेपनके साथ। अधिकतर सहजता लिये हुए, कहीं-कहीं अति-रंजनाके साथ। फिरभी लेखककी सामाजिकता संवेदना की सूक्ष्मता और व्यापकताका पर्याप्त प्रमाण इसमें मिलता है। □

## काव्य

### मुझे और अभी कहना है?

[गिरिजाकुमार माथुरकी काव्ययात्रा]

कवि : गिरिजाकुमार माथुर

समीक्षक : डॉ. ओम्प्रकाश गुप्त

गिरिजाकुमार माथुरकी कविताका अध्ययन एक

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, १८ इंस्टीट्यूशनल

एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३।

पृष्ठ : ३८२; डिमा. ६१; मूल्य : १२०.०० रु.।

व्यक्तिकी काव्ययात्राका ही नहीं, हिन्दी-कविताकी यात्राका भी अध्ययन बन जाता है क्योंकि गि. कु. माथुर 'तारसप्तक' लेकर अवतक लिखते आ रहे हैं इस संकल्पके साथ—

“वक्त जरा थम जा/ मुझे और अभी कहना है—/  
खिलते जा रहे हैं/ अभी ढेर ताजे फूल/ अंजलि  
में भर-भर/ उन्हें धाराको देना है।

(रचना-तिथि १-१-१९६०)

उनकी कविताने प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता जैसे पड़ाव देखे हैं और इन पड़ावोंपे हल्की

‘प्रकर’—मार्गशीर्ष-२०४६—४७



पे हल्की मुस्कान डालकर वह आगे बढ़ती रही। वह जीने, स्वयं, छायावादी चेतनासे सम्पूर्ण विच्छेदका बिन्दु सन् १९४० को माना है। इसके तीन वर्ष पश्चात् 'तार सप्तक' में जो कविताएँ छपीं, वे निश्चित रूपसे सन् चालीसके आसपास लिखी गयी थीं।

इस संग्रहकी भूमिकामें गिरिजाकुमार एक महत्वपूर्ण बात कहते हैं—

“.....यह कहना गलत है कि प्रगतिशीलता, प्रयोगधर्मिता उस समय अलग-अलग थे। इस ध्रुवीकरणका प्रयास बादमें १९४९-५१ के बीच कुछ प्रगतिवादी आलोचकोंने किया।”

प्रस्तुत संकलनकी पहली रचनाकी तिथि है—जनवरी १९३९। इसके लगभग आधे वर्ष बाद प्रथम महायुद्ध आरम्भ होनेवाला था। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिजोंपर व्यापक ऊहापोह था। साहित्यिक क्षितिज पर छायावादकी अमूर्त कल्पनाकी जगह ठोस यथार्थ का महत्त्व बढ़ने लगा था।

गि. कु. माथुरकी इस पहली पहली कविता 'याद यह हो आयी मुझको पुरानी' में रोमांटिक स्वर, स्पष्ट रूपसे, यथार्थकी ओर उन्मुख हो रहा है। कवि उदास मनसे कहता है—

‘खो गया जाने किन रुंदे फूलोंमें  
तितलियोंके पंखोंका युग हमारा।

यही हमें याद रखना होगा कि माथुरकी कविता में रोमांसकी सहज और बहुत सीधी-सादी अभिव्यक्ति हुई है। यह रोमांस ऐसे क्षणों और ऐसे अनुभवोंपर आधारित है जो सामान्य मनुष्यके लिए बस यूँ ही रीत जाते हैं। कवि पाठकके साथ एकमेक हो जाता है, पाठक और कवि एक दूसरेके साथ जीने लगते हैं—

“आज अचानक सूर्या-सी संध्यामें  
जब मैं यों ही मैले कपड़े देख रहा था,  
किसी काममें जी बहलाने  
एक सिल्कके कुर्तेकी सिलवटमें लिपटा  
गिरा रेशमी चूड़ीका  
छोटा-सा टुकड़ा  
उन गोरी कलाईयोंमें जो तुम पहने थी  
रंग-भरी उस मिलन-रातमें।

(रचना-१-१-१९४१)

इस रोमांटिक चित्रणमें मध्यवर्गीय जीवनानुभव हैं और कवितामें इन्हें भोगनेके बाद पाठकके जीवनानुभवों

‘प्रकर’—नवम्बर’९२—४८

को प्राप्त करने की कोशिश की है। इस सम्बन्धोंके प्रति एक नया रक्षान जन्म लेता है; समय जिन्हें वासी कर बैठा है, वह फिरसे ताजा होकर, नये सिरसे, जीवनके अंग बनने लगते हैं। उसकी मांगें भी बहुत ऊँचे आकाशकी चाह नहीं करती—

“मेरे सपने बहुत नहीं हैं—  
छोटी-सी अपनी दुनियां हो,  
दो उजले-उजले-से कमरे

× × ×

नयनोंमें रस नयन मिलाये  
हिलमिलकर बातें करते हों।”

माथुरकी कवितामें प्रगति-चेतनाका भी एक विकास परिलक्षित होता है। दिसम्बर १९४१ में विरचित ‘मशीनका पुर्जा’ इस संकलनकी पहली कविता है जिसमें यह चेतना रेखांकित की जा सकती है। किन्तु यहाँ भी वर्ग-भेदकी वह सैद्धान्तिक चिन्तना नहीं है जो रचना को ‘माक्सवादी’ विशेषणके आसपास ले आये। दफ्तरी क्लकका यह चित्र बेहद सरल और सहज है—

“मसली हुई कमीजके कफमें  
बटनोंके बदले दो डोरे बंधे हुए हैं  
रफू किया उसका वह स्वेटर  
तीन सदियां देख चुका है।”

यही चेतना स्वतन्त्र भारतमें व्याप्त निराशापूर्ण स्थितियोंको देखकर और अधिक पैनी होने लगती है; कविकी दृष्टिभी अधिक व्यापक फलकको समेटनेका प्रयास करती है—

“जल रहे हैं कोटि चूल्हे  
किन्तु है इन्सान भूखा  
जल रही है आग  
फिरभी आज तक इनसान भूखा।”

(४-१-१९४९)

सन् सैतालीसकी दहलीजपर कविकी यह स्वाभिमान था कि हमने एक राष्ट्रके रूपमें एक अस्मिता अर्जित की है और इस अर्जनके हम पूरी तरह अधिकारी हैं और कि एक नये भारतका निर्माण जनताके लिए एक बेहतर युगका पर्याय है—

“केवल मिथ्या आदर्शोंसे नहीं  
नहीं कोरी रंगीन कल्पनाओंसे  
किन्तु जिन्दगीकी मिठासका रंग लेनेको  
हमने कटुतासे संघर्ष किया है।” (३१-१-१९४७)



इसी वर्ष पन्द्रह अगस्तको आजादीके गीत गाते समय कविके स्वरमें वह शंका व्यक्त होने लगती है जो स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-कविताकी प्रमुख विशेषता बनी—

“ऊँची हुई मशाल हमारी  
आगे कठिन डगर है  
शत्रु हट गया, लेकिन उसकी  
छायाओंका डर है ।  
शोषणसे मृत है समाज  
कमजोर हमारा घर है  
किन्तु आ रही नयी जिन्दगी  
यह विश्वास अमर हैं ।”

ये ‘अमर विश्वास’ भी शीघ्र भरभराने लगे । टूटते मूल्यों, हिलते हुए आधारोंके बीच खड़ा कवि सन् सतहत्तरमें आपात्स्थिति देखकर चकित रह गया । अवरोधोंके कारण उसकी छटपटाहट इस प्रकार प्रकट हुई—

“बन्द अगर होगा मन  
आग बन जायेगा  
रोका हुआ हर शब्द  
चिराग बन जायेगा ।

एक ओर आशा, विश्वास, आस्था; दूसरी ओर हताशा, अनास्था और इनके बीचसे आगेकी मंजिलोंका दिशा-निर्देश देता कविका स्वर गिरिजाकुमारकी कविता को विगत आधी सदीके सामान्य आदमीकी जिजीविषा की कविता बना देता है । लोकगीतके स्तरपर जाकर कवि गाने लगता है—

“मनके विश्वासका यह सोनचक्र रुके नहीं  
जीवनकी पियरी केसर कभी चुके नहीं ।”

अपनी कविताकी तलाशमें कवि राजनीतिके ऊँचे मीनारोंसे मुंह मोड़ लेता है और फैसला देता है कि सच्ची कविताके लिए वह उपयुक्त वातावरण नहीं है । नयी कविता और अकविता जिस नगरीकरण और महानगरीय जीवनकी विसंगतियोंमें खोने लगी थीं, गिरिजाकुमार माथुर उन भुलभुलैयाँसे सावधान रहे है—

“नहीं आयेगी कविता अब चलकर

+ + +  
सजे लानोंके बीच बिछे  
मखमली स्वागत कालीनोंसे  
+ + +

तपी हुई सुनहरी शाम-सी  
गाँव-घर लौटती वामा पगडंडीपर  
वहीं सारी कविता है

कविता हमेशा जमीनसे ही आयेगी ।”

गिरिजाकुमार माथुरकी कविता शब्दोंमें धरतीकी सोंधी गंध समेटे रही है । आप उसमें वसन्ती कलिका प्रस्फुटन देख सकते हैं; उमस और उज्ज्वल जी सकते हैं, पी सकते हैं । ‘कल्पान्तर’ जिसे कविने ‘विज्ञान काव्य’ कहा है अपने ढंगसे वही बात कहता है जो कवि इस संकलनकी भूमिकामें लिखता है और प्रश्न करता है—  
“लेकिन क्या इसको प्रगति कहेंगे यदि आदमी मनसे छोटा हो गया है... आपसी भरोसे टूट गये हैं सिर्फ वह अपने लिए जीता है ?” उत्तर वह स्वयं देता है अपनी कविताओंमें । ‘नदी’ शीर्षक कवितामें कवि करता है—

“यह नदी/नहीं है नदी/अनादि समयका प्रवाह है/  
आदमीका इतिहास है/वह विराट मेतु है/ + + +  
इसके ठंडे जलमें/हर आग आकर शीतल हो जाती है...।”

यह नदी हमारी संस्कृतिकी नदी है, गि. कु. माथुरकी कविताएं हमारी सांस्कृतिक पहचानको समृद्ध करती हैं । वर्तमान संदर्भोंमें इसे हिन्दी काव्येतिहासकी उपलब्धि माना जा सकता है । [7]

## १. एक जुआ घर

## २. एक शंख मेरे हाथों दो?

कवि : श्यामसुन्दर घोष  
समीक्षक : डॉ. वीरेन्द्रसिंह

डॉ. श्यामसुन्दर घोष मूलतः एक आलोचक हैं और आलोचक जब कवि रूपमें सामने आता है, तो उसमें विचार और संवेदनाका एक अद्भुत मिश्रण प्राप्त होता है । मेरे विचारसे श्यामसुन्दर घोषके दो नये कविता संग्रह ‘एक शंख मेरे हाथों दो’ तथा ‘जुआ घर’ वैचारिकता और संवेदनाके दो भिन्न स्तरोंको एक स्तर

१. प्रका. : राजेश प्रकाशन, ए.७/४६ कृष्णनगर, दिल्ली-  
११००५१ । (१) पृष्ठ : ६४, डिमा. ६०; मूल्य :  
३०.०० रु. । (२) पृष्ठ : ७०; डिमा. ६०;  
मूल्य : ३५.०० रु. ।

‘प्रकर’—सांगंशीष’२०४६—४६



पर लाते हैं और यही कारण है कि इन समूहों में कवि दो भिन्न रचनात्मक विधाओं में एक साथ उतरने का प्रयत्न करता है, 'नवगीत' तथा 'मुक्तछन्द' के दो छोरों को कवि अपनी संवेदना के दायरे में लाता है। इन दोनों संग्रहों को एक क्रम से पढ़ते हुए निरन्तर यह प्रतीत होता है कि कवि नवगीत की संरचना में अधिक रचनात्मक है और 'जुआघर' की मुक्तछन्द—संरचना में अपेक्षाकृत कम। यही कारण है कि 'एक शंख मेरे हाथों दो' की गीतात्मक रचनाएं अधिक संवेदनापूर्ण हैं और रचनात्मक, जबकि 'जुआघर' की रचनाएं गद्य के अधिक निकट हैं और उनमें रचनात्मकता का अभाव भी एक सीमा तक अखरता है। एक उदाहरण लें—

थाना, कोर्ट-कचहरियां और न्यायालय के बावजूद  
आज आदमी ज्यादा असुरक्षित है  
अब तो बिना जुर्म के हो सकते हैं गिरफ्तार  
बिना मुकदमे के मिल सकती है सजा  
बिना कातिल के हो सकता है कत्ल।

(जुआ घर पृ. ३१)

दूसरी ओर गीत का एक उदाहरण लें—

"जुलुम ऐसे विविध छुप-छुप  
कि कुछ कहते नहीं बनता  
घृणा अपमान पीकर भी  
कहीं कोई नहीं तनता  
नहीं संभावना कोई कहीं जिसपर नजर ठहरे  
घुन गया सब कुछ, कहीं भीतर बहुत ही गहरे।

(एक शंख...पृ. १५)

इन दोनों उदाहरणों में 'कथ्य' का लगभग समान रूप है। परन्तु कथन-भंगिमा में अन्तर है और साथ ही रचनात्मकता के सन्दर्भ में भी 'अन्तर' है। यह अन्तर 'छन्द' के कारण भी हो सकता है, पर मैं जिस तथ्य की ओर संकेत करना चाहता हूँ, वह है कि वक्तव्य जब रचनात्मक ऊर्जा प्राप्त करता है तो वह मुक्तछन्द में भी अपना पूरा प्रभाव छोड़ जाता है। घोष की मुक्तछन्द की कविताएं इस दृष्टि से अपेक्षाकृत कम ही हैं। 'ददं' कविता इस दृष्टि से एक अच्छी कविता है जिसमें इतिहास के प्रति एक विचार है और साथ ही संवेदना के स्तर पर उसका रूपान्तरण—

ददं जब किसी मानवीय सन्दर्भ से जुड़ता है/इतिहास बन जाता है/मन के व्यास पीठपर/अचानक आ बैठता है/घुनने लगता है/ददं महाभारत/और अन-

'प्रकर'—नवम्बर '९२—५०

झनाहट की गीता।" (जुआ घर, पृ. २३)

दूसरी ओर सृजन और यंत्रणा का सापेक्ष महत्त्व हुआ जो गीतों में मुखर हुआ है। "कीलों में जड़े हुए, कास पर टंगे से दिन" तथा "हर नया अनुभव एक यंत्रणा है" जैसी अनेक पक्तियाँ आज के कटु-तिक्त यथार्थ को 'अर्थ' देती हैं। कविका आंतरिक विक्षोभ इतना प्रबल है कि उसे बार-बार यह लगता है कि—

"कभी-कभी दिख जाती ओयसिस  
मायावी हरियाली

बाकी तो फिर सावन-भादों, कोलतार रातें काली  
रेत फाँकते सब घूम रहे मरियल रेगिस्तान में  
कौन करे गीतों की खेती पगले हिंदुस्तान में।

(एक शंख...पृ. ४७)

इस स्थिति में शब्द तनकर खड़े हो जायें तो क्या आश्चर्य और श्यामसुन्दर घोष के रचना-संसार में शब्दों-रूपाकारों का यही 'तना' हुआ रूप है (पृ. ६२)। उनके रचना संसार को सही सन्दर्भ में देखने का अर्थ है—शब्द का तना हुआ रूप और उनसे प्रकट होता हुआ विक्षोभ, आक्रामकता और जद्दोजहद। मेरे विचार से श्यामसुन्दर घोष की रचनात्मकता का यह एक मुख्य तत्त्व है जो उनके गीतों में बखूबी प्रकट हुआ है।

कविकी रचनात्मकता के भिन्न आयाम हैं यथा राजनीति-समाज, अस्तित्व संघर्ष, प्रकृति-बोध तथा काल-सन्दर्भ। ये सभी संदर्भ न्यूनाधिक रूप से दोनों संग्रहों में हैं, परन्तु "एक शंख मेरे हाथों दो" के गीतों में ये सन्दर्भ अधिक अर्थवत्ता प्राप्त करते हैं। राजनीति के चरित्र को कवि पहचानता है, उसकी विडम्बना और मूल्यहीनता को जो छनकर समाज को भी प्रभावित कर रही है। सर्वत्र 'अंधेरा' का भयावह रूप है। यह अंधेरा एक आद्य बिम्ब है जो सर्वत्र फैला है—

"हाय यह कैसा अंधेरा है

बाप रे, मेरी गर्दन पर तो

किसी की सख्त उंगलियों का दबाव है।

(जुआघर पृ. १३)

इस अंधेरे में 'चुभते दिन हैं', 'घुन लगे पंजे हैं', 'शंख घायल है', 'मैं का क्रय-विक्रय है' तथा चक्रव्यूह में फंसी घायल सच्चाई है। देश का पूरा परिदृश्य उप-युक्त पंक्तियों में साकार हो गया है और 'अंधेरे' के बिम्ब में यह सब चल रहा है। पूरी स्थिति ये पंक्तियाँ व्यक्त करती हैं—



“घृणा अपमान पीकर भी  
कही कोई नहीं तनता  
नहीं सम्भावना कोई कहीं जिसपर नजर ठहरे ।

(पृष्ठ १५)

फिरभी कवि निराशावादी नहीं है, वह भविष्यो-  
न्मुख हैं तभी तो वह धुन्धमें लिपटे भविष्यको भेदनेके  
लिए पार्थके शरासनके आशयको नया अर्थ देता है—

धुन्धमें लिपटा हुआ है भविष्यत्  
आलोकके मुखपर धुंधलका है

मोहके क्षण, पार्थ-से मन, लो शरासन मैं चढ़ाता हूँ ।  
(एक शंख, पृ. ३८)

यहां आकर कवि ‘आदमी’ और ‘वक्त’ की जुगल  
बंदीको अर्थ देता है और पौरुष-कालकी ओर संकेत  
करता है । चाणक्यने पौरुषको काल-दिक्से बड़ा माना है  
जिसके द्वारा मानव दिक्-कालसे संघर्ष करता है—यही  
पौरुष काल है—

आदमी और वक्तकी/जुगलबंदीसे बढ़कर/मैंने तो  
अबतक कुछ जाना नहीं/जिसने वक्तसे कारगर/भिड़ंत  
नहीं की/उसे मैंने माना नहीं ।” (जुआघर पृ. २५)

कविके रचना-संसारमें प्रकृतिका अपना सन्दर्भ है  
जो राग संवेदनको अर्थ देती है तो साथही, आजकी  
विडम्बना एवं त्रासको भी संकेतित करती है । इसमें  
प्रयुक्त रूपाकारोंका रूप पारम्परिक और नया भी है  
जिससे हुआ यह है कि प्रकृतिके रूप, रंग, ऋतुएं,  
घटनाएं, व्यापार तथा प्रक्रम एक नयी भंगिमाके साथ  
सामने आते हैं । समकालीन कवितामें प्रकृतिका यही  
रूप मिलता है, वह मात्र उद्दीपन या आलम्बन नहीं है,  
वह एक ऊर्जा है, एक प्रक्रम है, एक सत् है । कविकी  
कविताएँ (गीत अधिक) इसी सन्दर्भको प्रकट करती  
हैं । एक चित्र लें मौसमका जहाँ कवि ‘प्रिंटिंग’ के  
रूपाकार लेता है—“न्यूजप्रिंट-सी लगती/हैं धरती भूरी/  
संशोधन-सी लगती/किरणें सिन्दुरी/ब्लाक-से छपे  
दिखते/दूर-दूर झोंपड़ियां-गांव/जगह-जगह/छाप रहा है  
मौसम/महुएकी छांव ।” (एक शंख... पृ. ३५)

आजकी भयावह एवं त्रासद स्थितिका सांकेतिक  
रूप प्रकट कर रही हैं ये पंक्तियां—

बंजर और कठार सहमकर बैठे हैं मन मारे,  
एक बवंडर घूम रहा है, पागल नदी किनारे  
एक फूल-सा नाजुक पौधा किस थल इसे लगाये ।”

यह फूलका नाजुक पौधा उस राग तत्त्वकी ओर  
संकेत करता है जो आजके बवंडरके सामने पुष्पित होने  
के लिए बेचैन है । आज वसन्त हमें वह उल्लास नहीं  
देता है क्योंकि “वह नहीं मार सकता है/किसीको गोली/  
न उड़ा सकता है किसीका धड़ ।”...यहां वसन्त आजके  
आतंक-हिंसासे जुड़ जाता है । (जुआघर, पृ. ३८) ।

इन उदाहरणोंसे यह नितान्त स्पष्ट है कि कवि  
प्रकृतिको उसके निरपेक्ष रूपमें न लेकर सापेक्ष रूपमें  
ले रहा है और वहभी गीतकी संरचनामें । मेरे विचार  
से आजकी गीत-परम्परामें इन गीतोंका अपना विशेष  
स्थान है क्योंकि ये गीत नयी संवेदनाको अर्थ देते हैं—  
वे मात्र रंजन एवं आनन्दके स्रोत नहीं हैं, उनमें जीवन-  
संघर्षके बिम्ब उभरकर आते हैं ।

कविकी कविताओंको लेकर एक बात यह ध्यान  
देने योग्य है कि कविकी संवेदना गीत और मुक्तछंद  
दोनोंमें गतिशील है और यह दूभर कार्य है कि गीतकी  
संरचना और मुक्तछंदकी संरचनामें एक साथ लिखना  
क्योंकि दोनोंकी भंगिमा में, लय और नाद तत्त्वमें अन्तर  
है : और कवि इस अन्तरको जानता है । तभी तो वह  
नवगीतको समकालीन संस्कार देता है और मुक्तछंदको  
वक्तव्य और संवेदनाका मिश्रण प्रदान करता है । डॉ.  
घोषके गीत इस आशाको बंधाते हैं कि कवि भविष्यमें  
इस विधाको और अधिक सशक्त रूपमें अर्थ दे सकेगा  
क्योंकि ऐसा करनेमें वह सक्षम है । □

\*\*\*\*\*

## भूल-सुधार

‘प्रकर’ कार्तिक २०४६ (अक्तूबर ६२) अंक में  
आवरण पृष्ठ २ पर ‘अंककी सामग्री’ शीर्षकके अन्त-  
र्गत उपन्यास उपशीर्षकमें ‘सिन्धुपुत्र’ के लेखकका  
नाम अमृतलाल नागर छप गया है, कृपया उसमें ‘नागर’  
के स्थान पर ‘मदान’ पढ़ें ।

—सम्पादक

\*\*\*\*\*



## स्वर-विसंवादी.....

[पृष्ठ ४ का शेष]

वादी हत्याएं करते हैं, जनसमूहको उनके क्षेत्रोंसे उखाड़ कर निम्नतम स्तरका शरणार्थी जीवन व्यतीत करनेको बाध्य करते हैं तो न यह मानवाधिकारका प्रश्न बनता है न उनकी सहायता प्राप्त करनेका राष्ट्रीय अधिकार। मानवाधिकार और सहायताका क्षेत्र केवल आतंकवादियों और उनसे जुड़े लोगोंके लिए ही आरक्षित है।

भारतीय परम्परामें धर्मने उन्मुक्त बौद्धिक चिन्तन के द्वार कभी बन्द नहीं किये, यह हमारी बहुधर्मीय-बहुपंथीय-बहुसांस्कृतिक जीवन पद्धतिसे स्पष्ट हो जाता है। परन्तु इस देशपर आक्रमण करनेवालोंके सहायकों ने जिस पाश्चात्य कलाका अभ्यास किया है और व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया है उसके आधारपर आक्रमणों का विरोध करनेवालोंकी मनोवैज्ञानिक शक्तिको क्षीण करनेके लिए राजनीतिमें 'साम्प्रदायिकता' शब्द भी गढ़ लिया है जिसका वे प्रति क्षण जाप करते हैं और अपने प्रत्येक वैचारिक विरोधीको 'साम्प्रदायिक' घोषित कर देते हैं। स्थिति यह उत्पन्न हो गयी है कि जिस बहुसंख्यक समाजके गठनका आधार ही 'धर्म-निरपेक्षता' है, उसे वे मूर्ख बनानेसे भी नहीं चूक रहे। सम्भवतः इसी कारण देशके विपक्षका प्रमुख राजनीतिक दल इसे 'छद्म धर्म-निरपेक्षता' कहता और प्रचारित करता है,

क्योंकि उसकी मान्यता है कि शासक दल अपने ब्रिटिश संरक्षकों और गुरुओंसे प्राप्त और गृहीत शिक्षाओंके आधारपर उन सम्प्रदायों और मजहबी शक्तियोंका पक्ष लेता है, उन्हें प्रोत्साहित करता है, उन्हें प्रेरणा देता है जो मात्र अपने मजहबसे, मजहबके विधि-विधानोंसे जुड़े हैं, चिन्तनकी स्वतंत्रताका पूरी कट्टरताके साथ विरोध करते हैं, देशकी तुलनामें मजहबको प्राथमिकता देते हैं, समान नागरिक अधिकारोंकी तुलनामें विशिष्ट अधिकार चाहते हैं, पग-पगपर धर्म-निरपेक्ष बहुसंख्यकोंकी आक्रमणकारियोंके स्मरण-चिह्नोंको हटानेकी मांगका विरोध करते हैं। इन्हीं मजहबी कट्टरपंथियोंको वे बगल में बिठाते हैं, उन्हें छातीसे लगाते हैं। ऐसे घोर मजहबी साम्प्रदायिक जमातोंको देशकी मुख्यधारामें सम्मिलित होनेसे बचानेके लिए किसीभी पृथक्तावादी धर्मको राजनीतिमें प्रश्रय देनेके लिए ही यह प्रवृत्ति अपनाने की आवश्यकता होती है।

हमें पता नहीं इस स्थितिसे देशका उद्धार कब होगा, क्योंकि अभीतक इस दिशामें उठाया गया कोई पग प्रभावी नहीं हुआ। फिरभी जन-चेतनामें हमारा विश्वास है और विश्वास है इस स्थितिसे देशको मुक्ति मिलेगी, विभिन्न वैचारिक धाराएं मुख्य धारामें समाहित हो जायेंगी। [१]

## हल्लो ! महानगर टेलिफोन निगम लि.

बधाई स्वीकार करो निगम, कि बड़े हुए टेलिफोन बिलोंपर कोई ध्यान नहीं देते !

इस सम्बन्धमें लिखे पत्र या तो एक अधिकारीसे दूसरे अधिकारी तक जाते-जाते अदृश्य हो जाते हैं अथवा उनकी टेबलके पास रखी रद्दीकी टोकरीकी अपित हो जाते हैं।

व्यक्तिगत रूपसे शिकायत लेकर पहुंचनेवालोंको एक स्थानसे दूसरे स्थान तक की शुभ यात्रा कराते हैं और रिक्शा, स्कूटर, टक्सीवालोंकी आय बढ़ानेका पुण्य कमाते हैं ?

कम्प्यूटर पर टेलिफोनकी कालोंकी मांग करनेपर कोई उत्तर नहीं, क्योंकि बिल बनानेवाले ही कम्प्यूटर हैं।

प्रत्येक टेलिफोन काल करनेवालेका निर्धारित समय पूरा होनेपर सिगनल देनेके विज्ञापन छपाये जाते हैं, परन्तु हजारों टेलिफोन इस सिगनलके क्षेत्रसे बाहर रख दिये गये हैं।

देशके राजनीतिक-आर्थिक घोटालोंको ध्यानमें रखते हुए अपने विभागके घपलोंपर गर्व कर सकते हो, महानगर टेलिफोन नगर निगम !



[illegible]



# अंककी सामग्री

स्वर : विसवादी

राज्य सत्ता द्वारा धर्मके प्रति निरपेक्षता, मजहबसे संलग्नता

भारतीय इतिहास-२

कश्मीर समस्या और विश्लेषण — जगमोहनलाल

हिन्दी व्याकरण

हिन्दी व्याकरण मीमांसा-४

अनुशीलन-शोध

दिक् काल सर्जना—डॉ. वीरेन्द्र सिंह

वक्तोक्ति सिद्धान्तके परिप्रेक्ष्यमें हिन्दी कृष्णकाव्यका अनुशीलन

— डॉ. रघुनन्दनकुमार त्रिमलेश

नये कवि : एक अध्ययन—डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

साधक : सिद्धि

याद हो कि न याद हो—काशीनाथ सिंह

यह कलम, यह कागज, यह अक्षर—अमृता प्रीतम

लिखनेका तर्क—गिरिराज किशोर

उपन्यास

मापदण्ड—इन्दिरा

मकड़जाल—(पंजाबीसे अनूदित)—सैली बलजीत

कहानी

कश्मीरी कहानियाँ—सम्पा.-अनु. : ओंकार कौल

मनके आइनेमें—विपिनबिहारी मिश्र

सांज्ञा हाशिया (लघु कथाएं)—सम्पा. : कुमार नरेन्द्र

काव्य

समयका शेष नाम—सीताकान्त महापात्र

तृज्या—महेन्द्रप्रसाद सिंह

युग पुरुष चाणक्य—लक्ष्मीकान्त विद्याभूषण

हिपोक्रिट चॉप गुरांस—गिर्मी सेर्पा

रेखाचित्र—व्यंग्य

म से मूखड़े—मनोज सोनकर

बन्दरवांट—राकेश शरद

पत्रिकाएं

ईसुरी—सम्पा. डॉ. कान्तिकुमार जैन

उन्नयन १०—अंक-सम्पादक : डॉ. देवराज, सम्पा. प्रकाश मिश्र

'प्रकर'—दिसम्बर १९२

१ वि. सा. विद्यालंकार

५ डॉ. प्रशान्तकुमार

१२ पं. काशीराम शर्मा

१७ डॉ. राघव प्रकाश

२० डॉ. मानवेन्द्र पाठक

२२ डॉ. बालेन्दु ओखर तिवारी

२३ डॉ. मूलचन्द सेठिया

२७ डॉ. भगीरथ बड़ोले

२९ डॉ. हरदयाल

३० डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

३२ डॉ. उत्तमभाई पटेल

३५ डॉ. तुमन सिंह

३७ डॉ. रामकुमार खंडेलवाल

३८ डॉ. राधा दीक्षित

४० डॉ. वीरेन्द्र सिंह

४२ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

४४ डॉ. हर्षनन्दिनी भाटिया

४८ डॉ. चन्द्रेश्वर दुबे

४९ डॉ. मदन गुलाटी

५१ डॉ. भैरूलाल गर्ग

५२ डॉ. कृष्णकुमार हंका

५५ मान्धाता राय



वर्ष : २४

अंक : १२

पौष : २०४६ [ विक्रमाब्द ]

दिसम्बर : १९६२ [ ईस्वी ]

**स्वर : विसंवादी**

## राज्यसत्ता द्वारा धर्मके प्रति निरपेक्षता, मजहबसे संलग्नता

गत अंकमें भारतीय राज्यसत्ता और धर्मसत्ता की पारस्परिक संगति और उनके प्रतिद्वन्द्वी और विरोधी रूपोंका विहंगावलोकन किया गया था। यह भी स्पष्ट किया गया था कि इस देशपर विदेशियोंने आक्रमण किया था, मजहबका उन्होंने आक्रमणके सहयोगी रूपमें और अपने सैनिकोंमें जोश की भावना उत्पन्न करते रहनेके लिए उपयोग किया था और सैनिक आक्रमणको आधार बनाकर ही मजहबी विस्तार किया था। मूल रूपसे ध्यानमें रखनेकी बात सैनिक आक्रमण है और उसके बलपर अपनी और अपने मजहबकी श्रेष्ठता स्थापित करनेका प्रयत्न। आक्रमण आक्रमण होता है, चाहे वह भूमि-सम्पत्तिकी लूटके लिए हो अथवा मजहबी विस्तारके लिए। दोनों विस्तारोंमें जन-धनका विनाश होता है। इसलिए मजहबी आक्रमणको राजनीतिक-सैनिक आक्रमणसे पृथक् नहीं किया जा सकता। कोई भी देश, चाहे वह किसी रूप और स्थितिमें हो, उस आक्रमणको स्वीकार नहीं करता और ऐसे आक्रमणके रूप और स्थितिको समाप्त करनेका प्रयत्न करता है, और उस आक्रमणके स्मारकों को हटा देता है, नष्ट कर देता है; विनष्ट सम्पत्तिके पुनर्निर्माणके लिए प्रयत्नशील होता है, आक्रान्त अधिकृत भूभागोंकी पुनः प्राप्तिके लिए अपना सर्वस्व होम कर देता है। देशकी अस्मिताको पुनः प्रतिष्ठित करता है

और जन-साधारणके मनोबल और आत्मविश्वासको ऐसा सुदृढ़ आधार प्रदान करता है कि आक्रमण चाहे राजनीतिक हो, सैनिक हो, मजहबके नामपर हो, अथवा सांस्कृतिक, जन-संकल्पसे उसका ऐसा प्रबल प्रतिरोध हो कि उसकी पुनरावृत्तिकी सम्भावना ही न रहे।

परन्तु आज हमें अपने देशमें जिस स्थितिका सामना करना पड़ रहा है, वह सत्ताकी आत्मघाती दुविधाका है, विभक्त मानसिकताका है, किसी ठोस संकल्पशक्तिका अभाव है। जिस सत्ताका उपयोग आक्रमणकी स्थितिको समाप्त करनेके लिए होना चाहिये, वह उस स्थितिको बाजाल द्वारा रूपान्तरित कर उसे साम्प्रदायिक, संवैधानिक और कानून-न्याय की मर्यादा और गरिमाको भंग करनेसे जोड़कर आन्तरिक समस्था बनाता चला आया है और चाहे-अनचाहे यह आभास देता रहा है मानों इस देशपर कभी कोई आक्रमण नहीं हुआ, इस देशमें आक्रमणकारियोंके न कोई उत्तराधिकारी हैं, न उनके पक्षधर। वे यह स्वीकार करनेके लिए भी प्रस्तुत नहीं हैं कि इन आक्रमणों के विस्तारमें अकबर और औरंगजेबके सहयोगी मानसिंह और जयसिंह थे। वे इसे केवल आन्तरिक राज्य-विस्तारका, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके विस्तारका और मिली-जुली संस्कृतिके विस्तारका तत्कालीन परि-

‘प्रकर’—पौष २०४६—१



स्थितियोंकी देन मानतेहैं। वे यहभी मानतेहैं कि यह भी इस देशपर देवी कृपा थी कि इस देशके परम्परागत संकीर्ण दृष्टिकोणों, मान्यताओंके स्थानपर विश्वके एक आधुनिक देशके रूपमें परिवर्तित करनेके लिएही ब्रिटिश साम्राज्यने इसे अपने संरक्षणमें ले लिया और इसलिए महारानी विक्टोरियाके स्तुतिगान किये और ब्रिटिश साम्राज्यके प्रशासकोंके प्रयत्नसे निर्मित देशके एक महान् राजनीतिक दलको जन्म दिया जिसके अधिवेशन 'गाड सेव दि किंग' से प्रारम्भ होतेथे। यहभी उसी दिव्यताका प्रसाद है कि उस साम्राज्यकी स्मृतिमें देशका प्रत्येक राष्ट्रीय समारोह उन्हीं अधिनायकों और भाग्यविधाताओंकी 'जय' से होताहै और उन्हीं को अर्घ-पाद्य प्रस्तुत करनेके लिए ब्रिटिश संसद् द्वारा इस देशको प्रदत्त '१९३५ के एक्ट' को परिवर्तित और रूपान्तरितकर 'भारतीय संविधान' के रूपमें 'स्वतन्त्र भारत' के शीर्षपर स्थापित किया। इस देशकी संविधान सभाने यह भारतीय संविधान लोकार्पित नहीं किया, अपितु आत्मार्पित किया, उसीकी मर्यादा और गरिमाकी रक्षाके लिए इस देशकी सत्ता तार स्वरसे राग अलाप रहीहै।

आक्रमण, देशकी अस्मिता और प्रतिष्ठाको प्रताड़ित करनेवाले अभियानों, पूर्ण शाब्दिक अर्थमें ही देश को पद-दलित करनेवाली स्थितियों, सामान्य धूल-कणों में परिवर्तितकर आधुनिक राजनीतिक शब्दावलीके अनुरूप मिली-जुली संस्कृतिका अंग बन जाने, पुनः ब्रिटिश साम्राज्यकी न्यायमयी शासन-प्रणालीका आस्वादन करने और उस महान् न्याय-प्रणालीका स्तुति-गान करते रहनेकी युगोंकी यात्राकर इस देशके लोगोंने 'आत्मार्पित भारतीय संविधान' पर पड़ाव डाला। जिस प्रकार १९३५के एक्टमें देशको विभाजित और खण्डित करनेके वैधानिक बीज बोये गयेथे, उसी प्रकार इस खण्डित भारतके आत्मार्पित संविधानमें भी बीज बो दिये गये। इस आत्मार्पित संविधानमें विभिन्न धर्मों-पन्थों-सम्प्रदायोंके राजनीतिक-सांस्कृतिक स्तरपर एकीकृत भारतीय समाजकी जातियोंके आधारपर विभाजितकर दिया, और इस पड़ावसे अबतक की यात्रामें यह एकीकृत समाज भिन्न-भिन्न जातियोंमें बंटने लगा है, पूरा समाज खण्डित होनेके कगारपर लाकर खड़ा कर दिया गयाहै दलितोंको न्याय प्रदान करनेके नाम पर, पूरे समाज और देशको इस प्रकारके पार-प्रकर'—दिसम्बर'९२—२

स्पर्क विरोधी निरन्तर भुजाएं फड़काते रहनेवाले वर्गोंमें बांट दियाहै। धर्म और मजहबसे निरपेक्ष राष्ट्र की कल्पना करनेवाले संविधान निर्माता और उनके सत्तासीन उत्तराधिकारियोंने देशके विभिन्न धर्मोंके प्रति जो निरपेक्षता अपनायी, उसके ठीक विपरीत आक्रमणके माध्यमसे देशमें पैर जमानेवाले मजहबके प्रति उतनेही सापेक्ष हो गये, उनके तुष्टीकरणके लिए शीर्षासन भी करने लगे और संविधानमें संशोधन करने लगे क्योंकि वह तो 'आत्मार्पित' था, उससे इतनी संलग्नता होगयी कि भिन्न राजनीतिक शब्दावलीके अतिरिक्त उनके स्वरो-शब्दों-अर्थों-अभिप्रायोंमें भेद करना भी सम्भव नहीं रहा। इसी संलग्नताका परिणाम है कि जिन आश्वासनोंके साथ संविधानमें अनुच्छेद ३७०के अस्थायी उपबन्धको स्वीकार कराया गयाथा अब उसेही स्थायी बनानेके तेवर प्रकट होने लगेहैं और तथाकथित 'धर्म निरपेक्ष प्रभुता सम्पन्न देश' के भीतर ही अपने पृथक् संविधान के साथ एक मजहब सापेक्ष 'मुस्लिम कश्मीर', एक पृथक् राज्यकी स्थापनाके संकेत देने लगेहैं, जहा किसी मुस्लिमके लिए स्थान नहीं होगा और जबतक कश्मीरके मुसलमान अपने लिए स्वतन्त्र अथवा पाकिस्तानके अंग रूपमें सत्ता स्थापित नहीं कर लेते, वहाँ उनकी दोहरी नागरिकता रहेगी और दो झंडे होंगे। इसी प्रवृत्तिसे प्रोत्साहित होकर शाही इमाम बुखारी यह घोषणा करने लगेहैं कि पाकिस्तान बननेके बाद हमारी संख्या यहां चार करोड़ थी, अब बीस करोड़ हो गयीहै। इस गतिसे, उन्हें विश्वास है, इस देशमें उनका बहुमत हो जायेगा। इस स्थितिके लिए कौन उत्तरदायी है? शाह बानो वादमें उच्चतम न्यायालयके निर्णयको निष्प्रभावी बनानेके लिए संसद् द्वारा कानून बनानेका दायित्व किसपर है? उच्च न्यायालय द्वारा इन्दिरा गांधीके चुनावको अवैध घोषित करने और उनके पदपर बने रहनेसे संविधानकी अवमानना हुई या नहीं? वर्तमान सत्तारूढ़ दल ही तो। यही नीति नगालैण्डमें तथा अन्य पूर्वोत्तर राज्योंमें अपनायी गयी जिसके कारण वहाँके सोलह प्रतिशत ईसाई अब बहुमतमें हैं और वहाँपर भी कश्मीर में राजभाषा उर्दू (मुसलमान इसे अपनी धर्मभाषा मानतेहैं) की भांति नगालैण्डकी राजभाषा अंग्रेजी है, स्थानीय भाषाएं नहीं। यहांभी देशके शेष निवासियोंके प्रवेशपर विभिन्न प्रकारके प्रतिबंध हैं।

संविधानको अत्मार्पित करनेवाले महामहिम नेताओं ने प्रबल दबाव और विवादके बाद हिन्दीको देशकी राष्ट्रभाषाके स्थानपर राजभाषाके रूपमें संविधानमें



स्थान दिया, परन्तु हिन्दीको लंगड़ा बनाकर, अर्थात् प्रशासनिक कार्योंमें रोमन अंकोंके प्रयोगकी व्यवस्था करके। अब तो पूर्णरूपसे रोमन अंकोंको ही देवनागरी अंकोंका स्थान दे दिया गया है और शिक्षणालयोंमें देवनागरी अंकोंका शिक्षण भी बन्द कर दिया गया है। इसी संविधानके लागू होनेके बादसे तो न्यायालयोंमें उच्च पदासीन न्यायाधीश हिन्दीका उपहास करने और अवमानना करनेसे कभी नहीं चूके क्योंकि संविधान द्वारा उन्हें अंग्रेजीमें तबतक कार्य करनेकी स्वतन्त्रता है जबतक संसद् इस सम्बन्धमें कोई उपबन्ध न करे। सत्तासीन दल तो आजभी देशकी भाषाके लिए उपबन्ध करनेको उत्सुक नहीं है क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यसे उपहार स्वरूप सत्तासीन होनेकी कृतज्ञता उन्हें देशसे अंग्रेजीको निष्कासित करनेकी अनुमति नहीं देती। अंग्रेजीके कारण ही भारतीय भाषाओं की उपेक्षा करने, उनके विकासमें निरन्तर बाधाएं उत्पन्न करने तथा प्रशासनिक सेवाओंमें अंग्रेजीको अनिवार्य बनाये रखनेके कारण न केवल सत्तासीन दल ऊपर निर्दिष्ट सभी कारणोंसे अपनी विश्वसनीयता संदिग्ध बना चुका है, अपितु न्यायपालिकाकी विश्वसनीयतापर चोटकर चुका है। यदि यह आभास होने लगे कि हमारे न्यायालय अपनी अन्तर्निहित शक्तिके स्थानपर सत्तासीन दलसे शक्ति-संचय करते हैं, तो उसकी अपनी नैतिक शक्ति भी संदिग्ध हो जाती है और उसपर निर्भरता शंकास्पद हो जाती है। इसलिए यदि देशका कोईभी राजनीतिक दल किसीभी रूपमें प्रश्नचिन्ह लगाता है तो उस राजनीतिक दलपर दोषारोपणके स्थानपर सत्ता और न्यायपालिकाको अपनी-अपनी स्थितियोंपर पुनर्विचारकी आवश्यकता है। यह संकट इसी समय उत्पन्न हो गया हो, ऐसा नहीं है। ब्रिटिशकालमें भी स्वतन्त्रता-आन्दोलनके युगमें न्यायपालिकापर प्रायः उंगली उठायी जाती थी, और उस युगमें न्यायपालिकाके निर्णय असमर्थता और विवशताके कारण ही स्वीकार करने पड़ते थे। आज भी कुछ ऐसीही स्थिति उत्पन्न हो गयी है। इसलिए आन्दोलनकारियों और किसी राजनीतिक दल द्वारा आजकी न्यायपालिकाकी निष्पक्षतापर उंगली उठायी जाती है तो उन्हें दोष देना उपयुक्त नहीं होगा।

ब्रिटिश शासन इस देशपर अपने आक्रमण और अधिकारको न्यायसम्मत बतानेके लिए विधि-विधानों

और कानूनोंका आश्रय लिया करता था। अर्थात् आक्रमण और बलात् किये गये अधिकारकी ढाल विधि-विधान थे। आजकी सत्ताको संविधानकी ढाल और प्राप्त हो गयी है। इसके साथ ही सत्ताने यह भी अपना स्वभाव बना लिया है कि किसीभी आक्रमणकी विधि-विधानकी सीमामें लाकर उसे वैध बना दिया जाये जैसा कि पूजास्थलोंकी १९४७ की स्थितिको वैधानिक 'यथास्थिति' प्रदानकर किया गया। आज यदि आक्रान्त पूजास्थलों पर आक्रमणको किसी तिथि विशेषके आधारपर वैधानिक घोषित किया जा सकता है तो राजनीतिक क्षेत्र में भी इस स्थितिको लागू किया जा सकता है। वस्तुतः यह कार्य असाधारण रूपसे गम्भीर और घातक है। यह स्थिति तब भी गम्भीर हो जाती है यदि इस सम्बन्धमें लोकमत ही प्राप्त न किया गया हो। यह प्रश्न तो बनाही रहेगा कि ऐसा करनेका सत्ताको अधिकार भी था या नहीं। इस गम्भीर और घातक कार्यके समर्थनमें देशके वर्तमान संविधानके कुछ अनुच्छेदोंका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आधार लिया जाता है तो आक्रमणको स्थायी रूप प्रदान करनेका दोषी स्वयं संविधानको ही घोषित कर दिया जाता है। यहां हमें फिर अपने स्वतन्त्रता आन्दोलनके दिनोंका स्मरण हो आता है जब इस प्रकार की ब्रिटिश व्यवस्थाओंको स्वीकार नहीं किया जाता था और परिणामस्वरूप उनका उल्लंघन किया जाता था और सहर्ष वे सभी सँकट झेले जाते थे। यह भी सभी जानते हैं कि उन दिनों ब्रिटिश शासनने इस विरोधको कभी महत्त्व नहीं दिया और दमन-चक्र अधिकाधिक उग्र होता गया। आज भी यदि किसी आक्रमणकी स्थितिको समाप्त करनेका संकल्प किया जाता है तो इसे एक 'मानवीय अधिकार' के रूपमें मान्यता मिलनी चाहिये और अपने उस अधिकारको प्राप्त करनेके लिए किसीभी दमन-चक्रका सामना किया जाना चाहिये। दमन-चक्रकी उग्रता ही 'मानवीय अधिकार' प्राप्त करने की आकांक्षाको अधिकाधिक तीव्र करेगा। इसी प्रसंग में हमें ब्रिटिश शासन द्वारा अपने देशपर आक्रमण और उसपर अधिकारको बनाये रखनेके साम्प्रदायिकताकी कूटचालको स्मरण रखना चाहिये। वर्तमान सत्तारूढ़ दलके लोग ब्रिटिश कालके हैं और दुःखद स्थिति यह है कि उस समयके आन्दोलनकारियोंमें से हैं और ये लोग ब्रिटिश चिन्तन-शिक्षा-दीक्षासे आक्रान्त भी हैं और अपने अन्तःकरण तक प्रभावित भी। दमनकी, चतुराईसे



विखण्डनके मार्गपर धकेलनेकी उन सभी पद्धतियोंसे परिचित हैं, भुक्तभोगी हैं। अब उन्हीं हथकण्डोंका अपने राजनीतिक विरोधियोंपर प्रयोग कर रहे हैं। आक्रमणको वे 'साम्प्रदायिक प्रश्न' बनाकर ध्यान बटाना चाहते हैं जबकि वे भूल जाते हैं कि उनके उत्पन्न किये साम्प्रदायिकताके हीवेने ही देशको अस्थिर बना दिया है और वह दिन-प्रति-दिन देशको खण्डित करनेकी दिशा में ले जा रहा है।

सत्तारूढ़ दलका जन्म ब्रिटिश कालमें हुआ और दलकी स्थापना भी ब्रिटिश प्रशासनाधिकारी द्वारा हुई। इसका पुनः स्मरण इसलिए आवश्यक है क्योंकि यह दल अपने जन्म कालसे ही सभी प्रकारके साम्प्रदायिक तत्त्वोंको प्रश्रय देता रहा है। जब कभी इस कारणसे स्थिति बिगड़ती तो दलने तत्काल इसका दोष हिन्दू सम्प्रदायवादियोंपर मढ़ दिया। अपने प्रशिक्षकों की योजनाओंको सफल बनाते हुए, राष्ट्र जीवनमें साम्प्रदायिकताका विष घोलते हुए भी साम्प्रदायिकता-विरोधके नारे लगाता रहा। जबभी अवसर आया साम्प्रदायिक तत्त्वोंका ही इस दलने साथ दिया और ब्रिटिश-प्रसाद अर्जित करता रहा। उसी पुराने अभ्यास के कारण स्वतन्त्र भारतके जीवनको भी उसी प्रकार की कूटनीतिसे साम्प्रदायिकतासे विषाक्त करते हुए यह राष्ट्रप्रेमी दल उन तत्त्वोंका निरन्तर पालन-पोषण करता रहा जो कभी धर्मनिरपेक्ष नहीं रहे। वे लोग मानते थे कि 'धर्म' का अर्थ हिन्दू है, इसलिए हिन्दू निरपेक्ष थे। वे तो केवल 'मजहबी-बन्दे' थे।

ये ही 'मजहबी बन्दे' 'आल इण्डिया बावरी मस्जिद कमेटी' के सदस्य हैं, जिनकी इच्छाके बिना 'वृद्ध' सत्ता दल और राजनीतिक-सैनिक-धार्मिक साम्राज्यका विस्तार करनेवाले और पीढ़ियोंतक उन्हीं पर आश्रित उनके आजके सांस्कृतिक बन्धु अन्य राजनीतिक दलोंकी जीभ नहीं हिलती, वे तो उन मजहबी बन्दोंके मुखमण्डलपर उभरती-खिंचती रेखाओं को देखकर निश्चय करते हैं कि वर्तमान संकटमें क्या रख अपनाया जाये। वर्षों तक वे इस संकटको बनाये रख सकते हैं, तबतक धर्म निरपेक्षताका राग अलापते रह सकते हैं और 'संविधान और कानूनकी मर्यादा और गरिमा' टेक दोहराते रह सकते हैं। पूजास्थल एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जा सकते हैं, पाकिस्तान-अरब मिश्रमें भी पूजा स्थल दूसरे स्थानपर जा सकते हैं, पर 'बावरी मस्जिद' के सदस्योंके अनुसार जहां मस्जिद बन गयी, वहांसे नहीं हटायी जा सकती

क्योंकि वह खुदाका घर हो गया है। सम्भवतः सत्ता दल इसे संविधानकी मर्यादा भंग नहीं मानता, न हो सम्भवतः इसे साम्प्रदायिक। उनके लिए भी यह अब खुदाका घर है खुदाका उपामना-स्थल नहीं। इस मजहबी जिदको अभीतक साम्प्रदायिक नहीं माना गया, बल्कि इसकी रक्षाके लिए बड़ी संख्यामें अर्द्ध-सैनिक बल भेज दिये गये हैं और अपनी इस साम्प्रदायिक जिदको पूराभी कर लिया है। क्या जिदक सैनिक समर्थन साम्प्रदायिक वैमनस्यको तीव्रतर नहीं बनायेगा? क्या यह स्थिति साम्प्रदायिकताकी जड़ें और गहरेमें नहीं ले जायेगी? क्या यह मजहबी संलग्नता नहीं है, क्या यह देशको विस्फोटक स्थितिकी ओर नहीं ले जायेगी?

यह स्थितिभी ध्यानमें रखनेकी है कि ये 'मजहबी बन्दे' और उनके अनुयायी अपनेही मजहबी अनुयायियोंके सहयोगसे अपनेही मजहबके उन लोगोंपर कातिलाना हमलोंकी धमकी देते रहते हैं या हमले करते रहते हैं जो उनके कठमुल्लेपनकी पकड़को ढीलाकर उस वर्गको अधिक चिन्तनशील और सहिष्णु बनाने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। मजहबके नामपर ये किसी भी सीमा तक जा सकते हैं, परन्तु इन्हें नियन्त्रित करने के लिए सत्ताको कभी प्रयत्नशील नहीं देखा जाता। जो दिखायी देता है वह है उनके कट्टरपनको एवं देशकी मुख्यधारामें सम्मिलित करनेके प्रत्येक प्रयत्नको अंगूठा दिखानेकी आदतको सुरक्षित रखनेकी प्रवृत्ति, जो कि बहुधा उनके सत्ता दलके समर्थन और सहयोगका रूप ले लेती है। अतः यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि सत्ता दलने धर्म निरपेक्षताको मजहबी संलग्नतामें परिवर्तित कर दिया है।

#### अर्थ

अयोध्याकाण्ड घटित होनेसे कुछ दिन पूर्वही 'उपयुक्त 'स्वर : विसंवादी' लिख लिया गया था। इस काण्डके बाद प्रधानमंत्री श्री रावने बावरी मस्जिदके पुनर्निर्माण और अधिगृहीत भूमिपर राम मन्दिरके निर्माणका वक्तव्य दिया है। उनके वक्तव्यसे स्वर्गीय श्री सरदार पटेल जैसे नरसिंहका तथा सोमनाथ मन्दिरका निर्माण स्मरण करा दिया। यदि श्री राव सरदार पटेलके समान भारतीय इतिहासमें अपना स्थान बनाना चाहते हैं तो उन्हें श्रीरामकी मर्यादाके अनुकूल भव्य और विशाल राम मन्दिर बनानेका आयोजन करना चाहिये, परन्तु उसके साथ आक्रमणके स्मारक बावरी मस्जिदका पुनर्निर्माण उसी स्थानपर करानेकी अपेक्षा पर्याप्त दूरी पर ही कराना चाहिये। विवाद-स्थलोंका दूर-दूर होना हितकर होगा। [१]



### कश्मीर समस्या : भारत सरकारकी असफलता-२

**कृति : कश्मीर समस्या और विश्लेषण?**

कृतिकार : जगमोहन लाल, भू. पु. राज्यपाल कश्मीर

**समीक्षक :**

डॉ. प्रशान्त वेदालंकार

आठवाँ अध्याय “मेरे आनेसे पूर्व की परिस्थितियाँ” है। इस अध्यायमें लेखकने उस समयकी कश्मीरकी विस्फोटक स्थितिका वर्णन किया है। हिन्दू मन्दिरोंका ध्वंस, केन्द्रीय सरकारके विरुद्ध सऊदी अरबकी सरकार से सहायताकी माँग, भूमियोंपर अनधिकृत कब्जे, अयोग्य व्यक्तियोंको उच्चासनोंपर बिठाना आदि अनेक बातों का लेखकने उल्लेख किया है। १८ सितम्बर १९८८ की रातको श्रीनगरमें डी. आई. जी. अली मोहम्मद बतालीके घरके बाहर सुरक्षा दस्तेसे सशस्त्र मुठभेड़ करते हुए मारा गया। इसी प्रकार सेशन जज एन. के. की तीन आतंकवादियों द्वारा हत्या, जम्मू क्षेत्रके डोडा, मदरवा और किश्तवार इलाकोंमें विघटनकारियोंकी घुसपैठ, डॉ. फारूख अब्दुल्ला द्वारा सावजनिक रूपसे कश्मीरकी मुक्तिकी घोषणा आदि अनेक घटनाओंका लेखकने उल्लेख किया है। उस समय जो चुनाव हुए उनके बारेमें ‘हिन्दुस्तान टाइम्स’ के सम्वाददाताने लिखा — सच्चाई यह है कि इस सम्वाददाताको आज कश्मीर घाटीमें बारामूला और अनन्तनागके चुनाव क्षेत्रोंमें आनेवाले गाँवोंके किसीभी मतदान केन्द्रपर एकभी मतदाता नहीं मिला।

इसी प्रसंगमें लेखकने डॉ. रुबियाके अपहरणकी घटना लिखी है ।

नवां अध्याय 'आक्रमण और प्रत्याक्रमण' है। लेखक ने लिखा है कि यह कहा जा सकता है कि समकालीन

१. प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा,  
दिल्ली-११०००६ । पृष्ठ : ४६४; डिमा. ६१;  
मूल्य : १७५.०० रु. ।

भारतका संकट यह रहा है कि सत्ता अधिकतर उन लोगोंके हाथ रही, जो किसी महान् उद्देश्यसे प्रेरित नहीं थे और जिनके पास वह उद्देश्य है, उन्हें अवसर ही नहीं मिलता या यूँ कहिये कि व्यवस्था उन्हें अवसर नहीं देती। लेखकका मत है कि प्रशासनका अर्थ है परिश्रम, पसीना और खन। यह एक विचारधारा

“कश्मीर समस्या और विश्लेषण” कृतिके प्रथम सात अध्यायोंमें प्रसंगानुसार उल्लिखित स्थितियों और समस्याओंकी चर्चा गत अंक (नवम्बर ६२) में की जा चुकी है। अध्याय आठ से सत्रह तक की सामग्रीका आलोचनात्मक विवरण तथा परिशिष्ट संबंधी सूचना यहां प्रस्तुत की जा रही है।

वस्तुतः कश्मीर समस्याको भारत सरकार, भारतीय संविधानके वर्तमान रूप, भारतीय शासक दल और शेख अब्दुल्लाकी कूट चालों, नेशनल काँफ्रेंस, 'मानवतावादी' नामधारी प्रचारकोंने इस विशुद्ध साम्प्रदायिक स्थिति को देश-विखण्डनकी स्थिति तक पहुंचा दिया है। पाकिस्तानभी इसे पुनर्विभाजनकी स्थिति तक ले जानेके लिए पूरी शक्तिसे जुटा हुआ है। इस प्रकारकी जटिल और संकटपूर्ण स्थिति को देशके विखण्डनकी स्थितिमें पहुंचानेके लिए स्वयं भारतीय प्रशासनने कोई कमी नहीं रखी। यही अब चिन्तनशील भारतीयके लिए चुनौती है।



है—सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन लानेके लिए आवश्यक प्रभावपूर्ण कदम उठानेकी ।

लेखकके अनुसार जम्मू कश्मीरमें केन्द्रीय सत्ताकी भूमिका हमेशा सांडको लाल कपड़ा दिखाने जैसी रही है । लेखकने राज्यपाल बनतेही अनेक परिवर्तन किये । यह घोषणाकी कि शीघ्रही एक उच्च स्तरीय स्वतन्त्र कमेटी नियुक्त की जायेगी जो भ्रष्टाचार, पक्षपात और भाई-भतीजेवादके मामलोंकी जाँच करेगी । उन्होंने संयम और सादगी लानेके लिए भी कदम उठाये । स्वयं उन्होंने बेतम न लेनेका निश्चय किया और एक सहायक की कमी करदी ।

इस अध्यायमें लेखकने पाकिस्तानी पार्लियामेंटकी 'एक सप्ताह' के दौरान हुई दोनों सभाओंकी संयुक्त बैठकका भी उल्लेख किया है जिसमें पाकिस्तान सरकार द्वारा कश्मीरियोंको पूरा समर्थन देनेका प्रस्ताव है । पाकिस्तानके विदेश मंत्री साहिबजादा याकूब खानने आतंकवादियोंको स्वतंत्रता सेनानी कहा । इससे कश्मीर में आतंकवादियोंकी फिरोती आदि और पूरी स्थिति भयावह होगी ।

ऐसे समयमें डॉ. अब्दुल्ला और उनकी पार्टीके कार्यकर्ताओंने अपना विनाशकारी, यहांतक कि देश-द्रोही खेल जारी रखा और निरन्तर उनको पीठमें छुरा भोंका । जितना वे सफलताके नजदीक जाता, उनके प्रयास उतनेही तेज होजाते । सम्भवतः दिल्लीमें कुछ तत्त्व उन्हें बढ़ावा दे रहेथे । पर राज्यपाल जगमोहन उन सबका सामना करते रहे । इससे डॉ. फारुख अब्दुल्ला तथा श्रीमती बेनजीर भुट्टो दोनोंही भयभीत हुए ।

दसवां अध्याय 'आतंकवाद और विघटन : सांठ-गांठ और षड्यन्त्र' है । राज्यपाल जगमोहन लिखतेहैं— डॉ. फारुख कैसे मुझे हलाकू और चंगेज खानका नाम दे रहेथे, राजीव गांधी मुझे अनुच्छेद ३७० विरोधी और मुसलमान तथा काश्मीर विरोधीके रूपमें साबित करते आ रहेथे और उसी समय बेनजीर भुट्टो मेरे टुकड़े-टुकड़े कर देनेकी प्रतिज्ञा कर रहीथी—जगमोहनको भाग-भाग-मोहन कर दोगे ।

राज्यपालको सूचनाएं मिल रहीथी कि उस समय घाटीमें लगभग ४४ आतंकवादी दल काम कर रहेथे । लगभग इन सभी दलोंका मार्गदर्शन और निर्देशन

'प्रकर'—दिसम्बर'६२—६

पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर और पाकिस्तानसे होताथा । पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर और पाकिस्तान में कमसे कम ३६ प्रशिक्षण केन्द्र हैं । आतंकवादियोंने जिस प्रकार पूरी घाटीको अपने पजेमें जकड़ रखाथा, वह स्पष्ट था । लोगोंसे कहा गयाथा कि वे अपने पास-पोट उन्हें सौंप दें, क्योंकि जिनके पास पासपोर्ट होता था, उन्हें भारतीय समझा जाताथा । दुकानदारोंको आदेश दिया गयाथा कि वे अपनी दुकानोंमें हरा पेंट करें, झण्डे लगायें, नारे लिखें और जब भी 'हड़ताल' का आह्वान किया जाये तो वे अनुकरण करें । उनका आदेश कानून था और पत्थरोंसे मारना, लूटमार और बन्दूकका निशाना—सजा थी । जनताको निर्देश दिया गयाथा कि वे टैक्सभी न चुकाएं । हिन्दुओंसे कहा गया कि हम जानतेहैं कि तुम कश्मीरमें लम्बे समयसे रह रहे हो, तुम्हें तुरन्त कश्मीर छोड़ना होगा, अन्यथा हम तुम्हारी फैक्टरी और मकानोंको उड़ा देंगे, तुम्हारे बच्चोंकी दुर्गति होगी । पुलिस, सामान्य सेवाएं, अस्पताल, प्रशासन, समाचार-पत्र, वकील और जज—सभी इस संक्रमणसे प्रभावित थे । स्थानीय पुलिस थानोंसे तो उन आतंकवादियोंकी फोटो भी हटा दी गयीथी, जिन्हें ढूंढा जा रहाथा ।

डॉ. रुबिया सईदके अपहरणके केसमें, जिसने पूरे राष्ट्रको हिलाकर रख दियाथा और जिसे पूरे विश्वमें प्रचार मिलाथा—वहांके समाचारपत्रोंने केवल एक पंक्ति लिखीथी—अपराधियोंका पता नहीं है और कोई गवाह उपलब्ध नहीं है । ऐसेमें ७० आतंकवादियोंकी रिहाईने बचे-खुचे विश्वसनीय पुलिस अधिकारियोंमें उत्साहहीनता ही नहीं फैलायी बल्कि आतंकवादी तत्त्वों को और उत्साहित किया । वे लोग जो कैदियोंकी चौकसीके लिए जिम्मेदार थे उन्हींकी सहायतासे ही कैदी फरार हुएथे ।

आतंकवाद और विघटनका प्रभाव न्याय प्रणाली पर भी पड़ा । शोपियां जैसे कुछ कस्बोंमें कुछ वकीलों ने इकट्ठा होकर एक इस्लामी अदालतकी स्थापनाकर लीथी और जमात-ए-इस्लामीके नेता जनताको सलाह देतेथे कि वे अपनी समस्याएं लेकर उस अदालतमें जायें । जजों द्वारा स्वयं एक डिविजन बेंच बना लेना उस तरीकेका एक और उदाहरण है, जिसमें राज्य हार्ड-कोर्ट श्रीनगरसे काम कर रहाथा ।



रेशन वालाकोट' के प्रमुख इंकलाबीकी यह घोषणा छापी कि वे तबतक चैन नहीं लेंगे जबतक गवर्नर जग-मोहनकी हत्या न हो जाये और भारतीय पंजोंसे भारतीय कश्मीर न छुड़ा लिया जाये। लोगोंको गायका मांसभी खानेका निर्देश दिया। दुःखद बात यह रही कि इस स्थितिमें उनसे सहयोग करनेवाले समाचारपत्रोंको राज्य विज्ञापन, न्यूजप्रिंट, और ऋणके रूपमें सहायता दे रहा था।

उग्रवादियोंके शस्त्रागारका सबसे सस्ता और सर्वाधिक भयानक हथियार था—'अफवाहें फैलाना'। उदाहरणके लिए अप्रैल १९६० के दूसरे सप्ताहमें जब श्रीनगरमें कर्फ्यू के समय सरकारकी ओरसे सेना द्वारा भोजनके पैकेट वितरित किये गये, ये अफवाहें फैलायी गयीं कि इन पैकेटोंमें ऐसे पदार्थ मिले हैं जिन्हें खानेसे महिलाएँ और पुरुष अपनी प्रजनन शक्ति खो देंगे और यह घाटीमें मुसलमानोंकी संख्या कम करनेके लिए बनाये गये पूरे षड्यंत्रका एक भाग है।

तीन साप्ताहिक विघटनकारी दलोंके प्रवक्ता रूपमें कार्य कर रहे थे—'सदा-ए-हुरियात', 'सदा-ए-हक', और 'सदा-ए-कश्मीर'। ये प्रकाशित भी इन्हीं दलों द्वारा किये जाते थे। इनमें लिखा गया 'इस्लाम हमारी आत्मा है, हमारी आस्था है। हम केवल इस्लामी गणतन्त्रके प्रति समर्पित हैं।' विघटनकारी अपनी गतिविधियोंको बढ़ाने, उत्साहित करनेके लिए मस्जिदोंका व्यापक रूपसे उपयोग भी कर रहे थे। अनेक पैम्फलेट बांटे गये, जिनमें कहा गया कि लोगोंको मस्जिदोंको 'क्रांतिका केन्द्र' बना देना चाहिये। और यह प्रयत्न करना चाहिये कि उनका पूरा प्रबन्ध तथा नियन्त्रण 'मुजाहिदों' के हाथमें आजाये। १९८६ के अन्तमें 'आजाद कश्मीर' में ग्यारह पार्टियोंका एक संयुक्त दल बना जिसने कश्मीरके स्वतंत्रता संग्राममें सहायता देने का निश्चय किया। इस उल्लेखनमें पाकिस्तानी 'पीपुल्स पार्टी' ने भी कश्मीर समस्याका पत्ता फेंटना शुरू कर दिया। परन्तु सबसे विषाक्त भूमिका 'जमात-ए-इस्लामी' ने अदा की। इसके प्रमुख काजी हुसैनने कश्मीरमें हस्तक्षेपका जोरदार समर्थन करते हुए कहा, हम एक छोटी शक्ति हैं लेकिन हम एक मुस्लिम देश हैं। हम मुस्लिम भाईचारेके सागरमें रहते हैं। हिन्दू हमारी तरह नहीं। ब्राह्मण और अछूत मुस्लिम जैसा राष्ट्र कभी स्थापित नहीं कर सकते। कश्मीरके लोगोंने पाकिस्तानका झण्डा

मुसलमानोंकी सहायता करें।

इस्लामाबादमें ४ फरवरी १९६० को सरकारी और विरोधी नेताओंका एक संयुक्त सम्मेलन कश्मीरी लोगोंके स्वतंत्रता संग्रामके समर्थनमें पाकिस्तानसे समर्थन प्राप्त करनेके लिए हुआ। नुसरत भुट्टोने कहा—मुसलमानोंसे आत्म-निर्णयका अधिकार नहीं छीना जा सकता, न ही वे किसी बर्बर बल या कठोर दबावके सामने हथियार डालेंगे। जमाते-इस्लामीके नेताने गर्जना की, भारतीय सेनाने कश्मीरको घेर लिया है, पर वे नहीं जानते कि दुनियांमें अभीतक कोई ऐसा हथियार नहीं बना जो जिहादके जोशको दबा सके।

पाकिस्तानने गोरिल्ला युद्ध-प्रणालीमें प्रशिक्षण देकर सक्रिय सहायता दी। लेखकने यहां पाकिस्तान द्वारा कश्मीरको स्वतन्त्र करानेके अनेक प्रयत्नोंका उल्लेख किया है। उनमें जिया-उल-हककी योजना आपरेशन टोपक विशेष उल्लेखनीय है। अन्तमें लेखकने दुःखद स्वरमें लिखा है—केन्द्रीय प्रश्न यह है कि इस विघटनके स्वभाव और प्रकृतिके बारेमें केन्द्रीय सरकार को पता था, फिरभी उसने कुछ नहीं किया। वहां मुख्य रूपसे लड़ाकू इस्लामी विचारधारा और मुहावरोंका उपयोग किया जाता है। अन्तमें लेखकने जिया उल हक और राजीव गांधीकी तुलना की। उसकी दृष्टिमें हक अधिक जागरूक था और लेखकका यह भी कहना है कि १९८६ के बाद राजीव गांधीके उपरान्त जो लोग नयी दिल्लीमें सत्तामें आये, वे भी उनसे सतर्क नहीं थे।

ग्यारहवां अध्याय 'राज्य विधानसभा भंग' है। लेखकने लिखा कि जनताके बहुमतका विश्वास था कि मार्च १९८७ के चुनावोंमें धांधली की गयी। उनकी यह भी धारणा थी कि डॉ. फारूख अब्दुल्ला शासनने अन्य लोगोंकी राजनीतिक आकांक्षाओंको कुचल दिया है। उनकी मांग थी कि असेम्बलीको तत्काल भंग कर दिया जाये और ६ महीने बादमें चुनाव करवाये जायें। यहां पर धारा ५३ की उपधाराका उल्लेख किया है—'उपराज्यपाल समय-समयपर किसी सदन या सदनोंको स्थगित कर सकता है अथवा लेजिस्लेटिव असेम्बलीको भंग कर सकता है। श्री जगमोहनने युवकोंसे विशेष रूपसे अपील की कि वे बन्दूक-नीतिकी निरर्थकताको समझें। उन्होंने आतंकवादके सम्बन्धमें कहा कि यह बहुमुखी दैत्य है जो प्रायः अपने समर्थकोंको भी निगल लेता है।

आंशाके अनुरूप जनताने असेम्बली भंग किये जाने का स्वागत किया। समाचार-पत्रोंने एकमतसे समर्थन



किया। परन्तु केन्द्र सरकारके आसपासके कुछ क्षेत्रों में यह कहकर राज्यपालकी आलोचना कीगयी कि केन्द्र को विश्वासमें नहीं लिया गया। इसपर जगमोहनने उस सारी स्थितिका भी स्पष्टीकरण किया, जिस कारण असेम्बली भंग की गयीथी। उन्होंने गृहमंत्रिको स्पष्ट लिखा—जम्मू कश्मीरके संविधानमें केवल राज्यपालको ही असेम्बली भंग करनेका अधिकार है, अन्य किसीको नहीं। लेखक राज्यपाल जगमोहनने कहा—“निःसन्देह मेरा निर्णय प्रशासनिक, नैतिक और संवैधानिक रूपमें सही है।” लेखकने न्यायालयके निर्णयोंका भी उल्लेख कियाहै जिसके अनुसार जम्मू-कश्मीरका राज्यपाल विधानसभा भंग कर सकताहै।

बारहवाँ अध्याय ‘सन्देह और परस्पर विरोधी बातोंका भंवरजाल’ है। लेखकने लिखाहै—जिस समय मैं भटके हुए युवकोंको मार्गपर लानेका एक नया वातावरण पैदा करनेका प्रयत्न कर रहाथा, उस समय बी. पी. सरकारने जो कदम उठाये उनसे मेरे इन सुधार कार्योंमें बाधा पड़ी। सेनाको भी गलत संकेत दियेजा रहेथे। मेरी स्थितिको इससे फिर धक्का पहुंचा। सरकारकी सच्चाईके प्रति युवकोंके मनमें फिर सन्देह पैदा हुआ।

यह सूचनाभी पुस्तकमें है कि मुख्यमंत्रिके पास राज्यका स्थायी निवासी होनेका प्रमाणपत्रभी नहीं था, चूंकि उसने इंग्लैंडकी नागरिकता प्राप्त करली थी। उसने संघीय नियमोंको ताकपर रखकर राजका स्थायी निवासी होनेका प्रमाण-पत्र प्राप्त कियाथा। फारूख अब्दुल्ला निरन्तर जगमोहनके विरोधमें प्रचार कर रहे थे। उन्होंने पुष्टि किये बिना जगमोहनके आदेशसे एक सौ आदमियोंके मारे जानेकी बात कही। नेशनल काँग्रेसके तीन सांसद जो कभी कश्मीर आते ही नहीं थे पर इस बातके लिए प्रयत्नशील रहतेथे कि मैं स्थितिको नियन्त्रित न कर पाऊं, संसदके द्वारा संसदके द्वारपर घरना देकर बैठ गये और मुझे वापस बुलाये जानेकी माँग करने लगे—उनका राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मंचपर खूब प्रचार हुआ।

लेखकने उन पांच कारणोंका भी उल्लेख कियाहै जिनसे तोड़फोड़ करनेवाले प्रभावी हो रहेथे। (१) प्रथम कारण यह था कि तोड़-फोड़ करनेवालोंने जनता के दिलमें यह बात बैठा दीथी कि उनकी विजय अवश्यभावी है। (२) दूसरा कारण यह था कि राज-

‘प्रकर’—दिसम्बर’६२—८

नीतिक रूपसे महत्वाकांक्षी युवकोंके सामने अपनी राजनीतिक भावनाएं प्रकट करनेका अवसर नहीं था। (३) तीसरा कारण यह था कि अधिकांश कश्मीरी समाज रूढ़िवादी है। देशद्रोहके कामोंमें लगे लोग कश्मीरकी ‘प्यूरिटन’ स्थितिकी बात उठातेथे। (४) पाकिस्तान का गुप्तचर विभागभी सभी देशद्रोही तत्त्वोंको सैयद अली शाम गिलानी और मियां कयूम जैसे पाकिस्तान समर्थक लोगोंके नेतृत्वमें संगठित करनेका प्रयासकर रहाथा। (५) वे लोग जो पृष्ठभूमिमें रहकर देशद्रोही गतिविधियोंको बढ़ावा देतेथे।

इस स्थितिको प्रभावहीन बनानेके लिए जगमोहन ने भी कुछ उपाय किये—(१) निरन्तर दृढ़तासे काम लेना, (२) तोड़-फोड़ करनेवालोंके लिए पुनः मुख्य-धारामें लौटनेका प्रबन्ध (३) देशद्रोहियोंका अपने आपको चरित्रवान् और समाज सुधारक कहनेकी बात का खण्डन, (४) पाकिस्तान समर्थक धर्मान्ध लोगोंके नेतृत्वमें इन गुटोंको इकट्ठा होनेसे रोकना तथा (५) पृष्ठभूमिमें रहकर काम करनेके विरुद्ध कार्यवाही करना।

इसी अध्यायमें लेखकने सर्वदलीय परामर्शदात्री समिति के कश्मीर आनेका विस्तृत वर्णन कियाहै, जिसमें श्री राजीव गांधीकी अनेक बचकानी बातोंका उल्लेख किया गयाहै। विना सूचनाके जब दल वहां पहुंचा तब उसका घोर अपमान हुआ। यहाँ लेखकने जाजं फर्नांडीज के राजनीतिक व्यक्तित्वपर छोटकाशी कीहै। लेखकने इस दौरेका विस्तारसे उल्लेख करनेके बाद लिखाहै—“मुझे इस बातसे बहुत निराशा हुई कि समितिके अनेक सदस्योंका विचार दलगत राजनीतिमें था जबकि वे बहुत जल्दीमें एक राष्ट्रीय आम सहमति बनानेके लिए श्रीनगर आयेथे। यह महात्मा गांधीके उस देशमें ही रहा था जहां उनका विश्वास था कि ‘सिद्धांतविहीन राजनीति मौतके फन्देके समान है जिससे राष्ट्रकी आत्माका हनन होताहै। इस अध्यायमें श्री जगमोहनने अपनी राजनीतिक कुशलताका विस्तृत वर्णनभी कियाहै।

तेरहवाँ अध्याय : ‘कश्मीर पण्डित—डरे हुए बेसहारा लोग’ हैं। लेखकने लिखाहै—जब काँग्रेस (इ) पार्टीने मुझे ३० मई, १९६० को राज्य सभामें कश्मीर विषयपर बोलने की अनुमति नहीं दी, तो मैंने एक प्रेस काँग्रेस आयोजित की जिसमें एक प्रश्नके उत्तरमें मैंने कहा—“भारतको बाहरी दुश्मनोंकी



जखरत नहीं है, हमही अपने सबसे खतरनाक दुश्मन हैं।' इस सत्यकी पुष्टि 'इनीशिएटिव ऑन कश्मीर' नामसे पुकारी जानेवाली समितिकी अत्यधिक पक्षपात-पूर्ण और तथ्योंका रंग बदलनेवाली रिपोर्टसे होती है। जोभी मैंने कहा, रिपोर्टने उसके साथ गम्भीर अन्याय किया है। बहुत-से गलत कथन मेरे नामसे उद्धृत किये गये हैं जबकि दूसरे कथनोंको बिना किसी सन्दर्भके लिख दिया गया है। लेखकने लिखा है कि इस रिपोर्टकी प्रायः सभीने आलोचना की। लेखकको इस बातका अत्यन्त दुःख है कि बी. एम. तारकुण्डे और उनके साथी श्रीनगरमें पहलेसे ही यह निश्चय करके आये थे कि आतंकवादियोंका पूर्णतः समर्थन करना है, जगमोहन प्रशासनकी गलतियां निकालना है और हर ज्यादतीके लिए सुरक्षाबलोंको दोषी ठहराना है। लेखकने इन सभी कारणोंका विस्तारसे वर्णन किया है जिनके कारण कश्मीरी पंडितोंको न केवल जानमालसे हाथ धोना पड़ा, अपितु उनपर मानसिक दबाव भी बढ़ गया। वे अपनेही देशमें शरणार्थी होगये। यहाँ लेखकने कश्मीरी पण्डितोंका इतिहास भी दिया है। लेखकने इन्दरमोहन द्वारा उनके विरुद्ध विद्वेषसे किये आक्रमणका भी उल्लेख किया है जिसके विरुद्ध लेखकने २३ जुलाई १९७६ को मानहानिका मुकदमा दायर किया था।

अन्तमें लेखकने लिखा है—इस समिति(कमेटी फोर इनीशिएटिव आन कश्मीर) के प्रचारका तरीका द्वितीय विश्वयुद्धके दौरान अपनाये गये जर्मनीके प्रचारमन्त्री गोएब्ल्सकी शैलीका था। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि वह कुछ समयके लिए सफल हो गया और उसने मुझे राज्यसे बाहर करनेकी अपनी भूमिका भलीप्रकार निभायी, पर इतिहास ऐसे तिकड़म-बाजोंकी गोदमें अधिक देरतक नहीं ठहरता। सत्य जल्दीही झूठका पर्दाफाश कर देता है और दोष या तो शून्यमें विलीन हो जाता है अथवा अपनेही झूठके ढेर तले दफन हो जाता है।

चौबहवां अध्याय "परिस्थितियोंपर पूर्ण नियन्त्रण" है। इस अध्यायमें भी लेखकने कश्मीरमें अपने काम दृढ़तासे करते रहने व उनपर नियन्त्रण बनाये रखनेका विस्तृत वर्णन किया है। राजनीतिक दलोंके मनमें खाली-पनके कारण उनके सामने अनेक कठिनाइयां थीं।

राज्यपाल जगमोहनने पहले इस बातको प्राथमिकता दी थी कि पाक अधिकृत कश्मीरसे भारतीय

क्षेत्रमें सीमा लाँघकर आनेवाली घटनाओंको रोक दिया जाये। उन्होंने अनेक बार गृह मंत्रालयसे इस बातकी प्रार्थना की कि सीमा सुरक्षा दलको यह अधिकार हो कि वह तलाशी ले सके और गिरफ्तारियाँ कर सके, परन्तु उन्हें ऐसे अधिकार नहीं दिये गये। घुसपैठिए गाँवमें छिपे हुए हैं परन्तु वह उन्हें गिरफ्तार नहीं कर सकते थे। जब वे स्थानीय पुलिसको इस बातकी सूचना देते तबतक संदेहास्पद व्यक्ति भाग खड़े होते और कई मामलोंमें तो पुलिसकी मिलीभगत भी स्पष्ट थी। बहुत-से लोग अपने खेतोंमें जानेका बहाना करके रातके समय सीमाके पास घूमते रहते थे। पर कठिनाई यह थी कि राजनीतिक अधिकारी इस बातके विरुद्ध थे कि सीमाकी एक-दो किलोमीटरकी पट्टीपर रातके समय कर्फ्यू लगाया जाये। जबभी कभी ऐसी बातका सुझाव दिया जाता तो अनुच्छेद २८६ और ३७० का हवाला देकर शोर मचाया जाता।

राज्यपालने इन सबकी चिन्ता न कर स्वयं कुछ कदम उठाये और इसकी सूचना केन्द्र सरकारके पास भेज दी। उन्होंने सन्दिग्ध व्यक्तियोंकी सूची बनवा ली। लेखकने आतंकवादियोंके बारेमें माओत्से तुंगके सुप्रसिद्ध सिद्धान्त—'समुद्रमें मछलीकी तरह तैरते रहिये, भीड़ में गुम हो जाइये'—को उद्धृत किया है। इसके उत्तरमें राज्यपालने ऐसे विशेष दलोंकी स्थापना करनेका प्रयत्न किया जो आतंकवादियोंको दबोचनेमें समर्थ हों। उन्होंने १६ अप्रैल १९६० को राज्य फ्रीमिनल ला अमेण्डमेंट एक्टके अन्तर्गत ८ संगठनोंको गैरकानूनी घोषित कर दिया। पुलिस महानिदेशकने अपने अधिकारसे १०१ पुलिस अधिकारियोंको नौकरीसे अलगकर दिया। ये लोग राष्ट्रद्रोही कामोंमें लिप्त थे और उनपर आज्ञा भंग करनेके आरोप थे।

पन्द्रहवां अध्याय 'गलत बातों और अफवाहोंका अम्बार' है। लेखकने दुःख प्रकट करते हुए लिखा है कि कश्मीरकी पहाड़ियोंमें जहाँ पहले कभी सौन्दर्य पलता था, सुगन्ध फैलती थी, वहाँ उन घटियोंमें मक्कारियों व जाल-साजियोंका प्रवाह है, जिसने राष्ट्रकी राजनीतिक आत्माको दूषितकर दिया है। झूठ व अफवाहोंकी बाढ़ एक स्थानसे नहीं अनेक स्थानोंसे फैलती रही। इसके लिए उन्होंने राजीव गांधी, डॉ. फारूख अब्दुल्ला, जाजं फर्नाण्डीज आदि सभीको दोषी बताया।



लेखकने 'करंट' में अपने विरुद्ध छद्म श्री जगमोहन के नाम पर एक लेखका एक हो जाती है।  
 बयानपर दिल्लीके उच्च न्यायालयमें २० लाख रुपयेके  
 मानहानिके मुकदमेका भी उल्लेख किया है। इस  
 अध्यायमें लेखकने मुख्य रूपसे कश्मीरी शरणाथियों  
 की समस्याको उठाया है। लेखकको इस बातका दुःख  
 है कि आतंकवादियों द्वारा बनायी गयी विधवाओंको  
 तथा अन्य शरणाथियोंको सान्त्वना देने गये तो उनको  
 साम्प्रदायिक और मुस्लिम विरोधी करार दिया गया।  
 पर लेखकने अपने राज्यपाल कालकी अपनी उपविधियों  
 को पत्रकारों व अन्य राजनीतिज्ञोंके माध्यमसे प्रकट  
 किया। साथही फर्नाण्डीज, सुलेमान सेठ, बनातवाला  
 आदिकी आलोचना की, साथही तत्कालीन प्रधानमंत्री  
 श्री वी. पी. सिंहकी कमजोरीभी बतायी कि वे मुस्लिम  
 वोटोंको अपने पक्ष करना चाहते थे। श्री जगमोहनने यह  
 मांग की कि कश्मीर सम्बन्धी सभी घटानाओंकी जांच  
 उच्चतम न्यायालयके जजोंके एक पैनल द्वारा की जाये।  
 पर इसकी ओर न तो सरकारने ध्यान दिया और न  
 अफवाहें फैलानेवालोंने। लेखकने 'टाइम्स आफ इण्डिया'  
 में प्रकाशित इस निराधार समाचारपर "कि जगमोहन  
 ने स्वयं कहा है कि वे परिवर्तित स्थितियोंमें राज्यपाल  
 नहीं रहना चाहते"—क्षोभ व्यक्त किया क्योंकि उन्होंने  
 ऐसा कोई संकेत नहीं दिया था।

सोलहवां अध्याय 'मन्त्रणा काल बढ़ाना' है। अन-  
 न्तनागमें एक कुष्मात उग्रवादी मंजूरने 'इंडिया वीक'  
 (२४ अगस्त १९९०) पत्रिकामें दिये इन्टरव्यूमें  
 कहा—"जगमोहनको हटानेसे हमारे हीसले बढ़ेंगे।  
 वी. पी. सिंहके इस फैसलेके लिए हम शुक्रगुजार हैं।  
 अगले पन्द्रह दिनों हम कुमुक ला सके हैं और अपनी  
 ताकत बढ़ा सके हैं।" लेखकने इस अध्यायमें अपने  
 भाषणोंके उन अंशोंको उद्धृत किया है जिसकारण  
 उनको सांप्रदायिक कहा गया था।—सभी धर्मोंका एक  
 ही आधारभूत सिद्धान्त है—और वह दुःखी इन्सान  
 को राहत पहुंचाना तथा यह मानना कि गरीबोंकी  
 सेवा करना ही अल्लाकी सेवा करना है। ईदुल-फितर  
 के दिन मैंने विशेष रूपसे कहा था "आइये हम इस  
 पावनदिनकी भावनाका समादर करें और सेवा भावना  
 से काम करें। उन्होंने यह प्रचार किया कि मैं साम्प्र-  
 दायिक हूं।—मैंने बार-बार आपको सावधान किया  
 है कि हमें वास्तविक भारतकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।  
 ऐसे भारतकी जिसमें विभिन्न संस्कृतियोंका सम्मिश्रण  
 प्रकर—दिसम्बर'९२—१०

लेखकने अपनी इस मान्यताको भी प्रकट किया  
 कि एक बार पकिस्तानकी गिरफ्तमें आनेके बाद  
 कश्मीरके मुसलमानोंकी पहचान कुछही वर्षोंमें धूमिल  
 पड़ जायेगी। लेखकने संसद, समाचारपत्र सभी  
 के पक्षपातपूर्ण रवैयेकी आलोचना की है। समाचार  
 पत्रोंमें असावधान और विवेकहीन संवाददाताओं द्वारा  
 समाचार दिये जाते हैं। उन पत्रकारोंकी बात छोड़  
 दीजिये जिनका एकपक्षीय झुकाव होता है (जो  
 निष्पक्ष नहीं होते), कुछ ऐसे संवाददाताभी हैं जिन्हें मूल  
 बातोंकी भी जानकारी नहीं होती, फिरभी वे साधि-  
 कार उनके बारेमें लिखते हैं। यदि इस काममें मैं बाधक  
 था, जैसा कि आक्षेप किया गयाथा, तो वहां राज-  
 नीतिक प्रक्रिया शुरू कीजानी चाहिये थी और बहुत  
 पहले ही उसके परिणाम सामने आने चाहिये थे।

उन्हें श्री चन्द्रशेखरसे भी शिकायत थी। श्री  
 चन्द्रशेखर निरन्तर राजनीतिक प्रक्रियाका राग अलापते  
 रहे और श्री जगमोहनमें दोष निकालते रहे।  
 प्रधानमंत्री बननेपर उन्होंने किया क्या?

लेखकका मानना है कि मेरी नीतिपर न  
 चलनेके कारण आतंकवादी गतिविधियां तेज होगयीं।  
 जिसके कारण ३१ मार्चको स्वीडनके दो इंजीनियर  
 जान ओल लोमन और जोह जानसनका अपहरण  
 किया गयाथा। ११ अप्रैलको श्रीनगरके डिवीजनल  
 कमिश्नर वजाहर हबीबुल्लाका अपहरण करनेका प्रयत्न  
 किया गया। ३० जूनको सुरक्षा बलके दो अधिका-  
 रियोंकी अमानवीय ढंगसे हत्या कर दीगयी। इस  
 प्रकारकी औरभी अनेक दुःखद घटनाएं घटित हुईं।  
 २३ मार्च १९९१ को पाकिस्तान-दिवस मनाया गयाथा  
 और अनेक स्थानोंपर पाकिस्तानी झंडे फहराये गये।  
 इन सबका दुष्परिणाम यह हुआ कि जून १९९० के  
 बाद कश्मीरी मुसलमान भी जम्मू और नयी दिल्लीमें  
 रहनेके लिए घाटीसे भागने लगे।

सत्रहवां अध्याय 'भविष्य: इतिहासका गतिशील  
 चक्र' है। लेखकके अनुसार आजका भारत प्रत्येक क्षेत्रमें  
 मूल रूपसे भटक गया है। हमारे राष्ट्रीय ढाँचेमें कुछ  
 आधारभूत कमियां हैं जिनके कारण समाजका लड़ख-  
 डाना जरूरी-सा है। लेखकने इसके कुछ प्रमाण भी  
 दिये हैं—उन्होंने विश्वके अन्य देशोंकी तुलना करके



बताया है कि भारतका विकास ठीक गतिसे नहीं हो पा रहा। आर्थिक स्थिति, उत्पादकता, साक्षरता, विदेशी ऋण आदिके आधारपर उन्होंने प्रतिपादित किया है कि हमारा मार्ग ठीक नहीं है। संमद्, समाचारपत्र, न्याय व्यवस्था सभी दोषयुक्त हैं। इन सबको किसी क्रान्तिसे ही सुधारा जा सकता है। उन्होंने भारतकी महिमा गान का रोम्यां रोलां, मैक्सलमूर, स्वामी बिबेकानन्द आदि के वाक्योंसे किया है। यहींपर लेखकने परिष्कृत हिन्दुत्व उपशीर्षकसे 'हिन्दुत्व' पर अपनी सार्थक टिप्पणी की है। हिन्दुत्वके लिए वे तर्कपर आधारित आस्था अनिवार्य मानते हैं। उन्होंने हिन्दुओंकी असमान व्यवस्था आदिपर भी अपनी मान्यता प्रकट की है। वे एक नयी जागृतिका सुझाव देते हैं। उनके पास कश्मीर समस्याके समाधानके लिए अनेक सुझाव हैं जोकि वे क्रियान्वित करना चाहते थे। उसका निश्चित मत है कि कश्मीरकी स्थितिका प्रमुख कारण भारतीय राजनीति, सामाजिक और आध्यात्मिक व्यवस्थाके नकारात्मक रवैयेके कारण है। यह किसी एक व्यक्तिके कारण नहीं। यह हमारी व्यवस्थाके दूषित होनेके कारण हुआ है और इसी कारण ऐसी संकट-कालीन स्थितिमें भी सन्देश और अगणित परस्पर विरोधी बातें तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत की गयीं।

अन्तमे परिशिष्ट है जिसमें शिमला समझौता, कश्मीर समझौता (फरवरी १९७५) तथा भारतके संविधानके अनुच्छेद ३७० को उद्धृत किया गया है।

वस्तुतः श्री जगमोहनने अपनी एक पुस्तकमें दो पुस्तकोंकी सामग्री रख दी है। कश्मीर समस्याके साथ अपने राज्यपाल कानके घटनाक्रमको भी उन्होंने विस्तारसे लिखा है। इन घटनाओंका कश्मीरकी समस्यासे दूरका ही सम्बन्ध है। यदि वे अपने अनुभवोंकी पृथक् पुस्तककी रचना करते तो विषय प्रतिपादनमें अधिक कसावट आती। अनेक स्थलोंपर श्री जगमोहन अपने कार्योंके औचित्यको सिद्ध करनेके लिए तथा अपने विरोधियोंके विरोधको इतना बढ़ा चढ़ा गये कि उससे उनके 'अपने मुंह मियां मिट्ठू' वाली कहावत चरितार्थ होती है।

फिरभी, पुस्तक अपने आपमें उच्च कोटिकी और विशिष्ट है। इसमें कश्मीरका इतिहास विस्तारसे दिया गया है। राज्यपाल, राष्ट्रपति, विधानसभा अध्यक्ष,

भारतीय संविधान, हमारी संस्कृति, मुसलमान इतिहास-कारों, बौद्धों व अन्य धर्मावलम्बियोंके मतोंके धर्मका उज्ज्वल पक्ष आदि अनेक ऐसी बातें प्रसंगवश आयी हैं जिनसे पाठक लाभान्वित होता है। इस सम्बन्धमें उनके दिये गये उद्धरणोंसे वे एक मंजे हुए इतिहासकार भूगोलवेत्ता, संविधान विशेषज्ञ आदि अनेक रूपोंमें प्रकट होते हैं।

लेखक बहुज्ञ है। उसने अपने ग्रन्थमें टी. एस. इलियट, डब्ल्यू. बी. ईट्स, भागवतपुराण, कामवेल, गेराड मैन्ले होपकिंस, आडेन आदि विद्वानोंके कवियों व ग्रन्थोंके उद्धरण दिये हैं, जो न केवल लेखक की विद्वत्ताके प्रमाण हैं, उनसे पाठकको दिशाभी मिलती है।

लेखककी सबसे बड़ी विशेषता उसका कवि-हृदय है। पुस्तकमें अनेक कवियोंके काव्यांश उद्धृत हैं, साथ ही उसकी अपनी भाषामें भी काव्यात्मकता है, उसने अपनी कविता भी उद्धृत की है—

नहीं हो सकता

न कभी होगा

विध्वंस या निर्माण

पुनर्निर्माण या पुनरुत्थान

जब तक कि हम एक नया दर्शन नहीं पाते

और नहीं रचते एक मानस क्रांति।

अनेक स्थलोंपर लेखककी शैली इतनी भावपूर्ण है कि पाठकका उससे साधारणीकरण तक होता है। आतंकवादियोंकी गतिविधियोंसे वह केवल परिचित नहीं होता वरन् उनके प्रति उसका क्रोध भी जागरित होता है। अनेक स्थलोंपर संवाद शैली, कुछ स्थलोंपर दैनन्दिनी शैली, कहीं भाषण शैली—पाठकको अपनेमें बांधे रहती है। एक ज्ञानपूर्ण ग्रन्थको इतने सरस भावमें लेखकने लिखा है कि पाठक कहानी, नाटक आदि सभी का आस्वाद प्राप्त कर लेता है। अनेक स्थानोंपर लेखक के वाक्य सूक्तियां बन गयी हैं।

पुस्तक अंग्रेजीका हिन्दी अनुवाद है। पर पुस्तक में अनुवादकका कहीं नाम नहीं है। अनुवाद ठीक है पर कहीं अरबी, फारसीके शब्दोंके प्रयोगके प्रति मोह अधिक प्रकट हुआ है। कहीं-कहीं अंग्रेजी शब्दोंका भी प्रयोग भी करना पड़ा है। सामान्यतः भाषामें प्रवाह है पर कहीं-कहीं वाक्य बहुत लम्बे हो गये हैं। भाषा शुद्ध है पर कश्मीर, सत्यता, अनेकों जैसे कुछ शब्दों



हम इस स्तरीय ग्रन्थके लिए लेखक श्री जगमोहन

!

## हिन्दी व्याकरण :

### नयी दृष्टि

## हिन्दी व्याकरण मीमांसा-४

### हिन्दीमें संधि : संस्कृत-संधिकी प्रासंगिकता

—पं. काशीराम शर्मा

३६. संधि विचार—संस्कृतमें संधियोंका बहुत महत्त्व था। प्रक्रिया ग्रन्थोंमें उसे संज्ञा प्रकरणके बादही स्थान देनेकी परम्परा हो गयीथी। संधियां होतीं तो प्रायः सभी भाषाओंमें होंगी पर अन्य भाषाओंके व्याकरणोंमें इतने विस्तारसे विचार करनेकी प्रथा नहीं है। उदाहरणार्थ अरबीका मध्य पद 'उल्' कैसे बदलताहै देखें, सिराज-उद्-दीन, मेहर-उन्-निसा, बदी-उज्-जमां, सबाद-उल्-ला, आदि। लातीनके ऐड (Ad) उपसर्ग में भी संधिके समय 'ड' (d) प्रायः परवर्ती वर्णमें बदल जाताहै। यथा—Abbreviation, accord, afford, aggrieved, acknowledge, allot, annul, appropriate, arrest, assess, attend, आदिमें। यह उच्चारणमें हो जानेवाली एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। कारण यह है कि उच्चारण अवयव आवश्यकतासे अधिक चुस्त होतेहैं और वे पूर्व वर्णका उच्चारण करते समयही अगले वर्णके उच्चारणकी तैयारीमें लग जाते हैं। उदाहरणार्थ 'तत्' के पश्चात् यदि 'भव' या 'मय' का उच्चारण हो तो 'भव' के उच्चारणसे पूर्व स्वर तंत्रियां तनकर 'त' को घोष 'द' बना जायेंगी और 'मय' के उच्चारणसे पूर्वही तंत्रियोंके तननेके अतिरिक्त 'प्रकर'—दिसम्बर'६२—१२

नासिका द्वार भी खुल जायेगा, फलतः 'त' 'न्' बन जायेगा क्योंकि 'भ' सघोष है और 'म' सघोष अनुनासिक। उच्चारण करणोंके इस स्वभावपर वैयाकरणों का ध्यान गयाथा और उन्होंने यों परिवर्तित होनेवाले वर्णोंको पड़ोसी राजा मानकर उनके इस कार्यको संधि-विग्रह जैसी संज्ञाएं दीथी। कभी दो समान गुणवाले राजाओंमें से बलवान् राजा जीतकर अपना क्षेत्र दुगुना कर लेताहै (दीर्घ संधि)। कहीं भिन्न गुणवालेको जीतकर अपना गुण भी बदल लेताहै (गुण संधि)। कहीं गुण भी बदलताहै और आकार भी (वृद्धि संधि)। कहीं-कहीं तो दोनोंही क्षत-विक्षत हो जातेहैं। यथा, 'उत् हव' की संधि होतीहै तो सघोष 'ह' 'त्' को सघोष बनाता है तो दन्त्य 'त्' कंड्य 'ह्' को दन्त्य 'घ्' बना देताहै। यों उच्चारण करणोंकी चुस्तीके परिणामस्वरूप होनेवाली यह प्रक्रिया 'संधि' कहलाती है जिसका पूरे विस्तारके साथ उल्लेख करनेकी प्रथा हिन्दी व्याकरणोंमें भी प्रचुरतासे प्राप्य है। दी ने भी इसका निर्वाह कियाहै और उदाहरण प्रायः गु. के ही ले लिपेहैं। संधि-विचार केवल संस्कृत मूलके ही शब्दों में कियाहै। लिखा तो है कि 'संधिके नियमोंके अनुसार



शब्दोंका निर्माण मुख्यतः संस्कृतसे लिये गये हैं। शब्दों और रूपिमोंके आधारपर ही होता है। ठेठ हिन्दीकी अथवा मिली-जुली शब्दावलीके आधारपर संधिके नियमोंके अनुसार नये शब्दोंका निर्माण विरलेही होता है। किन्तु उन विरले शब्दोंका भी उल्लेख दी. ने नहीं किया, केवल मुख्यतः वालोंका ही किया जिसकी आवश्यकता ही नहीं थी। संधिके नियमोंका स्वरूप समझाते हुए लिखा है कि 'संधिके नियमोंसे अभिप्राय उन स्वनिक् परिवर्तनोंसे है, जो एक शब्द (अथवा रूपिम) के अंत्य स्वनोंमें तथा दूसरे शब्द (अथवा रूपिम) के आद्य स्वनोंमें तब आते हैं जब वे मिलकर नया शब्द बनाते हैं जैसे—उप + अध्यक्ष = उपाध्यक्ष, महा + उत्सव = महोत्सव।' फिर स्वर संधि, व्यंजन संधि और विसर्ग संधिकी परिभाषाएं दी हैं। तत्पश्चात् संस्कृत शब्दोंमें विद्यमान संधियोंको स्पष्ट करनेके लिए पूरे नियम गिनाये हैं और प्रत्येकके उदाहरण भी दिये हैं।

५०. दी. के कार्यकी समीक्षा—हमारा स्पष्ट मत है कि संस्कृतके गृहीत शब्दोंके निर्माणकी प्रक्रियाको समझना हिन्दी व्याकरणके अध्येताके लिए सर्वथा अनावश्यक है। हिन्दीने तो बना-बनाया माल हड़पा है और जहाँ आवश्यक होगा हड़पती भी रहेगी। उसे यह जाननेकी आवश्यकता नहीं कि वह किस प्रकारके कच्चे मालसे तैयार होता है और किस प्रक्रियासे होता है। हिन्दी यथावश्यक अरबी, फारसी तुर्की, चीनी, अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, रूसी आदिके शब्दोंको भी ग्रहण करती है पर वे कैसे बने यह जाननेकी भी आवश्यकता नहीं। उन भाषाओंके कोशोंमें तो मनमानी व्युत्पत्तियाँ दी भी जाती हैं पर उनके व्याकरण तो समझाते भी नहीं। ध्यान रहे हिन्दीके लिए जैसे वे आवश्यकता-नुसार गृहीत शब्द हैं उसी प्रकार तत्सम शब्द भी हैं। अतः उनके निर्माणकी प्रक्रियाका उल्लेख अनावश्यक है। खेद है कि दी. ने जिन १४० शब्दोंको (७५ स्वर संधि, ४२ व्यंजन संधि और २३ विसर्ग संधि) उदाहरण स्वरूप दिया है उनमें ६० तो ऐसे हैं जिनका हिन्दीमें शायदही कभी प्रयोग हुआ हो। शेष ८० हिन्दीमें एक ही शब्द मानकर प्रयुक्त होते हैं अतः इनका निर्माण किन शब्दों या रूपिमोंकी संधिसे हुआ, यह जानना हिन्दी छात्रके लिए सर्वथा अनावश्यक है। उनमें अनेक तो ऐसे हैं जिनके विग्रहकी जानकारी संस्कृतके विद्यार्थी के लिए भी आवश्यक नहीं है। केवल संस्कृत व्याकरण

के विग्रहअक्षरेषुके जिस उपयोगी है। उन्हें दी. द्वारा प्रदत्त परिभाषाके अनुसार संधिज शब्द मान भी नहीं सकते। इन सभी आक्षेपोंका सोदाहरण उल्लेख उचित होगा।

(अ) महीन्द्र, नदीण, गुरूपदेश, लघूष्मा, वधू-त्सव, मूध्वम्, समुद्रोर्मि, गंगोर्मि, शीततुं, एकैक, महेश्वर्य, उष्णोदन, उत्तमोषध, महीज, महीषधि, अत्यून, अत्यैश्वर्य, नद्यर्पण, सख्यागमन, सख्युचित, नद्यर्मि, बल्युषभ, सख्येव, देवीश्वर्य, सरस्वत्योष, वाण्योचित्य, बह्वैश्वर्य, सरस्वम्बु, वध्वादि, तन्विन्द्रिय, वध्वैश्वर्य, सरस्वोष, वध्वोदायं, पित्रनुमति, मात्रानन्द, पित्रिच्छा, पित्रीहा, पित्रपदेश, पित्रूह, पित्रेषण, पित्रैश्वर्य, पित्रोक, पित्रोदायं, गवीश, वाग्जल, वागीश, षण्मास, सद्धर्म, सहच्छत्र, विपज्जन्य, सट्टीका, शरच्छशि, दुयंश, निर्रोचक, दुलक्ष्य, निरर्थ, धनुष्टंकार आदि ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग हमने हिन्दीमें कहीं नहीं देखा है, अतः इनका विग्रह कैसे होता होगा यह जाननेकी किसी छात्रको शायद ही कभी आवश्यकता पड़े। इनमेंसे अनेक तो ऐसे होंगे जो संस्कृतमें भी क्वचित् ही प्रयुक्त हुए होंगे। यथा : बल्युषभ, वाग्जल, निर्रोचक, सरस्वम्बु, बह्वैश्वर्य आदि। 'निर्रोचक' तो संस्कृत व्याकरणके अनुसार शुद्ध भी नहीं है। 'तीरोचक' होना चाहिये। देखें (सूत्र : रोरी)।

(आ) हिमालय, विद्यार्थी, विद्यालय, शब्दार्थ, कवीन्द्र, कवीश्वर, शुभेच्छा, परमेश्वर, महेश्वर, रमेश, सूर्योदय, महर्षि, मतेक्य, सदैव, रीत्यनुसार, अत्याचार, प्रत्युत्तर, प्रत्येक, अन्वर्थ, स्वागत, अन्विष्ट, अन्वेषण, नयन, भवन, पवित्र, गायक, पावक, नाविक, भावुक, अजन्त, षडंग, षड्दर्शन, सुबन्त, वाङ्मय, जगन्नाथ, सदाचार, जगदीश, बृहद्ग्रन्थ, तद्रूप, सन्निधानन्द, उच्चारण, सज्जन, तल्लोन, तद्धित, उद्धार, छत्रच्छाया, आच्छादन, दुष्काल, दुश्चरित्र, निष्पक्ष, निष्फल, निगुण, दुर्जन, दुर्दशा, दुर्बल, दुर्भाग्य, निर्मल, दुर्बन्त, मनोभिलाषा, अतएव, निराकार, दुरुपयोग, दुराचार, निर्धन, नीरस, नीरोग, निश्चल, निश्छल, मनस्ताप, दुःशासन या दुश्शासन, निःसार या निस्सार, निष्कपट, दुष्कर्म, निष्पाप, निष्फल, मनोयोग, वयोवृद्ध, मनोहर आदि ऐसे शब्द हैं जो एक-एक ही संप्रत्ययके स्रोतक हैं। विग्रह करनेपर वह एकत्व नहीं रह पायेगा। यही नहीं अनेक शब्द तो ऐसे हैं कि उनके दोनों अंशोंको पृथक् कर



द तो सम्भव है उनमें से एक अंशका हिन्दीभाषी अर्थ भी न जानता हो। अन्वयं, अन्विष्ट, स्वागत, अजन्त, सुबन्त, तद्धित, वाङ्मय, षडंग, षड्दर्शन, सदाचार, उद्धार, उच्चारण, मनोहर आदि इसी कोटिके शब्द हैं। बेचारे 'निगुण' का तो विग्रह दो प्रकारसे किया गया है : पहले व्यंजन संधिमें निस् + गुण और फिर विसर्ग संधिमें निः + गुण। पता नहीं असली निर् + गुण को क्यों छोड़ दिया। पाणिनिने तो निर् को पृथक् उपसर्ग गिना है।

(इ) नयन, भवन, पवित्र, गायक, पावक आदि तो ऐसे शब्द हैं जिनमें संधि दी की दी हुई परिभाषा के अनुसार हुई ही नहीं है। संस्कृतमें ने, भो, पो, गै, पौ, अन, इत्र, अक जैसे न तो शब्द हैं और न रूपिम ही। इनकी व्युत्पत्तिको समझनेकी उपयोगितातो संस्कृत में भी केवल व्याकरणके विशेष अध्येताके लिए ही है; साधारण भाषा अध्येताके लिए नहीं। संस्कृत व्याकरण के अनेक सूत्र ज्ञात होनेपर ही यह जटिल व्युत्पत्ति समझमें आ सकती है अन्यथा ऊपर बताये शब्द तो हैं ही नहीं।

४१. गु. का संधि प्रकरण—दी. ने अपने संधि प्रकरणमें प्रायः गु. का अनुसरण किया है। उदाहरण भी प्रायः गु. के ही दिये हैं। अतः वह अपने समर्थनमें कह सकता है कि 'यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया।' यदि शुद्धमशुद्ध वा मम दोषो न विद्यते—मैंने तो जैसा पुस्तकोंमें देखा वैसा लिख दिया, यदि कहीं अशुद्धि हो तो दोष मेरा नहीं है। ऐसा प्रतिलिपिकार लिखा करते थे। इसीलिए 'मक्षिकास्थाने' मक्षिकाकी उक्ति चली थी। पर लगता है दी. ने तो प्रतिलिपि भी आंख मूंदकर की है। अन्यथा 'निःगुण', 'निस् गुण' वाले दोषसे बच सकता था। गु ने 'निस् गुण = निगुण' का उदाहरण देनेसे पूर्व लिखा है 'अन्त्य' स् के बदले विसर्ग हो जाता है, इसलिए विसर्ग सम्बन्धी पूर्वोक्त नियम स् के विषयमें भी लगता है। ऊपर दिये हुए विसर्गके उदाहरणोंमें ही कहीं-कहीं मूल स् है। जैसे—निस् + गुण = निः गुण = निगुण। खेद है कि गु. ने भी केवल तत्सम शब्दोंका संधि-विच्छेद समझानेका यत्न किया है जो वस्तुतः बने-बनाये गृहीत किये जाते हैं। उनका विश्लेषण समझना हिन्दी छात्रके लिए अनावश्यक है। 'प्रातःकाल = प्रातर्काल' समझकर वह क्या करेगा। उसे तो अकेला 'प्रातर्' कहीं देखनेको मिलता नहीं।

'प्रकर'—दिसम्बर'६२—१४

४२. वा. का संधि प्रकरण—(अ) यह हर्षकी

बात है कि वा. ने संस्कृत मूलके शब्दोंके संधि-विच्छेद को उस विस्तारसे समझानेकी आवश्यकता नहीं समझी जिस विस्तारसे दी. और गु. जूझें हैं। वा. ने हिन्दीकी अपनी संधियोंका भी ज्ञान करवानेका यत्न किया है, अपितु प्राथमिकता हिन्दी शब्दोंकी संधियोंको ही दी है। संस्कृत शब्दोंके संधियोंकी चर्चा तो इस दृष्टिसे अधिक की है कि कहां हिन्दी अपना अलग मार्ग अपनाती है। यह सही दृष्टिकोण है। पर हिन्दीकी अपनी संधियोंको समझाते समय वा. कहीं-कहीं इसलिए गड़बड़ा गये हैं कि वे भ्रान्त आधार-भूमि लेकर चल पड़ते हैं और उसे न छोड़नेका आग्रह भी करते हैं, अतः उनके निष्कर्ष भ्रान्त ही नहीं हास्यास्पद भी हो जाते हैं। दूसरे हिन्दी वा. मार्ग अलग मानते हुए भी संस्कृतकी गुण संधियों के जालसे मुक्त नहीं हो पाते अर्थात् 'ए-ओ' को क्रमशः अइ-अउ का संधिज रूपही मानते हैं। उसका परिणाम कितनी जटिलता ला देता है, यह द्रष्टव्य है। वे लिखते हैं : "विधि अर्थ प्रकट करनेके लिए हिन्दीमें 'इ' प्रत्यय होता है जो संस्कृतके इय् के य् को उड़ाकर बना-बसाया जान पड़ता है। धातुके अन्त्य 'अ' तथा प्रत्ययके 'इ' को मिलकर 'ए' संधि हो जाती है और तब धातुका बचा हुआ व्यंजन इस ए (या ऐ) में जा मिलता है। 'पठेत्' सं. से 'पढ़े' हिन्दी। इय् को इ रूप। यथा :

पढ़ + इ = पढ़े

कर + इ = करे (आदि)।

कभी-कभी दो स्वरोके मेलमें एकका ही रूपान्तर होता है। एक ज्योंका त्यों बना रहता है। दीर्घ स्वरान्त धातुओंसे परे यह विध्यर्थक 'इ' प्रत्यय स्वयं अकेला ही 'ए' बन जाता है। संस्कृतमें भी 'इ' अनेक स्थानोंपर 'ए' के रूपमें दिखायी देता है। सो + इ = सोए, रो + इ = रोए आदि।" इसके बाद ब्रज अवधिके रूपोंके अनावश्यक विस्तारमें भी वा. गये हैं। वास्तविक बात केवल इतनी-सी है कि विध्यर्थमें 'ए' प्रत्यय जुड़ता है। पढ़े, करे, टले, कहे, सोए, रोए, जाए, आए, पकाए, पिए, सिए आदि सभी उदाहरणोंमें वह स्पष्ट है। वस्तुतः संधि हैभी नहीं। 'ए' स्पष्टतः पृथक् पड़ा है। रही बात पढ़े-करे-टले-कहे आदिकी, सो, वतनीमें चाहे पढ़-कर-टल्-कह रूपही प्रचलित हो पर उनका उच्चारण तो पढ़्-कर्-टल्-कह ही होता है। हिन्दीकी सभी धातुओंको स्वरान्त माननेका आग्रह उचित नहीं है।



यही स्थिति पढ़ो-करो-खाओ-जाओ-सीओ जैसे आज्ञार्थ रूपोंकी है। धातुके मूल रूपमें 'ओ' जुड़ा है जिसे वा. ने 'उ' बताया है और लिखा है—'जैसे करे-पढ़े आदिमें गुण संधि बतायी गयी, इसी प्रकार 'पढ़ो' आदि 'पढ़हु' मध्यम पुष्प (आज्ञा आदिमें) रूप होते हैं—अवधोमें तथा ब्रजभाषामें भी। 'ह' का लोप करके और धातुके अन्त्य 'अ' तथा उस अवशिष्ट 'उ' में गुणसंधि करके 'ओ' बन जाता है। रूप चलते हैं—पढ़ो, करो, हटो आदि। ब्रजभाषा आदिमें 'ह' का वैकल्पिक लोप होकर अ + उ = औ संधि होती है—पढ़ौ, करौ आदि। खूब सोचनेपर जान पड़ेगा कि यहाँ 'उ' ही मूल प्रत्यय है। ह्. का आगम करके 'हु' है। अकारान्त धातुओंसे भिन्न अन्य स्वरान्त धातुओंसे परे जब यह 'उ' प्रत्यय आता है, तब स्वयं (अकेला) ही 'ओ' बन जाता है—खा + उ = खाओ, जा + उ = जाओ आदि।" यह सम्पूर्ण विवेचन अनावश्यक है और इसलिए करना पड़ा कि वा. का आग्रह है कि सभी धातु स्वरान्त हैं और आज्ञार्थ प्रत्यय 'उ' है। यदि यह दुराग्रह न होता तो यह प्रकरण गुण संधिका होता ही नहीं। सीधा रूप रचनाका प्रकरण था। विध्यर्थमें 'ए' और आज्ञार्थ में 'ओ' प्रत्यय जुड़ने की बात थी।

(आ) वा. ने सियो-पियो जैसे रूपोंमें 'ई' को 'इय्' कर देनेकी बात कही है और लिखा है : "यह 'इय्' संस्कृतके 'इयङ्' की ही प्रतिमूर्ति है। स्त्रीलिंग बहुवचन सूचक 'आं' परे हो तो भी 'इ' तथा 'ई' को इय् हो जाता है—बुद्धि + आं = बुद्धियां, नदी + आं = नदियां, गाड़ी + आं = गाड़ियां, गालीं + आं = गालियां। कोई अन्य स्वर स्त्रीलिंग शब्दोंके अन्तमें हो, तो सामने का यह 'आं' 'एं' रूपमें रहता है। यदि अकारान्त स्त्री-लिंग शब्द है तो अन्त्य 'अ' का लोप हो जाता है और व्यंजन आगेके एं में जा मिलता है—बहन + एं = बहनें, टिकट + एं = टिकटें, सड़क + एं = सड़कें। यदि अन्य कोई स्वर शब्दके अन्तमें हो तो एं तदवस्थ रहता है—लता + एं = लताएं, माता + एं = माताएं, गौ + एं = गौएं, धेनु + एं = धेनुएं। यदि 'ऊ' अन्तमें हो तो 'उव्' होकर 'व' का लोप हो जाता है। बहू + एं = बहुएं।"

यह पूरा रूप-रचनाका ही प्रकरण है और इसमें भी 'इयङ्' की प्रतिमूर्ति बतानेके चक्करमें कुछका कुछ कह गये हैं। वस्तुतः स्त्रीलिंग इ-ई-कारान्त शब्दोंके बहुवचन रूपमें 'आं' प्रत्यय जुड़ता है और शेष सभी

शब्दोंके बहुवचनमें 'ए'। नियम बस इतना ही है। इसे रूप-रचनाके प्रकरणमें स्पष्ट करेंगे। संधि प्रकरणमें जाननेकी बात केवल यह है कि जिन शब्दोंके अन्तमें ई-ऊ हों। उनमें बहुवचनका प्रत्यय जुड़नेपर ई-ऊ का ह्रस्वीकरण होता है और य-व् की श्रुति होती है। पर वर्तनीमें 'य्' श्रुतिको ही लिखनेका प्रचलन है, 'व्' श्रुति का नहीं। इसलिए 'नदियां-गालियां' देखने सुनने को मिलते हैं, 'बहुवों' नहीं।

(इ) अब-तब-कब-जब और इस-उस-किस आदि के साथ 'ही' के संधिको भी वा. ने समझाया है। उनके अनुसार—“अब, जब, कब, तब अव्ययोंसे अव्यवहित परे यदि 'ही' अव्यय आये तो उन अव्ययोंके अन्त्य 'अ' का वैकल्पिक लोप हो जाता है और तब अवशिष्ट 'व्' तथा (हीं का) 'ह' मिलकर 'भ्' हो जाते हैं और यह 'भ्' अपने उसी पुराने आश्रय (ई) में चिपट जाता है। तब रूप बन जाते हैं—अभी, जभी, कभी, तभी। इसके पश्चात् इम-उस आदि में 'ही' जुड़नेपर केवल 'ई' रह जानेका निर्देश दिया है। पर इस प्रसंगमें भी कोई एक पृष्ठ इस अप्रासंगिक चर्चाका है कि ने-को-से जैसी विभक्तियां (?) मिलाकर लिखी जायें या अलग। पूरा एक पृष्ठ इसपर भी है कि 'कायाकल्प' शब्द किस प्रकार शुद्ध है। यह अनावश्यक अप्रासंगिक विस्तार अनुचित है।

(ई) संस्कृतकी संधियोंकी चर्चा करते हुए वा. ने महत्त्वपूर्ण बात कही है कि “राष्ट्रभाषाका गठन ऐसा है कि समासको बहुत कम स्थान मिलता है और समास होनेपर भी संधियां नहीं होतीं। कांग्रेसअध्यक्ष, कांग्रेसका जैसे प्रयोग ठीक नहीं हैं।

(उ) विसर्ग संधिकी चर्चा करते हुए वा. ने लिखा है : “इसे भी वर्ण संधि कहते हैं, क्योंकि वर्ण में अनुस्वार तथा विसर्ग भी हैं, यद्यपि स्वर या व्यंजनमें नहीं है, अयोगवाह हैं। कहना चाहिये कि स्वर व्यंजन से अतिरिक्त वर्णोंका तीसरा, छोटा-सा परन्तु महत्त्वपूर्ण भेद है।” हम पहले ही बता चुके हैं कि स्वयं वा. की दी हुई परिभाषाको देखें तो अनुस्वार-विसर्ग भी व्यंजन ही हैं। संधिके प्रसंगमें यह प्रश्न उठना भी नहीं चाहिये। पर वा. का स्वभाव है कि जहाँ जो याद आजाये उसका उल्लेख कर देते हैं। फिर भी संस्कृत मूलके शब्दोंकी संधियोंके विषयोंके विषयमें उनकी एक महत्त्वपूर्ण बातका उल्लेख आवश्यक है :—

'प्रकर'—पौष'२०४६—१५



“संस्कृतमें समस्त पद बिना संधि किये—राम आश्रम—  
यों लिखा जाये, तो गलत समझा जायेगा। नित्या  
समासे संहिता—समासमें संधि करना आवश्यक है। परन्तु  
हिन्दीमें ऐसी जगह संधिकी अनिवार्यता नहीं है। ‘राम  
आश्रम’ भी चलेगा। ओर इससेभी बढ़कर, कहीं  
समासमें संधि करनेका एकदम निषेध हिन्दीमें है। जब  
किसी अन्य भाषाका शब्द संस्कृत शब्दके साथ समास  
बंधनमें आताहै, तो संधि नहीं होती। कांग्रेस अंग्रेजी  
भाषाका शब्द हिन्दीमें चल रहाहै। इसका समास किसी  
संस्कृत शब्दके साथ करें तो संधि नहीं होगी। ‘कांग्रेस  
अध्यक्ष और पत्रिकाका का कांग्रेस अंक’, यों बिना  
संधिके ऐसे ‘समस्त’ पद रहेंगे।

हमारे विचारसे नवनिर्मित समस्त तत्सम शब्दों  
में भी संधि नहीं की जानी चाहिये—‘कृषि अनुसंधान  
परिषद्, भारतीय इतिहास परिषद्, अखिल भारतीय  
आयुर्विज्ञान संस्थान, राजस्थान आयुर्वेद संस्थान जैसे  
प्रयोग ही चलने चाहिये। कृष्यनुसंधान, भारतीयेति-  
हास, भारतीयायुर्विज्ञान, राजस्थानायुर्वेद जैसे प्रयोगों  
से बचना ही उचित है। हां, जहाँ एकपदत्व अपेक्षित  
हो वहाँ संधि होगी—विद्यालय, निदेशालय, शिक्षार्थी,  
प्रधानाचार्य आदि।

(क) हमें प्रसन्नता है कि कुछ अन्य भाषाओंके  
विद्वानोंने भी संस्कृतके संधि नियमोंका पाठ्य  
क्रममें समावेश उचित नहीं मानाहै। गुजरातीके  
प्राचार्य कुंजविहारी महेताने एक लेखमें प्रश्न उठाया  
था विद्यालयोंकी गुजराती भाषाकी परीक्षाओंमें ऐसे  
प्रश्न क्यों पूछे जातेहैं—“(क) संधि-विच्छेद करो :  
मनोव्यथा, स्वच्छंद, प्रतिष्ठित। (ख) संधि करो :  
दुस्+गंध, वि+अर्थ, नि+रस, पृथु+ई, मनः+  
राज्य, कृष्+न, सु+अस्थ। प्रा. महेताका प्रश्न सही  
है। सु+अस्थ जैसे उदाहरण उसाकी पुष्टि करतेहैं।  
संधिकी जैसी जानकारी अपेक्षित है वह नीचे दे रहेहैं।

४३. हिन्दीमें संधिका प्रस्तावित स्वरूप : (अ)  
हिन्दीमें पूर्वापर वर्णोंमें संधिका नियम सर्वत्र नहीं है।  
कुछ शब्दोंमें संधि होतीहै। उन्हें गिनाना असंभव नहीं  
है। जेयाकरण चाहें तो पूरी तालिका दे सकतेहैं किस  
किस शब्दमें क्या स्वन-परिवर्तन होताहै यहभी बता  
सकतेहैं। अब-तब-जब-कब-सब आदिके साथही जुड़ने  
पर ब+ही = भी होताहै। किंतु ब+ह का संयोग  
सदा भ नहीं बनता। मतलब ही—जबाब ही आदि  
यथा-वत् बने रहतेहैं। (आ) इस-उस-किस आदिके

पश्चात् ‘ही’ आता है तो ह् का लोप होकर ई जुड़  
जाताहै और यों बनतेहैं इसी-उसी-किसी आदि।

(इ) हम-तुम-इन-उन-किन आदिके पश्चात् ‘ही’  
आताहै तो यथावत् बना रहताहै पर अनुनासिक  
व्यंजनोंके प्रभावसे ई स्वर भी अनुनासिक बन जाता  
है। फलतः हमीं-तुम्हीं-इन्हीं-उन्हीं-किन्हीं आदि रूप  
प्राप्त होतेहैं

(ई) यहाँ-वहाँ-कहाँ के पश्चात् ‘ही’ आताहै  
तो एक ह् का लोप होकर शेष बचे ह् में अनुनासिक  
ई जुड़कर यहीं-वहीं-कहीं रूप बनतेहैं।

(उ) तुम-इन-उन-किन में ए परस्थानिक जुड़ता  
है तब ह् का आगम होकर तुम्हें-इन्हें-उन्हें-किन्हें रूप  
बनतेहैं। हम के पश्चात् ए जुड़नेपर हमें बनताहै। इन  
सबमें ए के अनुनासिक हो जानेका कारण (इ) में देखें।

(ए) स्वरान्त धातुओंमें क्तार्थक आ प्रत्यय जुड़ने  
पर उससे पूर्व य्-व् श्रुतियोंका आगम हो जाताहै;  
विशेषकर उ-कारान्त धातुओंमें व् का आगम होताहै  
शेषमें य् का। यथा : खाया-गाया-पढ़ाया-पाया-भाया;  
समाया; पिया, जिया-सिया; खेया-सेया-दिया-लिया;  
खोया-धोया-पोया-बोया-रोया-सोया आदि; किंतु हुवा  
छुवा। इनमें दिया-लिया और हुवा-छुवा विचारणीय  
हैं। एकारान्त धातुओंमें आ जुड़नेपर ह्रस्वीभावकी  
प्रवृत्ति होतीहै। इसलिए रूप देया-लेया बनने चाहिये  
थे पर लिपिमें ह्रस्व ए की विद्यमानता न होनेके कारण  
इ का प्रयोग किया जाताहै। पर सेया इसलिए बना  
रहा कि सिया करने पर वह सी का आन्त रूप होता।  
ऐसाही कुछ कारण खेया का रहा होगा। छुवा प्रयोग  
तो स्पष्ट है पर हुवा को खोया-धोया आदिके साम्य  
पर होया होना चाहियेथा इसे अपवाद मानना होगा।  
छुवा-हुवा दोनोंही में व लिखा नहीं जाता यद्यपि  
उच्चरित होताहै। वर्तनी निर्धारित करनेवालोंकी  
रुचिके कारण है।

(ऐ) ले+आ = ला : यह विशिष्ट संधि है क्योंकि  
ऐसा इसी प्रसंगमें हुआ है। दे+आ, से+आ खे+आ  
आदिमें यदि इस संधिका पालन होता तो दा-सा-खा  
जैसे प्रयोग होते, पर वे नहीं हुए। अतः इसे विशिष्ट  
संधि कहना उचित है।

(ओ) तत्सम शब्दोंमें विद्यमान संधि नियमोंके  
अनुकरणपः तत्समके साथ तद्भव या विदेशी शब्द  
आये तो उनके बीच संधि न की जाये।



अर्थात् डाकघराध्यक्ष—जेलसाध्यक्ष—कांग्रेससाध्यक्ष, स्कूलाचार्य—मदरसाचार्य जैसे न प्रयुक्त किये जायें।

(औ) संस्कृतके वैयाकरण दीर्घ, गुण, वृद्धि, यण आदिकी चर्चा संधि प्रकरणमें करतेहैं और इनका उपयोग शब्दोंकी रूप रचना स्पष्ट करके समझानेमें भी होताहै। अतः चाहें तो हिन्दीके पिटना-पीटना, मरना-मारना, कटना-काटना, फटना-फाड़ना, जैसे भोक्ता-कर्ताके भेदों, पढ़ना-पढ़ाना-चलना-चलाना, करना-कराना जैसे आत्मने-परस्मै भेदों और चलाना-चलाना-चलवाना, करना कराना-करवाना, चढ़ना-चढ़ाना चढ़वाना, पढ़ना-पढ़ाना-पढ़वाना, दौड़ना-दौड़ाना-दौड़वाना आदिके 'वा' युक्त तीसरे रूपोंको संधि प्रकरणमें सम्मिलित कर सकतेहैं। पर हमारे विचारसे ये शब्द रूप रचनाके विषय हैं और यह रूप-

रचना कुछ प्रत्ययोंके संयोगसे होतीहै अतः यह प्रकरण भी अन्य प्रत्ययोंके साथही रखना अधिक उचित होगा।

निष्कर्ष स्वरूप हम पुनः आग्रह करेंगे गु. दी. आदिके द्वारा दिये हुए संस्कृतके विस्तृत संधि नियमोंसे हिन्दीके छात्रको न लादा जाये। ऐसे शब्दोंकी संधि समझाना तो पूर्णतः व्यर्थ है जो कभी हिन्दीमें प्रयुक्त ही नहीं होते और जिनकी संधि-प्रक्रिया जानना संस्कृतके भी साधारण छात्रके लिए विशेष उपयोगी नहीं है हिन्दीके अपने शब्दोंमें दृष्टिगोचर होने वाली संधियां अवश्य समझायी जायें पर वा. की तरह अपनी कल्पना करके नहीं। वास्तविक संधियां ही बतायी जायें। [१]

—क्रमशः

## अनुशीलन-शोध

### दिक्-काल सर्जना?

[सन्दर्भ : आधुनिक हिन्दी कविता]

लेखक : डॉ. वीरेन्द्रसिंह

समीक्षक : डॉ. राघवप्रकाश

डॉ. वीरेन्द्रसिंह हिन्दीकी समकालीन आलोचना पर और विशेष रूपसे अन्तःअनुशासनीय-आलोचनापर निरन्तर और नियोजित रूपमें लिख रहेहैं। १९६४ में प्रकाशित उनके शोध प्रबन्ध—हिन्दी कवितामें प्रतीकवाद—के बाद डॉ. सिंहने लगभग डेढ़ दर्जन समीक्षा-ग्रन्थोंमें हिन्दी कविताको वैज्ञानिक चिन्तन, प्रतीकदर्शन, बिम्ब, मिथक, विचार-संवेदन एवं कविताकी अन्तःअनुशासनीयता तथा अब 'दिक्-काल सर्जना' के

परिप्रेक्ष्यमें परखनेका बहुत सूक्ष्म एवं श्रमसाध्य काय कियाहै। यह सृजनशील स्वरूपका क्रमबद्ध अध्ययन है, इसलिए यह हमारा ध्यान गम्भीरतापूर्वक आकृष्ट करताहै कि साहित्यमें दिक् और कालका क्या कोई सर्जनात्मक पक्ष भी होताहै और यदि होताहै तो उसको डॉ. वीरेन्द्रसिंहके शब्दोंमें 'लोकेट' कैसे किया जा सकताहै ?

दिक् और काल मूलतः दर्शनशास्त्र और विशेषतः विज्ञान दर्शनके महत्त्वपूर्ण दर्शनके प्रत्यय रहेहैं और विगत एक शताब्दीमें विज्ञान दर्शनमें हुए तीव्र विकास ने इन प्रत्ययोंकी अवधारणाओंको भी शीघ्रतासे बदला है। आइंस्टीनकी स्थापनाओंके बाद दिक् और काल द्रव्य-सापेक्ष हैं। 'द्रव्यके न रहनेपर दिक् और काल का अस्तित्व भी नहीं रहेगा (पृ. १७)। दिक्के तीन आयाम (त्रिविमीय) लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई हैं और कालका एक आयाम लम्बाई है जो कालकी गति-

१. प्रका. : विवेक पब्लिशिंग हाउस, धमाणी मार्केट,

चौड़ा रास्ता, जयपुर (राजस्थान)। पृष्ठ :

१५६; डिमा. ६२; मूल्य : ६५.०० रु.।

'प्रकर'—पौष २०४६—१७



शीलताको व्यक्त करता है। अतः ससृष्टि, ब्रह्माण्ड, दिक् और कालके चतुर्विध विस्तारमें अवस्थित है।" (पृ. १७-१८)। प्रश्न यह है कि दिक् और कालके सन्दर्भमें विज्ञानकी ये बदलती हुई एवं अब अधुनातन अवधारणाएं साहित्य-सर्जनामें क्या भूमिका निभाती हैं? जब हम साहित्य-शास्त्रके क्षेत्रमें दिक्-कालकी सर्जनात्मकतापर विचार करते हैं तो हमारे सामने दो समतुल्य प्रश्न उपस्थित होते हैं—प्रथम तो यह कि दर्शन, धर्म और विज्ञान आदिके क्षेत्रके दिक्-काल सम्बन्धी प्रत्यय साहित्यमें (डॉ. वीरेन्द्रसिंहके इस अध्ययनके सन्दर्भ में) समकालीन हिन्दी कवितामें और संवेदनाके रूपमें रूपांतरित होते हैं तो उनका स्वरूप किस प्रकारका होता है? दूसरा प्रश्न यह कि लेखकका दिक् और काल बोध सृजन-प्रक्रियाके द्वारा साहित्यकी विभिन्न विधाओंकी संरचनाको किस रूपमें रूपायित करता है? डॉ. वीरेन्द्रसिंहने अपने इस अध्ययनमें आधुनिक हिन्दी कविताके सभी पड़ावोंको खोलते हुए मूलतः इस प्रथम प्रश्नके उत्तरको खोजनेका विशेष प्रयत्न किया है। साहित्यके सन्दर्भमें वैज्ञानिक अवधारणाओं और विशेष रूपसे दिक्-कालके अध्ययनके इस प्रारम्भिक दौरमें पहले इस प्रथम प्रश्नकी ही खोज की जानी थी और डॉ. सिंहने इस नवीन अध्ययन-क्षेत्रकी आधार-भूत अपेक्षाको पूरा करके हिन्दी समीक्षामें एक ऐतिहासिक कार्य किया है। इस पुस्तकमें उनका विवेचन पक्ष बहुत सूक्ष्म, अतः चिन्तनशील हो उठा है जो हिन्दी आलोचनाके लिए गौरवकी बात है।

डॉ. वीरेन्द्रसिंहकी आधारभूत स्थापना यह है कि "दिक् और कालका रूपान्तरण रचनाकारके ज्ञान-संवेदन और उसके अनुभव-बिम्बोंपर आधारित होता है। उस प्रक्रियामें रचनाकार दिक् और कालके अवधारणात्मक या प्रत्ययात्मक रूपसे टकराता है और उसे अनुभव बिम्बोंके द्वारा रचनात्मक सन्दर्भ देता है। यह रचनात्मक सन्दर्भ उतनाही व्यापक और अर्थवान् होगा जितना कवि दिक् और कालके सापेक्ष रूपके प्रति जागरूक होगा। यह जागरूकता दिक्-कालके प्रत्ययात्मक रूपके द्वारा ही सम्भव होगी (पृ. २७)।" अपनी इसी स्थापनाकी पुष्टिकी अध्ययन-यात्रामें उन्होंने हिन्दी कविताके उदाहरणोंके साथ यह पाया है कि हिन्दीके नवजागरणकालीन काव्यमें दिक्-कालका "प्रारम्भिक रूपही द्रष्टव्य है जो ऐतिहासिक सामा-

'प्रकर—दिसम्बर' ६२—१८

जित एवं कल्प सीमा तक चिन्तन पक्षको भी संस्पर्शित करता है।" छायावादमें दिक्-कालके रूपाकार सूक्ष्म संकेतोंके व्यंजक हैं, स्वच्छन्दतावादमें इनका रूप अधिक तरल और स्थूल हो जाता है जो परिवर्तित काल-बोध का फल है। नयी कवितामें आकर ये रूपाकार विचार-संवेदनसे अधिक गहरानेके कारण जागतिक एवं तात्त्विक सन्दर्भोंको इस प्रकार व्यंजित करते हैं कि उनमें चिन्तन और संवेदनका घोल अपनी पराकाष्ठाको छूता हुआ नजर आता है। यही कारण है कि नयी कवितामें दिक्-कालका चिन्तनपरक रूप अपेक्षाकृत अधिक उजागर होता है जो यह तथ्य प्रकट करता है कि चिन्तनशील एवं संवेदनशील सृजनमें दिक्-काल सर्जनाके प्रत्ययात्मक रूपका अधिक स्पष्ट रूप लक्षित होता है। (पृ. १५१-५२)।

डॉ. वीरेन्द्रसिंहका यह विवेचन आधुनिक हिन्दी कवितामें दिक् एवं कालसे सम्बन्धित प्रयुक्त हुए शब्दों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। प्रयुक्त शब्द हैं—वर्तमान, भूत, भविष्य, काल, समय, क्षण, पल, दिन, घड़ी, युग, कल्प, सीमा, भूगोल, खगोल, नियति, प्रकृति, गगन, गागर, सागर, सनातन, अनन्त, लघु, आकार, रात, प्रातः, सीमित, असीम, फिर-फिर, देश, मृत्यु, विश्व, परिवर्तन, विराट्, संस्कृति, विराम, गति, नभ, असंख्य, कालावधि, कालपुरुष, वक्त, शून्य, दिक्, दिगंत, दिगंतर, उस पार, प्रत्यावर्तन, अतीत, अवकाश, अणु, अविराम, महाचित्ति, शाश्वत, अतल, अनादि, पूर्ण, अपार, निमिष, संवत्सर, ऊर्ध्व, इतिहास, काल-चक्र, यज्ञ-पुरुष, महाकाल, प्रलय, आकाश, दूर-दूर, ईश्वर, स्थान आदि। दिक्-कालकी अवधारणाको व्यक्त करनेमें ये शब्द निश्चयही हमारा ध्यान खींचते हैं और यह भी बताते हैं कि हिन्दी कवियोंने अलग-अलग सन्दर्भोंमें इन शब्दोंके द्वारा दिक् और कालसे संबंधित संवेदनोंको व्यक्त किया है। आधुनिक युगमें दिक् और कालके पराक्रमी परिवर्तनने मनुष्यको इतना विचलित कर दिया है कि वह बहुत-सी उत्कृष्ट कविताओंका केन्द्रीय संवेदन रहा है, अतः श्रेष्ठ काव्यत्वका आधार भी बना है। लेकिन यह भी सच है, और शायद बड़ा सच है, कि इन दिक्-काल सूचक शब्दोंके घनघोर प्रयोगके बावजूद वे शब्द प्रायः विचारोंके ठूँठ भर रह गये हैं और संवेदनको अंकुरित नहीं कर सके हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ. वीरेन्द्रसिंहने कवितामें दिक्-



कालके प्रत्ययगत रूपको ही नहीं बल्कि संवेदनगत रूप को खोजनेमें भी उक्त शब्दोंके प्रयोगोंको खोजनेका अग्राह विकसित कर लिया है, इससे जहाँ इन शब्दोंके द्वारा संवेदना व्यक्त हुई है और कविता बन पड़ी है वहाँ तो अध्ययन सार्थक हो गया है किन्तु जहाँ ऐसा नहीं हो पाया वहाँ दो प्रकारकी सीमाएँ आ खड़ी हुई हैं—एक तो यह कि इन शब्दोंसे भरे हुए बहुत-से ऐसे वाक्यों को उदाहरणके रूपमें स्वीकार कर लिया गया है जो कि वस्तुतः कविता ही नहीं हैं, जैसे—पंतकी ही 'युगवाणी' से ये पंक्तियाँ—

देश-काल स्थितिसे मानवता रही सदा ही बाधित।/देश-काल स्थितिको बसमें कर, करना है परिचालित ।

या फिर साठोत्तरी कालमें देवेन्द्रकुमारकी 'बहस जखरी है' कविताकी ये पंक्तियाँ—

भूत भविष्य और वर्तमान/बहुत कुछ अनुभव, अध्ययन और/अपने निजी अनुदर्शनपर/मुनस्सर करता है ।

स्पष्ट है कि दिक्-कालसे सम्बन्धित इन शब्दोंमें कोई सर्जना नहीं है तो फिर ये काव्य-समीक्षामें अध्ययनका विषय क्यों ? इनमें तो ज्ञानकी भी कोई नयी छटा नहीं है फिर ज्ञान-सृजनकी तो दूरकी बात है ।

किन्तु दूसरी सीमा अधिक महत्त्वपूर्ण है और ध्यान देने योग्य है । वस्तुतः कवितामें अप्रस्तुत महत्त्वपूर्ण होता है जो किसी प्रस्तुतके द्वारा व्यक्त किया जाता है । कविताकी संरचनाके इस आधारभूत रहस्यको जानते हुए हिन्दीकी वास्तविक कविताकी पड़ताल इस रूपमें की जानी चाहिये कि दिक्-कालसे सम्बन्धित वह काव्य-संवेदन वस्तुतः उन शब्दोंके द्वारा व्यक्त हुआ है जो दिक् और कालके प्रत्यक्ष सूचक हैं या उन शब्दोंके द्वारा व्यक्त हुआ है जो दिक्-कालको परोक्ष रूपमें व्यंजित करते हैं । वस्तुतः दिक्-काल सम्बन्धी काव्य अभिव्यक्तियाँ दिक्-कालके अभिधार्थी शब्दोंसे बचती रही हैं, जैसे मुक्तिबोधकी 'अंधेरे में' कविताकी ये पंक्तियाँ जो दिक् और काल दोनोंके आयामोंको एकाकार करती हुई दिक् और कालको संवेदनमें रूपांतरित करती हैं और जिन्हें डॉ. वीरेन्द्रसिंहने ही उद्धृत किया है—

अंधेरेमें डूबे मकानोंमें छप्परों पारसे

रोनेकी पतली-सी आवाज

सूनेमें कांप रही, कांप रही दूरतक ।

इस कवितामें अंधेरा, अंधेरेमें डूबे मकान, छप्पर और छप्परोंके पार, रोना एक पतली-सी आवाजमें, सूनापन, सूनेपनमें कांपना आवाजका, कांपते रहना और दूरतक कांपते रहना है । यहाँ दिक् और कालके प्रत्ययको प्रत्यक्षीकृत करता हुआ एकभी शब्द नहीं है किन्तु सभी शब्द एकके बाद मानवीय पीड़ाकी धुरीपर दिक् और कालकी अन्तर्निहित अभिव्यक्तिको, उनके तनाव और दबावको, परोक्ष रूपमें व्यंजित कर रहे हैं । दिक्-काल सर्जनाकी यही सच्ची खोज है । किन्तु डॉ. वीरेन्द्रसिंहके अध्ययनमें इस कोटिकी तलाश उपेक्षित रही है । ऐसा लगता है कि वे कवितामें विचार-संवेदन के अपने स्थापित आग्रहके कारण बहुत बार पहले विचारको पकड़नेमें अधिक जूझ जाते हैं और संवेदन वाली अपनीही महत्त्वपूर्ण शक्तोंकी उपेक्षा कर देते हैं ।

वस्तुतः मनुष्यका कोईभी अनुभव दिक्-कालसे परे नहीं है । ऐसा नहीं है कि दिक्-काल कोई प्रत्यय का रूप धारणकर दिक्-काल सम्बन्धी विचार-शब्दोंके रूपमें ही साहित्यमें व्यक्त होता हो, सच्चाई तो यह है कि ऐसे विचारोंके ऐसे बीज-शब्द काव्य-बिम्बोंमें बहुत कम ढल पाते हैं । कवि एक कृतिमें घटनाओं, चरित्रों और सम्पूर्ण परिवेशको, और इस प्रकार कृतिकी संपूर्ण संरचनाको, जिस रूपमें सृजित करता है उसके रेशे-रेखे में उसका दिक्-काल बोध अनुस्यूत रहता है । वह उन शब्दोंमें भी समोया हुआ रहता है जो विशुद्ध संवेदन रूप हैं, अर्थात् बिम्ब रूप हैं । क्योंकि रचनामें दिक् और काल घटना-बिम्ब, चरित्र-बिम्ब, परिवेश-बिम्ब और शब्द-बिम्बके माध्यमसे संकेतित (कोडीफाईड) होता है इसलिए आलोचनामें इसी संकेतीकरणको छीलकर उसके काव्य-सारको बाहर निकालने (डिकोड करने) की आवश्यकता होती है जिसके लिए कृतिकी संपूर्ण संरचनाकी संपूर्ण एवं सावयविक व्याख्या आवश्यक होती है । कविताके सन्दर्भमें हम इस मूल साहित्य-शास्त्रीय दृष्टिसे इधर-उधर नहीं हों कि केवल संवेदना ही व्यंग्य है बाकी सभी कुछ व्यंजक है । अतः दिक् और कालके प्रत्यय और उन प्रत्ययोंके प्रत्यक्ष बोधक शब्द सभी व्यंजक हैं । और इन व्यंजक प्रत्ययोंको सीधे व्यंजक शब्दों द्वारा कवितामें व्यक्त करना जहाँ कविताकी कमजोरी है वहाँ इन प्रत्यय व्यंजक शब्दोंके



द्वारा काव्य-संवेदनको पकड़ना आलोचनाकी प्रथम शर्त है।

ठीक इससे सटी हुई बात एक और है कि दिक्-काल-सूचक शब्द क्या सचमुच दिक्-कालके प्रत्ययको यासंवेदनको व्यक्त करतेभी हैं? पंक्तियों दो पंक्तियाँ हैं—

‘मिलनके पल केवल दो चार  
विरहके कल्प अपार।’

इन पंक्तियोंमें ‘पल’ और ‘कल्प’ शब्द कालकी दो इकाईयोंके सूचक शब्द हैं किन्तु क्यों यहां इन काल-सूचक शब्दोंके मध्यमसे कालपर कोई टिप्पणी की गयी है या कोई काल-संवेदन प्रकट किया गया है? मिलन-जन्य सुख और विरह-जन्य दुःखकी मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों स्तरकी भिन्नताओंको केवल ‘पल’ और ‘कल्प’ शब्दोंके माध्यमसे व्यंजित किया गया है। वस्तुतः यहां सुख और दुःखका भाव ही अप्रस्तुत है और पल एवं कल्प प्रस्तुत। विचार और काव्यके क्षेत्रमें शब्दों की भूमिकाएं एवं प्रकार्य भिन्न-भिन्न होतेहैं और हम जानतेहैं कि इस भिन्नताको समझनेकी थोड़ी-सी चूक से विश्वके उत्कृष्ट दर्शन और काव्य दोनोंकी व्याख्याओंमें भयंकर गलतियाँ हुईहैं। इसलिए कविताको दिक्-कालके परिप्रेक्ष्यमें समझनेके लिए कविताके सृजन-धर्मी चरित्रको बराबर दृष्टिमें रखनेकी आवश्यकता है।

अन्तमें, एक बात और। कविताको समझनेमें डॉ. वीरेन्द्रसिंहका अन्तःअनुशासनीय और सम्प्रति दिक्-कालका यह महत्त्वपूर्ण समीक्षा अभियान कविताको कई महत्त्वपूर्ण अछूते कोणोंसे देखनेकी राह सुझाता है। कविताका यह अन्तःअनुशासनीय विवेचन कविताको साहित्येतर विषयोंमें भी प्रासंगिक बनाता है तथा कविता के संवेदनकी विचार-मूलक नयी व्याख्या भी करता है, किन्तु आजकी हिन्दी आलोचनाकी मूल चुनौती तो वास्तविक कविताकी पहचान करना है। हम जानतेहैं कि पिछली पांच दशकोंमें हिन्दी आलोचनाने विचार-शीलताको चाबुककी भांति प्रयुक्तकर कविताकी सृजन-शीलताकी जो धुनायी की है उससे हिन्दी कविता विचारों के अलग-अलग बाड़ोंमें कैद होकर अबतक भी सिकुड़ी-सिमटी घुटनोंमें सिर दिये बैठी है। डॉ. वीरेन्द्रसिंह विचारके दुराग्रहोंसे मुक्त एक सुधी आलोचक हैं, अपनी सहृदयतावश वे हिन्दी आलोचना और कविता

‘प्रकर’—दिसम्बर’६२—२०

के अन्तःअनुशासनीय अंगोंको खूब समझतेहैं इसलिए उनसे यह अपेक्षा स्वाभाविक ही कीजा सकती है कि वे समीक्षाके अन्तःअनुशासनीय मानदण्डोंके आधारपर कमसे कम अच्छी-भली कविताके विरुद्ध तो कोई अनु-शासनात्मक कार्यवाही नहीं ही करेंगे तथा कवितामें विचारकी खोजके आग्रहसे यदि कविताका अपना अनु-शासन भंग हो रहा हो तो वे अपनी अन्तःअनुशासनीयता को छोड़कर पहले कविताको बचायेंगे। [१]

## वक्रोक्ति सिद्धान्तके परिप्रेक्ष्यमें हिन्दी- कृष्ण-काव्यका अनुशीलन

लेखक : डॉ. रघुनन्दन कुमार ‘विमलेश’

समीक्षक : डॉ. मानवेन्द्र पाठक

काव्यकी चारुताके मूलाधारको आत्मा मानकर उसके अनुसंधानका प्रयत्न भारतीय-काव्याचार्योंकी चिन्तन गंभीरताका परिचायक है। इस सम्बन्धमें प्रायः छः सिद्धान्तोंका उल्लेख मिलता है—रस-सिद्धान्त, अलंकार-सिद्धान्त, रीति-सिद्धान्त, वक्रोक्ति-सिद्धान्त, ध्वनि-सिद्धान्त और औचित्य सिद्धान्त। काव्यके विभिन्न अंगोंमें किसी एकपर बल देने और महत्त्व प्रदान करनेके आधारपर ही ये सिद्धान्त अस्तित्वमें आये, किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि कोईभी सम्प्रदाय काव्यके इतर अंगोंकी नितान्त उपेक्षा करता है। वस्तुतः काव्यके मौलिक तत्त्व दो ही हैं—रस और कला। इस दृष्टिसे कलाका विवेचन काव्यशास्त्रमें रसके विवेचनके समान ही महत्त्वपूर्ण है। वक्रोक्ति-सिद्धान्तने इसी कला-तत्त्वकी मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत कर भारतीय काव्य-शास्त्रमें अपूर्व योगदान दिया है।

कृष्ण भक्ति काव्योंमें यद्यपि रसवादकी प्रधानता रही, फिरभी भावकी समृद्धिके साथ-साथ कला-वैचित्र्यका भी सम्यक् विकास हुआ है। उल्लेखनीय है कि अभिव्यंजनामें चमत्कार उत्पन्न करनेके लिए कृष्ण भक्त कवियोंने वक्रोक्तिके प्रायः सभी भेदोंका आश्रय लिया है। प्रस्तुत ग्रन्थके लेखकने कृष्ण भक्ति काव्योंमें

१. प्रका. : ईस्टर्न बुक लिंकर्स, ५८२५, नयी चन्द्रा-वल, जवाहरनगर, दिल्ली-११०००७। पृष्ठ : १६ + ३७६; डिमा. ६१; मूल्य : २००.०० रु.।



निहित वक्रोक्तिके इन्हीं भेदोंको श्रमपूर्वक रेखांकित करनेका प्रयास किया है; जो लेखकका एक मौलिक एवं अभिनव प्रयास है।

आलोच्य ग्रन्थ आठ अध्यायोंमें विभाजित है। ग्रन्थके प्रथम अध्याय—‘वक्रोक्ति सिद्धान्तः सैद्धान्तिक विवेचन’—में वक्रोक्ति सिद्धान्तकी सैद्धान्तिक एवं ऐतिहासिक चर्चा की गयी है। इस अध्यायमें लेखकने वक्रोक्तिका अन्य काव्य-सिद्धान्तोंके साथ साम्य एवं वैषम्यभी प्रदर्शित किया है। लेखकने कुन्तकके विवेचनको ही प्रामाणिक माना है; इसलिए इस अध्यायमें नवीनता एवं मौलिकताके लिए अवकाश नहीं है। यहाँतक तो ठीक है; किन्तु हिन्दी आलोचकोंकी वक्रोक्ति विषयक अवधारणा को आत्मसात् न कर पानेके कारण लेखकने कहीं-कहीं परस्पर विरोधी स्थापनाएं भी की हैं। एक स्थानपर उसने लिखा है कि “द्विवेदी-युगमें आचार्य शुक्लने वक्रतापर सबसे प्रबल प्रहार किया है”—(पृष्ठ संख्या-२६)। एवं दूसरे स्थानपर वह लिखता है—“आचार्य शुक्लने कुन्तककी वक्रताका खण्डन (विरोध) कहीं नहीं किया” (पृष्ठ संख्या-३०)। ग्रन्थमें इस प्रकार की भूलें एकाग्रता एवं पूर्वकथनमें साम्यके अभावके कारण उपलब्ध हैं।

दूसरे अध्यायसे सातवें अध्याय पर्यन्त लेखकने क्रमशः वर्ण-विन्यास वक्रता, पदपूर्वाद्धं वक्रता, पद पराद्धं वक्रता, वस्तु वक्रता, प्रकरण वक्रता एवं प्रबन्ध वक्रताके स्थलोंको हिन्दी कृष्णकाव्योंसे श्रमपूर्वक रेखांकित किया है। इन अध्यायोंमें विमलेशजीने वक्रोक्ति के अनेक भेदोंको सरल ढंगसे उदाहरण सहित प्रस्तुत करनेमें अनेक स्थलोंपर अपने कौशलका परिचय भी दिया है, किन्तु वक्रता-भेदोंके प्रयोगसे उत्पन्न भाव-सौंदर्यको उद्घाटित न करना इस ग्रन्थका एक दुर्बल पक्ष है। अंतिम अध्याय उपसंहारका है, जिसमें लेखकने अपने अध्ययनके कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। अन्तमें बाईस पृष्ठीय परिशिष्टमें हिन्दी कृष्ण-काव्यों, सहायक ग्रन्थों, शोध-प्रबन्धों एवं आलोचना ग्रन्थोंका उल्लेख इस ग्रन्थको शोधार्थियोंके लिए स्रोत सूचनाके रूपमें उपादेय बनाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ पी-एच. डी. की उपाधिके लिए लिखा गया शोध-प्रबन्ध है और शोधके अपने तीन विशिष्ट तत्त्व हैं—अनुपलब्ध तथ्योंका अन्वेषण, उपलब्ध तथ्यों अथवा सिद्धान्तोंका नवीन आख्यान एवं

ज्ञान-क्षेत्रका विस्तार अर्थात् मौलिकता। डॉ. विमलेश की प्रस्तुत कृतिमें तथ्यानुसंधानकी प्रवृत्तिही अधिक है। इसमें तथ्याख्यानकी प्रवृत्तिका सर्वथा अभाव दिखायी देता है। लेखककी मनीषा आद्योपान्त उपलब्ध तथ्योंके आधारपर काव्यके मर्मके उद्घाटनमें प्रवृत्त नहीं होती। उदाहरणके लिए भ्रमरगीत काव्योंमें वैषम्यमूलक अलंकारोंकी प्रवृत्ति अधिक है, यह एक उपयोगी तथ्य है; इसकी व्यंजना यह है कि इन काव्यों में वैदग्ध्यकी प्रधानता है। आगे चलकर यह भी तथ्य हो जाता है और इस महत्त्वपूर्ण स्थितिको ध्वनित करता है कि भ्रमरगीत काव्योंमें बुद्धि-कौशलका प्राधान्य है। इस प्रकार एक तथ्य दूसरे तथ्यकी व्यंजना करता हुआ काव्यके मर्म तक पहुंचनेमें सहायक होता है। किन्तु समीक्ष्य ग्रन्थमें इस प्रकारका तथ्याख्यान नहीं है।

सम्पूर्ण अध्ययनके उपरान्त भी लेखक किसी एक निष्कर्षपर नहीं पहुंचा है; इसमें विषयकी व्यापकता बाधक है। विषयका क्षेत्र और सीमा निश्चित होनी चाहिये थी। प्रस्तुत कृतिमें उसका निर्धारण न होनेसे विषयकी गंभीरता जाती रही है; उसका संग्रह-पक्ष बढ़ता गया है किन्तु सिद्धान्त-पक्ष दुर्बल और क्षीण होता गया है। इसमें संदेह नहीं कि उत्तम शोध-ग्रन्थमें किसी न किसी प्रकारकी प्रतिज्ञा एवं उसकी सिद्धि होनी चाहिये। हिन्दी कृष्ण-काव्यपर इतना अधिक कार्य हो चुका है कि अब इस प्रकारके प्रतिज्ञात्मक शोध-कार्य ही होने चाहिये। इस ग्रन्थमें लेखककी मूल प्रतिज्ञा है कि सम्पूर्ण-कृष्णकाव्य वक्रोक्ति प्रधान काव्य है एवं उसकी उत्कृष्टताका कारण वक्रोक्तिही है (“यह कैसी अनोखी विडम्बना है कि भारतीय काव्यशास्त्रके सर्वाधिक और इस प्रख्यात सिद्धान्तको अलंकार मात्र ही माना गया है। क्या इसे वाक् चातुर्य मात्र कहनाही समीचीन है? बस, यही एक प्रश्नचिह्न इस प्रबन्धमें मूल प्रेरक शक्तिके रूपमें अविरल कार्य करता रहा है” प्राक्कथन पृष्ठ XI)। लेखककी यह महत्त्वपूर्ण स्थापना उपसंहार में द्रष्टव्य है—“निश्चयही वक्रोक्तिकी प्रधानताके चार सन्निवेशके कारण कृष्ण-काव्यने उत्कृष्ट काव्यकी कोटि में अपना स्थान बनाया है” (पृष्ठ-३५३)। किन्तु लेखकको अपनी इस प्रस्थापनाको सिद्ध करनेमें सफलता नहीं मिली है; क्योंकि उसकी मूल प्रतिज्ञाही भ्रामक है। भाव-संस्पर्शके बिना केवल उक्ति-वैचित्र्य या चमत्कार काव्य नहीं होसकता। वक्रोक्ति-सिद्धान्त कुन्तकके



साथही समाप्त होगया और कालान्तरमें कुन्तककी यह वक्रता कवि-व्यापारका पर्याय बन गयी। इस दृष्टिसे हिन्दी-साहित्य अथवा किसीभी साहित्यमें वक्रताके प्रयोगोंका सर्वथा अभाव नहीं होसकता। परन्तु प्रश्न प्रयोगका नहीं, सिद्धान्तका है। सिद्धान्तकी दृष्टिसे कृष्णभक्त कवियोंका वक्रोक्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं है, उन्होंने कुन्तककी वक्रोक्तिको प्रसाधनके रूपमें ही ग्रहण कियाहै, आत्माके रूपमें नहीं।

अनुसंधानका तीसरा प्रमुख तत्त्व है—ज्ञानक्षेत्र का सीमा विस्तार। वास्तवमें यही अनुसंधानका व्यावर्तक धर्म है। इस दृष्टिसे लेखकने उपसंहारमें अपनी कुछ संतुलित एवं सुव्यवस्थित स्थापनाएं कीहैं। लेखक ने कृतिमें आद्योपान्त शास्त्रीय, संतुलित एवं परिमित भाषाका उपयोग कियाहै। तथ्यों एवं विमर्शकी प्रधानताके कारण लेखनकी शैली वस्तुगत है। तथ्योंके संग्रह एवं उपयोग दोनोंमें अनुसंधानकर्त्ता बहुत सजग रहाहै। समीक्ष्य पुस्तकमें वर्तनीकी अशुद्धियां यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होतीहैं, आशाहै अगले संस्करणमें इन्हें सुधार लिया जायेगा। प्रकाशकने पुस्तकका मूल्य पर्याप्त अधिक रखाहै, जिससे पुस्तक व्यक्तिगत क्रय-सीमामें नहीं है। मध्यकालीन साहित्य एवं साहित्य-शास्त्रके पाठकोंके लिए यह कृति पठनीय और पुस्तकालयोंके लिए संग्रहणीय है। [१]

## नये कवि : एक अध्ययन<sup>१</sup>

[भाग ३, भाग ४]

लेखक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

समीक्षक : डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी

कहाजा सकताहै कि हिन्दी समीक्षापर लगाये जानवाले सभी आरोप अकारण नहीं हैं। अधिकांश समीक्षक अराजकता निरंकुशता, दायित्वहीनता और सतही दलबन्दीके 'ऐसे दलदलमें धंसेहैं कि निष्ठावान् एवं सार्थक समीक्षा लुप्तप्राय हो गयीहै। सारा वाता-

१. प्रका. : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, २७१३ कूचा चेलान, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२।

भाग ३ : पृष्ठ : २०३, का. ६१; मूल्य : ६५.००

रु.। भाग ४ : पृष्ठ : २४८; का. ६१; मूल्य : ७५.०० रु.।

वरण ऐमे नीम हकीमोंसे आच्छादित है, जिनकी तथा-कथित आलोचनामें न तो अध्ययनका आसव है और न विश्लेषणका रसायन। हिन्दीका प्रत्येक समीक्षक अपने आपको साहित्यका अगाध मर्मज्ञ समझताहै और अकादमिक, वैदुष्यको निरादरकी दृष्टिसे देखताहै। यही कारण है कि डॉ. संतोषकुमार तिवारी जैसे निपट वादमुक्त और अकादमिक समीक्षककी पहचान प्रति-बद्धता तथा गुटबाजीकी आंधीमें सुरक्षित नहीं है, जबकि डॉ. तिवारीने पूरी निष्ठाके साथ कवि कर्म की प्रासंगिक व्याख्या कीहै। उन्होंने कवि और उसकी कविताको केवल कवि और कविताके रूपमें विश्लेषित कियाहै। उनके पास मूल्यांकनकी न तो कोई राजनीतिक कसौटी है और न इस या उस आन्दोलनसे बंधी हुई मूल्य-दृष्टि है। उनके लिए कविता पहले मात्र कविता है और यही स्वीकारकर उन्होंने हिन्दीके सभी समकालीन कवियोंका मूल्यांकन कियाहै। 'नये कवि—एक अध्ययन' शृंखलाकी चार पुस्तकोंमें उन्होंने अपनी इस विशिष्ट समीक्षा-दृष्टिका परिचय दियाहै।

'नये कवि : एक अध्ययन' के भाग-३ और भाग-४ में क्रमशः नरेश मेहता, दुष्यन्तकुमार, धूमिल, शमशेर, भवानीप्रसाद मिश्र और सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाकी काव्य परिक्रमा कीगयी है। भाग-३ में दी गयी 'आरम्भ' शीर्षक अपनी छोटी-सी भूमिकामें समीक्षक डॉ. तिवारीने स्पष्ट कर दियाहै कि इस शृंखला की समीक्षा-पुस्तकोंमें वादों और आन्दोलनोंसे मुक्त होकर कवियोंकी स्वतंत्र काव्यचेतनाको रेखांकित किया गयाहै। यही कारण है कि विवेचित कवियोंके संदर्भमें विज्ञापित जनवाद अथवा गांधीवाद अथवा समाजवाद ठेठ कविताके ठाटके सामने कहीं गुम हो गयाहै। भाग-तीनमें नरेश मेहता दुष्यन्त और धूमिलकी काव्योपलब्धियोंका विश्लेषण करते समय डॉ. तिवारीने लगातार ध्यान रखाहै कि समीक्ष्य कविके चिन्तन और सम्प्रेषणके समस्त कवि-मुलभ आध्यात्मोंका पर्यटन हो जाये। इसीलिए नरेश मेहताकी वैष्णव माधवता, दुष्यन्तकी वैविध्यपूर्ण रचनाधर्मिता और धूमिल की विद्रोहिताके सारे परिप्रेक्ष्य उजागर होते चले गये हैं। डॉ. तिवारीने कवि-कर्मकी व्याख्याके साथ अपने मौलिक काव्य मानकोंकी प्रस्तुति कीहै और हिन्दीके निजी काव्यशास्त्रको अपनी स्थापनाओंसे संवर्धित कियाहै। जैसे—



‘रचनाकारका तेजस व्यक्तित्व ही नयी भाव-दशा के अनुरूप अर्थप्रधान शब्दावली और पर्याय खोजता है।’ (भाग-३, पृ. १५)।

‘समकालीन कविता वस्तुतः प्रहार, पर्दाफाश और भविष्य दृष्टिकी कविता है।’ (भाग-३ पृ. १६२)।

‘कविता समग्र जीवनको रूपायित करती है। उसका स्वरूप न तो साम्प्रदायिक होता है और न विघटनकारी। (भाग-४, पृ. ५६)। ‘कवितामें सम-सामयिक, सन्दर्भ तो होतेही हैं, इनसे बचना अपनी अनुभव-सम्पन्नताको खो देना है।’ (भाग-४, पृ. २०४)।

ऐसी असंख्य अवधारणाओंसे डॉ. संतोषकुमार तिवारी ने अपनी स्वतंत्र और वादमुक्त काव्य-दृष्टिका परिचय दिया है। अवसर मिलनेपर समीक्षकने शिविरबद्ध संकीर्ण आलोचनापर प्रहार करनेसे भी संकोच नहीं किया है। सतही विद्रोह और आडम्बरका निषेध उन्होंने कवितामें भी किया है और आलोचनामें भी। नये कवि : एक अध्ययन’ के चौथे भागमें उन्होंने शमशेर और सर्वेश्वरके काव्यकी प्रासंगिक विवेचना की है परन्तु इस खण्डकी मुख्य सामग्री भवानीप्रसाद मिश्रकी काव्यालोचना है। सच तो यह है कि इस समीक्षा-शृंखलाके भाग-३ में नरेश मेहता और भाग-४ में भवानीप्रसाद मिश्रकी विवेचनामें डॉ. तिवारी अपने चरम शिखर

पर लक्षित होते हैं। अपने निष्कर्षोंके प्रतिपादनसे लेकर अंतरंग छानबीन तक इन दोनोंही मूल्यांकन-कृतियों में डॉ. तिवारीने संतोष और संयोजन प्रदान किया है।

पूरी सम्भावना है कि डॉ. संतोषकुमार तिवारी की इन समीक्षा-पुस्तकोंका ‘वैशिष्ट्य अनदेखा ही रह जाये ! इसका मुख्य कारण इन कृतियोंका नामकरण है। ‘नये कवि : एक अध्ययन’ पढ़कर या सुनकरही लगता है, जैसे कोई छात्रोपयोगी परीक्षोचित गाईडनुमा चीज है। पन्ने पलटनेके बाद ही समीक्षकके प्रयास और मूल्यांकनके औचित्यका पता चलता है। डॉ. तिवारीको परस्पर विरोधी वक्तव्योंसे भी बचना चाहिये था। जैसे —

‘जब कोई विचारधारा या वाद कविपर इतना हावी हो जाता है तो उसका कवित्व मर जाता है।’ (भाग-४, पृ. १५२) कितनाभी स्वच्छन्द चेतनाका कवि क्यों न हो, कहीं-न-कहीं वह कुछ समयके लिए बंधसा जाता है।’ (वही)।

निश्चयही डॉ. संतोषकुमार तिवारीके पास कविताकी पहचान और कविके मूल्यांकनके सभी सार्थक साधन हैं। उनके इस कौशलका ही प्रमाण हैं ‘नये कवि : एक अध्ययन’ शृंखलाकी ये पुस्तकें। अर्थात् कवियोंके पठन-पाठनमें इन समीक्षा-कृतियोंकी उपादेयता निःसंदिग्ध है। [१]

## साधक : सिद्धि

### याद हो कि न याद हो?

लेखक : काशीनाथ सिंह

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द सेठिया

काशीनाथ सिंह हिन्दीके उन प्रमुख कहानीकारोंमें

१. प्रका. : राजकमल प्रकाशन, १ बी नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२ । पृष्ठ : २३७; का. ६२; मूल्य : ७५.०० रु. ।

हैं, जिन्होंने सन् साठके बाद अपनी अलग पहचान उभारी है। परन्तु, ‘याद हो कि न याद हों’ उनकी कहानियोंका संग्रह नहीं है। ये हैं तो संस्मरण परन्तु कोन कह सकता है कि इनमें कहानी, रेखाचित्र, रिपो-ताज आदि विविध विधाओंके तत्त्वोंका सम्मिश्रण नहीं है ? इन संस्मरणोंमें जितना हजारीप्रसाद द्विवेदी, त्रिलोचन, धूमिल और नामवरका चित्र उभरता है, उससे कहीं अधिक बनारसके घाट-बाट, वहाँकी चक्करदार गलियाँ, फिसलनदार सीढ़ियाँ और अड्डे-

‘प्रकर’—पौष २०४६—२३



ठिकाने अपना सिर उठाये हुए हैं, जो इस चिर पुरातन नगरको अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व देते हैं। फिर यह नगर तो तीन लोकसे न्यारा है, जहाँके लोग सारी चिन्ताओंको भंगके साथ घोट कर पी जाते हैं और फिर पानकी पीकके साथ थूक डालते हैं। 'याद हो कि न याद हो' पढ़नेके बाद पाठक चाहे हजारीप्रसाद, त्रिलोचन और घूमिलको भूल जायें परन्तु उसकी चेतनामें अस्सी, गोदोलिया, लोलाकं कुण्ड और लंका तो अंगूठीमें नगीनेकी तरह कसे रह जाते हैं। हजारीप्रसाद कभी रहे होंगे शान्ति-निकेतन और चण्डीगढ़में, परन्तु काशी-नाथ सिंहको तो उस हजारीप्रसादसे मतलब है जो बनारस विश्वविद्यालयमें हिन्दीके विभागाध्यक्ष बनकर आये और फिर रैंक्टर बनकर रह गये। दूसरी बार बनारस आकर पण्डितजी जैसे एक दलदलमें फंस गये थे और एक बार फंस तो फिर फंसते ही चले गये। युनिवर्सिटीके सत्ता-प्रतिष्ठान और विद्यार्थियोंकी विद्रोही राजनीतिके दो पाटोंके बीच वे पिसकर रह गये। अब वे विद्यार्थियोंकी श्रद्धा उपासनके केन्द्र न रहकर उपहासके पात्र बन गये थे। 'उनका नाम सुनते ही गालियां फूटती लड़कोंके मुँहसे।' उन्हें होल्कर हाउसमें ठिठाकर कुलपति जोशी सात समन्दर पार चले गये थे। अब वे रैंक्टर थे या कैदी? अगर कैदी थे तो अपनेही अनिर्णय और किकर्तव्य-विमूढताके कैदी थे। अब उन्हें देखकर एकही प्रश्न उठता था..... वह उन्मुक्तता, वह मस्ती, वह फक्कड़ी, वह विनोद, वह अट्टहास—सारा कुछ कहाँ चला गया?' बादमें जोशी स्वदेश लौटे और हजारीप्रसादजी होल्कर हाउस की कैदसे पीछा छुड़ाकर बाहर चले आये। परन्तु इस संकटकालमें "स्वभावसे अक्खड़, आदतसे फक्कड़, सूँडसे पूँछ तक मस्तमौला" व्यक्तिका वैभव बहुत कुछ लुट गया। जिस समारोह-धर्मितासे उनका स्वागत हुआ था, विदा-वेलामें अब जैसे उसका लवलेश भी नहीं रह गया था। कहाँ है दुन्दुभी बजानेवाले देवता? किधर है विमानपर बैठे पुष्पवर्षा करनेवाले देव? काशीनाथ सिंहने हजारीप्रसादजीका यह जो चित्र अंकित किया है, वह उनके व्यक्तित्वके केवल एक पक्षको ही स्पर्श करता है, एक बहुतही सीमित काल-खण्डका चित्र है। परन्तु कुत्सा, विरोध और वितण्डा-वादके इस खण्ड-चित्रको भी लेखक समग्रका स्पर्श देना भूला नहीं है। तभी तो उसने लिखा है और यह एक 'प्रकर'—दिसम्बर'६२—२४

व्यक्ति भी नहीं है—अपने भीतर सदियोंसे चली आ रही नाना प्रकारकी संस्कृतियाँ समेटे समूची भारती-यता है—अपनी अच्छाइयों और कमजोरियों के साथ।

'दंत कथाओंमें त्रिलोचन' हिन्दीके उस अग्रगण्य कविके मानवीय पक्षको उभारता है, जो अपने गीतों कथाओं और सँनेटोंके द्वारा लोक-चेतनाको नपी-तुली शास्त्रीय अभिव्यक्ति प्रदान करता रहा है। एक हाथमें, लोक और दूसरेमें शास्त्रको कन्दुककी तरह उछालने वाले इस कविने जितना जीवनका गान किया है, उससे कहीं अधिक जीवन और जगत्को देखा-परखा है। न जाने कितने झाड़-झंखाड़ों, नदियों-नालों, जंगलों, बिया-वानों, दलदलों, पहाड़ियों और घाटियोंसे गुजरा है—यह त्रिलोचन। "जहाँ कहींसे वह गुजरा है, उसकी एक छाप त्रिलोचनपर पड़ी है तो त्रिलोचनकी एक छापभी उनपर पड़े बिना नहीं रह सकी है।" किसीको रहस्य सौंप देता है/उसका रहस्य आप लेता है। "इसीलिए इतना भरा-पूरा और चित्र-विचित्र है—त्रिलोचनका काव्य-संसार। अपनेको उसने न किसी विधासे बांधा, न किसी वादसे, न वह देशमें बँधा और न कालमें, इसीलिए कालातीत होगया।" कोई सदी नहीं, कोई स्थान नहीं, कोई भाषा नहीं, जहाँ और जिसमें न घूमा हो त्रिलोचन। "उसके सपनोंकी झोलीमें क्या कुछ नहीं भरा है—सपने 'भी घरके/बाहरके/पास-पड़ोसके/देश-विदेशके।' इन सारी विविधताओं और विचित्रताओंके साथ यार लोगोंने इतनी दन्तकथाएँ जोड़ दी हैं कि 'वह हमारी समकालीन कविताका पौराणिक चरित्र बन गया है। जो भी असम्भव है, अविश्वसनीय है, चमत्कारिक है, कल्पनातीत है, वह सारा कुछ इस कवि व्यक्तित्वके साथ जोड़ दीजिये, कोई नहीं कहेगा कि यह त्रिलोचनके वशका नहीं था।" काशीनाथ सिंहका यह संस्मरणभी उसके मानवीय रूपकी अतिमानवीयताको ही अधिक रेखांकित करता है परन्तु इतनी संवेदन-शीलता और अंतरंगताके साथ कि त्रिलोचनके व्यक्तित्व और उसकी कविताके प्रति पाठककी उत्सुकता औरभी उदग्र हो उठती है। यह अपनेको संस्मरणकी इस अन्तिम पंक्तिसे सहमत होता हुआ पाता है "त्रिलोचन! मुझे हमेशा लगता है कि तुम्हारा कद तुम्हारी कविताओंसे बड़ा है और शायद काफी बड़ा।"

कवि घूमिलपर केन्द्रित एकही संस्मरण है—'दिल



ही जाने है आह मत पूछो'; परन्तु, प्रायः सभी संस्मरणोंमें धूमिल कहीं-न-कहींसे घुसपैठ कर जाता है। धूमिलके कवि-व्यक्तित्वके सम्बन्धमें इतनी प्रभूत और प्रामाणिक सामग्री शायद ही और कहीं सुलभ हो सके। वह विज्ञानका विद्यार्थी था, उसने हिन्दीका विधिवत् अध्ययन कभी नहीं किया। सन् ६४ में बलियासे स्थानान्तरित होकर वह बनारसके औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्रमें आया। कौन विश्वास करेगा कि धूमिल तब गीतकार था और 'बांसुरी जल गई' नामक अपने गीत-संग्रहके प्रकाशनकी उधेड़ बुनमें लगा हुआ था। उसके फोटो अधिक नहीं मिलते हैं, इसलिए उसका यह हुलिया नोट करने लायक है : दुहरा बदन, औसत कद, गोल चेहरा, भरे हुए गाल, छोटी गझिन मूंछें, कुर्ता-पाजामा या धोती।" कुछ दिनों तक वह अपने गांव खेवतीसे रोज बनारस अप-डाउन करता, परन्तु, बादमें, वह बनारसही में रहने लगा। उसके व्यक्तित्वमें शहरी आभिजात्यका कहीं लेश भी नहीं था। वह बहुत मुंह-फट, बेलग, अस्थिर और बात-वातपर तैशमें गाली-गुफता करनेवाला व्यक्ति था और 'चौराहे' पर या जन-साधारणके बीच तथाकथित गंदे शब्दोंको बोलते समय उसकी ज़बान न कभी अटकती थी और न लट-पटाती थी। नागानन्द मुक्तिकंठ जैसे व्यक्तियोंके संग रहनेके कारण उसकी उग्रता और आक्रामकतामें और भी अभिवृद्धि हो गयी थी। परन्तु, जिस एक बातने उसके 'झगड़ालू, उजड़ू और मुंहफट' होते हुए भी उसे जीवनके बृहत्तर उद्देश्यों और सार्थकताके साथ जोड़ा, वह एक मात्र उसका कवितासे लगाव था।" वह एक समर्पित कवि था और कविताको बदलते हुए समाजमें हाशिएपर नहीं देखना चाहता था। वह चाहता था कि कविता उसी प्रकारसे लोगोंकी ज़बानकी जरूरत हो जैसे चाय, जैसे रोटी। "रिक्शावालों और सब्जीवालों के साथ भीड़में घुसकर वह कदली-दंगल और बिरहा दंगल सुनता था ताकि कविताको एक ऐसा नया मुहावरा दे सके जो उसे साधारण आदमीके निकट ले आये। उसे लगता था "आजकी ये कविताएँ 'स्टिल्स' हैं—स्थिर और जड़ और निर्जीव चित्र।" हमने जीवनकी गति और स्पन्दन लानेके लिए जनका संजीवन स्पर्श चाहिये। कविताको जन-केन्द्रित बनानेके लिए धूमिलने उसे तीखा तेवर दिया था।" धूमिल अपने आपमें अपनी कविता था—कविताके ही मुहावरोंकी

भांति उसका व्यक्तित्व धारदार और चमकदार था।"

धूमिल क्रमशः कवि रूपमें स्थापित होने लगा था। जब नामवर सिंह 'जनयुग'के सम्पादक हुए तो उन्होंने इन्हीं कविताओंको प्रमुखतासे प्रकाशित किया। राज-कमल प्रकाशन द्वारा 'सड़कसे संसद तक' नामसे उसके कविता-संग्रहके प्रकाशनमें भी नामवरका हाथ था। वह उन्हें गुरुजी कहने लगा था। प्रथम संकलनने ही धूमिलके झण्डे गाड़ दिये। वह चर्चित तो था ही अब बहु-प्रशंसित भी होगया। समयकी लहरने उसे अपने शीर्षपर धारण कर लिया था। परन्तु, प्रशंसाके साथ ही आलोचनाके स्वर भी उभरने लगे। विरोधियोंने कहा—धूमिल पहले तुकोंकी किल्लियाँ गाड़कर फिर उनपर अपने विचारोंका तम्बू तानता है। उसकी विचारधारामें नकारात्मकता और ध्वंसात्मकता है, उसके पास 'एक्शन' का कोई प्लान नहीं है, भविष्यका कोई विज़न नहीं है। सारी कविताओंमें एक ही मुद्रा है—बोखलाये हुए युवककी। क्रमशः स्वयं धूमिलको भी यह लगने लगा कि जैसे वह अपने ही बनाये हुए भाषाई मुहावरेका कैदी हो गया है। परन्तु, समझमें नहीं आ रहा था कि वह इस कैदको कैसे तोड़े और कैसे बाहर आये? अपने उग्र स्वभाववश वह मित्रोंसे भी कटने लगा था। स्वयं काशीनाथ सिंहके साथ अब उसकी वैसी अभिन्नता नहीं रह गयी थी। पर, अन्दर ही अन्दर अनजाने उसके दिमागमें द्यूमर पल रहा था। उपचार किया गया, तबतक बहुत देर हो चुकी थी। इस प्रकार, आधुनिक हिन्दीके एक अत्यन्त सम्भावना-पूर्ण कविका असमयही अवसान होगया। संस्मरणकार के शब्दोंमें इतना मानवीय लेखक उसने कोई और नहीं देखा। बाहरसे ऊबड़-खावड़ होते हुए भी वह अन्दरसे सौ टंच खरा था। पीड़ित मानवके प्रति उसके मनमें जितनी करुणा थी, उससे कहीं अधिक आक्रोश और विद्रोहका भाव उग्र पीड़ा देनेवाली व्यवस्थाके प्रति था। उसकी दृष्टिमें कविका कर्तव्य केवल वैचारिक संघर्ष को धार देना ही नहीं, व्यवस्थाके बदलावके लिए सक्रिय सामाजिक हस्तक्षेप करना भी था।

नामवरसिंह संस्मरणकारके बड़े भाईही नहीं उसके उपास्य और संस्कारदाता रहे हैं; इसलिए उनकी उच्छ्वसित प्रशंसा न करते हुए भी वह उनके प्रति यथेष्ट निर्वैयक्तिकताका निर्वाह नहीं कर सका है। शायद यह सम्भव भी नहीं था। हजारोप्रसादजीकी भांति



नामवरसिंहके चरित्रको भी 'काइसिस' में रखकर परखा गया है। सन् ५९ में संसदका चुनाव लड़नेके कारण बनारस विश्वविद्यालयने उन्हें प्रवक्ता पदसे हटा दिया था। उसके बाद वे एक साल सागर गये, पर वहाँ पर भी नन्ददुलारे वाजपेयीके साथ उनकी पटरी नहीं बैठ सकी। फिर, जे. एन. यू. में पदार्थ होनेतक उन्हें भी साहित्यिक राजनीतिकी तलवारकी धारपर चलना पड़ा। उन्होंने निर्णय लिया कि किसीभी पदके लिए वे आवेदन नहीं करेंगे और किसीभी अन्यायका प्रतिकार करनेके लिए अदालतका दरवाजा नहीं खटखटायेंगे। 'नामवर अब बिल्कुल अकेला था—लेकिन चेहरेपर कहीं कोई तनाव नहीं, थकान नहीं।' चार आनेमें उनका दिन भरका खर्च निबट जाता; दो आनेका एक बीड़ा पान और दो आनेकी एक कप चाय ! (आह ! वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे !) रिक्शेमें चलना छोड़ कर पैदल घूमते रहते। नाश्ते और भोजनके अवकाश को छोड़कर निरन्तर पढ़ते रहते। इस संस्मरणमें दिल्ली तो दूर है; पर इलाहाबाद कहीं-कहीं झांक जाता है। वहाँके परिमलियोंसे दोनों भाइयोंको गहरी चिढ़ है। फिरभी, तथाकथित प्रगतिवादियोंसे नामवर अधिक उदार प्रतीत होतेहैं, जब वे कहतेहैं—“साहित्य समूची मानव जातिका होता है और उस जातिमें मुक्तिबोध और नागार्जुनही नहीं; रघुवीर सहाय और निमल वर्माभी हैं।” काशीनाथ सिंहने 'गरबीली गरीबी' में विरोधियों और विपदाओंके सामने सीना तानकर चलनेवाले अपने बड़े भाईकी विराट् मूर्ति स्थापित की है। बनारसके परम्परावादियोंने जब कबीर और तुलसी को ही नहीं बखशा तो वे हजारीप्रसाद और नामवरको ही क्यों क्षमा कर देते ? परम्पराएँ इतनी आसानीसे अपना दम नहीं तोड़तीं।

एक पूरा संस्मरण नागानन्द मुक्ति कंठके नाम समर्पित है, जिन्हें बनारसके बाहर बहुत कम लोग जानतेहैं। काशीनाथ सिंहको भी आश्चर्य है 'क्यों नहीं लिख सके नागानन्द ? क्या है जो लिखनेसे उन्हें रोके रहा ? ... वे अनवरत दस वर्षोंतक साहित्य जीते रहे, पढ़ते रहे, बतियाते रहे।' बनारसके बाहरभी ऐसे नागानन्द बहुत हुएहैं जिनकी प्रतिभाका प्रदीप ही अपने सीमित वृत्तमें जलकर बुझ गया; वे अपने प्रकाश-कण से एक क्षणको भी आलोकित नहीं कर सके। 'किस्सा साढ़े चार यार' में काशीनाथ सिंहके चार यार हैं—

'प्रकर'— विसम्बर'९२—२६

रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, विजयमोहन और ज्ञान रंजन। विजयमोहन साहित्याकाशमें कभी ऊपर नहीं चढ़ पाये, परन्तु शेष तीनोंकी गणना हिन्दीके शीर्ष कहानीकारोंमें होती है। कालियाके पास एक स्मार्ट-सी भाषा है... और है चुटकुलों, शगूफों और फितरतों की संस्कृति जिसके साथ वह बम्बईसे इलाहाबाद आया था। 'दूधनाथ सिंह, काशीके समघी हैं परन्तु वे गालियों और पसलीतोड़ आलिंगनसे एक-दूसरेका अभिवादन करतेहैं। एक बार दूधनाथ अपनी कहानियोंसे बहु-चर्चित हुएथे परन्तु "सन् ७० के बाद अपना जीवन स्थगित कर दिया और अपने बच्चोंमें जीने लगा था।" ज्ञानरंजन इलाहाबादसे जबलपुर जाकर वहीं रस-वस गया है परन्तु 'अब तो यह है एक सम्पादक और संगठन-कर्ता ज्ञान, लेखक होना तो उसने बीस साल पहले बंद कर दिया। उसके पास अनुभवोंका जखीरा है, लेकिन कलम कैसे पकड़ा जाता है, भूल गया है।' बात क्या है कि लेखक चुस्त-दुरुस्त बना रहता है; लेकिन उसका लेखन दमतोड़ देता है और वह अपनी पिछली प्रसिद्धि और उपलब्धिके व्याजकी कमाई खाते हुए अपना शेष जीवन व्यतीत कर देता है ?

'देख तमाशा लकड़ीका' के केन्द्रमें कोई व्यक्ति नहीं, बनारसका एक खास मुहल्ला अस्सी है। अस्सी बनारसका मुहल्ला नहीं है, 'अस्सी' अष्टाध्यायी है और बनारस उसका भाष्य। "अस्सीमें वे लोग रहतेहैं, जो दुनियांको अपने ठोंगेपर रखतेहैं। कमरमें गमछा, कंधे पर लंगोट और बदनपर जनेऊके साथ जबानपर गालियोंका ढेर—यह है अस्सीकी असली पहचान। रोटीके लिए रोजीकी तलाश करना उनकी शानके खिलाफ है।" पूरा मुहल्ला पीड़ियोंसे इसी शैलीमें जीता चला आ रहा है—गाता, बजाता, झूमता, मद-माता। वे तख्तपर बैठन रखे हुए जनेऊसे पीठ खुजा रहेहैं और जजमानका इन्तजार कर रहेहैं। उनका अपना एक मलूकदासी जीवन-दर्शन है "काहेकी है-है और काहेकी खट्-खट्। साथ तो चलता नहीं है कुछ। फिर क्यों मरे जा रहेहो चौबीस घण्टे ?" दुनियांको भागते देखकर अस्सीवालोंको ऐसी कोपत हुई कि उन्होंने चलनाही छोड़ दिया। फिरभी साहित्य हो या राजनीति, जबतक उसपर अस्सीकी मुहर नहीं लगती, वह खास बनारसी नहीं कहला सकती। काशीनाथ सिंहने बनारसी संस्कृतिके रसमें आकण्ठ डूबे हुए अस्सी-



वासियोंके जो जीवन्त चित्र उरेहे हैं, उनमें रंगके साथ भंगभी मिली हुई है।

‘याद हो कि न याद हो’ के संस्मरणोंको एकबार पढ़नेके बाद उन्हें कोई भूल नहीं सकता। इनमें हजारी प्रसाद, बिलोचन, नामवर और धूमिल जैसे दिग्गज साहित्यकारोंका अंतरंग-दर्शन तो हैही, परन्तु, सबसे बढ़कर है बनारसके अखाड़ेमें होनेवाले साहित्यिक दंगल के करिश्मे ! इनमें बनारसका इतिहास ही नहीं भूगोल भी हैं। पद्मश्रीके तिराहेवाली चायकी दुकान, गौदोलियामें गीतकारोंका जमघट और कम्युनिस्ट पार्टीके दफ्तरके नीचेवाला रेस्तरां और हर नुक्कड़पर मिलने वाली पानकी दुकानें। यहां पानकी पीक जितनी ऊँची उछलती है, उतनीही साहित्यिकताका रंग गहरा जमता है। काशीनाथ सिंह इस बनारसी संस्कृतिमें रचे-पचे हैं। उनकी जीवन्त भाषाने संस्मरणोंमें जान फूंक दी है। उनकी कलम शब्दोंसे बिम्बोंका जादू जगाती हुई चलती है। भ्रष्ट शब्दोंके प्रयोगसे अगर थोड़ा परहेज किया जाता तोभी बनारसी रंग बहुत फीका नहीं पड़ता। काशीनाथ सिंह ऐसेही जानदार संस्मरण लिखते रहें तो शायद उनसे कहानियां कम लिखनेकी शिकायत नहीं रह जायेगी। जिन्होंने उनकी कहानियां नहीं पढ़ी, वे भी अगर एक बार इन्हें पढ़ लेंगे तो फिर बार-बार पढ़ेंगे। □

**यह कलम, यह कागज, यह अक्षर?**

**लेखिका : अमृता प्रीतम**

**समीक्षक : डॉ. भगीरथ बड़ोले**

यदि साहित्य वस्तुतः साहित्य है, तो अपनी प्रकृति के अनुसार वह किसी एक भाषामें लिखा जाकर भी उसी भाषामें सिमटकर नहीं रहता, अपितु मानवीय संवेदनाको अपना रचनात्मक आधार बनाता हुआ संपूर्ण मानव जातिका हो जाता है। साहित्यके ऐसेही रचनाकारोंमें सुश्री अमृता प्रीतमका नाम परिगणित कर सकते हैं। यद्यपि अमृताजी पंजाबीकी लेखिका हैं, तथापि उन्होंने जो यश अर्जित किया है, वह उन्हें ‘भारतीय

लेखिकाका सम्मान प्रदान करता है। वस्तुतः अमृताजी हर भाषाके पाठककी प्रिय लेखिका हैं।

प्रिय लेखिका होनेका यह सम्मान उन्हें सहजतासे नहीं, अनवरत साधनारत रहनेके कारण मिला है। दीर्घ समयमें साहित्यकी तमाम विधाओंमें उन्होंने अपने रचनाकर्मको आकार प्रदान किया है, जो मनुष्यके प्रति मुहब्बतका अटूट संकल्प लेकर चला है। अतः मुहब्बत की बात उनकी रचनाधर्मितामें प्रमुखतासे उभरी तथा अन्याय विघ्नाएँ उस बातको कहनेका मात्र माध्यम भर रही हैं। अतः चाहे उनके उपन्यास पढ़ें या कश्मियाँ, कविताएँ अथवा लेख—उनमें मनुष्यके प्रति एक-सी असीमित मुहब्बतही नजर आयेगी। यह मुहब्बत एक ऐसा जीवन-सत्त्व है, जो आजके जीवनमें उपलब्ध नहीं होता। अतः इस मुहब्बतकी स्थापनाके प्रयासमें अमृताजीने आजकी जिदगीकी तमाम विसंगतिपूर्ण स्थितियोंके खिलाफ अपने विद्रोही व्यक्तित्वसे सशक्त प्रहार किये हैं। इस प्रकार अमृताजीके लेखनमें एक ओर तो विसंगतियोंके विरुद्ध प्रबल आक्रोश एवं सशक्त प्रहार नजर आते हैं तो दूसरी ओर त्रस्त मानवीयताके प्रति संपूर्ण सहानुभूतिका अविरल प्रवाहभी अभिव्यक्त हुआ है। इस एक बातको समझनेपर फिर उनके साहित्यको समझनेमें कठिनाई अनुभव नहीं होती।

किसी एक रचनाकृतिकी समीक्षा करते हुए संपूर्ण साहित्यकी चर्चावाली बात प्रारंभमें अटपटी लग सकती है किन्तु अमृताजीके संपूर्ण साहित्य विषयक कुछ प्रमुख बिन्दु मैंने जानबूझकर इसलिए उभारे हैं कि यह ‘कलम, यह कागज, यह अक्षर’ शीर्षक कृति एक होते हुएभी एक नहीं है। इस एक कृतिमें उनकी अद्यावधि रचित अनेक रचनाएँ समाहित हैं—कुछ संपूर्ण हैं, कुछ अंश रूपमें। इन सभी रचनाओंके माध्यमसे अमृता प्रीतमके दृष्टिकोणसे परिचित होकर उनको समग्रतामें जाना जा सकता है। इसी बातको दूसरे रूपमें भी कहा जा सकता है कि इस संकलन द्वारा किसी विशेष पड़ावसे मानो अमृताजी अपनी रचनात्मक उपलब्धियों एवं उनके प्रवाहको समग्रतामें देखनेका प्रयास करती दिखायी दे रही हैं और वे संभवतः इस बातसे आश्वस्त होना चाहती हैं कि उन्होंने जो कुछ चाहा था, वह सब कुछ उनकी कलमसे कागजपर अक्षर बनकर अभिव्यक्त हो सका या नहीं। उन्होंने लिखा भी है—

१. प्रका. : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, विल्ली-११०००६। पृष्ठ : १६०; डिमा. ६१; मूल्य : ६५.०० रु.।



‘यह मुहब्बत मेरी नज्मों, कहानियों, उपन्यासों और समय-समयपर लिखे गये मजमूनों के अक्षरों में कैसे उतरती रही—इसीका कुछ जायजा लेने के नजरिये से मेरी कुछ रचनाओं के कुछ अंश इस पुस्तक में दर्ज किये गये हैं।’ इस प्रकार इस कृति द्वारा अमृता प्रीतम ने एक ओर अपने रचनात्मक जीवनका लेखाजोखा प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर पाठकों के सामने अपनी संपूर्ण पहचान भी प्रदर्शित की है। इस दृष्टि से प्रस्तुत संकलन कृति महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है।

‘यह कलम, यह कागज, यह अक्षर’ का प्रथम खण्ड उपन्यास अंशों से जुड़ा हुआ है। इस खण्ड में ग्यारह उपन्यास के अंशों को संकलित किया गया है। ‘ममता’ (डाक्टर देव) विभाजन के जखम की शिकार पात्रा की विवश मनःस्थितिका आख्यान अंश है, तो ‘१९४७’ (पिंजर) इस विभाजन की भयावहता का दृश्य प्रस्तुत करते हुए पुरो के अंतर्भूत समायो विद्रोह को आकार देता है। ‘कामिनी’ (दिल्ली की गलियाँ) के अंतर्गत अखबार का कालम लिखने वाली कामिनी और सुनील के अंतर्संबंधों की जटिलता प्रस्तुत की गयी है, तो ‘एक डायरी’ (जलावतन) आधुनिक जीवन संदर्भों में कथानायक की वैचारिक ऊहापोह को प्रस्तुत करती है। ‘आग की लकीर’ उपन्यास का अंश जहाँ परिवारिक संदर्भों को उकेरता है, वहाँ ‘उमिगाथा’ (आक के पत्ते) स्मृतियों के बहाने मानवीय दर्द और रिश्तों के बहाव को व्यंजित करते हैं। ‘वह जो रत्ना थी’ (उनकी कहानी) अंश के अंतर्गत नयी तकनीक से कथा प्रस्तुत करते हुए नारी जीवन की दुर्दशा के साथ ही भावात्मक संबंधों के घरातल को अभिव्यक्त किया है। ‘बेनू’ (कोई नहीं जानता) के अंतर्गत भी इन संबंधों की जाँच पड़ताल की गयी है, तो ‘संजय’ (तेरहवां सूरज) के द्वारा मनुष्य की विवशताओं की अभिव्यंजना सजीव चित्रित हुई है। ‘पंकज’ (कोरे कागज) के माध्यम से जिंदगी के अर्थ को तलाशने का प्रयास किया गया है, तो ‘अल्लारखी’ (ना राधा ना रुक्मणी) अंश में प्रेम के वास्तविक अहसास को व्यंजित किया गया है। कुल मिलाकर इन उपन्यास अंशों में आज की जीवन स्थितियाँ सामाजिक विसंगतियाँ, नारी की यंत्रणा और विद्रोह, प्रेम का सच्चा रूप तथा विभाजन की त्रासदी आदिको बड़ी जीवंतता से प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास अंश होते हुए भी ये हिस्से अपने आप में संपूर्णता का अहसास

कराते हैं। और जिन्दगी को जानने तथा उसके अर्थ तलाशने की प्रक्रिया से संबद्ध हैं। सही रचनात्मकता की यही पहचान है।

द्वितीय कहानी खण्ड में अमृताजी की कतिपय कहानियाँ संकलित हैं। प्रथम कहानी ‘शाहकी कजरी’ नारी के दर्द को अभिव्यक्त करने वाली बहुचर्चित कहानी है। दूसरी कहानी ‘यह कहानी नहीं’ लेखिका के जीवनानुभवों पर आधारित कहानी है जो अक्षरों की छाया में शीर्षक संग्रह से चुनी गयी है। ‘मिथहासका नया दर्शन’ रचना आत्मकथात्मक रूप में लिखी गयी कहानी है जो कहानी की रचना प्रक्रिया पर भी प्रकाश डालती है। ‘और नदी बहती रही’ पौराणिक संदर्भों के माध्यम से आज के जीवन को अभिव्यक्त करने वाली कहानी है। ‘जलते हुए अक्षर’, ‘मीना बाजार’ तथा ‘चिगाड़ियों का मुकद्दर’ काव्यात्मक प्रवाह के साथ चलने वाली ऐसी रचनाएँ हैं जो भावुक क्षणों को कथात्मक रीति से व्यक्त करती हैं। इन सब कहानियों में यथार्थ जीवन की स्थितियाँ रूपाकार ग्रहण कर सकी हैं।

तृतीय खण्ड कविताओं का है, जिसमें अमृता प्रीतम की नयी बाईस कविताओं का चयन स्वयं लेखिका ने किया है। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि मूल पंजाबी में लिखी इन कविताओं का अनुवाद भी स्वयं लेखिका ने ही किया है। परिणाम यह हुआ है कि विचार और संवेदना पर कोई दूसरा संस्कार आरोपित नहीं हो सका। इन रचनाओं में उस मानवीय दर्द को अभिव्यंजित किया गया है, जो कवयित्री के निजी अनुभवों का भी अंश है। अपनी रचनाओं के विषय में अमृताजी का यह कहना कितना उपयुक्त है कि ‘इंसान जो है और इंसान जो हो सकता है—यही फासला जहनी तौर पर मैंने जितना भी तय किया, उसी की बात जिंदगी भर करती रही।’ अतः नितांत निजी अहसासों की अभिव्यंजित करने वाली ये रचनाएँ जिंदगी को अपनी नजर से देखती और अभिव्यक्त करती हैं। मुहब्बत और जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा की वही ललक यहाँ भी उपलब्ध होती है, जो उनकी अन्य काव्येतर रचनाओं में निहित है।

चतुर्थ खण्ड गद्य रचनाओं से संपन्न है, जिसमें बिल्कुल निजी घरातल पर लेखिका ने अपने चिन्तन के विविध आयाम उकेरे हैं। एक ओर वे बताती हैं कि किस प्रकार देखी, सुनी और बीती घटनाएँ रचनाओं का मूल बनती हैं, तो दूसरी ओर उनका मानना



है कि अचेतन मनके इशारे भी कभी कभी रचनाओंके निर्माणमें प्रमुख हिस्सेदारी निवाहते हैं। इसी क्रममें उन्होंने भविष्यदर्शी स्वप्नोंकी चर्चा की है जो अचेतनकी दिव्य दृष्टिका प्रमाण है। यहाँ कुछ दूसरी तरहके निबंध भी संकलित हैं। 'एक सिक्केकी आरजू' के माध्यमसे लेखिका चाहती है कि सर्वाधिक दुर्बल और व्रस्त नारी यदि चाहे तो अपने विचारोंको ठोस बनाकर जीवनकी समस्याओंके समाधान तलाश सकती है। 'इतिहाससे एक मुलाकात' द्वारा लेखिकाने वैदिक संदर्भों तथा 'अक्षरोंकी धूपमें, अक्षरोंकी छायामें' इतिहासके संपन्नतासे भरे सिलसिलोंकी बानगी प्रस्तुत कर आज की जिंदगीमें अनायास आये जलते प्रश्नोंको भी प्रस्तुत किया है। खासकर आजके पंजाबकी स्थितिको अत्यंत साहससे सांकेतिक अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है।

इस प्रकार 'यह कलम, यह कागज, यह अक्षर' शीर्षक कृति अमृता प्रीतमकी रचनाधर्मिताके विविध आयामोंको प्रस्तुत करनेवाली एक विशिष्ट कृति सिद्ध होती है जिसमें उन्होंने अपनी साहित्य-साधनाके सरोवर का सार प्रस्तुत किया है। [१]

## लिखनेका तर्क

लेखक : गिरिराज किशोर

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

गिरिराज किशोर हिन्दीके जाने-माने कथाकार हैं। वे कथा-साहित्यकी रचनाही नहीं करते, उसपर सोचते-विचारते भी हैं। 'लिखनेका तर्क' में उनके कुछ कथा-साहित्य सम्बन्धी और कुछ अन्य विषयोंसे सम्बन्धित लेख और टिप्पणियाँ संगृहीत हैं।

जिस लेख या टिप्पणीके आधारपर संग्रहका शीर्षक रखा गया है, पहले उसीको लें। एक पत्रिकामें कमलेश्वरका एक साक्षात्कार छपा, जिसमें न लिखने या न लिख पानेके पक्षमें तर्क प्रस्तुत किये गये। उन्होंने न लिखनेका कारण अपने आन्तरिक असामर्थ्यमें न

खोजकर बाह्य परिस्थितियोंमें खोजा है। गिरिराज किशोरका कहना है कि यह गलत है और चतुराई भी। हम उनके साथ सहमत हैं। क्या इसे संयोग माना जाये कि जो चतुराई कमलेश्वरने दिखायी है, लगभग वैसीही चतुराई उनके 'नयी कहानी' के साथी राजेन्द्र यादवने 'न लिखनेका कारण' पर एक संगोष्ठी आयोजित करके दिखायी है। वास्तविकता यह है कि इन लेखकोंका रचनात्मकताका अन्तःस्रोत सूख गया है किन्तु वे इसे स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं हैं। अतः अपने चुप होजानेके पक्षमें उन्होंने जो तर्क दिये हैं अर्थात् "एक लेखकको जब अपने लेखनकी उपयोगिता नजर नहीं आती या वह वर्तमान स्थितियोंसे सन्तुष्ट नहीं होता या उनसे तालमेल नहीं बैठा पाता तो वह चुप हो जाता है" (पृष्ठ ६१), वे गलत हैं। गिरिराज किशोरका यह लेख प्रतिक्रियात्मक है। उनके इस संग्रह के अधिकांश लेख प्रतिक्रियात्मक हैं। इसके कारण उनके लेखोंकी एक विशेषता यह बनी है कि वे हममें तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। हम उन्हें पढ़ते हैं तो उनसे अप्रभावित और तटस्थ नहीं रह पाते।

प्रेमचन्दसे लेकर समकालीन कथा-साहित्य तक से सम्बन्धित उनके लेखोंमें अनेक ऐसी स्थापनाएं हैं जिनसे सहमति सम्भव नहीं है। उनकी विवादास्पद स्थापनाओं में से कुछ इस प्रकार हैं—(१) असली प्रेमचन्द्र कहानीकार हैं, उपन्यासकार नहीं (पृष्ठ ५)। (२) "प्रेमचन्द्र को कहानी-दर-कहानी पढ़ाना इतना जरूरी नहीं है जितना उनकी रचनाओंके सन्दर्भमें समाजशास्त्रीय पक्षका विवेचन जरूरी है।" (पृष्ठ ५)। (३) "इस बीच हिन्दी कहानीमें जिस अकेलेपनको चित्रित किया गया, वह अकेलापन एक ऐसा अकेलापन था जिसके पीछे न तो जातीय अनुभव था और न सामाजिक सन्दर्भ। केवल एक बौद्धिक प्रयोग था।" (पृष्ठ ११)। (४) "कविताके क्षेत्रमें वीररसका ऐतिहासिक महत्त्व तो हो सकता है, पर उसका सामयिक और सामाजिक महत्त्व कुछ नहीं।" (पृष्ठ १६)। ऐसी और भी बहुत-सी स्थापनाएं हैं जो एकांगी हैं और किसी गम्भीर चिन्तनपर आधारित नहीं हैं।

वस्तुतः बात यह है कि गिरिराज किशोर भावुक रचनाकार हैं, चिन्तक या विचारक नहीं। वे स्थापनाएं करनेकी जल्दीमें हैं। उनके 'लिखनेका तर्क' के लेखोंमें सैद्धान्तिक या निष्कर्षात्मक स्थापनाओंका अम्बार

१. प्रका. : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ६४; डिमा. ६१; मूल्य : ५०.०० रु.।



लगा हुआ है। उनके लेखों में से रचना, रचनाकार और रचना-सिद्धान्तों को लेकर की गयी स्थापनाओं की एक लम्बी सूची बनायी जा सकती है। उदाहरण के लिए एक छोटी-सी सूची प्रस्तुत है— (१) “कथा-साहित्य के सृजन का उद्देश्य रोचकता और शारीरिक स्फुरण कदापि नहीं” (पृष्ठ ८) (२) “बड़े रचनाकार की संवेदना बड़ी होती है” (पृष्ठ १३)। (३) उपन्यास और कहानी का स्वभाव वायवी नहीं होता (पृष्ठ १५)। (४) “कथा-साहित्य में कबीर की नियतिको भोगने वाला यदि कोई है तो वह शैलेश मटियानी है। शैलेश मटियानी की भाषा भी उनकी संवेदना से गहरे अर्थों में जुड़ी है।” (पृष्ठ २१)। (५) “व्यक्तिका अनुभव तभी बड़ा होता है जब वह जातीय अनुभव से अपने को जोड़ लेता है। इसी प्रकार संवेदना भी वही बड़ी होती है जिसकी विराटता में सब कुछ समा सकता है। भाषा भी वही बड़ी होती है जो अनुभव के समय की विराटता के साथ जोड़ने की सामर्थ्य रखती है।” (पृष्ठ २८) इत्यादि।

स्थापनाओं का ढेर लगा देने की प्रवृत्ति बौद्धिक अनुशासन की कमी की ओर भी संकेत करती है। गिरिराज किशोर में बौद्धिक अनुशासन की कमी सबसे अधिक अभिव्यक्त के स्तर पर अनुभव होती है। उदाहरण के लिए उनके इस कथन को देखें—“कहानी का केन्द्र बिन्दु यथार्थ ही है, बल्कि इंसानी संघर्ष, उसकी तकलीफ और सम्पूर्ण संवेदन में पनपने वाला विचार। यह विचार वायवीय न होकर कुशाग्र है, चेतने वाला है। यह विचार दूसरी विधाओं में भी जरूरी है पर कहानी

की मूल आवश्यकता है। (पृष्ठ ३३)। इस कथन में यथार्थ, इंसानी संघर्ष, उसकी तकलीफ, सम्पूर्ण संवेदना, विचार, वायवीय, कुशाग्र, चेतने वाला आदि शब्दों का प्रयोग सुविचारित, सुस्पष्ट और सतर्क नहीं है। क्या ‘वायवीय’ का विरोधी ‘कुशाग्र’ या ‘चेतने वाला’ होता है? वाक्य भी बीच में गड़बड़ा गया है। यदि लेखक बौद्धिक अनुशासन की उपेक्षा न करता तो ऐसे वाक्य नहीं लिखता “उसकी जीने की शुरुआत उसी क्षण से शुरु होती है, जैसे ही उसके साथ पाठक का तादात्म्य होता है।” (पृष्ठ ३४)। गिरिराज किशोर को एक और लत अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों का प्रयोग करने की है। हिकारत, असरात, तरद्दुद, फराखत, मुजायका, काँटे, ग्लोरीफाई, टेबू, परम्पूटेशन-कम्बिनेशन, रेंज, फ्रिजिडिरी, आब्जर्वेशन जैसे अनेक शब्द उनके लेखों में बिखरे मिलेंगे। ऐसे शब्दों का प्रयोग सर्वत्र अनिवार्यतः हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। इनमें से अनेक शब्दों के उपयुक्त प्रचलित हिन्दी पर्याय सुलभ हैं, पर लेखक अपने मानसिक आलस्य के कारण उनका उपयोग नहीं करता। इसे लेखक का मानसिक आलस्य ही कहा जायेगा कि वह ‘क्रियेटिव स्किल’ शब्दों का तो प्रयोग करता है, किन्तु ‘रचना कौशल’ का नहीं—“...रिश्तों के बारे में उनका मूल्यांकन सामने आता है और ‘क्रियेटिव स्किल’ का विकास होता है।” (पृष्ठ ७१)।

इन दुर्बलताओं के रहने पर भी गिरिराज किशोर का यह लेख-संग्रह पठनीय है, क्योंकि यह विचारोत्तक है।

[!]

## उपन्यास

### मापदण्ड?

उपन्यासकार : इन्दिरा

समीक्षक : डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

‘शिक्षित, सम्पन्न और समर्थ’ लेखिका इन्दिरा,

१. प्रका. : शान्ति प्रकाशन, आसन (रोहतक-हरियाणा)-१२४४२१। पृष्ठ : २११; डिमा. ६२; मूल्य : ७५.०० रु.।

‘प्रकर’—दिसम्बर ६२—३०

(आवरण पृष्ठ से उद्धृत) अबतक अठारह उपन्यास प्रकाशित करा चुकी हैं। उनके कुछ उपन्यास पुरस्कृत भी हुए हैं। ‘देश-विदेश का व्यापक भ्रमण, बहुत बड़े व्यवसाय से संबद्ध होने पर भी लिखने-पढ़ने का अपरिमित शौक (वहीं से उद्धृत) उन्हें है। इस उपन्यास की कथा बहुत सीधी-सादी और लगभग परिचित है। विदुषी मनु दर्शनशास्त्र के उच्च अध्ययन के लिए रुस जाती है और वहाँ अपने गुरु प्रोफेसर आलेक्सांद्राविना’



से प्यार करने लगती है। प्रेममें आकण्ठ झूबने और अपना सर्वस्व समर्पण कर देनेके बाद उसे अचानक एक दिन पता चलता है कि प्रोफेसरका असली रूप तो कुछ औरही है। वह चार विवाह कर चुका है, तीन पत्नियोंको तलाक दे चुका है पर एक पत्नी अभीभी है और ये सारी बातें जानबूझकर उसने मनुसे छिपाया है। प्रोफेसरका आदर्श है : “कामको दबाओ मत, यह कायारूपी चूल्हेमें जलती अग्नि है, उसपर कुछ पकाओ”। यह जानकर मनुको गहरा आघात लगता है। अपना अध्ययन बीचमें छोड़ वह एकदम रूससे भारत आ जाती है। यहां उसे प्रो. अनाशकी सहायतासे लेडी श्रीराम कालेजमें व्याख्याताकी नौकरी मिल जाती है। प्रो. अनाशसे उसकी मित्रता बढ़ने लगती है (यह तो प्रत्याशित ही था) तभी उपन्यासमें एक और पात्रका प्रवेश होता है। अनाशकी एक छात्रा है इति, जो अपने गुस्से गहरा प्रेम करती है। वह अनाशसे बेबाक प्रणय निवेदन करती है, परन्तु अनाश परंपरा, संस्कृति, भारतीयता आदि जानी-पहचानी शब्दावलीका प्रयोग कर उसे ठुकरा देता है। उधर मनुको जर्मनीके प्रोफेसर हैंगरीका निमंत्रण मिलता है और वह दर्शनशास्त्रके क्षेत्रमें धूम मचाने जर्मनी चली जाती है। बस यही कथा है ‘मापदंड’ की।

लेकिन इस साधारण प्रेम-कथाको असाधारण बनाया है लेखिकाकी ऊपर उद्धृत योग्यताओंने। उपन्यासके सभी पात्र दर्शनशास्त्रसे जुड़े हैं इसलिए लेखिकाको उनके मुंहसे अपने दर्शन विषयक विशद अध्ययनकी अभिव्यक्तिका अवसर मिला है और उन्होंने इसका भरपूर उपयोग किया है। परिणाम यह हुआ है उपन्यासका प्रत्येक पात्र सदा दार्शनिक शास्त्रार्थमें ही रत पाया जाता है। इस कारण इस प्रेम-कथामें दर्शनकी मात्रा कुछ अधिक ही हो गयी है और फिर एक दुर्भाग्य तो यह कि यह दर्शन आरोपितही रह गया है, अपने प्रयोक्ताओंके जीवनसे एकाकार नहीं हो पाया है। दूसरे मूल प्रेम-कथाके साथ उसकी कोई संगति भी नहीं स्थापित हो पायी है। इसलिए उपन्यासमें स्पष्टतः दो पृथक् धाराएं हैं—एक प्रेमकथाकी, दूसरी दर्शनशास्त्रकी। यही नहीं, दर्शन-बहुलताकी एक और परिणति इस बातमें भी हुई है कि सारेही पात्र हाड़ मांसके नहीं, विचारोंके बने दिखायी देते हैं। उनका निजी व्यक्तित्व विकसित होही नहीं पाया है। जब जिसे

मौका मिलता है, दर्शनकी वर्षा करने लगता है। यहाँतक कि भोजनसे पहले दर्शन, भोजनके बाद दर्शन, भोजनकी बजाय दर्शन, प्रथम परिचयमें (याद करें इति-मनुकी भेंट) और बादमें, सब कहीं दर्शनही दर्शन है। स्वर्गीय दुष्यन्तकुमारसे क्षमा याचना कर कह सकता हूँ : “मैं जिसे ओढ़ता बिछाता हूँ, वो दर्शन आपको सुनाता हूँ।” इस दर्शनाधिक्यमें एक औरभी गड़बड़ है। यदि एक बार पढ़कर यह याद करनेका प्रयत्न करें कि किम पात्रके क्या विचार हैं तो कुछभी याद नहीं आता। कारण यह कि मौलिक विचार किसीके नहीं है। प्रत्येक पात्रके मुंहसे नामों और उद्धरणोंकी झड़ी लगी रहती है। उद्धरण-बहुलतासे बरबस ‘नदीके द्वीप’ की याद आने लगती है, परन्तु इस टिप्पणीके साथ कि वहाँ उद्धरणोंका किठना सही प्रयोग है।

दर्शन, उद्धरण, नाम बाहुल्य, जैसे ये ही पर्याप्त न थे इसलिए एक और नयापन इस उपन्यासमें डाला गया है। उपन्यासके बहुत बड़े अंशको नयी कविताकी तरह छपा गया है। छोटे-छोटे वाक्ययांश, उन्हेंभी तोड़-तोड़कर इतना अधिक तोड़कर कि आप पढ़ते हुए मुठ्ठियां भींचनेको विवश होजायें—छपा गया है। कि, पर, क्यों, तो, मैं, भी, हाँ, आप, तुम, जैसे शब्दोंको, प्रायः बिना किसी औचित्यके एक-एक पंक्ति दी गयी है। ‘और सृष्टि अनंत कालतक/ नहीं, चल सकती, इसी-लिए प्रलय होता है, / हाँ, स्वाभाविक है, .. मैंने, तो पढ़ा है, कि, ...’ (पृष्ठ ४२)। इस प्रकारके अंशोंसे पूरा उपन्यास भरा पड़ा है, यह एक पूरे पृष्ठकी सामग्री है : ‘प्रोफेसर मनुको बड़े मनोयोगसे निहार रहे थे, प्रतिभा! / सौन्दर्य, यह मेरी है, / पुरुषकी प्रतिभा कांप गयी, / कहीं, उनके यशकी ली तो कांप नहीं रही? / सहसा उन्हें ख्याल आया कि यह क्लास है, यहाँ मनु उनकी विद्यार्थिनी। / और वह, इस समय, दर्शनशास्त्रके प्रोफेसर, / मनु ! / जी, आपने कुछ कहा, / नहीं कुछ नहीं, / वह सोच रहे थे, / क्या ? / और, सामने बैठी मनु पढ़ रही थी, / मनुने एक दिन उनसे कहा था, / कि, / तप तीन प्रकारका होता है, / सात्त्विक, / राजस, / तामस ! / सात्त्विक तप-देवता, संन्यासी और ब्रह्मचारियोंका। / राजस तप-दानव और मानवोंका। / तामस तप-राक्षस और परमात्माओंका। / वह मानव है, / उन्हें अपने तप से मनु चाहिये। / मनु भी तो उन्हें बहुत अधिक प्यार करती है। / नहीं, नहीं, / प्रो. आलेक्ससांद्राविनो, तुम मनुकी



दृष्टिमें गिर जाओगे । उससे शादी कर पाओगे ?/” (पृष्ठ ६६) । यहाँ तो फिरभी कई पंक्तियोंमें एकाधिक शब्द, या पूरे वाक्य हैं, अन्यथा पाठकपर इतनी दया प्रायः नहीं की गयी है । मुझे लगता है, लेखिकाने ऐसाही लिखा होगा और कम्पाजीटरने ज्यों का त्यों कंपोज कर दिया होगा । यदि इस उपन्यासको सही तरीकेसे लिखा और छापा गया होता तो यह सत्तर-पचहत्तर पृष्ठोंमें आ जाता ।

बात यहीं समाप्त नहीं होती । भाषाके असावधान प्रयोग (प्रूफकी भूलें कहकर भी उन्हें नहीं टाल सकते, वैसे, कमी उनकी भी नहीं है, पर वह चर्चा बाद में) इतने अधिक हैं कि आश्चर्य ही होता है । जहाँ हिंदीका प्रयोग आवश्यक नहीं है वहाँ हिंदी, और जहाँ हिंदी होनी चाहिये वहाँ अंग्रेजी । मास्कोमें टेलीविजन के लिए ‘दूरदर्शन’ का । (जोकि भारतीय प्रसारण संस्थानका नाम है, न कि तकनीकका) प्रयोग और कुछही देर बाद प्रोफेसरका परिचय कि “वह दर्शनमें अथारिटी माने जाते हैं” । कहना अनावश्यक है कि अथारिटीके अनेक पर्याय सुलभ हैं और यह अपरिहार्य शब्द नहीं है । इसी प्रकार, लेखिकाका यह कथन देखें—“विश्वके वडरोंमें एक संख्या और जुड़ गयी” या याद करें प्रोफेसरका कथन—“जब लौटा तो भारतीय दर्शनके फीबस लगेथे मेरे कैपमें” । यह न भूलें कि प्रोफेसर महोदय बहुत बड़े विद्वान् हैं और बहुत उम्दा हिंदी बोलते हैं । लेखिकाकी असावधानीका आलम यह है कि उन्होंने मनुके पितासे इरीनाको कहलावाया है कि वह (इरीना) उन्हें ‘पापा नहीं, पिताजी’ कहे, और ठीक इसके दस पंक्तियों बाद ये ही पिताजी इरीनाके घरको “व्यूटीफुल, your house is really beautiful” कहकर सराहते हैं । (पृष्ठ ६५) ।

भाषाके साथ दुर्व्यवहार करनेमें लेखिका अकेली नहीं हैं । कंपोजीटर और प्रूफरीडर महोदयोंने भी उनका पूरा-पूरा साथ दिया है । स्थिति यह है कि उपन्यास पूरा पढ़ लेनेके बाद मैं स्वयं भी गड़बड़ाने लगा हूँ कि कहां ‘कि’ का प्रयोग करना चाहिये और कहां ‘की’ का । प्रूफरीडरजीने ह्रस्वके प्रयोगकी कंजूसीकी बजाय दीर्घके प्रयोगकी उदारताका जी खोलकर प्रदर्शन किया है । हालके प्रकाशनमें भाषा व प्रूफरीडिंगकी गड़बड़ीका कोई ‘पुरस्कार’ दिया जाना हो तो यह प्रकाशन औरोंको काफी पीछे छोड़ देगा ।

परन्तु, दर्शनके विशद ज्ञान, नामों, विचारों, उद्धरणों आदिके विपुल भण्डारके लिए मैं लेखिकाकी भरपूर सराहनाभी करना चाहता हूँ । यह भी कि मनु और प्रोफेसरके प्रथम मिलनका जैसा सांकेतिक व कलात्मक चित्रण उन्होंने किया है वह अद्भुत है । □

## मकड़जाल

[पंजाबी उपन्यास]

लेखक : सैली बलजीत

समीक्षक : उत्तमभाई पटेल

“मकड़जाल” पंजाबके अग्रणी कथाकार सैली बलजीतका प्रथम उपन्यास है । इसमें लेखकने सरकारी दफ्तर-तंत्रकी गन्दगीकी बदबूको उभारनेका एक सशक्त प्रयास किया है ।

उपन्यास दो भागों—“मुखौटा और तंत्र” में बांटा गया है । “मुखौटा” में उपन्यासकारने सरकारी अफसरों तथा बाबूओंके माध्यमसे दफ्तर-तंत्रके भ्रष्टाचारों, अफसरोंकी ऐयाशी तथा उनका अड़ियलपन, बाबूओंकी चमचागीरी तथा जी-हुजूरीके साथ नीचेसे ऊपरतक के सभी अफसरोंके मुखौटोंके पीछे दबे, छिपे धिनीनेपनको हुबहु चित्रित किया है ।

लेखकने दर्शन खन्ना, रमेश, शंकर आदि पात्रोंके माध्यमसे दफ्तर-तंत्रकी गन्दगीको उसकी पूरी वास्तविकताके साथ प्रस्तुत किया है । साथमें दफ्तर-तंत्रके अफसरोंके मुखौटोंकी पतोंको एकके बाद एक उतारा है । हमारे दफ्तर भ्रष्टाचारके पर्याय बन गये हैं । यदि आर्डरके बाद दफ्तरमें ज्वाइन करनेमें देर हो गयी हो तो साहब “पिछली डेटमें ज्वाइन करवा देते ।” (पृ. १४) । सरकारी बाबू दफ्तरमें ऐशकी जिन्दगी जीते हैं । नौकरीपेशा व्यक्तियोंसे साहब घरका कार्य करवाते हैं । बदलेमें उन्हें डेरों सुविधाएं मिल जाती हैं । साहब के साथ रिश्तेभी अच्छे बने रहते हैं । दफ्तरमें उन्हें किसी प्रकारकी दिक्कत नहीं होती । बाबू लोगोंको मुर्गी खानेकी इच्छा हो तो वे पालटरी फार्मवालोंको डरा-धमकाकर मुर्गी पाते हैं । वे साहबके लिए तगड़ी-

१. पका : दिशा प्रकाशन, १३८/१६ त्रिनगर, दिल्ली-११००३५ । पृष्ठ : १६६; का. ६१; मूल्य : ५०.०० रु. ।



तगड़ी—असामियाँ फंसा लाते हैं। खन्नाके दफ्तरका गिरधारी, जो साहबको पूरी तरहसे पहचानता है यही काम करता है। घूसखोरीसे पाये गये पैसोंसे साहब, जब बीबी-बच्चे घरपर न हों, भीमेशाहसे मिलकर कई कारनामों करता है।

सरकारी क्वार्टरोंका ऊंची कुर्सीपर बैठनेवाले साहबों द्वारा अनैतिक उपयोग होता है। भीमेशाहकी चक्कीपर आनेवाली लड़कियोंका प्रबन्ध साहबके लिए होता है। भीमेशाहका यह कथन—“बड़े दिनोंके बाद चक्कीपर ऐसी लड़की आयी थी ..... सो.....ले आया, तुम्हारे साबके लिए.....” (पृष्ठ ३१), इसका सुन्दर उदाहरण है। साहब, अपने काली करतूतोंको जाननेवालेसे बहुतही नरमाईसे पेश आते हैं। खन्ना जब साहबके करतूतोंसे परिचित होता है तो उसे साहबका असंख्य मुछौटोंवाला चेहरा घिनौना लगता है। “फिलहाल उसने इस मुछौटिका फायदा उठा लिया था। ..... एक हफ्तेकी छुट्टी फोकटमें पाकर।” (पृ. ३३)।

दफ्तरमें इकत्तीस मार्चका दिन बहुत महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि उन दिनों पूरे साल भरसे चले आ रहे एस्टीमेट खत्म करने होते हैं। “जितनी खरीद फरोख्त सारे साल भरमें नहीं होती दफ्तरमें, लगभग सब कुछ नकली कागजोंमें खरीद लिया जाता है..... बस आधा-आधा बंट जाता है सभीमें। उस पूरे का आधा हिस्सा तो साब निगल जाते हैं..... सिर्फ साइन करनेके ऐवजमें।” (पृ. ३८)। एस्टीमेट बनाने के बादभी पैसे बचे रहते हैं तो “रिपेयर” का कोई नया बिल बना लिया जाता है; जिससे कि घरोंको संवारा जा सके। क्योंकि “कौन देखता है कि बिल नकली है? है किसीको फुसंत ... फिर कोई अगर आयेगा भी तो ... मर नहीं गया अभी मैं, संभाल लूंगा” (पृ. ३९) — साहब उवाच।

अफसर कभी-कभार अपना काम दबावसे करा लेते हैं। खन्नाके पहले साहब पुलिसका भय दिखाकर हड़तालको तुड़वा देता है और अपने ऊपरी अधिकारियों को प्रसन्न कर देता है। पुलिसवाले भी हड़तालियोंको पकड़ने, इसलिए निकलते हैं कि उन्हें ऊपरवालोंको रिपोर्ट देनी है, वरना उन्हें कोई रस नहीं है।

दफ्तरी बाबूओंके लिए सभी साहब समान होते हैं। चेहरोंसे अलग, कार्योंसे नये-पुरानेमें कोई फर्क

नहीं होता। नया साहब, खन्नासे बोगस ओवरटाइम भरनेके लिए कहता है। ओवरटाइमकी पेमेंटमें से साब फोकटमें राशिका एक बड़ा हिस्सा मार लेता है। नोक-झोंक होनेपर साहब अड़ियल टट्टु बन जाता है। खन्नाको प्रमोशन मिलनेपर साहब उसे रीलीव ही नहीं करता। किन्तु साहबकी बीबीकी पॉलिश करके खन्ना रीलीव हो जाता है। ईमानदार बाबूओंके लिए दफ्तरी-तंत्रका जाल उलझाना आसान नहीं होता। नौकरी में तो कई हथकंडे अपनाने पड़ने हैं। अच्छी जगहपर प्रमोशनकी पोस्टिंग करवानेके लिए हैडक्लर्कको घूस देनी पड़ती है। अगर साहबके पैरोंके तलवे सहलाते रहो तो किसीभी प्रकारकी दिक्कत नौकरीमें नहीं होती। चाहे दफ्तरमें देरसे जाओ, चाहे दफ्तरके बाहर घूमते रहो, कोई पूछेगा नहीं।

यूनियनवालोंकी करतूतोंका भी लेखकने पर्दाफाश किया है। कर्मचारी, यूनियनका साथ इसलिए देते हैं कि “करना पड़ता है जी..... सभीके साथ न चलें तो भी मुसीबत..... आप समझदार हैं जनाव.....।” (पृ. ३६)। जो साथ नहीं देते उन्हें यूनियनके लीडर गन्दी-गन्दी गालियां देते हैं।

“तंत्र” में उपन्यासकारने अपने हाथोंमें दफ्तरके तंत्रको समेटे हुए अफसरोंकी जी-हजुरी, उनकी सारे उसूलोंको ताकपर रखकर पक्षपात करनेकी नीति, दादागीरी, उनके अत्याचार, भ्रष्टाचार तथा जहरी-लेपनके साथ नौकरीपेशा कर्मचारियोंकी त्रासदीको प्रस्तुत किया है।

डिवीजनल ऑफिसका पन्तू साहब, खन्नाके दफ्तर में “एन्जॉयमेंट”के लिए पुष्पासे मिलने आते हैं। आकाशको मुट्ठीमें पकड़नेका सपना देखनेवाली पुष्पा साहबको खुश करके अच्छा-सा क्वार्टर पा लेती है। क्योंकि पुष्पा यदि इस तंत्रमें पूरी तरह सम्मिलित न भी होती तो अफसरही इस तरहके ढोठ हैं कि अपनी गन्दगीमें दूसरोंको भी घसीट लेते हैं।

दफ्तरमें रंग रहे गन्दे तंत्रसे खन्ना कभी-कभी खिन्न हो उठता है प्रतिदिन-कोई-न कोई नयी बात होती रहती है। वह इस गन्दे तंत्रसे छुटकारा पाना चाहता है, किसीभी प्रकार। “उसे कभी-कभार तो ऐसे लगता है, जैसे गुलामीके बीज उनके भीतर इस हृदयक अंकुरित हो गये हैं कि लाख चाहनेपर भी जिन्हें खत्म नहीं किया जा सकता। एक दफ्तरसे छुटकारा मिल भी जाये तो



दूसरे दफ्तरमें उसी प्रकारका विषय वातावरण मिल जाता है। सिर्फ अन्तर इतना होता है कि मुखौटोंके ऊपर उभरी आकृति थोड़ी भिन्न होती है। दफ्तरमें अफसर, जैसे नीचेवाले लोगोंको खाने दौड़ाता है..... और गुलामी की फसल बराबर पनपती रहती है।" (पृ. ११०)।

पन्नु, भाटिया तथा सभ्रवाल—तीनों समान हैं। अन्याय होनेपर ओवरसीयर मल्होत्रा, साहबके खिलाफ शिकायत करता है तो पन्नु उसे सस्पेंड कर देता है। भाटिया भी "जहाँ चाहो, जब चाहो" साइन कर देता है। उनका तो मानना है कि सरकारी काम जाली बिलोंसे ही चलता है। भाटिया जब खन्नाको चिट्ठी "इशू" करता है तो खन्ना फिरसे चूहा बन जाता है। क्योंकि अफसरके सामने होनेका मतलब है—ट्रांसफर। नये सिरेसे सब कुछ फिरसे प्रारंभ करनेकी असहनीय त्रासदी बाबूओंको गहरेसे तोड़ देती है, परिणामस्वरूप वे चूहे बने रहते हैं।

अफसर पैसे पानेके लिए एडजस्टमेंटका सिलसिला शुरू कर देते हैं। जाली बिल पास होता है। जिससे बिल बनवाना होता है, वह भी दस परसेन्ट ले लेता है। चीफ साहबका दौरा अफसरोंके लिए अक्सर फायदेका सौदा रहता है। पेमेन्ट करनेवाले कैशियरको भी सौ का एक नोट देना पड़ता है। किन्तु खन्ना, साहबके कहनेपर भी नहीं देता। परिणामस्वरूप भाटिया साहबसे झगड़ा होता है। इससे वह अपना चाज शिफ्ट करवा लेता है। वह तो चाहता है कि भाटियाके लार टपकानेवाले मुंहपर इस्तीफा पटक दें, किन्तु उसके पाँवमें गृहस्थीका टूटा हुआ पहिया बंधाया। जिसे वह और नहीं टूटने देना चाहता था। उसे इस बातका संतोष है कि अब अफसरोंकी जी-हुजूरी तो नहीं करनी पड़ेगी। किन्तु उसे अनुभव होता है कि यह भी उसका भ्रम है। क्योंकि "नौकरीमें प्रत्येक मकड़ीके जालमें फँसा हुआ, उससे बाहर निकलनेकी चाह लिये हुए भी, उसीमें जकड़ता जाता है..... क्योंकि प्रत्येक के कंधेपर अपनी-अपनी जरूरतोंकी सलीबें जो लदी होती हैं। और जरूरतोंकी सलीब और भारी होती जाती है। समयके साथ-साथ वह उस जालमें फँसा रह जाता है।" (पृ. १६५)।

"मकड़जाल" के द्वारा उपन्यासकारने दफ्तर-तंत्रकी घपलेबाजी, दफ्तरको रंडीखाना बनाते, गन्दगी संबंध फैलाते खूंखार जानवरों-ढीठ अफसरोंकी करतूतों

तथा घटिया किस्मके अफसरोंकी अवसरवादिता प्रस्तुत कर सरकारी पैसोंपर कुंडली मारकर बैठे सरकारी सांपोंके चेहरोंपर लगे मुखौटोंको उतारकर, दफ्तरके गलत तंत्रकी वास्तविकताओंका कटु सत्य व्यंग्यात्मक शैलीमें प्रस्तुत किया है। साथमें, दफ्तरी बाबूओंके दफ्तरी-चक्रव्यूहसे निकलनेकी कोशिशको उजागर करते हुए, आधुनिक अभिमन्युओंकी इस त्रासदीको भी प्रस्तुत किया है कि ये जिस दफ्तर तंत्रमें फंसे हुए हैं, उससे बाहर निकलनेका मार्ग जानते हैं। महाभारतके अभिमन्युकी तरह ये रास्तेसे अनजान नहीं हैं। अभिमन्यु बाहर निकलनेके प्रयत्नमें मारा गया था, किन्तु ये आधुनिक अभिमन्यु दफ्तरी-तंत्रके चक्रव्यूह में से निकलनेकी कोशिशमें गहरे फंसे जाते हैं। यही इनके जीवनकी महात्रासदी है।

उपन्यासमें घटनाओंकी पुनरावृत्ति हुई है। "मुखौटा" और तंत्रकी घटनाएं लगभग समान हैं। किन्तु यह पुनरावृत्ति इसमें दोष नहीं, लाक्षणिकता बन गयी है। क्योंकि ये घटनाएं ठोस रूपमें दफ्तर-तंत्रका चित्रण करनेमें महत्वपूर्ण सिद्ध हुई हैं। ये सारे भारतवर्षके दफ्तरी-तंत्रकी सच्चाई प्रस्तुत करती हैं। उपन्यासमें खन्नाके साथ दूसरे साहबकी बीबीकीं हरकतें, प्रमोशनके बाद खन्नाका विदाई-प्रसंग, मेहता द्वारा बटालाके बूढ़ेको फंसाना, पन्नुकी कोठीमें चोरी होनेपर निर्दोष कालू माली, बहादुर गोरखा, करतारे और जगीरेकी पुलिस द्वारा कड़ी पिटाई, पत्नी आरती के साथ पैसेके मामलेमें खन्नाकी नौक-झोंक, आरतीका आक्रोश, भाटियासे खन्नाका झगड़ा और आक्रोश—आदि घटनाएं रोचक व हृदयको छूनेवाली हैं। घटनाएं दफ्तर-तंत्रके एक ही पहलू—भ्रष्टाचारको उजागर करती हैं। घटनाओंमें क्लर्क-बाबूओंके डर और आक्रोशका सुन्दर चित्रण हुआ है।

दर्शन खन्ना उपन्यासका नायक है। मूल्य-निष्ठा और भ्रष्टाचारके पाटोंके बीच दबे खन्नाके अंतःसंघर्ष का चित्रण सराहनीय है। लेखकने पात्रोंका चित्रण स्थूल घटनाओंके संदर्भमें किया है। पात्र स्वाभाविक, जीवन्त तथा निकटके प्रतीत होते हैं। पंजाबी लहजेसे युक्त भाषा दफ्तरी-तंत्रके वातावरणको उभारनेमें सहायक हुई है। अपनी कुछ मर्यादाओंके बावजूद 'मकड़-जाल' सरकारी दफ्तर-तंत्रकी सड़ांधका प्रतीति कराता, लेखकीय अनुभवोंका निचोड़, अवश्य प्रतीत होता है। [७]



# कहानी

## कश्मीरी कहानियाँ?

[कश्मीरीसे अनूदित]

सम्पादन एवं अनुवाद : ओंकार कौल

समीक्षक : डॉ. तुमनसिंह

प्रोफेसर ओंकार कौल कश्मीरीभाषी हैं और उनका मुख्य क्षेत्र भाषा-शिक्षण और भाषा-विज्ञान है। वे कश्मीरी भाषामें ललित निबन्ध और कहानियाँ भी लिखते हैं। अनुवादके माध्यमसे कश्मीरी कथा-साहित्यसे हिन्दी जगत्को परिचित करानेमें भी विशेष रुचि है। इसी परिप्रेक्ष्यमें प्रो. कौलने 'कश्मीरी कहानियाँ' का संपादन और अनुवाद कार्य सम्पन्न किया है।

संकलनमें १३ कश्मीरी कहानियोंका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। दो कहानियाँ संपादकने स्वयं लिखी हैं। अन्य ग्यारह कहानियोंके लेखक कश्मीरीके ख्यातिप्राप्त कथाकार हैं। इन कहानियोंकी रचना पिछले तीन दशकोंके अन्तर्गत हुई है। कहानियोंके कथ्य में विविधता है और शैलीमें भी।

कश्मीरी कहानियोंका प्रकाशन १९५० से आरंभ हुआ। आजतक कथ्य और कथा-शिल्पकी दृष्टिसे कश्मीरी कहानी-साहित्य कई मोड़ोंको पार कर चुका है। अन्य भारतीय भाषाओंकी कहानियोंकी ही भांति कश्मीरी कहानी-यात्रामें प्रगतिवादी, यथार्थवादी, प्रयोगवादी आदि सभी प्रमुख दृष्टिकोणोंका समावेश हुआ है। "आजकी कश्मीरी कहानी आधुनिक जीवन-बोध, बदलते मूल्यों, अनुभूतियों, संवेदनाओं और कटु यथार्थका बिम्ब प्रस्तुत कर रही है।" इस संकलनकी अनूदित कहानियोंके माध्यमसे हिन्दीके पाठक कश्मीरी कहानी-साहित्यकी विशिष्टताओंसे परिचित हो सकें,

१. प्रका. : वितस्ता, डब्ल्यू जेड १३०-ए, नारायणा,  
नयी दिल्ली-११००२८। डिमा. : ८७; क्रा. ६२;  
मूल्य : ५०.०० ड.।

संपादकका प्रयास रहा है। इन कहानियोंके द्वारा हिन्दी के कथा-साहित्य भंडारकी श्रीवृद्धि भी अवश्य हुई है। साथही, इन कहानियोंके माध्यमसे कश्मीरकी संस्कृति भी हिन्दीमें प्रतिबिंबित हो उठी है। इन रचनाओंके माध्यमसे कश्मीरकी जीवन-पद्धति, रीति-रिवाज, आचार-विचार, पर्व-त्योहार, लोक-संस्कृतिसे संबंधित अनेक नये शब्द और पदभी हिन्दीको प्राप्त हुए हैं। इस आदान-प्रदानसे भाषा संपुष्ट होती है और सांस्कृतिक एकता सुदृढ़ होती है।

संकलनकी पहली कहानी है—“मैं कुछ कर नहीं सका !” रचनाकार हैं—अखतर मोहीउद्दीन। यह भावप्रधान कहानी है। मुहम्मद तेली कहानीका मुख्य पात्र है। उसका इकलौता बैल बट्टी ही उसका सुख-दुःखका साथी है और वही उसकी सबसे बड़ी सम्पत्ति भी है। मुहम्मद तेलीकी मृत्यु जिस दिन हुई, उसीं शामको उसके दो-चार रिश्तेदार मिलकियतपर हक जमानेके लिए उसके उजाड़ घरपर पहुंच गये। पंचायत दो-तीन दिन तक जमती रही। बट्टीकी ओर किसका ध्यान जाता ! भूखा बंधा रहा। बेचारा भूखों मर गया। “...उसे खानेको देता कौन ? यह किसको खबर थी कि यह बैल किसके हिस्से आयेगा ? दूसरा कोई व्यर्थमें ही क्यों इसे खिलाता ?” स्वार्थसिद्धिकी प्रक्रियामें मानवीय मूल्योंको भी ताकपर रख दिया जाता है।

पीड़ितोंको न्याय दिलानेके बहाने संघात व्यक्ति अपने व्यसनोकी पूर्ति किस ढंगसे करता है—इस विषय पर अमीन कामिलकी कहानी है “गरीबकी जोरू।” किसान हो या मजदूर, उसका शोषण होना तो उसकी नियति है। “असलमें जबतक समाजवादी व्यवस्था स्थापित नहीं होगी, ये पूंजीपति और उनके नेता इसी भांति मजदूरोंका खून चूसते रहेंगे”—ये मार्क्सवादी बातें करनेवाला हट्टा-कट्टा जवान, मजदूरकी एकमात्र



संपत्ति 'दो रुपये' भी उससे हथिया लेता है। गरीबको उसकी जोरू वापस दिलानेकी फिक्र किसे पड़ी है ?

संकलनकी तीसरी कहानी 'अंध विश्वास' है। कहानीकार हैं अवतारकृष्ण रहबर। यह कहानी भारतीय समाजमें व्याप्त अंधविश्वासोंपर करारी चोट करती है। नाथाकी दाईं आँख फड़क रही है तो उसका बाल बांका नहीं होसकता। वह जूतेकी टूटी एड़ीभी क्यों ठीक करवाये, उसकी दाईं आँख जो फड़क रही है—“आज तो देवताओंकी कृपा है मुझपर। आज शैतान भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता। आज मेरी दाईं आँख फड़क रही है।” पर जूतेकी एड़ी निकल जाती है और पैर डगमगानेकी वजहसे नाथा गाड़ीसे टकरा जाता है।

'शून्य' अली मुहम्मद लोन की आत्म-विश्लेषणात्मक लघु कहानी है। कहानीका कथ्य उत्तम पुरुषमें है। यह कहानी पाठकको उन एकांत क्षणोंमें ले जाती है, जब उसका सोच अपना सोच होता है और वह अपने तरीकेसे जीनेके लिए विचारोंके ताने-बाने बुनता है। मनोभावोंको काफी बारीकीसे पकड़ा गया है।

किसी आत्मीय व्यक्तिकी मृत्युके बाद स्वजन, परिवारजन निकट सम्बन्धी शोक प्रकट करते हैं, मातम मनते हैं। बंसी निर्दोषकी कहानी 'मेरे मरनेके बाद' इसी नवीन विषयपर लिखी गयी है। प्रस्तुतीकरणमें नयापन है। पाठक बंधा रहता है। इस शैलीमें लिखी कहानियाँ हिन्दीमें कम ही होंगी। नयी दृष्टि है, नयी सोच है। कथाकारने छोटी-छोटी बातोंको बखूबी उकेरा है। अनुवादकी छाया कहीं दिखायी नहीं देती।

स्वभावसे चिड़चिड़े और आदतसे उजड़्ड पिताको, बालककी स्वाभाविक मनोवृत्तियोंका आदर करनेका अनुभव होता है। रत्नलाल शांतकी 'अहसास' कहानी का यह चरम बिन्दु है। राजनीतिक सीमाएँ खूनके रिश्तोंको भी दुश्मन बना देती हैं। सीमाके इस ओरफा सैनिक, सीमाके उस पार अपने रुग्ण भाईसे मिलनेका लोभ संवरण नहीं कर सकता और जासूसीसे आरोपित होकर यातनाओंका शिकार बनता है। विभाजनकी त्रासदीको स्पर्श करती है अब्दुलगनी बेग अतहरकी कहानी 'शत्रु'।

'बिना शीर्षक' बशीर अहमद बशीरकी लघु कहानी है। अंततः सस्पेंस बना रहता है कि वह व्यक्ति कौन है जिसकी 'सम्वाददाता' से भेंट होती है। सस्पेंस

की मृत्युकी तो अंततः पाठकको ही सुलझाना है। सस्पेंस का निर्वाह बेहतरीन तरीके से हुआ है। कश्मीरकी प्राकृतिक सुषमाके बीच पल रहे एक अजीब भय और आशाकांक्षी स्थितिको चित्रित करती है हृदय कौल भारतीकी 'सहजात' कहानी। पशु-पक्षी भी अपनी सहजता खो बैठे हैं इस घुटनभरी स्थितिमें। कहानीके भीतरसे छुप-छुपकर सहमा-सा दर्द उभरता हुआ दिखायी देता है। यह स्थिति बदली हुई परिस्थितियों में समूचे कश्मीरकी अंतःपीड़ाका द्योतक है। कश्मीरी परिवार दिल्लीकी भीड़में अपने स्वत्वको खोता जा रहा है। मोहनको यह बात कहीं गहराईमें कचोटती है कि उसके बच्चे कश्मीरी कल्चरसे दूर होते जा रहे हैं—“क्या हिन्दी बोलते हैं ? जैसे इनकी सात पीढ़ियाँ यहीं जन्मी हों। अभागे, न तो यहांके रहे हैं और न वहांके” (यह राजधानी : हरिकृष्ण कौल)। निराशाके अधियारेमें आशाकी किरणें छितराती हैं। नसीम न तो सौंदर्यकी देवी है और न ही उसके पिता के पास धन-दौलत हैं। इस स्थितिमें नसीमको दुल्हन के रूपमें कौन स्वीकारेगा ? सलीम “बनावटी मानदंड की दीवार” को तोड़नेका संकल्प लेता है और नसीमसे निकाहकी बात पक्की हो जाती है। (प्रकाश : एन. निशा)।

अन्तिम दो कहानियाँ सम्पादकने स्वयं लिखी हैं : “उसे मेरी नजर लग गयी” और “वादीसे दूर”। दोनों ही कहानियोंके कथ्य और शैलीमें नवीनता है। “वादी से दूर” कहानीमें अपनी माटीसे दूर होनेके दर्दकी अभिव्यक्ति मिली है। “उसे मेरी नजर लग गयी” कहानी कश्मीरकी बदली स्थितिको देखनेका झरोखा है।

अनुवादके माध्यमसे 'कश्मीरी कहानियाँ' हिन्दी कथा-साहित्यको नवीन भेंट है। हर कहानी कथ्य और शैलीकी दृष्टिसे नयापन लिये हुए है। प्रत्येक कहानीको पढ़नेसे मूलका-सा आनन्द मिलता है। कुछ वाक्योंको छोड़कर, कहीं भी अनुवादकी छाया नजर नहीं आती। कहानियाँ छोटी हैं, भाषा सरल है। वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ कम देखनेको मिलती हैं। प्रारम्भमें कश्मीरी कहानीका संक्षिप्त इतिहास दिया गया है जो अत्यन्त उपयोगी है। कथ्य, शैली और भाषाकी दृष्टिसे सभी कहानियाँ सहज और सरल हैं। हिन्दीका प्रारम्भिक स्तरका ज्ञान रखनेवाला पाठक भी कहानियोंका पूरा-पूरा आनन्द ले सकता है। ऐसे अनूदित कथा-साहित्य का हिन्दी-जगत्में स्वागत होना ही चाहिये। □



## मनके आईनेमें?

[उड़ियासे अनूदित]

लेखक : विपिनविहारी मिश्र

अनुवादक : डॉ. मधुसूदन साहा

समीक्षक : डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल

आधुनिक उड़िया साहित्यके एक प्रतिभा सम्पन्न, संवेदनशील एवं सशक्त हस्ताक्षर श्री विपिनविहारी मिश्रका कहानी संग्रह 'मनर मुकुर' आधुनिक उड़िया कथा साहित्यमें अपना स्थान बना चुका है। डॉ. मधुसूदन साहाकी मान्यता है - " 'मनर मुकुर' उड़ियाका न केवल सर्वप्रथम रेखाचित्र संकलन है अपितु इस यात्रा का पहला पड़ाव है।" (प्राक्कथन)। डॉ. साहाने अपनी इस मान्यताकी पुष्टिमें पर्याप्त प्रमाणभी प्रस्तुत किये हैं जो विचारणीय हैं। परन्तु रचना-विधानकी दृष्टिसे, 'संस्मरण' या 'रेखाचित्र' की कोटिमें रखना, 'कहानी' की कोटिमें रखनेकी अपेक्षा अधिक समीचीन है।

लेखक प्रयाग विश्वविद्यालयसे एम. ए. की उपाधि प्राप्त कर सम्प्रति भारतीय पुलिस सेवाके अन्तर्गत बालेश्वर (उड़ीसा) में उप-महानिरीक्षकके पदपर कार्यरत हैं। 'मनर मुकुर' के पूर्व उनकी तीन कृतियां आधुनिक उड़िया साहित्यकी शोभा बन चुकी हैं। वे हैं — तिर्यक् दृष्टि, दारोगा (साहित्यिक व्यंग्य) तथा 'शपथ सांतालर' (आदिवासी जीवनपर आधारित कहानी संग्रह)। 'शपथ सांतालर' का हिन्दी अनुवाद 'शपथ संधालकी' शीर्षकसे डॉ. मधुसूदन साहाने किया है जो बहुचर्चित व समादृत रहा है।

कृतिके प्रति लेखकीय दृष्टिकोण भी महत्त्वपूर्ण है — "जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें अनेक विचित्रताएं हैं। उनमें से कुछको जाननेका सुयोग मुझे मिला है। जीवन संदर्भोंसे गुजरनेका अवसर जहाँ तक मुझे मिला है, वहाँ तक सुधी जनोंको ले चलनेका साहस ही मेरे रचना संसारका अभीष्ट है। मोतीसे लेकर मोती दीदी तक जितने व्यक्ति चित्र मेरे मनके आईनेमें जब-जब कौंधे हैं, मैंने उनकी झलक लोगों तक पहुंचानेकी चेष्टा की है।"

१. प्रका. : पराग प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ : ११२;

डिमा. ६१; मूल्य : ६०.०० रु.।

लेखकके उक्त दृष्टिकोणके परिप्रेक्ष्यमें यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है — "श्री विपिनविहारी मिश्रने अपने सम्पर्कमें आनेवाले शोषित व्यक्तियों, दीन-हीन नारियों, उपेक्षित एवं अनादृत पेशेवरों, मानवधर्म पशुओं और अमानवीय कार्य करनेवाले समाजके तथा-कथित मर्यादा पुरुषोंके चित्र अपनी संकेतधर्मी शैलीमें प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है जो अपनी संक्षिप्ततासे व्यापकताका बोध कराते हैं।"

श्री मिश्र एक ओर अनुशासनप्रिय कर्मठ पुलिस अधिकारी हैं और दूसरी ओर अति संवेदनशील, सहृदय, भावुक एवं चिन्तनशील लेखक हैं। वे बालपन से ही अपने सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियों और वातावरणके प्रति सजग रहे हैं तथा सहृदय एवं सहज आत्मीयतापूर्ण चिन्तक भी। उनकी पत्नी दृष्टि बाह्यावरणको छेदकर अन्तस्तलमें प्रवेशकर मर्मभरे तथ्यों तक पहुंचती है और उनका छायाचित्र प्रस्तुत करनेको व्यग्र हो उठती है। यही उनके लेखनकी अन्तर्भूति है।

यही कारण है कि लेखककी बचपनकी 'मोती' (रेखाचित्र 'मोती') 'मोती दीदी' ('मोती बाई') सह-पाठी 'मोहन व 'मीरा' ('मीरा') पुलिस अकादमीका सेवक 'पूनमसिंह', तथा पुलिस सेवामें आनेके बाद में 'टाइगर' (एक कुत्ता), बुढ़ू (एक बन्दर), टूक झाइवर उत्तमसिंह ('आविष्कार') कैप्टन माधोसिंह (कुलीनोंकी कुहेलिका), अपनी कन्या तक को दांव पर लगानेवाला दादा 'हमीद' तथा मानवीयतासे भर-पूर डॉक्टर दम्पती (समीकरण), बाढ़के प्रकोपमें घिरा गांव, ('सूखे पत्ते : हरे स्वप्न') भ्रष्ट नेता लम्बोदर बाबू ('वह लड़की') और जीवनके सारे कर्तव्योंको 'ईमानदारी' और 'भलमनसाहत'से निभानेवाले 'पूर्णन्दु बाबू' (आसन्न बत्तीघर) अनुशासनप्रिय पर गरीब-निवाज 'दादाजी' (पुनर्जन्म), पतिके प्रति अंधश्रद्धा वाला लक्ष्मी (भंवर), कर्तव्यनिष्ठ प्रिंसिपल 'महापात्र बाबू' (दर्दका एहसास) आदि उनकी लेखनीसे सजीव हो उठे। परिसमाप्तिमें लेखकने सनातन बाबूकी पीड़ा के साथ अपनी आत्मानुभूतिका समन्वयकर एक दुर्लभ मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है।

लेखक महोदय इन व्यक्तियोंके सम्पर्कमें आये, उनके विषयमें उत्सुकतावश या अनायासही उन्होंने जाना, उनका पता लगाया तथा गम्भीरतासे सोचा और मानवीय धरातलपर सहानुभूतिपूर्वक एक लेखककी



सहज अन्तर्दृष्टिसे उसको जांचा-परखा और उकैरनेका प्रयत्न किया। इन 'रेखाचित्रों'की सबसे बड़ी विशेषता इनकी प्रामाणिकता है। एक पुलिस अधिकारीके रंग-बिरंगे, दुरंगे तथा बदरंगे अनुभव सीधी सरल पर रोचक शैलीमें कभी हृदयको छू लेतेहैं, कभी मस्तिष्क को झकझोर देतेहैं और कभी बुद्धिपर हथौड़ा मारतेहैं। हम सोचनेपर विवश हो जातेहैं, 'क्या ऐसाभी होता है?' 'क्या यह सत्य हो सकताहै?' 'क्या ऐसेभी भले व्यक्ति आजके संसारमें हैं?' 'क्या ऐसे नर-पशुभी होते हैं?' आदि। पर लेखक महोदयका स्वयंका कथन सभी सन्देहोंको समाप्त कर देताहै।

'जीवन सन्दर्भोंके इन चित्रोंको लेखक महोदयने 'अपनी संकेतधर्मी शैलीमें प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है जो अपनी संक्षिप्ततासे व्यापकताका बोध करातेहैं। कहीं-कहीं तो केवल कुछ रेखाएं उकैरकर ही लेखक चित्रफलक पाठकके हाथों थमा देताहै और पाठक स्वयं उन अधूरे चित्रोंमें कल्पनाकी कूची लेकर रंग भरने लगताहै। समकालीन लेखनमें यह संकेतधर्मिताही सम्प्रेषणकी महती आधारभूमि मानी जातीहै।' इस शैलीकी अपनी विशेषता औरभी उजागर होतीहै जब हम लेखकके अन्तमें दिये गये संकेत-निष्कर्षपर ध्यान देते हैं। उदाहरणार्थ :

"चीजें समान होती हैं। तराजूभी समान होताहै, किन्तु तोलनेवालोंमें कितना अन्तर होताहै? न जाने यह समाकरण कब होगा?" (पृष्ठ ३७)

"मैंने उस अशिक्षिता नारीके सामने अपनेको बहुत छोटा महसूस किया।" (पृष्ठ ७८)

"बबून स्थिर दृष्टिसे चिड़िया-घर देखनेके लिए आनेवाले हम सदृश जानवरोंको देखता रहा।" (पृष्ठ ६५)

"नहीं, सिर तुड़वानेके लिए नहीं बल्कि उन बच्चोंको यह बतानेके लिए कि उन्हें छोड़कर मैं नहीं जा सकता; क्योंकि यह सोचकर ही मुझे जिस दर्द का एहसास होने लगताहै, वह पत्थरकी चोटके दर्दसे भी अधिक जानलेवा है।" (पृष्ठ १०४)

"उस वक्त कुत्तेको देखकर मुझे ऐसा लगा, जैसे कई दिन पहले मरा हुआ राजा पुनः जीवित हो उठाहै और शशिधरका सम्भवतः पुनर्जन्म हो गयाहै।" (पृष्ठ ६४)

हिन्दी अनुवाद बड़ी सूक्ष्मतासे भाव और विचारों

की गहराईतक पहुंचकर, चित्रोंकी रंग-रेखाओंकी वास्तविक बारीकियोंको समझकर, उपयुक्त शब्दों व मुहावरोंका प्रयोगकर विशेष सफलता पाताहै। अनुवाद, अनुवाद न होकर मौलिक लेखन लगताहै। भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। स्वयं लेखककी यह स्वीकारोक्ति है — "डॉ. साहाने न केवल इन रचनाओंका हिन्दी रूपान्तर कियाहै, बल्कि इन्हें एक नया विधानात्मक अर्थ देनेका प्रयास कियाहै।" □

## सांझा हाशिया

सम्पादक : कुमार नरेन्द्र

समाक्षिका : डॉ. राधा दीक्षित

अनेक आरोंपों-प्रत्यारोंपोंको सहते हुए, तर्क-वितर्कोंको झेलते हुए लगभग दो दशकोंका सफर तय करनेके बाद लघुकथाने आज साहित्यिक विधाके रूपमें अपना सम्मानजनक स्थान बना लियाहै। जीवनकी आपाधापीके कारण तथा अभिरुचियोंके बहुविध माध्यम उपलब्ध होनेके कारण पाठकके पास समयाभाव रहता है और इस स्थितिमें जो विधा सहजही अपनी ओर ध्यान आकर्षित करतीहै, वह है लघुकथा। लघुताके साथ-साथ रोचकता, यथार्थता, वेधकता, भावप्रवणता आदि गुणोंके कारण भी लघुकथाओंको लोकप्रियता और सम्मान मिलाहै। हिन्दीके सुप्रसिद्ध हस्ताक्षरोंने भी लघुकथाओंपर अपनी कलम उठायीहै।

'सांझा हाशिया' में तीस लघुकथाकारोंकी नब्बे लघुकथाएं संकलित हैं। इसके पूर्व संपादक द्वारा 'बोलते हाशिए' लघुकथा-संग्रह प्रकाशित कियाजा चुका है। सामाजिक विसंगतियों, साम्प्रदायिकता, संवेदनहीनता, मूल्यहीनता, शोषण, भ्रष्टाचार, दोमुंहेपन, बालमनोविज्ञान, पर्यावरण सुरक्षा आदि विषयोंको समेटे हुए इन लघुकथाओंकी विषय-वस्तु बहुआयामी है। बालमनोविज्ञानसे सम्बन्धित 'गुब्बारा' (अशोक भाटिया) उल्लेखनीय है। इस लघुकथामें एक बच्चा गुब्बारा लेना चाहताहै पर पिताके विरोधके कारण वह पिताके शब्दोंमें ही गुब्बारेकी बुराईयाँ गिनाताहै।

१. प्रका. : पारुल प्रकाशन, ८८६/५८ त्रिनगर, विल्ली-११००३५। पृष्ठ : १३१; प्रा. ६१; मूल्य : ३५.०० रु.।



जब उसे पता चलता है कि पिता उसके लिए गुब्बारा नहीं खरीदेंगे तो वह अपनेको नियंत्रित नहीं कर पाता, रो उठता है। तब पिताको उसके लिए गुब्बारा खरीदना पड़ता है। यह लघुकथा श्यामसुन्दर दीप्तिकी इसी शीर्षकसे प्रकाशित लघुकथासे प्रेरित है पर प्रेरक लघुकथासे कहीं अधिक भावप्रवण है। 'दूसरा पाप' (गुलशन वालानी) में हमारी रुग्ण मानसिकता और रूढ़िवादितापर कटाक्ष है।

आज यथार्थवादके नामपर रचनाओंमें अश्लीलता, विद्रूपता, विकृति और वोल्डनेसका भोंड़ा आग्रह फैशन बन गया है। ऐसेमें आस्था और विश्वासको जगाती 'युगके विपरीत' (मुकेश जैन 'पारस') 'जगमगाहट' (रूप देवगुण), 'प्राथमिकता' (सतीश दुबे), 'सहानुभूति' (सतीशराज पुष्करणा) लघुकथाएँ मरुभूमिमें ठंडी बयारका एहसास जगाती हैं। "जगमगाहट" (रूप देवगुण) उस युवतीकी कहानी है जो भावी बाँसकी वासनात्मक दृष्टिसे अपने स्वत्वकी रक्षाके लिए दृढ़ता से मुकाबला करनेका निश्चय करती है। एक दिन बाँस उसे अपने साथ उस कमरेमें चलनेको कहते हैं जहाँ पुरानी फाइलें पड़ी थीं। उन्हें उन फाइलोंकी चेकिंग करनी थी। वह शंकालु बनी रहती है। बिजली चले जानेपर बाँस उससे कहते हैं, "देखो, तुम्हें अंधेरा अच्छा नहीं लगता होगा। तुम्हारी भाभीको भी अच्छा नहीं लगता। जाओ, तुम बाहर चली जाओ।" यह सुनकर युवतीके मनमें आस्था और विश्वासके दीप जल उठते हैं। 'सहानुभूति' (सतीशराज पुष्करणा) में एक 'दादा' टाइप कर्मचारी नये अधिकारी द्वारा कार्य करने पर जोर देनेपर उससे बहस करता है। अन्तमें अधिकारी कहता है, "मैं लिखित कार्रवाई करके तुम्हारे बीबी-बच्चोंके पेटपर लात नहीं मारूँगा। गलती तुम करते हो। डाँटकर ही तुम्हें प्रताड़ित करूँगा। तुम्हें जो करना हो... कर लेना। समझे।" उसके साथी उसे नये अधिकारीको सबक सिखलानेके लिए उकसाते हैं तो उसके ओठोंमें शब्द फिसल उठते हैं, "नहीं रे! सबक तो आज उसने ही सिखा दिया है मुझे। वह सिर्फ अपना अफसर ही नहीं, बापभी है, जिसे मुझसे भी ज्यादा मेरे बच्चोंकी चिन्ता है।" इसकीसवीं सदीमें जानेका स्वप्न देखनेव ले भारतमें उसके एक प्रमुख स्तम्भ नारीकी शोचनीय स्थितिको दर्शाती लघुकथा 'नौकरानी' (सूर्यकांत नागर) में तेजाबी व्यंग्य है।

इसके अतिरिक्त 'रंग' (अशोक भाटिया), 'किराया' और 'खेल' (कमल चोपड़ा), 'सॉफ्टी कानैर' (कुमार नरेन्द्र), 'गुप्त सूचना' (गुलशन वालानी), 'आँकसी-जन' (घनश्याम पोद्दार), 'उकताहट' (प्रमोदकुमार गोविल), 'सच्चा सौदा' (प्रेमसिंह वरनालवी), 'गंदी बात' (वलराम), 'नाग-पूजा' (वलराम अग्रवाल), 'उपहार' (मुकेश जैन 'पारस'), 'धर्म-निरपेक्ष' (रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'), 'पेटपर लात' (विक्रम सोनी), 'प्राथमिकता' (सतीश दुबे), 'सलाह' (सतीश राठी), 'दरियादिली' (सतीश शुक्ल), 'गाजर-घास' (मुकेश साहनी) तथा 'अपने क्षेत्रका दर्द' (सुभाष नीरव) भी अच्छी रचनाएँ हैं।

संग्रहमें कई ऐसी रचनाएँ भी हैं जो स्तरीय नहीं कही जा सकतीं। इनके स्थानपर यदि कुछ अन्य चर्चित कथाकारोंको संग्रहमें लिया जाता, तो उपयुक्त होता। इससे एक ओर लघुकथाओंके वर्तमान परिदृश्य की पूरी झलक संग्रहमें मिलती, वहीं संग्रह गुट या समूह विशेष तक सीमित रहनेसे भी मुक्त रहता। महिलाएँ भी लघुकथाके क्षेत्रमें सक्रिय हैं, उनका संग्रह में कोई प्रतिनिधित्व नहीं।

कुल मिलाकर संकलन पठनीय कृति है। प्रारम्भमें लघुकथा : आवश्यकता एवं तात्त्विक विवेचन. शीर्षक से लघुकथाके इतिहास और तत्त्वोंपर सात पृष्ठोंकी सार्थक विवेचनाने आलोच्य कृतिकी उपयोगितामें वृद्धि की है। [ ]



## ये पुस्तकें जीवन-सन्देश देती हैं

श्री अरविन्द : जीवन और दर्शन	१५.०० रु.
शंकराचार्य : जीवन और दर्शन	१०.०० रु.
महर्षि दयानन्द : जीवन और दर्शन	२०.०० रु.
गुरु नानक : जीवन और दर्शन	२५.०० रु.

'प्रकर', ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७



'प्रकर'—पौष २०४६—३६



## काव्य

### समयका शेष नाम?

[उड़ियासे अनूदित]

कवि : सीताकान्त महापात्र

अनुवाद : डॉ. राजेन्द्रप्रसाद मिश्र

समीक्षक, डॉ. वीरेन्द्र सिंह

उड़ियाके जानेमाने कवि सीताकांत महापात्रकी कविताओंका यह नवीनतम संकलन भारतीय ज्ञानपीठ की 'भारतीय कवि' शृंखलाके अन्तर्गत प्रकाशित किया गया है। हिन्दी रूपान्तर डॉ. राजेन्द्रप्रसाद मिश्रने किया है और उसका मूल पाठ भी साथमें दिया है, दोनों भाषाओंपर समान अधिकार रखनेके कारण डॉ. मिश्रने कविके संवेदन-विचारको काफी सीमातक निभाने का प्रयत्न किया है। हिन्दीमें समकालीन उड़िया कवियों ने सीताकांतके साथ रमाकांत रथ तथा जगन्नाथप्रसाद दासका नाम आता है जिनकी क्रमशः कृतियां 'श्रीराधा' और 'शब्दभेद' इसी शृंखलामें पूर्व प्रकाशित हो चुकी हैं। सीताकांतजीका यह नया संग्रह इसी नामसे उड़िया में प्रकाशित हुआ है और हिन्दीमें यह उसी रूपमें प्रस्तुत किया गया है। इस संग्रहमें उनकी अंतरंग और निजी सम्बन्धों और तनावोंकी कविताएँ हैं और इन्हें लम्बी कविताएँ कहना उपयुक्त होगा। कुछ ऐसीभी कविताएँ हैं जो अपेक्षाकृत कम लम्बी हैं। वस्तुतः, इन कविताओं से गुजरते हुए मुझे लगातार यह अनुभव होता रहा कि कविकी दीर्घ संरचनावाली कविताओंमें एक ऐसा संयोजन व कसाव है जो विचार-संवेदनकी जैविकताको प्रकट करता है। कालानुक्रममें घटनाएँ, पात्र तथा ग्रामीण आशय इस प्रकार आते जाते हैं कि पूरी संरचना एक

विशेष दिक्-कालके आयाममें घटित होती है। यह आयाम है सामाजिक-पारिवारिकसे व्यापक ब्रह्मांडीय एवं विश्वजनीन संदर्भों तक। यही नहीं, इनके भविष्योन्मुखताका भी संकेत है; वर्तमानकी पीड़ाओं, आकांक्षाओंका संस्पर्श है, आद्य रूप, मिथक, पुरावृत तथा लोकगाथाका अद्भुत समावेश हैं और दिन-जीवन-मरणको गूँथनेवाला सत्य है (पृ. १२१) — ये सभी तत्त्व सीताकांत महापात्रकी काव्य संरचनामें इस प्रकार गुंथे हुए हैं कि उनकी समग्रता या जैविकताको इनके बिना ठीक प्रकारसे समझा नहीं जा सकता। इस बिन्दुपर इस ओरभी ध्यान जाता है कि सीताकांतकी दीर्घ संरचनावाली कविताएँ मुक्तिबोधकी कविताओंके समानता रखती हैं फिर भी दोनोंमें अन्तर है। सीताकांतमें एक परिष्कृत भावबोधका आग्रह है जो मुक्तिबोधमें भी है, पर मुक्तिबोध कटु जीवन-यथार्थको जिस संघर्षमूलक रूपमें रख सके हैं, वह सीताकांतमें नहीं है। फँटेंसीका जो यथार्थपरक प्रयोग मुक्तिबोधमें है, वह महापात्रमें अप्राप्य है। मुक्तिबोध लम्बी कविताओंके संयोजनमें कहीं अधिक सक्षम है, महापात्रजीकी अपेक्षा। इस तुलनाका आशय मात्र यह दिखाना है कि ये दो कवि यथार्थको भिन्न रूपोंमें प्रस्तुत करते हैं अर्थात् उनके यथार्थ प्रतिपादनमें 'दृष्टिकोण' की भिन्नता है। इस विवेचनके प्रकाशमें सीताकांतकी रचनाओंकी भिन्न आयामिकताका दिग्दर्शन आवश्यक है।

सीताकांतकी रचनात्मकताका एक अर्थवान् आयाम है पारिवारिक एवं परिवेशगत बिम्बोंका। यह प्रवृत्ति समकालीन हिन्दी, मराठी तथा बंगला आदि काव्यमें समान रूपसे प्राप्त होती है। यह प्रवृत्ति इस तथ्यको प्रकट करती है कि पारिवारिक बिम्ब जैसे बच्चा, मां, पिता, दादा, बहन, घर, आंगन आदि एक प्रकारके आद्य रूप हो गये हैं जो हमारे अचेतनमें गहरे पैठे हुए हैं। ये बिम्ब बार-बार प्रकट होते हैं और हमारी जातीय

१. प्रका.: भारतीय ज्ञानपीठ, १८ इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोवी रोड, नयी दिल्ली-११०००३। पृष्ठ : २३६; डिमा. ६१; मूल्य : ७०.०० रु।

'प्रकर'—दिसम्बर'६२—४०



अस्मितासे जुड़े हुए हैं। इनकी स्मृतियाँ कालके परि-  
दृश्यको उपस्थित करती हैं क्योंकि इनका अर्थ-रूपांतरण  
वर्तमान प्रतीति-बिन्दुकी सापेक्षतामें होता है। ये बिम्ब  
हमारे आदिम रागात्मक सम्बन्धको 'अर्थ' प्रदान करते  
हैं। सीताकांत महापात्रमें बच्चा, माँ, दादा, दादी माँ  
जहाँ एक ओर रागात्मक सम्बन्धोंकी ऊष्मा प्रकट करते  
हैं, वहीं वे परिवेशजनित व्यापक सन्दर्भोंको भी उजा-  
गर करते हैं, संघर्ष और जिजीविषाको गति देते हैं तथा  
जीवनकी त्रासद अनुभूतियोंको वाणी देते हैं। इस संदर्भ  
में 'मनु' के लिए कविता विशेष उल्लेखनीय है जहाँ  
कवि अपने बच्चेको संघर्ष के लिए, बाघ (बाघाएँ) से  
टकाने के लिए, भविष्य यात्रा के लिए रागात्मक संबंधों  
को पहचानने के लिए, प्रकृति दृश्योंसे जीवनको भरने के  
लिए, तथा यंत्रणासे जूझने और शब्दोंको अर्थ देने के  
लिए तत्पर करता है। एक उदाहरण लें :—

“सहेजे रखना/उस गाढ़े अंधेरेको/उस अथाह  
शून्यको/अव्यक्त सिसकियोंको/तब शायद तू  
देखेगा/उस यंत्रणामें निचुड़े सत्में/हर शब्द तेरा  
है/हर उच्चारण तेरा/होगा उदीप्त।

ऐसीही एक अन्य लम्बी कविता 'यात्रा तेरी लम्बी  
हो है जिसमें विडम्बनाओंसे जूझनेका आदेश है—ऐसा  
ही एक मिथकीय प्रसंग लें—

“मृगयाको सिर्फ झूठी माया समझ/संदेह मत  
करना/मायावी हिरनसे बढ़कर सच/हमारे नसीब  
में नहीं होगा/धनुष बाण लिये उसी स्वर्ण/मृगके  
पीछे दौड़ना” (पृ. ५६)। इसी कवितामें  
एक और दृश्य है—“अमृत हो, हलाहल हो/चख  
लेना, पी लेना/पश्चात्तापों के लिए बादमें समय  
आयेगा/तब समझ लेना/जीवन असंख्य पश्चात्तापों  
के सिवा/और है ही क्या ?” (पृ. ६६)

ऐसी कविताओंसे गुजरते हुए राग, पीड़ा, संघर्ष,  
तनाव और यात्राका एक ऐसा चित्र उभरकर सामने  
आता है जो खण्डोंमें विभाजित कविता-दृश्योंको एक  
'समग्र-बिम्ब' में प्रक्षेपित करता है। सीताकांतकी  
कविताओंका यह सबसे महत्त्वपूर्ण रूप है। 'अकृतज्ञ'  
और 'शत्रु' कविकी चर्चित कविताएँ हैं जिसमें मरणा-  
सन्न पिता-बिम्बको प्रस्तुत किया गया है, और अनेक  
प्रयत्न करनेपर भी 'मृत्यु' रूपी शत्रु के विरुद्ध रचा  
गया चक्रव्यूह निरर्थक सिद्ध होता है—

लेकिन खाटपर वह नहीं है/जिसे चक्रव्यूहके केन्द्र

में स्थापित कर/पहरा दे रहे थे योद्धा वगं, सम्पूर्ण सेना/  
है सिर्फ मिट्टीका पुतला रूपहीन, शब्दहीन/जो है मिट्टी  
में लौटनेको अधीर !  
(शत्रु)

सीताकांतकी पारिवारिक कविताओंमें तथा परि-  
वेशमें सम्बन्धित कविताओंमें राग और संघर्षकी निम्न  
स्थितियाँ प्राप्त होती हैं और यही कारण है कि कवि  
बार-बार उन स्मृतियों, आशयों और बिम्बोंकी ओर  
जाता है जो उसका पीछा करते हैं। इनमें चित्रोत्पला नदी,  
जो कविके गाँवको अर्थ देती है, बार-बार उसकी कवि-  
ताओंमें आती है जो परोक्षतः कालके प्रवाहको भी  
व्यक्त करती है। बालक, गाँव, मिट्टी, चक्रव्यूह, अंधेरा,  
जंगल, मायावी हिरन, आकाश, पर्वत, बुढ़िया, निर्जनता,  
नक्षत्र और ब्रह्मांड—ये सभी शब्द प्रतीक बन जाते हैं  
और यह सिद्ध करते हैं कि सृजनात्मक स्तर-पर कवि  
इन प्रतीकोंको व्यापक संदर्भ देता है—एक ऐसा संदर्भ  
जो कविताओंकी संरचनाको घटनात्मक बना देता है।  
यही कारण है कि कवि क्रियाओं और संज्ञाओं (घटना  
व पात्र) के सम्वाद द्वारा संरचनाको गति और अर्थ  
प्रदान करता है। उदाहरण रूपमें 'घर' कवितामें 'मिट्टी'  
और 'आज' का घटनात्मक सम्बन्ध है जो मिट्टीके अर्थ  
को व्यापक सत्यसे जोड़ता है—

“मिट्टी कुछ याद नहीं रखती/न तुम्हारा दुःख, न  
तुम्हारी सरल मुस्कराहट/लौटा लाओ खुदको/  
आकाशसे, शून्यतासे/इस शांत-शिष्ट निरीह आज  
में/याद रखो, मिट्टी कुछ याद नहीं रखती/मिट्टीको  
कुछ याद नहीं रहता !”  
(घर)

इसी प्रकार 'समयका शेष नाम' एक ऐसी कविता  
है जिसमें राग-सम्बन्ध है, प्रेमका सापेक्ष रूप है, शब्द  
का रचनात्मक संदर्भ है और समयके सहस्र नामोंमें  
शेष नाम 'निर्जनता' है जहाँ सभीको जाना पड़ता है :

“क्या हम नहीं जानते कि स्नेह/चाहे जितना  
गहरा/और व्यापक क्यों न हो/निर्जनताको नजर-  
अंदाज नहीं कर सकता/निर्जनता तो हमारी तक-  
दीर है/...समयके सहस्र नामोंमें/शेष नाम ही  
निर्जनता है/अंतमें हम सबको/वहीं पहुंचना पड़ता  
है/उसे भीत बनाना पड़ता है/...सबको, हाँ यहां  
तक कि/घने जंगलमें जरा शिकारीकी/प्रतीक्षामें  
बैठे खुद ईश्वरको।” (समयका शेष नाम)

महापात्रकी यह कविता मुझे जहाँ एक ओर

मानवीय राग-सम्बन्धोंको अर्थ देती है, वहीं 'शब्द' के



व्यापक सन्दर्भको भी प्रस्तुत करती है। एक दार्शनिक आशय मृत्यु-सत्यको निबधित करती है। कविकी पंक्तियाँ—“सारे शब्द चुक जानेपर/जो कुछ बचता है, वही है कविता” तथा “सारे शब्द मर जानेपर/जो कुछ बचता है, वही है प्रेम” जैसी पंक्तियोंमें कविता और प्रेमको शब्द सापेक्ष मानते हुए शब्दोंसे परे ले जानेकी जो स्थिति है, वह मेरे विचारसे ‘सत्य’ का एक रचनात्मक सन्दर्भ है। एक-दूसरे स्तरपर कविका शब्द, आकाश, बादल और यंत्रणासे गुजरता है (वापसी)। ये सारी कविताएं शब्दके उस रूपको व्यक्त करती हैं जो मानवीय राग-पीड़ासे सम्बन्धित होकर सृजनात्मक स्तरपर ‘उससे’ एकीभूत हो जाना चाहती है। कविकी ऐसी कविताएं नितान्त शब्दके उस रचनात्मक रूपको व्यक्त करती है जिसके बिना कविता, प्रेम, प्रकृति, रहस्य, ब्रह्मांड तथा व्यक्ति-संवेदन सब बेमानी पड़ जायेगे। शब्दकी अस्मिताका खो जाना व्यक्ति-जाति की अस्मिताका खो जाना है।

‘समयका शेष नाम’ में, जैसाकि ऊपर संकेत किया जा चुका है, ‘निर्जनता’ का व्यापक सन्दर्भ है, जो ‘मृत्यु’ का व्यंजक भी है। यहांपर कालका रूप मृत्यु या यम है। यह कालका विलयकारी रूप है। दूसरी ओर काल शक्ति है जो गत्यात्मक है जिसमें परम्परा और इतिहासकी गति सम्मिलित रहती है—“परम्परा की, इतिहासकी नदी/बह रही थी हर दिन-सी/धीरे-धीरे वह मिल जाता है/रेतके साथ।” (हमारा गांव) यह रेत कालका रूप है जिसके स्पर्शसे सारे, आज ‘कल’ बन जाते हैं :

पलक झपकनेसे पहलेही/सारी बातें कलमें ही/समा जाती है / कैसा जादू जानता है समय / उसका हाथ लगते ही/सारे आज कल बन जाते हैं।” (पुरातत्त्व)

यहांपर भूत और वर्तमानका सापेक्ष सम्बन्ध है जो कालके गुण या शक्तियाँ हैं। भूत/हरिने त्रिकालको (भूत, वर्तमान व भविष्य) गुण माना है जिसकी निरन्तरतामें हम कालकी प्रतीति करते हैं। महापात्रजीकी ऊपरकी पंक्तियाँ अत्यन्त सांकेतिक रूपसे इस तथ्यको ‘सहज’ रूपमें प्रस्तुत करती हैं। समयको हम ‘घटनाओं’ के द्वन्द्वसे अनुभव करते हैं; इस तथ्यको महापात्र बादल, पक्षी, स्वप्न और खिलौनोंके आने और टूटनेकी क्रिया (घटना) से व्यक्त करते हैं; सामान्य घटनाओंसे ‘काल’ के विम्बको प्रक्षेपित करते हैं :

सालों, युगों तक/बादलों और चिड़ियोंकी उड़ान में/सपनों और खिलौनोंके/आने और टूट जानेमें/बीत जाता है अन्तहीन समय ! (कभी-कभी)

गहराईसे देखा जाये तो अस्तित्व और अस्तित्वहीनता (आने और टूटने) के क्रममें काल व्यतीत हो जाता है। अतः सीताकांतके यहाँ काल-घटना सापेक्ष है, प्रवाहमान है, रेखीय है और त्रिकालकी निरन्तरता में वह गतिशील है।

इस प्रकार सीताकांत महापात्रकी कविताएं विचार-संवेदनके विविध आयामोंको व्यक्त करती हैं जिसमें गवई-गांवकी गंध है, इतिहास और कालकी घड़कनें हैं, प्रेम और प्रकृतिके राग-सम्बन्ध है तथा शब्द और निर्जनताके तात्त्विक आशय हैं। समकालीन भारतीय कवितामें सीताकांतजीका अपना स्थान है क्योंकि उनमें अनेक उपयुक्त विवेचित तत्त्व आजकी कवितामें भी प्राप्त होते हैं। हिन्दी, मराठी, बंगला और गुजराती कवितासे गुजरते हुए मुझे सदा लगता रहा (अनुवाद रूपमें) कि आजका भारतीय कवि उन्हीं परेशानियों, संत्रासों, रूपाकारों (बच्चा, जंगल, पहाड़, मां आदि), गांव-जनपदके लोकाशयों, राजनीतिक विडम्बनाओं तथा मानवीय रागको पकड़नेके प्रयत्नमें लगा हुआ है, ओर इन सब क्षेत्रोंको वह शब्द-सर्जनाके द्वारा ‘अर्थ’ प्रदान कर रहा है। [१]

## तृज्या<sup>१</sup>

कवि : महेन्द्रप्रताप सिंह

समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

नवलेखनके दौरान ‘कविता’ के पाठकोंकी निरन्तर घटती हुई संख्याके लिए जहाँ छंदके परित्यागको दोषी ठहराया गया, वहीं भाषाके अपेक्षाकृत क्लिष्ट और दुरूह मुहावरेको भी संप्रोषणके अनुकूल नहीं पाया गया था। महेन्द्रप्रसाद सिंह कृत ‘तृज्या’ को पढ़ते समय यह प्रश्न बार-बार उठता है कि ये कविताएं किन पाठकोंके लिए लिखी गयी हैं ? इन कविताओंको संभवतः वह ‘सुगढ़ श्यामली प्रतिमूर्ति’ भी न समझ

१. प्रका. : भारतीय ज्ञानपीठ, १८ इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३।  
पृष्ठ : ८०; डिमा. ६१; मूल्य : ४३.०० रु.।



पाये, जिसके लिए 'स्मृतिके पारद तरल मोतियोंसे बरसते रहे हैं' (पृ. ६६) क्योंकि 'ब्लू जीन्स' में कसी वह काया निश्चयही इस भाषासे अपरिचित न होगी। हिन्दी कवितामें संस्कृतनिष्ठ शब्दावली न तो असहज लगती है, न इसे वर्जित माना जा सकता है परन्तु महेन्द्र प्रसाद सिंहने जिस सामाजिक पदावलीका व्यवहार किया है, वह कमसे कम आजकी हिन्दी कविताके पाठकोंके लिए चौंकानेवाली है। 'हंस-हंसता हेमांगी', 'नातिमध्यम' 'आनुभविक प्राक्कल्पना', 'मादक सुपर्णा-वलि', 'काल्पिक रूपान्तर', 'हालदिक नवागम', 'केन्द्रीय एकाक्षिक संज्ञा', 'प्रतीयमान प्रशान्ति जैसे शब्द अच्छी खासी हिन्दी जाननेवालोंके लिए भी कठिनाई उत्पन्न करते हैं। हालांकि इन कविताओंमें अंग्रेजी-फारसी के शब्दभी प्रचुर मात्रामें हैं, जो संकेत देते हैं कि भाषा के प्रति कोई कथित शुद्धतावादी नजरिया इन कविताओंके पीछे सक्रिय नहीं है। एक ओर 'ब्लू डैनिम', 'युक्लिप्टस', 'टमिनस' जैसे शब्दही नहीं, 'कीप ऑफ दि ग्रास' जैसे अंग्रेजी पद मौजूद हैं, दूसरी ओर अजीब नेस्तनाबूद, वादा, ज़िद, अतिशबाजियाँ आदि अरबी-फारसी शब्दभी यथास्थान आये हैं। 'डोंगी', बिजूखा, डीह जैसे साधारण बोललाल वाले तथा आंचलिक शब्दभी कविताओंमें हैं, पर उनकी संख्या बहुत कम है। बेहिचक कहा जा सकता है कि कविने विशिष्ट भाषामें विशिष्ट पाठकोंके इन कविताओंका प्रणयन किया है। वह न केवल अपने भाषा-प्रयोगोंके प्रति सचेत है अपितु अप्रचलित शब्दोंके माध्यमसे पाठकोंको आतंकित करनेकी प्रवृत्ति भी उसमें दृष्टव्य है।

परन्तु भाषाके नरिकेलवत् आवरणको भेदनेके जिन कोमल अनुभूतियों और रागात्मक संवेदनोंसे साक्षात् होता है, वे प्रमाणित करते हैं कि महेन्द्रप्रसाद सिंह एक भावुक कवि हैं। विशन टंडन के अनुसार ('प्राक्कथन') इन कविताओंका केन्द्रीय भाव 'मनके भीतके प्रबल आकर्षणसे विद्ध व्याकुलता' है, जिसे स्वयं कविने नितान्त वैयक्तिक अनुभूतिकी तांत्रता को प्रगाढ़ आत्मीयता कहकर संबोधित किया है (भूमिका, पृ. सोलह)। केन्द्रीय भावको स्पष्ट करते हुए कविने लिखा है: "पर न तो इनमें ऊधमी बोहे-मियाईपन रासलीलाई मानसिकता है और न विक्षिप्त प्रेमकी दीवानगी। इनका प्रबल तत्त्व है चुपचाप वेदना सहते जाना और जीवन-यापनकी

वृत्तिका निर्वह करते जाना" (पृ. सोलह)। कविने इस बातका निर्णय आलोचकोंपर छोड़ दिया है कि 'तृज्या' एक वैयक्तिक हस्ताक्षर है अथवा सांस्कृतिक?

यह सच है कि इन कविताओंमें आया प्रणय-भाव पर्याप्त मर्यादित है। इसमें 'वासना' को मूल्यवान् नहीं माना गया है, हालांकि प्रेयसीका 'मृगण रंभा रूप' ही नहीं 'फ्रिज कंचुकी' में संवरा सम्मोहन (पृ. १४) भी सामीप्यके लिए बार-बार उकसाता है, रुखमार और पेशानीकी मंदाकिनी उसे मदान्ध करती है (पृ. ५६)। 'मंदाकिनी' शब्दसे उस पावनताका संकेत हुआ है, जो कविको प्रणय-प्रसंगमें अभीष्ट है। ऐसे स्थलोंपर कविका बोध, 'तुम्हारे छूनेमें था प्राण/संगमें पावन गंगा स्नान' के छायावादी काव्यानुभवके निकट पड़ता है। "पलैप" से लगता है कि इस संकलनमें केवल प्रेम कविताएं ही हैं। कविकी 'भूमिका' भी इस कथनकी पुष्टि करती है। जबकि वास्तविकता यह है कि संग्रह की 'सांप और सीढ़ी', 'मशाल', 'अष्टावक्र', 'भारत सूक्त' 'धरित्रीकी प्रशस्तिमें' आदि अनेक कविताएं 'समयकी प्रामाणिकता' से संकलित हैं और इनमें वैचारिक ऊर्जा भरपूर है। 'दरअसल लंका है/अपने ही मानसका कुरुक्षेत्र', क्षितिजपर सर्वांध घटाटोप छाया है, 'हिसक जन्तुओंका अभयारण्यक चक्रव्यूह/और गहरा गया है', 'एक मध्ययुगीन खण्डरी किलेमें परिणत होगया / जिसमें सिर्फ उल्लूकों और चम-वादड़ोंका राज है' आदि पंक्तियोंमें आजके यथार्थके विभिन्न संदर्भ अंकित हैं। यथार्थका फोटो चित्र खींच देना मात्र कविका उद्देश्य नहीं है। कुछ कविताओंमें परिवर्तनशील मानसिकताका उद्घोष हुआ है। 'मुण्डमाल' कवितामें कविकी कामना है—

और एक नयी शुरुआत हो, एक नूतन नवरात्रकी।

(पृ. ७८)

चूंकि ये कविताएं विशिष्ट पाठकोंके लिए लिखी गयी हैं, इसलिए इनकी बुनावटमें अनेक सन्दर्भ ऐसे आये हैं, जो सामान्य पाठकके लिए अग्राह्य और दुर्बोध हो सकते हैं। आम पाठक इन्दिरा गांधी और दस्यु सुन्दरी फूलनदेवीके फर्कको तो समझ सकता है पर रुथ टिनेटा हार्न और जेवियरा हालेण्डर (पृ. ३) के नाम उसके लिए सुपरिचित नहीं हैं। इसी प्रकार 'अपोलो' (पृ. ८०), 'स्फिक्स' (पृ. ३१), 'वृत्र' (पृ. ५८) आदिका समावेश जहां कविकी बहुज्ञताका द्योतक है, वहीं सामा-



न्य पाठकके लिए संप्रेषणके स्तरपर समस्या उत्पन्न कर सकते हैं। 'तुम्हारे तरुवरको विश्वोद्योगों के साथ-साथ' (पृ. ५६) — इस पंक्तिको वही समझ सकता है, जो इस यथार्थसे अवगत हो कि राजस्थानके विश्वोद्योगोंने वृक्षोंकी रक्षा को । लेकिन संप्रेषणकी समस्या सर्वत्र नहीं है। डॉ. तारकनाथ वालीका यह कथन सटीक है कि महेंद्रप्रताप सिंहकी कविताकी सबसे बड़ी शक्ति विम्बविधान है ('तूज्या' की प्रकाशन-पूर्व समीक्षा)। जहाँ कवि अर्थ-ग्रहणके साथ विम्बग्रहण करानेमें समर्थ हुआ है, वहाँ कविताकी शक्ति निश्चयही बढ़ी है। 'समय सामुद्रिक सुपाखी है', 'चेतनाके मधुमास में', 'समी-रान्दोलित सुरभित यूक्लिप्टस सी', 'नयी नवेली दुल्हन सा भविष्यत्का आमंत्रण', 'प्रतिभाओं और प्रतिमानों के वृन्दावन', 'अवनतिके कोल्हूमें' आदि पद इस संदर्भमें उल्लेखनीय हैं। एक उदाहरणसे कविकों अभिव्यंजना सामर्थ्यको देखा जा सकता है—

तन सूखा काठ

और मन बैसाखका तपता मरुथल बन गया है।

घड़ीका अंजर-पंजर जकड़ गया है—

न सूई सरकती है

और न झरे रेडियमसे कालका सुराग मिलता है  
यामाकी परियोंकी पंखध्वनि

का विसृवियस कंठ फूटेगा। (पृ. ३५)

भाषाके स्तरपर दुरुहताको अनदेखा कर सकें तो इन कविताओंका अभिव्यंजना-पक्ष सबल है। इस संग्रह को समाप्त करते हुए प्रबुद्ध पाठक यह अवश्य जानना चाहेगा कि 'तूज्या' का अर्थ क्या है? यह 'त्रिज्या' का ही अपभ्रंश है या कोई गढ़ा हुआ शब्द है? इस शब्द में क्या अर्थ व्यंजना है, यह तो कवि महोदयही बता सकते हैं। अन्तमें यही कहा जा सकता है कि यह एक विलक्षण काव्य-संग्रह है और आज की कविताकी मुख्य धारासे हर तरहसे अलग-थलग जा पड़ा है। □

## युगपुरुष चाणक्य

[महाकाव्य]

कवि : लक्ष्मीकान्त विद्याभूषण

समीक्षिका : डॉ. हर्षनन्दिनी भाटिया

'युग पुरुष चाणक्य' एक गौरवपूर्ण तथा अभूतपूर्व

उपलब्धि है। यह महाकाव्य भारतीय संस्कृति एवं सभ्यताका नीतिपूर्ण स्तम्भ माना जा सकता है। चाणक्य जैसे महापुरुषपर कोई महाकाव्य नहीं लिखा गया। विद्याभूषणजीने महान् नीतिविशेषज्ञ महापुरुषपर महाकाव्य रचकर महाकाव्योंमें एक नवीन कड़ी जोड़कर अभावकी पूर्ति की है।

कविने इतिहासको काव्यके साँचेमें ढाला है। इसमें इतिहासके साथ-ही-साथ कल्पनाका मिश्रण भी है। कृतिमें ऐतिहासिक रूप और वर्णन-परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है, किन्तु कहींभी इतिहास विपर्यय नहीं होने पाया है। इसमें भारतीय इतिहासके उज्ज्वल अंश की कथावस्तु ली गयी है, जहाँ महामानव चाणक्य अपनी नीति-निपुणता, कला-कौशल एवं वाक्चातुर्यसे नवीन ऐतिहासिक मोड़ देते हैं। भविष्यमें वही प्रगति अपने कालका स्वर्णयुग कहलाती है।

महामना चाणक्यका चरित्र यती, संन्यासी एवं संत के रूपमें उभरता है। वे नीतिके ज्ञाता और युगद्रष्टा हैं। वे तपस्या और त्यागकी प्रतिभूति हैं। वे एक क्रान्तिकारी महापुरुष हैं। भारतीय सांस्कृतिक इतिहासमें पौराणिक परिवेशसे इतर अन्य कोई चाणक्य जैसा आदर्श और महान् पुरुष दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः वे नायकके सभी गुणोंसे सम्पन्न हैं। धीरोदात्त नायकका सर्वांगीण चरित्र युगपुरुष चाणक्यमें समाहित है। कविने अश्व्यन्त नाटकीय ढंगसे हिमालय सदृश उनका परिचय कराया है—

यती हिमालय-सा चिन्तनमें, होकर आत्मविभोर।  
ध्यानमग्न चाणक्य पड़े हैं, चंचल मनको मोड़ ॥

चतुर्दश सगोंमें यह महाकाव्य एक नवीन और अनुपम रत्न है। ऐसे राष्ट्रीय महापुरुषको नायकका सम्मान देकर एक नूतन परम्पराकी नींव रखी गयी है। काव्यमें भावव्यंजनाकी अभिव्यक्ति कुशलतापूर्वक महाकाव्यमें परम्परागत नैतिक मूल्योंका नवीन परिधानमें प्राचीन सभी ऐतिहासिक तथ्यों एवं भावोंका सूक्ष्म अनुभूतियोंसे तादात्म्य स्थापित किया गया है। मानव-अस्तित्वके विकास-क्रमकी यह एक मौलिक और अपूर्व देन है।

चाणक्यके विषयमें स्वयं कविने लिखा है कि 'मुद्रा-राक्षसके चाणक्य कूटनीतिज्ञ हैं, क्रूर हैं, हठी हैं। उनको कुरूप भी दिखाया गया है। नन्दराजका विनाश करनाही उनका एकमात्र लक्ष्य है। जयशंकरप्रसादके

१. प्रका. : सिद्धिनाथ झा, इमरिया (संथाल परगना)।



‘चन्द्रगुप्त’ नाटकके चाणक्य राष्ट्रप्रेमी अवश्य हैं, परन्तु उनकी चिन्तनधारा मगध राज्यके इर्द-गिर्द मंडराती कूटनीतिके दांवपेंचमें उलझकर रह गयी है। “मैंने चाणक्यको एक महान् राष्ट्रनायक, महान् साधक एवं गम्भीर तत्त्ववेत्ताके रूपमें लिया है। यह सत्य है कि राष्ट्रवादकी भावनाको जनजीवनमें उतारनेवाला सम्भवतः संसारमें राष्ट्रवादका पहला महान् चिन्तक चाणक्य ही था।”

काव्यकी कथावस्तुके अनुसार, यह इतिहास का वह पक्ष है जब विदेशी आक्रान्ता अलक्षेन्द्रने भारत पर आक्रमण करके अपना राज्य-विस्तार कर महान् बननेका प्रयास किया था। राज्यका विस्तार और धन सम्पत्ति अर्जित करनाही उसकी महत्त्वाकांक्षा थी।

चाणक्यका उस समय मुख्य अभीष्ट था देशको विदेशी चंगुलसे मुक्त कराना। उन्होंने देखा कि गान्धार नरेश आम्भीक और पर्वत नरेश पुरु दोनोंही अलक्षेन्द्रकी महाशक्तिके सामने हार मान चुके हैं, अब वह नन्दके राज्यपर भी आक्रमण करके देशको परतन्त्र बनायेगा। चारों ओरकी परिस्थितियोंका पूर्ण रूपसे अध्ययन करके आचार्य चाणक्यने राष्ट्रीय चेतनाका शंख जन-जनमें फूंक दिया था। उन्होंने देशके गण-राज्योंको एकत्र किया। हरिद्वारमें बन्दी सेनापति शकटारके पुत्र विकटारसे वे मिलते हैं, जिससे उन्हें राक्षस की चरित्रहीनता ज्ञात होती है। वहीं नन्दराजकी पुत्री कंचनासे उनकी भेंट होती है। वे कंचनाके साथही मगधमें आते हैं। उन्हें शीघ्रही ज्ञात हो जाता है कि नन्दराज कायर है, विलासी है और वह युद्ध नहीं करेगा और न अपने देशको ही आक्रान्तासे बचा सकेगा। इस बीच उनकी भेंट चन्द्रगुप्तसे होती है। चन्द्रगुप्तसे वे प्रभावित होते हैं और अनुमान लगाते हैं कि चन्द्रगुप्त ऐसा महान् योद्धा और साहसी पुरुष है, जो उनका अभीष्ट सिद्ध करनेमें सहायक हो सकता है। दोनों जाकर चन्द्रगुप्तके पिताको बन्दीगृहसे छुड़ालाते हैं तथा ऋषि दाण्डायनके आश्रममें पहुंचते हैं। वे अपने चातुर्यसे चन्द्रगुप्तको अलक्षेन्द्रके शिविर में यवन-शस्त्र-कला सीखने हेतु भेजते हैं और स्वयं राष्ट्र-प्रेमकी भावना जगानेके लिए चल देते हैं। सिंह-नाद और चन्द्रगुप्तके पराक्रम, साहस तथा शौर्यसे अलक्षेन्द्र पराजित होता है। इस प्रकार चाणक्यके दूरदर्शी, मेधावी और अद्भुत नीतिके ज्ञाता होनेका प्रमाण मिल

जाता है — ‘नंद है नीच, नहीं है उसमें अपना पानी।’ इसका भी चाणक्यने सुगम मार्ग निकालकर चन्द्रगुप्त को सम्राट घोषित किया। कुछ वर्षोंके पश्चात् जब सेनापति सिल्यूकस पुनः भारतपर आक्रमण करता है, तब भी चाणक्य अपनी नीतिसे उसे भी पराजित करते हैं। विश्व बंधुत्वकी भावनाका प्रसारण करते हुए अपने प्रयाससे उन्होंने चन्द्रगुप्तका विवाह सिल्यूकसकी पुत्री कर्णप्रियासे करा दिया तथा राक्षणको भी कंचनाके साथ वैवाहिक बन्धनमें बाँध दिया। स्वयं किसी प्रकारकी इच्छा न रखते हुए सर्वस्व त्यागकर संन्यासका वरण करते हैं। जिन्हें किसी पद, यश, प्रतिष्ठा एवं महत्ता की कोई आकांक्षा नहीं। चाणक्य जैसे अलौकिक व त्यागी महापुरुष, जिन्होंने त्यागकी परम पराकाष्ठापर विजय प्राप्त कर महामात्यका पद भी ठुकरा दिया। यह आदर्श और गौरव है भारतका जिसमें महान् ऋषि, ज्ञानी और त्यागी अवतरित होते हैं। ऐसे महामानव केवल अपना ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार एवं मानव जातिके प्रति उपकार करते हैं। यही है भारतका वह महान् आदर्श, जिसके सम्मुख सारा विश्व नतमस्तक हो जाता है।

‘युग-पुरुष चाणक्य’ मूलतः वीर रस काव्य है। वीर रसकी रचनाओंकी उपयोगिताको ध्यानमें रखकर वीर रसकी कविताओंकी आवश्यकता अनिवार्य कही जा सकती है। विशेष रूपसे आजके युगमें जबकि अनायास ही हमारे देशपर युद्धके बादल मंडराने लगते हैं, वीर काव्य अधिक अपेक्षित हो जाता है। कोईभी देश अपनी गौरवशाली प्राचीन परम्पराके अभावमें पंगु हो जाता है। अतः वीरकाव्यकी परम्परा एक आवश्यक उपादान है।

अलक्षेन्द्र और चन्द्रगुप्त दोनों ही वीर शिरोमणि हैं, दोनों ही पराक्रमी हैं, दोनोंही साहसी, ज्ञानी और गुणवान् हैं—

दोनों थे बलवान् वीरवर, पौरुषके अभिमान।

दोनों थे गुणवान् खंडके, महाधुरंधर ज्ञानी ॥

फिरभी अलक्षेन्द्रने चन्द्रगुप्तको नरपुंगव और अतंक सिंह समान अपनेही मुखसे कह दिया है—

चन्द्रगुप्तसे बोला फिर वह, रुकी वीर-बलवान्।

जाना मैंने नर-पुंगव हो, अतंक-सिंह समान ॥

हो बलिष्ठ तुम वीर-व्रती हो, भुजबलके अभिमान।

शस्त्र कलामें दक्ष-मनुज हो चेतन जगके प्राणी ॥



आचार्य चाणक्यने युगकी आवश्यकतानुसार उद्बोधन करते हुए वीरताका विगुल बजाया। उस समय की आर्थिक अवदशा, गरिमाभय अतीत, सांस्कृतिक परम्परा तथा उद्बोधन द्वारा एकताकी भावना जागृत होनेका उल्लास परिलक्षित होता है। यह भी महाकाव्यसे ज्ञात होता है कि मगध देशके पुरुष ही वीरव्रती नहीं, वहांकी नारियां भी वीरताका पाठ पढ़ती हैं। कविने कंचना और प्रभावती जैसी नारियोंको जन्म देकर सदा-सदाके लिए भारतकी नारियोंको वीरताकी शिक्षा दी है। जिस नारीमें विक्रान्ताके प्रति प्रतिशोध और अपने देशके प्रति प्रेमकी भावना हो उस देशका गौरवपूर्ण इतिहास बनेगा। कंचनाका प्रतिकार द्रष्टव्य है। कविने चित्र प्रस्तुत किया है—

तरुणी भी फूँकार उठी, ले आँखोंमें अंगार।  
नागिन-सी फण काढ़ खंड ले करने चली प्रहार ॥

कंचनाके समान प्रभावती भी अलक्षेन्द्र यवनराज की सेनासे लड़नेको स्वयं प्रस्तुत होती है।

क्रुद्ध व्यालिनी-सी फण काढ़े गरजी प्रभाकुमारी।

निकल रहीथी लाल नयनसे वहिष्-शिखा-चिनगारी ॥

वीररसके साथही राष्ट्रीय भावनाभी काव्यमें मुखर है। सम्पूर्ण महाकाव्य राष्ट्रीय भावनासे ओत-प्रोत है। पग-पगपर राष्ट्रप्रेमकी भावना परिलक्षित होती है। यद्यपि राष्ट्रीयताकी भावना मूलतः वीर रस से सम्बद्ध है, किन्तु इस महाकाव्यमें राष्ट्रीय जागृति जन-जनमें फैलाकर नवीन चेतना भर दी है। आचार्य चाणक्य विचार करनेके उपरान्त कह उठते हैं—‘गण-गणमें जा राष्ट्रभावके दीप जलाने होंगे। पुनः विश्वास के साथ दृढ़तासे अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर होते हैं—

राष्ट्रभावका दीप जलाने जाऊंगा गण-गणमें।

दिव्य प्रभाकी अमर ज्योतिको भर दूंगा जन-जनमें ॥

राष्ट्रीय साहित्य देशकी सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक व राजनीतिक परम्पराओंकी प्रेरणा लेकर उसके आधारपर राष्ट्रमें चेतना उत्पन्न करनेवाली गौरवगाथाएं आत्माभिमानका भाव जागृत करती हैं। इस काव्यमें कविने जागृति हेतु उत्साहपूर्ण वाणी दी है। महामना चाणक्यके प्रयाससे घर-घरमें राष्ट्रप्रेमका अंकुर आरोपित किया है—

राष्ट्रप्रेमका अंकुर राजन ! घर-घर पनप रहा है।

आर्य वीरके हृदय द्वारपर, चम-चम चमक रहा है ॥

राष्ट्रमें एकता होनेपर जन-मानसके हृदय-कमल

खिल जाते हैं और प्राणोत्सर्गभी गौरवपूर्ण प्रतीत होता है—

प्राण-प्राणमें राष्ट्रवादकी गरिमा है।

मुखर अरुणिमा जो मानसके उरपर है ॥

चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे कवि अपने उद्देश्यमें पूर्ण सफल हैं। महामना चाणक्यको विशेष रूपसे आदर्श और महान् दर्शाया है। उनकी त्याग-भावना व कार्य-क्षमता प्रशंसनीय है। कविने उनको देशभक्त परोपकारी, साहसी तथा असाधारण नीतिवेत्ताके रूपमें प्रस्तुत किया है। वीरगाथा कालमें केवल वीर भावना थी। व्यापक अर्थवाली राष्ट्रीयताका पूर्णतः अभाव था किन्तु मध्यकालमें जन-मानसमें राष्ट्रीय मनोवृत्ति जागृत करना चाणक्य जैसे महापुरुषका ही कार्य था। वे मगधकी दुर्दशाको देखकर दुःखी होते हैं और उसके सुधार और उद्धारमें संलग्न हो जाते हैं। उनका आदर्श अनुपम है—

चेतनाहीन होकर अधीर चले गुरुवर लेकर उत्कर्ष।  
सकल सुखमा छोड़ जीवनको देने एक अनुपम आदर्श ॥  
वीरान पथपर बढ़ते गये, कण्टक राहपर चढ़ते गये ॥

चन्द्रगुप्तका चित्रण भी सुन्दर रूपसे निखार दिया है। वह वीर, धीर, साहसी, अनुरागी और गुणवान् है। वह साधक भी है और जगसे विरागी भी है। सम्राट् बननेके सभी लक्षण विद्यमान हैं उसमें—

चन्द्रगुप्तमें तेज प्रखर है, गुणका है अनुरागी।

साधक है संसार-समरका जगका महा विरागी ॥

अलक्षेन्द्रभी वीर है, शस्त्रोंका ज्ञाता, रण-कौशल में दक्ष तथा महापराक्रमी है। प्रत्येक पात्रको कवि ने अपनी लेखनी द्वारा चमकाकर महान् और पूर्ण बनाया है। अपने देशके लिए समर्पण और बलिदानकी भावना सभी पात्रोंमें कूट-कूटकर भरी हुई है। प्रभावती दुर्गा माँसे वरदान मांगती है—

बोली जा दुर्गाके सम्मुख माँ दो यह वरदान।

अपित हों ये प्राण राष्ट्रको, मिटे न तेरा मान ॥

कंचना और वासिनीके चरित्रभी सदा स्मरणीय रहेंगे साथही सराहनीय भी।

काव्यमें कथोपकथन तो सरल और स्वाभाविक ही है, किन्तु कहीं अति अधिक लम्बे हो गये हैं। देर तक चलते संलाप भाषणका रूप धारण कर लेते हैं। काव्यमें उत्तर-प्रत्युत्तर क्रम ही प्राप्य हैं। कविने कथोपकथनके द्वारा अपने भावों और विचारोंकी अभि-



व्यक्ति ही की है ।

प्रकृति-वर्णनमें कविकी प्रभावोत्पादक प्रतिभाका परिचय प्राप्त होता है । प्रत्येक नवीन संगके प्रारम्भ में प्रकृतिका अद्भुत वर्णन कविकी लेखनीसे सुन्दर रूपमें प्रसूत हुआ है । प्रकृति पृष्ठभूमिके स्वरूप प्रकट होती है । ऊषा, ग्रीष्मऋतु व वसन्तका मनोहारी वर्णन किया गया है । कविकी तूलिकासे प्रकृतिमें मानवीकरण का चित्रमय भाव उकेरा है, वह अनुपम और नयनाभिराम है । प्रारम्भही ऊषाका मानवीकरण संगका द्वार खोल देता है, जो अति ललित, मनोहर और मार्मिक है । ऊषा नृत्य करती हुई-सी प्रतीत होती है — 'लाल दुकूल उछाल उषा झट, उतर गुलाल गगनसे । थिरक थिरक पद चाप बढ़ाती, मिलने चली सुमनसे ॥'

प्रकृतिको वधूके रूप संवारकर कविका चित्रण अद्वितीय बन गया है । कोमल नारीके रूपमें प्रकृति मानवके समान चेतन है जो प्रियतमके स्वागतके लिए आतुर है—

प्रकृति वधू है पहन फूलकी रंग-बिरंगी साड़ी ।

प्रीतमकी अगुवानीमें है झांक रही मधु बयारी ॥

युगपुरुष चाणक्यकी भाषाकी भावुकता और मार्मिकता आनन्दप्रद है । काव्यात्मक भाषा सुन्दर, सरस एवं कर्णप्रिय प्रतीत होती है । खड़ी बोलीकी भाषा प्रवाहपूर्ण और रोचक है । भाषाकी विशेषता यह भी है कि विषय और भावोंके अनुसार बदलती है, ढलती है और आगे बढ़ जाती है । कविकी चिन्तनधारा प्रौढ़ है और भाषाकी भावानुकूलता प्रशंसनीय है—

विकते हैं बेमोल गलीमें स्वांस और शृंगान ।

भौतिक स्वरके तालोंपर है नाच रहा संसार ॥

शब्दोंका चयन सरलता व सुघड़तासे किया गया है । वाक्योंकी क्षिप्रता और चित्रमयता भी है । भाषा में ओज माधुर्य और प्रसाद तीनों गुणोंका यथासमय प्रयोग किया गया है । भाषा लाक्षणिक भी है और अलंकृत भी । मुहावरोंपर कविका अच्छा अधिकार है । वही मुहावरे नवीन रूपमें प्रस्तुत किये गये हैं—'अम्बुज-दल-सा जलमें रहकर जलसे ऊपर रहना ।' अन्य महत्त्वपूर्ण स्थल भी जो काव्यके इतर भी प्रयोग किये जा सकते हैं—

'मानव मनको जगा सके जो भरकर मृदु अनुराग ।

वही मनुज है सच्चा जगमें जिसके उरमें त्याग ॥'

महाकाव्यको प्रभावशाली बनाने व अमिट छाप

स्थापित करने हेतु राम, सीता, गीता व हनुमानका स्मरण भी किया है । कविको आभास होता है कि पूर्वजोंके कार्यभी अतुलनीय थे—

कहीं राम जागा है कहीं गूँजती गीता ।

कहीं पवनसुत गदा हस्त हैं कहीं खड़ी है सीता ॥

गीताकी गूँज अन्यत्र भी सुनायी देती है—

वीर नहीं मरता है राजन् ! मरती नहीं पिपासा ।

कर्म भावनासे ऊँचा है, उसपर करो भरोसा ॥

महाकाव्यमें अलंकारभी स्वाभाविक रूपसे प्रयुक्त हुए हैं । उपमालंकारके प्रयोग सर्वथा नवीन हैं—'जुगनू-सा धूम-धूमकर करता रहा प्रकाश ।'

एक ही पंक्तिमें अनेक उपमाएं—

रवि-सा तुझमें तेज, संत-सा तप-बलका संचार ।

शैल-भाल तुम हो भारतके काल किरण अंगार ॥

काव्यमें पश्चिमी अलंकारका प्रभाव भी लक्षित होता है । मानवीकरणके अनेक सुन्दर अलंकार हैं—

नभ वितानपर चमक रही थी चन्द्रकिरणकी माला ।

प्रकृति-वधूको सजा रही थी उपवनकी मधुबाला ॥

अन्य अलंकार रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रासादिभी बिखरे हुए हैं । यत्र-तत्र प्रयुक्त हैं ।

कविने प्राचीन शैली आद्यन्त छन्दबद्ध रचना ही अपनायी है । यही शैली अधिक सरस और सुखद है । हरगीतिका छन्द चुना है, जिसमें मात्राएं पूर्ण हैं किन्तु प्रारम्भ व अन्तमें लघु और गुरुका निर्वाह नहीं हो सका है । मध्यमें छन्दोंमें भी परिवर्तन कर दिया है ।

यह कहा जा सकता है कि 'युग-पुरुष चाणक्य' स्तरीय महाकाव्य है । कथावस्तु ऐतिहासिक है । इसमें देश-भक्ति, वीरता और राष्ट्रीयताकी भावना परिपूर्ण है । यह दर्शन, अध्ययन और चिन्तन भावना जागृत करनेमें समर्थ है । रस परिपाक उच्च कोटिका है । आत्मविश्वास, दृढ़ता एवं निर्भीकताका पाठ पढ़ानेमें सक्षम है । अतः समग्र दृष्टिसे युग-पुरुष चाणक्य एक सफल महाकाव्य है । □



## हिपोक्रिट चाँप-गुराँस?

[साहित्य अकादमीसे १९६१ में

पुरस्कृत नेपाली काव्य कृति]

कवि : गिमी सेर्पा

समीक्षक : डॉ. चन्द्रेश्वर दुवे

श्री गिमी सेर्पा सिक्किमके एक प्रमुख नेपाली कवि हैं। कथा, कविता और समालोचनाके क्षेत्रमें उन्होंने महत्त्वपूर्ण काम किया है, पर कविके रूपमें उन्हें विशेष ख्याति और सफलता मिली है। उनके दो कविता-संग्रह प्रकाशित हैं—१. बाँझो दिनमाथि पलाइएका केही फूलहरू (१९७८) एवं २. हिपोक्रिट चाँप-गुराँस। इस दूसरी पुस्तकपर ही उन्हें साहित्य-अकादमीका पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

गिमी सेर्पा प्राकृतिक स्वच्छंदता, मानसिक स्वतंत्रता और आत्मिक मुक्तिके उद्घोषक कवि हैं। आज हम प्रकृतिकी पाठशालासे दूर हैं। आधुनिक सभ्यताने हमें पारस्परिक छल, कपट और प्रवंचनाका शिकार बना दिया है। मनुष्यका प्राकृतिक स्वरूप समाप्त हो गया है। वह परतंत्र, पीड़ित और प्रवंचक है। जीनेका झूठा अभिनय करते हुए हम औपचारिकता और कृत्रिमताके जालमें उलझ गये हैं। हम सब मानसिक रूपसे इतने बीमार हैं कि प्रकृतिके सरल सौन्दर्य और शाश्वत सुगन्धमें भी हमें छल-कपटके अलावा और कुछ नहीं दिखायी देता। पुरुषार्थ अब केवल अर्थमें सीमित हो गया है। भागदौड़के इस युगमें किसीको, किसीका कुशल-क्षेम पूछनेका समय नहीं है। भौतिक विकास और परिवर्तनने मानवीय संवेदना, दया, प्रेम और क्षमा आदि सद्गुणोंको समाप्त कर दिया है। मानव मानवके बीचकी दूरी बढ़ रही है। हमने अपने आपको एक-दूसरेसे अलग और बन्द कर लिया है। यह कैसी विडंबना है कि हम खूलकर न हँस सकते हैं और न रो सकते हैं। कविके अनुसार इस संसारको एक सरल और स्वच्छंद मुस्कानकी आवश्यकता है और इसके लिए इस सर्वव्यापी हिपोक्रैमीको समाप्त करना है।

१. प्रका. : पश्चिम सिक्किम साहित्य प्रकाशन, गेजिङ सिक्किम । पृष्ठ : ३० + १०६; डिमा. ८८; मूल्य : २०.०० रु.।

‘प्रकर’—दिसम्बर ६२—४८

प्रकृतिका शाश्वत सौन्दर्य, ऋतुओंका जाना-आना, फूलोंका खिलना-मुरझाना और नदी-झरनोंका संगीत पूर्ववत् उन्मुक्त प्रेम और आनन्दका अक्षय स्रोत है। केवल मनुष्यका हृदय मरुभूमि बन गया है। सब अपनी डफली अपना राग अलापनेमें व्यस्त हैं। यहाँ कोई किसीकी नहीं सुनता। सद्गुणों और मानवीय सम्बन्धों को धुन लग गया है। हम सब रोगी और बीमार हैं। इस सर्वव्यापी संक्रामक रोगकी पीड़ाको ‘सब ठीक है’ कहकर हम छिपानेका प्रयास करते हैं। हमारे पास अनेक आवरण, अनेक मुखौटे हैं और हम समयानुकूल अपने वो छिपानेके लिए उसका उपयोग करते हैं, गिरगिटकी भाँति रंग बदल-बदलकर। मुखौटा हमारा फैशन भी है और विवशताभी। इसका निदान क्या है? साधनहीन और आदिम साइबेरियन पक्षी बिना किसी योजना, तैयारी, सुरक्षा और दिशासूचक यंत्रके, हजारों मीलकी यात्रा करता है। फूल, पक्षी और नदी, सब स्वतंत्र हैं। केवल साधन सम्पन्न मनुष्य ही कैद है। वह क्यों नहीं यात्रा कर सकता? वही परतंत्र क्यों है? कविके अनुसार प्रकृति और प्राकृतिक जीवन जीना ही मनुष्य जातिकी इस समस्याका समाधान है।

कविको बड़ा क्षोभ है कि मानवने इस भौतिक सभ्यताकी विद्रूपताओंके समक्ष क्यों और कैसे अपने घुटने टेक दिये हैं? पत्तेपर पड़ी बूँदने पत्तेको अपना संसार समझ लिया है और हवाके झोंकसे, पत्तेसे झरकर अपने विनाशको अपनी नियति मान लिया है। इस आत्म-समर्पण और पराजयसे कवि बूँदको, मनुष्यको मुक्त होनेकी प्रेरणा देता है। सभ्यताके ‘शो केश’ में बन्द होकर व्यक्ति निर्जीव और निष्प्राण हो गया है। परन्तु प्राकृतिक सौन्दर्य और मानवीय मूल्योंकी अमरतामे कविको अटूट विश्वास और आस्था है। इसलिए उसकी मृत्युको कवि अस्वीकार कर देता है और उसकी शव-यात्रामें वह सम्मिलित होना नहीं चाहता। कवि मनुष्यताको आधुनिकताके आक्टोपस और निम्फोमेनिया से मुक्त करनेको कटिबद्ध और प्रतिबद्ध है।

आज ‘शहर’ गलत रास्तेपर चल रहा है और शहर को प्राकृतिक सौन्दर्य देखनेका समय नहीं। इसलिए कवि, भानुभक्तको यह सौन्दर्य देखनेका निमंत्रण देता है। अनेक लक्ष्मण रेखाओंसे घिरी कविकी भावुकता इन रेखाओंको मिटाकर शहरके लिए नया मार्ग ढूँढ़ना चाहती है। कविको कोई बन्धन स्वीकार नहीं। क्योंकि



बन्धन तो मृत्यु है।

कविको घरका चरित्र ठीक नहीं लगता। क्योंकि खिड़की और दरवाजे खोलकर घर उसे बुलाता है, आसक्ति देता है और बन्द कर लेता है। कवि मुक्ति चाहता है। वह फूल और बगीचा देखना चाहता है। चारदीवारीसे घिरा और कोठरियोंमें बंटा घर उसे बांधता है। इसलिए उसे तोड़कर वह बाहर निकलता है और आकाश तथा महासागर देखनेमें व्यस्त हो जाता है। इस घरमें सभी हिपोक्राइट रहते हैं। कवि उन्हें प्रकृतिकी गोदमें ले जानेका प्रयास करता है। घरमें भौतिक सभ्यता है, उसमें उत्पन्न हृदयहीनता है, जिसकी दासतामें सब पत्थर बन गये हैं। जीवनका प्राकृतिक आनन्द-उल्लास समाप्त हो गया है। वैयक्तिक स्वतंत्रता समाप्त हो गयी है और हँसने-रौनेका अधिकार भी बन्दी बन गया है।

कवि इस बन्द द्वारको खोलने और उसके खुलने का ध्वनि-संकेत सुन रहा है। इसलिए वह बादल जैसा आकाशमें उड़कर नहीं, धरतीपर ही स्वतंत्रताकी कामना करता है। क्योंकि कविकी दृष्टिमें बादलभी कैदी ही है, चाहे बड़े घरका कैदी ही क्यों न हो। कवि तो तूफान और चट्टानकी गति चाहता है। वह उछलना, कूदना, उड़ना और स्पष्ट बोलना चाहता है। पर वह चाहते हुएभी नहीं कर पाता। आधुनिक जीवनकी आपा-

धापी और भागदौड़ने मनुष्यको प्रकृतिसे दूर कर दिया है और संरक्षित वातावरणकी घोषणाकर प्रकृतिने भी अपने प्रवेश-द्वारपर 'आगे जाना मना है' की तख्ती लगा दी है। प्रकृतिसे दूर होकर मानव-हृदय मरुस्थल हो गया है। हार्दिकताके पूर्ण अभावके कारण हाथ मिलाकर मंत्रीभाव प्रकट करनेकी क्रिया भी मात्र औपचारिकता बनकर रह गयी है। हाथ मिलाना आज एक संवेदनहीन और स्पर्शहीन स्पर्श मात्र रह गया है। स्वार्थके संकीर्ण घेरेके बन्दी हमारी हथेलियां निर्जीव हो गयी हैं। इसलिए हाथ मिलानेका कोई अर्थ नहीं रह गया है।

छब्बीस कविताओंका यह संकलन, 'हिपोक्रिट चांप गुराँस', की अधिकांश कविताएँ, कथाकथित प्रगति और विकाससे उत्पन्न विसंगतियों, झूठी औपचारिकताओं और सर्वव्यापी हिपोक्रिसीसे मुक्ति दिलाने का सफल प्रयास है। कविताएँ सहज, सरल और प्राकृतिक है। आधुनिक कविताकी दुर्बोधतासे मुक्त ये कविताएँ मनको बांध लेती हैं। प्राकृतिक सौन्दर्यके प्रति कविको विशेष लगाव है। कविका दृढ़ विश्वास है कि प्रकृतिकी गोदमें जानेके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। प्रकृतिकी गोद ही मानव-मनको मुक्ति और सुख-शांति प्रदान कर सकती है। कविका यही संदेश संकलन का प्रमुख उद्देश्य है। □

## रेखाचित्र : व्यंग्य

म से मुखड़े?

लेखक : मनोज सोनकर

समीक्षक : डॉ. मदन गुलाटी

रेखाचित्रकी कला बहुत कुछ 'फोटोग्राफी' की

१. प्रका : शुभदा प्रकाशन, १/११०५२ ए, सुभाष  
पार्क, शाहबरा, दिल्ली-११००३२। पृष्ठ : १६०;  
डिमा. ६२; मूल्य : १००.०० रु.।

कलासे मिलती-जुलती है। जिस प्रकार कैमरामैन अपने कैमरे द्वारा किसी वस्तु, स्थान अथवा व्यक्तिका वास्तविक चित्र ले लेता है, उसी प्रकार रेखा चित्रकारभी विश्वकी किसीभी वस्तुका चित्र अपने शब्दों द्वारा बना लेता है जिसमें उसी प्रकारकी वास्तविकता होती है। लेकिन, जहाँ कैमरामैन किसी विशेष स्थितिका चित्र लेकर, अपने व्यक्तित्वकी छापभी उस चित्रपर मुद्रित कर देता है; वहीं एक रेखा-चित्रकार चेतनके साथ-साथ

'प्रकर'— पोष'२०४६—४६



अवचेतनका चित्रभी उखार देता है । रेखा-चित्रकारकी दृष्टि जितनी पैनी होगी, उसकी अनुभूति जितनी गहरी होगी; उतनाही सजीव एवं प्रभावोत्पादक चित्र वह खींच पायेगा ।

जब हम मनोज सोनकर कृत 'म से मुखड़े' देखते हैं, तब हम उनके रेखाचित्रोंमें विविधता पाते हैं । उनकी इस कृतिमें कुल ४७ रेखाचित्र हैं—नेता हैं, शिक्षक हैं, साहित्यकार हैं, व्यापारी हैं, वकील हैं, वेश्या हैं, गुंडे हैं, आधुनिका हैं, नौकरानियां हैं, छात्र हैं, फिल्मकार हैं, पुलिस हैं, प्रोफेसर हैं और प्रिसिपल हैं । उनकी दृष्टिने शब्दोंके माध्यमसे बहुत दूरतक जाल फैलाया है । सभी पात्र मात्र व्यक्ति नहीं हैं; अपितु एक पूरे वर्गका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं । उदाहरणके लिए एक प्रोफेसरका चित्र देखिये—'प्रोफेसर कभी क्लास नहीं लेते थे/स्टाफ रूममें बैठे हुए गप्पें हाँका करते थे/झूठे कारण बताकर छुट्टियां लेते थे / काल्पनिक सेमीनारमें भाग लेनेके लिए कभी दिल्ली जाते थे/ कभी भोपाल जाते थे/वह एक बार अपनी माँको, दो बार अपने पिता को और चार बार अपने चाचाको मार चुके थे । × × × प्रिसिपल और मैनेजमेंटकी निन्दा उनकी दिनचर्याका अभिन्न अंग बन गयी है—'सैलरी' सरकार देती है/प्रिसिपलको दुःख क्यों होता है ?/ प्रिसिपलको जेम्सबांडकी भूमिका निभानेका अधिकार नहीं है ।/ प्रिसिपल विद्यार्थियोंकी शिकायतोंपर विश्वास क्यों करता है ?/प्रिसिपल न खुद आरामसे जीता है, न दूसरोंको आरामसे जीने देता है । मैनेजमेंट प्रिसिपल को इतना महत्त्व क्यों देता है ?/उसे हमेशा सही क्यों मानता है ?/ वह मुझे प्रिसिपल क्यों नहीं बनाता ?" (पृ. ६५) । वे लोग जो आज किसी स्कूल या कॉलेज से सम्बद्ध हैं, अच्छी तरहसे जानते हैं कि प्रत्येक कॉलेज-स्कूलमें ऐसे दो-चार व्यक्ति होते ही हैं । यह एक चित्र है, ऐसे ४७ चित्र आपको इस कृतिमें जीते जागते, सजीव मिल जायेंगे ।

मनोजकी इस कृतिमें जो दूसरा गुण दिखायी देता है, वह है उनकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति । इसका कारण है, उनके कवि हृदयकी भावुकता । जिन लोगों ने मनोजके काव्यका रसास्वादन किया है, वे इन रेखाचित्रोंको पढ़ते ही, उस आस्वादको पहचान लेंगे । "अब कैसे जोर पकड़ेगा" का एक उदाहरण देखें—  
"—वकील साहब ! आठ साल हो गये हैं, अभी तक 'प्रकर'—दिसम्बर' ६२—५०

कोई फैसला नहीं हुआ है ?—यह चिन्तित होता है ।  
—यह इण्डियन कोर्ट है, मरनेके पहले अगर फैसला मिल जाये/तो अपने आपको सौभाग्यशाली मानना ।/ लाखों केम पेंडिंग पड़े हैं, जज भी क्या करें ?/हमभी क्या करें ?/लेकिन, आपके लिए हम कुछ करेंगे, जरूर कुछ चक्कर चलायेंगे/और जरूर चलायेंगे ।" (पृ. ३६) । इन रेखाचित्रोंको पढ़कर बहुत कुछ मनोजकी कविताका आनन्द प्राप्त होता है । वैसेभी लगभग आधा दर्जन काव्य कृतियोंके बाद, यह उनकी पहली गद्य कृति है ।

इन रेखाचित्रोंकी एक और खूबी है—व्यंग्यात्मकता । मनोज व्यंग्यके माध्यमसे अपने परिवेशको बेपर्दा करते हैं और बहुत बार ठेठ देशज शब्दोंका प्रयोग कर, अपने व्यंग्यको मारक बना लेते हैं । कवितामें मनोज समझौतावादी नहीं हैं; यहांभी उनके विद्रोही रूपके दर्शन हो जाते हैं । "खेलोगे-कूदोगे बनोगे नवाब" का एक उदाहरण देखें—"मास्टर छेदीलालने आज कक्षामें दार्शनिककी तरह प्रवेश किया और गरजकर हुक्म दिया—जिन विद्यार्थियोंको ७० प्रतिशत अंक मिले हैं, वे सब खड़े हो जायें । गर्वके साथ दस विद्यार्थी खड़े हुए हैं; उन्हें देखकर मास्टर साहब झल्ला पड़े हैं—नालायकों ! तुम लोगोंका भविष्य अन्धकारमय है । कब सुधरोगे ? क्या मेरी तरह बर्बाद होना चाहते हो ? तीस सालसे खप रहा हूँ, घरका भाड़ा नहीं चुका पा रहा हूँ; फटी धोती छिपानेके लिए लम्बा कुरता पहन रहा हूँ । जवान बेटियां छातीपर बोझ बनी हुई हैं; चश्मेकी फ्रेम नहीं बदल पा रहा हूँ । तुम लोग मेरे रास्तेपर मत चलो ! मैं सच कहता हूँ, मेरे रास्तेपर मत चलो ।—उनका गला भर आया है ।" (पृ. १३४) ।

वस्तुतः रेखाचित्रकी विधा ही ऐसी है जो लेखक को वस्तुनिष्ठ होनेके लिए बाध्य करती है । लेखकके पास उसके लिए एक ही उपकरण होता है—शब्द । शब्दके माध्यमसे वह वर्ण्यकी आंतरिकता तक पहुंचता है । इन रेखाचित्रोंमें वैयक्तिक विशेषताओंके साथ-साथ सामाजिक चेतनाभी है । भाषाका प्रयोग सधा हुआ है । वस्तुतः मनोजके रेखाचित्र शब्दों द्वारा जीवनके विविध रूपोंको साकार करनेवाले चित्र हैं ।

'म से मुखड़े' की एक बात खटकती भी है—मनोज इन रेखाचित्रोंको लिखते हुए, कहीं-कहीं अधिक आवेग



में बह गये हैं; मनके भीतर उमड़ते भावोंके उबालको वे संभाल नहीं पाये हैं। संवेदनाका वेग जब ठाठें मारता है, तो वे प्रायः उसमें बह जाते हैं। कविताके क्षेत्रमें तो इसे गुण माना जायेगा; लेकिन गद्यके क्षेत्र में इसे संयम और अनुशासनकी कमी कहा जायेगा। कुल मिलाकर 'म से मुखड़े' कृति रेखाचित्रकी मंद पड़ती विधाको समृद्ध करेगी—ऐसा हमारा विश्वास है। [१]

### बन्दरबाँट

लेखक : डॉ. राकेश शरद

समीक्षक : डॉ. भैरुलाल गर्ग

बन्दरबाँट लेखकका 'गाजरके शंख' के बाद दूसरा हास्य-व्यंग्य संग्रह है। प्रारम्भमें 'व्यंग्यके जलवे' शीर्षकके अन्तर्गत अशोक चक्रधरकी संग्रहके विविध हास्य-व्यंग्योंपर एक विश्लेषणात्मक भूमिका है। अशोकजीने डॉ. शरदकी इन रचनाओंके बारेमें अपनी निर्णयात्मक टिप्पणी देते हुए लिखा है—“डॉ. राकेश शरदके सभी लेख समाजके वैविध्यमय जीवनसे व्यंग्यात्मक सरोकार रखते हैं, उनकी असरदार पैनी लेखनी की धार सामाजिक उद्धारके कार्यक्रममें सक्रिय और रचनात्मक भूमिका निभा रही है।”

साथही लेखकने प्रख्यात हास्य कवि काका हाथरसीसे भी दो छंदोंका काव्यात्मक आशीर्वचन प्राप्त किया है। लगता है लेखक आशीर्वचनमें पूरी निष्ठा रखते हैं। जहाँ उन्होंने अपने डाइरेक्टर श्री महेन्द्रसिंहसे आशीर्वचन लिये हैं वहीं उन्होंने पागलजीको भी नहीं बखशा है। पागलजीने शरद जोशीको इस क्षेत्रमें जहाँ ब्रह्मा और के. पी. सक्सेनाको विष्णु बताया है वही डॉ. शरदको महेश घोषित किया है।

संग्रहमें कुल मिलाकर चौदह हास्य-व्यंग्य हैं। श्री हरिशंकर परसाई एक जगह लिखते हैं—“व्यंग्य विसंगति, अतिरेक, ढोंग, पाखंड, अनुपातहीनता आदि को सशक्त ढंगसे अभिव्यक्त करनेका माध्यम है। हमारे जमानेमें चारों तरफ विसंगतियाँ ही विसंगतियाँ

हैं और वे पहलेसे अधिक लक्षित की जा रही हैं। समाज एक संतुलन बनाये रखता है। एक आनुपातिकता सामाजिक क्रिया-कलाप और व्यवहारमें होती है। एक स्तर होता है। एक मानदण्ड होता है। पानी जैसी समतलता समाजभी खोज लेता है। इस समतलताको 'नार्मल' होना कहा जाता है। जब यह समतलता गड़बड़ा जाती है तब हमारी चेतनाको झटका लगता है और यदि हम लेखक हैं तो इस अतिरेक और असंगतिके विद्रूपको प्रगट करते हैं।”

उक्त मन्तव्यके आधारपर डॉ. शरदकी रचनाओं पर दृष्टिपात करनेपर लगता है कि उन्होंने समाजके विविध विसंगत आयामोंको गहराईसे देखा-परखा है। ये विसंगतियाँ और विद्रूपताएं सर्वत्र व्याप्त हैं। पर राजनीतिका क्षेत्र आज सर्वाधिक विसंगतियोंवाला है। 'बन्दरबाँट' रचनामें लेखकने एक लोककथाके माध्यम से आजके आपाधापीसे ग्रस्त नेताओंपर कटाक्ष किया है। वहीं 'नेता-पुराण' में नेताओंकी प्रवृत्तियों और उनके छद्म चरित्रको बड़े ही प्रखर व्यंग्यात्मक स्तरपर मुखर किया है—“यदि आप हिन्दुस्तानको देखना चाहते हैं तो किसी नेताको देख लीजिये। यदि आप हिन्दुस्तानको पढ़ना चाहते हैं तो किसी नेताको पढ़ लीजिये।” (पृ. १५)

'बिजली, विधायक और पानी' में व्यवस्थाजन्य विसंगतियोंपर व्यंग्य है तो 'गांधी' में गांधीजीके सिद्धान्तोंकी हत्या होते जानेकी विडंबनाको उजागर किया गया है। 'रोडए' में अपनी-अपनी चिन्ताओंसे ग्रस्त व्यक्तियोंकी विसंगतियाँ व्यक्त हुई हैं। 'गिरगिट', 'टांग', 'जूता', 'उलूक-पुराण', 'गांधीका स्वप्न', 'मोरबग और भारतीय दलाल', 'सावधान नेताजी आ रहे हैं' आदि रचनाएं भी वर्तमान राजनेता और राजनीतिकी विसंगतियोंपर आधृत हैं। 'कपिलदेव' क्रिकेट प्रेमियोंपर व्यंग्य है तो 'व्याह-बारात' हमारी सामाजिक विद्रूपताओंको उजागर करता है।

यों लेखककी सभी रचनाएं हास्यका पुट लिये रोचकतासे भरी-पूरी हैं पर व्यंग्यकी परिपक्वताका अभाव थोड़ा खलता है। व्यंग्यमें लेखक जब कोई गंभीर निर्णय देता है तो वह उपदेशक-सा लगता है। व्यंग्यकारका धर्म यह होता चाहिये कि वह तलबीके साथ विविध परिवेशोंकी विद्रूपताओंको यथार्थ रूपमें उजागर करके रख दें। पाठक आज इतना

१. प्रका. : सखी प्रकाशन, मोटावाला कोठी, हाथरस-२०४१०१। पृष्ठ : ५६; क्रा. दुगना; मूल्य : १५.०० रु.।



जागरूक है कि उसे क्या ग्रहण करना चाहिये अथवा क्या नहीं, वह इसे भली-भाँति जानता है। व्यंग्यमें आक्रोश इतना गंभीर न हो जाये कि हम कुछका कुछ कह जायें—‘गांधीकी समाधि इस देशके भ्रष्टतम व्यक्तियोंका तीर्थ है। गांधीकी समाधि इस देशके हिंसक तत्त्वोंकी गीता है।’ (पृ १६) हां कुछ प्रति-शत इस कथनमें सत्यता हो सकती है पर यह पूर्ण सत्य नहीं है, ऐसा लिखकर गांधीके प्रति हम असम्मानही प्रकट करते हैं।’

व्यंग्य विश्वसनीयताकी पूर्ण अपेक्षा रखता है यह विधा मात्र कल्पनापर आधारित नहीं होती। लेखक

अतिरंजनासे बचें और हास्यको व्यंग्यका सहायक ही मानकर चले तो उनके व्यंग्य और अधिक सशक्त और धारदार होसकेंगे। व्यंग्यमें अभिधात्मक कथनके लिए कोई स्थान नहीं होता, व्यंजनाही उसकी आत्मा होती है। अतः एक कुशल व्यंग्यकारके लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह केवल व्यंजनात्मक ही जो कुछ कहना हो कहे। फिरभी यह कहा जा सकता है कि उनके प्रथम संग्रह ‘गाजरके शंख’ की तुलनामें ‘बन्दरबांट’ उनकी व्यंग्य-लेखन परिपक्वताकी प्रगतिका परिचायक है। □

## पत्रिकाएं

### ईसुरी (वार्षिकी) १

सम्पादक : कान्तिकुमार जैन

समीक्षक : डॉ. कृष्णकुमार हूँका

किसीभी जनपदके साहित्यिक अवदान और सांस्कृतिक परिवेशको सम्यक् रूपसे प्रकाशमें लानेके लिए यह आवश्यक है कि प्रकाशनका कोई माध्यम हो जिससे न केवल जनपदवासी वरन् जनपदेतर लोगभी उसकी विरासत और प्रगतिसे अवगत होसकें। बुन्देलखण्ड जनपदमें स्वतंत्रता पूर्वसे ही इस दिशामें उद्देश्यात्मक लक्ष्य रूपमें कार्य प्रारम्भ हो चुका था। ओरछा नरेश महाराजा श्री बीरेन्द्रसिंह जू देवके आर्थिक संरक्षण एवं सम्पादकाचार्य पं. बनारसीदास चतुर्वेदीके कुशल सम्पादनमें अक्टूबर १९४० से ‘मधुकर’ पाक्षिक पत्र निकलना प्रारम्भ हो गया था जो नियमित रूपसे

दिसम्बर १९४६ तक निकला। कालान्तरमें भी इस दिशामें अनेक छोटेमोटे प्रयास हुए किन्तु वे सब अनियमित और अल्पजीवी ही रहे। पिछले दशकसे इस दिशामें पुनः कार्य प्रारम्भ हुआ जिसके फलस्वरूप दो पत्रिकाएं सामने आयी यथा (१) बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुरसे प्रकाशित त्रैमासिकी ‘मामुलिया’ एवं (२) बुन्देलीपीठ, सागर विश्व-विद्यालयसे प्रकाशित वार्षिकी ‘ईसुरी’।

प्रस्तुत अनुशीलन ‘ईसुरी’ अंक ६ से सम्बन्धित है जो बुन्देलखण्डके साहित्यकारों, कला मर्मज्ञों एवं अन्वेषकोंकी रचनाशालता, गुणग्राह्यता एवं शोधदृष्टि का प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत करता है।

ईसुरी-६ का यह अंक भी पूर्व अंकोंकी भाँति सात खण्डोंमें संयोजित है। पहला खण्ड ‘भूली बिसरी गलियां’ एक राष्ट्रप्रेमी एवं साहित्यिक परिवारके कृतित्वको समर्पित किया गया है जिसके अन्तर्गत ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहानकी एक लघुकथा तथा कृष्णावतार महाकाव्यका एक अंश प्रकाशित हुआ है तो दूसरी ओर ‘खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी’ की यशस्वी कवयित्री श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहानकी एक

१. प्राप्ति स्थान : डॉ. कान्तिकुमार जैन, बुन्देली पीठ प्रकाशन, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म. प्र.)। पृष्ठ : २२७; डिमा. दुगुना ६१-६२; मूल्य : ५०.०० रु.।

‘प्रकर’—दिसम्बर ६२—५२



अलम्य कविताका प्रकाशन हुआ है। इसीके साथ आपकी सुपुत्री सुधा चौहानकी भी तीन कविताएं प्रकाशित की गयी हैं। सुधा चौहानकी कविताएं ईसुरीके माध्यम से पहली बार हिन्दी जगत्के सामने आयी हैं। सुधाजी की कविताएं अनौपचारिक और आत्मीय भावलोककी हैं। हिन्दी कथा-साहित्यमें 'लघुकथा' का जब बीजांकुरभी नहीं हुआ था तब ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहानने 'सेठजीकी नयी मोटरकार' शीर्षकसे व्यंग्यात्मक रूप-रंगसे सराबोर एक लघुकथा लिखी थी जो इस अंकमें प्रकाशित है। इसी क्रममें अप्रकाशित महाकाव्य 'कृष्णावतार' का एक सर्गभी प्रकाशित किया गया है जिसमें ऋषि सांदीपनिके गुरुकुलकी अध्यापन व्यवस्था का वर्णन सरल और सुबोध भावशैलीमें प्रस्तुत किया गया है। कवि कहता है कि

यहां न कोई बड़े बापका बेटा ही था/यहां न कोई जाति वंशका हेठा ही था/था समताका भाव नहीं थी ऐंठ न हेठी/सांदीपनि थे पिता और सब बेटा-बेटी/गुरुओंकी गुरुता न वहां नपती बेटनसे/वह दिखती थी सिद्ध-शुद्ध वाणी वर्तनसे/कुलपति कह-लाता, मुनि थे सांदीपनि ऐसे/कुलपतिके कुलपति नभ मण्डलके दिनमणि जैसे।

सुभद्राकुमारी चौहानकी 'साहित्य देवताके प्रति' शीर्षकसे एक अपूर्ण कविता भी इसी खण्डमें प्रकाशित हुई है जिसमें कवयित्रीका सहज भोलापन बरबस आकृष्ट करता है। द्रष्टव्य है—उस दिन थी बालिका, ज्ञानसे परिचय नहीं हुआ था/जगके हर्ष विषाद आदि ने, मुझको नहीं छुआ था/सुखके नन्दन वनमें, तितली-सी उड़ डाली-डाली/अनुभवहीना झूल रही थी, झूलामें मतवाली/उस दिन कितने आदरसे था, तुमने मुझे बुलाया/पकड़ पाणिपल्लवको मेरे, था मुझको अपनाया।

पत्रिकाका खण्ड दो 'लोकवाता' की विभिन्न विधाओंसे सम्बन्धित है। जिसमें लोकनायक-हरबोला, लोकगाथा-हरदौल, लोकसंस्कृति-बममुलियां तथा दो प्रसिद्ध लोकवाताशास्त्रियोंका पत्राचार प्रकाशित किया गया है। 'हरबोलों'से सम्बन्धित कन्हैयालाल 'कलश' का लेख हरबोलोंके सम्बन्धमें एक प्रारम्भिक पीठिका के रूपमें अच्छा प्रकाश डालता है, किन्तु उन्होंने हरबोले और हरगंगे दोनों समूहोंका ऐसा घालमेल कर दिया है जिससे हरबोलोंकी स्थितिही अस्पष्ट हो गयी है। तथ्य यह है कि हरबोले जहाँ बुन्देलखण्ड जनपदसे संबंधित

समूह था वहीं हरगंगे मालवा क्षेत्रसे संबंधित रहा है। हरगंगे समूहकी जातियां आजभी मालवा क्षेत्रमें निवास करती हैं तथा मालवासे निकलकर जबलपुर शहर तक में जबतब भिक्षाटन करती पायी जाती हैं। जबलपुर प्रवासके समय ये लोग लालमाटी क्षेत्रमें अस्थायी निवास करते हैं। मैंने स्वयं एक हरगंगेसे विस्तारसे चर्चा की थी और जाननेका प्रयास किया था कि क्या हरबोले और हरगंगे एक ही हैं? तब उस हरगंगेका उत्तर था—नहीं। दोनों जाति-समूह अलग-अलग हैं। हम लोग मालवा क्षेत्रके हैं तथा आजभी हमारी जाति वहाँ कृषि कार्य करती है। अस्तु।

इसी खण्डमें पं. गुणसागर सत्यार्थीकी बुन्देली लोककाव्य संगीतिका (ऑपेरा) 'हरदौल' शीर्षकसे प्रकाशित हुई है जिसके प्रत्येक पदमें हरगंगाकी टेक लगी हुई है। यह लोककाव्य संगीतिका, लाला हरदौल के उच्च चरित्र, उत्कट भ्रातृप्रेम और उत्सर्गकी सुन्दर झांकी प्रस्तुत करती है। बानगी स्वरूप दो पद द्रष्टव्य हैं :—

कैसी जा बुन्देल भू, कैसे भये, बलवान ?  
जे हरबोला कर रये, कीरत को गुन-गान।

× × ×

मूंछ बुन्देलन रै है जब—देँ हैदर खाँ मार।

मैया की इखजत पै आ गई, देव उनकी तलवार,

सुनके—

लाला हरदौलके विषयानुसार विषयक घटनापर आधारित डॉ. दुर्गेश दीक्षितका एक लेखभी हरदौलके उत्सर्ग चरित्रके विविध पक्षोंको रेखांकित करता है। लेखकने अपने मन्तव्यके अतिरिक्त कविवर घनश्याम दास पाण्डेय एवं भगवतीशरण दास द्वारा रचे पदभी प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किये हैं। ये सभी पद हरदौलके यशस्वी चरित्रकी सुन्दर छवियां प्रस्तुत करते हैं।

बुन्देलखण्डी लोकसंस्कृतिको स्पष्ट करनेके लिए इस बार यात्रा प्रसंगमें गाये जानेवाले छोटे-छोटे लोक गीत—'बममुलियां' पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। लेखक डॉ. रामकृष्ण सराफने बममुलियां गीतोंकी विभिन्न भावछवियोंको स्पष्ट किया है। जहाँ वे धार्मिक भावछविको स्पष्ट करते हैं, वहीं पारिवारिक जीवनकी सुन्दर झांकियांभी प्रस्तुत कर सरसता प्रदान की गयी है। लेखकका निवेदन है कि विविध भावरागोंकी सरस बममुलियां सारे बुन्देलखण्डमें बिखरी पड़ी हैं, इनका



संकलन और विश्लेषण शीघ्र होजाना चाहिये ।

साहित्यमें पत्रोंका विशिष्ट महत्त्व है । इसमें अनेक रोचक जानकारियां प्राप्त होती हैं, चिंतन-मनन प्रभावित होता है । ईसुरीके इस अंकमें लोकवातिशास्त्रकी उपयोगिताके सन्दर्भमें लोकमनीषी डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा बुन्देली लोकसाहित्य मर्मज्ञ बाबू कृष्णानन्द गुप्तको लिखे सात पत्रोंका प्रकाशन किया गया है जिससे लोकवातिके स्वरूपको सम्यक् रूपसे समझा जा सकता है ।

‘सर्वोत्तम और सार्थक’ शीर्षसे तीसरे खण्डमें सियारामशरण गुप्त, आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, शिव कुमार श्रीवास्तव जैसे शीर्ष सिद्ध-लेखकोंके साथही रचनाशील डॉ. कैलाशबिहारी द्विवेदी, चरणसिंह अमी और यदुनाथ सिंहकी रचनाएं प्रकाशित हुई हैं । स्व. सियारामशरण गुप्तका अप्रकाशित निबन्ध ‘लेखकका सर्वोत्तम’ में गुप्तजी लेखनका सर्वोत्तम हृदयको छू जाने को मानते हैं । सर्जक और चिंतक आचार्य पं. भगीरथ मिश्रसे सम्बन्धित लेखमें मिश्रजीके साहित्य संस्कारोंको उद्घाटित करने हेतु लेखकने प्रारम्भमें मिश्रजीके जीवनवृत्तपर प्रकाश डाला है, उनकी संस्कारजन्य साहित्यिक अभिरूचिको कारक माना है और लेखके अंत में मिश्रजीके साहित्य प्रदेयकी शास्त्रीय समीक्षा विस्तार पूर्वक करते हुए उन्हें “मध्यकालीन हिन्दी साहित्यके मर्मज्ञ भावक एवं मनीषी” निरूपित किया है । राजनीति और साहित्य दोनों विधाओंमें पारंगत श्री शिव कुमार श्रीवास्तवने अपने लेखमें वाल्मीकि और होमर की तुलना करनेपर पाया कि ‘वास्तवमें होमर और वाल्मीकि दो भिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियोंके प्रतिनिधि हैं, अतएव दोनोंमें गहरा अन्तर है ।” बुन्देली लोकसाहित्यकी यशस्वी पत्रिका ‘मधुकर’ के संपादक पं. वनारसीदास चतुर्वेदी की शतवाषिकीके अवसरपर ‘ईसुरी’ ने उनका कृतज्ञ स्मरण करते हुए डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदीका एक लेख प्रकाशित किया है जिसमें ‘मधुकर’ पत्रिकाके माध्यमसे बुन्देलखण्ड जनपदकी साहित्य एवं संस्कृतिको देशके सम्मुख लानेके लिए पं. चतुर्वेदीके लाभदायी प्रयासोंकी चर्चाकर उनका ऋण स्वीकार किया है । ‘रामविलास शर्मा : केवल प्रकृति’ लेखमें जहाँ शर्माजीका सड़क दुर्घटनामें अनायास चले जानेपर दुःख व्यक्त किया गया है वहीं उनकी कविता की प्रकृतिकी बारीक पतें भी देखी-परखी गयी हैं जिसमें

उन्हें प्रगतिशीलियों सादृश्य नारेबाजीसे हटकर ‘प्रकृति के अन्यतम कवि, प्रकृतिकी मोहकताके कवि, प्रकृतिको करीनेसे सहेजकर कवितामें रखनेवाला कवि’ घोषित किया गया है । इस खण्डका अन्तिम लेख आलोचक धनंजय वर्माकी रचनाशक्ति और आलोचन क्षमतापर केन्द्रित एवं मूल्यांकन है । लेखक यदुनाथ सिंहने इस लेख के माध्यमसे उन्हें ‘जीवनोन्मुखी चिन्तन, बहस, स्वीकार-अस्वीकारसे एक स्वतंत्र रचनाशास्त्रकी सैद्धांतिक, व्यावहारिक और शिल्पगत मर्यादाओंका निर्माण करने वाला संघर्षशील व्यक्तित्व माना है ।’ इसी खंडमें कवि पद्माकरके वंशज पं. पद्मनाभ तैलंगका एक साक्षात्कार प्रकाशित हुआ है जिसमें उन्होंने नाट्यदर्शन एवं नाट्यलेखनके विभिन्न तत्त्वों एवं पक्षोंपर प्रकाश डाला है ।

चौथे खण्ड ‘जड़ें, पत्र और फल’ के अन्तर्गत बुन्देली लोक-साहित्य मर्मज्ञ, कवि और पत्रकार श्री कन्हैयालाल ‘कलश’ की पत्रात्मक आत्मकथा प्रकाशित हुई है । इसी क्रममें जबलपुरके दो गौरव कवि पन्नालाल श्रीवास्तव ‘नूर’, व्यंग्यशिल्पी पं. श्रीबाल पाण्डेय तथा महोबाके उमाशंकर नगायचके साहित्यिक अवदानकी भी चर्चा हुई है । ‘पत्र’ उपशीर्षकके अन्तर्गत विठ्ठल दास मोदीका एक दुर्लभ पत्र (जो प्रगतिशीलता और रचनात्मकताके अन्तर्द्वन्द्वोंको रेखांकित करनेवाला है) का प्रकाशन हुआ है । तदनन्तर एकांकीका रचनाकार कोन (?) के सम्बन्ध में डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित एवं उ. प्र. के हाईस्कूलमें पढ़ायी जानेवाली पाठ्य पुस्तक ‘हिन्दी सौरभ’ के सम्पादक श्री श्यामलाल वर्मा के बीच हुए पत्र-व्यवहारको प्रकाशित किया गया है जिससे एकाधिक बातें प्रकाशमें आयी हैं । जैसे एक रचनाके दो रचनाकार कैसे हो सकते हैं ? हिन्दी-सेवियों को चाहिये कि रचनाएं प्रकाशित करते समय इन महत्त्वपूर्ण बातोंका ध्यान रखें ताकि इतिहास सत्यसे परे न जा सके । ‘फल’ उपशीर्षकके अन्तर्गत मूल्यवान् आठ पुस्तकोंकी समीक्षाएं प्रकाशित हुई हैं जिसमें परंपरा, इतिहास बोध और संस्कृति (प्रो. श्यामाचरण दुबे), पं. रामेश्वरप्रसाद गुरु : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, (सं. दुर्गाशंकर शुक्ल एवं अन्य), सीता निर्वासन (पं. उमाशंकर नगायच), लक्ष्मीबाई चरित (पं. द्वारिकेश मिश्र), रतनलाल मालवीय स्मृति ग्रंथ (संपादक श्रीमती सुधा पटोरिया) बाँके बोल बुन्देलीके (बुन्देली



गह्वरी पोथी सं. कैलाश मड़बैया) तथा अष्टदल (सेठ प्रेमचन्द जैनकी आठ कविताओंका संकलन) की सरल सुबोध शैलीमें तथ्यपूर्ण टिप्पणियाँ ग्रंथोंकी अन्तर्भावकी सामग्रीको स्पष्ट करनेमें समक्ष सिद्ध हुई हैं।

‘कुछ विस्मृत बीती बातें’ शीर्षकके अन्तर्गत ‘देव पुरस्कारका इतिहास’, और ओरछासे प्रकाशित एक पूर्वं साहित्यिक मासिक ‘वीर बुन्देल’ से सम्बन्धित लेखों का प्रकाशन निश्चयही स्वतंत्र्योत्तर युवा पीढ़ीको लाभदायी सिद्ध होगा। इसी क्रममें डॉ. महेन्द्र वर्माका ‘उस्ताद आदिल खांकी गायकी’ से सम्बन्धित लेखमें उस्तादकी अनूठी गायकी एवं अप्रतिम प्रतिभाके लिए संगीत गणनका ध्रुवतारा सिद्ध किया गया है। पत्रिका का छठा खंड १९६१-६२ में दिवंगत हुए साहित्यकारों/कलाकारों एवं संगीतज्ञोंको समर्पित करते हुए संपादक डॉ. कांतिकुमार जैनने उनके मूल्यवान् रचनात्मक सर्जनाके प्रदेयका उल्लेख करते हुए अवसानको देशके लिए अपूरणीय क्षति माना है। इस खंडमें जिन समर्थ हस्ताक्षरोंकी चर्चा है वे हैं—स्व. विमल मिश्र, राजेन्द्र माथुर, शरद जोशी, श्रीबाल पाण्डेय, पन्नालाल श्रीवास्तव ‘नूर’, श्रीकृष्ण दीक्षित ‘विद्रोही’, वीरेन्द्र शर्मा, नारायण राव पंडित, भुवनभूषण देवलिया, इस्मत चुगताई, भाऊ समर्थ, और कुमार गंधर्व।

पत्रिकाका अंतिम और सातवां खंड बुन्देली शब्द-कोशसे सम्बन्धित है जिसमें प, फ, ब, भ, म वर्णके प्रचलित बुन्देली शब्दोंके हिन्दी अर्थ दर्शाये गये हैं।

पत्रिकाके प्रारम्भमें सम्पादकीय आलेखमें डॉ. कांतिकुमार जैनने लिखा है कि हमें बुन्देलीके हिताय ‘बुन्देलखण्डके दीवाने नहीं, जानकार चाहिये’ जिससे हम अपनी जनपदीय परम्परा और इतिहासको जनश्रुतिके आधारपर नहीं वरन् वास्तविकतासे परिचित होकर जानें। ‘बुन्देले हरबोलों’ की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है कि—“हरबोलोंकी परम्परा लुप्त हो जाये उससे पहलेही हमें इस जानदार, शानदार और ईमानदार परम्पराकी खोज-खबर ले लेनी चाहिये” और इस खोज-खबर लेनेका श्रीगणेश करते हुए उन्होंने बाबू कृष्णानन्द गुप्त, कन्हैयालाल कलश, डॉ. रमापति मिश्र, डॉ. कैलाशबिहारी द्विवेदी, पं. हरि विष्णु अवस्थी एवं डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्तकी धारणाएं-मान्यताओंको उद्धृत करते हुए इस दिशामें कार्यको आगे बढ़ाने हेतु अपील की है। अंतमें उन्होंने इस वर्ष

सैवानिवृत्तिकी सूचना देते हुए ‘ईसुरी’ के सम्पादनमें लोकचितकों द्वारा दिये गये रचनात्मक सहयोगके प्रति सद्भाव और कृतज्ञता ज्ञापित की है। □

## उन्नयन १०१

[मणिपुरी कविता अंक]

सम्पादक : प्रकाश मिश्र

अंक-सम्पादक : डॉ. देवराज

समीक्षक : डॉ. मान्धाता राय

हिन्दीकी त्रैमासिक पत्रिका ‘उन्नयन’ का चर्चित अंक मणिपुरीकी द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर कविताओंपर केन्द्रित एक विशेषांक है। अन्य भारतीय भाषाओंकी भांति मणिपुरीकी आधुनिक कवितामें भी मोहभंग, यथार्थवादी दृष्टिकोण, असमानता, शोषण, अन्यायके विरुद्ध आक्रोश तथा उपेक्षाके प्रति क्षोभका चित्रण हुआ है। इसके समानान्तर अपनी धरतीके लगाव, प्रकृतिसे आत्मीयता और संस्कृतिके प्रति आस्थाका भावभी है। किन्तु दृष्टिकोण आधुनिक होनेके कारण प्रकृतिकी हरियाली और कोमलताके स्थानपर भूकम्प (पृ. ३६), ग्रीष्मकी धूप (पृ. ३४), अंधेरा-धुआं (पृ. २९) और पगडंडीका चित्रण इन कविताओंमें हुआ है। अपनी मिट्टीसे जुड़नेकी कसकसे सम्बन्धित एक मात्र कविता आशाङ्कम मोनकेतन सिंह की ‘जय मां मणिपुर’ (पृ. ७) है।

आरम्भमें ‘सम्पादकीय’ के रूपमें ‘द्वितीय विश्व युद्धोत्तर मणिपुरी कविता’ शीर्षक मणिपुरी कविताका संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित इतिहास प्रस्तुत करके अतिथि संपादक श्री देवराजने प्रस्तुत अंकको बहुमूल्य बनाया है। पाँच पृष्ठोंमें मणिपुरी कविताके आरम्भ, विकास और उसमें आये विभिन्न मोड़ोंके साथही इसके प्रमुख रचनाकारों और उनकी विशिष्टताओंसे पाठकोंको परिचित कराया गया है। राय तो यह है कि कवितामें नवजागरण हिन्दीकी भांति मणिपुरीमें भी बंगला और अंग्रेजीसे होकर आया है। अतः संकलनकी कविताएं हमें नयी कविता सदृश लगते हैं। यथार्थवादसे अति-यथार्थवादकी ओर बढ़ती कविताओंमें मशीनी एवं

१. प्रका. : सम्पादक : उन्नयन, ४०६ त्रिवेणी रोड, कोडगंज, इलाहाबाद (उ. प्र.)। पृष्ठ : ६०; डिमा. ६०; मूल्य : २०.०० रु.।



यौन प्रतीकोंका सघन प्रयोग हिन्दी कविताओंकी ही भांति हुआ है। यह अंग्रेजी कविताका प्रभाव है। इसकी परिणति 'एंग्री पोएट्री' में हुई जिसका प्रभाव धीरे-धीरे कम हो रहा है।

इसके समानान्तर रोमानी कविताका धाराभी निरन्तर प्रवहमान रही। इ. नीलकान्त सिंह, मीन केतनसिंह, शीतलजीत आदि कवियोंने आधुनिक मूल्यों के साथ सन्तुलन बनाकर रोमानी काव्यकी साधना की है। इनका मानना है कि समस्त विषमताओंके होते हुए मनुष्य, मानवता और देवी-रहस्यसे विश्वास उठा नहीं है। इस अंकमें संकलित नीलकान्त सिंहकी 'यात्रा' शीर्षक कविता आन्तरिक जीवनकी अशान्त और प्रश्नों से घिरी स्थितिको अनुत्तरित जलधाराओंमें डुबोकर रोमांसकी दिशामें अग्रसर हो जाती है।

आधुनिक कवितामें प्रतीकोंका प्रयोग अधिक हो रहा है। मणिपुरी कवितामें भी प्रतीकोंका सघन प्रयोग किया गया है। 'एक शहर' (पृ. ६-१०) कवितामें पूंजीपतियों/क्रूर लोगों और निरपराध-बेसहाराका चित्रण कविने प्रतीकोंके सहारे प्रभावशाली ढंगसे किया है—

उस शहरमें / कुछ लोगोंके सिर बाघके होते हैं/  
और खाते हैं/भूख मिटानेके लिए क्षण भरकी/  
निरपराध बेचारे कई जीवोंको।

'बलि-पशु' कवितामें इन्हें ही बलि-पशुकी संज्ञा दी गयी है। कवि युमलेम्बम इबोमचा सिंहने 'अंतिम बात' (पृ. १६-२०) शोषणके इसी क्रममें दुःख-सुखकी चर्चा उठाकर 'लट्टू' को सुखका प्रतीक बताया है—

सुख है ही क्या/एक लट्टू/चक्कर काटकर घूमता है।

इसी प्रकार सर्वहाराको अघड़े बकूलका पेड़, फुट-पाथ (पृ. २३), शोषणको भेड़िया (पृ. २७) और अमीर (पृ. ४१) बताकर कहीं व्यंग्य, आक्रोश तथा कहींपर समानान्तर चित्रण द्वारा असमानता-अन्यायका प्रभावशाली वर्णन कवियोंने किया है—खड़े-खड़े सूख गये पेड़ (शोषण पृ. ३२)/दहलीजके पास बैठा कुत्ता/ (पागल कुत्ता पृ. ४१)।

इन कविताओंमें एक सहज क्षोभ मुखरित हुआ है। दूसरी ओर थके-हारे लोगोंके प्रति सहानुभूतिका स्वर भी है। 'ग्रीष्मको घूप' (पृ. ३४) में राजकुमार भुवनसनाका उद्देश्य गर्मीके चित्रणसे अधिक उसमें जोर-जोरसे पैडिल चला रहे रिक्शा चालककी तरबतर हालतको प्रस्तुत करना है जिसे कुछ अधिक मिलता नहीं

'प्रकर'—दिसम्बर'६२—५६

है। आजकी फॅशनपरस्त युवापीढ़ीकी भटकनसे सम्बन्धित कविता 'अंधेरेमें देखो' में राजकुमार मधु-वीर ने प्रतीकके सहारे क्लबमें झूमते युवक-युवतियोंकी मनोदशाका चित्रण किया है—गहरी अंधेरी रातमें,/ देखो अधिक गौरसे/बड़ा-सा फूलोंका बगीचा/आक्षितिज फैला हुआ/प्रत्येक रंगके कई फूल देखोगे/नृत्य करते हुए, थके हुए सिर हिलाते...

इसके अतिरिक्त संवेदना और मानवीयताकी भी झलक देखनेको मिलती है। घोर भौतिकताके बीच प्रेम, आनन्दको बाहर-बाहर ढुंढनेको कविने मृग-मरीचिका की संज्ञा दी है—क्योंकि चीज जो ढुंढ रहा है/वह आन्तरिक है बाह्य नहीं— (अकेला पृ. १३)

कुछ कविताओंमें स्थानीयताकी भी झलक दिखती है। कयामुद्दीन पुरवीनयुमकी 'हंगर स्ट्राइक पार्क' (पृ. १३) में मणिपुरके टिकेन्द्रजीत पार्क, शहीद मीनार, तीनों कड़ला-शा जैसे स्थलोंका चित्रण हुआ है। दूसरी ओर फूहड़पन और भदेसपन आधुनिक कविताओं के आवश्यक तत्त्व बन गये हैं। गोया इनके अभावमें उनकी बात अधूरी रह जाती है। संकलनकी चार कविताएं इसी प्रकारकी हैं—रिक्शा चालकके लिंग (पृ. १८), शराब पीओ, गांजा पीओ, अफीम खाओ (पृ. २), यूं ही थूकते हैं थूक (पृ. २४)। नये उप-मानोंके प्रयोगमें भी यही स्थिति है—टोकरी-सा बड़ा सिर (पृ. २५), जैसे मनुष्यके खूनसे पेटभरी मादा मच्छर (पृ. २६)।

प्रतिबद्ध कवितासे जुड़े सभी रचनाकार अपने चिन्तनकी प्रामाणिकता बनाये रखनेके लिए घटनाएं तो भिन्न-भिन्न जीवन प्रसंगोंसे लेते हैं किन्तु निष्कर्ष सबका एकही जैसा होता है। कुछेक कवियोंने अपनेको इससे बाहर लानेका प्रयास किया है। हरीशचन्द्र पांडेय की छटपटाहट कुछ ऐसीही है। उनकी कविताओंमें वास्तविकताकी अनुभवात्मक अभिव्यक्ति है। उन्होंने जीवन बिम्बोंको लयात्मक ऊर्जासे स्पन्दित कर कला बिम्बोंमें बदलनेमें सफलता पायी है। उनकी कविता 'घसियारिन' (पृ. ८४) दर्दसे रिश्ता स्थापितकर पक्ष-धर बन जाती है।

इस अंककी सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि इसके द्वारा हिन्दीके पाठकोंको मणिपुरीकी कविताओं से परिचित कराया गया है। इसके लिए 'उन्नयन' परिवार और विशेषकर इस अंकके सम्पादक श्री देवराज बघाईके पात्र हैं।



- ☐ प्रा. उत्तमभाई एल. पटेल, श्री वनराज आर्ट्स एवं कामर्स कालेज, धरमपुर-३६६०५०.
- ☐ श्री पं. काशीरामजी शर्मा, बी-३/३२, नाबाड नगर, ठाकुर संकुल, कांदीवली (पूर्व), मुम्बई-४००१०१.
- ☐ डॉ. कृष्णकुमार हुंका, १६२ कोतवाली वाडें, जबलपुर (म. प्र.).
- ☐ डॉ. चन्द्रेश्वर दुबे, ७ डी. एम. कालेज कालोनी, इम्फाल (मणिपुर) — ७६५००३.
- ☐ डॉ. तुमनमिह, भाषा संकाय, लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी-२४८१७६.
- ☐ डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, ७४ शान्तिनगर, सिरौही-३०७००१.
- ☐ डॉ. प्रशान्तकुमार, ७/२, रूपनगर, दिल्ली-११०००७.
- ☐ डॉ. बालेन्द्रशेखर तिवारी, हरिहर सिंह रोड, मोराबादी, रांची-८३४००८.
- ☐ डॉ. भगीरथ बड़ोले, २८६ विवेकानन्द कालोनी, फ्रीगंज, उज्जैन-४५६००१.
- ☐ डॉ. भैरूलाल गर्ग, मर्यादा भवन, गांधीनगर, शाहपुर (भीलवाड़ा)-३११४०४.
- ☐ डॉ. मदन गुलाटी, १३२६/१३, सेक्टर बी, अर्बन इस्टेट, करनाल-१३२००१.
- ☐ डॉ. मानवेन्द्र पाठक, काण्डपाल भवन, रायल होटल कम्पाउण्ड, मल्लीताल, नैनीताल (उ. प्र.).
- ☐ डॉ. मान्धाता राय, नयी बस्ती, सकलेनाबाद, गाजीपुर-२३३००१.
- ☐ डॉ. मूलचन्द सेठिया, ८/२७६, विद्याधर नगर, जयपुर-३०२०१२.
- ☐ डॉ. राघव प्रकाश, ७-मी महारानी कालेज स्टाफ प्लैटम, जयपुर (राजस्थान).
- ☐ डॉ. राधा दीक्षित, १७४ नन्दन गार्डन, पश्चिमी कचहरी रोड, मेरठ-२५०००१.
- ☐ डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल, भूतपूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद (आं. प्र.).
- ☐ डॉ. वीरेन्द्रमिह, ५ झ १५, जवाहरनगर, जयपुर-३०२००४.
- ☐ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, १४/५, द्वारकापुरी, अलीगढ़-२०२००१.
- ☐ डॉ. हरदयाल, एच-५० पश्चिमी ज्योतिनगर, गोकुलपुरी, दिल्ली-११००६४.
- ☐ डॉ. हर्षनन्दिनी भाटिया, भारती नगर, मैरिस रोड, अलीगढ़-२०२००१.

## विश्वविद्यालयों महाविद्यालयों/पुस्तकालयोंके लिए अनिवार्य पत्रिका 'प्रकर'

### शुल्क विवरण

- ☐ प्रस्तुत अंक ८.०० रु.
- ☐ वार्षिक शुल्क (साधारण डाकसे) : संस्था : ७५.०० रु.; व्यक्ति : ६५.०० रु.
- ☐ आजीवन सदस्यता : संस्था : ७५१.०० रु.; व्यक्ति : ५०१.०० रु.
- ☐ विदेशोंमें समुद्री डाकसे एक वर्षके लिए : प्रत्येक देशमें २००.०० रु.
- ☐ विदेशोंमें विमान सेवासे (प्रत्येक देशके लिए) — एक वर्षके लिए : ४८०.०० रु.
- ☐ दिल्लीसे बाहरके चैकमें १३.०० रु. अतिरिक्त जोड़ें, राशि 'प्रकर' के नामसे और मनीआर्डर अथवा बैंक ड्राफ्टसे भेजें।

व्यवस्थापक, 'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

'प्रकर' — पौष २०५६



## आगामी अंक :

### ‘प्रकर’ का मकर सक्रान्ति अंक

#### नवम दशककी हिन्दी आलोचना

क्या हिन्दी साहित्यकी आलोचना विधा नवम दशकमें दिशाहीन रही है ? सम्भव है कि वाद विशेषसे जुड़े लोग अपने वादसे भिन्न अन्य विभिन्न चिन्तनधाराओंके क्षेत्रोंमें भी आलोचनाकी गति देखकर अथवा अन्य दिशाओं और वादोंके चिन्तनको भी अपने क्षेत्रमें समाहित कर किन्हीं निर्दिष्ट और निर्धारित सीमाओंका उल्लंघन किया हो, परन्तु मूल्यांकनके अपने मूल कर्मसे वह विचलित नहीं हुई। इस नवम दशककी अवधिमें आलोचनाके क्षेत्रका विस्तार मार्क्सवाद, समाजशास्त्र, संरचना शैली, शैलीविज्ञान, सौन्दर्यशास्त्र, अन्तःअनुशासन आदि विविध प्रकारोंसे जुड़कर भी हुआ है। इस प्रकार आलोचनाके क्षेत्रमें विविधता आयी है जोकि इस विधाकी गतिशीलताका सूचक है। इसका अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं। सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. वीरेन्द्र सिंह। यह लम्बा लेख ‘प्रकर’ के तीन अंकोंमें प्रकाशित होगा। प्रथम खण्ड आगामी मास प्रकाशित हो रहा है।

#### हिन्दी व्याकरण मीमांसा

गत चार अंकोंमें हिन्दी व्याकरणपर हुए कार्योंके सिद्धान्तलोकनके साथ व्याकरणका प्रयोजन, क्षेत्र, हिन्दी व्याकरणके वैदेशिक आधार, भाषा-लिपि सम्बन्ध, वर्ण-अक्षरका अर्थभेद, मात्राएं तथा अन्य चिह्न, संयुक्ताक्षर, स्वर विचार, हिन्दी स्वर एवं व्यंजन, संधि, संस्कृत-संधिकी प्रासंगिकतापर विचार हो चुका है। आगामी अंकमें “शब्द-विचार, रूप-विचार और हिन्दीका रूप प्रक्रियात्मक ढांचा” पर नयी दृष्टि प्रस्तुत की जा रही है। इस लेखमालाके लेखक है : पण्डित काशीराम शर्मा।

#### माई का शोक गीत

सातवें दशकके चर्चित कहानीकार दूधनाथ सिंह नयी कहानी और आजकी कहानीके मध्यवर्ती हैं। उनकी कुछ कहानियोंमें सम्बन्धहीनता, संवेदन शून्य निस्सारता, निराशा, कुण्ठा, एकाकीपन, सन्त्रास आदि नकारात्मक प्रवृत्तियोंका प्राधान्य था। आलोचकोंको ये कहानियाँ आत्मपरक एवं ‘एक भयसे दूसरे भयकी ओर’ अग्रसर होती प्रतीत हुईं। परन्तु यह नवीनतम कहानी-संग्रह इन धारणाओंका प्रतिवाद करता है। समीक्षक हैं : डॉ. मूलचन्द सेठिया।

#### धर्म निरपेक्षवाद और भारतीय प्रजातन्त्र

भारतीय धर्म और आधुनिक धर्म-निरपेक्षता दोनोंको ही आजकी राजनीतिमें विवादास्पद बना दिया गया है। लेखक एम. पी. दुबेने भारतीय लोकतन्त्र (अथवा जनतन्त्र) के परिप्रेक्ष्यमें भारतीय प्रकृतिमें धर्म-निरपेक्षवादका जो रूप प्रस्तुत किया है, वह पश्चिमी संकल्पनासे अपनी संगति नहीं बैठा पाता। इस दृष्टि से यह अध्ययन एक पठनीय कृति है। समीक्षक हैं : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री।

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार : मुद्रक : संगीता कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा रायसीना प्रिंटरी चमेलिया रोड, दिल्ली-६

प्रकाशन स्थान : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-७.

दूरभाष : ७११३७६३.



गुडे  
वा  
रत  
म  
न,  
मे  
।  
ड

न,  
ग,  
ग  
ह  
।  
-  
,  
क

।  
-  
:











